मज्झिमा निकाय

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय

पाली संस्करण : पाली-अंग्रेज़ी और पाली-देवनागरी संस्करण नीचे प्रत्येक वग्ग (खंड संस्कृत वर्ग) की शुरुआत में दिए गए हैं।

मज्झिमा निकाय ("मध्यम लंबाई के प्रवचनों का संग्रह") सुत्त पिटक के पाँच निकायों (संग्रहों) में से दूसरा है । इस निकाय में बुद्ध और उनके प्रमुख शिष्यों द्वारा दिए गए 152 प्रवचन शामिल हैं, जो मिलकर बुद्ध की शिक्षाओं के सभी पहलुओं से संबंधित शिक्षाओं का एक व्यापक संग्रह बनाते हैं।

अंतर्वस्तु

1वग्गास
1.11. मूलपरियाया-वग्ग
1.22. सिहानादा-वग्ग
1.33. तातिया-वग्गा
1.44. महायमक-वग्ग
1.55. चुलयमाका-वग्ग
1.66. गहापति-वग्ग
1.77.भिक्खु-वग्ग
1.88. परिब्बाजक-वग्ग
1.99. राजा-वग्ग
1.1010. ब्राह्मण-वग्ग
1.1111. देवदह-वग्ग
1.1212.अनुपदा-वग्ग
1.1313. सुन्नत-वग्ग
1.1414.विभंग-वग्ग
1.1515.सलायतन-वग्ग
2अंग्रेज़ी अनुवाद डाउनलोड करें/देखें
3मूल पाली संस्करण

00:01
41:20

वग्गास

मज्झिमा निकाय में 152 प्रवचन हैं, जिन्हें 15 समूहों में बांटा गया है:

1. मूलपरियाया-वग्ग

मुलापारैया-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी

मूलपरियाय सूत्र (1) चेतना की अवस्थाएँ कैसे उत्पन्न होती हैं।

सब्बासव सूत्र (2) कैंकरों के उन्मूलन पर।

धम्मदयादा सूत्र (3) भिक्षुओं को धम्म के महत्व और उनकी भौतिक इच्छाओं के महत्वहीन होने का एहसास कराने के लिए प्रेरित करना।

भयभेरव सूत्र (4) जंगल के भय और आतंक का सामना करने पर। बुद्ध के ज्ञानोदय का वृत्तांत भी।

अनंगना सूत्र (5) सारिपुत्त और मोग्गलाना के बीच दुराचार से मुक्ति की प्राप्ति पर एक संवाद।

अकंखेय्या सूत्र (6) उन चीजों पर जिनके लिए भिक्षु कामना कर सकता है।

वत्थुपमा सूत्र (7) मैले कपड़े और दूषित मन का दृष्टांत।

सल्लेख सूत्र (8) स्वयं और झूठे विचारों के उन्मूलन पर।

सम्मादिथि सुत्त (9) सही विचारों पर सारिपुत्त का एक प्रवचन।

सतिपथाना सूत्र (10) दीघा संख्या 22 के समान, लेकिन 4 सत्यों की व्याख्या के बिना।

2. सिहानादा-वग्ग

सिहानादा-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
कुलासिहनादा सुत्त (11).
महासिहनदा सूत्र (12) लघु और दीर्घ "चुनौती" सूत्र। तपस्वी प्रथाओं की मूर्खता पर।
महादुक्खक्खन्ध सुत्त (13).
चुलादुक्खक्खन्ध सूत्र (14) दुख की लंबी और छोटी कहानियां।
अनुमान सूत्र (15) मोग्गलाना द्वारा, आत्मनिरीक्षण के महत्व पर। (इसमें बुद्ध का कोई संदर्भ नहीं है)।
सेतोखिला सुत्त (16) पाँच मानसिक बंधनों पर।
वनपत्थ सूत्र (17) वन जीवन के लाभ और हानियों पर।
मधुपिंडिका सुत्त (18) बुद्ध अपनी शिक्षाओं की एक संक्षिप्त रूपरेखा देते हैं, जिसे कच्चन विस्तार से बताते हैं।
द्वेधवितक्क सूत्र (19) कामुकता के आकर्षण का दृष्टांत। (4) में ज्ञानोदय की पुनरावृत्ति।
वितक्कसंथन सुत्त (20) अवांछित विचारों को दूर करने के लिए ध्यान की विधि।

3. तातिया-वग्गा
ततिया-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
काकाचुपमा सूत्र (21) आरी की उपमा। सबसे गंभीर उत्तेजना के तहत भावनाओं और मन के नियंत्रण पर।
अलागड्डुपमा सुत्त (22) जल-सर्प की उपमा। धम्म के बारे में गलत विचार रखना, सर्प को पूंछ से पकड़ने के समान है।
वम्मिका सूत्र (23) सुलगती हुई चींटी की टीले की उपमा मानव शरीर के रूप में।
रथविनीत सूत्र (24) पुन्ना ने सारिपुत्त को पवित्र जीवन का उद्देश्य समझाया।
निवापा सूत्र (25) मारा की उपमा एक बोने वाले या शिकारी के रूप में हिरण के लिए चारा बिछाती है।
अरियापरियेसन सूत्र (26) महान खोज। बुद्ध का उनके त्याग, खोज और ज्ञान प्राप्ति का वृत्तांत।
चुलाहत्थिपाडोपमा सुत्त (27) संक्षिप्त "हाथी का निशान" उपमा।
महाहत्थिपाडोपमा सूत्र (28) लंबी "हाथी की पगडंडी" उपमा। पृथ्वी, द्रव, अग्नि, वायु, अंतरिक्ष तत्वों का उल्लेख है।
महासरोपमा सूत्र (29) लाभ, मान-सम्मान और प्रसिद्धि के खतरे पर। कहा जाता है कि यह तब दिया गया था जब देवदत्त ने संघ छोड़ दिया था।
चुलसरोपमा सूत्र (30) पूर्ववर्ती सूत्र का विकास। धम्म के सार को प्राप्त करने पर।
4. महायमक-वग्ग
महायमका-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
कुलागोसिंगा सूत्र (31) बुद्ध की तीन भिक्षुओं के साथ बातचीत, जो उन्हें अपनी उपलब्धियों के बारे में बताते हैं।
महागोसिंगा सूत्र (32) छह भिक्षुओं के बीच एक संवाद जिसमें वे चर्चा करते हैं कि जंगल को क्या सुंदर बनाता है।
महागोपालक सूत्र (33) चरवाहे के ग्यारह अच्छे और बुरे गुणों पर।
कुलगोपालक सूत्र (34) नदी पार करते मूर्ख और बुद्धिमान चरवाहे की उपमा।
चुला सच्चक सूत्र (35) पाँच खंडों की प्रकृति पर बुद्ध और जैन सच्चक के बीच एक चर्चा।
महा सच्चक सूत्र (36) बुद्ध के तपस्या और ज्ञानोदय का वृत्तांत, सही ध्यान पर निर्देशों के साथ।
चुलतन्हासंखया सूत्र (37) सक्का बुद्ध से भोग से मुक्ति के बारे में पूछता है और मोग्गलाना को उनके उत्तर को संतोषजनक ढंग से दोहराता है।
महातन्हासंख्य सूत्र (38) उस भिक्षु के विधर्म का खंडन जो मानता है कि चेतना ही पुनर्जन्म लेती है।
महा अस्सपुरा सुट्टा (39) नीचे (40) देखें।
चुला अस्सपुरा सूत्र (40) अस्सपुरा में दिए गए महान और लघु प्रवचन, तपस्वी के कर्तव्यों पर।

5. चुलयमाका-वग्ग
कुलायमाका-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
सालेय्यक सूत्र (41) साला के ब्राह्मणों को प्रवचन, इस विषय पर कि कुछ प्राणी स्वर्ग जाते हैं और कुछ नरक।
वेरंजक सूत्र (42) वही प्रवचन वेरंजा के गृहस्थों को दोहराया गया।
महावेदल्ला सुत्त (43) सारिपुत्त द्वारा महाकोट्ठिता को दिया गया एक मनोवैज्ञानिक प्रवचन।
कुलवेदल्ला सुत्त (44) भिक्खुनी धम्मदिन्ना द्वारा सामान्य भक्त विशाखा को दिया गया एक मनोवैज्ञानिक प्रवचन।
कुलधम्मसमदाना सुत्त (45) नीचे देखें (46)।
महाधम्मसमदना सुत्त (46) भविष्य में सुख और दुख के परिपक्व होने पर संक्षिप्त और दीर्घ प्रवचन।
विमंसक सूत्र (47) जांच के सही तरीकों पर।

कोसंबिया सूत्र (48) कोसंबी के भिक्षुओं को झगड़े की बुराई पर एक प्रवचन।
ब्रह्मनिमान्तनिका सूत्र (49) बुद्ध ब्रह्मलोक में बका को स्थायित्व के विधर्म से परिवर्तित करते हैं।
मराटज्जनिया सुट्टा (50) मोग्गलाना ने मारा को चेतावनी दी।
6. गहापति-वग्ग
गहपति-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
कंदारक सूत्र (51) चार प्रकार के व्यक्तित्वों पर प्रवचन।
अत्थकनगर सूत्र (52) आनंद द्वारा निर्वाण प्राप्ति के मार्गों पर एक प्रवचन।
सेखा सूत्र (53) बुद्ध कपिलवस्तु में एक नया सभा कक्ष खोलते हैं, और आनंद शिष्य के प्रशिक्षण पर प्रवचन देते हैं।
पोटालिया सूत्र (54) बुद्ध पोटालिया को सांसारिकता के त्याग का वास्तविक महत्व समझाते हैं।
जीवक सूत्र (55) बुद्ध मांसाहार की नैतिकता की व्याख्या करते हैं।
उपालि सुत्त (56) उपालि, जैन का रूपांतरण।
कुक्कुरवाटिका सूत्र (57) बुद्ध और दो तपस्वियों के बीच कर्म (कर्म/कार्य) पर एक संवाद।
अभयराजकुमार सुत्त (58) जैन नटपुत्त ने देवदत्त की निंदा पर बुद्ध से सवाल करने के लिए राजकुमार अभय को भेजा।
बहुवेदनीय सूत्र (59) भावनाओं के वर्गीकरण पर।
अपन्नक सुत्त (60) विभिन्न विधर्मियों के विरुद्ध, "निश्चित सिद्धांत" पर।

7.भिक्खु-वग्ग
भिक्खु-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
अम्बलत्थिका-राहुलोवाद सुत्त (61) बुद्ध द्वारा राहुल को दिया गया झूठ पर उपदेश।
महा-राहुलोवदा सुत्त (62) राहुल को श्वास व्यायाम के साथ चिंतन करने की सलाह।
चुला-मालुनक्य सूत्र (63) अनिर्धारित प्रश्नों पर (तुलना करें (72) भी)।
महा-मालुंक्य सूत्र (64) पाँच निम्न बंधनों पर।
भद्दलि सुत्त (65) भद्दलि की स्वीकारोक्ति, और बुद्ध की सलाह।
लातुकीकोपमा सूत्र (66) संसार के त्याग पर सलाह।
कैटुमा सुट्टा (67) कैटुमा में झगड़ालू भिक्षुओं को सलाह।
नलकापना सुत्त (68) बुद्ध धम्म के कुछ बिंदुओं के संबंध में अनुरुद्ध से प्रश्न करते हैं।
गुलिस्सानी सूत्र (69) उन लोगों के लिए नियम जो गुलिस्सानी की तरह जंगल में रहते हैं।
कितागिरि सूत्र (70) भिक्षुओं के विभिन्न वर्गों द्वारा पालन किया जाने वाला आचरण।
8. परिब्बाजक-वग्ग
परिब्बाजाका-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
तेविज्जा-वच्छगोत्ता सूत्र (71) बुद्ध तपस्वी वच्छगोत्ता से मिलने जाते हैं और दावा करते हैं कि उन्हें तेविज्जा (त्रिविध ज्ञान रखने वाला) कहा जाता है क्योंकि उन्हें अपने पिछले जन्मों का स्मरण, अलौकिक दृष्टि और आसवों के उन्मूलन के मार्ग का ज्ञान है।
अग्गी-वच्छगोत्त सूत्र (72) दुनिया आदि के बारे में सिद्धांत बनाने का खतरा।
महा वाचागोट्टा सुत्त (73) सामान्य शिष्यों और भिक्खुओं के आचरण पर वाचागोट्टा को आगे की व्याख्या।
दीघनखा सुत्त (74) बुद्ध तपस्वी दीघनखा का खंडन करते हैं। सारिपुत्त को अरिहतपद प्राप्त होता है।
मगंदिया सूत्र (75) बुद्ध इंद्रिय जीवन के अपने त्याग के बारे में बताते हैं, और कामुक इच्छाओं के परित्याग पर विस्तार से चर्चा करते हैं।
संदका सुत्ता (76) आनंद तपस्वी संदका के पाखंडों का खंडन करते हैं।
महासकुलुदयी सूत्र (77) बुद्ध को सम्मानित किए जाने के पाँच कारणों पर।
समनामंडीका सूत्र (78) पूर्ण सद्गुण के गुणों पर।
चुलसकुलुदयी सूत्र (79) जैन नेता नटपुत्त, और सच्चे सुख का मार्ग।
वेखानस्सा सूत्र (80) पूर्ववर्ती सूत्र के एक भाग की पुनरावृत्ति, पाँच इंद्रियों पर अतिरिक्त विषयवस्तु के साथ।

9. राजा-वग्ग
राजा-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
घटिकारा सूत्र (81) बुद्ध आनंद को ज्योतिपाल के रूप में अपने पिछले अस्तित्व के बारे में बताते हैं।
रत्थपाल सूत्र (82) रत्थपाल की कहानी, जिसके माता-पिता ने उसे संघ में प्रवेश करने से रोकने के लिए व्यर्थ प्रयास किया।
मखदेव सूत्र (83) राजा मखदेव के रूप में बुद्ध के पिछले जीवन की कहानी।
मधुर सूत्र (84) बुद्ध की मृत्यु के बाद कच्चना द्वारा राजा अवंतीपुत्त को जाति के वास्तविक अर्थ पर दिया गया प्रवचन।

बोधिराजकुमार सूत्र (85) बुद्ध अपने त्याग और ज्ञानोदय की कहानी बताते हैं जैसा कि (26) और (36) में है।
अंगुलिमाला सूत्र (86) डाकू सरदार अंगुलिमाला के धर्म परिवर्तन की कहानी।
पियाजातिका सूत्र (87) बुद्ध द्वारा एक ऐसे व्यक्ति को दी गई सलाह जिसने अपना पुत्र खो दिया था, और उस पर राजा पसेनादि और उसकी पत्नी के बीच विवाद।
बहितिका सूत्र (88) आनंद पसेनादि द्वारा पूछे गए आचरण संबंधी प्रश्न का उत्तर देते हैं, जो उन्हें विदेशी वस्त्र का एक टुकड़ा भेंट करता है।
धम्मचेतिया सुत्त (89) पसेनादि बुद्ध से मिलने जाता है और पवित्र जीवन की प्रशंसा करता है।
कन्नाकत्थलक सूत्र (90) बुद्ध और पसेनादि के बीच देवों, जाति और ब्रह्मा पर हुई बातचीत।
10. ब्राह्मण-वग्ग
ब्राह्मण-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
ब्रह्मयु सूत्र (91) महान पुरुष के बत्तीस लक्षण और ब्राह्मण ब्रह्मयु के रूपांतरण पर।
सेला सूत्र (92) ब्राह्मण सेला बुद्ध के बत्तीस चिह्नों को देखकर परिवर्तित हो जाता है। (यही कथा सूत्र निपाता तृतीय, 7 में भी वर्णित है)।
अस्सलायन सूत्र (93) ब्राह्मण अस्सलायन बुद्ध के साथ जाति पर चर्चा करते हैं। जाति पर बुद्ध की शिक्षाओं की एक महत्वपूर्ण प्रस्तुति।
घोटामुख सूत्र (94) घोटामुख संघ के लिए एक सभा भवन का निर्माण करता है। इसके उद्घाटन पर उदेना का प्रवचन।
कैनकी सुट्टा (95) ब्राह्मणवादी सिद्धांतों पर प्रवचन।
एसुकारी सुत्त (96) जाति और उसके कार्यों पर प्रवचन।
धनंजनी सुत्ता (97) सारिपुत्त ने ब्राह्मण धनंजनी से कहा कि पारिवारिक कर्तव्य गलत काम के लिए कोई बहाना नहीं हैं।
वसेत्था सुत्त (98) सच्चे ब्राह्मण के स्वरूप पर, अधिकतर पद्य में, प्रवचन। (यह सुत्त निपाता III, 9 में पुनरावृत्त होता है)।
सुभा सुत्त (मज्झिमा निकया) (99) इस विषय पर कि मनुष्य को गृहस्थ रहना चाहिए या संसार छोड़ देना चाहिए।
संगरव सूत्र (100) धम्म को स्वीकार करने वाली ब्राह्मण स्त्री, और पवित्र जीवन पर एक प्रवचन। साथ ही (26) और (36) के कुछ हिस्सों की पुनरावृत्ति।

11. देवदह-वग्ग
देवदह-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
देवदहा सूत्र (101) बुद्ध जीवन जीने के द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति पर प्रवचन देते हैं।
पंचत्तया सूत्र (102) आत्मा के पाँच सिद्धांतों पर, और यह कि मुक्ति (निर्वाण) का मार्ग उनमें से किसी पर भी निर्भर नहीं करता है।
किन्ती सूत्र (103) धम्म के विषय में विवाद करने वाले और अपराध करने वाले भिक्षुओं के लिए नियम।
समागम सूत्र (104) नटपुत्त की मृत्यु के बाद - दीघा निकया (29) में भी - विवाद और सद्भाव पर बुद्ध का प्रवचन।
सुनक्खत्त सूत्र (105) लालसा के बाण को निकालने की उपमा।
अनंजसप्पय सूत्र (106) अविघटन और उपलब्धियों पर ध्यान, और सच्ची मुक्ति पर।
गणक-मोग्गलाना सुत्त (107) शिष्यों के प्रशिक्षण पर गणक-मोग्गलाना को निर्देश।
गोपका-मोग्गलाना सूत्र (108) बुद्ध के निधन के बाद, आनंद ने वस्सकारा को समझाया कि धम्म ही अब एकमात्र मार्गदर्शक है।
महा पुन्नमा सुत्त (109) बुद्ध खंडों के संबंध में एक भिक्षु के प्रश्नों का उत्तर देते हैं।
चुला पुन्नामा सुत्त (110) अच्छे और बुरे आदमी पर एक प्रवचन।
12.अनुपदा-वग्ग
अनुपदा-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
अनुपदा सुत्त (111) बुद्ध सारिपुत्त और उनके मन के विश्लेषण की प्रशंसा करते हैं।
छब्बिसोदना सूत्र (112) उस भिक्षु से पूछे जाने वाले प्रश्न जो अरहंतत्व प्राप्त करने की घोषणा करता है।
सप्पुरिसा सुत्त (113) भिक्षु के अच्छे और बुरे गुणों पर।
सेविताबबासेविताब्बा सूत्र (114) सारिपुत्त पवित्र जीवन जीने का सही तरीका बताते हैं।
बहुधातुक सूत्र (115) बुद्ध और आनंद के बीच संवाद के रूप में व्यवस्थित तत्वों और सिद्धांतों की सूचियाँ।
इसिगिली सुट्टा (116) पचेका-बुद्ध पर बुद्ध।
महाचत्तरिसक सूत्र (117) आर्य अष्टांगिक मार्ग की व्याख्या।
अनापानसति सुत्त (118) श्वास व्यायाम पर।
कायगतसति सुत्त (119) शरीर पर ध्यान।
संखरुप्पति सूत्र (120) पाँच संस्कारों के विकास पर, जो भिक्षु को उसके पुनर्जन्म की स्थितियों को निर्धारित करने में सक्षम बनाते हैं।

13. सुन्नत-वग्ग

सुन्नत-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
चुलसुन्नत सूत्र (121) शून्यता पर ध्यान।
महासुन्नत सूत्र (122) आनंद को शून्यता पर ध्यान के अभ्यास पर निर्देश।
अचरियाबभुतधम्म सुत्त (123) एक बोधिसत्व के अद्‌भुत जीवन पर। दीघ निकाय (14) के भाग की पुनरावृत्ति लेकिन स्वयं बुद्ध पर लागू होती है।
बक्कुला सुत्ता (124) बक्कुला ने अपने मित्र एसेला-कस्सापा का धर्म परिवर्तन किया।
दंतभूमि सूत्र (125) हाथी के प्रशिक्षण की उपमा से बुद्ध बताते हैं कि किसी को धम्म में दूसरे को कैसे निर्देश देना चाहिए।
भूमिजा सुट्टा (126) भूमिजा ने राजकुमार जयसेन के सवालों का जवाब दिया।
अनुरुद्ध सूत्र (127) अनुरुद्ध गृहस्थ पंचकंग को मन की मुक्ति की व्याख्या करते हैं।
उपक्किलेसा सूत्र (128) बुद्ध कोसंबी के भिक्षुओं के झगड़ों को शांत करते हैं और सही ध्यान पर प्रवचन देते हैं।
बालपंडित सूत्र (129) मृत्यु के बाद पुरस्कार और दंड पर।
देवदूत सूत्र (130) मृत्यु के दूतों की उपेक्षा करने वालों के भाग्य पर।
14.विभंग-वग्ग
विभंग-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
भद्देकरट्टा सुत्त (131) चार छंदों की एक कविता, प्रयास पर टिप्पणी के साथ।
आनंदभद्देकरत्ता सूत्र (132) उसी कविता की आनंद की व्याख्या।
महाकच्चनभड्डेकरट्टा सुत्त (133) महाकच्चन उसी कविता की व्याख्या करते हैं।
लोमसाकंगियाभद्देकरट्टा सुत्त (134) बुद्ध ने लोमसाकंगिया को वही कविता समझाई।
चुलकम्मविभंग सूत्र (135) बुद्ध विभिन्न शारीरिक और मानसिक गुणों को कर्म (कर्म/कर्मों) के कारण बताते हैं।
महाकम्मविभंग सुत्त (136) बुद्ध एक तपस्वी के तर्कों का खंडन करते हैं जो कम्म (कर्म/कर्म) के संचालन से इनकार करते हैं।
सलायतनविभंग सुत्त (137) छह इंद्रियों का विश्लेषण।
उद्देसविभंगा सुत्त (138) महाकाक्कन चेतना के एक पहलू पर विस्तार करता है।
अरणविभंग सुत्त (139) चरम के बीच का मध्य मार्ग।
धातुविभंग सूत्र (140) पुक्कुसती की कहानी, जिसने अपने उपदेशों से गुरु को पहचाना। तत्वों का विश्लेषण।
सच्चविभंगा सुत्त (141) चार आर्य सत्यों का कथन। उस पर सारिपुत्त की एक टिप्पणी।
दक्षिणविभंग सुत्त (142) उपहार और देने वालों पर।

15.सलायतन-वग्ग
सलायतन-वग्गा का पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी और पाली-देवनागरी
अनाथपिंडिकोवाडा सुत्त (143) अनाथपिंडिका की मृत्यु, तुसिता स्वर्ग में उनका पुनर्जन्म, और बुद्ध के सामने उनकी उपस्थिति।
चन्नोवादा सुत्त (144) थेरा चन्ना की कहानी, जो बीमार होने पर सारिपुत्त द्वारा उपदेशित किया गया था, और जिसने अंततः आत्महत्या कर ली।
पुन्नोवादा सूत्र (145) बुद्ध द्वारा पुन्ना को सुख और दुख सहने के बारे में दी गई शिक्षा।
नंदकोवड़ा सुत्त (146) नंदका ने महापजापति और 500 भिक्खुनियों को अनित्यता पर उपदेश दिया।
चुला राहुलवादा सूत्र (147) बुद्ध राहुल को जंगल में ले जाते हैं और उनसे अनित्यता के विषय में प्रश्न करते हैं। देवता प्रवचन सुनने आते हैं।
चचक्का सूत्र (148) छह छह (इंद्रियों के) पर।
महासलयातनिका सूत्र (149) इंद्रियों के सही ज्ञान पर।
नागरविन्देय्य सूत्र (150) बुद्ध का उन तपस्वियों और ब्राह्मणों के प्रकारों पर निर्देश जिन्हें सम्मानित किया जाना चाहिए।
पिंडपातपरिशुद्धि सूत्र (151) शिष्य के प्रशिक्षण पर सारिपुत्त को निर्देश।
इंद्रियभवन सूत्र (152) बुद्ध ने सेउस को वश में करने के लिए ब्राह्मण परासरिया की विधियों को अस्वीकार कर दिया और अपनी विधि का प्रतिपादन किया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> मुलपरैया-वग्गा >> 1.1: मुलपारैया सुत्त (एमएन 1)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

चेतना की अवस्थाएँ कैसे उत्पन्न होती हैं?

अंतर्वस्तु

1सेवा
2अशिक्षित सामान्य व्यक्ति
3!
4अरहंत
5तथागत
6नोट्स

मैंने ऐसा सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध उक्कत्था में, परम पवित्र उपवन में स्थित एक शाही साल के पेड़ की छाया में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं!"
"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।
भगवान बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें समस्त घटनाओं के मूल क्रम का ज्ञान दूंगा । ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"
"जैसा आप कहें, महोदय," उन्होंने जवाब दिया।

अशिक्षित साधारण व्यक्ति

भगवान बुद्ध ने कहा: "हे भिक्षुओं, एक ऐसा मामला है जहाँ एक अशिक्षित, साधारण व्यक्ति—जो श्रेष्ठ व्यक्तियों का अनादर करता है, उनके धर्म का ज्ञाता या अनुशासित नहीं है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का अनादर करता है, उनके धर्म का ज्ञाता या अनुशासित नहीं है—पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में देखता है। पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में देखकर, वह पृथ्वी के बारे में, पृथ्वी में, पृथ्वी से निकलने वाली चीजों के बारे में सोचता है, वह पृथ्वी को 'मेरी' समझता है, वह पृथ्वी में आनंदित होता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि उसने इसे समझा नहीं है, मैं तुमसे कहता हूँ।"
वह जल को जल के रूप में, अग्नि को अग्नि के रूप में, वायु को वायु के रूप में, प्राणियों को प्राणियों के रूप में, देवताओं को देवताओं के रूप में, प्रजापति को प्रजापति के रूप में, ब्रह्मा को ब्रह्मा के रूप में, प्रकाशमान देवताओं को प्रकाशमान देवताओं के रूप में, तेजस्वी देवताओं को तेजस्वी देवताओं के रूप में, फलदायी देवताओं को फलदायी देवताओं के रूप में, महान सत्ता को महान सत्ता के रूप में, अनंत अंतरिक्ष के आयाम को अनंत अंतरिक्ष के आयाम के रूप में, चेतना के अनंत आयाम को चेतना के अनंत आयाम के रूप में, शून्यता के आयाम को शून्यता के आयाम के रूप में, न-बोध-न-बोध के आयाम को न-बोध-न-बोध के आयाम के रूप में, दृश्य को दृश्य के रूप में, श्रवण को श्रवण के रूप में, इंद्रियों द्वारा अनुभव किए गए को इंद्रियों द्वारा अनुभव किए गए को, बोधित को बोधित के रूप में, एकता को एकता के रूप में, अनेकता को अनेकता के रूप में, और सर्वस्व को सर्वस्व के रूप में देखता है।
वह मुक्ति को मुक्ति के रूप में देखता है। मुक्ति को मुक्ति के रूप में देखते हुए, वह मुक्ति के बारे में बातें सोचता है, मुक्ति में बातें सोचता है, मुक्ति से निकलती बातें सोचता है, मुक्ति को 'अपना' मानता है, मुक्ति में आनंदित होता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि उसने इसे समझा नहीं है, मैं तुमसे कहता हूँ।

प्रशिक्षु

"एक प्रशिक्षु भिक्षु —बंधन से पूर्ण मुक्ति की तीव्र इच्छा से ग्रस्त, जिसकी आकांक्षाएँ अभी तक अधूरी हैं—पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है। पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानकर, वह पृथ्वी से संबंधित किसी भी बात की कल्पना न करे, पृथ्वी में किसी भी बात की कल्पना न करे, पृथ्वी से निकलने वाली किसी भी बात की कल्पना न करे, पृथ्वी को 'मेरी' न समझे, पृथ्वी में आनंद न ले। ऐसा क्यों? ताकि वह इसे समझ सके, मैं तुम्हें बताता हूँ।
वह जल को जल के रूप में, अग्नि को अग्नि के रूप में, वायु को वायु के रूप में, प्राणियों को प्राणियों के रूप में, देवताओं को देवताओं के रूप में, प्रजापति को प्रजापति के रूप में, ब्रह्मा को ब्रह्मा के रूप में, प्रकाशमान देवताओं को प्रकाशमान देवताओं के रूप में, तेजस्वी देवताओं को तेजस्वी देवताओं के रूप में, फलदायी देवताओं को फलदायी देवताओं के रूप में, महान सत्ता को महान सत्ता के रूप में, अनंत अंतरिक्ष के आयाम को अनंत अंतरिक्ष के आयाम के रूप में, चेतना के अनंत आयाम को चेतना के अनंत आयाम के रूप में, शून्यता के आयाम को शून्यता के आयाम के रूप में, न-बोध-न-बोध के आयाम को न-बोध-न-बोध के आयाम के रूप में, दृश्य को दृश्य के रूप में, श्रवण को श्रवण के रूप में, इंद्रियों द्वारा अनुभव किए गए को इंद्रियों द्वारा अनुभव किए गए को, ज्ञात को ज्ञात के रूप में, एकता को एकता के रूप में, अनेकता को अनेकता के रूप में, सर्वस्व को सर्वस्व के रूप में जानता है।

वह मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है। मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानते हुए, उसे मुक्ति के विषय में कुछ भी नहीं सोचना चाहिए, मुक्ति में कुछ भी नहीं सोचना चाहिए, मुक्ति से कुछ भी नहीं निकलना चाहिए, मुक्ति को 'मेरा' नहीं समझना चाहिए, मुक्ति में आनंद नहीं लेना चाहिए। ऐसा क्यों? ताकि वह इसे समझ सके, मैं तुम्हें बताता हूँ।

अरहंत

"एक योग्य भिक्षु, जो मानसिक विकारों से मुक्त है—जिसने पूर्णता प्राप्त कर ली है, कार्य पूरा कर लिया है, बोझ उतार दिया है, सच्चे लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है, अस्तित्व के बंधनों को तोड़ दिया है और सही ज्ञान से मुक्त हो गया है—वह पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है। पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानकर, वह पृथ्वी के बारे में कुछ नहीं सोचता, पृथ्वी में कुछ नहीं सोचता, पृथ्वी से कुछ नहीं निकलता, पृथ्वी को 'मेरी' नहीं समझता, पृथ्वी में आनंद नहीं लेता। ऐसा क्यों है? क्योंकि उसने इसे समझ लिया है, मैं तुमसे कहता हूँ।"

वह जल को जल के रूप में, अग्नि को अग्नि के रूप में, वायु को वायु के रूप में, प्राणियों को प्राणियों के रूप में, देवताओं को देवताओं के रूप में, प्रजापति को प्रजापति के रूप में, ब्रह्मा को ब्रह्मा के रूप में, प्रकाशमान देवताओं को प्रकाशमान देवताओं के रूप में, तेजस्वी देवताओं को तेजस्वी देवताओं के रूप में, फलदायी देवताओं को फलदायी देवताओं के रूप में, महान सत्ता को महान सत्ता के रूप में, अनंत अंतरिक्ष के आयाम को अनंत अंतरिक्ष के आयाम के रूप में, चेतना के अनंत आयाम को चेतना के अनंत आयाम के रूप में, शून्यता के आयाम को शून्यता के आयाम के रूप में, न-बोध-न-बोध के आयाम को न-बोध-न-बोध के आयाम के रूप में, दृश्य को दृश्य के रूप में, श्रवण को श्रवण के रूप में, इंद्रियों द्वारा अनुभव किए गए को इंद्रियों द्वारा अनुभव किए गए को, ज्ञात को ज्ञात के रूप में, एकता को एकता के रूप में, अनेकता को अनेकता के रूप में, सर्वस्व को सर्वस्व के रूप में जानता है।

वह मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है। मुक्ति को मुक्ति के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानने के कारण, वह मुक्ति के बारे में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति से कुछ नहीं निकलता, मुक्ति को 'मेरा' नहीं मानता, मुक्ति में आनंद नहीं लेता। ऐसा क्यों है? क्योंकि उसने इसे समझ लिया है, मैं तुमसे कहता हूँ।

"एक पुण्यवान भिक्षु, जो मानसिक विकारों से मुक्त है... पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है। पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानने पर, वह पृथ्वी के विषय में कुछ नहीं सोचता, पृथ्वी में कुछ नहीं सोचता, पृथ्वी से कुछ नहीं निकलता, पृथ्वी को 'मेरी' नहीं मानता, पृथ्वी में आनंद नहीं लेता। ऐसा क्यों है? क्योंकि, मैं तुम्हें बताता हूँ, जब उसकी वासना समाप्त हो जाती है, तो वह वासना से मुक्त हो जाता है।"

वह जल को जल के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है... सर्वस्व को सर्वस्व के रूप में जानता है...

वह मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति के रूप में जानता है। मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति के रूप में जानते हुए, वह मुक्ति के बारे में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति से कुछ नहीं निकलता, मुक्ति को 'मेरा' नहीं मानता, मुक्ति में आनंद नहीं लेता। ऐसा क्यों है? क्योंकि, वासना के अंत के साथ, वह वासना से रहित हो जाता है, मैं तुमसे कहता हूँ।

"एक पुण्यवान भिक्षु, जो मानसिक विकारों से मुक्त है... पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है। पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानने पर, वह पृथ्वी के विषय में कुछ नहीं सोचता, पृथ्वी में कुछ नहीं सोचता, पृथ्वी से कुछ नहीं निकलता, पृथ्वी को 'मेरी' नहीं मानता, पृथ्वी में आनंद नहीं लेता। ऐसा क्यों है? क्योंकि घृणा के अंत के साथ, वह घृणा से मुक्त हो जाता है, मैं तुम्हें बताता हूँ।"

वह जल को जल के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है... सर्वस्व को सर्वस्व के रूप में जानता है...

वह मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति के रूप में जानता है। मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति के रूप में जानकर, वह मुक्ति के बारे में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति से कुछ नहीं निकलता, मुक्ति को 'मेरा' नहीं मानता, मुक्ति में आनंद नहीं लेता। ऐसा क्यों है? क्योंकि घृणा के अंत के साथ, वह घृणा से रहित हो जाता है, मैं तुमसे कहता हूँ।

"एक पुण्यवान भिक्षु, जो मानसिक विकारों से मुक्त है... पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है। पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानने पर, वह पृथ्वी के विषय में, पृथ्वी में, पृथ्वी से उत्पन्न होने वाली, पृथ्वी को 'मेरी' समझकर, पृथ्वी में आनंदित होकर कुछ नहीं सोचता। ऐसा क्यों है? क्योंकि, भ्रम के अंत के साथ, वह भ्रम से मुक्त हो जाता है, मैं तुम्हें बताता हूँ।"

वह जल को जल के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है... सर्वस्व को सर्वस्व के रूप में जानता है...

वह मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति के रूप में जानता है। मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति के रूप में जानकर, वह मुक्ति के बारे में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति से कुछ नहीं निकलता, मुक्ति को 'मेरा' नहीं मानता, मुक्ति में आनंद नहीं लेता। ऐसा क्यों है? क्योंकि, भ्रम के अंत के साथ, वह भ्रम से मुक्त हो जाता है, मैं तुमसे कहता हूँ।

तथागत

"तथागत—एक योग्य, सच्चे आत्मज्ञानी—पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं। पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानकर, वे पृथ्वी के विषय में कुछ नहीं सोचते, पृथ्वी में कुछ नहीं सोचते, पृथ्वी से कुछ नहीं निकलते, पृथ्वी को 'मेरी' नहीं मानते, पृथ्वी में आनंद नहीं लेते। ऐसा क्यों है? क्योंकि तथागत ने इसे पूर्णतः समझ लिया है, मैं तुम्हें बताता हूँ।"

वह जल को जल के रूप में, अग्नि को अग्नि के रूप में, वायु को वायु के रूप में, प्राणियों को प्राणियों के रूप में, देवताओं को देवताओं के रूप में, प्रजापति को प्रजापति के रूप में, ब्रह्मा को ब्रह्मा के रूप में, प्रकाशमान देवताओं को प्रकाशमान देवताओं के रूप में, तेजस्वी देवताओं को तेजस्वी देवताओं के रूप में, फलदायी देवताओं को फलदायी देवताओं के रूप में, महान सत्ता को महान सत्ता के रूप में, अनंत अंतरिक्ष के आयाम को अनंत अंतरिक्ष के आयाम के रूप में, चेतना के अनंत आयाम को चेतना के अनंत आयाम के रूप में, शून्यता के आयाम को शून्यता के आयाम के रूप में, न-बोध-न-बोध के आयाम को न-बोध-न-बोध के आयाम के रूप में, दृश्य को दृश्य के रूप में, श्रवण को श्रवण के रूप में, इंद्रियों द्वारा अनुभव किए गए को इंद्रियों द्वारा अनुभव किए गए को, ज्ञात को ज्ञात के रूप में, एकता को एकता के रूप में, अनेकता को अनेकता के रूप में, सर्वस्व को सर्वस्व के रूप में जानता है।
वह मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति के रूप में जानता है। मुक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मुक्ति के रूप में जानकर, वह मुक्ति के बारे में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति में कुछ नहीं सोचता, मुक्ति से कुछ नहीं निकलता, मुक्ति को 'मेरा' नहीं मानता, मुक्ति में आनंद नहीं लेता। ऐसा क्यों है? क्योंकि तथागत ने इसे पूर्णतः समझ लिया है, मैं तुम्हें बताता हूँ।
"तथागत—एक योग्य, सच्चे आत्मज्ञानी—पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं। पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानकर, वे पृथ्वी के विषय में, पृथ्वी में, पृथ्वी से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं में, पृथ्वी को 'मेरी' कहकर, पृथ्वी में आनंद नहीं लेते। ऐसा क्यों? क्योंकि वे जानते हैं कि आनंद दुख और तनाव का मूल है, कि जन्म से ही अस्तित्व है, और जो अस्तित्व में आया है, उसी का अंत और मृत्यु है। इसलिए, भोग-विलास के पूर्ण अंत, विलीन होने, निश्चिंत होने, त्यागने और लालसा के परित्याग के साथ, तथागत पूर्णतः अद्वितीय सच्चे आत्मज्ञान को प्राप्त कर चुके हैं, मैं तुम्हें बताता हूँ।"
वह जल को जल के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानता है... सर्वस्व को सर्वस्व के रूप में जानता है...
"वह बंधनहीनता को प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं। बंधनहीनता को प्रत्यक्ष रूप से जानते हुए, वे बंधनहीनता के बारे में कुछ नहीं सोचते, बंधनहीनता में कुछ नहीं सोचते, बंधनहीनता से कुछ नहीं निकलते, बंधनहीनता को 'मेरा' नहीं मानते, बंधनहीनता में आनंद नहीं लेते। ऐसा क्यों? क्योंकि वे जानते हैं कि आनंद दुख और तनाव का मूल है, कि जन्म से ही अस्तित्व है, और जो अस्तित्व में आया है, उसी का अंत और मृत्यु है। इसलिए, पूर्ण अंत, विलीनता, समाप्ति, त्याग, लालसा के परित्याग के साथ, तथागत पूर्णतः अद्वितीय आत्म-जागृति में जागृत हो गए हैं, मैं तुम्हें बताता हूँ।"
भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षु इससे अप्रसन्न हुए और उन्हें भगवान बुद्ध के शब्द अच्छे नहीं लगे।

नोट्स

मूलपरियाय सूत्र का अंग्रेजी अर्थ है, मूल क्रम। बुद्ध ने सिखाया कि विचारों से आसक्ति, मन को दुख की प्रक्रियाओं से बांधने वाले चार प्रकार के आसक्ति में से एक है। इसलिए उन्होंने अपने अनुयायियों को न केवल विशिष्ट स्थितियों के रूप में विचारों से, बल्कि उनके प्रारंभिक रूप से भी, यानी उन श्रेणियों और संबंधों से, जिन्हें मन अनुभव में ग्रहण करता है, आसक्ति का त्याग करने की सलाह दी। यह वह बिंदु है जिसे वे निम्नलिखित प्रवचन में उठाते हैं, जो स्पष्ट रूप से उनके समय में विकसित हो रहे ब्राह्मणवादी विचार के एक विशेष संप्रदाय - सांख्य, या वर्गीकरण संप्रदाय - के प्रति उनकी प्रतिक्रिया है।
इस विचारधारा की शुरुआत ईसा पूर्व नौवीं शताब्दी के दार्शनिक उद्दालक के विचारों से हुई, जिन्होंने एक "मूल" की अवधारणा प्रस्तुत की: एक अमूर्त सिद्धांत जिससे सभी वस्तुएँ उत्पन्न हुईं और जो सभी वस्तुओं में अंतर्निहित है। इस विचार को आगे बढ़ाने वाले दार्शनिकों ने तर्क और ध्यान के अनुभवों पर आधारित, परम मूल के स्वरूप और उत्पत्ति के क्रम के बारे में अनेक सिद्धांत प्रस्तुत किए। उनके कई सिद्धांत उपनिषदों में दर्ज हैं और अंततः बुद्ध के समय के आसपास शास्त्रीय सांख्य दर्शन प्रणाली के रूप में विकसित हुए।
यद्यपि वर्तमान प्रवचन में इसे सुनने वाले भिक्षुओं की पृष्ठभूमि के बारे में कुछ नहीं कहा गया है, फिर भी टीका में कहा गया है कि दीक्षा से पहले वे ब्राह्मण थे, और दीक्षा के बाद भी वे बुद्ध की शिक्षाओं की व्याख्या अपने पूर्व प्रशिक्षण के प्रकाश में करते रहे, जो संभवतः सांख्य दर्शन का प्रारंभिक रूप रहा होगा। यदि ऐसा है, तो बुद्ध की आरंभिक पंक्तियाँ—"मैं तुम्हें समस्त घटनाओं के मूल का क्रम सिखाऊँगा"—उन्हें उनके चिंतन में बुद्ध के योगदान को सुनने के लिए तैयार करती हैं। वास्तव में, उनके द्वारा वर्णित विषयों की सूची बौद्ध सांख्य दर्शन के समान है। शास्त्रीय सांख्य दर्शन के समानांतर, इसमें 24 विषय हैं, जो भौतिक जगत (यहाँ, चार भौतिक गुण) से शुरू होते हैं, और अस्तित्व एवं अनुभव के अधिक परिष्कृत एवं समावेशी स्तरों से होते हुए अंत में परम बौद्ध अवधारणा: निर्वाण (मुक्ति) तक पहुँचते हैं। सांख्य दर्शन की पद्धति में, निर्वाण ही सर्वस्व में अंतर्निहित अस्तित्व का परम "मूल" या आधार है, जिससे वे सभी उत्पन्न होते हैं।
हालांकि, बुद्ध इस चिंतन पद्धति का अनुसरण करने के बजाय, इसकी जड़ पर ही प्रहार करते हैं: अमूर्त सिद्धांत की धारणा, अनुभव पर आरोपित "अंतर्निहित" (अंतर्निहितता) और "उत्पत्ति" (उत्पत्ति)। वे कहते हैं कि केवल एक अशिक्षित, साधारण व्यक्ति ही अनुभव को इस प्रकार पढ़ेगा। इसके विपरीत, प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति को एक भिन्न प्रकार के "मूल" की खोज करनी चाहिए - वर्तमान में अनुभव किए जा रहे दुख का मूल - और उसे आनंद की क्रिया में खोजना चाहिए। उस आनंद के प्रति वैराग्य विकसित करके, प्रशिक्षु अस्तित्व में आने की प्रक्रिया को उसके वास्तविक स्वरूप में समझ सकता है, उसमें सभी प्रकार की भागीदारी छोड़ सकता है, और इस प्रकार सच्ची जागृति प्राप्त कर सकता है।

यदि इस प्रवचन में उपस्थित श्रोता वास्तव में बौद्ध शिक्षाओं को सांख्य दर्शन के अनुरूप ढालने में रुचि रखते थे, तो उनकी नाराज़गी स्वाभाविक थी — यह उन कुछ उदाहरणों में से एक है जहाँ बुद्ध के वचनों पर नकारात्मक प्रतिक्रिया देखने को मिलती है। उन्हें उम्मीद थी कि बुद्ध उनके उद्देश्य में योगदान देंगे, लेकिन इसके बजाय उन्होंने अपने संपूर्ण चिंतन और सिद्धांत को अज्ञानतापूर्ण और कुप्रबंधित बताकर आलोचना का सामना किया। हालाँकि, टीका हमें बताती है कि बाद में वे अपनी नाराज़गी पर काबू पाने में सफल रहे और अंततः एएन 3.123 में वर्णित प्रवचन को सुनकर ज्ञानोदय प्राप्त किया।
हालांकि आजकल हम सांख्य दर्शन के दार्शनिकों की तरह कम ही सोचते हैं, फिर भी लंबे समय से एक आम प्रवृत्ति रही है और आज भी है, जिसमें एक ऐसी "बौद्ध" तत्वमीमांसा का निर्माण किया जाता है जिसमें शून्यता, असीमता, धर्म-शरीर, बुद्ध-स्वभाव, ऋग्पा आदि के अनुभव को अस्तित्व का आधार माना जाता है, जिससे "सर्व" - हमारे सभी इंद्रिय एवं मानसिक अनुभव - उत्पन्न होते हैं और ध्यान करते समय हम उसी में लौट आते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि ये सिद्धांत उन विद्वानों की कल्पना हैं जिन्हें ध्यान का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं है, लेकिन वास्तव में ये सिद्धांत अक्सर ध्यान करने वालों के बीच ही उत्पन्न हुए हैं, जो किसी विशेष ध्यान अनुभव को परम लक्ष्य मानते हैं (या प्रवचन के शब्दों में, "अनुभूत करते हैं"), उससे सूक्ष्म रूप से जुड़ जाते हैं (जैसे जब हमें बताया जाता है कि "हम ही ज्ञान हैं"), और फिर उस अनुभव को अस्तित्व का आधार मानते हैं जिससे अन्य सभी अनुभव उत्पन्न होते हैं।
इन पंक्तियों के बाद दी जाने वाली कोई भी शिक्षा उसी आलोचना के अधीन होगी जो बुद्ध ने उन भिक्षुओं के विरुद्ध की थी जिन्होंने सर्वप्रथम इस प्रवचन को सुना था।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> सब्बासव सुत्त(एमएन 2)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

आसवों के उन्मूलन पर

अंतर्वस्तु

1सेटिंग
2किण्वन प्रक्रिया को देखकर त्याग देना होगा
3किण्वन को रोककर त्याग दिया जाएगा
4किण्वन प्रक्रिया को निम्नलिखित तरीकों से बंद किया जाना है:
5सहनशीलता द्वारा परित्याग की जाने वाली किण्वन प्रक्रियाएँ
6किण्वन प्रक्रिया को निम्नलिखित तरीकों से रोककर समाप्त किया जाना चाहिए:
7किण्वन प्रक्रियाओं को नष्ट करके समाप्त किया जाना चाहिए
8विकासशील देशों द्वारा किण्वन प्रक्रिया को त्याग दिया जाएगा
9परिणाम
10नोट्स

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे।
वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं..."
"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।
भगवान बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, मैं तुमसे कहता हूँ कि विचारों का अंत उसे होता है जो जानता और देखता है, न कि उसे जो नहीं जानता और नहीं देखता। जो जानता और देखता है, उसके लिए क्या है? उचित ध्यान और अनुचित ध्यान। जब कोई भिक्षु अनुचित ध्यान देता है, तो अनपेक्षित विचार उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न विचार बढ़ते हैं। जब कोई भिक्षु उचित ध्यान देता है, तो अनपेक्षित विचार उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न विचार समाप्त हो जाते हैं। कुछ विचार देखने से समाप्त होते हैं, कुछ संयम से, कुछ उपयोग करने से, कुछ सहन करने से, कुछ बचने से, कुछ नष्ट करने से और कुछ विकसित करने से समाप्त होते हैं।"
किण्वन प्रक्रिया को देखकर त्याग देना होगा
और वे कौन से विकार हैं जिन्हें देखकर त्याग देना चाहिए? एक ऐसा मामला है जहाँ एक अशिक्षित, साधारण व्यक्ति—जो श्रेष्ठ व्यक्तियों का सम्मान नहीं करता, उनके धर्म का पारंगत या अनुशासित नहीं है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का सम्मान नहीं करता, उनके धर्म

का पारंगत या अनुशासित नहीं है—यह नहीं समझ पाता कि किन विचारों पर ध्यान देना उचित है और किन पर नहीं। ऐसा होने पर, वह ध्यान देने योग्य विचारों पर ध्यान नहीं देता और इसके बजाय अनुपयुक्त विचारों पर ध्यान देता है।

और वे कौन से विचार हैं जिन पर वह ध्यान देता है, जो ध्यान देने योग्य नहीं हैं? वे सभी विचार ऐसे हैं जिन पर ध्यान देने से उसके भीतर अनपेक्षित कामुकता का संचार होता है और वह बढ़ता जाता है; उसके भीतर अनपेक्षित कर्मकांड का संचार होता है और वह बढ़ता जाता है; उसके भीतर अनपेक्षित अज्ञानका संचार होता है और वह बढ़ता जाता है। ये वे विचार हैं जिन पर वह ध्यान देता है, जो ध्यान देने योग्य नहीं हैं।

और वे कौन से विचार हैं जिन पर ध्यान देना उचित है, लेकिन जिन पर वह ध्यान नहीं देता? वे सभी विचार ऐसे हैं जिन पर ध्यान देने से उसके भीतर अनपेक्षित कामुकता उत्पन्न नहीं होती और उत्पन्न कामुकता का त्याग हो जाता है; उसके भीतर अनपेक्षित कर्मकांड उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न कर्मकांड का त्याग हो जाता है; उसके भीतर अनपेक्षित अज्ञानकांड उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न अज्ञानकांड का त्याग हो जाता है। ये वे विचार हैं जिन पर ध्यान देना उचित है, लेकिन जिन पर वह ध्यान नहीं देता। अनपेक्षित विचारों पर ध्यान देने और उचित विचारों पर ध्यान न देने, दोनों के कारण उसके भीतर अनपेक्षित कर्मकांड उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न कर्मकांड बढ़ते हैं।

वह इस प्रकार अनुचित ढंग से ध्यान देता है: 'क्या मैं अतीत में था? क्या मैं अतीत में नहीं था? मैं अतीत में क्या था? मैं अतीत में कैसा था? क्या होने के बाद, मैं अतीत में क्या था? क्या मैं भविष्य में होऊंगा? क्या मैं भविष्य में नहीं होऊंगा? मैं भविष्य में क्या होऊंगा? मैं भविष्य में कैसा होऊंगा? क्या होने के बाद, मैं भविष्य में क्या होऊंगा?' या फिर वह तात्कालिक वर्तमान के बारे में आंतरिक रूप से उलझन में रहता है: 'क्या मैं हूँ? क्या मैं नहीं हूँ? मैं क्या हूँ? मैं कैसा हूँ? यह अस्तित्व कहाँ से आया है? यह कहाँ जा रहा है?'

जब वह इस प्रकार अनुचित रूप से ध्यान देता है, तो उसके मन में छह प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं: या तो 'मेरा एक आत्म है' का विचार सत्य और स्थापित मानकर, या 'मेरा कोई आत्म नहीं है' का विचार, या 'आत्म के माध्यम से ही मैं आत्म को अनुभव करता हूँ' का विचार, या 'आत्म के माध्यम से ही मैं अन-आत्म को अनुभव करता हूँ' का विचार, या 'अन-आत्म के माध्यम से ही मैं आत्म को अनुभव करता हूँ' का विचार सत्य और स्थापित मानकर, या फिर उसके मन में ऐसा विचार आता है: मेरा यही आत्म—वह ज्ञाता जो अच्छे और बुरे कर्मों के फलने-फूलने के प्रति संवेदनशील है—मेरा वह आत्म है जो स्थिर, शाश्वत, अनंत, अपरिवर्तनीय है और अनंत काल तक यथावत रहेगा। इसे विचारों का घना जंगल, विचारों का विकराल जाल, विचारों का मरोड़, विचारों का बंधन कहा जाता है। विचारों के बंधन से बंधा हुआ अशिक्षित साधारण व्यक्ति जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से, दुःख, विलाप और पीड़ा से मुक्त नहीं हो पाता। वह कष्ट और निराशा से मुक्त नहीं है, मैं तुमसे कहता हूँ।

"जो शिष्य श्रेष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म का पारंगत और अनुशासित है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म का पारंगत और अनुशासित है—वह यह भलीभांति जानता है कि किन विचारों पर ध्यान देना उचित है और किन पर नहीं। ऐसा होने पर वह अनुचित विचारों पर ध्यान नहीं देता, बल्कि उचित विचारों पर ध्यान देता है।"

और वे कौन से विचार हैं जिन पर वह ध्यान नहीं देता? वे सभी विचार ऐसे हैं जिन पर ध्यान देने से उसके भीतर अनगढ़ कामुकता का उभार उत्पन्न होता है और वह बढ़ता जाता है; उसके भीतर अनगढ़ कर्म का उभार उत्पन्न होता है और वह बढ़ता जाता है; उसके भीतर अनगढ़ अज्ञान का उभार उत्पन्न होता है और वह बढ़ता जाता है। ये वे विचार हैं जिन पर वह ध्यान नहीं देता, और जिन पर वह ध्यान नहीं देता।

और वे कौन से विचार हैं जिन पर वह ध्यान देता है? वे सभी विचार ऐसे हैं जिन पर ध्यान देने से उसके भीतर अनपेक्षित कामुकता उत्पन्न नहीं होती और उत्पन्न कामुकता का त्याग हो जाता है; उसके भीतर अनपेक्षित कर्मकांड उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न कर्मकांड का त्याग हो जाता है; उसके भीतर अनपेक्षित अज्ञानकांड उत्पन्न नहीं होता और उत्पन्न अज्ञानकांड का त्याग हो जाता है। ये वे विचार हैं जिन पर वह ध्यान देता है। अनपेक्षित विचारों पर ध्यान न देने और उपयुक्त विचारों पर ध्यान देने से उसके भीतर अनपेक्षित कर्मकांड उत्पन्न नहीं होते और उत्पन्न कर्मकांड का त्याग हो जाता है।

वह उचित ध्यान देता है। यही तनाव है... यही तनाव का उद्गम है... यही तनाव का निवारण है... यही तनाव निवारण का मार्ग है। इस प्रकार उचित ध्यान देने पर उसके भीतर तीन बंधन छूट जाते हैं: पहचान-दृष्टि, संदेह और नियमों एवं प्रथाओं से चिपके रहना। इन्हें दृष्टि द्वारा त्यागे जाने वाले विकार कहा जाता है।

किण्वन को रोककर त्याग दिया जाएगा

और संयम से किन मनोभ्रंशों का त्याग किया जा सकता है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु उचित चिंतन करते हुए, नेत्र-संवेदना के संयम के साथ निवास करता है। नेत्र-संवेदना के संयम के साथ असंयमित रूप से निवास करने पर जो मनोभ्रंश, व्याकुलता या बुखार उत्पन्न होते, वे नेत्र-संवेदना के संयम के साथ निवास करने पर उत्पन्न नहीं होते।

उचित चिंतन करते हुए, वह श्रवण शक्ति के संयम के साथ निवास करता है...

उचित चिंतन करते हुए, वह नाक की संवेदनशीलता के संयम के साथ निवास करता है...

उचित चिंतन करते हुए, वह ज़ुबान की संयमित अभिव्यक्ति के साथ संयमित होकर निवास करता है...

उचित चिंतन करते हुए, वह शरीर की इंद्रियों के संयम के साथ संयमित होकर निवास करता है...

उचित चिंतन करते हुए, वह बुद्धि के संयम से बंधी हुई अवस्था में निवास करता है। बुद्धि के संयम से मुक्त होकर निवास करने पर जो मनोभ्रंश, व्याकुलता या बुखार उत्पन्न होते, वे बुद्धि के संयम से निवास करने पर उत्पन्न नहीं होते। इन्हें संयम द्वारा त्यागे जाने वाले मनोभ्रंश कहा जाता है।

किण्वन प्रक्रिया को निम्नलिखित तरीकों से बंद किया जाना है:
और किन विकारों को त्यागना चाहिए? एक उदाहरण है जहाँ एक भिक्षु, उचित चिंतन करते हुए, ठंड से बचने के लिए, गर्मी से बचने के लिए, मक्खियों, मच्छरों, हवा, धूप और सरीसृपों के स्पर्श से बचने के लिए, केवल शरीर के उन हिस्सों को ढकने के लिए वस्त्र का उपयोग करता है जो शर्म का कारण बनते हैं।
"उचित चिंतन करते हुए, वह भिक्षा भोजन का उपयोग न तो मनोरंजन के लिए करता है, न ही नशे के लिए, न ही वजन बढ़ाने के लिए, न ही सौंदर्य के लिए; बल्कि केवल इस शरीर के अस्तित्व और निरंतरता के लिए, इसके कष्टों को समाप्त करने के लिए, पवित्र जीवन के समर्थन के लिए, यह सोचते हुए कि 'इस प्रकार मैं पुरानी भूख की भावनाओं को नष्ट करूँगा और अधिक खाने से नई भावनाएँ उत्पन्न नहीं करूँगा। मैं अपना भरण-पोषण करूँगा, निर्दोष रहूँगा और सुखमय जीवन व्यतीत करूँगा।'
"उचित रूप से विचार करते हुए, वह आवास का उपयोग केवल ठंड से बचाव के लिए, गर्मी से बचाव के लिए, मक्खियों, मच्छरों, हवा, धूप और सरीसृपों के स्पर्श से बचाव के लिए करता है; केवल मौसम की प्रतिकूलताओं से सुरक्षा और एकांत का आनंद लेने के लिए।"
"उचित रूप से विचार करते हुए, वह बीमारों के इलाज के लिए इस्तेमाल की जाने वाली औषधीय सामग्रियों का उपयोग केवल बीमारी से उत्पन्न होने वाले किसी भी दर्द का प्रतिकार करने और बीमारी से अधिकतम मुक्ति प्राप्त करने के लिए करता है।"
"यदि वह इन चीजों का इस प्रकार उपयोग न करे तो जो कंपकंपी, बेचैनी या बुखार उत्पन्न होता, वह इस प्रकार उपयोग करने पर उत्पन्न नहीं होता। इन्हें उपयोग करने से दूर होने वाली कंपकंपी कहा जाता है।"

सहनशीलता द्वारा परित्याग की जाने वाली किण्वन प्रक्रियाएँ
और सहनशीलता से किन विकारों का त्याग करना चाहिए? एक भिक्षु उचित चिंतन करते हुए सहनशीलता का अभ्यास करता है। वह सर्दी, गर्मी, भूख और प्यास सहन करता है; मक्खियों, मच्छरों, हवा, धूप और सरीसृपों का स्पर्श सहन करता है; अपशब्दों और अप्रिय शारीरिक संवेदनाओं को सहन करता है, जो उत्पन्न होने पर पीड़ादायक, कष्टदायी, तीक्ष्ण, चुभने वाली, अप्रिय, अप्रिय और जीवन के लिए खतरा होती हैं। यदि वह इन चीजों को सहन न करे तो जो विकार, बेचैनी या बुखार उत्पन्न होंगे, वे सहनशीलता से उत्पन्न नहीं होते। इन्हें ही सहनशीलता से त्यागने योग्य विकार कहा जाता है।

किण्वन प्रक्रिया को निम्नलिखित तरीकों से रोककर समाप्त किया जाना चाहिए:
और किन विकारों से बचना चाहिए? उदाहरण के लिए, एक भिक्षु उचित चिंतन करते हुए जंगली हाथी, जंगली घोड़ा, जंगली बैल, जंगली कुत्ता, साँप, पेड़ का ठूंठ, कंटीली झाड़ी, खाई, चट्टान, गंदा नाला, खुला सीवर आदि से बचता है। उचित चिंतन करते हुए, वह अनुचित स्थानों पर बैठने, अनुचित स्थलों पर भटकने और बुरे मित्रों की संगति करने से बचता है, क्योंकि इससे उसके ज्ञानवान मित्र उस पर बुरे आचरण का संदेह कर सकते हैं। इन चीजों से बचने पर जो विकार, बेचैनी या बुखार उत्पन्न होते, वे इनसे बचने पर उत्पन्न नहीं होते। इन्हें ही वे विकार कहा जाता है जिनसे बचना चाहिए।

किण्वन प्रक्रियाओं को नष्ट करके समाप्त किया जाना चाहिए
और वे कौन से विकार हैं जिन्हें नष्ट करके त्याग देना चाहिए? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, उचित चिंतन करते हुए, कामुकता के उत्पन्न विचार को सहन नहीं करता। वह उसे त्याग देता है, नष्ट कर देता है, दूर कर देता है और अस्तित्व से मिटा देता है।
उचित चिंतन करते हुए, वह दुर्भावना के किसी भी विचार को सहन नहीं करता...
उचित चिंतन करते हुए, वह क्रूरता के किसी भी विचार को सहन नहीं करता...
उचित चिंतन करते हुए, वह उत्पन्न हुई बुराई और अकुशल मानसिक गुणों को सहन नहीं करता। वह उन्हें त्याग देता है, नष्ट कर देता है, दूर कर देता है और उनका अस्तित्व मिटा देता है। यदि वह इन चीजों को नष्ट न करे तो जो मनोभ्रंश, व्याकुलता या बुखार उत्पन्न होता, वह उनके नष्ट करने पर उत्पन्न नहीं होता। इन्हें ही नष्ट करके त्यागे जाने वाले मनोभ्रंश कहा जाता है।

विकासशील देशों द्वारा किण्वन प्रक्रिया को त्याग दिया जाएगा
और विकास के द्वारा किन विकारों का त्याग करना चाहिए? एक उदाहरण है, एक भिक्षु उचित चिंतन करते हुए, एकांतवास, वैराग्य और संयम पर आधारित जागृति के एक कारक के रूप में सजगता का विकास करता है, जिसके परिणामस्वरूप वह सब कुछ त्याग देता है। वह गुणों के विश्लेषण, दृढ़ता, परमानंद, शांति, एकाग्रता और समभाव का विकास करता है, जो एकांतवास, वैराग्य और संयम पर

आधारित है, जिसके परिणामस्वरूप वह सब कुछ त्याग देता है। इन गुणों का विकास न करने पर जो विकार, बेचैनी या बुखार उत्पन्न होते, वे इन गुणों के विकास के बाद उत्पन्न नहीं होते। इन्हें ही विकास के द्वारा त्यागे जाने वाले विकार कहा जाता है।

परिणाम
जब किसी भिक्षु के वे विकार जो दृष्टि से त्यागे जाने चाहिए, दृष्टि से त्याग दिए जाते हैं, संयम से त्याग दिए जाते हैं, उपयोग से त्यागे जाने चाहिए, सहनशीलता से त्याग दिए जाते हैं, परहेज से त्याग दिए जाते हैं, विनाश से त्याग दिए जाते हैं, विकास से त्याग दिए जाने चाहिए, तब उसे समस्त विकारों के संयम से ग्रस्त भिक्षु कहा जाता है। उसने व्यथा का नाश कर दिया है, बंधनों को तोड़ दिया है, और अहंकार की सही समझ के द्वारा दुख और तनाव का अंत कर दिया है।
भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> धम्मदयादा सुत्त

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना है:

एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन में रह रहे थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, मेरे धर्म के वारिस बनो, भौतिक वस्तुओं के नहीं। तुम पर दया करते हुए मैंने सोचा है: मेरे शिष्य धर्म के वारिस कैसे बन सकते हैं, भौतिक वस्तुओं के नहीं? यदि तुम भौतिक वस्तुओं के वारिस बनोगे, धर्म के नहीं; तो तुम्हें इस प्रकार फटकारा जाएगा: 'गुरु के शिष्य उनके भौतिक वस्तुओं के वारिस बनकर जीते हैं, धर्म के वारिस बनकर नहीं;' और मुझे भी इस प्रकार फटकारा जाएगा: 'गुरु के शिष्य उनके भौतिक वस्तुओं के वारिस बनकर जीते हैं, धर्म के वारिस बनकर नहीं।'

यदि तुम धर्म में मेरे उत्तराधिकारी हो, न कि भौतिक वस्तुओं में, तो तुम पर कोई कलंक नहीं लगेगा, क्योंकि तुम्हारे बारे में कहा जाएगा, 'गुरु के शिष्य धर्म में उनके उत्तराधिकारी के रूप में रहते हैं, न कि भौतिक वस्तुओं में।' इसलिए, भिक्षुओं, धर्म में मेरे उत्तराधिकारी बनो, न कि भौतिक वस्तुओं में। तुम पर दया करते हुए मैंने सोचा है: 'मेरे शिष्य धर्म में मेरे उत्तराधिकारी कैसे बन सकते हैं, न कि भौतिक वस्तुओं में?'

अब, भिक्षुओं, मान लीजिए कि मैंने भोजन कर लिया, और भोजन लेने से इनकार कर दिया, मेरा पेट भर गया, मेरा पेट भर गया, मेरी आवश्यकता पूरी हो गई, और कुछ भिक्षापात्र बच गया जिसे फेंकना था। तभी दो भिक्षु भूखे और कमजोर होकर आए, और मैंने उनसे कहा: 'भिक्षुओं, मैंने भोजन कर लिया है और मेरी आवश्यकता पूरी हो गई है, लेकिन मेरा यह भिक्षापात्र बच गया है जिसे फेंकना है। यदि आप चाहें तो इसे खा लें; यदि आप इसे नहीं खाएंगे तो मैं इसे ऐसी जगह फेंक दूंगा जहाँ हरियाली न हो या ऐसे पानी में डाल दूंगा जहाँ जीवन न हो।' तब एक भिक्षु ने सोचा: 'भगवान बुद्ध ने भोजन कर लिया है और उनकी आवश्यकता पूरी हो गई है, लेकिन भगवान बुद्ध का यह भिक्षापात्र बच गया है जिसे फेंकना है; यदि हम इसे नहीं खाएंगे तो भगवान बुद्ध इसे फेंक देंगे, लेकिन भगवान बुद्ध ने यह कहा है: 'भिक्षुओं, मेरे धर्म के वारिस बनो, भौतिक वस्तुओं के नहीं।' अब यह भिक्षापात्र भौतिक वस्तुओं में से एक है। मान लीजिए कि इस भिक्षा भोजन को खाने के बजाय मैं दिन-रात भूखा और कमजोर होकर गुजारूं।

और उस भिक्षापात्र को खाने के बजाय उसने वह रात-दिन भूखा और कमजोर होकर गुजारा। तब दूसरे भिक्षु ने सोचा, 'भगवान बुद्ध ने भोजन कर लिया है और उन्हें अपनी सभी आवश्यकताएँ पूरी हो गई हैं, लेकिन भगवान बुद्ध का यह भिक्षापात्र बचा हुआ है जिसे फेंकना पड़ेगा। मान लीजिए कि मैं इस भिक्षापात्र को खा लूँ और रात-दिन न भूखा रहूँ और न कमजोर।' और उस भिक्षापात्र को खाने के बाद उसने रात-दिन न भूखा रह और न कमजोर। अब यद्यपि उस भिक्षु ने उस भिक्षापात्र को खाकर रात-दिन न भूखा रह और न कमजोर, फिर भी मैं पहले भिक्षु का अधिक आदर और प्रशंसा करता हूँ। क्यों? क्योंकि उसने जो इच्छाशक्ति दिखाई है, वह उसकी इच्छाओं की कमी, संतोष, निर्मलता, सहज जीवनयापन और ऊर्जा के संचार में सहायक होगी। इसलिए, भिक्षुओं, मेरे धर्म के उत्तराधिकारी बनो, भौतिक वस्तुओं के नहीं। तुम्हारे प्रति करुणावश मैंने सोचा है, 'मेरे शिष्य धर्म के उत्तराधिकारी कैसे बन सकते हैं, भौतिक वस्तुओं के नहीं?'

भगवान बुद्ध ने यही कहा। इतना कहकर वे अपने आसन से उठे और अपने निवास स्थान पर चले गए। उनके जाने के तुरंत बाद, पूज्य शारिपुत्र ने भिक्षुओं से कहा, "मित्रों, एकांतवास में रहने वाले गुरु के शिष्य किस प्रकार एकांतवास में साधना नहीं करते?"

"सचमुच, मित्र, हम दूर से पूज्य शारिपुत्र से इस कथन का अर्थ जानने आए हैं। यदि पूज्य शारिपुत्र इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें तो अच्छा होगा। उनसे सुनकर ये भिक्षु इसे नहीं भूलेंगे!"

"तो मित्रों, मेरी बातों को ध्यानपूर्वक सुनो और समझो।" पूज्य शारिपुत्र ने आगे कहा: "मित्रों, एकांतवास में रहने वाले गुरु के शिष्य किस प्रकार एकांतवास में साधना नहीं करते? यहाँ एकांतवास में रहने वाले गुरु के शिष्य एकांतवास में साधना नहीं करते; वे गुरु द्वारा बताई गई बातों का त्याग नहीं करते; वे विलासी हो जाते हैं और उनमें जागरूकता की कमी हो जाती है, वे पतन के पथ पर अग्रसर हो जाते हैं और एकांतवास की उपेक्षा करते हैं।"

इस मामले में तीन कारणों से वरिष्ठ भिक्षुओं को दोषी ठहराया जा सकता है। एकांतवास में रहने वाले गुरु के शिष्य होने के नाते, वे स्वयं भी वैसा ही जीवन जीने का अभ्यास नहीं करते, और यही पहला कारण है जिसके लिए उन्हें दोषी ठहराया जाता है।

वे गुरु द्वारा बताई गई बातों को नहीं छोड़ते और यही दूसरा कारण है कि वे दोषी हैं। वे विलासी हैं और वर्तमान क्षण में सचेत होकर नहीं जीते, वे पतन की ओर अग्रसर होते हैं और एकांतवास की उपेक्षा करते हैं।

मध्यम श्रेणी के भिक्षु और संघ के सबसे नए सदस्य भी इन्हीं कारणों से दोषी हैं। इसी कारण एकांतवास में रहने वाले गुरु के शिष्य एकांत में प्रशिक्षण नहीं ले पाते।

"मित्रों, एकांतवास में रहने वाले गुरु के शिष्य एकांतवास में किस प्रकार साधना करते हैं? यहाँ, एकांतवास में रहने वाले गुरु के शिष्य स्वयं को एकांतवास में प्रशिक्षित करते हैं; वे गुरु द्वारा बताई गई बातों का त्याग करते हैं; वे विलासी नहीं होते और वर्तमान क्षण में सचेत रूप से जीते हैं, वे पतन से बचने के लिए उत्सुक रहते हैं और इस प्रकार एकांतवास में अग्रणी बन जाते हैं।"

इस मामले में वरिष्ठ भिक्षुओं के साथ-साथ मध्यम श्रेणी के भिक्षुओं और यहां तक कि सबसे नए भिक्षुओं की भी तीन कारणों से प्रशंसा की जानी चाहिए। एकांतवास में रहने वाले गुरु के शिष्य होने के नाते वे एकांत में रहकर स्वयं को प्रशिक्षित करते हैं, इसलिए वे पहले कारण के लिए प्रशंसनीय हैं।

वे गुरु द्वारा बताई गई बातों को त्याग देते हैं, इसलिए इस कारण उनकी प्रशंसा की जानी चाहिए, यह दूसरा कारण है। वे विलासी नहीं होते और हमेशा वर्तमान क्षण में सचेत रहते हैं, वे पतन से बचने के लिए तत्पर रहते हैं और इस प्रकार एकांतवास में अग्रणी बन जाते हैं। यह तीसरा कारण है जिसके लिए उनकी प्रशंसा की जानी चाहिए।

मित्रों, हमारे भीतर की बुराई लोभ और घृणा है। इन बीमारियों से मुक्ति पाने का एक मध्यम मार्ग है। यह मध्यम मार्ग दृष्टि और ज्ञान प्रदान करता है, जो शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है। वह मध्यम मार्ग क्या है? वह आर्य अष्टांगिक मार्ग है: सही दृष्टि, सही इरादा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता। यही वह मध्यम मार्ग है जो दृष्टि और ज्ञान प्रदान करता है, जो शांति, प्रत्यक्ष अनुभूति, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है।

भीतर की बुराई क्रोध, प्रतिशोध, तिरस्कार और दूसरों पर प्रभुत्व स्थापित करने की इच्छा है; यह ईर्ष्या, लालच, छल, हठ, घमंड और अज्ञानता है।

यही मध्यम मार्ग आपको इन कष्टों से भी मुक्ति दिलाएगा!

यह बात पूज्य शारिपुत्र ने कही और भिक्षु उनके शब्दों की बुद्धिमत्ता से संतुष्ट और प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> भयभेरव सुत्त

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। तब ब्राह्मण जानूस्सोनी भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उनका अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे गौतम बुद्ध, अच्छे परिवारों के वे पुत्र जो गौतम बुद्ध में आस्था के कारण गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चले गए हैं: क्या गौतम बुद्ध उनके मार्गदर्शक हैं? क्या गौतम बुद्ध उनके सहायक हैं? क्या गौतम बुद्ध उनके प्रेरणास्रोत हैं? क्या वे गौतम बुद्ध को अपना आदर्श मानते हैं?”

"जी हे ब्राह्मण, ऐसा ही है। अच्छे परिवारों के पुत्र जिन्होंने मुझमें आस्था के कारण गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन व्यतीत किया है: मैं उनका मार्गदर्शक हूँ। मैं उनका सहायक हूँ। मैं उनका प्रेरणास्रोत हूँ। वे मुझे अपना आदर्श मानते हैं।"

"परन्तु, गुरु गौतम, एकांत वन या निर्जन वनों में रहना आसान नहीं है। एकांत बनाए रखना आसान नहीं है, अकेलेपन का आनंद लेना आसान नहीं है। ऐसा लगता है मानो वन एकाग्रता प्राप्त न कर पाने वाले भिक्षु के मन को लूट लेते हैं।"

"जी, ब्राह्मण, ऐसा ही है। एकांत वन या निर्जन वनों में रहना आसान नहीं है। एकांत बनाए रखना आसान नहीं है, अकेलेपन का आनंद लेना आसान नहीं है। ऐसा लगता है मानो वन एकाग्रता प्राप्त न कर चुके भिक्षु के मन को लूट लेते हैं। मेरे ज्ञानोदय से पहले, जब मैं अभी भी एक अज्ञानी बोधिसत्व था, तब भी मेरे मन में यही विचार आया था: 'एकांत बनाए रखना आसान नहीं है, अकेलेपन का आनंद लेना आसान नहीं है। ऐसा लगता है मानो वन एकाग्रता प्राप्त न कर चुके भिक्षु के मन को लूट लेते हैं।'"

मेरे मन में यह विचार आया: 'जब शारीरिक क्रियाओं में अपवित्र पुजारी या ध्यानमग्न साधक एकांत वन या निर्जन स्थानों में शरण लेते हैं, तो उनकी अपवित्र शारीरिक क्रियाओं के कारण ही अकुशल भय और आतंक उत्पन्न होता है। लेकिन जब मैं एकांत वन या निर्जन स्थानों में शरण लेता हूँ, तो मेरी शारीरिक क्रियाएँ अपवित्र नहीं होतीं। मेरी शारीरिक क्रियाएँ पवित्र होती हैं। मैं उन श्रेष्ठजनों में से एक हूँ जिनकी शारीरिक क्रियाएँ पवित्र होती हैं जब वे एकांत वन या निर्जन स्थानों में शरण लेते हैं।' अपने भीतर शारीरिक क्रियाओं की इस पवित्रता को देखकर, मुझे निर्जन स्थानों में रहने का और भी अधिक साहस प्राप्त हुआ।

मेरे मन में यह विचार आया: 'जब पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति, जो अपने वाणीगत कार्यों में... अपने मानसिक कार्यों में... अपनी आजीविका में अपवित्र होते हैं, एकांत वन या निर्जन में निवास करते हैं, तो यह उनकी अपवित्र आजीविका का ही दोष है कि वे अकुशल भय और आतंक को जन्म देते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है कि मैं एकांत वन या निर्जन में निवास करते समय अपनी आजीविका में अपवित्र हूँ। मैं अपनी आजीविका में पवित्र हूँ। मैं उन श्रेष्ठ व्यक्तियों में से एक हूँ जो एकांत वन या निर्जन में निवास करते समय अपनी आजीविका में पवित्र होते हैं।' अपने भीतर आजीविका की इस पवित्रता को देखकर, मुझे निर्जन में रहने का और भी अधिक साहस प्राप्त हुआ।

मेरे मन में यह विचार आया: 'जब पुजारी या ध्यानमग्न लोग कामुक सुखों के प्रति लालची और तीव्र रूप से भावुक होते हैं... मैं लालची नहीं हूँ...'

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न लोग दुर्भावना से भरे होते हैं, विनाशकारी मनोवृत्तियों के साथ... मेरा मन सद्भावना से भरा है..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त हो जाते हैं... मैं आलस्य और सुस्ती से रहित हूँ..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न लोग बेचैन और अशांत मन से होते हैं... मेरा मन शांत है..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न लोग अनिश्चित और संशय में होते हैं... मैं अनिश्चितता से परे जा चुका हूँ..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न लोग स्वयं की प्रशंसा करने और दूसरों की निंदा करने में लगे रहते हैं... मैं स्वयं की प्रशंसा नहीं करता और न ही दूसरों की निंदा करता हूँ..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न लोग जो घबराहट और भय की ओर प्रवृत्त होते हैं... मैं रोंगटे खड़े होने की सीमा से परे चला गया हूँ..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न लोग लाभ, भेंट और प्रसिद्धि की इच्छा रखते हैं... मुझे बहुत कम इच्छाएँ हैं..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न लोग आलसी और दृढ़ताहीन होते हैं... तब मेरी दृढ़ता जागृत हो जाती है..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति अपनी चेतना में भ्रमित और असावधान होते हैं... तब मैं चेतना स्थापित कर लेता हूँ..."

"...जब पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति, जिनका ध्यान भटकता रहता है... मैं एकाग्रता में पूर्णतः तल्लीन रहता हूँ..."

मेरे मन में यह विचार आया: 'जब मूर्ख पुजारी या ध्यानमग्न साधक एकांत वन या निर्जन स्थानों में शरण लेते हैं, तो उनकी मूर्खता ही उनके द्वारा उत्पन्न अकुशल भय और आतंक का कारण होती है। लेकिन जब मैं एकांत वन या निर्जन स्थानों में शरण लेता हूँ, तो मैं मूर्ख नहीं हूँ। मैं विवेक में परिपूर्ण हूँ। मैं उन श्रेष्ठ व्यक्तियों में से एक हूँ जो एकांत वन या निर्जन स्थानों में शरण लेते समय विवेक में परिपूर्ण होते हैं।' अपने भीतर इस परिपूर्ण विवेक को देखकर, मुझे निर्जन स्थानों में रहने का और भी अधिक साहस प्राप्त हुआ।

मेरे मन में यह विचार आया: 'क्या होगा यदि मैं चंद्र पखवाड़े की आठवीं, चौदहवीं और पंद्रहवीं जैसी मान्यता प्राप्त, निर्धारित रातों में, उद्यान-मंदिरों, वन-मंदिरों और वृक्ष-मंदिरों जैसी विस्मयकारी और रोमांचकारी जगहों पर रहूँ? शायद तब मुझे वह भय और आतंक देखने को मिले।' इसलिए कुछ समय बाद, चंद्र पखवाड़े की आठवीं, चौदहवीं और पंद्रहवीं जैसी मान्यता प्राप्त, निर्धारित रातों में, मैं उद्यान-मंदिरों, वन-मंदिरों और वृक्ष-मंदिरों जैसी विस्मयकारी और रोमांचकारी जगहों पर रहा। और जब मैं वहाँ रह रहा था, कोई जंगली जानवर आता, कोई पक्षी टहनी गिरा देता, या हवा गिरे हुए पत्तों को सरसरा देती। मेरे मन में यह विचार आता: 'क्या यही वह भय और आतंक आ रहा है?' फिर मेरे मन में यह विचार आया: 'मैं डर का इंतज़ार क्यों करता रहता हूँ? क्या होगा अगर मैं डर और आतंक को, चाहे वे किसी भी रूप में आएँ, वश में कर लूँ?' इसलिए जब चलते-फिरते डर और आतंक आता, तो मैं न तो खड़ा होता, न बैठता, न लेटता। मैं तब तक चलता रहता जब तक कि उस डर और आतंक को वश में न कर लेता। जब खड़े होते समय डर और आतंक आता, तो मैं न चलता, न बैठता, न लेटता। मैं तब तक खड़ा रहता जब तक कि उस डर और आतंक को वश में न कर लेता। जब बैठे होते समय डर और आतंक आता, तो मैं न लेटता, न खड़ा होता, न चलता। मैं तब तक बैठा रहता जब तक कि उस डर और आतंक को वश में न कर लेता। जब लेटे होते समय डर और आतंक आता, तो मैं न बैठता, न खड़ा होता, न चलता। मैं तब तक लेटा रहता जब तक कि उस डर और आतंक को वश में न कर लेता।

"हे ब्राह्मण, कुछ पुरोहित और ध्यानमग्न ऐसे हैं जिन्हें रात में भी 'दिन' और दिन में 'रात' का आभास होता है। मैं तुमसे कहता हूँ, यह उनका भ्रम के देह में होना है। जहाँ तक मेरी बात है, मुझे दिन में भी 'दिन' और रात में भी 'रात' का आभास होता है। यदि कोई सही ढंग से कहे, 'एक ऐसा प्राणी जो भ्रम से मुक्त है, अनेकों के कल्याण और सुख के लिए, संसार के प्रति सहानुभूति से, मनुष्य और दिव्य प्राणियों के कल्याण, लाभ और सुख के लिए संसार में प्रकट हुआ है,' तो वह निश्चित रूप से मेरे ही बारे में कह रहा होगा।"

मुझमें अटूट दृढ़ता जागृत हुई और निर्मल ध्यान स्थापित हुआ। मेरा शरीर शांत और उत्तेजित नहीं था, मेरा मन एकाग्र और स्थिर था। कामुकता से पूर्णतः विमुख होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विमुख होकर, मैं प्रथम ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें स्थिर रहा: एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ। निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, मैं द्वितीय ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें स्थिर रहा: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। परमानंद के क्षीण होने पर मैं समभाव में स्थिर रहा, सचेत और जागरूक रहा, और शारीरिक रूप से सुख के प्रति संवेदनशील रहा। मैं तृतीय ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें स्थिर रहा, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं, 'समभाव और सचेत रहकर, वह सुखमय अवस्था में रहता है।' सुख और दुख के त्याग के साथ - जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ - मैं चतुर्थ ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें स्थिर रहा: समभाव और ध्यान की शुद्धता, न सुख न दुख।

जब मन इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अशुद्धियों से मुक्त, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित हो गया, तो मैंने इसे अपने पिछले जन्मों को याद करने के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने अपने अनेक पिछले जन्मों को याद किया, अर्थात् एक जन्म, दो... पाँच, दस... पचास, सौ, हज़ार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत था। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत था। उस अवस्था से विदा होकर, मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार मुझे अपने अनेक पूर्व जन्मों की शैली और विवरण याद आ गए।

"यह वह पहला ज्ञान था जो मैंने रात्रि के पहले पहर में प्राप्त किया। अज्ञान का नाश हुआ; ज्ञान का उदय हुआ; अंधकार का नाश हुआ; प्रकाश का उदय हुआ - जैसा कि एक सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति में होता है।"

जब मन इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अशुद्धियों से मुक्त, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित हो गया, तो मैंने उसे प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते देखा, और मैंने उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध किया: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निचले लोकों, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - सही विचारों वाले लोग, शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद अच्छे स्थानों, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होते हैं। इस प्रकार, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, मैंने प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते देखा, और मैंने उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध किया।

"यह वह दूसरा ज्ञान था जो मैंने रात्रि के दूसरे पहर में प्राप्त किया। अज्ञान का नाश हुआ; ज्ञान का उदय हुआ; अंधकार का नाश हुआ; प्रकाश का उदय हुआ - जैसा कि एक सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति में होता है।"

जब मन इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अशुद्धियों से मुक्त, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित हो गया, तब मैंने उसे मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने अनुभव किया कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' मेरा हृदय, इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, इंद्रिय-संबंधों की हलचलों से मुक्त हो गया, अस्तित्व की हलचलों से मुक्त हो गया, अज्ञान की हलचलों से मुक्त हो गया। मुक्ति के साथ ही, 'मुक्त हो गया' का ज्ञान प्राप्त हुआ। मैंने अनुभव किया कि 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'

"यह वह तीसरा ज्ञान था जो मैंने रात्रि के तीसरे पहर में प्राप्त किया। अज्ञान का नाश हुआ; ज्ञान का उदय हुआ; अंधकार का नाश हुआ; प्रकाश का उदय हुआ - जैसा कि एक सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति में होता है।"

"हे ब्राह्मण, यदि आपके मन में यह विचार आए कि 'शायद गौतम ध्यानमग्न आज भी वासना, घृणा और भ्रम से मुक्त नहीं हैं, इसीलिए वे एकांत वनों में निवास करते हैं,' तो इसे इस तरह से न देखें। मैं दो प्रबल कारणों से एकांत वनों में निवास करता हूँ: वर्तमान में अपने लिए सुखदायक निवास की कामना करता हूँ और आने वाली पीढ़ियों के प्रति सहानुभूति रखता हूँ।"

"गुरु गौतम ने भावी पीढ़ियों के प्रति कितनी सच्ची सहानुभूति दिखाई है, मानो वे योग्य और सच्चे आत्म-जागृत हों! महान गुरु गौतम! महान! जैसे वे उलटी हुई चीज़ को सीधा करते हैं, छिपी हुई चीज़ को प्रकट करते हैं, भटके हुए को रास्ता दिखाते हैं, या अंधेरे में दीपक जलाकर आँखों वाले को आकृतियाँ दिखाते हैं, उसी प्रकार गुरु गौतम ने अनेक तर्कों के माध्यम से धम्म को स्पष्ट किया है। मैं गुरु गौतम की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षुओं के संघ में आता हूँ। गुरु गौतम मुझे आज से जीवन भर के लिए एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें, जिसने उनकी शरण ली है।"

अनंगना सूत्र
संपादन करने के लिए लॉग इन करें
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> अनंगना सुत्त

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना:

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे।

आदरणीय शारिपुत्र ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "मित्रों, भिक्षुओं!" और उन भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "जी हां, मित्र।" तब आदरणीय शारिपुत्र ने कहा, "मित्रों, संसार में चार व्यक्ति हैं, वे कौन से चार हैं?"

यहां, एक दोषयुक्त व्यक्ति यह नहीं जानता कि वास्तव में 'मुझमें दोष है'। एक दोषयुक्त व्यक्ति यह जानता है कि वास्तव में 'मुझमें दोष है'। एक दोषरहित व्यक्ति यह नहीं जानता कि वास्तव में 'मुझमें दोष नहीं है'। एक दोषरहित व्यक्ति यह जानता है कि वास्तव में 'मुझमें दोष नहीं है'। दो दोषयुक्त व्यक्तियों में से, वह व्यक्ति जो यह नहीं जानता कि वास्तव में 'मुझमें दोष है' निम्न है। वह व्यक्ति जो यह जानता है कि वास्तव में 'मुझमें दोष है' श्रेष्ठ है।

दो निष्कलंक व्यक्तियों में से, वह व्यक्ति जो यह नहीं जानता कि वास्तव में 'मुझमें कोई निष्कलंक नहीं है', निम्न है। और वह व्यक्ति जो यह जानता है कि वास्तव में 'मुझमें कोई निष्कलंक नहीं है', श्रेष्ठ है।

जब यह कहा गया, तो पूज्य महा मोग्गलाना ने कहा, हे मित्र, शारिपुत्र, क्या कारण है कि दो दोषयुक्त में से एक हीन और दूसरा श्रेष्ठ हो, और अन्य दो दोषरहित में से एक हीन और दूसरा श्रेष्ठ हो?

हे मित्र, मोग्गलाना, यह दोषयुक्त व्यक्ति, जो यह नहीं जानता कि वास्तव में 'मुझमें दोष है', उस दोष को दूर करने के लिए न तो रुचि लेगा और न ही प्रयास करेगा। अतः वह लोभ, घृणा और भ्रम से दूषित मन के साथ मर जाएगा। जैसे किसी दुकान या लोहार की दुकान से खरीदा गया पीतल का कटोरा धूल और दागों से ढक जाता है, क्योंकि उसका मालिक उसमें भोजन नहीं करता और उसे साफ नहीं करता, बल्कि धूल में पड़ा रहने देता है, और समय बीतने के साथ वह पीतल का कटोरा और भी अधिक धूल और दागों से भर जाता है। उसी प्रकार, यह दोषयुक्त व्यक्ति, जो यह नहीं जानता कि वास्तव में 'मुझमें दोष है', उस दोष को दूर करने के लिए न तो रुचि लेगा और न ही प्रयास करेगा। अतः वह लोभ, घृणा और भ्रम से दूषित मन के साथ मर जाएगा।

मित्र, यह दोषयुक्त व्यक्ति, जो सच्चाई से जानता है कि 'मुझमें दोष है', उस दोष को दूर करने के लिए रुचि उत्पन्न करेगा और प्रयास करेगा। वह लोभ, घृणा और भ्रम से रहित निर्मल मन से मृत्यु को प्राप्त होगा। जैसे किसी दुकान या लोहार की दुकान से खरीदा गया पीतल का कटोरा धूल और दागों से ढका होता है। उसका मालिक उसमें भोजन करते समय उसे साफ करता है, उसे गंदगी में पड़ा नहीं रहने देता और समय के साथ-साथ पीतल का कटोरा और भी साफ होता जाता है। उसी प्रकार, यह दोषयुक्त व्यक्ति, जो सच्चाई से जानता है कि 'मुझमें दोष है', उस दोष को दूर करने के लिए रुचि उत्पन्न करेगा और प्रयास करेगा। इस प्रकार वह लोभ, घृणा और भ्रम से रहित निर्मल मन से मृत्यु को प्राप्त होगा।

मित्र, यह निष्कलंक व्यक्ति, जो यह नहीं जानता कि वास्तव में 'मुझमें कोई दोष नहीं है', किसी मनभावन संकेत पर ध्यान देने से उसके मन पर लोभ, घृणा और भ्रम हावी हो जाएंगे और वह दूषित मन से मर जाएगा। ठीक उसी प्रकार, जैसे किसी दुकान या लोहार की दुकान से खरीदा गया एक स्वच्छ और शुद्ध पीतल का कटोरा, जिसे मालिक उपयोग नहीं करता, उसे धूल में पड़ा रहने देता है, तो समय बीतने के साथ-साथ वह पीतल का कटोरा अधिकाधिक धूलयुक्त और मैला हो जाता है। ठीक उसी प्रकार, यह निष्कलंक व्यक्ति, जो यह नहीं जानता कि वास्तव में 'मुझमें कोई दोष नहीं है', किसी मनभावन संकेत पर ध्यान देने से उसके मन पर लोभ, घृणा और भ्रम हावी हो जाएंगे और वह दूषित मन से मर जाएगा।

मित्र, वह निष्कलंक व्यक्ति, जो सच्चाई से जानता है कि 'मुझमें कोई दोष नहीं है', जब किसी मनभावन संकेत पर ध्यान देता है, तो लोभ उसके मन पर हावी नहीं होता, घृणा और भ्रम उसके मन पर हावी नहीं होते। वह लोभ, घृणा और भ्रम से मुक्त होकर मरेगा; वह निर्मल मन से मरेगा। जैसे किसी दुकान या लोहार की दुकान से खरीदा गया पीतल का कटोरा साफ और शुद्ध होता है, मालिक उसे स्वयं उपयोग करता है, उसे साफ रखता है और गंदगी में नहीं छोड़ता, और समय के साथ वह पीतल का कटोरा और भी साफ होता जाता है। उसी प्रकार, वह निष्कलंक व्यक्ति, जो सच्चाई से जानता है कि 'मुझमें कोई दोष नहीं है', जब किसी मनभावन संकेत पर ध्यान देता है, तो लोभ उसके मन पर हावी नहीं होता, घृणा और भ्रम उसके मन पर हावी नहीं होते। वह लोभ, घृणा और भ्रम से मुक्त होकर मरेगा। वह निर्मल मन से मरेगा।

मित्र मोग्गलाना, यही कारण है कि दोषयुक्त दो व्यक्तियों में से एक को हीन और दूसरे को श्रेष्ठ कहा जाता है, और दोषरहित दो व्यक्तियों में से एक को हीन और दूसरे को श्रेष्ठ कहा जाता है।

मित्र, इसे दोष कहते हैं, दोष का पर्यायवाची क्या है? मित्र, दोष विचारों का भटकना है, जो बुरे कर्मों की ओर ले जाता है। कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'मैंने पाप किया है, भिक्षुओं को इसके बारे में पता न चले।' भिक्षुओं को पता चल जाता है कि इस भिक्षु ने पाप किया है, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में यह इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'मैंने यह अपराध किया है, भिक्षु मुझे गुप्त रूप से सलाह दें, समुदाय के बीच में नहीं।' कभी-कभी भिक्षु को समुदाय के बीच में ही सलाह दी जाती है। समुदाय के बीच सलाह देने के कारण भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में यह इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'मैंने यह अपराध किया है, मुझे गुरु के बजाय भिक्षु ही सलाह दें।' लेकिन ऐसा भी होता है कि गुरु ही भिक्षु को सलाह देते हैं। गुरु की सलाह से भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में यह इच्छा उठती है, 'हे गुरु, मुझसे प्रश्न पूछकर ही भिक्षुओं को उपदेश दें।' ऐसा भी होता है कि गुरु किसी दूसरे भिक्षु से प्रश्न पूछकर ही उन्हें उपदेश देते हैं। गुरु द्वारा उपदेश देने से पहले किसी दूसरे भिक्षु से प्रश्न पूछने के कारण वह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'क्या मैं गाँव में भिक्षा मांगने के दौरान भिक्षुओं का नेतृत्व करूँ?' ऐसा भी होता है कि गाँव में भिक्षा मांगने के दौरान कोई दूसरा भिक्षु नेतृत्व करता है। इस कारण यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'मुझे आश्रम में सबसे ऊँचा आसन, सबसे पहला जल और सबसे पहला भोजन प्राप्त हो।' ऐसा होता है कि किसी दूसरे भिक्षु को आश्रम में सबसे ऊँचा आसन, सबसे पहला जल और सबसे पहला भोजन प्राप्त हो जाता है। क्योंकि दूसरे भिक्षु को आश्रम में सबसे ऊँचा आसन, सबसे पहला जल और सबसे पहला भोजन प्राप्त हो जाता है, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'काश मुझे भोजन के अंत में धन्यवाद देने का अवसर मिले...' लेकिन ऐसा होता है कि कोई दूसरा भिक्षु भोजन के अंत में धन्यवाद देता है। दूसरे भिक्षु के धन्यवाद देने से यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'क्या मैं मठ में आने वाले भिक्षुओं को उपदेश दे सकता हूँ?' ऐसा भी होता है कि कोई दूसरा भिक्षु मठ में आने वाले भिक्षुओं को उपदेश देता है। दूसरे भिक्षु के उपदेश देने से यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं...

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'क्या मैं मठ में आने वाली भिक्षुणियों को उपदेश दे सकता हूँ?' ऐसा भी होता है कि कोई दूसरा भिक्षु मठ में आने वाली भिक्षुणियों को उपदेश देता है। दूसरे भिक्षु के उपदेश देने से यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'क्या मैं मठ में आने वाले पुरुष शिष्यों को उपदेश दे सकता हूँ?' ऐसा भी होता है कि कोई दूसरा भिक्षु मठ में आने वाले पुरुष शिष्यों को उपदेश देता है। दूसरे भिक्षु के उपदेश देने के कारण यह भिक्षु क्रोधित और अरुचिपूर्ण हो जाता है। क्रोध और अरुचि दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'क्या मैं मठ में आने वाली स्त्री शिष्याओं को उपदेश दे सकता हूँ?' ऐसा भी होता है कि कोई दूसरा भिक्षु मठ में आने वाली स्त्री शिष्याओं को उपदेश देता है। दूसरे भिक्षु द्वारा ऐसा करने से यह भिक्षु क्रोधित और अरुचिपूर्ण हो जाता है। क्रोध और अरुचि दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'भिक्षु मुझे आदर, श्रद्धा और सम्मान दें।' ऐसा होता है कि भिक्षु किसी अन्य भिक्षु को आदर, श्रद्धा और सम्मान देते हैं। क्योंकि किसी अन्य भिक्षु को आदर, श्रद्धा और सम्मान मिलता है, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'भिक्षुणियाँ मेरा आदर, सम्मान और आदर करें।' ऐसा भी होता है कि भिक्षुणियाँ किसी अन्य भिक्षु का आदर, सम्मान और आदर करती हैं। क्योंकि भिक्षुणियाँ किसी अन्य भिक्षु का आदर, सम्मान और आदर करती हैं, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'मेरे शिष्य मेरा आदर, सम्मान और आदर करें।' ऐसा होता है कि शिष्य किसी अन्य भिक्षु का आदर, सम्मान और आदर करते हैं। शिष्यों द्वारा किसी अन्य भिक्षु का आदर, सम्मान और आदर करने के कारण यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'मेरी शिष्याएं मेरा आदर, सम्मान और आदर करें।' ऐसा होता है कि वे शिष्याएं किसी अन्य भिक्षु का आदर, सम्मान और आदर करती हैं। क्योंकि वे शिष्याएं किसी अन्य भिक्षु का आदर, सम्मान और आदर करती हैं, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'काश मुझे उत्तम वस्त्र प्राप्त हों।' ऐसा होता है कि किसी दूसरे भिक्षु को उत्तम वस्त्र प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि उत्तम वस्त्र प्राप्त करने वाला दूसरा भिक्षु है, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'काश मुझे उत्तम भोजन प्राप्त हो जाए...'। संयोगवश, किसी अन्य भिक्षु को उत्तम भोजन प्राप्त हो जाता है। क्योंकि उत्तम भोजन प्राप्त करने वाला दूसरा भिक्षु है, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो सकती है, 'काश मुझे उत्तम आवास प्राप्त हो।' ऐसा होता है कि किसी दूसरे भिक्षु को उत्तम आवास प्राप्त हो जाता है। क्योंकि उत्तम आवास पाने वाला दूसरा भिक्षु है, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं।

कभी-कभी किसी भिक्षु के मन में यह इच्छा उठती है, 'मैं बीमार होने पर उत्तम गुणों का लाभार्थी बन जाऊं।' ऐसा भी होता है कि कोई दूसरा भिक्षु बीमार होने पर उत्तम गुणों का लाभार्थी बन जाता है। क्योंकि वह भिक्षु बीमार होने पर उत्तम गुणों का लाभार्थी है, इसलिए यह भिक्षु क्रोधित और विमुख हो जाता है। क्रोध और विमुखता दोनों ही दोष हैं। मित्र, बुरे कर्मों में भटकते विचार ही दोष का अर्थ हैं।

मित्र, जिस भी भिक्षु में ये बुरे कर्मों से भरे विचार व्याप्त दिखाई और सुनाई देते हैं, चाहे वह वनवासी हो, झोपड़ी में रहने वाला हो, विधिपूर्वक भोजन करने वाला हो या फटे-पुराने वस्त्र पहनने वाला हो, उसके साथी साधु उसका आदर, श्रद्धा और सम्मान नहीं करते। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसमें ये बुरे कर्मों से भरे विचार दूर नहीं होते। जैसे किसी दुकान या लोहार की दुकान से खरीदा हुआ शुद्ध पीतल का कटोरा, उसका मालिक उसमें किसी मृत सर्प का शव भर दे, या कोई कुत्ता या मनुष्य उसे दूसरे कटोरे से ढककर मेले में ले जाए। लोग उसे देखकर कहते, "मित्र, यह क्या ले जा रहे हो? लगता है इसमें कुछ स्वादिष्ट है।" फिर वे उसे रोकते, कटोरा खोलते और अंदर झांकते। उसे देखकर घृणा और उससे दूर भागने की भावना उत्पन्न हो जाती है। भूखे तो भूख खो बैठते हैं, तो जो भूखे नहीं हैं, उनकी तो बात ही क्या। मित्र, जिस प्रकार से किसी भी भिक्षु में ये बुरे कर्मों से प्रेरित विचार भटकते हुए दिखाई और सुनाई देते हैं, चाहे वह वनवासी हो, झोपड़ी में रहने वाला हो, विधिपूर्वक भोजन करने वाला हो, या फटे-पुराने वस्त्र पहनने वाला हो, उसके साथी साधु उसका आदर, श्रद्धा और सम्मान नहीं करते। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसमें ये बुरे कर्मों से प्रेरित विचार भटकते हुए दिखाई और सुनाई नहीं देते। मित्र, जिस भी भिक्षु में ये बुरे कर्मों से प्रेरित विचार भटकते हुए दिखाई और सुनाई देते हैं, चाहे वह गाँव के बाहरी इलाके में रहने वाला हो, आमंत्रित हो, या गृहस्थों द्वारा दिए गए वस्त्र पहनने वाला हो, उसके साथी साधु उसका आदर, श्रद्धा और सम्मान करते हैं। इसका कारण क्या है? क्योंकि उसमें ये बुरे कर्मों से प्रेरित विचार भटकते हुए दिखाई और सुनाई नहीं देते। जैसे किसी दुकान या लोहार की दुकान से खरीदा गया शुद्ध और साफ पीतल का कटोरा, उसका मालिक उसमें बढ़िया पका हुआ चावल, काले बीज और तरह-तरह के सूप व करी भरकर, दूसरे कटोरे से ढककर मेले में ले जाता था। लोग उसे देखकर कहते, "मित्र, यह क्या है जो तुम ले जा रहे हो? लगता है इसमें कुछ स्वादिष्ट है।" फिर वे उसे रोककर कटोरा खोलते और अंदर झाँकते। उसे देखते ही खाने की इच्छा जाग उठती थी। जो भूखे नहीं होते, उन्हें भी खाने की इच्छा होती थी, तो भूखे लोगों की तो बात ही क्या! मित्र, इसी प्रकार, जिस भी भिक्षु के मन में ये बुरे कर्मों से भरे विचार भटकते हुए दिखाई और सुनाई देते हैं, चाहे वह गाँव के बाहरी इलाके में रहने वाला हो, आमंत्रित हो, या गृहस्थों द्वारा दिए गए वस्त्र धारण करने वाला हो, उसके साथी साधु उसका आदर, सम्मान और आदर करते हैं। इसका कारण यह है कि उसके मन में बुरे कर्मों से भरे विचार भटकते हुए दिखाई और सुनाई देते हैं...

यह सुनकर पूज्य महा मोग्गलाना ने कहा: "मित्र, शारिपुत्र, मेरे मन में एक उपमा आई है। मित्र, कहिए।" "मित्र, एक समय मैं राजगृह पर्वत में रहता था। फिर एक सुबह मैं वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र लेकर राजगृह में प्रवेश किया। उस समय सारथी समिति का पुत्र, पांडु के पुत्र, जो पहले सारथी थे, के लिए एक तपस्वी के पहिये को मोड़ रहा था। तब तपस्वी के मन में यह विचार आया, 'हे! यदि समिति का पुत्र इस टेढ़ेपन, झुकाव और दोष को सुधारकर पहिये को पूर्ण बना दे, तो तपस्वी ने जो भी टेढ़ापन, झुकाव या दोष सोचा था, उसे सुधारकर पहिये को पूर्ण बना दिया।' तब तपस्वी ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा, 'ऐसा लगता है जैसे उसने हृदय से हृदय को जान लिया हो।'" हे मित्र शारिपुत्र, उसी प्रकार, जो लोग बिना आस्था के जीविका कमाते हैं, धूर्त पाखंडी, प्रशिक्षित धोखेबाज, अस्थिर, डगमगाते, व्यर्थ की बातें करने वाले, अनियंत्रित मानसिक क्षमताओं वाले, उचित मात्रा का ज्ञान न रखने वाले, सचेतन और संन्यास की इच्छा न रखने वाले, प्रशिक्षण का सम्मान न करने वाले, बहुतायत और आलस्य में जीवन यापन करने वाले, संन्यास से विमुख, बिना प्रयास के, सचेत और जागरूक न रहने वाले, एकाग्र न रहने वाले, बुद्धिहीन और गूंगे-बहरे, इस प्रवचन को सुनकर हृदय को हृदय से जानें और सुधार करें।

जो कुल के पुत्र आस्था से मुक्त होकर निकले हैं, जो छल-कपट, पाखंड, छल करने में निपुण नहीं हैं, स्थिर हैं, व्यर्थ की बातें नहीं करते, अपनी बुद्धि पर नियंत्रण रखते हैं, सचेत रहते हैं, संन्यास की इच्छा रखते हैं, प्रशिक्षण का आदर करते हैं, विलासिता और आलस्य में नहीं रहते, परिश्रमपूर्वक एकांतवास में बंधे रहते हैं, सजग और सचेत रहते हैं, एकाग्र और बुद्धिमान हैं, वे पूज्य शारिपुत्र का यह प्रवचन सुनकर, मेरे विचार से, इसके शब्द और विचार को आत्मसात कर लें। यह अच्छा होगा यदि उनके सहयात्री पवित्र जीवन में दोष से उठकर पुण्य में स्थापित हो जाएं।

दोनों महान पुरुष एक-दूसरे के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> अकांखेय सुत्त

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

1. मैंने ऐसा सुना है। भगवान एक बार अनाथपिंडिका के उद्यान में सावत्थी में ठहरे हुए थे।

वहाँ भगवान बुद्ध ने भाइयों को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं।' भाइयों ने सहमति जताते हुए कहा, 'जी भगवान!'

तब भगवान ने कहा:

2. 'भाइयों, संघ के नियमों का पालन करते हुए, सही आचरण का अभ्यास जारी रखें; संघ के नियमों के संयम में रहते हुए, जीवन में सच्चाई के प्रति समर्पित रहें; उपदेशों के अनुसार स्वयं को प्रशिक्षित करें, और छोटे से छोटे अपराध में निहित खतरे को समझते हुए उन्हें अपने ऊपर ग्रहण करें।'

3. 'हे भाइयों, यदि कोई भिक्षु अपने साथी शिष्यों के बीच प्रिय, लोकप्रिय और सम्मानित होना चाहे, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति के प्रति समर्पित रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को दबाना नहीं चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में बहुत समय बिताना चाहिए!'

4. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु आवश्यक वस्तुएँ—वस्त्र, भोजन, आवास, औषधि और बीमारों के लिए अन्य आवश्यक वस्तुएँ—प्राप्त करना चाहे, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को दबाना नहीं चाहिए, उसे चीजों का गहन अध्ययन करना चाहिए, उसे एकांत में समय बिताना चाहिए!'

5. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह कामना करे कि जिन लोगों के बीच उसे वस्त्र, भोजन, आवास, औषधि और बीमारों के लिए अन्य आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, उनके द्वारा किया गया दान महान फलदायी और लाभकारी सिद्ध हो, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को पीछे नहीं हटाना चाहिए, उसे चीजों का गहन अध्ययन करना चाहिए, और उसे एकांत में अधिक समय बिताना चाहिए!'

6. 'हे भाइयों, यदि कोई भिक्षु यह कामना करे कि उसके रक्त के वे संबंधी जो दिवंगत हो चुके हैं और श्रद्धापूर्वक उसका स्मरण करते हैं, उन्हें इसमें महान फल और महान लाभ प्राप्त हो, तो वह समस्त धार्मिकता का पालन करे, भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहे, ध्यान की परमानंद अवस्था को न त्यागे, चीजों को गहराई से देखे, और एकांत में अधिक समय बिताए!'

7. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा रखे कि वह असंतोष और कामवासना पर विजय प्राप्त करे, कि असंतोष कभी उस पर हावी न हो, कि वह अपने भीतर उत्पन्न हुए किसी भी असंतोष पर विजय प्राप्त करे और उसे वश में कर ले, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति के प्रति समर्पित रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को पीछे नहीं हटाना चाहिए, उसे चीजों का गहन अध्ययन करना चाहिए, उसे एकांत में अधिक समय बिताना चाहिए!'

8. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा रखे कि वह (आध्यात्मिक) संकट और भय पर विजय प्राप्त करे, कि न तो संकट और न ही भय कभी उस पर हावी हो, कि वह प्रत्येक संकट और भय पर विजय प्राप्त करे और उसे वश में करे, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति के प्रति समर्पित रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को पीछे नहीं हटाना चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में अधिक समय बिताना चाहिए!'

9. 'हे भाइयों, यदि कोई भिक्षु उन आध्यात्मिक पुरुषों की आशाओं को साकार करना चाहे जो इस वर्तमान संसार में भी चारों घानों से प्राप्त होने वाले आनंद में रहते हैं, तो यदि वह उन कष्टों और कठिनाइयों में न पड़ना चाहे (जिनसे वे बचते हैं), तो उसे समस्त धर्म का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति के प्रति समर्पित रहना चाहिए, उसे ध्यान के परमानंद को पीछे नहीं हटाना चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में रहना चाहिए!'

10. 'हे भाइयों, यदि कोई भिक्षु अपने शरीर से उन निराकार मोक्ष अवस्थाओं को प्राप्त करना और उनमें स्थिर रहना चाहे, तथा भौतिकताओं से परे जाना चाहे, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को पीछे नहीं हटाना चाहिए, उसे चीजों को परखना चाहिए, उसे एकांत में रहना चाहिए!'

11. 'हे भाइयों, यदि कोई भिक्षु तीनों बंधनों के पूर्ण नाश द्वारा परिवर्तित होना चाहे, दुख की अवस्था में पुनर्जन्म से मुक्त होना चाहे और अंतिम मोक्ष का आश्वासन प्राप्त करना चाहे, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति के प्रति समर्पित रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को दबाना नहीं चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में रहना चाहिए!'

12. 'हे भाइयों, यदि कोई भिक्षु तीनों बंधनों के पूर्ण नाश द्वारा, और कामवासना, घृणा और मोह को न्यूनतम करके सकदागामिन बनना चाहे, और इस प्रकार इस संसार में अपने प्रथम आगमन पर दुःख का अंत करना चाहे, तो उसे समस्त धर्मों का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को दबाना नहीं चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में रहना चाहिए!'

13. 'हे भाइयों, यदि कोई भिक्षु इस पृथ्वी से मनुष्यों को बांधने वाले पांचों बंधनों के पूर्ण नाश द्वारा सर्वोच्च स्वर्ग का उत्तराधिकारी बनना चाहे, वहां पूर्णतः विलीन हो जाए और फिर कभी वापस न लौटे, तो उसे समस्त धर्म का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को दबाना नहीं चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में अधिक समय बिताना चाहिए!'

14. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु एक-एक करके विभिन्न इद्धियों का अभ्यास करना चाहे, एक होकर अनेक रूपों में परिवर्तित होना चाहे, अनेक रूपों में परिवर्तित होकर एक होना चाहे; दृश्यमान होना चाहे या अदृश्य होना चाहे; किसी दीवार, बाड़ या पर्वत के उस पार बिना रुके हवा में समाने यात्रा करना चाहे; ठोस भूमि में ऊपर-नीचे समाने जल में समाने; जल को विभाजित किए बिना ठोस भूमि पर समाने चलना; पक्षियों की तरह पालथी मारकर आकाश में यात्रा करना; सूर्य और चंद्रमा को भी, चाहे वे कितने भी शक्तिशाली और बलवान क्यों न हों, हाथ से स्पर्श करना और अनुभव करना चाहे; और शरीर से ब्रह्मा के स्वर्ग तक पहुंचना चाहे; तो उसे समस्त धर्म का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को पीछे नहीं हटाना चाहिए, उसे चीजों को परखना चाहिए, उसे एकांत में रहना चाहिए!'

15. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु मनुष्यों की तुलना में कहीं अधिक स्पष्ट और दिव्य श्रवण शक्ति से दूर या निकट से आने वाली मानवीय और दिव्य दोनों प्रकार की ध्वनियों को सुनना चाहे, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली

हृदय की शांति में लीन रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को पीछे नहीं हटाना चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में समय बिताना चाहिए!'

16. 'हे भाइयों, यदि कोई भिक्षु अपने हृदय से अन्य प्राणियों और अन्य मनुष्यों के हृदयों को समझना चाहे; यह जानना चाहे कि भावुक मन भावुक है और शांत मन शांत; क्रोधित मन क्रोधित है और शांत मन शांत; भ्रमित मन भ्रमित है और बुद्धिमान मन बुद्धिमान; एकाग्र विचारों को एकाग्र और बिखरे हुए विचारों को बिखरा हुआ; उच्च मन को उच्च और संकीर्ण मन को संकीर्ण; उदात्त विचारों को उदात्त और नीच विचारों को नीच; स्थिर मन स्थिर है और डगमगाता मन डगमगाता; मुक्त मन मुक्त है और दास मन दास है; तो वह समस्त धर्म का पालन करे, भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहे, ध्यान की परमानंद अवस्था को न रोके, चीजों को गहराई से देखे, और एकांत में अधिक समय बिताए!'

17. 'यदि कोई भिक्षु, हे भाइयों, अपने बीते दिनों की विभिन्न अस्थायी अवस्थाओं को याद करना चाहे; जैसे एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ या हज़ार, या एक लाख जन्म; विनाश के अनेक युगों में, नवीनीकरण के अनेक युगों में, विनाश और नवीनीकरण दोनों के अनेक युगों में उसके जन्म; (ताकि वह कह सके), "उस स्थान पर मेरा नाम ऐसा था, मेरा परिवार ऐसा था, मेरी जाति ऐसी थी, मेरा जीवनयापन ऐसा था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था और मेरी आयु की सीमा ऐसी थी; और जब मैं वहाँ से चला गया, तो मैंने उस दूसरे स्थान पर पुनः जन्म लिया जहाँ मेरा नाम ऐसा था, मेरा परिवार ऐसा था, मेरी जाति ऐसी थी, मेरा जीवनयापन ऐसा था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव होता था और मेरी आयु की ऐसी अवधि थी; और जब मैं वहाँ से गिर गया, तो मैंने उस स्थान पर पुनः जन्म लिया;"—यदि वह इस प्रकार अपने बीते दिनों की अस्थायी अवस्थाओं को उनके सभी रूपों और सभी विवरणों के साथ याद करना चाहे, तो उसे सभी धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे उस हृदय की शांति के प्रति समर्पित रहना चाहिए जो भीतर से उत्पन्न होती है, उसे चिंतन के परमानंद को दबाना नहीं चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे बहुत एकांत में रहना चाहिए!

18. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु मनुष्यों की दृष्टि से परे, शुद्ध और दिव्य दृष्टि से प्राणियों को एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जन्म लेते हुए देखना चाहे; चाहे वे नीच हों या श्रेष्ठ, सुंदर हों या बदसूरत, सुखी हों या दुखी, उनके कर्मों के अनुसार—(यदि वह यह कहने की इच्छा रखे), "हे पूज्यवरों, ये प्राणी अपने बुरे कर्मों, बुरे वचनों, बुरे विचारों, संतों की निंदा करने, झूठे सिद्धांतों का पालन करने या झूठे सिद्धांतों का कर्म अर्जित करने के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर किसी दुखद या कष्टमय अवस्था में पुनर्जन्म लेते हैं।" "हे आदरणीय महोदय, ये प्राणी अपने अच्छे आचरण, अपने अच्छे वचन, अपने अच्छे विचार, अपने श्रेष्ठ पुरुषों की निंदा न करने, सही सिद्धांतों का पालन करने और सही सिद्धांतों के कर्म अर्जित करने के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर स्वर्ग में किसी सुखी अवस्था में पुनर्जन्म लेते हैं; यदि वह मनुष्य की दृष्टि से परे, शुद्ध और दिव्य दृष्टि से प्राणियों को एक अवस्था से दूसरी अवस्था में विचरण करते हुए देखना चाहे; चाहे वे नीच हों या श्रेष्ठ, सुंदर हों या बदसूरत, सुखी हों या दुखी, अपने कर्मों के अनुसार; तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति के प्रति समर्पित रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को दबाना नहीं चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में बहुत समय बिताना चाहिए!

19. 'हे भिक्षुओं, यदि कोई भिक्षु स्वयं ही, इस संसार में ही, आसवों के नाश द्वारा अरहत्त्व को जानना, अनुभव करना और प्राप्त करना चाहे, हृदय की मुक्ति और मन की मुक्ति प्राप्त करना चाहे, तो उसे समस्त धार्मिकता का पालन करना चाहिए, उसे भीतर से उत्पन्न होने वाली हृदय की शांति में लीन रहना चाहिए, उसे ध्यान की परमानंद अवस्था को रोकना नहीं चाहिए, उसे चीजों को गहराई से देखना चाहिए, उसे एकांत में रहना चाहिए!'

20. 'इसलिए, हे भाइयों, संघ के नियमों का पालन करते हुए, सही आचरण में लगे रहो; संघ के नियमों के संयम में रहते हुए, जीवन में सच्चाई के प्रति समर्पित रहो; उपदेशों के अनुसार स्वयं को प्रशिक्षित करो, और छोटे से छोटे उल्लंघन में छिपे खतरे को समझते हुए उन्हें अपना लो। क्योंकि जो कुछ भी कहा गया है, वह केवल इसी उद्देश्य से कहा गया है!'

21. भगवान ने ऐसा कहा। और वे भाई प्रसन्न होकर भगवान के वचन की महिमा करने लगे।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> वत्थुपामा सुत्त

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन के अनाथपिंडिका मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं।" - "आदरणीय महोदय," उन्होंने उत्तर दिया। भगवान बुद्ध ने आगे कहा:

2. "भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक कपड़ा दागदार और गंदा है, और एक रंगसाज़ उसे किसी भी रंग में डुबोता है, चाहे वह नीला हो, पीला हो, लाल हो या गुलाबी, तो वह रंग को ठीक से नहीं सोखेगा और उसका रंग अशुद्ध हो जाएगा। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि कपड़ा साफ नहीं था। इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब मन दूषित होता है, तो [भविष्य में] एक अप्रिय परिणाम की उम्मीद की जा सकती है।"

भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक कपड़ा साफ और चमकदार है, और एक रंगसाज़ उसे किसी भी रंग में डुबोता है, चाहे वह नीला हो, पीला हो, लाल हो या गुलाबी, तो वह रंग को अच्छी तरह सोख लेगा और शुद्ध रंग का होगा। और ऐसा क्यों है? क्योंकि कपड़ा साफ है। इसी प्रकार, भिक्षुओं, जब मन निर्मल होता है, तो भविष्य में सुखद प्राप्ति की आशा की जा सकती है।

3. "और हे भिक्षुओं, मन के दोष क्या हैं? (1) लोभ और अधर्मी लालच मन का दोष है; (2) द्वेष मन का दोष है; (3) क्रोध मन का दोष है; (4) शत्रुता...(5) निंदा...(6) भगवानत्व...(7) ईर्ष्या...(8) जलन...(9) पाखंड...(10) छल...(11) हठ...(12) अहंकार...(13) घमंड...(14) अभिमान...(15) घमंड...(16) लापरवाही मन का दोष है।

4. हे भिक्षुओं, लोभ और अधर्मी लालच को मन का दोष जानकर, भिक्षु इनका त्याग कर देते हैं। द्वेष को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। क्रोध को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। शत्रुता को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। निंदा को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। भगवानत्व को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। ईर्ष्या को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। जलन को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। पाखंड को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। छल को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। हठ को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। अहंकार को मन का दोष जानकर, वे इसका त्याग कर देते हैं। वह इसे त्याग देता है। अहंकार को मन का दोष जानकर वह इसे त्याग देता है। घमंड को मन का दोष जानकर वह इसे त्याग देता है। लापरवाही को मन का दोष जानकर वह इसे त्याग देता है।

5. "जब कोई भिक्षु इस प्रकार यह जान लेता है कि लोभ और अधर्मी लालच मन को दूषित करते हैं, तो वह इस लोभ और अधर्मी लालच का त्याग कर देता है; जब कोई भिक्षु इस प्रकार यह जान लेता है कि द्वेष मन को दूषित करता है, तो वह इस द्वेष का त्याग कर देता है; ... जब कोई भिक्षु इस प्रकार यह जान लेता है कि लापरवाही मन को दूषित करती है, तो वह इस लापरवाही का त्याग कर देता है।"

6. — तब उसे बुद्ध पर अटूट विश्वास हो जाता है और वह कहता है: 'यही तो भगवान हैं: वे सिद्ध हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, स्पष्ट दृष्टि और सद्गुणों से परिपूर्ण हैं, उदात्त हैं, संसार के ज्ञाता हैं, आज्ञाकारी मनुष्यों के अतुलनीय मार्गदर्शक हैं, देवताओं और मनुष्यों के शिक्षक हैं, प्रबुद्ध और धन्य हैं।'

7. — इस प्रकार वह धम्म में अटूट विश्वास प्राप्त करता है: 'भगवान द्वारा अच्छी तरह से घोषित धम्म, जो यहीं और अभी प्राप्त करने योग्य है, जिसका तत्काल परिणाम है, जो आपको आकर देखने के लिए आमंत्रित करता है, और जो बुद्धिमानों द्वारा व्यक्तिगत रूप से सुलभ और जानने योग्य है।

8. — इस प्रकार संघ में उनका अटूट विश्वास इस प्रकार प्रकट होता है: 'भगवान बुद्ध के शिष्यों का संघ उत्तम मार्ग पर, सीधे मार्ग पर, सच्चे मार्ग पर, उचित मार्ग पर चल पड़ा है; अर्थात्, मनुष्यों के चार युग्मों पर, आठ प्रकार के व्यक्तियों पर; भगवान बुद्ध के शिष्यों का यह संघ दान के योग्य है, आतिथ्य सत्कार के योग्य है, भेंटों के योग्य है, आदरपूर्वक अभिवादन के योग्य है, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र है।'

9. जब वह आंशिक रूप से [अपराधों] का त्याग कर देता है, उन्हें छोड़ देता है, उनसे मुक्त हो जाता है, और उन्हें त्याग देता है, तब वह जान जाता है: 'मैं बुद्ध में, धम्म में, संघ में अटूट विश्वास से परिपूर्ण हूँ;' और वह लक्ष्य के प्रति उत्साह, धम्म के प्रति उत्साह और धम्म से संबंधित आनंद प्राप्त करता है। जब वह आनंदित होता है, तो उसमें खुशी का जन्म होता है; मन में आनंद होने से उसका शरीर शांत हो जाता है; शरीर शांत होने से उसे खुशी का अनुभव होता है; और आनंदित व्यक्ति का मन एकाग्र हो जाता है।

10. वह जानता है: 'मैंने आंशिक रूप से [अपराधों] का त्याग कर दिया है, उन्हें छोड़ दिया है, त्याग दिया है और उनसे मुक्ति पा ली है'; और वह लक्ष्य के प्रति उत्साह, धम्म के प्रति उत्साह और धम्म से संबंधित आनंद प्राप्त करता है। जब वह आनंदित होता है, तो उसमें

खुशी का जन्म होता है; मन में आनंद होने पर उसका शरीर शांत हो जाता है; शरीर शांत होने पर उसे खुशी का अनुभव होता है; और आनंदित व्यक्ति का मन एकाग्र हो जाता है।

11. "यदि हे भिक्षुओं, ऐसा सद्गुण, ऐसी एकाग्रता और ऐसी बुद्धि वाला भिक्षु उत्तम पहाड़ी चावल और विभिन्न प्रकार की चटनी और करी से युक्त भिक्षा भोजन ग्रहण करता है, तो भी यह उसके लिए कोई बाधा नहीं होगी।"

जिस प्रकार दागदार और मैला कपड़ा शुद्ध जल की सहायता से साफ और चमकदार हो जाता है, या जिस प्रकार सोना भट्टी की सहायता से साफ और चमकदार हो जाता है, उसी प्रकार यदि ऐसा सद्गुण, ऐसी एकाग्रता और ऐसी बुद्धि वाला भिक्षु उत्तम पहाड़ी चावल और विभिन्न प्रकार की चटनी और करी से युक्त भिक्षा भोजन ग्रहण करता है, तो वह भी उसके लिए कोई बाधा नहीं होगी।

12. "वह प्रेम और करुणा से भरे मन से संसार की एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, और इसी प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के प्रति अपने समान प्रेम और करुणा से परिपूर्ण होकर विद्यमान रहता है; वह पूरे ब्रह्मांड को प्रेम और करुणा से परिपूर्ण करते हुए, महान, उदात्त, असीम और द्वेष और दुर्भावना से मुक्त मन से विद्यमान रहता है।"

वह करुणा, सहानुभूतिपूर्ण आनंद और समभाव से परिपूर्ण मन से संसार की एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, और इसी प्रकार ऊपर, नीचे, चारों ओर और हर जगह, और सभी के प्रति स्वयं के समान भाव रखते हुए विद्यमान रहता है; वह संपूर्ण ब्रह्मांड को समभाव से परिपूर्ण करते हुए, महान, उदात्त, असीम और द्वेष और दुर्भावना से मुक्त मन से विद्यमान रहता है।

13. "वह समझता है कि क्या अस्तित्व में है, क्या नीच है, क्या उत्कृष्ट है, और इस [संपूर्ण] बोध क्षेत्र से क्या मुक्ति है।"

14. "जब वह इस प्रकार जानता और देखता है, तो उसका मन इंद्रिय सुख के दोष से मुक्त हो जाता है, जन्म के दोष से मुक्त हो जाता है, अज्ञान के दोष से मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर, उसे ज्ञान होता है: 'यह मुक्त हो गया है'; और वह जानता है: 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, कार्य पूरा हो गया है, अब आगे कुछ नहीं है।' ऐसे भिक्षु को 'आंतरिक स्नान से नहाया हुआ' कहा जाता है।"

15. उस समय ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज भगवान बुद्ध से कुछ दूरी पर बैठे थे और उन्होंने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा, "पर क्या गुरु गौतम बहुका नदी में स्नान करने जाते हैं?"

"हे ब्राह्मण, बहुका नदी का क्या लाभ है? बहुका नदी क्या कर सकती है?"

"हे गौतम जी, सचमुच बहुत से लोग मानते हैं कि बहुका नदी शुद्धिकरण करती है, बहुत से लोग मानते हैं कि बहुका नदी पुण्य प्रदान करती है। क्योंकि बहुका नदी में बहुत से लोग अपने बुरे कर्मों को धो डालते हैं।"

16. तब भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज को इन श्लोकों में संबोधित किया:

बहुका और अधिकक्का, गया और सुंदरिका, पयागा और सरस्वती, और बहुमती नदी — एक मूर्ख चाहे वहां कितना भी स्नान करे, फिर भी उसके काले कर्म शुद्ध नहीं होंगे।

सुंदरिका क्या कर सकती है? पायगा और बहुका क्या कर सकते हैं? वे किसी पापी को, क्रूर और निर्मम कर्म करने वाले व्यक्ति को शुद्ध नहीं कर सकते।

जिसका हृदय शुद्ध है, वह सदा शुद्धिकरण के पर्व और पवित्र दिन का पालन करता है; जिसका हृदय शुद्ध है और जो अच्छे कर्म करता है, उसके अनुष्ठान सदा के लिए परिपूर्ण रहते हैं।

हे ब्राह्मण, यहीं स्नान करो, ताकि तुम समस्त प्राणियों के लिए एक सुरक्षित आश्रय बन सको। और यदि तुम असत्य न बोलो, और किसी भी सजीव प्राणी को हानि न पहुँचाओ,

जो भेंट न की गई हो, उसे मत लो, श्रद्धा से लो, लोभ रहित होकर, गया जाकर तुम्हें क्या लाभ होगा? गया चाहे जैसा भी हो, उसे अपना बना लो! 17. यह सुनकर ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज ने यों कहा:

"महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे पराजितों को पुनर्जीवित कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, खोए हुए को मार्ग दिखा रहे हों, या दृष्टिहीनों को रूप दिखाने के लिए अंधेरे में दीपक जला रहे हों।"

18. "मैं गुरु गौतम की शरण में जाता हूँ, और धम्म की, और संघ की। मुझे गुरु गौतम के मार्गदर्शन में दीक्षा प्राप्त हो, मुझे पूर्ण प्रवेश प्राप्त हो!"

19. ब्राह्मण सुंदरिका भारद्वाज ने भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में संन्यास लेने का प्रथम दीक्षा ग्रहण किया और पूर्ण दीक्षा प्राप्त की। पूर्ण दीक्षा के कुछ ही समय बाद, एकांतवास में रहकर, परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, पूज्य भारद्वाज ने अपने स्वयं के अनुभव से इस जीवन में ही उस परम लक्ष्य को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए अच्छे परिवार के लोग गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाते हैं। उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ: "जन्म समाप्त हो गया, शुद्ध जीवन जी लिया गया, कार्य पूरा हो गया, अब आगे कुछ नहीं करना है।"

और आदरणीय भारद्वाज अरहतों में से एक बन गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> सल्लेखा सुत्त

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु
1सेटिंग
2आठ उपलब्धियाँ
3काटना
4विचार का जागरण
5परिहार
6ऊपर की ओर जाने का रास्ता
7शमन

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे।
2. फिर एक शाम पूज्य महा-चुंडा ध्यानमग्न एकांतवास से उठे और भगवान बुद्ध के पास गए। उन्हें प्रणाम करने के बाद, वे एक तरफ बैठ गए और भगवान बुद्ध से इस प्रकार बोले:
3. "आदरणीय महोदय, संसार में आत्म-सिद्धांतों या विश्व-सिद्धांतों के संबंध में अनेक मत प्रचलित हैं। क्या ध्यानमग्न अवस्था में ही आरंभ कर रहे भिक्षु में ऐसे मतों का त्याग और परित्याग संभव हो पाता है?"
"कुंडा, जहाँ तक संसार में आत्म-सिद्धांतों और विश्व-सिद्धांतों के संबंध में उत्पन्न होने वाले अनेक विचारों का सवाल है, यदि जिस वस्तु में ये विचार उत्पन्न होते हैं, जिसमें वे अंतर्निहित होते हैं और सक्रिय होते हैं, उसे सही बुद्धि से यथावत देखा जाए, इस प्रकार: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है' - तो इन विचारों का त्याग, उनका परित्याग, उस व्यक्ति में होता है जो इस प्रकार देखता है।"

आठ उपलब्धियाँ
4. "हे चुंडा, हो सकता है कि कोई भिक्षु इंद्रिय-विषयों से विरक्त होकर, अवांछित विचारों से विरक्त होकर, वैराग्य से उत्पन्न प्रथम समाधि में प्रवेश करे, जो विचार-अवधारणा और विवेचनात्मक चिंतन से परिपूर्ण हो, और परमानंद और आनंद से भर जाए, और तब वह सोचे: 'मैं विरक्ति में लीन हूँ।' परन्तु भगवान की साधना में इन [उपलब्धियों] को 'विरक्ति' नहीं कहा जाता; भगवान की साधना में इन्हें 'यहाँ और अभी में सहजता में लीन रहना' कहा जाता है।"
5. "हो सकता है कि विचार-अवधारणा और तार्किक चिंतन के शांत होने के बाद, वह द्वितीय समाधि की आंतरिक शांति और सामंजस्य प्राप्त कर ले, जो विचार-अवधारणा और तार्किक चिंतन से मुक्त होती है, एकाग्रता से उत्पन्न होती है और परमानंद और आनंद से

परिपूर्ण होती है; और तब वह सोच सकता है: 'मैं समाधि में लीन हूँ।' परन्तु ऋषि के अनुशासन में इन [उपलब्धियों] को 'समाधि' नहीं कहा जाता; ऋषि के अनुशासन में इन्हें 'यहाँ और अभी में सहजता में लीन रहना' कहा जाता है।"

6. "हो सकता है कि समाधि की अवस्था समाप्त होने के बाद, भिक्षु समभाव, सजगता और स्पष्ट जागरूकता में निवास करे, और वह अपने शरीर में उस सुख का अनुभव करे जिसके बारे में ऋषि कहते हैं: 'सुखद जीवन उसी का है जो समभाव में निवास करता है और सजग रहता है!' - वह तृतीय समाधि प्राप्त कर लेता है; और तब वह सोच सकता है: 'मैं समाधि में निवास कर रहा हूँ।' परन्तु ऋषि के अनुशासन में इन [प्राप्तियों] को 'समाधि' नहीं कहा जाता; ऋषि के अनुशासन में इन्हें 'यहाँ और अभी सुख में निवास' कहा जाता है।"

7. "हो सकता है कि सुख और दुख के त्याग और उससे पहले आनंद और शोक के लुप्त हो जाने के साथ, वह चौथे समाधि में प्रवेश करे और उसमें स्थिर रहे, जो सुख और दुख से परे है और समभाव के कारण मन की शुद्धता से परिपूर्ण है; और तब वह सोचे: 'मैं समाधि में स्थिर हूँ।' परन्तु भगवान की साधना में इन [उपलब्धियों] को 'समाधि' नहीं कहा जाता; भगवान की साधना में इन्हें 'यहाँ और अभी सहजता में स्थिर रहना' कहा जाता है।"

8. "हो सकता है कि शारीरिकता की धारणाओं से पूरी तरह परे जाकर, इंद्रिय-प्रतिक्रिया की धारणाओं के लुप्त होने पर, विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, यह सोचते हुए कि 'अंतरिक्ष अनंत है,' कोई भिक्षु अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र में प्रवेश कर उसमें स्थिर हो जाए; और तब वह सोचे: 'मैं विलीनता में स्थिर हूँ।' लेकिन भगवान की साधना में इन [उपलब्धियों] को 'विलीनता' नहीं कहा जाता; भगवान की साधना में इन्हें 'शांतिपूर्ण स्थिरता' कहा जाता है।"

9. "हो सकता है कि अनंत अंतरिक्ष के क्षेत्र को पूर्णतः पार करते हुए, यह सोचते हुए कि 'चेतना अनंत है,' कोई भिक्षु अनंत चेतना के क्षेत्र में प्रवेश कर उसमें स्थिर हो जाए; और तब वह सोचे: 'मैं विरक्ति में स्थिर हूँ।' परन्तु भगवान की साधना में इन [उपलब्धियों] को 'विरक्ति' नहीं कहा जाता; भगवान की साधना में इन्हें 'शांतिपूर्ण स्थिरता' कहा जाता है।"

10. "हो सकता है कि अनंत चेतना के क्षेत्र को पूर्णतः पार करके, कोई भिक्षु शून्यता के क्षेत्र में प्रवेश कर उसमें स्थिर हो जाए; और तब वह सोचे: 'मैं विलोपन में स्थिर हूँ।' परन्तु भगवान की साधना में इन [उपलब्धियों] को 'विलोपन' नहीं कहा जाता; भगवान की साधना में इन्हें 'शांतिपूर्ण स्थिरता' कहा जाता है।"

11. "हो सकता है कि शून्यता के क्षेत्र को पूर्णतः पार करके कोई भिक्षु न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र में प्रवेश कर जाए और उसमें स्थिर हो जाए; और तब वह सोचे: 'मैं विलोपन में स्थिर हूँ।' परन्तु हे भगवान की साधना में इन [उपलब्धियों] को 'विलोपन' नहीं कहा जाता; हे भगवान की साधना में इन्हें 'शांतिपूर्ण स्थिरता' कहा जाता है।"

काटना

12. "परन्तु हे कुंडा, यहाँ तुम्हें मिटाने का अभ्यास करना चाहिए:

(1) दूसरे हानिकारक होंगे; हम यहाँ हानिकारक नहीं होंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है। (2) दूसरे जीवित प्राणियों की हत्या करेंगे; हम यहाँ जीवित प्राणियों की हत्या करने से परहेज़ करेंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है। (3) दूसरे बिना दी हुई वस्तुएँ लेंगे; हम यहाँ बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से परहेज़ करेंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है। (4) दूसरे व्यभिचारी होंगे; हम यहाँ पवित्र रहेंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है। (5) दूसरे झूठ बोलेंगे; हम यहाँ झूठ बोलने से परहेज़ करेंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है। (6) दूसरे द्वेषपूर्ण बातें करेंगे; हम यहाँ द्वेषपूर्ण बातें करने से परहेज़ करेंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है। (7) दूसरे कठोर बातें करेंगे; हम यहाँ कठोर बातें करने से परहेज़ करेंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है। (8) दूसरे चुगली करेंगे; हम यहाँ चुगली करने से परहेज़ करेंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है। (9) दूसरे लोभी होंगे; हम यहाँ लोभ नहीं करेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (10) दूसरों के मन में दुर्भावना होगी; हम यहाँ दुर्भावना नहीं रखेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (11) दूसरों के विचार गलत होंगे; हम यहाँ सही विचार रखेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (12) दूसरों का इरादा गलत होगा; हम यहाँ सही इरादा रखेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (13) दूसरे गलत बातें करेंगे; हम यहाँ सही बातें करेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (14) दूसरे गलत काम करेंगे; हम यहाँ सही काम करेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (15) दूसरों की आजीविका गलत होगी; हम यहाँ सही आजीविका रखेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (16) दूसरे गलत प्रयास करेंगे; हम यहाँ सही प्रयास करेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (17) दूसरों की चेतना गलत होगी; हम यहाँ सही चेतना रखेंगे — इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (18) दूसरों का ध्यान गलत दिशा में होगा; हमारा ध्यान यहाँ सही दिशा में होगा - इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (19) दूसरों का ज्ञान गलत होगा; हमारा ज्ञान यहाँ सही होगा - इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (20) दूसरों को गलत मुक्ति मिलेगी; हमें यहाँ सही मुक्ति मिलेगी - इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (21) दूसरे आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त होंगे; हम यहाँ आलस्य और सुस्ती से मुक्त होंगे - इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (22) दूसरे उत्तेजित होंगे; हम यहाँ शांत रहेंगे - इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (23) दूसरे संशय में होंगे; हम यहाँ संशय से मुक्त होंगे - इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (24) दूसरे क्रोधित होंगे; हम यहाँ क्रोधित नहीं होंगे - इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (25) दूसरे शत्रुतापूर्ण होंगे; हम यहाँ शत्रुतापूर्ण नहीं होंगे - इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (26) दूसरे निंदा करेंगे; हम यहाँ किसी की निंदा नहीं करेंगे—इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (27) दूसरे लोग भगवानत्वशाली होंगे; हम यहाँ भगवानत्वशाली नहीं होंगे—इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (28) दूसरे लोग ईर्ष्यालु होंगे; हम यहाँ ईर्ष्यालु नहीं होंगे—इस प्रकार मिटाया जा सकता है। (29) दूसरे लोग जलन करेंगे; हम यहाँ जलन नहीं करेंगे—इस प्रकार मिटाया जा सकता है।(30) दूसरे कपटी

होंगे; हम यहाँ कपटी नहीं होंगे — इस प्रकार प्रायश्चित किया जा सकता है। (31) दूसरे पाखंडी होंगे; हम यहाँ पाखंडी नहीं होंगे — इस प्रकार प्रायश्चित किया जा सकता है। (32) दूसरे हठी होंगे; हम यहाँ हठी नहीं होंगे — इस प्रकार प्रायश्चित किया जा सकता है। (33) दूसरे अहंकारी होंगे; हम यहाँ अहंकारी नहीं होंगे — इस प्रकार प्रायश्चित किया जा सकता है। (34) दूसरों को समझाना कठिन होगा; हमें समझाना आसान होगा — इस प्रकार प्रायश्चित किया जा सकता है। (35) दूसरों के बुरे मित्र होंगे; हमारे यहाँ नेक मित्र होंगे — इस प्रकार प्रायश्चित किया जा सकता है। (36) दूसरे लापरवाह होंगे; हम यहाँ सावधान रहेंगे — इस प्रकार प्रायश्चित किया जा सकता है। (37) दूसरे विश्वासघाती होंगे; हम यहाँ वफादार रहेंगे — इस प्रकार प्रायश्चित किया जा सकता है। (38) दूसरे निर्लज्ज होंगे; हम यहाँ लज्जित होंगे— इस प्रकार उनका अपमान मिटाया जा सकता है। (39) दूसरे विवेकहीन होंगे; हम यहाँ विवेकवान होंगे— इस प्रकार उनका अपमान मिटाया जा सकता है। (40) दूसरों के पास ज्ञान नहीं होगा; हम यहाँ ज्ञानवान होंगे— इस प्रकार उनका अपमान मिटाया जा सकता है। (41) दूसरे आलसी होंगे; हम यहाँ ऊर्जावान होंगे— इस प्रकार उनका अपमान मिटाया जा सकता है। (42) दूसरों में जागरूकता की कमी होगी; हम यहाँ जागरूकता में स्थापित होंगे— इस प्रकार उनका अपमान मिटाया जा सकता है। (43) दूसरे बुद्धिहीन होंगे; हम बुद्धि से संपन्न होंगे— इस प्रकार उनका अपमान मिटाया जा सकता है। (44) दूसरे अपने व्यक्तिगत विचारों के अनुसार गलत समझेंगे, उन पर दृढ़ता से टिके रहेंगे और उन्हें आसानी से नहीं छोड़ेंगे; हम अपने व्यक्तिगत विचारों के अनुसार गलत नहीं समझेंगे और न ही उन पर दृढ़ता से टिके रहेंगे, बल्कि उन्हें आसानी से छोड़ देंगे— इस प्रकार उनका अपमान मिटाया जा सकता है।उन्हें दृढ़ता से थामे रहो और आसानी से त्याग मत दो; हम व्यक्तिगत विचारों के अनुसार गलत धारणा नहीं बनाएंगे और न ही उन्हें दृढ़ता से थामे रहेंगे, बल्कि उन्हें आसानी से त्याग देंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है।उन्हें दृढ़ता से थामे रहो और आसानी से त्याग मत दो; हम व्यक्तिगत विचारों के अनुसार गलत धारणा नहीं बनाएंगे और न ही उन्हें दृढ़ता से थामे रहेंगे, बल्कि उन्हें आसानी से त्याग देंगे - इस प्रकार विलोपन किया जा सकता है।

विचार का जागरण

13. "कुंडा, मैं कहता हूँ कि लाभकारी बातों [और विचारों] से संबंधित विचार का उत्पन्न होना भी बहुत महत्वपूर्ण है, शारीरिक क्रियाओं और शब्दों का ऐसे विचार के अनुरूप होना तो और भी महत्वपूर्ण है। इसलिए, कुंडा:

(1) यह विचार उत्पन्न होना चाहिए: 'अन्य लोग हानि पहुँचाएँगे; हम यहाँ हानि नहीं पहुँचाएँगे।' (2) यह विचार उत्पन्न होना चाहिए: 'अन्य लोग जीवित प्राणियों की हत्या करेंगे; हम यहाँ जीवित प्राणियों की हत्या करने से परहेज़ करेंगे।' (3)-(43)... (44) यह विचार उत्पन्न होना चाहिए: 'अन्य लोग अपने व्यक्तिगत मतों के अनुसार गलत समझेंगे, उन पर दृढ़ता से टिके रहेंगे और उन्हें आसानी से नहीं छोड़ेंगे; हम अपने व्यक्तिगत मतों के अनुसार गलत नहीं समझेंगे और न ही उन पर दृढ़ता से टिके रहेंगे, बल्कि उन्हें आसानी से छोड़ देंगे।'

परिहार

14. "मान लो, कुंडा, एक ऊबड़-खाबड़ सड़क हो और दूसरी समतल सड़क हो जिससे उसे पार किया जा सके; और मान लो एक ऊबड़-खाबड़ घाट हो और दूसरी समतल घाट हो जिससे उसे पार किया जा सके। ठीक वैसे ही:

(1) जो व्यक्ति दूसरों को हानि पहुँचाने का भोगता है, उसे हानि न पहुँचाने का गुण अपनाना चाहिए। (2) जो व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या करने का भोगता है, उसे हत्या न करने का गुण अपनाना चाहिए। (3) जो व्यक्ति बिना दी हुई वस्तुएँ लेने का भोगता है, उसे बिना दी हुई वस्तुओं को न लेने का गुण अपनाना चाहिए। (4) जो व्यक्ति व्यभिचार का भोगता है, उसे ब्रह्मचर्य का गुण अपनाना चाहिए। (5) जो व्यक्ति झूठी बातें बोलने का भोगता है, उसे झूठी बातें न बोलने का गुण अपनाना चाहिए। (6) जो व्यक्ति द्वेषपूर्ण बातें बोलने का भोगता है, उसे द्वेषपूर्ण बातें न बोलने का गुण अपनाना चाहिए। (7) जो व्यक्ति कठोर बातें बोलने का भोगता है, उसे कठोर बातें न बोलने का गुण अपनाना चाहिए। (8) जो व्यक्ति चुगली करने का भोगता है, उसे चुगली न करने का गुण अपनाना चाहिए। (9) जो व्यक्ति लोभ का भोगता है, उसे लोभ न करने का गुण अपनाना चाहिए। (10) जो व्यक्ति द्वेषपूर्ण विचार रखता है, उसे द्वेष रहित रहने का गुण अपनाना चाहिए। (11) जो व्यक्ति गलत मत रखता है, उसे सही मत रखना चाहिए। (12) गलत इरादे वाले व्यक्ति के पास सही इरादे होते हैं जिससे वह इससे बच सके। (13) गलत वाणी वाले व्यक्ति के पास सही वाणी होती है जिससे वह इससे बच सके। (14) गलत कर्म करने वाले व्यक्ति के पास सही कर्म होते हैं जिससे वह इससे बच सके। (15) गलत आजीविका वाले व्यक्ति के पास सही आजीविका होती है जिससे वह इससे बच सके। (16) गलत प्रयास करने वाले व्यक्ति के पास सही प्रयास होते हैं जिससे वह इससे बच सके। (17) गलत ध्यान में रहने वाले व्यक्ति के पास सही ध्यान होता है जिससे वह इससे बच सके। (18) गलत एकाग्रता में रहने वाले व्यक्ति के पास सही एकाग्रता होती है जिससे वह इससे बच सके। (19) गलत ज्ञान में रहने वाले व्यक्ति के पास सही ज्ञान होता है जिससे वह इससे बच सके। (20) गलत मुक्ति पाने वाले व्यक्ति के पास सही मुक्ति होती है जिससे वह इससे बच सके। (21) आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त व्यक्ति के पास आलस्य और सुस्ती से मुक्ति होती है जिससे वह इससे बच सके। (22) बेचैनी में रहने वाले व्यक्ति के पास अशांति होती है जिससे वह इससे बच सके। (23) संदेह में रहने वाले व्यक्ति के पास संदेह से मुक्ति होती है जिससे वह इससे बच सके। (24) क्रोध करने वाले व्यक्ति के पास क्रोध से मुक्ति होती है जिससे वह क्रोध से बच सकता है। (25) शत्रुता रखने वाले व्यक्ति के पास शत्रुता से मुक्ति होती है जिससे वह शत्रुता से बच सकता है। (26) निंदा करने वाले व्यक्ति के पास निंदा न करने का गुण होता है जिससे वह निंदा से बच सकता है। (27) भगवानत्वशाली व्यक्ति के पास भगवानत्वहीनता का गुण होता है जिससे वह भगवानत्वहीन हो सकता है। (28) ईर्ष्या करने वाले व्यक्ति के पास ईर्ष्या न करने का गुण होता है जिससे वह ईर्ष्या से बच सकता है। (29) जलन करने

वाले व्यक्ति के पास जलन न करने का गुण होता है जिससे वह जलन से बच सकता है। (30) कपट करने वाले व्यक्ति के पास कपट न करने का गुण होता है जिससे वह कपट से बच सकता है। (31) पाखंड करने वाले व्यक्ति के पास पाखंड न करने का गुण होता है जिससे वह पाखंड से बच सकता है। (32) हठधर्मी व्यक्ति के पास हठधर्मिता न करने का गुण होता है जिससे वह हठधर्मिता से बच सकता है। (33) अहंकारी व्यक्ति के पास अहंकार न करने का गुण होता है जिससे वह अहंकार से बच सकता है। (34) जिसे समझाना कठिन होता है उसके पास विनम्रता होती है जिससे वह अनुनय से बच सकता है। (35) बुरे मित्र बनाने की आदत वाले व्यक्ति को अच्छे मित्र बनाकर इससे बचना चाहिए। (36) लापरवाही करने की आदत वाले व्यक्ति को सावधानी बरतनी चाहिए जिससे वह इससे बच सके। (37) अविश्वास करने की आदत वाले व्यक्ति को विश्वास रखना चाहिए जिससे वह इससे बच सके।(38) निर्लज्जता का भोग करने वाले व्यक्ति के पास लज्जा होती है जिससे वह इससे बच सकता है। (39) विवेकहीन व्यक्ति के पास विवेक होता है जिससे वह इससे बच सकता है। (40) अज्ञानी व्यक्ति के पास महान ज्ञान का अधिग्रहण होता है जिससे वह इससे बच सकता है। (41) आलस्य का भोग करने वाले व्यक्ति के पास ऊर्जावान प्रयास होता है जिससे वह इससे बच सकता है। (42) सजगताहीन व्यक्ति के पास सजगता की स्थापना होती है जिससे वह इससे बच सकता है। (43) बुद्धिहीन व्यक्ति के पास बुद्धि होती है जिससे वह इससे बच सकता है। (44) अपने व्यक्तिगत विचारों के अनुसार गलत धारणा रखने, उन पर दृढ़ता से टिके रहने और उन्हें आसानी से न छोड़ने का भोग करने वाले व्यक्ति के पास व्यक्तिगत विचारों की गलत धारणा न रखने, दृढ़ता से न टिकने और उन्हें आसानी से न छोड़ने का गुण होता है जिससे वह इससे बच सकता है।

ऊपर की ओर जाने का रास्ता

15. "चुंडा, जिस प्रकार सभी अस्वास्थ्यकर अवस्थाएँ नीचे की ओर ले जाती हैं और सभी स्वास्थ्यकर अवस्थाएँ ऊपर की ओर ले जाती हैं, उसी प्रकार, चुंडा:

(1) जो व्यक्ति दूसरों को हानि पहुँचाने में लीन है, उसे अहिंसा का पालन करना चाहिए ताकि वह उन्नति की ओर अग्रसर हो। (2) जो व्यक्ति प्राणियों की हत्या करने में लीन है, उसे हत्या से परहेज करना चाहिए ताकि वह उन्नति की ओर अग्रसर हो। (3)-(43)... (44) जो व्यक्ति अपने व्यक्तिगत मतों के अनुसार गलत धारणा रखने, उन पर दृढ़ता से अडिग रहने और उन्हें आसानी से न छोड़ने में लीन है, उसे अपने व्यक्तिगत मतों की गलत धारणा न रखना, उन पर दृढ़ता से अडिग न रहना और उन्हें आसानी से न छोड़ देना चाहिए ताकि वह उन्नति की ओर अग्रसर हो।

शमन

16. "कुंडा, यह असंभव है कि जो स्वयं कीचड़ में डूबा हो, वह किसी दूसरे को, जो कीचड़ में डूबा हो, बाहर निकाल सके। परन्तु यह संभव है, कुंडा, कि जो स्वयं कीचड़ में न डूबा हो, वह किसी दूसरे को, जो कीचड़ में डूबा हो, बाहर निकाल सके।"

"हे चुंडा, यह संभव नहीं है कि जो व्यक्ति स्वयं संयमित, अनुशासित और अपनी भावनाओं को तृप्त न कर सके, वह दूसरों को संयमित और अनुशासित कर सके, उन्हें भावनाओं की पूर्ण शांति दिला सके। परन्तु हे चुंडा, यह संभव है कि जो व्यक्ति स्वयं संयमित, अनुशासित और अपनी भावनाओं को पूर्ण रूप से तृप्त कर सके, वह दूसरों को संयमित और अनुशासित कर सके, उन्हें भावनाओं की पूर्ण शांति दिला सके। ऐसा ही हो, हे चुंडा:

(1) जो व्यक्ति हानि पहुँचाने में लीन है, उसे हानि न पहुँचाने का अभ्यास करना चाहिए जिससे वह इस लीनता का पूर्ण शमन प्राप्त कर सके। (2) जो व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या करने में लीन है, उसे हत्या से परहेज करने का अभ्यास करना चाहिए जिससे वह इस लीनता का पूर्ण शमन प्राप्त कर सके। (3)-(43)... (44) जो व्यक्ति अपने व्यक्तिगत विचारों के अनुसार गलत धारणा रखने, उन विचारों को दृढ़ता से पकड़े रहने और उन्हें आसानी से न छोड़ने में लीन है, उसे अपने व्यक्तिगत विचारों की गलत धारणा न रखने, दृढ़ता से न पकड़े रहने और उन्हें आसानी से न छोड़ने का अभ्यास करना चाहिए जिससे वह इस लीनता का शमन प्राप्त कर सके। निष्कर्ष 17. "इस प्रकार, चुंडा, मैंने तुम्हें मिटाने का निर्देश दिखाया है, मैंने तुम्हें विचारों के उत्पन्न होने का निर्देश दिखाया है, मैंने तुम्हें उनसे बचने का निर्देश दिखाया है, मैंने तुम्हें ऊपर की ओर जाने का निर्देश दिखाया है, मैंने तुम्हें शमन का निर्देश दिखाया है।

18. "जो गुरु अपने शिष्यों का कल्याण चाहता है और उन पर दया और करुणा करता है, वह उनके लिए क्या कर सकता है जो मैंने तुम्हारे लिए किया है, चुंडा? यहाँ वृक्षों की जड़ें हैं, यहाँ खाली स्थान हैं। ध्यान करो, चुंडा, देर मत करो, वरना बाद में पछताओगे। यही मेरा संदेश है तुम्हारे लिए।"

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा। भगवान बुद्ध के वचन सुनकर आदरणीय चुंडा संतुष्ट हो गए और प्रसन्न हुए।

[प्रथम परिषद के 'थेरास द्वारा जोड़ा गया अंतिम श्लोक:]

यह सूत्रन्त, जो विलोपन पर आधारित है, सागर की तरह गहरा है, और इसमें चौवालीस विषयों पर चर्चा की गई है, जिन्हें पाँच खंडों में दर्शाया गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> सम्मदिथि सुत्त

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु

1सेटिंग
2स्वास्थ्यवर्धक और अस्वस्थ
3भोजन
4चार आर्य सत्य
5वृद्धावस्था और मृत्यु
6जन्म
7प्राणी
8पकड़
9तीव्र इच्छा
10अनुभूति
11संपर्क
12छह गुना आधार
13मानसिकता-भौतिकता
14चेतना
15संरचनाओं
16अज्ञान
17दाग

सेटिंग

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में रह रहे थे। वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "हे भिक्षुओं, मित्रों।" - "हे भिक्षु," उन्होंने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने आगे कहा:

2. "'सही दृष्टि वाला एक व्यक्ति, सही दृष्टि वाला एक व्यक्ति' कहा जाता है, मित्रों। एक श्रेष्ठ शिष्य किस प्रकार सही दृष्टि वाला होता है, जिसकी दृष्टि सीधी होती है, जिसे धम्म में पूर्ण विश्वास होता है, और जो इस सच्चे धम्म तक पहुँच चुका होता है?"

"सचमुच, मित्र, हम दूर-दूर से पूज्य सारिपुत्त से इस कथन का अर्थ जानने आए हैं। यह अच्छा होगा यदि पूज्य सारिपुत्त इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें। उनसे सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"तो दोस्तों, ध्यान से सुनो और जो मैं कहने जा रहा हूँ उस पर गौर करो।"

"जी हां, मित्र," भिक्षुओं ने उत्तर दिया। पूज्य सारिपुत्त ने यह कहा:

स्वास्थ्यवर्धक और अस्वस्थ

3. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य अस्वस्थता, अस्वस्थता के मूल, अच्छाई और अच्छाई के मूल को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला, सीधी दृष्टि वाला, धम्म में पूर्ण विश्वास रखने वाला और सच्चे धम्म तक पहुँचने वाला होता है।"

4. "और हे मित्रों, अस्वास्थ्यकर क्या है, अस्वास्थ्यकर का मूल क्या है, स्वास्थ्यकर क्या है, स्वास्थ्यकर का मूल क्या है? जीवित प्राणियों की हत्या करना अस्वास्थ्यकर है; बिना दी हुई वस्तु लेना अस्वास्थ्यकर है; इंद्रिय सुखों में लिप्त होना अस्वास्थ्यकर है; झूठी बातें करना अस्वास्थ्यकर है; द्वेषपूर्ण बातें करना अस्वास्थ्यकर है; कठोर बातें करना अस्वास्थ्यकर है; चुगली करना अस्वास्थ्यकर है; लोभ करना अस्वास्थ्यकर है; दुर्भावना रखना अस्वास्थ्यकर है; गलत दृष्टिकोण रखना अस्वास्थ्यकर है। इसे ही अस्वास्थ्यकर कहा जाता है।"

5. "अशुभता की जड़ क्या है? लोभ अशुभता की जड़ है; घृणा अशुभता की जड़ है; भ्रम अशुभता की जड़ है। इसे ही अशुभता की जड़ कहा जाता है।"

6. "और अच्छा क्या है? जीवित प्राणियों की हत्या न करना अच्छा है; बिना दी हुई वस्तु न लेना अच्छा है; इंद्रिय सुखों में लिप्त न होना अच्छा है; झूठी बातें न बोलना अच्छा है; द्वेषपूर्ण बातें न बोलना अच्छा है; कठोर बातें न बोलना अच्छा है; चुगली न करना अच्छा है; लोभ न करना अच्छा है; द्वेष न रखना अच्छा है; सही दृष्टिकोण रखना अच्छा है। यही अच्छा है।"

7. "और अच्छाई का मूल क्या है? लोभ रहित होना अच्छाई का मूल है; घृणा रहित होना अच्छाई का मूल है; भ्रम रहित होना अच्छाई का मूल है। इसे ही अच्छाई का मूल कहा जाता है।"

8. जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार अहानिकारक, अहानिकारक के मूल, सुखी और सुखी के मूल को समझ लेता है, तो वह कामवासना की अंतर्निहित प्रवृत्ति को पूर्णतः त्याग देता है, घृणा की अंतर्निहित प्रवृत्ति को समाप्त कर देता है, 'मैं हूँ' की धारणा और अहंकार की

अंतर्निहित प्रवृत्ति को जड़ से उखाड़ फेंकता है, और अज्ञान का त्याग करके और सच्चे ज्ञान को जागृत करके वह यहीं और इसी क्षण दुख का अंत कर देता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला, सीधी दृष्टि वाला, धम्म में पूर्ण विश्वास रखने वाला और सच्चे धम्म तक पहुँचने वाला होता है।

भोजन

9. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"

10. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य पोषण, पोषण के स्रोत, पोषण की समाप्ति और पोषण की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"

11. "पोषण क्या है, पोषण का स्रोत क्या है, पोषण का अंत क्या है, और पोषण के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? जो जीव पहले से अस्तित्व में हैं और जो नए अस्तित्व की तलाश में हैं, उनके भरण-पोषण के लिए चार प्रकार के पोषण हैं। वे चार क्या हैं? वे हैं: स्थूल या सूक्ष्म रूप से भौतिक भोजन; दूसरा, संपर्क; तीसरा, मानसिक इच्छाशक्ति; और चौथा, चेतना। तृष्णा उत्पन्न होने पर पोषण उत्पन्न होता है। तृष्णा के अंत होने पर पोषण समाप्त हो जाता है। पोषण के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि, सही अभिलाषा, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।"

12. जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार पोषण, पोषण के स्रोत, पोषण की समाप्ति और पोषण की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह लोभ की अंतर्निहित प्रवृत्ति को पूर्णतः त्याग देता है, घृणा की अंतर्निहित प्रवृत्ति को समाप्त कर देता है, और 'मैं हूँ' की धारणा और अहंकार की अंतर्निहित प्रवृत्ति को जड़ से उखाड़ फेंकता है, और अज्ञान का त्याग करके और सच्चे ज्ञान को जागृत करके वह यहीं और इसी क्षण दुख का अंत कर देता है। इस प्रकार भी एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला, सीधी दृष्टि वाला, धम्म में पूर्ण विश्वास रखने वाला और सच्चे धम्म तक पहुँचने वाला होता है।

चार आर्य सत्य

13. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"

14. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य दुख, दुख के कारण, दुख के निवारण और दुख के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"

15. "दुख क्या है, दुःख का कारण क्या है, दुःख का निवारण क्या है, दुःख के निवारण का मार्ग क्या है? जन्म दुःख है; वृद्धावस्था दुःख है; रोग दुःख है; मृत्यु दुःख है; शोक, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा दुःख हैं; इच्छा की प्राप्ति न होना दुःख है; संक्षेप में, आसक्ति से प्रभावित पाँचों स्कंध दुःख हैं। इसे दुःख कहते हैं।"

16. "दुख का मूल कारण क्या है? यह लालसा है, जो अस्तित्व का नवीनीकरण लाती है, आनंद और कामवासना के साथ होती है, और इसमें और उसमें आनंद लेती है; अर्थात्, इंद्रिय सुखों की लालसा, अस्तित्व की लालसा और गैर-अस्तित्व की लालसा। इसे ही दुःख का मूल कारण कहा जाता है।"

17. "और दुख का निवारण क्या है? यह उसी लालसा का पूर्णतः लुप्त हो जाना और समाप्त हो जाना, उसका त्याग करना, उसे छोड़ देना और अस्वीकार करना है। इसी को दुख का निवारण कहते हैं।"

18. "और दुखों के निवारण का मार्ग क्या है? यह आर्य अष्टांगिक मार्ग ही है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता। यही दुखों के निवारण का मार्ग कहलाता है।"

19. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार दुख, दुख के कारण, दुख के निवारण और दुख के निवारण के मार्ग को समझ लेता है... तो वह इसी क्षण दुख का अंत कर देता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

वृद्धावस्था और मृत्यु

20. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"

21. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य वृद्धावस्था और मृत्यु, वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण, वृद्धावस्था और मृत्यु का निवारण, और वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"

22. "वृषण और मृत्यु क्या है, वृषण और मृत्यु का कारण क्या है, वृषण और मृत्यु का निवारण क्या है, और वृषण और मृत्यु के निवारण का मार्ग क्या है? विभिन्न कोटि के प्राणियों का वृद्ध होना, उनका वृद्धावस्था, दांतों का टूटना, बालों का सफेद होना, त्वचा का झुर्रीदार होना, जीवन का क्षय, इंद्रियों का कमजोर होना—यही वृद्धावस्था कहलाता है। विभिन्न कोटि के प्राणियों का अंत, उनका देह त्याग, विघटन, विलीन होना, मरना, काल की समाप्ति, स्कंधों का विघटन, शरीर का त्याग—यही मृत्यु कहलाता है। अतः यही वृद्धावस्था और यही मृत्यु है। जन्म के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु उत्पन्न होती है। जन्म के निवारण के साथ ही वृद्धावस्था और मृत्यु का निवारण होता है। वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"
23. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य वृद्धावस्था और मृत्यु, वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण, वृद्धावस्था और मृत्यु का निवारण, और वृद्धावस्था और मृत्यु के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है... तो वह यहीं और इसी क्षण दुखों का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

जन्म

24. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"
25. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य जन्म, जन्म का उद्‌गम, जन्म का अंत और जन्म के अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"
26. "जन्म क्या है, जन्म का उद्‌गम क्या है, जन्म का अंत क्या है, जन्म के अंत का मार्ग क्या है? प्राणियों का विभिन्न रूपों में जन्म, उनका जन्म होना, गर्भ में अवक्षेपित होना, उत्पत्ति, तत्वों का प्रकटीकरण, संपर्क के आधारों की प्राप्ति—यही जन्म कहलाता है। अस्तित्व की उत्पत्ति के साथ ही जन्म की उत्पत्ति होती है। अस्तित्व के अंत के साथ ही जन्म का अंत होता है। जन्म के अंत का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"
27. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य जन्म, जन्म का कारण, जन्म का अंत और जन्म के अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है... तो वह यहीं और इसी क्षण दुखों का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

प्राणी

28. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"
29. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य अस्तित्व, अस्तित्व की उत्पत्ति, अस्तित्व की समाप्ति और अस्तित्व की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टिकोण वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"
30. "अस्तित्व क्या है, अस्तित्व का उद्‌गम क्या है, अस्तित्व का अंत क्या है, और अस्तित्व के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? तीन प्रकार के अस्तित्व हैं: इंद्रिय-क्षेत्र का अस्तित्व, सूक्ष्म-भौतिक अस्तित्व और अभौतिक अस्तित्व। आसक्ति उत्पन्न होने पर अस्तित्व उत्पन्न होता है। आसक्ति के अंत से अस्तित्व का अंत हो जाता है। अस्तित्व के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"
31. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार अस्तित्व, अस्तित्व की उत्पत्ति, अस्तित्व की समाप्ति और अस्तित्व की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है... तो वह यहीं और इसी क्षण दुख का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

पकड़

32. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"
33. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य आसक्ति, आसक्ति का कारण, आसक्ति का निवारण और आसक्ति के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"
34. "आसक्ति क्या है, आसक्ति का कारण क्या है, आसक्ति का निवारण क्या है, और आसक्ति निवारण का मार्ग क्या है? आसक्ति चार प्रकार की होती है: इंद्रिय सुखों से आसक्ति, दृष्टियों से आसक्ति, रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों से आसक्ति, और आत्म-प्रशंसा से आसक्ति। तृष्णा उत्पन्न होने पर आसक्ति उत्पन्न होती है। तृष्णा के निवारण से आसक्ति का निवारण होता है। आसक्ति निवारण का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"

35. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य आसक्ति, आसक्ति का कारण, आसक्ति का निवारण और आसक्ति निवारण के मार्ग को समझ लेता है... तब वह यहीं और इसी क्षण दुखों का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

तीव्र इच्छा

36. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"

37. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य तृष्णा, तृष्णा का कारण, तृष्णा का निवारण और तृष्णा के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"

38. "और भोग क्या है, भोग का कारण क्या है, भोग का निवारण क्या है, भोग के निवारण का मार्ग क्या है? भोग के ये छह प्रकार हैं: रूपों का भोग, ध्वनियों का भोग, गंधों का भोग, स्वादों का भोग, स्पर्शनीय वस्तुओं का भोग, मन के विषयों का भोग। बोध उत्पन्न होने पर भोग उत्पन्न होता है। बोध के निवारण पर भोग का निवारण होता है। भोग के निवारण का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"

39. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार तृष्णा, तृष्णा का कारण, तृष्णा का निवारण और तृष्णा निवारण के मार्ग को समझ लेता है... तब वह यहीं और इसी क्षण दुख का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

अनुभूति

40. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"

41. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य भावना, भावना की उत्पत्ति, भावना की समाप्ति और भावना की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टिकोण वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"

42. "और भावना क्या है, भावना का उद्‍गम क्या है, भावना का निवारण क्या है, भावना के निवारण का मार्ग क्या है? भावना के ये छह प्रकार हैं: नेत्र संपर्क से उत्पन्न भावना, कान संपर्क से उत्पन्न भावना, नाक संपर्क से उत्पन्न भावना, जीभ संपर्क से उत्पन्न भावना, शरीर संपर्क से उत्पन्न भावना, मन संपर्क से उत्पन्न भावना। संपर्क उत्पन्न होने पर भावना उत्पन्न होती है। संपर्क समाप्त होने पर भावना समाप्त हो जाती है। भावना के निवारण का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"

43. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार भाव, भाव का उद्‍गम, भाव का निवारण और भाव निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है... तब वह यहीं और इसी क्षण दुख का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

संपर्क

44. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"

45. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य संपर्क, संपर्क की उत्पत्ति, संपर्क की समाप्ति और संपर्क की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टिकोण वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"

46. "संपर्क क्या है, संपर्क का उद्‍गम क्या है, संपर्क का अंत क्या है, और संपर्क के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? संपर्क के ये छह प्रकार हैं: नेत्र संपर्क, कान संपर्क, नाक संपर्क, जीभ संपर्क, शरीर संपर्क, मन संपर्क। छह आधारों के उत्पन्न होने से संपर्क उत्पन्न होता है। छह आधारों के समाप्त होने से संपर्क समाप्त हो जाता है। संपर्क के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"

47. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार संपर्क, संपर्क का उद्‍गम, संपर्क का अंत और संपर्क के अंत की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है... तो वह यहीं और इसी क्षण दुख का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

छह गुना आधार

48. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"
49. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य छह प्रकार के आधार, छह प्रकार के आधार की उत्पत्ति, छह प्रकार के आधार की समाप्ति और छह प्रकार के आधार की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टिकोण वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"
50. "छठ प्रकार का आधार क्या है, छह प्रकार के आधार का उद्‌गम क्या है, छह प्रकार के आधार का निवारण क्या है, और छह प्रकार के आधार के निवारण का मार्ग क्या है? ये छह आधार हैं: आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और मन। मन और भौतिकता के उत्पन्न होने से छह प्रकार के आधार उत्पन्न होते हैं। मन और भौतिकता के निवारण से छह प्रकार के आधार का निवारण होता है। छह प्रकार के आधार के निवारण का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"
51. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार छह प्रकार के आधार, छह प्रकार के आधार की उत्पत्ति, छह प्रकार के आधार की समाप्ति और छह प्रकार के आधार की समाप्ति के मार्ग को समझ लेता है... तो वह इसी क्षण दुखों का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

मानसिकता-भौतिकता

52. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"
53. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य मानसिक-भौतिकता, मानसिक-भौतिकता की उत्पत्ति, मानसिक-भौतिकता की समाप्ति और मानसिक-भौतिकता की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टिकोण वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"
54. "मानसिक-भौतिकता क्या है, मानसिक-भौतिकता का उद्‌गम क्या है, मानसिक-भौतिकता का अंत क्या है, और मानसिक-भौतिकता के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? भावना, बोध, इच्छाशक्ति, संपर्क और ध्यान—ये सब मानसिक हैं। चार महा तत्व और उनसे उत्पन्न भौतिक रूप—ये सब भौतिकता कहलाते हैं। अतः यह मानसिकता और यह भौतिकता ही मानसिक-भौतिकता कहलाती है। चेतना के उदय के साथ ही मानसिक-भौतिकता का उदय होता है। चेतना के अंत के साथ ही मानसिक-भौतिकता का अंत हो जाता है। मानसिक-भौतिकता के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"
55. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार मन-भौतिकता, मन-भौतिकता की उत्पत्ति, मन-भौतिकता की समाप्ति और मन-भौतिकता की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है... तो वह इसी क्षण दुख का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

चेतना

56. "अच्छा मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा:
"पर, मित्र, क्या कोई और तरीका हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच गया हो?" - "हो सकता है, मित्रों।"
57. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य चेतना, चेतना की उत्पत्ति, चेतना की समाप्ति और चेतना की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"
58. चेतना क्या है, चेतना का उद्‌गम क्या है, चेतना का अंत क्या है, और चेतना के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग क्या है? चेतना के ये छह प्रकार हैं: नेत्र चेतना, कान चेतना, नाक चेतना, जीभ चेतना, शरीर चेतना, मन चेतना। जब शरीरों का निर्माण होता है, तब चेतना का निर्माण होता है। जब शरीरों का अंत होता है, तब चेतना का अंत होता है। चेतना के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात्, सही दृष्टि... सही एकाग्रता।
59. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य चेतना, चेतना की उत्पत्ति, चेतना की समाप्ति और चेतना की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है... तो वह यहीं और इसी क्षण दुख का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

संरचनाओं

60. "हे मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और मार्ग हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"

61. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य सृष्टि, सृष्टि की उत्पत्ति, सृष्टि की समाप्ति और सृष्टि की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"
62. "और ये रचनाएँ क्या हैं, इनकी उत्पत्ति क्या है, इनका निवारण क्या है, और इनके निवारण का मार्ग क्या है? तीन प्रकार की रचनाएँ होती हैं: शारीरिक रचना, मौखिक रचना और मानसिक रचना। अज्ञान उत्पन्न होने पर ही रचनाएँ उत्पन्न होती हैं। अज्ञान के निवारण से ही रचनाएँ समाप्त हो जाती हैं। रचना निवारण का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।"
63. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार सृष्टि के निर्माण, निर्माण की उत्पत्ति, निर्माण की समाप्ति और निर्माण की समाप्ति की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है... तो वह यहीं और इसी क्षण दुख का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

अज्ञान

64. "हे मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और मार्ग हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला हो... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाए?" - "हो सकता है, मित्रों।"
65. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य अज्ञान, अज्ञान के स्रोत, अज्ञान के निवारण और अज्ञान के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म तक पहुँच जाता है।"
66. अज्ञान क्या है, अज्ञान का स्रोत क्या है, अज्ञान का निवारण क्या है, और अज्ञान के निवारण का मार्ग क्या है? दुख के बारे में न जानना, दुख के स्रोत के बारे में न जानना, दुख के निवारण के बारे में न जानना, और दुख के निवारण के मार्ग के बारे में न जानना—यही अज्ञान कहलाता है। दोषों के उत्पन्न होने से अज्ञान उत्पन्न होता है। दोषों के निवारण से अज्ञान का निवारण होता है। अज्ञान के निवारण का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि... सही एकाग्रता।
67. "जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार अज्ञान, अज्ञान के स्रोत, अज्ञान के निवारण और अज्ञान के निवारण के मार्ग को समझ लेता है... तो वह यहीं और इसी क्षण दुखों का अंत कर लेता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला होता है... और इस सच्चे धम्म को प्राप्त कर लेता है।"

दाग

68. "अच्छा, मित्र," कहते हुए भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित हुए। फिर उन्होंने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "परन्तु, मित्र, क्या कोई और तरीका भी हो सकता है जिससे एक श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टिकोण वाला, सीधा दृष्टिकोण वाला, धम्म में पूर्ण विश्वास रखने वाला और सच्चे धम्म तक पहुँचने वाला हो?" - "हो सकता है, मित्रों।"
69. "हे मित्रों, जब कोई श्रेष्ठ शिष्य दोषों, दोषों के उद्गम, दोषों के निवारण और दोषों के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग को समझ लेता है, तो वह सही दृष्टि वाला, सीधा दृष्टि वाला, धम्म में पूर्ण विश्वास रखने वाला और इस सच्चे धम्म तक पहुँचने वाला होता है।"
70. "और दोष क्या हैं, दोषों का स्रोत क्या है, दोषों का निवारण क्या है, दोषों के निवारण का मार्ग क्या है? तीन प्रकार के दोष हैं: कामुक इच्छा का दोष, व्यथा का दोष और अज्ञान का दोष। अज्ञान के उत्पन्न होने से ही दोष उत्पन्न होते हैं। अज्ञान के निवारण से ही दोष दूर हो जाते हैं। दोषों के निवारण का मार्ग यही आर्य अष्टांगिक मार्ग है; अर्थात् सही दृष्टि, सही आशय, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।"
71. जब कोई श्रेष्ठ शिष्य इस प्रकार दोषों, दोषों के उद्गम, दोषों के निवारण और निवारण के मार्ग को समझ लेता है, तो वह कामवासना की मूल प्रवृत्ति को पूर्णतः त्याग देता है, घृणा की मूल प्रवृत्ति को समाप्त कर देता है, और 'मैं हूँ' की अभिलाषा और अहंकार की मूल प्रवृत्ति को जड़ से उखाड़ फेंकता है, और अज्ञान का त्याग करके और सच्चे ज्ञान को जागृत करके वह यहीं और इसी क्षण दुखों का अंत कर देता है। इस प्रकार भी श्रेष्ठ शिष्य सही दृष्टि वाला, सीधी दृष्टि वाला, धम्म में पूर्ण विश्वास रखने वाला और सच्चे धम्म तक पहुँचने वाला होता है।
यही बात पूज्य सारिपुत्त ने कही। भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से संतुष्ट और प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> सतिपत्थन सुत्त

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु

1सूत्र की पृष्ठभूमि
2सूत्र की व्याख्या
2.1ए. शरीर (काया)
2.1.1अनापना ध्यान
2.1.2संपजना (पूर्ण ज्ञान)
2.1.3मानसिका (शरीर पर ध्यान देना)
2.2ख. भावनाएँ/संवेदनाएँ (वेदना)
2.3सी. मन (चित्त)
2.4डी. मन की वस्तुएँ/गुण (धम्म)
2.4.1उपादान-खंड (समुच्चय के कारण रुकावट/चिपके रहना)
2.4.2आयतन (इंद्रियां)
2.4.3बोझांग (ज्ञानोदय कारक)
2.4.4सक्का (चार आर्य सत्य)
3निष्कर्ष

सूत्र की पृष्ठभूमि

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध कुरु देश में ठहरे हुए थे। वहाँ कुरुओं का एक नगर है जिसका नाम कम्मसधम्मा है। वहाँ भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं।"

"भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "ये प्राणियों के शुद्धिकरण, दु:ख और विलाप पर विजय, पीड़ा और कष्ट के निवारण, सही विधि की प्राप्ति और मुक्ति की अनुभूति के एकमात्र स्वर्ण मार्ग हैं - संक्षेप में, ये ध्यान के आधार हैं। वे चार कौन से हैं?"

इस शिक्षा में एक भिक्षु शरीर (काया) के तत्वों पर केंद्रित रहता है - उत्साही, स्पष्ट समझ और सचेत रहते हुए - हर चीज में और हर जगह आकर्षण और द्वेष का त्याग करता है।

इसमें एक भिक्षु वेदना (भावनाओं/संवेदनाओं) के तत्वों पर ध्यान केंद्रित करता है...

चित्त पर केंद्रित...

मन के विषयों/गुणों (धम्म) पर केंद्रित - उत्साही, स्पष्ट समझ और सचेत - हर चीज में और हर जगह आकर्षण और द्वेष का त्याग करना।

सूत्र की व्याख्या

ए. शरीर (काया)

काया-अनुपस्सना (शरीर पर ध्यान)

"और एक भिक्षु शरीर में मौजूद तत्व पर कैसे केंद्रित रहता है?"

अनापना ध्यान

[1] "यहाँ एक भिक्षु - जंगल में, किसी पेड़ की छाया में, या किसी एकांतवास भवन में जाकर - अपने पैरों को आड़ा मोड़कर बैठ जाता है, अपने शरीर को सीधा रखता है और ध्यान को सबसे आगे रखता है [शाब्दिक रूप से: नाक की नोक पर साँस लेता है]। हमेशा सचेत रहते हुए, वह साँस लेता है; सचेत रहते हुए वह साँस छोड़ता है।

जब वह लंबी सांस लेता है, तो वह 'मैं लंबी सांस ले रहा हूँ' के बारे में सोचता है; या जब वह लंबी सांस छोड़ता है, तो वह 'मैं लंबी सांस छोड़ रहा हूँ' के बारे में सोचता है।

जब वह छोटी-छोटी सांसें लेता है, तो वह 'मैं छोटी-छोटी सांसें ले रहा हूँ' के बारे में सोचता है; या जब वह छोटी-छोटी सांसें छोड़ता है, तो वह 'मैं छोटी-छोटी सांसें छोड़ रहा हूँ' के बारे में सोचता है।

वह स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करता है: 'मैं सांस अंदर ले रहा हूँ और पूरी सांस पर ध्यानपूर्वक विचार कर रहा हूँ।' या वह स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करता है: 'मैं सांस बाहर छोड़ रहा हूँ और पूरी सांस पर ध्यानपूर्वक विचार कर रहा हूँ।'

वह स्वयं को 'मैं धीरे-धीरे सांस ले रहा हूँ' का अभ्यास कराता है। या वह स्वयं को 'मैं धीरे-धीरे सांस ले रहा हूँ' का अभ्यास कराता है।

"जैसे एक कुशल खराद कारीगर या उसका शागिर्द, जब कोई लंबा मोड़ बनाता है, तो उसे इस बात का एहसास होता है कि वह लंबा मोड़ बना रहा है, या जब कोई छोटा मोड़ बनाता है, तो उसे इस बात का एहसास होता है कि वह छोटा मोड़ बना रहा है; उसी प्रकार एक भिक्षु, जब लंबी साँस लेता है, तो वह 'मैं लंबी साँस ले रहा हूँ' का चिंतन करता है; या जब वह लंबी साँस छोड़ता है, तो वह 'मैं लंबी साँस छोड़ रहा हूँ' का चिंतन करता है। जब वह छोटी साँस लेता है, तो वह 'मैं छोटी साँस ले रहा हूँ' का चिंतन करता है; या जब वह छोटी साँस छोड़ता है, तो वह 'मैं छोटी साँस छोड़ रहा हूँ' का चिंतन करता है। वह स्वयं को 'मैं साँस ले रहा हूँ और पूरी साँस पर संवेदनशीलता से चिंतन कर रहा हूँ' का अभ्यास कराता है। या वह स्वयं को 'मैं साँस छोड़ रहा हूँ और पूरी साँस पर संवेदनशीलता से चिंतन कर रहा हूँ' का

अभ्यास कराता है। वह स्वयं को 'धीरे-धीरे साँस ले रहा हूँ' का अभ्यास कराता है। या वह स्वयं को 'धीरे-धीरे साँस ले रहा हूँ' का अभ्यास कराता है।"

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वह अपने शरीर के तत्वों (श्वास) पर, या दूसरे के शरीर के तत्वों पर, या अपने और दूसरे दोनों के शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है। या वह शरीर के उत्पन्न होने के कारणों पर, शरीर के नष्ट होने के कारणों पर, या शरीर के उत्पन्न होने और नष्ट होने के कारणों पर एकाग्र रहता है। दूसरा, उसका यह ध्यान कि 'केवल एक शरीर है' केवल ज्ञान और स्मरण की सीमा तक ही बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है। और वह किसी भी चीज से आसक्त नहीं होता और हर जगह मौजूद रहता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है।

[2] "इसके अलावा, चलते समय भिक्षु स्पष्ट रूप से 'मैं चल रहा हूँ' समझता है। खड़े होने पर वह स्पष्ट रूप से 'मैं खड़ा हूँ' समझता है। बैठने पर वह स्पष्ट रूप से 'मैं बैठा हूँ' समझता है। लेटने पर वह स्पष्ट रूप से 'मैं लेटा हूँ' समझता है। या उसका शरीर जिस भी स्थिति में हो, वह उसे उसी प्रकार स्पष्ट रूप से समझता है।"

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वह अपने शरीर के तत्वों पर, या दूसरे के शरीर के तत्वों पर, या अपने और दूसरे दोनों के शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है। या वह शरीर की उत्पत्ति के कारणों पर, शरीर के विनाश के कारणों पर, या शरीर की उत्पत्ति और विनाश के कारणों पर एकाग्र रहता है। दूसरा, उसका यह ध्यान कि 'केवल एक शरीर है' केवल ज्ञान और स्मरण की सीमा तक ही बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है। और वह किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता और हर जगह मौजूद रहता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है।

संपजना (पूर्ण ज्ञान)

[3] "इसके अलावा, आगे बढ़ते और लौटते समय, वह स्वयं को स्पष्ट रूप से समझ में लाता है; आगे देखते और पीछे देखते समय... अपने अंगों को मोड़ते और फैलाते समय... अपना बाहरी लबादा, अपना ऊपरी वस्त्र और अपना कटोरा ले जाते समय... खाते, पीते, चबाते और स्वाद लेते समय... पेशाब करते और शौच करते समय... चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बात करते और चुप रहते समय, वह स्वयं को स्पष्ट रूप से समझ में लाता है।"

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वह अपने शरीर के तत्वों पर, या दूसरे के शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है... किसी भी चीज़ से आसक्त नहीं रहता और हर जगह मौजूद रहता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में मौजूद तत्व पर एकाग्र रहता है।

मानसिका (शरीर पर ध्यान देना)

[4] "इसके अलावा, एक भिक्षु इस शरीर पर ध्यान लगाता है, पैरों के तलवों से ऊपर तक, सिर के मुकुट से नीचे तक, त्वचा से घिरा हुआ और विभिन्न प्रकार की अशुद्ध चीजों से भरा हुआ: 'इस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, फुफ्फुस, तिल्ली, फेफड़े, बड़ी आंत, छोटी आंत, गला, मल, पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, त्वचा का तेल, लार, बलगम, जोड़ों में तरल पदार्थ, मूत्र हैं।'

"जैसे मान लीजिए कि दोनों सिरों पर खुले हुए एक बोरे में कई प्रकार के अनाज भरे हों—गेहूं, चावल, मूंग, राजमा, तिल, छिलका उतारा हुआ चावल—और एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे बाहर निकालते हुए सोचे, 'यह गेहूं है। यह चावल है। ये मूंग हैं। ये राजमा हैं। ये तिल हैं। यह छिलका उतारा हुआ चावल है,' ठीक उसी प्रकार, भिक्षु मूत्र पर ध्यान लगाते हैं।"

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वह अपने शरीर के तत्वों पर, या दूसरे के शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है... किसी भी चीज़ से आसक्त नहीं रहता और हर जगह मौजूद रहता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में मौजूद तत्व पर एकाग्र रहता है।

[5] "इसके अलावा...जैसे एक कुशल कसाई या उसका प्रशिक्षु, गाय को मारने के बाद, चौराहे पर बैठकर उसे टुकड़ों में काटता है, उसी प्रकार भिक्षु इस शरीर पर - चाहे वह किसी भी स्थिति में हो, चाहे वह किसी भी तरह से व्यवस्थित हो - गुणों के संदर्भ में विचार करता है: 'इस शरीर में ठोस गुण, आकर्षण गुण, तापमान गुण और तनाव गुण मौजूद हैं।'

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वह अपने शरीर के तत्वों पर, या दूसरे के शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है... किसी भी चीज़ से आसक्त नहीं रहता और हर जगह मौजूद रहता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में मौजूद तत्व पर एकाग्र रहता है।

[6] "इसके अलावा, मानो वह किसी श्मशान में फेंके गए शव को देखे - एक दिन, दो दिन, तीन दिन पहले मृत - फूला हुआ, पीला पड़ा हुआ और सड़ता हुआ, वह इसे इसी शरीर पर लागू करता है, 'यह शरीर भी: यही इसकी प्रकृति है, यही इसका भविष्य है, यही इसका अपरिहार्य भाग्य है'..."

या फिर, मानो वह किसी श्मशान भूमि में फेंके गए शव को देखे, जिसे कौवे, गिद्ध, बाज, कुत्ते, लकड़बग्घे और अन्य कई जीव नोंच रहे हों... मांस और खून से सना हुआ कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ... खून से सना हुआ मांसहीन कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ... बिना मांस या खून का कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ... हड्डियाँ अपनी नसों से अलग होकर चारों दिशाओं में बिखरी हुई हैं - यहाँ हाथ की हड्डी, वहाँ पैर की हड्डी, यहाँ पिंडली की हड्डी, वहाँ जांघ की हड्डी, यहाँ कूल्हे की हड्डी, वहाँ रीढ़ की हड्डी, यहाँ पसली, वहाँ छाती की हड्डी, यहाँ कंधे की हड्डी, वहाँ गर्दन की हड्डी, यहाँ जबड़े की हड्डी, वहाँ दाँत, यहाँ खोपड़ी... हड्डियाँ सफेद हो गई हैं, कुछ-कुछ सीपियों के रंग जैसी... ढेर लगी हुई, एक साल से भी अधिक पुरानी... चूर्ण में परिवर्तित: वह इसे इसी शरीर पर लगाता है, 'यह शरीर भी: यही इसका स्वभाव है, यही इसका भविष्य है, यही इसका अपरिहार्य भाग्य है।'

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, वह अपने शरीर के तत्वों (श्वास) पर, या दूसरे के शरीर के तत्वों पर, या अपने और दूसरे दोनों के शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है। या वह शरीर के उत्पन्न होने के कारणों पर, शरीर के नष्ट होने के कारणों पर, या शरीर के उत्पन्न होने और नष्ट होने के कारणों पर एकाग्र रहता है। दूसरा, उसका यह ध्यान कि 'केवल एक शरीर है' केवल ज्ञान और स्मरण की सीमा तक ही बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है। और वह किसी भी चीज से आसक्त नहीं होता और हर जगह मौजूद रहता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर के तत्वों पर एकाग्र रहता है।

ख. भावनाएँ/संवेदनाएँ (वेदना)

चित्त-अनुपस्सना (मन/जागरूकता पर ध्यान)

"एक भिक्षु स्वयं भावनाओं पर कैसे केंद्रित रहता है? एक उदाहरण है कि जब एक भिक्षु को कोई पीड़ादायक भावना महसूस होती है, तो वह यह पहचानता है कि उसे पीड़ादायक भावना महसूस हो रही है। जब उसे कोई सुखद भावना महसूस होती है, तो वह यह पहचानता है कि उसे सुखद भावना महसूस हो रही है। जब उसे न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना महसूस होती है, तो वह यह पहचानता है कि उसे न तो पीड़ादायक और न ही सुखद भावना महसूस हो रही है।"

जब उसे शरीर में दर्द का अनुभव होता है, तो वह समझ जाता है कि उसे शरीर में दर्द का अनुभव हो रहा है। जब उसे शरीर से इतर दर्द का अनुभव होता है, तो वह समझ जाता है कि उसे शरीर से इतर दर्द का अनुभव हो रहा है। जब उसे शरीर से इतर सुख का अनुभव होता है, तो वह समझ जाता है कि उसे शरीर से इतर सुख का अनुभव हो रहा है। जब उसे शरीर से इतर सुख का अनुभव होता है, तो वह समझ जाता है कि उसे शरीर से इतर सुख का अनुभव हो रहा है। जब उसे शरीर से न तो दर्द का और न ही सुख का अनुभव होता है, तो वह समझ जाता है कि उसे शरीर से इतर दुख का और न ही सुख का अनुभव हो रहा है। जब उसे शरीर से इतर दुख का और न ही सुख का अनुभव होता है, तो वह समझ जाता है कि उसे शरीर से इतर दुख का और न ही सुख का अनुभव हो रहा है।

इस प्रकार वह आंतरिक रूप से भावनाओं पर, या बाह्य रूप से, या दोनों ही रूपों में एकाग्र रहता है। या वह भावनाओं की उत्पत्ति, उनके नष्ट होने, या उनके उत्पन्न होने और नष्ट होने की प्रक्रिया पर एकाग्र रहता है। या उसका यह सजग रहना कि 'भावनाएँ हैं' ज्ञान और स्मरण की सीमा तक बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है, संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं रहता। इस प्रकार एक भिक्षु भावनाओं पर एकाग्र रहता है।

सी. मन (चित्त)

चित्त-अनुपस्सना (मन/जागरूकता पर ध्यान)

"एक भिक्षु मन पर ही कैसे एकाग्र रहता है? एक स्थिति यह है कि जब मन में वासना होती है, तो भिक्षु यह पहचानता है कि मन में वासना है। जब मन में वासना नहीं होती, तो वह यह पहचानता है कि मन में वासना नहीं है। जब मन में घृणा होती है, तो वह यह पहचानता है कि मन में घृणा है। जब मन में घृणा नहीं होती, तो वह यह पहचानता है कि मन में घृणा नहीं है। जब मन में भ्रम होता है, तो वह यह पहचानता है कि मन में भ्रम है। जब मन भ्रम रहित होता है, तो वह यह पहचानता है कि मन भ्रम रहित है।"

जब मन सीमित होता है, तो वह जान लेता है कि मन सीमित है। जब मन बिखरा हुआ होता है, तो वह जान लेता है कि मन बिखरा हुआ है। जब मन विस्तृत होता है, तो वह जान लेता है कि मन विस्तृत है। जब मन विस्तृत नहीं होता, तो वह जान लेता है कि मन विस्तृत नहीं है। जब मन श्रेष्ठ होता है, तो वह जान लेता है कि मन श्रेष्ठ है। जब मन असीम होता है, तो वह जान लेता है कि मन असीम है। जब मन एकाग्र होता है, तो वह जान लेता है कि मन एकाग्र है। जब मन एकाग्र नहीं होता, तो वह जान लेता है कि मन एकाग्र नहीं है। जब मन मुक्त होता है, तो वह जान लेता है कि मन मुक्त है। जब मन मुक्त नहीं होता, तो वह जान लेता है कि मन मुक्त नहीं है।

इस प्रकार वह आंतरिक रूप से मन पर, या बाह्य रूप से मन पर, या दोनों ही रूपों में एकाग्र रहता है। या वह मन की उत्पत्ति, मन के क्षय, या मन की उत्पत्ति और क्षय की घटनाओं पर एकाग्र रहता है। या उसका यह सजग रहना कि 'मन है' ज्ञान और स्मरण के स्तर तक ही सीमित रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है, संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं रहता। इस प्रकार एक भिक्षु मन पर एकाग्र रहता है।

डी. मन की वस्तुएँ/गुण (धम्म)

धम्म-अनुपासना (धम्म पर ध्यान)

और एक भिक्षु स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों पर कैसे केंद्रित रहता है?

[1] "एक ऐसा मामला है जिसमें एक भिक्षु पाँच बाधाओं के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर ही एकाग्र रहता है। और एक भिक्षु पाँच बाधाओं के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर कैसे एकाग्र रहता है? एक मामला यह है कि जब भीतर कामुक इच्छा मौजूद होती है, तो एक भिक्षु यह समझता है कि 'मेरे भीतर कामुक इच्छा मौजूद है।' या, जब भीतर कामुक इच्छा मौजूद नहीं होती है, तो वह यह समझता है कि 'मेरे भीतर कामुक इच्छा मौजूद नहीं है।' वह यह समझता है कि अजन्मी कामुक इच्छा कैसे उत्पन्न होती है। और वह यह समझता है कि एक बार उत्पन्न होने के बाद कामुक इच्छा का त्याग कैसे होता है। और वह यह समझता है कि त्यागी गई कामुक इच्छा भविष्य में फिर कभी प्रकट नहीं होती है। (यही सूत्र शेष बाधाओं के लिए भी दोहराया जाता है: द्वेष, आलस्य और सुस्ती, बेचैनी और चिंता, और अनिश्चितता।)"

इस प्रकार वह आंतरिक रूप से मानसिक गुणों पर, या बाह्य रूप से, या दोनों ही रूपों में एकाग्र रहता है। या वह मानसिक गुणों के उद्भव, उनके क्षय, या उनके उद्भव एवं क्षय पर एकाग्र रहता है। या उसका यह सजग रहना कि 'मानसिक गुण हैं' ज्ञान और स्मरण की

सीमा तक बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है, संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं रहता। इस प्रकार एक भिक्षु पाँच बाधाओं के संदर्भ में मानसिक गुणों पर एकाग्र रहता है।

उपादान-खंड (समुच्चय के कारण रुकावट/चिपके रहना)

[2] "इसके अतिरिक्त, भिक्षु पाँच आसक्ति-समूहों के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर ही एकाग्र रहता है। और वह पाँच आसक्ति-समूहों के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर कैसे एकाग्र रहता है? एक स्थिति यह है जहाँ एक भिक्षु [समझता है]: 'ऐसा रूप है, ऐसी उत्पत्ति है, ऐसा अपव्यय है। ऐसी भावना है... ऐसी बोध है... ऐसी रचनाएँ हैं... ऐसी चेतना है, ऐसी उत्पत्ति है, ऐसा अपव्यय है।'"

"इस प्रकार वह आंतरिक रूप से स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है, या बाह्य रूप से केंद्रित रहता है... संसार की किसी भी चीज से प्रेरित हुए बिना। इस प्रकार एक भिक्षु पांच आसक्ति-समूहों के संदर्भ में स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है।"

आयतन (इंद्रियां)

[3] "इसके अतिरिक्त, भिक्षु छह आंतरिक और बाह्य इंद्रियों/अंगों के संदर्भ में स्वयं में मानसिक गुणों पर एकाग्र रहता है। और वह छह आंतरिक और बाह्य इंद्रियों के संदर्भ में स्वयं में मानसिक गुणों पर कैसे एकाग्र रहता है? वह आँख को देखता है, वह रूपों को देखता है, वह उन दोनों पर निर्भर बंधन को देखता है। वह यह देखता है कि कैसे एक अजन्मे बंधन का उदय होता है। और वह यह देखता है कि एक बार उत्पन्न होने के बाद बंधन का त्याग कैसे होता है। और वह यह देखता है कि त्यागे गए बंधन का भविष्य में कोई पुन: प्रकट होना नहीं होता है। (यही सूत्र शेष इंद्रियों: कान, नाक, जीभ, शरीर और बुद्धि के लिए दोहराया जाता है।)

"इस प्रकार वह आंतरिक रूप से स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है, या बाह्य रूप से केंद्रित रहता है... संसार की किसी भी चीज से प्रेरित हुए बिना। इस प्रकार एक भिक्षु छह प्रकार की आंतरिक और बाह्य इंद्रिय माध्यमों के संदर्भ में स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है।"

बोझांग (ज्ञानोदय कारक)

[4] "इसके अतिरिक्त, भिक्षु जागृति/ज्ञानोदय के सात कारकों के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है। और वह जागृति के सात कारकों के संदर्भ में स्वयं मानसिक गुणों पर कैसे केंद्रित रहता है? एक स्थिति यह है कि, जागृति के एक कारक के रूप में सजगता उपस्थित होने पर, वह यह अनुभव करता है कि 'सजगता के एक कारक के रूप में सजगता मुझमें उपस्थित है।' या, जागृति के एक कारक के रूप में सजगता उपस्थित न होने पर, वह यह अनुभव करता है कि 'सजगता के एक कारक के रूप में सजगता मुझमें उपस्थित नहीं है।' वह यह अनुभव करता है कि जागृति के एक कारक के रूप में अविकसित सजगता कैसे उत्पन्न होती है। और वह यह अनुभव करता है कि जागृति के एक कारक के रूप में सजगता के विकास की पराकाष्ठा कैसे होती है। (यही सूत्र जागृति के शेष कारकों के लिए दोहराया जाता है: गुणों का विश्लेषण, दृढ़ता, परमानंद, शांति, एकाग्रता और समभाव।)

"इस प्रकार वह आंतरिक रूप से मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है, या बाह्य रूप से... संसार की किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता (उससे आसक्ति नहीं रखता)। इस प्रकार एक भिक्षु जागृति के सात कारकों के संदर्भ में मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है।"

सक्का (चार आर्य सत्य)

[5] "इसके अतिरिक्त, भिक्षु चार आर्य सत्यों के संदर्भ में स्वयं में ही मानसिक गुणों पर केंद्रित रहता है। और वह चार आर्य सत्यों के संदर्भ में स्वयं में ही मानसिक गुणों पर कैसे केंद्रित रहता है? एक स्थिति यह है कि वह, जैसा कि हुआ है, यह समझता है कि 'यह दुख है।' वह, जैसा कि हुआ है, यह समझता है कि 'यह दुख का उद्‌गम है।' वह, जैसा कि हुआ है, यह समझता है कि 'यह दुख का निवारण है।' वह, जैसा कि हुआ है, यह समझता है कि 'यह दुख के निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग है।'"

इस प्रकार वह आंतरिक रूप से मानसिक गुणों पर, या बाह्य रूप से, या दोनों ही रूपों में एकाग्र रहता है। या वह मानसिक गुणों की उत्पत्ति, उनके नष्ट होने, या उनके उत्पन्न होने और नष्ट होने की घटनाओं पर एकाग्र रहता है। या उसका यह सजग रहना कि 'मानसिक गुण हैं' ज्ञान और स्मरण की सीमा तक बना रहता है। और वह स्वतंत्र रहता है, संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं रहता। इस प्रकार एक भिक्षु चार आर्य सत्यों के संदर्भ में मानसिक गुणों पर एकाग्र रहता है...

निष्कर्ष

"अब, यदि कोई व्यक्ति सात वर्षों तक इस प्रकार से इन चार संदर्भों को विकसित करे, तो उससे दो में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: या तो यहीं और अभी ज्ञान, या - यदि आसक्ति/पोषण का कोई अवशेष बचा हो - तो अनावर्तन।"

"सात साल तो छोड़ ही दीजिए। यदि कोई व्यक्ति इन चार संदर्भों को इस प्रकार छह साल... पांच... चार... तीन... दो साल... एक साल... सात महीने... छह महीने... पांच... चार... तीन... दो महीने... एक महीना... आधा महीना तक विकसित करता रहे, तो उसे दो में से एक फल की उम्मीद की जा सकती है: या तो यहीं और अभी ज्ञान प्राप्त हो जाएगा, या - यदि आसक्ति/पोषण का कोई अंश शेष रहे - तो अनात्मवाद प्राप्त होगा।"

"आधे महीने की तो बात ही छोड़िए। यदि कोई व्यक्ति सात दिनों तक इस प्रकार इन चार संदर्भों को विकसित करे, तो उसे दो में से एक फल प्राप्त हो सकता है: या तो यहीं और अभी ज्ञान, या - यदि आसक्ति/पोषण का कोई अंश शेष रहे - तो अनासक्ति।"

"'यह प्राणियों के शुद्धिकरण, दु:ख और विलाप पर विजय, पीड़ा और कष्ट के निवारण, सही विधि की प्राप्ति और मुक्ति की अनुभूति का सीधा मार्ग है - दूसरे शब्दों में, संदर्भ के चार ढाँचे।' ऐसा कहा गया था, और इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.1 कुलसिहनाडा सुत्त(11)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन, अनाथपिंडिका उद्यान में रह रहे थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं।" - "आदरणीय महोदय," उन्होंने उत्तर दिया। भगवान बुद्ध ने आगे कहा:

2. "भिक्षुओं, केवल यहीं एक संन्यासी है, केवल यहीं दूसरा संन्यासी है, केवल यहीं तीसरा संन्यासी है, केवल यहीं चौथा संन्यासी है। दूसरों के सिद्धांतों में संन्यासी नहीं हैं: यही वह सही तरीका है जिससे आप अपने सिंह के समान दहाड़ मारें।"

3. "हे भिक्षुओं, यह संभव है कि अन्य संप्रदायों के भिक्षु पूछें: 'परन्तु किस तर्क के बल पर या किस प्रमाण के आधार पर पूज्य भिक्षु ऐसा कहते हैं?' अन्य संप्रदायों के भिक्षुओं को जो ऐसा पूछते हैं, उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया जा सकता है: 'मित्रों, हमें चार बातें ज्ञात और ज्ञाता, सिद्ध और पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान ने बताई हैं; इन्हें अपने भीतर देखकर हम ऐसा कहते हैं: 'केवल यहीं एक संन्यासी है, केवल यहीं दूसरा संन्यासी है, केवल यहीं तीसरा संन्यासी है, केवल यहीं चौथा संन्यासी है।'" दूसरों के उपदेश संन्यासियों से रहित हैं। वे चार बातें क्या हैं? हमें गुरु पर विश्वास है, हमें धम्म पर विश्वास है, हमने नियमों का पालन किया है, और धम्म में हमारे साथी हमें प्रिय और प्रिय हैं, चाहे वे गृहस्थ हों या संन्यासी। ये चार बातें हमें उस ज्ञानी और प्रत्यक्षदर्शी भगवान ने बताई हैं, जो सिद्ध और पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, और जिन्हें अपने भीतर देखकर हम ऐसा कहते हैं।

4. "हे भिक्षुओं, यह संभव है कि अन्य संप्रदायों के भिक्षु ऐसा कहें: 'मित्रों, हमें भी गुरु पर, अर्थात् हमारे गुरु पर, विश्वास है; हमें भी धम्म पर, अर्थात् हमारे धम्म पर, विश्वास है; हमने भी उपदेशों का पालन किया है; हमारे धम्म के साथी भी हमें प्रिय और प्रिय हैं, चाहे वे गृहस्थ हों या संन्यासी। हे मित्रों, इसमें क्या भेद है, क्या भिन्नता है, आप और हम में क्या अंतर है?'"

5. "अन्य संप्रदायों के जो यात्री इस प्रकार पूछते हैं, उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया जा सकता है: 'तो फिर, मित्रों, लक्ष्य एक है या अनेक?' सही उत्तर देते हुए, अन्य संप्रदायों के यात्री इस प्रकार उत्तर देंगे: 'मित्रों, लक्ष्य एक है, अनेक नहीं।' - 'परन्तु, मित्रों, क्या वह लक्ष्य कामवासना से ग्रस्त व्यक्ति के लिए है या कामवासना से मुक्त व्यक्ति के लिए?' सही उत्तर देते हुए, अन्य संप्रदायों के यात्री इस प्रकार उत्तर देंगे: 'मित्रों, वह लक्ष्य कामवासना से मुक्त व्यक्ति के लिए है, कामवासना से ग्रस्त व्यक्ति के लिए नहीं।' - 'परन्तु, मित्रों, क्या वह लक्ष्य घृणा से ग्रस्त व्यक्ति के लिए है या घृणा से मुक्त व्यक्ति के लिए?' सही उत्तर देते हुए, वे उत्तर देंगे: 'मित्रों, वह लक्ष्य भ्रम से मुक्त व्यक्ति के लिए है, भ्रम से ग्रस्त व्यक्ति के लिए नहीं।' — 'लेकिन, मित्रों, क्या वह लक्ष्य व्यथा से ग्रस्त व्यक्ति के लिए है या व्यथा से मुक्त व्यक्ति के लिए?' सही उत्तर देते हुए वे कहेंगे: 'मित्रों, वह लक्ष्य व्यथा से मुक्त व्यक्ति के लिए है, व्यथा से ग्रस्त व्यक्ति के लिए नहीं।' — 'लेकिन, मित्रों, क्या वह लक्ष्य आसक्ति से ग्रस्त व्यक्ति के लिए है या आसक्ति से मुक्त व्यक्ति के लिए?' सही उत्तर देते हुए वे कहेंगे: 'मित्रों, वह लक्ष्य आसक्ति से मुक्त व्यक्ति के लिए है, आसक्ति से ग्रस्त व्यक्ति के लिए नहीं।' — 'लेकिन, मित्रों, क्या वह लक्ष्य दूरदृष्टि वाले व्यक्ति के लिए है या दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए?' सही उत्तर देते हुए वे कहेंगे: 'मित्रों, वह लक्ष्य दूरदृष्टि वाले व्यक्ति के लिए है, दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए नहीं।' — 'लेकिन, मित्रों, क्या वह लक्ष्य पक्ष लेने और विरोध करने वाले व्यक्ति के लिए है या पक्ष न लेने और विरोध न करने वाले व्यक्ति के लिए?' सही उत्तर देते हुए वे कहेंगे: 'मित्रों, वह लक्ष्य पक्ष लेने और विरोध न करने वाले व्यक्ति के लिए है, पक्ष लेने और विरोध करने वाले व्यक्ति के लिए नहीं।' — 'लेकिन मित्रों, क्या यह लक्ष्य उस व्यक्ति के लिए है जो जनसंख्या वृद्धि में आनंद लेता है और उसका लुत्फ़ उठाता है, या उस व्यक्ति के लिए है जो जनसंख्या वृद्धि में आनंद नहीं लेता और उसका लुत्फ़ नहीं उठाता?' सही उत्तर देते हुए वे कहेंगे: 'मित्रों, यह लक्ष्य उस व्यक्ति के लिए है जो जनसंख्या वृद्धि में आनंद नहीं लेता और उसका लुत्फ़ नहीं उठाता, न कि उस व्यक्ति के लिए जो जनसंख्या वृद्धि में आनंद लेता है और उसका लुत्फ़ उठाता है।'

6. "भिक्षुओं, दो मत हैं: अस्तित्व का मत और गैर-अस्तित्व का मत। जो भी संन्यासी या ब्राह्मण अस्तित्व के मत पर विश्वास करते हैं, वे गैर-अस्तित्व के मत का विरोध करते हैं। जो भी संन्यासी या ब्राह्मण गैर-अस्तित्व के मत पर विश्वास करते हैं, वे गैर-अस्तित्व के मत का विरोध करते हैं।"

7. "जो भी संन्यासी या ब्राह्मण इन दो दृष्टिकोणों के संदर्भ में उत्पत्ति, अपव्यय, संतुष्टि, संकट और मुक्ति को यथार्थ रूप में नहीं समझते, वे कामवासना, घृणा, भ्रम, लालसा और आसक्ति से ग्रस्त होते हैं, दृष्टिहीन होते हैं, पक्षपात और विरोध में लगे रहते हैं, और वे संतानोत्पत्ति में आनंदित होते हैं। वे जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से, दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा से मुक्त नहीं होते; वे पीड़ा से मुक्त नहीं होते, मैं कहता हूँ।"

8. "जो भी संन्यासी या ब्राह्मण इन दोनों दृष्टियों के उद्‌भव, अपव्यय, तृप्ति, संकट और मुक्ति को यथावत समझते हैं, वे कामवासना, घृणा, भ्रम, लालसा और आसक्ति से रहित होते हैं, दृष्टि से शांत होते हैं, पक्षपात और विरोध नहीं करते, और संतानोत्पत्ति में आनंद नहीं लेते। वे जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु से मुक्त होते हैं, दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा से मुक्त होते हैं; मैं कहता हूँ, वे पीड़ा से मुक्त होते हैं।"

9. "भिक्षुओं, आसक्ति के ये चार प्रकार हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? इंद्रिय सुखों से आसक्ति, विचारों से आसक्ति, नियमों और अनुष्ठानों से आसक्ति, और आत्म-प्रथा से आसक्ति।"

10. यद्यपि कुछ संन्यासी और ब्राह्मण सभी प्रकार के आसक्ति के पूर्ण ज्ञान का प्रतिपादन करने का दावा करते हैं, वे सभी प्रकार के आसक्ति का पूर्ण वर्णन नहीं करते।7 वे इंद्रिय सुखों के प्रति आसक्ति का पूर्ण ज्ञान तो बताते हैं, लेकिन विचारों के प्रति आसक्ति, नियमों और रीति-रिवाजों के प्रति आसक्ति और आत्म-सिद्धांत के प्रति आसक्ति का पूर्ण ज्ञान नहीं बताते। ऐसा क्यों है? वे अच्छे संन्यासी और ब्राह्मण आसक्ति के इन तीनों रूपों को उनके वास्तविक स्वरूप में नहीं समझते। इसलिए, यद्यपि वे सभी प्रकार के आसक्ति के पूर्ण ज्ञान का प्रतिपादन करने का दावा करते हैं, वे केवल इंद्रिय सुखों के प्रति आसक्ति का पूर्ण ज्ञान बताते हैं, जबकि विचारों के प्रति आसक्ति, नियमों और रीति-रिवाजों के प्रति आसक्ति और आत्म-सिद्धांत के प्रति आसक्ति का पूर्ण ज्ञान नहीं बताते।

11. "यद्यपि कुछ संन्यासी और ब्राह्मण सभी प्रकार के आसक्ति के पूर्ण ज्ञान का प्रतिपादन करने का दावा करते हैं... वे इंद्रिय सुखों और मतों के प्रति आसक्ति का पूर्ण ज्ञान तो बताते हैं, लेकिन नियमों और रीति-रिवाजों के प्रति आसक्ति और आत्म-सिद्धांत के प्रति आसक्ति का पूर्ण ज्ञान नहीं बताते। ऐसा क्यों है? वे दो उदाहरणों को नहीं समझते... इसलिए वे केवल इंद्रिय सुखों और मतों के प्रति आसक्ति का पूर्ण ज्ञान बताते हैं, नियमों और रीति-रिवाजों के प्रति आसक्ति और आत्म-सिद्धांत के प्रति आसक्ति का पूर्ण ज्ञान नहीं बताते।"

12. यद्यपि कुछ संन्यासी और ब्राह्मण सभी प्रकार के आसक्ति के पूर्ण ज्ञान का प्रतिपादन करने का दावा करते हैं... वे इंद्रिय सुखों से आसक्ति, मतों से आसक्ति और नियमों एवं अनुष्ठानों से आसक्ति का पूर्ण ज्ञान तो बताते हैं, लेकिन आत्म-सिद्धांत से आसक्ति का पूर्ण ज्ञान नहीं बताते। वे एक भी उदाहरण नहीं समझते... इसलिए वे केवल इंद्रिय सुखों से आसक्ति, मतों से आसक्ति और नियमों एवं अनुष्ठानों से आसक्ति का पूर्ण ज्ञान बताते हैं, जबकि आत्म-सिद्धांत से आसक्ति का पूर्ण ज्ञान नहीं बताते।

13. "भिक्षुओं, ऐसे धम्म और अनुशासन में यह स्पष्ट है कि गुरु पर विश्वास सही दिशा में नहीं है, धम्म पर विश्वास सही दिशा में नहीं है, उपदेशों का पालन सही दिशा में नहीं है और धम्म के साथियों के बीच स्नेह सही दिशा में नहीं है। ऐसा क्यों है? क्योंकि ऐसा तब होता है जब धम्म और अनुशासन का गलत प्रचार और गलत व्याख्या की जाती है, जो मुक्तिदायक नहीं है, शांति के लिए प्रतिकूल है, और जिसकी व्याख्या पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा की जाती है।"

14. "भिक्षुओं, जब कोई तथागत, सिद्ध और पूर्णतः प्रबुद्ध, सभी प्रकार के आसक्ति के पूर्ण बोध का प्रतिपादन करने का दावा करता है, तो वह सभी प्रकार के आसक्ति के पूर्ण बोध का पूर्ण वर्णन करता है: वह इंद्रिय सुखों से आसक्ति, विचारों से आसक्ति, नियमों और अनुष्ठानों से आसक्ति और आत्म-सिद्धांत से आसक्ति के पूर्ण बोध का वर्णन करता है।"

15. "भिक्षुओं, ऐसे धम्म और अनुशासन में यह स्पष्ट है कि गुरु पर विश्वास, धम्म पर विश्वास, उपदेशों का पालन और धम्म के साथियों के बीच स्नेह उचित रूप से निर्देशित होते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि ऐसा तब होता है जब धम्म और अनुशासन का भली-भांति प्रचार और व्याख्या की जाती है, जो मुक्तिदायक और शांति के लिए सहायक होता है, और जिसकी व्याख्या पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा की जाती है।"

16. अब इन चारों प्रकार के आसक्ति का स्रोत क्या है, इनका उद्‌गम क्या है, ये किससे उत्पन्न और पैदा होते हैं? इन चारों प्रकार के आसक्ति का स्रोत और उद्‌गम तृष्णा है। तृष्णा का स्रोत क्या है? तृष्णा का स्रोत भावना है... भावना का स्रोत क्या है? भावना का स्रोत स्पर्श है... स्पर्श का स्रोत क्या है? स्पर्श का स्रोत छह प्रकार का आधार है... छह प्रकार का आधार क्या है? छह प्रकार का आधार चेतना

है... चेतना का स्रोत क्या है? चेतना का स्रोत रचनाएँ हैं... रचनाओं का स्रोत और उद्गम क्या है? रचनाओं का स्रोत अज्ञान है, अज्ञान उनका उद्गम है; वे अज्ञान से उत्पन्न और पैदा होते हैं।

17. "भिक्षुओं, जब किसी भिक्षु में अज्ञान का त्याग हो जाता है और सच्चा ज्ञान उत्पन्न हो जाता है, तब अज्ञान के मिट जाने और सच्चे ज्ञान के उदय के साथ ही वह इंद्रिय सुखों से आसक्त नहीं रहता, मतों से आसक्त नहीं रहता, नियमों और रीति-रिवाजों से आसक्त नहीं रहता, और आत्म-प्रथा से भी आसक्त नहीं रहता। जब वह आसक्त नहीं रहता, तब वह विचलित नहीं होता। जब वह विचलित नहीं होता, तब वह स्वयं निर्वाण प्राप्त कर लेता है। वह समझता है: 'जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में आना नहीं है।'"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षु भगवान बुद्ध के वचनों से संतुष्ट और प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.2महासिहानाद सुत्त(12)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु

1सेटिंग
2तथागत की दस शक्तियाँ
3चार प्रकार की निर्भीकता
4आठ सभाएँ
5चार प्रकार की उत्पत्ति
6पांच गंतव्य और निर्वाण — संक्षेप में
7पांच गंतव्य और निर्वाण — विस्तार से
8बोधिसत्व की तपस्या

सेटिंग

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध वेसाली में शहर के पश्चिम में स्थित उपवन में रह रहे थे।

2. उस समय लिच्छवियों के पुत्र सुनक्खत्त ने हाल ही में इस धम्म और अनुशासन को त्याग दिया था। वे वैशाली सभा के समक्ष यह कथन कर रहे थे: “सन्यासी गौतम के पास कोई अलौकिक अवस्थाएँ नहीं होतीं, न ही उन्हें श्रेष्ठ जनों के समान ज्ञान और दृष्टि की कोई विशिष्टता प्राप्त होती है। सन्यासी गौतम केवल तर्क द्वारा गढ़े गए धम्म का उपदेश देते हैं, जो उनके स्वयं के चिंतन के मार्ग पर चलता है, और जब वे किसी को धम्म का उपदेश देते हैं, तो अभ्यास करने पर वह व्यक्ति दुखों के पूर्ण नाश की ओर अग्रसर होता है।”

3. फिर, जब सुबह हुई, तो पूज्य सारिपुत्त ने वस्त्र धारण किए और अपना भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर वैशाली में भिक्षा मांगने गए। तब उन्होंने लिच्छवियों के पुत्र सुनक्खत्त को वैशाली की सभा में यह कहते हुए सुना। वैशाली में भिक्षा मांगने के बाद जब वे भोजन करके लौटे, तो वे भगवान बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम करने के बाद एक तरफ बैठ गए और उन्हें सुनक्खत्त की बातें बताईं।

4. (भगवान बुद्ध ने कहा:) "सरिपुत्त, गुमराह सुनक्खत्त क्रोधित है, और उसके शब्द क्रोध में निकले हैं। तथागत को बदनाम करने की सोचकर वह वास्तव में उनकी प्रशंसा कर रहा है; क्योंकि तथागत के बारे में यह कहना उनकी प्रशंसा है: 'जब वह किसी को धम्म का उपदेश देता है, तो अभ्यास करने पर वह उसे दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है।'"

5. "सारिपुत्त, यह गुमराह सुनक्खत्ता धम्म के अनुसार मेरे बारे में कभी यह निष्कर्ष नहीं निकालेगा: 'वह भगवान सिद्ध पुरुष पूर्ण, पूरी तरह से प्रबुद्ध, सच्चे ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण, उदात्त, संसारों के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले व्यक्तियों के अतुलनीय नेता, देवताओं और मनुष्यों के शिक्षक, प्रबुद्ध, धन्य हैं।'"

6. और वह धम्म के अनुसार मेरे बारे में कभी यह निष्कर्ष नहीं निकालेगा: 'वह भगवान अनेक प्रकार की अलौकिक शक्तियों का आनंद लेते हैं: एक होकर वे अनेक हो जाते हैं; अनेक होकर वे एक हो जाते हैं; वे प्रकट होते हैं और लुप्त हो जाते हैं; वे बिना किसी बाधा के दीवार, बाड़े, पर्वत से होकर अंतरिक्ष की तरह गुजर जाते हैं; वे पृथ्वी में ऐसे गोता लगाते हैं जैसे वह जल हो; वे जल पर बिना डूबे ऐसे चलते हैं जैसे वह पृथ्वी हो; पालथी मारकर वे पक्षी की तरह अंतरिक्ष में यात्रा करते हैं; वे अपने हाथ से इतने शक्तिशाली और बलवान चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श करते हैं और सहलाते हैं; वे ब्रह्मलोक तक भी अपने शरीर पर पूर्ण भगवानत्व रखते हैं।'

7. और वह धम्म के अनुसार मेरे बारे में कभी यह निष्कर्ष नहीं निकालेगा: 'शुद्ध और मानवीय श्रवण शक्ति से परे दिव्य श्रवण शक्ति से, भगवान दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनते हैं, स्वर्गीय और मानवीय, दूर की और निकट की भी।'
8. और वह धर्म के अनुसार मेरे विषय में कभी यह निष्कर्ष नहीं निकालेगा: 'वह भगवान अपने मन से अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों के मनों को समाहित करते हैं। वे कामवासना से ग्रस्त मन को कामवासना से ग्रस्त और कामवासना से अप्रभावित मन को कामवासना से अप्रभावित समझते हैं; वे घृणा से ग्रस्त मन को घृणा से ग्रस्त और घृणा से अप्रभावित मन को घृणा से अप्रभावित समझते हैं; वे मोह से ग्रस्त मन को मोह से ग्रस्त और भ्रम से अप्रभावित मन को भ्रम से अप्रभावित समझते हैं; वे संकुचित मन को संकुचित और विचलित मन को विचलित समझते हैं; वे उच्च मन को उच्च और निम्न मन को निम्न समझते हैं; वे श्रेष्ठ मन को श्रेष्ठ और श्रेष्ठ न होने वाले मन को श्रेष्ठ समझते हैं; वे एकाग्र मन को एकाग्र और असंलग्न मन को असंलग्न समझते हैं; वे मुक्त मन को मुक्त और अमुक्त मन को अमुक्त समझते हैं।'

तथागत की दस शक्तियाँ

9. "तथागत सारिपुत्त के पास तथागत की ये दस शक्तियाँ हैं, जिनके द्वारा वे वृहद नेता का स्थान प्राप्त करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मा के चक्र को घुमाते हैं। वे दस शक्तियाँ कौन सी हैं?"
10. (1) "यहाँ तथागत यथार्थ को यथार्थ और असंभव को असंभव समझते हैं। और यही तथागत की वह शक्ति है जिसके बल पर वे समूह-प्रमुख का स्थान ग्रहण करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मा के चक्र को घुमाते हैं।"
11. (2) "तथागत कर्मों के परिणामों को, भूतकाल, भविष्यकाल और वर्तमान काल में, संभावनाओं और कारणों सहित, यथार्थ रूप में समझते हैं। यही तथागत की शक्ति है..."
12. (3) "तथागत सभी गंतव्यों तक ले जाने वाले मार्गों को यथावत समझते हैं। यह भी तथागत की शक्ति है..."
13. (4) "तथागत संसार को उसके अनेक और विविध तत्वों सहित, जैसा वह वास्तव में है, समझते हैं। यह भी तथागत की शक्ति है..."
14. (5) "तथागत यह समझते हैं कि प्राणियों की प्रवृत्तियाँ किस प्रकार भिन्न-भिन्न होती हैं। यह भी तथागत की शक्ति है..."
15. (6) "तथागत अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों की इंद्रियों की वास्तविक स्थिति को समझते हैं। यह भी तथागत की शक्ति है..."
16. (7) "तथागत ध्यान, मुक्ति, एकाग्रता और उपलब्धियों के संदर्भ में अशुद्धता, शुद्धि और उद्भव को यथार्थ रूप में समझते हैं। यह भी तथागत की शक्ति है..."
17. (8) "तथागत अपने अनेक पूर्व जन्मों का स्मरण करते हैं, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार जन्म, पाँच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म, चालीस जन्म, पचास जन्म, सौ जन्म, हजार जन्म, एक लाख जन्म, संसार के संकुचन के अनेक युग, संसार के विस्तार के अनेक युग, संसार के संकुचन और विस्तार के अनेक युग: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा पोषण था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी जीवन अवधि थी; और वहाँ से मैं कहीं और प्रकट हुआ; और वहाँ भी मेरा ऐसा ही नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था, मेरा ऐसा पोषण था, मुझे सुख-दुख का ऐसा अनुभव हुआ, मेरी ऐसी जीवन अवधि थी; और वहाँ से मैं यहाँ प्रकट हुआ।' इस प्रकार, वे अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके विभिन्न रूपों और विवरणों के साथ याद करते हैं। यही तथागत की शक्ति है...
18. (9) "फिर, शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से परे दिव्य दृष्टि से तथागत प्राणियों को जन्म लेते और पुनर्जन्म लेते हुए देखते हैं, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और वे समझते हैं कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे आगे बढ़ते हैं: 'ये योग्य प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से दुराचारी थे, श्रेष्ठों की निंदा करते थे, अपने विचारों में गलत थे, अपने कार्यों में गलत विचारों को क्रियान्वित करते थे, शरीर के विनाश के बाद, मृत्यु के बाद, अभाव की स्थिति में, बुरे गंतव्य में, विनाश में, यहाँ तक कि नरक में, पुनर्जन्म लेते हैं; परन्तु ये योग्य प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से सुचारु थे, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते थे, अपने विचारों में सही थे, अपने कार्यों में सही विचारों को क्रियान्वित करते थे, शरीर के विनाश के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्य में, यहाँ तक कि स्वर्गलोक में, पुनर्जन्म लेते हैं।' इस प्रकार, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, वे प्राणियों को जन्म लेते और पुनर्जन्म लेते हुए देखते हैं, चाहे वे हीन हों या श्रेष्ठ, सुंदर हों या कुरूप, भाग्यशाली हों या दुर्भाग्यशाली, और वे समझते हैं कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे जन्म लेते हैं। यह भी तथागत की शक्ति है...
19. (10) "फिर, प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं इसका अनुभव करके, तथागत यहीं और इसी क्षण मन की मुक्ति और ज्ञान द्वारा मुक्ति में प्रवेश करते हैं और उसमें स्थिर रहते हैं, जो दोषों के नाश से दोषरहित होती है। यह भी तथागत की वह शक्ति है जिसके बल पर वे झुंड के नेता का स्थान प्राप्त करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मा के चक्र को घुमाते हैं।"
20. "तथागत के पास तथागत की ये दस शक्तियाँ हैं, जिनके द्वारा वे झुंड के नेता का स्थान प्राप्त करते हैं, सभाओं में सिंह की गर्जना करते हैं और ब्रह्मा के चक्र को घुमाते हैं।"
21. "सारिपुत्त, जब मैं ऐसा जानता और देखता हूँ, तो यदि कोई मेरे विषय में कहे: 'सन्यासी गौतम में कोई अलौकिक अवस्थाएँ नहीं हैं, न ही ज्ञान और दृष्टि में कोई श्रेष्ठता है जो श्रेष्ठों के योग्य हो। तपस्वी गौतम केवल तर्क द्वारा गढ़े गए धर्म का उपदेश देते हैं, अपने स्वयं के विचार के अनुसार उसका अनुसरण करते हैं' - जब तक वह उस कथन और उस मन की अवस्था का त्याग नहीं करता और उस दृष्टिकोण को नहीं छोड़ता, तब तक (निश्चित रूप से जैसे कि उसे उठाकर वहाँ रख दिया गया हो) वह अंततः नरक में जाएगा।13 जिस

प्रकार सद्‌गुण, एकाग्रता और बुद्धि से युक्त भिक्षु यहाँ और अभी अंतिम ज्ञान का आनंद लेता है, वैसे ही इस मामले में भी होगा, मैं कहता हूँ, कि जब तक वह उस कथन और उस मन की अवस्था का त्याग नहीं करता और उस दृष्टिकोण को नहीं छोड़ता, तब तक (निश्चित रूप से जैसे कि उसे उठाकर वहाँ रख दिया गया हो) वह अंततः नरक में जाएगा।"

चार प्रकार की निर्भीकता

22. "तथागत सारिपुत्त में ये चार प्रकार के निर्भीकता गुण हैं, जिनके कारण वे वर-नेता का स्थान प्राप्त करते हैं, सभाओं में सिंह के समान गर्जना करते हैं और ब्रह्मा के चक्र को घुमाते हैं। वे चार गुण क्या हैं?"

23. "यहाँ मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता जिस पर कोई संन्यासी, ब्राह्मण, देवता, मार, ब्रह्मा या संसार का कोई भी व्यक्ति धम्म के अनुसार मुझ पर यह आरोप लगा सके: 'यद्यपि आप पूर्ण ज्ञान का दावा करते हैं, तो कुछ विषयों में आप पूर्णतः ज्ञानी नहीं हैं।' और ऐसा कोई आधार न देखकर मैं निश्चिंत, निर्भीक और साहसी बना रहता हूँ।"

24. "मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता जिस पर कोई संन्यासी... या कोई भी व्यक्ति मुझ पर इस प्रकार आरोप लगा सके: 'जबकि आप कलंकों को नष्ट करने का दावा करते हैं, ये कलंक आपके द्वारा नष्ट नहीं किए गए हैं।' और ऐसा कोई आधार न देखकर, मैं सुरक्षा, निर्भीकता और साहस के साथ रहता हूँ।"

25. "मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता जिस पर कोई संन्यासी... या कोई भी व्यक्ति मुझ पर इस प्रकार आरोप लगा सके: 'जिन चीजों को आप बाधा कहते हैं, वे उनमें संलग्न होने वाले व्यक्ति को रोक नहीं सकतीं।' और ऐसा कोई आधार न देखकर, मैं सुरक्षा, निर्भीकता और साहस के साथ रहता हूँ।"

26. "मुझे ऐसा कोई आधार नहीं दिखता जिस पर कोई संन्यासी... या कोई भी व्यक्ति मुझ पर इस प्रकार आरोप लगा सके: 'जब आप किसी को धम्म का उपदेश देते हैं, तो अभ्यास करने पर वह दुखों के पूर्ण नाश की ओर नहीं अग्रसर होता।' और ऐसा कोई आधार न देखकर, मैं निडरता, निर्भीकता और साहस के साथ निवास करता हूँ।"

27. "तथागत में ये चार प्रकार के निर्भीकता गुण होते हैं, जिनके द्वारा वह झुंड के नेता का स्थान प्राप्त करता है, सभाओं में सिंह की गर्जना करता है और ब्रह्मा के चक्र को घुमाता है।"

28. "सारिपुत्त, जब मैं यह जान और देख लूँगा, तो यदि कोई मेरे बारे में ऐसा कहेगा... तो वह नरक में जाएगा।"

आठ सभाएँ

29. "सारिपुत्त, ये आठ सभाएँ हैं। ये आठ कौन-कौन सी हैं? कुलीनों की सभा, ब्राह्मणों की सभा, गृहस्थों की सभा, संन्यासियों की सभा, चार महाराजों के स्वर्ग के देवताओं की सभा, तैंतीस देवताओं के स्वर्ग के देवताओं की सभा, मार के अनुयायियों की सभा और ब्रह्माओं की सभा। इन चारों प्रकार के साहस से युक्त तथागत इन आठ सभाओं में प्रवेश करते हैं।"

30. मुझे याद है कि मैं सैकड़ों कुलीन सभाओं, सैकड़ों ब्राह्मण सभाओं, सैकड़ों गृहस्थ सभाओं, सैकड़ों संन्यासियों, सैकड़ों चार महान राजाओं के स्वर्ग के देवताओं, सैकड़ों तैंतीस देवताओं के स्वर्ग के देवताओं, सैकड़ों मार के अनुयायियों और सैकड़ों ब्रह्माओं की सभाओं में गया था। पहले मैं उनके साथ बैठकर उनसे बातचीत करता था, फिर भी मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दिखता कि वहाँ मुझमें भय या संशय आ सकता है। और ऐसा कोई कारण न देखकर, मैं निडरता और साहस के साथ वहाँ रहता हूँ।

31. "सारिपुत्त, जब मैं यह जान और देख लूँगा, तो यदि कोई मेरे बारे में ऐसा कहेगा... तो वह नरक में जाएगा।"

चार प्रकार की उत्पत्ति

32. "सारिपुत्त, ये चार प्रकार की उत्पत्ति होती है। वे चारों क्या हैं? अंडाणु से उत्पन्न उत्पत्ति, गर्भ से उत्पन्न उत्पत्ति, नमी से उत्पन्न उत्पत्ति और स्वतः उत्पन्न उत्पत्ति।"

33. "अंडे से उत्पन्न होने वाली उत्पत्ति क्या है? अंडे के खोल को तोड़कर जन्म लेने वाले जीव होते हैं; इसे अंडे से उत्पन्न होने वाली उत्पत्ति कहते हैं। गर्भ से उत्पन्न होने वाली उत्पत्ति क्या है? गर्भनाल को तोड़कर जन्म लेने वाले जीव होते हैं; इसे गर्भ से उत्पन्न होने वाली उत्पत्ति कहते हैं। नमी से उत्पन्न होने वाली उत्पत्ति क्या है? सड़ी हुई मछली, सड़े हुए शव, सड़े हुए आटे, गटर या सीवर में जन्म लेने वाले जीव होते हैं; इसे नमी से उत्पन्न होने वाली उत्पत्ति कहते हैं। स्वतः उत्पन्न होने वाली उत्पत्ति क्या है? देवता, नरक के निवासी, कुछ मनुष्य और कुछ निम्न लोकों के जीव होते हैं; इसे स्वतः उत्पन्न होने वाली उत्पत्ति कहते हैं। ये चार प्रकार की उत्पत्ति हैं।"

34. "सारिपुत्त, जब मैं यह जान और देख लूँगा, तो यदि कोई मेरे बारे में ऐसा कहेगा... तो वह नरक में जाएगा।"

पांच गंतव्य और निर्वाण — संक्षेप में

35. "सारिपुत्त, ये पाँच गंतव्य हैं। वे पाँच क्या हैं? नरक, पशुलोक, भूतलोक, मनुष्यलोक और देवतालोक।"

36. (1) "मैं नरक को समझता हूँ, और नरक की ओर जाने वाले मार्ग को भी। और मैं यह भी समझता हूँ कि जो इस मार्ग पर चल पड़ा है, वह शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, अभाव की अवस्था में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुनः प्रकट होगा।"

(2) मैं पशु जगत को समझता हूँ, और पशु जगत की ओर जाने वाले मार्ग को भी। और मैं यह भी समझता हूँ कि इस मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, पशु जगत में पुनः प्रकट होगा।
(3) मैं भूतों के लोक को समझता हूँ, और उस लोक तक जाने वाले मार्ग को भी। और मैं यह भी समझता हूँ कि जो इस मार्ग पर चला गया है, वह शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, भूतों के लोक में पुनः प्रकट होगा।
(4) "मैं मनुष्यों को समझता हूँ, और मानव जगत की ओर ले जाने वाले मार्ग को भी। और मैं यह भी समझता हूँ कि इस मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति, शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, मनुष्यों के बीच कैसे पुन: प्रकट होगा।"
(5) मैं देवताओं को समझता हूँ, और देवताओं के लोक की ओर जाने वाले मार्ग को भी। और मैं यह भी समझता हूँ कि इस मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, स्वर्ग लोक में एक सुखद गंतव्य में कैसे पुन: प्रकट होगा।
(6) मैं निर्वाण को समझता हूँ, और निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग को भी। और मैं यह भी समझता हूँ कि जो इस मार्ग पर चल पड़ा है, वह प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं इसका अनुभव करके, यहीं और अभी, मन की मुक्ति और बुद्धि द्वारा मुक्ति प्राप्त करेगा, जो दोषों के नाश से निष्कलंक है।
पांच गंतव्य और निर्वाण — विस्तार से
37. (1) "मन को मन से समाहित करते हुए मैं किसी व्यक्ति को इस प्रकार समझता हूँ: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है, ऐसा आचरण करता है, ऐसा मार्ग अपनाता है कि शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह अभाव की अवस्था में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुन: प्रकट होगा।' और फिर बाद में, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, मैं देखता हूँ कि शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह अभावग्रस्त अवस्था में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में, पुन: प्रकट हुआ है, और अत्यंत पीड़ादायक, कष्टदायक, भेदनशील भावनाओं का अनुभव कर रहा है। मान लीजिए कि एक कोयले का गड्ढा है जो मनुष्य की ऊँचाई से भी गहरा है, बिना लौ या धुएँ के सुलगते कोयलों से भरा है; और फिर एक व्यक्ति जो भीषण गर्मी से झुलसा हुआ और थका हुआ है, प्यासा और प्यासा, एक ही दिशा में जाने वाले रास्ते से उसी कोयले के गड्ढे की ओर जाता है। तब एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे देखकर कहेगा: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है, ऐसा आचरण करता है, ऐसा रास्ता चुना है, कि वह इसी कोयले के गड्ढे में आएगा'; और फिर बाद में वह देखता है कि वह उसी कोयले के गड्ढे में गिर गया है और अत्यंत पीड़ादायक, कष्टदायक, भेदनशील भावनाओं का अनुभव कर रहा है। इसी प्रकार, मन को मन से घेरने पर... भेदनशील भावनाएँ उत्पन्न होती हैं।
38. (2) "मन को मन से समाहित करके मैं किसी व्यक्ति को इस प्रकार समझता हूँ: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है, ऐसा आचरण करता है, ऐसा मार्ग अपनाता है कि शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह पशु जगत में पुन: प्रकट होगा।' और फिर बाद में, दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, मैं देखता हूँ कि शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह पशु जगत में पुनः प्रकट हुआ है और पीड़ादायक, कष्टदायक और भेदनकारी भावनाओं का अनुभव कर रहा है। मान लीजिए कि मनुष्य की ऊँचाई से भी गहरा एक गटर गंदगी से भरा हुआ है; और फिर एक व्यक्ति, जो भीषण गर्मी से झुलसा हुआ और थका हुआ है, प्यासा और प्यासा, एक ही दिशा में जाने वाले रास्ते से उसी गटर की ओर जाता है। तब एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे देखकर कहेगा: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार कर रहा है... कि वह इसी गटर में आएगा'; और फिर बाद में वह देखता है कि वह उसी गटर में गिर गया है और पीड़ादायक, कष्टदायक और भेदनकारी भावनाओं का अनुभव कर रहा है। ठीक इसी प्रकार, मन को मन से घेरने पर... भेदनकारी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं।
39. (3) "मन से मन को जोड़कर मैं किसी व्यक्ति को इस प्रकार समझता हूँ: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है, ऐसा आचरण करता है, ऐसा मार्ग अपनाता है कि शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह प्रेतों के लोक में पुनः प्रकट होगा।' और फिर बाद में... मैं देखता हूँ कि... वह प्रेतों के लोक में पुनः प्रकट हो चुका है और अत्यंत पीड़ा का अनुभव कर रहा है। मान लीजिए कि एक पेड़ ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर कम पत्तियों के साथ छाया दे रहा है; और फिर एक व्यक्ति जो भीषण गर्मी से झुलसा हुआ और थका हुआ है, प्यासा और प्यासा, एक ही दिशा में जाने वाले रास्ते से उसी पेड़ की ओर आता है। तब एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे देखकर कहेगा: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है... कि वह इसी पेड़ के पास आएगा'; और फिर बाद में वह देखता है कि वह उस पेड़ की छाया में बैठा या लेटा हुआ है और अत्यंत पीड़ा का अनुभव कर रहा है। इसी प्रकार, मन से मन को जोड़कर... अत्यंत पीड़ा का अनुभव होता है।"
40. (4) "मन को मन से समाहित करके मैं किसी व्यक्ति को इस प्रकार समझता हूँ: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है, ऐसा आचरण करता है, ऐसा मार्ग अपनाता है कि शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह मनुष्यों के बीच पुन: प्रकट होगा।' और फिर बाद में... मैं देखता हूँ कि... वह मनुष्यों के बीच पुन: प्रकट हो चुका है और उसे बहुत सुखद अनुभूति हो रही है। मान लीजिए कि समतल भूमि पर एक घना वृक्ष है जिसकी घनी पत्तियाँ गहरी छाया प्रदान करती हैं; और फिर एक व्यक्ति जो भीषण गर्मी से झुलसा हुआ और थका हुआ है, प्यासा और प्यासा, एक ही दिशा में जाने वाले रास्ते से उसी वृक्ष की ओर आता है। तब एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे देखकर कहेगा: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है... कि वह इसी वृक्ष के पास आएगा'; और फिर बाद में वह देखता है कि वह उस वृक्ष की छाया में बैठा या लेटा हुआ है और उसे बहुत सुखद अनुभूति हो रही है। इसी प्रकार, मन को मन से समाहित करके... बहुत सुखद अनुभूति होती है।
41. (5) "मन को मन से समाहित करके मैं किसी व्यक्ति को इस प्रकार समझता हूँ: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है, ऐसा आचरण करता है, ऐसा मार्ग अपनाता है कि शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह एक सुखद गंतव्य, स्वर्गलोक में पुन: प्रकट होगा।' और फिर बाद में... मैं देखता हूँ कि... वह एक सुखद स्थान पर, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट हुआ है और अत्यंत सुखद अनुभूतियों का अनुभव

कर रहा है। मान लीजिए एक हवेली है, और उसका ऊपरी कमरा भीतर और बाहर से प्लास्टर किया हुआ है, बंद है, सलाखों से सुरक्षित है, खिड़कियों पर शटर लगे हैं, और उसमें गलीचे, कंबल और चादरों से ढका एक पलंग है, हिरण की खाल का आवरण है, एक चंदवा है और सिर और पैरों दोनों के लिए लाल रंग के तकिए हैं; और फिर एक आदमी जो भीषण गर्मी से झुलसा हुआ और थका हुआ है, प्यासा और प्यासा है, एक ही दिशा में जाने वाले रास्ते से उसी हवेली की ओर आता है। तब एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे देखकर कहेगा: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है... कि वह इसी हवेली में आएगा'; और बाद में वह देखता है कि वह उस हवेली के ऊपरी कमरे में बैठा या लेटा हुआ है और अत्यंत सुखद अनुभूतियों का अनुभव कर रहा है। इसी प्रकार, मन को मन से जोड़ने से... अत्यंत सुखद अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं।

42. (6) "मन को मन से समाहित करके मैं किसी व्यक्ति को इस प्रकार समझता हूँ: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है, ऐसा आचरण करता है, ऐसा मार्ग अपनाता है कि प्रत्यक्ष ज्ञान से स्वयं इसका अनुभव करके, वह यहीं और अभी मन की मुक्ति और ज्ञान द्वारा मुक्ति में प्रवेश करेगा और उसमें स्थिर रहेगा, जो दोषों के नाश से दोषरहित हैं।' और फिर बाद में मैं देखता हूँ कि प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं इसका अनुभव करके, वह यहीं और अभी मन की मुक्ति और ज्ञान द्वारा प्राप्त मुक्ति में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो दोषों के नाश से निर्मल है, और अत्यंत सुखद अनुभूतियों का अनुभव करता है।16 मान लीजिए कि एक साफ, सुखद, ठंडा, पारदर्शी जल वाला, चिकने किनारों वाला, रमणीय तालाब है, और उसके पास एक घना जंगल है; और फिर एक व्यक्ति जो भीषण गर्मी से झुलसा हुआ और थका हुआ है, प्यासा और प्यासा, एक ही दिशा में जाने वाले रास्ते से उसी तालाब की ओर आता है। तब एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे देखकर कहेगा: 'यह व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है... कि वह इसी तालाब पर आएगा'; और फिर बाद में वह देखता है कि वह तालाब में डुबकी लगा चुका है, स्नान कर चुका है, पानी पीकर अपने सभी कष्ट, थकान और बुखार से मुक्त हो चुका है और फिर बाहर आकर जंगल में बैठा या लेटा हुआ है और अत्यंत सुखद अनुभूतियों का अनुभव कर रहा है। इसी प्रकार, मन को मन से घेरने से... अत्यंत सुखद अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं। ये पाँच गंतव्य हैं।

43. "सारिपुत्त, जब मैं ऐसा जानता और देखता हूँ, तो यदि कोई मेरे विषय में कहे: 'सन्यासी गौतम में कोई अलौकिक अवस्थाएँ नहीं हैं, न ही ज्ञान और दृष्टि में कोई श्रेष्ठता है जो श्रेष्ठों के योग्य हो। तपस्वी गौतम केवल तर्क द्वारा गढ़े गए धर्म का उपदेश देते हैं, अपने स्वयं के विचार के अनुसार उसका अनुसरण करते हैं' - जब तक वह इस कथन और इस मन की अवस्था का त्याग नहीं करता और इस दृष्टिकोण को नहीं छोड़ता, तब तक (निश्चित रूप से जैसे उसे उठाकर वहाँ रख दिया गया हो) वह अंततः नरक में जाएगा। जिस प्रकार सद्‌गुण, एकाग्रता और ज्ञान से युक्त भिक्षु को अभी और यहीं अंतिम ज्ञान प्राप्त होता है, वैसे ही इस मामले में भी होगा, मैं कहता हूँ, कि जब तक वह इस कथन और इस मन की अवस्था का त्याग नहीं करता और इस दृष्टिकोण को नहीं छोड़ता, तब तक (निश्चित रूप से जैसे उसे उठाकर वहाँ रख दिया गया हो) वह अंततः नरक में जाएगा।"

बोधिसत्व की तपस्या

44. "सारिपुत्त, मुझे याद है कि मैंने चार गुणों से युक्त एक पवित्र जीवन व्यतीत किया है। मैंने तपस्या का अभ्यास किया है - तपस्या की चरम सीमा; मैंने कठोरता का अभ्यास किया है - कठोरता की चरम सीमा; मैंने सावधानी का अभ्यास किया है - सावधानी की चरम सीमा; मैंने एकांतवास का अभ्यास किया है - एकांतवास की चरम सीमा।"

45. "हे सारिपुत्त, मेरी तपस्या ऐसी थी कि मैं नग्न अवस्था में रहता था, रीति-रिवाजों का त्याग करता था, अपने हाथ चाटता था, बुलाए जाने पर भी नहीं आता था, रुकता भी नहीं था; मैं लाया हुआ भोजन, विशेष रूप से बनाया हुआ भोजन या भोजन का निमंत्रण स्वीकार नहीं करता था; मैं किसी बर्तन से, किसी कटोरे से, किसी दहलीज के पार से, किसी छड़ी के पार से, किसी मूसल के पार से, दो लोगों के साथ भोजन करने से, किसी गर्भवती स्त्री से, किसी स्तनपान कराने वाली स्त्री से, किसी पुरुष के साथ लेटी हुई स्त्री से, जहाँ भोजन वितरित करने का किया जाता था, जहाँ कुत्ता प्रतीक्षा कर रहा होता था, जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही होती थीं, कुछ भी ग्रहण नहीं करता था; मैं मछली या मांस ग्रहण नहीं करता था, मैं शराब, मदिरा या किण्वित पेय नहीं पीता था। मैं एक घर में, एक निवाला खाता था; मैं दो घरों में, दो निवाले खाता था; ... मैं सात घरों में, सात निवाले खाता था। मैं एक थाली भर भोजन, दो थाली भर भोजन ... सात थाली भर भोजन प्रतिदिन खाता था; मैं दिन में एक बार, हर दो दिन में एक बार ... हर सात दिन में एक बार, और इसी तरह हर दिन एक बार तक भोजन करता था।" दो सप्ताह तक मैं नियमित अंतराल पर भोजन करने का अभ्यास करता रहा। मैं हरी सब्जियां, बाजरा, जंगली चावल, खाल के टुकड़े, काई, चावल की भूसी, चावल की झाग, तिल का आटा, घास और गोबर खाता था। मैं जंगल की जड़ों और फलों पर जीवित रहा, गिरे हुए फलों को खाता था। मैं भांग, भांग मिश्रित कपड़े, कफन, चिथड़े, पेड़ की छाल, हिरण की खाल, हिरण की खाल की पट्टियों, कुसा घास के कपड़े, छाल के कपड़े, लकड़ी के बुरादे के कपड़े, सिर के बालों की ऊन, जानवरों की ऊन और उल्लू के पंखों से खुद को ढकता था। मैं बाल और दाढ़ी नोचता था, बाल और दाढ़ी नोचने का अभ्यास करता था। मैं लगातार खड़ा रहता था, बैठने की जगह को त्याग देता था। मैं लगातार उकड़ू बैठा रहता था, उकड़ू बैठने की मुद्रा बनाए रखने के लिए समर्पित था। मैं कांटों के गद्दे का उपयोग करता था; मैंने कांटों के गद्दे को अपना बिस्तर बनाया था। मैं तीन बार पानी में स्नान करने का अभ्यास करता रहा। दिन में कई बार, शाम समेत। इस प्रकार, मैं शरीर को कष्ट देने और उसे पीड़ा पहुँचाने के अभ्यास में अनेकों तरीकों से लगा रहता था। यही मेरा वैराग्य था।

46. "हे सारिपुत्त, मेरी कठोरता ऐसी थी कि जैसे वर्षों के संचय से तिन्दुका वृक्ष का तना पपड़ी बनकर झड़ जाता है, वैसे ही वर्षों के संचय से मेरे शरीर पर जमी धूल और मैल पपड़ी बनकर झड़ जाती थी। मुझे कभी यह विचार नहीं आया कि 'मैं अपने हाथ से इस धूल और मैल को पोंछ लूँ, या किसी और से पोंछ लूँ' - ऐसा विचार मुझे कभी नहीं आया। मेरी कठोरता ऐसी थी।"
47. "हे सारिपुत्त, मेरी गंभीरता इतनी प्रबल थी कि मैं आगे-पीछे कदम बढ़ाते समय सदा सचेत रहता था। यहाँ तक कि पानी की एक बूँद में रहने वाले जीवों के प्रति भी मुझे दया आती थी, और मैं यही सोचता था: 'जमीन की दरारों में रहने वाले नन्हे-मुन्नों को मैं कष्ट न पहुँचाऊँ।' मेरी गंभीरता इतनी प्रबल थी।"
48. "हे सारिपुत्त, मेरा एकांतवास ऐसा था कि मैं किसी जंगल में जाकर वहीं निवास करता था। और जब मैं किसी चरवाहे या गौशाला में घास या लकड़ियाँ इकट्ठा करने वाले को देखता, या किसी लकड़हारे को देखता, तो मैं एक उपवन से दूसरे उपवन, एक झाड़ी से दूसरी झाड़ी, एक खोखली जगह से दूसरी खोखली जगह, एक छोटी पहाड़ी से दूसरी छोटी पहाड़ी की ओर भागता था। ऐसा क्यों? ताकि वे मुझे न देखें और मैं उन्हें न देखूँ। जैसे जंगल में पला-बढ़ा हिरण मनुष्य को देखकर एक उपवन से दूसरे उपवन, एक झाड़ी से दूसरी झाड़ी, एक खोखली जगह से दूसरी खोखली जगह, एक छोटी पहाड़ी से दूसरी छोटी पहाड़ी की ओर भागता है, वैसे ही जब मैं किसी चरवाहे या गौशाला में किसी को देखता, तो मैं भाग जाता... मेरा एकांतवास ऐसा ही था।"
49. "जब मवेशी बाहर चले जाते और चरवाहा उन्हें छोड़कर चला जाता, तो मैं चारों पैरों पर रेंगते हुए गौशाला में जाता और छोटे बछड़ों के गोबर को खाता। जब तक मेरा अपना मल-मूत्र रहता, मैं उसी से अपना पेट भरता। मेरे भोजन में यही घोर विकृति थी।"
50. "मैं किसी विस्मयकारी उपवन में जाकर वहीं निवास करता—ऐसा उपवन जो इतना विस्मयकारी होता कि यदि कोई व्यक्ति कामवासना से मुक्त न होता तो उसके रोंगटे खड़े हो जाते। जब 'आठ दिनों के पाले के अंतराल' के दौरान वे सर्द सर्द रातें आतीं, तो मैं रात को खुले में और दिन को उपवन में रहता। गर्मी के मौसम के आखिरी महीने में मैं दिन को खुले में और रात को उपवन में रहता। और तभी अनायास ही मेरे मन में यह छंद आया जो मैंने पहले कभी नहीं सुना था:
रात की ठंड और दिन की झुलसन में, विस्मयकारी उपवनों में अकेला, नग्न, बैठने के लिए कोई अग्नि नहीं, फिर भी ऋषि अपनी खोज में लगे रहते हैं। 51. "मैं श्मशान भूमि में मृतकों की हड्डियों को तकिया बनाकर अपना बिस्तर लगाता था। और ग्वाले लड़के आकर मुझ पर थूकते, मुझ पर पेशाब करते, मुझ पर मिट्टी फेंकते और मेरे कानों में डंडे चुभोते थे। फिर भी मुझे याद नहीं कि मैंने कभी उनके प्रति कोई द्वेष भाव उत्पन्न किया हो। मेरा ऐसा ही समभाव था।"
52. "सारिपुत्त, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण हैं जिनका सिद्धांत और मत यह है: 'शुद्धि भोजन के माध्यम से होती है।'" वे कहते हैं: 'चलो कोला फल खाकर जीवन व्यतीत करें,' और वे कोला फल खाते हैं, कोला फल का पाउडर खाते हैं, कोला फल का पानी पीते हैं, और कोला फल से कई तरह के मिश्रण बनाते हैं। अब मुझे याद आता है कि मैं दिन में सिर्फ एक कोला फल खाता था। सारिपुत्त, तुम शायद सोचते होगे कि उस समय कोला फल बड़ा होता था, पर ऐसा मत समझो: उस समय कोला फल का आकार ज़्यादा से ज़्यादा आज के आकार जितना ही था। दिन में सिर्फ एक कोला फल खाने से मेरा शरीर अत्यधिक कमज़ोर हो गया था। इतना कम खाने से मेरे अंग लता या बांस के तनों के जोड़ों जैसे हो गए थे। इतना कम खाने से मेरी पीठ ऊंट के खुर जैसी हो गई थी। इतना कम खाने से मेरी रीढ़ की हड्डी पर उभरे हुए हिस्से मोतियों की तरह दिखने लगे थे। इतना कम खाने से मेरी पसलियां किसी पुराने, बिना छत वाले खलिहान की टूटी-फूटी कड़ियों की तरह बाहर निकली हुई थीं। इतना कम खाने से मेरी आंखों की चमक फीकी पड़ गई थी। आँखों के गड्ढे ऐसे लग रहे थे मानो गहरे कुएँ में डूबी पानी की एक बूंद चमक रही हो। कम खाने के कारण मेरी खोपड़ी ऐसे मुरझा गई थी जैसे हरी करेला हवा और धूप में मुरझा जाती है। कम खाने के कारण मेरे पेट की त्वचा मेरी रीढ़ की हड्डी से चिपक गई थी; इसलिए अगर मैं अपने पेट की त्वचा को छूता तो मुझे अपनी रीढ़ की हड्डी महसूस होती, और अगर मैं अपनी रीढ़ की हड्डी को छूता तो मुझे अपने पेट की त्वचा महसूस होती। कम खाने के कारण, अगर मैं अपने हाथों से अपने अंगों को रगड़कर अपने शरीर को आराम देने की कोशिश करता, तो जड़ से सड़े हुए बाल रगड़ते ही मेरे शरीर से झड़ जाते।
53-55. "सारिपुत्त, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण हैं जिनका सिद्धांत और मत यह है: 'शुद्धि भोजन से होती है।' वे कहते हैं: 'चलो सेम खाकर जीवन व्यतीत करें'... 'तिल खाकर जीवन व्यतीत करें'... 'चावल खाकर जीवन व्यतीत करें,' और वे चावल खाते हैं, चावल का पाउडर खाते हैं, चावल का पानी पीते हैं, और तरह-तरह के चावल के मिश्रण बनाते हैं। अब मुझे याद आता है कि मैं दिन में केवल एक चावल का दाना खाता था। सारिपुत्त, तुम सोच सकते हो कि उस समय चावल का दाना बड़ा था, लेकिन ऐसा मत मानो: चावल का दाना तब भी लगभग उतना ही बड़ा था जितना अब है। दिन में केवल एक चावल का दाना खाने से मेरा शरीर अत्यधिक दुर्बल हो गया था। इतना कम खाने के कारण... जड़ से सड़े हुए बाल मेरे शरीर से रगड़ने पर झड़ने लगे।"
56. "फिर भी, सारिपुत्त, ऐसे आचरण से, ऐसी साधना से, ऐसी तपस्या करने से, मुझे कोई अलौकिक अवस्था, ज्ञान और दृष्टि में कोई श्रेष्ठता प्राप्त नहीं हुई जो श्रेष्ठों के योग्य हो। ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि मुझे वह श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ जो प्राप्त होने पर श्रेष्ठ और मुक्तिदायी होता है और जो उसका पालन करने वाले को दुखों के पूर्ण नाश की ओर ले जाता है।"
57. "सारिपुत्त, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण हैं जिनका सिद्धांत और मत यह है: 'पुनर्जन्म के चक्र से ही शुद्धि प्राप्त होती है।' परन्तु इस चक्र में ऐसा कोई लोक खोजना असंभव है जिससे मैं इस लंबी यात्रा में पहले ही न गुजर चुका हूँ, सिवाय शुद्ध लोकों के देवताओं के; और यदि मैं शुद्ध लोकों में देवता के रूप में इस चक्र से गुजर चुका होता, तो मैं कभी इस संसार में वापस नहीं आता।"

58. "कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे हैं जिनका सिद्धांत और मत यह है: 'शुद्धि किसी विशेष प्रकार के पुनर्जन्म के माध्यम से प्राप्त होती है।' लेकिन इस लंबी यात्रा में मुझे ऐसा कोई पुनर्जन्म नहीं मिला जिसमें मैं पहले ही जन्म न ले चुका हूँ, सिवाय शुद्ध लोकों के देवताओं के..."
59. "कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे हैं जिनका सिद्धांत और मत यह है: 'शुद्धि किसी विशेष निवास स्थान में रहने से प्राप्त होती है।' लेकिन ऐसा कोई निवास स्थान खोजना असंभव है जिसमें मैं पहले से न रहा होऊं... सिवाय शुद्ध निवास स्थानों के देवताओं के..."
60. "कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे हैं जिनका सिद्धांत और मत यह है: 'शुद्धि यज्ञ के माध्यम से होती है।' लेकिन इस लंबी यात्रा में, जब मैं या तो प्रधान राजा था या धनी ब्राह्मण, तब मैंने जो यज्ञ किया है, वैसा कोई यज्ञ खोजना असंभव है।"
61. "कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे हैं जिनका सिद्धांत और मत यह है: 'अग्नि पूजा से ही शुद्धि होती है।' लेकिन इस लंबी यात्रा में, जब मैं या तो प्रधान राजा था या धनी ब्राह्मण, तब मुझे ऐसी कोई अग्नि नहीं मिली जिसकी पूजा मैंने पहले ही न की हो।"
62. "सारिपुत्त, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे हैं जिनका सिद्धांत और मत यह है: 'जब तक यह सज्जन व्यक्ति युवा है, काले बालों वाला, यौवन के आशीर्वाद से संपन्न, जीवन के सर्वोपरि अवस्था में है, तब तक वह अपनी स्पष्ट बुद्धि में परिपूर्ण है। परन्तु जब यह सज्जन व्यक्ति वृद्ध हो जाता है, उम्र का बोझ उस पर आ जाता है, जीवन में आगे बढ़ जाता है और अंतिम अवस्था में पहुँच जाता है, अस्सी, नब्बे या सौ वर्ष का हो जाता है, तब उसकी बुद्धि की स्पष्टता खो जाती है।' लेकिन ऐसा नहीं समझा जाना चाहिए। मैं अब बूढ़ा हो चुका हूँ, उम्र का बोझ मुझ पर है, जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँच चुका हूँ: मेरी उम्र अस्सी वर्ष हो गई है। अब मान लीजिए कि मेरे चार शिष्य हैं जिनकी आयु सौ वर्ष है, जो सजग, स्मरणशील, स्मृतिशील और ज्ञान की स्पष्टता में परिपूर्ण हैं। जैसे एक कुशल धनुर्धर, प्रशिक्षित, अभ्यासशील और परीक्षित, ताड़ के पेड़ की छाया के पार आसानी से एक हल्का तीर चला सकता है, मान लीजिए कि वे भी उसी हद तक सजग, स्मरणशील, स्मृतिशील और ज्ञान की स्पष्टता में परिपूर्ण हैं। मान लीजिए कि वे मुझसे निरंतर सजगता के चार आधारों के बारे में पूछते हैं और मैं उनके पूछे जाने पर उत्तर देता हूँ और वे मेरे प्रत्येक उत्तर को याद रखते हैं और कभी कोई गौण प्रश्न नहीं पूछते या खाने, पीने, भोजन ग्रहण करने, स्वाद लेने, पेशाब करने, शौच करने और नींद और थकान दूर करने के लिए विश्राम करने के अलावा कभी विराम नहीं लेते। फिर भी तथागत का धम्म का उपदेश, धम्म के कारकों की व्याख्या और प्रश्नों के उत्तर अभी समाप्त नहीं होंगे, लेकिन इस बीच मेरे वे चार शिष्य अपनी सौ वर्ष की आयु के साथ उन सौ वर्षों के अंत में मेरी आयु समाप्त हो जाती। सारिपुत्त, चाहे तुम्हें मुझे पलंग पर ही क्यों न ले जाना पड़े, तथागत की ज्ञान की स्पष्टता में कोई परिवर्तन नहीं आएगा।
63. "सही मायने में, यदि किसी के बारे में यह कहा जाए कि 'भ्रम से मुक्त एक प्राणी अनेकों के कल्याण और सुख के लिए, संसार के प्रति करुणा से, देवताओं और मनुष्यों के भले, कल्याण और सुख के लिए संसार में प्रकट हुआ है,' तो वास्तव में यह बात मेरे बारे में ही सही मायने में कही जानी चाहिए।"
64. उस समय पूज्य नागसमला भगवान बुद्ध के पीछे खड़े होकर उन्हें पंखा कर रहे थे। फिर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, यह अद्भुत है, यह चमत्कारी है! जब मैंने धम्म पर यह प्रवचन सुना, तो मेरे रोंगटे खड़े हो गए। हे पूज्यवर, इस धम्म प्रवचन का नाम क्या है?"
"नागसमला, इस विषय पर आपको धम्म का यह प्रवचन 'रोंगटे खड़े कर देने वाला प्रवचन' के रूप में याद होगा।"
भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य नागसमला भगवान बुद्ध के शब्दों से संतुष्ट और प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.3 महादुक्खखखंड सुत्त(13)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना है: एक बार भगवान सावत्थी में जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में रह रहे थे।

फिर, जब सुबह हुई, तो कई भिक्षुओं ने वस्त्र धारण किए और अपने भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए चले गए। तब उन्होंने सोचा, "सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत जल्दी है। क्यों न हम दूसरे संप्रदायों के भिक्षुओं के उद्यान में चलें?" इसलिए वे दूसरे संप्रदायों के भिक्षुओं के उद्यान में गए और उनसे अभिवादन किया। जब यह विनम्र और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त हुई, तो वे एक तरफ बैठ गए। भिक्षुओं ने उनसे कहा:

"मित्रों, संन्यासी गौतम इंद्रिय सुखों की पूर्ण समझ का वर्णन करते हैं, और हम भी ऐसा ही करते हैं; संन्यासी गौतम भौतिक रूप की पूर्ण समझ का वर्णन करते हैं, और हम भी ऐसा ही करते हैं; संन्यासी गौतम भावनाओं की पूर्ण समझ का वर्णन करते हैं, और हम भी ऐसा ही करते हैं। तो फिर यहाँ क्या अंतर है, मित्रों, क्या भिन्नता है, संन्यासी गौतम के धम्म उपदेश और हमारे उपदेशों में क्या अंतर है?"

तब उन भिक्षुओं ने उस यात्री के शब्दों का न तो समर्थन किया और न ही विरोध। बिना कुछ कहे वे अपनी सीटों से उठे और यह सोचते हुए चले गए: "हम इन शब्दों का अर्थ भगवान बुद्ध की उपस्थिति में समझ पाएंगे।"

जब वे सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद भिक्षा मांगने लौट आए, तो भोजन के बाद वे भगवान बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम करने के बाद एक तरफ बैठ गए और उन्हें सारी घटना बताई। भगवान बुद्ध ने कहा:

"हे भिक्षुओं, अन्य संप्रदायों के उन भिक्षुओं से जो इस प्रकार बोलते हैं, इस प्रकार प्रश्न किया जाना चाहिए: 'लेकिन, मित्रों, इंद्रिय सुखों के मामले में संतुष्टि क्या है, खतरा क्या है और उससे कैसे बचा जा सकता है? भौतिक रूप के मामले में संतुष्टि क्या है, खतरा क्या है और उससे कैसे बचा जा सकता है? भावनाओं के मामले में संतुष्टि क्या है, खतरा क्या है और उससे कैसे बचा जा सकता है?' इस प्रकार प्रश्न किए जाने पर, अन्य संप्रदायों के भिक्षु इस मामले का उत्तर देने में असफल रहेंगे, और इससे भी बढ़कर, वे कठिनाइयों में पड़ जाएंगे। ऐसा क्यों है: क्योंकि यह उनके क्षेत्र से बाहर है। हे भिक्षुओं, मैं इस संसार में, इसके देवताओं, इसके मारों और इसके ब्रह्माओं के साथ, इसके संन्यासियों और ब्राह्मणों के साथ, इसके राजकुमारों और इसकी प्रजा के साथ, किसी को भी इन प्रश्नों का उत्तर देकर मन को संतुष्ट करते हुए नहीं देखता, सिवाय तथागत या उनके शिष्य या उनसे इसे सीखने वाले के।"

हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुखों की संतुष्टि क्या है? हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र हैं। वे पाँच क्या हैं? आँखों से दिखाई देने वाले वे रूप जो वांछित, मनभावन, सुखद और आकर्षक होते हैं, इंद्रिय-संबंधी होते हैं और कामवासना को उत्तेजित करते हैं। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ, नाक से सुनाई देने वाली गंधें, जीभ से महसूस किए जाने वाले स्वाद और शरीर द्वारा स्पर्श किए जाने वाले वे पदार्थ जो वांछित, मनभावन, सुखद और आकर्षक होते हैं, इंद्रिय-संबंधी होते हैं और कामवासना को उत्तेजित करते हैं। ये इंद्रिय सुख के पाँच सूत्र हैं। अब इन पाँच सूत्रों से उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद ही इंद्रिय सुखों की संतुष्टि है।

और हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुखों के मामले में क्या खतरा है? हे भिक्षुओं, यहाँ, जिस शिल्प से कुलवासी जीविका कमाता है—चाहे वह जाँच-पड़ताल हो, लेखा-जोखा हो, खेती हो, व्यापार हो, पशुपालन हो, तीरंदाजी हो, राजसेवा हो, या कोई भी शिल्प हो—उसे ठंड का सामना करना पड़ता है, उसे गर्मी का सामना करना पड़ता है; वह मक्खियों, मच्छरों, हवा, धूप और रेंगने वाले जीवों के संपर्क से घायल होता है; वह भूख और प्यास से मृत्यु के जोखिम में रहता है। अब यही इंद्रिय सुखों के मामले में एक खतरा है, एक ऐसा कष्ट जो यहाँ और अभी दिखाई देता है, जिसका कारण, स्रोत और आधार केवल इंद्रिय सुख ही है।

यदि कोई कुलवासी परिश्रम, मेहनत और प्रयास करने के बावजूद संपत्ति अर्जित नहीं करता, तो वह दुखी होता है, शोक करता है और विलाप करता है; वह सीना पीटते हुए रोता है और व्याकुल होकर कहता है, 'जो मेरे पास था, वह अब नहीं रहा!' अब यही बात इंद्रिय सुखों के मामले में भी एक खतरा है, जिसका कारण केवल इंद्रिय सुख ही है।

फिर से, इंद्रिय सुखों को कारण, स्रोत और आधार मानते हुए, राजा राजाओं से, कुलीन कुलीनों से, ब्राह्मण ब्राह्मणों से, गृहस्थ गृहस्थों से; माता बच्चे से, बच्चा पिता से; भाई भाई से, भाई बहन से, बहन भाई से, मित्र मित्र से झगड़ते हैं। और यहाँ अपने झगड़ों, लड़ाइयों और विवादों में वे एक-दूसरे पर मुक्कों, मिट्टी के ढेलों, लाठियों या चाकुओं से हमला करते हैं, जिससे उन्हें मृत्यु या जानलेवा पीड़ा होती है। अब यह इंद्रिय सुखों के मामले में एक खतरा है, दुख का एक ऐसा समूह जो यहाँ और अभी दिखाई देता है, जिसका कारण, स्रोत और आधार केवल इंद्रिय सुख ही है।

फिर, इंद्रिय सुख को कारण मानकर मनुष्य तलवारें और ढालें लेकर, धनुष और तरकश बांधकर, दो पंक्तियों में युद्ध में उतरते हैं, तीर और भाले चलाते हैं और तलवारें चमकाते हैं; और वहाँ वे तीरों और भालों से घायल हो जाते हैं, और तलवारों से उनके सिर काट दिए जाते हैं, जिससे उनकी मृत्यु हो जाती है या उन्हें असहनीय पीड़ा सहनी पड़ती है। अब यही इंद्रिय सुख के मामले में एक खतरा है, पीड़ा का एक ऐसा समूह जो यहीं और अभी दिखाई देता है, जिसका कारण, स्रोत और आधार केवल इंद्रिय सुख ही है।

फिर, इंद्रिय सुख को कारण मानकर मनुष्य तलवारें और ढालें उठा लेते हैं, धनुष और तरकश बांध लेते हैं, और फिसलन भरे गढ़ों पर तीर-भाले चलाते हुए और तलवारें चमकाते हुए आक्रमण करते हैं; और वहाँ वे तीर-भालों से घायल हो जाते हैं, उबलते तरल पदार्थों से लथपथ हो जाते हैं, भारी वज़न के नीचे दब जाते हैं, और तलवारों से उनके सिर काट दिए जाते हैं, जिससे उन्हें मृत्यु या असहनीय पीड़ा प्राप्त होती है। अब यही इंद्रिय सुख के मामले में एक खतरा है, पीड़ा का एक ऐसा समूह जो यहीं और अभी दिखाई देता है, जिसका कारण, स्रोत और आधार केवल इंद्रिय सुख ही है।

फिर, कामुक सुख के कारण ही लोग घरों में सेंध लगाते हैं, धन लूटते हैं, चोरी करते हैं, राजमार्गों पर घात लगाते हैं, दूसरों की पत्नियों को बहकाते हैं, और पकड़े जाने पर राजा उन पर अनेक प्रकार की यातनाएँ देते हैं। राजा उन्हें कोड़ों से कोड़े मरवाते हैं, बेंत से पीटते हैं, लाठियों से मारते हैं, उनके हाथ काट देते हैं, उनके पैर काट देते हैं, उनके नाक काट देते हैं; उन्हें अनेक प्रकार की भयानक यातनाएँ दी जाती हैं, उन पर खौलता तेल छिड़का जाता है, उन्हें कुत्तों के सामने फेंक दिया जाता है, उन्हें जिंदा ही खंभों पर लटका दिया जाता है, और तलवारों से उनके सिर काट दिए जाते हैं—जिससे उनकी मृत्यु या असहनीय पीड़ा होती है। अब कामुक सुख के मामले में यही एक खतरा है, एक ऐसा कष्ट जो यहीं और अभी दिखाई देता है, जिसका कारण, स्रोत और आधार केवल कामुक सुख ही है।

फिर, इंद्रिय सुखों को कारण, स्रोत और आधार मानकर, मनुष्य देह, वाणी और मन के दुराचार में लिप्त हो जाते हैं। ऐसा करने के बाद, मृत्यु के बाद जब शरीर नष्ट हो जाता है, तो वे अभावग्रस्त अवस्था में, दुखद गंतव्य में, विनाश में, यहाँ तक कि नरक में भी पुनः प्रकट होते हैं। अब यह भी इंद्रिय सुखों के मामले में एक खतरा है, परलोक में दुखों का अंबार, जिसका कारण, स्रोत और आधार केवल इंद्रिय सुख ही है।

और हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुखों से मुक्ति का मार्ग क्या है? यह है कामवासना और वासना का त्याग करना, इंद्रिय सुखों के प्रति इच्छा और वासना को छोड़ देना। यही इंद्रिय सुखों से मुक्ति का मार्ग है।

जो संन्यासी और ब्राह्मण इंद्रिय सुखों के मामले में संतुष्टि को संतुष्टि के रूप में, खतरे को खतरे के रूप में और उससे मुक्ति को मुक्ति के रूप में नहीं समझते, उनका स्वयं इंद्रिय सुखों को पूर्णतः समझना या किसी अन्य को इस प्रकार शिक्षा देना कि वह इंद्रिय सुखों को पूर्णतः समझ सके, असंभव है। और जो संन्यासी और ब्राह्मण इंद्रिय सुखों के मामले में संतुष्टि को संतुष्टि के रूप में, खतरे को खतरे के रूप में और उससे मुक्ति को मुक्ति के रूप में समझते हैं, उनका स्वयं इंद्रिय सुखों को पूर्णतः समझना या किसी अन्य को इस प्रकार शिक्षा देना कि वह इंद्रिय सुखों को पूर्णतः समझ सके, संभव है।

और हे भिक्षुओं, भौतिक रूप के मामले में संतुष्टि क्या है? मान लीजिए कि एक कुलीन वर्ग की, ब्राह्मण वर्ग की या गृहस्थ परिवार की लड़की पंद्रह या सोलह वर्ष की है, न अधिक लंबी है, न अधिक छोटी, न अधिक पतली है, न अधिक मोटी, न अधिक सांवली है, न अधिक गोरी। क्या तब उसकी सुंदरता और आकर्षण अपने चरम पर होता है?

"जी हाँ, आदरणीय महोदय।"

"अब उस सुंदरता और आकर्षण पर निर्भर होकर उत्पन्न होने वाला सुख और आनंद भौतिक रूप के मामले में तृप्ति है।"

और हे भिक्षुओं, भौतिक रूप के मामले में क्या खतरा है? बाद में शायद उसी स्त्री को यहाँ अस्सी, नब्बे या सौ वर्ष की आयु में देखा जाए, वृद्ध, छत के ब्रैकेट की तरह टेढ़ी, कमर झुकाए, छड़ी के सहारे चलती हुई, लड़खड़ाती हुई, दुर्बल, जवानी खो चुकी, दाँत टूटे हुए, बाल सफ़ेद, कम घने, गंजी, झुर्रियों वाली, और अंगों पर धब्बेदार। हे भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या उसकी पूर्व की सुंदरता और आकर्षण गायब हो गया है और खतरा स्पष्ट हो गया है?

"जी हाँ, आदरणीय महोदय।"

भिक्षुओं, भौतिक रूप के मामले में यह एक खतरा है।

फिर से, वही स्त्री पीड़ित, कष्ट सहती और गंभीर रूप से बीमार अवस्था में अपने ही मल-मूत्र में पड़ी हुई दिखाई दे सकती है, जिसे कुछ लोग उठाते हैं और कुछ लोग नीचे रखते हैं। भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या उसकी पूर्व की सुंदरता और आकर्षण लुप्त हो गया है और खतरा स्पष्ट हो गया है?

"जी हाँ, आदरणीय महोदय।"

भिक्षुओं, भौतिक रूप के मामले में भी यही खतरा है।

फिर, कोई उसी स्त्री को श्मशान में फेंके गए शव के रूप में देख सकता है, जो एक, दो या तीन दिन पहले मरी हो, फूली हुई, पीली पड़ी हुई और मवाद टपकाती हुई। भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या उसकी पूर्व की सुंदरता और आकर्षण खो गया है और खतरा स्पष्ट हो गया है?

"जी हाँ, आदरणीय महोदय।"

भिक्षुओं, भौतिक रूप के मामले में भी यही खतरा है।

फिर से, कोई उसी स्त्री को श्मशान भूमि में फेंके गए शव के रूप में देख सकता है, जिसे कौवे, बाज, गिद्ध, कुत्ते, सियार या विभिन्न प्रकार के कीड़े नोच रहे हों; एक मांसहीन कंकाल, या मांस और रक्त से लथपथ, नसों से जुड़ा हुआ; रक्त से सना हुआ मांसहीन कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ; अलग-अलग हड्डियाँ चारों ओर बिखरी हुई—यहाँ हाथ की हड्डी, वहाँ पैर की हड्डी, यहाँ जांघ की हड्डी, वहाँ पसली की हड्डी, यहाँ कूल्हे की हड्डी, वहाँ रीढ़ की हड्डी, यहाँ खोपड़ी; सफेद पड़ चुकी हड्डियाँ, सीपियों के रंग की; एक वर्ष से अधिक पुरानी हड्डियों का ढेर, सड़कर धूल में मिल चुकी हड्डियाँ। भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या उसकी पूर्व की सुंदरता और आकर्षण गायब हो गया है और खतरा स्पष्ट हो गया है?

"जी हाँ, आदरणीय महोदय।"

भिक्षुओं, भौतिक रूप के मामले में भी यही खतरा है।

और हे भिक्षुओं, भौतिक रूप से मुक्ति का मार्ग क्या है? यह इच्छा और वासना का निवारण है, भौतिक रूप के प्रति इच्छा और वासना का त्याग है। भौतिक रूप से मुक्ति का मार्ग यही है।

जो संन्यासी और ब्राह्मण भौतिक रूप के मामले में संतुष्टि को संतुष्टि के रूप में, खतरे को खतरे के रूप में और मुक्ति को मुक्ति के रूप में नहीं समझते, उनके लिए न तो स्वयं भौतिक रूप को पूर्णतः समझना और न ही किसी अन्य को इस प्रकार शिक्षा देना कि वह भौतिक रूप को पूर्णतः समझ सके—यह असंभव है।

यह संभव है कि वे संन्यासी और ब्राह्मण जो भौतिक रूप के मामले में संतुष्टि को संतुष्टि के रूप में, खतरे को खतरे के रूप में और मुक्ति को मुक्ति के रूप में समझते हैं, वे या तो स्वयं भौतिक रूप को पूर्णतः समझ सकते हैं, या किसी अन्य को इस प्रकार शिक्षा दे सकते हैं कि वह भौतिक रूप को पूर्णतः समझ सके।

और हे भिक्षुओं, भावनाओं के मामले में तृप्ति क्या है? हे भिक्षुओं, इंद्रिय सुखों से पूर्णतः विरक्त होकर, अस्वास्थ्यकर अवस्थाओं से विरक्त होकर, एक भिक्षु प्रथम ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो निरंतर चिंतन, एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद से परिपूर्ण होती है। ऐसे अवसर पर वह न तो स्वयं को, न ही किसी अन्य को, और न ही दोनों को पीड़ा पहुँचाना चुनता है। उस अवसर पर वह केवल पीड़ा रहित भावना का अनुभव करता है। मैं कहता हूँ, भावनाओं के मामले में सर्वोच्च तृप्ति पीड़ा से मुक्ति है।

फिर, गहन और निरंतर चिंतन के शांत होने पर, भिक्षु द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है; आनंद के लुप्त होने पर, वह तृतीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है; सुख और दुख के त्याग के साथ, वह चतुर्थ ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है; ऐसे समय में वह न तो अपने कष्ट को चुनता है, न ही किसी दूसरे के कष्ट को, और न ही दोनों के कष्ट को। उस समय वह केवल कष्ट रहित अनुभूति का अनुभव करता है। मैं कहता हूँ कि अनुभूतियों के मामले में सर्वोच्च तृप्ति कष्ट से मुक्ति है।

और हे भिक्षुओं, भावनाओं के मामले में क्या खतरा है? भावनाएँ क्षणभंगुर, दुखदायी और परिवर्तनशील होती हैं। यही भावनाओं के मामले में खतरा है।

और हे भिक्षुओं, भावनाओं के मामले में मुक्ति का मार्ग क्या है? यह इच्छा और वासना का त्याग है, भावनाओं के लिए इच्छा और वासना का परित्याग है। यही भावनाओं के मामले में मुक्ति का मार्ग है।

जो संन्यासी और ब्राह्मण भावनाओं के मामले में संतुष्टि को संतुष्टि के रूप में, खतरे को खतरे के रूप में और मुक्ति को मुक्ति के रूप में नहीं समझते, उनके लिए न तो स्वयं भावनाओं को पूर्णतः समझना और न ही किसी दूसरे को इस प्रकार शिक्षा देना कि वह भावनाओं को पूर्णतः समझ सके—यह असंभव है।

यह संभव है कि वे संन्यासी और ब्राह्मण जो भावनाओं के मामले में संतुष्टि को संतुष्टि के रूप में, खतरे को खतरे के रूप में और मुक्ति को मुक्ति के रूप में समझते हैं, वे या तो स्वयं भावनाओं को पूर्णतः समझ सकते हैं या दूसरों को इस प्रकार शिक्षा दे सकते हैं कि वे भावनाओं को पूर्णतः समझ सकें।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षु भगवान बुद्ध के वचनों से संतुष्ट और प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.4 कुलदुक्खखंड सुत्त(14)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना है:

एक बार भगवान भगवान शाक्य लोक में कपिलवस्तु के निग्रोध उद्यान में रह रहे थे। तब महानामा नामक शाक्य भगवान के पास गए और उन्हें प्रणाम करने के बाद एक तरफ बैठ गए और बोले, "हे पूज्यवर, मैंने भगवान द्वारा उपदेशित धर्म को इस प्रकार समझा है: लोभ एक दोष है जो मन को दूषित करता है, मोह एक दोष है जो मन को दूषित करता है। फिर भी, भगवान द्वारा उपदेशित धर्म को इस प्रकार समझने के बावजूद, कभी-कभी लोभ, घृणा और मोह की अवस्थाएँ मेरे मन में प्रवेश कर जाती हैं और बनी रहती हैं। हे पूज्यवर, मैं सोचता हूँ कि मेरे भीतर कौन सी ऐसी अवस्था है जिसे मैंने अभी तक नहीं छोड़ा है, जिसके कारण कभी-कभी लोभ, घृणा और मोह की अवस्थाएँ मेरे मन में प्रवेश कर जाती हैं और बनी रहती हैं?"

"महानामा, आपके भीतर अभी भी एक ऐसी अवस्था है जिसे आपने त्यागा नहीं है, जिसके कारण कभी-कभी लोभ, घृणा और भ्रम की अवस्थाएँ आपके मन में प्रवेश कर जाती हैं और बनी रहती हैं; क्योंकि यदि आपने उस अवस्था को आंतरिक रूप से त्याग दिया होता तो आप गृहस्थ जीवन नहीं जी रहे होते, आप इंद्रिय सुखों का आनंद नहीं ले रहे होते। यह इसलिए है क्योंकि आपने उस अवस्था को आंतरिक रूप से नहीं त्यागा है, इसलिए आप गृहस्थ जीवन जी रहे हैं और इंद्रिय सुखों का आनंद ले रहे हैं।"

यद्यपि एक श्रेष्ठ शिष्य ने उचित ज्ञान से यह स्पष्ट रूप से देख लिया है कि इंद्रिय सुख अल्प संतुष्टि, अधिक पीड़ा और अधिक निराशा प्रदान करते हैं, और उनमें निहित खतरा कितना बड़ा है, फिर भी जब तक वह इंद्रिय सुखों से परे, अस्वास्थ्यकर अवस्थाओं से परे, या उससे भी अधिक शांतिपूर्ण आनंद की प्राप्ति नहीं कर लेता, तब तक वह इंद्रिय सुखों की ओर आकर्षित हो सकता है। परन्तु जब एक श्रेष्ठ शिष्य ने उचित ज्ञान से यह स्पष्ट रूप से देख लिया है कि इंद्रिय सुख अल्प संतुष्टि, अधिक पीड़ा और अधिक निराशा प्रदान करते हैं, और उनमें निहित खतरा कितना बड़ा है, और वह इंद्रिय सुखों से परे, अस्वास्थ्यकर अवस्थाओं से परे, या उससे भी अधिक शांतिपूर्ण आनंद की प्राप्ति कर लेता है, तब वह इंद्रिय सुखों की ओर आकर्षित नहीं होता।

ज्ञान प्राप्ति से पहले, जब मैं केवल एक अज्ञानी बोधिसत्व था, तब भी मैंने उचित बुद्धि से स्पष्ट रूप से देखा कि इंद्रिय सुख अल्प संतुष्टि, अधिक पीड़ा और अधिक निराशा प्रदान करते हैं, और उनमें कितना बड़ा खतरा है। लेकिन जब तक मैंने इंद्रिय सुखों से परे, अस्वास्थ्यकर अवस्थाओं से परे, या उससे भी अधिक शांतिपूर्ण अवस्था को प्राप्त नहीं किया, तब तक मैंने महसूस किया कि मैं अभी भी इंद्रिय सुखों की ओर आकर्षित हो सकता हूँ। लेकिन जब मैंने उचित बुद्धि से स्पष्ट रूप से देखा कि इंद्रिय सुख अल्प संतुष्टि, अधिक पीड़ा और अधिक निराशा प्रदान करते हैं, और उनमें कितना बड़ा खतरा है, और मैंने इंद्रिय सुखों से परे, अस्वास्थ्यकर अवस्थाओं से परे, या उससे भी अधिक शांतिपूर्ण अवस्था को प्राप्त कर लिया, तब मैंने महसूस किया कि मैं अब इंद्रिय सुखों की ओर आकर्षित नहीं हूँ।

और इंद्रिय सुखों में तृप्ति क्या है? महानामा, इंद्रिय सुख के ये पाँच सूत्र हैं: आँखों से पहचाने जाने वाले रूप, कानों से पहचाने जाने वाली ध्वनियाँ, नाक से पहचाने जाने वाली गंध, जीभ से पहचाने जाने वाले स्वाद और शरीर द्वारा अनुभव किए जाने वाले स्पर्शनीय पदार्थ, जो

वांछित, आकर्षक और मनभावन होते हैं, इंद्रिय इच्छा से जुड़े होते हैं और कामवासना को उत्तेजित करते हैं। इंद्रिय सुखों के मामले में यही खतरा है: परलोक में दुखों का अंबार, जिसका कारण, स्रोत और आधार केवल इंद्रिय सुख ही होगा।

अब, महानामा, एक बार मैं राजगृह में गिद्ध शिखर (जिसे 'ईगल शिखर' भी कहा जाता है) नामक पर्वत पर रह रहा था। उस समय इसिगिली की ढलानों पर स्थित काली चट्टान पर रहने वाले कई निगंथ लगातार खड़े होकर अभ्यास कर रहे थे और बैठने का त्याग कर रहे थे। परिश्रम के कारण उन्हें असहनीय पीड़ा, व्याकुलता और चुभन का अनुभव हो रहा था। (जैन धर्म में लोग आत्म-दंड का एक चरम रूप अपनाते थे, इस विश्वास के साथ कि इससे उनके पिछले कर्मों का प्रायश्चित हो जाएगा।)

फिर, जब शाम हुई, तो मैं ध्यान से उठा और वहाँ मौजूद निगंथों के पास गया। मैंने उनसे पूछा: मित्रों, आप बैठने का त्याग करके लगातार खड़े रहने का अभ्यास क्यों करते हैं, और परिश्रम के कारण पीड़ादायक, कष्टदायक और चुभने वाली अनुभूतियाँ क्यों अनुभव करते हैं?

यह सुनकर उन्होंने उत्तर दिया: "मित्र, निगंथ नटपुत्त सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं और उनका दावा है कि उन्हें पूर्ण ज्ञान और दृष्टि प्राप्त है, जैसा कि वे कहते हैं: 'चाहे मैं चल रहा हूँ, खड़ा हूँ, सो रहा हूँ या जाग रहा हूँ, ज्ञान और दृष्टि निरंतर और निर्बाध रूप से मेरे पास मौजूद हैं।' वे कहते हैं: 'निगंथों, तुमने अतीत में बुरे कर्म किए हैं; उन्हें कठोर तपस्या करके नष्ट करो। और जब तुम अभी और यहीं शरीर, वाणी और मन से संयमित हो, तो यह भविष्य के लिए कोई बुरा कर्म न करना है। अतः तपस्या द्वारा अतीत के कर्मों का नाश करके और कोई नया कर्म न करके, भविष्य में कोई परिणाम नहीं होगा। भविष्य में कोई परिणाम न होने से कर्म का नाश होता है। कर्म के नाश से दुख का नाश होता है। दुख के नाश से भावना का नाश होता है। भावना के नाश से सभी दुख समाप्त हो जाएंगे। यही वह सिद्धांत है जिसे हम स्वीकार करते हैं और इससे संतुष्ट हैं।'

जब यह कहा गया, तो मैंने उनसे कहा: लेकिन, दोस्तों, क्या आप जानते हैं कि आप अतीत में मौजूद थे, और ऐसा नहीं है कि आप मौजूद नहीं थे?

'नहीं, दोस्त।'

लेकिन दोस्तों, क्या आप जानते हैं कि आपने अतीत में बुरे कर्म किए और उनसे परहेज नहीं किया?

'नहीं, दोस्त।'

लेकिन दोस्तों, क्या आप जानते हैं कि आपने ऐसे-ऐसे बुरे काम किए हैं?

'नहीं, दोस्त।'

लेकिन दोस्तों, क्या आप जानते हैं कि कितना दुख पहले ही समाप्त हो चुका है, या कितना दुख अभी समाप्त होना बाकी है, या जब इतना दुख समाप्त हो जाएगा तो सभी दुख समाप्त हो जाएंगे?

'नहीं, दोस्त।'

लेकिन दोस्तों, क्या आप जानते हैं कि अस्वस्थ अवस्थाओं का त्याग क्या होता है और स्वस्थ अवस्थाओं का विकास अभी और यहीं क्या होता है?

'नहीं, दोस्त।'

अतः मित्रों, ऐसा प्रतीत होता है कि आप यह नहीं जानते कि आप अतीत में विद्यमान थे और यह सत्य नहीं है कि आप विद्यमान नहीं थे; या यह कि आपने अतीत में बुरे कर्म किए और उनसे विमुख नहीं हुए; या यह कि आपने फलां-फलां बुरे कर्म किए; या यह कि इतना कष्ट पहले ही समाप्त हो चुका है, या इतना कष्ट अभी समाप्त होना बाकी है, या यह कि जब इतना कष्ट समाप्त हो जाएगा तो समस्त कष्ट समाप्त हो जाएंगे; या यह कि अस्वास्थ्यकर अवस्थाओं का त्याग क्या है और इस समय सुखदायक अवस्थाओं का विकास क्या है। ऐसी स्थिति में, जो लोग संसार में हत्यारे, रक्तरंजित दुष्ट कर्म करने वाले हैं, जब वे मनुष्यों के बीच पुनर्जन्म लेते हैं, तो निगंथों के रूप में तपस्वी जीवन व्यतीत करते हैं।

'मित्र गौतम, सुख सुख से नहीं, बल्कि कष्ट से प्राप्त होता है। यदि सुख सुख से ही प्राप्त होता, तो मगध के राजा बिम्बिसार भी सुख प्राप्त कर लेते, क्योंकि वे पूज्य गौतम से भी अधिक सुख में लीन रहते हैं।'

निज्ञाततः पूज्य निगंथों ने वे शब्द जल्दबाजी और बिना सोचे-समझे कहे हैं। बल्कि मुझसे यह पूछा जाना चाहिए: अधिक आनंद में कौन रहता है, मगध के राजा बिम्बिसार या पूज्य गौतम?

"हे मित्र गौतम, हमने वे शब्द जल्दबाजी में और बिना सोचे-समझे कह दिए। खैर, छोड़ो। अब हम पूज्य गौतम से पूछते हैं: अधिक आनंद में कौन रहता है, मगध के राजा बिम्बिसार या पूज्य गौतम?"

तो मित्रों, मैं आपसे एक प्रश्न पूछूंगा। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दीजिए। मित्रों, आपका क्या विचार है? क्या मगध के राजा बिम्बिसार सात दिन और सात रात बिना शरीर हिलाए या एक शब्द बोले, परम सुख का अनुभव कर सकते हैं?

नहीं, दोस्त।

क्या मगध के राजा बिम्बिसार बिना शरीर हिलाए और बिना एक शब्द बोले छह, पांच, चार, तीन या दो दिन और दो रातों तक परम सुख का अनुभव कर सकते हैं? क्या वे एक दिन और एक रात भी इस सुख का अनुभव कर सकते हैं?

'नहीं, दोस्त।'

लेकिन मित्रों, मैं बिना शरीर हिलाए-डुलाए और बिना एक शब्द बोले सात दिन और सात रातों तक परम आनंद का अनुभव कर सकता हूँ। आप क्या सोचते हैं मित्रों? ऐसे में, अधिक आनंद में कौन रहता है, मगध के राजा बिम्बिसार या मैं?

"इस प्रकार, पूज्य गौतम मगध के राजा बिम्बिसार से भी अधिक आनंदित रहते हैं।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा। महानामा शाक्य भगवान बुद्ध के शब्दों से संतुष्ट और प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.5अनुमना सुत्त(15)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय पूज्य महा मोग्गलाना भग्गा देश में सुमसुमारा पहाड़ियों के बीच भेषकला वन में स्थित हिरण उद्यान में रहते थे। तब पूज्य महा मोग्गलाना ने भिक्षुओं को संबोधित किया।

भले ही भिक्षु सलाह मानने को तैयार हों, यदि वे अनुशासनहीन हों, अनुशासनहीन बातें करते हों, सलाह का पालन न करते हों, तो साधुओं को उन्हें सलाह न देने और उनका विश्वास न लेने का विचार करना चाहिए। हे मित्रों, अनुशासनहीनता क्या है? बुरी इच्छाओं में डूबा हुआ भिक्षु अनुशासनहीनता का शिकार होता है। अपनी प्रशंसा करते हुए दूसरों की निंदा करने वाला भिक्षु अनुशासनहीनता का शिकार होता है।

फिर क्रोधित भिक्षु उस क्रोध से अभिभूत हो जाता है। क्रोधित और क्रोध से अभिभूत भिक्षु अनियंत्रित हो जाता है। फिर क्रोधित भिक्षु द्वेष रखता है। क्रोधित और द्वेष रखने वाला भिक्षु अनियंत्रित हो जाता है। क्रोधित होने पर भिक्षु का स्वभाव शाप देने वाला हो जाता है। क्रोधित और क्रोध के कारण शाप देने वाला भिक्षु अनियंत्रित हो जाता है। क्रोधित होने पर भिक्षु क्रोधी शब्द बोलता है। क्रोधित और क्रोधी शब्द बोलने वाला भिक्षु अनियंत्रित हो जाता है।

डांट पड़ने पर भिक्षु पलटवार करता है। डांट खाने वाले भिक्षु का पलटवार करना अनुशासनहीनता है। डांट पड़ने पर भिक्षु बदले में डांटता है। डांट खाने वाले भिक्षु का पलटवार करना अनुशासनहीनता है। डांट पड़ने पर भिक्षु पलटवार करता है। डांट खाने वाले भिक्षु का पलटवार करना अनुशासनहीनता है। फिर से डांट पड़ने पर भिक्षु प्रश्न से बचता है और क्रोध और असंतोष दिखाता है। डांट खाने वाले भिक्षु का प्रश्न से बचना और क्रोधित और असंतुष्ट होना अनुशासनहीनता है।

फटकारा गया भिक्षु उपदेश स्वीकार नहीं करता। फटकारा गया भिक्षु उपदेश स्वीकार नहीं करता, यह एक अनुशासनहीनता है। भिक्षु फिर पाखंडी और निर्दयी हो जाता है। पाखंडी और निर्दयी होना अनुशासनहीनता है। भिक्षु फिर ईर्ष्यालु और स्वार्थी हो जाता है। ईर्ष्यालु और स्वार्थी होना अनुशासनहीनता है। भिक्षु फिर धूर्त और कपटी हो जाता है। कपटी और कपटी होना अनुशासनहीनता है। भिक्षु फिर हठी और अहंकारी हो जाता है।

हठी और अहंकारी भिक्षु का व्यवहार अनुशासनहीनता की निशानी है। सांसारिकता से ग्रसित भिक्षु भी उससे दृढ़तापूर्वक चिपके रहते हैं और उसे छोड़ना उनके लिए कठिन होता है। सांसारिक विचारों से दृढ़तापूर्वक चिपके रहने और उन्हें छोड़ना उनके लिए कठिन होने के कारण, सांसारिक भिक्षु का व्यवहार अनुशासनहीनता की निशानी है। .यद्यपि भिक्षु सलाह न मांगें, विनम्र स्वभाव के हों, धैर्यवान हों और सलाह मिलने पर आदरपूर्वक उसका सम्मान करें, तब भी भिक्षुओं को सलाह देने और उन्हें विश्वास में लेने के बारे में सोचना चाहिए।

हे भिक्षुओं, सौम्य गुण क्या हैं? बुरी इच्छाओं से मुक्त भिक्षु सौम्य गुण है। स्वयं की प्रशंसा न करने वाला और दूसरों की निंदा न करने वाला भिक्षु सौम्य गुण है। क्रोधित न होने वाला और द्वेष न रखने वाला भिक्षु सौम्य गुण है। क्रोधित न होने वाला और दूसरों को शाप न देने वाला भिक्षु सौम्य गुण है। क्रोधित न होने वाला और दूसरों को शाप न देने वाला भिक्षु सौम्य गुण है। डांट पड़ने पर पलटवार न करने वाला भिक्षु सौम्य गुण है। डांट पड़ने पर पलटवार न करने वाला भिक्षु सौम्य गुण है। डांट खाने पर बातचीत को दूसरी दिशा में न ले जाने वाला और क्रोध या असंतोष न दिखाने वाला भिक्षु सौम्य गुण है। डांट खाने पर नसीहत स्वीकार करने वाला भिक्षु सौम्य गुण है। पाखंडी न होने वाला और दयालु भिक्षु सौम्य गुण है। फिर वही बात कि ईर्ष्यालु और स्वार्थी न होने वाला भिक्षु एक सौम्य गुण है। फिर वही बात कि धूर्त और कपटी न होने वाला भिक्षु एक सौम्य गुण है। फिर वही बात कि हठी न होने वाला और स्वयं को बहुत बड़ा न समझने वाला भिक्षु एक सौम्य गुण है।

मित्रों, स्वयं भिक्षु द्वारा ही यह अवलोकन किया जाना चाहिए: मुझे बुरी इच्छाओं से ग्रस्त व्यक्ति पसंद नहीं है, ठीक उसी प्रकार यदि मैं बुरी इच्छाओं से ग्रस्त हो जाऊं तो दूसरे मुझसे घृणा करेंगे। यह जानते हुए, मुझे बुरी इच्छाओं से ग्रस्त न होने का चिंतन करना चाहिए। मुझे स्वयं की प्रशंसा करने और दूसरों की निंदा करने वाला व्यक्ति पसंद नहीं है, ठीक उसी प्रकार यदि मैं स्वयं की प्रशंसा करूं और दूसरों की निंदा करूं तो मुझसे घृणा की जाएगी। यह जानते हुए, मुझे स्वयं की प्रशंसा और दूसरों की निंदा करते समय सावधान रहने का चिंतन करना चाहिए।

मुझे क्रोधी व्यक्ति पसंद नहीं है, ठीक उसी तरह, यदि मैं क्रोध से ग्रस्त हो जाऊं तो लोग मुझसे घृणा करेंगे। यह जानते हुए मुझे क्रोध से बचने के लिए विचार करना चाहिए। मुझे द्वेष रखने वाला व्यक्ति पसंद नहीं है, ठीक उसी तरह, यदि क्रोध के कारण मेरे मन में द्वेष हो तो दूसरे मुझसे घृणा करेंगे। यह जानते हुए मुझे द्वेष न रखने के लिए विचार करना चाहिए। मुझे गाली देने वाला व्यक्ति पसंद नहीं है, ठीक उसी तरह, यदि मेरा स्वभाव गाली देने वाला हो तो दूसरे मुझसे घृणा करेंगे। यह जानते हुए मुझे अपने गाली देने के स्वभाव को दूर करने के लिए विचार करना चाहिए।

मुझे क्रोधित होकर बोलने वाला व्यक्ति पसंद नहीं है, ठीक उसी तरह जैसे अगर मैं क्रोधित होकर बोलूँ तो दूसरे मुझसे घृणा करेंगे। यह जानते हुए, मुझे इस स्वभाव पर काबू पाने के लिए विचार करना चाहिए। मुझे वह व्यक्ति पसंद नहीं है जो डांटने पर पलटवार करता है, ठीक उसी तरह जैसे अगर मैं डांटने पर पलटवार करूँ तो मुझसे घृणा की जाएगी। यह जानते हुए, मुझे डांटने पर पलटवार नहीं करना चाहिए। मुझे वह व्यक्ति पसंद नहीं है जो सवाल से बचता है और डांटने पर क्रोधित और असंतुष्ट हो जाता है, अगर मैं ऐसा करूँ तो दूसरे मुझसे घृणा करेंगे।

मुझे डांट पड़ने पर सवाल से बचना नहीं चाहिए और न ही गुस्सा या असंतुष्ट होना चाहिए। मुझे वह व्यक्ति पसंद नहीं जो डांट खाने के बाद भी नसीहत न माने। अगर मैं ऐसा करता तो दूसरे मुझसे नफरत करते, इसलिए मुझे डांट खाने के बाद भी नसीहत माननी चाहिए। मुझे निर्दयी पाखंडी पसंद नहीं। अगर मैं निर्दयी पाखंडी बन जाता, तो दूसरे मुझसे नफरत करते, इसलिए मुझे दयालु होना चाहिए और पाखंडी नहीं बनना चाहिए। मुझे ईर्ष्यालु और स्वार्थी व्यक्ति पसंद नहीं। अगर मैं ईर्ष्यालु और स्वार्थी होता, तो दूसरे मुझसे नफरत करते, इसलिए मुझे ईर्ष्यालु और स्वार्थी नहीं होना चाहिए।

मुझे धूर्त और कपटी व्यक्ति पसंद नहीं है। यदि मैं धूर्त और कपटी होता, तो दूसरे मुझसे घृणा करते। यह जानते हुए मुझे धूर्त और कपटी नहीं होना चाहिए। मुझे हठी और अहंकारी व्यक्ति पसंद नहीं है। यदि मैं हठी और अहंकारी होता, तो दूसरे मुझसे घृणा करते। यह जानते हुए मुझे हठी और अहंकारी नहीं होना चाहिए। मुझे सांसारिक व्यक्ति पसंद नहीं है जो अपने विचारों पर अडिग रहता है और उन्हें छोड़ना मुश्किल पाता है। यदि मैं ऐसा होता, तो दूसरे मुझसे घृणा करते। यह जानते हुए मुझे अपने विचारों पर अडिग नहीं रहना चाहिए और उन्हें आसानी से छोड़ देना चाहिए।

भिक्षु को फिर से चिंतन करना चाहिए, क्या मुझमें कोई बुरी इच्छाएँ हैं? यदि चिंतन करते समय भिक्षु को कोई बुरी इच्छाएँ दिखाई देती हैं, तो उसे उन बुरी इच्छाओं को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को कोई बुरी इच्छाएँ दिखाई देती हैं, तो उसे दिन-रात प्रसन्नतापूर्वक पुण्य कर्मों का अभ्यास करना चाहिए। भिक्षु को फिर से चिंतन करना चाहिए, क्या मैं अपनी प्रशंसा करता हूँ और दूसरों की निंदा करता हूँ? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को अपनी प्रशंसा करते और दूसरों की निंदा करते हुए दिखाई देता है, तो उसे उन बुरी इच्छाओं को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं की प्रशंसा न करे और दूसरों की निंदा न करे, तो उसे दिन-रात प्रसन्नतापूर्वक इन पुण्य कर्मों का अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को यह भी सोचना चाहिए कि क्या मैं क्रोध से ग्रसित हूँ? चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को क्रोध से ग्रसित पाए, तो उसे इन बुरी बातों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को क्रोध से ग्रसित न पाए, तो उसे प्रसन्नतापूर्वक इन पुण्य कर्मों का अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को यह भी सोचना चाहिए कि क्या मैं किसी से द्वेष रखता हूँ?

चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को द्वेष से क्रोधित पाता है, तो उसे उन बुरी बातों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को क्रोधित और द्वेष रहित पाता है, तो उसे दिन-रात उन पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक और आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, क्या मैं क्रोधित मन से शाप देता हूँ? चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को शाप देते और क्रोधित पाता है, तो उसे उन बुरी बातों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को क्रोधित और शाप न देते हुए पाता है, तो उसे दिन-रात उन पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक और आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, क्या मैं क्रोधित शब्द बोलता हूँ?

चिंतन करते समय यदि भिक्षु अपने आप को क्रोधित शब्दों का उच्चारण करते हुए पाता है, तो उसे उन बुरी बातों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि वह अपने आप को क्रोधित शब्दों का उच्चारण न करते हुए पाता है, तो उसे दिन-रात पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक अभ्यास करना चाहिए। भिक्षु को फिर से चिंतन करना चाहिए, क्या मैं डांट पड़ने पर पलटवार करता हूँ? चिंतन करते समय यदि भिक्षु अपने आप को डांट पड़ने पर पलटवार करते हुए पाता है, तो उसे उन बुरी बातों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु अपने आप को डांट पड़ने पर पलटवार न करते हुए पाता है, तो उसे पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक अभ्यास करना चाहिए। भिक्षु को फिर से चिंतन करना चाहिए, क्या मैं डांटे जाने वाले व्यक्ति को नीचा दिखाता हूँ?

जब भिक्षु चिंतन करे, यदि वह स्वयं को फटकारे गए व्यक्ति का अपमान करते हुए पाए, तो उसे उन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। जब भिक्षु चिंतन करे, यदि वह स्वयं को फटकारे गए व्यक्ति का अपमान न करते हुए पाए, तो उसे उन पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक और आनंदित होकर अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, क्या मैं फटकारे गए व्यक्ति को फटकारता हूँ? जब भिक्षु चिंतन करे, यदि वह स्वयं को फटकारे गए व्यक्ति को फटकारते हुए पाए, तो उसे उन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। जब वह चिंतन करे, यदि वह स्वयं को फटकारे गए व्यक्ति को फटकारते हुए न पाए, तो उसे उन पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक और आनंदित होकर अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, क्या मैं फटकारे गए व्यक्ति से बचकर क्रोध और असंतोष प्रकट करता हूँ?

चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को फटकार से बचते हुए और क्रोध एवं असंतोष प्रकट करते हुए पाता है, तो उसे उन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि वह स्वयं को फटकार से बचते हुए और क्रोध एवं असंतोष प्रकट न करते हुए पाता है, तो उसे उन पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक और आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को यह चिंतन करना चाहिए कि क्या मैं फटकार प्राप्त करने वाले से उपदेश ग्रहण करता हूँ? चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को फटकार प्राप्त करने वाले से उपदेश ग्रहण न करते हुए पाता है, तो उसे उन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को फटकार प्राप्त करने वाले से उपदेश ग्रहण करते हुए पाता है, तो उसे उन पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक और आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को यह चिंतन करना चाहिए कि क्या मैं निर्दयी पाखंडी हूँ?

जब भिक्षु आत्मचिंतन करे और अपने आप को निर्मम पाखंडी समझे, तो उसे उन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। जब वह आत्मचिंतन करे और अपने आप को दयालु और पाखंडी न समझे, तो उसे दिन-रात पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक लगन से अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को आत्मचिंतन करना चाहिए, क्या मैं ईर्ष्यालु और स्वार्थी हूँ? जब भिक्षु आत्मचिंतन करे और अपने आप को ईर्ष्यालु और स्वार्थी समझे, तो उसे उन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। जब भिक्षु आत्मचिंतन करे और अपने आप को ईर्ष्यालु या स्वार्थी न समझे, तो उसे दिन-रात पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक लगन से अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को आत्मचिंतन करना चाहिए, क्या मैं धूर्त और कपटी हूँ?

चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को धूर्त और कपटी पाता है, तो उसे इन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को न तो धूर्त और न ही कपटी पाता है, तो उसे प्रसन्न और आनंदित रहना चाहिए और दिन-रात पुण्य कर्मों का अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, क्या मैं हठी हूँ और क्या मैं अपने बारे में बहुत ऊँचा सोचता हूँ? चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को हठी और अपने बारे में बहुत ऊँचा सोचता हुआ पाता है, तो उसे इन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

चिंतन करते समय यदि भिक्षु स्वयं को हठी और अहंकारी न पाए, तो उसे दिन-रात पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक अभ्यास करना चाहिए। फिर भिक्षु को यह भी चिंतन करना चाहिए, क्या मैं सांसारिक विचारों से दृढ़तापूर्वक चिपका हुआ हूँ और उन्हें त्यागने में कठिनाई महसूस कर रहा हूँ? चिंतन करते समय यदि वह स्वयं को दृढ़तापूर्वक विचारों से चिपका हुआ पाए और उन्हें त्यागने में कठिनाई महसूस कर रहा हो, तो उसे उन बुरी चीजों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि वह स्वयं को दृढ़तापूर्वक विचारों से चिपका हुआ न पाए और उन्हें आसानी से त्याग दे, तो उसे प्रसन्नतापूर्वक पुण्य कर्मों में दिन-रात अभ्यास करना चाहिए।

चिंतन करते समय यदि भिक्षु को ये सभी बुराइयाँ दूर न होती दिखाई दें, तो उसे इन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि उसे ये सभी बुराइयाँ दूर होती दिखाई दें, तो उसे दिन-रात पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक लगन से अभ्यास करना चाहिए। जैसे कोई स्त्री, पुरुष, बच्चा या युवक जो सजावट का शौकीन हो, दर्पण, किसी साफ सतह या पानी के कटोरे में अपना प्रतिबिंब देखता है और उसमें कोई धूल का कण देखकर उसे दूर करने का प्रयास करता है, और धूल का कण न देखकर प्रसन्न होता है। उसी प्रकार, चिंतन करते समय यदि भिक्षु को ये सभी बुरी बातें दिखाई दें, तो उसे इन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि उसे ये बुराइयाँ दिखाई न दें, तो उसे दिन-रात पुण्य कर्मों में प्रसन्नतापूर्वक लगन से अभ्यास करना चाहिए।

आदरणीय महा मोग्गलाना ने ऐसा कहा और उन भिक्षुओं को ये शब्द सुनकर अत्यंत प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.6सीतोखिला सुत्त(16)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। वहीं से भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "हे भिक्षुओं, यदि भिक्षु के मन में स्थित पाँचों बाणों का निवारण न हो और पाँचों बंधन न टूटें, तो उस भिक्षु का धर्मोपदेश में विकास और उन्नति संभव नहीं है। उसके मन के पाँचों बाणों का निवारण क्यों नहीं हुआ? यहाँ भिक्षु संशय में है और गुरु को विश्वासपूर्वक स्वीकार नहीं करता। जब वह संशय में होता है और गुरु को विश्वासपूर्वक स्वीकार नहीं करता, तो उसका मन बाणों के निवारण के लिए प्रयास नहीं करता। यह मन में स्थित पहला बाण है जिसका निवारण नहीं हुआ। फिर भिक्षु संशय में है और शिक्षा को विश्वासपूर्वक स्वीकार नहीं करता।"

जब भिक्षु को संदेह होता है और वह शिक्षा को पूर्ण विश्वास के साथ स्वीकार नहीं करता, तो उसका मन उस संदेह को दूर करने का प्रयास नहीं करता। यह मन में उत्पन्न दूसरा अनसुलझा तीर है। फिर भिक्षु को संदेह होता है और वह भिक्षु समुदाय को पूर्ण विश्वास के साथ स्वीकार नहीं करता। जब भिक्षु को संदेह होता है और वह भिक्षु समुदाय को पूर्ण विश्वास के साथ स्वीकार नहीं करता, तो उसका मन उस संदेह को दूर करने का प्रयास नहीं करता। यह मन में उत्पन्न तीसरा अनसुलझा तीर है। फिर भिक्षु को संदेह होता है और वह प्रशिक्षण को पूर्ण विश्वास के साथ स्वीकार नहीं करता। जब भिक्षु को संदेह होता है और वह प्रशिक्षण को पूर्ण विश्वास के साथ स्वीकार

नहीं करता, तो उसका मन उस संदेह को दूर करने का प्रयास नहीं करता। यह मन में उत्पन्न चौथा अनसुलझा तीर है। फिर भिक्षु अपने सहपाठियों से क्रोधित होता है, अप्रसन्न और आहत होता है, और उसका मन उस संदेह को दूर करने का प्रयास नहीं करता। यह मन में उत्पन्न पाँचवाँ अनसुलझा तीर है। मन में उठने वाले ये पांच तीर दूर नहीं होते।

मन के पाँच बंधन कैसे नहीं टूटते? यहाँ भिक्षु ने लोभ, स्वार्थ, प्रेम, प्यास और कामुकता की तृष्णा को दूर नहीं किया है। जब उसने लोभ, स्वार्थ, प्रेम, प्यास और कामुकता की तृष्णा को दूर नहीं किया है, तो उसका मन इन्हें दूर करने का प्रयास नहीं करता। यह पहला बंधन है जो नहीं टूटा है। फिर भिक्षु ने लोभ, स्वार्थ, प्रेम, प्यास और शरीर की तृष्णा को दूर नहीं किया है। जब भिक्षु ने लोभ, स्वार्थ, प्रेम, प्यास और शरीर की तृष्णा को दूर नहीं किया है, तो उसका मन इन्हें दूर करने का प्रयास नहीं करता। यह दूसरा बंधन है जो नहीं टूटा है। फिर भिक्षु ने लोभ, स्वार्थ, प्रेम, प्यास और भौतिक चीजों की तृष्णा को दूर नहीं किया है। जब भिक्षु ने लोभ, स्वार्थ, प्रेम, प्यास और भौतिक चीजों की तृष्णा को दूर नहीं किया है, तो उसका मन इन्हें दूर करने का प्रयास नहीं करता। यह तीसरा बंधन है जो नहीं टूटा है।

फिर, जब भिक्षु अपनी इच्छानुसार भोजन करता है, तो वह आलस्य, स्पर्श और नींद के सुखों से बंधा रहता है। जब भिक्षु अपनी इच्छानुसार भोजन करता है, तो वह आलस्य, स्पर्श और नींद के सुखों से बंधा रहता है, और उसका मन इन बंधनों को दूर करने के लिए प्रयास नहीं करता। यह चौथा बंधन है जो टूटा नहीं है। फिर, जब भिक्षु इन गुणों और तपस्याओं का पालन करते हुए और पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए यह कामना करता है कि काश मैं उन देवताओं के साथ रहूँ, या काश मैं कोई विशेष देवता बन जाऊँ, तो जब भिक्षु गुणों और तपस्याओं का पालन करते हुए और पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए किसी विशेष देवता के साथ रहने या कोई विशेष देवता बनने की कामना करता है, तो उसका मन इन बंधनों को दूर करने के लिए प्रयास नहीं करता। यह पाँचवाँ बंधन है जो टूटा नहीं है। ये मन के पाँच बंधन हैं जो टूटे नहीं हैं। यदि उस भिक्षु के मन में स्थित पाँच तीर दूर नहीं होते, पाँच बंधन नहीं टूटते, तो इस युग में उसका विकास और उन्नति संभव नहीं है।

जिस भिक्षु के मन में पाँचों बाण उच्छेदित हो जाते हैं और पाँचों बंधन टूट जाते हैं, उसका इस युग में विकास और उन्नति संभव है। मन के पाँचों बाण कैसे उच्छेदित होते हैं? यहाँ भिक्षु संशयहीन होकर गुरु को विश्वासपूर्वक स्वीकार करता है। जब वह संशयहीन होकर गुरु को विश्वासपूर्वक स्वीकार करता है, तो उसका मन बाण उच्छेदित करने का प्रयास करता है। इस प्रकार मन का पहला बाण उच्छेदित हो जाता है। फिर, भिक्षु संशयहीन होकर शिक्षा को विश्वासपूर्वक स्वीकार करता है। जब वह संशयहीन होकर शिक्षा को विश्वासपूर्वक स्वीकार करता है, तो उसका मन बाण उच्छेदित करने का प्रयास करता है। इस प्रकार मन का दूसरा बाण उच्छेदित हो जाता है।

फिर, भिक्षु संदेह नहीं करता, और विश्वास के साथ भिक्षु समुदाय को स्वीकार करता है। जब वह संदेह नहीं करता और विश्वास के साथ भिक्षु समुदाय को स्वीकार करता है, तो उसका मन इस तीसरे तीर को दूर करने का प्रयास करता है। मन का यह तीसरा तीर दूर हो जाता है। फिर, भिक्षु संदेह नहीं करता और विश्वास के साथ प्रशिक्षण को स्वीकार करता है। जब वह संदेह नहीं करता और विश्वास के साथ प्रशिक्षण को स्वीकार करता है, तो उसका मन इस चौथे तीर को दूर करने का प्रयास करता है। फिर, भिक्षु पवित्र जीवन में सहपाठियों से क्रोधित नहीं होता, प्रसन्न होता है और दुखी नहीं होता, उसका मन इस पाँचवें तीर को दूर करने का प्रयास करता है। मन का यह पाँचवाँ तीर दूर हो जाता है। इस प्रकार मन के पाँचों तीर दूर हो जाते हैं।

मन के पाँच बंधनों को कैसे काटा जाता है? यहाँ भिक्षु ने लोभ, वासना, प्रेम, प्यास और कामुकता की तृप्ति को दूर कर दिया है। जब भिक्षु लोभ, वासना, प्रेम, प्यास और कामुकता की तृप्ति को दूर कर देता है, तो उसका मन इन बंधनों को दूर करने का प्रयास करता है। यह पहला बंधन है जिसे काटा जाता है। फिर भिक्षु ने लोभ, वासना, प्रेम, प्यास और देह की तृप्ति को दूर कर दिया है। जब भिक्षु लोभ, वासना, प्रेम, प्यास और देह की तृप्ति को दूर कर देता है, तो उसका मन इन बंधनों को दूर करने का प्रयास करता है। यह दूसरा बंधन है जिसे काटा जाता है।

भिक्षु ने लोभ, स्वार्थ, प्रेम, प्यास और भौतिक लालसा को त्याग दिया है। जब भिक्षु भौतिक लालसा, स्वार्थ, प्रेम, प्यास और लालसा को त्याग देता है, तो उसका मन इन लालसाओं को दूर करने का प्रयास करता है। यह तीसरा बंधन है जो टूटता है। फिर, भिक्षु अपनी इच्छा अनुसार भोजन न करने पर आलस्य, स्पर्श और नींद के सुखों से मुक्त हो जाता है। जब भिक्षु अपनी इच्छा अनुसार भोजन न करने पर आलस्य, स्पर्श और नींद के सुखों से मुक्त हो जाता है, तो उसका मन इन लालसाओं को दूर करने का प्रयास करता है। यह चौथा बंधन है जो टूटता है।

फिर भी, जो भिक्षु इन गुणों और तपस्याओं का पालन करते हुए पवित्र जीवन व्यतीत करता है, वह यह इच्छा नहीं रखता कि काश मैं उन देवताओं के साथ होता या काश मैं कोई विशेष देवता होता। जब भिक्षु गुणों और तपस्याओं का पालन करता है और पवित्र जीवन व्यतीत करता है, किसी विशेष देवता समूह में शामिल होने या स्वयं देवता बनने की इच्छा नहीं रखता, तो उसका मन इन बंधनों को दूर

करने का प्रयास करता है। यही पाँचवाँ बंधन है जिसे काटा गया है। ये मन के पाँच बंधन हैं जिन्हें काटा गया है। जब भिक्षु मन के पाँचों बाणों को दूर कर देता है और पाँचों बंधनों को काट देता है, तभी इस युग में उसका विकास और उन्नति संभव है।

भिक्षु रुचि, एकाग्रता, प्रयास और दृढ़ संकल्प से युक्त क्षमता का विकास करता है। वह मन, एकाग्रता, प्रयास और दृढ़ संकल्प से युक्त क्षमता का विकास करता है। वह विवेक, एकाग्रता, प्रयास और दृढ़ संकल्प से युक्त क्षमता का विकास करता है। पाँचवाँ है परिश्रम। परिश्रम से पंद्रह तत्व प्राप्त होते हैं, इन पंद्रह तत्वों से युक्त होकर भिक्षु को ज्ञान प्राप्ति संभव होती है।

इस प्रकार जुए के श्रेष्ठ अंत तक पहुँचना संभव हो जाता है। जैसे मुर्गी आठ, दस या बारह दिनों तक अंडों पर बैठी रहती है, तब उसके मन में यह इच्छा जागती है कि चूजा अपने पैरों के नाखूनों या चोंच से अंडे तोड़कर बाहर क्यों न आ जाए। फिर चूजा अपने पैरों के नाखूनों या चोंच से अंडे तोड़कर सुरक्षित रूप से बाहर आ जाता है। इसी प्रकार इन पंद्रह गुणों से युक्त होकर भिक्षु के लिए ज्ञान प्राप्ति संभव हो जाती है, जुए के श्रेष्ठ अंत तक पहुँचना संभव हो जाता है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.7 वनपत्था सुत्त(17)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना:

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे।

वहाँ से भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, मैं आपको वन की विधि सिखाऊंगा, ध्यान से सुनो और उपस्थित रहो, मैं आपको सिखाऊंगा।"

भिक्षुओं, यहाँ एक भिक्षु एक विशेष वन क्षेत्र में निवास करता है। वहाँ निवास करने पर, अस्थापित ध्यान स्थापित नहीं होता, असंलग्न मन एकाग्र नहीं होता, न ही नष्ट हुई इच्छाएँ नष्ट होती हैं और न ही प्राप्त हुआ श्रेष्ठ उद्देश्य प्राप्त होता है, क्योंकि प्राणलोक के लिए चार आवश्यक वस्तुएँ - वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय आवश्यक औषधि - बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती हैं। उस भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, मैं इस वन क्षेत्र में निवास करता हूँ, इस वन में निवास करने से, अस्थापित ध्यान स्थापित नहीं होता, असंलग्न मन एकाग्र नहीं होता, न ही नष्ट हुई इच्छाएँ नष्ट होती हैं और न ही प्राप्त हुआ श्रेष्ठ उद्देश्य प्राप्त होता है, क्योंकि प्राणलोक के लिए चार आवश्यक वस्तुएँ - वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय आवश्यक औषधि - बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती हैं। भिक्षुओं, उसे उस वन क्षेत्र में निवास नहीं करना चाहिए, उसे उसे छोड़ देना चाहिए। रात हो या दिन।

हे भिक्षुओं, एक भिक्षु एक विशेष वन क्षेत्र में निवास करता है। वहाँ निवास करने पर, अस्थापित ध्यान स्थापित नहीं होता, असंलग्न मन एकाग्र नहीं होता, न नष्ट हुई इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं, और न ही प्राप्त हुए पुण्य कर्मों की प्राप्ति होती है, क्योंकि प्राणलोक की चार आवश्यक वस्तुएँ - वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ - सहजता से प्राप्त हो जाती हैं। उस भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, मैं इस वन क्षेत्र में निवास करता हूँ, इस वन में निवास करने से, अस्थापित ध्यान स्थापित नहीं होता, असंलग्न मन एकाग्र नहीं होता, न नष्ट हुई इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं, प्राणलोक कर्मों की आवश्यकताएँ नष्ट नहीं होतीं, क्योंकि प्राणलोक की चार आवश्यक वस्तुएँ - वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ - सहजता से प्राप्त हो जाती हैं। हे भिक्षु, चिंतन करो, मैं इस वन क्षेत्र में निवास करता हूँ। इस वन क्षेत्र में निवास करने से मेरी अस्थाई चेतना स्थापित नहीं होती, मेरा एकाग्र मन एकाग्र नहीं होता, मेरी अविचलित इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं और मेरे बंधन का मूल उद्देश्य प्राप्त नहीं होता। जैसे प्राणवास करने वालों के लिए वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ सहजता से प्राप्त हो जाती हैं। मैं वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताओं के लिए संन्यासी नहीं बना, फिर भी इस वन क्षेत्र में निवास करने से मेरी अस्थाई चेतना स्थापित नहीं होती, मेरा एकाग्र मन एकाग्र नहीं होता, मेरी अविचलित इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं और मेरे बंधन का मूल उद्देश्य प्राप्त नहीं होता। हे भिक्षुओं, जो भिक्षु इस वन क्षेत्र को छोड़ने का विचार कर रहे हैं, उन्हें वहाँ नहीं रहना चाहिए।

हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी वन क्षेत्र में निवास करता है, तो वहाँ निवास करने पर उसकी अनस्थापित चेतना स्थापित हो जाती है, उसका ध्यान भटकता नहीं, उसकी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और उसके द्वारा प्राप्त न किया गया पुण्य फल प्राप्त हो जाता है। जहाँ तक प्राणाधारण की आवश्यकताओं की बात है, वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यक वस्तुएँ बड़ी कठिनाई से एकत्रित होती हैं। उस भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, मैं इस वन क्षेत्र में निवास करता हूँ, और इस वन क्षेत्र में निवास करने से मेरी अनस्थापित चेतना स्थापित हो जाती है, मेरा ध्यान भटकता नहीं, उसकी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और उसके द्वारा प्राप्त न किया गया पुण्य फल प्राप्त हो जाता है। जहाँ तक प्राणाधारण की आवश्यकताओं की बात है, वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यक वस्तुएँ बड़ी कठिनाई से एकत्रित होती हैं। मैंने वस्त्र, भोजन, आवास और बीमारी के समय आवश्यक वस्तुओं के लिए संन्यास नहीं लिया था, फिर भी इस वन क्षेत्र में रहने से मुझे अनगढ़ ध्यान स्थापित होता है, असंलग्न मन एकाग्र होता है, अविचलित इच्छाएँ नष्ट होती हैं और अनप्राप्त महान उद्देश्य प्राप्त होता है। ऐसा भिक्षु इस बात को ध्यान में रखते हुए उस वन क्षेत्र को न छोड़े, वहीं निवास करे।

हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी वन क्षेत्र में निवास करता है, तो वहाँ निवास करने पर उसकी अनस्थापित चेतना स्थापित हो जाती है, उसका ध्यान भटकता नहीं, उसकी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और जीवन का वह महान उद्देश्य प्राप्त हो जाता है जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। जहाँ तक प्राणवास की आवश्यकताओं की बात है, प्राणवास, वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ उसे सहजता से प्राप्त हो जाती हैं। उस भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, मैं इस वन क्षेत्र में निवास करता हूँ, और इस वन क्षेत्र में निवास करने से मेरी अनस्थापित चेतना स्थापित हो जाती है, मेरा ध्यान भटकता नहीं, मेरी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और जीवन का वह महान उद्देश्य प्राप्त हो जाता है जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। उस भिक्षु को यह सोचकर उस वन क्षेत्र को नहीं छोड़ना चाहिए, उसे जीवन भर वहीं निवास करना चाहिए।

हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी विशेष ग्राम, किसी विशेष बस्ती, किसी विशेष नगर, किसी विशेष राज्य, किसी विशेष व्यक्ति के अधीन रहता है, तो वह किसी विशेष व्यक्ति के अधीन रहता है। हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी विशेष व्यक्ति के अधीन रहता है, तो उसकी अस्थापित चेतना स्थापित नहीं होती, उसका ध्यान भंग नहीं होता, उसकी अविचल इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं और उसके द्वारा प्राप्त न किया गया पुण्य फल भी प्राप्त नहीं होता। ठीक उसी प्रकार, जैसे प्राणत्यागियों के लिए जीवन की चार आवश्यक वस्तुएँ - वस्त्र, भोजन, आवास और बीमार होने पर आवश्यक वस्तुएँ - बड़ी कठिनाई से एकत्रित होती हैं। उस भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, मैं इस व्यक्ति का सहारा लेकर रहता हूँ, इस व्यक्ति का सहारा लेकर रहने से मेरी अस्थापित चेतना स्थापित नहीं होती, मेरा असंलग्न मन एकाग्र नहीं होता, मेरी अविचलित इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं और बंधन का अप्राप्त श्रेष्ठ उद्देश्य प्राप्त नहीं होता। जहाँ तक प्राणवास की चार आवश्यक वस्तुओं, वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताओं का सवाल है, जो प्राणवास के लिए बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती हैं, भिक्षुओं को उस व्यक्ति का सहारा लेकर नहीं रहना चाहिए; उन्हें बिना बताए रात या दिन में उस व्यक्ति को छोड़ देना चाहिए, ताकि वह उनका पीछा न करे।

हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी व्यक्ति के सहारे रहता है, तो उसकी अस्थाई चेतना स्थापित नहीं होती, उसका असंलग्न मन एकाग्र नहीं होता, उसकी अशक्त इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं, और उसके बंधन का मूल उद्देश्य भी प्राप्त नहीं होता, क्योंकि प्राणलोक की चार आवश्यक वस्तुएँ - वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ - उसे सहजता से प्राप्त हो जाती हैं। उस भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, मैं इस व्यक्ति के सहारे रहता हूँ, इस प्रकार रहने से मेरी असंलग्न चेतना स्थापित नहीं होती, मेरा असंलग्न मन एकाग्र नहीं होता, मेरी असंलग्न इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं, और उसके बंधन का मूल उद्देश्य भी प्राप्त नहीं होता, क्योंकि प्राणलोक की चार आवश्यक वस्तुएँ - वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ - उसे सहजता से प्राप्त हो जाती हैं। हे भिक्षु, चिंतन करो, मैं इस व्यक्ति के सहारे रहता हूँ, इस प्रकार रहने से मेरी अचेतन चेतना स्थापित नहीं होती, मेरा एकाग्र मन एकाग्र नहीं होता, मेरी अचेतन इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं, और मेरे बंधन का मूल उद्देश्य प्राप्त नहीं होता। जैसे संन्यासी को वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ आसानी से मिल जाती हैं। मैं वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताओं के लिए संन्यासी नहीं बना, फिर भी इस व्यक्ति के सहारे रहने से मेरी अचेतन चेतना स्थापित नहीं होती, मेरा एकाग्र मन एकाग्र नहीं होता, मेरी अचेतन इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं और मेरे बंधन का मूल उद्देश्य प्राप्त नहीं होता। हे भिक्षुओं, उस भिक्षु को उस व्यक्ति को बिना बताए छोड़ देना चाहिए, ताकि वह उसका अनुसरण न करे।

हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी व्यक्ति के सहारे रहता है, तो इस प्रकार रहने से उसकी अस्थापित चेतना स्थापित हो जाती है, उसका ध्यान भटकता नहीं, उसकी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और बंधन का वह श्रेष्ठ उद्देश्य प्राप्त हो जाता है जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। जहाँ तक परलोक के लिए जीवन की आवश्यक वस्तुओं, जैसे वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताओं का एकत्रण कठिन होता है, उस भिक्षु को चिंतन करना चाहिए कि मैं इस व्यक्ति के सहारे रहता हूँ, इस प्रकार रहने से मेरी अस्थापित चेतना स्थापित हो जाती है, मेरा ध्यान भटकता नहीं, उसकी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और बंधन का वह श्रेष्ठ उद्देश्य प्राप्त हो जाता है जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। जहाँ तक परलोक के लिए जीवन की आवश्यक वस्तुओं, जैसे वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की

आवश्यकताओं का एकत्रण कठिन होता है। मैंने वस्त्रों, भोजन के टुकड़ों, आवासों और बीमारी के समय आवश्यक वस्तुओं के लिए संन्यास नहीं लिया, फिर भी इस व्यक्ति के साथ रहने से मेरी अनगढ़ चेतना स्थापित हो जाती है, मेरा असंलग्न मन एकाग्र हो जाता है, मेरी अविचल इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और मेरे बंधन का अनचाहा उद्देश्य प्राप्त हो जाता है। इसलिए, जो भिक्षु इस बात को समझे, उसे उस व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए, उसे नहीं छोड़ना चाहिए।

हे भिक्षुओं, जब कोई भिक्षु किसी विशेष व्यक्ति के सहारे रहता है, तो उस व्यक्ति के सहारे उसे अनस्थापित ध्यान स्थापित हो जाता है, उसका असंलग्न मन एकाग्र हो जाता है, उसकी अविचलित इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और उसके द्वारा प्राप्त न किया गया श्रेष्ठ उद्देश्य प्राप्त हो जाता है। जहाँ तक परलोक में रहने वाले भिक्षुओं के जीवन की आवश्यकताओं का सवाल है, वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ सहजता से प्राप्त हो जाती हैं। उस भिक्षु को चिंतन करना चाहिए, मैं इस व्यक्ति के सहारे रहता हूँ, इस प्रकार रहने से मुझे अनस्थापित ध्यान स्थापित हो जाता है, मेरा असंलग्न मन एकाग्र हो जाता है, उसकी अविचलित इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं और उसके द्वारा प्राप्त न किया गया श्रेष्ठ उद्देश्य प्राप्त हो जाता है। जहाँ तक परलोक में रहने वाले भिक्षुओं के जीवन की आवश्यकताओं का सवाल है, एक संन्यासी के रूप में, वस्त्र, भोजन, आवास और रोग के समय की आवश्यकताएँ सहजता से प्राप्त हो जाती हैं। उस भिक्षु को जीवन भर उस व्यक्ति का अनुसरण करना चाहिए, चाहे उसका पीछा किया जाए या न किया जाए।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 2.8मधुपिंडिका सुत्त(18)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने सुना है कि एक बार भगवान भगवान कपिलवस्तु के पास बरगद के उद्यान में शाक्यों के बीच रह रहे थे। तब सुबह तड़के, उन्होंने अपने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र एवं बाहरी वस्त्र लेकर कपिलवस्तु में भिक्षा मांगने गए। कपिलवस्तु में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने के बाद, भिक्षा मांगने के बाद वे दिनभर विश्राम करने के लिए वन में चले गए। वन में प्रवेश करके वे दिनभर विश्राम करने के लिए एक बेल के पौधे की जड़ में बैठ गए।

दंडपानी ("हाथ में छड़ी लिए") शाक्य पुरुष, व्यायाम के लिए टहलते हुए, महान वन में गए। महान वन में प्रवेश करते हुए, वे वहाँ पहुँचे जहाँ भगवान बुद्ध बिल्व वृक्ष के नीचे विराजमान थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उनसे विनम्रतापूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद, वे एक तरफ खड़े हो गए। वहाँ खड़े होकर उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "इस ध्यानमग्न व्यक्ति का सिद्धांत क्या है? यह क्या प्रचार करता है?"

"हे मित्र, मेरा सिद्धांत ऐसा है जिसमें मनुष्य ब्रह्मांड में किसी से भी झगड़ा नहीं करता, चाहे वह देव हों, मार हों, ब्रह्मा हों, ध्यानमग्न हों, पुरोहित हों, राजा हों या आम लोग हों; मेरा सिद्धांत ऐसा है जिसमें इंद्रिय सुखों से विरक्त, भ्रममुक्त, अनिश्चितता से मुक्त और अस्तित्व-अस्तित्व की लालसा से रहित ब्राह्मण को धारणाओं का वश में होना नहीं पड़ता। यही मेरा सिद्धांत है, यही मैं घोषित करता हूँ।"

यह सुनकर शाक्य दंडपानी - अपना सिर हिलाते हुए, अपनी जीभ लहराते हुए, अपनी भौहें इस तरह उठाते हुए कि उनके माथे पर तीन लकीरें बन गईं - अपनी छड़ी के सहारे खड़े होकर चले गए।

फिर, जब संध्या हुई, तो भगवान बुद्ध एकांतवास से उठे और बरगद उद्यान गए। वहाँ पहुँचकर वे एक तैयार आसन पर बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भिक्षुओं को सब कुछ बताया। यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, यह किस प्रकार का सिद्धांत है जिसमें मनुष्य इस ब्रह्मांड में किसी से भी झगड़ा नहीं करता, चाहे वह देवता हों, मार हों, ब्रह्मा हों, ध्यान करने वाले हों, पुरोहित हों, राजा हों या आम लोग हों; जहाँ इंद्रिय सुखों से विरक्त, भ्रम से मुक्त, अनिश्चितता से रहित और अस्तित्व-अस्तित्व की लालसा से रहित ब्राह्मण को धारणाओं का वश में होना नहीं पड़ता?"

"हे भिक्षु, यदि उस कारण के संबंध में, जिससे जटिलता की धारणाएँ और श्रेणियाँ किसी व्यक्ति को घेर लेती हैं, उसमें आनंद लेने, स्वागत करने या उससे जुड़े रहने के लिए कुछ भी नहीं है, तो यही वासना, प्रतिरोध, मत, अनिश्चितता, अहंकार, बनने की लालसा और

अज्ञानता के जुनून का अंत है। यही लाठी और धारदार हथियार उठाने, तर्क-वितर्क, झगड़े, विवाद, आरोप-प्रत्यारोप, फूट डालने वाली चुगली और झूठी बातों का अंत है। यहीं पर ये बुराई और अकुशलतापूर्ण चीजें बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं।" भगवान बुद्ध ने यही कहा। यह कहकर, भगवान बुद्ध अपने आसन से उठे और अपने निवास स्थान पर चले गए।

फिर, भगवान बुद्ध के जाने के कुछ ही समय बाद, भिक्षुओं के मन में यह विचार आया: "भगवान बुद्ध ने जो संक्षिप्त कथन दिया, और उसके विस्तृत अर्थ का विश्लेषण किए बिना अपने निवास स्थान पर चले गए — अर्थात्, 'यदि उस कारण के संबंध में, जिससे जटिलता की धारणाएँ और श्रेणियाँ किसी व्यक्ति को घेर लेती हैं, आनंद लेने के लिए कुछ भी नहीं है... तो वहीं ये बुरी, अकुशल चीजें बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं': अब इस संक्षिप्त कथन के अनसुलझे विस्तृत अर्थ का विश्लेषण कौन कर सकता है?" तब उनके मन में यह विचार आया, "आदरणीय महा कच्चाना गुरु द्वारा प्रशंसित और उनके ज्ञानवान साथियों द्वारा पवित्र जीवन में सम्मानित हैं। वे इस संक्षिप्त कथन के अनसुलझे विस्तृत अर्थ का विश्लेषण करने में सक्षम हैं। मान लीजिए कि हम उनके पास जाएँ और पहुँचने पर उनसे इस विषय पर प्रश्न करें।"

अतः भिक्षु पूज्य महा कच्चना के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्होंने उनका विनम्रतापूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने उन्हें सारी घटना बताई और कहा, "पूज्य महा कच्चना, इसका अर्थ स्पष्ट कीजिए!"

[उन्होंने उत्तर दिया:] “मित्रों, यह ऐसा है जैसे कोई व्यक्ति जिसे लकड़ी की आवश्यकता हो, उसे खोजता फिरे, लकड़ी की तलाश में भटकता रहे — लकड़ी से युक्त खड़े पेड़ की जड़ और तने को अनदेखा करते हुए — यह सोचे कि लकड़ी उसकी शाखाओं और पत्तियों में खोजी जानी चाहिए। ठीक यही आपके साथ भी है, जिन्होंने गुरु भगवान के सामने होते हुए भी उन्हें अनदेखा कर दिया, और अब यह सोच रहे हैं कि मुझसे इस विषय पर प्रश्न पूछा जाए। क्योंकि भगवान जानते हैं, वे जानते हैं; देखते हैं, वे देखते हैं। वे आँख हैं, वे ज्ञान हैं, वे धर्म हैं, वे ब्रह्म हैं। वे वक्ता हैं, उद्घोषक हैं, अर्थ के व्याख्याता हैं, अमरता के दाता हैं, धर्म के स्वामी हैं, तथागत हैं। यही वह समय था जब आपको उनसे इस विषय पर प्रश्न पूछना चाहिए था। उन्होंने जो भी उत्तर दिया हो, आपको उसे उसी रूप में याद रखना चाहिए।”

"जी हां, मित्र कच्चाना: जानने वाले भगवान जानते हैं; देखने वाले देखते हैं। वे आंख हैं, वे ज्ञान हैं, वे धर्म हैं, वे ब्रह्म हैं। वे वक्ता हैं, उद्घोषक हैं, अर्थ के व्याख्याता हैं, अमरता के दाता हैं, धर्म के स्वामी हैं, तथागत हैं। यही वह समय था जब हमें उनसे इस विषय पर प्रश्न करना चाहिए था। उन्होंने जो भी उत्तर दिया, हमें उसे उसी रूप में याद रखना चाहिए था। लेकिन गुरु ने आपकी प्रशंसा की है और पवित्र जीवन में आपके ज्ञानी साथी आपको सम्मान देते हैं। आप इस संक्षिप्त कथन के अनसुलझे विस्तृत अर्थ का विश्लेषण करने में सक्षम हैं। हे पूज्य महा कच्चाना, अर्थ का विश्लेषण कीजिए!"

"तो फिर, मेरे दोस्तों, ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, मित्र," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

आदरणीय महा कच्चना ने कहा: "भगवान बुद्ध ने जो संक्षिप्त कथन दिया, जिसके बाद उन्होंने विस्तृत अर्थ का विश्लेषण किए बिना अपने निवास स्थान पर चले गए, उसके विषय में उन्होंने कहा, 'यदि उस कारण के संबंध में, जिससे किसी व्यक्ति को जटिलता की धारणाएँ और श्रेणियाँ घेर लेती हैं, उसमें आनंद लेने, स्वागत करने या उससे जुड़े रहने के लिए कुछ भी नहीं है, तो यही वासना, प्रतिरोध, मत, अनिश्चितता, अहंकार, बनने की लालसा और अज्ञानता के जुनून का अंत है। यही लाठी और धारदार हथियार उठाने, तर्क-वितर्क, झगड़े, विवाद, आरोप-प्रत्यारोप, फूट डालने वाली चुगली और झूठे भाषण का अंत है। यहीं पर ये दुष्ट, अकुशल चीजें बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं।'"

"आंख और आकृतियों पर निर्भर, दृष्टि-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क एक आवश्यक शर्त है, जिससे भावना उत्पन्न होती है। जो हम महसूस करते हैं, उसे हम बोध करते हैं (मन में नाम देते हैं)। जो हम बोध करते हैं, उसके बारे में हम सोचते हैं। जिसके बारे में हम सोचते हैं, उसे हम जटिल बना देते हैं। व्यक्ति जिस तरह से चीजों को जटिल बनाता है, उसी के आधार पर अतीत, वर्तमान और भविष्य की आकृतियों के संबंध में, जिन्हें आंख के माध्यम से जाना जा सकता है, जटिलता की धारणाएं और श्रेणियां उस पर हावी हो जाती हैं।"

"कान और ध्वनियों पर निर्भर होने से, कान-चेतना उत्पन्न होती है..."

नाक और सुगंध पर निर्भर होने के कारण, नाक-चेतना उत्पन्न होती है...

जीभ और स्वादों पर निर्भर करते हुए, जीभ की चेतना उत्पन्न होती है...

शरीर और स्पर्श संवेदनाओं पर निर्भर, शरीर-चेतना उत्पन्न होती है...

बुद्धि और विचारों पर निर्भर, बुद्धि-चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन से संपर्क होता है। संपर्क एक आवश्यक शर्त है, जिसके आधार पर भावना उत्पन्न होती है। जो हम महसूस करते हैं, उसे हम बोध करते हैं (मन में नाम देते हैं)। जो हम बोध करते हैं, उसके बारे में हम सोचते हैं। जिसके बारे में हम सोचते हैं, उसे हम जटिल बना देते हैं। व्यक्ति जिस तरह से चीजों को जटिल बनाता है, उसी के आधार पर अतीत, वर्तमान और भविष्य के विचारों के संबंध में बुद्धि द्वारा बोधित जटिलता की धारणाएं और श्रेणियां उस पर हावी हो जाती हैं।

"अब, जब आँख होती है, जब रूप होते हैं, जब आँख-चेतना होती है, तब संभव है कि कोई संपर्क का चित्रण करे।1 जब संपर्क का चित्रण होता है, तब संभव है कि कोई भावना का चित्रण करे। जब भावना का चित्रण होता है, तब संभव है कि कोई बोध का चित्रण करे। जब बोध का चित्रण होता है, तब संभव है कि कोई चिंतन का चित्रण करे। जब चिंतन का चित्रण होता है, तब संभव है कि कोई जटिलता की धारणाओं और श्रेणियों से घिरे होने का चित्रण करे।"

"जब कान होता है..."

"जब नाक होती है..."

"जब जीभ होती है..."

"जब शरीर मौजूद हो..."

जब बुद्धि होती है, जब विचार होते हैं, जब बौद्धिक चेतना होती है, तब संपर्क का चित्रण संभव है। जब संपर्क का चित्रण होता है, तब भावना का चित्रण संभव है। जब भावना का चित्रण होता है, तब बोध का चित्रण संभव है। जब बोध का चित्रण होता है, तब चिंतन का चित्रण संभव है। जब चिंतन का चित्रण होता है, तब जटिलताओं की धारणाओं और श्रेणियों से घिरे होने का चित्रण संभव है।

"अब, जब आँख नहीं है, जब रूप नहीं हैं, जब दृष्टि-चेतना नहीं है, तब संपर्क का चित्रण करना असंभव है। जब संपर्क का चित्रण नहीं है, तब भावना का चित्रण करना असंभव है। जब भावना का चित्रण नहीं है, तब बोध का चित्रण करना असंभव है। जब बोध का चित्रण नहीं है, तब चिंतन का चित्रण करना असंभव है। जब चिंतन का चित्रण नहीं है, तब जटिलताओं की धारणाओं और श्रेणियों से घिरे होने का चित्रण करना असंभव है।"

"जब कान न हों..."

"जब नाक ही न हो..."

"जब जीभ न हो..."

"जब कोई शरीर न हो..."

जब बुद्धि नहीं होती, जब विचार नहीं होते, जब बौद्धिक चेतना नहीं होती, तब संपर्क का चित्रण करना असंभव है। जब संपर्क का चित्रण नहीं होता, तब भावना का चित्रण करना असंभव है। जब भावना का चित्रण नहीं होता, तब बोध का चित्रण करना असंभव है। जब बोध का चित्रण नहीं होता, तब चिंतन का चित्रण करना असंभव है। जब चिंतन का चित्रण नहीं होता, तब जटिलताओं की धारणाओं और श्रेणियों से घिरे होने का चित्रण करना असंभव है।

अतः, भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए संक्षिप्त कथन के विषय में, जिसके बाद उन्होंने विस्तृत अर्थ का विश्लेषण किए बिना अपने निवास स्थान में प्रवेश किया — अर्थात्, 'यदि उस कारण के संबंध में, जिससे जटिलता की धारणाएँ और श्रेणियाँ किसी व्यक्ति को घेर लेती हैं, उसमें आनंद लेने, स्वागत करने या उससे जुड़े रहने के लिए कुछ भी नहीं है, तो यही वासना, प्रतिरोध, मत, अनिश्चितता, अहंकार, बनने की लालसा और अज्ञानता के जुनून का अंत है। यही लाठी और धारदार हथियार उठाने, तर्क-वितर्क, झगड़े, विवाद, आरोप-प्रत्यारोप, फूट डालने वाली चुगली और झूठी बातों का अंत है। यहीं पर ये दुष्ट, अकुशल चीजें बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं' — मैं इसका विस्तृत अर्थ इसी प्रकार समझता हूँ। अब, यदि आप चाहें, तो भगवान बुद्ध के पास जाकर उनसे इस विषय पर प्रश्न करें। उनका जो भी उत्तर हो, उसे आपको याद रखना चाहिए।'

तब भिक्षु, पूज्य महा कच्चना के शब्दों से प्रसन्न और सहमत होकर, अपने स्थानों से उठे और भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर, उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने [उन्हें बताया कि उनके निवास स्थान में जाने के बाद क्या हुआ था, और अंत में कहा,] "तब पूज्य महा कच्चना ने इन शब्दों, कथनों और वाक्यांशों का उपयोग करके अर्थ का विश्लेषण किया।"

"महा कच्चाना ज्ञानवान हैं, भिक्षुओं। वे अत्यंत विवेकशील व्यक्ति हैं। यदि आपने मुझसे इस विषय पर पूछा होता, तो मैं भी वही उत्तर देता जो उन्होंने दिया। इस कथन का यही अर्थ है। आपको इसे इसी प्रकार याद रखना चाहिए।"

यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, ऐसा ही है मानो कोई व्यक्ति भूख, कमजोरी और प्यास से व्याकुल होकर शहद के गोले के सामने आ जाए। जहाँ कहीं भी वह उसे चखेगा, उसे मीठा और आनंददायक स्वाद मिलेगा। ठीक उसी प्रकार, जहाँ कहीं भी एक सक्षम चेतना वाला भिक्षु अपने विवेक से इस धम्म प्रवचन के अर्थ का अध्ययन करेगा, उसे तृप्ति और विश्वास का अनुभव होगा। इस धम्म प्रवचन का नाम क्या है?"

"तो फिर, आनंद, तुम इस धम्म प्रवचन को 'शहद के गोले का प्रवचन' के रूप में याद रख सकते हो।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य आनंद बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.9द्वेधावितक्का सुत्त(19)

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, आत्मज्ञान प्राप्त करने से पहले, जब मैं अभी भी एक अज्ञानी बोधिसत्व था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'क्यों न मैं अपने चिंतन को दो प्रकारों में विभाजित करता रहूँ?' अतः मैंने कामुकता से ग्रस्त चिंतन, द्वेष से ग्रस्त चिंतन और हानि पहुँचाने से ग्रस्त चिंतन को एक प्रकार का बनाया, और त्याग से ग्रस्त चिंतन, द्वेषहीन चिंतन और हानि न पहुँचाने से ग्रस्त चिंतन को दूसरे प्रकार का बनाया।"

और जब मैं इस प्रकार सजग, उत्साही और दृढ़ बना रहा, तो कामुकता से ओतप्रोत विचार उत्पन्न हुए। मैंने महसूस किया कि 'मेरे भीतर कामुकता से ओतप्रोत विचार उत्पन्न हो गए हैं; और यह मुझे स्वयं या दूसरों को या दोनों को पीड़ा पहुँचाता है। यह विवेक में बाधा डालता है, झुंझलाहट को बढ़ावा देता है, और मुक्ति की ओर नहीं ले जाता।'

"जब मैंने देखा कि इससे मुझे स्वयं कष्ट होता है, तो यह विचार त्याग दिया। जब मैंने देखा कि इससे दूसरों को भी कष्ट होता है... दोनों को कष्ट होता है... यह विवेक में बाधा डालता है, झुंझलाहट बढ़ाता है और मुक्ति की ओर नहीं ले जाता, तो यह विचार त्याग दिया। जब भी कामुकता से ओतप्रोत विचार उत्पन्न होते थे, मैं उन्हें त्याग देता था, नष्ट कर देता था, मिटा देता था, अस्तित्व से ही मिटा देता था।"

और जब मैं इस प्रकार सजग, उत्साही और दृढ़ बना रहा, तो द्वेष से भरी सोच उत्पन्न हुई। मैंने महसूस किया कि 'मेरे भीतर द्वेष से भरी सोच उत्पन्न हो गई है; और यह मुझे स्वयं या दूसरों को या दोनों को कष्ट पहुँचाती है। यह विवेक में बाधा डालती है, झुंझलाहट बढ़ाती है और मुक्ति की ओर नहीं ले जाती।'

"जब मैंने देखा कि इससे मुझे स्वयं कष्ट होता है, तो यह विचार त्याग दिया गया। जब मैंने देखा कि इससे दूसरों को भी कष्ट होता है... दोनों को कष्ट होता है... यह विवेक में बाधा डालता है, झुंझलाहट बढ़ाता है और मुक्ति की ओर नहीं ले जाता, तो यह विचार त्याग दिया गया। जब भी दुर्भावना से भरा विचार उत्पन्न होता, मैं उसे त्याग देता, नष्ट कर देता, मिटा देता, अस्तित्व से ही मिटा देता।"

और जब मैं इस प्रकार सजग, उत्साही और दृढ़ बना रहा, तो हानिकारक विचारों का उदय हुआ। मैंने महसूस किया कि 'मेरे भीतर हानिकारक विचार उत्पन्न हो गए हैं; और ये मेरे स्वयं के कष्ट, दूसरों के कष्ट, या दोनों के कष्ट का कारण बनते हैं। ये विवेक में बाधा डालते हैं, झुंझलाहट को बढ़ावा देते हैं, और मुक्ति की ओर नहीं ले जाते।'

"जब मैंने देखा कि इससे मुझे स्वयं कष्ट होता है, तो यह विचार त्याग दिया गया। जब मैंने देखा कि इससे दूसरों को भी कष्ट होता है... दोनों को कष्ट होता है... यह विवेक में बाधा डालता है, झुंझलाहट बढ़ाता है और मुक्ति की ओर नहीं ले जाता, तो यह विचार त्याग दिया गया। जब भी हानिकारक विचार उत्पन्न होते थे, मैं उन्हें त्याग देता था, नष्ट कर देता था, दूर कर देता था, अस्तित्व से मिटा देता था।"

"एक साधु अपने चिंतन और मनन में जिस बात का निरंतर अनुसरण करता है, वही उसकी चेतना का झुकाव बन जाता है। यदि कोई साधु कामुकता से प्रेरित चिंतन का निरंतर अनुसरण करे और वैराग्य से प्रेरित चिंतन को त्याग दे, तो उसका मन कामुकता से प्रेरित चिंतन से ग्रस्त हो जाता है। यदि कोई साधु द्वेष से प्रेरित चिंतन का निरंतर अनुसरण करे और निःद्वेष से प्रेरित चिंतन को त्याग दे, तो उसका मन द्वेष से प्रेरित चिंतन से ग्रस्त हो जाता है। यदि कोई साधु हानि पहुंचाने वाले चिंतन का निरंतर अनुसरण करे और हानि न पहुंचाने वाले चिंतन को त्याग दे, तो उसका मन हानि पहुंचाने वाले चिंतन से ग्रस्त हो जाता है।"

"जैसे वर्षा ऋतु के अंतिम महीने में, शरद ऋतु में जब फसलें पक रही होती हैं, एक चरवाहा अपनी गायों की देखभाल करता है: वह उन्हें इधर-उधर से थपथपाता, कुरेदता और डंडे से नियंत्रित करता है। ऐसा क्यों? क्योंकि वह इस बात का पूर्वाभास रखता है कि यदि वह अपनी गायों को फसलों में भटकने देगा तो उसे कोड़े पड़ेंगे, कारावास होगा, जुर्माना होगा या सार्वजनिक निंदा होगी। ठीक उसी प्रकार मैंने अकुशल गुणों में कमियाँ, पतन और अपवित्रता देखी, और कुशल गुणों में त्याग और शुद्धि से संबंधित पुरस्कार देखे।"

और जब मैं इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ बना रहा, तो वैराग्य से ओतप्रोत विचार उत्पन्न हुए। मैंने यह अनुभव किया कि 'मेरे भीतर वैराग्य से ओतप्रोत विचार उत्पन्न हुए हैं; और ये न तो मुझे स्वयं कष्ट देते हैं, न दूसरों को, और न ही दोनों को। ये विवेक को बढ़ावा देते हैं, चिंताहीनता को प्रोत्साहित करते हैं और मुक्ति की ओर ले जाते हैं। यदि मैं एक रात भी, एक दिन भी, या एक-एक रात भी इसी के अनुरूप चिंतन और मनन करूं, तो मुझे इससे कोई खतरा नहीं दिखता, सिवाय इसके कि लंबे समय तक चिंतन और मनन करने से शरीर थक जाएगा। जब शरीर थक जाता है, तो मन विचलित हो जाता है; और विचलित मन एकाग्रता से दूर रहता है।' अतः मैंने अपने मन को भीतर ही स्थिर किया, उसे एकाग्र किया, एकीकृत किया और एकाग्र किया। ऐसा क्यों? ताकि मेरा मन विचलित न हो।

और जब मैं इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ बना रहा, तो मेरे मन में द्वेष रहित विचार उत्पन्न हुए। मैंने यह महसूस किया कि 'मेरे भीतर द्वेष रहित विचार उत्पन्न हुए हैं; और ये न तो मुझे स्वयं कष्ट देते हैं, न दूसरों को, और न ही दोनों को। ये विवेक को बढ़ाते हैं, चिंताहीनता को बढ़ावा देते हैं और मुक्ति की ओर ले जाते हैं। यदि मैं एक रात... एक दिन... एक दिन और एक रात भी इसके अनुरूप चिंतन और मनन करूं, तो मुझे इससे कोई खतरा नहीं दिखता, सिवाय इसके कि लंबे समय तक चिंतन और मनन करने से शरीर थक जाएगा। जब शरीर थक जाता है, तो मन विचलित हो जाता है; और विचलित मन एकाग्रता से दूर रहता है।' इसलिए मैंने अपने मन को भीतर ही स्थिर किया, उसे शांत किया, एकीकृत किया और एकाग्र किया। ऐसा क्यों? ताकि मेरा मन विचलित न हो।

और जब मैं इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ बना रहा, तो अहिंसा से ओतप्रोत विचार उत्पन्न हुआ। मैंने यह अनुभव किया कि 'मेरे भीतर अहिंसा से ओतप्रोत विचार उत्पन्न हुआ है; और यह न तो मुझे स्वयं कष्ट देता है, न दूसरों को, और न ही दोनों को। यह विवेक को बढ़ावा देता है, चिंताहीनता को प्रोत्साहित करता है, और मुक्ति की ओर ले जाता है। यदि मैं इसके अनुरूप एक रात भी सोचूँ... एक दिन भी... एक दिन और रात भी, तो मुझे इससे कोई खतरा नहीं दिखता, सिवाय इसके कि लंबे समय तक सोचने-विचारने से शरीर थक जाएगा। जब शरीर थक जाता है, तो मन विचलित हो जाता है; और विचलित मन एकाग्रता से दूर रहता है।' अतः मैंने अपने मन को भीतर ही स्थिर किया, उसे शांत किया, एकीकृत किया और एकाग्र किया। ऐसा क्यों? ताकि मेरा मन विचलित न हो।

"एक साधु अपने चिंतन और मनन में जिस बात का निरंतर अनुसरण करता है, वही उसकी चेतना का झुकाव बन जाता है। यदि कोई साधु वैराग्य से प्रेरित चिंतन का निरंतर अनुसरण करे और कामुकता से प्रेरित चिंतन का त्याग करे, तो उसका मन वैराग्य से प्रेरित चिंतन की ओर उन्मुख हो जाता है। यदि कोई साधु द्वेष रहित चिंतन का निरंतर अनुसरण करे और द्वेष रहित चिंतन का त्याग करे, तो उसका मन द्वेष रहित चिंतन की ओर उन्मुख हो जाता है। यदि कोई साधु अहिंसा से प्रेरित चिंतन का निरंतर अनुसरण करे और हानिपूर्ण चिंतन का त्याग करे, तो उसका मन अहिंसा से प्रेरित चिंतन की ओर उन्मुख हो जाता है।"

"जैसे गर्मी के मौसम के आखिरी महीने में, जब सारी फसलें गाँव में इकट्ठा हो जाती हैं, तो एक चरवाहा अपनी गायों की देखभाल करता है: पेड़ की छाया में या खुले में आराम करते हुए, वह बस 'उन गायों' के बारे में सोचता रहता है। ठीक उसी तरह, मैं भी बस 'उन मानसिक गुणों' के बारे में सोचता रहा।"

मुझमें अटूट दृढ़ता जागृत हुई और निर्मल ध्यान स्थापित हुआ। मेरा शरीर शांत और उत्तेजित नहीं था, मेरा मन एकाग्र और स्थिर था। कामुकता से पूर्णतः विमुख होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विमुख होकर, मैं प्रथम ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें स्थिर रहा: एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ। निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, मैं द्वितीय ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें स्थिर रहा: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। परमानंद के क्षीण होने पर मैं समभाव में स्थिर रहा, सचेत और जागरूक, और शारीरिक रूप से सुख के प्रति संवेदनशील। मैं तृतीय ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें स्थिर रहा, जिसके बारे में ऋषि कहते हैं, 'समभाव और सचेत रहकर, वह सुखमय अवस्था में रहता है।' सुख और दुख के त्याग के साथ - जैसे पहले उल्लास और दुःख के विमुख होने के साथ - मैं चतुर्थ ध्यान में प्रवेश कर गया और उसमें स्थिर रहा: समभाव और ध्यान की शुद्धता, न सुख न दुख।

जब मन इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अशुद्धियों से मुक्त, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित हो गया, तो मैंने इसे अपने पिछले जन्मों को याद करने के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने अपने अनेक पिछले जन्मों को याद किया, अर्थात् एक जन्म, दो... पाँच, दस... पचास, सौ, हज़ार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत था। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत था। उस अवस्था से विदा होकर, मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार मुझे अपने अनेक पूर्व जन्मों की शैली और विवरण याद आ गए।

"यह वह पहला ज्ञान था जो मैंने रात्रि के पहले पहर में प्राप्त किया। अज्ञान का नाश हुआ; ज्ञान का उदय हुआ; अंधकार का नाश हुआ; प्रकाश का उदय हुआ - जैसा कि एक सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति में होता है।"

जब मन इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अशुद्धियों से मुक्त, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित हो गया, तो मैंने इसे प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते देखा, और मैंने उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध किया: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने संतों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - मृत्यु के बाद शरीर के टूटने के साथ, अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, निचले लोकों में, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। लेकिन ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने संतों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म करने वाले — शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे स्थानों, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट हुए। इस प्रकार — दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है — मैंने प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते देखा, और मैंने उनके कर्मों के अनुसार उनके हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध किया।

"यह वह दूसरा ज्ञान था जो मैंने रात्रि के दूसरे पहर में प्राप्त किया। अज्ञान का नाश हुआ; ज्ञान का उदय हुआ; अंधकार का नाश हुआ; प्रकाश का उदय हुआ - जैसा कि एक सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति में होता है।"

जब मन इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अशुद्धियों से मुक्त, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित हो गया, तब मैंने उसे मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने अनुभव किया कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्‌गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्‌गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' मेरा हृदय, इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, इंद्रिय-संबंधों की हलचलों से मुक्त हो गया, अस्तित्व की हलचलों से मुक्त हो गया, अज्ञान की हलचलों से मुक्त हो गया। मुक्ति के साथ ही, 'मुक्त हो गया' का ज्ञान

प्राप्त हुआ। मैंने अनुभव किया कि 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'

"यह वह तीसरा ज्ञान था जो मैंने रात्रि के तीसरे पहर में प्राप्त किया। अज्ञान का नाश हुआ; ज्ञान का उदय हुआ; अंधकार का नाश हुआ; प्रकाश का उदय हुआ - जैसा कि एक सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति में होता है।"

हे भिक्षुओं, मान लीजिए कि एक घने जंगल में एक बड़ा, नीचा दलदल है, जिस पर हिरणों का एक बड़ा झुंड निर्भर करता है; और एक व्यक्ति प्रकट होता है, जो न तो उनका भला चाहता है, न ही उनकी भलाई चाहता है, न ही उनके बंधन से मुक्ति चाहता है। वह उनके आनंद की ओर ले जाने वाले सुरक्षित, विश्रामकारी मार्ग को बंद कर देगा और एक नकली मार्ग बना देगा, एक नर हिरण को हटा देगा, एक मादा हिरण को हटा देगा, और इस प्रकार हिरणों का बड़ा झुंड बाद में विनाश और विपत्ति का शिकार हो जाएगा। फिर मान लीजिए कि एक व्यक्ति उसी हिरणों के बड़े झुंड के सामने प्रकट होता है, जो उनका भला चाहता है, उनकी भलाई चाहता है, और उनके बंधन से मुक्ति चाहता है। वह उनके आनंद की ओर ले जाने वाले सुरक्षित, विश्रामकारी मार्ग को खोल देगा, नकली मार्ग को बंद कर देगा, नर हिरण को हटा देगा, मादा हिरण को नष्ट कर देगा, और इस प्रकार हिरणों का बड़ा झुंड बाद में फलेगा-फूलेगा और प्रचुर मात्रा में हो जाएगा।

मैंने यह उपमा अर्थ समझाने के लिए दी है। इसका अर्थ यह है: 'विशाल, नीचा दलदल' इंद्रिय सुखों का प्रतीक है। 'हिरणों का बड़ा झुंड' प्राणियों का प्रतीक है। 'वह मनुष्य जो उनका लाभ नहीं चाहता, उनका कल्याण नहीं चाहता, उनके बंधन से मुक्ति नहीं चाहता' मार, दुष्ट देवता का प्रतीक है। 'गलत मार्ग' अष्टांगिक मार्ग का प्रतीक है, अर्थात् गलत दृष्टिकोण, गलत संकल्प, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान और गलत एकाग्रता। 'पुरुष मोहरा' वासना और आनंद का प्रतीक है। 'स्त्री मोहरा' अज्ञान का प्रतीक है। 'वह मनुष्य जो उनका लाभ चाहता है, उनका कल्याण चाहता है, उनके बंधन से मुक्ति चाहता है' तथागत, योग्य पुरुष, सत्यात्मा जागृत पुरुष का प्रतीक है। 'सुरक्षित, विश्रामपूर्ण मार्ग जो उन्हें परमानंद की ओर ले जाता है' श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग का प्रतीक है, अर्थात् सत्य सही दृष्टिकोण, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।

इसलिए, हे भिक्षुओं, मैंने आपके लिए सुरक्षित और विश्राम का मार्ग खोल दिया है, झूठे मार्ग को बंद कर दिया है, पुरुष मोहरे को हटा दिया है और स्त्री मोहरे को नष्ट कर दिया है। एक गुरु को अपने शिष्यों के कल्याण के लिए, उनके प्रति सहानुभूति से जो कुछ करना चाहिए, वह सब मैंने आपके लिए किया है। वहाँ वृक्षों की जड़ें हैं; वहाँ खाली घर हैं। हे भिक्षुओं, ध्यान का अभ्यास करो। लापरवाह मत बनो। बाद में पश्चाताप मत करो। यही हमारा संदेश है।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 2.10 विटक्कसंथाना सुत्त(20)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "जब कोई भिक्षु उन्नत मन की साधना में लगा हो, तो उसे उचित समय पर पाँच विषयों पर ध्यान देना चाहिए। वे पाँच विषय कौन से हैं?"

एक ऐसी स्थिति भी आती है जब कोई भिक्षु किसी विशेष विषय पर विचार करते समय, इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे और अकुशल विचार उत्पन्न करता है। उसे उस विषय से अलग, कुशल विषय पर ध्यान देना चाहिए। जब वह उस विषय से अलग, कुशल विषय पर ध्यान देता है, तो वे बुरे और अकुशल विचार - इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े - त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। उनके त्यागने से वह अपने मन को भीतर से स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है। जिस प्रकार एक कुशल बढ़ई या उसका शिष्य एक छोटी कील का उपयोग करके एक बड़ी कील को ठोकता है, निकालता है और खींचता है; उसी प्रकार, यदि

कोई भिक्षु किसी विशेष विषय पर विचार करते समय, इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे और अकुशल विचार उत्पन्न करता है, तो उसे उस विषय से अलग, कुशल विषय पर ध्यान देना चाहिए। जब वह उस विषय से अलग, कुशल विषय पर ध्यान देता है, तो वे बुरे और अकुशल विचार त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। जो कुशल है, वह उन बुरे, अकुशल विचारों को त्याग देता है—जो इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े होते हैं—और वे शांत हो जाते हैं। उनके त्याग से वह अपने मन को भीतर से स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है।

"यदि भिक्षु को कुशल साधना से संबंधित दूसरे विषय पर ध्यान देते समय भी इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे, अकुशल विचार उत्पन्न होते हैं, तो उसे उन विचारों की कमियों का गहन विश्लेषण करना चाहिए: 'वास्तव में, मेरे ये विचार अकुशल हैं, मेरे ये विचार निंदनीय हैं, मेरे ये विचार तनाव उत्पन्न करते हैं।'" जैसे-जैसे वह उन विचारों की कमियों का विश्लेषण करता है, वैसे-वैसे वे बुरे, अकुशल विचार—जो इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े होते हैं—त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। उनके त्याग के साथ ही वह अपने मन को भीतर से स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकाग्र करता है और उसे एकाग्र बनाता है। जिस प्रकार एक युवती—या पुरुष—जो आभूषणों की शौकीन होती है, यदि उसके गले में साँप, कुत्ते या मनुष्य का शव लटका दिया जाए तो वह भयभीत, अपमानित और घृणास्पद हो जाएगी; उसी प्रकार, यदि इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे, अकुशल विचार उस समय भी भिक्षु के मन में उठते हैं जब वह कुशल विषय पर ध्यान दे रहा होता है, तो उसे उन विचारों की कमियों का विश्लेषण करना चाहिए: 'सचमुच, मेरे ये विचार अकुशल हैं, मेरे ये विचार निंदनीय हैं, मेरे ये विचार तनाव उत्पन्न करते हैं।' जैसे-जैसे वह उन विचारों की कमियों का विश्लेषण करता है, वैसे-वैसे वे बुरे, अकुशल विचार—जो इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े होते हैं—त्याग कर शांत हो जाते हैं। उनके त्याग के साथ ही वह अपने मन को भीतर से स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है।

यदि किसी भिक्षु के मन में इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे, अकुशल विचार तब भी उत्पन्न हों जब वह उन विचारों की कमियों का विश्लेषण कर रहा हो, तो उसे उन विचारों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। जैसे ही वह उन विचारों पर ध्यान नहीं देता, वे बुरे, अकुशल विचार त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। उनके त्याग के साथ ही वह अपने मन को भीतर स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है। जैसे एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति, सामने आए रूपों को न देखने की इच्छा से अपनी आँखें बंद कर लेता है या दूसरी ओर देखने लगता है; उसी प्रकार, यदि किसी भिक्षु के मन में इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे, अकुशल विचार तब भी उत्पन्न हों जब वह उन विचारों की कमियों का विश्लेषण कर रहा हो, तो उसे उन विचारों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। जैसे ही वह उन विचारों पर ध्यान नहीं देता, वे बुरे, अकुशल विचार त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। उनके त्याग के साथ ही वह अपने मन को भीतर स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है। यह।

यदि किसी भिक्षु के मन में इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे, अकुशल विचार तब भी उत्पन्न होते हैं जब वह उन विचारों पर ध्यान नहीं दे रहा होता है, तो उसे उन विचारों के संबंध में विचार-निर्माण को शिथिल करने पर ध्यान देना चाहिए। जैसे-जैसे वह उन विचारों के संबंध में विचार-निर्माण को शिथिल करता है, वे बुरे, अकुशल विचार त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। उनके त्याग के साथ ही वह अपने मन को भीतर से स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है। जैसे किसी व्यक्ति के मन में तेज गति से चलते हुए यह विचार आता है, 'मैं तेज क्यों चल रहा हूँ? मैं धीरे क्यों नहीं चलता?' तो वह धीरे चलने लगता है। उसके मन में यह विचार आता है, 'मैं धीरे क्यों चल रहा हूँ? मैं खड़ा क्यों नहीं होता?' तो वह खड़ा हो जाता है। उसके मन में यह विचार आता है, 'मैं खड़ा क्यों हूँ? मैं बैठ क्यों नहीं जाता?' तो वह बैठ जाता है। उसके मन में यह विचार आता है, 'मैं बैठा क्यों हूँ? मैं लेट क्यों नहीं जाता?' अतः वह लेट जाता है। इस प्रकार, स्थूल मुद्रा को त्यागकर वह परिष्कृत मुद्रा को अपना लेता है। इसी प्रकार, यदि भिक्षु के मन में इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे, अकुशल विचार उत्पन्न होते हैं, जबकि वह उन विचारों पर ध्यान नहीं दे रहा होता है, तो उसे उन विचारों के प्रति विचार-रचना को शिथिल करने का प्रयास करना चाहिए। जैसे-जैसे वह उन विचारों के प्रति विचार-रचना को शिथिल करता है, वे बुरे, अकुशल विचार त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। उनके त्यागने से वह अपने मन को भीतर ही स्थिर कर लेता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है।

यदि इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे, अकुशल विचार भिक्षु के मन में तब भी उत्पन्न होते हैं जब वह उन विचारों से संबंधित विचार-निर्माण को शिथिल करने का प्रयास कर रहा होता है, तो उसे अपने दांत भींचकर और जीभ को मुख के ऊपरी भाग से दबाकर अपने मन को चेतना से वश में करना चाहिए। जैसे ही वह अपने दांत भींचकर और जीभ को मुख के ऊपरी भाग से दबाकर अपने मन को चेतना से वश में करता है, नियंत्रित करता है और कुचल देता है, वे बुरे, अकुशल विचार त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। उनके त्याग के साथ ही वह अपने मन को भीतर से स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है। जैसे एक बलवान व्यक्ति किसी कमजोर व्यक्ति को सिर, गला या कंधे से पकड़कर उसे पीटता है, नियंत्रित करता है और कुचल देता है; उसी प्रकार, यदि इच्छा, घृणा या भ्रम से जुड़े बुरे, अकुशल विचार भिक्षु के मन में तब भी उत्पन्न होते हैं जब वह उन विचारों से संबंधित विचार-निर्माण को शिथिल करने का प्रयास कर रहा होता है, तो उसे अपने दांत भींचकर और जीभ को मुख के ऊपरी भाग से दबाकर

अपने मन को चेतना से वश में करना चाहिए। दांत भींचकर और जीभ को मुंह के ऊपरी भाग से दबाकर—उसे अपनी चेतना से अपने मन को वश में करना, नियंत्रित करना और कुचल देना चाहिए। जैसे ही—दांत भींचकर और जीभ को मुंह के ऊपरी भाग से दबाकर—वह अपनी चेतना से अपने मन को वश में करता है, नियंत्रित करता है और कुचल देता है, वैसे ही वे बुरे, अकुशल विचार त्याग दिए जाते हैं और शांत हो जाते हैं। उनके त्याग के साथ ही, वह अपने मन को भीतर ही स्थिर करता है, उसे शांत करता है, उसे एकीकृत करता है और उसे एकाग्र करता है।

"अब जब कोई भिक्षु... किसी अन्य विषय पर ध्यान देते हुए... उन विचारों की कमियों का विश्लेषण करते हुए... उन विचारों पर ध्यान न देते हुए... उन विचारों से संबंधित विचार-निर्माण को शिथिल करने पर ध्यान देते हुए... अपनी चेतना से अपने मन को वश में करते हुए, नियंत्रित करते हुए और कुचलते हुए... अपने मन को भीतर ही स्थिर करते हैं, उसे शांत करते हैं, उसे एकीकृत करते हैं और उसे एकाग्र करते हैं: तब उसे विचार अनुक्रमों पर निपुण भिक्षु कहा जाता है। वह जो चाहे सोचता है, सोचता है, और जो नहीं चाहता, नहीं सोचता। उसने व्यथा का त्याग कर दिया है, बंधनों को तोड़ दिया है, और—अभिमान की सही समझ के माध्यम से—दुख और तनाव का अंत कर दिया है।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.1 काकाकुपामा सुत्त(21)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

हे भिक्षुओं, एक बार इसी श्रावस्ती में वेदेहिका नाम की एक गृहस्थी रहती थी। वेदेहिका के बारे में यह अच्छी बात फैली हुई थी: 'वेदिका सौम्य, शांत और स्थिर स्वभाव की हैं।' वेदेहिका की एक दासी थी जिसका नाम काली था, जो अपने काम में मेहनती, कुशल और साफ-सुथरी थी। दासी काली के मन में यह विचार आया: 'वेदेहिका के बारे में यह अच्छी बात फैली हुई है: 'वेदिका शांत, सौम्य और स्थिर स्वभाव की हैं।' अब, क्या मेरी स्वामिनी में क्रोध बिना प्रकट किए मौजूद है, या वह अनुपस्थित है? या क्या यह सिर्फ इसलिए है कि मैं अपने काम में मेहनती, कुशल और साफ-सुथरी हूं, इसलिए मेरी स्वामिनी में मौजूद क्रोध प्रकट नहीं होता? क्यों न मैं उनकी परीक्षा लूं?'

"तो भोर होते ही दासी काली उठ उठी। तब देवी वेदेहिका ने उससे कहा: 'अरे काली!'"

"'जी हां, महोदया?'"

"'तुम सूर्योदय के बाद क्यों उठे?'"

"'कोई कारण नहीं, महोदया।'"

"'कोई कारण नहीं, तुम दुष्ट दास, और फिर भी तुम सूर्योदय के बाद उठते हो?' क्रोधित और असंतुष्ट होकर उसने तेवर चढ़ाए।"

तब दासी काली के मन में यह विचार आया: 'मेरी स्वामिनी में क्रोध बिना प्रकट हुए मौजूद है, अनुपस्थित नहीं। और यह सिर्फ इसलिए है क्योंकि मैं अपने काम में मेहनती, कुशल और साफ-सुथरी हूँ, इसलिए मेरी स्वामिनी का क्रोध प्रकट नहीं होता। क्यों न मैं उनकी थोड़ी और परीक्षा लूँ?'

"तो दासी काली दिन में बाद में उठी। तब देवी वेदेहिका ने उससे कहा: 'अरे, काली!'"

"'जी हां, महोदया?'"

"'तुम दिन में देर से क्यों उठे?'"

"'कोई कारण नहीं, महोदया।'"

"'कोई कारण नहीं, तुम दुष्ट दासी, और फिर भी तुम दिन में देर से उठते हो?' क्रोधित और असंतुष्ट होकर उसने बड़बड़ाया।"

तब दासी काली के मन में यह विचार आया: 'मेरी स्वामिनी में क्रोध बिना प्रकट हुए मौजूद है, अनुपस्थित नहीं। और यह सिर्फ इसलिए है क्योंकि मैं अपने काम में मेहनती, कुशल और साफ-सुथरी हूँ, इसलिए मेरी स्वामिनी का क्रोध प्रकट नहीं होता। क्यों न मैं उनकी थोड़ी और परीक्षा लूँ?'

"तो दासी काली दिन में और भी देर से उठी। तब देवी वेदेहिका ने उससे कहा: 'अरे, काली!'"

"'जी हां, महोदया?'"

"'तुम दिन में और भी देर से क्यों उठे?'"

"'कोई कारण नहीं, महोदया।'"

"'कोई कारण नहीं, दुष्ट दासी, और फिर भी तुम दिन में इतनी देर से उठती हो?' क्रोधित और असंतुष्ट होकर, उसने एक बेलन पकड़ा और उसके सिर पर एक जोरदार प्रहार किया, जिससे उसका सिर फट गया।"

"तब काली नाम की दासी, जिसका सिर बुरी तरह से फट गया था और खून बह रहा था, पड़ोसियों के सामने जाकर अपनी मालकिन की शिकायत करने लगी: 'देखो, महिलाओं, इस सौम्य महिला का करतूत? इस शांत स्वभाव वाली महिला का करतूत? इस स्थिर महिला का करतूत? भोर के बाद उठने पर अपनी इकलौती दासी से क्रोधित और नाराज़ होकर वह कैसे बेलन उठाकर उसके सिर पर इस तरह वार कर सकती है, जिससे उसका सिर फट जाए?'"

"उसके बाद लेडी वेदेहिका के बारे में यह बुरी अफवाह फैल गई: 'लेडी वेदेहिका दुष्ट हैं। लेडी वेदेहिका गुस्सैल हैं। लेडी वेदेहिका हिंसक हैं।'

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, एक भिक्षु कितना भी सौम्य, कितना भी शांत और सौम्य क्यों न हो, जब तक वह अप्रिय वाणी से प्रभावित न हो। परन्तु जब अप्रिय वाणी उसे प्रभावित करती है, तभी वह वास्तव में सौम्य, शांत और सौम्य कहलाता है। मैं किसी भिक्षु को उपदेश देने में सरल नहीं कहता यदि वह केवल वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के उपचार हेतु औषधियों के कारण उपदेश देने में सरल हो जाता है और स्वयं को उपदेश देने में सरल बना लेता है। ऐसा क्यों? क्योंकि यदि उसे वस्त्र, भिक्षा, आवास और बीमारों के उपचार हेतु औषधियाँ न मिलें, तो वह उपदेश देने में सरल नहीं होता और स्वयं को उपदेश देने में सरल नहीं बनाता। परन्तु यदि कोई भिक्षु केवल धम्म के प्रति आदर, धम्म के प्रति श्रद्धा और धर्म के प्रति श्रद्धा के कारण उपदेश देने में सरल हो जाता है और स्वयं को उपदेश देने में सरल बना लेता है, तो मैं उसे उपदेश देने में सरल कहता हूँ। अतः, हे भिक्षुओं, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।" 'हम धर्म के प्रति आदर, श्रद्धा और सम्मान के कारण ही दूसरों को आसानी से नसीहत देंगे और स्वयं को भी नसीहत के योग्य बनाएंगे।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

भिक्षुओं, वाणी के ये पाँच पहलू हैं जिनके द्वारा दूसरे आपसे बात कर सकते हैं: समय पर या असमय, सत्य या असत्य, स्नेहपूर्ण या कठोर, लाभकारी या प्रतिकूल, सद्भावना से या घृणा से। दूसरे आपसे समय पर या असमय बात कर सकते हैं। वे आपसे सत्य या असत्य से बात कर सकते हैं। वे आपसे स्नेहपूर्ण या कठोर तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे लाभकारी या प्रतिकूल तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे सद्भावना से या घृणा से बात कर सकते हैं। किसी भी स्थिति में, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हमारा मन अप्रभावित रहेगा और हम कोई बुरे शब्द नहीं बोलेंगे। हम उस व्यक्ति के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखेंगे, सद्भावना से और बिना किसी घृणा के। हम उसे सद्भावना से भरी जागरूकता से भरते रहेंगे और उससे शुरू करके, हम सर्वव्यापी विश्व को सद्भावना से भरी जागरूकता से भरते रहेंगे - प्रचुर, विस्तृत, असीम, शत्रुता से मुक्त, दुर्भावना से।' आपको इसी तरह खुद को प्रशिक्षित करना चाहिए।

मान लीजिए कि एक आदमी कुदाल और टोकरी लेकर आता है और कहता है, 'मैं इस विशाल पृथ्वी को मिट्टी रहित कर दूंगा।' वह यहाँ-वहाँ खोदेगा, यहाँ-वहाँ मिट्टी बिखेरेगा, यहाँ-वहाँ थूकेगा, यहाँ-वहाँ पेशाब करेगा और कहेगा, 'मिट्टी रहित हो जाओ। मिट्टी रहित हो जाओ।' अब, आप क्या सोचते हैं - क्या वह वास्तव में इस विशाल पृथ्वी को मिट्टी रहित कर पाएगा?

"नहीं, भगवान। ऐसा क्यों? क्योंकि यह विशाल पृथ्वी गहरी और विस्तृत है। इसे आसानी से पृथ्वीविहीन नहीं किया जा सकता। ऐसा करने से मनुष्य को केवल थकान और निराशा ही मिलेगी।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, वाणी के ये पाँच पहलू हैं जिनके द्वारा अन्य लोग आपसे बात कर सकते हैं: समय पर या असमय, सत्य या असत्य, स्नेहपूर्ण या कठोर, लाभकारी या प्रतिकूल, सद्भावना से या घृणा से। अन्य लोग आपसे समय पर या असमय बात कर सकते हैं। वे आपसे सत्य या असत्य से बात कर सकते हैं। वे आपसे स्नेहपूर्ण या कठोर तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे लाभकारी या प्रतिकूल तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे सद्भावना से या घृणा से बात कर सकते हैं। किसी भी स्थिति में, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हमारा मन अप्रभावित रहेगा और हम कोई बुरे शब्द नहीं बोलेंगे। हम उस व्यक्ति के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखेंगे, सद्भावना से और बिना किसी घृणा के। हम उसे सद्भावना से ओतप्रोत जागरूकता से भरते रहेंगे और उससे आरंभ करके, हम सर्वव्यापी पृथ्वी के समान सद्भावना से ओतप्रोत जागरूकता से भरते रहेंगे - प्रचुर, विस्तृत, असीम, शत्रुता से मुक्त, दुर्भावना से मुक्त।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

मान लीजिए कि एक आदमी लाख, पीला ऑर्पिमेंट, नील या गहरा लाल रंग लेकर आता है और कहता है, 'मैं अंतरिक्ष में चित्र बनाऊंगा, मैं चित्र प्रकट करूंगा।' अब, आप क्या सोचते हैं - क्या वह वास्तव में अंतरिक्ष में चित्र बनाएगा और चित्र प्रकट करेगा?'

"नहीं, भगवान। ऐसा क्यों? क्योंकि अंतरिक्ष निराकार और आकारहीन है। वहां चित्र बनाना और उन्हें प्रकट करना आसान नहीं है। ऐसा करने से मनुष्य को केवल थकान और निराशा ही मिलेगी।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, वाणी के ये पाँच पहलू हैं जिनके द्वारा अन्य लोग आपसे बात कर सकते हैं: समय पर या असमय, सत्य या असत्य, स्नेहपूर्ण या कठोर, लाभकारी या प्रतिकूल, सद्भावना से या घृणा से। अन्य लोग आपसे समय पर या असमय बात कर सकते हैं। वे आपसे सत्य या असत्य से बात कर सकते हैं। वे आपसे स्नेहपूर्ण या कठोर तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे लाभकारी या प्रतिकूल तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे सद्भावना से या घृणा से बात कर सकते हैं। किसी भी स्थिति में, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हमारा मन अप्रभावित रहेगा और हम कोई बुरे शब्द नहीं बोलेंगे। हम उस व्यक्ति के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखेंगे, सद्भावना से और बिना किसी घृणा के। हम उसे सद्भावना से ओतप्रोत जागरूकता से भरते रहेंगे और उससे आरंभ करके, हम अंतरिक्ष के समान - प्रचुर, विस्तृत - सद्भावना से ओतप्रोत जागरूकता से सर्वव्यापी होते रहेंगे।" असीम, शत्रुता से मुक्त, दुर्भावना से मुक्त।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

मान लीजिए कि एक आदमी जलती हुई घास की मशाल लेकर आता है और कहता है, 'इस जलती हुई घास की मशाल से मैं गंगा नदी को गर्म कर दूंगा और उसे उबाल दूंगा।' अब, आप क्या सोचते हैं - क्या वह उस जलती हुई घास की मशाल से गंगा नदी को गर्म कर देगा और उसे उबाल देगा?

"नहीं, भगवान। ऐसा क्यों? क्योंकि गंगा नदी गहरी और विशाल है। जलती हुई घास की मशाल से इसे गर्म करना और उबालना आसान नहीं है। ऐसा करने से मनुष्य को केवल थकान और निराशा ही मिलेगी।"

"इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, वाणी के ये पाँच पहलू हैं जिनके द्वारा अन्य लोग आपसे बात कर सकते हैं: समय पर या असमय, सत्य या असत्य, स्नेहपूर्ण या कठोर, लाभकारी या प्रतिकूल, सद्भावना से या घृणा से। अन्य लोग आपसे समय पर या असमय बात कर सकते हैं। वे आपसे सत्य या असत्य से बात कर सकते हैं। वे आपसे स्नेहपूर्ण या कठोर तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे लाभकारी या प्रतिकूल तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे सद्भावना से या घृणा से बात कर सकते हैं। किसी भी स्थिति में, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हमारा मन अप्रभावित रहेगा और हम कोई बुरे शब्द नहीं बोलेंगे। हम उस व्यक्ति के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखेंगे, सद्भावना से और बिना किसी घृणा के। हम उसे सद्भावना से ओतप्रोत जागरूकता से भरते रहेंगे और उससे आरंभ करके, हम गंगा नदी के समान सद्भावना से ओतप्रोत जागरूकता से सर्वव्यापी जागरूकता से भरते रहेंगे - प्रचुर, विस्तृत।" असीम, शत्रुता से मुक्त, दुर्भावना से मुक्त।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

मान लीजिए एक बिल्ली की खाल का थैला है - खूब पीटा हुआ, पूरी तरह से पीटा हुआ, मुलायम, रेशमी, सरसराहट और चटकने की आवाज़ से मुक्त - और एक आदमी एक छड़ी या लकड़ी का टुकड़ा लेकर आता है और कहता है, 'इस छड़ी या टुकड़े से मैं इस बिल्ली की खाल के थैले को - खूब पीटा हुआ, पूरी तरह से पीटा हुआ, मुलायम, रेशमी, सरसराहट और चटकने की आवाज़ से मुक्त - हिला दूंगा और हिला दूंगा।' अब, आप क्या सोचते हैं - क्या वह उस छड़ी या टुकड़े से उस बिल्ली की खाल के थैले को - खूब पीटा हुआ, पूरी तरह से पीटा हुआ, मुलायम, रेशमी, सरसराहट और चटकने की आवाज़ से मुक्त - हिला देगा और हिला देगा?

"नहीं, स्वामी जी। ऐसा क्यों? क्योंकि बिल्ली की खाल का थैला खूब पीटा गया है, पूरी तरह से पीटा गया है, नरम, रेशमी, सरसराहट और चटकने की आवाज़ से मुक्त। इसे किसी छड़ी या टुकड़े से सरसराहट और चटकने की आवाज़ कराना आसान नहीं है। ऐसा करने से उस व्यक्ति को केवल थकान और निराशा ही मिलेगी।"

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, वाणी के ये पाँच पहलू हैं जिनके द्वारा अन्य लोग आपसे बात कर सकते हैं: समय पर या असमय, सत्य या असत्य, स्नेहपूर्ण या कठोर, लाभकारी या प्रतिकूल, सद्भावना से या घृणा से। अन्य लोग आपसे समय पर या असमय बात कर सकते हैं। वे आपसे सत्य या असत्य से बात कर सकते हैं। वे आपसे स्नेहपूर्ण या कठोर तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे लाभकारी या प्रतिकूल तरीके से बात कर सकते हैं। वे आपसे सद्भावना से या घृणा से बात कर सकते हैं। किसी भी स्थिति में, आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हमारा मन अप्रभावित रहेगा और हम कोई बुरे शब्द नहीं बोलेंगे। हम उस व्यक्ति के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखेंगे, सद्भावना से और बिना किसी घृणा के। हम उसे सद्भावना से भरी जागरूकता से व्याप्त रखेंगे और उससे आरंभ करके, हम सर्वव्यापी सद्भावना से भरी जागरूकता से व्याप्त रखेंगे जो बिल्ली की खाल के थैले के समान प्रचुर, विस्तृत है।" असीम, शत्रुता से मुक्त, दुर्भावना से मुक्त।' आपको इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।

"भिक्षुओं, यदि डाकू तुम्हें दो मूठ वाली आरी से बेरहमी से, अंग-अंग काटकर मार डालें, तब भी तुममें से जो कोई क्रोधित हो जाए, वह मेरी आज्ञा का पालन नहीं कर रहा होगा। तब भी तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हमारा मन अप्रभावित रहेगा और हम कोई अपशब्द नहीं बोलेंगे। हम सद्भावना से भरे भाव से इन लोगों में निरंतर व्याप्त रहेंगे और इनसे आरंभ करके, हम सर्वव्यापी सद्भावना से भरी चेतना से पूरे संसार में व्याप्त रहेंगे - प्रचुर, विस्तृत, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित।' इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

"भिक्षुओं, यदि आप आरी के उपमा पर दिए गए इस उपदेश पर निरंतर ध्यान दें, तो क्या आपको वाणी का कोई ऐसा पहलू दिखाई देता है, चाहे वह मामूली हो या स्थूल, जिसे आप सहन न कर सकें?"

"नहीं, भगवान।"

"इसलिए आरी के दृष्टांत पर आधारित इस उपदेश पर निरंतर ध्यान दें। यह आपके दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए होगा।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.2अलागाद्दुपामा सुत्त(22)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु
1सेटिंग
2जल-सर्प उपमा
3बेड़ा उपमा
4छह दृश्य-स्थितियाँ
5आंदोलन और अहस्तक्षेप
6संपत्ति और विचारों का त्याग
7सुप्रसिद्ध धम्म
सेटिंग
मैंने सुना है कि एक बार भगवान श्रावस्ती में, जेतवन में, अनाथपिंडिका उद्यान में ठहरे हुए थे। उस समय गिद्धों को मारने वाले भिक्षु अरित्थ के मन में यह हानिकारक विचार (दित्तिगता) उत्पन्न हुआ: "भगवान द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, जिन कार्यों को भगवान बाधक कहते हैं, यदि उनमें लिप्त हुआ जाए तो वे वास्तव में बाधक नहीं होते।" बहुत से भिक्षुओं ने सुना, "लोग कहते हैं कि गिद्धों का वध करने वाले भिक्षु अरित्थ में यह हानिकारक विचार उत्पन्न हो गया है: 'भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, जिन कार्यों को भगवान बुद्ध बाधा बताते हैं, यदि उनमें लिप्त हों तो वे वास्तव में बाधा नहीं हैं।'" इसलिए वे गिद्धों का वध करने वाले भिक्षु अरित्थ के

पास गए और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा, "हे मित्र अरित्थ, क्या यह सच है कि आप में यह हानिकारक विचार उत्पन्न हो गया है — 'भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, जिन कार्यों को भगवान बुद्ध बाधा बताते हैं, यदि उनमें लिप्त हों तो वे वास्तव में बाधा नहीं हैं'?"

"जी हां, बिल्कुल, मित्रों। मैं भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूं, और जिन कार्यों को भगवान बुद्ध बाधक कहते हैं, उनमें लिप्त होने पर वे वास्तव में बाधक नहीं होते हैं।"

तब उन भिक्षुओं ने, गिद्धों का वध करने वाले भिक्षु अरित्थ को उस हानिकारक दृष्टिकोण से दूर करने की इच्छा से, उससे बार-बार प्रश्न पूछे और उसे फटकारते हुए कहा, "ऐसा मत कहो, मित्र अरित्थ। भगवान बुद्ध का गलत अर्थ मत निकालो, क्योंकि भगवान बुद्ध का गलत अर्थ निकालना उचित नहीं है। भगवान बुद्ध ऐसा कुछ नहीं कहेंगे। मित्र, भगवान बुद्ध ने अनेक प्रकार से बाधक कार्यों का वर्णन किया है, और जब उनमें लिप्त हुआ जाता है तो वे वास्तव में बाधक होते हैं। भगवान बुद्ध ने कहा है कि इंद्रिय सुख कम संतुष्टि, अधिक तनाव, अधिक निराशा और अधिक हानियाँ देते हैं। भगवान बुद्ध ने इंद्रिय सुखों की तुलना हड्डियों की एक श्रृंखला से की है: जो बहुत तनाव, अधिक निराशा और अधिक हानियाँ देती है। भगवान बुद्ध ने इंद्रिय सुखों की तुलना मांस के एक टुकड़े... घास की मशाल... सुलगते अंगारों के गड्ढे... एक सपने... उधार ली गई वस्तुओं... एक पेड़ के फलों... एक कसाई की कुल्हाड़ी से की है।" काटने का तख्ता... तलवारें और भाले... एक साँप का सिर: बहुत तनाव, बहुत निराशा और उससे भी बड़ी हानियाँ।" और फिर भी, उन भिक्षुओं द्वारा बार-बार पूछे गए प्रश्नों और फटकारों के बावजूद, गिद्ध-हत्यारों के पूर्व भिक्षु अरित्था ने अपनी हठधर्मिता और उसी हानिकारक दृष्टिकोण से आसक्ति के कारण यह कहना जारी रखा, "हाँ, बिल्कुल, मित्रों। मैं भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूँ, और जिन कार्यों को भगवान बुद्ध बाधक कहते हैं, उनमें लिप्त होने पर वे वास्तव में बाधक नहीं होते।"

अतः जब भिक्षु गिद्ध-हत्यारों के पूर्व भिक्षु अरित्था को उस हानिकारक दृष्टिकोण से विमुख करने में असमर्थ रहे, तो वे भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने उन्हें सारी घटना बताई।

तब भगवान बुद्ध ने एक भिक्षु से कहा, "आओ, भिक्षु। मेरे नाम से, गिद्धों को मारने वाले भिक्षु अरित्था को पुकारो और कहो, 'गुरुजी तुम्हें बुला रहे हैं, मित्र अरित्था।'"

"जैसा आप कहें, भगवान," भिक्षु ने उत्तर दिया और गिद्ध-हत्यारों के पूर्व भिक्षु अरित्था के पास जाकर, वहाँ पहुँचकर उसने कहा, "गुरुजी अरित्था, गुरुजी आपको बुला रहे हैं।"

"जैसा आप कहें, मेरे मित्र," गिद्धों का वध करने वाले भिक्षु अरित्थ ने उत्तर दिया। फिर वह भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। जब वह वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, "क्या यह सच है, अरित्थ, कि तुम्हारे मन में यह हानिकारक विचार उत्पन्न हो गया है — 'भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, जिन कार्यों को भगवान बुद्ध बाधक कहते हैं, यदि उनमें लिप्त हो जाऊं, तो वे वास्तव में बाधक नहीं हैं'?"

"जी हां, बिल्कुल, भगवान। मैं भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूं, और जिन कार्यों को भगवान बुद्ध बाधक कहते हैं, उनमें लिप्त होने पर वे वास्तव में बाधक नहीं होते हैं।"

"हे निकम्मे मनुष्य, तुमने मुझसे धम्म का ऐसा अर्थ कैसे समझा? हे निकम्मे मनुष्य, क्या मैंने अनेक प्रकार से बाधक कर्मों का वर्णन नहीं किया है? और जब उनमें लिप्त हुआ जाता है, तो वे वास्तव में बाधक होते हैं। मैंने कहा है कि इंद्रिय सुख थोड़े संतोष देते हैं, बहुत कष्ट, बहुत निराशा और उससे भी अधिक हानि उत्पन्न करते हैं। मैंने इंद्रिय सुखों की तुलना हड्डियों की एक श्रृंखला से की है: जो बहुत कष्ट, बहुत निराशा और उससे भी अधिक हानि उत्पन्न करती है। मैंने इंद्रिय सुखों की तुलना मांस के एक टुकड़े... घास की मशाल... सुलगते अंगारों के गड्ढे... एक सपने... उधार ली गई वस्तुओं... पेड़ के फलों... कसाई की कुल्हाड़ी और काटने के तख्ते... तलवारों और भालों... सांप के सिर से की है: जो बहुत कष्ट, बहुत निराशा और उससे भी अधिक हानि उत्पन्न करती है। परन्तु हे निकम्मे मनुष्य, तुमने धम्म की अपनी गलत समझ के कारण न केवल हमारा गलत अर्थ निकाला है, बल्कि स्वयं को भी हानि पहुँचाई है और अपने लिए बहुत पुण्य अर्जित किया है, क्योंकि इससे तुम्हें दीर्घकाल हानि और व्यथा भोगनी पड़ेगी।"

तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, तुम क्या सोचते हो? क्या यह भिक्षु अरित्था, जो पहले गिद्धों का वध करने वालों में से था, इस सिद्धांत और अनुशासन में वाकई निपुण है?"

"वह ऐसा कैसे हो सकता है, भगवान? नहीं, भगवान।"

यह सुनकर, गिद्ध-हत्यारों के पूर्व भिक्षु अरित्था चुपचाप, शर्मिंदा होकर, कंधे झुकाए, सिर नीचे करके, सोच में डूबे हुए, शब्दों की कमी के साथ बैठ गए।

तब भगवान बुद्ध ने देखा कि गिद्धों का वध करने वाले भिक्षु अरित्थ चुपचाप, लज्जित, कंधे झुकाए, सिर नीचे किए, चिंतन में डूबे बैठे हैं और उनके पास कहने के लिए शब्द नहीं हैं, तो उन्होंने उनसे कहा, "अयोग्य व्यक्ति, तुम्हारा यह घृणित दृष्टिकोण सबके सामने प्रकट होगा। मैं इस मामले पर भिक्षुओं से पूछताछ करूंगा।"

तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, क्या तुम भी मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म को उसी प्रकार समझते हो जिस प्रकार गिद्धों का वध करने वाले भिक्षु अरित्था समझते हैं, जो अपनी गलत समझ के कारण न केवल हमारा गलत अर्थ निकालते हैं बल्कि स्वयं को भी हानि पहुंचाते हैं और अपने लिए बहुत पुण्य अर्जित करते हैं?"

नहीं, भगवान, क्योंकि भगवान बुद्ध ने अनेक प्रकार से बाधक कार्यों का वर्णन किया है, और जब उनमें लिप्त होते हैं तो वे वास्तव में बाधक होते हैं। भगवान बुद्ध ने कहा है कि इंद्रिय सुख थोड़े संतोष देते हैं, बहुत तनाव, बहुत निराशा और उससे भी कहीं अधिक हानि उत्पन्न करते हैं। भगवान बुद्ध ने इंद्रिय सुखों की तुलना हड्डियों की एक श्रृंखला से की है: जो बहुत तनाव, बहुत निराशा और उससे भी कहीं अधिक हानि उत्पन्न करती है। भगवान बुद्ध ने इंद्रिय सुखों की तुलना मांस के एक टुकड़े... घास की मशाल... सुलगते अंगारों के गड्ढे... एक सपने... उधार ली गई वस्तुओं... पेड़ के फलों... कसाई की कुल्हाड़ी और काटने के तख्ते... तलवारों और भालों... एक सांप के सिर से की है: जो बहुत तनाव, बहुत निराशा और उससे भी कहीं अधिक हानि उत्पन्न करती है।
"यह अच्छी बात है, भिक्षुओं, कि आप मेरे द्वारा सिखाए गए धम्म को इस प्रकार समझते हैं, क्योंकि मैंने आपको अनेक प्रकार से बाधक कार्यों का वर्णन किया है, और उनमें लिप्त होने से वास्तव में बाधा उत्पन्न होती है। मैंने कहा है कि इंद्रिय सुख थोड़े संतोष देते हैं, बहुत तनाव, बहुत निराशा और उससे भी अधिक हानि उत्पन्न करते हैं। मैंने इंद्रिय सुखों की तुलना हड्डियों की एक श्रृंखला से की है: जो बहुत तनाव, बहुत निराशा और उससे भी अधिक हानि उत्पन्न करती है। मैंने इंद्रिय सुखों की तुलना मांस के एक टुकड़े... घास की मशाल... सुलगते अंगारों के गड्ढे... एक सपने... उधार ली गई वस्तुओं... पेड़ के फलों... कसाई की कुल्हाड़ी और काटने के तख्ते... तलवारों और भालों... एक सांप के सिर से की है: जो बहुत तनाव, बहुत निराशा और उससे भी अधिक हानि उत्पन्न करती है। लेकिन यह भिक्षु अरित्थ, जो पहले गिद्धों का वध करने वाला था, ने धम्म की अपनी गलत समझ के कारण न केवल हमारा गलत अर्थ निकाला है, बल्कि स्वयं को भी हानि पहुँचाई है और अपने लिए बहुत पुण्य अर्जित किया है, और यह इस निकम्मे व्यक्ति के दीर्घकालिक नुकसान का कारण बनेगा। और पीड़ा। किसी व्यक्ति के लिए कामुक जुनून, कामुक अनुभूति, कामुक सोच के बिना कामुक सुखों में लिप्त होना संभव नहीं है।

जल-सर्प उपमा

भिक्षुओं, एक ऐसा मामला है जहाँ कुछ निकम्मे लोग धम्म का अध्ययन करते हैं: संवाद, गद्य और पद्य के मिश्रित वृत्तांत, व्याख्याएँ, श्लोक, सहज उद्गार, उद्धरण, जन्म कथाएँ, आश्चर्यजनक घटनाएँ, प्रश्नोत्तर सत्र [बुद्ध की शिक्षाओं का सबसे प्रारंभिक वर्गीकरण]। धम्म का अध्ययन करने के बाद, वे अपने विवेक से उन धम्मों का अर्थ (या उद्देश्य) नहीं जान पाते। अपने विवेक से उन धम्मों का अर्थ न जान पाने के कारण, वे चिंतन के माध्यम से किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते। वे धम्म का अध्ययन दूसरों पर आक्रमण करने और वाद-विवाद में अपना बचाव करने दोनों के लिए करते हैं। वे उस लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाते जिसके लिए लोग धम्म का अध्ययन करते हैं। उन धम्मों की उनकी गलत समझ उनके दीर्घकालिक नुकसान और पीड़ा का कारण बनेगी। ऐसा क्यों है? क्योंकि उन्होंने धम्मों को गलत तरीके से समझा है।
मान लीजिए कि एक व्यक्ति को जलीय सर्प की आवश्यकता है, वह उसे खोज रहा है, उसकी तलाश में भटक रहा है। उसे एक बड़ा जलीय सर्प दिखाई देगा और वह उसे कुंडली या पूंछ से पकड़ लेगा। जलीय सर्प पलटकर उसके हाथ, बांह या किसी अन्य अंग पर काट लेगा, और इस कारण उसकी मृत्यु हो जाएगी या मृत्यु के समान पीड़ा होगी। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि जलीय सर्प को गलत तरीके से पकड़ा गया है। इसी प्रकार, कुछ निकम्मे लोग धम्म का अध्ययन करते हैं... धम्म का अध्ययन करने के बाद, वे अपने विवेक से उन धम्मों का अर्थ नहीं समझते। अपने विवेक से उन धम्मों का अर्थ न समझ पाने के कारण, वे मनन द्वारा किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचते। वे धम्म का अध्ययन दूसरों पर आक्रमण करने और वाद-विवाद में अपना बचाव करने दोनों के लिए करते हैं। वे उस लक्ष्य तक नहीं पहुँचते जिसके लिए लोग धम्म का अध्ययन करते हैं। उन धम्मों के प्रति उनकी गलत समझ उनके दीर्घकालिक नुकसान और पीड़ा का कारण बनेगी। ऐसा क्यों है? क्योंकि धम्मों को गलत तरीके से समझा गया है।
लेकिन एक ऐसा मामला भी है जहाँ कुछ कुलवासी धम्म का अध्ययन करते हैं... धम्म का अध्ययन करने के बाद, वे अपने विवेक से उन धम्मों का अर्थ समझते हैं। अपने विवेक से उन धम्मों का अर्थ समझने के बाद, वे चिंतन-मनन के माध्यम से एक समझौते पर पहुँचते हैं। वे न तो दूसरों पर आक्रमण करने के लिए और न ही वाद-विवाद में अपना बचाव करने के लिए धम्म का अध्ययन करते हैं। वे उस लक्ष्य तक पहुँचते हैं जिसके लिए लोग धम्म का अध्ययन करते हैं। उन धम्मों की उनकी सही समझ उनके दीर्घकालिक कल्याण और सुख की ओर ले जाती है। ऐसा क्यों है? क्योंकि उन्होंने धम्मों को सही ढंग से समझा है।
मान लीजिए कि एक व्यक्ति को जलीय सर्प की आवश्यकता है, वह उसे खोज रहा है, और उसकी तलाश में भटक रहा है। वह एक बड़ा जलीय सर्प देखेगा और उसे एक दोमुंही छड़ी से मजबूती से पकड़ लेगा। उसे एक दोमुंही छड़ी से मजबूती से पकड़ने के बाद, वह उसकी गर्दन को मजबूती से पकड़ लेगा। तब चाहे जलीय सर्प अपने कुंडल उसके हाथ, उसकी बांह या उसके किसी भी अंग के चारों ओर कितना भी लपेट ले, उसे मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा नहीं होगी। ऐसा क्यों है? क्योंकि जलीय सर्प की पकड़ सही है। इसी प्रकार, कुछ कुल के लोग धम्म का अध्ययन करते हैं... धम्म का अध्ययन करने के बाद, वे अपने विवेक से उन धम्मों का अर्थ समझते हैं। अपने विवेक से उन धम्मों का अर्थ समझने के बाद, वे चिंतन के माध्यम से एक समझौते पर पहुंचते हैं। वे न तो दूसरों पर आक्रमण करने के लिए और न ही वाद-विवाद में अपना बचाव करने के लिए धम्म का अध्ययन करते हैं। वे उस लक्ष्य तक पहुंचते हैं जिसके लिए लोग धम्म का अध्ययन करते हैं। उन धम्मों पर उनकी सही पकड़ ही उन्हें उस लक्ष्य तक पहुंचाती है जिसके लिए वे धम्मों का अध्ययन करते हैं। धर्म उनके दीर्घकालिक कल्याण और सुख की ओर ले जाएगा। ऐसा क्यों? क्योंकि धर्मों की सही समझ ही इसका कारण है।

इसलिए, भिक्षुओं, जब आप मेरे कथनों का अर्थ समझ लें, तो उन्हें उसी प्रकार याद रखें। लेकिन जब आप मेरे कथनों का अर्थ न समझें, तो वहीं मुझसे या अनुभवी भिक्षुओं से पूछें।

बेड़ा उपमा

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें धम्म की शिक्षा एक नाव के उदाहरण से दूंगा, जिसका उद्देश्य पार करना है, न कि उस पर टिके रहना। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, भगवान," भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध को उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "मान लीजिए एक व्यक्ति किसी रास्ते पर यात्रा कर रहा है। उसे पानी का एक विशाल विस्तार दिखाई देता है, जिसका निकटवर्ती किनारा संदिग्ध और जोखिम भरा है, जबकि दूरवर्ती किनारा सुरक्षित और जोखिम रहित है, लेकिन इस किनारे से दूसरे किनारे तक जाने के लिए न तो कोई नौका है और न ही कोई पुल। उसके मन में यह विचार आता है, 'यह पानी का विशाल विस्तार है, जिसका निकटवर्ती किनारा संदिग्ध और जोखिम भरा है, जबकि दूरवर्ती किनारा सुरक्षित और जोखिम रहित है, लेकिन इस किनारे से दूसरे किनारे तक जाने के लिए न तो कोई नौका है और न ही कोई पुल। यदि मैं घास, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्तियाँ एकत्र करूँ और उन्हें एक साथ बाँधकर एक बेड़ा बनाऊँ, और अपने हाथों और पैरों से प्रयास करते हुए उस बेड़े के सहारे दूसरे किनारे पर सुरक्षित रूप से पहुँच जाऊँ तो क्या होगा?'" फिर वह व्यक्ति घास, टहनियाँ, डालियाँ और पत्तियाँ इकट्ठा करके उन्हें एक साथ बाँधकर एक बेड़ा बनाता और उस बेड़े के सहारे अपने हाथों और पैरों से ज़ोर लगाकर दूसरे किनारे पर सुरक्षित पहुँच जाता। किनारे पर पहुँचकर वह सोचता, 'यह बेड़ा मेरे लिए कितना उपयोगी रहा! इसी के सहारे, अपने हाथों और पैरों से ज़ोर लगाकर, मैं सुरक्षित किनारे पर पहुँच गया। क्यों न मैं इसे अपने सिर पर उठाकर या अपनी पीठ पर लादकर जहाँ चाहूँ वहाँ जाऊँ?' हे भिक्षुओं, आपका क्या विचार है: क्या ऐसा करने से वह व्यक्ति बेड़े का सही उपयोग कर रहा होगा?

"नहीं, भगवान।"

और मनुष्य को क्या करना चाहिए ताकि वह बेड़ा का उचित उपयोग कर सके? एक उदाहरण यह है कि व्यक्ति पार पहुँचने के बाद सोचेगा, 'यह बेड़ा मेरे लिए कितना उपयोगी रहा! क्योंकि इसी बेड़े के सहारे, अपने हाथों और पैरों से प्रयास करके, मैं सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे पर पहुँच गया। क्यों न मैं इसे सूखी भूमि पर घसीटकर या पानी में डुबोकर जहाँ चाहूँ वहाँ जाऊँ?' ऐसा करके वह बेड़े का उचित उपयोग कर रहा होगा। इसी प्रकार, भिक्षुओं, मैंने धम्म की तुलना बेड़े से की है, पार करने के उद्देश्य से, न कि उस पर पकड़ बनाए रखने के उद्देश्य से। धम्म को बेड़े की तुलना में समझते हुए, आपको धम्मों को भी छोड़ देना चाहिए, गैर-धम्मों की तो बात ही क्या है।

छह दृश्य-स्थितियाँ

भिक्षुओं, ये छह दृष्टिकोण (दित्थित्थाना) हैं। कौन से छह? एक स्थिति वह है जब एक अशिक्षित, साधारण व्यक्ति—जो श्रेष्ठ लोगों का सम्मान नहीं करता, उनके धम्म में पारंगत या अनुशासित नहीं है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का सम्मान नहीं करता, उनके धम्म में पारंगत या अनुशासित नहीं है—यही रूप धारण कर लेता है: 'यही मैं हूँ, यही मेरा स्वरूप है, यही मैं हूँ।'

वह भावनाओं के बारे में यह धारणा बना लेता है: 'यही मैं हूं, यही मेरा स्वरूप है, यही मैं हूं।'

वह धारणा के बारे में यह मानकर चलता है: 'यह मैं हूं, यह मेरा स्व है, यह वही है जो मैं हूं।'

वह मनगढ़ंत बातों के बारे में अनुमान लगाता है: 'यही मैं हूं, यही मेरा स्वरूप है, यही मैं हूं।'

"वह जो कुछ भी देखता, सुनता, महसूस करता, समझता, प्राप्त करता, खोजता और बुद्धि द्वारा विचार करता है, उसके बारे में यह धारणा बना लेता है: 'यही मैं हूँ, यही मेरा स्वरूप है, यही मैं हूँ।'"

वह इस दृष्टिकोण को अपनाता है - 'यह ब्रह्मांड ही आत्मा है। मृत्यु के बाद यह 'मैं' स्थिर, स्थायी, शाश्वत रहेगा, परिवर्तन के अधीन नहीं। मैं अनंत काल तक ऐसा ही रहूंगा': 'यही मैं हूं, यही मेरी आत्मा है, यही मैं हूं।'

फिर वह स्थिति आती है जब श्रेष्ठ जनों का एक सुशिक्षित शिष्य—जो श्रेष्ठ जनों का आदर करता है, उनके धर्म में पारंगत और अनुशासित है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म में पारंगत और अनुशासित है—यह भाव धारण कर लेता है: 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्वरूप नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूँ।'

वह भावनाओं के बारे में यह धारणा बना लेता है: 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूँ।'

वह धारणा के बारे में यह मान लेता है: 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूँ।'

वह मनगढ़ंत बातों के बारे में अनुमान लगाता है: 'यह मैं नहीं हूं, यह मेरा असली रूप नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूं।'

"वह जो कुछ भी देखता, सुनता, महसूस करता, समझता, प्राप्त करता, खोजता और बुद्धि द्वारा विचार करता है, उसके बारे में यह धारणा बना लेता है: 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूँ।'"

वह इस दृष्टिकोण को अपनाता है - 'यह ब्रह्मांड ही आत्मा है। मृत्यु के बाद यह 'मैं' स्थिर, स्थायी, शाश्वत रहेगा, परिवर्तन के अधीन नहीं। मैं अनंत काल तक ऐसा ही रहूंगा': 'यह मैं नहीं हूं, यह मेरी आत्मा नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूं।'

"इस प्रकार देखकर, वह उस चीज को लेकर विचलित नहीं होता जो मौजूद नहीं है।"

जब यह कहा गया, तो एक भिक्षु ने भगवान से कहा, "हे भगवान, क्या किसी ऐसी चीज को लेकर चिंता हो सकती है जो बाह्य रूप से मौजूद नहीं है?"

“हे भिक्षु, ऐसा हो सकता है,” भगवान बुद्ध ने कहा। “ऐसा भी हो सकता है जब कोई सोचता है, ‘ओह, यह मेरा था! ओह, जो मेरा था वह अब नहीं है! ओह, काश यह मेरा हो जाए! ओह, मुझे यह प्राप्त नहीं हो रहा है!’ वह दुखी होता है, व्याकुल होता है, रोता है, अपनी छाती पीटता है और बेहोश हो जाता है। इस प्रकार बाहरी रूप से अनुपस्थित वस्तु के प्रति बेचैनी उत्पन्न होती है।”

लेकिन, हे भगवान, क्या जो बाह्य रूप से उपस्थित नहीं है, उसके बारे में अशांति न होना संभव है?

“ऐसा हो सकता है, भिक्षु,” भगवान बुद्ध ने कहा। “ऐसा भी हो सकता है जब कोई यह न सोचे, ‘ओह, यह मेरा था! ओह, जो मेरा था वह अब नहीं है! ओह, काश यह मेरा हो जाए! ओह, मुझे यह प्राप्त न हो!’ वह शोक नहीं करता, व्याकुल नहीं होता, रोता नहीं, सीना नहीं पीटता, या उन्माद में नहीं आता। इस प्रकार, जो बाह्य रूप से उपस्थित नहीं है, उसके प्रति अविचलितता बनी रहती है।”

आंदोलन और अहस्तक्षेप

लेकिन, हे भगवान, क्या आंतरिक रूप से अनुपस्थित किसी चीज को लेकर भी अशांति हो सकती है?

“ऐसा हो सकता है, भिक्षु,” भगवान बुद्ध ने कहा। “ऐसा हो सकता है कि किसी के मन में यह विचार हो: ‘यह ब्रह्मांड ही आत्मा है। मृत्यु के बाद यह ‘मैं’ स्थिर, स्थायी, शाश्वत, अपरिवर्तनीय रहूँगा। मैं अनंत काल तक ऐसा ही रहूँगा।’ वह तथागत या तथागत के शिष्य को सभी दृष्टिकोणों, संकल्पों, पूर्वाग्रहों, झुकावों और आसक्तियों के निवारण, सभी मनगढ़ंत बातों के शांत होने, सभी प्राप्तियों के त्याग, व्यथा के अंत, वैराग्य, निश्चिंतता और मुक्ति के लिए धम्म का उपदेश देते हुए सुनता है। उसके मन में यह विचार आता है, ‘तो ऐसा हो सकता है कि मेरा नाश हो जाए! तो ऐसा हो सकता है कि मेरा अस्तित्व ही न रहे!’ वह शोक करता है, व्याकुल होता है, रोता है, अपनी छाती पीटता है और प्रलाप करने लगता है। इस प्रकार आंतरिक रूप से विद्यमान न होने पर व्याकुलता उत्पन्न होती है।”

लेकिन, हे भगवान, क्या आंतरिक रूप से अनुपस्थित किसी चीज को लेकर अशांति न होना संभव है?

“ऐसा हो सकता है, भिक्षु,” भगवान बुद्ध ने कहा। “ऐसा भी हो सकता है जब किसी का यह दृष्टिकोण न हो: ‘यह ब्रह्मांड ही आत्मा है। मृत्यु के बाद यह ‘मैं’ स्थिर, स्थायी, शाश्वत, अपरिवर्तनीय रहूँगा। मैं अनंत काल तक ऐसा ही रहूँगा।’ वह तथागत या तथागत के शिष्य को सभी दृष्टिकोणों, संकल्पों, पूर्वाग्रहों, झुकावों और आसक्तियों के निवारण, सभी कल्पनाओं के शांत होने, सभी प्राप्तियों के त्याग, व्यथा के अंत, वैराग्य, निश्चिंतता और मुक्ति के लिए धम्म का उपदेश देते हुए सुनता है। उसके मन में यह विचार नहीं आता, ‘ऐसा हो सकता है कि मेरा नाश हो जाए! ऐसा हो सकता है कि मैं नष्ट हो जाऊँ! ऐसा हो सकता है कि मेरा अस्तित्व ही न रहे!’ वह शोक नहीं करता, व्याकुल नहीं होता, रोता नहीं, छाती नहीं पीटता, न ही प्रलाप करता है। इस प्रकार आंतरिक रूप से अनुपस्थित चीज़ के प्रति अविचलितता रहती है।”

संपत्ति और विचारों का त्याग

भिक्षुओं, आपके लिए उस प्राप्ति की कामना करना भला होगा, जो स्थिर, स्थायी, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो, और अनंत काल तक यथावत बनी रहे। परन्तु क्या आप उस प्राप्ति को देख पाते हैं, जो स्थिर, स्थायी, शाश्वत, अपरिवर्तनीय हो, और अनंत काल तक यथावत बनी रहे?

"नहीं, भगवान।"

"बहुत खूब, भिक्षुओं। मैं भी किसी ऐसी संपत्ति की कल्पना नहीं करता, जो स्थिर, स्थायी, शाश्वत हो, परिवर्तन के अधीन न हो, और जो अनंत काल तक वैसी ही बनी रहे।"

भिक्षुओं, आपके लिए यह अच्छा होगा कि आप आत्म-संतोष के उस सिद्धांत से जुड़े रहें, जिससे शोक, विलाप, पीड़ा, दुःख और निराशा उत्पन्न न हो। परन्तु क्या आप आत्म-संतोष के उस सिद्धांत से जुड़े रहने को देख पाते हैं, जिससे शोक, विलाप, पीड़ा, दुःख और निराशा उत्पन्न न हो?

"नहीं, भगवान।"

"बहुत अच्छा, भिक्षुओं। मैं भी आत्म-प्रधानता के सिद्धांत से चिपके रहने की कल्पना नहीं करता, जिससे चिपके रहने पर दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा उत्पन्न होगी।"

भिक्षुओं, आप दृष्टि-निर्भरता (दित्थी-निस्सया) पर निर्भर रहना भला होगा, जिस पर निर्भर रहने से दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा उत्पन्न नहीं होगी। परन्तु क्या आप ऐसी दृष्टि-निर्भरता देखते हैं, जिस पर निर्भर रहने से दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा उत्पन्न नहीं होगी?

"नहीं, भगवान।"

"बहुत अच्छा, भिक्षुओं। मैं भी किसी ऐसी दृष्टि-निर्भरता की कल्पना नहीं करता, जिसके आधार पर दुःख, विलाप, पीड़ा, शोक और निराशा उत्पन्न न हो।"

भिक्षुओं, जहाँ आत्मा होती है, क्या वहाँ 'मेरी आत्मा से संबंधित' का विचार भी होता है?

"हाँ भगवान।"

"या, भिक्षुओं, जहाँ स्वयं से संबंधित कुछ है, क्या वहाँ 'मेरा स्व' का विचार होगा?"
"हाँ भगवान।"
भिक्षुओं, जहाँ आत्मा या आत्मा से संबंधित किसी चीज़ को सत्य या वास्तविकता के रूप में परिभाषित नहीं किया जाता, वहाँ यह दृष्टिकोण कि 'यह ब्रह्मांड ही आत्मा है। मृत्यु के बाद यह 'मैं' स्थिर, स्थायी, शाश्वत, अपरिवर्तनीय रहेगा। मैं अनंत काल तक ऐसा ही बना रहूँगा' - क्या यह पूरी तरह से मूर्खतापूर्ण शिक्षा नहीं है?
"हे भगवान, यह और क्या हो सकता है? यह तो सरासर मूर्खता की शिक्षा है।"
"भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या रूप स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, भगवान।" "और जो अस्थिर है, क्या वह सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, भगवान।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण, परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"
"नहीं, भगवान।"
"...क्या भावना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, भगवान।"
"...क्या बोध स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, भगवान।"
"...क्या निर्माण स्थिर हैं या अस्थिर?" "अस्थिर, स्वामी।"
"भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या चेतना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, भगवान।" "और जो अस्थिर है, क्या वह सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, भगवान।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"
"नहीं, भगवान।"
"इस प्रकार, भिक्षुओं, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल का कोई भी रूप; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: प्रत्येक रूप को सही विवेक से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए और समझना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है। यह मेरा स्वरूप नहीं है। यह मैं नहीं हूँ।'"
किसी भी प्रकार की भावना...
किसी भी प्रकार की धारणा...
किसी भी प्रकार की मनगढ़ंत बातें...
"भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल की कोई भी चेतना; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: प्रत्येक चेतना को सही विवेक से उसके वास्तविक स्वरूप में देखा जाना चाहिए: 'यह मेरी नहीं है। यह मेरा स्व नहीं है। यह वह नहीं है जो मैं हूं।'"
इस प्रकार देखकर, श्रेष्ठ जनों का उपदेशित शिष्य रूप, भावना, बोध, कल्पना और चेतना से विरक्त हो जाता है। विरक्त होकर वह वैराग्यवान हो जाता है। वैराग्य के द्वारा वह पूर्णतः मुक्त हो जाता है। पूर्ण मुक्ति के साथ ही उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, 'पूर्णतः मुक्त हो गया।' वह यह जान लेता है कि 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'
"हे भिक्षुओं, इसे वह भिक्षु कहा जाता है जिसकी चौखट हटा दी गई हो, जिसकी खाई भर दी गई हो, जिसका स्तंभ उखाड़ दिया गया हो, जिसका बोल्ट निकाल दिया गया हो; एक महान भिक्षु जिसका ध्वज नीचे झुका हुआ हो, बोझ नीचे रखा हुआ हो, बंधन मुक्त हो।"
और वह भिक्षु कैसा होता है जिसकी लगाम टूट जाती है? एक स्थिति वह होती है जब भिक्षु का अज्ञान त्याग दिया जाता है, उसकी जड़ नष्ट हो जाती है, जैसे उखड़ा हुआ ताड़ का पेड़, अस्तित्व की स्थितियों से वंचित, भविष्य में उत्पन्न होने के लिए नियत नहीं। इस प्रकार वह भिक्षु होता है जिसकी लगाम टूट जाती है।
और वह भिक्षु कैसा होता है जिसकी खाई भर दी गई हो? एक स्थिति वह होती है जब किसी भिक्षु का जन्म-जन्म की यात्रा, जो आगे चलकर विकास की ओर ले जाती है, त्याग दी जाती है, उसकी जड़ नष्ट हो जाती है, जैसे उखड़ा हुआ ताड़ का पेड़, अस्तित्व की स्थितियों से वंचित, भविष्य में जन्म लेने के लिए नियत नहीं। इस प्रकार वह भिक्षु होता है जिसकी खाई भर दी गई हो।
और वह भिक्षु कैसा होता है जिसका स्तंभ उखाड़ दिया गया हो? एक स्थिति वह होती है जब भिक्षु की तृष्णा का त्याग हो जाता है, उसकी जड़ नष्ट हो जाती है, जैसे उखड़ा हुआ ताड़ का पेड़, जो अस्तित्व की अवस्थाओं से वंचित हो जाता है, भविष्य में उसका कोई जन्म नहीं होता। इस प्रकार वह भिक्षु होता है जिसका स्तंभ उखाड़ दिया गया हो।
और वह भिक्षु कैसा होता है जिसका बंधन खुल जाता है? एक मामला ऐसा होता है जब भिक्षु के पाँच निम्न बंधन त्याग दिए जाते हैं, उनकी जड़ नष्ट हो जाती है, जैसे उखड़ा हुआ ताड़ का पेड़, अस्तित्व की स्थितियों से वंचित, भविष्य में उत्पन्न होने के लिए नियत नहीं। इस प्रकार वह भिक्षु होता है जिसका बंधन खुल जाता है।
और ध्वज झुकाए, बोझ उतारे और बंधनमुक्त भिक्षु कैसे श्रेष्ठ हो सकता है? यह वह स्थिति है जब भिक्षु का 'मैं हूँ' का अहंकार त्याग दिया जाता है, उसकी जड़ नष्ट हो जाती है, जैसे उखड़ा हुआ ताड़ का पेड़, अस्तित्व की स्थितियों से वंचित, भविष्य में उत्पन्न होने के लिए नियत नहीं। इस प्रकार ध्वज झुकाए, बोझ उतारे और बंधनमुक्त भिक्षु श्रेष्ठ होता है।

और जब देवता, इंद्र, ब्रह्मा और प्रजापति के साथ मिलकर उस भिक्षु की खोज करते हैं जिसका मन इस प्रकार मुक्त हो गया है, तो उन्हें यह नहीं मिलता कि 'वास्तव में दिवंगत (तथागत) की चेतना इस पर निर्भर है।' ऐसा क्यों है? वास्तव में दिवंगत व्यक्ति का तो इस वर्तमान क्षण में भी पता नहीं लगाया जा सकता।

"इस प्रकार बोलने और इस प्रकार शिक्षा देने के कारण, कुछ ब्राह्मणों और ध्यानियों ने मुझे गलत, व्यर्थ, झूठे और तथ्यहीन तरीके से गलत तरीके से प्रस्तुत किया है, [जो कहते हैं], 'गौतम ध्यानी गुमराह करने वाले हैं। वे विद्यमान प्राणी के संहार, विनाश और अंत की घोषणा करते हैं।' लेकिन चूंकि मैं ऐसा नहीं हूं, चूंकि मैं ऐसा नहीं कहता, इसलिए उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों ने मुझे गलत, व्यर्थ, झूठे और तथ्यहीन तरीके से गलत तरीके से प्रस्तुत किया है, [जो कहते हैं], 'गौतम ध्यानी गुमराह करने वाले हैं। वे विद्यमान प्राणी के संहार, विनाश और अंत की घोषणा करते हैं।'"

"हे भिक्षुओं, मैं पहले भी और अब भी, केवल तनाव और तनाव के निवारण की घोषणा करता हूँ। और यदि दूसरे इसके लिए तथागत का अपमान करें, गाली दें, उपहास करें, परेशान करें और उत्पीड़न करें, तो उन्हें इससे कोई घृणा, कोई आक्रोश या हृदय में कोई असंतोष नहीं होता। और यदि दूसरे इसके लिए तथागत का आदर करें, सम्मान करें, और श्रद्धा करें, तो उन्हें इससे कोई आनंद, कोई प्रसन्नता या हृदय में कोई उत्साह नहीं होता। और यदि दूसरे इसके लिए तथागत का आदर करें, सम्मान करें, और श्रद्धा करें, तो वे सोचते हैं, 'वे मेरी ऐसी सेवा कर रहे हैं जो पहले से ही समझी जा चुकी है।'"

इसलिए, हे भिक्षुओं, यदि दूसरे आपका अपमान करें, गाली दें, ताना मारें, परेशान करें और उत्पीड़न करें, तो भी आपको इससे घृणा, आक्रोश या असंतोष नहीं होना चाहिए। और यदि दूसरे आपका आदर करें, सम्मान करें, श्रद्धा करें और पूजा करें, तो भी आपको इससे प्रसन्नता, आनंद या उत्साह नहीं होना चाहिए। और यदि दूसरे आपका आदर करें, सम्मान करें, श्रद्धा करें और पूजा करें, तो आपको सोचना चाहिए, 'वे हमारी ऐसी सेवा कर रहे हैं जो पहले ही समझी जा चुकी है।'

अतः, भिक्षुओं, जो कुछ भी तुम्हारा नहीं है, उसे त्याग दो। तुम्हारा त्याग करना तुम्हारे दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए होगा। और क्या तुम्हारा नहीं है? शरीर तुम्हारा नहीं है: उसे त्याग दो। तुम्हारा त्याग करना तुम्हारे दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए होगा। भावना तुम्हारी नहीं है... बोध... विचार... चेतना तुम्हारी नहीं है: उसे त्याग दो। तुम्हारा त्याग करना तुम्हारे दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए होगा।

"भिक्षुओं, आपका क्या विचार है: यदि कोई व्यक्ति जेतवन में घास, टहनियों, शाखाओं और पत्तियों को इकट्ठा करे, जलाए या अपनी इच्छानुसार उनका उपयोग करे, तो क्या आपके मन में यह विचार आएगा, 'यह व्यक्ति तो हमें ही इकट्ठा कर रहा है, जला रहा है या अपनी इच्छानुसार उनका उपयोग कर रहा है'?"

"नहीं, भगवान। ऐसा क्यों? क्योंकि वे चीजें हमारा 'स्व' नहीं हैं, और न ही वे हमारे 'स्व' से संबंधित हैं।"

फिर भी, हे भिक्षुओं, जो कुछ भी तुम्हारा नहीं है, उसे त्याग दो। तुम्हारा त्याग करना तुम्हारे दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए होगा। और क्या तुम्हारा नहीं है? रूप तुम्हारा नहीं है... भावना तुम्हारी नहीं है... बोध... विचार-रचनाएँ... चेतना तुम्हारी नहीं है: इसे त्याग दो। तुम्हारा त्याग करना तुम्हारे दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए होगा।

सुप्रसिद्ध धम्म

मेरे द्वारा इस प्रकार सुस्पष्ट किया गया धम्म स्पष्ट, खुला, प्रत्यक्ष और अशुद्धियों से रहित है। मेरे द्वारा सुस्पष्ट किए गए इस धम्म में—जो स्पष्ट, खुला, प्रत्यक्ष और अशुद्धियों से रहित है—उन अर्हंत भिक्षुओं के लिए—जिनके मानसिक दोष समाप्त हो गए हैं, जिन्होंने पूर्णता प्राप्त कर ली है, अपना कार्य पूरा कर लिया है, बोझ उतार दिया है, सच्चे लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है, जन्म के बंधन को पूरी तरह से नष्ट कर दिया है, और जो सही ज्ञान से मुक्त हो गए हैं—भविष्य में कोई पुनर्जन्म चक्र नहीं है। इस प्रकार मेरे द्वारा सुस्पष्ट किया गया धम्म स्पष्ट, खुला, प्रत्यक्ष और अशुद्धियों से रहित है।

मेरे द्वारा इस प्रकार सुस्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्मल धम्म में, वे भिक्षु जिन्होंने पाँच निम्न बंधनों का त्याग कर दिया है, वे सभी [शुद्ध लोकों में] पुनर्जन्म लेने के पात्र हैं, वहाँ वे पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं और उस लोक से कभी वापस नहीं लौटते। मेरे द्वारा सुस्पष्ट धम्म इसी प्रकार स्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्मल है।

मेरे द्वारा इस प्रकार सुस्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्मल धम्म में, वे भिक्षु जिन्होंने तीनों बंधनों का त्याग कर, कामवासना, घृणा और भ्रम से मुक्त होकर, एक बार फिर इस संसार में लौटकर अपने दुखों का अंत कर देंगे। मेरे द्वारा सुस्पष्ट धम्म इसी प्रकार स्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्मल है।

मेरे द्वारा इस प्रकार सुस्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्मल धम्म में, वे भिक्षु जिन्होंने तीनों बंधनों का त्याग कर दिया है, वे सभी जलमार्ग के विजेता हैं, स्थिर हैं, फिर कभी दुःख की अवस्थाओं में नहीं पड़ेंगे, और आत्म-जागरूकता की ओर अग्रसर होंगे। मेरे द्वारा सुस्पष्ट धम्म इसी प्रकार स्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्मल है।

"मेरे द्वारा इस प्रकार सुस्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और अपरिष्कृत धम्म में, वे सभी भिक्षु जो धम्म के अनुयायी और दृढ़ विश्वास के अनुयायी हैं, आत्म-जागरूकता की ओर अग्रसर हैं। मेरे द्वारा सुस्पष्ट धम्म इसी प्रकार स्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और अपरिष्कृत है।"

"मेरे द्वारा इस प्रकार सुस्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्मल धम्म में, वे भिक्षु जो मुझमें पर्याप्त विश्वास रखते हैं, मुझसे पर्याप्त प्रेम रखते हैं, वे सभी स्वर्ग की ओर अग्रसर हैं। मेरे द्वारा सुस्पष्ट धम्म इसी प्रकार स्पष्ट, स्पष्ट, प्रत्यक्ष और निर्मल है।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 3.3वम्मिका सुत्त(23)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना:

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य कुमारकस्सपा घने जंगल में रहते थे। जब रात ढल रही थी, एक देवता ने पूरे घने जंगल को प्रकाशित कर दिया और पूज्य कुमारकस्सपा के पास आए। कुमारकस्सपा एक तरफ खड़े हो गए और बोले, "भिक्षु, यह चींटी का टीला रात में धुआं छोड़ता है और दिन में जल उठता है।" ब्राह्मण ने कहा, "

हे ज्ञानी, औजार लो और खोदो। औजार से खोदते समय उसे एक बाधा दिखाई दी; हे अच्छे ज्ञानी, एक बाधा। ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, बाधा हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते समय उसे एक फूला हुआ शव दिखाई दिया। हे अच्छे ज्ञानी, एक फूला हुआ शव। ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, फूले हुए शव को हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते समय उसे एक दोराहा दिखाई दिया। हे अच्छे ज्ञानी, एक दोराहा। ब्राह्मण ने कहा, दोराहा हटाओ और औजार से खोदो। हे अच्छे ज्ञानी, एक ताबूत। ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, ताबूत हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते समय उसे एक कछुआ दिखाई दिया। हे अच्छे ज्ञानी, एक कछुआ। ब्राह्मण ने कहा, कछुए को हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते समय उसे एक कसाईखाना दिखाई दिया। हे अच्छे ज्ञानी, एक कसाईखाना। ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, कसाईखाने को हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते समय उसे मांस की एक नस दिखाई दी। हे अच्छे ज्ञानी, मांस की एक नस। ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, मांस की नस को हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते हुए उसने एक साँप देखा। वाह, एक साँप! ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, रुको, साँप को मत मारो, साँप की पूजा करो। भिक्षु, भगवान बुद्ध के पास जाओ और उनसे यह प्रश्न पूछो, और जब वे इसका उत्तर दें तो इसे ध्यान में रखो। इस देवी-देवताओं और मनुष्यों के संसार में, मारों, ब्रह्माओं और संन्यासियों और ब्राह्मणों के समुदाय में, मुझे कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखता जो इस प्रश्न का उत्तर दे सके और मन को संतुष्ट कर सके, सिवाय तथागत, तथागत के शिष्य या जिसने इसे सुना हो। यह कहकर देवता वहाँ से विलीन हो गए...

उस रात के अंत में पूज्य कुमारकस्सपा भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। बैठे हुए पूज्य कुमारकस्सपा ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा, "हे भगवान, पिछली रात एक देवता ने घने जंगल को प्रकाशित किया और मेरे पास आकर एक तरफ खड़े हो गए और कहा, 'भिक्षु, यह चींटियों का टीला रात में धुआँ छोड़ता है और दिन में जल उठता है।' ब्राह्मण ने कहा, 'हे ज्ञानी, औजार लेकर खोदो।' औजार से खोदते समय उन्हें एक बाधा दिखाई दी। हे ज्ञानी, एक बाधा!' ब्राह्मण ने कहा, 'हे ज्ञानी, बाधा हटाओ और औजार से खोदो।' औजार से खोदते समय उन्हें एक फूला हुआ शव दिखाई दिया। हे ज्ञानी, एक फूला हुआ शव! ब्राह्मण ने कहा, 'हे ज्ञानी, फूले हुए शव को हटाओ और औजार से खोदो।' औजार से खोदते समय उन्हें एक दोराहा रास्ता दिखाई दिया। हे ज्ञानी, एक दोराहा रास्ता! ब्राह्मण ने कहा, 'दोराहा रास्ता हटाओ और औजार से खोदो। हे ज्ञानी, एक ताबूत!' ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, ताबूत हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते हुए उसे एक कछुआ दिखाई दिया। हे भगवान, एक कछुआ! ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, कछुए को हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते हुए उसे एक कसाईखाना दिखाई दिया। हे भगवान, एक कसाईखाना! ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, कसाईखाने को हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते हुए उसे मांस की एक नस दिखाई दी। हे भगवान, मांस की एक नस! ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, मांस की नस को हटाओ और औजार से खोदो। औजार से खोदते हुए उसे एक सांप दिखाई दिया। हे भगवान, एक सांप! ब्राह्मण ने कहा, हे ज्ञानी, रुको, सांप को मत मारो, सांप की पूजा करो। भिक्षु, भगवान के पास जाओ और यह प्रश्न पूछो और जब वे इसका उत्तर दें तो इसे ध्यान में रखो। इस देवताओं और मनुष्यों के संसार में, मारों, ब्रह्माओं और संन्यासियों और ब्राह्मणों के समुदाय में, मुझे ऐसा कोई नहीं दिखता जो इस प्रश्न का उत्तर दे सके और मन को संतुष्ट कर सके, सिवाय तथागत, उनके शिष्य के या जिसने यह बात सुनी हो। यह कहते हुए कि देवता वहाँ से विलीन हो गए।

आदरणीय महोदय, दीमक का टीला क्या होता है? रात में धूम्रपान करना क्या होता है? दिन में आग जलाना क्या होता है? ब्राह्मण कौन है और ज्ञानी कौन है? औजार क्या होता है? खोदना क्या होता है? बाधा क्या होती है? फूला हुआ शव क्या होता है? दोराहा रास्ता क्या होता है? ताबूत क्या होता है? कछुआ क्या होता है? कसाईखाना क्या होता है? मांस की नस क्या होती है? और साँप कौन होता है?

भिक्षु, दीमक का टीला इस चार तत्वों से बने शरीर का पर्यायवाची है, जिसे माता-पिता ने जन्म दिया है, जो चावल और रोटी पर पलता है और जो क्षणभंगुर, टूटने, बिखरने और नष्ट होने के अधीन है। दिन में किया गया कोई भी कार्य रात में विचार और चिंतन के रूप में लिया जाता है, यही रात में धूम्रपान करने के समान है। रात में जो विचार और चिंतन किया जाता है, उसे दिन में शरीर, शब्दों और मन के

माध्यम से क्रियान्वित किया जाता है, यही दिन में प्रज्वलित होने के समान है। ब्राह्मण तथागत, योग्य और उचित रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति का पर्यायवाची है। ज्ञानी व्यक्ति प्रशिक्षक का पर्यायवाची है। उपकरण श्रेष्ठ व्यक्ति के ज्ञान का पर्यायवाची है।

खुदाई उत्तेजित प्रयास का पर्यायवाची है। बाधा अज्ञान का पर्यायवाची है। बाधा को दूर करना अज्ञान को दूर करना है। इसका अर्थ है कि ज्ञानी व्यक्ति औजार लेकर खुदाई करे। भिक्षु, एक फूला हुआ मृत शरीर क्रोध और बेचैनी का पर्यायवाची है। औजार लेकर खुदाई करना और फूले हुए मृत शरीर को हटाना क्रोध और बेचैनी को दूर करना है। दोराहा मार्ग संदेह का पर्यायवाची है। औजार लेकर खुदाई करना और दोराहे मार्ग को हटाना इसका अर्थ है। ताबूत पाँच बाधाओं का पर्यायवाची है: कामुक रुचि, घृणा, आलस्य और सुस्ती, बेचैनी और चिंता, और संदेह। पाँच बाधाओं को दूर करना है। ज्ञानी व्यक्ति औजार लेकर खुदाई करना और ताबूत को हटाना इसका अर्थ है। कछुआ पाँच धारण करने वाले पिंडों का पर्यायवाची है: पदार्थ का धारण करने वाला पिंड, भावनाओं का धारण करने वाला पिंड, धारणाओं का धारण करने वाला पिंड, संकल्पों का धारण करने वाला पिंड, और चेतना का धारण करने वाला पिंड। कछुए को हटाना पाँच धारण करने वाले पिंडों का त्याग करना है। इसका अर्थ है, ज्ञानी व्यक्ति औजार लेकर कछुआ खोदकर निकाल दे। वधशाला पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों का पर्यायवाची है। जैसे, आंखों से अनुभव की जाने वाली मनभावन आकृतियाँ, कानों से अनुभव की जाने वाली मनभावन ध्वनियाँ, नाक से अनुभव की जाने वाली मनभावन गंधें, जीभ से अनुभव की जाने वाली मनभावन स्वाद और शरीर से अनुभव की जाने वाली मनभावन स्पर्श। वधशाला को हटाना पांच प्रकार की इंद्रिय इच्छाओं का नाश करना है। इसका अर्थ है, ज्ञानी व्यक्ति औजार लेकर वधशाला खोदकर निकाल दे। मांस का एक रेशा लोभ और लालच का पर्यायवाची है। इसका अर्थ है, ज्ञानी व्यक्ति औजार लेकर खोद दे। इसका अर्थ है, सर्प इच्छा नष्ट कर चुके भिक्षु का पर्यायवाची है। रुको! सर्प को चोट मत पहुँचाओ, सर्प की पूजा करो।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य कुमारकस्सपा भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.4 रथविनिता सुत्त(24)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने सुना है कि एक बार भगवान राजगृह के पास बांस के जंगल में, गिलहरियों के अभयारण्य में ठहरे हुए थे। तब भगवान के जन्मस्थान से कई भिक्षु, अपने जन्मस्थान में वर्षाकालीन साधना पूरी करके, भगवान के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

जब वे वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, "हे भिक्षुओं, हमारे जन्मस्थान में उनके साथी भिक्षु—पवित्र जीवन में उनके साथी—जिनका इस प्रकार आदर करते हैं, वे स्वयं कम इच्छाओं वाले होते हुए भी भिक्षुओं को कम इच्छाओं पर प्रवचन देते हैं। स्वयं संतुष्ट होते हुए भी वे भिक्षुओं को संतोष पर प्रवचन देते हैं। स्वयं एकांतवासी होते हुए भी वे भिक्षुओं को एकांतवास पर प्रवचन देते हैं। स्वयं मुक्त होते हुए भी वे भिक्षुओं को अनासक्ति पर प्रवचन देते हैं। स्वयं में दृढ़ता उत्पन्न करते हुए भी वे भिक्षुओं को दृढ़ता उत्पन्न करने पर प्रवचन देते हैं। अपने सद्‌गुणों में परिपूर्ण होते हुए भी वे भिक्षुओं को सद्‌गुणों में परिपूर्ण होने पर प्रवचन देते हैं। अपनी एकाग्रता में परिपूर्ण होते हुए भी वे भिक्षुओं को एकाग्रता में परिपूर्ण होने पर प्रवचन देते हैं। अपने विवेक में परिपूर्ण होते हुए भी वे भिक्षुओं को विवेक में परिपूर्ण होने पर प्रवचन देते हैं। अपने ज्ञान और दृष्टि में परिपूर्ण होते हुए भी वे भिक्षुओं को मुक्ति पर परिपूर्ण होने पर प्रवचन देते हैं। मोक्ष के विषय में, वे भिक्षुओं को मोक्ष के ज्ञान और दृष्टि में पूर्ण होने के लिए प्रवचन देते हैं। वे पवित्र जीवन में अपने साथियों को प्रेरित करने, सूचित करने, निर्देश देने, प्रोत्साहित करने, जागृत करने और उनका हौसला बढ़ाने वाले व्यक्ति हैं।

हे भगवान, पुन्ना मंतानिपुत्त (मंतनी के पुत्र) नामक भिक्षु को उनके गृहस्थ भिक्षु - उनके आध्यात्मिक जीवन के साथी - इस प्रकार पूजते हैं: 'स्वयं कम इच्छाओं वाले होने के कारण, वे भिक्षुओं को कम इच्छाओं पर प्रवचन देते हैं। स्वयं संतुष्ट होने के कारण, वे भिक्षुओं को संतोष पर प्रवचन देते हैं। स्वयं एकांतवासी होने के कारण, वे भिक्षुओं को एकांत पर प्रवचन देते हैं। स्वयं बंधनमुक्त होने के कारण, वे भिक्षुओं को अनासक्ति पर प्रवचन देते हैं। स्वयं में दृढ़ता जागृत करने के कारण, वे भिक्षुओं को दृढ़ता जागृत करने पर प्रवचन देते हैं। अपने सद्‌गुणों में परिपूर्ण होने के कारण, वे भिक्षुओं को सद्‌गुणों में परिपूर्ण होने पर प्रवचन देते हैं। अपनी एकाग्रता में परिपूर्ण होने के कारण, वे भिक्षुओं को एकाग्रता में परिपूर्ण होने पर प्रवचन देते हैं। अपने विवेक में परिपूर्ण होने के कारण, वे भिक्षुओं को विवेक में परिपूर्ण होने पर प्रवचन देते हैं। अपने ज्ञान और दृष्टि में परिपूर्ण होने के कारण, वे भिक्षुओं को मुक्ति में परिपूर्ण होने पर प्रवचन देते हैं। मोक्ष के विषय में, वे भिक्षुओं को मोक्ष के ज्ञान और दृष्टि में पूर्ण होने के लिए प्रवचन देते हैं। वे पवित्र जीवन में अपने साथियों को प्रेरित करने, सूचित करने, निर्देश देने, प्रोत्साहित करने, जागृत करने और उनका हौसला बढ़ाने वाले व्यक्ति हैं।

उस समय पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर बैठे थे। उनके मन में यह विचार आया: “यह पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त के लिए एक बड़ा लाभ है कि उनके ज्ञानवान साथी गुरु की उपस्थिति में उनकी स्तुति विस्तार से करते हैं और गुरु भी उनकी स्तुति का समर्थन करते हैं। शायद कभी न कभी मैं भी पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त से मिलने जाऊँ; शायद उनसे कुछ बातचीत करूँ।”

फिर भगवान बुद्ध राजगृह में अपनी इच्छानुसार कुछ समय रहने के बाद श्रावस्ती की ओर विचरण करने निकल पड़े। विभिन्न चरणों में विचरण करते हुए वे वहाँ पहुँचे और जेतवन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे। पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त ने सुना, “भगवान बुद्ध श्रावस्ती पहुँच गए हैं और श्रावस्ती के निकट जेतवन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए हैं।” अपना आवास व्यवस्थित करके और अपने वस्त्र एवं कुंड लेकर वे श्रावस्ती की ओर विचरण करने निकल पड़े। विभिन्न चरणों में विचरण करते हुए वे जेतवन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में पहुँचे जहाँ भगवान बुद्ध ठहरे हुए थे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उन्हें धर्मोपदेश देकर उपदेश दिया, प्रेरित किया, उत्साहित किया और प्रोत्साहित किया। तब पूज्य पुन्ना ने भगवान बुद्ध के धर्मोपदेश से उपदेश दिया, प्रेरित किया, उत्साहित किया और प्रोत्साहित किया; भगवान बुद्ध के वचनों से प्रसन्न और सहमत होकर, वे अपनी सीट से उठे, भगवान बुद्ध को प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और दिनभर रहने के लिए अंधों के उपवन में चले गए।

फिर एक भिक्षु पूज्य सारिपुत्त के पास गए और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा, “मित्र सारिपुत्त, वह भिक्षु पुन्ना मंतानिपुत्त, जिनकी आपने अक्सर प्रशंसा की है—जिन्हें आपने भगवान बुद्ध के धम्म प्रवचनों से उपदेश दिया, प्रेरित किया, उत्साहित किया और प्रोत्साहित किया; जिनके वचनों से आप प्रसन्न और सहमत हुए—वे अपने आसन से उठकर भगवान बुद्ध को प्रणाम करके उनकी परिक्रमा करने और दिनभर विश्राम करने के लिए अंधवन चले गए हैं।” तब पूज्य सारिपुत्त ने तुरंत एक आसन उठाया और पूज्य पुन्ना के ठीक पीछे-पीछे चल दिए, उनका सिर अपनी दृष्टि में रखते हुए। पूज्य पुन्ना अंधवन में प्रवेश कर गए और दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष की छाया में बैठ गए। पूज्य सारिपुत्त भी अंधवन में प्रवेश कर गए और दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष की छाया में बैठ गए।

फिर शाम को, पूज्य सारिपुत्त अपने एकांतवास से उठे और पूज्य पुन्ना के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पुन्ना का अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने पूज्य पुन्ना से कहा, "मेरे मित्र, क्या पवित्र जीवन भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में व्यतीत होता है?"

"जी हां, मेरे दोस्त।"

और क्या परम पूज्य के अधीन बिताया गया पवित्र जीवन सद्गुणों के संदर्भ में शुद्धता के लिए है?

"नहीं, मेरे दोस्त।"

तो क्या पवित्र जीवन, परमेश्वर के मार्गदर्शन में, मन की शुद्धता (एकाग्रता) के लिए व्यतीत किया जाता है?

"नहीं, मेरे दोस्त।"

तो क्या पवित्र जीवन, ईश्वर के मार्गदर्शन में व्यतीत करना, पवित्रता की दृष्टि से सार्थक है?

"नहीं, मेरे दोस्त।"

तो क्या परम पूज्य भगवान के अधीन पवित्र जीवन जीना, भ्रम पर विजय प्राप्त करने के संदर्भ में शुद्धता के लिए है?

"नहीं, मेरे दोस्त।"

तो क्या पवित्र जीवन, भगवान के मार्गदर्शन में, पवित्रता के लिए, उस मार्ग के ज्ञान और दृष्टि के संदर्भ में व्यतीत किया जाता है जो सही है और जो गलत है?

"नहीं, मेरे दोस्त।"

तो क्या पवित्र जीवन, ज्ञान और मार्ग के दर्शन के संदर्भ में शुद्धता के लिए, परमेश्वर के अधीन व्यतीत किया जाता है?

"नहीं, मेरे दोस्त।"

तो क्या पवित्र जीवन, ज्ञान और दृष्टि के संदर्भ में शुद्धता के लिए, परमेश्वर के अधीन व्यतीत किया जाता है?

"नहीं, मेरे दोस्त।"

जब आपसे पूछा जाता है कि क्या पवित्र जीवन भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में सद्गुणों की शुद्धता के लिए जिया जाता है, तो आप कहते हैं, 'नहीं, मेरे मित्र।' जब आपसे पूछा जाता है कि क्या पवित्र जीवन भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में मन की शुद्धता... दृष्टि... भ्रम पर विजय... मार्ग का ज्ञान और दृष्टि... मार्ग का ज्ञान और दृष्टि... ज्ञान और दृष्टि के लिए जिया जाता है, तो आप कहते हैं, 'नहीं, मेरे मित्र।' तो फिर, मेरे मित्र, भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में जिया जाने वाला पवित्र जीवन किसलिए है?

"मेरे मित्र, पवित्र जीवन परमपिता परमेश्वर के मार्गदर्शन में जिया जाता है, ताकि आसक्ति न होने के कारण पूर्ण मुक्ति प्राप्त हो सके।"

लेकिन क्या सद्गुण के संदर्भ में पवित्रता, आसक्ति के अभाव के माध्यम से पूर्ण मुक्ति है?

"नहीं, मेरे दोस्त।"

"तब मन की शुद्धता... दृष्टि की शुद्धता... उलझन पर विजय... मार्ग का ज्ञान और दृष्टि... मार्ग का ज्ञान और दृष्टि... आसक्ति के अभाव के माध्यम से पूर्ण मुक्ति का ज्ञान और दृष्टि है?"

"नहीं, मेरे दोस्त।"

"तो क्या आसक्ति के अभाव के माध्यम से पूर्ण मुक्ति इन गुणों से अलग कुछ है?"

"नहीं, मेरे दोस्त।"

जब आपसे पूछा जाता है कि क्या सद्गुण, मन, दृष्टि, भ्रम पर विजय, मार्ग का ज्ञान और दृष्टि, मार्ग का ज्ञान और दृष्टि आदि के संदर्भ में शुद्धता, आसक्ति के अभाव से प्राप्त पूर्ण मुक्ति है, तो आप कहते हैं, 'नहीं, मेरे मित्र।' लेकिन जब आपसे पूछा जाता है कि क्या आसक्ति के अभाव से प्राप्त पूर्ण मुक्ति इन गुणों से भिन्न है, तो आप कहते हैं, 'नहीं, मेरे मित्र।' तो अब, मेरे मित्र, इन कथनों का अर्थ कैसे समझा जाए?

"यदि भगवान बुद्ध ने पवित्रता को सद्गुण के रूप में, यानी आसक्ति रहित होकर पूर्ण मुक्ति के रूप में वर्णित किया होता, तो मेरे मित्र, उन्होंने आसक्ति से ग्रस्त किसी वस्तु को भी आसक्ति रहित होकर पूर्ण मुक्ति के रूप में परिभाषित किया होता। यदि उन्होंने पवित्रता को मन, दृष्टि, भ्रम पर विजय, मार्ग के ज्ञान और दृष्टि, मार्ग के ज्ञान और दृष्टि, और आसक्ति रहित होकर पूर्ण मुक्ति के रूप में वर्णित किया होता, तो उन्होंने आसक्ति से ग्रस्त किसी वस्तु को भी आसक्ति रहित होकर पूर्ण मुक्ति के रूप में परिभाषित किया होता। परन्तु यदि आसक्ति रहित होकर पूर्ण मुक्ति इन गुणों से भिन्न होती, तो एक साधारण व्यक्ति भी पूर्णतः मुक्त होता, क्योंकि एक साधारण व्यक्ति इन गुणों से रहित होता है।"

तो, मेरे मित्र, मैं तुम्हें एक उदाहरण देता हूँ, क्योंकि ऐसे कई मामले होते हैं जहाँ उदाहरण के माध्यम से ही ज्ञानी लोग कही गई बात का अर्थ समझ पाते हैं। मान लीजिए कि राजा पसेनादि कोसल श्रावस्ती में ठहरे हुए थे और साकेत में कोई अत्यावश्यक कार्य आ पड़ा; और श्रावस्ती और साकेत के बीच उनके लिए सात रथ तैयार रखे गए। श्रावस्ती में महल के द्वार से बाहर निकलकर वे पहले रथ में बैठेंगे। पहले रथ से वे दूसरे रथ तक पहुँचेंगे। पहले रथ से उतरकर वे दूसरे रथ में बैठेंगे। दूसरे रथ से वे तीसरे रथ तक पहुँचेंगे... तीसरे रथ से वे चौथे रथ तक पहुँचेंगे... चौथे रथ से वे पाँचवें रथ तक... पाँचवें रथ से वे छठे रथ तक... छठे रथ से वे सातवें रथ तक पहुँचेंगे। छठे रथ से उतरकर वे सातवें रथ में बैठेंगे। सातवें रथ से वे अंततः साकेत में महल के द्वार पर पहुँचेंगे। वहाँ पहुँचते ही उनके मित्र, साथी, रिश्तेदार

और सगे-संबंधी उनका स्वागत करेंगे। उनसे पूछा जाता, 'महाराज, क्या आप सावत्थी से साकेत के भीतरी महल के द्वार तक इसी रथ से आए हैं?' मेरे मित्र, राजा पसेनादि कोसला उन्हें किस प्रकार सही उत्तर देते?

"इस तरह उत्तर देते हुए, मेरे मित्र, वह सही उत्तर देता: 'अभी-अभी, जब मैं सावत्थी में ठहरा हुआ था, साकेत में कोई अत्यावश्यक कार्य आ पड़ा; और सावत्थी और साकेत के बीच मेरे लिए सात रथ तैयार किए गए। सावत्थी में भीतरी महल के द्वार से निकलकर मैं पहले रथ में सवार हो गया। पहले रथ से मैं दूसरे रथ तक पहुँचा। पहले रथ से उतरकर मैं दूसरे रथ में सवार हो गया। दूसरे रथ से मैं तीसरे रथ तक पहुँचा... तीसरे रथ से मैं चौथे रथ तक पहुँचा... चौथे रथ से मैं पाँचवें रथ तक पहुँचा... पाँचवें रथ से मैं छठे रथ तक पहुँचा... छठे रथ से मैं सातवें रथ तक पहुँचा। छठे रथ से उतरकर मैं सातवें रथ में सवार हो गया। सातवें रथ से मैं अंततः साकेत में भीतरी महल के द्वार पर पहुँचा।' इस तरह उत्तर देते हुए वह सही उत्तर देता।"

"इसी प्रकार, मेरे मित्र, सद्गुणों के संदर्भ में पवित्रता केवल मन की पवित्रता के लिए है। मन की पवित्रता केवल दृष्टि की पवित्रता के लिए है। दृष्टि की पवित्रता केवल भ्रम पर विजय पाने के लिए है। भ्रम पर विजय पाने के लिए पवित्रता केवल मार्ग के ज्ञान और दृष्टि की पवित्रता के लिए है। मार्ग के ज्ञान और दृष्टि की पवित्रता केवल मार्ग के ज्ञान और दृष्टि की पवित्रता के लिए है। मार्ग के ज्ञान और दृष्टि की पवित्रता केवल ज्ञान और दृष्टि की पवित्रता के लिए है। ज्ञान और दृष्टि की पवित्रता केवल आसक्ति के अभाव से पूर्ण मुक्ति के लिए है। और आसक्ति के अभाव से पूर्ण मुक्ति के लिए ही भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में पवित्र जीवन व्यतीत किया जाता है।"

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त से कहा: "मित्र, आपका नाम क्या है और आपके आध्यात्मिक साथी आपको कैसे जानते हैं?"

"मेरा नाम पुन्ना है, मित्र, और मेरे धर्मपरायण साथी मुझे मंतानिपुत्त के नाम से जानते हैं।"

"मेरे मित्र, यह कितना अद्भुत और आश्चर्यजनक है कि पूज्य पुन्ना मंतानिपुत्त ने गहन विवेक के साथ, एक विद्वान शिष्य की तरह, गुरु के संदेश को सही ढंग से समझते हुए, बिंदुवार उत्तर दिया है! उनके जीवन में उनके किसी भी साथी के लिए, जिन्हें उनसे मिलने और उनसे बातचीत करने का अवसर मिलता है, यह एक बड़ा लाभ है। भले ही उन्हें उनसे मिलने और बातचीत करने के लिए उन्हें अपने सिर पर तकिये पर रखकर ले जाना पड़े, तब भी यह उनके लिए एक बड़ा लाभ होगा। और मुझे उनसे मिलने और बातचीत करने का अवसर मिला है, यह मेरे लिए भी एक बड़ा लाभ है।"

यह सुनकर पूज्य पुन्ना ने पूज्य सारिपुत्त से कहा: "मित्र, आपका नाम क्या है और आपके आध्यात्मिक साथी आपको कैसे जानते हैं?"

"मेरा नाम उपतिस्सा है, मित्र, और मेरे आध्यात्मिक साथी मुझे सारिपुत्त के नाम से जानते हैं।"

"क्या? मैं उस शिष्य से बात कर रहा था जो स्वयं गुरु के समान हैं, और मुझे पता ही नहीं था कि वे पूज्य सारिपुत्त हैं? यदि मुझे पता होता कि वे पूज्य सारिपुत्त हैं, तो मैं इतनी लंबी बात नहीं करता। मेरे मित्र, यह कितना अद्भुत है, कितना आश्चर्यजनक है कि पूज्य सारिपुत्त ने गहन विवेक के साथ, गुरु के संदेश को सही ढंग से समझने वाले एक विद्वान शिष्य की तरह, एक-एक करके प्रश्न पूछे! उनके जीवन में उनके किसी भी साथी के लिए, जो उन्हें देखने और उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त करता है, यह एक बड़ा लाभ है। भले ही उन्हें उन्हें अपने सिर पर तकिये पर रखकर ले जाना पड़े, फिर भी यह उनके लिए एक बड़ा लाभ होगा। और मुझे भी उन्हें देखने और उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, यह मेरे लिए एक बड़ा लाभ है।"

इस प्रकार दोनों महान हस्तियों ने एक-दूसरे के अच्छे शब्दों से प्रसन्नता व्यक्त की।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.5निवापा सुत्त(25)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु
1निवापा सूत्र
1.1निवापा सूत्र

1.2निवापा सूत्र (पाली संस्करण)
1.3सारांश एवं व्याख्या
निवापा सूत्र
निवापा सूत्र
मैंने ऐसा सुना:

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। वहीं से भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं, हिरणों को चारा खिलाने वाला जंगली जानवरों को यह सोचकर चारा नहीं खिलाता, 'ये जंगली जानवर इस भोजन को खाकर सुंदर बनें, दीर्घायु हों और दीर्घकाल तक इस भोजन को खाते रहें।' परन्तु हिरणों को चारा खिलाने वाला जंगली जानवरों को यह सोचकर चारा खिलाता है, 'भोजन के लिए अतिक्रमण करने वाले जंगली जानवर इस भोजन को खाकर मदहोश हो जाएं, बेहोश हो जाएं, लापरवाह हो जाएं और इस अतिक्रमण के कारण पाप कर्मों के भागी हो जाएं।'"

जंगली जानवरों का पहला समूह हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में घुस गया, चारा खाया, बेहोश हो गया, मदहोश हो गया और लापरवाह हो गया, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गया । इस प्रकार जंगली जानवरों का पहला समूह हिरणों को चारा खिलाने वाले के अधिकार से मुक्त नहीं हो सका।

जंगली जानवरों के दूसरे समूह ने एक साथ सोचा: "जंगली जानवरों के पहले समूह ने हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में घुसकर चारा खाया, बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गए। इस प्रकार जंगली जानवरों का पहला समूह हिरणों को चारा खिलाने वाले के अधिकार से मुक्त नहीं हो सका। क्या होगा यदि हम सभी डरावने चारे से परहेज करें और जंगल में किसी घर में चले जाएं?" इसलिए उन्होंने सभी डरावने चारे से परहेज किया और जंगल में एक घर में रहने लगे। ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में जब घास और पानी कम हो गए, तो उनके शरीर बहुत कमजोर हो गए, शक्ति और प्रयास कम हो गए। फिर वे हिरणों को चारा खिलाने वाले के पास वापस गए, चारा खाया, बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गए । इस प्रकार जंगली जानवरों का दूसरा समूह हिरणों को चारा खिलाने वाले के अधिकार से मुक्त नहीं हो सका।

जंगली जानवरों के तीसरे समूह ने एक साथ सोचा: "जंगली जानवरों के पहले समूह ने हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में घुसकर चारा खाया, बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गए। इस प्रकार जंगली जानवरों का पहला समूह हिरणों को चारा खिलाने वाले के अधिकार से मुक्त नहीं हो सका। जंगली जानवरों के दूसरे समूह ने एक साथ सोचा: "जंगली जानवरों के पहले समूह ने हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में घुसकर चारा खाया, बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गए। इस प्रकार जंगली जानवरों का पहला समूह हिरणों को चारा खिलाने वाले के अधिकार से मुक्त नहीं हो सका। क्या होगा यदि हम सभी डरावने चारे से परहेज करें और जंगल में निवास करें?" इसलिए उन्होंने सभी डरावने चारे से परहेज किया और जंगल में निवास किया। ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में जब घास और पानी कम हो गए, तो उनके शरीर बहुत कमजोर हो गए, शक्ति और परिश्रम कम हो गए। तब वे हिरणों को चारा खिलाने वाले के पास लौट गए, चारा खाया, बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गए। इस प्रकार जंगली जानवरों का दूसरा समूह भी हिरणों को चारा खिलाने वाले के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका। हम हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में क्यों न बस जाएं और चारा खाएं, बेहोश न हों, मदहोश न हों, लापरवाह न हों और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन न हों? इसलिए उन्होंने हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में बस गए और चारा खाया, बेहोश न हुए, मदहोश न हुए और लापरवाह न हुए और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन नहीं हुए। तब हिरण चराने वाले और उसके साथियों के मन में यह विचार आया: "जंगली जानवरों का यह तीसरा समूह धूर्त, प्रशिक्षित धोखेबाज और कुशल शैतान हैं; हमें इनके आने-जाने का पता नहीं है। क्या हम बाड़े को चारों ओर से लकड़ियों से घेर लें? इससे हमें जंगली जानवरों के तीसरे समूह का ठिकाना दिख जाएगा और हम उन पर हमला कर सकेंगे।" फिर उन्होंने बाड़े को चारों ओर से लकड़ियों से घेर लिया और हिरण चराने वाले और उसके साथियों ने जंगली जानवरों का ठिकाना देख लिया और उन पर हमला कर दिया। इस प्रकार जंगली जानवरों का तीसरा समूह भी हिरण चराने वाले के चंगुल से नहीं बच पाया।

जंगली जानवरों के चौथे समूह ने एक साथ सोचा: "जंगली जानवरों के पहले समूह ने हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में घुसकर चारा खाया, बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गए। इस प्रकार जंगली जानवरों का पहला समूह हिरणों को चारा खिलाने वाले के अधिकार से मुक्त नहीं हो सका। जंगली जानवरों के दूसरे समूह ने एक साथ सोचा: "जंगली जानवरों के पहले समूह ने हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में घुसकर चारा खाया, बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गए। इस प्रकार जंगली जानवरों का पहला समूह हिरणों को चारा खिलाने वाले के अधिकार से मुक्त नहीं हो

सका। क्या होगा यदि हम सभी डरावने चारे से परहेज करें और जंगल में निवास करें?" इसलिए उन्होंने सभी डरावने चारे से परहेज किया और जंगल में निवास किया। ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में जब घास और पानी कम हो गए, तो उनके शरीर बहुत कमजोर हो गए, शक्ति और परिश्रम कम हो गए। तब वे हिरणों को चारा खिलाने वाले के पास लौट गए, चारा खाया, बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हो गए। इस प्रकार जंगली जानवरों का दूसरा समूह भी हिरणों को चारा खिलाने वाले के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सका। जंगली जानवरों के तीसरे समूह ने सोचा, "क्यों न हम हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में ही बस जाएं और चारा खाएं, बेहोश न हों, मदहोश न हों, लापरवाह न हों और उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन न हों?" तो उन्होंने हिरणों को चारा खिलाने वाले के अतिक्रमण में डेरा डाल लिया और चारा खाते रहे, न बेहोश हुए, न नशे में चूर हुए, न लापरवाह हुए और न ही उसी अतिक्रमण में हिरणों को चारा खिलाने वाले की इच्छाओं के अधीन हुए? फिर हिरणों को चारा खिलाने वाले और उसके अनुयायियों को यह विचार आया: "जंगली जानवरों का यह तीसरा समूह चालाक, प्रशिक्षित धोखेबाज और कुशल शैतान हैं, हम उनके आने-जाने को नहीं जानते। क्या होगा यदि हम बाड़े को चारों ओर से लाठियों से घेर लें? हम निश्चित रूप से जंगली जानवरों के तीसरे समूह की बस्ती को देख लेंगे और उन पर हमला कर देंगे।" फिर उन्होंने बाड़े को चारों ओर से लाठियों से घेर लिया और हिरणों को चारा खिलाने वाले और उसके अनुयायियों ने जंगली जानवरों की बस्ती को देख लिया और उन पर हमला कर दिया। इस प्रकार जंगली जानवरों का तीसरा समूह भी हिरणों को चारा खिलाने वाले के वश से मुक्त नहीं हो सका।

तब जंगली जानवरों के चौथे समूह को यह विचार आया, "क्या होगा यदि हम अतिक्रमण में अपना ठिकाना बना लें ताकि हिरण चराने वाला और उसके अनुयायी हमारे आने-जाने से अनजान रहें और बिना बेहोश हुए, बिना नशे में धुत हुए, बिना लापरवाही बरते चारा खाएं और उसी अतिक्रमण में हिरण चराने वाले की इच्छाओं के अधीन न हो जाएं?" इसलिए उन्होंने अतिक्रमण में अपना ठिकाना बना लिया, ताकि हिरण चराने वाला और उसके अनुयायी उनके आने-जाने से अनजान रहें और बिना बेहोश हुए, बिना नशे में धुत हुए, बिना लापरवाही बरते चारा खाएं और अतिक्रमण में हिरण चराने वाले की इच्छाओं के अधीन न हो जाएं।

तब हिरण चराने वाले और उसके अनुयायियों के मन में यह विचार आया, "जंगली जानवरों का यह चौथा समूह धूर्त और प्रशिक्षित धोखेबाज है, ये माहिर शैतान हैं, हमें इनके आने-जाने का पता नहीं है। क्या होगा यदि हम बाड़े को चारों ओर से लाठियों से घेर लें? इससे हमें जंगली जानवरों के चौथे समूह का ठिकाना दिख जाएगा और हम उन पर हमला कर सकेंगे।" तब उन्होंने बाड़े को चारों ओर से लाठियों से घेर लिया, लेकिन हिरण चराने वाले और उसके अनुयायी जंगली जानवरों का ठिकाना नहीं देख पाए और उन पर हमला नहीं कर सके। तब हिरण चराने वाले और उसके अनुयायियों के मन में यह विचार आया: "यदि हम जंगली जानवरों के चौथे समूह को चोट पहुँचाएँगे, तो दूसरों को भी चोट पहुँचेगी, और इससे दूसरों को भी नुकसान होगा। क्या होगा यदि हम जंगली जानवरों के चौथे समूह की रक्षा करें?" इसलिए हिरण चराने वाले और उसके अनुयायियों ने जंगली जानवरों के चौथे समूह की रक्षा की। इस प्रकार जंगली जानवरों का चौथा समूह हिरण चराने वाले के चंगुल से मुक्त हो गया।

यह तुलना अर्थ समझाने के लिए है, इसका अर्थ यही है। चारा पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों का पर्यायवाची है। हिरण को चारा खिलाने वाला दुष्ट मारा का पर्यायवाची है। हिरण को चारा खिलाने वाले के अनुयायी मारा के अनुयायियों का पर्यायवाची हैं। जंगली जानवर संन्यासियों और ब्राह्मणों का पर्यायवाची हैं।

प्रथम संन्यासी और ब्राह्मणों के समूह ने जब अतिक्रमण किया तो उन्होंने मारा के सांसारिक पदार्थों का सेवन किया, वे बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए; वे मारा और सांसारिक पदार्थों के वश में आ गए । प्रथम जंगली पशुओं की तरह, मैं कहता हूँ कि संन्यासियों और ब्राह्मणों का यह प्रथम समूह उनके समान है।

दूसरे समूह के संन्यासियों और ब्राह्मणों ने मिलकर यह सोचा: "पहले समूह के संन्यासियों और ब्राह्मणों ने मार के सांसारिक पदार्थों का सेवन किया, वे बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह होकर मार और सांसारिक पदार्थों के वश में आ गए, फिर भी वे मार के वश से मुक्त नहीं हुए। यदि हम सभी भयानक सांसारिक पदार्थों से दूर रहकर वन में निवास करें तो क्या होगा ?" उन्होंने सभी भयानक सांसारिक पदार्थों से दूर रहकर वन में निवास किया। वहाँ उन्होंने सब्जियाँ, बाजरा, कच्चा चावल, ददुल्ला चावल, जलीय पौधे, भूसी चावल का चूरा, चावल का झाग, तिल का आटा, घास, गोबर, जड़ और फल खाए और फल तोड़े। ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में जब घास और पानी सूख गए, उनके शरीर कमजोर हो गए और शक्ति और प्रयास कम हो गए, तो वे मार के सांसारिक पदार्थों का सेवन करने के लिए लौट आए। भोजन ग्रहण करते ही वे बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए तथा मारा तथा सांसारिक पदार्थों के वश में आ गए। इस प्रकार, संन्यासियों और ब्राह्मणों का दूसरा समूह जंगली जानवरों के दूसरे समूह की तरह मारा के वश से मुक्त नहीं हुआ; मैं कहता हूँ, संन्यासियों और ब्राह्मणों का यह दूसरा समूह उनके समान है।

ब्राह्मणों के तीसरे समूह ने मिलकर यह सोचा: "पहले समूह के संन्यासियों और ब्राह्मणों ने मार के सांसारिक पदार्थों का सेवन किया, वे बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए; वे मार और सांसारिक पदार्थों के वश में थे, फिर भी वे मार के वश से मुक्त नहीं हुए। ... यदि हम सभी भयानक सांसारिक पदार्थों से दूर रहकर वन में निवास करें तो क्या होगा?" उन्होंने सभी भयानक सांसारिक पदार्थों से दूर रहकर वन में निवास किया। वहाँ उन्होंने सब्जियाँ, बाजरा, कच्चा चावल, ददुल्ला चावल, जलीय पौधे, भूसी चावल का चूरा,

चावल का झाग, तिल का आटा, घास, गोबर, जड़ और फल खाए और फल तोड़े। ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में जब घास और पानी सूख गए, उनके शरीर कमजोर हो गए और शक्ति और प्रयास कम हो गए, तो वे मार के सांसारिक पदार्थों का सेवन करने के लिए लौट आए। भोजन ग्रहण करते ही वे बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए तथा मारा तथा सांसारिक पदार्थों के वश में आ गए। इस प्रकार संन्यासियों और ब्राह्मणों का दूसरा समूह भी मारा के वश से मुक्त नहीं हो सका।

तब उनके मन में यह विचार आया: ' यदि हम मारा की सांसारिक वस्तु में अपना निवास स्थान बना लें, और उस सांसारिक वस्तु का सेवन बिना बेहोश हुए, बिना नशे में धुत हुए, बिना लापरवाही बरतें, और मारा और उसकी सांसारिक वस्तु के अधीन न हों तो क्या होगा?' उन्होंने मारा की सांसारिक वस्तु में अपना निवास स्थान बना लिया, सांसारिक वस्तु का सेवन बिना बेहोश हुए, बिना नशे में धुत हुए और बिना लापरवाही बरते किया, और मारा और उसकी सांसारिक वस्तु के अधीन नहीं हुए। फिर भी उनके मन में ऐसे विचार थे: 'क्या संसार शाश्वत है या नहीं? क्या यह सीमित है या नहीं? क्या आत्मा शरीर है, या आत्मा एक है और शरीर कुछ भिन्न है? क्या तथागत मृत्यु के बाद है, या नहीं है? क्या तथागत मृत्यु के बाद है और नहीं है? क्या तथागत मृत्यु के बाद न है और न नहीं है?' अतः, भिक्षुओं का यह तीसरा समूह मारा के प्रभाव से मुक्त नहीं हुआ । जैसे मैं जंगली जानवरों के तीसरे समूह की बात कर रहा हूँ, वैसे ही संन्यासियों और ब्राह्मणों का यह तीसरा समूह भी उनसे तुलनीय है।

ब्राह्मणों के चौथे समूह ने मिलकर यह सोचा: "पहले समूह के संन्यासियों और ब्राह्मणों ने मार के सांसारिक पदार्थों का सेवन किया, वे बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए, मार और सांसारिक पदार्थों के वश में आ गए, फिर भी वे मार के वश से मुक्त नहीं हुए। यदि हम सभी भयानक सांसारिक पदार्थों से दूर रहकर वन में निवास करें तो क्या होगा?" उन्होंने सभी भयानक सांसारिक पदार्थों से दूर रहकर वन में निवास किया। वहाँ उन्होंने सब्जियाँ, बाजरा, कच्चा चावल, ददुल्ला चावल, जलीय पौधे, भूसी चावल का चूरा, चावल का झाग, तिल का आटा, घास, गोबर, जड़ और फल खाए और फल तोड़े। ग्रीष्म ऋतु के अंतिम महीने में जब घास और पानी सूख गए, उनके शरीर कमजोर हो गए और शक्ति और प्रयास कम हो गए, तो वे फिर से मार के सांसारिक पदार्थों का सेवन करने लगे। वहाँ भोजन ग्रहण करते हुए वे बेहोश हो गए, मदहोश हो गए और लापरवाह हो गए तथा मारा तथा सांसारिक पदार्थों के वश में आ गए। इस प्रकार संन्यासियों और ब्राह्मणों का दूसरा समूह भी मारा के वश से मुक्त नहीं हो सका।

तब उनके मन में यह विचार आया, 'यदि हम मारा के सांसारिक पदार्थ में अपना निवास स्थान बना लें, और उस सांसारिक पदार्थ का सेवन बिना बेहोश हुए, बिना मदहोश हुए, बिना लापरवाही बरतें, और मारा और उसके सांसारिक पदार्थ के अधीन न हों तो क्या होगा?' उन्होंने मारा के सांसारिक पदार्थ के अतिक्रमण में अपना निवास स्थान बनाया, सांसारिक पदार्थ का सेवन बिना बेहोश हुए, बिना मदहोश हुए और बिना लापरवाही बरते किया, और मारा और सांसारिक पदार्थ के अधीन नहीं हुए। फिर भी उनके मन में ऐसे विचार थे: 'क्या संसार शाश्वत है या नहीं? क्या यह सीमित है या नहीं? क्या आत्मा शरीर है, या आत्मा एक है और शरीर कुछ भिन्न है? क्या तथागत मृत्यु के बाद है या नहीं? क्या तथागत मृत्यु के बाद न है और न नहीं है?' इस प्रकार, भिक्षुओं, भिक्षुओं का यह तीसरा समूह मार के प्रभाव से मुक्त नहीं हुआ। 'यदि हम मृत्यु और उसके अनुयायियों के लिए अपने निवास स्थान को दुर्गम बना लें, और मृत्यु और सांसारिक पदार्थों के इस अतिक्रमण में रहते हुए, इस सांसारिक पदार्थ का सेवन बिना बेहोश हुए, बिना मदहोश हुए और बिना लापरवाही बरते करें, तो क्या हम इसी अतिक्रमण में मार के अधीन नहीं हो जाएँगे?' उन्होंने अपने निवास स्थान को मृत्यु और उसके अनुयायियों के लिए दुर्गम बना लिया, और मृत्यु और सांसारिक पदार्थों के इस अतिक्रमण में रहते हुए, बिना बेहोश हुए, बिना मदहोश हुए और बिना लापरवाही बरते, इस सांसारिक पदार्थ का सेवन किया, और इसी अतिक्रमण में मार के अधीन नहीं हुए। भिक्षुओं, इस प्रकार संन्यासियों और ब्राह्मणों का चौथा समूह मार के प्रभाव से मुक्त हुआ। मैं कहता हूँ, जंगली जानवरों के चौथे समूह की तरह, संन्यासियों और ब्राह्मणों का यह चौथा समूह उनके समान है।

भिक्षुओं, जो मारा और मारा के अनुयायियों के लिए अगम्य है , यहाँ, भिक्षुओं, वह भिक्षु जो कामुक विचारों और दोषपूर्ण विचारों से विरक्त होकर, विचारों और विचार प्रक्रियाओं से मुक्त होकर , एकांतवास से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता के साथ प्रथम ध्यान में निवास करता है। इस पर कहा जाता है कि मृत्यु ने दृष्टि बंधवा ली है, और पैरविहीन का नाश करके मृत्यु, उस दुष्ट आत्मा की दृष्टि से परे चला गया है। फिर, वह भिक्षु जो विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके, मन को आंतरिक रूप से शांत और एक बिंदु पर लाकर, विचारों और विवेचनात्मक विचारों से मुक्त होकर, एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता के साथ द्वितीय ध्यान में निवास करता है । इस पर कहा जाता है कि मृत्यु ने दृष्टि बंधवा ली है, और पैरविहीन का नाश करके मृत्यु, उस दुष्ट आत्मा की दृष्टि से परे चला गया है। फिर, भिक्षु आनंद और वैराग्य के साथ सजग और सचेत रहते हुए, शरीर के साथ भी सुख का अनुभव करते हैं; इस पर श्रेष्ठ जन कहते हैं: समभाव के साथ सुख में सजग रहते हुए, मृत्यु नेत्रहीन हो जाती है, और उसने पैरविहीन का नाश करके मृत्यु, उस दुष्ट आत्मा की दृष्टि से परे चली जाती है। फिर, भिक्षु सुख और दुःख का त्याग करके, और पहले ही सुख और दुःख पर विजय प्राप्त करके, दुःख और दुःख से रहित होकर, समभाव से शुद्ध होकर चौथे ध्यान में लीन हो जाते हैं। इस पर कहा जाता है कि मृत्यु नेत्रहीन हो जाती है, और उसने पैरविहीन का नाश करके मृत्यु, उस दुष्ट आत्मा की दृष्टि से परे चली जाती है। फिर, भिक्षु पदार्थ की सभी धारणाओं और क्रोध की धारणाओं पर विजय प्राप्त करके, विभिन्न धारणाओं पर ध्यान न देकर, असीम आकाश के साथ अनंत आकाश में लीन हो जाते हैं। इस पर कहा जाता है कि मृत्यु ने दृष्टिबाधित होकर, पैरविहीन का नाश करके, मृत्यु, जो एक दुष्ट शक्ति है, की दृष्टि से परे चली गई है। फिर, असीम चेतना से युक्त भिक्षु, स्थान की सभी धारणाओं पर विजय प्राप्त करके, अनंत चेतना के क्षेत्र में निवास करता है ।

इस पर कहा जाता है कि मृत्यु ने दृष्टिबाधित होकर, पैरविहीन का नाश करके, मृत्यु, जो एक दुष्ट शक्ति है, की दृष्टि से परे चली गई है। फिर, कुछ भी नहीं होने की अनुभूति से युक्त भिक्षु, चेतना के सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करके, शून्यता के क्षेत्र में निवास करता है । इस पर कहा जाता है कि मृत्यु ने दृष्टिबाधित होकर, पैरविहीन का नाश करके, मृत्यु, जो एक दुष्ट शक्ति है, की दृष्टि से परे चली गई है। फिर, शून्यता के सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करके भिक्षु, न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र में निवास करता है। इस पर कहा जाता है कि मृत्यु ने दृष्टिबाधित होकर, पैरविहीन का नाश करके, मृत्यु, जो एक दुष्ट शक्ति है, की दृष्टि से परे चली गई है। फिर से, भिक्षुसभी प्रत्यक्ष-विषम सीमाओं को पार करते हुए, वह अनुभूतियों और संवेदनाओं के अंत को प्राप्त कर स्थिर हो जाता है। ज्ञान से देखने पर भी उसकी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं [निर्वाण-अंतिम अवस्था]। इस पर कहा जाता है कि मृत्यु की दृष्टि बंधी हुई है, उसने अपंग का नाश कर दिया है और मृत्यु, जो कि एक दुष्ट है, की दृष्टि से परे चला गया है।
भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

निवापा सूत्र (पाली संस्करण)
[1] Evaŋ me sutaŋ:॥ ॥
एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरमे ॥। ॥
तत्र खो भगव भिक्खु अमांतेसि:॥ ॥
"भिक्खवो" ति.॥ ॥
"भदंते"ति॥
ते भिक्खु भगवतो पचासोसुऽ॥ ॥
Bhagavā etad avoca:॥ ॥
2. "न भिक्खवे नेवापिको निवापैं निवापति मिगजातना:॥ ॥
'इमं मे निवापं निवुत्तं मिगजाता परिभुंजंता दीघायुका वनवंतो सिरां दीघम-अद्धानां यापेंतु' ति.॥ ॥
एवं च खो भिक्खवे नेवापिको निवापं निवापति मिगजातनाण:॥ ॥
'इमं मे निवापं निवुत्तं मिगजाता अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिस्संति,॥
अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं आपज्जिस्संति,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जिस्संती,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य भविसंति इमस्मि निवापे' ति.॥ ॥

---

3. तत्र, भिक्खवे, पठमा मिगजाता अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अनुपखज्ज मुच्छिता भोजनानि भुञ्जीसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
एवं हि ते भिक्खवे पठमा मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥

4. तत्र, भिक्खवे, दुतिया मिगजाता एवं समसिंतेसुऽ:॥ ॥
'ये खो ते पथमा मिगजाता अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजिंसु,।
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना [152] यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिं निवापे ॥। ॥
एवं हि ते पथमा मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मयां सब्बासो निवापाभोजना पतिविरामेयामा,॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारेयामा' ति.॥ ॥
ते सब्बासो निवापाभोजना पतिविरामिणसु॥
भयभोगा पतिविरता अरण्यन्यातानि अज्झोघेत्वा विहारसु.॥ ॥
तेसां गिम्हणं पच्चिमे मासे तिणोदकसंखये अधिमत्तकासिमनां पत्तो कायो होति,।
तेसां अधिमत्तकासिमनां पट्टकायांनां बलविरियं परिहायि,॥
बलविरिये परिहिने तम-एव निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा पक्कागामिण्सु॥ ॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिंसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥

पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
एवं हि ते भिक्खवे दुतिया पि मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥

---

5. तत्र, भिक्खवे, ततिया मिगजाता एवं समसिंतेसुऽ:॥ ॥
'ये खो ते पथमा मिगजाता अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजिंसु,।
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
एवं हि ते पथमा मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
ये पि ते दुतिया मिगजाता एवं समसिंतेसुउ:॥ ॥
''ये खो ते पठमा मिगजाता अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जीसु,॥
ते तत्था अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदां आपाजिंसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपाजिंसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकरनिया अहेसुं नेवापिकास्सा अमुसमीं निवापे ।॥
एवं ते पथमा मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मयां सब्बासो निवापाभोजना पतिविरामेयामा,॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारेयामा' ति.॥ ॥
ते सब्बासो निवापाभोजना पतिविरामिणसु॥
भयभोगा पतिविरता अरण्यन्यातानि अज्झोघेत्वा विहारसु.॥ ॥
तेसां गिम्हणं पच्चिमे मासे तिणोदकसंखये अधिमत्तकासिमनां पत्तो कायो होति,।
तेसां अधिमत्तकासिमनां पट्टकायांनां बलविरियं परिहायि,॥
बलविरिये परिहिने तम-एव निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा पक्कागामिण्सु॥ ॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिंसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
एवं हि ते भिक्खवे दुतिया पि मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मयाŋ अमुŋ निवापाŋ निवुत्तŋ नेवापिकासा [153] उपनिस्साय आसयं कप्पेयमा,॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा॥
अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिस्समा,॥
अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जिस्सामा,।
अमत्ता समाना न पमादां आपज्जीस्सामा,।
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य भविस्साम नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे'' ति.॥।
ते अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा उपनिस्साय असयं कप्पायिउसु,॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अननुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिउसु,।
ते तत्था अन्नुपखज्ज अमुच्छित भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जीसु,॥
अमत्ता समाना न पमाडं आपज्जीसु,॥
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
तत्र, भिक्खवे, नेवापिकास्सा च नेवापिकापरिसाया च एतद् अहोसि:॥ ॥
'सत्थास्सु नम'इमे ततिया मिगजाता केतुभिनो,॥
इधिमंतस्सु नमइमे ततिया मिगजाता परजाना,।
इमां च नाम निवापं निवुत्तं परिभुञ्जन्ति॥
न च न'एसां जन्म अगतिं वा गतिं वा;।
यान-नुना मयाŋ इमं निवापं निवुत्तं महतिहि दण्डवाकरहि समंता सप्पदेसाअ अनुपरिवरेयामा,॥
अप्पएव नाम तत्यानां मिगजतानां असयं पस्सेयामा यत्थ ते गहाऽ गच्चेयुं' ति.॥ ॥
ते अमुं निवापं निवुत्तं महतिहि दण्डवाकरहि समंता सप्पदेसाअ अनुपरिवरसुऽ॥ ॥
अद्दसासूं खो भिक्खवे नेवापिको च नेवापिकापरिसा च तत्यानां मिगजातनां असयं यत्थ ते गहां अगमांसु.। ॥
एवं हि ते भिक्खवे ततिया पि मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥

6. तत्र, भिक्खवे, चतुत्था मिगजाता एवं समसिंतेसुऽ:॥ ॥
'यो खो ते पठमा मिगजाता अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजिंसु,।
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
एवं हि ते पथमा मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
ये पि ते दुतिया मिगजाता एवं समसिंतेसुउ:॥ ॥
'ये खो ते पथमा मिगजाता अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजिंसु,।
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
एवं हि ते पथमा मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मयां सब्बासो निवापाभोजना पतिविरामेयामा,॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारेयामा' ति.॥ ॥
ते सब्बासो निवापाभोजना पतिविरामिणसु॥
भयभोगा पतिविरता अरण्यन्यातानि अज्झोघेत्वा विहारसु.॥ ॥
तेसां गिम्हणं पच्चिमे मासे तिणोदकसंखये अधिमत्तकासिमनां पत्तो कायो होति,।
तेसां अधिमत्तकासिमनां पट्टकायांनां बलविरियं परिहायि,॥
बलविरिये परिहिने तम-एव निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा पक्कागामिण्सु॥ ॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिंसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
एवं हि ते भिक्खवे दुतिया पि मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
ये पि ते तत्या मिगजाता एवं समसिंतेसुं:॥ ॥
'ये खो ते पथमा मिगजाता अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजिंसु,।
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
एवं हि ते पथमा मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
ये पि ते दुतिया मिगजाता एवं समसिंतेसुउ:॥ ॥
''ये खो ते पठमा मिगजाता अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जीसु,॥
ते तत्था अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदां आपाजिंसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपाजिंसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकरनिया अहेसुं नेवापिकास्सा अमुसमीं निवापे ॥॥
एवं ते पथमा मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मयां सब्बासो निवापाभोजना पतिविरामेयामा,॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारेयामा' ति.॥ ॥
ते सब्बासो निवापाभोजना पतिविरामिणसु॥
भयभोगा पतिविरता अरण्यन्यातानि अज्झोघेत्वा विहारसु.॥ ॥
तेसां गिम्हणं पच्चिमे मासे तिणोदकसंखये अधिमत्तकासिमनां पत्तो कायो होति,।
तेसां अधिमत्तकासिमनां पट्टकायांनां बलविरियं परिहायि,॥
बलविरिये परिहिने तम-एव निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा पक्कागामिण्सु॥ ॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिंसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्ता समाना यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥

एवं हि ते भिक्खवे दुतिया पि मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मायां अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा उपनिस्साय असयं कप्पेयमा,॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा॥
अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिस्समा,॥
अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जिस्सामा,।
अमत्ता समाना न पमादां आपज्जीस्सामा,।
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य भविस्साम नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे" ति.॥
ते अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा उपनिस्साय असयं कप्पायिउसु,॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अननुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिउसु,।
ते तत्था अन्नुपखज्ज अमुच्छित भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जीसु,॥
अमत्ता समाना न पमाडं आपज्जीसु,॥
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य अहेसुं नेवापिकास्सा अमुस्मिन निवापे॥ ॥
तत्र, भिक्खवे, नेवापिकास्सा च नेवापिकापरिसाया च एतद् अहोसि:॥ ॥
'सत्थास्सु नम'इमे ततिया मिगजाता केतुभिनो,॥
इधिमंतस्सु नमइमे ततिया मिगजाता परजाना,।
इमां च नाम निवापं निवुत्तं परिभुञ्जन्ति॥
न च न'एसां जन्म अगतिं वा गतिं वा;।
यान-नुना मयाm इमं निवापं निवुत्तं महतिहि दण्डवाकरहि समंता सप्पदेसाअ अनुपरिवरेयामा,॥
अप्पएव नाम तत्यानां मिगजतानां असयं पस्सेयामा यत्थ ते गहाऽ गच्चेयुं' ति.॥ ॥
ते अमुं निवापं निवुत्तं महतिहि दण्डवाकरहि समंता सप्पदेसाअ अनुपरिवरसुऽ॥ ॥
अद्दसासूं खो भिक्खवे नेवापिको च नेवापिकापरिसा च तत्यानां मिगजातनां असयं यत्थ ते गहां अगमांसु.। ॥
एवं हि ते भिक्खवे ततिया पि मिगजाता न परिमुक्कीसु नेवापिकास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मयां यथा अगति नेवापिकास्सा च नेवापिकापरिसाय च,॥
तत्र'सयं कप्पेयमा,॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अननुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिस्समा,॥
अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जिस्सामा,।
अमत्ता समाना न पमादां आपज्जीस्सामा,।
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य भविस्साम नेवापिकास्सा अमुङ निवापे" ति.॥
ते यत्थ अगति नेवापिकास्सा च नेवापिकापरिसाया च तत्रायं कप्पायिंसु॥ ॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं नेवापिकास्सा अननुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिउसु ॥ ॥
ते तत्थ अन्नुपखज्ज अमुच्छित भोजनानि भुंजमाना न मदं अज्जीसु.॥ ॥
अमत्ता समाना न पमादां आपज्जीसु अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य अहेसुऽ नेवापिकास्सा अमुस्मिं निवापे॥ ॥
तत्र, भिक्खवे, नेवापिकास्सा च नेवापिकापरिसाया च एतद अहोसि: "सथस्सु नामिमे चतुत्था मिगजाता केतुभिनो ॥॥
इधिमंतसु नामिमे चतुत्था मिगजाता परजाना॥ ॥
इमां च नाम निवापं निवुत्तं परिभुञ्जन्ति॥ ॥
न च न'एसां जन्म अगतिं वा गतिं वा.॥ ॥
यान-नुना मयाm इमं निवापं निवुत्तं महतीहि दण्डवाकरहि समंता सप्पदेसां अनुपरिवरेयामा अप्पेएव नाम चतुत्थानां मिगजतानां असयं पसेय्यमा यत्थ ते गहाऽ गच्चेय्युं" ति.॥
ते अमुं निवापं निवुत्तं महतिहि दण्डवाकरहि समंता सप्पदेसाअ अनुपरिवरसुऽ॥ ॥
नेव खो भिक्खवे एडसासुं नेवापिको च नेवापिकापरिसा च चतुत्थानं मिगजातनां असयं यथा ते गहाओ गच्चेयुउ ॥
तत्र, भिक्खवे, नेवापिकास्सा च नेवापिकापरिसाया च एतद अहोसि: ससे खो मायां चतुत्थे मिगजाते घट्तेस्सामा, ते घटिता अण्णे घटेस्सान्ति ॥ ॥
ते पि घटिता अण्णे घटेस्सन्ति॥ ॥
एवं इमां निवापं निवुत्तं सब्बासो मिगजाता रिंसीसंति.॥ ॥
यान-नुना मयाm कतुत्थे मिगजाते अज्झुपेक्खेयामा'ति अज्जुपेक्खिंसु खो भिक्खवे नेवापिको च नेवापिकापरिसा च कतुत्थे मिगाजते॥ ॥
इवं ही ते भिक्खवे चतुत्था मिगजाता परिमुक्किसु नेवापिकास्सा इधानुभवा॥ ॥

---

7. उपमा खो मे अयं भिक्खवे काटा अत्थस्सा विनापनाय,॥

अयान सी'एव'एत्था अथो:॥ ॥
'निवापो' ति खो भिक्खवे पञ्चन्नतेतं कामगुणानां अधिवचनं॥ ॥
'नेवापिको' ति खो भिक्खवे मरास्सेएतां पापिमतो अधिवाचनं॥ ॥
'नेवापिकापरिसा' ति खो भिक्खवे मरापरिसायेताऽ अधिवचनाऽ॥ ॥
'मिगजाता' ति खो भिक्खवे समान-ब्राह्मणएतं अधिवचनान्॥ ॥
8. तत्र, भिक्खवे, पठम समान-ब्राह्मण अमुं निवापं निवुत्तं मारस्सा अमुनि च लोकामिसनि अनुपखज्ज [156] मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिउसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे॥ ॥
एवं हि ते भिक्खवे पथमा समान-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभावा॥ ॥
सेयथा पि ते भिक्खवे पथमा मिगजाता,॥
तथुपमे अहं इमे पथमे समान-ब्राह्मणे वदामि.॥ ॥

---

9. तत्र, भिक्खवे, दुतिया समान-ब्राह्मण एवं समासिंतेसुऽ:॥ ॥
ये खो ते पठम समान-ब्राह्मण अमुनि निवापं निवुत्तं मारस्सा अमुनि च लोकामिसनि अनुपखज्ज मुच्छिता भोजनानि भुञ्जीसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे॥ ॥
एवं हि ते पथम समान-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मायां सब्बासो निवापाभोजना लोकामिसा पतिविरामेयामा,॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारेयामा" ति.॥
ते सब्बासो निवापाभोजना लोकामिस पतिविरामिणसु॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारसु,॥
ते तथा सकाभक्खा पि एहेसुऽ,॥
समका-भक्खा पि एहेसुं,॥
निवर-भक्खा पि अहेसुऽ,॥
दद्दुला-भक्खा पि एहेसुm,॥
हट-भक्खा पि एहेसुं,॥
काना-भक्खा पि अहेसुं,॥
अचामा-भक्खा पि एहेसुं,॥
पिन्नकभक्खापि अहेसुऽ,॥
तिना-भक्खा पि अहेसुं,॥
गोमयभक्खा पि अहेसुऽ,॥
वन-मूल-फलाहारा यापेसुं पवत्ता-फला-भोजी॥ ॥
तेसां गिम्हानां पच्चिमे मासे तिनोदका-संखये अधिमत्तकासिमनां पत्तो कायो होति,।
तेसां अधिमत्तकासिमनां पट्टकायांनां बलविरियं परिहायि,॥
बलविरिये परिहिने सेतो-विमुत्ती परिहायि॥ ॥
सेतो-विमुत्तिया परिहिनाय तम-एव निवापं निवुत्तं मरास्सा पच्चगामिंसु तानि च लोकामिसनि ॥ ॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिंसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे॥ ॥
एवं हि ते भिक्खवे दुतिया पि समाना-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मा- [157] रस इधानुभावा॥ ॥
सेयथा पि ते भिक्खवे दुतिया मिगजाता तथुपमे अहं इमे दुतिये समान-ब्राह्मणे वदामि॥ ॥

---

10. तत्र, भिक्खवे, ततिया समान-ब्राह्मण एवं समसिंतेसुऽ:॥ ॥

'ये खो ते पथम समान-ब्राह्मण अमु ण निवापं निवुत्तं मारस्सा अमुनि च लोकामिसनि अनुपखज्ज मुच्छिता भोजनानि भुञ्जिउसु,।
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे।'।॥
एवं हि ते पथम समान-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभावा॥॥
9. तत्र, भिक्खवे, दुतिया समान-ब्राह्मण एवं समासिंतेसुऽ:॥॥
ये खो ते पठम समान-ब्राह्मण अमुनि निवापं निवुत्तं मारस्सा अमुनि च लोकामिसनि अनुपखज्ज मुच्छिता भोजनानि भुञ्जीसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे॥॥
एवं हि ते पथम समान-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभावा॥॥
यान-नुना मायां सब्बासो निवापाभोजना लोकामिसा पतिविरामेयामा,॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारेयामा" ति.॥
ते सब्बासो निवापाभोजना लोकामिस पतिविरामिणसु॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारसु,॥
ते तथा सकाभक्खा पि एहेसुऽ,॥
समका-भक्खा पि एहेसुं,॥
निवर-भक्खा पि अहेसुऽ,॥
दद्दुला-भक्खा पि एहेसुŋ,॥
हट-भक्खा पि एहेसुं,॥
काना-भक्खा पि अहेसुं,॥
अचामा-भक्खा पि एहेसुं,॥
पिन्नकभक्खापि अहेसुऽ,॥
तिना-भक्खा पि अहेसुं,॥
गोमयभक्खा पि अहेसुऽ,॥
वन-मूल-फलाहारा यापेसुं पवत्ता-फला-भोजी॥॥
तेसां गिम्हानां पच्चिमे मासे तिनोदका-संखये अधिमत्तकासिमनां पत्तो कायो होति,।
तेसां अधिमत्तकासिमनां पट्टकायांनां बलविरियं परिहायि,॥
बलविरिये परिहिने सेतो-विमुत्ती परिहायि॥॥
सेतो-विमुत्तिया परिहिनाय तम-एव निवापं निवुत्तं मरास्सा पच्चगामिंसु तानि च लोकामिसनि ।॥॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिंसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे॥॥
एवं हि ते दुतिया समान-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभव:॥॥
यान-नुना मायां अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि उपनिस्साय असयं कप्पेयमा,॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि अन्नुपखज्ज अमुच्छितं भोजनानि भुञ्जिस्समा,॥
अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जिस्सामा,।
अमत्ता समाना न पमादां आपज्जीस्सामा,।
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य भविस्सामा मरस्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे' ति.॥॥
ते अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि उपनिस्साय असयं कप्पायिंसु॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिउसु॥
ते तत्था अन्नुपखज्ज अमुच्छित भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जीसु॥
अमत्ता समाना न पमाडं आपज्जीसु,॥
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन्का लोकामिसे॥॥
अपि च खो एवं दितिहिका एहेसुŋ:॥॥
सस्सतो लोको इति पि,॥
अस्स्सतो लोको इति पि,॥

अंतवा लोको इति पि,॥
अनन्तवा लोको इति पि,॥
तं जीवं तं शरीरं इति पि,॥
अण्णां जीवं अण्णां शरीर इति पि,॥
होति तथागतो परम मरण इति पि,॥
न होति तथागतो परम मरण इति पि,॥
नेव भोति न न होति तथागतो परम मरणा [158] इति पि.॥ ॥
एवं हि ते भिक्खवे ततिया पि समाना-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभावा॥ ॥
सेयथा पि ते भिक्खवे तत्या मिगजाता तथुपमे अहं इमे ततिये समान-ब्राह्मणे वदामि॥ ॥

---

11. तत्र, भिक्खवे, चतुत्था समान-ब्राह्मण एवं समसिंतेसुm:॥ ॥
'ये खो ते पथम समान-ब्राह्मण अमु ण निवापं निवुत्तं मारस्सा अमुनि च लोकामिसनि अनुपखज्ज मुच्छिता भोजनानि भुञ्जिउसु,।
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे॥ ॥
एवं हि ते पथम समान-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभावा॥ ॥
9. तत्र, भिक्खवे, दुतिया समान-ब्राह्मण एवं समासिंतेसुऽ:॥ ॥
ये खो ते पठम समान-ब्राह्मण अमुनि निवापं निवुत्तं मारस्सा अमुनि च लोकामिसनि अनुपखज्ज मुच्छिता भोजनानि भुञ्जीसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे॥ ॥
एवं हि ते पथम समान-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मायां सब्बासो निवापाभोजना लोकामिसा पतिविरामेयामा,॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारेयामा" ति.॥
ते सब्बासो निवापाभोजना लोकामिस पतिविरामिणसु॥
भयभोगा पतिविरता अरन्नायतनानि अज्झोघेत्वा विहारसु,॥
ते तथा सकाभक्खा पि एहेसुऽ,॥
समका-भक्खा पि एहेसुं,॥
निवर-भक्खा पि अहेसुऽ,॥
दद्दुला-भक्खा पि एहेसुm,॥
हट-भक्खा पि एहेसुं,॥
काना-भक्खा पि अहेसुं,॥
अचामा-भक्खा पि एहेसुं,॥
पिन्नकभक्खापि अहेसुऽ,॥
तिना-भक्खा पि अहेसुं,॥
गोमयभक्खा पि अहेसुऽ,॥
वन-मूल-फलाहारा यापेसुं पवत्ता-फला-भोजी॥ ॥
तेसां गिम्हानां पच्चिमे मासे तिनोदका-संखये अधिमत्तकासिमनां पत्तो कायो होति,।
तेसां अधिमत्तकासिमनां पट्टकायांनां बलविरियं परिहायि,॥
बलविरिये परिहिने सेतो-विमुत्ती परिहायि॥ ॥
सेतो-विमुत्तिया परिहिनाय तम-एव निवापं निवुत्तं मरास्सा पच्चगामिंसु तानि च लोकामिसनि ॥ ॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुञ्जिंसु,॥
ते तत्थ अनुपखज्ज मुच्चिता भोजनानि भुंजमाना मदं अपज्जीसु,॥
मत्ता समाना पमादां आपज्जीसु,॥
पमत्त समाना यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे॥ ॥
एवं हि ते दुतिया समान-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभव:॥ ॥
यान-नुना मायां अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि उपनिस्साय असयं कप्पेयमा,॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि अन्नुपखज्ज अमुच्छितं भोजनानि भुञ्जिस्समा,॥

अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जिस्सामा,।
अमत्ता समाना न पमादां आपज्जीस्सामा,।
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य भविस्सामा मरस्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे' ति.॥ ॥
ते अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि उपनिस्साय असयं कप्पायिंसु॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिउसु॥
ते तत्था अन्नुपखज्ज अमुच्छित भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जीसु॥
अमत्ता समाना न पमाडं आपज्जीसु,॥
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन्का लोकामिसे॥ ॥
अपि च खो एवं दितिहिका एहेसुm:॥ ॥
सस्सतो लोको इति पि,॥
अस्स्सतो लोको इति पि,॥
अंतवा लोको इति पि,॥
अनन्तवा लोको इति पि,॥
तं जीवं तं शरीरं इति पि,॥
अण्णां जीवं अण्णां शरीर इति पि,॥
होति तथागतो परम मरण इति पि,॥
न होति तथागतो परम मरण इति पि,॥
नेव भोति न न होति तथागतो परम मरणा इति पि.। ॥
एवं हि ते भिक्खवे ततिया पि समाना-ब्राह्मण न परिमुक्कीसु मरास्सा इधानुभावा॥ ॥
यान-नुना मयां यत्थ अगति मरास्सा च मरापरिसाय च तत्र'सायं कप्पेयमा,॥
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुं निवापं निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि अन्नुपखज्ज अमुच्छितं भोजनानि भुञ्जिस्समा,॥
अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जिस्सामा,।
अमत्ता समाना न पमादां आपज्जीस्सामा,।
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य भविस्सामा मरस्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन च लोकामिसे' ति.॥ ॥
ते यत्थ अगति मरास्सा च मरापरिसाया च तत्र'सयायं कप्पायिणसु;।
तत्र'सयं कप्पेत्वा अमुऱ निवा- [159] पण निवुत्तं मरास्सा अमुनि च लोकामिसनि अन्नुपखज्ज अमुच्चिता भोजनानि भुञ्जिउसु॥
ते तत्था अन्नुपखज्ज अमुच्छित भोजनानि भुंजमाना न मदं आपज्जीसु,॥
अमत्ता समाना न पमाडं आपज्जीसु,॥
अप्पमत्ता समाना न यथाकामकारण्य अहेसुं मरास्सा अमुस्मिन निवापे अमुस्मिन् च लोकामिसे॥ ॥
एवं हि ते भिक्खवे चतुत्था समान-ब्राह्मण पमुचिंसु मरास्सा इधानुभावा॥ ॥
सेयथा पि ते भिक्खवे चतुत्था मिगजाता तथुपमे अहं इमे चतुत्थे समान-ब्राह्मणे वदामि॥ ॥

---

12. कथं च भिक्खवे अगति मरास्सा च मरापरिसाया च?॥ ॥
इधा, भिक्खवे, भिक्खु॥
विविच्चेवा कामेहि॥
विविक्का अकुसालेही धम्मेहि॥
सविताक्कm॥
सविचराओ॥
विवेकाजं पित-सुखां॥
पथमं-झाणं उपसम्पज्जा विहारति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥
अडस्सनान् गतो पापिमतो॥ ॥
13. पुना च पराऽ भिक्खवे भिक्खु॥
विटक्क-विचारणं वुपासमा॥
अज्झत्तं सम्पसादानां॥
सीतासो एकोदी-भवना॥

अविताक्कṃ॥
अविचरण॥
समाधिजां पित-सुखां॥
दुतीयं-झाणु उपसम्पज्जा विहारति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥
अडस्सनान् गतो पापिमतो॥ ॥
14. पुना च पराऽ भिक्खवे भिक्खु॥
पिटिया च विरागा॥
उपेक्खको च विहारति॥
सातो च संपजानो,॥
सुखं च कायेन पतिसासोवेदेति॥
यं तं अरिय अचिक्खंति:॥
'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति॥
ततियाऽ-झाणु उपसम्पज्जा विहारति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥
अडस्सनान् गतो पापिमतो॥ ॥
15. पुना च पराऽ भिक्खवे भिक्खु॥
सुखसा च पहाना॥
दुक्खस्सा च पहाना॥
पुब्बे वा सोमनास्सा-डोमनस्सानां अत्थ-गमा॥
अदुक्खाṃ-असुखाṃ॥
उपेक्खा-सति-परिशुद्धि॥
चतुत्थं-झाणं उपसम्पज्जा विहारति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥
अडस्सनान् गतो पापिमतो॥ ॥
16. पुना च पराऽ भिक्खवे भिक्खु॥
सब्बासो रूप-संन्याना समतिक्कमा॥
पतिघ-संन्यानां अत्थ-गमा॥
नानात्त-सन्नान्नं अमानसि-कारा॥
'अनन्तो आकाशो' ति॥
आकाशान्चायतनं उपसम्पज्जा विहारति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥
अडस्सनान् गतो पापिमतो॥ ॥
17. पुना च पराऽ भिक्खवे भिक्खु॥
सब्बासो आकाशान्चायतनं समतिक्कम्मा॥
'अनन्तं विनाशं' ति॥
विनानाञ्चायतनं उपसम्पज्जा विहारति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥

अडस्सनान् गतो पापिमतो॥ ॥
18. पुना च पराऽ भिक्खवे भिक्खु॥
सब्बसो विन्ननचायतनm̥ [160] समतिक्कम्मा॥
'नत्थि किन्चि' ति॥
अकिंचनन्यातनं उपसम्पज्जा विहारति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥
अडस्सनान् गतो पापिमतो॥ ॥
19. पुना च परं भिक्खवे भिक्खु॥
सब्बसो अकिंचनन्यातनं समतिक्कम्मा॥
नेव-सन्या-नासन्यातनं उपसम्पज्ज विहारति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥
अडस्सनान् गतो पापिमतो॥ ॥
20. पुना च परं भिक्खवे भिक्खु॥
सब्बासो नेव-सन्या-नासन्यातनं समतिक्कम्मा॥
सन्ना-वेदयित-निरोधं उपसम्पज्ज विहारति॥
पनन्या चस्सा दिस्वा॥
आसव परिक्खिना होंति॥ ॥
अयं वुकाति भिक्खवे भिक्खु:॥
'अंधम-अकासि मरौ',॥
अपादौ वधित्वा मारचक्कुऽ॥
अदस्सानां गतो पापिमतो,॥
तिन्नो लोके विसाटिकन" ति.॥॥
इदं अवोच भगवा.॥ ॥
अत्तमना ते भिक्खु भगवतो भसीतं अभिनंदनं ति.॥ ॥

Nivāpa Suttaŋ Pañcamaŋ.

सारांश एवं व्याख्या

पृष्ठभूमि : मृत्यु, पुनर्जन्म, इंद्रिय सुख (और दुख) और धन के दुष्ट देवता मारा, सभी प्राणियों को सांसारिक वासना और भौतिक निर्भरता के आकर्षण में बांधकर पूरी दुनिया पर शासन करते हैं। मृत्यु के बाद, सांसारिक वासना के आकर्षण के कारण उन्हें बार-बार पुनर्जन्म मिलता है। जो लोग मृत्यु और पुनर्जन्म के इस शाश्वत चक्र से बचने का प्रयास करते हैं, उन्हें मारा द्वारा बिछाए गए कई जालों का सामना करना पड़ता है, ठीक वैसे ही जैसे हिरण शिकारियों के जाल में फंस जाते हैं।

स्पष्टीकरण: यह सूत्र हिरणों के झुंड की तुलना सत्य के साधकों/सन्यासियों/भिक्षुओं से करता है।

1. शिकारी का चारा खाने वाले हिरण मदमस्त और लापरवाह हो गए और शिकारी के वश में आ गए। इसी प्रकार जब साधु/भिक्षु सांसारिक वस्तुओं (भोजन, वस्त्र आदि) पर निर्भर हो जाते हैं, तो वे भी आश्रित और लापरवाह हो जाते हैं और इस प्रकार दुष्ट देवता मारा के बंधन में आ जाते हैं और पुनर्जन्म तथा उससे जुड़े कष्ट भोगते हैं। [अतिभोग एक चरम अवस्था है, जिससे बचना चाहिए।]

2. जो हिरण शिकारियों का चारा पूरी तरह त्याग देते हैं, जब जंगल में भोजन की कमी का मौसम आता है, तो वे फिर से शिकारियों का चारा खाने लौट आते हैं और पकड़े जाते हैं। इसी प्रकार, जो संन्यासी/भिक्षु भोजन, वस्त्र आदि जैसी सांसारिक भौतिक निर्भरता से पूरी तरह परहेज करते हैं, जब सूखा पड़ता है, तो उनका शरीर कमजोर हो जाता है और वे फिर से सांसारिक सुख-सुविधाओं पर निर्भर हो जाते हैं और पुनर्जन्म के चक्र में फिर से फंस जाते हैं। [अत्यधिक परहेज से भी बचना चाहिए]

3. जो हिरण पास में ही सतर्क रहकर रहते थे, वे छिपकर समय-समय पर शिकारियों का चारा खा जाते थे। जब शिकारियों ने लाठियों से घेरा बनाया, तो उन्हें देख लिया गया और हिरणों को पकड़ लिया गया। इसी प्रकार, वे संन्यासी/भिक्षु जो सांसारिक वस्तुओं का उपभोग करते थे, लेकिन सतर्क रहते थे, ध्यान करते थे, धार्मिक जीवन का पालन करते थे, लेकिन उन्होंने अपने मन में पूर्वकल्पित धारणाओं, संदेहों और विचारों की दीवारें खड़ी कर रखी थीं, जैसे कि - क्या संसार शाश्वत है या नहीं, क्या शरीर में आत्मा है, क्या बुद्ध मृत्यु से परे चले गए हैं या नहीं आदि। वे भी इनसे मुक्त नहीं हो सके और पुनर्जन्म के चक्र में फंस गए और इस प्रकार दुखों में लीन हो गए। [मानसिक अनुशासन आवश्यक है। कलामा सूत्र देखें]

4. हिरणों के चौथे समूह ने पास में ही रहने का फैसला किया, वे बेहद सतर्क और लापरवाह नहीं थे, बल्कि अदृश्य थे। उनके आने-जाने का पता किसी को नहीं चलता था, यहाँ तक कि जब जगह को लकड़ियों से घेर दिया गया था तब भी। वे शिकारियों का चारा बिना किसी को पता चले खाते थे, इसलिए वे पकड़े नहीं गए और स्वतंत्र रहे। इसी प्रकार, जो संन्यासी संसार में रहकर सांसारिक पदार्थों का उपभोग करते हैं, लेकिन सतर्क रहते हैं और सांसारिक पदार्थों के प्रति कोई लगाव या नापसंदगी उत्पन्न नहीं करते, शरीर में आत्मा, ब्रह्मांड की असीमता, ब्रह्मांड की उत्पत्ति आदि जैसी काल्पनिक धारणाओं और विचारों को उत्पन्न नहीं करते, समाधि/सम्मोहन अवस्था को प्राप्त करके और उसका अभ्यास करके मारा के प्रभाव से दूर रहते हैं, वे मारा के बंधन से मुक्त हो जाते हैं और पुनर्जन्म से मुक्त हो जाते हैं। [मध्य मार्ग बुद्ध का मार्ग है]
समाधि (यहाँ ध्यान कहा गया है) की अवस्थाओं की प्राप्ति, अर्थात् मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी में ज्ञान का संचार और अन्य उच्चतर अवस्थाएँ, इस साधना का लक्ष्य है। शत्रु मारा (शैतान) इन अवस्थाओं को जान नहीं सकता, उन तक पहुँच नहीं सकता, इसलिए यह सांसारिक इंद्रिय सुखों, अन्य भावनाओं और पुनर्जन्मों के बंधन से मुक्त एक सुरक्षित आश्रय है। यहीं पर दिव्य आनंद के रूप में वास्तविक सुख और अंतिम मुक्ति - निर्वाण प्राप्त होता है। पाली ग्रंथ के श्लोक 12-20 में और उपरोक्त अंग्रेजी अनुवाद के अंतिम पैराग्राफ में भी इन ध्यान (यथा ध्यान) अवस्थाओं का उल्लेख है। ये वही अवस्थाएँ हैं जिनका उल्लेख यहाँ किया गया है: Buddhism_FAQ2_Trance_States

नोट: यह भी निहित है कि इस सूत्र में यौन सुख का भी समर्थन नहीं किया गया है, क्योंकि संयम यानी ब्रह्मचर्य वह अडिग आधार है जिसके बिना समाधि/सम्मोहन अवस्था प्राप्त नहीं की जा सकती। इसका विषय भोजन, वस्त्र आदि मूलभूत आवश्यकताओं पर निर्भरता न रखना है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.6अरियापरियेसन सुत्त(26)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित
नोट : ध्यान/समाधि/ज़ेन की 9 अवस्थाओं के लिए कृपया सूत्र के अंत में देखें।

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन के अनाथपिंडिका मठ में ठहरे हुए थे। सुबह सवेरे, उन्होंने अपने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र एवं बाहरी वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने गए। तब बहुत से भिक्षु पूज्य आनंद के पास गए और बोले, “हे मित्र आनंद, भगवान बुद्ध की उपस्थिति में धम्म प्रवचन सुने हुए बहुत समय हो गया है। यदि हमें भगवान बुद्ध की उपस्थिति में धम्म प्रवचन सुनने का अवसर मिल जाए तो कितना अच्छा होगा।”

"ऐसे में, हे पूज्यवरों, ब्राह्मण रामक के आश्रम में जाइए। शायद आपको भगवान बुद्ध की उपस्थिति में धर्म प्रवचन सुनने का अवसर मिल जाए।"

"जैसा आप कहें, मित्र," भिक्षुओं ने आदरणीय आनंद को उत्तर दिया और चले गए।

फिर भगवान बुद्ध भिक्षा मांगने गए और भोजन करने के बाद भिक्षा मांगने के बाद लौटकर आदरणीय आनंद से बोले, "आनंद, चलो आज पूर्वी उद्यान में मिगारा की माता के महल में विश्राम करने चलते हैं।"

"जैसा आप कहें, भगवान," पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध को उत्तर दिया।

अतः भगवान बुद्ध, पूज्य आनंद के साथ, दिनभर विश्राम करने के लिए पूर्वी उद्यान, मिगारा की माता के महल में गए। शाम को एकांतवास से बाहर आकर उन्होंने पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, चलो पूर्वी द्वार पर जाकर स्नान करें।"

"जैसा आप कहें, भगवान," पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध को उत्तर दिया।

अतः भगवान बुद्ध, पूज्य आनंद के साथ, पूर्वी द्वार पर स्नान करने गए। पूर्वी द्वार पर स्नान करने के बाद, जल से बाहर आकर वे अपने वस्त्रों में खड़े होकर अपने अंगों को सुखा रहे थे। तब पूज्य आनंद ने उनसे कहा, “हे भगवान, ब्राह्मण रामक का आश्रम निकट ही है। ब्राह्मण रामक का आश्रम अत्यंत प्रसन्नतादायक है। यदि भगवान बुद्ध सहानुभूतिवश रामक ब्राह्मण के आश्रम जाएँ तो यह अच्छा होगा।” भगवान बुद्ध मौन रहकर इस बात को स्वीकार कर गए।

अतः भगवान रामक ब्राह्मण के आश्रम में गए। उस समय रामक ब्राह्मण के आश्रम में बड़ी संख्या में भिक्षु धर्म पर चर्चा के लिए एकत्रित थे। भगवान चर्चा समाप्त होने की प्रतीक्षा में द्वार के बाहर खड़े रहे। चर्चा समाप्त होने पर उन्होंने खाँसी करते हुए द्वार पर दस्तक दी। भिक्षुओं ने उनके लिए द्वार खोल दिया। रामक ब्राह्मण के आश्रम में प्रवेश करते ही भगवान एक तैयार आसन पर बैठ गए। वहाँ बैठकर उन्होंने भिक्षुओं से कहा, “आप यहाँ किस चर्चा के लिए एकत्रित हुए हैं? किस चर्चा के बीच में आपको व्यवधान डाला गया है?”

"हे भगवान, हमारी बाधित धम्म चर्चा स्वयं भगवान बुद्ध के बारे में थी, और तभी भगवान बुद्ध आ गए।"

"अच्छा, भिक्षुओं। यह उचित है कि आप, अच्छे परिवारों के पुत्र होने के नाते, जो आस्था से प्रेरित होकर घर छोड़कर संन्यासी जीवन व्यतीत करने आए हैं, धम्म पर चर्चा के लिए एकत्रित हों। एकत्रित होने पर आपके दो कर्तव्य हैं: या तो धम्म पर चर्चा करना या मौन रहना।"

भिक्षुओं, दो प्रकार की खोजें होती हैं: नीच खोज और श्रेष्ठ खोज। नीच खोज क्या है? एक प्रकार वह है जब कोई व्यक्ति जन्म के अधीन होते हुए भी, जन्म के अधीन ही सुख की खोज करता है। बुढ़ापा, रोग, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के अधीन होते हुए भी, वह रोग, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के अधीन ही सुख की खोज करता है।

और किन चीजों को जन्म के अधीन कहा जा सकता है? पति-पत्नी और बच्चे जन्म के अधीन हैं। पुरुष और महिला दास... बकरियां और भेड़ें... मुर्गियां और सूअर... हाथी, मवेशी, घोड़े और घोड़ियां... सोना और चांदी जन्म के अधीन हैं। ये सभी वस्तुएं जन्म के अधीन हैं, और जो इनसे बंधा हुआ है, इन पर मोहित है, जो पूरी तरह से इनके प्रति आकर्षित हो गया है, वह भी जन्म के अधीन होने के कारण, ऐसी ही चीजों की तलाश करता है जो जन्म के अधीन हों।

और ऐसी कौन सी चीज़ें हैं जो बुढ़ापे, बीमारी, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के अधीन हैं? पति-पत्नी और बच्चे... पुरुष और महिला दास... बकरियाँ और भेड़ें... मुर्गियाँ और सूअर... हाथी, गाय, घोड़े और घोड़ियाँ... सोना और चाँदी बुढ़ापे, बीमारी, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के अधीन हैं। ये सभी वस्तुएँ बुढ़ापे, बीमारी, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के अधीन हैं, और जो इनसे बंधा हुआ है, इन पर मोहित है, जो पूरी तरह से इनके प्रति आकर्षित है, जन्म के अधीन होने के कारण, वह ऐसी ही वस्तुओं की खोज करता है जो बुढ़ापे, बीमारी, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के अधीन हैं। यह एक नीच खोज है।

और श्रेष्ठ खोज क्या है? एक स्थिति यह है कि एक व्यक्ति, जो स्वयं जन्म के बंधन में बंधा हुआ है, जन्म के दोषों को देखकर, उस बंधन से मुक्ति पाने के लिए अजन्मे, अद्वितीय विश्राम की तलाश करता है। वही व्यक्ति वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, अपवित्रता के बंधन में बंधा हुआ है, और वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, अपवित्रता के दोषों को देखकर, उस बंधन से मुक्ति पाने के लिए अवृद्ध, रोगरहित, मृत्युरहित, दुःखरहित, निष्कलंक, अद्वितीय विश्राम की तलाश करता है। यही श्रेष्ठ खोज है।

हे भिक्षुओं, मैं भी अपने ज्ञानोदय से पहले, जब मैं एक अज्ञानी बोधिसत्व था, जन्म के अधीन होते हुए, जन्म के अधीन ही सुख की खोज करता था। वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के अधीन होते हुए, मैं सुख की खोज उसी में करता था जो उसी में विद्यमान हो। मेरे मन में यह विचार आया, 'जन्म के अधीन होते हुए, मैं जन्म के अधीन ही सुख की खोज क्यों करता हूँ? वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के अधीन होते हुए, मैं उसी में विद्यमान सुख की खोज क्यों करता हूँ? क्या होगा यदि मैं जन्म के अधीन होते हुए, जन्म के दोषों को देखकर, जन्म से परे, अद्वितीय मुक्ति की खोज करूँ? क्या होगा यदि मैं वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख और अपवित्रता के दोषों को देखकर, वृद्धावस्था रहित, रोग रहित, मृत्यु रहित, दुःख रहित, अद्वितीय सुख की खोज करूँ?' बंधनों से मुक्तिः क्या यह बंधन मुक्त हो रहा है?

"इसलिए, कुछ समय बाद, जब मैं अभी भी जवान था, काले बालों वाला एक युवक, जीवन के पहले चरण में यौवन के आशीर्वाद से संपन्न - और जब मेरे माता-पिता, अनिच्छा से, अपने चेहरे पर आंसू बहाते हुए रो रहे थे - मैंने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली, गेरुए रंग का वस्त्र धारण किया और गृहस्थ जीवन छोड़कर एकांतवास में चला गया।"

"इस प्रकार, कौशल की खोज में निकलते हुए, परम शांति की अतुलनीय अवस्था की तलाश में, मैं अलारा कलामा के पास गया और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा: 'मित्र कलामा, मैं इस सिद्धांत और अनुशासन का अभ्यास करना चाहता हूँ।'

"जब यह कहा गया, तो उन्होंने मुझसे उत्तर दिया, 'मेरे मित्र, तुम यहीं रह सकते हो। यह सिद्धांत ऐसा है कि एक बुद्धिमान व्यक्ति प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से स्वयं इसका अनुभव करके शीघ्र ही अपने गुरु के ज्ञान में प्रवेश कर सकता है और उसमें निवास कर सकता है।'

"मुझे सिद्धांत सीखने में ज्यादा समय नहीं लगा। केवल होंठ हिलाकर दोहराने से ही मैं ज्ञान के शब्द, बड़ों के शब्द बोल सकता था, और मैं यह पुष्टि कर सकता था कि मैं जानता और देखता हूँ - मैं, दूसरों के साथ।"

मैंने सोचा: 'यह केवल दृढ़ विश्वास के बल पर नहीं है कि अलारा कलामा यह घोषणा करते हैं, "मैंने प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से स्वयं इसका अनुभव किया है और इस धम्म में प्रवेश कर चुका हूँ और निवास करता हूँ।" निश्चित रूप से वे इस धम्म को जानते और देखते हुए निवास करते हैं।' इसलिए मैं उनके पास गया और पूछा, 'आप किस हद तक यह घोषणा करते हैं कि आपने इस धम्म में प्रवेश कर लिया है और निवास करते हैं?' यह सुनकर उन्होंने शून्यता के आयाम की घोषणा की।

मैंने सोचा: 'अलारा कलामा में न केवल दृढ़ विश्वास, लगन, जागरूकता, एकाग्रता और विवेक है, बल्कि मुझमें भी दृढ़ विश्वास, लगन, जागरूकता, एकाग्रता और विवेक है। क्या होगा यदि मैं स्वयं उस धम्म को जानने का प्रयास करूँ जिसमें अलारा कलामा ने प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से प्रवेश करने और निवास करने का दावा किया है?' इसलिए, शीघ्र ही मैंने भी प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उस धम्म में प्रवेश कर लिया और निवास किया। मैं उनके पास गया और कहा, 'मित्र कलामा, क्या आप इसी हद तक इस धम्म में प्रवेश कर चुके हैं और निवास करते हैं, प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से इसे स्वयं अनुभव कर चुके हैं?'

"'हाँ, मेरे दोस्त...'"

"'मित्र, यही वह सीमा है जहाँ तक मैं भी इस धम्म में प्रवेश कर चुका हूँ और निवास करता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से इसे अनुभव किया है।'

"मेरे मित्र, यह हमारे लिए एक बड़ा लाभ है, हमारे लिए एक महान लाभ है कि पवित्र जीवन में हमें ऐसा साथी मिला है। अतः जिस धर्म में मैंने प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं को सिद्ध करके प्रवेश किया है और निवास किया है, वही धर्म तुम भी प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं को सिद्ध करके अपने भीतर प्रवेश कर चुके हो और निवास कर चुके हो। और जिस धर्म में तुमने प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं को सिद्ध करके प्रवेश किया है और निवास किया है, वही धर्म मैं भी प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं को सिद्ध करके अपने भीतर प्रवेश कर चुका हूँ और निवास कर चुका हूँ। जिस धर्म को मैं जानता हूँ, वही धर्म तुम जानते हो; जिस धर्म को तुम जानते हो, वही धर्म मैं जानता हूँ। जैसा मैं हूँ, वैसा ही तुम हो; जैसा तुम हो, वैसा ही मैं हूँ। आओ मित्र, अब हम मिलकर इस समुदाय का नेतृत्व करें।"

"इस प्रकार मेरे गुरु अलारा कलामा ने मुझे, अपने शिष्य को, अपने समान दर्जा दिया और मेरा बहुत सम्मान किया। परन्तु मेरे मन में यह विचार आया, 'यह धम्म न तो मोहभंग, न वैराग्य, न शांति, न प्रत्यक्ष ज्ञान, न जागृति, न मुक्ति की ओर ले जाता है, बल्कि केवल शून्यता के आयाम में पुन: प्रकट होने की ओर ले जाता है।' अतः उस धम्म से असंतुष्ट होकर मैंने उसे छोड़ दिया।"

"कुशलता की खोज में, परम शांति की अतुलनीय अवस्था की तलाश में, मैं उद्दक रामपुत्त के पास गया और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा: 'मित्र उद्दक, मैं इस सिद्धांत और अनुशासन का अभ्यास करना चाहता हूँ।'"

"जब यह कहा गया, तो उन्होंने मुझसे उत्तर दिया, 'मेरे मित्र, तुम यहीं रह सकते हो। यह सिद्धांत ऐसा है कि एक बुद्धिमान व्यक्ति प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से स्वयं इसका अनुभव करके शीघ्र ही अपने गुरु के ज्ञान में प्रवेश कर सकता है और उसमें निवास कर सकता है।'

"मुझे सिद्धांत सीखने में ज्यादा समय नहीं लगा। केवल होंठ हिलाकर दोहराने से ही मैं ज्ञान के शब्द, बड़ों के शब्द बोल सकता था, और मैं यह पुष्टि कर सकता था कि मैं जानता और देखता हूँ - मैं, दूसरों के साथ।"

मैंने सोचा: 'यह केवल दृढ़ विश्वास से ही नहीं था कि राम ने घोषणा की, "मैंने इस धम्म में प्रवेश किया है और इसमें निवास करता हूँ, क्योंकि मैंने इसे प्रत्यक्ष ज्ञान से स्वयं अनुभव किया है।" निश्चित रूप से वे इस धम्म को जानते और देखते हुए निवास करते थे।' इसलिए

मैं उद्दक के पास गया और पूछा, 'राम ने किस हद तक यह घोषणा की कि उन्होंने इस धम्म में प्रवेश किया है और इसमें निवास किया है?' यह सुनकर उद्दक ने न तो प्रत्यक्ष ज्ञान के आयाम का उल्लेख किया और न ही अप्रत्यक्ष ज्ञान के आयाम का।

मैंने सोचा: 'न केवल राम में दृढ़ विश्वास, लगन, जागरूकता, एकाग्रता और विवेक था, बल्कि मुझमें भी दृढ़ विश्वास, लगन, जागरूकता, एकाग्रता और विवेक है। क्या होगा यदि मैं स्वयं उस धम्म को जानने का प्रयास करूँ जिसमें राम ने प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से प्रवेश किया और निवास किया?' इसलिए शीघ्र ही मैंने प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उस धम्म में प्रवेश किया और निवास किया। मैं उद्दक के पास गया और कहा, 'मित्र उद्दक, क्या राम ने प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से इस धम्म में इतना ही प्रवेश किया और निवास किया?'

"'हाँ, मेरे दोस्त...'"

"'मित्र, यही वह सीमा है जहाँ तक मैं भी इस धम्म में प्रवेश कर चुका हूँ और निवास करता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से इसे अनुभव किया है।'

"मेरे मित्र, यह हमारे लिए एक बड़ा लाभ है कि पवित्र जीवन में हमें ऐसा साथी मिला है। इसलिए, राम ने जिस धम्म में प्रवेश किया और निवास किया, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से स्वयं अनुभव किया, वही धम्म है जिसमें आपने प्रवेश किया और निवास किया, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से स्वयं अनुभव किया। और जिस धम्म में आपने प्रवेश किया और निवास किया, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से स्वयं अनुभव किया, वही धम्म है जिसमें राम ने प्रवेश किया और निवास किया, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से स्वयं अनुभव किया। जिस धम्म को वे जानते थे, वही धम्म आप जानते हैं; जिस धम्म को आप जानते हैं, वही धम्म वे जानते थे। जैसा वे थे, वैसा ही आप हैं; जैसा आप हैं, वैसा ही वे थे। आओ मित्र, इस समुदाय का नेतृत्व करो।"

"इस प्रकार मेरे आध्यात्मिक साथी उद्दक रामपुत्त ने मुझे गुरु का पद दिया और मेरा बहुत सम्मान किया। परन्तु मेरे मन में यह विचार आया, 'यह धर्म न तो मोहभंग, न वैराग्य, न शांति, न प्रत्यक्ष ज्ञान, न जागृति, न मुक्ति की ओर ले जाता है, परन्तु केवल उस आयाम में पुन: प्रकट होने की ओर ले जाता है जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही प्रत्यक्ष।' अतः उस धर्म से असंतुष्ट होकर मैंने उसे त्याग दिया।"

"कुशलता की खोज में, परम शांति की अतुलनीय अवस्था की तलाश में, मैं मगध देश में कई चरणों में भटकता रहा और उरुवेला के सैन्य नगर में पहुँचा। वहाँ मैंने एक रमणीय ग्रामीण क्षेत्र देखा, जिसमें एक प्रेरणादायक वनक्षेत्र, सुंदर और रमणीय किनारों वाली एक निर्मल बहती नदी और चारों ओर भिक्षा मांगने के लिए गाँव थे। मेरे मन में यह विचार आया: 'यह ग्रामीण क्षेत्र कितना रमणीय है, अपने प्रेरणादायक वनक्षेत्र, सुंदर और रमणीय किनारों वाली निर्मल बहती नदी और चारों ओर भिक्षा मांगने के लिए गाँवों के साथ। यह परिश्रम करने के इच्छुक कुलवासी के लिए बिल्कुल उपयुक्त है।' इसलिए मैं वहीं बैठ गया और सोचने लगा, 'यह परिश्रम के लिए बिल्कुल उपयुक्त है।'"

फिर, हे भिक्षुओं, जन्म के बंधन में रहते हुए, जन्म के दोषों को देखकर, अजन्मे, अद्वितीय बंधनमुक्ति की खोज में, मैंने बंधनमुक्ति प्राप्त की। वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, अपवित्रता के अधीन रहते हुए, वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, अपवित्रता के दोषों को देखकर, मैंने वृद्धावस्था रहित, रोग रहित, मृत्यु रहित, दुःख रहित, अद्वितीय बंधनमुक्ति की खोज में, मैंने वृद्धावस्था रहित, रोग रहित, मृत्यु रहित, दुःख रहित, अद्वितीय बंधनमुक्ति प्राप्त की। मुझे ज्ञान और दृष्टि प्राप्त हुई: 'बिना किसी कारण के मेरी मुक्ति है। यह अंतिम जन्म है। अब आगे कोई जन्म नहीं है।'

तब मेरे मन में यह विचार आया, 'यह धम्म जो मैंने प्राप्त किया है, गहरा है, देखना कठिन है, अनुभव करना कठिन है, शांत है, परिष्कृत है, कल्पना की सीमा से परे है, सूक्ष्म है, केवल ज्ञानियों द्वारा अनुभव किया जा सकता है। लेकिन यह पीढ़ी आसक्ति में आनंद लेती है, आसक्ति से उत्तेजित होती है, आसक्ति का आनंद लेती है। आसक्ति में आनंद लेने वाली, आसक्ति से उत्तेजित होने वाली, आसक्ति का आनंद लेने वाली पीढ़ी के लिए यह/वह तुल्यता और आश्रित सह-उत्पत्ति देखना कठिन है। यह अवस्था भी देखना कठिन है: सभी सृजनों का निवारण, सभी प्राप्तियों का त्याग, व्यथा का अंत; वैराग्य; निश्चिंतता; मुक्ति। और यदि मैं धम्म का उपदेश दूं और दूसरे मुझे न समझें, तो यह मेरे लिए थकाऊ और कष्टदायक होगा।'

"तभी मुझे ये पंक्तियाँ सूझीं, जो पहले कभी नहीं बोली गईं, कभी नहीं सुनी गईं:

अब बस करो उस ज्ञान को सिखाने का जो मैंने बड़ी मुश्किल से प्राप्त किया है। जो लोग घृणा और वासना से ग्रस्त हैं, उन्हें यह धम्म आसानी से प्राप्त नहीं होता।

जो कुछ गूढ़, सूक्ष्म, गहरा, देखना कठिन है, जो प्रवाह के विपरीत है— वे लोग जो वासना में लिप्त हैं, अंधकार के घने आवरण में लिपटे हुए हैं, उसे नहीं देख पाएंगे।' "जब मैंने इस प्रकार चिंतन किया, तो मेरा मन धम्म का उपदेश देने के बजाय आराम से रहने की ओर झुक गया।"

तब ब्रह्म सहमपति ने अपनी चेतना से मेरी चेतना की विचारधारा को जानकर सोचा: 'संसार नष्ट हो गया है! संसार का नाश हो गया है! तथागत, अरहंत, सत्यात्मा से जागृत व्यक्ति का मन आराम में रहने की ओर झुका हुआ है, धम्म का उपदेश देने की ओर नहीं!' तब, जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाता है, वैसे ही ब्रह्म सहमपति ब्रह्मलोक से विलीन होकर मेरे सामने प्रकट हुए। उन्होंने अपने ऊपरी वस्त्र को एक कंधे पर रखा और दाहिना घुटना जमीन पर रखकर मुझे हृदय के सामने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और मुझसे कहा: 'हे भगवान, भगवान को धम्म का उपदेश देने दीजिए! सिद्ध पुरुष को धम्म का उपदेश देने दीजिए! कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनकी आँखों में धूल भी नहीं है और वे धम्म न सुनने के कारण पथभ्रष्ट हो रहे हैं। कुछ ऐसे भी होंगे जो धम्म को समझेंगे।'

"ब्रह्म सहमपति ने यही कहा था। इतना कहने के बाद उन्होंने आगे यह भी कहा:

अतीत में मगधियों के बीच एक अपवित्र धर्म प्रकट हुआ, जिसे दूषित लोगों ने रचा था। अमर के लिए द्वार खोल दो! उन्हें निष्कलंक धर्म का ज्ञान प्राप्त करने दो!

जैसे कोई चट्टानी टीले पर खड़ा होकर नीचे चारों ओर लोगों को देख सकता है, वैसे ही, हे ज्ञानी, सर्वव्यापी दृष्टि से धम्म के महल में आरोहण करो। दु:ख से मुक्त होकर दु:ख में डूबे हुए, जन्म और वृद्धावस्था के कष्टों से पीड़ित लोगों को देखो।

उठो, वीर, युद्ध में विजयी! हे गुरु, ऋणमुक्त होकर संसार में विचरण करो। हे भगवान, धम्म का उपदेश दो: अवश्य ही समझोगे। तब, ब्रह्मा के निमंत्रण को समझकर, प्राणियों पर दया करते हुए, मैंने ज्ञानी व्यक्ति की दृष्टि से संसार का अवलोकन किया। ऐसा करते हुए, मैंने ऐसे प्राणियों को देखा जिनकी आँखों में कम धूल थी और जिनकी आँखों में अधिक, तीव्र बुद्धि वाले और मंद बुद्धि वाले, अच्छे गुणों वाले और बुरे गुणों वाले, आसानी से सीखने वाले और कठिन, उनमें से कुछ को परलोक में अपमान और संकट दिखाई दे रहा था। जैसे नीले, लाल या सफेद कमलों से भरे तालाब में, कुछ कमल - जल में जन्म लेकर बढ़ते हैं - जल में ही डूबे रहते हैं और जल से ऊपर नहीं उठते; कुछ जल के स्तर पर स्थिर रहते हैं; जबकि कुछ जल से ऊपर उठकर बिना जल से लथपथ हुए खड़े रहते हैं - उसी प्रकार, ज्ञानी व्यक्ति की दृष्टि से संसार का अवलोकन करते हुए, मैंने ऐसे प्राणियों को देखा जिनकी आँखों में कम धूल थी और जिनकी आँखों में अधिक धूल थी, तीव्र बुद्धि वाले और मंद बुद्धि वाले, अच्छे गुणों वाले और बुरे गुणों वाले, आसानी से सीखने वाले और कठिन, उनमें से कुछ को परलोक में अपमान और संकट दिखाई दे रहा था।

यह देखकर मैंने ब्रह्म सहमपति को श्लोकों में उत्तर दिया:

जिनके कान हैं, उनके लिए अमरता के द्वार खुले हैं। वे अपना विश्वास प्रकट करें। हे ब्रह्मा, मैंने संकट को भांपते हुए लोगों को परिष्कृत, उदात्त धम्म नहीं बताया। तब ब्रह्मा सहमपति ने यह सोचकर कि 'भगवान ने धम्म सिखाने की सहमति दे दी है,' मुझे प्रणाम किया और मेरे दाहिनी ओर परिक्रमा करते हुए वहीं अंतर्धान हो गए।

तब मेरे मन में यह विचार आया, 'मैं सबसे पहले किसे धम्म की शिक्षा दूं? कौन इस धम्म को शीघ्र समझेगा?' फिर मेरे मन में यह विचार आया, 'यह अलारा कलामा बुद्धिमान, योग्य और समझदार हैं। उनकी आंखों में लंबे समय से धूल नहीं है। क्या होगा यदि मैं उन्हें पहले धम्म की शिक्षा दूं? वे इस धम्म को शीघ्र समझ जाएंगे।' तब देवता मेरे पास आए और बोले, 'हे भगवान, अलारा कलामा का सात दिन पहले निधन हो गया।' और मेरे भीतर ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'अलारा कलामा का सात दिन पहले निधन हो गया।' मेरे मन में यह विचार आया, 'अलारा कलामा को बहुत बड़ा नुकसान हुआ है। यदि उन्होंने इस धम्म को सुना होता, तो वे इसे शीघ्र समझ जाते।'

तब मेरे मन में यह विचार आया, 'मैं सबसे पहले किसे धम्म की शिक्षा दूं? कौन इस धम्म को शीघ्र समझेगा?' फिर मेरे मन में यह विचार आया, 'यह उद्दक रामपुत्त बुद्धिमान, योग्य और समझदार है। उसके नेत्रों में लंबे समय से धूल नहीं है। क्या होगा यदि मैं उसे पहले धम्म की शिक्षा दूं? वह इस धम्म को शीघ्र समझ जाएगा।' तब देवता मेरे पास आए और बोले, 'हे भगवान, उद्दक रामपुत्त का कल रात निधन हो गया।' और मेरे भीतर ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'उद्दक रामपुत्त का कल रात निधन हो गया।' मेरे मन में यह विचार आया, 'उद्दक रामपुत्त को बहुत बड़ा नुकसान हुआ है। यदि उसने इस धम्म को सुना होता, तो वह इसे शीघ्र समझ जाता।'

तब मेरे मन में यह विचार आया, 'मैं सबसे पहले किसे धम्म की शिक्षा दूं? कौन इस धम्म को शीघ्रता से समझेगा?' फिर मेरे मन में यह विचार आया, 'जब मैं साधना में दृढ़ था, तब वे पाँच भिक्षु मेरे लिए बहुत सहायक थे। क्या होगा यदि मैं उन्हें पहले धम्म की शिक्षा दूं?' फिर मेरे मन में यह विचार आया, 'वे पाँच भिक्षु अब कहाँ रह रहे हैं?' और दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, मैंने देखा कि वे वाराणसी के पास इसिपताना के हिरण उद्यान में रह रहे थे।

फिर, उरुवेला में अपनी इच्छानुसार कुछ समय बिताने के बाद, मैं धीरे-धीरे वाराणसी की ओर प्रस्थान करने लगा। गया और ज्ञानोदय स्थल के बीच मार्ग पर अजीवक उपाक ने मुझे देखा और मुझे देखकर कहा, 'हे मेरे मित्र, तुम्हारी इंद्रियाँ निर्मल हैं। तुम्हारा रंग शुद्ध और तेजस्वी है। तुम किसके कारण निकले हो? तुम्हारे गुरु कौन हैं? तुम किसके धर्म में प्रसन्न होते हो?'

"जब यह कहा गया, तो मैंने उपका अजीवक को श्लोकों में उत्तर दिया:

मैं सर्वविजयी, सर्वज्ञ हूँ, सभी चीजों के संबंध में अनासक्त। सभी इच्छाओं के अंत में मुक्त होकर, मैंने सब कुछ त्याग दिया है: मैंने स्वयं ही सब कुछ जान लिया है, तो मैं किसे अपना गुरु मानूँ?

मेरा कोई गुरु नहीं है, और मेरे जैसा गुरु मिलना भी मुश्किल है। इस देवलोक में मेरा कोई समकक्ष नहीं है।

क्योंकि मैं संसार में अरहंत हूँ; मैं अद्वितीय गुरु हूँ। मैं अकेला ही सही मायने में आत्मजागृत हूँ। मैं शीतल और मुक्त हूँ।

धम्म के चक्र को गति देने के लिए मैं काशी नगर जाता हूँ। इस अंधी दुनिया में, मैं अमरता का ढोल बजाता हूँ।' "'मेरे मित्र, तुम्हारे दावों से तो यही प्रतीत होता है कि तुम अनंत विजेता हो।'"

'विजेता वे हैं जो मेरे जैसे हैं और जिन्होंने चरम अवस्था प्राप्त कर ली है। मैंने बुरी आदतों पर विजय प्राप्त कर ली है, इसलिए, उपका, मैं एक विजेता हूँ।' यह सुनकर उपका ने कहा, 'ऐसा ही हो, मेरे मित्र,' और सिर हिलाते हुए, एक तरफ मुड़कर, वह चला गया।

फिर, धीरे-धीरे भटकते हुए, मैं वाराणसी के इसिपताना स्थित हिरण उद्यान में पहुँचा, जहाँ पाँच भिक्षुओं का समूह ठहरा हुआ था। दूर से ही उन्होंने मुझे आते हुए देखा और मुझे देखते ही आपस में एक प्रतिज्ञा कर ली, (कहते हुए), 'मित्रों, देखो गौतम ध्यानमग्न आ रहे हैं: विलासितापूर्ण जीवन जी रहे हैं, परिश्रम से विमुख हैं, धन-दौलत में लिप्त हैं। वे प्रणाम करने, खड़े होकर अभिवादन करने या उनके वस्त्र और कुंड ग्रहण करने के योग्य नहीं हैं। फिर भी, उनके लिए एक आसन लगाया जाए; यदि वे चाहें तो बैठ सकते हैं।' लेकिन जैसे ही मैं उनके पास पहुँचा, वे अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं कर पाए। एक भिक्षु ने खड़े होकर मेरा अभिवादन किया और मेरे वस्त्र और कुंड ग्रहण किए। दूसरे ने मेरे लिए आसन बिछाया। तीसरे ने मेरे पैर धोने के लिए पानी रखा। फिर भी, उन्होंने मुझे नाम से और 'मित्र' कहकर संबोधित किया।

इसलिए मैंने उनसे कहा, 'तथागत को नाम से और 'मित्र' कहकर संबोधित मत करो। मित्रों, तथागत एक योग्य व्यक्ति हैं, जो सही मायने में आत्म-जागृत हैं। ध्यान से सुनो, मित्रों: अमरत्व प्राप्त हो चुका है। मैं तुम्हें उपदेश दूंगा। मैं तुम्हें धम्म सिखाऊंगा। निर्देशानुसार अभ्यास करने से तुम शीघ्र ही उस परम लक्ष्य को प्राप्त कर लोगे और उसमें स्थिर रहोगे, जिसके लिए कुलवासी सही मायने में अपने घर से संन्यासी जीवन में प्रस्थान करते हैं, और इसे स्वयं इसी क्षण में जान और अनुभव कर लोगे।'

"जब यह कहा गया, तो पाँच भिक्षुओं के समूह ने मुझसे उत्तर दिया, 'उस अभ्यास, उस आचरण, उस तपस्या के द्वारा तुमने कोई श्रेष्ठ मानवीय अवस्था, कोई ऐसा ज्ञान और दृष्टि का गुण प्राप्त नहीं किया जो किसी महान व्यक्ति के योग्य हो। तो अब तुम विलासी जीवन जीते हुए, अपने परिश्रम से भटकते हुए, धन-दौलत में लिप्त होकर, किसी श्रेष्ठ मानवीय अवस्था, किसी ऐसे ज्ञान और दृष्टि का गुण कैसे प्राप्त कर सकते हो जो किसी महान व्यक्ति के योग्य हो?'"

"जब यह कहा गया, तो मैंने उनसे उत्तर दिया, 'तथागत, भिक्षुओं, विलासितापूर्ण जीवन नहीं जी रहे हैं, अपने परिश्रम से विमुख नहीं हुए हैं, धन-दौलत में लिप्त नहीं हुए हैं। तथागत, मित्रों, योग्य हैं, सही मायने में आत्म-जागृत हैं। ध्यान से सुनो, मित्रों: अमरत्व प्राप्त हो चुका है। मैं तुम्हें उपदेश दूंगा। मैं तुम्हें धम्म सिखाऊंगा। निर्देशानुसार अभ्यास करने से, तुम शीघ्र ही उस परम लक्ष्य को प्राप्त कर लोगे और उसमें स्थिर रहोगे, जिसके लिए कुलवासी सही मायने में जन्म लेकर संन्यासी जीवन व्यतीत करते हैं, और इसे स्वयं इसी क्षण में जान और अनुभव कर लोगे।"

दूसरी बार... तीसरी बार, पाँच भिक्षुओं के समूह ने मुझसे कहा, 'उस साधना, उस आचरण, उस तपस्या के द्वारा तुम किसी श्रेष्ठ मानवीय अवस्था, किसी कुलीन ज्ञान और दृष्टि की विशिष्टता को प्राप्त नहीं कर सके। तो अब तुम विलासितापूर्ण जीवन जीकर, परिश्रम से विमुख होकर, धन-दौलत में लिप्त होकर, किसी कुलीन ज्ञान और दृष्टि की विशिष्टता को कैसे प्राप्त कर सकते हो?'

"जब यह कहा गया, तो मैंने पांच भिक्षुओं के समूह से उत्तर दिया, 'क्या आपको याद है कि मैंने इससे पहले कभी इस तरह से बात की है?'"

"'नहीं, भगवान।'"

"'हे भिक्षुओं, तथागत विलासितापूर्ण जीवन नहीं जी रहे हैं, उन्होंने अपने परिश्रम से विमुख नहीं हुए हैं, वे धन-दौलत में लिप्त नहीं हुए हैं। हे मित्रों, तथागत योग्य हैं, सही मायने में आत्म-जागृत हैं। हे मित्रों, ध्यान से सुनो: अमरत्व प्राप्त हो चुका है। मैं तुम्हें उपदेश दूंगा। मैं तुम्हें धम्म सिखाऊंगा। उपदेशानुसार अभ्यास करने से तुम शीघ्र ही उस परम लक्ष्य को प्राप्त कर लोगे और उसमें स्थिर रहोगे, जिसके लिए कुलवासी सही मायने में जन्म लेकर संन्यासी जीवन व्यतीत करते हैं, और इसे तुम स्वयं इसी क्षण में जान और अनुभव कर लोगे।'

और इस प्रकार मैं उन्हें समझाने में सफल रहा। मैं दो भिक्षुओं को शिक्षा देता था जबकि तीन भिक्षा मांगने जाते थे, और हम छह लोग उन तीन भिक्षुओं द्वारा भिक्षा मांगने से लाए गए धन से अपना जीवन यापन करते थे। फिर मैं तीन भिक्षुओं को शिक्षा देता था जबकि दो भिक्षा मांगने जाते थे, और हम छह लोग उन दो भिक्षुओं द्वारा भिक्षा मांगने से लाए गए धन से अपना जीवन यापन करते थे। फिर पाँच भिक्षुओं का समूह—इस प्रकार मेरे द्वारा प्रेरित और निर्देशित होकर—जन्म के बंधन में बंधे न रहने के, बंधन से मुक्त होने के अद्वितीय विश्राम की खोज करते हुए, बंधन से मुक्त होकर, बंधन से मुक्त होने के अद्वितीय विश्राम को प्राप्त कर लिया। वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, अपवित्रता के अधीन होकर, वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, दुःख, अपवित्रता के दुष्परिणामों को देखते हुए, वृद्धावस्था रहित, रोग रहित, मृत्यु रहित, दुःख रहित, बंधन से मुक्त होने के अद्वितीय विश्राम की खोज करते हुए, वे वृद्धावस्था रहित, रोग रहित, मृत्यु रहित, दुःख रहित, बंधन से मुक्त होने के अद्वितीय विश्राम को प्राप्त कर लिया। उनमें ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई: 'बिना किसी उकसावे के हमारी मुक्ति है। यह अंतिम जन्म है। अब आगे कोई जन्म नहीं होगा।'

भिक्षुओं, कामुकता के ये पाँच सूत्र हैं। वे कौन से पाँच सूत्र हैं? आँखों से दिखाई देने वाले रूप - मनभावन, सुखद, आकर्षक, प्यारा, इच्छा जगाने वाला, लुभावना। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ - मनभावन, सुखद, आकर्षक, लुभावना, इच्छा जगाने वाला, लुभावना। नाक से महसूस होने वाली सुगंध - मनभावन, सुखद, आकर्षक, लुभावना, इच्छा जगाने वाला, लुभावना। जीभ से महसूस होने वाले स्वाद - मनभावन, सुखद, आकर्षक, लुभावना, इच्छा जगाने वाला, लुभावना। शरीर से महसूस होने वाली स्पर्श संवेदनाएँ - मनभावन, सुखद, आकर्षक, लुभावना, इच्छा जगाने वाला, लुभावना। ये कामुकता के पाँच सूत्र हैं।

और जो भी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति इन पांच कामुक डोरियों से बंधे हों—इनमें आसक्त हों, पूरी तरह से इनके वश में हो गए हों, इनके दुष्परिणामों को देखे बिना या इनसे मुक्ति का मार्ग जाने बिना इनका उपभोग कर रहे हों—उन्हें दुर्भाग्य और विनाश का शिकार माना जाना चाहिए; मारा उनके साथ जैसा चाहे वैसा कर सकता है। ठीक वैसे ही जैसे कोई जंगली हिरण फंदों के ढेर पर बंधा पड़ा हो: उसे दुर्भाग्य और विनाश का शिकार माना जाना चाहिए; शिकारी उसके साथ जैसा चाहे वैसा कर सकता है। जब शिकारी आता है, तो वह अपनी इच्छा से बच नहीं सकता। उसी प्रकार, जो भी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति इन पांच कामुक डोरियों से बंधे हों—इनमें आसक्त हों, पूरी तरह से इनके वश में हो गए हों, इनके दुष्परिणामों को देखे बिना या इनसे मुक्ति का मार्ग जाने बिना इनका उपभोग कर रहे हों—उन्हें दुर्भाग्य और विनाश का शिकार माना जाना चाहिए; मारा उनके साथ जैसा चाहे वैसा कर सकता है।

लेकिन जो पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति इन पांच कामुक डोरियों से बंधे नहीं हैं—इनसे आसक्त हैं, इन पर पूरी तरह मोहित नहीं हुए हैं, इनके दोषों को समझते हुए इनका उपभोग करते हैं और इनसे मुक्ति का मार्ग जानते हैं—उन्हें दुर्भाग्य से अछूता और विनाश से मुक्त माना जाना चाहिए; मारा उनके साथ अपनी इच्छा अनुसार व्यवहार नहीं कर सकता। ठीक वैसे ही जैसे यदि कोई जंगली हिरण फंदों के ढेर पर बिना बंधे पड़ा हो: तो उसे दुर्भाग्य से अछूता और विनाश से मुक्त माना जाना चाहिए; शिकारी उसके साथ अपनी इच्छा अनुसार व्यवहार नहीं कर सकता। जब शिकारी आएगा, तो वह अपनी मर्जी से भाग जाएगा। उसी प्रकार, जो पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति इन पांच कामुक डोरियों से बंधे नहीं हैं—इनसे आसक्त हैं, इन पर पूरी तरह मोहित नहीं हुए हैं, इनके दोषों को समझते हुए इनका उपभोग करते हैं और इनसे मुक्ति का मार्ग जानते हैं—उन्हें दुर्भाग्य से अछूता और विनाश से मुक्त माना जाना चाहिए; मारा उनके साथ अपनी इच्छा अनुसार व्यवहार नहीं कर सकता।

प्रथम ध्यान (प्रथम स्तर की समाधि)

मान लीजिए कि एक जंगली हिरण जंगल की घाटी में रहता है। वह बेफिक्र होकर चलता है, बेफिक्र होकर खड़ा होता है, बेफिक्र होकर बैठता है, बेफिक्र होकर लेटता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि वह शिकारी की पहुँच से बाहर चला गया है। 5 इसी प्रकार, एक भिक्षु—इंद्रिय सुखों से पूरी तरह विरक्त, अकुशल गुणों से विरक्त— प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है : विरक्तता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है। कहा जाता है कि इस भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। मार्गहीन होकर, उसने मारा की दृष्टि नष्ट कर दी है और शैतान के लिए अदृश्य हो गया है।

द्वितीय ध्यान (द्वितीय स्तर का समाधि)

फिर भिक्षु, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों को शांत करते हुए, दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है : शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। कहा जाता है कि इस भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। मार्गहीन होकर, उसने मारा की दृष्टि नष्ट कर दी और शैतान के लिए अदृश्य हो गया।

तीसरा ध्यान (तीसरे स्तर की समाधि)

फिर, जब ध्यान की अवस्था शांत हो जाती है, तो भिक्षु समभाव में रहता है, सचेत और जागरूक रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है , जिसके बारे में श्रेष्ठजनों का कहना है, 'समभाव में स्थिर और सचेत रहकर वह सुखमय अवस्था में रहता है।' कहा जाता है कि इस भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। दृष्टिहीन होकर, उसने मारा की दृष्टि नष्ट कर दी और राक्षस के लिए अदृश्य हो गया।

चौथा ध्यान (चौथा स्तर का समाधि)

फिर भिक्षु, सुख और तनाव का त्याग करके—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने पर— चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है : समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख। कहा जाता है कि इस भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। मार्गहीन होकर, उसने मारा की दृष्टि नष्ट कर दी और शैतान के लिए अदृश्य हो गया।

पांचवां ध्यान (पांचवां स्तर का समाधि)

फिर भिक्षु, भौतिक रूप की धारणाओं से पूर्णतः परे जाकर, प्रतिरोध की धारणाओं के लुप्त होने और विविधता की धारणाओं की परवाह न करते हुए, 'अनंत अंतरिक्ष' को अनुभव करते हुए, अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर हो जाता है। कहा जाता है कि इस भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। बिना किसी मार्ग के, उसने मारा की दृष्टि को नष्ट कर दिया और शैतान के लिए अदृश्य हो गया।

छठा ध्यान (छठा स्तर का समाधि)

फिर भिक्षु, अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, 'अनंत चेतना' को अनुभव करते हुए, चेतना की अनंतता के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। कहा जाता है कि इस भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। बिना मार्ग दिखाए, उसने मारा की दृष्टि नष्ट कर दी और शैतान के लिए अदृश्य हो गया।

सातवां ध्यान (सातवें स्तर की समाधि)

फिर भिक्षु, चेतना की अनंतता के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, शून्यता (शून्यता) के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। कहा जाता है कि इस भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। बिना मार्ग दिखाए, उसने मारा की दृष्टि नष्ट कर दी और शैतान के लिए अदृश्य हो गया।

आठवां ध्यान (आठवां स्तर का समाधि)

फिर वह भिक्षु, शून्यता के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, उस आयाम में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है जहाँ न तो बोध होता है और न ही अबोध। कहा जाता है कि इसी भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। मार्गहीन होकर उसने मारा की दृष्टि नष्ट कर दी और शैतान के लिए अदृश्य हो गया।

नौवां ध्यान (9वें स्तर का समाधि)

फिर वह भिक्षु, न तो बोध और न ही अबोध के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, बोध और भाव के अंत में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। और, विवेक से यह देखकर, उसकी मानसिक हलचलें पूर्णतः समाप्त हो जाती हैं। कहा जाता है कि इस भिक्षु ने मारा को अंधा कर दिया था। मार्गहीन होकर, उसने मारा की दृष्टि नष्ट कर दी और शैतान के लिए अदृश्य हो गया। उस पार पहुँचकर, वह संसार से अनासक्त हो जाता है। वह निर्धन होकर चलता है, निर्धन होकर खड़ा होता है, निर्धन होकर बैठता है, निर्धन होकर लेटता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि वह शैतान की पहुँच से परे चला गया है।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

सूत्र का अंत

उपयोगकर्ता द्वारा दी गई व्याख्याएँ:-

नोट-1: पहले ध्यान में, अंतर्मुखी एकाग्रता का अनुभव होता है, जिससे मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी में तीव्र जागृति का अनुभव होता है। चौथे ध्यान तक, इसकी गुणवत्ता और तीव्रता में वृद्धि होती है। पाँचवें ध्यान में, चेतना शरीर से सभी दिशाओं में फैलती हुई प्रतीत होती है, जिसमें पृथ्वी, सौर मंडल, आकाशगंगा और यहाँ तक कि संपूर्ण ब्रह्मांड (भौतिक जगत के भीतर) भी समाहित हो जाता है। यह विशाल होती जाती है और अनंत अंतरिक्ष का अनुभव कराती है। छठे ध्यान में, इसकी गुणवत्ता और तीव्रता बढ़ती है। सातवें ध्यान में, शून्यता या शून्य का अनुभव होता है। आठवें ध्यान में, भौतिक ब्रह्मांड के प्रति उदासीनता का अनुभव होता है। अंत में, नौवें ध्यान में, फिर से अनंत, लेकिन पारलौकिक, अर्थात् भौतिक ब्रह्मांड से परे, एक तीव्र प्रज्वलित प्रकाश-शाश्वतता-निर्वाण के सागर में परिवर्तित होने जैसा अनुभव होता है, जहाँ कोई परिवर्तन नहीं, कोई समय नहीं, सदा जीवित, सर्वव्यापी।

नोट-2: इस प्रक्रिया को समझने के लिए एक उदाहरण लें - आकाशगंगाओं की छपी हुई एक कागज़ की तस्वीर लें (अनंत अंतरिक्ष - पंचम ध्यान)। अब तस्वीर को इस तरह घुमाएँ कि उसका एक किनारा आपकी ओर हो, अब तस्वीर गायब हो जाती है - आपको केवल किनारा दिखाई देता है (शून्यता - सातवाँ ध्यान)। अंत में तस्वीर को पूरी तरह से पलट दें (पलट दें) ताकि अब आपको तस्वीर का पिछला भाग दिखाई दे, जो पूरी तरह से सफेद है (नौवाँ ध्यान), यानी शाश्वत प्रकाश का गहन सर्वव्यापी सागर - ज्ञानोदय।

नोट-3: ज्ञानोदय की अंतिम नौवीं अवस्था को समझने के लिए एक और उपमा विज्ञान द्वारा प्रस्तावित अंधकार ऊर्जा में विलीन होना है, जो हमारे चारों ओर व्याप्त प्रकाश के एक गहन सागर के समान है, लेकिन अदृश्य, अगोचर, इंद्रिय अनुभव से परे, अर्थात् प्रकृति में पारलौकिक लेकिन अद्वितीय। ज्ञानोदय और अंततः निर्वाण प्राप्त करने वाले सभी लोग इस अंतिम अवस्था में उसी प्रकार विलीन हो जाएंगे जैसे वर्षा की बूंदें समुद्र पर गिरकर समुद्र बन जाती हैं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.7 कुलहत्थिपदोपमा सुत्त(27)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु

1सेटिंग
2गुण
3इंद्रिय संयम
4जागरूकता और सतर्कता
5बाधाओं को त्यागना
6चार ध्यान

7तीन ज्ञान

सेटिंग

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। उस समय ब्राह्मण जानूस्सोनी दिनदहाड़े एक सफेद छत वाले रथ में सावत्थी से निकल रहे थे। उन्होंने दूर से आते हुए तीर्थयात्री पिलोतिक को देखा और उन्हें देखकर कहा, "गुरु वच्चायन दिनदहाड़े कहाँ से आ रहे हैं?"

"महोदय, मैं ध्यानमग्न गौतम के दर्शन के बाद यहाँ आया हूँ।"

"और एक बुद्धिमान व्यक्ति गौतम गौतम की विवेकशीलता के बारे में क्या सोचता है?"

"महोदय, मैं कौन होता हूँ जो गौतम जैसे चिंतनशील व्यक्ति की विवेकशीलता को जान सकूँ? क्या उनके समान होना ही उनकी विवेकशीलता को जानने का एकमात्र साधन नहीं होगा?"

"मास्टर वच्चायना ने गौतम ध्यानमग्न की भरपूर प्रशंसा की है!"

"महोदय, मैं कौन होता हूँ ध्यानमग्न गौतम की प्रशंसा करने वाला। उनकी प्रशंसा तो प्रशंसनीय लोगों द्वारा की जाती है, क्योंकि वे मनुष्य और दिव्य, दोनों ही दृष्टियों से श्रेष्ठ प्राणी हैं।"

"गुरु वच्चायना को ध्यानमग्न गौतम पर इतना अधिक विश्वास होने के क्या कारण हैं?"

"महोदय, मान लीजिए कि एक हाथी शिकारी किसी हाथी वन में प्रवेश करे और वहाँ उसे एक विशाल, लंबा और चौड़ा हाथी का पदचिह्न दिखाई दे। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा, 'कितना बड़ा नर हाथी है!' ठीक उसी प्रकार, जब मैंने ध्यानमग्न गौतम के चार पदचिह्न देखे, तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा, 'भगवान बुद्ध सही मायने में आत्म-जागृत हैं, भगवान बुद्ध ने धम्म का भली-भांति उपदेश दिया है, और भगवान बुद्ध के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।' वे चार कौन से थे?"

"एक ऐसा मामला है जहाँ मैं कुछ ऐसे महान योद्धाओं को देखता हूँ जो विद्वान, सूक्ष्म बुद्धि वाले, वाद-विवाद में निपुण और बाल की खाल निकालने वाले निशानेबाजों की तरह होते हैं। वे मानो इधर-उधर घूमते रहते हैं और अपने तर्क-वितर्क से दार्शनिक मतों को चकनाचूर कर देते हैं। उन्हें पता चलता है, 'गौतम ध्यानमग्न उस गाँव या कस्बे में आएँगे।' वे इस प्रकार प्रश्न बनाते हैं: 'गौतम ध्यानमग्न के पास जाकर हम उनसे अपना यह प्रश्न पूछेंगे। यदि इस प्रकार पूछे जाने पर वे इस प्रकार उत्तर दें, तो हम उनके उपदेश का इस प्रकार खंडन करेंगे। और यदि इस प्रकार पूछे जाने पर वे उस प्रकार उत्तर दें, तो हम उनके उपदेश का उस प्रकार खंडन करेंगे।'

वे सुनते हैं, 'गौतम ध्यानमग्न उस गाँव या कस्बे में आ रहे हैं।' वे उनके पास जाते हैं, और वे उन्हें धम्म पर प्रवचन देकर उपदेश देते हैं, प्रेरित करते हैं, जागृत करते हैं और प्रोत्साहित करते हैं। धम्म पर प्रवचन द्वारा उपदेश, प्रेरणा, जागृति और प्रोत्साहन प्राप्त करने के बाद, वे उनसे अपना प्रश्न भी नहीं पूछते, तो भला वे उनका खंडन कैसे कर सकते थे? अंततः, वे उनके शिष्य बन जाते हैं। जब मैंने गौतम ध्यानमग्न में यह पहला पदचिह्न देखा, तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा, 'भगवान बुद्ध सही मायने में आत्म-जागृत हैं; भगवान बुद्ध ने धम्म का भली-भांति उपदेश दिया है; भगवान बुद्ध के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'

फिर एक ऐसा मामला भी है जहां मैं कुछ ब्राह्मणों को देखता हूं...

"फिर एक ऐसा मामला भी है जहां मैं कुछ गृहस्थों को देखता हूं..."

फिर एक ऐसा मामला भी है जहाँ मैं कुछ ऐसे ध्यानमग्न लोगों को देखता हूँ जो विद्वान हैं, सूक्ष्म बुद्धि वाले हैं, वाद-विवाद में निपुण हैं, मानो बाल की खाल निकालने वाले निशानेबाज हों। वे मानो इधर-उधर घूमते रहते हैं और अपने तर्क-वितर्क से दार्शनिक मतों को चकनाचूर कर देते हैं। वे सुनते हैं, 'गौतम ध्यानमग्न उस गाँव या कस्बे में आएँगे।' वे इस प्रकार प्रश्न बनाते हैं: 'गौतम ध्यानमग्न के पास जाकर हम उनसे अपना यह प्रश्न पूछेंगे। यदि इस प्रकार पूछे जाने पर वे इस प्रकार उत्तर दें, तो हम उनके उपदेश का इस प्रकार खंडन करेंगे। और यदि इस प्रकार पूछे जाने पर वे उस प्रकार उत्तर दें, तो हम उनके उपदेश का उस प्रकार खंडन करेंगे।'

"वे सुनते हैं, 'गौतम चिंतनशील व्यक्ति उस गांव या कस्बे में आ रहे हैं।'" वे उनके पास जाते हैं, और वे उन्हें धम्म पर प्रवचन देकर उपदेश देते हैं, प्रेरित करते हैं, उत्साह बढ़ाते हैं और प्रोत्साहित करते हैं। धम्म पर प्रवचन द्वारा उपदेश, प्रेरणा, उत्साह और प्रोत्साहन प्राप्त करने के बाद, वे उनसे अपना प्रश्न भी नहीं पूछते, तो भला वे उनका खंडन कैसे कर सकते थे? दरअसल, वे उनसे गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाने का अवसर मांगते हैं। वे उन्हें संन्यासी जीवन में जाने की अनुमति देते हैं। वहाँ जाकर—एकाकी, एकांत, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चय के साथ—वे थोड़े ही समय में पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं और उसमें स्थिर हो जाते हैं, जिसके लिए कुलवासी सही मायने में गृहस्थ जीवन में संन्यासी जीवन में जाते हैं, और इसे स्वयं वर्तमान क्षण में जान और अनुभव कर लेते हैं। वे कहते हैं, 'हम खो जाने के कितने करीब थे! हम खो जाने के कितने करीब थे! पहले, यद्यपि हम ध्यानी नहीं थे, फिर भी हम ध्यानी होने का दावा करते थे। यद्यपि हम ब्राह्मण नहीं थे, फिर भी हम ब्राह्मण होने का दावा करते थे। यद्यपि हम हम अरहंत नहीं थे, हम खुद को अरहंत होने का दावा करते थे। लेकिन अब हम ध्यानमग्न हैं, अब हम ब्राह्मण हैं, अब हम अरहंत हैं।'

जब मैंने गौतम ध्यानमग्न के शरीर पर यह चौथा पदचिह्न देखा, तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा, 'भगवान बुद्ध सही मायने में आत्मजागृत हैं; भगवान बुद्ध ने धम्म का भली-भांति उपदेश दिया है; भगवान बुद्ध के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'

यह सुनकर ब्राह्मण जानूस्सोनी अपने पूर्णतः सफेद छत वाले रथ से नीचे उतरे और अपने ऊपरी वस्त्र को एक कंधे पर व्यवस्थित करते हुए और भगवान बुद्ध की ओर श्रद्धापूर्वक हाथ फैलाकर तीन बार यह उद्घोषणा की:

"योग्य और सही मायने में आत्मजागृत भगवान को नमन!"

"योग्य और सही मायने में आत्मजागृत भगवान को नमन!"
"योग्य और सही मायने में आत्मजागृत भगवान को नमन!"
"क्या मुझे कभी न कभी गुरु गौतम से मिलने का अवसर मिल सकता है! क्या कुछ बातचीत हो सकती है!"
तब ब्राह्मण जानूस्सोनी भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्होंने विनम्रतापूर्वक उनका अभिवादन किया। अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध को तीर्थयात्री पिलोतिक के साथ हुई अपनी सारी बातचीत सुनाई। जब उनकी बातचीत समाप्त हुई, तो भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, "हे ब्राह्मण, हाथी के पदचिह्न वाली उपमा इतनी विस्तृत नहीं है। यह किस प्रकार विस्तृत है, इस विषय पर ध्यान से सुनो। मैं आगे बताऊंगा।"
"जैसा आप कहें, महोदय," ब्राह्मण जानूसोनिन ने उत्तर दिया।
भगवान बुद्ध ने कहा: "मान लीजिए कि एक हाथी शिकारी किसी हाथी वन में प्रवेश करे और वहाँ उसे एक विशाल, लंबा और चौड़ा हाथी का पदचिह्न दिखाई दे। एक कुशल हाथी शिकारी तुरंत यह निष्कर्ष नहीं निकालेगा, 'कितना बड़ा नर हाथी है!' ऐसा क्यों? क्योंकि हाथी वन में बौनी मादा हाथी भी होती हैं जिनके पैर बड़े होते हैं। हो सकता है कि वह पदचिह्न उन्हीं में से किसी एक का हो।"
तो वह उसका पीछा करता है और हाथियों के जंगल में एक विशाल हाथी का पदचिह्न देखता है, जो लंबा और चौड़ा है, और ऊपर की ओर कुछ खरोंच के निशान भी हैं। एक कुशल हाथी शिकारी तुरंत इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचेगा, 'कितना बड़ा नर हाथी है!' ऐसा क्यों? क्योंकि हाथियों के जंगल में लंबी मादा हाथी भी होती हैं जिनके दाँत उभरे हुए और पैर बड़े होते हैं। हो सकता है कि यह पदचिह्न उनमें से किसी एक का हो।
तो वह उसका पीछा करता है और हाथी के जंगल में एक विशाल हाथी का पदचिह्न देखता है, जो लंबा और चौड़ा है, और उस पर कुछ खरोंच के निशान और दांतों के गहरे घाव हैं। एक कुशल हाथी शिकारी तुरंत यह निष्कर्ष नहीं निकालेगा, 'कितना बड़ा नर हाथी है!' ऐसा क्यों? क्योंकि हाथी के जंगल में लंबे कद की मादा हाथी भी होती हैं जिनके दांत और बड़े पैर होते हैं। हो सकता है कि यह पदचिह्न उनमें से किसी एक का हो।
"तो वह उसका पीछा करता है और हाथी के जंगल में एक विशाल हाथी के पदचिह्न देखता है, जो लंबा और चौड़ा है, जिस पर कुछ खरोंच के निशान और दांतों के गहरे घाव हैं और कुछ टूटी हुई शाखाएँ हैं। और वह उस नर हाथी को पेड़ के नीचे या खुले मैदान में चलते, खड़े, बैठे या लेटे हुए देखता है। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है, 'यही वह विशाल नर हाथी है।'"
"इसी प्रकार, हे ब्राह्मण, एक ऐसा मामला है जब तथागत संसार में प्रकट होते हैं, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत होते हैं। वे धर्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में प्रशंसनीय, मध्य में प्रशंसनीय और अंत में प्रशंसनीय है। वे पवित्र जीवन की घोषणा करते हैं, जो अपने विशिष्ट स्वरूपों और सार में पूर्णतः परिपूर्ण और अत्यंत शुद्ध है।"
"गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र धम्म सुनकर तथागत में दृढ़ विश्वास प्राप्त करता है और चिंतन करता है: 'गृहस्थ जीवन बंधनकारी, धूल भरा मार्ग है। गृहस्थ जीवन मुक्त आकाश के समान है। घर में रहकर पूर्णतः परिपूर्ण, पूर्णतः शुद्ध, एक पॉलिश किए हुए आवरण के समान पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। यदि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन से निकलकर संन्यासी जीवन में जाऊं तो क्या होगा?'"
"इसलिए कुछ समय बाद वह अपनी सारी संपत्ति, चाहे छोटी हो या बड़ी, त्याग देता है; अपने रिश्तेदारों के समूह, चाहे छोटा हो या बड़ा, को छोड़ देता है; अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लेता है, गेरुए वस्त्र धारण कर लेता है और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाता है।"

गुण

जब वह इस प्रकार भिक्षुओं के प्रशिक्षण और जीविका से संपन्न होकर प्रस्थान करता है, तब वह जीवन लेने का त्याग कर, जीवन लेने से परहेज करता है। वह अपना दंड और छुरी त्याग कर, सभी जीवित प्राणियों के कल्याण के लिए सचेत, दयालु और करुणामय होकर निवास करता है।
"जो कुछ दिया नहीं गया है, उसे लेने का त्याग करके, वह उसे लेने से परहेज करता है। वह केवल वही लेता है जो दिया गया है, केवल वही स्वीकार करता है जो दिया गया है, वह छिपकर नहीं, बल्कि शुद्ध आत्मा के माध्यम से जीता है। यह भी उसके सद्गुण का एक हिस्सा है।"
"अविवाह का त्याग करके, वह एकांतप्रिय, ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करता है, और उस यौन क्रिया से परहेज करता है जो ग्रामीणों का तरीका है।"
वह झूठी बातों का त्याग करके उनसे दूर रहता है। वह सत्य बोलता है, सत्य पर अडिग रहता है, दृढ़ और विश्वसनीय है, संसार को धोखा नहीं देता।
विभाजनकारी भाषणों का त्याग करके वह उनसे दूर रहता है। जो कुछ उसने यहाँ सुना है, वह वहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ के लोगों को यहाँ के लोगों से अलग न कर दे। जो कुछ उसने वहाँ सुना है, वह यहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ के लोगों को वहाँ के लोगों से अलग न कर

दे। इस प्रकार, जो लोग अलग हो गए हैं, उनके बीच सामंजस्य स्थापित करता है और जो एकजुट हैं, उन्हें और मजबूत करता है। वह सद्भाव से प्रेम करता है, सद्भाव में आनंदित होता है, सद्भाव का अनुभव करता है और सद्भाव उत्पन्न करने वाली बातें बोलता है।
"अपमानजनक भाषा का त्याग करके, वह अपशब्दों से दूर रहता है। वह ऐसे शब्द बोलता है जो कानों को मधुर लगते हैं, स्नेहपूर्ण होते हैं, हृदय को छूते हैं, विनम्र होते हैं, आकर्षक होते हैं और आम लोगों को प्रसन्न करते हैं।"
"व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वह व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। वह समय पर बोलता है, तथ्यात्मक बातें बोलता है, जो लक्ष्य, धम्म और विनय के अनुरूप होती हैं। वह अनमोल, सामयिक, तर्कसंगत, सीमित और लक्ष्य से संबंधित शब्द बोलता है।"
वह बीज और वनस्पतियों को नुकसान पहुंचाने से परहेज करता है।
वह दिन में केवल एक बार ही भोजन करता है, शाम के भोजन से परहेज करता है और दिन के गलत समय पर भोजन करने से भी परहेज करता है।
वह नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और शो देखने से परहेज करता है।
वह माला पहनने और सुगंध एवं सौंदर्य प्रसाधनों से खुद को सजाने से परहेज करता है।
वह ऊंचे और आलीशान पलंगों और कुर्सियों से परहेज करता है।
वह सोना और पैसा लेने से परहेज करता है।
वह बिना पका अनाज... कच्चा मांस... स्त्रियों और लड़कियों... पुरुष और महिला दासों... बकरियों और भेड़ों... मुर्गियों और सूअरों... हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों... खेतों और संपत्ति को स्वीकार करने से परहेज करता है।
वह संदेशों के आदान-प्रदान से... खरीद-फरोख्त से... झूठे तराजू, झूठी धातुओं और झूठे मापों से... रिश्वतखोरी, छल और धोखाधड़ी से परहेज करता है।
वह अंग-भंग करने, फांसी देने, कैद करने, खुलेआम लूटपाट करने, डकैती करने और हिंसा करने से परहेज करता है।
वह अपने शरीर के लिए वस्त्रों के एक जोड़े और भूख मिटाने के लिए भिक्षा से संतुष्ट है। जैसे एक पक्षी जहाँ कहीं भी जाता है, अपने पंखों को ही अपना एकमात्र बोझ मानकर उड़ता है; वैसे ही वह अपने शरीर के लिए वस्त्रों के एक जोड़े और भूख मिटाने के लिए भिक्षा से संतुष्ट है। वह जहाँ कहीं भी जाता है, अपने साथ केवल अपनी सबसे आवश्यक वस्तुएँ ही ले जाता है।
"सद्गुणों के इस महान समूह से संपन्न होने के कारण, वह आंतरिक रूप से निर्दोष होने के सुख के प्रति संवेदनशील होता है।"

इंद्रिय संयम

जब वह किसी आकृति को आँख से देखता है, तो वह किसी विषय या विवरण को नहीं पकड़ता, जिससे—यदि वह आँख की इंद्रिय पर बिना किसी नियंत्रण के ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। जब वह किसी ध्वनि को कान से सुनता है... जब वह किसी गंध को नाक से सूंघता है... जब वह किसी स्वाद को जीभ से चखता है... जब वह किसी स्पर्श संवेदना को शरीर से महसूस करता है... जब वह किसी विचार को बुद्धि से समझता है, तो वह किसी विषय या विवरण को नहीं पकड़ता, जिससे—यदि वह बुद्धि की इंद्रिय पर बिना किसी नियंत्रण के ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। इंद्रिय शक्तियों पर इस श्रेष्ठ संयम से संपन्न होकर, वह आंतरिक रूप से निर्दोष होने के सुख के प्रति संवेदनशील होता है।

जागरूकता और सतर्कता

आगे बढ़ते और लौटते समय वह सतर्कता से कार्य करता है। आगे देखते और पीछे हटते समय... अपने अंगों को मोड़ते और फैलाते समय... अपना बाहरी लबादा, ऊपरी वस्त्र और कटोरा ले जाते समय... खाते, पीते, चबाते और स्वाद लेते समय... पेशाब और शौच करते समय... चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते समय वह सतर्कता से कार्य करता है।

बाधाओं को त्यागना

"सद्गुणों के इस उत्कृष्ट समूह, इंद्रियों पर इस उत्कृष्ट संयम, इस उत्कृष्ट जागरूकता और सजगता से परिपूर्ण होकर, वह एकांत स्थान की तलाश करता है: एक जंगल, एक वृक्ष की छाया, एक पर्वत, एक घाटी, एक पहाड़ी गुफा, एक श्मशान भूमि, एक वन उपवन, खुला आकाश, या पुआल का ढेर। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद लौटकर, वह बैठ जाता है, अपने पैरों को क्रॉस करके बैठता है, अपने शरीर को सीधा रखता है, और अपनी जागरूकता को सर्वोपरि करता है।"
संसार के प्रति लोभ का त्याग करके, वह लोभ रहित जागरूकता के साथ निवास करता है। वह अपने मन को लोभ से शुद्ध करता है। द्वेष और क्रोध का त्याग करके, वह द्वेष रहित जागरूकता के साथ, सभी जीवों के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखते हुए निवास करता है। वह अपने मन को द्वेष और क्रोध से शुद्ध करता है। आलस्य और सुस्ती का त्याग करके, वह आलस्य और सुस्ती रहित जागरूकता के साथ, सचेत, सतर्क और प्रकाश के प्रति जागरूक रहते हैं। वह अपने मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है। बेचैनी और चिंता का त्याग करके, वह अविचलित रहते हैं, उनका मन आंतरिक रूप से शांत होता है। वह अपने मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध करते हैं। अनिश्चितता का त्याग करके, वह अनिश्चितता को पार कर चुके होते हैं, कुशल मानसिक गुणों के संबंध में उन्हें कोई उलझन नहीं होती। वह अपने मन को अनिश्चितता से शुद्ध करते हैं।

चार ध्यान

"इन पांच बाधाओं - विवेक को कमजोर करने वाली जागरूकता की अपूर्णताओं - का त्याग करने के बाद, इंद्रिय सुखों से पूर्णतः विमुख होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विमुख होकर, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: विरक्ति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है।"

"हे ब्राह्मण, इसे तथागत का पदचिह्न, तथागत का खरोंच चिह्न, तथागत के दांत का निशान कहा जाता है, परन्तु श्रेष्ठ जनों का शिष्य अभी तक इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा कि 'भगवान सही मायने में आत्मजागृत हैं; भगवान ने धम्म का भली-भांति उपदेश दिया है; भगवान के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'

फिर, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने के साथ, वह दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त जागरूकता की एकाग्रता - आंतरिक आश्वासन।

"इसे भी तथागत के पदचिह्न, तथागत की खरोंच, तथागत के दांत का निशान कहा जाता है, लेकिन श्रेष्ठ जनों का शिष्य अभी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा कि 'भगवान सही मायने में आत्म-जागृत हैं; भगवान ने धम्म का सही उपदेश दिया है; भगवान के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'

फिर, जब परमानंद शांत हो जाता है, तो वह समभाव में रहता है, सचेत और जागरूक रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है, जिसके बारे में श्रेष्ठजनों ने कहा है, 'समभाव में और सचेत रहते हुए, वह सुखमय अवस्था में रहता है।'

"इसे भी तथागत के पदचिह्न, तथागत की खरोंच, तथागत के दांत का निशान कहा जाता है, लेकिन श्रेष्ठ जनों का शिष्य अभी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा कि 'भगवान सही मायने में आत्म-जागृत हैं; भगवान ने धम्म का सही उपदेश दिया है; भगवान के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'

फिर, सुख और दुख के त्याग के साथ - जैसे पहले उल्लास और दुःख के गायब होने के साथ - वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख।

"इसे भी तथागत के पदचिह्न, तथागत की खरोंच, तथागत के दांत का निशान कहा जाता है, लेकिन श्रेष्ठ जनों का शिष्य अभी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा कि 'भगवान सही मायने में आत्म-जागृत हैं; भगवान ने धम्म का सही उपदेश दिया है; भगवान के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'

तीन ज्ञान

"इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अपने पिछले जन्मों की स्मृति के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित होता है।3 वह अपने अनेक पिछले जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, एक हजार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग, [स्मरण करते हुए,] 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत था। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत था। विदा होकर..." उस अवस्था से मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करता है।

"इसे भी तथागत के पदचिह्न, तथागत की खरोंच, तथागत के दांत का निशान कहा जाता है, लेकिन श्रेष्ठ जनों का शिष्य अभी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा कि 'भगवान सही मायने में आत्म-जागृत हैं; भगवान ने धम्म का सही उपदेश दिया है; भगवान के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर उन्मुख होता है। वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है और उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - मृत्यु के बाद शरीर के टूटने से अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निचले लोकों, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म करने वाले — शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे स्थानों, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होते हैं। इस प्रकार — दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है — वह प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते हुए देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उन्हें निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली के रूप में पहचानता है।

"इसे भी तथागत के पदचिह्न, तथागत की खरोंच, तथागत के दांत का निशान कहा जाता है, लेकिन श्रेष्ठ जनों का शिष्य अभी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा कि 'भगवान सही मायने में आत्म-जागृत हैं; भगवान ने धम्म का सही उपदेश दिया है; भगवान के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से भिक्षु अपने मन को मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह यह समझ पाता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये मानसिक हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।'

"इसे भी तथागत के पदचिह्न, तथागत की खरोंच, तथागत के दांत का निशान कहा जाता है। श्रेष्ठ जनों का शिष्य अभी तक किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा है, लेकिन वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है, 'भगवान बुद्ध सही मायने में आत्म-जागृत हैं; भगवान बुद्ध ने धम्म का भली-भांति उपदेश दिया है; भगवान बुद्ध के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'

इस प्रकार ज्ञान और दृष्टि से उसका हृदय इंद्रिय सुख, कर्म और अज्ञान के मंथन से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, 'मुक्त हो गया।' वह यह जान लेता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'

इसे भी तथागत के पदचिह्न, तथागत की खरोंच, तथागत के दांत का निशान कहा जाता है, और यहीं पर श्रेष्ठजनों के एक शिष्य ने यह निष्कर्ष निकाला है: 'भगवान सही मायने में आत्म-जागृत हैं; भगवान ने धम्म का भली-भांति उपदेश दिया है; भगवान के शिष्यों के संघ ने सही ढंग से अभ्यास किया है।'

यह सुनकर ब्राह्मण जानूस्सोनी ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान! हे महान! जिस प्रकार कोई उलटी हुई वस्तु को सीधा कर दे, छिपी हुई वस्तु को प्रकट कर दे, भटके हुए को राह दिखा दे, या अंधकार में दीपक जलाकर आँखों वालों को आकृतियाँ दिखा दे, उसी प्रकार भगवान बुद्ध ने अनेक तर्कों के द्वारा धम्म को स्पष्ट किया है। मैं भगवान बुद्ध की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षुओं के समुदाय में आता हूँ। भगवान बुद्ध मुझे आज से जीवन भर के लिए अपने गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.8महाहत्थिपदोपमा सुत्त(28)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु

1सेटिंग
2पृथ्वी का गुणधर्म
3तरल गुण
4आग संपत्ति
5पवन संपत्ति
6अंतरिक्ष संपत्ति
7आश्रित सह-उत्पत्ति

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "मित्र भिक्षुओं!"

"जी हां, मित्र," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

आदरणीय सारिपुत्त ने कहा: "मित्रों, जिस प्रकार सभी पैरों वाले जानवरों के पदचिह्न हाथी के पदचिह्न में समाहित होते हैं और आकार के मामले में हाथी का पदचिह्न उनमें सबसे श्रेष्ठ माना जाता है; उसी प्रकार, सभी कुशल गुण चार आर्य सत्यों के अंतर्गत एकत्रित होते हैं। वे कौन से चार हैं? तनाव के आर्य सत्य के अंतर्गत, तनाव की उत्पत्ति के आर्य सत्य के अंतर्गत, तनाव के निवारण के आर्य सत्य के अंतर्गत और तनाव निवारण की ओर ले जाने वाले अभ्यास के आर्य सत्य के अंतर्गत।"

और तनाव का महान सत्य क्या है? जन्म तनावपूर्ण है, वृद्धावस्था तनावपूर्ण है, मृत्यु तनावपूर्ण है; शोक, विलाप, पीड़ा, व्याकुलता और निराशा तनावपूर्ण हैं; अपनों से संबंध तनावपूर्ण है, प्रियजनों से वियोग तनावपूर्ण है, मनचाही चीज न मिलना तनावपूर्ण है। संक्षेप में,

पाँचों आसक्ति तनावपूर्ण हैं। और वे पाँच कौन सी हैं? रूप आसक्ति, भावना आसक्ति, बोध आसक्ति, कल्पना आसक्ति और चेतना आसक्ति।
और आसक्ति से ग्रस्त रूप क्या है? चार महान सत्ताएँ और उनसे उत्पन्न रूप। और वे चार महान सत्ताएँ क्या हैं? पृथ्वी, द्रव, अग्नि और वायु।

पृथ्वी का गुणधर्म

पृथ्वी गुण क्या है? पृथ्वी गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक पृथ्वी गुण कौन सा है? जो कुछ भी आंतरिक रूप से, अपने भीतर कठोर, ठोस और [लालसा से पोषित] है: सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, फुफ्फुस, तिल्ली, फेफड़े, बड़ी आंत, छोटी आंत, पेट की सामग्री, मल, या जो कुछ भी आंतरिक रूप से, अपने भीतर कठोर, ठोस और पोषित है: इसे आंतरिक पृथ्वी गुण कहते हैं। अब आंतरिक पृथ्वी गुण और बाह्य पृथ्वी गुण दोनों ही केवल पृथ्वी गुण हैं। और इसे सही विवेक से यथार्थ रूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूं, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक से यथार्थ रूप में देखता है, तो वह पृथ्वी गुण से विरक्त हो जाता है और मन को पृथ्वी गुण के प्रति उदासीन बना लेता है।
"अब एक समय आता है, मित्रों, जब बाह्य द्रव गुण उत्तेजित हो जाता है, और उस समय बाह्य पृथ्वी गुण लुप्त हो जाता है। अतः जब बाह्य पृथ्वी गुण में भी—जो इतना विशाल है—अस्थिरता, नश्वरता, क्षय की प्रवृत्ति, परिवर्तनशीलता दिखाई देगी, तब इस क्षणभंगुर शरीर में, जो आसक्ति से पोषित है, 'मैं' या 'मेरा' या 'मैं क्या हूँ' क्या है? यहाँ तो केवल 'नहीं' ही है।"
"अब यदि अन्य लोग किसी भिक्षु (जिसने यह ज्ञान प्राप्त कर लिया है) का अपमान करें, उसकी निंदा करें, उसे क्रोधित करें और उसे परेशान करें, तो वह समझ जाता है कि 'कानों के संपर्क से उत्पन्न एक पीड़ादायक अनुभूति मेरे भीतर उत्पन्न हुई है। और यह आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? संपर्क पर आश्रित।' और वह देखता है कि संपर्क अस्थिर है, अनुभूति अस्थिर है, बोध अस्थिर है, चेतना अस्थिर है। उसका मन, पृथ्वी के गुण को अपना आधार मानकर, ऊपर उठता है, आत्मविश्वास से भर जाता है, स्थिर हो जाता है और मुक्त हो जाता है।"
और यदि दूसरे लोग भिक्षु पर अनुचित, अप्रिय और घृणित तरीकों से हमला करें—मुक्कों से, पत्थरों से, लाठियों से या चाकुओं से—तो भिक्षु यह समझ लें कि 'यह शरीर ऐसा है कि इस पर मुक्कों से, पत्थरों से, लाठियों से और चाकुओं से प्रहार होता है। अब भगवान बुद्ध ने आरी के दृष्टांत में उपदेश देते हुए कहा है, "भिक्षुओं, यदि डाकू तुम्हें दो मूठ वाली आरी से बेरहमी से, अंग-अंग काटकर अलग कर दें, तो भी तुममें से जो कोई इससे क्रोधित होगा, वह मेरी आज्ञा का पालन नहीं कर रहा होगा।" इसलिए मेरी दृढ़ता जागृत और अथक होगी, मेरा ध्यान स्थिर और शांत होगा, मेरा शरीर शांत और उत्तेजित नहीं होगा, मेरा मन केंद्रित और एकाग्र होगा। अब इस शरीर पर मुक्कों से प्रहार हो, पत्थरों से, लाठियों से, चाकुओं से प्रहार हो, क्योंकि बुद्ध की आज्ञा का पालन इसी प्रकार किया जाता है।'
और यदि भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते समय, निपुणता पर आधारित समभाव स्थापित नहीं कर पाता, तो वह इस बात से आशंकित हो जाता है और उसके मन में एक तात्कालिकता का भाव उत्पन्न होता है: 'यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं; यह मेरे लिए अनुचित है, लाभकारी नहीं, कि जब मैं इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करता हूँ, तो निपुणता पर आधारित समभाव मेरे भीतर स्थापित नहीं होता।' जैसे एक बहू अपने ससुर को देखकर चिंतित हो जाती है और उन्हें प्रसन्न करने की हड़बड़ी में जुट जाती है, उसी प्रकार, यदि कोई भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते हुए कुशल समभाव स्थापित न कर पाए, तो वह चिंतित हो जाता है और यह हड़बड़ी में कहता है: 'यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं; यह मेरे लिए अनुचित है, लाभकारी नहीं, कि जब मैं इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करता हूँ, तो मेरे भीतर कुशल समभाव स्थापित न हो।'
लेकिन यदि भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते हुए, कुशलता पर आधारित समभाव स्थापित कर लेता है, तो वह इससे संतुष्ट होता है। और मित्रों, इस हद तक भी भिक्षु ने बहुत कुछ हासिल कर लिया है।

तरल गुण

द्रव गुण क्या है? द्रव गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक द्रव गुण क्या है? जो कुछ भी आंतरिक रूप से स्वयं से संबंधित है, द्रव, जलमय और स्थिर है: पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, त्वचा का तेल, लार, बलगम, जोड़ों का द्रव, मूत्र, या जो कुछ भी आंतरिक रूप से स्वयं के भीतर द्रव, जलमय और स्थिर है: इसे आंतरिक द्रव गुण कहते हैं। अब आंतरिक द्रव गुण और बाह्य द्रव गुण दोनों ही वास्तव में द्रव गुण हैं। और इसे सही विवेक से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे यह वास्तव में मौजूद है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक से उसी रूप में देखता है जैसे यह वास्तव में मौजूद है, तो वह द्रव गुण से विरक्त हो जाता है और मन को द्रव गुण के प्रति उदासीन बना लेता है।
"अब एक समय आता है, मित्रों, जब बाहरी तरल पदार्थ का प्रकोप होता है और वह गाँव, कस्बा, शहर, ज़िला और देश को बहा ले जाता है। एक समय आता है जब विशाल सागर का पानी सौ मील, दो सौ... तीन सौ... चार सौ... पाँच सौ... छह सौ... सात सौ मील नीचे चला जाता है। एक समय आता है जब विशाल सागर का पानी सात ताड़ के पेड़ों जितना गहरा, छह... पाँच... चार... तीन... दो ताड़ के पेड़ों जितना गहरा, एक ताड़ के पेड़ जितना गहरा हो जाता है। एक समय आता है जब विशाल सागर का पानी सात फ़ैदम जितना गहरा, छह...

पाँच... चार... तीन... दो फ़ैदम जितना गहरा, एक फ़ैदम जितना गहरा हो जाता है। एक समय आता है जब विशाल सागर का पानी आधा फ़ैदम, कमर तक, घुटने तक, टखने तक गहरा हो जाता है। एक समय आता है जब विशाल सागर का पानी उंगली के पहले जोड़ की गहराई तक भी नहीं रह जाता है।"

"तो जब बाह्य तरल स्वरूप में भी—जो इतना विशाल है— अस्थिरता, नश्वरता, क्षय की प्रवृत्ति, परिवर्तनशीलता स्पष्ट रूप से दिखाई देगी, तब इस क्षणभंगुर शरीर में, जो आसक्ति से पोषित है, 'मैं' या 'मेरा' या 'मैं क्या हूँ' क्या है? यहाँ तो केवल 'नहीं' ही है।"

"अब यदि अन्य लोग किसी भिक्षु (जिसने यह ज्ञान प्राप्त कर लिया है) का अपमान करें, उसकी निंदा करें, उसे क्रोधित करें और उसे परेशान करें, तो वह समझ जाता है कि 'कानों के संपर्क से उत्पन्न एक पीड़ादायक अनुभूति मेरे भीतर उत्पन्न हुई है। और यह आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? संपर्क पर आश्रित।' और वह देखता है कि संपर्क अस्थिर है, अनुभूति अस्थिर है, बोध अस्थिर है, चेतना अस्थिर है। उसका मन, इस (तरल) गुण को अपना आधार मानकर, ऊपर उठता है, आत्मविश्वास से भर जाता है, स्थिर हो जाता है और मुक्त हो जाता है।"

और यदि दूसरे लोग भिक्षु पर अनुचित, अप्रिय और घृणित तरीकों से हमला करें—मुक्कों से, पत्थरों से, लाठियों से या चाकुओं से—तो भिक्षु यह समझ लें कि 'यह शरीर ऐसा है कि इस पर मुक्कों से, पत्थरों से, लाठियों से और चाकुओं से प्रहार होता है। अब भगवान बुद्ध ने आरी के दृष्टांत में उपदेश देते हुए कहा है, "भिक्षुओं, यदि डाकू तुम्हें दो मूठ वाली आरी से बेरहमी से, अंग-अंग काटकर अलग कर दें, तो भी तुममें से जो कोई इससे क्रोधित होगा, वह मेरी आज्ञा का पालन नहीं कर रहा होगा।" इसलिए मेरी दृढ़ता जागृत और अथक होगी, मेरा ध्यान स्थिर और शांत होगा, मेरा शरीर शांत और उत्तेजित नहीं होगा, मेरा मन केंद्रित और एकाग्र होगा। अब इस शरीर पर मुक्कों से प्रहार हो, पत्थरों से, लाठियों से, चाकुओं से प्रहार हो, क्योंकि बुद्ध की आज्ञा का पालन इसी प्रकार किया जाता है।'

और यदि भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते समय, निपुणता पर आधारित समभाव स्थापित नहीं कर पाता, तो वह इस बात से आशंकित हो जाता है और उसके मन में एक तात्कालिकता का भाव उत्पन्न होता है: 'यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं; यह मेरे लिए अनुचित है, लाभकारी नहीं, कि जब मैं इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करता हूँ, तो निपुणता पर आधारित समभाव मेरे भीतर स्थापित नहीं होता।' जैसे एक बहू अपने ससुर को देखकर चिंतित हो जाती है और उन्हें प्रसन्न करने की हड़बड़ी में जुट जाती है, उसी प्रकार, यदि कोई भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते हुए कुशल समभाव स्थापित न कर पाए, तो वह चिंतित हो जाता है और यह हड़बड़ी में कहता है: 'यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं; यह मेरे लिए अनुचित है, लाभकारी नहीं, कि जब मैं इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करता हूँ, तो मेरे भीतर कुशल समभाव स्थापित न हो।'

लेकिन यदि भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते हुए, कुशलता पर आधारित समभाव स्थापित कर लेता है, तो वह इससे संतुष्ट होता है। और मित्रों, इस हद तक भी भिक्षु ने बहुत कुछ हासिल कर लिया है।

आग संपत्ति

और अग्नि गुण क्या है? अग्नि गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक अग्नि गुण क्या है? जो कुछ भी आंतरिक है, जो स्वयं से संबंधित है, अग्निमय, प्रज्वलित और निरंतर है: जिससे शरीर को गर्मी मिलती है, वृद्धावस्था होती है और बुखार से क्षीण होता है; और जिससे खाया, पिया, चबाया और स्वाद लिया गया भोजन ठीक से पचता है, या जो कुछ भी आंतरिक है, जो स्वयं के भीतर है, अग्निमय, प्रज्वलित और निरंतर है: इसे आंतरिक अग्नि गुण कहते हैं। अब आंतरिक अग्नि गुण और बाह्य अग्नि गुण दोनों ही केवल अग्नि गुण हैं। और इसे सही विवेक से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे यह वास्तव में मौजूद है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक से उसी रूप में देखता है जैसे यह वास्तव में मौजूद है, तो वह अग्नि गुण से विरक्त हो जाता है और मन को अग्नि गुण के प्रति उदासीन बना लेता है।

"अब एक समय ऐसा आता है, मित्रों, जब बाहरी आग भड़क उठती है और गाँव, कस्बे, शहर, ज़िले और देश को भस्म कर देती है; और फिर, किसी हरे-भरे ज़िले के किनारे, सड़क के किनारे, पथरीले ज़िले के किनारे, पानी के किनारे या किसी हरे-भरे, सिंचित क्षेत्र के किनारे पहुँचकर, पोषण की कमी से बुझ जाती है। एक समय ऐसा आता है जब लोग पंख की हड्डी और नस के टुकड़ों का उपयोग करके आग जलाने का प्रयास करते हैं।"

"तो जब बाह्य अग्नि के इतने विशाल स्वरूप में भी अस्थिरता, विनाशशीलता, क्षय की प्रवृत्ति और परिवर्तनशीलता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, तो आसक्ति से पोषित इस क्षणभंगुर शरीर में 'मैं', 'मेरा' या 'मैं क्या हूँ' क्या है? यहाँ तो केवल 'नहीं' ही है।"

"अब यदि अन्य लोग किसी भिक्षु (जिसने यह ज्ञान प्राप्त कर लिया है) का अपमान करें, उसकी निंदा करें, उसे क्रोधित करें और उसे परेशान करें, तो वह समझ जाता है कि 'कानों के संपर्क से उत्पन्न एक पीड़ादायक अनुभूति मेरे भीतर उत्पन्न हुई है। और यह आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? संपर्क पर आश्रित।' और वह देखता है कि संपर्क अस्थिर है, अनुभूति अस्थिर है, बोध अस्थिर है, चेतना अस्थिर है। उसका मन, अग्नि गुण को अपना आधार मानकर, ऊपर उठता है, आत्मविश्वास से भर जाता है, स्थिर हो जाता है और मुक्त हो जाता है।"

और यदि दूसरे लोग भिक्षु पर अनुचित, अप्रिय और घृणित तरीकों से हमला करें—मुक्कों से, पत्थरों से, लाठियों से या चाकुओं से—तो भिक्षु यह समझ लें कि ‘यह शरीर ऐसा है कि इस पर मुक्कों से, पत्थरों से, लाठियों से और चाकुओं से प्रहार होता है। अब भगवान बुद्ध ने आरी के दृष्टांत में उपदेश देते हुए कहा है, “भिक्षुओं, यदि डाकू तुम्हें दो मूठ वाली आरी से बेरहमी से, अंग-अंग काटकर अलग कर दें, तो भी तुममें से जो कोई इससे क्रोधित होगा, वह मेरी आज्ञा का पालन नहीं कर रहा होगा।” इसलिए मेरी दृढ़ता जागृत और अथक होगी, मेरा ध्यान स्थिर और शांत होगा, मेरा शरीर शांत और उत्तेजित नहीं होगा, मेरा मन केंद्रित और एकाग्र होगा। अब इस शरीर पर मुक्कों से प्रहार हो, पत्थरों से, लाठियों से, चाकुओं से प्रहार हो, क्योंकि बुद्ध की आज्ञा का पालन इसी प्रकार किया जाता है।’

और यदि भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते समय, निपुणता पर आधारित समभाव स्थापित नहीं कर पाता, तो वह इस बात से आशंकित हो जाता है और उसके मन में एक तात्कालिकता का भाव उत्पन्न होता है: 'यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं; यह मेरे लिए अनुचित है, लाभकारी नहीं, कि जब मैं इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करता हूँ, तो निपुणता पर आधारित समभाव मेरे भीतर स्थापित नहीं होता।' जैसे एक बहू अपने ससुर को देखकर चिंतित हो जाती है और उन्हें प्रसन्न करने की हड़बड़ी में जुट जाती है, उसी प्रकार, यदि कोई भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते हुए कुशल समभाव स्थापित न कर पाए, तो वह चिंतित हो जाता है और यह हड़बड़ी में कहता है: 'यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं; यह मेरे लिए अनुचित है, लाभकारी नहीं, कि जब मैं इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करता हूँ, तो मेरे भीतर कुशल समभाव स्थापित न हो।'

लेकिन यदि भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते हुए, कुशलता पर आधारित समभाव स्थापित कर लेता है, तो वह इससे संतुष्ट होता है। और मित्रों, इस हद तक भी भिक्षु ने बहुत कुछ हासिल कर लिया है।

पवन संपत्ति

और वायु गुण क्या है? वायु गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक वायु गुण क्या है? जो कुछ भी आंतरिक है, स्वयं से संबंधित है, वायु है, पवनमय है और निरंतर है: ऊपर की ओर जाने वाली वायु, नीचे की ओर जाने वाली वायु, पेट में वायु, आंतों में वायु, शरीर में प्रवाहित होने वाली वायु, श्वास-प्रश्वास, या जो कुछ भी आंतरिक है, स्वयं के भीतर, वायु है, पवनमय है और निरंतर है: इसे आंतरिक वायु गुण कहते हैं। अब आंतरिक वायु गुण और बाह्य वायु गुण दोनों ही केवल वायु गुण हैं। और इसे सही विवेक के साथ यथावत देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक के साथ यथावत देखता है, तो वह वायु गुण से विरक्त हो जाता है और मन को वायु गुण के प्रति उदासीन बना लेता है।

"अब एक समय ऐसा आता है, मित्रों, जब बाहरी हवा का प्रकोप होता है और वह गाँव, कस्बे, शहर, ज़िले और देश को उड़ा ले जाती है। एक समय ऐसा आता है, जब गर्मी के मौसम के आखिरी महीने में, लोग पंखे या धौंकनी से हवा लाने की कोशिश करते हैं, और छप्पर की छत के किनारे की घास भी नहीं हिलती।"

"तो जब बाह्य वायु के विशाल स्वरूप में भी अस्थिरता, विनाशशीलता, क्षय की प्रवृत्ति और परिवर्तनशीलता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, तो आसक्ति से पोषित इस क्षणभंगुर शरीर में 'मैं', 'मेरा' या 'मैं क्या हूँ' क्या है? यहाँ तो केवल 'नहीं' ही है।"

"अब यदि अन्य लोग किसी भिक्षु (जिसने यह ज्ञान प्राप्त कर लिया है) का अपमान करें, उसकी निंदा करें, उसे क्रोधित करें और उसे परेशान करें, तो वह समझ जाता है कि 'कानों के संपर्क से उत्पन्न एक पीड़ादायक अनुभूति मेरे भीतर उत्पन्न हुई है। और यह आश्रित है, स्वतंत्र नहीं। किस पर आश्रित? संपर्क पर आश्रित।' और वह देखता है कि संपर्क अस्थिर है, अनुभूति अस्थिर है, बोध अस्थिर है, चेतना अस्थिर है। उसका मन, वायु के गुण को अपना आधार मानकर, ऊपर उठता है, आत्मविश्वास से भर जाता है, स्थिर हो जाता है और मुक्त हो जाता है।"

और यदि दूसरे लोग भिक्षु पर अनुचित, अप्रिय और घृणित तरीकों से हमला करें—मुक्कों से, पत्थरों से, लाठियों से या चाकुओं से—तो भिक्षु यह समझ लें कि ‘यह शरीर ऐसा है कि इस पर मुक्कों से, पत्थरों से, लाठियों से और चाकुओं से प्रहार होता है। अब भगवान बुद्ध ने आरी के दृष्टांत में उपदेश देते हुए कहा है, “भिक्षुओं, यदि डाकू तुम्हें दो मूठ वाली आरी से बेरहमी से, अंग-अंग काटकर अलग कर दें, तो भी तुममें से जो कोई इससे क्रोधित होगा, वह मेरी आज्ञा का पालन नहीं कर रहा होगा।” इसलिए मेरी दृढ़ता जागृत और अथक होगी, मेरा ध्यान स्थिर और शांत होगा, मेरा शरीर शांत और उत्तेजित नहीं होगा, मेरा मन केंद्रित और एकाग्र होगा। अब इस शरीर पर मुक्कों से प्रहार हो, पत्थरों से, लाठियों से, चाकुओं से प्रहार हो, क्योंकि बुद्ध की आज्ञा का पालन इसी प्रकार किया जाता है।’

और यदि भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते समय, निपुणता पर आधारित समभाव स्थापित नहीं कर पाता, तो वह इस बात से आशंकित हो जाता है और उसके मन में एक तात्कालिकता का भाव उत्पन्न होता है: 'यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं; यह मेरे लिए अनुचित है, लाभकारी नहीं, कि जब मैं इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करता हूँ, तो निपुणता पर आधारित समभाव मेरे भीतर स्थापित नहीं होता।' जैसे एक बहू अपने ससुर को देखकर चिंतित हो जाती है और उन्हें प्रसन्न करने की हड़बड़ी में जुट जाती है, उसी प्रकार, यदि कोई भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते हुए कुशल समभाव स्थापित न कर पाए, तो वह चिंतित हो जाता है और यह हड़बड़ी में कहता है: 'यह मेरे लिए हानि है, लाभ नहीं; यह मेरे लिए अनुचित है, लाभकारी नहीं, कि जब मैं इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करता हूँ, तो मेरे भीतर कुशल समभाव स्थापित न हो।'

लेकिन यदि भिक्षु इस प्रकार बुद्ध, धम्म और संघ का स्मरण करते हुए, कुशलता पर आधारित समभाव स्थापित कर लेता है, तो वह इससे संतुष्ट होता है। और मित्रों, इस हद तक भी भिक्षु ने बहुत कुछ हासिल कर लिया है।

अंतरिक्ष संपत्ति

"मित्रों, जिस प्रकार लकड़ी, लताओं, घास और मिट्टी पर निर्भर होकर स्थान को घेरकर 'घर' कहा जाता है, उसी प्रकार जब हड्डियों, टेंडनों, मांसपेशियों और त्वचा पर निर्भर होकर स्थान को घेरकर 'रूप' कहा जाता है।"

आश्रित सह-उत्पत्ति

"यदि आंतरिक दृष्टि अक्षुण्ण है, परन्तु बाह्य रूप दृष्टि के दायरे में नहीं आते, और न ही कोई संगति है, तो संगति प्रकार की चेतना प्रकट नहीं होती। यदि आंतरिक दृष्टि अक्षुण्ण है और बाह्य रूप दृष्टि के दायरे में आते हैं, परन्तु कोई संगति नहीं है, तो संगति प्रकार की चेतना प्रकट नहीं होती। परन्तु जब आंतरिक दृष्टि अक्षुण्ण है और बाह्य रूप दृष्टि के दायरे में आते हैं, और संगति है, तो संगति प्रकार की चेतना प्रकट होती है।"

"इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसका रूप आसक्ति-समूह के अंतर्गत एकत्रित होता है। इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसकी भावना आसक्ति-समूह के अंतर्गत एकत्रित होती है। इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसकी बोधिता आसक्ति-समूह के अंतर्गत एकत्रित होती है। इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसकी रचनाएँ रचना-समूह के अंतर्गत एकत्रित होती हैं। इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसकी चेतना आसक्ति-समूह के अंतर्गत एकत्रित होती है। व्यक्ति यह समझता है, 'ऐसा प्रतीत होता है कि इसी प्रकार इन पाँच आसक्ति-समूहों का एकत्रीकरण, मिलन और अभिसरण होता है।' अब, भगवान ने कहा है, "जो कोई भी आश्रित सह-उत्पत्ति को देखता है, वह धम्म को देखता है; जो कोई धम्म को देखता है, वह आश्रित सह-उत्पत्ति को देखता है। और ये पाँच आसक्ति समूह आश्रित सह-उत्पत्ति से उत्पन्न हुए हैं। इन पाँच आसक्ति समूहों के प्रति कोई भी इच्छा, आलिंगन, लगाव और पकड़ तनाव का कारण है। इन पाँच आसक्ति समूहों के प्रति इच्छा और जुनून को वश में करना, इच्छा और जुनून का त्याग करना तनाव का निवारण है। और मित्रों, इस हद तक भी भिक्षु ने महान कार्य संपन्न किया है।

"अब अगर कान के अंदरूनी हिस्से सही सलामत हैं..."

"अब अगर नाक आंतरिक रूप से सही सलामत है..."

"अब अगर जीभ आंतरिक रूप से अक्षुण्ण है..."

"अब अगर शरीर आंतरिक रूप से अक्षुण्ण है..."

"यदि आंतरिक रूप से बुद्धि अक्षुण्ण हो, परन्तु बाह्य रूप से विचार अभिगम में न आएं, और न ही उनसे संबंधित कोई जुड़ाव हो, तो उस प्रकार की चेतना प्रकट नहीं होती। यदि आंतरिक रूप से बुद्धि अक्षुण्ण हो और बाह्य रूप से विचार अभिगम में आएं, परन्तु उनसे संबंधित कोई जुड़ाव न हो, तो उस प्रकार की चेतना प्रकट नहीं होती। परन्तु जब आंतरिक रूप से बुद्धि अक्षुण्ण हो और बाह्य रूप से विचार अभिगम में आएं, और उनसे संबंधित जुड़ाव हो, तो उस प्रकार की चेतना प्रकट होती है।"

"इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसका रूप आसक्ति-समूह के अंतर्गत एकत्रित होता है। इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसकी भावना आसक्ति-समूह के अंतर्गत एकत्रित होती है। इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसकी बोधिता आसक्ति-समूह के अंतर्गत एकत्रित होती है। इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसकी रचनाएँ रचना-समूह के अंतर्गत एकत्रित होती हैं। इस प्रकार जो कुछ भी अस्तित्व में आया है, उसकी चेतना आसक्ति-समूह के अंतर्गत एकत्रित होती है। व्यक्ति यह समझता है, 'ऐसा प्रतीत होता है कि इसी प्रकार इन पाँच आसक्ति-समूहों का एकत्रीकरण, मिलन और अभिसरण होता है।' अब, भगवान ने कहा है, "जो कोई भी आश्रित सह-उत्पत्ति को देखता है, वह धम्म को देखता है; जो भी धम्म को देखता है, वह आश्रित सह-उत्पत्ति को देखता है। और ये पाँच आसक्ति समूह आश्रित सह-उत्पत्ति से उत्पन्न हुए हैं। इन पाँच आसक्ति समूहों के प्रति कोई भी इच्छा, आलिंगन, लगाव और पकड़ तनाव का कारण है। इन पाँच आसक्ति समूहों के प्रति इच्छा और जुनून को वश में करना, इच्छा और जुनून का त्याग करना तनाव का निवारण है। और मित्रों, इस हद तक भी भिक्षु ने महान कार्य संपन्न किया है।

यही बात पूज्य सारिपुत्त ने कही थी। भिक्षुओं को पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.9महासरोपामा सुत्त(29)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा ही सुना है।

एक समय भगवान राजगृह में गिद्ध शिखर पर निवास करते थे। देवदत्त द्वारा तपस्वियों (समना) के समुदाय को छोड़ने के कुछ ही समय बाद, भगवान ने देवदत्त के कारण भिक्षुओं को संबोधित किया।

"यहाँ, भिक्षुओं, एक कुल के पुत्र, जो जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित था, आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्यागकर तपस्वी (समना) बन जाता है और सोचता है, 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, चिंता और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ, जबकि केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता (दुक्खा) के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं।' इस प्रकार प्रस्थान करके, वह लाभ, मान-सम्मान और प्रसिद्धि के साथ पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर, उसकी आकांक्षाएँ इसी लाभ, मान-सम्मान और प्रसिद्धि से पूर्ण हो जाती हैं। वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों को नीचा दिखाता है। वह कहता है, 'मुझे आतिथ्य प्राप्त हुआ है, ये अन्य भिक्षु शक्तिहीन और बुद्धिहीन हैं।'" वह उस लाभ, मान-सम्मान और प्रसिद्धि के कारण मदहोश और लापरवाह हो जाता है और दुःख में डूबा रहता है। जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की तलाश में भटकता है और लकड़ी से लदे पेड़ के पास पहुँचकर उसकी छाल, टहनियों और पत्तियों को अनदेखा कर देता है और उन्हें यह सोचकर तोड़कर ले जाता है, 'यही तो लकड़ी है।'

"एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहेगा, 'यह भले आदमी पेड़ के भीतरी भाग, छाल, टहनियों, शाखाओं और पत्तियों को नहीं पहचानता। इसलिए, भीतरी भाग की तलाश में भटकता हुआ यह आदमी, भीतरी भाग से युक्त एक खड़े पेड़ के पास आकर, भीतरी भाग, छाल और शाखाओं को अनदेखा कर रहा है। उसने शाखाओं और पत्तियों को काटकर यह सोचकर ले गया है कि वही भीतरी भाग है। भीतरी भाग के साथ उसे जो भी काम करना है, वह उसे नहीं मिलेगा।'"

भिक्षुओं, इसी प्रकार, एक कुल का पुत्र, जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित होकर, आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्याग देता है। वह यह सोचते हुए तपस्वी (समना) बन जाता है, "मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ" और कहता है, "केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता (दुक्खा) के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं।" वह लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति होने पर, वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों को यह कहते हुए निंदा करता है, "मैंने आतिथ्य सत्कार प्राप्त किया है। ये अन्य भिक्षु शक्तिहीन और बुद्धिहीन हैं।" इस प्रकार वह उस लाभ, मान-सम्मान और यश के कारण मदहोश और लापरवाह हो जाता है और अप्रियता (दुक्खा) में जीवन व्यतीत करता है। भिक्षुओं, इस पर कहा जाता है, "भिक्षु ने टहनियों और पत्तों के बीच पवित्र जीवन का अंत कर लिया है।"

"यहाँ, भिक्षुओं, एक कुल के पुत्र, जो जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित है, आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्यागकर तपस्वी (समना) बन जाता है और सोचता है, 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ।' वह कहता है, 'केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं।' इस प्रकार जन्म लेकर वह लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर भी उसकी आकांक्षाएँ उस लाभ, मान-सम्मान और यश से पूर्ण नहीं होतीं। वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह उस लाभ, मान-सम्मान और यश के कारण न तो मदहोश होता है और न ही लापरवाह होता है, और वह सद्गुणों का पालन करने का संकल्प लेता है। सद्गुणों का पालन करने से संतुष्ट होकर, और इससे उसकी आकांक्षाएँ पूर्ण होने पर, वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। वह कहता है, 'मेरे सद्गुण शुद्ध हैं, ये दूसरे दुष्ट हैं।'" वह मदमस्त और लापरवाह हो जाता है और अप्रियता में लिप्त रहता है। जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की तलाश में भटकता है, और जब उसे लकड़ी से युक्त कोई खड़ा पेड़ मिलता है, तो वह लकड़ी और उपशाखा को अनदेखा कर देता है। वह शाखाओं को काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि वही लकड़ी है।

"एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहेगा, 'यह भले आदमी लकड़ी के भीतरी भाग, छाल, टहनियों, डालियों या पत्तियों को नहीं पहचानता। इसलिए यह आदमी, जिसे लकड़ी की आवश्यकता है, उसकी खोज में भटकता हुआ, लकड़ी से लदे एक खड़े पेड़ के पास आता है; लेकिन उसने भीतरी भाग, छाल और छाल को अनदेखा कर दिया है। वह डालियों को काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि वे भीतरी भाग हैं। उसे भीतरी भाग से जो भी काम करना है, वह उसे नहीं मिलेगा।"

भिक्षुओं, इसी प्रकार, एक कुल के पुत्र, जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित होकर, आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्याग देते हैं। वे तपस्वी (समना) बनकर यह सोचते हैं, 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ,' और कहते हैं, 'कुछ ही लोग इस अप्रियता के पूर्ण अंत का ज्ञान कराते हैं।' इस प्रकार त्याग करने के बाद उनका पुनर्जन्म लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ होता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर वे न तो अपनी प्रशंसा करते हैं और न ही दूसरों की निंदा करते हैं। वे सद्गुणों का पालन करने का संकल्प लेते हैं। सद्गुणों का पालन करने और उससे अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति होने पर वे अपनी प्रशंसा

करते हैं और दूसरों की निंदा करते हुए कहते हैं, 'मेरे सद्गुण शुद्ध हैं, ये दूसरे दुष्ट और निर्गुण हैं।' नशे में लीन और लापरवाह होकर वह दुःख (दुक्खा) में लीन हो जाता है। भिक्षुओं, इस पर कहा जाता है, 'भिक्षु ने अंगों के बीच पवित्र जीवन का अंत कर लिया है।'

"हे भिक्षुओं, यहाँ एक कुल के पुत्र का वर्णन है जो जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित होकर आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्याग देता है। तपस्वी (समना) बनकर वह सोचता है, 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ; केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता के पूर्ण अंत का ज्ञान कराते हैं।' इस प्रकार त्याग करने के बाद उसका पुनर्जन्म लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ होता है। इससे संतुष्ट होकर भी, अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह इस लाभ, मान-सम्मान और यश के कारण न तो मदहोश होता है और न ही लापरवाह। वह सद्गुणों का पालन करने का संकल्प लेता है। इससे संतुष्ट होकर भी, सद्गुणों के वरदान से उसकी आकांक्षाएँ पूर्ण नहीं होतीं, वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। मदहोश न होकर भी, वह ध्यानमग्नता का वरदान ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर भी, ध्यानमग्नता के वरदान से उसकी आकांक्षाएँ पूर्ण होती हैं, वह वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। वह कहता है, 'मैं एक ही बिंदु पर ध्यानमग्न रहता हूँ, जबकि अन्य भिक्षु विचलित मनों में उलझे रहते हैं।' ध्यानमग्न होने की इस वरदान के कारण वह मदहोश और लापरवाह होकर अप्रियता में लीन रहता है। जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की तलाश में भटकता रहता है, और जब वह लकड़ी से युक्त पेड़ के पास पहुँचता है, तो वह लकड़ी और छाल को अनदेखा करके उसकी छाल काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि वही लकड़ी है।

"एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहेगा, 'यह भले आदमी पेड़ के भीतरी भाग, छाल, टहनियों और पत्तियों को नहीं पहचानता। इसलिए, भीतरी भाग की तलाश में भटकता हुआ यह आदमी, भीतरी भाग वाले पेड़ के पास आकर, भीतरी भाग और छाल को अनदेखा कर रहा है और उसे यह सोचकर ले जा रहा है कि 'यह भीतरी भाग है।' भीतरी भाग के साथ उसे जो भी काम करना है, वह उसे नहीं मिलेगा।"

"भिक्षुओं, इसी प्रकार, अपने कुल का कोई पुत्र, जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित होकर, आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी (समना) बन जाता और सोचता, 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ,' वह कहता, 'केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता (दुक्खा) के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं।'" इस प्रकार प्रस्थान करने पर वह लाभ, मान-सम्मान और यश में पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह सद्गुणों का पालन करने का संकल्प लेता है। सद्गुणों का पालन करने से संतुष्ट होकर और सद्गुणों के वरदान से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। न तो मदहोश होकर और न ही लापरवाह होकर वह ध्यानमग्नता का वरदान ग्रहण करता है। ध्यानमग्नता के वरदान से संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति होने पर वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करते हुए कहता है, 'मेरा ध्यान एक ही बिंदु पर केंद्रित है, अन्य भिक्षुओं का मन विचलित है।' ध्यानमग्नता के वरदान से मदहोश और लापरवाह होकर वह दुःख में लीन रहता है। भिक्षुओं, इस पर कहा जाता है, 'भिक्षु ने नौका में पवित्र जीवन का अंत कर लिया है।'

"यहाँ, भिक्षुओं, एक कुलवासी का पुत्र, जो जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित था, आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्यागकर तपस्वी (समना) बन जाता था, यह सोचते हुए कि 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ,' और कहता था, 'केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता के समूह के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं।' इस प्रकार जन्म लेने के बाद, वह लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है, और उस लाभ, मान-सम्मान और यश के कारण न तो मदहोश होता है और न ही लापरवाह होकर, सद्गुणों का पालन करने का परिश्रमपूर्वक संकल्प लेता है। सद्गुणों का पालन करने से संतुष्ट होकर, और सद्गुणों के वरदान से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर, वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। न तो मदहोश होता है और न ही लापरवाह होकर वह ध्यानमग्नता का वरदान ग्रहण करता है। संतुष्ट होकर और ध्यानमग्नता के वरदान से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। न तो मदहोश होता है और न ही लापरवाह होकर वह ज्ञान और दृष्टि की प्राप्ति का संकल्प लेता है। संतुष्ट होकर और ज्ञान और दृष्टि के वरदान से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति होने पर वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करते हुए कहता है, 'मैं ज्ञान और दृष्टि में स्थिर रहता हूँ। अन्य भिक्षु न तो ज्ञान में स्थिर रहते हैं और न ही दृष्टि में।' ज्ञान और दृष्टि के वरदान से मदहोश और लापरवाह होकर वह अप्रियता में ही लीन रहता था। जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की तलाश में भटकता रहता है, और जब उसे लकड़ी से युक्त कोई खड़ा पेड़ मिलता है, तो वह लकड़ी को अनदेखा करके उसके बाहरी भाग को काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि वही असली लकड़ी है।

"एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहेगा, 'यह भले आदमी पेड़ के भीतरी भाग, छाल, टहनियाँ, शाखाएँ और पत्तियाँ नहीं जानता। इसलिए, भीतरी भाग की तलाश में भटकता हुआ यह आदमी, भीतरी भाग वाले पेड़ के पास आकर, भीतरी भाग को अनदेखा करते हुए,

भीतरी भाग को काट रहा है और यह सोचकर उसे ले जा रहा है कि 'यह भीतरी भाग है।' भीतरी भाग से उसे जो भी काम करना है, वह उसे नहीं मिलेगा।"

भिक्षुओं, इसी प्रकार, कुल के किसी पुत्र को जन्म, क्षय और मृत्यु का कष्ट सहते हुए, आस्थावश गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी (सन्यासी) बनना पड़ता है। वह सोचता है, 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ,' और कहता है, 'केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं।' इस प्रकार जन्म लेकर वह लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर भी, यदि उसकी आकांक्षाएँ पूर्ण न हों, तो वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह सद्‌गुणों का पालन करने का संकल्प लेता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर, सद्‌गुणों से संपन्न होकर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। न तो मदहोश होकर और न ही लापरवाह होकर वह ध्यानमग्नता का वरदान ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर, वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। नशे में चूर न होकर और लापरवाही न बरतते हुए वह ज्ञान और दृष्टि के विकास का दायित्व स्वयं पर लेता। संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति होने पर वह सोचता, 'मैं ज्ञान और दृष्टि से परिपूर्ण रहता हूँ, ये अन्य भिक्षु न तो ज्ञान से परिपूर्ण रहते हैं और न ही दृष्टि से।' ज्ञान और दृष्टि के वरदान से मदहूस और लापरवाह होकर वह दुःख में लीन रहता। भिक्षुओं, इस पर कहा जाता है, 'भिक्षु ने पवित्र जीवन का अंत कर लिया है।'

"यहाँ, भिक्षुओं, एक कुल के पुत्र, जो जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित था, आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्यागकर तपस्वी (समना) बन गया। वह सोचता था, 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ।' वह कहता था, 'केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं।' इस प्रकार जन्म लेकर वह लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर, और उस लाभ, मान-सम्मान और यश से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर, वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। उस लाभ, मान-सम्मान और यश के कारण न तो मदहोश होता है और न ही लापरवाह होकर, वह सद्‌गुणों का पालन करने का संकल्प लेता है। इससे संतुष्ट होकर, और सद्‌गुणों के वरदान से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर, वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। न तो मदहोश होता है और न ही लापरवाह होकर, वह ध्यानमग्नता का वरदान ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर, और ध्यानमग्नता के वरदान से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर, वह अपनी प्रशंसा नहीं करता है।" न तो नशे में चूर होकर और न ही लापरवाही बरतते हुए वह ज्ञान और दृष्टि प्राप्त करने का संकल्प लेगा। इससे संतुष्ट होकर और ज्ञान और दृष्टि के वरदान से अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करेगा और न ही दूसरों की निंदा करेगा। ज्ञान और दृष्टि के वरदान से नशे में चूर होकर और न ही लापरवाही बरतते हुए वह मन की शाश्वत मुक्ति प्राप्त करने का संकल्प लेगा।

भिक्षुओं, यह संभव नहीं है कि कोई भिक्षु मन की शाश्वत मुक्ति से विमुख हो जाए। जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की तलाश में भटकता हुआ, लकड़ी से लदे एक खड़े पेड़ के पास आता है और उसे काटकर ले जाता है, यह जानते हुए कि वह लकड़ी है। एक ज्ञानी व्यक्ति उसे देखकर कहेगा: यह भला व्यक्ति लकड़ी, छाल, टहनियों, शाखाओं और पत्तियों को जानता है। इसलिए यह व्यक्ति, जिसे लकड़ी की आवश्यकता है, लकड़ी की तलाश में भटकता हुआ, लकड़ी से लदे एक खड़े पेड़ के पास आता है और उसे काटकर ले जाता है, यह जानते हुए कि वह लकड़ी है। लकड़ी से उसे जो भी कार्य करना हो, वह उसी उद्देश्य से आएगा।

भिक्षुओं, इसी प्रकार, कुल के किसी व्यक्ति का पुत्र, जन्म, क्षय और मृत्यु से पीड़ित होकर, आस्था के कारण गृहस्थ जीवन त्याग देता है। तपस्वी (समना) बनकर वह सोचता है, 'मैं दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता, कष्ट और मृत्यु में डूबा हुआ हूँ,' वह कहता है, 'कुछ ही लोग इस अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं।' इस प्रकार जन्म लेकर वह लाभ, मान-सम्मान और यश में पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं को इस लाभ, मान-सम्मान और यश से पूर्ण न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह सद्‌गुणों का पालन करने का संकल्प लेता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं को सद्‌गुणों से पूर्ण न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। न तो मदमस्त होकर और न ही लापरवाह होकर वह ध्यानमग्नता का वरदान ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं को ध्यानमग्नता से पूर्ण न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। न तो मदमस्त होकर और न ही लापरवाह होकर वह ज्ञान और दृष्टि का विकास करने का संकल्प लेता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी आकांक्षाओं को ज्ञान और दृष्टि से पूर्ण न होने पर वह मन की शाश्वत मुक्ति प्राप्त करने का संकल्प लेता है। भिक्षुओं, यह संभव नहीं है कि भिक्षु मन की शाश्वत मुक्ति से विमुख हो जाए।

इसलिए, हे भिक्षुओं, पवित्र जीवन लाभ, मान-सम्मान और प्रसिद्धि के लिए नहीं, सद्‌गुणों की प्राप्ति के लिए नहीं, ध्यानमग्नता की प्राप्ति के लिए नहीं, ज्ञान और दृष्टि की प्राप्ति के लिए नहीं जिया जाता। हे भिक्षुओं, पवित्र जीवन का सार और उद्देश्य मन की अविचल मुक्ति है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 3.10कुलसरोपामा सुत्त(30)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। तब ब्राह्मण पिंगालकोच्च भगवान बुद्ध के पास आए, सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। बैठे-बैठे ब्राह्मण ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे गौतम, ये संन्यासी और ब्राह्मण, अपने अनुयायियों और शिष्यों के गुरुओं के साथ, प्रसिद्ध मार्गदर्शक हैं। ये परम पूज्य पुराण कस्सपा, मक्खली गोसाला, अजित केशकंबली, पकुधा कच्चायना, संजय बेलातुत्तपुत्त और निगंत नातपुत्त हैं। आदरणीय महोदय, क्या इन सभी ने अपने दृष्टिकोण को पूर्णतः प्राप्त किया या नहीं? या ऐसा है कि कुछ ने प्राप्त किया और कुछ ने नहीं? ब्राह्मण, चाहे इन सभी ने अपने दृष्टिकोण को पूर्णतः प्राप्त किया हो या नहीं, या कुछ ने प्राप्त किया और कुछ ने नहीं, इस विषय को छोड़ दें। मैं इसका उपदेश दूंगा, कृपया ध्यानपूर्वक सुनें।” ब्राह्मण पिंगालकोच्चा सहमत हो गए और भगवान ने कहा:

ब्राह्मण, लकड़ी की खोज में भटकते हुए व्यक्ति की तरह, किसी विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें लकड़ी होती है, और वह लकड़ी, छाल, टहनियों और शाखाओं को अनदेखा करके, शाखाओं और पत्तियों को काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि यह लकड़ी है। एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहता है, "यह भला व्यक्ति लकड़ी, छाल, टहनियों और पत्तियों को नहीं पहचानता। लकड़ी की खोज में भटकते हुए, वह एक विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें लकड़ी होती है, और लकड़ी, छाल, टहनियों और शाखाओं को अनदेखा करके, शाखाओं और पत्तियों को काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि यह लकड़ी है। जिस उद्देश्य से उसने लकड़ी की खोज की है, वह पूरा नहीं होगा।"

ब्राह्मण, जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की खोज में भटकता है, वैसे ही वह एक विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें लकड़ी होती है। वह लकड़ी, छाल और उपशामक भाग को अनदेखा कर देता है और शाखाओं को काटकर यह सोचकर ले जाता है कि यह लकड़ी है। एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहता है, "यह भला व्यक्ति लकड़ी, छाल, शाखाओं, टहनियों और पत्तियों को नहीं पहचानता। लकड़ी की खोज में भटकते हुए, वह एक विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें लकड़ी होती है, लेकिन वह लकड़ी, छाल और उपशामक भाग को अनदेखा करके शाखाओं को काटकर यह सोचकर ले जाता है कि यह लकड़ी है; जिस उद्देश्य से उसने लकड़ी की खोज की है, वह पूरा नहीं होगा।"

ब्राह्मण, जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की खोज में भटकता है, वैसे ही वह लकड़ी से भरे एक विशाल वृक्ष के पास आता है। वह लकड़ी और तने को अनदेखा कर देता है और छाल काटकर उसे लकड़ी समझकर ले जाता है। एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहता है, “यह भला व्यक्ति लकड़ी, तने, छाल, टहनियों, शाखाओं और पत्तियों को नहीं पहचानता। लकड़ी की खोज में भटकते हुए, वह लकड़ी से भरे एक विशाल वृक्ष के पास आया है, उसने लकड़ी और तने को अनदेखा कर दिया है, छाल काटकर उसे लकड़ी समझकर ले जा रहा है। जिस उद्देश्य से उसने लकड़ी खोजी है, वह पूरा नहीं होगा।”

ब्राह्मण, जैसे कोई व्यक्ति वृक्ष की भीतरी लकड़ी की खोज में भटकता है, वैसे ही वह किसी विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें भीतरी लकड़ी होती है। वह भीतरी लकड़ी को अनदेखा कर देता है और उसके बाहरी आवरण को काटकर उसे भीतरी लकड़ी समझकर ले जाता है। एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहता है, "यह भला व्यक्ति भीतरी लकड़ी, बाहरी आवरण, छाल, कोंपल, शाखाएँ और पत्तियाँ नहीं जानता। वह भीतरी लकड़ी की खोज में भटकता हुआ, एक विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें भीतरी लकड़ी होती है, लेकिन भीतरी लकड़ी को अनदेखा करके बाहरी आवरण को काटकर उसे भीतरी लकड़ी समझकर ले जाता है। जिस उद्देश्य से उसने भीतरी लकड़ी की खोज की है, वह पूरा नहीं होगा।"

ब्राह्मण, जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की खोज में भटकता है, वैसे ही वह किसी विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें लकड़ी होती है और वह उसे काटकर अपने साथ ले जाता है, यह जानते हुए कि यह लकड़ी ही है। एक बुद्धिमान व्यक्ति उसे देखकर कहता, “यह भला व्यक्ति

लकड़ी, छाल, कोंपल, शाखाएँ और पत्तियाँ सब जानता है। लकड़ी की खोज में भटकते हुए, वह एक विशाल वृक्ष के पास आया है जिसमें लकड़ी है, उसने लकड़ी काट ली है और उसे अपने साथ ले जा रहा है, यह जानते हुए कि यह लकड़ी ही है; जिस उद्देश्य से उसने लकड़ी खोजी थी, वह पूरा हो जाएगा।"

ब्राह्मणों में से कोई व्यक्ति अपने गृहस्थी को छोड़कर, आस्था के कारण यह सोचकर घर-बार त्याग देता है कि वह जन्म, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता और कष्ट में डूबा हुआ है। केवल कुछ ही लोग अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं। इस प्रकार त्याग कर वह लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी इच्छाओं की पूर्ति होने पर वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। वह कहता है, "मैं आतिथ्य सत्कार का लाभ उठाने वाला हूँ, ये अन्य भिक्षु शक्तिहीन और बुद्धिहीन हैं।" वह लाभ, मान-सम्मान और यश से अधिक श्रेष्ठ किसी चीज को प्राप्त करने में रुचि या प्रयास नहीं करता और आसक्त एवं आलसी बना रहता है।

जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की तलाश में भटकता हुआ किसी विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें लकड़ी होती है। वह उसकी लकड़ी, छाल, तने और शाखाओं को अनदेखा करते हुए, शाखाओं और पत्तियों को काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि वही लकड़ी है। उसे लकड़ी की आवश्यकता चाहे जिस भी उद्देश्य से हो, वह उस उद्देश्य से नहीं आया है। मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति ब्राह्मण के समान है।

ब्राह्मणों में से कोई व्यक्ति अपने गृहस्थी को छोड़कर आस्था के कारण बेघर हो जाता है, यह सोचकर कि मैं जन्म, क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता और कष्ट में डूबा हुआ हूँ। केवल कुछ ही लोग अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं। इस प्रकार निकलकर, वह लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। वह न तो इससे संतुष्ट होता है और न ही अपनी इच्छाओं की पूर्ति से, न ही अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह लाभ, मान-सम्मान और यश से कहीं अधिक श्रेष्ठ किसी चीज को प्राप्त करने में रुचि रखता है और प्रयास करता है। न तो आसक्त होकर और न ही आलसी होकर, वह सद्गुणों का वरदान ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी इच्छाओं की पूर्ति से, वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। वह कहता है, मैं गुणी हूँ, ये अन्य भिक्षु पापमय हैं। वह सद्गुणों से कहीं अधिक श्रेष्ठ किसी चीज को प्राप्त करने में रुचि नहीं रखता और न ही प्रयास करता है।

जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की तलाश में भटकता हुआ किसी विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें लकड़ी तो होती है, लेकिन वह उसकी छाल, तने और छाल को अनदेखा कर देता है। वह उसकी शाखाओं को काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि वही लकड़ी है। उसे लकड़ी की आवश्यकता चाहे जिस भी उद्देश्य से हो, वह उसके लिए नहीं आता। ब्राह्मण, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उसी ब्राह्मण के समान है।

ब्राह्मण, एक व्यक्ति अपने गृहस्थी को छोड़कर आस्था के कारण बेघर हो जाता है। वह सोचता है कि मैं जन्म, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता और कष्ट में डूबा हुआ हूँ। वह सोचता है कि केवल कुछ ही लोग अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं। इस प्रकार निकलकर, वह लाभ, मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। न तो इससे संतुष्ट होकर और न ही अपनी इच्छाओं की पूर्ति से, वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह लाभ, मान और यश से कहीं अधिक श्रेष्ठ किसी चीज को प्राप्त करने के लिए रुचि जगाता है और प्रयास करता है। न तो आसक्त होकर और न ही आलसी होकर, वह सद्गुणों का वरदान ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होने पर, वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह सद्गुणों से कहीं अधिक श्रेष्ठ किसी चीज को प्राप्त करने के लिए रुचि जगाता है और एकाग्रता का वरदान ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी इच्छाओं की पूर्ति होने पर, वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। मैं एक बिंदु पर मन से एकाग्र हूँ। ये दूसरे भिक्षु एकाग्र नहीं हैं, बल्कि विचलित हैं। वे एकाग्रता से भी श्रेष्ठ किसी गुण को प्राप्त करने के लिए न तो रुचि जगाते हैं और न ही प्रयास करते हैं, तथा आसक्ति और आलस्य में लीन रहते हैं। जैसे कोई व्यक्ति लकड़ी की खोज में भटकता हुआ एक विशाल वृक्ष के पास आता है जिसमें लकड़ी होती है। वह उसकी लकड़ी और उपशाखा को अनदेखा करते हुए उसकी छाल काटकर ले जाता है, यह सोचकर कि वही लकड़ी है। उसे लकड़ी की आवश्यकता चाहे जिस उद्देश्य से हो, वह उस उद्देश्य से नहीं आता। हे ब्राह्मण, मैं कहता हूँ, यह व्यक्ति उसी के समान है।

ब्राह्मण वंश का कोई व्यक्ति गृहस्थी छोड़कर आस्था के कारण बेघर हो जाता है, यह सोचकर कि वह जन्म, क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता और कष्ट में डूबा हुआ है। वह सोचता है कि केवल कुछ ही लोग अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करते हैं। इस प्रकार जन्म लेकर वह लाभ, मान-सम्मान और यश के साथ पुनर्जन्म लेता है। इससे संतुष्ट न होकर और अपनी इच्छाओं की पूर्ति होने पर भी वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह लाभ, मान-सम्मान और यश से कहीं अधिक श्रेष्ठ कुछ प्राप्त करने के लिए रुचि उत्पन्न करता है और न तो आसक्त होता है और न ही आलसी। वह सद्गुणों का वरदान ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह सद्गुणों के वरदान से

कहीं अधिक श्रेष्ठ कुछ प्राप्त करने के लिए रुचि उत्पन्न करता है और प्रयास करता है। वह एकाग्रता का वरदान ग्रहण करता है। एकाग्रता के वरदान से संतुष्ट होकर और अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होने पर वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह एकाग्रता के वरदान से कहीं अधिक श्रेष्ठ कुछ प्राप्त करने के लिए रुचि उत्पन्न करता है और प्रयास करता है। वह न तो मोह में डूबा रहता है और न ही आलस्य में, ज्ञान और दृष्टि के वरदान को ग्रहण करता है। इससे संतुष्ट होकर और अपनी इच्छाओं की पूर्ति न होने पर भी वह न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। वह ज्ञान और दृष्टि के वरदान से भी अधिक श्रेष्ठ किसी चीज को प्राप्त करने के लिए रुचि जागृत करता है और प्रयास करता है, तथा न तो मोह में डूबा रहता है और न ही आलस्य में।

ब्राह्मण, ज्ञान और दृष्टि से बढ़कर श्रेष्ठ और क्या हो सकता है? यहाँ ब्राह्मण, भिक्षु, इंद्रिय-वासनाओं और दोषों से विरक्त होकर, विचारों और चिंतन प्रक्रियाओं के साथ, और एकांत से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता के साथ प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है। ब्राह्मण, यह ज्ञान और दृष्टि से बढ़कर श्रेष्ठ और श्रेष्ठ है।

हे ब्राह्मण, भिक्षु विचारों और चिंतन प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके, आंतरिक रूप से शांत होकर, एकाग्र मन से आनंद और प्रसन्नता के साथ एकाग्रता से दूसरे ध्यान में लीन हो जाता है। हे ब्राह्मण, यह ज्ञान और दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च है।

हे ब्राह्मण, जो भिक्षु समभाव, आनंद और वैराग्य के साथ सचेत और जागरूक रहते हुए शरीर से सुख का अनुभव करते हैं, वे तृतीय ध्यान अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। श्रेष्ठ जन इसे समभाव के साथ सुख में लीन रहना कहते हैं। यह ज्ञान और दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च है।

हे ब्राह्मण, जो भिक्षु सुख और दुःख को दूर करते हुए, पहले सुख और दुःख को दूर कर चुके थे, वे सुख और दुःख से रहित होकर, समभाव से शुद्ध होकर, चौथे ध्यान में निवास करते हैं। हे ब्राह्मण, यह ज्ञान और दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ और पवित्र है।

हे ब्राह्मण, जो पदार्थ और क्रोध की सभी धारणाओं पर विजय प्राप्त कर विभिन्न धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, असीम आकाश को प्राप्त कर आकाश के क्षेत्र में निवास करते हैं। हे ब्राह्मण, यह भी ज्ञान और दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च है।

फिर से, हे ब्राह्मण, वह भिक्षु जो असीम चेतना के साथ अंतरिक्ष के सभी क्षेत्रों को पार कर जाता है, चेतना के क्षेत्र में निवास करता है। हे ब्राह्मण, यह भी ज्ञान और दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च है।

फिर भिक्षु चेतना के समस्त क्षेत्रों को पार करते हुए, जहाँ कुछ भी नहीं है, वहाँ शून्यता के क्षेत्र में निवास करता है। ब्राह्मण, यह भी ज्ञान और दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च है।

फिर भिक्षु ने निरर्थकता के सभी क्षेत्रों को पार करते हुए, न-बोध-न-बोध के क्षेत्र में निवास किया। ब्राह्मण, यह ज्ञान और दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्चतर है।

फिर भिक्षु सभी न-बोध और न-बोध के क्षेत्रों को पार करते हुए, संवेदनाओं और अनुभूतियों के निर्वाह में लीन हो जाता है। इस ज्ञान से उसकी इच्छाएँ भी नष्ट हो जाती हैं। हे ब्राह्मण, यह भी ज्ञान और दृष्टि से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उच्च है।

ब्राह्मण, लकड़ी की तलाश में भटकते हुए जब किसी विशाल वृक्ष के पास पहुँचता है जिसमें लकड़ी होती है, तो वह उसे काटकर अपने साथ ले जाता है, यह जानते हुए कि वह लकड़ी उसकी असली लकड़ी है। वह जिस भी उद्देश्य से उस लकड़ी को खोज रहा हो, उसी उद्देश्य से वह आया होगा। मेरा कहना है कि यह व्यक्ति उसी के समान है।

हे ब्राह्मण, यह पवित्र जीवन यश और यश प्राप्त करने के लिए नहीं, सद्गुणों की प्राप्ति के लिए नहीं, एकाग्रता की प्राप्ति के लिए नहीं, और न ही ज्ञान और दृष्टि की प्राप्ति के लिए है। हे ब्राह्मण, यह मन की अविचल मुक्ति के लिए है। यही पवित्र जीवन का सार है, यही पवित्र जीवन का मूल तत्व और लक्ष्य है।

यह सुनकर ब्राह्मण पिंगालकोच्चा ने भगवान बुद्ध से कहा, हे गौतम, मैं समझ गया। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज को फिर से स्थापित किया जा रहा हो, कोई ढकी हुई चीज को प्रकट किया जा रहा हो। मानो किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया जा रहा हो। या जैसे अंधेरे में चीजों को देखने वालों के लिए तेल का दीपक जलाया जा रहा हो। इस प्रकार, हे गौतम ने शिक्षा को अनेक तरीकों से

समझाया है। अब मैं हे गौतम की शरण में, उनकी शिक्षा में और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेता हूँ। हे गौतम, आज से जीवन भर मुझे शरण लेने वाले गृहस्थ शिष्य के रूप में स्वीकार करें।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 4.1 कुलगोसिंगा सुत्त(31)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान नादिका में एक ईंट के घर में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य अनुराधा, नंदीय और किंबिला राजा द्वारा उपहार में दिए गए गोसिंगा साला वन में निवास कर रहे थे। शाम को भगवान एकांतवास से उठकर साला वन की ओर चल पड़े। वनपाल ने दूर से भगवान को आते देखा और कहा, हे संन्यासी, इस वन में प्रवेश न करें। यहाँ कुल के तीन पुत्र अपने कल्याण की तलाश में निवास कर रहे हैं, उन्हें परेशान न करें। पूज्य अनुराधा ने वनपाल और भगवान के बीच यह बातचीत सुनी और वनपाल से कहा, भगवान को मत रोको, वे हमारे गुरु, भगवान हैं। पूज्य अनुराधा ने पूज्य नंदीय और किंबिला को संबोधित करते हुए कहा, आओ! पूज्यजनों, हमारे गुरु आ गए हैं। तब पूज्य अनुराधा, नंदीय और किंबिला भगवान के पास गए और उनसे पान और वस्त्र ग्रहण किए। एक ने आसन तैयार किया और दूसरे ने पैर धोने के लिए जल दिया। भगवान बुद्ध तैयार आसन पर बैठे और अपने पैर धोए। वे पूजनीय लोग भगवान बुद्ध की पूजा करते हुए एक तरफ बैठ गए।

भगवान बुद्ध ने आदरणीय अनुराधा से कहा: अनुराधा, क्या तुम ठीक हो? क्या तुम्हें भोजन की कमी के कारण कोई थकान है? आदरणीय, हम ठीक हैं, हमें भोजन की कमी के कारण कोई थकान नहीं है। अनुराधा, क्या तुम दूध और पानी की तरह एक-दूसरे से जुड़े हुए और बिना किसी विवाद के मित्रवत हो, और क्या तुम एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते रहते हो? आदरणीय, हम दूध और पानी की तरह एक हैं, मित्रवत हैं, बिना किसी विवाद के, और एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते रहते हैं। अनुराधा, तुम दूध और पानी की तरह एक कैसे रहते हो, मित्रवत, बिना किसी विवाद के, एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते हुए? आदरणीय, मेरे मन में यह विचार आता है कि मेरे लिए यह लाभ है कि मैं ऐसे सहपाठियों के साथ पवित्र जीवन व्यतीत करता हूँ। इसलिए मैं इन आदरणीयों के प्रति शारीरिक रूप से प्रेमपूर्ण और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण व्यवहार करता हूँ। इन आदरणीयों के प्रति मौखिक रूप से प्रेमपूर्ण और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण व्यवहार करता हूँ। इन पूजनीय व्यक्तियों के प्रति प्रेम और दया की भावना रखते हुए, कभी-कभी मेरे मन में यह विचार आता है कि यदि मैं अपने विचारों को त्यागकर इन पूजनीय व्यक्तियों के विचारों को स्वीकार कर लूँ तो क्या होगा? अतः मैं अपने विचारों को त्यागकर इन पूजनीय व्यक्तियों के विचारों को स्वीकार कर लेता हूँ। हे पूज्यवर, हम शरीर से भिन्न हैं, परन्तु मन से एक हैं।

आदरणीय नंदिया और आदरणीय किंबिला ने भी भगवान बुद्ध से कहा, हे पूज्यवर, मेरे मन में यह विचार आता है। ऐसे सहचरों के साथ पवित्र जीवन व्यतीत करना मेरे लिए लाभदायी है। अतः मैं इन पूज्यवरों के प्रति शारीरिक और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण कर्म करता हूँ। खुले और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण वाणी का प्रयोग करता हूँ। खुले और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण वाणी का प्रयोग करता हूँ। कभी-कभी मेरे मन में यह विचार आता है कि यदि मैं अपने विचारों को त्यागकर इन पूज्यवरों के विचारों को अपना लूँ तो क्या होगा? अतः मैं अपने विचारों को त्यागकर इन पूज्यवरों के विचारों को अपना लूँगा। हे पूज्यवर, हम शरीर से भिन्न हैं, पर मन से एक हैं।

आदरणीय महोदय, इस प्रकार हम दूध और पानी की तरह एक साथ, मित्रवत, बिना किसी विवाद के, एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते हुए रहते हैं। अच्छा, अनुराद्ध, क्या तुम भी निर्वाह निवारण के लिए लगन से जीवन व्यतीत करते हो? आदरणीय महोदय, जी हाँ, हम निर्वाह निवारण के लिए लगन से जीवन व्यतीत करते हैं। अनुराद्ध, तुम निर्वाह निवारण के लिए लगन से कैसे जीवन व्यतीत करते हो? आदरणीय महोदय, जो भी गाँव से सबसे पहले आता है, वह भोजन इकट्ठा करने के बाद बैठने की व्यवस्था करता है, पीने और धोने के लिए पानी देता है और थूकदान रखता है। जो भी गाँव से सबसे अंत में आता है, वह यदि चाहे तो बचे हुए भोजन को ग्रहण करता है, यदि नहीं, तो उसे ऐसी जगह फेंक देता है जहाँ कुछ भी न उगता हो, या ऐसे पानी में डाल देता है जहाँ जीवन न हो। वह बैठने की व्यवस्था और पानी के बर्तनों को समेटता है, थूकदानों को धोता है और भोजनालय की सफाई करता है। जो भी पीने, धोने या शौचालय के पानी के बर्तनों को खाली देखता है, वह उन्हें भर देता है। यदि वह उसे ले जाने में असमर्थ पाता है, तो वह हाथ के इशारे से दूसरे को बुला लेता है। इस कारण एक शब्द भी नहीं बोलते थे। हर पाँचवें दिन हम रात भर बैठकर शिक्षा के किसी विषय पर चर्चा करते थे। आदरणीय महोदय, इस प्रकार हम निवारण के लिए लगन से प्रयास करते हैं। अच्छा, अनुराधा, तुम भी निवारण के लिए लगन से प्रयास करते हो। क्या तुमने मनुष्य से परे कोई विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है? क्यों नहीं आदरणीय महोदय, जब भी हम चाहें, मन को कामुक विचारों और

अशुद्ध विचारों से अलग करके, एकांत से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता के साथ प्रथम ध्यान में लीन हो जाते हैं। आदरणीय महोदय, यही वह विशिष्ट ज्ञान है जो हमने मनुष्य से परे प्राप्त किया है। अच्छा, अनुराधा, इससे भी ऊपर, क्या तुमने कोई विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है और मनुष्य से परे लीन हो जाते हो? क्यों नहीं आदरणीय महोदय, जब भी हम चाहें, विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके, मन को आंतरिक रूप से एक बिंदु पर स्थिर करके, एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता के साथ द्वितीय ध्यान में लीन हो जाते हैं। आदरणीय महोदय, उस पर विजय प्राप्त करके और उससे भी ऊपर उठकर, हमने वह विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है जिससे हम मनुष्य से ऊपर उठते हैं। अच्छा, अनुराधा, उस पर विजय प्राप्त करके और उससे भी ऊपर उठकर क्या आपने कोई ऐसा विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है जिससे आप मनुष्य से ऊपर उठते हैं? क्यों नहीं, आदरणीय महोदय? जब भी हम इच्छा करते हैं, समभाव, आनंद और वैराग्य के साथ हम सचेत और जागरूक रहते हुए शरीर के साथ सुख का अनुभव करते हैं, तृतीय ध्यान में... इस पर, श्रेष्ठ कहते हैं कि समभाव के साथ सुख में सचेत रहना। अच्छा, अनुराधा, उस पर विजय प्राप्त करके और उससे भी ऊपर उठकर क्या आपने कोई ऐसा विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है जिससे आप मनुष्य से ऊपर उठते हैं? क्यों नहीं, आदरणीय महोदय? जब भी हम इच्छा करते हैं, सुख और दुख को दूर करते हुए, पहले सुख और दुख पर विजय प्राप्त करके, समभाव, शुद्ध चेतना के साथ, हम चतुर्थ ध्यान में रहते हैं। आदरणीय महोदय, उस पर विजय प्राप्त करके और उससे भी ऊपर उठकर, हमने वह विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है जिससे हम मनुष्य से ऊपर उठते हैं। बहुत खूब, अनुराधा! उस बाधा को पार करके और उससे ऊपर उठकर, क्या आपने कोई ऐसा विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है जिससे आप मनुष्य से परे रह सकें? क्यों नहीं, आदरणीय महोदय?जब भी हम पदार्थ की सभी धारणाओं और क्रोध की धारणाओं पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, विभिन्न धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, असीम आकाश को प्राप्त करते हुए, आकाश के क्षेत्र में निवास करते हैं। आदरणीय महोदय, उस पर और उससे भी ऊपर विजय प्राप्त करके, यही वह विशिष्ट ज्ञान है जिसे हमने प्राप्त किया है, मनुष्य से ऊपर निवास करते हैं। अच्छा, अनुराधा, उस पर और उससे भी ऊपर विजय प्राप्त करके क्या आपने कोई विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त की है, मनुष्य से ऊपर निवास करते हैं? क्यों नहीं आदरणीय महोदय? जब भी हम असीम चेतना और कुछ भी नहीं होने की स्थिति को प्राप्त करते हुए, आकाश के सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, तो शून्यता के क्षेत्र में निवास करते हैं। शून्यता के सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करके, न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र में निवास प्राप्त करते हैं। आदरणीय महोदय, उस पर और उससे भी ऊपर विजय प्राप्त करके, यही वह विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि है जिसे हमने प्राप्त किया है, मनुष्य से ऊपर निवास करते हैं। अच्छा, अनुराधा, उस पर विजय प्राप्त करके क्या आपने कोई विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त की है, मनुष्य से ऊपर निवास करते हैं? क्यों नहीं, पूज्यवर। जब भी हम बोध-विहीनता के क्षेत्र को प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं, तो हम बोध और भावों के अंत में निवास करते हैं। इसे ज्ञान से देखने पर इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं। पूज्यवर, उस पर विजय प्राप्त करके और उससे ऊपर उठकर, हमने यही विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त की है, जो मनुष्य से परे है। पूज्यवर, हमने इससे अधिक श्रेष्ठ और उच्चतर निवास नहीं देखा है। - अच्छा, अनुराधा, इससे अधिक श्रेष्ठ और उच्चतर निवास कोई नहीं है।

तब भगवान ने ननुरुद्ध, नंदीय और किंबिला को उपदेश दिया, उपदेश दिया, प्रेरित किया और उनके हृदयों को हल्का किया, और आसन से उठकर चले गए। जब भगवान जा रहे थे, तब तीनों ननुरुद्ध, नंदीय और किंबिला उनके पीछे-पीछे चले और अचानक रुक गए। तब ननुरुद्ध और किंबिला ने ननुरुद्ध से पूछा, "हे ननुरुद्ध, क्या हमने आपको बताया था कि हम उन निवासों और उपलब्धियों के लाभार्थी हैं? क्या आपने भगवान को हमारी इच्छाओं के नाश के बारे में बताया था?" ननुरुद्ध ने मुझे अपने निवासों और उपलब्धियों के बारे में नहीं बताया, बल्कि हमने उनके मन में प्रवेश किया और जाना कि वे उन उपलब्धियों के लाभार्थी हैं। देवताओं ने भी मुझे इसके बारे में बताया था, और जब भगवान ने मुझसे इसके बारे में पूछा, तो मैंने उत्तर दिया।

तब राक्षस दीघा पूज्य भगवान बुद्ध के पास आया, एक तरफ खड़ा हुआ और उनसे इस प्रकार कहा: "हे पूज्य, यह वज्जियों के लिए बड़ा लाभ है कि भगवान बुद्ध पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध हैं, और साथ ही ये तीनों कुल के पुत्र, पूज्य अनुराद्ध, पूज्य किंबिला और पूज्य नंदीय भी।" राक्षस दीघा की यह ध्वनि सुनकर पृथ्वी के देवताओं ने भी वैसी ही ध्वनि दोहराई। पृथ्वी के देवताओं की ध्वनि सुनकर चारों महान राजाओं के अनुयायियों ने भी वैसी ही ध्वनि दोहराई। चारों महान राजाओं की ध्वनि सुनकर बत्तीस देवताओं के समूह ने भी वैसी ही ध्वनि दोहराई। बत्तीस देवताओं के समूह की ध्वनि सुनकर यम देवताओं ने भी वैसी ही ध्वनि दोहराई। यम देवताओं की ध्वनि सुनकर सुख के देवताओं ने भी वैसी ही ध्वनि दोहराई। सुख के देवताओं की ध्वनि सुनकर सृष्टि से जुड़े देवताओं ने भी वैसी ही ध्वनि दोहराई। सृष्टि से जुड़े देवताओं की ध्वनि सुनकर दूसरों की रचनाओं से जुड़े देवताओं ने भी वैसी ही ध्वनि दोहराई। अन्य प्राणियों की रचनाओं से जुड़े देवताओं की ध्वनि सुनकर ब्रह्मा देवताओं ने उसका प्रतिध्वनित किया। क्षण भर में यह ध्वनि ब्रह्मा लोक तक फैल गई।

दीघा, सत्य यही है कि ये तीनों कुल के पुत्र जिस भी कुल से निकले हों, यदि वे कुल इन्हें प्रसन्न मन से याद करें, तो उन्हें दीर्घकाल सुख प्राप्त होगा। यदि उनके परिवार के लोग—जिस गाँव से वे निकले हों—चाहे किसी भी गाँव से हों—चाहे किसी भी शहर से हों—चाहे कोई भी योद्धा—चाहे कोई भी ब्राह्मण—चाहे कोई भी गृहस्थ—चाहे कोई भी कुल का निवासी इन तीनों पुत्रों को प्रसन्न मन से याद करें,

तो उन्हें दीर्घकाल सुख प्राप्त होगा। दीघा, इस लोक में, चाहे वह देवता हो, मनुष्य हो या मार, ब्रह्मा, यदि कोई भी इन तीनों पुत्रों को याद करे, तो उसे दीर्घकाल सुख प्राप्त होगा।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और राक्षस दीघा भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुआ।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 4.2महागोसिंगा सुत्त(32)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने यही सुना।

एक समय भगवान गोसिंगा साला वन में कई विद्वान वरिष्ठ शिष्यों जैसे सारिपुत्त, महामोग्गलाना, महाकस्सपा, अनुराधा, रेवता, आनंद और अन्य के साथ निवास कर रहे थे। शाम को एकांतवास से बाहर आकर, आदरणीय महामोग्गलाना आदरणीय महाकस्सपा के पास गए और बोले, "कस्सपा, चलो हम आदरणीय सारिपुत्त के पास चलें, ताकि उनके ज्ञान से लाभ उठा सकें।" आदरणीय महाकस्सपा सहमत हो गए और सभी भिक्षु आदरणीय सारिपुत्त के पास गए। आदरणीय आनंद ने देखा कि आदरणीय महामोग्गलाना, महाकस्सपा और अनुराधा आदरणीय सारिपुत्त के पास जा रहे हैं और वे आदरणीय रेवता के पास गए और बोले, "मित्र रेवता, तीनों आदरणीय सारिपुत्त के पास उनके ज्ञान से लाभ उठाने के लिए जा रहे हैं। हमारे लिए भी उनके पास जाना उचित होगा।" आदरणीय रेवता सहमत हो गए और वे दोनों आदरणीय सारिपुत्त के पास गए।

आदरणीय सारिपुत्त ने दूर से आदरणीय रेवता और आनंद को आते देखा और कहा, "मित्र आनंद, परमेश्वर के निकट और करीबी सेवक, आपका स्वागत है। मित्र आनंद, चांदनी रात में साला वन अत्यंत सुंदर है। फूल पूरी तरह खिले हुए हैं और उनसे दिव्य सुगंध निकल रही है। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?" आनंद ने उत्तर दिया, "मित्र सारिपुत्त, एक विद्वान भिक्षु, जो समस्त शिक्षा को धारण करता है, आरंभ, मध्य और अंत में जो अच्छा है उसे संजोता है, और पूर्णतः पवित्र जीवन की घोषणा करता है। उसे उस शिक्षा का वचन और अभ्यास द्वारा प्रसारक बनना चाहिए। उसे उस शिक्षा का गहन अनुभव होना चाहिए। वह चार प्रकार की सभाओं में उसका उपदेश दे, अपने शब्दों का चयन सहजता से करते हुए, तीक्ष्ण बुद्धि वाले लोगों की सुप्त प्रवृत्तियों के नाश के लिए। मित्र सारिपुत्त, ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।"

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य रेवता से कहा, “मित्र रेवता, पूज्य आनंद ने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है, अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?” रेवता ने उत्तर दिया, “मित्र सारिपुत्त, वह भिक्षु जो एकांत में प्रसन्न रहता है, मन की आंतरिक शांति में लीन रहता है। वह ध्यान का उपकार नहीं करता, ज्ञानपूर्ण चिंतन से परिपूर्ण होता है और विचार-विवेचन से रहित स्थिर अवस्था विकसित करता है। ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।”

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य अनुराधा से कहा, “मित्र अनुराधा, पूज्य रेवता ने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है, अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत सुंदर लगता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?” अनुराधा ने उत्तर दिया, “मित्र सारिपुत्त, मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि वाला भिक्षु हजार रूपों वाली विश्व व्यवस्थाओं को देखेगा। जैसे कोई व्यक्ति अपने महल की सबसे ऊपरी मंजिल पर चढ़कर हजार रूपों वाली एक डिस्क को देख रहा हो। उसी प्रकार मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि वाला भिक्षु हजार रूपों वाली विश्व व्यवस्थाओं को देखेगा। ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।”

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य महाकस्सपा से कहा, "मित्र कस्सपा, पूज्य अनुराधा ने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है, अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?" कस्सपा ने उत्तर दिया, "मित्र सारिपुत्त, भिक्षु वनवासी होगा जो वनवास की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करता हो। वह एक निवाला भोजन ग्रहण करने वाला होगा जो निवाला भोजन ग्रहण करने की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करता हो। वह चिथड़े वस्त्र पहनने वाला होगा जो चिथड़े वस्त्र पहनने की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करता हो। वह तीन वस्त्रों में विलीन रहेगा और तपस्या की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह कम इच्छाओं वाला होगा और कम इच्छाओं की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह संतुष्ट

होगा और संतुष्टि की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह एकांतवासी होगा और एकांत की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह संसार से विरक्ति का प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह प्रेरित परिश्रम वाला होगा और परिश्रम की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह गुणी होगा और सद्गुणों के वरदान की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह एकाग्रता से संपन्न होगा और एकाग्रता के वरदान की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह बुद्धिमान होगा और ज्ञान के वरदान की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह मुक्त होगा और मुक्ति के वरदान की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि से संपन्न होगा और मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। ऐसा भिक्षु..." यह गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।"

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने पूज्य महामोग्गल्लाना से कहा, “मित्र मोग्गल्लाना, पूज्य महाकस्सपा ने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है, अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?” मोग्गल्लाना ने उत्तर दिया, “मित्र सारिपुत्त, जब दो भिक्षु धर्म के किसी गहन विषय पर चर्चा कर रहे हों, तो वे एक-दूसरे से प्रश्न पूछते हैं। वे एक-दूसरे के प्रश्नों के उत्तर ढूंढते हैं। वे आपस में मतभेद नहीं करते और उनकी चर्चा समयोचित और लाभकारी होती है। ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।”

तब पूज्य महामोग्गल्लाना ने पूज्य सारिपुत्त को संबोधित करते हुए कहा, "मित्र सारिपुत्त, हम सबने अपनी समझ के अनुसार यह बात कह दी है। अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?" सारिपुत्त ने उत्तर दिया, "मित्र मोग्गल्लाना, भिक्षु मन पर अधिकार रखता है और मन को अपने ऊपर अधिकार नहीं करने देता। सुबह जिस भी अवस्था में वह रहना चाहता है, उसी अवस्था में रहता है। दोपहर में जिस भी अवस्था में वह रहना चाहता है, उसी अवस्था में रहता है। शाम को जिस भी अवस्था में वह रहना चाहता है, उसी अवस्था में रहता है। जैसे कोई राज्याभिषेक किया हुआ राजा या उसका मुख्य मंत्री, जिसके पास विभिन्न रंगों के वस्त्रों से भरा संदूक होता है, सुबह, दोपहर और शाम को पहनने के लिए अपनी पसंद के वस्त्र चुनता है। उसी प्रकार भिक्षु मन पर अधिकार रखता है और मन को अपने ऊपर अधिकार नहीं करने देता। सुबह, दोपहर और शाम को जिस भी अवस्था में वह रहना चाहता है, उसी अवस्था में रहता है। भिक्खु गोसिंगा साला वन को सुशोभित करता है।"

तब पूज्य सारिपुत्त ने अन्य पूज्य भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, “आइए हम परमेश्वर के पास चलें। आइए हम उन्हें यह बात बताएं। आइए हम उनके ज्ञान से लाभ उठाएं। आइए हम उनकी बातों को ध्यान में रखें।” पूज्य भिक्षु सहमत हो गए। वे परमेश्वर के पास गए और उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। तब पूज्य सारिपुत्त ने परमेश्वर से कहा, “हे भगवान, पूज्य रेवता और पूज्य आनंद मेरे ज्ञान से लाभ उठाने के लिए मेरे पास आए हैं। उन्हें देखकर और उनका स्वागत करके, मैंने आनंद से यह पूछा, “मित्र आनंद, चांदनी रात में साला वन बहुत ही सुंदर लगता है। फूल पूरी तरह खिले हुए हैं और उनसे दिव्य सुगंध निकल रही है। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?” आनंद ने उत्तर दिया, “मित्र सारिपुत्त, एक विद्वान भिक्षु, जो समस्त शिक्षाओं का ज्ञान रखता है, आरंभ, मध्य और अंत में जो अच्छा है उसे संजोता है, और पूर्णतः पवित्र जीवन की घोषणा करता है। उसे वचन और अभ्यास द्वारा उस शिक्षा का प्रसारक बनना चाहिए। उसे उस शिक्षा का गहन अनुभव प्राप्त करना चाहिए। वह चार प्रकार की सभाओं में उसका उपदेश दे, सहजता से शब्दों का चयन करते हुए, ताकि तीक्ष्ण बुद्धि वाले लोगों की छिपी हुई प्रवृत्तियों का नाश हो सके। मित्र सारिपुत्त, ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।”

यह सुनकर, हे भगवान, मैंने आदरणीय रेवता से कहा, “मित्र रेवता, आदरणीय आनंद ने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है, अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?” रेवता ने उत्तर दिया, “मित्र सारिपुत्त, वह भिक्षु जो एकांत में प्रसन्न रहता है, मन की आंतरिक शांति में लीन रहता है। वह ध्यान का उपकार नहीं करता, ज्ञानपूर्ण चिंतन से परिपूर्ण होता है, और विचार-विवरण से रहित स्थिर अवस्था विकसित करता है। ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।”

यह सुनकर, हे भगवान, मैंने आदरणीय अनुराधा से कहा, “मित्र अनुराधा, आदरणीय रेवता ने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है, अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?” अनुराधा ने उत्तर दिया, “मित्र सारिपुत्त, मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि वाला भिक्षु हजार रूपों वाली संसार-प्रणालियों को देखेगा। जैसे कोई व्यक्ति अपने महल की सबसे ऊपरी मंजिल पर चढ़कर हजार रूपों वाली एक डिस्क को देख

रहा हो। उसी प्रकार मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि वाला भिक्षु हजार रूपों वाली संसार-प्रणालियों को देखेगा। ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।”

यह सुनकर, हे भगवान, मैंने पूज्य महाकस्सपा से कहा, "मित्र कस्सपा, पूज्य अनुराधा ने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है, अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?" कस्सपा ने उत्तर दिया, "मित्र सारिपुत्त, भिक्षु वनवासी होगा जो वनवास की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करता हो। वह एक निवाला भोजन ग्रहण करने वाला होगा जो निवाला भोजन ग्रहण करने की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करता हो। वह चिथड़े वस्त्र पहनने वाला होगा जो चिथड़े वस्त्र पहनने की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करता हो। वह तीन वस्त्रों में विलीन रहेगा और तपस्या की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह कम इच्छाओं वाला होगा और कम इच्छाओं की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह संतुष्ट होगा और संतुष्टि की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह एकांतवासी होगा और एकांत की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह संसार से विरक्ति का प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह प्रेरित परिश्रम वाला होगा और परिश्रम की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह गुणी होगा और सद्गुणों के वरदान की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह एकाग्रता से संपन्न होगा और एकाग्रता के वरदान की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह बुद्धिमान होगा और ज्ञान के वरदान की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह मुक्त होगा और मुक्ति के वरदान की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। वह मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि से संपन्न होगा और मुक्ति के ज्ञान और दृष्टि की प्रशंसा में जीवन व्यतीत करेगा। ऐसा भिक्षु..." यह गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।"

जब यह कहा गया, भगवान, तो मैंने पूज्य महामोग्गल्लाना से कहा, "मित्र मोग्गल्लाना, पूज्य महाकस्सपा ने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है, अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?" मोग्गल्लाना ने उत्तर दिया, "मित्र सारिपुत्त, जब दो भिक्षु शिक्षा के किसी गहन विषय पर चर्चा कर रहे हों, तो वे एक-दूसरे से प्रश्न पूछें। वे एक-दूसरे के प्रश्नों के उत्तर खोजें। वे आपस में मतभेद न करें और उनकी चर्चा समयोचित और लाभकारी हो। ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाएगा।"

तब पूज्य महामोग्गल्लाना ने भगवान से कहा, “हे भगवान, मैंने पूज्य सारिपुत से कहा, “मित्र सारिपुत्त, हम सबने अपनी समझ के अनुसार यह कहा है। अब हम आपसे यह पूछते हैं। चांदनी रात में साला वन अत्यंत मनमोहक होता है। खिले हुए फूल दिव्य सुगंध बिखेरते हैं। किस प्रकार का भिक्षु इस साला वन की शोभा बढ़ाएगा?” सारिपुत्त ने उत्तर दिया, “मित्र मोग्गल्लाना, भिक्षु मन पर अधिकार रखता है और मन को अपने ऊपर अधिकार नहीं करने देता। सुबह जिस भी अवस्था में वह रहना चाहता है, उसी अवस्था में रहता है। दोपहर में जिस भी अवस्था में वह रहना चाहता है, उसी अवस्था में रहता है। शाम को जिस भी अवस्था में वह रहना चाहता है, उसी अवस्था में रहता है।” जैसे कोई राज्याभिषेकित राजा या उसका मुख्य मंत्री, जिसके पास विभिन्न रंगों के वस्त्रों से भरा एक संदूक होता था, सुबह, दोपहर और शाम को पहनने के लिए अपनी पसंद के वस्त्र चुनता था, उसी प्रकार भिक्षु मन पर नियंत्रण रखता है और मन को अपने ऊपर हावी नहीं होने देता। सुबह, दोपहर और शाम को वह जिस भी अवस्था में रहना चाहता है, उसी अवस्था में रहता है। ऐसा भिक्षु गोसिंगा साला वन की शोभा बढ़ाता है।

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने भगवान से पूछा, “हे भगवान, किसके वचन सबसे सत्य हैं?” भगवान ने उत्तर दिया, “सारिपुत्त, तुम्हारे सभी वचन सत्य हैं, फिर भी मेरी बात सुनो। देखो, सारिपुत्त भिक्षु भोजन करने और भिक्षा मांगने के बाद पालथी मारकर बैठे हैं। शरीर को सीधा रखते हुए, एकाग्र मन से वे निश्चय करते हैं, “जब तक मेरा मन इच्छाओं से मुक्त नहीं हो जाता, मैं इस आसन को नहीं बदलूंगा।” ऐसा भिक्षु, सारिपुत्त, गोसिंगा साल वन की शोभा बढ़ाता है।”

इस प्रकार भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित किया। प्रसन्न होकर, पूजनीय भिक्षुओं ने भगवान के वचनों का आनंद लिया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 4.3 महागोपालक सुत्त(33)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिओइक द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। वहीं से भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित किया:

भिक्षुओं, ग्यारह गुणों से युक्त ग्वाले के लिए अपने झुंड को बढ़ाना संभव नहीं है। वे ग्यारह गुण क्या हैं? ग्वाला पदार्थ को नहीं जानता, चिह्नों में निपुण नहीं है, जूँ नहीं निकालता, घावों पर मरहम नहीं लगाता, जलधारा नहीं जलाता, नदी पार करने का मार्ग नहीं जानता, आनंद का अनुभव नहीं करता, मार्ग नहीं जानता, चारागाह खोजने में निपुण नहीं है, अवशेष न छोड़ने का दोष करता है, झुंड के पूर्वजों पर विशेष ध्यान नहीं देता। इन ग्यारह गुणों से युक्त ग्वाले के लिए अपने झुंड की देखभाल करना या उसे बढ़ाना संभव नहीं है। इसी प्रकार, इन ग्यारह गुणों से युक्त भिक्षु इस युग में वृद्धि और विकास नहीं कर सकता। वे ग्यारह गुण क्या हैं? भिक्षु पदार्थ को नहीं जानता, चिह्नों में निपुण नहीं है, जूँ नहीं निकालता, घावों पर पट्टी नहीं बांधता, धूम्रपान नहीं करता, नदी पार करने का मार्ग नहीं जानता, आनंद का अनुभव नहीं करता, मार्ग नहीं जानता, चारागाह खोजने में निपुण नहीं है, अवशेष न छोड़ने का दोष करता है, और समुदाय के पूर्वजों पर विशेष ध्यान नहीं देता। इन ग्यारह गुणों से युक्त भिक्षु के लिए इस युग में उन्नति और विकास संभव नहीं है।

भिक्षुओं, भिक्षु पदार्थ को कैसे नहीं जानता? भिक्षु को यह नहीं पता कि वह वास्तव में क्या है, कि समस्त पदार्थ चार महा तत्वों से बना है और मेरा जो पदार्थ है वह भी इन्हीं चार महा तत्वों से बना है। अतः भिक्षु पदार्थ को नहीं जानता। भिक्षु गुणों में चतुर क्यों नहीं है? भिक्षु को यह नहीं पता कि मूर्ख अपने कर्मों से और ज्ञानी अपने कर्मों से कैसे पहचाने जाते हैं, अतः भिक्षु गुणों में चतुर नहीं है। भिक्षु जूँओं को कैसे नहीं दूर करता? यहाँ भिक्षु कामुक विचारों को सहन करता है, उन्हें दूर नहीं करता और उन्हें पुनः उत्पन्न होने से नहीं रोकता। क्रोधित विचारों को सहन करता है, उन्हें दूर नहीं करता और उन्हें पुनः उत्पन्न होने से नहीं रोकता। पीड़ादायक विचारों को सहन करता है, उन्हें दूर नहीं करता और उन्हें पुनः उत्पन्न होने से नहीं रोकता। उत्पन्न दोषों को सहन करता है, उन्हें दूर नहीं करता और उन्हें पुनः उत्पन्न होने से नहीं रोकता। इस प्रकार भिक्षु जूँओं को दूर नहीं करता। भिक्षु घावों पर पट्टी क्यों नहीं बांधते? भिक्षु किसी आकृति को देखकर उसके संकेत और विवरण को ग्रहण कर लेते हैं। नेत्र-सम्मोहन शक्ति पर नियंत्रण न रखने वाले व्यक्ति में लोभ और अप्रसन्नता जैसे बुरे कर्म समाहित हो सकते हैं; इसलिए वे नेत्र-सम्मोहन शक्ति को नियंत्रित नहीं कर पाते और उसकी रक्षा नहीं करते। कान से ध्वनि सुनना, नाक से गंध का अनुभव करना, जीभ से स्वाद का अनुभव करना, शरीर से स्पर्श का अनुभव करना और मन से विचार का अनुभव करना, संकेत और विवरण को ग्रहण नहीं करते। मन-सम्मोहन शक्ति पर नियंत्रण न रखने वाले व्यक्ति में लोभ और अप्रसन्नता जैसे बुरे कर्म समाहित हो सकते हैं; इसलिए वे मन-सम्मोहन शक्ति को नियंत्रित नहीं कर पाते और उसकी रक्षा नहीं करते। इस प्रकार भिक्षु घावों पर पट्टी नहीं बांधते। भिक्षुओं, भिक्षु धुआं क्यों नहीं करते? यहां भिक्षु अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर दूसरों को शिक्षा का वर्णन नहीं करते। इसलिए भिक्षु धुआं नहीं करते। भिक्षुओं, भिक्षु को मार्ग का ज्ञान क्यों नहीं होता? भिक्षु समय-समय पर शिक्षा और अनुशासन के विद्वानों, जो इसके शीर्षकों को जानते हैं, के पास जाकर प्रश्न और परप्रश्न नहीं करते, ताकि वे अर्थों को जान सकें। ताकि वे पूजनीय विद्वान गूढ़ अर्थों की व्याख्या कर सकें और शंकाओं को दूर कर सकें। इस प्रकार भिक्षु को मार्ग का ज्ञान नहीं होता। भिक्षुओं, भिक्षु को आनंद का अनुभव क्यों नहीं होता? तथागत द्वारा घोषित शिक्षा और अनुशासन में भिक्षु को शिक्षा के अर्थों और उससे उत्पन्न आनंद का अनुभव नहीं होता। इस प्रकार भिक्षु को आनंद का अनुभव नहीं होता। भिक्षु को मार्ग का ज्ञान क्यों नहीं होता? यहाँ भिक्षु को अष्टांगिक मार्ग का वास्तविक स्वरूप ज्ञात नहीं होता। इस प्रकार भिक्षु को मार्ग का ज्ञान नहीं होता। भिक्षु चरागाहों को खोजने में चतुर क्यों नहीं होते? यहां भिक्षु को ध्यान के चार वास्तविक सिद्धांतों का ज्ञान नहीं है। इस प्रकार भिक्षु चरागाहों को चुनने में निपुण नहीं है। भिक्षु शेषफल न छोड़ने की गलती कैसे करता है? यहां भिक्षु गृहस्थों द्वारा आस्था के कारण दिए गए वस्त्र, भोजन, आवास और बीमार होने पर आवश्यक वस्तुएं स्वीकार कर लेता है, यह जाने बिना कि उसे कितना स्वीकार करना चाहिए। इस प्रकार भिक्षु शेषफल न छोड़ने की गलती करता है।भिक्षु समुदाय के पूर्वजों पर ध्यान क्यों नहीं देते? यहाँ भिक्षु समुदाय के नेताओं के प्रति शारीरिक, मौखिक और मानसिक रूप से प्रेमपूर्ण भाव नहीं दिखाते। वे नेता जिनका समुदाय में लंबा इतिहास है और जिन्हें विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस प्रकार भिक्षु समुदाय के पूर्वजों पर ध्यान नहीं देते। ऐसे में इन ग्यारह गुणों से संपन्न भिक्षु का इस शिक्षा और अनुशासन में विकास और उन्नति संभव नहीं है।

भिक्षुओं, यह संभव है कि ग्यारह गुणों से युक्त ग्वाला अपने झुंड को बढ़ा सके। वे ग्यारह गुण क्या हैं? ग्वाला पदार्थ का ज्ञाता होता है। वह लक्षणों को पहचानने में निपुण होता है। वह जूँ निकालता है, घावों पर मरहम लगाता है, धुआँ करता है, नदी पार करने का मार्ग जानता है, आनंद का अनुभव करता है और मार्ग का ज्ञाता होता है। वह चारागाह खोजने में निपुण होता है और कोई अवशेष न छोड़ने की गलती नहीं करता। वह झुंड के पूर्वजों का विशेष ध्यान रखता है। इन ग्यारह गुणों से युक्त ग्वाला अपने झुंड की देखभाल कर सकता है और उसे बढ़ा सकता है। इसी प्रकार, इन ग्यारह गुणों से युक्त भिक्षु इस युग में वृद्धि और विकास करेगा। वे ग्यारह गुण क्या हैं? भिक्षु पदार्थ का ज्ञाता होता है। वह लक्षणों को पहचानने में निपुण होता है, जूँ निकालता है, घावों पर मरहम लगाता है, धुआँ करता है, नदी पार करने का मार्ग जानता है, आनंद का अनुभव करता है, मार्ग का ज्ञाता होता है और चारागाह खोजने में निपुण होता है। वह कोई अवशेष न छोड़ने की गलती नहीं करता। वह समुदाय के पूर्वजों का विशेष ध्यान रखता है। इन ग्यारह गुणों से संपन्न होकर भिक्षु इस शिक्षा और उपदेश में उन्नति और विकास प्राप्त कर सकता है।

भिक्षुओं, भिक्षु पदार्थ को कैसे जानता है? भिक्षु पदार्थ को उसके वास्तविक स्वरूप में जानता है, कि समस्त पदार्थ चार महा तत्वों का मिश्रण है और वह पदार्थ भी है जिसे मैं अपने भीतर समाहित मानता हूँ। इस प्रकार भिक्षु पदार्थ को जानता है। भिक्षु लक्षणों में कैसे निपुण होता है? भिक्षु मूर्ख को उसके कर्मों से और बुद्धिमान को उसके कर्मों से पहचानता है। इस प्रकार भिक्षु लक्षणों में निपुण होता है। भिक्षु जूँओं को कैसे दूर करता है? भिक्षु कामुक विचारों को सहन नहीं करता, उन्हें भगा देता है और उन्हें पुनः उत्पन्न नहीं होने देता। क्रोधित विचारों को सहन नहीं करता, उन्हें भगा देता है और उन्हें पुनः उत्पन्न नहीं होने देता। पीड़ादायक विचारों को सहन नहीं करता, उन्हें भगा देता है और उन्हें पुनः उत्पन्न नहीं होने देता। उत्पन्न दोषों को सहन नहीं करता, उन्हें भगा देता है और उन्हें पुनः उत्पन्न नहीं होने देता। इस प्रकार भिक्षु जूँओं को दूर करता है। भिक्षु घावों पर मरहम कैसे लगाता है? आँख से किसी रूप को देखकर उसके चिह्न और विवरण को नहीं लेता। आँख की शक्ति पर नियंत्रण न रखने वाले व्यक्ति पर लोभ और अप्रसन्नता जैसे बुरे कर्मों का प्रभाव पड़ सकता है; इसलिए, उसे अपने वश में करके आँख की शक्ति की रक्षा करनी चाहिए। कान से ध्वनि सुनना, नाक से गंध महसूस करना, जीभ से स्वाद महसूस करना, शरीर से स्पर्श महसूस करना, मन से विचार महसूस करना, संकेत या विवरण को नहीं ग्रहण करता। मन की शक्ति पर नियंत्रण न रखने वाले व्यक्ति पर लोभ और अप्रसन्नता जैसे बुरे कर्मों का प्रभाव पड़ सकता है; इसलिए, उसे अपने वश में करके मन की शक्ति की रक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार भिक्षु घावों पर मरहम लगाते हैं। भिक्षुओं, भिक्षु धुआँ कैसे उत्पन्न करते हैं? यहाँ भिक्षु अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर दूसरों को शिक्षा समझाते हैं। इस प्रकार भिक्षु धुआँ उत्पन्न करते हैं। भिक्षुओं, भिक्षु को नदी पार करने का मार्ग कैसे पता चलता है? भिक्षु समय-समय पर शिक्षा और अनुशासन के उन विद्वान गुरुओं के पास जाते हैं, जो विषयों को जानते हैं, उनसे प्रश्न और परप्रश्न करते हैं, ताकि उनके अर्थ जान सकें। इससे वे पूजनीय गुरु छिपे हुए अर्थों को समझाते हैं और शंकाओं को दूर करते हैं। इस प्रकार भिक्षु को नदी पार करने का मार्ग पता चलता है। भिक्षुओं, भिक्षु को आनंद कैसे प्राप्त होता है? तथागत द्वारा घोषित शिक्षा और अनुशासन में भिक्षु को अर्थों का अनुभव होता है, शिक्षा में और उससे प्राप्त आनंद में। इस प्रकार भिक्षु को आनंद प्राप्त होता है। भिक्षु को मार्ग कैसे पता चलता है? यहाँ भिक्षु को अष्टांगिक मार्ग का वास्तविक स्वरूप पता चलता है। इस प्रकार भिक्षु को मार्ग का ज्ञान होता है। भिक्षु चरागाहों को खोजने में कैसे कुशल होते हैं? यहाँ भिक्षु को ध्यान के चार प्रतिष्ठान, जैसे वे वास्तविक हैं, का ज्ञान होता है। इस प्रकार भिक्षु चरागाहों को खोजने में कुशल होते हैं। भिक्षु किसी भी प्रकार से शेषफल न छोड़ने की गलती कैसे नहीं करता? यहाँ भिक्षु गृहस्थों द्वारा श्रद्धापूर्वक दिए गए वस्त्र, भोजन, आवास और बीमार होने पर आवश्यक वस्तुएँ, ज्ञात मात्रा में स्वीकार करता है। इस प्रकार भिक्षु किसी भी प्रकार का शेषफल न छोड़ने की गलती नहीं करता। भिक्षु समुदाय के पूर्वजों पर ध्यान कैसे नहीं देता? यहाँ भिक्षु प्रेमपूर्ण शारीरिक क्रियाओं, प्रेमपूर्ण वाणी और प्रेमपूर्ण मानसिक क्रियाओं द्वारा उनकी सेवा करता है।समुदाय के नेताओं की ओर। उन लोगों की ओर जिनका लंबा इतिहास रहा है और जिन्हें विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इस प्रकार भिक्षु समुदाय के पूर्वजों की देखभाल करता है। यह संभव है कि इन ग्यारह गुणों से संपन्न भिक्षु इस शिक्षा और अनुशासन में उन्नति और विकास प्राप्त करे।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 4.4कुलगोपालक सुत्त(34)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना:

एक समय भगवान बुद्ध वज्जियों के देश में, गंगा नदी के किनारे उक्काचेला में निवास करते थे। वहीं से भगवान बुद्ध भिक्षुओं को संबोधित करते थे।

भिक्षुओं, अतीत में मगध में एक मूर्ख ग्वाला था। शरद ऋतु में वर्षा ऋतु समाप्त होने पर उसने नदी के किनारे का न तो अवलोकन किया और न ही प्रस्थान का, और बिना घाट के ही अपने पशुओं को नदी पार कराकर दूसरे किनारे पर ले गया। नदी के बीच में ही उसका पशुओं का झुंड नदी के भंवर में फंस गया और नष्ट हो गया। कारण क्या है? जिस प्रकार मगध के उस मूर्ख ग्वाले ने शरद ऋतु में वर्षा ऋतु समाप्त होने पर बिना किनारे का न अवलोकन किए और बिना घाट के ही अपने पशुओं को गंगा नदी के दूसरे किनारे पर ले गया, उसी प्रकार यदि कोई ऐसे संन्यासियों और ब्राह्मणों की बातों पर विश्वास करे, जो न इस लोक के ज्ञान में निपुण हैं और न ही परलोक के, न मृत्यु के ज्ञान में और न ही अमरता के ज्ञान में, तो यह उसके लिए दीर्घकालिक विनाश और कष्ट का कारण बनेगा।

भिक्षुओं, पुराने समय में मगध में एक बुद्धिमान ग्वाला रहता था। शरद ऋतु में वर्षा ऋतु के अंत में, नदी के दोनों किनारों को देखते हुए, उसने एक घाट से अपने पशुओं को गंगा नदी के दूसरे किनारे पर ले गया। सबसे पहले उसने सांडों को भेजा, जो झुंड के मुखिया और पूर्वज थे। उन्होंने गंगा की धारा को पार किया और सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे पर पहुँच गए। फिर उसने बलवान और पालतू सांडों को भेजा, उन्होंने भी गंगा की धारा को पार किया और सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे पर पहुँच गए। फिर उसने युवा सांडों और गायों को भेजा, उन्होंने भी गंगा की धारा को पार किया और सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे पर पहुँच गए। फिर उसने छोटे बछड़ों और कमजोर पशुओं को भेजा, उन्होंने भी गंगा की धारा को पार किया और सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे पर पहुँच गए। यहाँ तक कि नवजात शिशु भी, जिन्हें माँ की पुकार का अनुसरण करना था, उन्होंने भी गंगा की धारा को पार किया और सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे पर पहुँच गए। भिक्षुओं, मगध के बुद्धिमान ग्वाले ने शरद ऋतु की वर्षा समाप्त होने पर, नदी के दोनों किनारों का चिंतन करते हुए, एक घाट से अपने पशुओं को गंगा नदी के दूसरे किनारे पर पार कराया। इसी प्रकार, यदि कोई ऐसे संन्यासियों और ब्राह्मणों की बात सुने और उन पर विश्वास करे, जो इस संसार में भी कुशल हैं, परलोक में भी कुशल हैं, मृत्यु के लोक में भी कुशल हैं, अमरत्व के लोक में भी कुशल हैं, मृत्यु के क्षेत्र में भी कुशल हैं और अमरत्व के क्षेत्र में भी कुशल हैं, तो यह उनके लिए दीर्घकाल तक कल्याणकारी होगा।

भिक्षु, बैल और झुंड के मुखिया, यानी झुंड के पूर्वज, गंगा की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार सिद्ध भिक्षु, जिन्होंने इच्छाओं का नाश कर, पवित्र जीवन व्यतीत किया, उचित कर्म किए, भार को त्याग दिया, परम सुख को प्राप्त किया और 'जन्म' के बंधनों को तोड़कर, सही ज्ञान से मुक्त होकर, मृत्यु की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच जाते हैं। शक्तिशाली और वश में किए गए बैल गंगा की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार, जिन भिक्षुओं ने इंद्रिय जगत के पाँचों बंधनों को तोड़ दिया है, वे स्वतः ही जन्म लेकर वहाँ से विलीन हो जाते हैं। वे वहाँ से गिरते नहीं, मृत्यु की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे तट तक पहुँच जाते हैं। युवा बैल और गायें गंगा की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार, जिन भिक्षुओं ने तीन निम्न बंधनों को तोड़कर लोभ, घृणा और मोह को कम किया है, वे इस संसार में एक बार फिर आते हैं, ताकि अप्रियता का अंत कर सकें। उन्होंने भी मृत्यु की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच गए हैं। बछड़े और दुर्बल भी गंगा की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच गए। इसी प्रकार, जो भिक्षु तीन निम्न बंधनों को नष्ट करके शिक्षा की धारा में प्रवेश करते हैं, वहाँ से नहीं गिरते, और निर्गमन के लिए दृढ़ संकल्पित होते हैं, उन्होंने भी मृत्यु की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच गए हैं। नवजात शिशु, जिन्हें माता की पुकार का अनुसरण करना पड़ा, उन्होंने भी गंगा की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच गए। इसी प्रकार, जो श्रद्धा के साथ शिक्षा में स्थिर रहते हैं, वे भी मृत्यु की धारा को काटकर सुरक्षित रूप से दूसरे किनारे तक पहुँच जाते हैं। भिक्षुओं, मैं इस संसार में चतुर हूँ, परलोक में चतुर हूँ, मृत्यु के क्षेत्र में चतुर हूँ, अमरता के क्षेत्र में चतुर हूँ, मृत्यु के क्षेत्र में चतुर हूँ और अमरता के क्षेत्र में चतुर हूँ। भिक्षुओं, यह उनके कल्याण और भलाई के लिए होगा कि कुछ लोग मेरी बात सुनने और मुझ पर विश्वास करने का विचार करेंगे। तब भगवान ने आगे कहा:

जो जानता है उसने इस संसार और परलोक का वर्णन कर दिया है, मृत्यु से क्या प्राप्त हो सकता है और क्या नहीं। सही मायने में प्रबुद्ध व्यक्ति ने समस्त संसार का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, अमरता का द्वार खुल गया है, शांति और निर्वाण प्राप्त करने का मार्ग खुल गया है। दुष्टों का प्रवाह कट गया है, नष्ट हो गया है और निष्फल हो गया है। भिक्षुओं, जिन्होंने शांति और सर्वोच्च कल्याण प्राप्त कर लिया है, आनंदित हो जाओ!

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 4.5 कुल सक्का सुत्त(35)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध वैशाली के विशाल वन में स्थित एक शिखरनुमा हॉल में निवास करते थे। उसी समय निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक, जो एक चतुर वाद-विवादक थे और अनेकों द्वारा बुद्धिमान माने जाते थे, वैशाली में रहते थे। वे वैशाली में घूमते हुए कहते थे, "मैंने किसी संन्यासी, ब्राह्मण, भीड़ के नेता, भीड़ के शिक्षक या स्वयं को पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध मानने वाले व्यक्ति को भी मेरे द्वारा वाद-विवाद के लिए आमंत्रित किए जाने पर कांपते, थरथराते और पसीना बहाते हुए नहीं देखा। यहां तक कि मेरे द्वारा वाद-विवाद के लिए बुलाए जाने पर एक निर्जीव स्तंभ भी कांप उठता है, तो मनुष्य का क्या होगा?" फिर पूज्य असाजी ने सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर वैशाली में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक, जो व्यायाम के लिए टहल रहे थे, ने

दूर से पूज्य असाजी को आते देखा और उनके पास गए। उन्होंने सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ खड़े होकर कहा: "हे असाजी, गौतम संत के शिष्यों को किस प्रकार प्रशिक्षित किया जाता है, और उन्हें किस भाग में अधिक प्रशिक्षण दिया जाता है?" तब पूज्य असाजी ने कहा, "अग्गिवेसना, भगवान बुद्ध अपने शिष्यों को इस भाग में बहुत उपदेश देते हैं और उन्हें विशेष रूप से प्रशिक्षित करते हैं: भिक्षुओं, पदार्थ क्षणभंगुर है। भावनाएँ क्षणभंगुर हैं। बोध क्षणभंगुर हैं। संकल्प क्षणभंगुर हैं और चेतना क्षणभंगुर है। भिक्षुओं, पदार्थ आत्मा नहीं है। भावनाएँ आत्मा नहीं हैं। बोध आत्मा नहीं हैं। संकल्प आत्मा नहीं हैं, और चेतना आत्मा नहीं है। सभी संकल्प क्षणभंगुर हैं।" सभी चीजें आत्मा नहीं हैं। भगवान बुद्ध भिक्षुओं को इस विषय पर बहुत उपदेश देते हैं और उनका प्रशिक्षण भी इसी पर केंद्रित है। हे भगवान असाजी, हमने कुछ ऐसा सुन लिया जो नहीं सुनना चाहिए था। यदि संन्यासी गौतम का यही मत है, तो हमें उनसे इस विषय पर चर्चा करने के लिए अवश्य मिलना चाहिए। ताकि इस मत के बारे में संदेह दूर हो सकें।

उस समय लगभग पाँच सौ लिच्छवी किसी कार्य से सभा भवन में एकत्रित थे। तब निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक उनके पास आए और बोले, “आइए लिच्छवी, आज मेरा और संन्यासी गौतम का विवाद है। यदि संन्यासी गौतम अपने शिष्य भिक्षु अस्सजी के इस मत का समर्थन करते हैं, तो हम उन्हें विवाद में घसीटेंगे। जैसे कोई बलवान पुरुष भेड़ को उसकी लंबी ऊन से खींचकर घसीटता है, या जैसे कोई शराब बनाने वाला किसी गहरे तालाब में एक बड़ा गड्ढा डुबोकर उसे हिलाता है, और उसके कान पकड़कर उसे हिलाता है, उसी प्रकार हम विवाद में संन्यासी गौतम को घसीटेंगे। जैसे साठ हाथ का हाथी गहरे तालाब में उतरकर भांग धोने का खेल खेलता है, उसी प्रकार हम संन्यासी गौतम के साथ भांग धोने का खेल खेलेंगे।” लिच्छवियों, आओ, मेरा और संन्यासी गौतम का विवाद है। तब एक लिच्छवी ने पूछा, “क्या संन्यासी गौतम का निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक से कोई विवाद है? या निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक का संन्यासी गौतम से कोई विवाद है?” दूसरे लिच्छवी ने पूछा, “क्या तेजस्वी सच्चक निगंथ (जैन) के पुत्र संन्यासी गौतम को विवाद के लिए बुला रहे हैं? या संन्यासी गौतम निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक को विवाद के लिए बुला रहे हैं?” तब निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक लगभग पाँच सौ लिच्छवियों के साथ विशाल वन में स्थित मंडप की ओर बढ़े। उस समय कई भिक्षु खुले में पैदल ध्यान कर रहे थे। तब निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक उन भिक्षुओं के पास गए और पूछा, “इस समय अच्छे गौतम कहाँ निवास कर रहे हैं? हम उनके दर्शन करना चाहते हैं।” अग्गिवेसना, भगवान बुद्ध महान वन में प्रवेश कर चुके हैं और दिन बिताने के लिए एक वृक्ष की जड़ में बैठे हैं। तभी निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक महान वन में आए और भगवान बुद्ध ने उनसे मैत्रीपूर्ण अभिवादन करते हुए एक तरफ बैठ गए। फिर कुछ लिच्छवियों ने भगवान बुद्ध की पूजा की और एक तरफ बैठ गए। कुछ ने मैत्रीपूर्ण अभिवादन करते हुए एक तरफ बैठ गए, कुछ ने भगवान बुद्ध की ओर हाथ जोड़कर एक तरफ बैठ गए, कुछ ने अपने नाम और गोत्र का उच्चारण करते हुए एक तरफ बैठ गए, और अन्य चुपचाप एक तरफ बैठ गए।

निगंथा (जैन) के पुत्र सच्चक ने भगवान बुद्ध से कहा, “हम अच्छे गौतम से एक प्रश्न पूछना चाहते हैं। यदि अच्छे गौतम हमें अनुमति दें और हमें इसका उत्तर दें, तो हम पूछ सकते हैं। भगवान बुद्ध ने कहा, ‘जो तुम चाहते हो, वह अग्गिवेसन से पूछो। अच्छे गौतम शिष्यों को किस प्रकार सलाह देते हैं और किन विषयों में उन्हें अधिक प्रशिक्षण देते हैं?’ अग्गिवेसन ने कहा, ‘मैं अपने शिष्य को इस प्रकार सलाह और प्रशिक्षण देता हूँ।’” भिक्षुओं, पदार्थ क्षणभंगुर है। भावनाएँ क्षणभंगुर हैं। बोध और संकल्प क्षणभंगुर हैं। चेतना क्षणभंगुर है। भिक्षुओं, पदार्थ आत्मा नहीं है। भावनाएँ आत्मा नहीं हैं। बोध और संकल्प आत्मा नहीं हैं। चेतना आत्मा नहीं है। सभी संकल्प क्षणभंगुर हैं। सभी वस्तुएँ आत्मा नहीं हैं। अग्गिवेसना, मैं अपने शिष्यों को इस भाग में सलाह देता हूँ और उन्हें बहुत प्रशिक्षण देता हूँ। हे गौतम, मुझे एक उपमा सूझ रही है। अग्गिवेसना, इसे कहिए। जैसे ये बीज समूह और वनस्पति समूह पृथ्वी पर स्थापित और पोषित होकर बढ़ते और विकसित होते हैं। उसी प्रकार सभी शक्तिशाली कार्य, जो किए जाने हैं, पृथ्वी पर स्थापित और पोषित होकर किए जाने चाहिए। उसी प्रकार यह व्यक्ति, जो पदार्थ में स्थापित है, भौतिक आत्मा के साथ पुण्य या पाप अर्जित करता है। यह भावपरक व्यक्ति, जो भावों में स्थापित है, पुण्य या पाप अर्जित करता है। यह बोधपरक व्यक्ति, जो बोधों में स्थापित है, पुण्य या पाप अर्जित करता है। यह संकल्पपरक व्यक्ति, जो संकल्पों में स्थापित है, पुण्य या पाप अर्जित करता है। दोष। चेतना में स्थापित सचेत व्यक्ति पुण्य या दोष अर्जित करता है। अग्गिवेसना, क्या आप कहते हैं कि पदार्थ मेरा आत्मा है। भावनाएँ मेरा आत्मा हैं। बोध मेरा आत्मा हैं। संकल्प मेरा आत्मा हैं। चेतना मेरा आत्मा है? हे गौतम, मैं कहता हूँ, पदार्थ मेरा आत्मा है। भावनाएँ मेरा आत्मा हैं। बोध मेरा आत्मा हैं। संकल्प मेरा आत्मा हैं। चेतना मेरा आत्मा है, और यह विशाल जनसमूह भी यही कहता है। यह विशाल जनसमूह आपके इस विचार के बारे में क्या कहता है? आपको अपने विचार पर बहस करनी चाहिए। हे गौतम, मैं कहता हूँ, पदार्थ मेरा आत्मा है। भावनाएँ मेरा आत्मा हैं। बोध मेरा आत्मा हैं। संकल्प मेरा आत्मा हैं, और चेतना मेरा आत्मा है।

फिर मैं इस विषय पर आपसे जिरह करूँगा और आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दे सकते हैं। हे गौतम, क्या कोसल के राजा पसेनदी और मगध के राजा अजातसत्तु जैसे अभिषिक्त योद्धा राजा अपने राज्यों में उन लोगों को मृत्युदंड देने, उन्हें पैदा करने और उन्हें निर्वासित करने का अधिकार रखते हैं जिन्हें मृत्युदंड देना आवश्यक है? जी हाँ, हे गौतम, कोसल के राजा पसेनदी और मगध के राजा अजातसत्तु जैसे अभिषिक्त योद्धा राजा अपने राज्यों में उन लोगों को मृत्युदंड देने, उन्हें पैदा करने और उन्हें निर्वासित करने का अधिकार रखते हैं

जिन्हें मृत्युदंड देना आवश्यक है। यहां एकत्रित हुए वज्जी और मल्ल वंश के नेता भी अपने राज्यों में उन लोगों को मृत्युदंड देने, उन्हें उत्पन्न करने और उन्हें निर्वासित करने की शक्ति रखते हैं जिन्हें निर्वासित किया जाना आवश्यक है, इसलिए कोसल के राजा पसेनदी और मगध के राजा अजातसत्तु जैसे अभिषिक्त योद्धा राजाओं के बारे में कोई संदेह नहीं है। अग्गिवेसना, आप कहते हैं कि पदार्थ आपका स्वरूप है, क्या आप उस पदार्थ पर अधिकार रखते हैं, क्या मेरा पदार्थ ऐसा हो सकता है और ऐसा नहीं हो सकता है? यह सुनकर निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक चुप हो गए। दूसरी बार भगवान बुद्ध ने पूछा, अग्गिवेसना, आप कहते हैं कि पदार्थ आपका स्वरूप है, क्या आप उस पदार्थ पर अधिकार रखते हैं, क्या मेरा पदार्थ ऐसा हो सकता है और ऐसा नहीं हो सकता है? दूसरी बार निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक चुप हो गए। तब भगवान बुद्ध ने कहा, अग्गिवेसना, इसे समझाओ। तुम्हारे चुप रहने का समय नहीं है। यदि कोई व्यक्ति तथागत बुद्ध द्वारा पूछे गए उचित प्रश्न का तीसरी बार तक उत्तर न दे, तो उसका सिर सात टुकड़ों में फट जाता है। उसी क्षण वज्रपाणि नामक राक्षस आकाश में अपने हाथ में जलता हुआ वज्र लिए प्रकट हुआ, मानो वह निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक का सिर फाड़ देगा यदि वह तथागत बुद्ध द्वारा पूछे गए उचित प्रश्न का तीसरी बार तक उत्तर न दे। वज्रपाणि नामक राक्षस को भगवान बुद्ध और निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक ने देखा। तब निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक भयभीत होकर और रोंगटे खड़े होकर भगवान बुद्ध की शरण में आए और कहा, हे गौतम, मुझसे पूछिए, मैं समझा दूंगा।

अग्गिवेसना, आप जो कहते हैं कि पदार्थ आपका ही स्वरूप है, क्या आप उस पदार्थ पर अपना अधिकार रखते हैं, ताकि मेरा पदार्थ ऐसा ही रहे, अन्यथा न रहे? नहीं, हे गौतम। ध्यानपूर्वक सुनिए और उत्तर दीजिए, अग्गिवेसना। आपने पहले जो कहा वह अब आपके कथन से मेल नहीं खाता। अग्गिवेसना, आप जो कहते हैं कि भावनाएँ आपका ही स्वरूप हैं, क्या आप उन भावनाओं पर अपना अधिकार रखते हैं, ताकि मेरी भावनाएँ ऐसी ही रहें, अन्यथा न रहें? नहीं, हे गौतम। ध्यानपूर्वक सुनिए और उत्तर दीजिए, अग्गिवेसना। आपने पहले जो कहा वह अब आपके कथन से मेल नहीं खाता। अग्गिवेसना, आप जो कहते हैं कि बोध आपका ही स्वरूप है, क्या आप उन बोधों पर अपना अधिकार रखते हैं, ताकि मेरी बोधियाँ ऐसी ही रहें, अन्यथा न रहें? नहीं, हे गौतम। ध्यानपूर्वक सुनिए और उत्तर दीजिए, अग्गिवेसना। आपने पहले जो कहा वह अब आपके कथन से मेल नहीं खाता। अग्गिवेसना, आप जो कहते हैं कि संकल्प आपका ही स्वरूप है, क्या आप उन संकल्पों पर अपना अधिकार रखते हैं, ताकि मेरे संकल्प ऐसे ही रहें, अन्यथा न रहें? नहीं, हे गौतम। ध्यानपूर्वक सुनो और उत्तर दो, अग्गिवेसना। तुमने पहले जो कहा था, वह अब जो कह रहे हो, उससे मेल नहीं खाता। अग्गिवेसना, तुम जो कहते हो कि चेतना ही तुम्हारा स्वरूप है, क्या तुम उस चेतना पर अधिकार रखते हो, ताकि मेरी चेतना ऐसी ही रहे, अन्यथा न रहे? नहीं, हे गौतम। ध्यानपूर्वक सुनो और उत्तर दो, अग्गिवेसना। तुमने पहले जो कहा था, वह अब जो कह रहे हो, उससे मेल नहीं खाता। अग्गिवेसना, तुम क्या सोचते हो, पदार्थ स्थायी है या अस्थायी? अस्थायी, हे गौतम। वह अस्थायी वस्तु, क्या सुखद है? सुखद है, अप्रिय। वह अस्थायी, अप्रिय, परिवर्तनशील वस्तु, क्या यह विचार करने योग्य है कि वह मेरी है, वह मैं हूँ, वह मेरा स्वरूप है? नहीं, हे गौतम। अग्गिवेसना, क्या भावनाएँ, क्या धारणाएँ, क्या निर्धारण, क्या चेतना स्थायी है या अस्थायी? अस्थायी, हे गौतम। वह अस्थायी वस्तु, क्या सुखद है? सुखद है, अप्रिय। क्या उस क्षणभंगुर, अप्रिय, परिवर्तनशील वस्तु को मेरा मानना, मुझे अपना स्वरूप मानना उचित है? नहीं, हे गौतम। अग्गिवेसना, जो अप्रियता से चिपका रहता है, उससे अभिभूत होता है, उसके दबाव में रहता है और उसे अपना मानता है, वह उसे अपना स्वरूप समझेगा। क्या वह स्वयं अप्रियता को सही ढंग से समझ पाएगा या उससे बचकर उसमें स्थिर रह पाएगा? हे गौतम, ऐसा कैसे संभव है? नहीं, हे गौतम, ऐसा नहीं हो सकता।

अग्गिवेसना, जैसे कोई व्यक्ति किसी पेड़ की जड़ और जड़ की खोज में भटकता हुआ खंजर लेकर जंगल में प्रवेश करता है, वहाँ एक लंबा, सीधा, नया केले का पेड़ देखकर उसकी जड़ें और ऊपरी भाग काट देता है, और पेड़ को गिराकर उसकी बालियाँ खोल देता है, लेकिन उसे अंदर की जड़ तक नहीं पहुँच पाता, तो फिर जड़ कहाँ है? ठीक उसी प्रकार, अग्गिवेसना, अपने ही विवाद में आपसे पूछताछ की गई, आपसे कारण पूछे गए, और आपके साथ अध्ययन करते हुए हमने आपको खोखला, बेकार और पथभ्रष्ट पाया। क्या आपने वैशाली की इन सभाओं में ऐसी कोई बात कही है? मुझे कोई संन्यासी, ब्राह्मण, भीड़ का नेता, भीड़ का शिक्षक, या यहाँ तक कि वह व्यक्ति भी जो स्वयं को पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध मानता है, मेरे द्वारा विवाद में खींचे जाने पर काँपता, थरथराता और पसीना बहाता हुआ नहीं दिखता। यहाँ तक कि एक निर्जीव स्तंभ भी मेरे द्वारा विवाद में खींचे जाने पर काँपता और थरथराता है, तो मनुष्य का क्या होगा? हे अग्गिवेसना, आपके माथे से पसीना टपक रहा है और कुछ बूंदें आपके शॉल को भेदकर जमीन पर गिर गई हैं, इस समय मेरे शरीर पर पसीना नहीं है। यह कहते हुए भगवान बुद्ध ने अपना स्वर्णमय शरीर उस सभा के सामने प्रकट किया। यह सुनकर निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक चुप हो गए, भ्रमित हो गए, उनका शरीर उदास हो गया, चेहरा नीचे की ओर झुका हुआ था, वे कुछ कह नहीं पाए और बैठ गए।

तब लिच्छवियों के पुत्र दुम्मुख ने निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक को चुपचाप, भ्रमित, उदास, चेहरा नीचे किए, उत्तर देने में असमर्थ बैठे हुए देखा। उसने भगवान बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, मेरे मन में एक उपमा आती है।" भगवान बुद्ध ने कहा, "बताइए दुम्मुख। हे पूज्यवर, एक गाँव या बस्ती के पास एक तालाब है, जिसमें एक केकड़ा रहता है। बहुत से लड़के-लड़कियाँ तालाब के पास जाते हैं, उसमें उतरते हैं और केकड़े को खींचकर सूखी ज़मीन पर ले आते हैं। जब भी केकड़ा अपना कोई अंग बाहर निकालता है, कोई लड़का या लड़की उसे

लाठी या पत्थर से काटकर नष्ट कर देता है। इस प्रकार, अपने सभी अंगों के नष्ट हो जाने के कारण, केकड़ा पहले की तरह तालाब में नहीं उतर पाता। इसी प्रकार, भगवान बुद्ध ने निगंथ के पुत्र सच्चक के सभी विकृत विचारों और बेचैनी को काट कर नष्ट कर दिया है, और अब यह संभव नहीं है कि वह विवाद करने के इरादे से भगवान बुद्ध के पास आए।" यह सुनकर निगंथा (जैन) के पुत्र सच्चक ने लिच्छवी वंश के पुत्र दुम्मुख से कहा, "रुको, दुम्मुख, हमें भले गौतम से बात करनी है।"

हे गौतम जी, मेरा यह विचार सभी संन्यासियों और ब्राह्मणों का भी विचार है। मुझे लगता है यह व्यर्थ की बातें हैं। हे गौतम जी के शिष्य, गुरु के मार्गदर्शन में कैसे कार्य करते हैं, दिए गए उपदेशों का पालन करते हैं, शंकाओं को दूर करते हैं, आत्मविश्वास प्राप्त करते हैं और गुरु पर निर्भर न रहकर गुरु के मार्गदर्शन में रहते हैं? हे अग्गिवेसन जी, मेरे शिष्यों, देखो, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, नीच या ऊँचा, दूर या पास, सब कुछ मेरा नहीं है। मैं वह नहीं हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है। इसे सही ज्ञान से, जैसा है वैसा ही देखा जाता है। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, नीच या ऊँचा, दूर या पास, सब कुछ मेरा नहीं है। मैं वह नहीं हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है। इसे सही ज्ञान से, जैसा है वैसा ही देखा जाता है। अग्गिवेसना, मेरे शिष्यों ने मेरे मार्गदर्शन में इतना ही किया है, सलाह का पालन किया है, शंकाओं को दूर किया है और गुरु पर निर्भर न रहकर आत्मविश्वास से भरे हुए हैं। हे गौतम, भिक्षु कैसे पूर्ण हो जाता है जब उसकी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं, वह पवित्र जीवन जीता है, जो करना चाहिए वह करता है, भार को त्याग देता है, सर्वोच्च सुख प्राप्त करता है, 'होने' की इच्छा को नष्ट कर देता है और सही ज्ञान से मुक्त हो जाता है? हे अग्गिवेसना, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, नीच या ऊँचा, दूर या पास, सब कुछ मेरा नहीं है। मैं वह नहीं हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है। इसे सही बुद्धि से, जैसा वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को बंधनों से मुक्त करना चाहिए। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, नीच या ऊँचा, दूर या पास, सब कुछ मेरा नहीं है। मैं वह नहीं हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है। इसे सही ज्ञान से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को बंधनों से मुक्त करना चाहिए। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल की, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, नीच या ऊँची, दूर या पास की, सभी धारणाएँ मेरी नहीं हैं। मैं वह नहीं हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है। इसे सही ज्ञान से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को बंधनों से मुक्त करना चाहिए। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल की, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, नीच या ऊँची, दूर या पास की, सभी धारणाएँ मेरी नहीं हैं। मैं वह नहीं हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है। इसे सही ज्ञान से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को बंधनों से मुक्त करना चाहिए। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल की, आंतरिक या बाह्य, स्थूल या सूक्ष्म, नीच या ऊँची, दूर या पास की, सभी चेतना मेरी नहीं है। मैं वह नहीं हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं है। इसे सही ज्ञान से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को बंधनों से मुक्त करना चाहिए। अग्गिवेसना, जब इतना हो जाए तो भिक्षु परिपूर्ण हो जाता है, उसकी इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं, पवित्र जीवन व्यतीत हो जाता है, जो करना चाहिए वह हो जाता है, बोझ उतर जाता है, सर्वोच्च कल्याण प्राप्त हो जाता है, और 'होने वाली' इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं।और सही ज्ञान प्राप्त होता है। अग्गिवेसना, इस प्रकार मुक्त हुए भिक्षु का मन तीन गुणों से परिपूर्ण हो जाता है: दृष्टि का गुण, विधि का गुण और मुक्ति का गुण। अग्गिवेसना, इस प्रकार मुक्त हुए भिक्षु तथागत बुद्ध का आदर, श्रद्धा और सम्मान करते हैं। भगवान बुद्ध प्रबुद्ध हैं, वे ज्ञान का उपदेश देते हैं; भगवान बुद्ध वश में हैं, वे वश में करने का उपदेश देते हैं; भगवान बुद्ध शांत हैं, वे शांत करने का उपदेश देते हैं। भगवान बुद्ध परलोक गए, वे परलोक जाने का उपदेश देते हैं; भगवान बुद्ध का नाश हुआ, वे नाश होने का उपदेश देते हैं।

यह सुनकर निगंथ के पुत्र सच्चक (जैन) ने भगवान बुद्ध से कहा: "हम साहसी और निडर थे और हमने सोचा कि हम गौतम बुद्ध का अपमान विवाद से करें। क्रोधित हाथी का अपमान करने वाला सुरक्षित रहेगा, परन्तु गौतम बुद्ध का अपमान करने वाला नहीं। जलती हुई लौ को छेड़ने वाला सुरक्षित रहेगा, परन्तु गौतम बुद्ध का अपमान करने वाला सुरक्षित नहीं रहेगा। विषैले साँप का अपमान करने वाला सुरक्षित रहेगा, परन्तु गौतम बुद्ध का अपमान करने वाला सुरक्षित नहीं रहेगा। हम साहसी और निडर थे और हमने सोचा कि हम गौतम बुद्ध का अपमान विवाद से करें। हे गौतम, कल का भोजन मेरे और भिक्षु समुदाय के साथ ग्रहण करें।" भगवान बुद्ध ने मौन स्वीकार किया।

तब निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक ने यह जानकर कि भगवान बुद्ध ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, लिच्छवियों से कहा, "हे लिच्छवियों, सुनो। मैंने भगवान बुद्ध और भिक्षु समुदाय को कल के भोज के लिए आमंत्रित किया है। जो भी तुम्हें उचित लगे, ले आओ।" तब उस रात के अंत में वे लिच्छवी पके हुए चावल से भरे पाँच सौ कटोरे लेकर आए। निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक ने भी अपने मठ में भरपूर पौष्टिक भोजन और पेय तैयार करवाए और भगवान बुद्ध को समय की सूचना दी, "हे गौतम, समय हो गया है, भोजन तैयार है।" तब भगवान बुद्ध ने सुबह वस्त्र धारण करके और कटोरे व वस्त्र लेकर निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक के मठ की ओर प्रस्थान किया और भिक्षु समुदाय के साथ तैयार आसन पर विराजमान हुए। तब निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक ने अपने हाथों से प्रबुद्ध बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षु समुदाय को भरपूर पौष्टिक भोजन और पेय अर्पित किए। निगंथ (जैन) के पुत्र सच्चक ने देखा कि भगवान बुद्ध ने भोजन कर लिया है और कटोरा रख दिया है। तब वह एक नीची चौकी पर एक तरफ बैठ गया और भगवान बुद्ध से कहा, "इस भेंट के उत्तम पुण्य उन

दाताओं को मिलें। हे अग्गिवेसना, लोभ, घृणा और मोह से मुक्त होकर आपको दी गई भेंटों से प्राप्त पुण्य उन दाताओं को मिलें। लोभ, घृणा और मोह से मुक्त होकर मुझे दी गई भेंटों से प्राप्त पुण्य आपको मिलें।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 4.6 महा सकाका सुत्त(36)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध वैशाली के विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में रह रहे थे। उस समय, जब सुबह हुई, भगवान बुद्ध वस्त्र धारण कर चुके थे और भिक्षा मांगने के लिए वैशाली जाने की इच्छा से अपना भिक्षापात्र और बाहरी वस्त्र धारण कर चुके थे। तभी, निगंथ के पुत्र सच्चक व्यायाम के लिए टहलते हुए विशाल वन में स्थित नुकीली छत वाले हॉल में आए। पूज्य आनंद ने उन्हें दूर से आते देखा और भगवान बुद्ध से कहा, "पूज्यवर, निगंथ के पुत्र सच्चक आ रहे हैं, जो वाद-विवाद में निपुण और कुशल वक्ता हैं और अनेकों द्वारा संत माने जाते हैं। वे बुद्ध, धम्म और संघ को बदनाम करना चाहते हैं। यदि भगवान बुद्ध दयावश कुछ देर बैठ जाएं तो अच्छा होगा।" भगवान बुद्ध तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। तब निगंथ के पुत्र सच्चक भगवान बुद्ध के पास गए और उनसे अभिवादन किया। जब यह विनम्र और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त हुई, तो वह एक तरफ बैठ गया और भगवान बुद्ध से बोला:

"गुरु गौतम, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे होते हैं जो शरीर के विकास में लगे रहते हैं, लेकिन मन के विकास में नहीं। वे शारीरिक पीड़ा से ग्रस्त रहते हैं। पहले, जब किसी को शारीरिक पीड़ा होती थी, तो उसकी जांघें अकड़ जाती थीं, दिल फट जाता था, मुंह से गर्म खून बहने लगता था और वह पागल हो जाता था, उसका दिमाग खराब हो जाता था। तब मन शरीर के अधीन था, शरीर उस पर हावी था। ऐसा क्यों था? क्योंकि मन विकसित नहीं था। लेकिन कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे होते हैं जो मन के विकास में लगे रहते हैं, लेकिन शरीर के विकास में नहीं। वे मानसिक पीड़ा से ग्रस्त रहते हैं। पहले, जब किसी को मानसिक पीड़ा होती थी, तो उसकी जांघें अकड़ जाती थीं, दिल फट जाता था, मुंह से गर्म खून बहने लगता था और वह पागल हो जाता था, उसका दिमाग खराब हो जाता था। तब शरीर मन के अधीन था, मन उस पर हावी था। ऐसा क्यों था? क्योंकि शरीर विकसित नहीं हुआ था। गुरु गौतम, मेरे मन में यह विचार आया है: 'निश्चित रूप से गुरु गौतम के शिष्य मन के विकास में लगे रहते हैं, न कि शरीर के विकास में।'

लेकिन, अग्गिवेसना, तुमने शरीर के विकास के बारे में क्या सीखा है?

उदाहरण के लिए, नंदा वच्छ, किसा संकिच्छ, मक्खली गोशाला जैसे लोग हैं। वे नंगे रहते हैं, रीति-रिवाजों को नकारते हैं, अपने हाथ चाटते हैं, बुलाए जाने पर नहीं आते, रुके नहीं; वे लाया हुआ भोजन, विशेष रूप से बनाया गया भोजन या भोजन का निमंत्रण स्वीकार नहीं करते; वे किसी बर्तन, कटोरे, दहलीज के पार, छड़ी, मूसल, साथ भोजन कर रहे दो लोगों, गर्भवती महिला, दूध पिला रही महिला, पुरुष के साथ लेटी महिला, जहाँ भोजन बाँटने का हो, जहाँ कुत्ता इंतज़ार कर रहा हो, जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही हों, से कुछ भी ग्रहण नहीं करते; वे मछली या मांस नहीं खाते, वे शराब, मदिरा या किण्वित पेय नहीं पीते। वे एक घर में, एक निवाला खाते हैं; वे दो घरों में, दो निवाले खाते हैं... वे सात घरों में, सात निवाले खाते हैं। वे एक थाली प्रतिदिन, दो थाली प्रतिदिन... सात थाली प्रतिदिन पर जीवन यापन करते हैं। वे दिन में एक बार, हर दो दिन में एक बार... हर सात दिन में एक बार, और इसी तरह हर पखवाड़े में एक बार तक भोजन करते हैं; वे निश्चित अंतराल पर भोजन करने की प्रथा का पालन करते हुए जीवन यापन करते हैं।

लेकिन क्या वे इतने कम पर ही अपना गुजारा करते हैं, अग्गिवेसना?

"नहीं, गुरु गौतम, कभी-कभी वे उत्तम कठोर भोजन, उत्तम नरम भोजन, उत्तम व्यंजन और उत्तम पेय का सेवन करते हैं। इससे वे अपनी शक्ति पुनः प्राप्त कर लेते हैं, मजबूत हो जाते हैं और मोटे हो जाते हैं।"

"जिस चीज को उन्होंने पहले त्याग दिया था, अग्गिवेसना, उसे वे बाद में फिर से अपना लेते हैं। इसी तरह इस शरीर में वृद्धि और कमी होती है। लेकिन आपने मन के विकास के बारे में क्या सीखा?"

जब भगवान बुद्ध ने निगंथा के पुत्र सच्चक से मन के विकास के बारे में पूछा, तो वह उत्तर देने में असमर्थ रहा।

तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा: "हे अग्गिवेसना, तुमने अभी जिस शरीर विकास की बात की है, वह धम्म के अनुसार, श्रेष्ठ धर्म के अनुसार शरीर विकास नहीं है। जब तुम शरीर विकास को नहीं जानते, तो मन विकास को कैसे जान सकते हो? फिर भी, हे अग्गिवेसना, शरीर और मन के अविकसित होने के विषय में, मेरी बात ध्यान से सुनो।"—"जी, श्रीमान," निगंथा के पुत्र सच्चक ने उत्तर दिया। भगवान बुद्ध ने यह कहा:

"हे अग्गिवेसन, शरीर और मन से अविकसित व्यक्ति कैसे होता है? यहाँ, अग्गिवेसन, एक अशिक्षित साधारण व्यक्ति में सुखद अनुभूति उत्पन्न होती है। उस सुखद अनुभूति से प्रेरित होकर वह सुख की लालसा करता है और निरंतर उसी लालसा में लगा रहता है। उसकी वह सुखद अनुभूति समाप्त हो जाती है। सुखद अनुभूति के समाप्त होते ही दुख की अनुभूति उत्पन्न होती है। उस दुख की अनुभूति से प्रेरित होकर वह शोक करता है, दुखी होता है और विलाप करता है, वह सीना पीटते हुए रोता है और व्याकुल हो जाता है। जब उसमें सुखद अनुभूति उत्पन्न होती है, तो वह उसके मन में प्रवेश कर जाती है और बनी रहती है क्योंकि शरीर विकसित नहीं होता। और जब उसमें दुख की अनुभूति उत्पन्न होती है, तो वह उसके मन में प्रवेश कर जाती है और बनी रहती है क्योंकि मन विकसित नहीं होता। जिस व्यक्ति में इस दोहरे तरीके से, उत्पन्न सुखद अनुभूति उसके मन में प्रवेश कर जाती है और बनी रहती है क्योंकि शरीर विकसित नहीं होता, और उत्पन्न दुख की अनुभूति उसके मन में प्रवेश कर जाती है और बनी रहती है क्योंकि मन विकसित नहीं होता, वह शरीर और मन दोनों से अविकसित होता है।"

"और हे अग्गिवेसन, शरीर और मन का विकास कैसे होता है? यहाँ, अग्गिवेसन, एक सुशिक्षित श्रेष्ठ शिष्य में सुखद अनुभूति उत्पन्न होती है। उस सुखद अनुभूति से प्रेरित होकर वह सुख की लालसा नहीं करता और न ही उसमें लिप्त रहता है। उसकी वह सुखद अनुभूति समाप्त हो जाती है। सुखद अनुभूति के समाप्त होते ही दुख की अनुभूति उत्पन्न होती है। उस दुख की अनुभूति से प्रेरित होकर वह शोक, शोक और विलाप नहीं करता, वह छाती पीट-पीटकर रोता नहीं और व्याकुल नहीं होता। जब उसमें सुखद अनुभूति उत्पन्न होती है, तो वह उसके मन में नहीं बसती और शरीर के विकास के कारण नहीं ठहरती। और जब उसमें दुख की अनुभूति उत्पन्न होती है, तो वह उसके मन में नहीं बसती और मन के विकास के कारण नहीं ठहरती। जिस व्यक्ति में इस दोहरे तरीके से उत्पन्न सुखद अनुभूति उसके मन में नहीं बसती और शरीर के विकास के कारण नहीं ठहरती, और उत्पन्न दुख की अनुभूति उसके मन में नहीं बसती और मन के विकास के कारण नहीं ठहरती, वह शरीर और मन दोनों से विकसित होता है।"

"मुझे गुरु गौतम पर इस प्रकार विश्वास है: 'गुरु गौतम शरीर और मन दोनों से विकसित हैं।'"

हे अग्गिवेसना, निःसंदेह आपके शब्द अपमानजनक और असभ्य हैं, फिर भी मैं आपको उत्तर दूंगा। जब से मैंने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन त्याग कर संन्यासी जीवन में प्रवेश किया है, तब से न तो कोई सुखद भावना मेरे मन में प्रवेश कर सकती है और न ही कोई दुखद भावना मेरे मन में प्रवेश कर सकती है और न ही बनी रह सकती है।

"क्या गुरु गौतम के मन में कभी कोई ऐसी सुखद अनुभूति नहीं उत्पन्न हुई जो उनके मन में व्याप्त हो जाए? क्या गुरु गौतम के मन में कभी कोई ऐसी पीड़ादायक अनुभूति नहीं उत्पन्न हुई जो उनके मन में व्याप्त हो जाए?"

"क्यों नहीं, अग्गिवेसना? यहाँ, अग्गिवेसना, ज्ञान प्राप्ति से पहले, जब मैं अभी भी एक अज्ञानी बोधिसत्व था, मैंने सोचा: 'गृहस्थ जीवन भीड़भाड़ वाला और धूल भरा है; परलोक में जीवन खुला और विशाल है। घर में रहते हुए, एक पॉलिश किए हुए शंख के समान पूर्ण और शुद्ध पवित्र जीवन जीना आसान नहीं है। मान लीजिए कि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लूँ, पीला वस्त्र पहन लूँ, और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाऊँ।'

बाद में, जब मैं अभी भी जवान था, एक काले बालों वाला युवक, यौवन के आशीर्वाद से परिपूर्ण, अपने जीवन के चरम पर... और मैं वहाँ बैठकर सोचने लगा: 'यह प्रयास करने के लिए उपयोगी होगा।'

"अब ये तीन उपमाएँ मुझे अनायास ही सूझीं, जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थीं। मान लीजिए कि पानी में लकड़ी का एक गीला, रसदार टुकड़ा पड़ा है, और एक आदमी आग जलाने वाली लकड़ी लेकर आता है, यह सोचते हुए: 'मैं आग जलाऊँगा, मैं गर्मी पैदा करूँगा।'

अग्गिवेसना, आप क्या सोचते हैं? क्या वह आदमी आग जलाने वाली लकड़ी को पानी में पड़े गीले, रसदार लकड़ी के टुकड़े पर रगड़कर आग जला सकता है और गर्मी पैदा कर सकता है?"

"नहीं, गुरु गौतम। क्यों नहीं? क्योंकि यह लकड़ी का एक गीला और रसदार टुकड़ा है, और यह पानी में पड़ा हुआ है। अंततः इससे मनुष्य को केवल थकान और निराशा ही मिलेगी।"

इसी प्रकार, अग्गिवेसना, उन संन्यासियों और ब्राह्मणों के लिए भी, जो अभी तक शारीरिक और मानसिक रूप से इंद्रिय सुखों से विरक्त नहीं हुए हैं, और जिनकी इंद्रिय सुखों की इच्छा, आसक्ति, मोह, प्यास और लालसा पूरी तरह से त्यागी और आंतरिक रूप से दबाई नहीं गई है, भले ही वे पुण्य संन्यासी और ब्राह्मण परिश्रम के कारण पीड़ादायक, कष्टदायक और भेदनशील अनुभूतियाँ अनुभव करें, वे ज्ञान, दृष्टि और परम ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ हैं; और भले ही वे पुण्य संन्यासी और ब्राह्मण परिश्रम के कारण पीड़ादायक, कष्टदायक और भेदनशील अनुभूतियाँ अनुभव न करें, वे ज्ञान, दृष्टि और परम ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ हैं। यह पहली उपमा थी जो मुझे अनायास ही सूझी, इससे पहले मैंने कभी नहीं सुनी थी।

"अग्गिवेसना, एक और उपमा मेरे मन में अनायास ही आई, जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी। मान लीजिए कि पानी से दूर सूखी ज़मीन पर लकड़ी का एक गीला, रसदार टुकड़ा पड़ा है, और एक आदमी आग जलाने वाली लकड़ी लेकर आता है, यह सोचते हुए: 'मैं आग जलाऊँगा, मैं गर्मी पैदा करूँगा।' अग्गिवेसना, आप क्या सोचते हैं? क्या वह आदमी आग जलाने वाली लकड़ी को पानी से दूर सूखी ज़मीन पर पड़े गीले, रसदार लकड़ी के टुकड़े पर रगड़कर आग जला सकता है और गर्मी पैदा कर सकता है?"

"नहीं, गुरु गौतम। क्यों नहीं? क्योंकि यह गीली और रसदार लकड़ी का टुकड़ा है, भले ही यह पानी से दूर सूखी जमीन पर पड़ा हो। अंततः इससे मनुष्य को केवल थकान और निराशा ही मिलेगी।"

"इसी प्रकार, अग्गिवेसना, उन संन्यासियों और ब्राह्मणों के लिए भी, जो शारीरिक और मानसिक रूप से इंद्रिय सुखों से विरक्त रहते हैं, परन्तु जिनकी इंद्रिय इच्छा, आसक्ति, मोह, प्यास और इंद्रिय सुखों की लालसा पूर्णतः त्यागी और आंतरिक रूप से दमित नहीं हुई है, चाहे वे पुण्य संन्यासी और ब्राह्मण परिश्रम के कारण पीड़ादायक, कष्टदायी और भेदनशील अनुभूतियाँ भी अनुभव करें, वे ज्ञान, दृष्टि और परम ज्ञान की प्राप्ति के योग्य नहीं हैं; और चाहे वे पुण्य संन्यासी और ब्राह्मण परिश्रम के कारण पीड़ादायक, कष्टदायी और भेदनशील अनुभूतियाँ न भी अनुभव करें, वे ज्ञान, दृष्टि और परम ज्ञान की प्राप्ति के योग्य नहीं हैं। यह दूसरी उपमा थी जो मुझे अनायास ही सूझी, मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी।"

"अग्गिवेसना, एक तीसरा उपमा मुझे अनायास ही सूझा, जो मैंने पहले कभी नहीं सुना था। मान लीजिए कि पानी से दूर सूखी ज़मीन पर लकड़ी का एक सूखा, रसहीन टुकड़ा पड़ा है, और एक आदमी आग जलाने वाली लकड़ी लेकर आता है, यह सोचते हुए: 'मैं आग जलाऊँगा, मैं गर्मी पैदा करूँगा।' अग्गिवेसना, आप क्या सोचते हैं? क्या वह आदमी पानी से दूर सूखी ज़मीन पर पड़े लकड़ी के सूखे, रसहीन टुकड़े पर लकड़ी रगड़कर आग जला सकता है और गर्मी पैदा कर सकता है?"

"जी हां, गुरु गौतम। ऐसा क्यों? क्योंकि यह सूखी, रसहीन लकड़ी का टुकड़ा है, और यह पानी से दूर सूखी जमीन पर पड़ा है।"

"इसी प्रकार, अग्गिवेसना, उन संन्यासियों और ब्राह्मणों के लिए जो शारीरिक और मानसिक रूप से इंद्रिय सुखों से विरक्त रहते हैं, और जिनकी इंद्रिय सुखों की इच्छा, आसक्ति, मोह, प्यास और लालसा पूर्णतः त्याग दी गई है और आंतरिक रूप से दबा दी गई है, भले ही वे पुण्य संन्यासी और ब्राह्मण परिश्रम के कारण पीड़ादायक, कष्टदायक और भेदनकारी अनुभूतियाँ अनुभव करें, वे ज्ञान, दृष्टि और परम ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम हैं; और भले ही वे पुण्य संन्यासी और ब्राह्मण परिश्रम के कारण पीड़ादायक, कष्टदायक या भेदनकारी अनुभूतियाँ अनुभव न करें, वे ज्ञान, दृष्टि और परम ज्ञान प्राप्त करने में सक्षम हैं। यह तीसरी उपमा थी जो मुझे अनायास ही सूझी, इससे पहले कभी नहीं सुनी थी। ये तीन उपमाएँ हैं जो मुझे अनायास ही सूझी, इससे पहले कभी नहीं सुनी थीं।"

मैंने सोचा: 'मान लो, मैं दांत भींचकर और जीभ को मुंह के ऊपरी भाग से दबाकर, मन को मन से कुचल दूं, उस पर नियंत्रण कर लूं।' तो, दांत भींचकर और जीभ को मुंह के ऊपरी भाग से दबाकर, मैंने मन को मन से कुचल दिया, उस पर नियंत्रण कर लिया और उस पर

नियंत्रण कर लिया। ऐसा करते हुए, मेरी बगलों से पसीना बहने लगा। जैसे कोई बलवान व्यक्ति किसी दुर्बल व्यक्ति को सिर या कंधों से पकड़कर नीचे गिरा देता है, उस पर नियंत्रण कर लेता है और उसे कुचल देता है, वैसे ही, दांत भींचकर और जीभ को मुंह के ऊपरी भाग से दबाकर, मैंने मन को मन से कुचल दिया, उस पर नियंत्रण कर लिया और उस पर नियंत्रण कर लिया, और मेरी बगलों से पसीना बहने लगा। यद्यपि मुझमें अथक ऊर्जा जागृत हुई और निरंतर जागरूकता स्थापित हुई, फिर भी मेरा शरीर पीड़ादायक प्रयास से थक जाने के कारण अशांत और बेचैन था। परन्तु मुझमें उत्पन्न हुई यह पीड़ादायक भावना मेरे मन पर हावी नहीं हुई और बनी नहीं रही।

मैंने सोचा: 'मान लो मैं श्वासहीन ध्यान का अभ्यास करूं।' इसलिए मैंने अपने मुख और नाक से श्वास लेना और छोड़ना बंद कर दिया। ऐसा करते समय मेरे कानों से तेज़ हवा की आवाज़ आई। जैसे लोहार की धौंकनी चलने पर तेज़ आवाज़ आती है, वैसे ही जब मैंने अपने नाक और कानों से श्वास लेना और छोड़ना बंद किया, तो मेरे कानों से तेज़ हवा की आवाज़ आई। यद्यपि मुझमें अथक ऊर्जा जागृत हुई और निरंतर जागरूकता स्थापित हुई, फिर भी मेरा शरीर पीड़ादायक प्रयास से थक जाने के कारण अशांत और बेचैन था। परन्तु मुझमें उत्पन्न हुई यह पीड़ादायक भावना मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।

मैंने सोचा: 'मान लो मैं श्वासहीन ध्यान का और अभ्यास करूं।' इसलिए मैंने अपने मुख, नाक और कानों से श्वास लेना और छोड़ना बंद कर दिया। ऐसा करते समय, मेरे सिर में तेज हवाएं चलने लगीं। मानो कोई बलवान व्यक्ति तेज तलवार से मेरा सिर चीर रहा हो, ठीक वैसे ही, जब मैंने अपने मुख, नाक और कानों से श्वास लेना और छोड़ना बंद किया, तो मेरे सिर में तेज हवाएं चलने लगीं। लेकिन यद्यपि मुझमें अथक ऊर्जा जागृत हुई और निरंतर जागरूकता स्थापित हुई, मेरा शरीर अत्यधिक तनावग्रस्त और अशांत था क्योंकि मैं कष्टदायक प्रयास से थक गया था। परन्तु मुझमें उत्पन्न हुई यह कष्टदायक भावना मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।

मैंने सोचा: 'मान लो मैं श्वासहीन ध्यान का अभ्यास और आगे बढ़ाऊँ।' इसलिए मैंने अपने मुँह, नाक और कानों से साँस लेना और छोड़ना बंद कर दिया। ऐसा करते समय मेरे सिर में तीव्र दर्द हुआ। मानो कोई बलवान व्यक्ति मेरे सिर पर चमड़े का सख्त पट्टा कसकर बाँध रहा हो, ठीक वैसे ही, जब मैंने अपने मुँह, नाक और कानों से साँस लेना और छोड़ना बंद किया, तो मेरे सिर में तीव्र दर्द हुआ। लेकिन यद्यपि मुझमें अथक ऊर्जा जागृत हुई और निरंतर जागरूकता स्थापित हुई, फिर भी मेरा शरीर अशांत और बेचैन था क्योंकि मैं इस पीड़ादायक प्रयास से थक गया था। परन्तु मुझमें उत्पन्न हुई यह पीड़ादायक अनुभूति मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।

मैंने सोचा: 'मान लो मैं श्वासहीन ध्यान का और अभ्यास करूं।' इसलिए मैंने अपने मुख, नाक और कानों से श्वास लेना और छोड़ना बंद कर दिया। ऐसा करते समय, तेज हवाओं ने मेरे पेट को चीर डाला। ठीक वैसे ही जैसे कोई कुशल कसाई या उसका शागिर्द किसी बैल के पेट को तेज चाकू से काटता है, वैसे ही, जब मैंने अपने मुख, नाक और कानों से श्वास लेना और छोड़ना बंद किया, तो तेज हवाओं ने मेरे पेट को चीर डाला। लेकिन यद्यपि मुझमें अथक ऊर्जा जागृत हुई और निरंतर जागरूकता स्थापित हुई, फिर भी मेरा शरीर अशांत और बेचैन था क्योंकि मैं कष्टदायक प्रयास से थक गया था। लेकिन मुझमें उत्पन्न हुई यह कष्टदायक भावना मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।

मैंने सोचा: 'मान लो मैं श्वासहीन ध्यान का अभ्यास और आगे बढ़ाऊँ।' इसलिए मैंने अपने मुँह, नाक और कानों से साँस लेना और छोड़ना बंद कर दिया। ऐसा करते समय मेरे शरीर में तीव्र जलन हुई। जैसे दो बलवान पुरुष किसी कमजोर पुरुष को दोनों भुजाओं से पकड़कर गर्म कोयलों के गड्ढे पर भून रहे हों, ठीक वैसे ही, जब मैंने अपने मुँह, नाक और कानों से साँस लेना और छोड़ना बंद किया, तो मेरे शरीर में तीव्र जलन हुई। यद्यपि मुझमें अथक ऊर्जा जागृत हुई और निरंतर जागरूकता स्थापित हुई, फिर भी मेरा शरीर अशांत और बेचैन था क्योंकि मैं इस पीड़ादायक प्रयास से थक गया था। परन्तु मुझमें उत्पन्न हुई यह पीड़ादायक अनुभूति मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।

“जब देवताओं ने मुझे देखा, तो कुछ ने कहा: 'सन्यासी गौतम मर गए हैं।' अन्य देवताओं ने कहा: 'सन्यासी गौतम मरे नहीं हैं, वे मर रहे हैं।' और अन्य देवताओं ने कहा: 'सन्यासी गौतम न तो मरे हैं और न ही मर रहे हैं; वे एक अरहंत हैं, क्योंकि अरहंत इसी प्रकार रहते हैं।”

मैंने सोचा: 'मान लीजिए मैं पूरी तरह से भोजन त्यागने का अभ्यास करता हूँ।' तब देवता मेरे पास आए और बोले: 'हे भगवान, पूरी तरह से भोजन त्यागने का अभ्यास न करें। यदि आप ऐसा करेंगे, तो हम आपकी त्वचा के रोमछिद्रों में दिव्य भोजन डाल देंगे और आप उसी पर जीवित रहेंगे।' मैंने सोचा: 'यदि मैं यह दावा करूँ कि मैं पूरी तरह से उपवास कर रहा हूँ जबकि ये देवता मेरी त्वचा के रोमछिद्रों में

दिव्य भोजन डाल रहे हैं और मैं उसी पर जीवित हूँ, तो मैं झूठ बोल रहा हूँगा।' इसलिए मैंने उन देवताओं को यह कहकर विदा कर दिया: 'इसकी कोई आवश्यकता नहीं है।'

मैंने सोचा: 'मान लीजिए कि मैं बहुत कम खाना लेता हूँ, एक बार में मुट्ठी भर, चाहे वह बीन्स का सूप हो, मसूर का सूप हो, वेच का सूप हो या मटर का सूप हो।' इसलिए मैं बहुत कम खाना खाता था, एक बार में बस मुट्ठी भर, चाहे वो बीन्स का सूप हो, मसूर का सूप हो, या मटर का सूप हो। ऐसा करते-करते मेरा शरीर अत्यधिक कमजोर हो गया। इतना कम खाने के कारण मेरे अंग बेल या बांस के तनों के जोड़ों जैसे हो गए। इतना कम खाने के कारण मेरी पीठ ऊंट के खुर जैसी हो गई। इतना कम खाने के कारण मेरी रीढ़ की हड्डी पर उभरे हुए हिस्से मोतियों की माला जैसे दिखने लगे। इतना कम खाने के कारण मेरी पसलियां किसी पुराने, बिना छत वाले खलिहान की टूटी-फूटी कड़ियों की तरह बाहर निकली हुई थीं। इतना कम खाने के कारण मेरी आंखों की चमक मिट गई, मानो किसी गहरे कुएं में डूबे पानी की चमक हो। इतना कम खाने के कारण मेरी खोपड़ी हवा और धूप में हरे करेले की तरह सिकुड़ गई। इतना कम खाने के कारण मेरे पेट की त्वचा मेरी रीढ़ की हड्डी से चिपक गई; इसलिए अगर मैं अपने पेट की त्वचा को छूता तो मुझे अपनी रीढ़ की हड्डी महसूस होती और अगर मैं अपनी रीढ़ की हड्डी को छूता तो... मुझे अपने पेट की त्वचा से परेशानी हुई। कम खाने के कारण, अगर मैं पेशाब या शौच करता, तो वहीं मुंह के बल गिर जाता। कम खाने के कारण, अगर मैं अपने हाथों से अपने अंगों को रगड़कर शरीर को आराम देने की कोशिश करता, तो जड़ से सड़े हुए बाल रगड़ते ही मेरे शरीर से झड़ जाते।

"अब जब लोग मुझे देखते थे, तो कुछ कहते थे: 'सन्यासी गौतम काले हैं।' कुछ कहते थे: 'सन्यासी गौतम काले नहीं, भूरे हैं।' कुछ कहते थे: 'सन्यासी गौतम न तो काले हैं और न ही भूरे, उनकी त्वचा सुनहरी है।' इतना कम खाने से मेरी त्वचा का साफ, चमकीला रंग इतना बिगड़ गया था।"

मैंने सोचा: 'अतीत में संन्यासियों या ब्राह्मणों ने परिश्रम के कारण जो भी पीड़ादायक, कष्टदायक और भेदक अनुभूतियाँ अनुभव की हैं, वह चरम सीमा है, इससे आगे कुछ नहीं है। और भविष्य में संन्यासियों और ब्राह्मणों को परिश्रम के कारण जो भी पीड़ादायक, कष्टदायक और भेदक अनुभूतियाँ अनुभव करनी होंगी, वह चरम सीमा है, इससे आगे कुछ नहीं है। और वर्तमान में संन्यासियों और ब्राह्मणों को परिश्रम के कारण जो भी पीड़ादायक, कष्टदायक और भेदक अनुभूतियाँ अनुभव करनी हैं, वह चरम सीमा है, इससे आगे कुछ नहीं है। परन्तु इस कष्टदायक तपस्या से भी मुझे कोई अलौकिक अवस्था, कोई ऐसा ज्ञान और दृष्टि प्राप्त नहीं हुई जो श्रेष्ठों के योग्य हो। क्या ज्ञान प्राप्ति का कोई और मार्ग हो सकता है?'

मैंने सोचा: 'मुझे याद है कि जब मेरे पिता शाक्य व्यस्त थे, तब मैं एक रसभरी की ठंडी छाया में बैठा था, इंद्रिय सुखों से पूरी तरह दूर, अस्वस्थ अवस्थाओं से अलग, तब मैंने प्रथम ध्यान अवस्था में प्रवेश किया और उसमें स्थिर रहा, जो निरंतर चिंतन, एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद से युक्त होती है। क्या यही ज्ञानोदय का मार्ग हो सकता है?' फिर, उस स्मृति के आधार पर, मुझे यह अहसास हुआ: 'यही ज्ञानोदय का मार्ग है।'

मैंने सोचा: 'मैं उस आनंद से क्यों डरता हूँ जिसका इंद्रिय सुखों और अस्वस्थ अवस्थाओं से कोई संबंध नहीं है?' मैंने सोचा: 'मैं उस आनंद से नहीं डरता क्योंकि उसका इंद्रिय सुखों और अस्वस्थ अवस्थाओं से कोई संबंध नहीं है।'

मैंने सोचा: 'इतने दुबले-पतले शरीर के साथ उस सुख को प्राप्त करना आसान नहीं है। मान लीजिए मैंने कुछ ठोस भोजन खाया—कुछ उबले हुए चावल और रोटी। और मैंने कुछ भोजन खाया—कुछ उबले हुए चावल और रोटी। उस समय पाँच भिक्षु मेरी सेवा में बैठे थे, यह सोचते हुए: 'यदि हमारे संन्यासी गौतम किसी उच्चतर अवस्था को प्राप्त कर लें, तो वे हमें सूचित करेंगे।' लेकिन जब मैंने उबले हुए चावल और रोटी खाई, तो पाँचों भिक्षु घृणा से भर गए और मुझे छोड़कर चले गए, यह सोचते हुए: 'सन्यासी गौतम अब विलासितापूर्ण जीवन जी रहे हैं; उन्होंने अपना परिश्रम त्याग दिया है और विलासिता में लौट गए हैं।'

"जब मैंने ठोस भोजन कर लिया और अपनी शक्ति पुनः प्राप्त कर ली, तब इंद्रिय सुखों से पूर्णतया विवश होकर, अस्वस्थ अवस्थाओं से विवश होकर, मैंने प्रथम ध्यान में प्रवेश किया और उसमें स्थिर रहा, जो निरंतर और गहन चिंतन के साथ-साथ एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद से परिपूर्ण होता है। परन्तु मेरे भीतर उत्पन्न हुई ऐसी सुखद अनुभूति मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।"

"लगातार और गहन चिंतन के शांत होने के साथ, मैंने दूसरे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें स्थिर रहा... परमानंद के भी लुप्त होने के साथ... मैंने तीसरे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें स्थिर रहा... सुख और दुख के त्याग के साथ... मैंने चौथे ध्यान में प्रवेश किया और उसमें स्थिर रहा... लेकिन मेरे भीतर जो सुखद भावना उत्पन्न हुई, वह मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।"

जब मेरा एकाग्र मन इस प्रकार शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अपूर्णता से मुक्त, लचीला, सुगम, स्थिर और अविचलित हो गया, तब मैंने इसे पूर्व जन्मों की स्मृति के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने अपने अनेक पूर्व जन्मों का स्मरण किया, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म... इस प्रकार उनके विभिन्न पहलुओं सहित मैंने अपने अनेक पूर्व जन्मों का स्मरण किया।

"यह वह पहला सच्चा ज्ञान था जो मुझे रात्रि के पहले पहर में प्राप्त हुआ। अज्ञान का नाश हुआ और सच्चे ज्ञान का उदय हुआ, अंधकार का नाश हुआ और प्रकाश का उदय हुआ, जैसा कि परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति के साथ होता है। परन्तु मेरे मन में जो सुखद अनुभूति उत्पन्न हुई, वह मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।"

जब मेरा एकाग्र मन इस प्रकार शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अपूर्णता से मुक्त, लचीला, सुगम, स्थिर और अविचलित हो गया, तो मैंने इसे प्राणियों के देहान्तरण और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर निर्देशित किया... इस प्रकार दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, मैंने प्राणियों को देहान्तरण और पुनर्जन्म लेते देखा, निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली, और मैंने समझा कि प्राणी अपने कर्मों के अनुसार कैसे देहान्तरण करते हैं।

"यह रात के दूसरे पहर में मुझे प्राप्त हुआ दूसरा सच्चा ज्ञान था। अज्ञान का नाश हुआ और सच्चे ज्ञान का उदय हुआ, अंधकार का नाश हुआ और प्रकाश का उदय हुआ, जैसा कि परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति के साथ होता है। परन्तु मेरे मन में जो सुखद अनुभूति उत्पन्न हुई, वह मेरे मन में नहीं बसी और न ही बनी रही।"

जब मेरा एकाग्र मन इस प्रकार शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, अपूर्णता से मुक्त, लचीला, सुगम, स्थिर और अविचलित हो गया, तो मैंने इसे दोषों के नाश के ज्ञान की ओर निर्देशित किया। मैंने प्रत्यक्ष रूप से यह जाना कि यह वास्तव में क्या है: 'यह दुख है;'... 'यह दुख का मूल है;'... 'यह दुख का निवारण है;'... 'यह दुख के निवारण का मार्ग है;'... 'ये दोष हैं;'... 'यह दोषों का मूल है;'... 'यह दोषों का निवारण है;'... 'यह दोषों के निवारण का मार्ग है।'

जब मैंने इस प्रकार जाना और देखा, तो मेरा मन इंद्रिय सुख, बोध और अज्ञान के दोष से मुक्त हो गया। मुक्त होने पर मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ: 'यह मुक्त हो गया है।' मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ: 'जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब किसी भी अवस्था में आना संभव नहीं है।'

"यह तीसरा सच्चा ज्ञान था जो मुझे रात के तीसरे पहर में प्राप्त हुआ। अज्ञान का नाश हुआ और सच्चे ज्ञान का उदय हुआ, अंधकार का नाश हुआ और प्रकाश का उदय हुआ, जैसा कि परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी व्यक्ति के साथ होता है। परन्तु मेरे मन में जो सुखद अनुभूति उत्पन्न हुई, वह मेरे मन पर हावी नहीं हुई और न ही बनी रही।"

"अग्गिवेसना, मुझे सैकड़ों लोगों की सभा में धम्म का उपदेश देना याद है। शायद हर कोई सोचता होगा: 'सन्यासी गौतम विशेष रूप से मुझे ही धम्म का उपदेश दे रहे हैं।' लेकिन ऐसा नहीं सोचना चाहिए; तथागत दूसरों को केवल ज्ञान देने के लिए ही धम्म का उपदेश देते हैं। जब प्रवचन समाप्त हो जाता है, अग्गिवेसना, तब मैं अपने मन को आंतरिक रूप से स्थिर करता हूँ, शांत करता हूँ, एकाग्रता में लाता हूँ और उसी एकाग्रता की अवस्था में एकाग्र करता हूँ जिसमें मैं निरंतर लीन रहता हूँ।"

"गुरु गौतम के बारे में यह बात मानी जा सकती है, क्योंकि वे सिद्ध और पूर्णतः प्रबुद्ध हैं। लेकिन क्या गुरु गौतम को दिन में सोने की याद है?"

"मुझे याद है, अग्गिवेसना, गर्मी के मौसम के आखिरी महीने में, भिक्षाटन से लौटने के बाद, भोजन करने के बाद मैंने अपना बाहरी वस्त्र चार भागों में मोड़कर बिछाया और अपनी दाहिनी ओर करवट लेकर सो गया, पूरी तरह सचेत और जागरूक होकर।"

"हे गौतम जी, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण इसे भ्रम में रहना कहते हैं।" "हे अग्गिवेसना, भ्रम में होने या न होने का कोई ऐसा तरीका नहीं है। भ्रम में होने या न होने के बारे में आप ध्यान से सुनिए और मेरी बात समझिए।"—"जी जी," निगंथ के पुत्र सच्चक ने उत्तर दिया। भगवान बुद्ध ने कहा: "मैं उसे भ्रमित कहता हूँ, अग्गिवेसन, जिसने उन दोषों का त्याग नहीं किया है जो दूषित करते हैं, जीवन का नवजीवन लाते

हैं, कष्ट देते हैं, दुख में परिणत होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं; क्योंकि दोषों का त्याग न करने से ही व्यक्ति भ्रमित होता है। मैं उसे भ्रममुक्त कहता हूँ जिसने उन दोषों का त्याग कर दिया है जो दूषित करते हैं, जीवन का नवजीवन लाते हैं, कष्ट देते हैं, दुख में परिणत होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं; क्योंकि दोषों का त्याग करने से ही व्यक्ति भ्रममुक्त होता है। तथागत, अग्गिवेसन ने उन दोषों का त्याग कर दिया है जो दूषित करते हैं, जीवन का नवजीवन लाते हैं, कष्ट देते हैं, दुख में परिणत होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं; उन्होंने उन्हें जड़ से काट दिया है, उन्हें ताड़ के ठूंठ के समान बना दिया है, उनका इस प्रकार उन्मूलन कर दिया है कि वे भविष्य में उत्पन्न होने के अधीन नहीं हैं। जैसे ताड़ के पेड़ का ऊपरी भाग काट दिया जाए तो वह आगे बढ़ने में असमर्थ हो जाता है, वैसे ही…" तथागत ने अपवित्र करने वाले दोषों का त्याग कर दिया है… उन्हें दूर कर दिया है ताकि वे भविष्य में फिर कभी उत्पन्न न हों।

यह सुनकर निगंथ के पुत्र सच्चक ने कहा, "हे गौतम जी, यह अद्भुत है, यह आश्चर्य की बात है कि जब गौतम जी से बार-बार अपमानजनक बातें की जाती हैं, अभद्र भाषा का प्रयोग किया जाता है, तब भी उनकी त्वचा का रंग निखरता है और उनके चेहरे का रंग साफ हो जाता है, जैसा कि सिद्ध और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति से अपेक्षित होता है। मुझे याद है, गौतम जी ने पुराण कस्सप से वाद-विवाद किया, फिर उन्होंने टालमटोल किया, बात को दूसरी ओर मोड़ दिया और क्रोध, घृणा और कड़वाहट दिखाई। लेकिन जब गौतम जी से बार-बार अपमानजनक बातें की जाती हैं, अभद्र भाषा का प्रयोग किया जाता है, तब भी उनकी त्वचा का रंग निखरता है और उनके चेहरे का रंग साफ हो जाता है, जैसा कि सिद्ध और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति से अपेक्षित होता है। मुझे याद है, गौतम जी ने मखली गोसला… अजित केशकंबलिन… पकुधा कच्चयन… संजय बेलत्थिपुत्त… निगंथ नटपुत्त से वाद-विवाद किया, फिर उन्होंने टालमटोल किया, बात को दूसरी ओर मोड़ दिया एक तरफ हटकर, उन्होंने क्रोध, घृणा और कड़वाहट दिखाई। लेकिन जब गुरु गौतम से बार-बार अपमानजनक ढंग से बात की जाती है, अभद्र भाषा का प्रयोग किया जाता है, तो उनकी त्वचा का रंग निखर उठता है और उनके चेहरे का रंग साफ हो जाता है, जैसा कि एक सिद्ध और पूर्ण रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति से अपेक्षित होता है। और अब, गुरु गौतम, हम प्रस्थान करते हैं। हम व्यस्त हैं और हमें बहुत कुछ करना है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 4.7 कुलतनहसंखाय सुत्त(37)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में मिगारा की माता के महल, पुब्बा मठ में निवास कर रहे थे। तब देवताओं के राजा सक्का भगवान बुद्ध के पास आए, प्रणाम किया, एक तरफ खड़े हुए और इस प्रकार कहा: हे पूज्यवर, भिक्षु को तृष्णा का नाश करके कैसे मुक्ति मिलती है? वह कैसे परिपूर्ण होता है, बंधनों से मुक्त होता है, पवित्र जीवन का अंत करता है और देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ बनता है?

हे देवताओं के राजा, यहाँ भिक्षु ज्ञानी हो उठता है और जान जाता है कि किसी भी चीज़ में स्थिर रहना उचित नहीं है। वह सभी चीजों को अच्छी तरह से और सही-सही जान लेता है, सभी चीजों को पहचानता है, सुख, दुख और न सुख, सभी प्रकार के भावों को महसूस करता है। उन भावों में वह अनित्यता देखता है, मन को उनसे अलग करता है, उनके अंत को देखता है और उन्हें त्याग देता है। अनित्यता, वैराग्य, अंत और उन भावों के त्याग को देखते हुए, वह संसार में किसी भी चीज को नहीं पकड़ता। कुछ न पकड़ने से चिंता नहीं होती। चिंता न करने से आंतरिक शांति मिलती है। जन्म नष्ट हो जाता है, जो करना चाहिए वह हो जाता है, पवित्र जीवन जी लिया जाता है, और वह जान जाता है कि अब और कुछ नहीं चाहना है। हे देवताओं के राजा, इतना जानने से ही भिक्षु पूर्णतः सिद्ध हो जाता है, बंधन से पूरी तरह मुक्त हो जाता है, भोग-विलास के नाश से मुक्त हो जाता है और देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ हो जाता है। फिर देवताओं के राजा, भगवान बुद्ध के वचनों से प्रसन्न होकर और सहमत होकर, उनकी पूजा और परिक्रमा करते हैं और वहीं से विलीन हो जाते हैं।

उस समय पूज्य महामोग्गलाना भगवान बुद्ध के पास बैठे थे और उनके मन में यह प्रश्न उठा कि क्या इस अमानव ने सचमुच भगवान बुद्ध के वचन समझ लिए हैं, क्या वह प्रसन्न होकर गायब हो गया है या नहीं, मुझे इसका पता लगाना चाहिए। तब पूज्य महामोग्गलाना, जैसे कोई बलवान व्यक्ति अपनी झुकी हुई भुजा को सीधा करता है या सीधी भुजा को मोड़ता है, वैसे ही मिगारा की माता के महल, पुब्बा मठ से गायब हो गए और बत्तीस देवताओं के साथ प्रकट हुए। उस समय देवताओं के राजा सक्का, पंचांग संगीत के साथ एकल श्वेत कमल के उद्यान में विराजमान थे। दूर से पूज्य महामोग्गलाना को आते देख, देवताओं के राजा सक्का ने पंचांग संगीत को विदा किया

और पूज्य महामोग्गलाना के पास आकर कहा: आपका स्वागत है! श्रीमान मोग्गलाना, बहुत समय बाद आपको यहाँ आने का अवसर मिला है। बैठिए, महाराज, आसन तैयार है। पूज्य महामोग्गलाना तैयार आसन पर बैठ गए। देवताओं के राजा सक्का भी एक छोटे आसन पर बैठ गए, और पूज्य महामोग्गलाना ने देवताओं के राजा से इस प्रकार कहा।

कोसिया, भगवान बुद्ध ने आपको भोग-विलास के नाश से मुक्ति का सार संक्षेप में कैसे समझाया? हम भी इसे सुनना चाहते हैं। हे भगवान, हमारे पास बहुत काम है, और बत्तीस देवताओं के लिए भी बहुत काम है। फिर भी, हे भगवान, मोग्गलाना, हमने इसे सुना, अच्छी तरह समझा, इस पर गहन विचार किया और इसे मन में संजो लिया, और हम तुरंत अंतर्धान हो गए। अतीत में देवताओं और अर्धदेवों के बीच युद्ध हुआ था। हमने उस युद्ध में अर्धदेवों को पराजित किया और विजय के बाद लौटकर विजय का जश्न मनाने के लिए, मैंने वेजंत नामक एक महल की रचना की। इस महल में सौ शिखर हैं, और प्रत्येक शिखर पर सात, सात सौ छज्जे हैं, प्रत्येक छज्जे पर सात अप्सराएँ हैं और प्रत्येक अप्सरा की सात परिचारिकाएँ हैं। हे भगवान, मोग्गलाना, क्या आप वेजंत महल की भव्यता देखना चाहते हैं? आदरणीय महामोग्गलाना ने मौन में स्वीकार किया।

तब देवताओं के राजा सक्का और महान राजा वेसवना, पूज्य महामोग्गलाना के पीछे-पीछे वेजनता महल की ओर बढ़े। दूर से पूज्य महामोग्गलाना को आते देख, देवताओं के राजा सक्का की परिचारिकाएँ पश्चाताप और लज्जा से अपने-अपने कमरों में लौट गईं, ठीक वैसे ही जैसे बहुएँ अपनी सास को इस हालत में देखकर दुखी हो जाती हैं। तब देवताओं के राजा सक्का और महान राजा वेसवना वेजनता महल में इधर-उधर घूमते हुए बोले, “हे मोग्गलाना, वेजनता महल की भव्यता देखिए। यह भव्यता पूज्य कोसिया के पूर्व कर्मों के कारण है। यहाँ तक कि लोग भी किसी अच्छी चीज़ को देखकर कहते हैं, यह भव्य है, यह बत्तीस देवताओं का काम है। पूज्य कोसिया अपने पूर्व कर्मों के कारण इस वैभव में निवास करते हैं।” तब पूज्य महामोग्गलाना के मन में यह विचार आया। यह मूर्ख अमानव लापरवाही में जी रहा है, अगर मैं उसे भयभीत कर दूं तो क्या होगा? तब पूज्य महामोग्गलाना ने एक ऐसी मानसिक शक्ति का प्रयोग किया जिससे उन्होंने अपने पैर के अंगूठे से वेजंत भवन को हिलाकर रख दिया। देवताओं के राजा सक्का, महान राजा वेसवना और तैंतीस देवताओं के दल को यह देखकर आश्चर्य और विस्मितता हुई कि एक संन्यासी अपने पैर के अंगूठे से स्वर्ग के भवन को इतनी तीव्रता से हिला सकता है। तब पूज्य महामोग्गलाना ने यह जानते हुए कि देवताओं के राजा सक्का भयभीत हैं और उनके रोंगटे खड़े हो गए हैं, उनसे इस प्रकार कहा।

कोसिया, भगवान बुद्ध ने आपको भोग-विलास के नाश से मुक्ति का सार संक्षेप में कैसे बताया? हम भी इसे सुनना चाहेंगे। हे भगवान, मोग्गलाना, मैं भगवान बुद्ध के पास गया, प्रणाम किया, एक तरफ खड़ा हुआ और इस प्रकार कहा: हे पूज्यवर, भोग-विलास के नाश से भिक्षु को संक्षेप में कैसे मुक्ति मिलती है? वह कैसे पूर्णतः सिद्ध होता है, कैसे बंधनों से मुक्त होकर पवित्र जीवन के अंत तक पहुँचता है और देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ बनता है? हे भगवान, मोग्गलाना, तब भगवान बुद्ध ने मुझसे इस प्रकार कहा: हे देवताओं के राजा, भिक्षु ज्ञानी हो जाता है, कि कुछ भी मन में स्थिर नहीं रह सकता। वह ज्ञानी हो जाता है, सभी चीजों का गहन ज्ञान प्राप्त करता है, सभी चीजों को सही-सही पहचानता है, सुखद, अप्रिय या न अप्रिय न सुखद, सभी प्रकार की भावनाओं का अनुभव करता है। वह उन भावनाओं में अनित्यता देखता है, मन को उनसे अलग करता है, उनके अंत को देखता है और उन्हें त्याग देता है। इस प्रकार अनित्यता, वैराग्य, निरोध और उन भावनाओं के त्याग को देखकर स्थिर रहने वाला व्यक्ति संसार में किसी भी वस्तु को पाने की लालसा नहीं रखता। लालसा न रखने से चिंता नहीं होती, चिंता न होने से आंतरिक शांति मिलती है। जन्म का नाश हो जाता है, जो करना चाहिए वह हो जाता है। पवित्र जीवन जीने वाला जानता है कि अब और कुछ पाने की इच्छा नहीं है। हे देवताओं के राजा, इतना करने से भिक्षु को तृष्णा का नाश हो जाता है। इस प्रकार वह परम सिद्ध हो जाता है, बंधनों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है, पवित्र जीवन का अंत हो जाता है और वह देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ हो जाता है। हे भगवान मोग्गलाना, भगवान ने तृष्णा के नाश से मुक्ति का संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया। तब पूज्य महामोग्गलाना, देवताओं के राजा सक्का के वचनों से प्रसन्न होकर और सहमत होकर, तैंतीस देवताओं के बीच से विलीन हो गए और पुब्बा मठ में प्रकट हुए, जो मिगारा की माता का महल था, जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी झुकी हुई भुजा को सीधा करता है या सीधी भुजा को मोड़ता है। आदरणीय महामोग्गलाना के जाने के तुरंत बाद, देवताओं के राजा सक्का के सेवकों ने उनसे कहा - "महोदय, क्या वह आपके गुरु हैं?" - "महोदय, वह हमारे गुरु नहीं हैं, वह मेरे सह-सहयोगी हैं।" आदरणीय महामोग्गलाना ने कहा, "महोदय, यह आपके लिए लाभ की बात है, आपके सह-सहयोगी इतने शक्तिशाली हैं, तो आपके गुरु के बारे में क्या?"

तब पूज्य महामोग्गलाना भगवान बुद्ध के पास आए, उनका प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए तथा उनसे कहा: “हे पूज्यवर, क्या भगवान बुद्ध को याद है कि उन्होंने किसी शक्तिशाली अमानव को तृष्णा के नाश द्वारा मुक्ति का सार समझाया था?” महामोग्गलाना, “मुझे याद है। यहाँ, देवताओं के राजा सक्का मेरे पास आए, मेरा प्रणाम किया और एक तरफ खड़े होकर पूछा, “हे पूज्यवर, भिक्षु तृष्णा के नाश द्वारा मुक्ति कैसे प्राप्त करता है? वह कैसे पूर्णतः सिद्ध होता है और बंधनों से मुक्त होकर पवित्र जीवन का अंत प्राप्त करता है?” “हे मोग्गलाना, जब यह कहा गया, तो मैंने देवताओं के राजा सक्का से कहा, “हे देवताओं के राजा, भिक्षु ज्ञानी हो जाता है और यह जान

जाता है कि किसी भी चीज में स्थिर होना उचित नहीं है। वह सभी चीजों का गहन ज्ञान प्राप्त कर लेता है और सभी चीजों को सटीक रूप से पहचान लेता है। वह सुखद, अप्रिय या न अप्रिय और न सुखद, सभी प्रकार की भावनाओं का अनुभव करता है। वह इन भावनाओं में अनित्यता देखता है।" अपने मन को उनसे अलग करके और उनके अंत को देखकर, वह उनका त्याग कर देता है। इस प्रकार अनित्यता, वैराग्य, अंत और उन भावनाओं के त्याग को देखकर वह संसार में किसी भी चीज की लालसा नहीं करता। लालसा न करने से चिंता नहीं होती। चिंता न करने से आंतरिक शांति मिलती है। जन्म का नाश होता है। जो करना चाहिए वह किया जाता है, पवित्र जीवन जिया जाता है, और वह जानता है कि अब और कुछ पाने की इच्छा नहीं है। हे देवताओं के राजा, इतना करने से भिक्षु को तृष्णा का नाश हो जाता है। वह अत्यंत सिद्ध हो जाता है, बंधनों के बंधन और पवित्र जीवन के अंत तक पूर्णतः पहुँच जाता है। वह देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ हो जाता है। मोग्गलाना, मुझे याद है कि मैंने देवताओं के राजा सक्का को तृष्णा के नाश से मुक्ति के बारे में संक्षेप में इस प्रकार समझाया था।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य महामोग्गलाना भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 4.8महातनहसंखाय सुत्त(38)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन में अनाथपिओइक द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। उस समय साती नामक एक मछुआरे के पुत्र भिक्षु के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ: "भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के अनुसार, यह चेतना जन्म-जन्म लेती है, और कुछ नहीं।" अनेक भिक्षुओं ने यह बात सुनी कि साती नामक एक मछुआरे के पुत्र भिक्षु के मन में यह गलत विचार उत्पन्न हुआ है: 'भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के अनुसार, यह चेतना जन्म-जन्म लेती है, और कुछ नहीं।' तब वे भिक्षु मछुआरे के पुत्र भिक्षु साती के पास आए और उनसे पूछा, "हे मित्र साती, क्या यह सच है कि तुम्हारे मन में ऐसा गलत विचार आया है: 'जैसा कि मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा जानता हूँ, यह चेतना जन्म-जन्मांतर तक जाती है, और कुछ नहीं'?" "जी हाँ, मित्रों, जैसा कि मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा जानता हूँ, यह चेतना जन्म-जन्मांतर तक जाती है, और कुछ नहीं।" तब उन भिक्षुओं ने भिक्षु साती को उस गलत विचार से विमुख करने की इच्छा से उनसे प्रश्न पूछे, कारण पूछे और उनके साथ अध्ययन किया, "साती, ऐसा मत कहो, भगवान बुद्ध को दोष मत दो। भगवान बुद्ध को दोष देना उचित नहीं है। भगवान बुद्ध ने ऐसा नहीं कहा है। भगवान बुद्ध ने विभिन्न तरीकों से कहा है कि चेतना आश्रित रूप से उत्पन्न होती है। बिना कारण के चेतना की उत्पत्ति नहीं होती।" जब उन भिक्षुओं ने उससे पूछताछ की, कारण पूछे और उसके साथ अध्ययन किया, तब भी वह अपने बुरे विचार पर अडिग रहा और उसे छोड़ने को तैयार नहीं था। उसने कहा, 'जैसा कि मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा को जानता हूँ, यह चेतना जन्म-जन्मांतर तक जाती है, और कुछ नहीं।'

जब वे भिक्षु साति भिक्षु को उस बुरे विचार से विमुख नहीं कर सके, तो वे भगवान बुद्ध के पास गए, प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, एक मछुआरे के पुत्र साति नामक भिक्षु के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ है: 'भगवान बुद्ध की शिक्षाओं को जानने के कारण, यह चेतना जन्म-जन्मांतर तक ही सीमित है, और कुछ नहीं।'" तब हम भिक्षु साति के पास गए और उनसे पूछा, "मित्र साति, क्या यह सच है कि आपके मन में ऐसा बुरा विचार उत्पन्न हुआ है: 'भगवान बुद्ध की शिक्षाओं को जानने के कारण, यह चेतना जन्म-जन्मांतर तक ही सीमित है, और कुछ नहीं'?" हे पूज्यवर, भिक्षु साति ने हमसे ऐसा कहा, "जी हां, मित्रों, 'भगवान बुद्ध की शिक्षाओं को जानने के कारण, यह चेतना जन्म-जन्मांतर तक ही सीमित है, और कुछ नहीं।'" तब हम भिक्षुओं ने भिक्षु साती को उस बुरे विचार से विमुख करने की इच्छा से उनसे प्रश्न पूछे, कारण पूछे और उनके साथ अध्ययन किया: साती, ऐसा मत कहो। भगवान बुद्ध पर दोष मत लगाओ। भगवान बुद्ध पर दोष लगाना उचित नहीं है। भगवान बुद्ध ने ऐसा नहीं कहा है। भगवान बुद्ध ने अनेक प्रकार से कहा है कि चेतना आश्रित रूप से उत्पन्न होती है। बिना कारण के चेतना की उत्पत्ति नहीं होती। हमारे प्रश्न पूछने, कारण पूछने और उनके साथ अध्ययन करने के बावजूद भी वे अपने बुरे विचार पर अडिग रहे और उसे छोड़ने को तैयार नहीं थे। जब हम भिक्षु साती को उस बुरे विचार से विमुख नहीं कर सके, तो हमने भगवान बुद्ध को इस बारे में सूचित करने के लिए उनसे संपर्क किया।

तब भगवान बुद्ध ने एक भिक्षु को संबोधित करते हुए कहा, "आओ! भिक्षु, मेरी वाणी में भिक्षु साती से कहो कि गुरुजी उन्हें बुला रहे हैं।" वह भिक्षु मान गया और भिक्षु साती के पास जाकर बोला, "भगवान बुद्ध आपको बुला रहे हैं।" भिक्षु साती ने कहा, "जी मित्र," और भगवान बुद्ध के पास जाकर प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान बुद्ध ने भिक्षु साती से कहा, "साती, क्या यह सच है कि तुम्हारे मन में ऐसा बुरा विचार आया है? जैसा कि मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा जानता हूँ, यह चेतना जन्म-जन्मांतर तक जाती है, और कुछ नहीं।" "जी, आदरणीय, जैसा कि मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा जानता हूँ, यह चेतना जन्म-जन्मांतर तक जाती है, और कुछ नहीं।" "साती, वह चेतना कैसी है?" "आदरणीय, यह उच्चारण और अनुभव करने वाली चेतना है, जो यहाँ-वहाँ किए गए अच्छे और बुरे कर्मों का फल भोगती है।" हे मूर्ख, तुम मुझे यह उपदेश देते हुए किसे जानते हो? क्या मैंने तुम्हें अनेक तरीकों से नहीं बताया कि चेतना स्वयं उत्पन्न होती है? बिना कारण के चेतना का कोई उद्भव नहीं होता। फिर भी, हे मूर्ख, अपनी गलत समझ के कारण मुझे दोष देते हो, अपना विनाश करते हो और बहुत से पुण्य सृजित करते हो, जो तुम्हारे लिए लंबे समय तक कष्ट और परेशानी का कारण बनेगा।

तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं? क्या इस मछुआरे के पुत्र भिक्षु साती को इस शिक्षा से वंचित नहीं किया जाना चाहिए? हे पूज्यवर, क्या भला हो? हमें ऐसा क्यों नहीं करना चाहिए?" यह सुनकर भिक्षु साती मौन हो गए, भ्रमित हो गए, उनका शरीर झुक गया और चेहरा नीचे की ओर हो गया। वे उत्तर देने में असमर्थ होकर बैठ गए। तब भगवान बुद्ध ने यह जानकर कि मछुआरे का पुत्र भिक्षु साती मौन हो गया है और उत्तर देने में असमर्थ है, उनसे कहा, "हे मूर्ख, तेरे बुरे विचार का फल मिलेगा। अब मैं इस विषय पर भिक्षुओं से प्रश्न पूछने जा रहा हूँ।" तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, क्या आप भी इस शिक्षा को जानते हैं, जिसे मछुआरे के पुत्र भिक्षु साती ने गलत तरीके से ग्रहण किया है? इससे वह मुझे दोषी ठहराता है। वह स्वयं को नष्ट करता है और बहुत से कष्टों को एकत्रित करता है।" जी नहीं, पूज्यवर। हमें अनेक तरीकों से बताया गया है कि चेतना आश्रित रूप से उत्पन्न होती है। बिना कारण के चेतना की उत्पत्ति नहीं हो सकती। भिक्षुओं, यह अच्छी बात है कि आप मेरे द्वारा प्रचारित शिक्षा को जानते हैं। मैंने अनेक तरीकों से यह उपदेश दिया है कि चेतना आश्रित रूप से उत्पन्न होती है। बिना कारण के चेतना की उत्पत्ति नहीं हो सकती। फिर भी, मछुआरे के पुत्र भिक्षु साती ने इस गलत धारणा को अपनाकर मुझे दोषी ठहराया और अपना विनाश किया, तथा बहुत पुण्य अर्जित किया। यह उसके लिए लंबे समय तक अपव्यय और अप्रसन्नता का कारण बनेगा।

भिक्षुओं, जिस भी आधार पर चेतना उत्पन्न होती है, उसी के आधार पर उसकी गणना की जाती है। आँख और रूपों के कारण चेतना उत्पन्न होती है, तो उसे आँख चेतना कहा जाता है। कान और ध्वनियों के कारण चेतना उत्पन्न होती है, तो उसे कान चेतना कहा जाता है। नाक और गंध के कारण चेतना उत्पन्न होती है, तो उसे नाक चेतना कहा जाता है। जीभ और स्वाद के कारण चेतना उत्पन्न होती है, तो उसे जीभ चेतना कहा जाता है। शरीर और स्पर्श के कारण चेतना उत्पन्न होती है, तो उसे शरीर चेतना कहा जाता है। मन और विचारों के कारण चेतना उत्पन्न होती है, तो उसे मन चेतना कहा जाता है। भिक्षुओं, जिस प्रकार किसी भी आधार पर अग्नि जलती है, उसी के आधार पर उसकी गणना की जाती है। लकड़ी से जलने वाली अग्नि लकड़ी की अग्नि होती है। टहनियों से जलने वाली अग्नि टहनी की अग्नि होती है। घास से जलने वाली अग्नि घास की अग्नि होती है। गोबर से जलने वाली अग्नि गोबर की अग्नि होती है। अनाज के भूसे से जलने वाली अग्नि अनाज के भूसे की अग्नि होती है। मिट्टी से जलने वाली अग्नि मिट्टी की अग्नि होती है। उसी प्रकार आँख और रूपों के कारण चेतना आँख चेतना होती है। कान और ध्वनियों के कारण होने वाली चेतना को कान चेतना कहते हैं। नाक और गंध के कारण होने वाली चेतना को नाक चेतना कहते हैं। जीभ और स्वाद के कारण होने वाली चेतना को स्वाद चेतना कहते हैं। शरीर और स्पर्श के कारण होने वाली चेतना को शरीर चेतना कहते हैं।

मन और विचारों के कारण ही मन चेतना होती है।

भिक्षुओं, क्या आप देखते हैं कि यह उत्पन्न हुआ है? जी हाँ, पूज्यवर। क्या आप देखते हैं कि यह सहारे से उत्पन्न होता है? जी हाँ, पूज्यवर। भिक्षुओं, क्या आप देखते हैं कि यदि सहारा हट जाए, तो इसका उत्पन्न होना भी बंद हो जाता है? जी हाँ, पूज्यवर।

भिक्षुओं, जब यह निश्चित न हो कि यह उत्पन्न हुआ है या नहीं, तो क्या संदेह उत्पन्न होते हैं? जी हाँ, पूज्यवर। जब यह निश्चित न हो कि यह समर्थित है या नहीं, तो क्या संदेह उत्पन्न होते हैं? जी हाँ, पूज्यवर। भिक्षुओं, जब यह निश्चित न हो कि समर्थन समाप्त होने पर उत्पन्न भी समाप्त हो जाएगा, तो क्या संदेह उत्पन्न होते हैं? जी हाँ, पूज्यवर।

भिक्षुओं, क्या सही ज्ञान से यह जानने पर कि संदेह उत्पन्न हुआ है, संदेह दूर हो जाता है? जी हाँ, पूज्यवर। भिक्षुओं, क्या सही ज्ञान से यह जानने पर कि संदेह सहारे से उत्पन्न हुआ है, संदेह दूर हो जाता है? जी हाँ, पूज्यवर। भिक्षुओं, क्या सही ज्ञान से यह जानने पर कि सहारे के समाप्त होने पर उत्पन्न संदेह भी समाप्त हो जाएगा, संदेह दूर हो जाता है? जी हाँ, पूज्यवर।

भिक्षुओं, यह उत्पन्न हुआ है, क्या आप इसके बारे में अपने संदेह दूर कर चुके हैं? जी हाँ, आदरणीय भिक्षुओं। भिक्षुओं, यह समर्थित होकर उत्पन्न हुआ है, क्या आप इसके बारे में अपने संदेह दूर कर चुके हैं? जी हाँ, आदरणीय भिक्षुओं। भिक्षुओं, जब समर्थन समाप्त हो जाता है तो उत्पत्ति भी समाप्त हो जाती है, क्या आप इसके बारे में अपने संदेह दूर कर चुके हैं? जी हाँ, आदरणीय भिक्षुओं।

भिक्षुओं, क्या आप सही ज्ञान से यह स्पष्ट रूप से देख पा रहे हैं कि यह कैसे उत्पन्न हो रहा है? जी हाँ, पूज्यवर। भिक्षुओं, क्या आप सही ज्ञान से यह स्पष्ट रूप से देख पा रहे हैं कि यह सहारे से उत्पन्न हो रहा है? जी हाँ, पूज्यवर। भिक्षुओं, क्या आप सही ज्ञान से यह स्पष्ट रूप से देख पा रहे हैं कि जब सहारा हट जाता है तो इसका उत्पन्न होना भी बंद हो जाता है? जी हाँ, पूज्यवर।

भिक्षुओं, यह दृष्टिकोण इतना पवित्र और शुद्ध है, यदि आप इस पर लालच, स्नेह, संजोकर रखना और गर्व करना चाहें, तो क्या आप जानते हैं कि यह शिक्षा एक नाव के समान है, जिसे त्यागने के उद्देश्य से सिखाया जाता है, न कि थामे रखने के उद्देश्य से? नहीं, पूज्यवर। भिक्षुओं, आपका यह दृष्टिकोण इतना पवित्र और शुद्ध है, इस पर लालच, स्नेह, संजोकर रखना और गर्व न करें। क्या आप जानते हैं कि यह शिक्षा एक नाव के समान है, जिसे त्यागने के उद्देश्य से सिखाया जाता है, न कि थामे रखने के उद्देश्य से? जी, पूज्यवर।

भिक्षुओं, ये चार आधार हैं, जो उत्पन्न प्राणियों के भरण-पोषण और जन्म की तलाश करने वालों के लिए सहायक हैं। ये चार क्या हैं? भौतिक भोजन, चाहे वह मोटा हो या महीन, दूसरा है संपर्क, तीसरा है मानसिक चिंतन और चौथा है चेतना।

भिक्षुओं, ये चारों आधार किससे उत्पन्न होते हैं, कहाँ से उठते हैं, कहाँ जन्म लेते हैं और कहाँ विकसित होते हैं?

ये चारों आधार लालसा से उत्पन्न होते हैं, बढ़ते हैं, जन्म लेते हैं और विकसित होते हैं।

भिक्षुओं, व्यथा किससे उत्पन्न होती है, कैसे जन्म लेती है और कैसे विकसित होती है?

लालसा भावनाओं से उत्पन्न होती है, बढ़ती है, जन्म लेती है और विकसित होती है।

भिक्षुओं, भावनाएँ कहाँ से उत्पन्न होती हैं, कहाँ से उठती हैं, कहाँ जन्म लेती हैं और कहाँ विकसित होती हैं?

भावनाएं संपर्क से उत्पन्न होती हैं, बढ़ती हैं, जन्म लेती हैं और विकसित होती हैं।

भिक्षुओं, संपर्क की उत्पत्ति, उदय, जन्म और विकास किससे होता है?

संपर्क की उत्पत्ति, विकास और विस्तार छह मानसिक क्षमताओं से ही होता है।

भिक्षुओं, ये छह मानसिक क्षमताएँ कहाँ से उत्पन्न होती हैं, कहाँ से उठती हैं, कहाँ जन्म लेती हैं और कहाँ विकसित होती हैं?

छह मानसिक क्षमताएं नाम और पदार्थ से उत्पन्न होती हैं, बढ़ती हैं, जन्म लेती हैं और विकसित होती हैं।

भिक्षुओं, नाम और पदार्थ की उत्पत्ति, उदय, जन्म और विकास किससे होता है?

नाम और पदार्थ चेतना से उत्पन्न होते हैं, उठते हैं, जन्म लेते हैं और विकसित होते हैं।

भिक्षुओं, चेतना की उत्पत्ति, उत्थान, जन्म और विकास किससे होता है?

चेतना संकल्पों से उत्पन्न होती है, बढ़ती है, जन्म लेती है और विकसित होती है।

भिक्षुओं, संकल्प कहाँ से उत्पन्न होते हैं, कहाँ से उठते हैं, कहाँ जन्म लेते हैं और कहाँ विकसित होते हैं?

संकल्प अज्ञान से उत्पन्न होते हैं, बढ़ते हैं, जन्म लेते हैं और विकसित होते हैं।

इस प्रकार भिक्षुओं, अज्ञान से संकल्प, संकल्प से चेतना, चेतना से नाम और पदार्थ, नाम और पदार्थ से छह मानसिक क्षेत्र, छह मानसिक क्षेत्रों से संपर्क, संपर्क से भावनाएँ, भावनाओं से लालसा, लालसा से अस्तित्व, अस्तित्व से जन्म, जन्म से क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार अप्रियता के इस संपूर्ण समूह का उद्‌भव होता है।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि क्षय और मृत्यु जन्म से ही उत्पन्न होते हैं। क्या क्षय और मृत्यु वास्तव में जन्म से ही उत्पन्न होते हैं, या यहाँ यह कैसे होता है? आदरणीय जी, क्षय और मृत्यु जन्म से ही उत्पन्न होते हैं। हमारे साथ ऐसा ही होता है। क्षय और मृत्यु जन्म से ही उत्पन्न होते हैं।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि जन्म अस्तित्व से उत्पन्न होता है। क्या वास्तव में जन्म अस्तित्व से उत्पन्न होता है या नहीं, या यह यहाँ कैसे होता है? आदरणीय जी, जन्म अस्तित्व से उत्पन्न होता है, यह हमारे साथ इसी प्रकार घटित होता है। जन्म अस्तित्व से उत्पन्न होता है।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि अस्तित्व धारण से उत्पन्न होता है। क्या वास्तव में अस्तित्व धारण से उत्पन्न होता है या नहीं, या यहाँ यह कैसे होता है? आदरणीय जी, अस्तित्व धारण से उत्पन्न होता है। हमारे साथ ऐसा ही होता है। अस्तित्व धारण से उत्पन्न होता है।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि आसक्ति तृष्णा से उत्पन्न होती है। क्या वास्तव में आसक्ति तृष्णा से उत्पन्न होती है या नहीं, या यहाँ यह कैसे होता है? आदरणीय भिक्षु, आसक्ति से तृष्णा उत्पन्न होती है। हमारे साथ ऐसा ही होता है। आसक्ति से तृष्णा उत्पन्न होती है।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि तृष्णा भावनाओं से उत्पन्न होती है। क्या वास्तव में तृष्णा भावनाओं से उत्पन्न होती है या नहीं, या यहाँ यह कैसे होती है? आदरणीय जी, तृष्णा भावनाओं से उत्पन्न होती है। हमारे साथ ऐसा ही होता है। तृष्णा भावनाओं से उत्पन्न होती है।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि भावनाएँ संपर्क से उत्पन्न होती हैं। क्या वास्तव में भावनाएँ संपर्क से उत्पन्न होती हैं या नहीं, या यहाँ यह कैसे होता है? आदरणीय जी, भावनाएँ संपर्क से उत्पन्न होती हैं। हमारे साथ ऐसा ही होता है। भावनाएँ संपर्क से उत्पन्न होती हैं।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि संपर्क छह मानसिक क्षेत्रों से उत्पन्न होता है। क्या वास्तव में संपर्क छह मानसिक क्षेत्रों से उत्पन्न होता है या नहीं, या यहाँ यह कैसे होता है? पूज्यवर, संपर्क छह मानसिक क्षेत्रों से उत्पन्न होता है। हमारे साथ ऐसा ही होता है। संपर्क छह मानसिक क्षेत्रों से उत्पन्न होता है।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि छह मानसिक क्षेत्र नाम और पदार्थ से उत्पन्न होते हैं। क्या वास्तव में ये छह मानसिक क्षेत्र नाम और पदार्थ से उत्पन्न होते हैं या नहीं, या यहाँ यह कैसे होता है? पूज्यवर, छह मानसिक क्षेत्र नाम और पदार्थ से उत्पन्न होते हैं। हमारे साथ ऐसा ही होता है। छह मानसिक क्षेत्र नाम और पदार्थ से उत्पन्न होते हैं।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि नाम और पदार्थ चेतना से उत्पन्न होते हैं। क्या नाम और पदार्थ वास्तव में चेतना से उत्पन्न होते हैं या नहीं, या यहाँ यह कैसे होता है? पूज्यवर, नाम और पदार्थ चेतना से उत्पन्न होते हैं। हमारे साथ ऐसा ही होता है। नाम और पदार्थ चेतना से उत्पन्न होते हैं।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि चेतना संकल्पों से उत्पन्न होती है। क्या वास्तव में चेतना संकल्पों से उत्पन्न होती है या नहीं, या यहाँ यह कैसे होता है? पूज्यवर, चेतना संकल्पों से उत्पन्न होती है। हमारे साथ ऐसा ही होता है। चेतना संकल्पों से उत्पन्न होती है।

अच्छा! भिक्षुओं, आप भी यही कहते हैं और मैं भी यही कहता हूँ। अतः जब यह विद्यमान होता है, तो यह घटित होता है। जब यह उत्पन्न होता है, तो यह उत्पन्न होता है। जैसे, अज्ञान के कारण संकल्प उत्पन्न होते हैं। संकल्पों के कारण चेतना उत्पन्न होती है। चेतना के कारण नाम और पदार्थ उत्पन्न होते हैं। नाम और पदार्थ के कारण छह मानसिक क्षेत्र उत्पन्न होते हैं। छह मानसिक क्षेत्रों के कारण संपर्क उत्पन्न होता है। संपर्क के कारण भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। भावनाओं के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। तृष्णा के कारण आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्ति के कारण अस्तित्व उत्पन्न होता है। अस्तित्व के कारण जन्म उत्पन्न होता है। जन्म के कारण क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार अप्रियता का संपूर्ण समूह उत्पन्न होता है। अज्ञान के पूर्ण निवारण से संकल्प समाप्त हो जाते हैं। संकल्पों के पूर्ण निवारण से चेतना समाप्त हो जाती है। चेतना के निवारण से नाम और पदार्थ समाप्त हो जाते हैं। नाम और पदार्थ के निवारण से छह मानसिक क्षेत्र समाप्त हो जाते हैं। छह मानसिक क्षेत्रों के निवारण से संपर्क समाप्त हो जाता है। संपर्क के

निवारण से भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। भावनाओं के निवारण से तृष्णा समाप्त हो जाती है। लालसा के समाप्त होने से आसक्ति समाप्त हो जाती है। आसक्ति के समाप्त होने से अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अस्तित्व के समाप्त होने से जन्म समाप्त हो जाता है। जन्म के समाप्त होने से क्षय, मृत्यु, शोक, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और पीड़ा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार अप्रियता का पूर्ण अंत हो जाता है।

भिक्षुओं, ऐसा कहा जाता है कि संकल्प अज्ञान से उत्पन्न होते हैं। क्या वास्तव में संकल्प अज्ञान से उत्पन्न होते हैं या नहीं, या यहाँ ऐसा कैसे होता है? पूज्यवर, संकल्प अज्ञान से उत्पन्न होते हैं। हमारे साथ ऐसा ही होता है। संकल्प अज्ञान से उत्पन्न होते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि जन्म का अंत होने पर क्षय और मृत्यु का भी अंत हो जाता है। भिक्षुओं, क्या जन्म का अंत होने पर क्षय और मृत्यु का भी अंत हो जाता है, या नहीं होता है, या यह कैसे होता है? आदरणीय महोदय, जन्म का अंत होने पर क्षय और मृत्यु का भी अंत हो जाता है। हमारे साथ भी ऐसा ही होता है, जन्म का अंत होने पर क्षय और मृत्यु का अंत हो जाता है।

कहते हैं कि जब अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तो जन्म भी समाप्त हो जाता है। भिक्षुओं, क्या अस्तित्व समाप्त होने पर जन्म भी समाप्त हो जाता है, या नहीं, या यह कैसे होता है? आदरणीय जी, जब अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तो जन्म भी समाप्त हो जाता है। ऐसा हमारे साथ होता है। जब अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तो जन्म भी समाप्त हो जाता है।

कहते हैं कि जब धारण करना समाप्त हो जाता है, तब अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। भिक्षुओं, क्या अस्तित्व समाप्त होने पर धारण करना भी समाप्त हो जाता है, या नहीं, या यह कैसे होता है? आदरणीय जी, जब धारण करना समाप्त हो जाता है, तब अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है। ऐसा हमारे साथ होता है। जब धारण करना समाप्त हो जाता है, तब अस्तित्व भी समाप्त हो जाता है।

जब व्यथा समाप्त होती है, तो आसक्ति भी समाप्त हो जाती है, ऐसा कहा जाता है। भिक्षुओं, क्या आसक्ति समाप्त होने पर व्यथा भी समाप्त हो जाती है, या नहीं, या यह कैसे होता है? आदरणीय जी, जब व्यथा समाप्त होती है, तो आसक्ति भी समाप्त हो जाती है। ऐसा हमारे साथ होता है। जब व्यथा समाप्त होती है, तो आसक्ति भी समाप्त हो जाती है।

ऐसा कहा जाता है कि जब भावनाएँ शांत हो जाती हैं तो व्यथा भी शांत हो जाती है। हे भिक्षुओं, क्या भावनाएँ शांत होने पर व्यथा भी शांत हो जाती है, या नहीं, या यह कैसे होता है? आदरणीय महोदय, जब भावनाएँ शांत हो जाती हैं तो व्यथा भी शांत हो जाती है। ऐसा हमारे साथ होता है। जब भावनाएँ शांत हो जाती हैं तो व्यथा भी शांत हो जाती है।

जब संपर्क टूटता है तो भावना भी रुक जाती है, ऐसा कहा जाता है। भिक्षुओं, क्या संपर्क टूटने पर भावना भी रुक जाती है या नहीं, या यह कैसे होता है? आदरणीय महोदय, संपर्क टूटने पर भावना भी रुक जाती है। ऐसा हमारे साथ होता है। संपर्क टूटने पर भावना भी रुक जाती है।

जब छह मानसिक क्षेत्र निष्क्रिय हो जाते हैं, तो संपर्क भी समाप्त हो जाता है। भिक्षुओं, क्या संपर्क समाप्त होने पर छह मानसिक क्षेत्र भी निष्क्रिय हो जाते हैं या नहीं, या यह कैसे होता है? आदरणीय महोदय, जब छह मानसिक क्षेत्र निष्क्रिय हो जाते हैं, तो संपर्क भी समाप्त हो जाता है। ऐसा हमारे साथ होता है। जब छह मानसिक क्षेत्र निष्क्रिय हो जाते हैं, तो संपर्क भी समाप्त हो जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि जब नाम और पदार्थ का अस्तित्व समाप्त हो जाता है, तो छह मानसिक क्षेत्र भी समाप्त हो जाते हैं। भिक्षुओं, क्या नाम और पदार्थ के अस्तित्व समाप्त होने पर छह मानसिक क्षेत्र भी समाप्त हो जाते हैं या नहीं, या वे कैसे समाप्त होते हैं? आदरणीय जी, नाम और पदार्थ के अस्तित्व समाप्त होने पर छह मानसिक क्षेत्र समाप्त हो जाते हैं। ऐसा हमारे साथ होता है। नाम और पदार्थ के अस्तित्व समाप्त होने पर छह मानसिक क्षेत्र समाप्त हो जाते हैं।

जब चेतना समाप्त होती है तो नाम और पदार्थ का भी अंत हो जाता है, ऐसा कहा जाता है। भिक्षुओं, क्या चेतना समाप्त होने पर नाम और पदार्थ का भी अंत हो जाता है या नहीं, या यह कैसे होता है? आदरणीय जी, जब चेतना समाप्त होती है तो नाम और पदार्थ का भी अंत हो जाता है। ऐसा हमारे साथ होता है। जब चेतना समाप्त होती है तो नाम और पदार्थ का भी अंत हो जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि जब संकल्प समाप्त हो जाते हैं तो चेतना भी समाप्त हो जाती है। भिक्षुओं, क्या संकल्प समाप्त होने पर चेतना भी समाप्त हो जाती है या नहीं, या यह कैसे होता है?

आदरणीय महोदय, जब संकल्प समाप्त हो जाते हैं तो चेतना भी समाप्त हो जाती है। यही हमारे साथ होता है।

जब संकल्प समाप्त हो जाते हैं, चेतना भी समाप्त हो जाती है।
कहते हैं कि अज्ञान के समाप्त होने पर संकल्प भी समाप्त हो जाते हैं। भिक्षुओं, क्या अज्ञान के समाप्त होने पर संकल्प भी समाप्त हो जाते हैं या नहीं, या यह कैसे होता है? आदरणीय जी, अज्ञान के समाप्त होने पर संकल्प भी समाप्त हो जाते हैं। हमारे साथ भी ऐसा ही होता है, अज्ञान के समाप्त होने पर संकल्प भी समाप्त हो जाते हैं।

हे भिक्षुओं! आप भी यही कहते हैं और मैं भी यही कहता हूँ। जब यह नहीं रहता, तो यह भी नहीं रहता। जब यह समाप्त हो जाता है, तो यह भी समाप्त हो जाता है। जैसे अज्ञान के समाप्त होने से संकल्प समाप्त हो जाते हैं। संकल्पों के समाप्त होने से चेतना समाप्त हो जाती है। चेतना के समाप्त होने से नाम और पदार्थ समाप्त हो जाते हैं। नाम और पदार्थ के समाप्त होने से छह मानसिक क्षेत्र समाप्त हो जाते हैं। छह मानसिक क्षेत्रों के समाप्त होने से संपर्क समाप्त हो जाता है। संपर्क समाप्त होने से भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। भावनाओं के समाप्त होने से लालसा समाप्त हो जाती है। लालसा के समाप्त होने से आलिंगन समाप्त हो जाता है। आलिंगन समाप्त होने से अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अस्तित्व समाप्त होने से जन्म समाप्त हो जाता है। जन्म समाप्त होने से क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और पीड़ा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार संपूर्ण अप्रियता समाप्त हो जाती है।

हे भिक्षुओं, जो इस प्रकार जानते और देखते हैं, क्या आपका मन अतीत की ओर भटकता है? क्या मैं अतीत में था या नहीं था? अतीत में मैं क्या था? अतीत में मैं कैसा था? अतीत में मैं कौन था? नहीं, आदरणीय भिक्षु। हे भिक्षुओं, जो इस प्रकार जानते और देखते हैं, क्या आपका मन भविष्य की ओर भटकता है? क्या मैं भविष्य में रहूंगा या नहीं रहूंगा? भविष्य में मैं क्या होऊंगा? भविष्य में मैं कैसा होऊंगा? भविष्य में मैं कौन होऊंगा? नहीं, आदरणीय भिक्षु। हे भिक्षुओं, जो इस प्रकार जानते और देखते हैं, क्या आपको वर्तमान के बारे में संदेह है? क्या मैं हूं या नहीं हूं? मैं क्या हूं? मैं कैसा हूं? यह प्राणी कहां से आया है? यह कहां जाएगा? नहीं, आदरणीय भिक्षु।

हे भिक्षुओं, जो इस प्रकार जानते और देखते हैं, क्या आप कहेंगे कि हम गुरु के प्रति श्रद्धा रखते हैं? क्या हम गुरु के प्रति श्रद्धावश ऐसा कहते हैं? नहीं, आदरणीय। हे भिक्षुओं, जो इस प्रकार जानते और देखते हैं, क्या आप कहेंगे कि हमारे संन्यासी ने ऐसा कहा था, ये संन्यासी के वचन हैं। क्या हम ऐसा नहीं कहते? नहीं, आदरणीय। हे भिक्षुओं, जो इस प्रकार जानते और देखते हैं, क्या आप किसी अन्य गुरु की खोज करेंगे? नहीं, आदरणीय। हे भिक्षुओं, जो इस प्रकार जानते और देखते हैं, क्या आप अन्य संन्यासियों और ब्राह्मणों के धार्मिक अनुष्ठानों, समारोहों और त्योहारों में सार देखेंगे? नहीं, आदरणीय। हे भिक्षुओं, क्या यह आप स्वयं जानकर, देखकर और अनुभव करके ही ऐसा नहीं कहते? जी, आदरणीय। अच्छा! हे भिक्षुओं, मैंने आपको इस शिक्षा में अग्रसर किया है। यह यहीं और अभी है। समय का कोई महत्व नहीं है। यह अवलोकन के लिए खुला है, परलोक की ओर ले जाता है और ज्ञानी लोगों द्वारा स्वयं अनुभव किया जाना है। भिक्षुओं, यदि यह कहा गया है कि शिक्षा यहीं और अभी है, समय का कोई महत्व नहीं है, यह अवलोकन के लिए खुली है, यह परलोक की ओर ले जाती है और बुद्धिमानों द्वारा स्वयं ही इसका अनुभव किया जाना है, तो इसका कारण यही है।

भिक्षुओं, तीन चीजों के एक साथ आने से गर्भ में जन्म होता है: यहाँ माता और पिता एक साथ आते हैं। यह माता का समय नहीं है। जन्म लेने वाला बच्चा उपस्थित नहीं होता। तब गर्भ में जन्म नहीं होता। यहाँ माता और पिता एक साथ आते हैं। यह माता का समय है। जन्म लेने वाला बच्चा उपस्थित नहीं होता। तब गर्भ में जन्म नहीं होता। यहाँ माता और पिता एक साथ आते हैं। यह माता का समय है और जन्म लेने वाला बच्चा उपस्थित होता है। तब गर्भ में जन्म होता है। वह माता नौ या दस महीने तक बड़ी चिंता और कष्ट के साथ गर्भ की रक्षा करती है। नौ या दस महीने बाद वह माता बड़ी चिंता और कष्ट के साथ जन्म देती है। वह अपने रक्त से बच्चे का पालन-पोषण करती है। श्रेष्ठ धर्म में माता के दूध को रक्त कहा जाता है। भिक्षुओं, वह बालक बड़ा होता है और उसकी इंद्रियाँ परिपक्व होती हैं और वह लड़कों के खेल खेलता है। जैसे कि कटोरा पकड़ना, कलाबाजी करना, ताड़ के पत्तों से खिलौने वाली चक्कियाँ बनाना, छोटी गाड़ियाँ और धनुष बनाना। भिक्षुओं, वह बालक बड़ा होता है और उसकी इंद्रियाँ विकसित होती हैं तथा उसे पाँच प्रकार के इंद्रिय सुख प्राप्त होते हैं तथा वह नेत्र चेतना द्वारा बोधगम्य सुखद रूपों, कान चेतना द्वारा बोधगम्य सुखद ध्वनियों, नाक चेतना द्वारा बोधगम्य सुखद गंधों, जीभ चेतना द्वारा बोधगम्य सुखद स्वादों और शरीर चेतना द्वारा बोधगम्य सुखद स्पर्शों से मोहित होकर जीवन व्यतीत करता है।

आँख से किसी रूप को देखकर वह सुखद रूप के प्रति लालची हो जाता है, या अप्रिय रूप से विमुख हो जाता है। वह शरीर के प्रति अचेतन और सीमित मन से ग्रस्त रहता है। मन की मुक्ति और ज्ञान के माध्यम से प्राप्त मुक्ति का वास्तविक ज्ञान न होने के कारण, जहाँ अपगुणों के विचार पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं, वह सहमति और असहमति के मार्ग पर चल पड़ता है और सुखद, अप्रिय या न अप्रिय, जैसी भी भावनाएँ अनुभव करता है। उन भावनाओं से प्रसन्न होकर वह उन्हें अपना लेता है। प्रसन्न होकर और उन्हें अपना लेने से उसमें स्वार्थ उत्पन्न होता है। भावनाओं के प्रति यही स्वार्थ है। उसे धारण करने से ही अस्तित्व उत्पन्न होता है, अस्तित्व से जन्म, जन्म से क्षय और मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट, इस प्रकार अप्रियता का संपूर्ण समूह उत्पन्न होता है। कान से ध्वनि सुनकर,

नाक से गंध महसूस करके, जीभ से स्वाद लेकर, शरीर से स्पर्श करके, मन से विचार महसूस करके वह सुखद विचार के प्रति लालची हो जाता है। अप्रिय विचार से विमुख हो जाता है। शरीर के प्रति अचेतन भाव और सीमित मन के साथ लीन रहता है। मन की मुक्ति और ज्ञान के माध्यम से मिलने वाली मुक्ति का वास्तविक स्वरूप वह नहीं जानता। अपगुणों के विचार पूर्णतः कैसे समाप्त होते हैं, यह भी वह नहीं जानता। वह सहमति और असहमति के मार्ग पर चलता है और सुखद, अप्रिय या न अप्रिय, हर प्रकार की भावना का अनुभव करता है। उन भावनाओं से प्रसन्न होकर उन्हें अपना लेता है। इन भावनाओं से प्रसन्न होकर और उन्हें अपना लेने से उसमें स्वार्थ उत्पन्न होता है। भावनाओं के प्रति यही स्वार्थ है। उसे धारण करने से ही अस्तित्व उत्पन्न होता है, अस्तित्व से ही जन्म, जन्म से ही क्षय और मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट, इस प्रकार अप्रियता का संपूर्ण समूह उत्पन्न होता है।

हे भिक्षुओं, यह देखिए, तथागत पूर्णतः प्रबुद्ध होकर संसार में जन्म लेते हैं। ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, सुप्रसिद्ध, संसार के ज्ञाता, अद्वितीय रूप से वश में करने वाले, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य। वे इस संसार में, इसके मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों, ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों के समुदाय को, अपने उस उपदेश का प्रचार करते हैं जो आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है। उनके वचन शब्दों में भी अर्थपूर्ण हैं और पूर्ण एवं पवित्र जीवन का उद्घोष करते हैं। गृहस्थ, गृहस्थ पुत्र या किसी कुल में जन्मा व्यक्ति इस उपदेश को सुनकर तथागत में आस्था प्राप्त करता है। उस आस्था से वह चिंतन करता है। गृहस्थ जीवन कठिनाइयों से भरा है, यह एक दूषित मार्ग है। गृहस्थ जीवन मुक्त अंतरिक्ष के समान है। गृहस्थ जीवन में रहते हुए पूर्ण एवं पवित्र जीवन जीना और अपवित्र हुए बिना जीवन व्यतीत करना आसान नहीं है। अगर मैं सिर और दाढ़ी मुंडवा लूँ, पीले वस्त्र पहन लूँ और संन्यासी बनकर निकल जाऊँ तो क्या होगा? किसी उपयुक्त समय पर वह थोड़ा धन या बहुत सारा धन त्याग देता है। वह अपने पीछे मित्रों का एक छोटा समूह या एक बड़ा समूह छोड़ जाता है। सिर और दाढ़ी मुंडवाकर और पीले वस्त्र पहनकर वह संन्यासी बन जाता है।

आगे बढ़कर वह भिक्षु जीवन में प्रशिक्षक बन जाता है, प्राणियों को पीड़ा देना छोड़ देता है, लाठी-हथौड़े त्याग देता है, लज्जा और करुणा से भर जाता है, समस्त प्राणियों के प्रति करुणा भाव रखता है। जो नहीं दिया गया है उसे लेने से परहेज करते हुए, जो दिया गया है उसकी इच्छा रखता है, बिना चोरी किए स्वयं को शुद्ध करके रहता है। नीच यौन संबंध से परहेज करते हुए पवित्र जीवन व्यतीत करता है। झूठ बोलने से परहेज करते हुए विश्वसनीय और भरोसेमंद बन जाता है और संसार से कोई विवाद नहीं करता। निंदा करना छोड़ देता है, यहाँ सुनकर कहीं और नहीं कहता, ताकि दूसरों को विभाजित न करे। कहीं और सुनकर यहाँ नहीं कहता, ताकि दूसरों को विभाजित न करे। इस प्रकार वह विभाजितों को एकजुट करता है, एकता को बढ़ावा देता है, एकता प्रेमी होकर एकता के वचन बोलता है। कठोर वाणी त्यागकर कानों को भाने वाले मधुर वचन बोलता है। ऐसे वचन बोलता है जो सीधे जनमानस के हृदय को छूते हैं। व्यर्थ की बातों से परहेज करता है। उचित वचन बोलता है, जो सत्य, अर्थपूर्ण और शिक्षा एवं अनुशासन के अनुरूप होते हैं, ऐसे वचन जिन्हें संजोकर रखा जा सकता है।

बीज और वनस्पति समूहों को नष्ट करने से परहेज़ करता है। दिन में एक बार भोजन करता है, रात में और असमय भोजन से परहेज़ करता है। नृत्य, गायन, संगीत, सजावट, फूल और सुगंध, मलहम और आभूषणों से परहेज़ करता है। ऊँचे और आलीशान पलंगों से परहेज़ करता है। सोना और चाँदी, कच्चा चावल और कच्चा मांस ग्रहण करने से परहेज़ करता है। स्त्रियों और लड़कियों, दासों, पुरुषों या स्त्रियों को ग्रहण करने से परहेज़ करता है। बकरियों, गायों, मुर्गियों, सूअरों, हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों को ग्रहण करने से परहेज़ करता है।

वह खेतों और धन को स्वीकार करने से परहेज करता है। वह संदेशवाहक का काम करने और खरीद-फरोख्त करने से परहेज करता है। वह अनुचित तरीके से वजन करने और नापने से परहेज करता है। वह काटने, अलग करने, नष्ट करने और लूटपाट करने तथा भोजन प्राप्त करने के गलत तरीकों से परहेज करता है।

संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर, पेट भरकर, अपने सभी सामानों के साथ जहाँ कहीं भी जाता है, वह जाता है। जैसे छोटे-बड़े पक्षी अपने पंखों के भार से उड़ते हैं। उसी प्रकार संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर, पेट भरकर, अपने सभी सामानों के साथ जहाँ कहीं भी जाता है, वह जाता है। इन गुणों से परिपूर्ण होकर, वह आंतरिक रूप से निष्कलंकता का आनंद अनुभव करता है। किसी रूप को देखकर, वह उसके चिन्ह या तत्वों को ग्रहण नहीं करता। आँख की मानसिक शक्ति को अनियंत्रित रखते हुए, वह लोभ के कारण दोष और अप्रसन्नता उत्पन्न कर सकता है। वह आँख की मानसिक शक्ति की रक्षा करते हुए रहता है। कान से ध्वनि सुनकर, नाक से गंध महसूस करके, जीभ से स्वाद लेकर, शरीर से स्पर्श महसूस करके, मन से विचार महसूस करके, वह चिन्ह या तत्वों को ग्रहण नहीं करता। मन की मानसिक शक्ति को अनियंत्रित रखते हुए, वह लोभ के कारण दोष और अप्रसन्नता उत्पन्न कर सकता है। वह मन की रक्षा करते हुए रहता है। श्रेष्ठ व्यक्तियों के समान मानसिक शक्तियों पर नियंत्रण प्राप्त होने के कारण, वे मानसिक शक्तियों के अछूते आनंद का अनुभव करते हैं। आगे बढ़ना और पीछे लौटना, देखना और अगल-बगल देखना, झुकना और फैलाना, कटोरा और तीनों

वस्त्र धारण करना, चखना, पीना, खाना और आनंद लेना, चलना, खड़ा होना, बैठना, लेटना, जागना और मौन रहना, सब कुछ उनके लिए सजग है।

इन सद्गुणों से परिपूर्ण, श्रेष्ठ जनों की मानसिक क्षमताओं पर नियंत्रण रखने वाले, श्रेष्ठ जनों की सचेतनता एकांतवास, जंगल, वृक्ष की जड़, पर्वतीय गुफा, श्मशान भूमि, घने वन, खुले स्थान या भूसे के ढेर में निवास करती है। भोजन समाप्त होने के बाद भिक्षा मांगने से लौटकर वे पालथी मारकर बैठते हैं, शरीर सीधा रखते हैं और ध्यान को सामने केंद्रित करते हैं।

संसार के प्रति लोभ को दूर करते हुए, वह मन को लोभ से शुद्ध करते हुए निवास करते हैं। क्रोध को दूर करते हुए, वह सभी प्राणियों के प्रति करुणा से मन को क्रोध से शुद्ध करते हुए निवास करते हैं। आलस्य और सुस्ती को दूर करते हुए, वह प्रकाश की अनुभूति से सचेत और जागरूक रहते हुए, मन से आलस्य और सुस्ती को दूर करते हैं। बेचैनी और चिंता को दूर करते हुए, वह आंतरिक रूप से शांत मन से, मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध करते हुए निवास करते हैं। वह उन पुण्य कार्यों के बारे में संदेह दूर करते हुए निवास करते हैं जो किए जाने चाहिए।

भिक्षु मन की पाँच बाधाओं को दूर करके और बुद्धिमानी से लघु दोषों को कमजोर करके कामुक विचारों और पापपूर्ण विचारों को दूर करता है। विचारों और विचार प्रक्रियाओं के साथ, और एकांतवास से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता से युक्त होकर वह प्रथम ध्यान अवस्था में लीन हो जाता है।

फिर, भिक्षु विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके, मन को आंतरिक रूप से एक बिंदु पर शांत करके, एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख का अनुभव करते हुए द्वितीय ध्यान में लीन हो जाता है। फिर, भिक्षु समभाव और वैराग्य के साथ सचेत और जागरूक होकर, शरीर में भी सुख का अनुभव करते हुए तृतीय ध्यान में लीन हो जाता है। इस पर श्रेष्ठजन समभाव के साथ सुख में लीन होकर कहते हैं।

फिर भिक्षु सुख और दुख को दूर करते हुए, और पहले सुख और दुख को दूर कर चुके, समभाव से शुद्ध होकर, ध्यान से चौथे ध्यान में लीन हो जाते हैं।

जो किसी रूप को आँख से देखता है, वह न तो किसी सुखद रूप का लोभी होता है और न ही किसी अप्रिय रूप से विमुख होता है। वह शरीर के प्रति सजग और असीम मन से स्थिर रहता है, मन की मुक्ति और ज्ञान के माध्यम से मिलने वाली मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में जानता है, जहाँ अपगुणों के विचार पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं। वह सहमति और असहमति के भावों को त्यागकर, सुखद, अप्रिय या न अप्रिय और न सुखद, किसी भी प्रकार की अनुभूति करता है। वह उन अनुभूतियों से न तो प्रसन्न होता है और न ही प्रसन्न, और न ही उन्हें अपनाता है। जो न प्रसन्न होता है, न प्रसन्न होता है और न ही उन अनुभूतियों को अपनाता है, तो उनमें उसकी रुचि समाप्त हो जाती है। रुचि समाप्त होने पर लगाव समाप्त हो जाता है। लगाव समाप्त होने पर अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अस्तित्व समाप्त होने पर जन्म समाप्त हो जाता है। जन्म समाप्त होने पर क्षय और मृत्यु, शोक, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और पीड़ा समाप्त हो जाती है। इस प्रकार, अप्रियता का संपूर्ण समूह समाप्त हो जाता है। कान से ध्वनि सुनकर, नाक से गंध महसूस करके, जीभ से स्वाद लेकर, शरीर से स्पर्श महसूस करके, मन से विचार महसूस करके, वह किसी सुखद विचार का लोभी नहीं होता। अप्रिय विचार से विमुख नहीं होता। शरीर के प्रति सजग और असीम मन से स्थिर रहता है, मन की मुक्ति और ज्ञान के माध्यम से मिलने वाली मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में जानता है, जहाँ अपगुणों के विचार पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं। सहमति और असहमति को त्यागकर, सुखद, अप्रिय या न अप्रिय, किसी भी प्रकार की भावना का अनुभव करता है। उन भावनाओं से न तो प्रसन्न होता है और न ही प्रसन्न, उन्हें अपनाता नहीं है। तब उन भावनाओं में रुचि समाप्त हो जाती है। रुचि समाप्त होने पर आसक्ति समाप्त हो जाती है। आसक्ति समाप्त होने पर अस्तित्व समाप्त हो जाता है। अस्तित्व समाप्त होने पर जन्म समाप्त हो जाता है। जन्म समाप्त होने पर क्षय और मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार अप्रियता का संपूर्ण समूह समाप्त हो जाता है। भिक्षुओं, इसे अप्रियता के नाश का संक्षिप्त रूप समझो। जहाँ तक भिक्षु साती का संबंध है, जो एक मछुआरे का पुत्र है, वह अत्यधिक लालसा के जाल में फँसा हुआ है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 4.9महा अस्सपुरा सुत्त(39)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अंतर्वस्तु
1सेटिंग
2अंतरात्मा और चिंता
3आचरण की पवित्रता
4इंद्रियों पर संयम
5खाने में संयम बरतें
6जागृत होना
7सजगता और सतर्कता
8बाधाओं को त्यागना
9चार ध्यान
10तीन ज्ञान
सेटिंग
मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध अंगों के बीच ठहरे हुए थे। अंगों का एक नगर है जिसका नाम अस्सपुरा है। वहाँ भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं!"
"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।
भगवान बुद्ध ने कहा, "'चिंतनशील, चिंतनशील': लोग तुम्हें इसी रूप में देखते हैं। और जब पूछा जाता है, 'तुम क्या हो?' तो तुम कहते हो, 'हम चिंतनशील हैं।' अतः, यही तुम्हारा पदनाम और यही तुम्हारा दावा है, इसी प्रकार तुम्हें स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उन गुणों का अभ्यास करेंगे जो चिंतनशील बनाते हैं, जो ब्रह्म बनाते हैं, ताकि हमारा पदनाम सत्य हो और हमारा दावा सटीक हो; ताकि जिनके वस्त्र, भिक्षा, आवास और औषधियों का हम उपयोग करते हैं, उनकी सेवा से उन्हें महान फल और महान पुरस्कार प्राप्त हो; और ताकि हमारा प्रस्थान व्यर्थ न हो, बल्कि फलदायी और उपजाऊ हो।'

अंतरात्मा और चिंता
और हे भिक्षुओं, वे कौन से गुण हैं जो किसी को ध्यानमग्न बनाते हैं, जो किसी को ब्राह्मण बनाते हैं? 'हम अंतरात्मा और (गलत कर्मों के परिणामों के प्रति) चिंता से परिपूर्ण होंगे': इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। अब आपके मन में यह विचार आ सकता है, 'हम अंतरात्मा और चिंता से परिपूर्ण हैं। इतना ही काफी है, इतना ही काफी है, इस प्रकार हमने अपनी ध्यानमग्न अवस्था का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। अब आगे कुछ करने की आवश्यकता नहीं है,' और आप इसी से संतुष्ट हो सकते हैं। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ, हे भिक्षुओं। मैं आपको आग्रह करता हूँ, हे भिक्षुओं। आपमें से जो लोग ध्यानमग्न अवस्था की खोज कर रहे हैं, वे ध्यानमग्न अवस्था के लक्ष्य से तब विचलित न हों जब और भी बहुत कुछ करना बाकी हो।

आचरण की पवित्रता
और क्या करना बाकी है? 'हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध, निर्मल और खुला, अटूट और संयमित होगा। हम उस शुद्ध शारीरिक आचरण के कारण स्वयं को श्रेष्ठ नहीं मानेंगे और न ही दूसरों को नीचा दिखाएंगे': इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। अब आपके मन में यह विचार आ सकता है, 'हम अंतरात्मा और चिंता से संपन्न हैं। हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध है। इतना ही काफी है, इतना ही काफी है, यानी हमने अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया है, और अब आगे कुछ करने की आवश्यकता नहीं है,' और आप इसी से संतुष्ट हो सकते हैं। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ, भिक्षुओं। मैं आपको प्रेरित करता हूँ, भिक्षुओं। आपमें से जो लोग ध्यान की अवस्था की खोज कर रहे हैं, वे ध्यान की अवस्था के लक्ष्य से तब विचलित न हों जब और भी बहुत कुछ करना बाकी हो।
और क्या करना बाकी है? 'हमारा वाणी आचरण... हमारा मानसिक आचरण शुद्ध, स्पष्ट और खुला, अटूट और संयमित होगा। हम उस शुद्ध वाणी... मानसिक आचरण के कारण स्वयं को श्रेष्ठ नहीं मानेंगे और न ही दूसरों को नीचा दिखाएंगे': इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। अब आपके मन में यह विचार आ सकता है, 'हम अंतरात्मा और चिंता से संपन्न हैं। हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध है। हमारा वाणी आचरण... हमारा मानसिक आचरण शुद्ध है। इतना ही काफी है, इतना ही काफी है, यानी हमने अपना कार्य पूरा कर लिया है, और हमारी ध्यान अवस्था का लक्ष्य प्राप्त हो गया है। अब आगे कुछ करने की आवश्यकता नहीं है,' और आप इसी से संतुष्ट हो सकते हैं। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ, भिक्षुओं। मैं आपको प्रेरित करता हूँ, भिक्षुओं। आपमें से जो लोग ध्यान अवस्था की खोज में हैं, वे ध्यान अवस्था के लक्ष्य से तब विचलित न हों जब और भी कार्य करना बाकी हो।
और क्या करना बाकी है? 'हमारी आजीविका शुद्ध, निर्मल और खुली, अटूट और संयमित होगी। हम उस शुद्ध आजीविका के कारण न तो स्वयं को श्रेष्ठ समझेंगे और न ही दूसरों को नीचा दिखाएंगे': इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। अब आपके मन में यह विचार आ सकता है, 'हम अंतरात्मा और चिंता से संपन्न हैं। हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध है। हमारा वाणी आचरण... हमारा

मानसिक आचरण शुद्ध है। हमारी आजीविका शुद्ध है। इतना ही काफी है, इतना ही काफी है, इस प्रकार हमने अपनी ध्यान अवस्था का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। अब और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है,' और आप इसी से संतुष्ट हो सकते हैं। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ, भिक्षुओं। मैं आपको प्रेरित करता हूँ, भिक्षुओं। आपमें से जो लोग ध्यान अवस्था की खोज में हैं, वे ध्यान अवस्था के लक्ष्य से तब विचलित न हों जब और भी बहुत कुछ करना बाकी हो।

इंद्रियों पर संयम

और क्या करना है? 'हम अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करेंगे। आँख से किसी आकृति को देखते समय, हम किसी भी विषय या विविधता को नहीं पकड़ेंगे, जिससे - यदि हम आँख की शक्ति पर बिना किसी नियंत्रण के ध्यान केंद्रित करें - तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण हम पर हावी हो सकते हैं। हम इस पर नियंत्रण का अभ्यास करेंगे। हम आँख की शक्ति की रक्षा करेंगे। हम आँख की शक्ति के संबंध में संयम प्राप्त करेंगे। कान से ध्वनि सुनते समय... नाक से सुगंध सूंघते समय... जीभ से स्वाद चखते समय... शरीर से स्पर्श संवेदना महसूस करते समय... बुद्धि से किसी विचार को समझते समय, हम किसी भी विषय या विविधता को नहीं पकड़ेंगे, जिससे - यदि हम बुद्धि की शक्ति पर बिना किसी नियंत्रण के ध्यान केंद्रित करें - तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण हम पर हावी हो सकते हैं। हम इस पर नियंत्रण का अभ्यास करेंगे। हम बुद्धि की शक्ति की रक्षा करेंगे। हम बुद्धि की शक्ति के संबंध में संयम प्राप्त करेंगे': इसी तरह आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। अब आपके मन में यह विचार आ सकता है, 'हम अंतरात्मा और चिंता से परिपूर्ण हैं। हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध है। हमारा वाणी आचरण... हमारा मानसिक आचरण शुद्ध है। हमारी आजीविका शुद्ध है। हम अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हैं। इतना ही काफी है, इतना ही काफी है, यानी हमने अपना ध्यानमग्न अवस्था का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। अब आगे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है,' और आप इसी से संतुष्ट हो सकते हैं। इसलिए मैं आप भिक्षुओं से कहता हूँ। मैं आप भिक्षुओं से आग्रह करता हूँ। आपमें से जो लोग ध्यानमग्न अवस्था की खोज में हैं, वे ध्यानमग्न अवस्था के लक्ष्य से तब विचलित न हों जब अभी और भी कार्य करना बाकी हो।

खाने में संयम बरतें

और क्या करना बाकी है? 'हम खाने में संयम बरतेंगे। उचित विचार करते हुए, हम भोजन न तो मौज-मस्ती के लिए, न ही नशे के लिए, न ही वजन बढ़ाने के लिए, न ही सुंदरता के लिए लेंगे, बल्कि केवल इस शरीर के अस्तित्व और निरंतरता के लिए, इसके कष्टों को समाप्त करने के लिए, पवित्र जीवन के समर्थन के लिए लेंगे, यह सोचते हुए कि, "मैं भूख की पुरानी भावनाओं को नष्ट करूँगा और अधिक खाने से नई भावनाएँ उत्पन्न नहीं करूँगा।" इस प्रकार मैं अपना भरण-पोषण करूँगा, निर्दोष रहूँगा और सुखमय जीवन व्यतीत करूँगा। यही वह तरीका है जिससे आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। अब आपके मन में यह विचार आ सकता है, 'हम अंतरात्मा और चिंता से संपन्न हैं। हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध है। हमारा वाणी आचरण... हमारा मानसिक आचरण शुद्ध है। हमारी आजीविका शुद्ध है। हम अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हैं। हम भोजन में संयम बरतते हैं। इतना ही पर्याप्त है, इतना ही काफी है, इस प्रकार हमने अपनी ध्यान अवस्था का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। अब आगे कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।' और आप इसी से संतुष्ट हो सकते हैं। अतः मैं आपसे कहता हूँ, भिक्षुओं। मैं आपको प्रेरित करता हूँ, भिक्षुओं। आपमें से जो ध्यान अवस्था की खोज में हैं, वे ध्यान अवस्था के लक्ष्य से तब विचलित न हों जब आगे और भी कार्य करना बाकी हो।

जागृत होना

और क्या करना बाकी है? 'हम जागृति के प्रति समर्पित रहेंगे। दिन के दौरान, बैठकर और टहलते हुए, हम मन को उन सभी गुणों से शुद्ध करेंगे जो इसे अवरुद्ध करते हैं। रात्रि के पहले पहर में, बैठकर और टहलते हुए, हम मन को उन सभी गुणों से शुद्ध करेंगे जो इसे अवरुद्ध करते हैं। रात्रि के दूसरे पहर में, अपनी दाहिनी ओर लेटकर, हम सिंह की मुद्रा धारण करेंगे, एक पैर दूसरे के ऊपर रखकर, सचेत और सतर्क रहते हुए, उठने के लिए मन को दृढ़ संकल्पित रखेंगे [या तो जागते ही या किसी निश्चित समय पर]। रात्रि के अंतिम पहर में, बैठकर और टहलते हुए, हम मन को उन सभी गुणों से शुद्ध करेंगे जो इसे अवरुद्ध करते हैं': इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। अब आपके मन में यह विचार आ सकता है, 'हम विवेक और चिंता से संपन्न हैं। हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध है। हमारा वाणी आचरण... हमारा मानसिक आचरण शुद्ध है। हमारी आजीविका शुद्ध है। हम अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हैं। हमारे पास संयम की भावना है।' भोजन में। हम जागरूकता के प्रति समर्पित हैं। इतना ही काफी है, इतना ही काफी है, यानी हमने अपना काम पूरा कर लिया है, और इस तरह हमारी ध्यान अवस्था का लक्ष्य प्राप्त हो गया है। अब आगे कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, और आप इसी से संतुष्ट हो सकते हैं। इसलिए मैं आप भिक्षुओं से कहता हूँ। मैं आप भिक्षुओं से आग्रह करता हूँ। आपमें से जो लोग ध्यान अवस्था की खोज में हैं, वे ध्यान अवस्था के लक्ष्य से तब विचलित न हों जब अभी और भी कार्य करना बाकी हो।

सजगता और सतर्कता

और क्या करना बाकी है? हम सजग और सतर्क रहेंगे। आगे बढ़ते और लौटते समय हम सतर्कता से कार्य करेंगे। आगे देखते और पीछे हटते समय... अपने अंगों को मोड़ते और फैलाते समय... अपने बाहरी वस्त्र, ऊपरी वस्त्र और कटोरा उठाते समय... खाते, पीते, चबाते और स्वाद लेते समय... पेशाब और शौच करते समय... चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते समय हम सतर्कता

से कार्य करेंगे: इसी प्रकार आपको स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए। अब आपके मन में यह विचार आ सकता है, 'हम अंतरात्मा और चिंता से संपन्न हैं। हमारा शारीरिक आचरण शुद्ध है। हमारा वाणी आचरण... हमारा मानसिक आचरण शुद्ध है। हमारी आजीविका शुद्ध है। हम अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करते हैं। हम खाने में संयम बरतते हैं। हम सजगता के प्रति समर्पित हैं। हम सजग और सतर्क हैं। इतना ही काफी है, इतना ही काफी है, इस प्रकार हमारी चिंतनशील अवस्था का लक्ष्य प्राप्त हो गया है। अब आगे कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है।' और आप बस इसी से संतुष्ट हो सकते हैं। इसलिए मैं आप भिक्षुओं से कहता हूँ। मैं आप भिक्षुओं से आग्रह करता हूँ। आपमें से जो लोग ध्यान की अवस्था की खोज में लगे हैं, उन्हें ध्यान की अवस्था के लक्ष्य से भटकने न दें, जबकि अभी और भी बहुत कुछ करना बाकी है।

बाधाओं को त्यागना

और क्या किया जा सकता है? एक उदाहरण है जहाँ एक भिक्षु एकांत स्थान की तलाश करता है: जंगल, पेड़ की छाया, पहाड़, घाटी, पहाड़ी गुफा, श्मशान भूमि, जंगल का उपवन, खुला आकाश, पुआल का ढेर। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, वह बैठ जाता है, पैर मोड़कर बैठता है, शरीर को सीधा रखता है, और ध्यान केंद्रित करता है।

संसार के प्रति लोभ का त्याग करके, वह लोभ रहित जागरूकता के साथ निवास करता है। वह अपने मन को लोभ से शुद्ध करता है। द्वेष और क्रोध का त्याग करके, वह द्वेष रहित जागरूकता के साथ, सभी जीवों के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखते हुए निवास करता है। वह अपने मन को द्वेष और क्रोध से शुद्ध करता है। आलस्य और सुस्ती का त्याग करके, वह आलस्य और सुस्ती रहित जागरूकता के साथ, सचेत, सतर्क और प्रकाश के प्रति जागरूक रहते हैं। वह अपने मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है। बेचैनी और चिंता का त्याग करके, वह अविचलित रहते हैं, उनका मन आंतरिक रूप से शांत होता है। वह अपने मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध करते हैं। अनिश्चितता का त्याग करके, वह अनिश्चितता को पार कर चुके होते हैं, कुशल मानसिक गुणों के संबंध में उन्हें कोई उलझन नहीं होती। वह अपने मन को अनिश्चितता से शुद्ध करते हैं।

मान लीजिए कि एक व्यक्ति ऋण लेकर उसे अपने व्यवसाय में निवेश करता है। उसका व्यवसाय सफल होता है। वह अपने पुराने ऋण चुका देता है और पत्नी के भरण-पोषण के लिए अतिरिक्त धन बच जाता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'ऋण लेने से पहले मैंने उसे अपने व्यवसाय में निवेश किया था। अब मेरा व्यवसाय सफल हो गया है। मैंने अपने पुराने ऋण चुका दिए हैं और पत्नी के भरण-पोषण के लिए अतिरिक्त धन बच गया है।' इससे उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।

"मान लीजिए कि एक व्यक्ति बीमार पड़ जाता है - उसे बहुत दर्द होता है और वह गंभीर रूप से अस्वस्थ है। उसे भोजन करने में आनंद नहीं आता और उसके शरीर में कोई शक्ति नहीं रहती। कुछ समय बाद वह उस बीमारी से मुक्त हो जाता है। अब वह भोजन का आनंद लेता है और उसके शरीर में कुछ शक्ति आ जाती है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं बीमार था... अब मैं उस बीमारी से मुक्त हो गया हूँ। मैं भोजन का आनंद लेता हूँ और मेरे शरीर में कुछ शक्ति आ जाती है।' इससे उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।"

"अब मान लीजिए कि एक व्यक्ति को जेल में बंद कर दिया गया है। कुछ समय बाद उसे उस बंधन से सुरक्षित और स्वस्थ रूप से रिहा कर दिया जाता है, और उसकी संपत्ति का कोई नुकसान नहीं होता। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं जेल में बंद था। अब मैं उस बंधन से सुरक्षित और स्वस्थ रूप से रिहा हो गया हूँ, और मेरी संपत्ति का कोई नुकसान नहीं हुआ है।' इससे उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।"

"मान लीजिए कि एक व्यक्ति दूसरों के अधीन है, स्वयं के अधीन नहीं, और जहाँ चाहे वहाँ जाने में असमर्थ है। कुछ समय बाद वह उस गुलामी से मुक्त हो जाता है, स्वयं के अधीन हो जाता है, दूसरों के अधीन नहीं, स्वतंत्र हो जाता है, और जहाँ चाहे वहाँ जाने में सक्षम हो जाता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं गुलाम था... अब मैं उस गुलामी से मुक्त हो गया हूँ, स्वयं के अधीन हूँ, दूसरों के अधीन नहीं, स्वतंत्र हो गया हूँ, और जहाँ चाहे वहाँ जाने में सक्षम हूँ।' इससे उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति धन और सामान लेकर एक सुनसान इलाके से होकर गुजर रहा है। कुछ समय बाद वह उस सुनसान इलाके से सुरक्षित और बिना किसी संपत्ति के नुकसान के बाहर निकल आता है। उसके मन में यह विचार आएगा, 'पहले मैं धन और सामान लेकर एक सुनसान इलाके से होकर गुजर रहा था। अब मैं उस सुनसान इलाके से सुरक्षित और बिना किसी संपत्ति के नुकसान के बाहर निकल आया हूँ।' इससे उसे आनंद और खुशी का अनुभव होगा।

इसी प्रकार, जब भिक्षु अपने भीतर इन पाँच बाधाओं का त्याग नहीं करता, तो वह उन्हें ऋण, रोग, कारावास, दासता, वीरान देश का मार्ग समझता है। परन्तु जब वह अपने भीतर इन पाँच बाधाओं का त्याग कर लेता है, तो वह उन्हें ऋणमुक्ति, उत्तम स्वास्थ्य, कारावास से मुक्ति, स्वतंत्रता, सुरक्षा का स्थान समझता है। अपने भीतर इनका त्याग देखकर वह प्रसन्न होता है। प्रसन्न होकर वह समाधि में लीन हो जाता है। समाधि में उसका शरीर शांत हो जाता है। शरीर शांत होने पर वह सुख के प्रति संवेदनशील हो जाता है। सुख का अनुभव करने पर उसका मन एकाग्र हो जाता है।

चार ध्यान

"इंद्रिय सुख से पूर्णतः विमुख होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विमुख होकर, वह प्रथम ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित चिंतन और विश्लेषण से परिपूर्ण होता है। वह इस शरीर को

एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। जैसे कोई कुशल स्नान विशेषज्ञ या उसका प्रशिक्षु पीतल के पात्र में स्नान पाउडर डालकर उसे गूंथता है और बार-बार पानी छिड़कता है, ताकि उसका पाउडर का गोला - भीगा हुआ, नमी से लथपथ, भीतर और बाहर से भीगा हुआ - फिर भी टपके नहीं; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर को एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। उसके संपूर्ण शरीर का कोई भी भाग एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से अछूता नहीं रहता।"

इसके अलावा, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों को शांत करते हुए, वह दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। वह अपने पूरे शरीर को शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। जैसे किसी झील में भीतर से ही जल निकलता रहता है, पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से कोई प्रवाह नहीं होता, और आकाश से बार-बार भरपूर वर्षा होती रहती है, जिससे झील के भीतर से निकलने वाला ठंडा जल झील में समा जाता है, उसे ठंडे जल से भर देता है, झील का कोई भी भाग ठंडे जल से अछूता नहीं रहता; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु अपने पूरे शरीर को शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से अछूता नहीं रहता।

और इसके अलावा, जब परमानंद शांत हो जाता है, तो वह समभाव में रहता है, सचेत और जागरूक रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है, जिसके बारे में ऋषियों ने कहा है, 'समभाव और सचेत रहकर, वह सुखमय अवस्था में रहता है।' वह इस शरीर को परमानंद रहित आनंद से भर देता है। जैसे कमल के तालाब में, कुछ कमल, जो पानी में पैदा होते हैं और बढ़ते हैं, पानी में डूबे रहते हैं और पानी से बाहर नहीं निकलते, जिससे वे अपनी जड़ों से लेकर शीर्ष तक ठंडे पानी से भरे रहते हैं, और उन कमलों का कोई भी भाग ठंडे पानी से अछूता नहीं रहता; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर को परमानंद रहित आनंद से भर देता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग परमानंद रहित आनंद से अछूता नहीं रहता।

और इसके अलावा, सुख और तनाव के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न तनाव। वह शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अपने शरीर को व्याप्त करते हुए बैठता है। जैसे कोई व्यक्ति सिर से पैर तक सफेद कपड़े से ढका बैठा हो ताकि उसके शरीर का कोई भी हिस्सा उससे अछूता न रहे; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अपने शरीर को व्याप्त करते हुए बैठता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी हिस्सा शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अछूता नहीं रहता।

तीन ज्ञान

"इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अपने पिछले जन्मों की स्मृति के ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। वह अपने अनेक पिछले जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, एक हजार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग, [स्मरण करते हुए], 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से, मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूप और विवरणों के साथ याद करता है। ठीक वैसे ही जैसे कोई व्यक्ति अपने गाँव से दूसरे गाँव जाए, फिर उस गाँव से किसी और गाँव जाए, और फिर उस गाँव से वापस अपने गाँव आ जाए। उसके मन में यह विचार आएगा, 'मैं अपने गाँव से उस गाँव गया। वहाँ मैं इस प्रकार खड़ा हुआ, इस प्रकार बैठा, इस प्रकार बात की और इस प्रकार चुप रहा। उस गाँव से मैं उस गाँव गया, और वहाँ मैं इस प्रकार खड़ा हुआ, इस प्रकार बैठा, इस प्रकार बात की और इस प्रकार चुप रहा। उस गाँव से मैं वापस घर आ गया।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु अपने पिछले जन्मों के ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। वह अपने अनेक पिछले जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करता है।

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर उन्मुख होता है। वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है और उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - मृत्यु के बाद शरीर के टूटने से अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निचले लोकों, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म करने वाले — शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, अच्छे स्थानों, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होते हैं। इस प्रकार — दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है — वह प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उनके हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है। जैसे कि किसी शहर के केंद्रीय चौक में एक ऊँची इमारत हो, और उस पर खड़ा एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति लोगों को घर में प्रवेश करते, घर से बाहर

निकलते, सड़क पर चलते और केंद्रीय चौक में बैठते हुए देखे। उसके मन में यह विचार आएगा, 'ये लोग घर में प्रवेश कर रहे हैं, घर से बाहर निकल रहे हैं, सड़क पर चल रहे हैं और केंद्रीय चौक में बैठ रहे हैं।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीले, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। वह—शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ दिव्य दृष्टि से—प्राणित और पुनर्जन्मित प्राणियों को देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है।

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से भिक्षु अपने मन को मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह यह समझ लेता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये मानसिक हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर उसका हृदय इंद्रिय-संबंधों की हलचलों, कर्म-संबंधों की हलचलों और अज्ञान-संबंधों की हलचलों से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही 'मुक्त' का ज्ञान प्राप्त होता है। वह समझता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार में अब और कुछ नहीं है।'

ठीक वैसे ही जैसे किसी पर्वतीय घाटी में पानी का एक तालाब हो - साफ, निर्मल और बेदाग - जहाँ अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति किनारे पर खड़ा होकर सीपियाँ, कंकड़ और पत्थर देख सके, और मछलियों के झुंड तैरते और विश्राम करते हुए दिखाई दें, और उसके मन में यह विचार आए, 'यह तालाब साफ, निर्मल और निर्मल है। यहाँ ये सीपियाँ, कंकड़ और पत्थर हैं, और मछलियों के झुंड तैरते और विश्राम करते हुए दिखाई दे रहे हैं।' इसी प्रकार—अपने एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीले, स्थिर और अविचलित मन से—भिक्षु अपने मन को मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह यह समझ लेता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये मानसिक हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, उसका हृदय इंद्रिय-संबंधों की हलचलों, कर्म-संबंधों की हलचलों और अज्ञान-संबंधों की हलचलों से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही, 'मुक्त' का ज्ञान प्राप्त होता है। वह यह समझ जाता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार में अब और कुछ नहीं बचा है।'

"भिक्षुओं, इसे ही चिंतनशील भिक्षु, ब्राह्मण, शुद्धिग्रस्त, गुरु, विद्वान, कुलीन और अरहंत कहा जाता है।"

और एक भिक्षु ध्यानमग्न कैसे होता है? उसके वे सभी बुरे, अकुशल गुण जो दूषित हैं, जो आगे चलकर विपत्ति उत्पन्न करते हैं, कष्ट पैदा करते हैं, तनाव में परिपक्व होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं, शांत हो जाते हैं। इस प्रकार एक भिक्षु ध्यानमग्न होता है।

और एक भिक्षु ब्राह्मण कैसे होता है? उसके वे बुरे, अकुशल गुण जो दूषित होते हैं, जो आगे चलकर और विकृतियाँ उत्पन्न करते हैं, कष्ट पैदा करते हैं, तनाव में परिपक्व होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण बनते हैं, उन्हें दूर कर दिया गया है। इस प्रकार एक भिक्षु ब्राह्मण होता है।

और एक भिक्षु का शुद्धिकरण कैसे होता है? उसके दूषित, अकुशल गुण, जो आगे चलकर विपत्ति उत्पन्न करते हैं, कष्ट पैदा करते हैं, तनाव में परिपक्व होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं, धुल जाते हैं। इस प्रकार एक भिक्षु का शुद्धिकरण होता है।

और एक भिक्षु कैसे गुरु बनता है? उसके वे बुरे, अकुशल गुण जो दूषित हैं, जो आगे चलकर और भी बुरे रूप धारण करने की ओर ले जाते हैं, कष्ट उत्पन्न करते हैं, तनाव में परिपक्व होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं, उन पर उसने विजय प्राप्त कर ली है। इसी प्रकार एक भिक्षु गुरु बनता है।

और एक भिक्षु कैसे ज्ञानी बनता है? उसके वे सभी बुरे, अकुशल गुण जो दूषित हैं, जो आगे चलकर विपत्ति उत्पन्न करते हैं, कष्ट पैदा करते हैं, तनाव में परिपक्व होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं, वे सब दूर हो जाते हैं। इस प्रकार एक भिक्षु ज्ञानी बनता है।

और एक भिक्षु किस प्रकार श्रेष्ठ होता है? उसके वे बुरे, अकुशल गुण जो दूषित होते हैं, जो आगे चलकर विपत्ति उत्पन्न करते हैं, कष्ट पैदा करते हैं, तनाव में परिपक्व होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं, दूर हो जाते हैं। यही एक भिक्षु की श्रेष्ठता है।

और एक भिक्षु अरहंत कैसे होता है? उसके वे सभी बुरे, अकुशल गुण जो दूषित हैं, जो आगे चलकर और भी बुरे कर्मों की ओर ले जाते हैं, कष्ट उत्पन्न करते हैं, तनाव में परिपक्व होते हैं और भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु का कारण बनते हैं, दूर हो जाते हैं। इस प्रकार एक भिक्षु अरहंत होता है।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकया >> 4.10कुल अस्सपुरा सुत्त(40)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध अंग देश में, अस्सपुरा नामक एक छोटे से गाँव में निवास करते थे। उन्होंने वहाँ से भिक्षुओं को संबोधित किया। हे भिक्षुओं, लोग आपको संन्यासी कहते हैं, और आप भी स्वीकार करते हैं कि हम संन्यासी हैं। हे भिक्षुओं, आप पर एक प्रतिज्ञा है जिसे आपको निभाना है। आपको संन्यास के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। ताकि हमारा संन्यास सार्थक हो और हमारी प्रतिज्ञा पूरी हो। जो लोग हमें वस्त्र, भोजन, आवास और बीमार होने पर आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करते हैं, उनके लिए यह बहुत फलदायी हो। इससे हमारा प्रस्थान फलदायी और सफल होगा। (*1) हे भिक्षुओं, आपको इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए।

भिक्षुओं, भिक्षु संन्यास के मार्ग का अनुसरण कैसे नहीं करता? जिस भिक्षु का लोभ दूर नहीं होता, जिसका दूषित हृदय दूर नहीं होता, जिसका क्रोध दूर नहीं होता, जिसका द्वेष दूर नहीं होता, जिसका कपट दूर नहीं होता, जिसका ईर्ष्या दूर नहीं होती, जिसका स्वार्थ दूर नहीं होता, जिसका छल दूर नहीं होता, जिसकी बुरी इच्छाएँ दूर नहीं होतीं, जिसका गलत दृष्टिकोण दूर नहीं होता, वह संन्यास के मार्ग पर नहीं चला है। इन अशुद्धियों, दोषों और दागों को दूर किए बिना, जो संन्यासी को नरक जैसी अनुभूतियाँ देते हैं, मैं कहता हूँ, तुम संन्यास के मार्ग पर नहीं चले हो। पीले वस्त्र के किनारों पर माताजा नामक एक शस्त्र लगा होता है, जो दोनों किनारों से तेज होता है, और भिक्षु उसे अपने वस्त्र में लपेटता है। मैं इन अशुद्धियों से युक्त भिक्षु के संन्यास लेने की तुलना उससे करता हूँ।

भिक्षुओं, तीन वस्त्र धारण करने के कारण मैं उसे संन्यासी नहीं कहता, नग्न रहने के कारण मैं उसे संन्यासी नहीं कहता, धूल-मिट्टी में रहने के कारण मैं उसे संन्यासी नहीं कहता, जल में उतरने के कारण मैं उसे संन्यासी नहीं कहता। वृक्ष की जड़ में बैठने के कारण, खुले स्थान में रहने के कारण, खड़े रहने की मुद्रा बनाए रखने के कारण मैं उसे संन्यासी नहीं कहता। नियमित अंतराल पर भोजन करने के कारण, शिक्षा का पाठ करने के कारण, और सिर पर पगड़ी पहनने के कारण कोई संन्यासी नहीं हो जाता।

भिक्षुओं, जब कोई व्यक्ति तीन वस्त्र धारण करता है, तो यदि उसका लोभ, भ्रष्ट हृदय, क्रोध, द्वेष, पाखंड, दुर्भावना, ईर्ष्या, स्वार्थ, धूर्तता, छल, बुरी इच्छाएँ और गलत दृष्टिकोण दूर हो जाते हैं, तो उसके मित्रों और रक्त संबंधियों को जन्म से ही उसे तीन वस्त्र धारण कराना चाहिए और उसे बनाए रखना चाहिए। हे सौभाग्यशाली, जब तुम तीन वस्त्र धारण करोगे, तो तुम्हारा लोभ, भ्रष्ट हृदय, क्रोध, द्वेष, पाखंड, द्वेष, ईर्ष्या, स्वार्थ, धूर्तता, छल, बुरी इच्छाएँ और गलत दृष्टिकोण दूर हो जाएँगे। भिक्षुओं, क्योंकि मैंने एक विशेष व्यक्ति को लोभ के साथ तीन वस्त्र धारण करते देखा है, इसलिए मैं कहता हूँ कि तीन वस्त्र धारण करने मात्र से वह संन्यासी नहीं बन जाता।

भिक्षुओं, यदि नग्न रहने, धूल-मिट्टी में रहने, जल में चढ़ने, वृक्ष की जड़ में बैठने, खुले स्थान में रहने, खड़े रहने की मुद्रा बनाए रखने, नियमित अंतराल पर भोजन करने, उपदेशों का पाठ करने और पगड़ी धारण करने से लोभ दूर हो जाए, हृदय की बुराइयाँ दूर हो जाएँ, क्रोध दूर हो जाए, द्वेष दूर हो जाए, पाखंड दूर हो जाए, द्वेष दूर हो जाए, ईर्ष्या दूर हो जाए, स्वार्थ दूर हो जाए, धूर्तता दूर हो जाए, छल दूर हो जाए, बुरी इच्छाएँ दूर हो जाएँ और गलत दृष्टिकोण दूर हो जाए, तो जन्म के समय उसके मित्रों और रक्त संबंधियों को उसे पगड़ी पहनाकर उसकी देखभाल करनी चाहिए। आओ! हे सौभाग्यशाली, जब तुम पगड़ी धारण करोगे, तो तुम्हारा लोभ दूर हो जाएगा, तुम्हारा भ्रष्ट हृदय शांत हो जाएगा, तुम्हारा क्रोध शांत हो जाएगा, तुम्हारी दुर्भावना, पाखंड, द्वेष, ईर्ष्या, स्वार्थ, छल, कपट, बुरी इच्छाएँ और गलत विचार शांत हो जाएँगे। भिक्षुओं, क्योंकि मैंने एक भिक्षु को लोभ से पगड़ी धारण किए हुए देखा है, इसलिए मैं कहता हूँ कि पगड़ी धारण करने मात्र से कोई संन्यासी नहीं हो जाता।

भिक्षुओं, भिक्षु संन्यास की विधि का पालन कैसे करता है? जब लोभ दूर हो जाता है, दूषित हृदय दूर हो जाता है, क्रोध दूर हो जाता है, द्वेष दूर हो जाता है, पाखंड दूर हो जाता है, द्वेष दूर हो जाता है, ईर्ष्या दूर हो जाती है, स्वार्थ दूर हो जाता है, छल दूर हो जाता है, बुरी इच्छाएँ दूर हो जाती हैं, गलत दृष्टिकोण दूर हो जाता है, तब मैं कहता हूँ कि तुम संन्यास की विधि में आ गए हो। जब संन्यासी के ये सभी दोष, अशुद्धियाँ और लज्जाएँ, जो नरकीय भाव उत्पन्न करती हैं, दूर हो जाती हैं, तब मैं कहता हूँ कि तुम संन्यास की विधि में आ गए हो। जब ये सभी बुरे कर्म दूर हो जाते हैं और वह स्वयं को शुद्ध पाता है, तो उसे राहत मिलती है। मुक्त होने पर वह प्रसन्न होता है। प्रसन्न मन को आनंद प्राप्त होता है। प्रसन्न मन वाले का शरीर शांत हो जाता है। शांत शरीर को सुख मिलता है। प्रसन्न मन एकाग्र होता है। वह प्रेम और करुणा के विचारों से एक ही दिशा में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में, सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, पूर्णतः, प्रेम और करुणा के विचार असीम रूप से विकसित होकर, द्वेष और क्रोध से मुक्त रहता है। वह करुणा

के विचारों से एक ही दिशा में व्याप्त रहता है, वह आंतरिक आनंद के विचारों से एक ही दिशा में व्याप्त रहता है, वह समभाव के विचारों से एक ही दिशा में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में, सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, पूर्णतः, समभाव के विचार असीम रूप से विकसित होकर, द्वेष और क्रोध से मुक्त रहता है।

भिक्षुओं, एक रमणीय स्थान पर एक तालाब है जिसका पानी निर्मल, शुद्ध और शीतल है, और उसके किनारे सुगठित हैं। पूर्व दिशा से कोई व्यक्ति प्यासा, थका हुआ और गर्मी से व्याकुल होकर वहाँ आता है। वहाँ आकर उसकी प्यास और जलन दूर हो जाती है। पश्चिम से, उत्तर से, दक्षिण से, कोई भी आ सकता है। वे किसी भी दिशा से आएँ, उस तालाब पर आकर उनकी प्यास बुझ जाती है और उनकी जलन दूर हो जाती है। इसी प्रकार, योद्धा वंश से भी कोई व्यक्ति तथागत द्वारा बताए गए मार्ग का अनुसरण करते हुए संन्यासी बनता है और प्रेम, करुणा, आंतरिक आनंद और समभाव के भाव विकसित करके आंतरिक शांति प्राप्त करता है। जब आंतरिक शांति प्राप्त हो जाती है, तब मैं कहता हूँ कि उसने संन्यास का मार्ग अपना लिया है। योद्धा वंश से भी संन्यासी बनने वाला व्यक्ति अपनी इच्छाओं का नाश करता है, उसका मन मुक्त हो जाता है और ज्ञान के माध्यम से वर्तमान क्षण में ही वह ज्ञान-साक्षात्कार में स्थिर हो जाता है। इच्छाओं के नाश के साथ ही वह संन्यासी बन जाता है। ब्राह्मण वंश से, गृहस्थ वंश से, यहाँ तक कि बहिष्कृत वंश से भी, जो संन्यासी बन जाता है, वह भी अपनी इच्छाओं का नाश कर लेता है। उसका मन यहीं और इसी क्षण ज्ञान से मुक्त हो जाता है, और वह ज्ञान और अनुभूति में स्थिर हो जाता है। इच्छाओं का नाश करने वाला संन्यासी ही होता है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

5. चुलयमाका-वग्ग

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.1 सालेयाका सुत्त(41)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली भाषा से Ñanamoli Thera द्वारा अनुवादित

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ कोसल देश में विचरण कर रहे थे, और अंततः वे साला नामक एक कोसल ब्राह्मण गाँव में पहुँचे।

2. साला के ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना: "गौतम नामक एक भिक्षु, जो शाक्य वंश से निकले शाक्य वंश के पुत्र हैं, कोसल देश में भिक्षुओं के एक बड़े संघ के साथ विचरण कर रहे थे और साला आए हैं। अब गुरु गौतम के बारे में यह अच्छी ख्याति फैली है कि 'वह भगवान अर्हत और पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, सच्चे ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण हैं, उदात्त हैं, संसार के ज्ञाता हैं, मनुष्यों को वश में करने के लिए अतुलनीय गुरु हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध और धन्य हैं। वे इस संसार का वर्णन इसके देवताओं, इसके मारों और इसके (ब्रह्म) देवताओं के साथ, इस पीढ़ी का वर्णन इसके भिक्षुओं और ब्राह्मणों के साथ, इसके राजाओं और इसकी प्रजा के साथ करते हैं, जिसका उन्होंने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान से अनुभव किया है। वे एक ऐसे धर्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है, सही अर्थ और शब्दों के साथ, वे एक पवित्र जीवन की पुष्टि करते हैं जो पूर्णतः परिपूर्ण है और शुद्ध। अब ऐसे अरहंतों को देखकर अच्छा लगता है।

3. साला के ब्राह्मण गृहस्थ भगवान बुद्ध के पास गए; कुछ ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए; कुछ ने उनसे अभिवादन किया और जब शिष्टाचारपूर्ण और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त हुई, तो एक तरफ बैठ गए; कुछ ने हाथ जोड़कर भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए; कुछ ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में अपना नाम और कुल बताया और एक तरफ बैठ गए; कुछ चुप रहे और एक तरफ बैठ गए।

4. जब वे बैठ गए, तो उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम गुरु, इसका क्या कारण है, क्या परिस्थिति है, कि कुछ प्राणी शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, अभावग्रस्त अवस्था में, दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, यहाँ तक कि नरक में भी पुनर्जन्म लेते हैं; और इसका क्या कारण है, क्या परिस्थिति है, कि कुछ प्राणी शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, सुखद गंतव्य में, यहाँ तक कि स्वर्ग में भी पुनर्जन्म लेते हैं?"

5. "गृहस्थों, धम्म के अनुरूप आचरण न करने, अधार्मिक आचरण के कारण ही प्राणी शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद अभावग्रस्त अवस्था में, दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, यहाँ तक कि नरक में भी पुनर्जन्म लेते हैं। वहीं, धम्म के अनुरूप आचरण करने, धार्मिक आचरण के कारण ही कुछ प्राणी शरीर के नष्ट होने पर मृत्यु के बाद सुखद गंतव्य में, यहाँ तक कि स्वर्ग में भी पुनर्जन्म लेते हैं।"

6. गुरु गौतम द्वारा संक्षेप में कही गई इस बात का विस्तृत अर्थ हमें समझ में नहीं आता, क्योंकि इसका विस्तृत अर्थ स्पष्ट नहीं किया गया है। यदि गुरु गौतम हमें धम्म का उपदेश दें, तो यह अच्छा होगा, ताकि हम गुरु गौतम द्वारा संक्षेप में कही गई इस बात का विस्तृत अर्थ समझ सकें।

"तो, गृहस्थों, मेरी कही हुई बातों को ध्यान से सुनो और समझो।"

“जी, आदरणीय महोदय,” उन्होंने उत्तर दिया। भगवान बुद्ध ने यह कहा:

7. "गृहस्थों, तीन प्रकार के शारीरिक आचरण हैं जो धम्म के अनुरूप नहीं हैं, अधार्मिक आचरण। चार प्रकार के वाणी आचरण हैं जो धम्म के अनुरूप नहीं हैं, अधार्मिक आचरण। तीन प्रकार के मानसिक आचरण हैं जो धम्म के अनुरूप नहीं हैं, अधार्मिक आचरण।"

8. "और तीन प्रकार के शारीरिक आचरण, जो धम्म के अनुसार नहीं हैं, यानी अधार्मिक आचरण, कैसे हैं? यहाँ एक व्यक्ति प्राणियों का हत्यारा है: वह हत्यारा, रक्तरंजित हाथों वाला, मारपीट करने वाला और सभी प्राणियों के प्रति निर्दयी है। वह बिना दी हुई वस्तुएँ लेने वाला है: वह गाँव या जंगल में चोर की तरह दूसरे की संपत्ति और सामान चुराता है। वह यौन इच्छाओं में लिप्त है: वह ऐसी (स्त्रियों) के साथ संभोग करता है जो माता, पिता, भाई, बहन, रिश्तेदारों द्वारा संरक्षित हैं, जिनका पति है, जिन पर दंड लगता है, और साथ ही उन स्त्रियों के साथ भी जो सगाई के प्रतीक के रूप में माला पहनती हैं। इस प्रकार तीन प्रकार के शारीरिक आचरण, जो धम्म के अनुसार नहीं हैं, यानी अधार्मिक आचरण, हैं।"

9. "और चार प्रकार के मौखिक आचरण किस प्रकार हैं जो धम्म के अनुरूप नहीं हैं, अधार्मिक आचरण? यहाँ कोई व्यक्ति झूठ बोलता है: जब उसे किसी दरबार में, या किसी सभा में, या अपने रिश्तेदारों के सामने, या अपने संघ में, या राजपरिवार के सामने बुलाया जाता है, और एक साक्षी के रूप में उससे इस प्रकार प्रश्न किया जाता है, 'हे सज्जन, जो कुछ तुम जानते हो, वह बताओ,' तो न जानते हुए वह कहता है 'मैं जानता हूँ,' या जानते हुए वह कहता है 'मैं नहीं जानता,' न देखते हुए वह कहता है 'मैं देखता हूँ,' या देखते हुए वह कहता है 'मैं नहीं देखता'; वह पूरी जागरूकता के साथ अपने स्वार्थ के लिए, या किसी अन्य के स्वार्थ के लिए, या किसी तुच्छ सांसारिक उद्देश्य के लिए झूठ बोलता है। वह द्वेषपूर्ण ढंग से बोलता है: वह यहाँ सुनी हुई बातों को दूसरों में दोहराता है ताकि यहाँ फूट उत्पन्न हो, या वह दूसरों में सुनी हुई बातों को दूसरों के सामने दोहराता है ताकि यहाँ फूट उत्पन्न हो, और इस प्रकार वह एकता को तोड़ने वाला, फूट उत्पन्न करने वाला, कलह का आनंद लेने वाला, कलह में प्रसन्न होने वाला, कलह में आनंदित होने वाला, कलह में प्रसन्न होने वाला, ऐसे शब्दों का वक्ता है जो वह कलह उत्पन्न करता है। वह कठोर शब्दों का प्रयोग करता है: वह ऐसे शब्द बोलता है जो कठोर, आहत करने वाले, दूसरों की निंदा करने वाले, क्रोध से भरे और एकाग्रता भंग करने वाले होते हैं। वह चुगलखोर है: वह ऐसी बातें बताता है जो असमय, असत्य, अनुचित, धर्म के विरुद्ध और अनुशासन के विरुद्ध होती हैं। वह अनुचित, तर्कहीन, अस्पष्ट और अच्छाई से रहित बातें करता है। इस प्रकार धर्म के विरुद्ध चार प्रकार के वाणी आचरण होते हैं, जो अधार्मिक आचरण हैं।

10. "और तीन प्रकार के मानसिक आचरण, जो धम्म के अनुरूप नहीं हैं, यानी अधार्मिक आचरण, कैसे हैं? यहाँ कोई लोभी है: वह दूसरे की संपत्ति का लोभी है, इस प्रकार: 'काश, जो दूसरे का है वह मेरा होता!' या उसका मन द्वेष से भरा है, घृणा से ग्रस्त है, इस प्रकार: 'इन प्राणियों का वध हो, ये कट जाएं, नष्ट हो जाएं या मिट जाएं!' या उसका दृष्टिकोण विकृत है, इस प्रकार: 'कुछ भी दिया नहीं जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता, कुछ भी बलिदान नहीं किया जाता, अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल या परिपक्वता नहीं होती, न यह संसार है, न दूसरा संसार है, न माता है, न पिता है, न स्वतः उत्पन्न प्राणी है,1 न ही सद्‌गुणी भिक्षु और ब्राह्मण हैं जिन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं को इस संसार और दूसरे संसार का ज्ञान प्राप्त किया है और इसकी घोषणा करते हैं।'2 इस प्रकार तीन प्रकार के मानसिक आचरण, जो धम्म के अनुरूप नहीं हैं, यानी अधार्मिक आचरण, हैं।"

इसलिए, गृहस्थों, धम्म के अनुरूप आचरण न करने, अधर्मी आचरण के कारण ही कुछ प्राणी शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, अभाव की अवस्था में, दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, यहाँ तक कि नरक में भी पुनः प्रकट होते हैं।

11. "हे गृहस्थो, धर्म के अनुसार तीन प्रकार के शारीरिक आचरण होते हैं, जो धार्मिक आचरण कहलाता है। धर्म के अनुसार चार प्रकार के वाणी आचरण होते हैं, जो धार्मिक आचरण कहलाता है। धर्म के अनुसार तीन प्रकार के मानसिक आचरण होते हैं, जो धार्मिक आचरण कहलाता है।"

12. "और धर्म के अनुसार तीन प्रकार के शारीरिक आचरण क्या हैं? यहाँ, जो व्यक्ति प्राणियों की हत्या का त्याग कर देता है, वह प्राणियों की हत्या से परहेज करने वाला बन जाता है; वह लाठी और शस्त्र त्यागकर, कोमल और दयालु होकर सभी प्राणियों के प्रति करुणामय रहता है। जो कुछ भी नहीं दिया गया है, उसे लेने का त्याग करके, वह उन चीजों को लेने से परहेज करने वाला बन जाता है जो नहीं दी गई हैं; वह गाँव या जंगल में किसी दूसरे की संपत्ति को चोर की तरह नहीं लेता। कामुक इच्छाओं में दुराचार का त्याग करके, वह कामुक इच्छाओं में दुराचार से परहेज करने वाला बन जाता है: वह ऐसी स्त्रियों के साथ संभोग नहीं करता जो माता, पिता, भाई, बहन, रिश्तेदारों द्वारा संरक्षित हैं, जिनका पति है, जिन पर दंड लगता है, और जो सगाई के प्रतीक के रूप में माला पहनती हैं। इस प्रकार धर्म के अनुसार तीन प्रकार के शारीरिक आचरण होते हैं।"

13. "और धर्म के अनुसार चार प्रकार के वाणी संबंधी आचरण, यानी धार्मिक आचरण, कैसे हैं? यहाँ जो व्यक्ति झूठी वाणी का त्याग करके झूठी वाणी से विमुख हो जाता है, वह तब साक्षी बन जाता है जब उसे किसी दरबार में, किसी सभा में, अपने रिश्तेदारों के समक्ष, अपने संघ में, या राजपरिवार के समक्ष बुलाया जाता है और उससे साक्षी के रूप में इस प्रकार प्रश्न किया जाता है, 'हे भले, जो तुम जानते हो, वह बताओ,' न जानने पर वह कहता है 'मैं नहीं जानता,' या जानने पर भी वह कहता है 'मैं जानता हूँ,' न देखने पर वह कहता है 'मैं नहीं देखता,' या देखने पर भी वह कहता है 'मैं देखता हूँ'; वह पूरी जागरूकता के साथ अपने स्वार्थ के लिए, या किसी अन्य के स्वार्थ के लिए, या किसी तुच्छ सांसारिक उद्देश्य के लिए झूठ नहीं बोलता। द्वेषपूर्ण वाणी का त्याग करके वह द्वेषपूर्ण वाणी से विमुख हो जाता है: वह न तो यहाँ सुनी हुई बातों को दूसरों में दोहराता है ताकि यहाँ विभाजन हो, न ही दूसरों में सुनी हुई बातों को दूसरों के बीच दोहराता है ताकि यहाँ विभाजन हो, वह विभाजितों को जोड़ने वाला, मित्रता को बढ़ावा देने वाला और आनंद लेने वाला होता है। वह सामंजस्य में प्रसन्न होता है, सामंजस्य से आनंदित होता है, सामंजस्य को बढ़ावा देने वाले शब्दों का वक्ता बनता है। कठोर वाणी का त्याग करके, वह कठोर वाणी से दूर रहने वाला बन जाता है: वह ऐसे शब्दों का वक्ता बनता है जो निर्दोष, कानों को मधुर और प्रिय हों, हृदय को छूने वाले हों, सभ्य हों, अनेकों के प्रिय हों। चुगली का त्याग करके, वह चुगली से दूर रहने वाला बन जाता है: वह समयोचित, तथ्यात्मक, उत्तम, धर्म के अनुसार और अनुशासन के अनुसार बात करता है; वह समयोचित, तर्कसंगत, निश्चित और अच्छाई से संबंधित वाणी बोलता है। इस प्रकार धर्म के अनुसार चार प्रकार के वाणी आचरण होते हैं, जो धार्मिक आचरण कहलाता है।

14. "और धर्म के अनुसार तीन प्रकार के मानसिक आचरण कैसे होते हैं? यहाँ व्यक्ति लोभ रहित है: वह दूसरों की संपत्ति का लोभ नहीं करता, जैसे कि 'काश, जो दूसरे का है वह मेरा होता!' उसके मन में द्वेष नहीं है, बल्कि घृणा से मुक्त मन है, जैसे कि 'ये प्राणी शत्रुता, कष्ट और चिंता से मुक्त हों, सुखी जीवन व्यतीत करें!' उसका सही दृष्टिकोण है, स्पष्ट दृष्टि है, जैसे कि 'जो दिया जाता है, जो अर्पित किया जाता है और जो बलिदान किया जाता है, वह है; अच्छे और बुरे कर्मों का फल और परिपक्वता है; यह संसार है, परलोक है; माता-पिता हैं, स्वतः उत्पन्न प्राणी हैं; अच्छे और गुणी भिक्षु और ब्राह्मण हैं जिन्होंने स्वयं प्रत्यक्ष ज्ञान से इस संसार और परलोक का वर्णन किया है।' इस प्रकार धर्म के अनुसार तीन प्रकार के मानसिक आचरण होते हैं।"

इसलिए, गृहस्थों, धम्म के अनुसार आचरण करने के कारण, धार्मिक आचरण के कारण ही, कुछ प्राणी शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, एक सुखद गंतव्य में, यहाँ तक कि स्वर्गलोक में भी, पुन: प्रकट होते हैं।

15. यदि कोई गृहस्थ, जो धम्म के अनुसार आचरण करता है, यह कामना करे: 'काश, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, मैं महान धनवान योद्धाओं के समूह में पुन: प्रकट हो सकूँ!' तो संभव है कि मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह ऐसा कर पाए। ऐसा क्यों? क्योंकि वह धम्म के अनुसार आचरण करता है।

16. "यदि कोई गृहस्थ, जो धम्म के अनुसार आचरण करता है, धार्मिक आचरण का पालन करता है, यह कामना करे: 'काश, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, मैं धनवान ब्राह्मणों की संगति में पुन: प्रकट हो सकूँ!' तो यह संभव है..."

17. "यदि कोई गृहस्थ, जो धम्म के अनुसार आचरण करता है, ... '... मैं धनवान गृहस्थों की संगति में पुनः प्रकट हो सकता हूँ!' यह संभव है..."

18. "यदि कोई गृहस्थ, जो धम्म के अनुसार आचरण करता है, धार्मिक आचरण का पालन करता है, यह इच्छा करे: 'काश, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, मैं चारों राजाओं के देवताओं की संगति में पुन: प्रकट हो सकूँ!'" यह संभव है कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर वह ऐसा करे। ऐसा क्यों? क्योंकि वह धम्म के अनुसार आचरण करता है, धार्मिक आचरण करता है।
19. ...तैंतीस लोक के देवताओं में से...
20. ...आनंदित देवताओं में से... 21.
...संतोषी देवताओं में से... 22. ...
सृजन में आनंदित देवताओं में से... 23.
...दूसरों की रचनाओं पर शक्ति रखने वाले देवताओं में से... 24. ...
ब्रह्मा के अनुयायियों में से... 25. ...
तेजस्वी देवताओं में से... 26. ...
सीमित तेवर वाले देवताओं में से... 27. ...
असीम तेवर वाले देवताओं में से... 28.
...प्रवाहमय तेवर वाले देवताओं में से...
29. ...महिमावान देवताओं में से...
30. ...सीमित महिमा वाले देवताओं में से...
31. ...असीम महिमा वाले देवताओं में से...
32. ...तेजस्वी महिमा वाले देवताओं में से...
33. ...अत्यंत फलदायी देवताओं के...
34. ...अपनी समृद्धि में डूबे देवताओं के...
35. ...पीड़ा रहित देवताओं के...
36. ...मनमोहक देवताओं के...
37. ...सुंदर दृष्टि वाले देवताओं के...
38. ...उन देवताओं के जो किसी से कम नहीं हैं...
39. ...अनंत अंतरिक्ष से बने आधारभूत देवताओं के...
40. ...अनंत चेतना से बने आधारभूत देवताओं के...
41. ...शून्यता से बने आधारभूत देवताओं के...
42. यदि कोई गृहस्थ, जो धर्म के अनुसार आचरण करता है, यह कामना करे: 'काश, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, मैं उन नीच देवताओं के साथ पुन: प्रकट हो सकूँ जो न तो प्रत्यक्ष हैं और न ही अप्रत्यक्ष!' तो संभव है कि मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह ऐसा कर पाए। ऐसा क्यों? क्योंकि वह धर्म के अनुसार आचरण करता है।

43. यदि कोई गृहस्थ, जो धर्म के अनुसार आचरण करता है, यह कामना करे: 'हे ईश्वर, प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं को आत्म-साक्षात्कार करके, मैं इसी क्षण हृदय की मुक्ति और दोषरहित तथा सभी दोषों के निवारण से प्राप्त ज्ञान की मुक्ति में प्रवेश कर सकूँ और उसमें स्थिर रह सकूँ!' तो यह संभव है कि प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं को आत्म-साक्षात्कार करके, वह इसी क्षण हृदय की मुक्ति और सभी दोषों के निवारण से प्राप्त ज्ञान की मुक्ति में प्रवेश कर सकूँ और उसमें स्थिर रह सके। ऐसा क्यों है? क्योंकि वह धर्म के अनुसार आचरण करता है।'

44. जब यह कहा गया, तो साला के ब्राह्मण गृहस्थों ने भगवान बुद्ध से कहा:

"महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरे हुए को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, खोए हुए को रास्ता दिखा रहे हों, अंधकार में उन लोगों के लिए दीपक जला रहे हों जिनके पास रूप देखने के लिए आंखें हैं।"

45. "हम गुरु गौतम की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षुओं के संघ की शरण में जाते हैं। आज से गुरु गौतम हमें जीवन भर के लिए अपने अनुयायी के रूप में स्वीकार करें।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.2वेरंजका सुत्त(42)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्ती में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। उस समय वेरंजक के ब्राह्मण गृहस्थ किसी उद्देश्य से सावत्ती आए हुए थे। उन्होंने सुना कि शाक्यों वंश से विमुख होकर निकले श्रेष्ठ संन्यासी गौतम सावत्ती में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे हैं। उनके बारे में यह ख्याति फैल गई थी कि भगवान बुद्ध परिपूर्ण, सच्चे ज्ञान से परिपूर्ण, ज्ञान और आचरण से संपन्न हैं, और उनका स्वर्गवास सिद्ध हो चुका है। वे संसार के ज्ञाता हैं और मनुष्यों को वश में करने में अद्वितीय हैं। वे देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, और ज्ञान से परिपूर्ण एवं धन्य हैं। देवताओं और मनुष्यों के इस संसार में, इसके मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों, ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों के समुदाय सहित, उन्होंने स्वयं द्वारा ज्ञात और अनुभवित एक शिक्षा का प्रचार किया। यह आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है। यह शब्दों में भी अर्थपूर्ण है और शुद्ध एवं पूर्ण, पवित्र जीवन की घोषणा करती है। ऐसे श्रेष्ठ लोगों को देखना सुखद है। तब वेरंजा के ब्राह्मण गृहस्थ भगवान बुद्ध के पास पहुँचे। कुछ ने भगवान बुद्ध की पूजा की, कुछ ने उनसे मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया, कुछ ने उनसे हाथ जोड़े, कुछ ने अपने कुल और नाम की घोषणा की, और कुछ मौन रहे। वे सब एक तरफ बैठ गए। तब उन ब्राह्मण गृहस्थों ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा: हे गौतम, कुछ प्राणी मृत्यु के बाद हानि, नरक में क्यों जाते हैं और कुछ अन्य मृत्यु के बाद वृद्धि और स्वर्ग में जन्म क्यों लेते हैं? हे! गृहस्थों, दुराचार करने और शिक्षा के अनुसार जीवन न जीने के कारण कुछ लोग हानि उठाते हैं और नरक में जाते हैं, जबकि अन्य जो अच्छा आचरण करते हैं और शिक्षा के अनुसार जीवन जीते हैं, वे समृद्धि प्राप्त करते हैं और मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेते हैं। हमें गौतम बुद्ध की यह संक्षिप्त व्याख्या समझ में नहीं आई। कृपया इसकी व्याख्या कर दें। भगवान बुद्ध ने कहा, "हे गृहस्थों, ध्यान से सुनो, मैं समझाता हूँ।"

हे गृहस्थो, शरीर से तीन प्रकार के दुराचार होते हैं, वाणी से चार प्रकार के दुराचार होते हैं और मन से तीन प्रकार के दुराचार होते हैं। गृहस्थो, शरीर से होने वाले तीन प्रकार के दुराचार क्या हैं? यहाँ, एक व्यक्ति निर्दयी है, जीवों को नष्ट करता है, उसके हाथ रक्त से सने हैं। वह निर्दयता से जीवों को नष्ट करने में लगा रहता है। गाँव या जंगल से दूसरों की संपत्ति चोरी-छिपे ले लेता है। जो दिया नहीं गया, उसे ले लेता है। यौन दुराचार करता है, पिता, माता, भाई, बहन, रिश्तेदारों, पति वाली महिलाओं, यहाँ तक कि माला पहनाई गई और प्रतिज्ञा ली गई महिलाओं के साथ भी दुराचार करता है। गृहस्थो, यह शरीर से होने वाले तीन प्रकार के दुराचार हैं। गृहस्थो, वाणी से होने वाले चार प्रकार के दुराचार क्या हैं? यहाँ, गृहस्थो, एक व्यक्ति सभा में, समारोह में, रिश्तेदारों के बीच, संघ में, या राजपरिवार की उपस्थिति में झूठ बोलता है। जब उसे गवाह के रूप में बुलाया जाता है और उससे पूछा जाता है कि वह क्या जानता है, तो न जानने पर वह कहता है कि मैं जानता हूँ। जानने पर वह कहता है कि मैं नहीं जानता। न देखकर भी वह कहता कि मैंने देखा, देखकर कहता कि मैंने नहीं देखा। इस प्रकार अपने लाभ के लिए, किसी दूसरे के लाभ के लिए, या किसी छोटे से लाभ के लिए वह जानबूझकर झूठ बोलता। निंदा करता, यहाँ सुनकर कहीं और बताता ताकि यहाँ फूट पड़ जाए, कहीं और सुनकर यहाँ बताता ताकि वहाँ फूट पड़ जाए। इस प्रकार वह एकता को भंग करता है, फूट डालने वाली बातों का शौकीन है, फूट डालने वाले शब्द बोलता है। कठोर स्वर में बोलता है, कठोर और तीखे शब्दों का प्रयोग करता है। क्रोध से भरे शब्द जो एकाग्रता में बाधक होते हैं। व्यर्थ, असमय और असत्य शब्द बोलता है, जो शिक्षा और अनुशासन के अनुरूप नहीं होते। ऐसे शब्द जिनका कोई महत्व नहीं। गृहस्थों, यह चार प्रकार का शाब्दिक कुकर्म है। गृहस्थों, तीन प्रकार का मानसिक कुकर्म क्या है? यहाँ, गृहस्थों, व्यक्ति दूसरों की संपत्ति का लोभ करता है, सोचता है कि काश वे मेरी हो जाएँ। दूषित मन से क्रोधित होता है, सोचता है कि वे नष्ट हो जाएँ और उनका अस्तित्व न रहे। यह गलत, विकृत सोच है कि दान और बलिदान का कोई फल नहीं होता। शुद्ध और अशुद्ध कर्मों का कोई फल नहीं होता। न यह संसार है, न परलोक, न माता-पिता, न स्वतः उत्पन्न प्राणी, न वे संन्यासी और न ब्राह्मण जो सही मार्ग पर चलकर स्वयं इस संसार और परलोक का ज्ञान प्राप्त कर चुके हों। हे गृहस्थों, यह तीन प्रकार का मानसिक दुराचार है। हे गृहस्थों, इस दुराचार और शिक्षा के अनुसार जीवन न जीने के कारण, कोई व्यक्ति मृत्यु के बाद हानि में जन्म लेता है और नरक में जाता है।

हे गृहस्थो, शरीर द्वारा सही आचरण तीन प्रकार का होता है, वाणी द्वारा चार प्रकार का और मन द्वारा तीन प्रकार का। गृहस्थो, शरीर द्वारा सही आचरण क्या है? यहाँ, एक व्यक्ति जीवित प्राणियों को नष्ट करने से परहेज करता है, लाठी और हथियार फेंक देता है, लज्जित रहता है, सभी जीवित प्राणियों के प्रति दयालु रहता है, गाँव या जंगल में दूसरों की संपत्ति नहीं लेता, जो किसी की देन नहीं है। यौन संबंध में दुराचार नहीं करता, माता-पिता, भाई-बहन, रिश्तेदारों या पति द्वारा संरक्षित लोगों के साथ दुराचार नहीं करता, दंड के पात्र नहीं बनता, यहाँ तक कि माला पहनाकर प्रतिज्ञा लेने वालों के साथ भी दुराचार नहीं करता। गृहस्थो, यह शरीर द्वारा सही आचरण का तीन प्रकार है। गृहस्थो, वाणी द्वारा सही आचरण का चार प्रकार क्या है? यहाँ, गृहस्थो, एक व्यक्ति झूठ नहीं बोलता। सभा में, समारोह में, रिश्तेदारों के

बीच, संघ में, या राजपरिवार की उपस्थिति में, साक्षी के रूप में बुलाए जाने पर, जब उससे पूछा जाए कि वह क्या जानता है, तो न जानने पर वह कहेगा, मैं नहीं जानता। जानने पर वह कहेगा, मैं जानता हूँ। न देखने पर वह कहता कि मैंने नहीं देखा, और देखने पर कहता कि मैंने देखा। इस प्रकार, अपने भले के लिए, या किसी दूसरे के भले के लिए, या किसी छोटे से लाभ के लिए, वह सचेत होकर झूठ नहीं बोलता। निंदा नहीं करता, यहाँ सुनकर उसे कहीं और नहीं बताता ताकि यहाँ फूट न पड़े। कहीं और सुनकर उसे यहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ फूट न पड़े। इस प्रकार, एक को विभाजित नहीं करता, एकता पसंद करने वाला एकता के वचन बोलता है। कठोर नहीं बोलता, बल्कि विनम्र, प्रेमपूर्ण और सीधे हृदय को छूने वाले वचन बोलता है, जो आम जनता को भाते हैं। व्यर्थ की बातें नहीं करता, बल्कि समयोचित, सत्य और शिक्षा एवं अनुशासन के अनुसार वचन बोलता है। ऐसे वचन जिन्हें संजोकर रखा जा सके। गृहस्थों, यह चार प्रकार का सही आचरण है। गृहस्थों, तीन प्रकार का मानसिक आचरण क्या है? यहाँ, गृहस्थों, कोई दूसरों की संपत्ति का लालच नहीं करता, यह सोचकर कि काश वह मेरी हो जाए। क्रोधित नहीं होता और दूषित मन से यह सोचकर नहीं चलता कि ये प्राणी कुशल और सुखी हों। सही दृष्टि से विकृत नहीं होता। दान और बलिदान का फल होता है। शुद्ध और अशुद्ध कर्मों का फल होता है। यह संसार है और दूसरा संसार। इसमें माता, पिता और स्वतः उत्पन्न प्राणी हैं। इस संसार में संन्यासी और ब्राह्मण हैं जो सही मार्ग पर चल पड़े हैं और स्वयं को इस संसार और दूसरे संसार का ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। गृहस्थों, यही तीन प्रकार का सही मानसिक आचरण है। इस सही आचरण और शिक्षा के अनुसार जीवन जीने के कारण, मृत्यु के बाद कोई व्यक्ति स्वर्ग में वंशवृद्धि के साथ जन्म लेता है।

हे गृहस्थों, यदि कोई व्यक्ति, जो शिक्षा के अनुसार सही आचरण में रहता है, यह कामना करे कि मृत्यु के बाद उसका जन्म योद्धा गृहस्थों के साथ हो, तो संभव है कि उसका जन्म योद्धा गृहस्थों के साथ ही हो। इसका कारण यह है कि जो व्यक्ति शिक्षा के अनुसार सही आचरण में रहता है, उसके साथ ऐसा होता है। — मृत्यु के बाद उसका जन्म ब्राह्मण गृहस्थों के साथ हो, — गृहस्थ वंश के साथ हो, तो संभव है कि उसका जन्म गृहस्थ वंश में ही हो। गृहस्थों, यदि कोई व्यक्ति, शिक्षा के अनुसार सही आचरण में रहते हुए, यह कामना करे कि वह रक्षक देवताओं के दल के साथ, तैंतीस देवताओं के दल के साथ, यम देवताओं के साथ, सुख के देवताओं के साथ, सृजन से जुड़े देवताओं के साथ, दूसरों के सृजन से जुड़े देवताओं के साथ, ब्रह्म शरीर धारण करने वाले देवताओं के साथ, तेज के देवताओं के साथ, सीमित तेज के देवताओं के साथ, असीम तेज के देवताओं के साथ, प्रकाशमान देवताओं के साथ, सुख के देवताओं के साथ, सीमित सुख के देवताओं के साथ, असीम सुख के देवताओं के साथ, सुख से परिपूर्ण देवताओं के साथ, अंतरिक्ष में शक्ति धारण करने वाले देवताओं के साथ, अविनाशी देवताओं के साथ, असंतुष्ट देवताओं के साथ, अंतर्दृष्टि वाले देवताओं के साथ, सर्वोच्च स्वर्ग के देवताओं के साथ, देवताओं के दल के साथ, अंतरिक्ष के क्षेत्र में, चेतना के क्षेत्र में, न तो चेतना के क्षेत्र में, न ही चेतना के क्षेत्र में जन्म ले। मृत्यु के बाद, यह संभव है कि वे देवताओं के दल के साथ, न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र में जन्म लें। इसका कारण क्या है? यह उन लोगों के साथ होता है जो शिक्षा के अनुसार सही आचरण में रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति जो शिक्षा के अनुसार सही आचरण में रहता है, यह कामना करे कि वह इच्छाओं का नाश करके, मन को ज्ञान से मुक्त करके, यहीं और अभी ज्ञान प्राप्त कर ले और स्थिर रहे, तो यह संभव है कि वह इच्छाओं का नाश करके, मन को ज्ञान से मुक्त करके, यहीं और अभी ज्ञान प्राप्त कर ले और स्थिर रहे। इसका कारण क्या है? यह उन लोगों के साथ होता है जो सही आचरण में रहते हैं।

यह सुनकर साला के ब्राह्मण गृहस्थों ने भगवान बुद्ध से कहा, “अब हम समझ गए हैं, पूज्यवर। ऐसा लगता है जैसे भगवान गौतम ने किसी खोई हुई चीज को फिर से स्थापित कर दिया हो। किसी छिपी हुई चीज को प्रकट कर दिया हो। मानो भटके हुए लोगों को मार्ग बता दिया हो। मानो दृष्टिहीन लोगों के लिए, जो रूप देख सकते हैं, तेल का दीपक जला दिया हो। इस प्रकार अनेक प्रकार से उपदेश की व्याख्या की गई है। अब हम भगवान गौतम की शरण में, उनके उपदेश में और भिक्षु समुदाय में शरण लेते हैं। हम आज से जीवन भर भगवान गौतम की शरण में रहेंगे।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.3महावेदल्ला सुत्त(43)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो द्वारा अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन के उपवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। तब पूज्य महा कोत्थिता दोपहर बाद अपने एकांतवास से उठकर पूज्य सारिपुत्त के पास गए और वहाँ पहुँचकर उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद वे एक तरफ बैठ गए।

वहाँ बैठे हुए उन्होंने पूज्य सारिपुत्त से कहा, "मित्र, 'कम विवेक वाला व्यक्ति, कम विवेक वाला व्यक्ति': ऐसा कहा जाता है। किस हद तक किसी को 'कम विवेक वाला व्यक्ति' कहा जाता है?"

"'समझ नहीं पाता, समझ नहीं पाता': इसलिए, मित्र, 'कम विवेक वाला' कहा जाता है। और क्या नहीं समझ पाता? वह नहीं समझ पाता, 'यह तनाव है।' वह नहीं समझ पाता, 'यह तनाव का कारण है।' वह नहीं समझ पाता, 'यह तनाव का निवारण है।' वह नहीं समझ पाता, 'यह तनाव निवारण की ओर ले जाने वाला अभ्यास है।' 'समझ नहीं पाता, समझ नहीं पाता': इसलिए 'कम विवेक वाला' कहा जाता है।"

"बहुत अच्छा, मित्र," कहते हुए, पूज्य महा कोत्थिता - पूज्य सारिपुत्त के कथन से प्रसन्न और सहमत होते हुए - ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "विवेकशील, विवेकशील: ऐसा कहा जाता है। मित्र, किस हद तक किसी को 'विवेकशील' कहा जाता है?"

"'एक व्यक्ति विवेक करता है, एक व्यक्ति विवेक करता है': इस प्रकार, मित्र, व्यक्ति को 'विवेकी' कहा जाता है। और व्यक्ति क्या विवेक करता है? वह विवेक करता है, 'यह तनाव है।' वह विवेक करता है, 'यह तनाव का उद्गम है।' वह विवेक करता है, 'यह तनाव के निवारण का मार्ग है।' 'एक व्यक्ति विवेक करता है, एक व्यक्ति विवेक करता है': इस प्रकार व्यक्ति को 'विवेकी' कहा जाता है।" चेतना

"'चेतना, चेतना': ऐसा कहा जाता है। मित्र, किस हद तक इसे 'चेतना' कहा जाता है?"

"'यह जानता है, यह जानता है': इस प्रकार, मित्र, इसे 'चेतना' कहा जाता है। और यह क्या जानता है? यह 'सुखद' को जानता है। यह 'दुखद' को जानता है। यह 'न दुखदायी और न सुखदायी' को जानता है। 'यह जानता है, यह जानता है': इस प्रकार इसे 'चेतना' कहा जाता है।"

"विवेक और चेतना, मित्र: क्या ये गुण आपस में जुड़े हुए हैं या अलग-अलग? क्या इन्हें एक दूसरे से अलग करके इनके बीच के अंतर को स्पष्ट करना संभव है?"

"विवेक और चेतना आपस में जुड़े हुए हैं, मित्र, अविभाजित नहीं। इन्हें अलग-अलग करके इनके बीच अंतर करना संभव नहीं है। क्योंकि जो हम देखते हैं, वही हम जानते हैं। जो हम जानते हैं, वही हम देखते हैं। इसलिए ये गुण आपस में जुड़े हुए हैं, अविभाजित नहीं, और इन्हें अलग-अलग करके इनके बीच अंतर करना संभव नहीं है।"

"विवेक और चेतना, मित्र: इन गुणों में क्या अंतर है जो एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, अविभाजित नहीं हैं?"

"विवेक और चेतना, मित्र: ये दोनों गुण आपस में जुड़े हुए हैं, अविभाजित नहीं। इनमें से विवेक का विकास करना है, चेतना को पूर्णतः समझना है।"1

"'भावना, भावना': ऐसा कहा जाता है। मित्र, इसे किस हद तक 'भावना' कहा जाता है?"

"'यह महसूस करता है, यह महसूस करता है': इसलिए, मित्र, इसे 'महसूस करना' कहा जाता है। और यह क्या महसूस करता है? यह सुख महसूस करता है। यह दर्द महसूस करता है। यह न सुख महसूस करता है, न दर्द। 'यह महसूस करता है, यह महसूस करता है': इसलिए इसे 'महसूस करना' कहा जाता है।" बोध

"'धारणा, धारणा': ऐसा कहा जाता है। मित्र, इसे किस हद तक 'धारणा' कहा जाता है?"

"'यह अनुभव करता है, यह अनुभव करता है': इसलिए, मित्र, इसे 'अनुभूति' कहा जाता है। और यह क्या अनुभव करता है? यह नीला अनुभव करता है। यह पीला अनुभव करता है। यह लाल अनुभव करता है। यह सफेद अनुभव करता है। 'यह अनुभव करता है, यह अनुभव करता है': इसलिए इसे 'अनुभूति' कहा जाता है।"

"मित्र, भावना, बोध और चेतना: क्या ये गुण आपस में जुड़े हुए हैं या अलग-अलग? क्या इन्हें एक-दूसरे से अलग करके इनके बीच के अंतर को स्पष्ट करना संभव है?"

"मित्र, भावना, बोध और चेतना आपस में जुड़े हुए हैं, अविभाजित नहीं। इन्हें अलग-अलग करके इनके बीच अंतर करना संभव नहीं है। क्योंकि जो हम महसूस करते हैं, वही हम अनुभव करते हैं। जो हम अनुभव करते हैं, वही हम जानते हैं। इसलिए ये गुण आपस में जुड़े हुए हैं, अविभाजित नहीं, और इन्हें अलग-अलग करके इनके बीच अंतर करना संभव नहीं है।" विवेक की दृष्टि

"मित्र, पाँच इंद्रियों से विरक्त शुद्ध बुद्धि-चेतना से क्या जाना जा सकता है?"

"मित्र, पाँचों इंद्रियों से मुक्त होकर शुद्ध हुई बुद्धि-चेतना से अनंत अंतरिक्ष के आयाम को 'अनंत अंतरिक्ष' के रूप में जाना जा सकता है। अनंत चेतना के आयाम को 'अनंत चेतना' के रूप में जाना जा सकता है। शून्यता के आयाम को 'कुछ नहीं है' के रूप में जाना जा सकता है।"

"जिस गुण को जाना जा सकता है, उसे जानने के लिए क्या तरीका इस्तेमाल किया जा सकता है?"

"एक गुण को विवेक की दृष्टि से जाना जा सकता है।"

और विवेक का उद्देश्य क्या है?

"विवेक का उद्देश्य प्रत्यक्ष ज्ञान है, इसका उद्देश्य पूर्ण बोध है, इसका उद्देश्य त्याग है।" सही दृष्टिकोण

"मित्र, सही दृष्टिकोण उत्पन्न होने के लिए कितनी शर्तें होती हैं?"

"मित्र, सही दृष्टि उत्पन्न होने के लिए दो शर्तें हैं: दूसरे की वाणी और उचित ध्यान। यही दो शर्तें हैं सही दृष्टि उत्पन्न होने के लिए आवश्यक हैं।"

और कितने कारकों की सहायता से सही दृष्टिकोण जागरूकता-मुक्ति को अपने फल और पुरस्कार के रूप में प्राप्त करता है, और विवेक-मुक्ति को अपने फल और पुरस्कार के रूप में प्राप्त करता है?

पांच कारकों की सहायता से, सही दृष्टि का फल और पुरस्कार जागरूकता की मुक्ति तथा विवेक की मुक्ति है। एक स्थिति ऐसी भी है जब सही दृष्टि को सद्‌गुण, ज्ञान, चर्चा, शांति और अंतर्दृष्टि से सहायता मिलती है। इन पांच कारकों की सहायता से, सही दृष्टि का फल और पुरस्कार जागरूकता की मुक्ति तथा विवेक की मुक्ति है।

"मित्र, बनने की प्रक्रिया कितने प्रकार की होती है?"

"मित्र, तीन प्रकार की उत्पत्ति होती है: इंद्रियजन्य उत्पत्ति, रूप उत्पत्ति और निराकार उत्पत्ति।"

और भविष्य में आगे का विकास किस प्रकार होगा?

"अज्ञान से बाधित और लालसा से जकड़े प्राणियों का कभी यहाँ, कभी वहाँ का आनंद: इसी प्रकार भविष्य में आगे का विकास होता है।"

और भविष्य में और अधिक विकास कैसे नहीं होगा?

"अज्ञान के लुप्त होने, स्पष्ट ज्ञान के उदय और लालसा के निवारण से ही भविष्य में आगे की उत्पत्ति नहीं होती।" पहला ध्यान

"मित्र, पहला ध्यान क्या है?"

"मित्र, एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु - इंद्रिय सुखों से पूर्णतः विरक्त होकर, अकुशल गुणों से विरक्त होकर - प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: यह एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद है, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है। इसे प्रथम ध्यान कहते हैं।"

"और पहले ध्यान में कितने कारक होते हैं?"

"प्रथम ध्यान में पाँच तत्व होते हैं। एक ऐसा मामला है जहाँ पंच तत्वों से युक्त प्रथम ध्यान प्राप्त कर चुके भिक्षु में निर्देशित विचार, मूल्यांकन, परमानंद, आनंद और एकाग्र मन की अनुभूति होती है। इस प्रकार प्रथम ध्यान में पाँच तत्व होते हैं।"

"प्रथम ध्यान में कितने कारकों का त्याग किया जाता है, और कितने कारकों से यह युक्त होता है?"

"प्रथम ध्यान में पाँचों गुणों का त्याग किया जाता है और पाँचों गुण ही मन को परिपूर्ण करते हैं। प्रथम ध्यान प्राप्त कर चुके भिक्षु में कामुक इच्छा, द्वेष, आलस्य, बेचैनी और चिंता, अनिश्चितता का त्याग हो जाता है। और वहाँ निर्देशित विचार, मूल्यांकन, परमानंद, सुख और एकाग्रता उत्पन्न होती है। इस प्रकार प्रथम ध्यान में पाँचों गुणों का त्याग किया जाता है और पाँचों गुण ही मन को परिपूर्ण करते हैं।"

"मित्र, ये पाँच इंद्रियाँ हैं, जिनमें से प्रत्येक का अपना अलग दायरा और क्षेत्र है, और वे एक-दूसरे के दायरे और क्षेत्र का अनुभव नहीं करतीं: आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर। अब इन पाँचों इंद्रियों का, जिनका प्रत्येक का अपना अलग दायरा और क्षेत्र है, और जो एक-दूसरे के दायरे और क्षेत्र का अनुभव नहीं करतीं: आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर, का सामान्य मध्यस्थ कौन है? वह कौन है जो इन सभी के दायरे और क्षेत्रों का अनुभव करता है?"

"मित्र, ये पाँचों इंद्रियाँ—जिनमें से प्रत्येक का अपना अलग दायरा, अपना अलग क्षेत्र है, और जो एक-दूसरे के दायरे और क्षेत्र का अनुभव नहीं करतीं: आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर—इन सबका [साझा] मध्यस्थ बुद्धि है। बुद्धि ही इन सभी के दायरे और क्षेत्रों का अनुभव करती है।"

अब, ये पाँच इंद्रियाँ—आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर: ये किस पर निर्भर करती हैं?

"ये पाँचों इंद्रियाँ—आँख, कान, नाक, जीभ और शरीर—जीवन शक्ति पर निर्भर रहते हुए स्थिर रहती हैं।"2

और जीवन शक्ति किस पर निर्भर रहती है?

"जीवन शक्ति ऊष्मा पर निर्भर रहती है।"

और ऊष्मा किस पर निर्भर रहती है?

"ऊष्मा जीवन शक्ति पर निर्भर रहते हुए स्थिर रहती है।"

"अभी-अभी, मित्र सारिपुत्त, हमने आपको यह कहते हुए समझा, 'जीवन शक्ति ऊष्मा पर निर्भर रहती है।' और अभी-अभी हमने आपको यह कहते हुए समझा, 'ऊष्मा जीवन शक्ति पर निर्भर रहती है।' अब इन कथनों का अर्थ क्या निकाला जाए?"

"तो फिर, मित्र, मैं तुम्हें एक उदाहरण दूंगा, क्योंकि ऐसे कई उदाहरण हैं जहाँ एक बुद्धिमान व्यक्ति उदाहरण के माध्यम से ही किसी कथन का अर्थ समझता है। मान लीजिए एक तेल का दीपक जल रहा है। उसकी चमक उसकी लौ पर निर्भर करती है, और उसकी लौ उसकी चमक पर निर्भर करती है। उसी प्रकार, जीवन शक्ति ऊष्मा पर निर्भर करती है, और ऊष्मा जीवन शक्ति पर निर्भर करती है। जीवन शक्ति-निर्माण..."

"मित्र, क्या जीवन शक्ति की कल्पनाएँ3 और भावना-अवस्थाएँ एक ही चीज़ हैं? या जीवन शक्ति की कल्पनाएँ एक चीज़ हैं और भावना-अवस्थाएँ दूसरी?"

"मित्र, प्राण-निर्माण और भावना-अवस्थाएँ एक ही चीज़ नहीं हैं। यदि प्राण-निर्माण और भावना-अवस्थाएँ एक ही होतीं, तो भावना और बोध की समाप्ति से भिक्षु का उद्भव स्पष्ट नहीं होता। प्राण-निर्माण एक चीज़ है और भावनाएँ दूसरी, इसीलिए बोध और बोध की समाप्ति से भिक्षु का उद्भव स्पष्ट होता है।"

"जब इस शरीर में कितने गुणों की कमी होती है, तो यह एक बेजान लकड़ी के लट्ठे की तरह त्यागा और छोड़ दिया जाता है?"

"जब इस शरीर में ये तीन गुण - जीवन शक्ति, ताप और चेतना - नहीं होते हैं, तो यह एक बेजान लकड़ी के लट्ठे की तरह त्यागा और छोड़ दिया जाता है।"

"मृत व्यक्ति, जिसने अपना समय पूरा कर लिया है, और उस भिक्षु में क्या अंतर है जिसने धारणा और संवेदना की समाप्ति प्राप्त कर ली है?"

"मृत व्यक्ति, जिसने अपना जीवन काल पूरा कर लिया है, उसके शारीरिक कर्म, वाणी और मानसिक कर्म समाप्त हो चुके हैं, उसकी शक्ति समाप्त हो चुकी है, उसकी ऊष्मा शांत हो चुकी है और उसकी इंद्रियाँ विलीन हो चुकी हैं। परन्तु जो भिक्षु चेतना और संवेदना के अंत को प्राप्त कर चुका है, उसके शारीरिक कर्म, वाणी और मानसिक कर्म समाप्त हो चुके हैं, उसकी शक्ति समाप्त नहीं हुई है, उसकी ऊष्मा शांत नहीं हुई है और उसकी इंद्रियाँ अत्यंत निर्मल हैं। यही अंतर है मृत व्यक्ति, जिसने अपना जीवन काल पूरा कर लिया है, और उस भिक्षु में जिसने चेतना और संवेदना के अंत को प्राप्त कर लिया है।"

"मित्र, सुखदायक और पीड़ादायक दोनों प्रकार की नहीं, इस प्रकार की जागरूकता-मुक्ति की प्राप्ति के लिए कितनी शर्तें हैं?"

"मित्र, सुख-दुख रहित चेतना-मुक्ति की प्राप्ति के लिए चार शर्तें हैं। एक स्थिति यह है कि एक भिक्षु, सुख और तनाव का त्याग करके—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने पर—चौथी ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, सुख-दुख रहित अवस्था। ये चार शर्तें सुख-दुख रहित चेतना-मुक्ति की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं।"

"विषयहीन जागरूकता-मुक्ति की प्राप्ति के लिए कितनी शर्तें हैं?"

"विषयहीन चेतना-मुक्ति की प्राप्ति के लिए दो शर्तें हैं: सभी विषयों पर ध्यान न देना और विषयहीन गुण पर ध्यान देना। ये दो शर्तें विषयहीन चेतना-मुक्ति की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं।"

"और विषय-रहित जागरूकता-प्रवेश की निरंतरता के लिए कितनी शर्तें हैं?"

विषयविहीन जागरूकता-मुक्ति की निरंतरता के लिए तीन शर्तें हैं: सभी विषयों पर ध्यान न देना, विषयविहीन गुण पर ध्यान देना और इच्छाशक्ति का पूर्व-कार्य। ये विषयविहीन जागरूकता-मुक्ति की निरंतरता के लिए तीन शर्तें हैं।

"और विषयहीन जागरूकता-मुक्ति से उभरने के लिए कितनी शर्तें हैं?"

"विषयहीन जागरूकता से मुक्ति के लिए दो शर्तें हैं: सभी विषयों पर ध्यान देना और विषयहीन गुण पर ध्यान न देना। ये दो शर्तें विषयहीन जागरूकता से मुक्ति के लिए आवश्यक हैं।"

"असीम जागरूकता-मुक्ति, शून्यता जागरूकता-मुक्ति, खालीपन जागरूकता-मुक्ति, विषयहीन जागरूकता-मुक्ति: क्या ये गुण अर्थ में भिन्न और नाम में भिन्न हैं, या वे अर्थ में एक हैं और केवल नाम में भिन्न हैं?"

"असीम जागरूकता-मुक्ति, शून्यता जागरूकता-मुक्ति, खालीपन जागरूकता-मुक्ति, विषयहीन जागरूकता-मुक्ति: एक व्याख्या का तरीका है जिससे ये गुण अर्थ में भिन्न और नाम में भिन्न होते हैं, और एक व्याख्या का तरीका है जिससे ये गुण अर्थ में एक होते हैं और केवल नाम में भिन्न होते हैं।"

और वह कौन सा स्पष्टीकरण है जिससे ये गुण अर्थ और नाम दोनों में भिन्न हैं? एक उदाहरण है जहाँ एक भिक्षु सद्भावना से ओतप्रोत चेतना के साथ प्रथम दिशा—साथ ही द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ दिशा—में व्याप्त रहता है। इस प्रकार वह ऊपर, नीचे और चारों ओर, हर जगह और हर तरह से सर्वव्यापी संसार में सद्भावना से ओतप्रोत चेतना के साथ व्याप्त रहता है: प्रचुर, विस्तृत, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित।

वह करुणा से ओतप्रोत जागरूकता के साथ पहली दिशा के साथ-साथ दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी व्याप्त रहता है... प्रशंसा से ओतप्रोत जागरूकता के साथ...

वह समभाव से परिपूर्ण जागरूकता के साथ प्रथम दिशा, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ दिशाओं में व्याप्त रहता है। इस प्रकार वह समभाव से परिपूर्ण जागरूकता के साथ ऊपर, नीचे और चारों ओर, हर जगह और हर तरह से सर्वव्यापी संसार में व्याप्त रहता है: प्रचुर, विस्तृत, असीम, शत्रुता से मुक्त, द्वेष से मुक्त।

इसे असीम जागरूकता-मुक्ति कहा जाता है।

और शून्यता की जागरूकता-मुक्ति क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, चेतना की अनंतता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, शून्यता के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं रहता है। इसे शून्यता की जागरूकता-मुक्ति कहा जाता है।

और शून्यता जागरूकता-मुक्ति क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु जंगल में, किसी पेड़ की जड़ में, या किसी खाली घर में जाकर यह विचार करता है: 'यह स्वयं से या स्वयं से संबंधित किसी भी चीज़ से रहित है।'5 इसे शून्यता जागरूकता-मुक्ति कहा जाता है।

और विषय-रहित जागरूकता-मुक्ति क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, सभी विषयों पर ध्यान न देकर, जागरूकता की विषय-रहित एकाग्रता में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है।6 इसे विषय-रहित जागरूकता-मुक्ति कहा जाता है।

"यह समझाने का वह तरीका है जिससे ये गुण अर्थ में भिन्न और नाम में भिन्न होते हैं।"

और वह कौन सा तरीका है जिससे यह समझाया जा सके कि ये गुण अर्थ में एक हैं और केवल नाम में भिन्न हैं?

"मित्र, वासना सीमाओं का निर्माण करती है। घृणा सीमाओं का निर्माण करती है। भ्रम सीमाओं का निर्माण करता है। जिस भिक्षु के ये सभी विकार समाप्त हो जाते हैं, उसमें ये सब त्याग दिए जाते हैं, इनकी जड़ नष्ट हो जाती है, वह ताड़ के ठूंठ के समान हो जाता है, विकास की स्थितियों से वंचित हो जाता है, भविष्य में उत्पन्न होने के लिए नियत नहीं होता। अब, जिस हद तक असीम चेतना-मुक्ति होती है, उस हद तक अकारण चेतना-मुक्ति को सर्वोपरि घोषित किया जाता है। और यह अकारण चेतना-मुक्ति वासना से रहित, घृणा से रहित, भ्रम से रहित होती है।"

"वासना एक तत्व है। घृणा एक तत्व है। भ्रम एक तत्व है। जिस भिक्षु के भीतर की ये सभी भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं, उसमें ये सब त्याग दी जाती हैं, इनकी जड़ नष्ट हो जाती है, ये ताड़ के पेड़ के ठूंठ के समान हो जाती हैं, विकास की स्थितियों से वंचित हो जाती हैं, भविष्य में इनके उत्पन्न होने का कोई आसार नहीं रहता। अब, जहाँ तक शून्यता की चेतना-मुक्ति है, वहाँ तक अकारण चेतना-मुक्ति को सर्वोपरि माना जाता है। और यह अकारण चेतना-मुक्ति वासना से रहित, घृणा से रहित, भ्रम से रहित होती है।"

"वासना विषयों का निर्माण करती है। घृणा विषयों का निर्माण करती है। भ्रम विषयों का निर्माण करता है। जिस भिक्षु के भीतर की सभी मनोभ्रंश समाप्त हो जाती हैं, उनमें ये मनोभ्रंश त्याग दी जाती हैं, इनकी जड़ नष्ट हो जाती है, ये ताड़ के ठूंठ के समान हो जाती हैं, विकास की स्थितियों से वंचित हो जाती हैं, भविष्य में इनके उत्पन्न होने का कोई आसार नहीं रहता। अब, जिस हद तक विषय-रहित चेतना-मुक्ति होती है, उस अकारण चेतना-मुक्ति को सर्वोपरि माना जाता है। और यह अकारण चेतना-मुक्ति वासना से रहित, घृणा से रहित, भ्रम से रहित होती है।"

"मित्र, यही वह तरीका है जिससे यह समझाया जा सकता है कि ये गुण अर्थ में एक हैं और केवल नाम में भिन्न हैं।"

यही बात पूज्य सारिपुत्त ने कही। पूज्य महा कोत्थिता, पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.4कुलवेदल्ला सुत्त(44)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो द्वारा अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान राजगाह के पास बांस के जंगल में, गिलहरियों के अभयारण्य में ठहरे हुए थे। तब उनके अनुयायी विशाखा धम्मदिन्ना भिक्षुणी के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने धम्मदिन्ना से कहा, "हे देवी, कहते हैं, 'आत्म-समर्पण, आत्म-समर्पण। भगवान ने किस आत्म-समर्पण का वर्णन किया है?'"

"हे विशाखा, ये पाँच आसक्ति-समूह हैं: रूप एक आसक्ति-समूह है, भावना एक आसक्ति-समूह है, बोध एक आसक्ति-समूह है, कल्पनाएँ एक आसक्ति-समूह हैं और चेतना एक आसक्ति-समूह है। ये पाँच आसक्ति-समूह ही भगवान बुद्ध द्वारा वर्णित आत्म-पहचान हैं।"

"जी जी," कहते हुए, गृहस्थ अनुयायी विशाखा भिक्षुणी धम्मदिन्ना की बातों से प्रसन्न और आनंदित हुआ। फिर उसने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "'स्वयं-पहचान की उत्पत्ति, स्वयं-पहचान की उत्पत्ति,' ऐसा कहा जाता है, हे भिक्षुणी। भगवान बुद्ध ने स्वयं-पहचान की किस उत्पत्ति का वर्णन किया है?"

"वह लालसा जो आगे चलकर विकास की ओर ले जाती है—जो जुनून और आनंद से परिपूर्ण होती है, जो यहाँ और वहाँ दोनों पलों का आनंद लेती है—अर्थात्, इंद्रिय सुख की लालसा, विकास की लालसा, गैर-विकास की लालसा: हे मित्र विशाखा, यही आत्म-पहचान का उद्‌गम है जिसका वर्णन भगवान बुद्ध ने किया है।"

"'स्वयं की पहचान का अंत, स्वयं की पहचान का अंत,' कहा जाता है, हे देवी। भगवान बुद्ध ने स्वयं की पहचान के किस अंत का वर्णन किया है?"

"अपूर्ण रूप से लुप्त होना और समाप्ति, त्याग, मुक्ति, और उस लालसा का पूरी तरह से त्याग देना: हे मित्र विशाखा, यही भगवान बुद्ध द्वारा वर्णित आत्म-पहचान की समाप्ति है।"

"'स्वयं-पहचान के निवारण की ओर ले जाने वाला अभ्यास मार्ग, स्वयं-पहचान के निवारण की ओर ले जाने वाला अभ्यास मार्ग,' ऐसा कहा जाता है, हे देवी। भगवान बुद्ध ने स्वयं-पहचान के निवारण की ओर ले जाने वाले किस अभ्यास मार्ग का वर्णन किया है?"

"ठीक यही श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग—सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता: हे मित्र विशाखा, यही वह अभ्यास मार्ग है जो भगवान बुद्ध द्वारा वर्णित आत्म-पहचान के निवारण की ओर ले जाता है।"

"क्या ऐसा है, महोदया, कि आसक्ति पाँच आसक्ति-समूहों के समान ही है या यह कुछ अलग है?"

"मित्र विशाखा, न तो आसक्ति पाँच आसक्ति-समूहों के समान है, न ही यह उनसे भिन्न है। पाँच आसक्ति-समूहों के प्रति जो भी इच्छा और अभिलाषा होती है, वही यहाँ आसक्ति है।"

लेकिन, महोदया, आत्म-पहचान कैसे होती है?

"हे मित्र विशाखा, एक ऐसा मामला है जहाँ एक अशिक्षित, साधारण व्यक्ति—जो श्रेष्ठ लोगों का सम्मान नहीं करता, उनके धम्म में पारंगत या अनुशासित नहीं है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का सम्मान नहीं करता, उनके धम्म में पारंगत या अनुशासित नहीं है—रूप (शरीर) को आत्मा मान लेता है, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मान लेता है, या रूप को आत्मा में, या आत्मा को रूप में मान लेता है।"

वह भावना को ही स्वयं मान लेता है...

वह धारणा को स्वयं के रूप में मानता है...

वह (मानसिक) कल्पनाओं को स्वयं मान लेता है...

वह चेतना को आत्मा मानता है, या आत्मा को चेतना से युक्त मानता है, या चेतना को आत्मा में समाहित मानता है, या आत्मा को चेतना में समाहित मानता है। इसी प्रकार आत्म-पहचान उत्पन्न होती है।

"लेकिन, महोदया, आत्म-पहचान कैसे नहीं हो पाती?"

"ऐसा भी मामला है जहां श्रेष्ठ व्यक्तियों का एक सुशिक्षित शिष्य - जो श्रेष्ठ व्यक्तियों का आदर करता है, उनके धर्म में भली-भांति पारंगत और अनुशासित है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म में भली-भांति पारंगत और अनुशासित है - रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में, न ही आत्मा को रूप में।"

वह भावना को स्वयं नहीं मानता...

वह धारणा को स्वयं के रूप में नहीं मानता...

वह मनगढ़ंत बातों को स्वयं की वास्तविकता नहीं मानता...

"वह चेतना को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को चेतना से युक्त मानता है, न ही चेतना को आत्मा में समाहित मानता है, न ही आत्मा को चेतना में समाहित मानता है। इसी कारण आत्म-पहचान संभव नहीं हो पाती।"

"अब, महोदया, पुनः बताइए, आर्य अष्टांगिक मार्ग क्या है?"

"हे मित्र विशाखा, यही श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग है: सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।"

"क्या आर्य अष्टांगिक मार्ग गढ़ा हुआ है या असगढ़ा हुआ है?"

"आठ गुना श्रेष्ठ मार्ग मनगढ़ंत है।"

"क्या हे देवी, सद्गुण, एकाग्रता और विवेक के ये तीनों समुच्चय आर्य अष्टांगिक मार्ग में समाहित हैं, या आर्य अष्टांगिक मार्ग इन तीनों समुच्चयों में समाहित है?"

"हे मित्र विशाखा, ये तीनों गुण अष्टांगिक मार्ग में शामिल नहीं हैं, परन्तु अष्टांगिक मार्ग इन तीनों गुणों में शामिल है। सही वाणी, सही कर्म और सही आजीविका सद्गुण के अंतर्गत आते हैं। सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता एकाग्रता के अंतर्गत आते हैं। सही दृष्टि और सही संकल्प विवेक के अंतर्गत आते हैं।"

"अब, हे महिला, एकाग्रता क्या है? इसके मूल तत्व क्या हैं? इसके लिए कौन से गुण आवश्यक हैं? इसके लिए कौन से गुण अनिवार्य हैं? और इसका विकास क्या है?"

"हे मित्र विशाखा, मन की एकाग्रता ही एकाग्रता है; चारों संदर्भ इसके विषय हैं; चारों सही प्रयास इसकी आवश्यकताएँ हैं; और इन गुणों का कोई भी संवर्धन, विकास और अनुसरण ही इसका विकास है।"

"तो महोदया, ये मनगढ़ंत बातें क्या होती हैं?"

"ये तीन मनगढ़ंत बातें हैं, मित्र विशाखा: शारीरिक मनगढ़ंत बातें, मौखिक मनगढ़ंत बातें और मानसिक मनगढ़ंत बातें।"

लेकिन शारीरिक बनावट क्या होती है? शाब्दिक बनावट क्या होती है? मानसिक बनावट क्या होती है?

"सांस लेना और छोड़ना शारीरिक रचनाएँ हैं। निर्देशित विचार और मूल्यांकन शाब्दिक रचनाएँ हैं। धारणाएँ और भावनाएँ मानसिक रचनाएँ हैं।"

लेकिन सांस लेना और छोड़ना शारीरिक बनावट क्यों हैं? निर्देशित विचार और मूल्यांकन मौखिक बनावट क्यों हैं? धारणाएं और भावनाएं मानसिक बनावट क्यों हैं?

"सांस लेना और छोड़ना शारीरिक क्रियाएं हैं; ये शरीर से जुड़ी चीजें हैं। इसीलिए सांस लेना और छोड़ना शारीरिक रचनाएं हैं। पहले अपने विचारों को निर्देशित और मूल्यांकन करने के बाद, व्यक्ति बोलना शुरू करता है। इसीलिए निर्देशित विचार और मूल्यांकन मौखिक रचनाएं हैं। धारणाएं और भावनाएं मानसिक क्रियाएं हैं; ये मन से जुड़ी चीजें हैं। इसीलिए धारणाएं और भावनाएं मानसिक रचनाएं हैं।"

"अब, महोदया, धारणा और संवेदना की समाप्ति की प्राप्ति कैसे होती है?"

"जब कोई भिक्षु अनुभूति और संवेदना की समाप्ति की अवस्था में होता है, तो उसके मन में यह विचार नहीं आता कि 'मैं अनुभूति और संवेदना की समाप्ति की अवस्था प्राप्त करने वाला हूँ' या 'मैं अनुभूति और संवेदना की समाप्ति की अवस्था प्राप्त कर रहा हूँ' या 'मैंने अनुभूति और संवेदना की समाप्ति की अवस्था प्राप्त कर ली है'। इसके बजाय, जिस प्रकार से उसका मन पहले से विकसित हुआ है, वही उसे उस अवस्था तक ले जाता है।"

लेकिन जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना की समाप्ति की अवस्था प्राप्त कर रहा होता है, तो सबसे पहले कौन सी चीजें समाप्त होती हैं: शारीरिक रचनाएँ, शाब्दिक रचनाएँ या मानसिक रचनाएँ?

"हे मित्र विशाखा, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना की समाप्ति की अवस्था प्राप्त कर रहा होता है, तो सबसे पहले शाब्दिक रचनाएँ, फिर शारीरिक रचनाएँ और फिर मानसिक रचनाएँ समाप्त हो जाती हैं।"1

"अब, महोदया, बोध और भावना के रुकने से उद्भव कैसे होता है?"

"जब कोई भिक्षु अनुभूति और संवेदना के अंत से बाहर निकल रहा होता है, तो उसके मन में यह विचार नहीं आता कि 'मैं अनुभूति और संवेदना के अंत से बाहर निकलने वाला हूँ' या 'मैं अनुभूति और संवेदना के अंत से बाहर निकल रहा हूँ' या 'मैं अनुभूति और संवेदना के अंत से बाहर निकल चुका हूँ'। इसके बजाय, जिस प्रकार से उसका मन पहले से विकसित हुआ है, वही उसे उस अवस्था तक ले जाता है।"

लेकिन जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के अंत से बाहर निकल रहा होता है, तो सबसे पहले कौन सी चीजें उत्पन्न होती हैं: शारीरिक रचनाएँ, शाब्दिक रचनाएँ या मानसिक रचनाएँ?

"हे मित्र विशाखा, जब कोई भिक्षु बोध और भावना के अंत से बाहर निकल रहा होता है, तो सबसे पहले मानसिक कल्पनाएँ उत्पन्न होती हैं, फिर शारीरिक कल्पनाएँ, फिर शाब्दिक कल्पनाएँ।"

"जब कोई भिक्षु बोध और भावना के अंत से बाहर आ जाता है, हे देवी, तो कितने संपर्क स्थापित होते हैं?"

"हे मित्र विशाखा, जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के अंत से बाहर आ जाता है, तो तीन संपर्क स्थापित होते हैं: शून्यता से संपर्क, निराकार से संपर्क और दिशाहीन से संपर्क।"2

"हे देवी, जब कोई भिक्षु बोध और भावना के अंत से बाहर आ जाता है, तो उसका मन किस ओर झुकता है, किस ओर प्रवृत्त होता है, किस ओर उसका झुकाव होता है?"

"जब कोई भिक्षु बोध और संवेदना के अंत से बाहर आ जाता है, हे मित्र विशाखा, तो उसका मन एकांत की ओर झुक जाता है, एकांत की ओर प्रवृत्त हो जाता है, एकांत की ओर रुझान हो जाता है।"3

"अब, महोदया, भावनाओं के कितने प्रकार होते हैं?"

"ये तीन प्रकार की भावनाएँ हैं: सुखद भावना, दुखद भावना और न सुखद न दुखद भावना।"

"सुखद अनुभूति क्या है? कष्टदायक अनुभूति क्या है? ऐसी अनुभूति क्या है जो न तो सुखद है और न ही कष्टदायक?"

जो भी शारीरिक या मानसिक रूप से सुखद और तृप्तिदायक अनुभव होता है, वह सुखद अनुभूति है। जो भी शारीरिक या मानसिक रूप से पीड़ादायक और कष्टदायक अनुभव होता है, वह कष्टदायक अनुभूति है। जो भी शारीरिक या मानसिक रूप से न तो तृप्तिदायक है और न ही कष्टदायक, वह न तो सुखद है और न ही कष्टदायक अनुभूति है।

"महोदय, सुखद अनुभूति किस प्रकार सुखद होती है और किस प्रकार कष्टदायक?"

"हे मित्र विशाखा, सुखद अनुभूति बने रहने में सुखद और बदलने में कष्टदायी होती है। कष्टदायी अनुभूति बने रहने में कष्टदायी और बदलने में सुखद होती है। न सुखद और न कष्टदायी अनुभूति ज्ञान के साथ घटित होने पर सुखद होती है, और ज्ञान के बिना घटित होने पर कष्टदायी होती है।"

"सुखद अनुभूति से कौन सा जुनून ग्रस्त होता है? कष्टदायक अनुभूति से कौन सा जुनून ग्रस्त होता है? न तो सुखद और न ही कष्टदायक अनुभूति से कौन सा जुनून ग्रस्त होता है?"

"जुनून-दीवानगी सुखद अनुभूति के प्रति आसक्त हो जाती है। प्रतिरोध-दीवानगी दुखदायी अनुभूति के प्रति आसक्त हो जाती है। अज्ञान-दीवानगी न तो सुखद और न ही दुखदायी अनुभूति के प्रति आसक्त हो जाती है।"

क्या जुनून-दीवानगी सभी सुखद भावनाओं से ग्रस्त हो जाती है? क्या प्रतिरोध-दीवानगी सभी पीड़ादायक भावनाओं से ग्रस्त हो जाती है? क्या अज्ञान-दीवानगी सभी न सुखद और न पीड़ादायक भावनाओं से ग्रस्त हो जाती है?

"नहीं..."

लेकिन सुखद अनुभूति के संबंध में क्या त्यागना है? पीड़ादायक अनुभूति के संबंध में क्या त्यागना है? और न सुखद और न पीड़ादायक अनुभूति के संबंध में क्या त्यागना है?

"सुखद अनुभूति के संबंध में वासना-उन्माद का त्याग करना चाहिए। कष्टदायक अनुभूति के संबंध में प्रतिरोध-उन्माद का त्याग करना चाहिए। न सुखद और न कष्टदायक अनुभूति के संबंध में अज्ञान-उन्माद का त्याग करना चाहिए।"

क्या सभी सुखद भावनाओं के संबंध में जुनून-दीवानगी का त्याग कर देना चाहिए? क्या सभी पीड़ादायक भावनाओं के संबंध में प्रतिरोध-दीवानगी का त्याग कर देना चाहिए? क्या सभी न सुखद और न पीड़ादायक भावनाओं के संबंध में अज्ञान-दीवानगी का त्याग कर देना चाहिए?

नहीं... एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु—इंद्रिय सुख से पूर्णतः विरक्त, अकुशल गुणों से विरक्त—प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: विरक्ति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ। इसके साथ ही वह कामवासना का त्याग कर देता है। वहाँ कोई कामवासना-ग्रस्तता नहीं होती।4 एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु विचार करता है, 'हे, मैं कब उस आयाम में प्रवेश करूँगा और स्थिर रहूँगा जिसमें श्रेष्ठ लोग अब प्रवेश करते हैं और स्थिर रहते हैं?' और जैसे-जैसे वह इस प्रकार अद्वितीय मुक्ति की लालसा को पोषित करता है, उसके भीतर उस लालसा पर आधारित दुःख उत्पन्न होता है। इसके साथ ही वह प्रतिरोध का त्याग कर देता है। वहाँ कोई प्रतिरोध-ग्रस्तता नहीं होती।5 एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, सुख और दुःख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—चला जाता है—चथम ध्यान की शुद्धता में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समता और जागरूकता, न सुख न दुःख। इसके साथ ही वह अज्ञान का त्याग कर देता है। वहाँ कोई अज्ञान-ग्रस्तता नहीं होती।6

"अब, महोदया, सुखद अनुभूति के दूसरी ओर क्या है?"

"उत्साह सुखद अनुभूति के दूसरी ओर स्थित होता है।"

और पीड़ादायक भावना के दूसरी ओर क्या छिपा है?

"दर्दनाक अनुभूति के दूसरी ओर प्रतिरोध निहित होता है।" 7

"न तो सुखद और न ही कष्टदायक इस भावना के दूसरी ओर क्या छिपा है?"

"अज्ञानता न तो सुखद और न ही कष्टदायक अनुभूति के दूसरी ओर स्थित होती है।"

अज्ञानता के दूसरी ओर क्या है?

"अज्ञान के दूसरी ओर स्पष्ट ज्ञान निहित है।"

स्पष्ट ज्ञान के दूसरी ओर क्या छिपा है?

"स्पष्ट ज्ञान के दूसरी ओर मुक्ति निहित है।"

"रिहाई के बाद क्या होता है?"

"मुक्ति के दूसरी ओर ही बंधन मुक्त होना निहित है।"

"अनबाइंडिंग के दूसरी ओर क्या है?"

"विशाखा, तुम हद से आगे बढ़ गई हो। प्रश्नों की सीमा तक अटके रहना ठीक नहीं है। क्योंकि पवित्र जीवन मुक्ति में ही आधार पाता है, मुक्ति में ही परिणत होता है और मुक्ति ही उसका अंतिम लक्ष्य है। यदि तुम चाहो, तो भगवान बुद्ध के पास जाओ और उनसे इन बातों का अर्थ पूछो। वे जो कुछ भी कहें, तुम्हें वही याद रखना चाहिए।"

तब विशाखा नामक गृहस्थ अनुयायी धम्मदिन्ना भिक्षुणी की बातों से प्रसन्न होकर उन्हें प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठकर उन्होंने भगवान बुद्ध को धम्मदिन्ना भिक्षुणी के साथ हुई सारी बातचीत सुनाई। यह सुनकर भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, “हे विशाखा, धम्मदिन्ना भिक्षुणी बुद्धिमान और बहुत समझदार हैं। यदि तुमने मुझसे ये बातें पूछी होतीं, तो मैं भी तुम्हें वही उत्तर देता जो उन्होंने दिया। इन बातों का यही अर्थ है। तुम्हें इसे इसी प्रकार याद रखना चाहिए।”

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। इससे प्रसन्न होकर, विशाखा नामक गृहस्थ अनुयायी ने भगवान बुद्ध के शब्दों का आनंद लिया।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकया >> 5.5कुलधम्मसमादान सुत्त(45)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भिक्षुओं, साधना करने के चार तरीके हैं। वे कौन से चार तरीके हैं? एक तरीका है ऐसी साधना करना जो वर्तमान में सुखद हो लेकिन भविष्य में कष्टदायी हो। दूसरा तरीका है ऐसी साधना करना जो वर्तमान में कष्टदायी हो और भविष्य में भी कष्टदायी हो। तीसरा तरीका है ऐसी साधना करना जो वर्तमान में कष्टदायी हो लेकिन भविष्य में सुखदायी हो। तीसरा तरीका है ऐसी साधना करना जो वर्तमान में सुखद हो और भविष्य में भी सुखदायी हो।

"अब, उस अभ्यास को अपनाने का क्या अर्थ है जो वर्तमान में तो सुखद है लेकिन भविष्य में कष्टदायी है? कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग इस सिद्धांत, इस विचार को मानते हैं: 'इंद्रिय सुखों में कोई हानि नहीं है।' इस प्रकार वे इंद्रिय सुखों के कारण ही अपने पतन की ओर अग्रसर होते हैं। वे उन घुमक्कड़ों महिलाओं के साथ संगति करते हैं जो अपने बालों को चोटी में बांधे रखती हैं।"

उनके मन में यह विचार आता है: 'अब वे [अन्य] पुजारी और ध्यानमग्न लोग इंद्रिय सुखों के संबंध में भविष्य में किस खतरे की भविष्यवाणी करते हैं, जिन्होंने इंद्रिय सुखों के त्याग की बात की है और इंद्रिय सुखों की पूर्ण समझ का वर्णन किया है? इस स्त्री यात्री की कोमल, नाजुक, मुलायम भुजा का स्पर्श कितना सुखद है।'

इस प्रकार वे इंद्रिय सुखों के कारण अपने पतन को प्राप्त करते हैं। फिर, इंद्रिय सुखों के कारण अपने पतन के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वे एक बुरे लोक, दरिद्रता, भूखे प्रेतों के लोक, नरक में जाते हैं। वहाँ वे तीव्र, जलन भरे दर्द का अनुभव करते हैं। वे कहते हैं: 'इंद्रिय सुखों से संबंधित यह भविष्य का खतरा था जिसे उन पुरोहितों और ध्यानियों ने पहले ही देख लिया था कि उन्होंने इंद्रिय सुखों के त्याग की बात की और इंद्रिय सुखों की पूर्ण समझ का वर्णन किया। इंद्रिय सुखों के कारण, इंद्रिय सुखों के परिणामस्वरूप, हम अब इन तीव्र, जलन भरे दर्दों का अनुभव कर रहे हैं।'

"जैसे कि गर्मी के मौसम के आखिरी महीने में मलुवा लता का फली फट जाए और उसका एक बीज साल के पेड़ की जड़ों में गिर जाए। पेड़ में रहने वाली देवी भयभीत, चिंतित और परेशान हो जाएगी। उसके मित्र, साथी, रिश्तेदार और सगे-संबंधी - बगीचे के देवता, जंगल के देवता, वृक्षों के देवता, जड़ी-बूटियों, घास और वनों में रहने वाले देवता और वन के सम्राट - उसे सांत्वना देने के लिए इकट्ठा होंगे: 'डरो मत, डरो मत। पूरी संभावना है कि कोई मोर इस मलुवा लता के बीज को निगल जाएगा, या कोई हिरण इसे खा जाएगा, या झाड़ियों में लगी आग इसे जला देगी, या लकड़हारे इसे उठा लेंगे, या दीमक इसे ले जाएंगे, और वैसे भी यह शायद वास्तव में बीज नहीं है।"

और फिर न तो किसी मोर ने उसे निगला, न ही किसी हिरण ने उसे खाया, न ही किसी जंगल की आग ने उसे जलाया, न ही किसी लकड़हारे ने उसे उठाया, और वह सचमुच एक बीज था। बारिश से लदे बादल से सींचा गया, वह उचित समय पर अंकुरित हुआ और अपनी कोमल, नाजुक, रोएँदार बेल को साला के पेड़ के चारों ओर लपेट लिया।

साला वृक्ष में निवास करने वाले देव के मन में यह विचार आया: 'मेरे मित्रों, साथियों, रिश्तेदारों और सगे-संबंधियों - उद्यान देवों, वन देवों, वृक्ष देवों, जड़ी-बूटियों, घास और वन सम्राटों में निवास करने वाले देवों - ने उस मालुवा लता के बीज में भविष्य में क्या खतरा देखा होगा, जिसे उन्होंने मुझे सांत्वना देने के लिए इकट्ठा किया था: 'डरें नहीं, डरें नहीं। पूरी संभावना है कि कोई मोर इस मालुवा लता के बीज को निगल जाएगा, या कोई हिरण इसे खा जाएगा, या झाड़ियों में आग लग जाएगी, या लकड़हारे इसे उठा लेंगे, या दीमक इसे ले जाएंगे, और वैसे भी यह शायद वास्तव में बीज नहीं है।' इस मालुवा लता की कोमल, मुलायम, रोएँदार टहनी का स्पर्श कितना सुखद है!'

फिर उस लता ने साल के पेड़ को पूरी तरह से लपेट लिया, उसके ऊपर एक छत्र बना लिया और उसके चारों ओर नीचे लटकने लगी, जिसके कारण साल के पेड़ की विशाल शाखाएँ टूटकर गिर पड़ीं। पेड़ में रहने वाले देवता के मन में यह विचार आया: 'यह वही भविष्य का खतरा था जिसे मेरे मित्रों ने उस मालुवा लता के बीज में देख लिया था, जिसके कारण वे मुझे सांत्वना देने के लिए एकत्रित हुए थे... उसी मालुवा लता के बीज के कारण अब मुझे तीव्र, जलन वाला दर्द हो रहा है।'

"इसी प्रकार, भिक्षुओं, कुछ पुजारी और ध्यानमग्न लोग इस सिद्धांत या विचार को मानते हैं कि 'इंद्रिय सुखों में कोई हानि नहीं है।' इस प्रकार वे इंद्रिय सुखों के कारण ही अपने पतन की ओर अग्रसर होते हैं। वे उन घुमक्कड़ों महिलाओं के साथ संगति करते हैं जो अपने बालों को चोटी में बांधे रखती हैं।"

उनके मन में यह विचार आता है: 'अब वे [अन्य] पुजारी और ध्यानमग्न लोग भविष्य में किस खतरे की आशंका करते हैं कि वे इंद्रिय सुखों के त्याग और विश्लेषण की शिक्षा देते हैं? इस स्त्री घुमक्कड़ की कोमल, नाजुक, मुलायम भुजा का स्पर्श कितना सुखद है।'

इस प्रकार वे इंद्रिय सुखों के कारण अपने पतन को प्राप्त करते हैं। फिर, इंद्रिय सुखों के कारण अपने पतन के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, मृत्यु के बाद, वे एक बुरे लोक, दरिद्रता, भूखे प्रेतों के लोक, नरक में जाते हैं। वहाँ वे तीव्र, जलन भरे दर्द का अनुभव करते हैं। वे कहते हैं: 'इंद्रिय सुखों से संबंधित यह भविष्य का खतरा उन पुरोहितों और ध्यानियों ने पहले ही देख लिया था कि उन्होंने इंद्रिय सुखों के त्याग की बात की और इंद्रिय सुखों की पूर्ण समझ का वर्णन किया। इंद्रिय सुखों के कारण, इंद्रिय सुखों के परिणामस्वरूप ही, हम अब इन तीव्र, जलन भरे दर्दों का अनुभव कर रहे हैं।'

इसे ऐसी प्रथा को अपनाना कहते हैं जो वर्तमान में तो सुखद लगती है लेकिन भविष्य में कष्टदायी साबित होती है।

"और उस अभ्यास को अपनाना क्या है जो वर्तमान में कष्टदायी है और भविष्य में भी कष्टदायी ही रहेगा?"

एक ऐसा मामला है जहाँ कोई व्यक्ति वस्त्रहीन तपस्वी है, परंपराओं का त्याग करता है, अपने हाथ चाटता है, बुलाए जाने पर नहीं आता, बुलाए जाने पर नहीं ठहरता। वह अपने लिए लाए गए भोजन या अपने लिए समर्पित भोजन को स्वीकार नहीं करता, न ही भोजन के निमंत्रण को। वह किसी बर्तन या कटोरे के मुख से कुछ भी ग्रहण नहीं करता। वह किसी छड़ी या मूसल के पार से, दो लोगों के साथ भोजन करने से, गर्भवती महिला से, स्तनपान कराने वाली महिला से, पुरुष के साथ लेटी हुई महिला से, भोजन संग्रह से, जहाँ कुत्ता प्रतीक्षा कर रहा हो या मक्खियाँ भिनभिना रही हों, कुछ भी ग्रहण नहीं करता। वह मछली या मांस नहीं खाता। वह शराब, मदिरा या किण्वित पेय नहीं पीता। वह स्वयं को एक घर और एक निवाला प्रतिदिन, या दो घर और दो निवाले... सात घर और सात निवाले तक सीमित रखता है। वह एक थाली प्रतिदिन, दो... सात थाली प्रतिदिन पर जीवन यापन करता है। वह दिन में एक बार, हर दो दिन में एक बार... हर सात दिन में एक बार, और इसी तरह पखवाड़े भर तक अपने भोजन सेवन को नियंत्रित करने के लिए भोजन ग्रहण करता है। वह साग, बाजरा, जंगली चावल, खाल के टुकड़े, काई, चावल की भूसी, चावल की झाग, तिल का आटा, घास या गोबर खाता है। वह जंगल की जड़ों और बेरों पर जीवित रहता है। वह गिरे हुए फलों को खाता है। वह भांग, कैनवास, कफ़न, चिथड़े, पेड़ की छाल, हिरण की खाल, हिरण की खाल की पट्टियाँ, कुसा घास के वस्त्र, छाल के वस्त्र, लकड़ी के बुरादे के वस्त्र, सिर के बालों के वस्त्र, पशु ऊन और उल्लू के पंख पहनता है। वह बाल और दाढ़ी खींचने वाला है, जो अपने बाल और दाढ़ी खींचने के अभ्यास में लगा रहता है। वह खड़ा रहता है, जो बैठने से परहेज करता है। वह घुटनों के बल बैठने वाला है, जो अपने घुटनों के बल हाथ रखकर बैठने के प्रयास में लगा रहता है। वह कांटों के गद्दे पर सोता है, जो कांटों के गद्दे पर अपना बिस्तर लगाता है। वह शाम को तीसरी बार स्नान करने वाला है, जो पानी में स्नान करने के अभ्यास में लगा रहता है। इस प्रकार वह अनेक तरीकों से शरीर को कष्ट देने और पीड़ा पहुँचाने के अभ्यास में लगा रहता है। मृत्यु के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, वह एक बुरे लोक, दरिद्रता, भूखे प्रेतों के लोक, नरक में जाता है।

इसे ऐसी प्रथा को अपनाना कहते हैं जो वर्तमान में कष्टदायी हो और भविष्य में भी कष्टदायी साबित हो।

"और उस अभ्यास को अपनाने का क्या अर्थ है जो वर्तमान में कष्टदायी है लेकिन भविष्य में आनंद प्रदान करता है?"

एक व्यक्ति स्वभाव से अत्यंत भावुक होता है और अक्सर भावुकता से उत्पन्न पीड़ा और दुःख का अनुभव करता है; एक व्यक्ति स्वभाव से अत्यंत घृणास्पद होता है और अक्सर घृणा से उत्पन्न पीड़ा और दुःख का अनुभव करता है; एक व्यक्ति स्वभाव से अत्यंत भ्रमित होता है और अक्सर भ्रम से उत्पन्न पीड़ा और दुःख का अनुभव करता है। पीड़ा और दुःख से व्याकुल होकर, आँसू भरी आँखों से रोते हुए भी, वह पूर्णतः परिपूर्ण, अत्यंत शुद्ध जीवन जीता है। शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होता है। इसे वर्तमान में पीड़ादायक, लेकिन भविष्य में सुखदायी साधना का पालन करना कहते हैं।

"और उस अभ्यास को अपनाना क्या है जो वर्तमान में सुखद हो और भविष्य में भी आनंद प्रदान करे?"

एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण है जो स्वभाव से सामान्यतः अत्यधिक भावुक नहीं होता और न ही उसे भावुकता से उत्पन्न पीड़ा एवं दुःख का अनुभव होता है; जो स्वभाव से सामान्यतः अत्यधिक घृणास्पद नहीं होता और न ही उसे घृणा से उत्पन्न पीड़ा एवं दुःख का अनुभव होता है; जो स्वभाव से सामान्यतः अत्यधिक भ्रमित नहीं होता और न ही उसे भ्रम से उत्पन्न पीड़ा एवं दुःख का अनुभव होता है। इंद्रियों से पूर्णतः विरक्त होकर, अकुशल (मानसिक) गुणों से विरक्त होकर, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांत से उत्पन्न परमानंद एवं आनंद, जो निर्देशित विचार एवं मूल्यांकन से युक्त होता है। निर्देशित विचारों एवं मूल्यांकनों के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकाग्रता से उत्पन्न परमानंद एवं आनंद, निर्देशित विचार एवं मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण — आंतरिक आश्वासन। परमानंद के क्षीण होने पर, वह समभाव, सचेत और सजग रहता है तथा शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके विषय में ऋषि कहते हैं, 'समभाव और सचेत रहकर, वह सुखद अवस्था में रहता है।' सुख और दुख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के विलीन होने के साथ—वह

चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख, न दुख। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, वह स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होता है। इसे वर्तमान में सुखद और भविष्य में सुखदायी साधना का पालन करना कहते हैं।

"और ये अभ्यासों को अपनाने के चार तरीके हैं।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.6 महाधम्मसमादान सुत्त(46)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। भगवान बुद्ध वहीं से भिक्षुओं को संबोधित करते थे।

भिक्षुओं, मनुष्य सदा ही ऐसे हितों, इच्छाओं और इरादों से ग्रस्त रहते हैं। अप्रिय, अरुचिकर और अप्रिय बातें कम हों और सुखद, सुखद और सुखद बातें बढ़ें। भिक्षुओं, ऐसे हितों, इच्छाओं और इरादों वाले लोगों के लिए अप्रिय, अरुचिकर और अप्रिय बातें बढ़ती हैं और सुखद, सुखद और सुखद बातें घटती हैं। भिक्षुओं, क्या आप इसका कारण समझते हैं? आदरणीय गुरुदेव, भगवान बुद्ध इस शिक्षा के जनक, मार्गदर्शक और आश्रयदाता हैं, कृपया स्वयं भगवान बुद्ध इन शब्दों का अर्थ स्पष्ट करें। भिक्षु भगवान बुद्ध से सुनकर इसे ध्यान में रखेंगे। तब भिक्षुओं, ध्यानपूर्वक सुनो, मैं उपदेश देता हूँ।

हे भिक्षुओं, यहाँ अज्ञानी साधारण मनुष्य, जिसने श्रेष्ठ और महान पुरुषों को नहीं देखा, न ही उनकी शिक्षा सुनी है और न ही उनसे शिक्षा प्राप्त की है, वह यह नहीं जानता कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। वह उन चीजों का अभ्यास करता है जिनका अभ्यास नहीं करना चाहिए और उन चीजों का अभ्यास नहीं करता जिनका अभ्यास करना चाहिए। जो व्यक्ति उन चीजों का अभ्यास करता है जिनका अभ्यास नहीं करना चाहिए और उन चीजों का अभ्यास नहीं करता जिनका अभ्यास करना चाहिए, उसके लिए अप्रिय, अरुचिकर और अप्रिय चीजें बढ़ जाती हैं और सुखद, सुखद और सुखद चीजें कम हो जाती हैं। इसका कारण क्या है? हे भिक्षुओं, अज्ञानी लोगों के साथ ऐसा ही होता है।

भिक्षुओं, उस श्रेष्ठ शिष्य के लिए जिसने श्रेष्ठ पुरुषों को देखा है, उनकी शिक्षा सुनी है और उनके द्वारा प्रशिक्षित हुआ है, वह जानता है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। वह उन चीजों का अभ्यास करता है जिनका अभ्यास करना चाहिए और जिनका अभ्यास नहीं करना चाहिए। जो व्यक्ति उन चीजों का अभ्यास करता है जिनका अभ्यास करना चाहिए और जिनका अभ्यास नहीं करना चाहिए, उसके लिए अप्रिय, अरुचिकर और अप्रिय चीजें कम हो जाती हैं और सुखद, सुखद और सुखद चीजें बढ़ जाती हैं। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, बुद्धिमानों के साथ भी ऐसा ही होता है।

भिक्षुओं, ये चार विधियाँ शिक्षा में वर्णित हैं। ये चार विधियाँ क्या हैं? एक विधि ऐसी है जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में अप्रिय परिणाम देगी। एक विधि ऐसी है जो वर्तमान में सुखद है और भविष्य में अप्रिय परिणाम देगी। एक विधि ऐसी है जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में सुखद परिणाम देगी। एक विधि ऐसी है जो वर्तमान में सुखद है और भविष्य में सुखद परिणाम देगी।

भिक्षुओं, यह अनुष्ठान जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है। मूर्ख लोग इसे नहीं जानते, जैसा कि यह वास्तव में है, कि यह अनुष्ठान वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है, और वे इसका पालन करते हैं। उनके लिए इसका पालन करने से अप्रिय, अरुचिकर, अप्रिय भावनाएँ बढ़ती हैं और सुखद, सुखद, सुखद भावनाएँ घटती हैं। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, मूर्खों के साथ ऐसा ही होता है। भिक्षुओं, यह अनुष्ठान जो वर्तमान में सुखद है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है, मूर्ख लोग इसे नहीं जानते, जैसा कि यह वास्तव में है, कि यह अनुष्ठान वर्तमान में सुखद है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है। इसलिए वे इसका पालन करते हैं। उनके लिए इसका पालन करने से अप्रिय, अरुचिकर, अप्रिय भावनाएँ बढ़ती हैं और सुखद, सुखद, सुखद

भावनाएँ घटती हैं। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, मूर्खों के साथ ऐसा ही होता है। भिक्षुओं। यह अनुष्ठान, जो अभी अप्रिय है और भविष्य में सुखद फल देता है, मूर्ख लोग इसे इसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानते। यह अनुष्ठान अभी अप्रिय है और भविष्य में सुखद फल देता है, और वे इसका पालन नहीं करते। उनके पालन न करने से अप्रिय, अरुचिकर भावनाएँ बढ़ती हैं और सुखद, सुखद भावनाएँ घटती हैं। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, मूर्खों के साथ ऐसा ही होता है। भिक्षुओं, यह अनुष्ठान, जो अभी सुखद है और भविष्य में सुखद फल देता है, मूर्ख लोग इसे इसके वास्तविक स्वरूप में नहीं जानते। यह अनुष्ठान अभी सुखद है और भविष्य में सुखद फल देता है, और वे इसका पालन नहीं करते। उनके पालन न करने से अप्रिय, अरुचिकर भावनाएँ बढ़ती हैं और सुखद, सुखद भावनाएँ घटती हैं। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, मूर्खों के साथ ऐसा ही होता है।

भिक्षुओं, यह अनुष्ठान जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है, ज्ञानी इसे यथार्थ रूप में जानते हैं। यह अनुष्ठान वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है, फिर भी वे इसका पालन नहीं करते। उनके द्वारा इसका पालन न करने से अप्रिय, अरुचिकर और अप्रिय भावनाएँ कम हो जाती हैं और सुखद, सुखद और सुखद भावनाएँ बढ़ जाती हैं। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, ज्ञानी लोगों के साथ ऐसा ही होता है। भिक्षुओं, यह अनुष्ठान जो वर्तमान में सुखद है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है, ज्ञानी इसे यथार्थ रूप में जानते हैं। यह अनुष्ठान वर्तमान में सुखद है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है, फिर भी वे इसका पालन नहीं करते। उनके द्वारा इसका पालन न करने से अप्रिय, अरुचिकर और अप्रिय भावनाएँ कम हो जाती हैं और सुखद, सुखद और सुखद भावनाएँ बढ़ जाती हैं। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, ज्ञानी लोगों के साथ ऐसा ही होता है। भिक्षुओं, यह अनुष्ठान जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में सुखद परिणाम लाता है, ज्ञानी लोग इसे यथार्थ रूप में जानते हैं। यह अनुष्ठान अभी अप्रिय है, लेकिन भविष्य में सुखद फल देता है, और भिक्षु इसका पालन करते हैं। इसका पालन करने से उन्हें अप्रिय, अरुचिकर और अप्रिय भावनाएँ कम होती हुई और सुखद, सुखद भावनाएँ बढ़ती हुई प्रतीत होती हैं। इसका कारण क्या है?: भिक्षुओं, ऐसा ही बुद्धिमानों के साथ होता है। भिक्षुओं, यह अनुष्ठान, जो अभी सुखद है और भविष्य में सुखद फल देता है, बुद्धिमान इसे इसके वास्तविक स्वरूप में जानते हैं। यह अनुष्ठान अभी सुखद है और भविष्य में सुखद फल देता है, और भिक्षु इसका पालन करते हैं। इसका पालन करने से उन्हें अप्रिय, अरुचिकर और अप्रिय भावनाएँ कम होती हुई और सुखद, सुखद भावनाएँ बढ़ती हुई प्रतीत होती हैं। इसका कारण क्या है? भिक्षुओं, ऐसा ही बुद्धिमानों के साथ होता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा अनुष्ठान है जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है? यहाँ, एक व्यक्ति असंतुष्ट होकर जीवों का संहार करता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह वस्तुएँ ग्रहण करता है जो उसे नहीं दी गई हैं और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह यौन दुराचार करता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह झूठ बोलता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह द्वेषपूर्ण बातें करता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह कठोर वाणी बोलता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह व्यर्थ की बातें करता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह लोभ करता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह क्रोधी मन रखता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। असंतुष्ट होकर वह गलत मत रखता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। वह मृत्यु के बाद अपघटित होकर नरक में जन्म लेता है। यही वह अनुष्ठान है जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा अनुष्ठान है जो वर्तमान में सुखद है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है? यहाँ, एक व्यक्ति आनंद के लिए जीवों का संहार करता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह अनचाही वस्तुएँ लेता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह व्यभिचार करता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह झूठ बोलता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह द्वेषपूर्ण बातें कहता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह कठोर वाणी बोलता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह व्यर्थ की बातें करता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह लोभ करता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह क्रोधित मन रखता है और सुख का अनुभव करता है। आनंद के लिए वह गलत मत रखता है और सुख का अनुभव करता है। मृत्यु के बाद वह क्षीणन में जाता है और नरक में जन्म लेता है। भिक्षुओं, यही वह अनुष्ठान है जो वर्तमान में सुखद है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा अनुष्ठान है जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में सुखद फल देता है? यहाँ, एक व्यक्ति अप्रसन्नता के साथ जीवित प्राणियों को नष्ट करने से परहेज करता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। अप्रसन्नता के साथ वह बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से परहेज करता है और अप्रियता का अनुभव करता है। अप्रसन्नता के साथ वह यौन दुराचार से परहेज करता है और अप्रियता का अनुभव करता है। अप्रसन्नता के साथ वह झूठ बोलने से परहेज करता है और अप्रियता का अनुभव करता है। अप्रसन्नता के साथ वह द्वेषपूर्ण बातें करने से परहेज करता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। अप्रसन्नता के साथ वह कठोर वाणी बोलने से परहेज करता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। अप्रसन्नता के साथ वह लोभ से परहेज करता है और

अप्रियता का अनुभव करता है। अप्रसन्नता के साथ वह क्रोधपूर्ण मन रखने से परहेज करता है और अप्रियता का अनुभव करता है। अप्रसन्नता के साथ वह सही दृष्टि बनाए रखता है और इसके कारण अप्रियता का अनुभव करता है। वह मृत्यु के बाद वृद्धि के लिए जाता है और स्वर्ग में जन्म लेता है। यही वह अनुष्ठान है जो वर्तमान में अप्रिय है और भविष्य में सुखद फल देता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा व्रत है जो वर्तमान में सुखद है और भविष्य में भी सुखद फल देता है? यहाँ, एक व्यक्ति प्रसन्नतापूर्वक जीवों का संहार करने से परहेज करता है और सुख का अनुभव करता है। प्रसन्नतापूर्वक वह अनचाही वस्तुएँ लेने से परहेज करता है और सुख का अनुभव करता है। प्रसन्नतापूर्वक वह कामुकता में दुराचार करने से परहेज करता है और सुख का अनुभव करता है। प्रसन्नतापूर्वक वह झूठ बोलने से परहेज करता है और सुख का अनुभव करता है। प्रसन्नतापूर्वक वह द्वेषपूर्ण बातें करने से परहेज करता है और सुख का अनुभव करता है। प्रसन्नतापूर्वक वह फिजूल की बातें करने से परहेज करता है और सुख का अनुभव करता है। अप्रसन्नतापूर्वक वह लोभ करने से परहेज करता है और सुख एवं आनंद का अनुभव करता है। प्रसन्नतापूर्वक वह क्रोधित मन रखने से परहेज करता है और इसके कारण सुख का अनुभव करता है। प्रसन्नतापूर्वक वह सही दृष्टि बनाए रखता है और इसके कारण सुख एवं आनंद का अनुभव करता है। वह मृत्यु के बाद वृद्धि के लिए जाता है और स्वर्ग में जन्म लेता है। यही वह व्रत है जो वर्तमान में सुखद है और भविष्य में भी सुखद फल देता है। भिक्षुओं, ये शिक्षा में वर्णित चार व्रत हैं।

भिक्षुओं, एक ऐसा व्यक्ति जो जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता, जिसे सुख पसंद है और दुख से घृणा करता है, वह आता है और उसे कहा जाता है: "मित्र, यह कड़वा गुड़ से बना पेय है, और इसमें विष मिला हुआ है। यह देखने, सूंघने या चखने में अप्रिय है, और इसे पीने से तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी या तुम्हें घोर कष्ट होगा। यदि तुम पीना चाहते हो, तो पियो।" बिना सोचे-समझे वह पी लेता है। देखने, सूंघने या चखने में वह अप्रिय होता है और उसे पीने से उसकी मृत्यु हो जाती है या उसे घोर कष्ट होता है। भिक्षुओं, मैं कहता हूँ, इस शिक्षा का पालन करना इसी के समान है, क्योंकि यह अभी अप्रिय है और भविष्य में अप्रिय परिणाम लाता है।

भिक्षुओं, एक ऐसा व्यक्ति जो जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता, जिसे सुख पसंद है और दुख से घृणा है, वह आता है और उसे कहा जाता है: "मित्र, इस कटोरे में एक पेय है, इसमें विष मिला हुआ है। यह देखने, सूंघने और स्वाद में सुखद है, और इसे पीने से तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी या तुम्हें घोर दुख का सामना करना पड़ेगा। यदि तुम पीना चाहते हो, तो पी लो।" बिना सोचे-समझे वह उसे पी लेता है। देखने, सूंघने और स्वाद में वह सुखद होता है, लेकिन उसे पीने से उसकी मृत्यु हो जाती है या उसे घोर दुख का सामना करना पड़ता है। भिक्षुओं, मैं कहता हूँ, इस शिक्षा का पालन करना इसी के समान है, क्योंकि यह अभी सुखद है, लेकिन भविष्य में दुखद परिणाम लाता है।

भिक्षुओं, एक व्यक्ति पीलिया से पीड़ित होकर आता है और उसे बताया जाता है: "मित्र, सड़े हुए मूत्र से बना एक पेय है, जिसमें कई प्रकार की औषधियाँ मिलाई गई हैं। यदि आप चाहें तो पी सकते हैं। इसे पीते समय यह देखने, सूंघने और स्वाद में अप्रिय लगेगा, परन्तु इसे पीने से आप रोगमुक्त हो जाएँगे।" वह इस पर विचार करता है और उसे पी लेता है। यह देखने, सूंघने और स्वाद में अप्रिय तो लगता है, फिर भी वह रोगमुक्त हो जाता है। मैं कहता हूँ कि इस शिक्षा का पालन करना इसी प्रकार है, क्योंकि यह अभी अप्रिय है, परन्तु भविष्य में सुखद फल देता है।

भिक्षुओं, एक व्यक्ति खूनी पेचिश से पीड़ित होकर आता है और उसे बताया जाता है, हे भगवान, दही, शहद, घी और गुड़ से बना एक मिश्रण है। यह देखने, सूंघने और स्वाद में सुखद है, और इसे पीने से आप ठीक हो जाएंगे। वह विचार करता है और इसे पीता है, और पीते समय भी उसे यह देखने, सूंघने और स्वाद में सुखद लगता है, और पीने से वह ठीक हो जाता है। भिक्षुओं, मैं कहता हूँ, इस शिक्षा का पालन इसी के समान है, क्योंकि यह अभी सुखद है और भविष्य में भी सुखद फल देगा। भिक्षुओं, वर्षा ऋतु के अंतिम महीने में, शरद ऋतु में जब आकाश वर्षा के बादलों से मुक्त होता है, सूर्य तेजस्वी होकर समस्त अंधकार को दूर भगाता है और प्रकाश और ऊष्मा प्रदान करता है, उसी प्रकार, इस शिक्षा का पालन, जो अभी सुखद है और भविष्य में भी सुखद फल देगा, अन्य सभी संन्यासियों और ब्राह्मणों की शिक्षाओं को निष्फल कर देता है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.7विममसाका सुत्त(47)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। तब भगवान बुद्ध ने वहीं से भिक्षुओं को संबोधित किया।

भिक्षुओं, किसी ऐसे भिक्षु द्वारा जो दूसरे भिक्षु के मन की प्रक्रिया को पढ़ सकता हो, तथागत की परीक्षा की जानी चाहिए। क्या वे वास्तव में प्रबुद्ध हैं या नहीं, या केवल इसके प्रति सचेत हैं? आदरणीय, भगवान बुद्ध ही शिक्षा के स्रोत, मार्गदर्शक और शरणस्थल हैं। सौभाग्य है कि भगवान बुद्ध को इन शब्दों का अर्थ समझ में आया। भगवान बुद्ध से सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे। तो भिक्षुओं, सुनो, मैं शिक्षा देता हूँ।

भिक्षुओं, जो भिक्षु दूसरे के विचार-प्रक्रियाओं का अध्ययन कर सकते हैं, उन्हें तथागत की दो बातों पर परीक्षा करनी चाहिए। पहली, वे बातें जो दृष्टि और श्रवण द्वारा अनुभव की जा सकती हैं। क्या तथागत में दृष्टि और श्रवण द्वारा अनुभव की जा सकने वाली अशुद्ध बातें प्रकट होती हैं या नहीं? परीक्षा करने पर उन्हें पता चलता है कि ये अशुद्ध बातें जो दृष्टि और श्रवण द्वारा अनुभव की जा सकती हैं (*1) तथागत में प्रकट नहीं होती हैं। तब उन्हें आगे परीक्षा करनी चाहिए: क्या तथागत में दृष्टि और श्रवण द्वारा अनुभव की जा सकने वाली मिश्रित बातें प्रकट होती हैं या नहीं? परीक्षा करने पर उन्हें पता चलता है कि ये मिश्रित बातें जो दृष्टि और श्रवण द्वारा अनुभव की जा सकती हैं (*2) तथागत में प्रकट नहीं होती हैं। तब उन्हें आगे परीक्षा करनी चाहिए: क्या तथागत में दृष्टि और श्रवण द्वारा अनुभव की जा सकने वाली शुद्ध बातें प्रकट होती हैं या नहीं? परीक्षा करने पर उन्हें पता चलता है कि ये शुद्ध बातें जो दृष्टि और श्रवण द्वारा अनुभव की जा सकती हैं (*3) तथागत में प्रकट होती हैं।

फिर उसे आगे की जाँच करनी चाहिए। क्या पूज्यवर को ये पुण्य गुण बहुत पहले से प्राप्त हैं या हाल ही में प्राप्त हुए हैं? जाँच करने पर उसे पता चलता है कि ये पुण्य गुण बहुत पहले से प्राप्त हैं, हाल ही में नहीं। फिर उसे आगे की जाँच करनी चाहिए। क्या पूज्यवर को इस प्राप्ति का आंतरिक विश्वास है? क्या कोई संभावित खतरा दिखाई देता है? उसे यह जानने के लिए गहन जाँच करनी चाहिए कि क्या कोई खतरा दिखाई देता है। जाँच करने पर उसे पता चलता है कि पूज्यवर को इस प्राप्ति का आंतरिक विश्वास है और कोई खतरा दिखाई नहीं देता।

फिर उसे और अधिक जांच करनी चाहिए। क्या पूज्यवर लोभ के नाश से या भय से कामुकता में लिप्त नहीं होते? जांच करने पर उन्हें पता चलता है कि पूज्यवर लोभ के नाश से कामुकता में लिप्त नहीं होते, न ही भय से।

तब अन्य भिक्षुओं को उस भिक्षु से प्रश्न करना चाहिए। पूज्यवर ने किस आधार पर कहा कि वे कामुकता में लिप्त नहीं होते क्योंकि उनका लोभ नष्ट हो गया है, भय के कारण नहीं? यदि वह भिक्षु सही उत्तर दे, तो उसे कहना चाहिए: चाहे पूज्यवर समुदाय के बीच हों या अकेले रह रहे हों, सुखी हों या दुखी, यदि वे किसी समूह को उपदेश देते समय किसी को भौतिकता में लिप्त या अप्रभावित देखते हैं, तो वे उस पर तिरस्कार नहीं करते: यह मैंने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में सुना, और उन्होंने इसे स्वीकार किया, 'मैं कामुकता में लिप्त नहीं होता क्योंकि मेरा लोभ नष्ट हो गया है, भय के कारण नहीं।'

फिर आगे चलकर स्वयं तथागत से भी यह प्रश्न पूछा जा सकता है: क्या तथागत में नेत्र और श्रवण चेतना द्वारा ज्ञात अशुद्ध वस्तुएँ प्रकट होती हैं या नहीं? तब मैं कहूँगा, 'तृतीय में नेत्र और श्रवण चेतना द्वारा ज्ञात अशुद्ध वस्तुएँ प्रकट नहीं होतीं।' पूछे जाने पर: क्या तथागत में नेत्र और श्रवण चेतना द्वारा ज्ञात मिश्रित वस्तुएँ प्रकट होती हैं या नहीं? तब मैं कहूँगा, 'तृतीय में नेत्र और श्रवण चेतना द्वारा ज्ञात मिश्रित वस्तुएँ प्रकट नहीं होतीं।' पूछे जाने पर: क्या तथागत में नेत्र और श्रवण चेतना द्वारा ज्ञात शुद्ध वस्तुएँ प्रकट होती हैं या नहीं? तब मैं कहूँगा, 'तृतीय में नेत्र और श्रवण चेतना द्वारा ज्ञात शुद्ध वस्तुएँ प्रकट होती हैं। यही मेरा मार्ग और चारागाह है, परन्तु मैं इन्हें अपना नहीं मानता।' भिक्षुओं, जो गुरु ऐसा कहते हैं, उनसे शिक्षा ग्रहण करने हेतु संपर्क करना उचित है। वे शिक्षा देते हुए व्यक्ति को उत्तरोत्तर उच्चतर अवस्थाओं की ओर ले जाते हैं, अंधकार और श्वेत के प्रतिरूपों को दर्शाते हैं। जब शिक्षा अधिक से अधिक उच्चतर अवस्थाओं की ओर ले जाती है, तो एक निश्चित बिंदु पर वह शिखर (*4) पर पहुँच जाता है और शिक्षक में विश्वास स्थापित करता है: भगवान सही मायने में प्रबुद्ध हैं, शिक्षा अच्छी तरह से घोषित की गई है, भिक्षुओं का समुदाय अच्छा रहा है।

तब अन्य भिक्षुओं को उस भिक्षु से प्रश्न करना चाहिए। पूज्य भिक्षु ने किस आधार पर कहा कि भगवान बुद्ध वास्तव में प्रबुद्ध हैं, उपदेश का प्रचार सुचारू रूप से हो रहा है और भिक्षु समुदाय का भला हो रहा है? वह भिक्षु उचित उत्तर देते हुए कहेगा, मैं भगवान बुद्ध से उपदेश सुनने के लिए उनके पास गया था। भगवान बुद्ध ने मुझे उपदेश दिया जिससे मैं उत्तरोत्तर उच्चतर अवस्थाओं की ओर अग्रसर हुआ, उन्होंने मुझे अंधकार और श्वेत रंग के दो पहलुओं को दिखाया। उपदेश देते हुए, जिससे मैं उत्तरोत्तर उच्चतर अवस्थाओं की ओर अग्रसर हुआ, एक समय ऐसा आया जब मैं शिखर पर पहुँच गया, और तब मैंने गुरु में आस्था स्थापित की और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि भगवान बुद्ध वास्तव में प्रबुद्ध हैं, उपदेश का प्रचार सुचारू रूप से हो रहा है और भिक्षु समुदाय का भला हो रहा है।

भिक्षुओं, जिस किसी में तथागत के प्रति इस प्रकार, इन शब्दों और वाक्यों से आस्था स्थापित हो जाती है, वह आस्था और अंतर्दृष्टि दृढ़ और अटूट हो जाती है। इसे किसी संन्यासी, ब्राह्मण, देवता, मारा ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति द्वारा बदला नहीं जा सकता।

भिक्षुओं, यही तथागत के उपदेश में खोज है, और तथागत के उपदेश में शिखर (*5) तक पहुँचने की औचित्य है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.8कोसंबिया सुत्त(48)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध कोसंबी में घोषिता के मठ में निवास कर रहे थे। उस समय कोसंबी के भिक्षुओं में आपस में विवाद हो गया था और वे एक-दूसरे पर तीखे शब्दों का प्रयोग करते हुए झगड़ रहे थे। वे आपस में चर्चा करके सुलह करने को तैयार नहीं थे। एक भिक्षु भगवान बुद्ध के पास आया, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गया और बोला, "हे पूज्यवर, कोसंबी के भिक्षुओं में विवाद हो गया है और वे आपस में झगड़ रहे हैं, एक-दूसरे पर तीखे शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। वे आपस में चर्चा करके सुलह करने को तैयार नहीं हैं।" तब भगवान बुद्ध ने उस भिक्षु से कहा, "हे भिक्षु, मेरी बात उन भिक्षुओं से कहो कि गुरुजी तुम्हें बुला रहे हैं।" उस भिक्षु ने सहमति जताई, उन भिक्षुओं के पास गया और बोला, "हे भिक्षुओं, गुरुजी तुम्हें बुला रहे हैं।" उन भिक्षुओं ने भी सहमति जताई, भगवान बुद्ध के पास गया, प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। तब भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, क्या यह सच है कि तुम आपस में विवाद कर रहे हो और एक-दूसरे पर तीखे शब्द बोल रहे हो? क्या तुम आपस में इस मामले पर चर्चा करके समझौता नहीं करोगे?" "जी, आदरणीय भिक्षुओं। भिक्षुओं, जब तुम आपस में विवाद कर रहे हो और एक-दूसरे पर तीखे शब्द बोल रहे हो, क्या तुम अपने सहोदरों के प्रति शारीरिक और गुप्त रूप से प्रेम और करुणा के भाव से दृढ़ हो? क्या तुम अपने सहोदरों के प्रति मौखिक और गुप्त रूप से प्रेम और करुणा के भाव से दृढ़ हो? क्या तुम अपने सहोदरों के प्रति मानसिक और गुप्त रूप से प्रेम और करुणा के भाव से दृढ़ हो?" नहीं, आदरणीय भिक्षुओं। भिक्षुओं, तुम आपस में झगड़ा करके और एक-दूसरे पर तीखे शब्द बोलकर विवाद खड़ा कर रहे हो। अब तुम न तो अपने सहोदरों के प्रति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रेम और करुणा के शारीरिक कर्मों में स्थिर हो। न ही अपने सहोदरों के प्रति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रेम और करुणा के मौखिक कर्मों में स्थिर हो। न ही अपने सहोदरों के प्रति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रेम और करुणा के मानसिक कर्मों में स्थिर हो। हे मूर्ख लोगो, तुमने यह विवाद क्यों खड़ा किया? तुम आपस में इस विषय पर चर्चा करके कोई समझौता क्यों नहीं करते? हे मूर्ख लोगो, यह तुम्हारे लिए लंबे समय तक नाश का कारण बनेगा।

तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: हे भिक्षुओं, छह बातें हैं जो एक दूसरे के प्रति आदर, एकता, मित्रता और प्रेम को बढ़ावा देती हैं। वे छह बातें क्या हैं? हे भिक्षुओं, भिक्षु को अपने सहचरों के प्रति शारीरिक रूप से प्रेमपूर्ण और दयालुतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष। यह एक ऐसी बात है जो एक दूसरे के प्रति आदर, एकता, मित्रता और प्रेम को बढ़ावा देती है। फिर, भिक्षु को अपने सहचरों के प्रति मौखिक रूप से प्रेमपूर्ण और दयालुतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष। यह भी एक ऐसी बात है जो एक दूसरे के प्रति आदर, एकता, मित्रता और प्रेम को बढ़ावा देती है। फिर, भिक्षु को अपने सहचरों के प्रति मानसिक रूप से प्रेमपूर्ण और दयालुतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए, चाहे वह प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष। यह भी एक ऐसी बात है जो एक दूसरे के प्रति आदर, एकता, मित्रता और प्रेम को बढ़ावा देती है। हे भिक्षुओं, उचित रूप से प्राप्त लाभ, जहाँ तक पात्र में डाले गए प्रसाद का संबंध है, भिक्षु उसे अपने सहचरों के साथ समान रूप से बाँटे बिना ग्रहण नहीं करेगा। यह भी एक ऐसा वचन है जो एक-दूसरे के प्रति आदर, एकता, मित्रता और प्रेम को बढ़ावा देता है। भिक्षु खुलेआम और गुप्त रूप से अपने सहचरों के साथ सद्गुणों में समान हो जाता है। जो सद्गुण अविभाजित, विखंडित या दागदार नहीं होते, वे स्थिर होते हैं और ज्ञानी उन्हें अप्रभावित और एकाग्रता बढ़ाने वाला मानते हैं। यह भी एक ऐसा वचन है जो एक-दूसरे के प्रति आदर, एकता, मित्रता और प्रेम को बढ़ावा देता है। भिक्षु अपने सहचरों के साथ उस महान दृष्टिकोण में समान हो जाता है जो परलोक की ओर ले जाता है। जो तार्किक रूप से सोचने वाले व्यक्ति के लिए अप्रियता के नाश को उचित रूप से दर्शाता है। यह भी एक ऐसा वचन है जो एक-दूसरे के प्रति आदर, एकता, मित्रता और प्रेम को बढ़ावा देता है।

भिक्षुओं, ये छह बातें आदर, एकता, मित्रता और एक दूसरे के प्रति प्रेम को बढ़ावा देती हैं। भिक्षुओं, इन छह में से वह श्रेष्ठ दृष्टिकोण जो पारलौकिक अवस्था की ओर ले जाता है और तार्किक चिंतन करने वाले को अप्रियता का नाश करने का सही मार्ग दिखाता है, सर्वोत्कृष्ट और प्रमुख है। यह सभी को एक छत वाले घर के सबसे ऊंचे स्तंभ से बांधता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा श्रेष्ठ दृष्टिकोण है जो पारलौकिक अवस्था की ओर ले जाता है और तार्किक चिंतन करने वाले को अप्रियता का नाश सिद्ध करता है? यहाँ, भिक्षुओं, वन में, वृक्ष की जड़ में, या किसी एकांत घर में जाकर चिंतन कीजिए। क्या मुझमें कोई अनसुलझी बाधाएँ हैं? क्या वे मेरे मन को उसके वास्तविक स्वरूप को जानने और देखने से रोक रही हैं? क्या मैं कामवासना से ग्रस्त हूँ, या मेरा मन उनसे अवरुद्ध है? क्या मैं क्रोध से ग्रस्त हूँ, या मेरा मन क्रोध से अवरुद्ध है? क्या मैं आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त हूँ, या मेरा मन आलस्य और सुस्ती से अवरुद्ध है? क्या मैं बेचैनी और चिंता से ग्रस्त हूँ, या मेरा मन बेचैनी और चिंता से अवरुद्ध है? क्या मेरा मन इस संसार और परलोक के बारे में संदेह से ग्रस्त है? या क्या मैं किसी विवाद में उलझा हुआ हूँ, दूसरों पर कठोर शब्दों का प्रयोग कर रहा हूँ, क्या मेरा मन इस प्रकार अवरुद्ध है?

भिक्षु जानता है, मैंने उन बाधाओं को दूर नहीं किया है जिनके कारण मेरा मन इसे इसके वास्तविक स्वरूप में नहीं देख पा रहा था। ये बातें मेरे मन से पूरी तरह दूर हो गई हैं और यह सत्य को जानने के लिए तैयार है। यह प्राप्त किया गया प्रथम महान ज्ञान है, जो न तो सांसारिक है और न ही साधारण लोगों के साथ साझा किया जाता है (*1)।

फिर, महान शिष्य चिंतन करता है, "जब मैं इस दृष्टिकोण का बहुत अभ्यास और विकास करता हूँ, तो मुझे आंतरिक शांति और आंतरिक निर्गमन (*2) का अनुभव होता है। यह प्राप्त किया गया दूसरा महान ज्ञान है, जो न तो सांसारिक है और न ही सामान्य लोगों के साथ साझा किया जाता है।"

फिर उस श्रेष्ठ शिष्य ने चिंतन किया। क्या यह ज्ञान जो मैंने प्राप्त किया है, अन्य संप्रदायों के संन्यासियों और ब्राह्मणों का भी ज्ञान है? तब उसे ज्ञान प्राप्त हुआ कि यह ज्ञान, जो मुझे प्राप्त हुआ है, अन्य संप्रदायों के संन्यासियों और ब्राह्मणों को प्राप्त नहीं है। यह तीसरा श्रेष्ठ ज्ञान है, जो न तो संसार का है और न ही साधारण लोगों को प्राप्त है।

भिक्षुओं, एक बार फिर, श्रेष्ठ शिष्य चिंतन करता है। मैं इस विचार को उन सभी के साथ साझा करता हूँ जो सत्यवादी दृष्टि प्राप्त कर चुके हैं। मुझमें भी वह विशिष्ट गुण है। भिक्षुओं, सत्यवादी दृष्टि प्राप्त करने वाले व्यक्ति का वह विशिष्ट गुण क्या है? जब वह कोई पाप करता है, तो वह उसे प्रकट हो जाता है, और वह तुरंत गुरु या किसी ज्ञानी सहपाठी के पास जाकर उसे स्वीकार करता है, प्रकट करता है और भविष्य में संयम बरतने का निश्चय करता है, जैसे कोई छोटा बच्चा जो खड़े होने और लेटने में धीमा होता है, जलते हुए कोयले पर पैर रख दे और तुरंत उससे दूर हट जाए। ठीक उसी प्रकार, जब वह कोई पाप करता है, तो वह उसे प्रकट हो जाता है, और वह तुरंत गुरु या किसी ज्ञानी सहपाठी के पास जाकर उसे स्वीकार करता है और भविष्य में संयम बरतने का निश्चय करता है। यह सत्यवादी दृष्टि प्राप्त करने वाले व्यक्ति का विशिष्ट गुण है। यह चौथा श्रेष्ठ ज्ञान है, जो न तो सांसारिक है और न ही साधारण लोगों में पाया जाता है।

भिक्षुओं, एक बार फिर, श्रेष्ठ शिष्य चिंतन करता है। मैं भी इस विचार को उन लोगों के साथ साझा करता हूँ जो सत्यवादी दृष्टि प्राप्त कर चुके हैं। मुझमें भी वह विशिष्ट गुण है। भिक्षुओं, सत्यवादी दृष्टि प्राप्त करने वाले व्यक्ति का वह विशिष्ट गुण क्या है? सत्यवादी दृष्टि प्राप्त करने वाले व्यक्ति का विशिष्ट गुण यह है कि वह पवित्र जीवन में सहचरों के लिए किए जाने वाले किसी भी कार्य, चाहे वह उच्च हो या निम्न, को पूर्ण करने में अत्यंत तत्पर रहता है। उच्च गुणों, प्रशिक्षण और उच्च ज्ञान के प्रति सचेत रहता है। जैसे गाय अपने बछड़े को बचाने के प्रयास में उस खंभे को भी उखाड़ देती है जिससे वह बंधी होती है। उसी प्रकार, वह पवित्र जीवन में सहचरों के लिए किए जाने वाले किसी भी कार्य, चाहे वह उच्च हो या निम्न, को पूर्ण करने में अत्यंत तत्पर रहता है। उच्च गुणों, प्रशिक्षण और उच्च ज्ञान के प्रति सचेत रहता है। तब वह जानता है, मैं भी इस विचार को उन लोगों के साथ साझा करता हूँ जो सत्यवादी दृष्टि प्राप्त कर चुके हैं। मुझमें भी वह विशिष्ट गुण है। यह पाँचवाँ श्रेष्ठ ज्ञान है, जो न तो सांसारिक है और न ही साधारण लोगों के पास है।

फिर, वह श्रेष्ठ शिष्य मनन करता है कि मैं इस शक्ति को उन लोगों के साथ साझा करता हूँ जो सत्य दृष्टि प्राप्त कर चुके हैं। मैं उस शक्ति से संपन्न हूँ। वह कौन सी शक्ति है जिससे सत्य दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति संपन्न होता है? सत्य दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति ध्यानपूर्वक उपदेश सुनता है और एकाग्र मन से उसका सार ग्रहण करता है। तब वह जान जाता है, मैं सत्य दृष्टि प्राप्त करने वाले व्यक्ति की शक्ति से संपन्न हूँ। यह छठा श्रेष्ठ ज्ञान है, जो न तो सांसारिक है और न ही साधारण लोगों के पास होता है।

फिर, वह श्रेष्ठ शिष्य चिंतन करता है। मैं इस शक्ति को उन लोगों के साथ साझा करता हूँ जो सत्य दृष्टि प्राप्त कर चुके हैं। मैं उस शक्ति से संपन्न हूँ। वह कौन सी शक्ति है जिससे सत्य दृष्टि प्राप्त करने वाला संपन्न होता है? यह सत्य दृष्टि प्राप्त करने वाले की वह शक्ति है

जिससे वह भगवान बुद्ध द्वारा दी गई शिक्षा को सुनता है, उसके अर्थों को ग्रहण करता है, शिक्षा का अनुभव करता है और आनंद का अनुभव करता है। तब वह जान जाता है कि जिस भी शक्ति से सत्य दृष्टि प्राप्त करने वाला संपन्न है, मैं भी उस शक्ति से संपन्न हूँ। यह सातवाँ श्रेष्ठ ज्ञान है, जो न तो सांसारिक है और न ही साधारण लोगों के पास होता है।

जब श्रेष्ठ शिष्य इन सात गुणों से संपन्न हो जाता है, तो वह शिक्षा की धारा में प्रवेश करने के फलों को प्राप्त करने के लिए तैयार हो जाता है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.9ब्राह्मणिमंतनिका सुत्त(49)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "हाल ही में एक बार मैं सुभगा वन में उक्कत्था में एक राजसी साल वृक्ष की जड़ में ठहरा हुआ था। उस समय बका-ब्रह्मा के मन में एक बुरी धारणा उत्पन्न हुई: 'यह स्थिर है। यह स्थायी है। यह शाश्वत है। यह पूर्ण है। यह पतन के अधीन नहीं है - क्योंकि यह जन्म नहीं लेता, बूढ़ा नहीं होता, मरता नहीं, नष्ट नहीं होता, पुन: प्रकट नहीं होता।1 और इससे बेहतर कोई दूसरा मार्ग नहीं है।'

"इसलिए मैंने—बका ब्रह्मा के मन में चल रहे विचारों को अपनी चेतना से जानकर—जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाता है या फैलाता है, वैसे ही उक्कत्था के सुभाग वन में स्थित राजसी साल वृक्ष की जड़ में विलीन होकर उस ब्रह्मलोक में प्रकट हुआ। बका ब्रह्मा ने मुझे दूर से आते हुए देखा और मुझे देखकर कहा, 'आओ, हे सज्जन। आपका स्वागत है, हे सज्जन। हे सज्जन, आपने यहाँ आने का प्रबंध किए हुए बहुत समय हो गया है—क्योंकि, हे सज्जन, यह स्थिर है। यह स्थायी है। यह शाश्वत है। यह पूर्ण है। यह पतन के अधीन नहीं है—क्योंकि यहाँ न जन्म होता है, न वृद्धावस्था होती है, न मृत्यु होती है, न पतन होता है, न पुनर्जन्म होता है। और इससे ऊपर कोई दूसरा मुक्ति मार्ग नहीं है।'

जब यह कहा गया, तो मैंने बका ब्रह्मा से कहा, 'बका ब्रह्मा अज्ञान में कितना डूबा हुआ है! बका ब्रह्मा अज्ञान में कितना डूबा हुआ है! क्योंकि जो वास्तव में अस्थिर है, उसे वह 'स्थिर' कहता है। जो वास्तव में अनित्य है, उसे वह 'स्थायी' कहता है। जो वास्तव में शाश्वत नहीं है, उसे वह 'शाश्वत' कहता है। जो वास्तव में आंशिक है, उसे वह 'पूर्ण' कहता है। जो वास्तव में पतन के अधीन है, उसे वह 'पतन के अधीन नहीं' कहता है। जहाँ जन्म होता है, वृद्धावस्था होती है, मृत्यु होती है, पतन होता है और पुन: प्रकट होता है, वहाँ वह कहता है, 'क्योंकि यहाँ न तो जन्म होता है, न वृद्धावस्था होती है, न मृत्यु होती है, न पतन होता है, न पुन: प्रकट होता है।' और एक अन्य, उच्चतर मुक्ति मार्ग होने के कारण, वह कहता है, 'कोई अन्य, उच्चतर मुक्ति मार्ग नहीं है।'

तब दुष्ट मारा ने ब्रह्मा सभा के एक सेवक को अपने वश में कर लिया और मुझसे कहा, 'हे भिक्षु! हे भिक्षु! उस पर आक्रमण मत करो! उस पर आक्रमण मत करो! क्योंकि हे भिक्षु, यह ब्रह्मा ही महान ब्रह्मा हैं, विजेता हैं, अजेय हैं, सर्वदर्शी हैं, सर्वशक्तिमान हैं, संभगवान स्वामी हैं, सृष्टिकर्ता हैं, सृजनकर्ता हैं, प्रधान हैं, नियुक्तकर्ता हैं और शासक हैं, जो सभी के पिता हैं जो रहे हैं और होंगे। हे भिक्षु, तुम्हारे समय से पहले संसार में ब्राह्मण और ध्यान करने वाले थे जिन्होंने पृथ्वी में दोष पाया और उससे घृणा की, जिन्होंने द्रव में दोष पाया और उससे घृणा की, जिन्होंने अग्नि में दोष पाया और उससे घृणा की, जिन्होंने वायु में दोष पाया और उससे घृणा की, जिन्होंने प्राणियों में दोष पाया और उनसे घृणा की, जिन्होंने देवताओं में दोष पाया और उनसे घृणा की, जिन्होंने प्रजापति में दोष पाया और उनसे घृणा की, जिन्होंने ब्रह्मा में दोष पाया और उनसे घृणा की।'

"'शरीर के विखंडन के साथ, जीवन के विच्छेदन के साथ, वे एक स्थूल शरीर में स्थापित हो गए।3 हे भिक्षु, आपके समय से पहले संसार में ब्राह्मण और ध्यानमग्न थे, जो पृथ्वी की स्तुति करते थे और पृथ्वी से प्रसन्न होते थे, जो द्रव की स्तुति करते थे और द्रव से प्रसन्न होते थे, जो अग्नि की स्तुति करते थे और अग्नि से प्रसन्न होते थे, जो वायु की स्तुति करते थे और वायु से प्रसन्न होते थे, जो प्राणियों की स्तुति करते थे और प्राणियों से प्रसन्न होते थे, जो देवताओं की स्तुति करते थे और देवताओं से प्रसन्न होते थे, जो प्रजापति की स्तुति करते थे और प्रजापति से प्रसन्न होते थे, जो ब्रह्मा की स्तुति करते थे और ब्रह्मा से प्रसन्न होते थे।

“शरीर के विखंडन और जीवन के विच्छेदन के साथ, वे एक परिष्कृत शरीर में स्थापित हुए। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ, हे भिक्षु, “कृपा करके, केवल ब्रह्मा की आज्ञा का पालन करो। ब्रह्मा के वचन का उल्लंघन मत करो। यदि तुम ब्रह्मा के वचन का उल्लंघन करोगे, तो — जैसे कोई मनुष्य भाग्य की देवी के आने पर उसे लाठी से भगा देता है, या जैसे कोई मनुष्य नरक में गिरकर अपने हाथों और पैरों से पृथ्वी को खो देता है — वही तुम्हारा कर्म होगा। कृपा करके, हे भगवान, केवल ब्रह्मा की आज्ञा का पालन करो। ब्रह्मा के वचन का उल्लंघन मत करो। क्या तुम नहीं देखते कि ब्रह्मा की सभा एकत्रित हुई है?” और इस प्रकार दुष्ट मारा ने मेरा ध्यान ब्रह्मा की सभा की ओर आकर्षित किया।

जब यह कहा गया, तो मैंने दुष्ट मारा से कहा, 'मैं तुम्हें जानता हूँ, दुष्ट। यह मत समझो कि "वह मुझे नहीं जानता।" तुम ही हो दुष्ट मारा। और ब्रह्मा, ब्रह्मा की सभा और ब्रह्मा की सभा के सेवक सब तुम्हारे हाथों में आ गए हैं। वे सब तुम्हारी शक्ति के अधीन हो गए हैं। और तुम सोचते हो, "यह भी मेरे हाथों में आ गया है, मेरे वश में आ गया है।" लेकिन, दुष्ट, मैं न तो तुम्हारे हाथों में आया हूँ और न ही तुम्हारे वश में आया हूँ।'

जब यह कहा गया, तो बका ब्रह्मा ने मुझसे कहा, 'परन्तु, हे भगवान, जो वास्तव में स्थिर है, उसे मैं 'स्थिर' कहता हूँ। जो वास्तव में स्थायी है, उसे मैं 'स्थायी' कहता हूँ। जो वास्तव में शाश्वत है, उसे मैं 'शाश्वत' कहता हूँ। जो वास्तव में पूर्ण है, उसे मैं 'पूर्ण' कहता हूँ। जो वास्तव में पतन के अधीन नहीं है, उसे मैं 'पतन के अधीन नहीं' कहता हूँ। जहाँ कोई जन्म नहीं लेता, वृद्ध नहीं होता, मरता नहीं, पतन नहीं होता, या पुनर्जन्म नहीं लेता, वहाँ मैं कहता हूँ, 'क्योंकि यह जन्म नहीं लेता, वृद्ध नहीं होता, मरता नहीं, पतन नहीं होता, पुनर्जन्म नहीं लेता।' और जब कोई अन्य, उच्चतर मुक्ति मार्ग नहीं है, तो मैं कहता हूँ, 'कोई अन्य, उच्चतर मुक्ति मार्ग नहीं है।'

"'हे भिक्षु, तुम्हारे समय से पहले संसार में ब्राह्मण और ध्यानमग्न हुए लोग थे, जिनका तप तुम्हारे जीवनकाल के बराबर चला। वे जानते थे कि जब कोई दूसरा, उच्चतर मुक्ति मार्ग था, तो वह था; या जब कोई दूसरा, उच्चतर मुक्ति मार्ग नहीं था, तो वह था। इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ, हे भिक्षु, कि तुम्हें कोई दूसरा, उच्चतर मुक्ति मार्ग नहीं मिलेगा, और उस हद तक तुम्हें कष्ट और थकान का सामना करना पड़ेगा। हे भिक्षु, यदि तुम्हें पृथ्वी से प्रेम है, तो तुम मेरे निकट लेटोगे, मेरे क्षेत्र में, ताकि मैं तुम्हें निर्वासित कर सकूँ और जैसा चाहूँ वैसा कर सकूँ। यदि तुम्हें द्रव... अग्नि... वायु... प्राणी... देव... प्रजापति... ब्रह्मा से प्रेम है, तो तुम मेरे निकट लेटोगे, मेरे क्षेत्र में, ताकि मैं तुम्हें निर्वासित कर सकूँ और जैसा चाहूँ वैसा कर सकूँ।"

"'मैं भी यह जानता हूँ, ब्रह्मा। यदि मुझे पृथ्वी से प्रेम हो, तो मैं आपके निकट, आपके क्षेत्र में, आपके लिए उपलब्ध रहूँगा, ताकि आप मुझे निर्वासित कर सकें और मेरे साथ जैसा चाहें वैसा कर सकें। यदि मुझे द्रव... अग्नि... वायु... प्राणी... देव... प्रजापति... ब्रह्मा से प्रेम हो, तो मैं आपके निकट, आपके क्षेत्र में, आपके लिए उपलब्ध रहूँगा, ताकि आप मुझे निर्वासित कर सकें और मेरे साथ जैसा चाहें वैसा कर सकें। इसके अलावा, मैं आपके क्षेत्र को, आपकी महिमा को देखता हूँ: 'बका ब्रह्मा के पास इतनी महान शक्ति है। बका ब्रह्मा के पास इतनी महान सामर्थ्य है। बका ब्रह्मा के पास इतना महान प्रभाव है।'"

"'अच्छा, भिक्षु, तुम मेरे क्षेत्र को कैसे समझते हो, तुम मेरी महिमा को कैसे समझते हो: 'बाका ब्रह्मा के पास इतनी महान शक्ति है। बाका ब्रह्मा के पास इतनी महान सामर्थ्य है। बाका ब्रह्मा के पास इतना महान प्रभाव है'?'"

सूर्य और चंद्रमा जहाँ तक घूमते हैं, चमकते हैं, दिशाओं को प्रकाशित करते हैं, एक हजार गुना से अधिक विशाल संसार पर आपका नियंत्रण है। वहाँ आप ऊपर और नीचे वालों को जानते हैं, कामवासना वाले और कामवासना रहित लोगों को जानते हैं, जो जैसा है वैसा ही है, जो बदल जाता है, प्राणियों के आने-जाने को जानते हैं।

"'हे ब्रह्मा, मैं इसी प्रकार आपके क्षेत्र को पहचानता हूँ, इसी प्रकार आपकी महिमा को पहचानता हूँ: बका ब्रह्मा के पास इतनी महान शक्ति है। बका ब्रह्मा के पास इतनी महान सामर्थ्य है। बका ब्रह्मा के पास इतना महान प्रभाव है।' हे ब्रह्मा, आपके शरीर के अलावा अन्य शरीर भी हैं जिन्हें आप नहीं जानते, नहीं देखते, परन्तु जिन्हें मैं जानता हूँ, देखता हूँ। हे ब्रह्मा, आभासर (दीप्तिमान/प्रकाशमान) नामक शरीर है

जिससे आप गिरे और यहाँ पुनः प्रकट हुए।4 यहाँ इतने लंबे समय तक रहने के कारण, उस शरीर की आपकी स्मृति धुंधली हो गई है। इसीलिए आप उसे नहीं जानते, नहीं देखते, परन्तु मैं उसे जानता हूँ, देखता हूँ। अतः प्रत्यक्ष ज्ञान के मामले में मैं केवल आपका समतुल्य नहीं हूँ, तो मैं आपसे हीन कैसे हो सकता हूँ? वास्तव में मैं आपसे श्रेष्ठ हूँ।"

"'हे ब्रह्मा, सुभकिन्हा (सुंदर काला/तेजस्वी महिमा) नामक शरीर है... वेहप्पला (आकाश-फल/महान फल) नामक शरीर है, अभिभू (विजेता) नामक शरीर है,5 जिसे तुम नहीं जानते, नहीं देखते, परन्तु जिसे मैं जानता हूँ, देखता हूँ। अतः प्रत्यक्ष ज्ञान के संदर्भ में मैं तुम्हारा मात्र समतुल्य नहीं हूँ, तो मैं तुम्हारा हीन कैसे हो सकता हूँ? वास्तव में मैं तुमसे श्रेष्ठ हूँ।"

"'पृथ्वी को पृथ्वी के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानने के बाद, और पृथ्वी के पृथ्वीत्व के माध्यम से अनुभव न की गई सीमा को प्रत्यक्ष रूप से जानने के बाद,6 मैं पृथ्वी नहीं था, मैं पृथ्वी में नहीं था, मैं पृथ्वी से नहीं आ रहा था, मैं 'पृथ्वी मेरी है' नहीं कह रहा था। मैंने पृथ्वी की पुष्टि नहीं की।7 इस प्रकार मैं प्रत्यक्ष ज्ञान के संदर्भ में आपका मात्र समतुल्य नहीं हूँ, तो मैं हीन कैसे हो सकता हूँ? मैं वास्तव में आपसे श्रेष्ठ हूँ।'"

"'द्रव्य को द्रव के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानने पर... अग्नि को अग्नि के रूप में... वायु को वायु के रूप में... प्राणियों को प्राणियों के रूप में... देवताओं को देवताओं के रूप में... प्रजापति को प्रजापति के रूप में... ब्रह्मा को ब्रह्मा के रूप में... प्रकाशमान को प्रकाशमान के रूप में... सुंदर काले को सुंदर काले के रूप में... आकाश फल को आकाश फल के रूप में... विजेता को विजेता के रूप में..."

"'सर्व को सर्व के रूप में प्रत्यक्ष रूप से जानने के बाद,8 और सर्व की सर्वव्यापकता के माध्यम से अनुभव न की गई सीमा को प्रत्यक्ष रूप से जानने के बाद, मैं सर्व नहीं था, मैं सर्व में नहीं था, मैं सर्व से उत्पन्न नहीं हो रहा था, मैं 'सर्व मेरा है' नहीं था। मैंने सर्व की पुष्टि नहीं की। इस प्रकार मैं प्रत्यक्ष ज्ञान के संदर्भ में आपका मात्र समतुल्य नहीं हूँ, तो मैं हीन कैसे हो सकता हूँ? मैं वास्तव में आपसे श्रेष्ठ हूँ।'

"यदि, महोदय, आपने सर्वव्यापीता के माध्यम से उस चीज़ की सीमा को प्रत्यक्ष रूप से जान लिया है जिसका अनुभव नहीं किया गया है, तो यह आपके लिए वास्तव में व्यर्थ और निरर्थक साबित न हो।"

"'सचेतना जिसका कोई सतही स्वरूप नहीं है, अनंत है, चारों ओर दीप्तिमान है,

पृथ्वी की सांसारिकता... द्रव की तरलता... अग्नि की उग्रता... वायु की हवादारता... सर्वव्यापीता के माध्यम से इसका अनुभव नहीं किया गया है।'9

"'तो फिर, महोदय, मैं आपके सामने से गायब हो जाऊंगा।'"

"'तो फिर, ब्रह्मा, अगर हो सके तो मुझसे विदा हो जाओ।'"

"तब बका ब्रह्मा, [यह सोचते हुए,] 'मैं गौतम ध्यानमग्न से विलीन हो जाऊंगा। मैं गौतम ध्यानमग्न से विलीन हो जाऊंगा,' मुझसे विलीन नहीं हो सके। जब यह कहा गया, तो मैंने बका ब्रह्मा से कहा, 'ठीक है, ब्रह्मा, मैं आपसे विलीन हो जाऊंगा।'

"'तो फिर, भले आदमी, अगर हो सके तो मुझसे दूर चले जाओ।'"

तो फिर, हे भिक्षुओं, मैंने ऐसी मानसिक शक्ति का कृत्रिम रूप से प्रयोग किया कि ब्रह्मा, ब्रह्मा सभा और ब्रह्मा सभा के सेवकों ने मेरी आवाज सुनी, लेकिन मुझे देख नहीं पाए। अंतर्धान होने के बाद, मैंने यह श्लोक पढ़ा:

'होने में ही खतरे को देखकर, और न होने की तलाश में होने के कारण,10 मैंने किसी भी प्रकार के होने की पुष्टि नहीं की, न ही किसी आनंद से चिपके रहे।'

तब ब्रह्मा, ब्रह्मा सभा और ब्रह्मा सभा के सेवकों में विस्मय और श्रद्धा का भाव उत्पन्न हुआ: 'कितना अद्भुत! कितना विस्मयकारी! — गौतम ध्यानमग्न की महान शक्ति, महान सामर्थ्य! हमने पहले कभी किसी अन्य ध्यानमग्न या ब्राह्मण के बारे में न तो देखा है और न ही सुना है, जिसकी शक्ति और सामर्थ्य शाक्य वंश के इस गौतम ध्यानमग्न के समान हो! ऐसे युग में रहते हुए जो बनने में इतना आनंदित होता है, बनने में इतना प्रसन्न होता है, बनने का इतना शौकीन है, उसने बनने को जड़ से उखाड़ दिया है!'

तब दुष्ट मारा ने ब्रह्म सभा के एक सेवक के शरीर में प्रवेश करके मुझसे कहा, 'हे सज्जन, यदि यही वह बात है जो आप समझते हैं, यदि यही वह बात है जिसके लिए आप जागृत हुए हैं, तो (गृहस्थ) शिष्यों या संन्यासी शिष्यों का नेतृत्व न करें। (गृहस्थ) शिष्यों या संन्यासी शिष्यों को धम्म का उपदेश न दें। (गृहस्थ) शिष्यों या संन्यासी शिष्यों के लिए तरसें नहीं। हे सज्जन, आपके समय से पहले संसार में ब्राह्मण और ध्यानी थे जिन्होंने स्वयं को योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत होने का दावा किया। उन्होंने (गृहस्थ) शिष्यों और संन्यासी शिष्यों का नेतृत्व किया। उन्होंने (गृहस्थ) शिष्यों और संन्यासी शिष्यों को धम्म का उपदेश दिया। उन्होंने (गृहस्थ) शिष्यों और संन्यासी शिष्यों के लिए तरसें। (गृहस्थ) शिष्यों और संन्यासी शिष्यों का नेतृत्व करने, (गृहस्थ) शिष्यों और संन्यासी शिष्यों को धम्म का उपदेश देने, (गृहस्थ) शिष्यों और संन्यासी शिष्यों के लिए तरसने के बाद, शरीर के टूटने और जीवन के विच्छेद होने पर, वे एक स्थूल शरीर में स्थापित हो गए। शरीर।

"हे महोदय, आपके समय से पहले संसार में ब्राह्मण और ध्यानमग्न हुए लोग थे जो स्वयं को योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत मानते थे। उन्होंने न तो (गृहस्थ) शिष्यों का नेतृत्व किया और न ही संन्यासी शिष्यों का। उन्होंने न तो (गृहस्थ) शिष्यों को और न ही संन्यासी शिष्यों को धम्म का उपदेश दिया। उन्होंने न तो (गृहस्थ) शिष्यों के लिए और न ही संन्यासी शिष्यों के लिए तरस किया। चूंकि उन्होंने (गृहस्थ) शिष्यों का और न ही संन्यासी शिष्यों का नेतृत्व नहीं किया, न ही (गृहस्थ) शिष्यों को और न ही संन्यासी शिष्यों के लिए तरस किया, इसलिए शरीर के टूटने और जीवन के विच्छेद होने पर वे एक परिष्कृत शरीर में स्थापित हुए।"

"तो, भिक्षु, मैं आपसे यह कहता हूँ: कृपया, सज्जन, सहज रहें। वर्तमान क्षण में सुखद रूप से बने रहने के लिए प्रतिबद्ध रहें—क्योंकि, सज्जन, यह सिखाया न जाना ही कुशलता है। दूसरों को उपदेश न दें।"

जब यह कहा गया, तो मैंने हे दुष्ट मारा से कहा, 'हे दुष्ट, मैं तुम्हें जानता हूँ। यह मत समझो कि "वह मुझे नहीं जानता।" हे दुष्ट मारा, तुम ही हो। और तुम्हारा इस प्रकार मुझसे बात करना कल्याणकारी नहीं है। बल्कि यह कल्याणकारी नहीं है। हे दुष्ट, तुम यह सोचते हो: "जिन लोगों को गौतम ध्यानमग्न धम्म का उपदेश देंगे, वे मेरी संभगवानता का उल्लंघन करेंगे।" हे दुष्ट, सही मायने में आत्म-जागृत हुए बिना, तुम्हारे ध्यानमग्न और ब्राह्मणों ने सही मायने में आत्म-जागृत होने का दावा किया। लेकिन मैं, सही मायने में आत्म-जागृत होकर, सही मायने में आत्म-जागृत होने का दावा करता हूँ। क्योंकि जब तथागत अपने शिष्यों को धम्म का उपदेश देते हैं, तब वे ऐसे ही होते हैं। जब वे अपने शिष्यों को धम्म का उपदेश नहीं देते, तब भी वे ऐसे ही होते हैं। जब वे अपने शिष्यों का मार्गदर्शन करते हैं, तब भी वे ऐसे ही होते हैं। जब वे अपने शिष्यों का मार्गदर्शन नहीं करते, तब भी वे ऐसे ही होते हैं। ऐसा क्यों है?' वे विकृतियाँ जो अपवित्र करती हैं, जो आगे चलकर नए रूप धारण करने की ओर ले जाती हैं, जो विक्षिप्त करती हैं, जो तनाव में परिपक्व होती हैं, जो भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाती हैं: तथागत ने उनका त्याग कर दिया है, उनकी जड़ नष्ट कर दी है, जैसे उखड़ा हुआ ताड़ का वृक्ष, विकास की परिस्थितियों से वंचित, भविष्य में उत्पन्न होने के लिए नियत नहीं। जैसे ताड़ का वृक्ष जिसका ऊपरी भाग काट दिया जाए, पुनः उगने में असमर्थ होता है; उसी प्रकार, वे विकृतियाँ जो अपवित्र करती हैं, जो आगे चलकर नए रूप धारण करने की ओर ले जाती हैं, जो विक्षिप्त करती हैं, जो तनाव में परिपक्व होती हैं, जो भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाती हैं: तथागत ने उनका त्याग कर दिया है, उनकी जड़ नष्ट कर दी है, जैसे उखड़ा हुआ ताड़ का वृक्ष, विकास की परिस्थितियों से वंचित, भविष्य में उत्पन्न होने के लिए नियत नहीं।

अत: मारा को चुप करा दिए जाने और ब्रह्मा के निमंत्रण के कारण, इस प्रवचन का शीर्षक "ब्रह्म का निमंत्रण" रखा गया है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 5.10 मरातज्जनिया सुत्त(50)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय पूज्य महामोग्गलाना भग्गा देश में, सुसुमारा पर्वतों के बीच भेषकला वन में स्थित हिरण उद्यान में रह रहे थे। उस समय पूज्य महामोग्गलाना खुले में टहल रहे थे। तभी मृत्यु नामक राक्षस ने उनके गर्भ में प्रवेश किया। तब पूज्य महामोग्गलाना के मन में यह विचार आया, “मेरा पेट इतना भारी क्यों है, मानो मैं गर्भावस्था के अंतिम चरण में हूँ?” तब पूज्य महामोग्गलाना ध्यान मुद्रा से बाहर निकले और मठ में प्रवेश करके तैयार आसन पर बैठ गए।

बैठे-बैठे उसने अपना ध्यान भीतर की ओर लगाया। जब उसने अंतर्मन किया तो उसने देखा कि दुष्ट आत्मा पेट में, जांघों के रास्ते, प्रवेश कर चुकी है, और उसने उससे कहा: दुष्ट आत्मा निकल जा! तथापि तथापि के शिष्यों को चिंता मत दिलाओ। यह तुम्हारे लिए लंबे समय तक कष्टदायी रहेगा। यहाँ तक कि उसका गुरु भी मुझे इतनी जल्दी नहीं पहचान पाता, तो उसका शिष्य मुझे इतनी जल्दी कैसे पहचान सकता है? दुष्ट आत्मा, मैं जानता हूँ कि तुम सोच रहे हो, "वह मुझे नहीं पहचानता।" तुम ही दुष्ट आत्मा हो। मैं तुम्हें जानते और देखते हुए संबोधित कर रहा हूँ। निकल जा दुष्ट आत्मा! तथापि के शिष्यों को चिंता मत दिलाओ। यह तुम्हारे लिए लंबे समय तक कष्टदायी रहेगा। यहाँ तक कि यदि वह उसका गुरु भी होता, तो वह मुझे इतनी जल्दी नहीं पहचान पाता। उसका शिष्य मुझे इतनी जल्दी कैसे पहचान सकता है? दुष्ट आत्मा, क्या तुम्हारे मन में यह विचार आया, "यहाँ तक कि उसका गुरु भी मुझे इतनी जल्दी नहीं पहचान पाता, तो उसका शिष्य मुझे इतनी जल्दी कैसे पहचान सकता है?" तब मृत्यु, दुष्ट आत्मा, के मन में यह विचार आया, "यह संन्यासी मुझे पहचानता है और देखता है और कहता है: निकल जा! दुष्ट आत्मा।" हे भगवान, चिंता मत करो और न ही उनके शिष्यों को चिंता करने दो। इससे तुम्हें लंबे समय तक कष्ट होगा। फिर दुष्ट मृत्यु मुख से निकली और गले में अटक गई।

आदरणीय महामोग्गल्लाना ने दुष्ट को गले में फंसा हुआ देखा और कहा, "मैं तुम्हें भी वहीं देख रहा हूँ। तुम भी गले में फंसे हो। अतीत में दूसी नाम का एक दुष्ट था। मेरी एक बहन थी जिसका नाम काली था। तुम उसके पुत्र थे। फिर तुम मेरे भतीजे बने।" यह पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान (बुद्ध) ककुसन्द के समय की बात है। पूर्णतः प्रबुद्ध ककुसन्द के दो प्रमुख शिष्य थे, विदुर और संजीव। प्रबुद्ध ककुसन्द के शिष्यों में आदरणीय विदुर के समान अध्यापन कोई नहीं था। वे इतने तीक्ष्ण बुद्धि के थे कि इसी अर्थ में उन्हें विदुर नाम दिया गया। आदरणीय संजीव वन में, किसी वृक्ष की जड़ में या किसी खाली घर में जाकर सहजता से अपने भावों और संवेदनाओं का अंत प्राप्त कर लेते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि आदरणीय संजीव ने अपने भावों और संवेदनाओं का अंत प्राप्त कर लिया। तब ग्वालों, पशुपालकों, किसानों और राहगीरों ने पूज्य संजीव को एक वृक्ष की जड़ में सम्मोहन अवस्था में देखा। तब उन्हें आश्चर्य हुआ कि इस संन्यासी ने बैठे-बैठे ही समय व्यतीत कर लिया है। तब उन्होंने उनके ऊपर घास, लकड़ियाँ, गोबर और मिट्टी इकट्ठा करके उसमें आग लगा दी और चले गए। फिर उस रात के अंत में पूज्य संजीव सम्मोहन अवस्था से उठे। उन्होंने अपने भिक्षापात्र और वस्त्रों को साफ किया, वस्त्र धारण किए और फिर भिक्षा मांगने के लिए उस गाँव में प्रवेश किया। ग्वालों, पशुपालकों, किसानों और राहगीरों ने पूज्य संजीव को भिक्षा मांगने जाते देखा तो वे आश्चर्यचकित होकर बोले, इस संन्यासी ने बैठे-बैठे ही समय व्यतीत कर लिया था और अब वे उठ खड़े हुए हैं, वे फिर से जीवित हो गए हैं। इस प्रकार उनका नाम संजीव पड़ा।

तब दुष्ट दूशी के मन में यह विचार आया: मैं इन गुणी भिक्षुओं के आने-जाने से अनभिज्ञ हूँ, क्या होगा यदि मैं ब्राह्मण गृहस्थों पर अधिकार कर लूँ और उन्हें डाँटूँ और अपशब्द कहूँ? यदि हम भिक्षुओं को जागृत कर दें, तो हमें उनके मन को बदलने का अवसर मिल जाएगा। तब दुष्ट दूशी ने ब्राह्मण गृहस्थों पर अधिकार कर लिया और भिक्षुओं को डाँट कर उन्हें चिंतित किया: ये ब्रह्म के चरणों से उत्पन्न हुए संन्यासी, नीच, दुष्ट हैं, जो कहते हैं कि हम ध्यान लगाते हैं, सिर झुकाए और चेहरा नीचे किए चिंतन करते हैं। चिंतन करते-करते व्यर्थ हो जाते हैं, जैसे उल्लू शाखाओं पर चूहों का इंतजार करते हैं। ये ब्रह्म के चरणों से उत्पन्न हुए संन्यासी, नीच, दुष्ट हैं, जो कहते हैं कि हम ध्यान लगाते हैं, सिर झुकाए और चेहरा नीचे किए चिंतन करते हैं... चिंतन करते-करते व्यर्थ हो जाते हैं, जैसे सियार नदी के किनारे मछली का इंतजार करते हैं। हे! ब्रह्मा के चरणों से उत्पन्न ये संन्यासी, नीच, दुष्ट लोग, सिर झुकाए और चेहरा नीचे किए, ध्यानमग्न होने का दावा करते हैं। चिंतन करो और व्यर्थ करो, जैसे कूड़े के ढेर पर चूहों का इंतजार करती बिल्ली। हे! ब्रह्मा के चरणों से उत्पन्न ये संन्यासी, नीच, दुष्ट लोग, सिर झुकाए और चेहरा नीचे किए, ध्यानमग्न होने का दावा करते हैं। चिंतन करो और व्यर्थ करो, जैसे बोझ से मुक्त गधा कूड़े के ढेर पर खड़ा हो। हे! दुष्ट! उस समय मरने वाले अनेक मनुष्य हानि में, नरक में जन्म लिए।

तब पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: हे भिक्षुओं, ब्राह्मण गृहस्थ दुष्ट राक्षस के वश में हैं। यदि वे इन भिक्षुओं को डांटें और परेशान करें, तो हमें एक अवसर मिलेगा, जब इन भिक्षुओं का मन बदल जाएगा। हे भिक्षुओं, प्रेम और करुणा के विचार में लीन रहो, जो एक दिशा से दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और चारों ओर व्याप्त हो। सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए और सभी के प्रति, क्रोध रहित, विकसित और महान प्रेम और करुणा के विचार में लीन रहो। करुणा के विचार में लीन रहो। आंतरिक आनंद के विचार में लीन रहो। समभाव के विचार में लीन रहो, जो एक दिशा से दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और चारों ओर व्याप्त हो। सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए और सभी के प्रति, क्रोध रहित, विकसित और महान समभाव के विचार में लीन रहो। हे दुष्ट, ज्ञानी काकुसन्द द्वारा सलाह दिए गए भिक्षुओं, जो वन में, वृक्ष की जड़ में, या किसी खाली घर में गए हों, प्रेम और करुणा के विचार के साथ एक ही दिशा में, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और चारों ओर व्याप्त रहें। सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, और सभी के प्रति, क्रोध रहित, विकसित और महान प्रेम और करुणा के विचार के साथ रहें। करुणा के विचार के साथ रहें। आंतरिक आनंद के विचार के साथ रहें। समभाव के विचार के साथ एक ही दिशा में, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और चारों ओर व्याप्त रहें। सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, और सभी के प्रति, क्रोध रहित, विकसित और महान समभाव के विचार के साथ रहें।

तब दुष्ट दूशी के मन में यह विचार आया कि ऐसा करने से पुण्य भिक्षुओं के आने-जाने का पता नहीं चलेगा। क्या होगा यदि मैं इन ब्राह्मण गृहस्थों के मन पर अधिकार कर लूँ और उन्हें इन पुण्य भिक्षुओं का आदर, सम्मान और पूजा करने के लिए प्रेरित कर दूँ? तब हमें एक अवसर मिलेगा, जब इन भिक्षुओं का मन बदल जाएगा। आओ, गृहस्थों, इन पुण्य भिक्षुओं का आदर, सम्मान और पूजा करो। इस प्रकार ब्राह्मण गृहस्थों ने पुण्य भिक्षुओं का आदर, सम्मान और पूजा की। उस समय मरने वाले अधिकांश मनुष्य स्वर्ग में जन्म लेकर वृद्धि के मार्ग पर चले गए।

हे दुष्ट! तब पूर्णतः प्रबुद्ध काकुसन्द भगवान ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "हे भिक्षुओं, ब्राह्मण गृहस्थ दुष्ट के वश में हैं। आओ, इन गुणी भिक्षुओं का आदर, सम्मान और आराधना करो। तब हमें अवसर मिलेगा, जब इन भिक्षुओं का मन बदल जाएगा। इसलिए भिक्षु शरीर से घृणा, आधारों से घृणा और समस्त संसार से वैराग्य की अनुभूति करते हुए निवास करते हैं। समस्त संकल्पों में अनित्यता का दर्शन करते हैं।" तब पूर्णतः प्रबुद्ध काकुसन्द भगवान द्वारा इस प्रकार सलाह दिए गए भिक्षु वन में, वृक्ष की जड़ में या किसी खाली घर में जाकर शरीर से घृणा, आधारों से घृणा, समस्त संसार से वैराग्य की अनुभूति करते हुए और समस्त संकल्पों में अनित्यता का दर्शन करते हुए निवास करते हैं।

तब पूर्णतः ज्ञानी काकुसन्द भगवान, सुबह वस्त्र धारण करके और भिक्षापात्र व वस्त्र लेकर, आदरणीय विदुर को दूसरे संन्यासी के रूप में साथ लेकर भिक्षा मांगने के लिए गाँव में प्रवेश किया। तभी दुष्ट दूशी ने एक बालक के शरीर में प्रवेश करके आदरणीय विदुर के सिर पर पत्थर से प्रहार किया। विदुर का सिर फट गया और खून बहता हुआ वह उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। पूर्णतः ज्ञानी काकुसन्द भगवान ने हाथी जैसी दृष्टि से उसे देखा और सोचा कि इस दुष्ट दूशी को अपनी सीमाएँ जाननी चाहिए, और उसी दृष्टि के साथ वह नरक में जन्म ले लिया। इस नरक के तीन नाम हैं: छह स्पर्शों का क्षेत्र, लोहे की कीलों से खींचा जाने वाला, आंतरिक पीड़ा देने वाला। तब मैंने उस नरक के निवासियों के पास जाकर पूछा, हे सज्जनों, कब से आपके हृदय कीलों से छेदे गए हैं? वे नहीं जानते, और हज़ार वर्षों से इसका अनुभव कर रहे हैं। हे दुष्ट, मैंने उस नरक में एक लाख वर्षों तक कष्ट सहा है। दस हज़ार वर्षों तक मैंने उस नरक में विशेष पीड़ा सहते हुए कष्ट झेला है। हे दुष्ट, उस नरक में मेरा शरीर मनुष्य का और सिर मछली का था।

दूसी ने किस प्रकार का नरक भोगा होगा?
शिष्य विदुर तथा ब्राह्मण ककुसन्द को हानि पहुँचाना।
सौ लोहे की कीलों ने हृदय को भेदकर आंतरिक पीड़ा उत्पन्न की।
दुशी ने ऐसे नरक में कष्ट भोगा, जिससे शिष्य विदुर और
ब्राह्मण ककुसंद
यदि उसे इतना ज्ञान है, तो वह प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य है।
ऐसे भिक्षु को दुख पहुँचाने पर मैं घोर अंधकार और घृणास्पद परिणाम भुगतूँगा।
बीच में एक हवेली है जो विश्व चक्र का प्रतीक है।
यह नीलमणि की तरह चमकता है
वहाँ अप्सराएँ रंग-बिरंगे वस्त्रों से सजी नृत्य करती हैं।
यदि उसे इतना ज्ञान है, तो वह प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य है।
ऐसे भिक्षु को चोट पहुँचाना घोर अप्रियता की ओर ले जाएगा।
वह व्यक्ति जिसे प्रबुद्ध व्यक्ति ने समुदाय में से चुना था,
पैर के अंगूठे से मिगारा की मां के महल को हिला देना।
यदि उसे इतना ज्ञान है, तो वह प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य है।
ऐसे भिक्षु को दुख पहुँचाने पर मैं घोर अंधकार में डूब जाऊँगा।
उसने अपने पैर के अंगूठे से वेजांता महल को हिला दिया।
असाधारण शक्तियों से परिपूर्ण होने के कारण देवताओं में व्याकुलता फैल गई।
यदि उसे इतना ज्ञान है, तो वह प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य है।
ऐसे भिक्षु को दुख पहुँचाने पर मैं घोर अंधकार और घृणा की ओर चला जाऊँगा।
वेजांता महल में, उन्होंने सक्का से पूछताछ की।
हे पूज्यवर, क्या आप व्यथा के नाश से मिलने वाली मुक्ति को जानते हैं?
जब उनसे प्रश्न पूछा गया तो सक्का ने उन्हें समझाया।
उस प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य जो इतना कर सकता था

यदि उसे इतना ज्ञान है, तो वह प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य है।
ऐसे भिक्षु को दुख पहुँचाने पर मैं घोर अंधकार और घृणा की ओर अग्रसर हो जाऊँगा।
उन्होंने सुधम्म सभा में ब्रह्मा से निडर होकर प्रश्न किया।
आदरणीय महोदय, क्या आप अभी भी वही विचार रखते हैं जो आपने पहले रखा था?
हम आपको ब्रह्म जगत के सुखों का आनंद लेते हुए देखते हैं...
तब ब्रह्मा ने चरणबद्ध तरीके से समझाया कि वे इस मत को नहीं मानते।
हालांकि मुझे ब्रह्म के सुखों का आनंद मिलता है
मुझे पता है कि इसे स्थायी और शाश्वत मानना एक गलती है।
यदि उसे इतना ज्ञान है, तो वह प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य है।
ऐसे भिक्षु को दुख पहुँचाकर मैं घोर अंधकार में चला जाऊँगा।
उन्होंने महामेरु के शिखर को छुआ और शून्यता की अवस्था प्राप्त की।
मैंने पुब्बविधेहा के जंगलों और वहाँ सो रहे लोगों को छुआ।
यदि उसे इतना ज्ञान है, तो वह प्रबुद्ध व्यक्ति का शिष्य है।
ऐसे भिक्षु को दुख पहुँचाने पर मैं घोर अंधकार और घृणा की ओर अग्रसर हो जाऊँगा।
आग को यह नहीं लगता कि मैं उस मूर्ख को नहीं जलाऊंगा।
यह मूर्ख और अपराधी दोनों को जला देता है।
हे दुष्ट, तूने उस प्राणदाता को पीड़ा पहुंचाई है जो इस दुनिया से विदा हो चुका है।
अकेले रहने पर व्यक्ति जल जाता है, ठीक वैसे ही जैसे कोई मूर्ख आग को छू लेता है।
हे दुष्ट, तूने पश्चात्ताप करने वाले को पीड़ा पहुँचाकर पाप संचित किया है।
हे दुष्ट, क्या तुम्हें लगता है कि मेरे कर्मों का फल मुझे नहीं भुगतना पड़ेगा?
हे दुष्ट, कर्म करने वाला लंबे समय तक पुण्य संचित करता रहता है।
हे दुष्ट, ज्ञानी व्यक्ति से दूर चले जाओ, भिक्षु को परेशान मत करो।
इस प्रकार, उस दुष्ट ने भेषकला वन में भिक्षु को कोई हानि नहीं पहुँचाई।
वह क्रोधित राक्षस वहां से गायब हो गया।

6. गहापति-वग्ग

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.1 कंदरक सुत्त(51)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध चंपा में गग्गरा तालाब के किनारे भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ निवास करते थे। हाथी सवार के पुत्र पेस्सा और तपस्वी कंदारक भगवान बुद्ध के पास आए। हाथी सवार के पुत्र पेस्सा ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए, तथा तपस्वी कंदारक ने भगवान बुद्ध से मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ खड़े हो गए। उन्होंने भिक्षुओं के विशाल शांत समुदाय को देखा और भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम, भिक्षुओं के इस समुदाय का प्रशिक्षण आश्चर्यजनक और अद्भुत है। क्या अतीत में सच्चे ज्ञान प्राप्त करने वाले भिक्षुओं ने अपने भिक्षु समुदाय को इसी प्रकार प्रशिक्षित किया था? क्या भविष्य में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने वाले भिक्षु अपने भिक्षु समुदाय को इसी प्रकार प्रशिक्षित करेंगे?" भगवान बुद्ध ने कहा, "जी हां, कंदारक, अतीत में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने वाले भिक्षुओं ने भिक्षु समुदाय को इसी प्रकार प्रशिक्षित किया था।" भविष्य में पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करने वाले सिद्ध पुरुष भिक्षु समुदाय को इसी प्रकार प्रशिक्षित करेंगे। कंदारक, इस भिक्षु समुदाय में ऐसे सिद्ध पुरुष हैं जिनकी इच्छाएँ नष्ट हो चुकी हैं, जिन्होंने पवित्र जीवन व्यतीत किया है और जो करना चाहिए वह किया है। इस भिक्षु समुदाय में ऐसे प्रशिक्षक भी हैं जो सद्गुणों के द्वारा चतुर और शांत हो चुके हैं और जिनका मन चार प्रकार की ध्यान विधि में सुस्थापित है। वे चार विधियाँ हैं: शरीर को शरीर में प्रतिबिंबित करके संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करना; भावनाओं को भावनाओं में प्रतिबिंबित करके संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर

करना; मन को मन में मानसिक गुणों को प्रतिबिंबित करके संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करना; और शिक्षा में विचारों को प्रतिबिंबित करके संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करना।

यह सुनकर हाथी सवार के पुत्र पेसा ने कहा, "हे पूज्यवर, यह अद्भुत है कि भगवान बुद्ध ने प्राणियों के शुद्धिकरण, दुःख और विलाप पर विजय पाने, अप्रियता और अप्रसन्नता को दूर करने, ज्ञान प्राप्त करने और मोक्ष प्राप्त करने के लिए ध्यान की चार अवस्थाओं को कितनी बुद्धिमत्ता से दिखाया है। हे पूज्यवर, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले एक गृहस्थ शिष्य के रूप में, मैं समय-समय पर ध्यान स्थापित करने के इन चार तरीकों का अभ्यास करता हूँ। मैं शरीर में शरीर का प्रतिबिंब बनाकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए सचेत और जागरूक रहता हूँ। भावनाओं में भावनाओं का प्रतिबिंब बनाकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए सचेत और जागरूक रहता हूँ। मन में मानसिक अवस्थाओं का प्रतिबिंब बनाकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए सचेत और जागरूक रहता हूँ। शिक्षा का प्रतिबिंब बनाकर संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए सचेत और जागरूक रहता हूँ।" आदरणीय महोदय, यह अद्भुत है कि आप मनुष्यों के चंगुल में रहकर, उनकी कमियों और धूर्तता को सहन करते हुए भी, जानते हैं कि मनुष्यों के लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा है। आदरणीय महोदय, मनुष्यों की पकड़ मजबूत है, जबकि जानवर आराम से रहते हैं। आदरणीय महोदय, मैं चंपा में हाथी को प्रशिक्षित करने के विभिन्न तरीकों को जानता हूँ, जिससे उसकी सभी धूर्तता, कपटपूर्ण और कपटपूर्ण आदतों को सुधारा जा सके। शरीर से हम सेवक, संदेशवाहक, मजदूर या कुछ और की तरह व्यवहार करते हैं, शब्दों से हम कुछ और होते हैं, और मन से हम वह नहीं होते। आदरणीय महोदय, यह अद्भुत है कि आप मनुष्यों के चंगुल में रहकर, उनकी कमियों और धूर्तता को सहन करते हुए भी, जानते हैं कि मनुष्यों के लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा है। आदरणीय महोदय, मनुष्यों की पकड़ मजबूत है, जबकि जानवर आराम से रहते हैं। जी हाँ, पेसा, मनुष्यों की पकड़ मजबूत है, और जानवर आराम से रहते हैं। पेसा, संसार में चार व्यक्ति प्रकट होते हैं। वे चार कौन हैं? पेस्सा, एक व्यक्ति स्वयं को पीड़ा देता है, स्वयं को पीड़ा देने के बंधन में बंधा हुआ। एक व्यक्ति दूसरों को पीड़ा देता है, दूसरों को पीड़ा देने के बंधन में बंधा हुआ। एक व्यक्ति स्वयं को और दूसरों को पीड़ा देता है, सभी को पीड़ा देने के बंधन में बंधा हुआ। एक व्यक्ति न तो स्वयं को पीड़ा देता है, न ही दूसरों को, और न ही पीड़ा देने के बंधन में बंधा हुआ। स्वयं को और दूसरों को पीड़ा न देने से वह यहीं और इसी क्षण शांत, निर्मल और सुखदता में लीन हो जाता है, ब्रह्मा के समान हो जाता है। पेस्सा, इन चारों व्यक्तियों में से कौन आपको अधिक प्रिय है?

आदरणीय महोदय, जो व्यक्ति स्वयं को पीड़ा देता है और उससे बंधा रहता है, वह मुझे प्रसन्न नहीं करता। जो व्यक्ति दूसरों को पीड़ा देता है और उससे बंधा रहता है, वह मुझे प्रसन्न नहीं करता। जो व्यक्ति स्वयं को और दूसरों को पीड़ा देने के बंधन में बंधा रहता है, वह मुझे प्रसन्न नहीं करता। जो व्यक्ति न तो स्वयं को पीड़ा देता है और न ही दूसरों को पीड़ा देने के बंधन में बंधा रहता है, वह यहीं और इसी क्षण शांत, निर्मल और सुख में लीन रहता है, ब्रह्मा के समान हो जाता है। यह व्यक्ति मुझे प्रसन्न करता है। पेसा, ये तीनों व्यक्ति आपको क्यों प्रसन्न नहीं करते? आदरणीय महोदय, जो व्यक्ति स्वयं को पीड़ा देता है और उससे बंधा रहता है, वह अपने उस स्वरूप को पीड़ा देता है जो सुख चाहता है और दुख से घृणा करता है। अतः यह व्यक्ति मुझे प्रसन्न नहीं करता। जो व्यक्ति दूसरों को पीड़ा देता है और उससे बंधा रहता है, वह सुख चाहने वाले और दुख से घृणा करने वाले दूसरों को पीड़ा देता है। अतः यह व्यक्ति मुझे प्रसन्न नहीं करता। जो व्यक्ति स्वयं को और दूसरों को पीड़ा देने के बंधन में बंधा रहता है, वह अपने आप को और उन दूसरों को पीड़ा देता है जो सुख चाहते हैं और दुख से घृणा करते हैं। इसलिए वह मुझे प्रसन्न नहीं करता। जो व्यक्ति स्वयं को या दूसरों को कष्ट नहीं देता, स्वयं को या दूसरों को कष्ट देने के बंधन में नहीं बंधा, वह यहीं और इसी क्षण शांत, निर्मल और सुखमय अवस्था में रहता है, ब्रह्मा के समान हो जाता है। यही वह व्यक्ति है जो मुझे प्रसन्न करता है। आदरणीय महोदय, हमें अब जाना होगा, हमें बहुत काम करना है। पेस्सा, जो तुम्हें उचित लगे वही करो। तब हाथी सवार का पुत्र पेस्सा भगवान की वाणी से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठा, भगवान को प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा की और चला गया।

हाथी सवार के पुत्र के चले जाने के तुरंत बाद, भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, यदि हाथी सवार का पुत्र मेरे द्वारा इन चारों व्यक्तियों के बारे में बताने तक कुछ और समय प्रतीक्षा करता, तो वह बहुत ज्ञान प्राप्त कर लेता। हे भगवान बुद्ध, यही समय है इन चारों व्यक्तियों के बारे में बताने का।" भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध से यह सुनकर इसे ध्यान में रखा। "भिक्षुओं, ध्यान से सुनो, मैं बताता हूँ..."

भिक्षुओं, जो स्वयं को कष्ट देते हैं, क्या वे स्वयं को कष्ट देने में ही लिप्त हैं? एक भिक्षु बिना वस्त्र के रहता है, बिना शिष्टाचार के हाथ चाटता है। वह किसी का निमंत्रण स्वीकार नहीं करता और न ही किसी को निमंत्रण देता है। वह लाया गया या विशेष रूप से तैयार किया गया भोजन स्वीकार नहीं करता। वह किसी निमंत्रण का आनंद नहीं लेता। वह किसी बर्तन, खाना पकाने के पात्र के किनारे से या जब आसपास बकरी हो, तब भोजन स्वीकार नहीं करता। वह किसी छड़ी या झाड़ू के पार से भोजन स्वीकार नहीं करता। वह दो व्यक्तियों के साथ भोजन करने, गर्भवती स्त्री, स्तनपान कराने वाली स्त्री, पुरुष के साथ गई स्त्री, अपवित्र स्त्री या जहाँ से वह भोजन ग्रहण करती है, वहाँ

से भोजन स्वीकार नहीं करता। वह उस स्थान से भोजन स्वीकार नहीं करता जहाँ मक्खियाँ बहुतायत में हों। वह मछली, मांस, मादक पेय और मादक पेय स्वीकार नहीं करता। वह एक घर में एक निवाले पर, दो घरों में दो निवाले पर या सात घरों में सात निवाले पर भोजन ग्रहण करता है। या वह एक स्त्री, दो स्त्रियों या सात स्त्रियों द्वारा दिए गए भोजन पर भोजन ग्रहण करता है। या फिर एक, दो या सात पुरुषों द्वारा लाए गए भोजन पर निर्भर रहता है। आधे महीने तक इसी प्रकार भोजन ग्रहण करता है। सब्जियाँ, बाजरा, कच्चा चावल, दादुल्ला चावल, जलीय पौधे, भूसी हुई चावल की चूर्ण, चावल का झाग, तिलहन का आटा, घास, गोबर, वन की जड़ें और फल खाता है, या फिर रास्ते में गिरने वाले भोजन पर निर्भर रहता है। भांग के वस्त्र, मोटे वस्त्र, फटे-पुराने वस्त्र, छाल के वस्त्र, चमड़े के वस्त्र, चमड़े की पट्टियाँ, घास के वस्त्र, छाल के वस्त्र, तख्तों और उल्लू के बालों, पूंछों और पंखों से बने वस्त्र पहनता है। सिर और दाढ़ी के बाल नोचने का बंध जाता है। बैठने का त्याग करके खड़े रहने का बंध जाता है। काँटों के बिस्तर पर बैठने या लेटने का बंध जाता है। सूर्यास्त से पहले तीन बार तक जल में उतरने का बंध जाता है। इस प्रकार वह शरीर को अनेक प्रकार की यातनाएँ देता है। भिक्षुओं, यह व्यक्ति इसी से बंध कर स्वयं को यातना देता है।

भिक्षुओं, वह कौन सा व्यक्ति है जो दूसरों को सताने का काम करता है? भिक्षुओं, यहाँ एक व्यक्ति सूअर, बकरी, पक्षी का वध करने वाला, जंगली जानवरों का शिकारी, मछुआरा, डाकू, लुटेरा, जेल चलाने वाला या किसी अन्य दुष्ट गतिविधि में लिप्त है। यह व्यक्ति दूसरों को सताने का काम करता है।

भिक्षु, जो स्वयं को और दूसरों को कष्ट देते हैं, क्या वे इससे बंधे हुए हैं? एक राजा या योद्धाओं के प्रधान राजा, ब्राह्मण या गृहस्थ कुल के राजा एक नया सभा भवन बनवाते हैं। सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, खुरदरा वस्त्र पहनकर, वे अपने शरीर पर घी और तेल मलते हैं। अपनी पीठ पर हिरण का सींग चुभोकर, वे रानी और ब्राह्मण सलाहकार के साथ सभा भवन में प्रवेश करते हैं। परिसर के भीतर, वे कुछ हरियाली पर लेट जाते हैं। एक युवा गाय से एक थन से दूध निकालकर राजा को पिलाया जाता है, दूसरे से रानी को, तीसरे से सलाहकार को, और चौथे से यज्ञ की रोटी पकाई जाती है। बचे हुए दूध से बछड़े को खिलाया जाता है। फिर वे आदेश देते हैं कि यज्ञ के लिए इतने बैल, इतनी गायें, इतनी बकरियां और इतनी भेड़ें काटें। वे आदेश देते हैं कि यज्ञ के खंभे के लिए इतने पेड़ काटें और यज्ञ के लिए इतनी जगह साफ करें। दासों, सेवकों और संदेशवाहकों को छड़ी से डराकर आवश्यक कार्य करवाया जाता है। भिक्षुओं, यह व्यक्ति स्वयं को और अपने अधीन अन्य लोगों को भी पीड़ा पहुँचाता है।

भिक्षुओं, जो स्वयं को और दूसरों को कष्ट नहीं देते, बंधनमुक्त हैं? भिक्षुओं, तथागत संसार में जन्म लेते हैं, पूर्ण, उचित रूप से प्रबुद्ध, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, सुप्रसिद्ध, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले लोगों को वश में करने में अद्वितीय, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य। वे इस देवताओं और मनुष्यों के संसार में, इसके मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों, ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों के समुदाय में, उस शिक्षा का प्रचार करते हैं, जो आरंभ, मध्य और अंत में उत्तम है, यहाँ तक कि अक्षरों में भी अर्थपूर्ण है, जो पूर्ण और पवित्र जीवन की घोषणा करती है। एक गृहस्थ, या गृहस्थ का पुत्र, या किसी कुल में जन्मा व्यक्ति इस शिक्षा को सुनता है और तथागत में आस्था प्राप्त करता है, वह चिंतन करता है। गृहस्थ जीवन कठिनाइयों से भरा है। यह दोषों का मार्ग है। संन्यासी बनना खुले स्थान के समान है। गृहस्थ जीवन में रहते हुए, बिना दोष के पूर्ण और पवित्र जीवन जीना आसान नहीं है। सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र पहनकर, मैं संन्यासी क्यों न बन जाऊं? किसी उपयुक्त समय पर वह थोड़ा धन या बहुत धन त्याग देता है, चाहे मित्रों का एक छोटा समूह पीछे छोड़ दे या मित्रों का एक बड़ा समूह, सिर और दाढ़ी मुंडवाकर और पीले वस्त्र पहनकर संन्यासी बन जाता है।

आगे बढ़कर वह भिक्षु के जीवन में प्रशिक्षक बन जाता है। वह जीवित प्राणियों को पीड़ा पहुँचाना त्याग देता है, लाठी-हथौड़े फेंक देता है और लज्जापूर्वक सभी प्राणियों के प्रति करुणा जगाते हुए निवास करता है। जो नहीं दिया गया है उसे लेने से परहेज करते हुए, जो दिया गया है उसकी इच्छा रखता है, अपने मन को शुद्ध करता है और चोरी रहित जीवन व्यतीत करता है। निम्न कोटि के यौन संबंध से परहेज करते हुए पवित्र जीवन व्यतीत करता है। झूठ बोलने से परहेज करते हुए विश्वसनीय और भरोसेमंद बनता है और संसार से विवाद रहित जीवन व्यतीत करता है। निंदा का त्याग करता है। यहाँ सुनकर कहीं और नहीं कहता, ताकि दूसरों को विभाजित न करे। कहीं और सुनकर यहाँ नहीं कहता, इस प्रकार विभाजितों को एकजुट करता है, एकता को बढ़ावा देता है। एकता प्रेमी होकर एकता के वचन बोलता है। कठोर वाणी का त्याग करता है और ऐसे मधुर वचन बोलता है जो सभी के हृदय को सीधे छूते हैं। व्यर्थ की बातों से परहेज करते हुए उचित, सत्य और अर्थपूर्ण वचन बोलता है, जो शिक्षा और अनुशासन के अनुरूप होते हैं और अनमोल होते हैं।

बीज और वनस्पति समूहों को नष्ट करने से परहेज़ करता है। दिन में एक बार भोजन करता है, रात में और असमय भोजन से परहेज़ करता है। नृत्य, गायन, संगीत, सजावट, फूल और सुगंध, मलहम और आभूषणों से परहेज़ करता है। ऊँचे और आलीशान पलंगों से परहेज़ करता है। सोना और चाँदी, कच्चा चावल और कच्चा मांस ग्रहण करने से परहेज़ करता है। स्त्रियों और लड़कियों, दासों, पुरुषों या स्त्रियों को ग्रहण करने से परहेज़ करता है। बकरियों और गायों, मुर्गियों और सूअरों, हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों को ग्रहण करने से परहेज़ करता है।

वह खेतों और धन को स्वीकार करने और संदेशवाहक का काम करने से परहेज करता है। वह खरीद-फरोख्त और अनुचित तरीके से तौलने-मापने से परहेज करता है। वह काटने-पीटने, नष्ट करने, लूटपाट करने और भोजन प्राप्त करने के गलत तरीकों से परहेज करता है।

संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर और पेट भरकर, वह अपने सभी सामानों के साथ जहाँ भी जाता है, जाता है। जैसे छोटे-बड़े पक्षी अपने पंखों के भार से उड़ जाते हैं, वैसे ही संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर और पेट भरकर, वह अपने सभी सामानों के साथ जहाँ भी जाता है, जाता है। इन गुणों से परिपूर्ण होकर, वह आंतरिक रूप से निष्कलंकता के सुख का अनुभव करता है।

किसी रूप को आँख से देखने पर, वह चिन्ह या तत्वों को ग्रहण नहीं करता। आँख की मानसिक शक्ति को अनियंत्रित रखते हुए, उसमें लोभ और अप्रसन्नता के दोष आ सकते हैं। वह आँख की मानसिक शक्ति की रक्षा करते हुए रहता है। कान से ध्वनि सुनने, नाक से गंध का अनुभव करने, चखने, शरीर से स्पर्श का अनुभव करने, मन से विचार का अनुभव करने पर, वह चिन्ह या तत्वों को ग्रहण नहीं करता। मन की मानसिक शक्ति को अनियंत्रित रखते हुए, उसमें लोभ और अप्रसन्नता के दोष आ सकते हैं। वह मन की मानसिक शक्ति की रक्षा करते हुए रहता है। श्रेष्ठ जनों के मानसिक शक्तियों पर नियंत्रण प्राप्त होने के कारण, वह मानसिक शक्तियों के अछूते आनंद का अनुभव करता है। आगे बढ़ते या लौटते समय वह सचेत रहता है। देखते या देखते समय वह सचेत रहता है। झुकते या खिंचते समय वह सचेत रहता है। कुंड और तीन वस्त्र धारण करते समय वह सचेत रहता है। चखते, पीते, खाते और आनंद लेते समय वह सचेत रहता है। चलते, खड़े होते, बैठते, लेटते समय, जागते हुए और मौन रहते हुए भी वह सचेत रहता है।

सद्‌गुणों से परिपूर्ण, मानसिक क्षमताओं पर नियंत्रण रखने वाले और श्रेष्ठ आत्माओं के प्रति सही जागरूकता रखने वाले वे किसी एकांत स्थान में निवास करते हैं, जैसे कि जंगल, वृक्ष की जड़, पर्वत की गुफा, श्मशान भूमि, घना जंगल, खुला स्थान या भूसे का ढेर। भोजन करने और भिक्षा मांगने के बाद वे पैर मोड़कर बैठते हैं, शरीर सीधा रखते हैं और ध्यान को सामने केंद्रित करते हैं।

संसार के प्रति लोभ को दूर करते हुए, वे मन को मुक्त रखते हुए निवास करते हैं। क्रोध को दूर करते हुए, वे क्रोध रहित मन से, सभी प्राणियों के प्रति करुणामयी रहते हैं। आलस्य और सुस्ती को दूर करते हुए, वे प्रकाश की अनुभूति से अवगत रहते हैं, और आलस्य और सुस्ती को दूर करने के प्रति सचेत रहते हैं। बेचैनी और चिंता को दूर करते हुए, वे आंतरिक रूप से शांत मन से निवास करते हैं, और मन से बेचैनी और चिंता को दूर करते हैं। वे उचित और अनुचित कार्यों के बारे में संदेह दूर करते हुए निवास करते हैं।

भिक्षु मन की पाँच बाधाओं को दूर करके और बुद्धिमानी से छोटी-छोटी अशुद्धियों को कमजोर करके, मन को कामुक विचारों और दोषों से एकांत में रखता है। एकांत से उत्पन्न विचारों, विचार प्रक्रियाओं, आनंद और प्रसन्नता से युक्त होकर वह प्रथम ध्यान में लीन रहता है।

फिर भिक्षु विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करते हुए, मन को आंतरिक रूप से शांत करते हुए, एक ही बिंदु पर एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख के साथ दूसरे ध्यान में लीन हो जाता है।

फिर, जो भिक्षु आनंद और वैराग्य के प्रति समभाव रखते हुए, शरीर सहित सुख का अनुभव करते हुए सजग रहता है, वह तीसरे ध्यान में रहता है। श्रेष्ठ भिक्षु कहते हैं कि यही समभाव के प्रति सचेत रहते हुए सुख में रहना है।

फिर, भिक्षु सुख और दुख को दूर करते हुए और पहले सुख और दुख को दूर कर चुके, समभाव से शुद्ध हुई चेतना के साथ चौथे ध्यान में निवास करते हैं।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह अपने मन को पूर्व जन्मों के ज्ञान की ओर लगाता है। वह अनेक जन्मों का स्मरण करता है - एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, असंख्य आगे के जन्म चक्र, असंख्य पीछे के जन्म चक्र, असंख्य आगे और पीछे के जन्म चक्र। वहाँ मेरा जन्म ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसे स्वभाव, ऐसे आधारों से हुआ, मैंने ऐसे सुख-दुख का अनुभव किया और मेरी आयु इतनी थी। वहाँ से विलीन होकर मैं वहाँ ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसे स्वभाव, ऐसे आधारों से हुआ, मैंने ऐसे सुख-दुख का अनुभव किया और मेरी आयु इतनी थी। वहाँ से विलीन होकर मैं यहाँ जन्म लेता हूँ। इस प्रकार अनेक जन्मों का समस्त गुणों और समस्त विवरणों के साथ स्मरण किया जाता है।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह प्राणियों के प्रकट होने और लुप्त होने के ज्ञान की ओर मन को निर्देशित करता है। मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से वह प्राणियों को प्रकट होते और लुप्त होते देखता है - उदात्त और उदात्त, सुंदर और कुरूप, कर्मों के फल के अनुसार अच्छे और बुरे रूपों में उत्पन्न होते हुए। ये अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा करते हैं, कर्मों के प्रति गलत दृष्टिकोण रखते हैं, मृत्यु के बाद हानि में, कमी में, नरक में जन्म लेते हैं। वहीं, वे अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से सुव्यवस्थित होते हैं, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते, कर्मों के प्रति सही दृष्टिकोण रखते हैं, मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेते हैं। इस प्रकार, मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से प्राणी प्रकट होते और लुप्त होते देखे जाते हैं।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह मन को इच्छाओं के नाश की ओर निर्देशित करता है। वह जानता है कि यह अप्रिय है, यह इसका उद्भव है, यह इसका अंत है, और यह अप्रियता के अंत का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। वह जानता है कि ये इच्छाएँ हैं, यह इनका उद्भव है, यह इनका अंत है, और यह इनके अंत का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। उसका मन जो इस प्रकार जानता और देखता है, वह इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं, 'होने' की इच्छाओं और अज्ञानी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर, वह जानता है, मैं मुक्त हो गया हूँ, जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र जीवन जिया जा रहा है, जो करना चाहिए वह किया जा चुका है। अब और कुछ चाहने को नहीं है।

भिक्षुओं, यह व्यक्ति स्वयं को या दूसरों को कष्ट न पहुँचाकर बंधनमुक्त है, यहीं और इसी क्षण शांत, निर्मल, शीतल है और ब्रह्मा के समान सुखमय निवास करता है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.2अत्थकनगर सुत्त(52)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय पूज्य आनंद वैशाली के बेलुवा नामक छोटे से गाँव में निवास कर रहे थे। संयोगवश, गृहस्थ दशमा, जो एक अच्छे नागरिक थे, किसी काम से पाटलिपुत्त आए थे। तब गृहस्थ दशमा कुक्कुताराम में एक भिक्षु के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। गृहस्थ दशमा ने पूछा, 'पूज्यवर, इस समय पूज्य आनंद कहाँ निवास कर रहे हैं?' 'गृहस्थ, पूज्य आनंद वैशाली के बेलुवा नामक छोटे से गाँव में निवास कर रहे हैं।' तब गृहस्थ दशमा ने पाटलिपुत्त में अपना काम समाप्त करके बेलुवा स्थित छोटे से गाँव में पूज्य आनंद के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, 'पूज्य आनंद इस समय कहाँ निवास कर रहे हैं?'

आदरणीय गुरुदेव, आनंद, क्या भगवान बुद्ध द्वारा बताई गई कोई ऐसी अवस्था है जो पूर्ण, सही मायने में प्रबुद्ध, ज्ञानवान और प्रत्यक्षदर्शी है? क्या ऐसी अवस्था में रहकर, कर्मठ भिक्षु अपने अविभाजित मन को मुक्त कर, अपनी अविभाजित इच्छाओं को नष्ट कर, और उस महान सुख को प्राप्त कर सकता है जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है? आदरणीय गुरुदेव द्वारा बताई गई वह अवस्था क्या है?

गृहस्थ भिक्षु, अपने मन को कामुक विचारों और पापपूर्ण विचारों से अलग रखते हुए, एकांत से उत्पन्न विचारों, विवेचनात्मक विचारों और आनंद एवं सुख में लीन होकर प्रथम ध्यान में रहता है। तब वह चिंतन करता है: यह प्रथम ध्यान मानसिक रूप से विकसित, मिश्रित वस्तु है। जो कुछ भी मानसिक रूप से विकसित और मिश्रित होता है, वह क्षणभंगुर होता है। यह भलीभांति जानकर कि क्षणभंगुर वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं, वह उसमें स्थिर हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है। यदि लोभ और स्वार्थ के कारण उसकी इच्छाएँ नष्ट न हों, तो उस पवित्रता के लिए वह पाँच निम्न बंधनों को तोड़ देता है और स्वतः ही इसी जन्म में विलीन हो जाता है और आगे नहीं बढ़ता (*1)। यही वह प्राप्ति है जिसका वर्णन पूर्ण, सत्यनिष्ठ, ज्ञात और प्रत्यक्ष भगवान ने किया है। इसमें रहकर, इच्छाओं के निवारण में तत्पर भिक्षु अपने अविभाजित मन की मुक्ति प्राप्त करता है और अपनी अविभाजित इच्छाओं का नाश करके बंधन के श्रेष्ठ अंत को प्राप्त करता है।

हे गृहस्थ, भिक्षु विचारों और व्यंजक विचारों पर विजय प्राप्त करके, मन को आंतरिक रूप से शांत करके और एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता के साथ द्वितीय ध्यान में लीन हो जाता है। वह चिंतन करता है कि यह द्वितीय ध्यान भी कुछ मिश्रित और मानसिक रूप से

विकसित है। सभी मिश्रित और मानसिक रूप से विकसित वस्तुएँ क्षणभंगुर हैं। यह भलीभांति जानकर कि क्षणभंगुर वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं, वह उसमें स्थिर हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है। यदि उसकी इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं, तो लोभ और उस पवित्रता के प्रति व्यथ के कारण वह पाँच निम्न बंधनों को तोड़ देता है और स्वतः ही इसी जन्म में विलीन हो जाता है और आगे नहीं बढ़ता। यह वह सिद्धि है जिसका वर्णन भगवान बुद्ध ने किया है, जो पूर्ण, सत्यतः प्रबुद्ध, ज्ञानवान और साक्षी हैं, जिसमें विवशता का अभ्यास करने वाला भिक्षु अपने अविवश मन को मुक्त करता है, अपनी अविवश इच्छाओं का नाश करता है और बंधन के श्रेष्ठ अंत को प्राप्त करता है।

हे गृहस्थ, समभाव और वैराग्य से युक्त भिक्षु, सुख में लीन होकर, शरीर के सुख का भी ध्यान रखते हुए (*2), तृतीय ध्यान में लीन रहता है। इस पर श्रेष्ठ जन कहते हैं कि समभाव से सुख में लीन रहना। वह चिंतन करता है कि यह तृतीय ध्यान भी कुछ मिश्रित, मानसिक रूप से विकसित है। जो कुछ भी मिश्रित और मानसिक रूप से विकसित है, वह क्षणभंगुर है। क्षणभंगुर वस्तुओं के नाश होने का पूर्ण ज्ञान होने पर, वह उसमें स्थिर हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है। यदि उसकी इच्छाएँ नाश न हों, तो लोभ और उस पवित्रता के प्रति सजगता के कारण, पाँच निम्न बंधनों को नष्ट करके, वह स्वतः ही इसी जन्म में पुनर्जन्म लेकर समाप्त हो जाता है और आगे नहीं बढ़ता। यही वह प्राप्ति है जिसका वर्णन पूर्ण, सत्यतः प्रबुद्ध, ज्ञात और प्रत्यक्ष भगवान ने किया है। उसमें लीन होकर, निर्वाह के लिए तत्पर भिक्षु अपने अविभाजित मन को मुक्त करता है, अपनी अविभाजित इच्छाओं का नाश करता है, और बंधन के श्रेष्ठ अंत को प्राप्त करता है।

हे गृहस्थ, वह भिक्षु जो सुख और दुःख को दूर करता है, और जिसने पहले सुख और दुःख को दूर कर लिया है, वह सुख और दुःख से रहित होकर, समभाव से शुद्ध होकर, चौथे ध्यान में रहता है। तब वह चिंतन करता है कि यह चौथा ध्यान भी कुछ मिश्रित, मानसिक रूप से विकसित है। जो कुछ भी मिश्रित और मानसिक रूप से विकसित है, वह क्षणभंगुर है। यह भलीभांति जानकर कि क्षणभंगुर वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं, वह उसमें स्थिर हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है। यदि उसकी इच्छाएँ नष्ट नहीं होतीं, तो उस पवित्रता के लोभ और स्वार्थ के कारण जो पाँच निम्न बंधनों को नष्ट करती है, वह स्वतः ही इसी जन्म में पुनर्जन्म लेकर समाप्त हो जाता है और आगे नहीं बढ़ता। यही वह प्राप्ति है जिसका वर्णन भगवान बुद्ध ने किया है, जो पूर्ण, सत्यतः प्रबुद्ध, ज्ञात और प्रत्यक्ष हैं। उसमें रहकर, जो भिक्षु बंधनों को दूर करने में तत्पर है, वह अपने अविभाजित मन को मुक्त करता है, अपनी अविभाजित इच्छाओं का नाश करता है, और उस महान लक्ष्य को प्राप्त करता है जो अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

फिर, गृहस्थ भिक्षु प्रेम और करुणा के विचार में लीन रहता है, जो एक ही दिशा में व्याप्त होता है। इसी प्रकार, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और आर-पार, सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, सभी के प्रति, यह विचार और भी गहरा होता जाता है। तब वह चिंतन करता है कि प्रेम और करुणा का विचार मानसिक रूप से विकसित एक संवर्धित वस्तु है। जो कुछ भी संवर्धित और मानसिक रूप से विकसित होता है, वह क्षणभंगुर होता है। क्षणभंगुर वस्तुओं के नाश होने का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, वह उसमें स्थिर हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है। यदि उसकी इच्छाएँ नाश न हों, तो उस पवित्रता के लोभ और स्वार्थ के कारण, जो पाँच निम्न बंधनों को नष्ट करती है, वह स्वतः ही उसी जन्म में पुनर्जन्म लेकर समाप्त हो जाता है और आगे नहीं बढ़ता। यही वह सिद्धि है जिसका वर्णन भगवान बुद्ध ने किया है, जो पूर्ण, सत्यनिष्ठ, ज्ञात और प्रत्यक्ष हैं। इस अवस्था में रहकर, जो भिक्षु इन बंधनों को दूर करने के लिए तत्पर रहता है, वह अपने अविभाजित मन को मुक्त करता है, अपनी अविभाजित इच्छाओं को नष्ट करता है और बंधन के उस महान लक्ष्य को प्राप्त करता है जिसे अभी तक प्राप्त नहीं किया जा सका है।

फिर, गृहस्थ भिक्षु करुणा के विचार में, आंतरिक आनंद के विचार में लीन रहता है। वह समभाव के विचार में लीन रहता है, जो एक दिशा में, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और आर-पार, सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, सभी के प्रति व्याप्त रहता है। समभाव का यह विचार महान हो उठता है। तब वह चिंतन करता है कि यह समभाव का विचार भी कुछ मिश्रित है, कुछ मानसिक रूप से विकसित है। जो कुछ भी मिश्रित और मानसिक रूप से विकसित होता है, वह क्षणभंगुर है। क्षणभंगुर वस्तुओं के नाश होने का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, वह उसमें स्थिर हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है। यदि उसकी इच्छाएँ नाश न हों, तो लोभ और उस पवित्रता के प्रति स्वार्थ के कारण वह पाँच निम्न बंधनों को तोड़ देता है और उसी जन्म में स्वतः ही विलीन हो जाता है और आगे नहीं बढ़ता। यही वह सिद्धि है जिसका वर्णन भगवान बुद्ध ने किया है, जो पूर्ण, सत्यनिष्ठ, ज्ञानवान और प्रत्यक्षदर्शी हैं। वह अवस्था जिसमें भिक्षु अपने अंतर्विदारित मन को मुक्त करने के लिए लगन से रहता है, अपने अविभाजित मन को मुक्त करता है, अपनी अविभाजित इच्छाओं को नष्ट करता है और बंधन के महान उद्देश्य को प्राप्त करता है।

हे गृहस्थ, भिक्षु पदार्थ और विमुखता की सभी धारणाओं पर विजय प्राप्त करके, विभिन्न धारणाओं पर ध्यान न देकर, असीम आकाश में निवास करता है। यह आकाश भी मानसिक रूप से विकसित, मिश्रित पदार्थ है। जो कुछ भी मिश्रित और मानसिक रूप से विकसित है, वह क्षणभंगुर है। क्षणभंगुर वस्तुओं के नाश होने का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, वह उसमें स्थिर हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है।

यदि उसकी इच्छाएँ नष्ट न हों, तो लोभ और उनके प्रति आसक्ति के कारण वह पाँच निम्न बंधनों को तोड़ देता है और उसी जन्म में स्वतः ही विलीन हो जाता है, फिर पुनर्जन्म नहीं लेता। यही वह सिद्धि है जिसका वर्णन भगवान बुद्ध ने किया है, जो पूर्ण, सत्यनिष्ठ, ज्ञानवान और प्रत्यक्षदर्शी हैं। उसमें निवास करते हुए, निर्वाह के लिए तत्पर भिक्षु अपने अविभाजित मन को मुक्त करता है, अपनी अविभाजित इच्छाओं का नाश करता है और बंधन के महान अंत को प्राप्त करता है।

हे गृहस्थ, वह भिक्षु जो स्थान के सभी बोधों से परे होकर असीम चेतना के साथ चेतना के क्षेत्र में निवास करता है। चेतना का यह क्षेत्र भी मानसिक रूप से विकसित, मिश्रित है। जो कुछ भी मिश्रित और मानसिक रूप से विकसित है, वह क्षणभंगुर है। क्षणभंगुर वस्तुओं के नाश होने का पूर्ण ज्ञान होने पर वह उसमें स्थिर हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है। यदि उसकी इच्छाएँ नाश न हों, तो लोभ और उस पवित्रता के प्रति आसक्ति के कारण वह पाँच निम्न बंधनों को तोड़कर स्वतः ही उसी जन्म में पुनर्जन्म लेकर समाप्त हो जाता है। यही वह सिद्धि है जिसका वर्णन भगवान बुद्ध ने किया है, जो पूर्ण, सत्यतः प्रबुद्ध और ज्ञाता एवं साक्षी हैं। इसमें निवास करने वाला भिक्षु, जो इच्छाओं के निवारण के लिए तत्पर है, अपने अविभाजित मन की मुक्ति प्राप्त करता है, अपनी अविभाजित इच्छाओं का नाश करता है और बंधन के महान अंत को प्राप्त करता है।

हे गृहस्थ, वह भिक्षु जो चेतना की सभी धारणाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है, जब कुछ भी नहीं होता, तो वह शून्यता के क्षेत्र में निवास करता है। यह शून्यता का क्षेत्र भी कुछ मिश्रित, मानसिक रूप से विकसित है। जो कुछ भी मिश्रित और मानसिक रूप से विकसित होता है, वह क्षणभंगुर होता है। क्षणभंगुर वस्तुओं के नाश होने का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके, वह उसमें स्थापित हो जाता है और इच्छाओं का नाश करता है। यदि उसकी इच्छाएँ नाश न हों, तो लोभ और उस पवित्रता के प्रति व्यथ के कारण, वह पाँच निम्न बंधनों को तोड़कर स्वतः ही उत्पन्न हो जाता है, और उसी जन्म में समाप्त हो जाता है। यही वह सिद्धि है जिसका वर्णन भगवान बुद्ध ने किया है, जो पूर्ण, सत्यनिष्ठ, ज्ञात और प्रत्यक्ष हैं। उसमें निवास करते हुए, इच्छाओं के निवारण में तत्पर भिक्षु अपने अविभाजित मन की मुक्ति प्राप्त करता है, अपनी अविभाजित इच्छाओं का नाश करता है, और बंधन के महान अंत को प्राप्त करता है।

यह सुनकर गृहस्थ दशमा ने कहा, "हे पूज्यवर, यह ऐसा है जैसे किसी व्यक्ति को एक ही खजाने की खोज में ग्यारह खजाने मिल गए हों। उसी प्रकार हमें अमरत्व के एक द्वार के बारे में पता चला था और यहाँ हमें अमरत्व के ग्यारह द्वार बताए जा रहे हैं। यह ऐसा है जैसे किसी व्यक्ति के घर में ग्यारह द्वार होते हैं और आग लगने पर वह उनमें से किसी एक द्वार से निकल सकता है। उसी प्रकार मैं भी अमरत्व के इन ग्यारह द्वारों में से किसी एक से सुरक्षित हो सकता हूँ। अन्य संप्रदायों के तपस्वी अपने गुरु के खजानों की खोज करते हैं। हमें पूज्य आनंद को भेंट क्यों नहीं करनी चाहिए?" तब गृहस्थ दशमा ने पातालपुत्त और वैशाली के भिक्षुओं को एकत्रित करके अपने हाथों से उन्हें पौष्टिक भोजन और पेय पदार्थ भेंट किए, प्रत्येक भिक्षु को वस्त्रों का एक जोड़ा और पूज्य आनंद को तीन वस्त्रों का एक जोड़ा भेंट किया, और पूज्य आनंद के लिए पाँच सौ मठों का निर्माण करवाया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.3 सेखा सुत्त(53)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान कपिलवस्तु के बरगद उद्यान में शाक्यों के बीच ठहरे हुए थे। उस समय कपिलवस्तु के शाक्यों ने एक नया स्वागत कक्ष बनवाया था, जिसमें अभी तक कोई ध्यानमग्न, पुजारी या कोई भी मनुष्य निवास नहीं कर पाया था। इसलिए कपिलवस्तु के शाक्य भगवान के पास गए और वहाँ पहुँचकर प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान से कहा, "हे भगवान, कपिलवस्तु के शाक्यों ने एक नया स्वागत कक्ष बनवाया है, जिसमें अभी तक कोई ध्यानमग्न, पुजारी या कोई भी मनुष्य निवास नहीं कर पाया है। भगवान भगवान ही सर्वप्रथम इसका उपयोग करें। जब भगवान इसका उपयोग कर लेंगे, तब कपिलवस्तु के शाक्य इसका उपयोग करेंगे। यह उनके दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए होगा।"

भगवान बुद्ध मौन धारण कर मान गए। उनकी स्वीकृति को भांपते हुए कपिलवस्तु शाक्य अपने स्थानों से उठे, उन्हें प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और फिर नए स्वागत कक्ष में चले गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूरे कक्ष में मखमली चटाई बिछाई, आसन लगाए, जलपात्र रखा और तेल का दीपक जलाया। फिर वे भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। वहाँ खड़े होकर उन्होंने उनसे कहा, "हे भगवान, स्वागत कक्ष में मखमली चटाई बिछाई जा चुकी है, आसन लगाए जा चुके हैं, जलपात्र रखा जा चुका है और तेल का दीपक जलाया जा चुका है। अब समय आ गया है कि भगवान बुद्ध अपनी इच्छानुसार कार्य करें।"

अतः भगवान बुद्ध ने अपना वस्त्र धारण किया, अपना कुंड और बाहरी वस्त्र उठाया और भिक्षुओं के एक समुदाय के साथ स्वागत कक्ष में गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने पैर धोए, कक्ष में प्रवेश किया और मध्य स्तंभ की ओर पीठ करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ गए। भिक्षुओं के समुदाय ने भी अपने पैर धोए, कक्ष में प्रवेश किया और पश्चिम की दीवार की ओर पीठ करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके भगवान बुद्ध के चारों ओर बैठ गए। कपिलवस्तु शाक्य भिक्षुओं ने भी अपने पैर धोए, कक्ष में प्रवेश किया और पूर्व की दीवार की ओर पीठ करके पश्चिम दिशा की ओर मुख करके भगवान बुद्ध के चारों ओर बैठ गए। तब भगवान बुद्ध ने लगभग पूरी रात कपिलवस्तु शाक्य भिक्षुओं को धर्मोपदेश देकर, प्रेरित करके और प्रोत्साहित करके उन्हें शिक्षा प्रदान की और फिर आदरणीय आनंद से कहा, "आनंद, कपिलवस्तु शाक्य भिक्षुओं को उस व्यक्ति के बारे में बताओ जो साधना में लगे व्यक्ति के लिए उचित अभ्यास करता है। मेरी पीठ में दर्द है। मैं आराम करूँगा।"

आदरणीय आनंद ने उत्तर दिया, "जैसा आप कहें, भगवान।"

फिर भगवान बुद्ध ने अपने बाहरी वस्त्र को चार भागों में मोड़कर व्यवस्थित किया और दाहिनी ओर सिंह की सोई हुई मुद्रा में लेट गए, एक पैर दूसरे के ऊपर रखकर, सचेत और सतर्क रहते हुए, मन ही मन उठने का निश्चय कर लिया।

तब पूज्य आनंद ने महानामा शाक्य3 को संबोधित करते हुए कहा: "महानामा, एक ऐसा मामला है जहाँ श्रेष्ठ जनों का शिष्य सद्गुणों में परिपूर्ण होता है, अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करता है, भोजन में संयम जानता है, जागरूकता के प्रति समर्पित होता है, सात गुणों से संपन्न होता है, और इच्छा से - बिना किसी परेशानी या कठिनाई के - चार ध्यान प्राप्त करता है जो उच्चतर जागरूकता और वर्तमान क्षण में सुखद निवास का निर्माण करते हैं।"

और श्रेष्ठ जनों का शिष्य सद्गुणों में परिपूर्ण कैसे होता है? श्रेष्ठ जनों का शिष्य गुणी होता है। वह पतिमोक्खा के अनुसार संयमित रहता है, अपने व्यवहार और कार्यक्षेत्र में परिपूर्ण होता है। वह प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए स्वयं को प्रशिक्षित करता है, छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखता है। इस प्रकार श्रेष्ठ जनों का शिष्य सद्गुणों में परिपूर्ण होता है।

और श्रेष्ठ जनों का शिष्य अपनी इंद्रियों के द्वार कैसे सुरक्षित रखता है? एक स्थिति यह है कि श्रेष्ठ जनों का शिष्य किसी आकृति को देखकर उसमें निहित किसी भी विषयवस्तु या विविधता को नहीं पकड़ता, जिसके कारण—यदि वह नेत्र शक्ति पर अनियंत्रित रूप से ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। वह नेत्र शक्ति पर नियंत्रण का अभ्यास करता है। वह नेत्र शक्ति की रक्षा करता है। वह नेत्र शक्ति के संबंध में संयम प्राप्त करता है।

"कानों से कोई ध्वनि सुनकर..."

नाक से किसी सुगंध को सूंघने पर...

जीभ से किसी स्वाद को चखने पर...

शरीर में स्पर्श संवेदना महसूस होने पर...

जब वह किसी विचार को बुद्धि से ग्रहण करता है, तो वह उसके किसी भी विषय या विविधता को नहीं पकड़ता, जिससे—यदि वह बुद्धि की शक्ति का अनियंत्रित रूप से उपयोग करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। वह बुद्धि पर नियंत्रण का अभ्यास करता है। वह बुद्धि की शक्ति की रक्षा करता है। वह बुद्धि की शक्ति के संबंध में संयम प्राप्त करता है। इस प्रकार श्रेष्ठ जनों का शिष्य अपनी इंद्रियों के द्वार की रक्षा करता है।

और श्रेष्ठ जनों का शिष्य भोजन में संयम कैसे जानता है? श्रेष्ठ जनों का शिष्य उचित विचार करते हुए भोजन न तो मनोरंजन के लिए, न ही नशे के लिए, न ही वजन बढ़ाने के लिए, न ही सौंदर्य के लिए, बल्कि केवल इस शरीर के अस्तित्व और निरंतरता के लिए, इसके कष्टों को दूर करने के लिए, पवित्र जीवन के पालन-पोषण के लिए ग्रहण करता है, यह सोचते हुए कि 'मैं पुरानी भूख की भावनाओं को नष्ट करूँगा और अधिक खाने से नई भावनाएँ उत्पन्न नहीं करूँगा। इस प्रकार मैं अपना भरण-पोषण करूँगा, निर्दोष रहूँगा और सुखमय जीवन व्यतीत करूँगा।' इस प्रकार श्रेष्ठ जनों का शिष्य भोजन में संयम जानता है।

और श्रेष्ठ जनों का शिष्य किस प्रकार जागृति के प्रति समर्पित रहता है? उदाहरण के लिए, एक भिक्षु दिन के दौरान बैठकर और टहलते हुए अपने मन को उन सभी गुणों से शुद्ध करता है जो मन को वश में रखते हैं। रात्रि के पहले पहर (शाम से रात 10 बजे तक) में बैठकर और टहलते हुए वह अपने मन को उन सभी गुणों से शुद्ध करता है जो मन को वश में रखते हैं। रात्रि के दूसरे पहर (रात 10 बजे से सुबह 2 बजे तक) में वह अपनी दाहिनी ओर करवट लेकर सिंह की मुद्रा में बैठता है, एक पैर दूसरे के ऊपर रखता है, सचेत और सतर्क रहता है, और उसका मन उठने पर केंद्रित रहता है (या तो जागते ही या किसी निश्चित समय पर)। रात्रि के अंतिम पहर (सुबह 2 बजे से सुबह तक) में बैठकर और टहलते हुए वह अपने मन को उन सभी गुणों से शुद्ध करता है जो मन को वश में रखते हैं। इस प्रकार भिक्षु जागृति के प्रति समर्पित रहता है।

और श्रेष्ठ जनों के शिष्य में सात गुण कैसे पाए जाते हैं?

"(1) ऐसा मामला है जहाँ श्रेष्ठजनों के शिष्य को तथागत के ज्ञानोदय का दृढ़ विश्वास है: 'यद्यपि, भगवान योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत हैं, स्पष्ट ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण हैं, सुप्रसिद्ध हैं, संसार के संबंध में विशेषज्ञ हैं, वश में किए जाने योग्य लोगों के लिए प्रशिक्षक के रूप में अद्वितीय हैं, दिव्य और मानव प्राणियों के शिक्षक हैं, जागृत हैं, धन्य हैं।'

"(2) उसे शारीरिक दुराचार, मौखिक दुराचार, मानसिक दुराचार में संलग्न होने के विचार से शर्म आती है।

"(3) वह शारीरिक दुर्व्यवहार, मौखिक दुर्व्यवहार, मानसिक दुर्व्यवहार से होने वाली पीड़ा के लिए चिंतित है।

(4) उसने बहुत कुछ सुना है, जो सुना है उसे याद रखा है, जो सुना है उसे संजोकर रखा है। जो भी शिक्षाएँ आरंभ में, मध्य में और अंत में प्रशंसनीय हैं, जो अपने अर्थ और अभिव्यक्ति में पूर्णतः शुद्ध और पवित्र जीवन की घोषणा करती हैं: उन्हें उसने बार-बार सुना है, याद रखा है, उन पर चर्चा की है, उन्हें संकलित किया है, अपने मन से उनका विश्लेषण किया है और अपने दृष्टिकोण से उनमें गहराई से प्रवेश किया है।

(5) वह अकुशल मानसिक गुणों को त्यागने और कुशल मानसिक गुणों को अपनाने के लिए अपनी दृढ़ता को जागृत रखता है। वह अपने प्रयास में दृढ़ और स्थिर है, कुशल मानसिक गुणों के संबंध में अपने कर्तव्यों से पीछे नहीं हटता।

"(6) वह सचेत, अत्यंत सावधानी बरतने वाला, याद रखने वाला और बहुत पहले किए और कहे गए बातों को भी याद करने में सक्षम है।

(7) वह विवेकशील है, उसे उत्पन्न होने और नष्ट होने का विवेक प्राप्त है - वह महान, मर्मस्पर्शी है, जो तनाव के सही अंत की ओर ले जाता है।

"इस प्रकार श्रेष्ठ जनों के शिष्य को सात गुण प्राप्त होते हैं।"

और श्रेष्ठ जनों का शिष्य बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इच्छा से उन चार ध्यान अवस्थाओं को कैसे प्राप्त करता है जो उच्चतर जागरूकता और वर्तमान क्षण में सुखद स्थिरता प्रदान करती हैं? एक अवस्था यह है कि, इंद्रियों से पूर्णतः विमुख होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विमुख होकर, श्रेष्ठ जनों का शिष्य प्रथम ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन से युक्त होता है। निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त जागरूकता का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। परमानंद के क्षीण होने पर, वह समभाव, सचेत और जागरूक रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तृतीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके विषय में श्रेष्ठ जन कहते हैं, 'समभाव और सचेत होकर, वह सुखद स्थिरता का अनुभव करता है।' सुख और दुख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के विलीन होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख। इस प्रकार श्रेष्ठजनों का शिष्य बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, इच्छा से ही उन चार ध्यान अवस्थाओं को प्राप्त कर लेता है जो उच्चतर जागरूकता और वर्तमान क्षण में सुखद स्थिरता का स्रोत हैं।

"अब, जब श्रेष्ठजनों का कोई शिष्य इस प्रकार सद्गुणों में परिपूर्ण हो जाता है, इस प्रकार अपनी इंद्रियों के द्वारों की रक्षा करता है, इस प्रकार भोजन में संयम बरतता है, इस प्रकार सचेतन रहता है, इस प्रकार सात गुणों से संपन्न हो जाता है, और इस प्रकार इच्छा से—बिना

किसी कष्ट या कठिनाई के—चार ध्यान प्राप्त कर लेता है जो उच्चतर जागरूकता और वर्तमान क्षण में सुखद स्थिरता का निर्माण करते हैं, तब वह श्रेष्ठजनों का शिष्य कहलाता है जो प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले के लिए अभ्यास का पालन करता है, जिसके अंडे अक्षुण्ण हैं, जो फूटने में सक्षम है, जो जागृत होने में सक्षम है, जो बंधन से मुक्ति पाने में सक्षम है।"

"जैसे कि अगर किसी मुर्गी के पास आठ, दस या बारह अंडे हों जिन्हें वह ठीक से ढक दे, ठीक से गर्म रखे और ठीक से सेए: भले ही उसके मन में यह इच्छा न आई हो - 'काश मेरे चूजे अपने नुकीले पंजों या चोंच से अंडों के छिलके तोड़कर सुरक्षित रूप से बाहर निकल आएं!'" फिर भी यह संभव है कि चूजे अपने नुकीले पंजों या चोंच से अंडों के छिलके तोड़कर सुरक्षित रूप से बाहर निकल आएं। इसी प्रकार, जब श्रेष्ठ जनों का कोई शिष्य इस प्रकार सद्गुणों में परिपूर्ण हो जाता है, इस प्रकार अपनी इंद्रियों को वश में रखता है, इस प्रकार खान-पान में संयम बरतता है, इस प्रकार सचेत रहता है, इस प्रकार सात गुणों से युक्त हो जाता है, और इस प्रकार इच्छा से—बिना किसी कष्ट या कठिनाई के—चार ध्यान प्राप्त कर लेता है जो उच्चतर जागरूकता और वर्तमान क्षण में सुखद स्थिरता प्रदान करते हैं, तब वह श्रेष्ठ जनों का शिष्य कहलाता है जो प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले के लिए अभ्यास करता है, जिसके अंडे अक्षुण्ण हैं, जो अंडे तोड़कर बाहर निकलने में सक्षम है, जो जागृत होने में सक्षम है, और जो बंधन से मुक्ति पाने में सक्षम है।

"अब जब श्रेष्ठ जनों का शिष्य समभाव और जागरूकता की इस पवित्रता को प्राप्त कर लेता है, तो वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो... पाँच, दस... पचास, सौ, हज़ार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग: 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूप और विवरणों सहित याद करता है। यह उसका पहला जन्म है, जैसे मुर्गी के चूजे अपने अंडों से बाहर निकलते हैं।"

जब श्रेष्ठ जनों का शिष्य समभाव और जागरूकता की इस पवित्रता को प्राप्त कर लेता है, तो वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उनके हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठ जनों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, निचले लोकों में, नरक में, पुनः प्रकट हुए हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठ जनों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म किए - शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्यों में, स्वर्गलोक में, पुनः प्रकट हुए हैं।' इस प्रकार—मानव दृष्टि से परे, शुद्ध दिव्य दृष्टि से—वह प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है, और उनके कर्मों के अनुसार उन्हें निम्न और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली के रूप में पहचानता है। यह उसका दूसरा उद्भव है, जैसे मुर्गी के चूजे अपने अंडों से बाहर निकलते हैं।

जब श्रेष्ठ जनों का शिष्य समभाव और सजगता की इस पवित्रता को प्राप्त कर लेता है, तो वह उत्तेजना-मुक्त जागरूकता और विवेक-मुक्ति में प्रवेश करता है और स्थिर रहता है, क्योंकि उसने स्वयं इस पल में इन्हें प्रत्यक्ष रूप से जान और अनुभव कर लिया होता है। 5 यह उसका तीसरा निष्कासन है, जैसे मुर्गी के चूजे अपने अंडों से निकलते हैं।

"जब श्रेष्ठ जनों का शिष्य सद्गुणों में परिपूर्ण हो जाता है, तो यह उसके आचरण का विषय है। जब वह अपनी इंद्रियों को वश में रखता है... खान-पान में संयम बरतता है... सचेत रहता है... सात गुणों से परिपूर्ण होता है, तो यह उसके आचरण का विषय है। जब वह बिना किसी कष्ट या कठिनाई के, अपनी इच्छा से उन चार ध्यान अवस्थाओं को प्राप्त कर लेता है जो उच्चतर जागरूकता और वर्तमान क्षण में सुखद स्थिरता प्रदान करती हैं, तो यह उसके आचरण का विषय है।"

जब वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूपों और विवरणों सहित याद करता है, तो यह उसके स्पष्ट ज्ञान का विषय है। जब वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से परे है, प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते देखता है... जब वह इस क्षण और यहीं प्रत्यक्ष रूप से उन्हें जानकर और अनुभव करके, उस निर्मल चेतना और विवेक की अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है, तो यह उसके स्पष्ट ज्ञान का विषय है।

"महानामा, इसे श्रेष्ठ जनों का शिष्य कहा जाता है जो स्पष्ट ज्ञान में निपुण, आचरण में निपुण और स्पष्ट ज्ञान एवं आचरण में निपुण है। और ब्रह्म सनंकुमार ने यह श्लोक कहा है:

'महान योद्धा ही लोगों में श्रेष्ठ होता है।'

कुल के आधार पर निर्णय करते समय, जो व्यक्ति स्पष्ट ज्ञान और आचरण में निपुण हो, वह श्रेष्ठ प्राणी होता है।

मानवीय और दिव्य।'

"ब्रह्म सनंकुमार ने इस श्लोक का सुंदर गायन किया है, न कि कुरूप; यह सुंदर कथन है, न कि कुरूप; यह लक्ष्य से जुड़ा हुआ है, न कि असंबद्ध। इसे भगवान बुद्ध ने भी स्वीकार किया है।"

तब भगवान बुद्ध उठे और पूज्य आनंद से बोले, "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, आनंद। तुमने कपिलवस्तु शाक्यों से प्रशिक्षणार्थी के लिए अभ्यास करने वाले व्यक्ति के बारे में जो कहा है, वह अच्छा है।"

यही बात पूज्य आनंद ने कही थी, और गुरु ने इसे स्वीकार किया। कपिलवस्तु के शाक्यों को पूज्य आनंद के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.4पोटालिया सुत्त(54)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध अंगुत्तरापा में बाज़ार के आपना नामक एक छोटे से गाँव में रहते थे। सुबह उन्होंने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर आपना में भिक्षा मांगने गए। भिक्षा मांगने के बाद और भोजन समाप्त होने पर, भगवान बुद्ध एक वन क्षेत्र में गए और दिन बिताने के लिए एक वृक्ष की जड़ में बैठ गए। गृहस्थ पोटालिया भी पूरी तरह से वस्त्र पहने और तम्बू लगाए, व्यायाम के लिए टहलते हुए वन क्षेत्र में आए और भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, अभिवादन किया और एक तरफ खड़े हो गए। तब भगवान बुद्ध ने गृहस्थ से कहा, 'गृहस्थ, बैठने की जगह है, यदि आप चाहें तो बैठ सकते हैं।' यह सुनकर गृहस्थ पोटालिया, यह सोचकर कि संन्यासी गौतम मुझे गृहस्थ कहकर संबोधित कर रहे हैं, क्रोधित और उदासीन हो गए और कुछ नहीं बोले। दूसरी बार भगवान बुद्ध ने कहा, 'गृहस्थ, बैठने की जगह है, यदि आप चाहें तो बैठ सकते हैं।' यह सुनकर गृहस्थ पोटालिया, यह सोचकर कि गौतम संन्यासी मुझे गृहस्थ कहकर संबोधित कर रहे हैं, क्रोधित और अरुचि से भर गया और उसने बात करना बंद कर दिया। तीसरी बार भगवान बुद्ध ने कहा, 'गृहस्थ, यहाँ बैठने की जगहें हैं, यदि आप चाहें तो बैठ जाइए।' यह सुनकर गृहस्थ पोटालिया, यह सोचकर कि गौतम संन्यासी मुझे गृहस्थ कहकर संबोधित कर रहे हैं, क्रोधित और अरुचि से भर गया और बोला, 'यह उचित नहीं है कि गौतम संन्यासी मुझे गृहस्थ कहकर संबोधित करें।' 'आपके गुणों और लक्षणों से तो आप गृहस्थ ही हैं।' 'हे गौतम, मैंने अपने सभी कर्म और व्यवसाय समाप्त कर दिए हैं। मेरे पास जो भी धन, अनाज, सोना और चांदी था, वह सब मैंने अपने पुत्रों को दे दिया है और मैं उन्हें न तो सलाह देता हूँ और न ही दोष देता हूँ। मैं केवल अपने भोजन और वस्त्र की चिंता करता हूँ। इस प्रकार मैंने अपने सभी कर्म और व्यवसाय समाप्त कर दिए हैं।' 'गृहस्थ, आपके कर्म और व्यवसाय का समापन, श्रेष्ठ धर्म में कर्म और व्यवसाय के समापन से भिन्न है।' 'आदरणीय महोदय, यदि भगवान बुद्ध मुझे श्रेष्ठ धर्म में सभी कार्यों और व्यापारों के समापन का उपदेश दें तो अच्छा होगा।' 'तो गृहस्थ, ध्यान से सुनो, मैं उपदेश दूंगा।'

हे गृहस्थ, श्रेष्ठ धर्म में सभी कर्मों और व्यापारों को समाप्त करने के आठ तरीके हैं। वे आठ क्या हैं? हे गृहस्थ, जीवन को नष्ट न करने के उद्देश्य से, जीवन को नष्ट करने का त्याग कर देना चाहिए। जो दिया गया है उसे लेने के उद्देश्य से, जो नहीं दिया गया है उसे लेने का त्याग कर देना चाहिए। सच बोलने के उद्देश्य से, झूठ बोलने का त्याग कर देना चाहिए। निंदा न करने के उद्देश्य से, निंदा का त्याग कर देना चाहिए। लोभ न करने और लालच से मुक्त रहने के उद्देश्य से, लोभ और लालच का त्याग कर देना चाहिए। निर्दोष घृणा न करने के उद्देश्य से, निंदनीय घृणा का त्याग कर देना चाहिए। क्रोध और द्वेष से मुक्त रहने के उद्देश्य से, क्रोध और द्वेष का त्याग कर देना चाहिए। अहंकार न करने के उद्देश्य से, अहंकार का त्याग कर देना चाहिए। संक्षेप में ये सभी उपाय श्रेष्ठ धर्म में सभी कर्मों और व्यापारों को समाप्त करने में सहायक हैं। 'आदरणीय महोदय, कृपा करके भगवान बुद्ध उन आठ बातों का स्पष्टीकरण दें जो इस धर्म में कर्म और व्यापार के समापन में सहायक हैं। गृहस्थ, ध्यानपूर्वक सुनें, मैं आपको बताऊंगा।'

यह कहा गया था कि जीवित प्राणियों को नष्ट न करने के उद्देश्य से जीवन का विनाश त्याग देना चाहिए; ऐसा क्यों कहा गया था? हे गृहस्थ, हे श्रेष्ठ शिष्य, चिंतन करते हुए कहते हैं, जिन बंधनों के कारण मैं जीवित प्राणियों का विनाशक बना, उन्हीं बंधनों को तोड़ने का मार्ग अपना लिया। यदि मैं जीवित प्राणियों का विनाश करता हूँ, तो मैं स्वयं ही दोषी हूँगा, और जब ज्ञानी लोग इसके बारे में जानेंगे, तो वे भी मुझे दोषी ठहराएँगे। मृत्यु के बाद तो अवनति ही अपेक्षित है। ये वे बंधन और अवरोध हैं जो जीवित प्राणियों के विनाश का कारण बनते हैं। जीवित प्राणियों का विनाश करने वालों को इच्छाएँ, कष्ट और अप्रसन्नता का सामना करना पड़ सकता है, परन्तु जीवन का विनाश न करने वालों को नहीं। यदि यह कहा गया था कि जीवित प्राणियों को नष्ट न करने के उद्देश्य से जीवन का विनाश त्याग देना चाहिए, तो इसी कारण कहा गया था।

कहा गया था कि जो दिया गया है उसे लेने के उद्देश्य से, जो नहीं दिया गया है उसे त्याग देना चाहिए। ऐसा क्यों कहा गया? हे गृहस्थ, हे श्रेष्ठ शिष्य, मनन करते हैं। कुछ बंधनों के कारण मैंने वह लिया जो मुझे नहीं दिया गया था। मैं उन बंधनों को तोड़ने के मार्ग पर चल पड़ा हूँ। यदि मैं जो नहीं दिया गया है उसे लेता हूँ, तो मैं स्वयं को दोषी ठहराऊँगा। जब ज्ञानी लोग इसके बारे में जानेंगे, तो वे मुझे दोषी ठहराएँगे। मृत्यु के बाद अवमूल्यन की अपेक्षा करनी चाहिए। ये वे बंधन और बाधाएँ हैं जो मुझे जो नहीं दिया गया है उसे लेने से रोकती हैं। जो लोग जो नहीं दिया गया है उसे लेते हैं, उन्हें इच्छाएँ, कष्ट और अप्रसन्नता का सामना करना पड़ सकता है; जो लोग जो नहीं दिया गया है उसे लेने से परहेज करते हैं, उन्हें ये नहीं होते। यदि यह कहा गया था कि जो दिया गया है उसे लेने के उद्देश्य से, जो नहीं दिया गया है उसे त्याग देना चाहिए, तो इसी कारण से कहा गया था।

कहा गया है कि सत्य बोलने के उद्देश्य से झूठ बोलना त्याग देना चाहिए। ऐसा क्यों कहा गया? हे गृहस्थ, हे श्रेष्ठ शिष्य, चिंतन करो कि जिन बंधनों के कारण मैं झूठ बोल रहा था, उन्हीं बंधनों को तोड़ने का मार्ग मैंने अपना लिया है। यदि मैं झूठ बोलूंगा तो स्वयं ही दोषी ठहराया जाएगा। जब ज्ञानी लोग इसके बारे में जानेंगे, तो वे भी दोषी ठहराएंगे। मृत्यु के बाद पतन की अपेक्षा करनी चाहिए। ये झूठ बोलने के बंधन और बाधाएँ हैं। झूठ बोलने वालों को इच्छाएँ, कष्ट और अप्रसन्नता का सामना करना पड़ सकता है। ये झूठ न बोलने वालों के लिए नहीं हैं। यदि कहा गया है कि सत्य बोलने के उद्देश्य से झूठ बोलना त्याग देना चाहिए, तो इसी कारण से कहा गया है। कहा गया है कि निंदा न करने के उद्देश्य से निंदा करना त्याग देना चाहिए। ऐसा क्यों कहा गया? हे गृहस्थ, हे श्रेष्ठ शिष्य, चिंतन करो कि जिन बंधनों के कारण मैं निंदा कर रहा था, उन्हीं बंधनों को तोड़ने का मार्ग मैंने अपना लिया है। यदि मैं स्वयं निंदा करूंगा तो स्वयं ही दोषी ठहराया जाएगा। जब ज्ञानी लोग इसके बारे में जानेंगे, तो वे भी दोषी ठहराएंगे। मृत्यु के बाद पतन की अपेक्षा करनी चाहिए। निंदा करने के लिए ये बंधन और बाधाएँ हैं। निंदा करने वालों को इच्छाएँ, कष्ट और अप्रसन्नता का सामना करना पड़ सकता है। निंदा से दूर रहने वालों को ऐसा नहीं होता। यदि यह कहा गया है कि निंदा न करने के उद्देश्य से इसे त्याग देना चाहिए, तो यह इसी कारण से कहा गया है।

कहा गया था कि लोभ से मुक्ति पाने के लिए लोभ और लालच का त्याग करना चाहिए। ऐसा क्यों कहा गया था? हे गृहस्थ, मेरे शिष्य ने मनन किया, कि जिन बंधनों के कारण मैं लोभ और लालच में लिप्त हुआ, उन्हीं बंधनों को तोड़ने का मार्ग मैंने अपनाया है। यदि मैं लोभ और लालच में लिप्त हो जाऊँ, तो स्वयं मैं ही दोषी होऊंगा। जब ज्ञानी लोग इसके बारे में जानेंगे, तो वे भी मुझे दोषी ठहराएंगे। मृत्यु के बाद पतन की अपेक्षा करनी चाहिए। ये लोभ और लालच के बंधन और अवरोध हैं। लोभ और लालच में लिप्त लोगों को इच्छाएँ, कष्ट और अप्रसन्नता का सामना करना पड़ सकता है। जो लोभ और लालच से दूर रहते हैं, उनके लिए ये नहीं हैं। यदि कहा गया था कि लोभ से मुक्ति पाने के लिए लोभ और लालच का त्याग करना चाहिए, तो इसी कारण से कहा गया था।

कहा गया था कि निर्दोष अनासक्ति बनाए रखने के लिए निंदनीय अनासक्ति का त्याग करना चाहिए। ऐसा क्यों कहा गया? हे गृहस्थ, मेरे शिष्य ने मनन किया, कि जिन भी बंधनों के कारण मैं निंदनीय अनासक्ति का पालन कर रहा था, उन्हीं बंधनों को तोड़ने के मार्ग पर चल पड़ा। यदि मैं निंदनीय अनासक्ति का पालन करता हूँ, तो मैं स्वयं ही अपनी निंदा करूँगा। जब ज्ञानी लोग इसके बारे में जानेंगे, तो वे भी मेरी निंदा करेंगे। मृत्यु के बाद अवनति की अपेक्षा करनी चाहिए। ये निंदनीय अनासक्ति के बंधन और अवरोध हैं। निंदनीय अनासक्ति का पालन करने वालों को इच्छाएँ, कष्ट और अप्रसन्नता का सामना करना पड़ सकता है। निंदनीय अनासक्ति से दूर रहने वालों के लिए ये नहीं हैं। यदि कहा गया था कि निर्दोष अनासक्ति बनाए रखने के लिए निंदनीय अनासक्ति का त्याग करना चाहिए, तो इसका कारण यही था।

कहा गया है कि क्रोध और द्वेष से मुक्त रहने के लिए क्रोध और द्वेष का त्याग करना चाहिए। ऐसा क्यों कहा गया? हे गृहस्थ, हे श्रेष्ठ शिष्य, चिंतन करो कि जिन बंधनों के कारण मैं क्रोध और द्वेष धारण कर रहा था, उन्हीं बंधनों को तोड़ने के मार्ग पर चल पड़ा हूँ। क्रोध और द्वेष धारण करने पर मैं स्वयं ही दोषी ठहराया जाऊँगा। जब ज्ञानी लोग इसके बारे में जानेंगे, तो वे भी मुझे दोषी ठहराएँगे। मृत्यु के बाद तो अवमूल्यन की ही अपेक्षा करनी चाहिए। ये क्रोध और द्वेष के बंधन और अवरोध हैं। क्रोध और द्वेष धारण करने वालों को इच्छाएँ, कष्ट और अप्रसन्नता का सामना करना पड़ सकता है। क्रोध और द्वेष से दूर रहने वालों के लिए ये नहीं हैं। यदि कहा गया है कि क्रोध और द्वेष से मुक्त रहने के लिए क्रोध और द्वेष का त्याग करना चाहिए, तो इसी कारण कहा गया है।

कहा गया था कि अहंकार से मुक्ति पाने के लिए अहंकार का त्याग करना चाहिए। ऐसा क्यों कहा गया था? हे गृहस्थ, मेरे शिष्य ने मनन किया, "जिन भी बंधनों के कारण मैं अहंकारी हुआ, उन्हीं बंधनों को तोड़ने का मार्ग मैंने अपनाया है। अहंकारी होने पर मेरा अपना अहंकार मुझे दोष देगा। जब ज्ञानी लोग इसके बारे में जानेंगे, तो वे भी मुझे दोष देंगे। मृत्यु के बाद अवनति की अपेक्षा करनी चाहिए। ये अहंकार के बंधन और अवरोध हैं। अहंकारी लोगों को इच्छाएँ, कष्ट और अप्रसन्नता का सामना करना पड़ सकता है। ये अहंकार रहित लोगों के लिए नहीं हैं। यदि कहा गया था कि अहंकार से मुक्ति पाने के लिए अहंकार का त्याग करना चाहिए, तो इसी कारण से कहा गया था।"

गृहस्थ, ये आठ बातें संक्षेप में बताई और समझाई गई हैं, जो श्रेष्ठ पुरुषों के युग में कर्म और कार्यों के समापन का कारण बनती हैं। परन्तु केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है, और इससे श्रेष्ठ पुरुषों के युग में कर्म और व्यवसाय का समापन नहीं होगा। आदरणीय महोदय, श्रेष्ठ पुरुषों के युग में कर्म और व्यवसाय का पूर्ण समापन कैसे होता है? महोदय, यदि भगवान बुद्ध श्रेष्ठ पुरुषों के युग में कर्म और व्यवसाय के पूर्ण समापन की व्याख्या करें तो यह मेरे लिए अच्छा होगा। ध्यान से सुनिए, गृहस्थ, मैं बताता हूँ।

गृहस्थ, एक चतुर कसाई या उसका शागिर्द कसाईखाने के पास इंतजार कर रहे भूखे कुत्ते को मांस रहित, खून से सनी हड्डी फेंक देता। गृहस्थ, क्या वह कुत्ता उस खून से सनी, मांस रहित हड्डी को चाटकर अपनी भूख मिटा लेगा? नहीं, आदरणीय महोदय, ऐसा नहीं होगा। 'क्या कारण है?' 'वह कुत्ता उस खून से सनी, मांस रहित हड्डी को चाटकर केवल थकावट और कमजोरी ही प्राप्त करेगा।' 'इसी प्रकार, आदरणीय शिष्य चिंतन करता है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि इंद्रिय सुख एक हड्डी के समान है, जो बहुत कष्ट और परेशानी लाती है, यहाँ खतरा बहुत अधिक है। इसे समभाव और सही बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए, और विभिन्न हितों को त्याग देना चाहिए। एक ही हित और आसक्ति को समभाव से विकसित करना चाहिए, जिसमें सभी सांसारिक भौतिक हित पूरी तरह से विलीन हो जाएं और समभाव को और अधिक विकसित किया जाए।'

गृहस्थ, अगर कोई गिद्ध, कौआ या बाज मांस का एक टुकड़ा छीनकर उड़ जाए, तो दूसरा कौआ, बाज या गिद्ध उसे देखकर उसका पीछा करेगा और वह टुकड़ा छीन लेगा। गृहस्थ, अगर वह गिद्ध, कौआ या बाज वह मांस का टुकड़ा न छोड़े, तो क्या उसकी मृत्यु या मृत्यु का कष्ट नहीं होगा? 'हे पूज्यवर, हाँ, होगा।' 'इसी प्रकार, शिष्य मनन करता है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि इंद्रिय सुख की इच्छाएँ मांस के एक टुकड़े के समान हैं जो बहुत कष्ट, कष्ट और खतरा लाता है। इसे समभाव और सही बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और विभिन्न हितों को त्याग देना चाहिए। एक ही हित और आसक्ति को समभाव से विकसित करना चाहिए, जिसमें सभी सांसारिक भौतिक हित पूरी तरह से विलीन हो जाएँ और समभाव और अधिक विकसित हो।

गृहस्थ, जलती हुई घास की मशाल लिए हुए व्यक्ति हवा के विपरीत दिशा में जाएगा। गृहस्थ, यदि वह व्यक्ति उस जलती हुई घास की मशाल को न छोड़े तो क्या उसका हाथ, बांह या शरीर का कोई भी छोटा या बड़ा अंग जल नहीं जाएगा? क्या उसकी मृत्यु नहीं हो जाएगी या उसे मृत्यु का कष्ट नहीं होगा?' 'हाँ, आदरणीय।' 'इसी प्रकार, आदरणीय शिष्य चिंतन करता है। भगवान बुद्ध ने कहा था कि इंद्रिय सुख की इच्छाएँ जलती हुई घास की मशाल के समान हैं जो बहुत कष्ट, परेशानी और खतरा लाती हैं। इसे समभाव और उचित बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और विभिन्न हितों को त्याग देना चाहिए। एक ही हित और आसक्ति को समभाव से विकसित करना चाहिए, जिसमें सभी सांसारिक भौतिक हित पूरी तरह से विलीन हो जाएँ और समभाव को और अधिक विकसित किया जाए।'

गृहस्थ, मनुष्य की ऊँचाई तक एक कोयले का गड्ढा है, जो धुएँ और आग से मुक्त है। एक सुखप्रिय और जीने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति आता है और दो बलवान पुरुष उसे हाथ-पैर से पकड़कर कोयले के गड्ढे में घसीटते हैं। गृहस्थ, क्या उसका शरीर इससे बचने के लिए छटपटाएगा नहीं? इसका क्या कारण है?': 'आदरणीय महोदय, वह जानता है कि यदि मैं इस कोयले के गड्ढे में गिर जाऊँगा, तो मेरी मृत्यु हो जाएगी या मुझे घोर कष्ट सहना पड़ेगा।' 'इसी प्रकार, शिष्य चिंतन करता है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि इंद्रिय सुख जलते हुए कोयले के गड्ढे के समान हैं, जो बहुत कष्ट, परेशानी और खतरा लाते हैं। इसे समभाव और उचित बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और विभिन्न हितों को त्यागकर, एक ही हित और आसक्ति को समभाव से विकसित करना चाहिए, जिसमें सभी सांसारिक भौतिक हित पूर्णतः लुप्त हो जाएँ और समभाव को और अधिक विकसित किया जाए।'

गृहस्थ, एक व्यक्ति सपने में सुंदर स्मारक, जंगल, समतल भूमि और तालाब देखता है, जागने पर उसे इनमें से कुछ भी दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार, श्रेष्ठ शिष्य चिंतन करता है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि इंद्रिय सुख स्वप्न के समान हैं, जो अत्यंत कष्ट, परेशानी और खतरे लाते हैं। इन्हें समभाव और उचित बुद्धि से, यथार्थ रूप में देखना चाहिए, और विभिन्न हितों को त्यागकर, एक ही हित और आसक्ति को

समभाव से विकसित करना चाहिए, जिसमें सभी सांसारिक भौतिक हित पूर्णतः लुप्त हो जाएं और समभाव को और अधिक विकसित किया जाए।

गृहस्थ, एक आदमी जो कुछ झुमके और फैशनेबल गहने उधार लेकर बाजार जाता था, उन्हें पहनकर खुद को सजाता था। लोग उसे देखकर कहते थे, 'देखो, अमीर आदमी है।' जब घरवाले उसे देखते, तो अपना सामान समेट लेते। गृहस्थ, क्या वह आदमी अपने असली रूप में बेहतर नहीं होता?' 'वह बेहतर होता, आदरणीय महोदय।' 'इसी प्रकार, आदरणीय शिष्य विचार करता है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि इंद्रिय सुख उधार ली गई चीजों के समान हैं, जो बहुत कष्ट, परेशानी और खतरा लाते हैं। इसे समभाव और सही बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और विभिन्न हितों को त्याग देना चाहिए। एक ही हित और आसक्ति को समभाव से विकसित करना चाहिए, जिसमें सभी सांसारिक भौतिक हित पूरी तरह से विलीन हो जाएं और समभाव को और अधिक विकसित किया जाए।

गृहस्थ, किसी गाँव या बस्ती के पास एक घना जंगल है, जिसमें फलों से लदा एक वृक्ष है। एक व्यक्ति फलों की तलाश में उस वृक्ष के पास आता है, और जब उसे ज़मीन पर कोई फल गिरा हुआ नहीं दिखता, तो वह वृक्ष पर चढ़कर मन भरकर फल खाता है। वह अपनी गुलेल में कुछ फल भर लेता है। एक दूसरा व्यक्ति तेज धार वाले खंजर से फलों की तलाश में उसी वृक्ष के पास आता है, और जब उसे कोई फल गिरा हुआ नहीं दिखता, और वह वृक्ष पर चढ़ भी नहीं पाता, तो वह वृक्ष को काट देता है। गृहस्थ, यदि वृक्ष पर चढ़ा हुआ व्यक्ति जल्दी नीचे न उतरता, तो क्या वह मर नहीं जाता, या उसके कोई अंग टूटकर उसकी मृत्यु नहीं हो जाती? 'जी हाँ, आदरणीय, वह मर जाता।' 'इसी प्रकार,' शिष्य मनन करता है। भगवान बुद्ध ने कहा है कि इंद्रिय सुख-सुविधाएँ फलों से लदे वृक्ष के समान हैं। ये बहुत कष्ट, परेशानी और खतरे लाती हैं। इसे समभाव और उचित बुद्धि से देखा जाना चाहिए, जैसा कि यह वास्तव में है, और विभिन्न हितों को त्याग देना चाहिए, समभाव के साथ एक ही हित और आसक्ति विकसित की जानी चाहिए, [1] जिसमें सभी सांसारिक भौतिक हित पूरी तरह से लुप्त हो जाते हैं और समभाव को और विकसित किया जाना चाहिए।

हे गृहस्थ, समभाव से मन की इस पवित्रता को प्राप्त करने वाला श्रेष्ठ शिष्य अपने अनेक पूर्व जन्मों, जैसे एक जन्म, दो जन्म, आदि को सभी गुणों और विवरणों सहित याद करता है। हे गृहस्थ, समभाव से मन की इस पवित्रता को प्राप्त करने वाला श्रेष्ठ शिष्य, मनुष्य से परे दिव्य दृष्टि से प्रकट और लुप्त होते प्राणियों को, उदात्त और उदात्त अवस्थाओं में, सुंदर और कुरूप प्राणियों को, अच्छे और बुरे रूपों में देखता है—प्राण प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार देखता है। हे गृहस्थ, समभाव से मन की इस पवित्रता को प्राप्त करने वाला श्रेष्ठ शिष्य, अपने मन को मुक्त कर चुका है, ज्ञान से मुक्त हो चुका है और इसी मुक्त अवस्था में वर्तमान में विद्यमान है।

गृहस्थ, श्रेष्ठों के विधान में सभी कर्मों और कार्यों का यही अंत है। गृहस्थ, क्या आप अपने भीतर श्रेष्ठों के विधान में सभी कर्मों और कार्यों के इस अंत को देख पाते हैं? 'मैं क्या हूँ, पूज्यवर, मैं श्रेष्ठों के विधान में सभी कर्मों और कार्यों के अंत से बहुत दूर हूँ। पूज्यवर, पहले हम अन्य संप्रदायों के तपस्वियों को श्रेष्ठ मानते थे और उन्हें श्रेष्ठ समझकर भोजन कराते थे तथा उन पर विश्वास रखते थे। हम भिक्षुओं को श्रेष्ठ नहीं समझते थे, उन्हें श्रेष्ठ समझकर भोजन कराते थे तथा उन पर विश्वास नहीं रखते थे। अब हम जानते हैं कि अन्य संप्रदायों के तपस्वी श्रेष्ठ नहीं हैं, और हम उन्हें यह जानते हुए भी भोजन कराते हैं कि वे श्रेष्ठ नहीं हैं तथा उन पर विश्वास नहीं रखते। अब हम जानते हैं कि भिक्षु श्रेष्ठ हैं, उन्हें यह जानकर भोजन कराएं कि वे श्रेष्ठ हैं और उन पर विश्वास रखें। आदरणीय गुरुदेव, आपने मेरे मन में संन्यासियों के प्रति प्रेम और आदर उत्पन्न किया है। अब मैं समझ गया हूँ, आदरणीय गुरुदेव। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज़ फिर से स्थापित हो गई हो। कोई ढकी हुई चीज़ प्रकट हो गई हो। मानो किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया गया हो। ऐसा लगता है जैसे अंधकार में तेल का दीपक जलाया गया हो, ताकि दृष्टि वाले लोग आकृतियाँ देख सकें। भगवान बुद्ध ने अनेक प्रकार से शिक्षा का स्पष्टीकरण किया है। अब मैं भगवान बुद्ध, उनकी शिक्षा और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। आज से जीवन भर मुझे शरण लेने वाले गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.5जीवक सुत्त(55)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध राजगृह में राजकुमार के दत्तक पुत्र जीवक के आम के बाग में निवास करते थे। राजकुमार के दत्तक पुत्र जीवक भगवान बुद्ध के पास आए, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, 'हे पूज्यवर, मैंने सुना है कि गौतम संन्यासी के कारण जीव-

जंतुओं की मृत्यु होती है और वे यह जानते हुए भी उसका सेवन करते हैं कि यह उन्हीं के कारण हुआ है। हे पूज्यवर, जो लोग यह कहते हैं कि गौतम संन्यासी के कारण जीव-जंतुओं की मृत्यु होती है और वे यह जानते हुए भी उसका सेवन करते हैं कि यह उन्हीं के कारण हुआ है, क्या वे भगवान बुद्ध के सही वचन कह रहे हैं या उनकी शिक्षाओं की निंदा कर रहे हैं?'

'जीवका, जो लोग कहते हैं कि गौतम संन्यासी के कारण जीव मारे जाते हैं और गौतम यह जानते हुए भी उन्हें खा लेता है कि वे उसी के कारण मारे गए हैं, वे मेरे शब्द नहीं हैं और वे मुझ पर झूठा आरोप लगा रहे हैं। जीवका, मैं कहता हूँ कि तीन स्थितियों में मांस नहीं खाना चाहिए: जब उसे देखा जाए, जब उसके बारे में सुना जाए और जब उसके बारे में कोई संदेह हो। मैं कहता हूँ कि इन तीन स्थितियों में मांस नहीं खाना चाहिए। मैं कहता हूँ कि तीन स्थितियों में मांस खाया जा सकता है: जब उसे देखा न जाए, जब उसके बारे में सुना न जाए और जब उसके बारे में कोई संदेह न हो।'

जीवक, एक गाँव या बस्ती में रहने वाला भिक्षु प्रेम और करुणा के विचारों से परिपूर्ण होकर एक दिशा में, और दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और चारों ओर, हर परिस्थिति में, हर उद्देश्य से, सभी के प्रति व्याप्त रहता है। उसका यह विचार असीम रूप से विकसित होता है और बिना क्रोध के महान बनता है। तभी एक गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र उसके पास आता है और उसे अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित करता है। यदि भिक्षु चाहे तो वह स्वीकार करता है और उस रात के अंत में, वस्त्र धारण करके और कुंड और वस्त्र लेकर, उस गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र के घर जाता है और तैयार आसन पर बैठता है। वह गृहस्थ या उसका पुत्र अपने हाथों से उसे पौष्टिक भोजन परोसता है। उसके मन में यह विचार नहीं आता कि भविष्य में भी इस गृहस्थ को मुझे पौष्टिक भोजन देना चाहिए। वह उस निवाले को ग्रहण करता है, न तो व्यथित होकर, न बेहोश होकर, न ही दोषी महसूस करते हुए। खतरे पर बुद्धिमानी से विचार करते हुए, जीवक, क्या यह भिक्षु उस क्षण स्वयं को, किसी और को या दोनों को कष्ट पहुँचाने के बारे में सोच रहा है?

'नहीं, आदरणीय महोदय, वह ऐसा नहीं करता।'

'जीवक, क्या यह भिक्षु बिना किसी दोष के इस भोजन का सेवन नहीं कर रहा है?'

'हे आदरणीय महोदय, मैंने सुना है कि ब्रह्मा प्रेममयी अवस्था में निवास करते हैं। मैंने स्वयं भगवान बुद्ध में इसका साक्षी देखा है। भगवान बुद्ध प्रेममयी अवस्था में निवास करते हैं।'

'जीवक, तथागत ने उस लोभ, घृणा और भ्रम को जड़ से उखाड़ फेंका है, ताड़ के ठूंठ बना दिए हैं और उन्हें फिर कभी न उगने दिया है। यदि तुम ऐसा कहते हो, तो इसी कारण मैं इसकी अनुमति देता हूँ।'

'आदरणीय महोदय, मैं यह बात इसी कारण से कह रहा हूँ।'

'जीवक, भिक्षु किसी गाँव या बस्ती में निवास करते हैं। वे करुणा के विचारों से परिपूर्ण होकर एक ही दिशा में विलीन रहते हैं... आंतरिक आनंद के विचारों से परिपूर्ण... समभाव से, और साथ ही दूसरे, तीसरे, चौथे, ऊपर, नीचे और आर-पार, सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, सभी के प्रति असीम समभाव से परिपूर्ण, क्रोध रहित। फिर कोई गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र उनके पास आता है और उन्हें अगले दिन के भोजन के लिए आमंत्रित करता है। यदि भिक्षु चाहें तो वे निमंत्रण स्वीकार कर लेते हैं। उस रात के अंत में, वस्त्र धारण करके और भिक्षापात्र व वस्त्र लेकर, वे उस गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र के घर जाते हैं और तैयार आसन पर बैठते हैं। वह गृहस्थ अपने हाथों से भिक्षु को पौष्टिक भोजन परोसता है। उन्हें यह विचार नहीं आता कि भविष्य में भी इस गृहस्थ को उन्हें पौष्टिक भोजन देना चाहिए।' वह उस निवाले को ग्रहण करता है, न तो वश में होकर, न बेहोश होकर, और न ही अपराधबोध से, खतरे पर बुद्धिमानी से विचार करते हुए। जीवक, क्या यह भिक्षु उस क्षण स्वयं को, किसी और को, या दोनों को कष्ट पहुँचाने के बारे में सोच रहा है?

'नहीं, आदरणीय महोदय, वह ऐसा नहीं करता।'

'जीवक, क्या यह भिक्षु बिना किसी दोष के इस भोजन का सेवन नहीं करता?'

'आदरणीय महोदय, वह बिना किसी दोष के भोजन ग्रहण करते हैं। मैंने सुना है कि ब्रह्मा समभाव में रहते हैं। मैं इसे भगवान बुद्ध में देखता हूँ। भगवान बुद्ध समभाव में रहते हैं।'

'जीवक, तथागत विचलित नहीं होते, विरक्त होते हैं और लोभ, घृणा और मोह से विमुख नहीं होते; उन्होंने इन सब को जड़ से उखाड़ फेंका, ताड़ के ठूंठ बना दिए और उन्हें फिर कभी न उगने दिया। यदि इस कारण ऐसा कहा जाता है, तो मैं इसे स्वीकार करता हूँ।'

'आदरणीय महोदय, मैं यह बात इसी कारण से कह रहा हूँ।'

'जीवका, जो भी तथागत या तथागत के शिष्यों के कारण किसी जीव का वध करता है, वह पाँच बार अत्यधिक पुण्य अर्जित करता है: यदि वह कहे, 'उस नाम के जीव को ले आओ', तो वह प्रथम उदाहरण में अत्यधिक पुण्य अर्जित करता है। यदि उस जीव को बांधकर घसीटा जाए, उसके गले में दर्द हो, वह अप्रसन्न और अप्रिय महसूस करे, तो वह द्वितीय उदाहरण में अत्यधिक पुण्य अर्जित करता है। यदि कहा जाए, 'उस जानवर को मार डालो', तो वह तृतीय उदाहरण में अत्यधिक पुण्य अर्जित करता है। वध करते समय यदि वह जानवर अप्रसन्न और अप्रिय महसूस करे, तो वह चतुर्थ उदाहरण में अत्यधिक पुण्य अर्जित करता है। जब तथागत या तथागत का कोई शिष्य अनुपयुक्त भोजन का सेवन करे, तो वह पाँचवाँ उदाहरण में अत्यधिक पुण्य अर्जित करता है।'

यह सुनकर राजकुमार के दत्तक पुत्र जीवक ने कहा, “हे पूज्यवर, यह अद्भुत है! भिक्षु उचित और दोषरहित भोजन ग्रहण करते हैं। अब मैं समझ गया, पूज्यवर। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई वस्तु अपनी जगह पर वापस आ गई हो। कोई ढकी हुई वस्तु प्रकट हो गई हो। मानो किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया गया हो। मानो दृष्टिहीन लोगों के लिए रूप देखने हेतु तेल का दीपक प्रज्वलित किया गया हो। अनेक प्रकार से शिक्षा की व्याख्या की गई है। अब मैं भगवान बुद्ध, शिक्षा और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। आज से जीवन भर मुझे शरण लेने वाले के रूप में याद किया जाए।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.6उपाली सुत्त(56)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान नत्त्व नालंदा में, पवारिका के आम के बाग में रहते थे। उस समय निगंत नटपुत्त नालंदा में कई निगंतों के साथ रहते थे। दिघतपस्सी नामक निगंत नालंदा में भिक्षा मांगने के लिए घूम रहे थे और भोजन करने के बाद भिक्षा मांगने से लौटकर भगवान नत्त्व के पास आए, उनसे अभिवादन किया और एक तरफ खड़े हो गए। भगवान नत्त्व ने कहा, 'तपस्सी, यहाँ बैठने की जगह है, यदि आप चाहें तो बैठ जाइए।' तब दिघतपस्सी एक नीची कुर्सी पर बैठ गए और भगवान नत्त्व ने उनसे कहा:

'तपस्सी, निगंथनातापुत्त ने पाप करने और उसे अंजाम देने के लिए कितने कर्म बताए हैं?' 'मित्र गौतम, कर्म कहना उचित नहीं है, दंड कहना उचित है।' 'तपस्सी, निगंथनातापुत्त ने पाप करने और उसे अंजाम देने के लिए कितने दंड बताए हैं?' 'मित्र गौतम, निगंथनातापुत्त ने पाप करने और उसे अंजाम देने के लिए तीन दंड बताए हैं। वे हैं शारीरिक दंड, मौखिक दंड और मानसिक दंड।' 'तपस्सी, क्या शारीरिक दंड एक है, मौखिक दंड दूसरा और मानसिक दंड तीसरा?' 'मित्र गौतम, शारीरिक दंड एक है, मौखिक दंड दूसरा और मानसिक दंड तीसरा।' 'तपस्सी, इन तीनों दंडों का विश्लेषण करने पर निगंथनातापुत्त इनमें से किसे सबसे अधिक निंदनीय मानते हैं? क्या यह शारीरिक, मौखिक या मानसिक दंड है?' 'मित्र गौतम, इन तीन अलग-अलग और विवेचित दंडों में से निगंथनातापुत्त शारीरिक दंड को सबसे अधिक निंदनीय मानते हैं, क्योंकि यह पाप करने और उसे अंजाम देने के लिए है, न कि मौखिक और मानसिक दंडों के लिए।' 'क्या तपस्सी शारीरिक दंड की बात कर रहे हैं?' 'मित्र गौतम, मैं शारीरिक दंड की बात कर रहा हूँ।' 'क्या तपस्सी शारीरिक दंड की बात कर रहे हैं?' 'मित्र गौतम, मैं शारीरिक दंड की बात कर रहा हूँ।' 'क्या तपस्सी शारीरिक दंड की बात कर रहे हैं?' 'मित्र गौतम, मैं शारीरिक दंड की बात कर रहा हूँ।' इस प्रकार भगवान बुद्ध ने दिघतापसी को इस तर्क में तीसरी बार तक दृढ़ किया।

तब दिघतपस्सी ने भगवान गौतम से कहा, 'मित्र गौतम, आप पाप करने और उसे अंजाम देने के लिए कितने दंड बताते हैं?' 'मित्र तपस्सी, तथागत की प्रथा दंड कहना नहीं है, उनकी प्रथा कर्म कहना है।' 'मित्र गौतम, आप पाप करने और उसे अंजाम देने के लिए कितने कर्म बताते हैं?' 'तपस्सी, मैं पाप करने और उसे अंजाम देने के लिए तीन कर्म बताता हूँ। वे हैं शारीरिक, वाणी और मानसिक कर्म।' 'मित्र गौतम, क्या शारीरिक कर्म एक है, वाणी कर्म दूसरी और मानसिक कर्म तीसरी?' 'मित्र गौतम, इन तीन अलग-अलग और विवेचित कर्मों

में से, भगवान गौतम किसे सबसे अधिक निंदनीय मानते हैं? क्या यह शारीरिक, वाणी या मानसिक कर्म है?' 'मित्र तपस्सी, इन तीनों कर्मों में से, मैं मानसिक कर्म को सबसे अधिक निंदनीय मानता हूँ, न कि शारीरिक या वाणी कर्म को।' 'क्या मित्र गौतम मानसिक कर्म कहते हैं?' 'तपस्सी, मैं कहता हूँ मानसिक क्रिया।' 'क्या मित्र गौतम भी मानसिक क्रिया कहते हैं?' 'तपस्सी, मैं कहता हूँ, मानसिक क्रिया।' 'क्या मित्र गौतम भी मानसिक क्रिया कहते हैं?' 'तपस्सी, मैं कहता हूँ, मानसिक क्रिया।' इस प्रकार दिघतपसी ने भगवान बुद्ध को इस बहस में तीसरी बार तक स्थिर रखा, फिर वे अपने आसन से उठे और निगंथनतपुत्त के पास गए।

उस समय निगंथनातापुत्त मूर्ख उपाली के नेतृत्व में अपने अनुयायियों की एक बड़ी सभा के साथ बैठे थे। निगंथनातापुत्त ने दूर से दिघतपसी को आते देखा और उनसे कहा, 'तपस्सी, तुम दिन के इस समय कहाँ से आए हो?' 'आदरणीय महोदय, मैं संन्यासी गौतम के दर्शन करने आया हूँ।' 'क्या तुम्हारा और संन्यासी गौतम के बीच कोई विवाद था?' 'हाँ, मेरा और संन्यासी गौतम के बीच विवाद था।' 'तपस्सी, तुम्हारा और संन्यासी गौतम के बीच क्या विवाद था?' तब निगंथ दिघतपसी ने अपने और संन्यासी गौतम के बीच हुई सारी बातचीत बताई। जब बातचीत पूरी हो गई, तो निगंथनातापुत्त ने निगंथ दिघतपसी से कहा, 'शाबाश! तपस्सी! तुम गुरु के विद्वान शिष्य हो। तुमने संन्यासी गौतम से सही बात कही है। कठोर शारीरिक दंड के सामने यह नीच मानसिक दंड क्या है?' शारीरिक दंड ही सबसे अधिक निंदनीय है, न कि मौखिक या मानसिक दंड।

तब गृहस्थ उपली ने निगंथनतापुत्त से कहा, "आदरणीय महोदय, आपके विद्वान शिष्य ने संन्यासी गौतम से ठीक ही कहा है। कठोर शारीरिक दंड के सामने तुच्छ मानसिक दंड का क्या महत्व है? शारीरिक दंड ही सबसे बड़ा पाप है, और पाप का कारण मौखिक या मानसिक दंड से कहीं अधिक गंभीर है। आदरणीय महोदय, अब मैं संन्यासी गौतम से वाद-विवाद करूँगा। यदि संन्यासी गौतम उस बात पर अडिग रहे जो आदरणीय दिघतपसी ने उन्हें मनवाने के लिए कही है, तो जैसे कोई बलवान पुरुष मेमने को उसकी खाल से पकड़कर घसीटता है, वैसे ही जैसे कोई शराब बनाने वाला गहरे तालाब में बने बड़े गड्ढे को कान पकड़कर हिलाता है, वैसे ही हम भी संन्यासी गौतम को घसीटकर वाद-विवाद के लिए उकसाएँगे। जैसे साठ हाथ का हाथी गहरे तालाब में भांग धोने का आनंद लेता है, वैसे ही हम भी संन्यासी गौतम के साथ भांग धोने का आनंद लेंगे।" आदरणीय महोदय, अब हम इस विषय पर संन्यासी गौतम से बहस करने चलेंगे। 'जाओ, गृहस्थ, और संन्यासी गौतम से इस विषय पर बहस शुरू करो, या तो मैं जाकर बहस करूं, या तुम या आदरणीय दिघतापस्सी यह काम करो।'

निगंत दिघतपसी ने निगंतनतपुत्त से कहा, "आदरणीय महोदय, मुझे गृहस्थ उपाली का संन्यासी गौतम से इस विषय पर विवाद करना पसंद नहीं है। वह धूर्त है और जानता है कि दूसरे संप्रदायों के शिष्यों को कैसे फुसलाना है।" निगंत दिघतपसी ने कहा, "तपस्सी, यह संभव नहीं है कि गृहस्थ उपाली संन्यासी गौतम का शिष्य बन जाए। यह संभव है कि संन्यासी गौतम गृहस्थ उपाली का शिष्य बन जाए। या तो मैं इस विषय पर विवाद करने जाऊं, या गृहस्थ उपाली या निगंत दिघतपसी जाएं।" दूसरी और तीसरी बार तक दिघतपसी ने निगंतनतपुत्त से यही कहा, "आदरणीय महोदय, मुझे गृहस्थ उपाली का संन्यासी गौतम से इस विषय पर विवाद करना पसंद नहीं है। वह धूर्त है और जानता है कि दूसरे संप्रदायों के शिष्यों को कैसे फुसलाना है।" निगंत दिघतपसी ने कहा, "तपस्सी, यह संभव नहीं है कि गृहस्थ उपाली संन्यासी गौतम का शिष्य बन जाए।" ऐसा संभव है कि संन्यासी गौतम गृहस्थ उपली के शिष्य बन जाएं। इस बात पर बहस करने के लिए या तो मैं जाऊं, या गृहस्थ उपली जाऊं, या दिघतपसी जाऊं।

उपली, जो गृहस्थ थे, ने कहा, 'आदरणीय गुरुदेव, मैं जाता हूँ।' वे अपनी सीट से उठे, निगंथनतापुत्त की पूजा और परिक्रमा की और पवारिका के आम के बाग में जाकर भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब उपली ने भगवान बुद्ध से कहा, 'आदरणीय गुरुदेव, क्या निगंथ दिघतापसी यहाँ आए थे?' 'गृहस्थ, निगंथ दिघतापसी यहाँ आए थे।' 'आदरणीय गुरुदेव, क्या निगंथ दिघतापसी से कोई बातचीत हुई?' 'हाँ, निगंथ दिघतापसी से बातचीत हुई।' 'आदरणीय गुरुदेव, निगंथ दिघतापसी से क्या बातचीत हुई?' भगवान बुद्ध ने अपने और निगंथ दिघतापसी के बीच हुई पूरी बातचीत सुनाई। 'अच्छा, आदरणीय तपसी ने भगवान बुद्ध से अच्छी बातें कही हैं। वे गुरु के विद्वान शिष्य हैं।' यह घृणित मानसिक दंड, कठोर शारीरिक दंड की तुलना में क्या है? शारीरिक दंड ही सबसे अधिक निंदनीय है, न कि यह मौखिक या मानसिक दंड। 'गृहस्थ, यदि आप इस सत्य पर दृढ़ होकर परामर्श लें, तो इस विषय पर चर्चा होगी।' 'आदरणीय महोदय, मैं सत्य पर दृढ़ होकर परामर्श लूंगा, इस विषय पर चर्चा होगी।'

'गृहस्थ, एक निगंत गंभीर रूप से बीमार है, वह ठंडा पानी नहीं पी सकता और गर्म पानी चाहता है, ठंडा पानी भी उसे नहीं मिलता। निगंतनतापुत्र कहाँ जन्म लेंगे?' 'आदरणीय महोदय, कुछ देवता हैं जिन्हें मानसिक प्राणी कहा जाता है, वह उनके साथ जन्म लेगा। इसका क्या कारण है? क्योंकि वह मन के बंधन में जकड़ा हुआ मरेगा।' 'गृहस्थ, उत्तर देने से पहले ध्यानपूर्वक विचार करें। आपने पहले जो कहा वह अब जो कह रहे हैं उससे मेल नहीं खाता। गृहस्थ, आपने ऐसे शब्द कहे हैं, मैं सत्य में स्थापित होकर परामर्श लूँगा और इस पर

चर्चा करूँगा।' 'आदरणीय महोदय, भगवान जो भी कहें, शारीरिक दंड सबसे अधिक निंदनीय है, चाहे वह पाप करने का हो या पाप करवाने का, मौखिक दंड और मानसिक दंड तो इसके सामने कुछ भी नहीं हैं।' 'गृहस्थ, एक निगंत सभी संयमों का पालन कर रहा है और उन संयमों के फल भोग रहा है।' इधर-उधर चलते हुए वह अनेक कीटों को मार डालता है। निगंथनातापुत्त उसे क्या परिणाम बताते हैं? 'हे पूज्यवर, यदि अनजाने में हो तो निगंथनातापुत्त कहते हैं कि यह इतना निंदनीय नहीं है।' 'गृहस्थ, यदि जानबूझकर हो तो?' 'तो यह सबसे अधिक निंदनीय है।' 'निगंथनातापुत्त जानबूझकर किए गए कार्य को किस श्रेणी में रखते हैं?' 'हे पूज्यवर, इसे मानसिक दंड के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।' 'गृहस्थ, उत्तर देने से पहले ध्यानपूर्वक विचार करें। आपने जो पहले कहा वह इन शब्दों से मेल नहीं खाता। गृहस्थ, आपने ऐसे शब्द कहे हैं, मैं सत्य में दृढ़ होकर परामर्श लूंगा और इस पर चर्चा करूंगा।' 'हे पूज्यवर, भगवान बुद्ध जो भी कहें, शारीरिक दंड ही सबसे अधिक निंदनीय है, न कि मौखिक और मानसिक दंड।'

'गृहस्थ, क्या नालंदा घनी आबादी वाला इलाका है? क्या नालंदा के लोग धनी और समृद्ध हैं?' 'आदरणीय महोदय, नालंदा घनी आबादी वाला इलाका है और यहाँ के लोग धनी और समृद्ध हैं।' 'एक तलवार लिए हुए आदमी आए और कहे, पल भर में मैं पूरे नालंदा को मांस का ढेर बना दूंगा। क्या वह ऐसा कर पाएगा?' 'आदरणीय महोदय, दस, बीस, तीस, चालीस आदमी भी पल भर में ऐसा नहीं कर पाएंगे। एक नीच आदमी क्या कर सकता है?' 'गृहस्थ, कोई संन्यासी या ब्राह्मण, अपने मन पर नियंत्रण रखते हुए, आए और कहे, एक पल में मैं पूरे नालंदा को राख कर दूंगा, एक ही दूषित इरादे से। गृहस्थ, क्या वह अपने मन पर नियंत्रण रखते हुए, एक पल में उसे राख कर पाएगा?' 'आदरणीय महोदय, मन पर वश में रखने वाला एक संन्यासी या ब्राह्मण एक ही दूषित इरादे से दस, बीस, तीस, चालीस या पचास नालंदों को भी राख कर सकता है। तो एक नीच नालंद की तो बात ही क्या?' 'गृहस्थ, उत्तर देने से पहले ध्यानपूर्वक विचार करें, आपके पहले के शब्द अब के शब्दों से मेल नहीं खाते। गृहस्थ, आपने ऐसे शब्द कहे हैं, मैं सत्य में स्थापित होकर परामर्श लूंगा और इस पर चर्चा होगी।' 'आदरणीय महोदय, भगवान जो भी कहें, शारीरिक दंड सबसे बड़ा दंड है और इसके विरुद्ध मौखिक और मानसिक दंड कुछ भी नहीं हैं।' 'गृहस्थ, क्या आप जानते हैं कि ये वन, दंडक, कलिंग, मेझ और मथंग, वन कैसे बने?' 'आदरणीय महोदय, मैं जानता हूँ।' 'आपने इसके बारे में क्या सुना है?' 'मैंने सुना है कि एक ऋषि के दूषित मन के कारण ये वन, दंडक, कलिंग, मेझ और मथंग वन बन गए हैं।' 'गृहस्थ, उत्तर देने से पहले ध्यानपूर्वक विचार करें, जो आपने पहले कहा था वह अब आपके कथन से मेल नहीं खाता। गृहस्थ, आपने ऐसे शब्द कहे हैं, मैं सत्य में दृढ़ होकर परामर्श लूंगा और इस पर चर्चा करूंगा।'

'आदरणीय महोदय, पहली तुलना से ही मैं संतुष्ट हो गया था। भगवान बुद्ध की विभिन्न व्याख्याएँ सुनने की इच्छा से मैंने जानबूझकर भगवान बुद्ध का विरोध किया था। अब मैं समझ गया हूँ, आदरणीय महोदय। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज़ फिर से अपनी जगह पर आ गई हो। जैसे कोई ढकी हुई चीज़ प्रकट हो गई हो। ऐसा लगता है जैसे किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया जा रहा हो। ऐसा लगता है जैसे अंधकार में तेल का दीपक जलाया गया हो, ताकि दृष्टिहीन लोग रूप देख सकें। शिक्षा को अनेक तरीकों से समझाया गया है। अब मैं भगवान बुद्ध, उनकी शिक्षा और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। आज से जीवन भर मुझे एक गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए।'

'गृहस्थ, कार्य करने से पहले एक बार फिर सोचो, तुम जैसे प्रसिद्ध लोगों को कार्य करने से पहले अच्छी तरह सोच लेना चाहिए।' 'आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध के इन शब्दों से मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ।' 'गृहस्थ, कार्य करने से पहले एक बार फिर सोचो, तुम जैसे प्रसिद्ध लोगों को कार्य करने से पहले अच्छी तरह सोच लेना चाहिए।' 'यदि किसी अन्य संप्रदाय के तपस्वियों ने मुझे अपना शिष्य बना लिया होता, तो वे मुझे नालंदा में घुमाते हुए कहते कि गृहस्थ उपली हमारे शिष्य बन गए हैं। यहाँ भगवान बुद्ध कहते हैं, 'गृहस्थ, कार्य करने से पहले एक बार फिर सोचो, तुम जैसे प्रसिद्ध लोगों को कार्य करने से पहले अच्छी तरह सोच लेना चाहिए। अब मैं दूसरी बार भगवान बुद्ध, उनके उपदेश और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। आज से जीवन भर मुझे शरण लेने वाले गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए।'

'गृहस्थ, आपका कुल लंबे समय से निगंतों के लिए एक स्रोत रहा है। मेरा मानना है कि आने वालों को भोजन का निवाला देना चाहिए।' 'आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध के इन शब्दों से मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ। गृहस्थ, आपका कुल लंबे समय से निगंतों के लिए एक स्रोत रहा है। मेरा मानना है कि आने वालों को भोजन का निवाला देना चाहिए।' 'आदरणीय महोदय, मैंने आपके बारे में यह सुना है। मुझे ही भेंट देनी चाहिए, दूसरों को नहीं। भेंट मेरे शिष्यों को देनी चाहिए, न कि अन्य संप्रदायों के शिष्यों को। मेरे शिष्यों को दी गई भेंट बहुत फलदायी होती है, परन्तु दूसरों को दी गई भेंट नहीं। यहाँ, भगवान बुद्ध मुझे निगंतों को भेंट देने की सलाह देते हैं। हमें इसका समय पता चल जाएगा। अब मैं तीसरी बार भगवान बुद्ध, उनके उपदेश और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। आज से जीवन भर मुझे शरण लेने वाले गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए।'

तब भगवान बुद्ध ने गृहस्थ उपली को दान देने, सद्गुणी बनने, स्वर्गिक अवस्थाओं, कामुकता के खतरों, अपवित्र वस्तुओं की नीचता और त्याग के लाभों के बारे में क्रमिक रूप से शिक्षा दी। तब भगवान बुद्ध ने जाना कि गृहस्थ उपली का मन तैयार, कोमल, अवरोधों से मुक्त, उदात्त और प्रसन्न था, और उन्होंने प्रबुद्धों का विशेष संदेश दिया: अप्रियता, उसका उत्पन्न होना, उसका निवारण और अप्रियता के

निवारण का मार्ग। जैसे एक शुद्ध, स्वच्छ वस्त्र रंग को समान रूप से सोख लेता है, उसी प्रकार शिक्षा की निष्कलंक, निर्मल आँख गृहस्थ उपली के समक्ष प्रकट हुई, जो वहीं विराजमान थी। जो कुछ भी उत्पन्न होता है, उसका अंत निश्चित है। गृहस्थ उपली ने तब और वहीं उस शिक्षा को पूर्णतः समझ लिया, उसे जान लिया और उसमें मर्मस्पर्शी हो गए। संदेह दूर हो गए, वे आत्मविश्वासी हो गए और उस अवस्था को प्राप्त कर लिया जहाँ उन्हें भगवान बुद्ध के विधान में अब किसी शिक्षक की आवश्यकता नहीं रही (* 1)। उन्होंने कहा, 'आदरणीय महोदय, अब हम चलते हैं, बहुत काम करना है।' 'गृहस्थ, जैसा आपको उचित लगे वैसा करो।'

तब गृहस्थ उपली भगवान बुद्ध की वाणी सुनकर प्रसन्न और प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा करते हुए घर चले गए। उन्होंने अपने द्वारपाल से कहा, 'मित्र द्वारपाल, आज से निगंतों और निगंतियों के लिए द्वार बंद है। यह भगवान बुद्ध, भिक्षुओं, भिक्षुणियों और गृहस्थ शिष्यों (पुरुष और स्त्री) के लिए खुला है। यदि कोई निगंत आए, तो आप उनसे कहें: 'महोदय, कृपया प्रतीक्षा करें, प्रवेश न करें। आज से गृहस्थ उपली गौतम संन्यासी के शिष्य बन गए हैं। निगंतों और निगंतियों के लिए द्वार बंद है। यह भगवान बुद्ध के भिक्षुओं, भिक्षुणियों और गृहस्थ शिष्यों (पुरुष और स्त्री) के लिए खुला है। यदि महोदय, आपको भोजन चाहिए, तो यहाँ खड़े हो जाइए।' द्वारपाल मान गया।

निगंत दिघतापस्सी ने सुना। गृहस्थ उपली ने संन्यासी गौतम का शिष्य बन गया है। वह निगंतनतपुत्त के पास गया और बोला, 'आदरणीय महोदय, मैंने सुना है कि गृहस्थ उपली संन्यासी गौतम का शिष्य बन गया है।' निगंतनतपुत्त ने कहा, 'तपस्सी, यह संभव नहीं है कि गृहस्थ उपली संन्यासी गौतम का शिष्य बन जाए। यह संभव है कि संन्यासी गौतम गृहस्थ उपली का शिष्य बन जाए।' दूसरी बार और तीसरी बार तक निगंत दिघतापस्सी ने निगंतनतपुत्त से कहा, 'आदरणीय महोदय, मैंने सुना है कि गृहस्थ उपली संन्यासी गौतम का शिष्य बन गया है। तपस्सी, यह संभव नहीं है कि गृहस्थ उपली संन्यासी गौतम का शिष्य बन जाए।' संभव है कि संन्यासी गौतम गृहस्थ उपली के शिष्य बन जाएं। 'आदरणीय महोदय, मैं जाकर देख लेता हूँ कि गृहस्थ उपली संन्यासी गौतम के शिष्य बने हैं या नहीं।' 'जाओ तपसी, पता करो कि गृहस्थ उपली संन्यासी गौतम के शिष्य हैं या नहीं?'

फिर निगंत दिघतपस्सी गृहस्थ उपाली के घर पहुँचे। द्वारपाल ने उन्हें दूर से आते देखा और कहा, 'महोदय, रुकिए। अंदर मत आइए। आज से गृहस्थ उपाली संन्यासी गौतम के शिष्य बन गए हैं। निगंतों और निगंतियों के लिए द्वार बंद है। यह द्वार भिक्षुओं, भिक्षुणियों, गृहस्थ शिष्यों, भगवान बुद्ध के पुरुष और स्त्री के लिए खुला है। यदि महाराज, आपको भोजन चाहिए तो यहीं खड़े रहिए। ला दिया जाएगा।' उन्होंने कहा, 'मित्र, मुझे भोजन की आवश्यकता नहीं है', और निगंतनतपुत्त के पास जाकर कहा, 'आदरणीय महोदय, यह सत्य है। गृहस्थ उपाली संन्यासी गौतम के शिष्य हैं। मैंने आपको पहले ही कहा था, आदरणीय महोदय, कि गृहस्थ उपाली का संन्यासी गौतम से इस विषय पर विवाद करना उचित नहीं है। वे धूर्त हैं और अन्य संप्रदायों के शिष्यों को लुभाना जानते हैं।' 'तपस्सी, यह संभव नहीं है कि गृहस्थ उपली, संन्यासी गौतम का शिष्य बन जाए। यह संभव है कि संन्यासी गौतम, गृहस्थ उपली का शिष्य बन जाए।' दूसरी और तीसरी बार तक निगंथ दिघतपस्सी ने निगंथनतपुत्त से कहा, 'आदरणीय महोदय, मुझे गृहस्थ उपली का संन्यासी गौतम से इस विषय पर विवाद करना अच्छा नहीं लगा। वह धूर्त है और जानता है कि दूसरे संप्रदायों के शिष्यों को कैसे फुसलाना है।' 'तपस्सी, यह संभव नहीं है कि गृहस्थ उपली, संन्यासी गौतम का शिष्य बन जाए। यह संभव है कि संन्यासी गौतम, गृहस्थ उपली का शिष्य बन जाए। मैं अब जाकर देखता हूँ कि गृहस्थ उपली ने संन्यासी गौतम की शिष्यता ग्रहण की है या नहीं।'

फिर निगंथनातापुत्त अपने कई शिष्यों के साथ गृहस्थ उपली के घर के पास पहुँचे। द्वारपाल ने उन्हें दूर से आते देखा और कहा, 'महोदय, कृपया प्रतीक्षा करें। अंदर न जाएँ। आज से गृहस्थ उपली, गौतम गौतम के शिष्य हैं। निगंथों और निगन्तियों के लिए द्वार बंद है। यह द्वार भिक्षुओं, भिक्षुणियों, गृहस्थ शिष्यों, भगवान बुद्ध के पुरुष और स्त्री के लिए खुला है। यदि आप भोजन करना चाहते हैं, तो यहाँ खड़े रहें। भोजन यहाँ लाया जाएगा।' 'तो हे मित्र द्वारपाल, गृहस्थ उपली के पास जाकर उन्हें बताएँ कि निगंथनातापुत्त अपने कई शिष्यों के साथ आए हैं और बाहर खड़े हैं। वे गृहस्थ उपली से मिलना चाहते हैं।' द्वारपाल गृहस्थ उपली के पास गया और उनसे कहा, 'महोदय, निगंथनातापुत्त अपने कई शिष्यों के साथ आए हैं और आपसे मिलना चाहते हैं।' 'तो फिर, हे मित्र द्वारपाल, मध्य कक्ष में बैठने की व्यवस्था करो।' द्वारपाल ने मध्य कक्ष में बैठने की व्यवस्था की और गृहस्थ उपाली को सूचित किया। 'मध्य कक्ष में बैठने की व्यवस्था हो गई है, अब आप अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं।' तब गृहस्थ उपाली मध्य कक्ष में आए और सबसे उत्तम स्थान चुनकर बैठ गए और द्वारपाल से कहा, 'हे मित्र द्वारपाल, निगंथनतापुत्त के पास जाकर उन्हें बताओ।' गृहस्थ उपाली ने कहा, 'महोदय, यदि आप प्रवेश करना चाहते हैं, तो प्रवेश करें।' निगंथनतापुत्त निगंतों के एक बड़े समूह के साथ मध्य कक्ष में प्रवेश कर गए।

गृहस्थ उपली पहले निगंथनातापुत्त को दूर से आते देख उनका स्वागत करने के लिए आगे बढ़ते, सबसे उत्तम आसन को अपने शॉल से पोंछते और उन्हें बिठाते। उस दिन वे सबसे उत्तम आसन पर बैठे और निगंथनातापुत्त से बोले, “महोदय, आसन तैयार हैं, यदि आप चाहें

तो बैठिए।" "गृहस्थ, क्या तुम पागल हो गए हो? क्या तुम पर किसी बुरी नज़र का साया है? तुम गौतम संन्यासी से वाद-विवाद करने गए थे, और ऐसे लौटे जैसे कोई अच्छी बहस कर बैठा हो। गृहस्थ, यह उस व्यक्ति के समान है जो अपने अंडकोष निकलवाने गया हो और निकलवाकर लौट आया हो। जैसे कोई अपनी आँखें निकलवाने गया हो और उन्हें निकलवाकर लौट आया हो। उसी प्रकार तुम गौतम संन्यासी से वाद-विवाद करने गए थे, और ऐसे लौटे जैसे कोई अच्छी बहस कर बैठा हो। गृहस्थ, तुम गौतम संन्यासी के बहकावे में आ गए हो।"

'महोदय, वे प्रलोभन अच्छे हैं। मेरे प्रियजनों और रक्त संबंधियों को भी उन प्रलोभनों से आकर्षित होना चाहिए। इससे उनका दीर्घकालिक कल्याण होगा। सभी योद्धाओं, सभी ब्राह्मणों, सभी गृहस्थों, सभी अछूतों को उन प्रलोभनों से आकर्षित होना चाहिए। इससे उनका दीर्घकालिक कल्याण होगा। इस देवी-देवताओं और मनुष्यों के संसार में, जिसमें मार, ब्रह्मा, संन्यासी, ब्राह्मण, देवी-देवता और मनुष्य हैं, सभी को उन प्रलोभनों से आकर्षित होना चाहिए। इससे उनका दीर्घकालिक कल्याण होगा। तब महोदय, मैं आपको एक तुलना दूंगा, क्योंकि कुछ बुद्धिमान लोग तुलना को समझ जाते हैं।'

पुराने समय में एक वृद्ध और कमजोर ब्राह्मण रहता था। उसकी एक युवती थी, जो प्रसव पीड़ा से गुजर रही थी। युवती ने ब्राह्मण से कहा, "ब्राह्मण, बाजार जाकर मेरे बेटे के लिए एक छोटा बंदर ले आओ।" तब ब्राह्मण ने कहा, "बच्चे के जन्म तक प्रतीक्षा करो। यदि बेटा हुआ तो मैं उसके लिए एक नर बंदर लाऊंगा और यदि बेटी हुई तो मैं एक मादा बंदर खरीदूंगा।" युवती ने बार-बार यही कहा, "ब्राह्मण, बाजार जाकर मेरे बेटे के लिए एक छोटा बंदर ले आओ।" तब ब्राह्मण ने फिर कहा, "बच्चे के जन्म तक प्रतीक्षा करो। यदि बेटा हुआ तो मैं उसके लिए एक नर बंदर लाऊंगा और यदि बेटी हुई तो मैं एक मादा बंदर खरीदूंगा।" क्योंकि ब्राह्मण अपनी युवती से बहुत प्रेम करता था, इसलिए उसने बाजार से एक नर बंदर खरीदा और कहा, "यह लो तुम्हारे बेटे के लिए एक छोटा बंदर।" तब उस युवती ने ब्राह्मण से कहा, "ब्राह्मण, इस बंदर को लेकर रंगसाज़ के पुत्र रत्तपानी के पास जाओ और इसे पीले रंग में रंगवा दो। रंग दोनों तरफ से अच्छी तरह से लगना चाहिए और अच्छी तरह से पॉलिश किया जाना चाहिए।" ब्राह्मण उस युवती से बहुत प्रेम करता था, इसलिए वह बंदर को लेकर रंगसाज़ के पुत्र रत्तपानी के पास गया और बोला, "मित्र रत्तपानी, मैं इस बंदर को पीले रंग में रंगवाना चाहता हूँ। रंग दोनों तरफ से अच्छी तरह से लगना चाहिए और अच्छी तरह से पॉलिश किया जाना चाहिए।" तब रंगसाज़ के पुत्र ने उससे कहा, "महोदय, यह छोटा बंदर रंगाई, रंगने और पॉलिश करने को सहन नहीं करेगा। उसी प्रकार, महाराज, मूर्ख निगंत का झगड़ा बुद्धिमानों को सहन नहीं होता। यह ज्ञानियों के लिए सहनीय नहीं है।" फिर, महाराज, इसी बीच वह ब्राह्मण नए वस्त्रों का एक जोड़ा लेकर रंगसाज़ के पुत्र रत्तपानी के पास जाकर बोला, "मित्र रत्तपानी, मुझे ये वस्त्र पीले रंग में रंगवाने हैं, दोनों तरफ से रंग अच्छी तरह से गूंथा हुआ और पॉलिश किया हुआ।" रंगसाज़ के पुत्र ने कहा, "महोदय, ये नए वस्त्र रंगाई, दोनों तरफ से गूंथने और पॉलिश करने को सहन कर सकते हैं।" इसी प्रकार, पूर्णतः ज्ञानी व्यक्ति का विवाद बुद्धिमानों के प्रति सहिष्णु होता है, मूर्खों के प्रति नहीं; वह वाद-विवाद और बुद्धिमानीपूर्ण परीक्षण को सहन करता है।

'हे गृहस्थ, राजा समेत सभी लोग आपको निगंथनतापुत्त का शिष्य जानते हैं। अब आप किसके शिष्य हैं?' यह सुनकर गृहस्थ उपली अपने आसन से उठे, अपने शॉल को एक कंधे पर ठीक किया और भगवान बुद्ध की ओर हाथ जोड़कर बोले, 'सुनिए महोदय, मैं कैसे भगवान बुद्ध का शिष्य बना...'

मैं भ्रममुक्त का शिष्य हूँ, तीर निकाला हुआ, विजयी (* 2)

वह शांत, धन्य, चिंतामुक्त, गुणी और बुद्धिमान हैं। संशय से मुक्त, सुखी, सांसारिक मामलों से विमुख। मैं उस पूर्ण पुरुष का शिष्य हूँ, जो अंतिम शरीर धारण करता है। अनुशासित सारथी को गुणों के बारे में कोई संदेह नहीं है। मैं उस सच्चे ज्ञानी का शिष्य हूँ, जो अहंकार रहित है। वह धैर्यवान, ज्ञान से परिपूर्ण, असीम रूप से गहन ऋषि हैं। मैं उस भगवान का शिष्य हूँ, जो बंधनों से मुक्त हैं। वह जंगल में एक मुक्त हाथी के समान हैं, शुद्ध, ध्वज नीचे रखे हुए (* 3)। मैं उस शांत भगवान का शिष्य हूँ, जो संसार के विचरण से परे हैं। वह ब्रह्मा के मार्ग पर चलने वाले सातवें ऋषि हैं। वह तीनों वेदों के ज्ञाता हैं। मैं उस भगवान का शिष्य हूँ। वह देवताओं के राजा सक्का के समान हैं। वह सचेत, बुद्धिमान, उदासीन और अनासक्त हैं। मैं उस शांत आत्मस्वामी का शिष्य हूँ। न आसक्ति रखने वाला, न त्यागने वाला, सर्वोच्च एकांतप्रिय मन वाला है। मैं उस व्यक्ति का शिष्य हूँ जिसने पार कर लिया है और दूसरों को पार करने में सहायता करता है। वह इस प्रकार चला गया है, जिसकी कोई तुलना नहीं है। मैं उस शांत, बुद्धिमान, चतुर, धन्य व्यक्ति का शिष्य हूँ, जिसने भोग-विलास का नाश करके ज्ञान प्राप्त किया है। मैं उस महान पुरुष का शिष्य हूँ, जिसकी कोई तुलना नहीं है।

'गृहस्थ, आपने गौतम गौतम की यह स्तुति कब लिखी?' 'महोदय, जब विभिन्न प्रकार के फूलों का ढेर लगा होता है, तो एक कुशल मालाकार सुंदर माला बना लेता है। उसी प्रकार, महाराज, भगवान गौतम के असंख्य गुण हैं, हजारों गुण हैं, जब उपयुक्त हो तो उनका उल्लेख क्यों न किया जाए।'

तब निगंथनातापुत्त, भगवान को उस समय और वहीं दिए गए सम्मान को सुनकर अचेत होकर, गर्म रक्त की उल्टी कर दी।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.7कुक्कुरावटिका सुत्त(57)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली भाषा से Ñanamoli Thera द्वारा अनुवादित

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान कोलियन देश में रह रहे थे: वहाँ कोलियनों का एक नगर है जिसका नाम हलिद्दवासना है।

2. तब कोलियन वंश के पुत्र और बैल-पुण्य तपस्वी पुन्ना और नग्न कुत्ते-पुण्य तपस्वी सेनिया भगवान बुद्ध के पास गए। पुन्ना ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए, जबकि नग्न कुत्ते-पुण्य तपस्वी सेनिया ने भगवान बुद्ध से अभिवादन किया। जब शिष्टाचारपूर्ण और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त हुई, तो वे भी एक तरफ कुत्ते की तरह सिकुड़कर बैठ गए। पुन्ना के बैठते ही उन्होंने भगवान बुद्ध से पूछा, “हे आदरणीय, यह नग्न कुत्ते-पुण्य तपस्वी सेनिया कठिन कार्य करते हैं: वे अपना भोजन जमीन पर फेंके जाने पर खाते हैं। उन्होंने लंबे समय से कुत्ते-पुण्य का पालन किया है। उनका गंतव्य क्या होगा? उनका भविष्य का मार्ग क्या होगा?”1

"बस करो, पुन्ना, इसे यहीं छोड़ दो। मुझसे यह मत पूछो।"

दूसरी बार... तीसरी बार पुन्ना नामक बैल-वकील तपस्वी ने भगवान बुद्ध से पूछा: "हे पूज्यवर, यह नग्न कुत्ते-वकील सेनिया वह कठिन कार्य करता है: वह अपना भोजन तब खाता है जब उसे जमीन पर फेंका जाता है। उसने लंबे समय से इस कुत्ते-वकील के कर्तव्य को अपनाया और अभ्यास किया है। उसका गंतव्य क्या होगा? उसका भविष्य का मार्ग क्या होगा?"

"अच्छा, पुन्ना, चूंकि मैं तुम्हें यह कहकर मना नहीं सकता कि 'बस करो, पुन्ना, इसे यहीं छोड़ दो। मुझसे यह मत पूछो,' इसलिए मैं तुम्हें जवाब दूंगा।"

3. "यहाँ, पुन्ना, कोई व्यक्ति पूरी तरह से और बिना किसी रोक-टोक के कुत्ते के कर्तव्य का पालन करता है, वह कुत्ते की आदत को पूरी तरह से और बिना किसी रोक-टोक के अपनाता है, वह कुत्ते के मन को पूरी तरह से और बिना किसी रोक-टोक के अपनाता है, वह कुत्ते के व्यवहार को पूरी तरह से और बिना किसी रोक-टोक के अपनाता है। ऐसा करने के बाद, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह कुत्तों के साथ पुनः प्रकट होता है। लेकिन यदि उसका विचार ऐसा है: 'इस सद्गुण या कर्तव्य या तपस्या या धार्मिक जीवन से मैं एक (महान) देवता या कोई (छोटा) देवता बन जाऊँगा,' तो यह उसके मामले में गलत विचार है। अब मैं कहता हूँ कि गलत विचार वाले व्यक्ति के लिए दो गंतव्य हैं: नरक या पशु गर्भ। इसलिए, पुन्ना, यदि उसका कुत्ते का कर्तव्य पूर्ण हो जाता है, तो वह उसे कुत्तों के साथ ले जाएगा; यदि नहीं, तो वह उसे नरक ले जाएगा।"

4. यह सुनकर नग्न भिक्षुणी सेनिया रोने लगी। तब भगवान बुद्ध ने कोलियन वंश के पुत्र और भिक्षुणी पुन्ना से कहा, "पुन्ना, जब मैंने तुमसे कहा था, 'बस करो पुन्ना, इसे यहीं छोड़ दो। मुझसे यह मत पूछो,' तब भी मैं तुम्हें मना नहीं सका।"

"आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध के ऐसा कहने पर मैं रो नहीं रहा हूँ। फिर भी, मैंने बहुत समय से इस कर्तव्य का पालन किया है। आदरणीय महोदय, एक पुन्ना है, जो कोलियों का पुत्र और बैल-भक्त तपस्वी है: उसने भी बहुत समय से इस कर्तव्य का पालन किया है। उसका गंतव्य क्या होगा? उसका भविष्य क्या होगा?"

"बस करो, सेनिया, इसे यहीं छोड़ दो। मुझसे यह मत पूछो।" दूसरी बार... तीसरी बार नग्न भिक्षु-भक्त सेनिया ने भगवान बुद्ध से पूछा: "हे पूज्यवर, एक पुन्ना है, जो कोलियन वंश का पुत्र और भिक्षु-भक्त है; वह लंबे समय से भिक्षु-भक्त की सेवा में लगा हुआ है। उसका गंतव्य क्या होगा? उसका भविष्य क्या होगा?"

"अच्छा, सेनिया, चूंकि मैं तुम्हें यह कहकर मना नहीं सकता कि 'बस करो, सेनिया, इसे यहीं छोड़ दो। मुझसे यह मत पूछो,' इसलिए मैं तुम्हें जवाब दूंगा।"

5. "यहाँ, सेनिया, कोई व्यक्ति बैल के कर्तव्य को पूर्णतः और बिना किसी संकोच के निभाता है, वह बैल की आदतों को पूर्णतः और बिना किसी संकोच के अपनाता है, वह बैल के मन को पूर्णतः और बिना किसी संकोच के अपनाता है, वह बैल के व्यवहार को पूर्णतः और बिना किसी संकोच के अपनाता है। ऐसा करने के बाद, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह बैलों के समूह में पुनः प्रकट होता है। परन्तु यदि उसका विचार ऐसा हो: 'इस सद्गुण या कर्तव्य या तपस्या या धार्मिक जीवन से मैं (महान) देवता या कोई (छोटा) देवता बन जाऊँगा,' तो यह उसके मामले में गलत विचार है। अब गलत विचार रखने वाले के लिए दो गंतव्य हैं, मैं कहता हूँ: नरक या पशु गर्भ। अतः, सेनिया, यदि उसका बैल का कर्तव्य पूर्ण हो जाता है, तो वह उसे बैलों के समूह में ले जाएगा; यदि नहीं, तो वह उसे नरक में ले जाएगा।"

6. यह सुनकर कोलियन वंश के पुत्र और बैलगाड़ी की सेवा करने वाले तपस्वी पुन्ना रोने लगे। तब भगवान बुद्ध ने नग्न कुत्ते की सेवा करने वाले तपस्वी सेनिया से कहा, "सेनिया, जब मैंने तुमसे कहा था, 'बस करो, सेनिया, इसे यहीं छोड़ दो। मुझसे यह मत पूछो,' तब भी मैं तुम्हें मना नहीं सका।"

"आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध के ऐसा कहने पर मैं रो नहीं रहा हूँ। फिर भी, मैंने यह बैल-पालन का कर्तव्य बहुत समय से अपनाया और उसका पालन किया है। आदरणीय महोदय, मुझे भगवान बुद्ध पर पूरा भरोसा है: 'भगवान बुद्ध मुझे इस प्रकार धम्म की शिक्षा देने में सक्षम हैं कि मैं इस बैल-पालन का कर्तव्य छोड़ दूँ और यह नग्न कुत्ते-पालन करने वाला तपस्वी सेनिया भी उस कुत्ते-पालन का कर्तव्य छोड़ दे।'"

7. "तो, पुन्ना, मेरी बात ध्यान से सुनो और समझो।"

“जी, पूज्यवर,” उन्होंने उत्तर दिया। भगवान बुद्ध ने यह कहा:

8. "पुन्ना, प्रत्यक्ष ज्ञान से स्वयं को जानने के बाद मैंने चार प्रकार के कर्मों की घोषणा की है। वे चार क्या हैं? एक है अंधकारमय कर्म, जिसका फल अंधकारमय होता है; एक है प्रकाशमय कर्म, जिसका फल प्रकाशमय होता है; एक अंधकारमय और प्रकाशमय कर्म, जिसका फल अंधकारमय और प्रकाशमय होता है; और एक ऐसा कर्म है जो न अंधकारमय है और न प्रकाशमय, जिसका फल अंधकारमय और प्रकाशमय दोनों है, और जो कर्मों की समाप्ति की ओर ले जाता है।"

9. "अंधकारमय कर्म और उसके फल क्या हैं? यहाँ कोई व्यक्ति कष्ट से ग्रस्त शारीरिक क्रिया करता है,2 वह कष्ट से ग्रस्त वाणी करता है, वह कष्ट से ग्रस्त मानसिक क्रिया करता है। ऐसा करने से वह कष्टमय संसार में पुनः प्रकट होता है। ऐसा होने पर, कष्टदायी संपर्क3 उसे स्पर्श करते हैं। इनके स्पर्श से वह नरक में रहने वाले प्राणियों के समान पूर्णतः पीड़ादायक कष्टदायी भावनाओं का अनुभव करता है। इस प्रकार किसी प्राणी का पुनः प्रकट होना उसके कर्मों के कारण होता है: वह अपने द्वारा किए गए कर्मों के कारण पुनः प्रकट होता है। पुनः प्रकट होने पर, संपर्क उसे स्पर्श करते हैं। अतः मैं कहता हूँ कि प्राणी अपने कर्मों के उत्तराधिकारी होते हैं। इसे अंधकारमय कर्म और उसके फल कहा जाता है।"

10. "और उज्ज्वल कर्म और उज्ज्वल परिपक्वता क्या है? यहाँ कोई व्यक्ति कष्ट रहित शारीरिक क्रिया करता है, कष्ट रहित वाणी करता है, कष्ट रहित मानसिक क्रिया करता है। ऐसा करने से वह कष्ट रहित संसार में पुनः प्रकट होता है। जब ऐसा होता है, तो उसे कष्ट रहित स्पर्श प्राप्त होते हैं। इन स्पर्शों से वह सुख रहित, पूर्णतः सुखद भावों का अनुभव करता है, जैसे तेजस्वी महिमा के देवता सुभकिन्हाओं के मामले में होता है। इस प्रकार किसी प्राणी का पुनः प्रकट होना उसके कर्मों के कारण होता है: वह अपने द्वारा किए गए कर्मों के कारण पुनः प्रकट होता है। पुनः प्रकट होने पर उसे स्पर्श प्राप्त होते हैं। इस प्रकार मैं कहता हूँ कि प्राणी अपने कर्मों के उत्तराधिकारी होते हैं। इसे उज्ज्वल कर्म और उज्ज्वल परिपक्वता कहते हैं।"

11. "अंधकारमय कर्म और अंधकारमय परिपक्वता क्या है? यहाँ कोई व्यक्ति ऐसी शारीरिक क्रिया करता है जो पीड़ा से युक्त भी है और नहीं भी... मौखिक क्रिया... मानसिक क्रिया जो पीड़ा से युक्त भी है और नहीं भी। ऐसा करने से वह पीड़ामय और पीड़ारहित दोनों संसारों में पुन: प्रकट होता है। जब ऐसा होता है, तो पीड़ादायक और पीड़ारहित दोनों प्रकार के संपर्क उसे स्पर्श करते हैं। इन संपर्कों से स्पर्श होने पर, वह मनुष्यों, कुछ देवताओं और कुछ अभावग्रस्त अवस्थाओं के निवासियों की तरह मिश्रित सुख और दुख के साथ पीड़ादायक और पीड़ारहित दोनों प्रकार की भावनाएँ अनुभव करता है। इस प्रकार किसी प्राणी का पुन: प्रकट होना उसके कर्मों के कारण होता है: वह अपने द्वारा किए गए कर्मों के कारण पुन: प्रकट होता है। पुन: प्रकट होने पर, संपर्क उसे स्पर्श करते हैं। इस प्रकार मैं कहता हूँ कि प्राणी अपने कर्मों के उत्तराधिकारी हैं। इसे अंधकारमय कर्म कहा जाता है।" गहरे और चमकीले रंग में पकना।

12. "वह कर्म क्या है जो न अंधकारमय है और न प्रकाशमय, तथा जिसका फल न अंधकारमय है और जो कर्मों की समाप्ति की ओर ले जाता है? इन (तीन प्रकार के कर्मों) के संदर्भ में, अंधकारमय फलदायक कर्म को त्यागने की इच्छा, प्रकाशमय फलदायक कर्म को त्यागने की इच्छा, और अंधकारमय एवं प्रकाशमय फलदायक कर्म को त्यागने की इच्छा, जो अंधकारमय और न प्रकाशमय दोनों है: इसे ही अंधकारमय और न प्रकाशमय फलदायक कर्म कहा जाता है।"

"प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा स्वयं को अनुभव करने के बाद मैंने जिन चार प्रकार के कर्मों की घोषणा की है, वे ये हैं।"

13. जब यह कहा गया, तो कोलियन वंश के पुत्र और एक सन्यासी पुन्ना ने भगवान बुद्ध से कहा, "महान, गुरु गौतम! महान, गुरु गौतम! गुरु गौतम ने अनेक तरीकों से धम्म को स्पष्ट किया है, मानो वे गिरी हुई चीज़ को सीधा कर रहे हों, छिपे हुए को प्रकट कर रहे हों, खोए हुए को रास्ता दिखा रहे हों, दृष्टिहीनों के लिए अंधकार में दीपक जला रहे हों ताकि वे रूप देख सकें।"

14. "मैं गुरु गौतम की शरण में, धम्म में और भिक्षुओं के संघ में जाता हूँ। आज से गुरु गौतम मुझे एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें जिसने जीवन भर उनकी शरण ली है।"

15. परन्तु नग्न भिक्षु-श्राप सेनिया ने कहा: "महान, गुरु गौतम!... धम्म स्पष्ट हो गया है... दृष्टि रखने वालों के लिए रूपों को देखने के लिए।"

16. "मैं गुरु गौतम की शरण में, धम्म में और भिक्षुओं के संघ में जाता हूँ। मैं गुरु गौतम के मार्गदर्शन में दीक्षा और पूर्ण प्रवेश प्राप्त करना चाहता हूँ।"4

17. "सेनिया, जो पहले किसी अन्य संप्रदाय से संबंधित था और इस धम्म एवं अनुशासन में प्रवेश और पूर्ण दीक्षा चाहता है, चार महीने की परिवीक्षा पर रहता है। चार महीने की समाप्ति पर, जो भिक्षु अपने मन में संतुष्ट होते हैं, वे उसे संन्यासी जीवन में प्रवेश और भिक्षु अवस्था में पूर्ण दीक्षा प्रदान करते हैं। इस (परिवीक्षा अवधि) में मुझे व्यक्तियों में एक अंतर का ज्ञान हुआ है।"

"आदरणीय महोदय, यदि वे जो पहले किसी अन्य संप्रदाय से संबंधित थे और इस धम्म एवं अनुशासन में प्रवेश और पूर्ण दीक्षा चाहते हैं, चार महीने की परिवीक्षा पर रहें और चार महीने के अंत में जो भिक्षु अपने मन से संतुष्ट हों, वे उन्हें संन्यासी जीवन में दीक्षा और भिक्षु अवस्था में पूर्ण प्रवेश दें, तो मैं चार साल की परिवीक्षा पर रहूंगा और चार साल के अंत में जो भिक्षु अपने मन से संतुष्ट हों, वे मुझे संन्यासी जीवन में दीक्षा और भिक्षु अवस्था में पूर्ण प्रवेश दें।"

18. नग्न कुत्ते के समान सन्यासी सेनिया ने भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में संन्यास लिया और पूर्ण दीक्षा प्राप्त की। पूर्ण दीक्षा के कुछ ही समय बाद, एकांतवास में, एकांत में, लगनशील, उत्साही और संयमी रहते हुए, पूज्य सेनिया ने प्रत्यक्ष ज्ञान से स्वयं को उसी क्षण और यहीं पर उस सर्वोच्च लक्ष्य, पवित्र जीवन में प्रवेश किया और निवास किया, जिसके लिए कुलवासी गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश करते हैं। उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ: "जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, अब आगे कुछ नहीं करना है।"

और आदरणीय सेनिया अरहंतों में से एक बन गईं।

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान राजगाह के पास बांस के जंगल में, गिलहरियों के अभयारण्य में ठहरे हुए थे।

तब राजकुमार अभय निगंथ नटपुत्त के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, निगंथ नटपुत्त ने उनसे कहा, "आइए, राजकुमार। ध्यानमग्न गौतम के वचनों का खंडन कीजिए, और आपके बारे में यह प्रशंसनीय समाचार दूर-दूर तक फैल जाएगा: 'इतने महान, इतने शक्तिशाली ध्यानमग्न गौतम के वचनों का खंडन राजकुमार अभय ने किया!'"

लेकिन हे पूज्यवर, मैं चिंतनशील गौतम के शब्दों का खंडन कैसे करूँ—जो इतने महान और शक्तिशाली हैं?

"अब आओ, राजकुमार। ध्यानमग्न गौतम के पास जाओ और वहाँ पहुँचकर यह कहो: 'हे भगवान, क्या तथागत ऐसे शब्द बोलते हैं जो दूसरों को अप्रिय और नापसंद हों?' यदि ध्यानमग्न गौतम इस प्रकार पूछे जाने पर उत्तर दें, 'तथागत ऐसे शब्द बोलते हैं जो दूसरों को अप्रिय और नापसंद हों,' तो तुम्हें कहना चाहिए, 'हे भगवान, आपमें और सामान्य लोगों में क्या अंतर है? क्योंकि सामान्य लोग भी ऐसे शब्द बोलते हैं जो दूसरों को अप्रिय और नापसंद हों।'" लेकिन यदि चिंतनशील गौतम से इस प्रकार पूछे जाने पर वे उत्तर दें, 'तथागत ऐसे शब्द नहीं कहेंगे जो दूसरों को अप्रिय और अप्रिय लगें,' तो आपको कहना चाहिए, 'हे भगवान, आपने देवदत्त के विषय में ऐसा क्यों कहा कि "देवदत्त दरिद्रता की ओर जा रहा है, देवदत्त नरक की ओर जा रहा है, देवदत्त युगों तक जलता रहेगा, देवदत्त असाध्य है"? क्योंकि देवदत्त आपके इन शब्दों से व्यथित और असंतुष्ट हो गया था।' जब आप चिंतनशील गौतम से यह दोतरफा प्रश्न पूछेंगे, तो वे इसे न तो पचा पाएंगे और न ही उगल पाएंगे। ठीक वैसे ही जैसे किसी व्यक्ति के गले में दो सींगों वाला शाहबलूत अटक जाए: वह उसे न तो निगल पाएगा और न ही उगल पाएगा। उसी प्रकार, जब आप चिंतनशील गौतम से यह दोतरफा प्रश्न पूछेंगे, तो वे इसे न तो पचा पाएंगे और न ही उगल पाएंगे।

“जैसा आप कहें, आदरणीय,” कहकर राजकुमार अभय अपने आसन से उठे, निगंथ नटपुत्त को प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और फिर भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने सूर्य की ओर देखा और सोचा, “आज भगवान बुद्ध के वचनों का खंडन करने का समय नहीं है। कल अपने घर में मैं भगवान बुद्ध के वचनों को गलत साबित करूँगा।” इसलिए उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “कृपा करके, तीन अन्य लोगों के साथ, कल के भोजन के मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करें।”

भगवान बुद्ध मौन रहकर सहमत हो गए।

तब राजकुमार अभय ने भगवान की सहमति को समझते हुए, अपने स्थान से उठकर भगवान को प्रणाम किया, उनकी परिक्रमा की और चले गए।

फिर, रात्रि बीत जाने के बाद, भगवान बुद्ध ने सुबह सवेरे अपने वस्त्र धारण किए और अपना कुंड और बाहरी वस्त्र लेकर राजकुमार अभय के घर गए। वहाँ पहुँचकर वे एक तैयार आसन पर बैठ गए। राजकुमार अभय ने अपने हाथों से भगवान बुद्ध को उत्तम भोजन परोसा और उन्हें स्वादिष्ट व्यंजन परोसे। फिर, जब भगवान बुद्ध ने भोजन कर लिया और अपना हाथ कुंड से हटा लिया, तो राजकुमार अभय एक नीची कुर्सी पर एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, क्या तथागत ऐसे शब्द कहेंगे जो दूसरों को अप्रिय और अप्रिय लगें?”

"राजकुमार, इसका कोई स्पष्ट हां या ना में जवाब नहीं है।"

"तो यहीं पर, भगवान, निगांथाओं का नाश हो जाता है।"

लेकिन राजकुमार, आप ऐसा क्यों कहते हैं, 'तो यहीं पर, स्वामी, निगांथा नष्ट हो जाते हैं'?

"हे भगवान, कल ही मैं निगंथ नटपुत्त के पास गया था और उन्होंने मुझसे कहा... 'आइए, राजकुमार। ध्यानमग्न गौतम के पास जाइए और वहाँ पहुँचकर यह कहिए: "हे भगवान, क्या तथागत ऐसे शब्द कहेंगे जो दूसरों को अप्रिय और अप्रिय लगें?"... जैसे किसी के गले में दो सींगों वाला शाहबलूत अटक जाए, तो वह उसे न तो निगल पाएगा और न ही थूक पाएगा। ठीक उसी प्रकार, जब आप ध्यानमग्न गौतम से यह दोतरफा प्रश्न पूछेंगे, तो वे इसे न तो निगल पाएंगे और न ही थूक पाएंगे।"

उस समय एक शिशु राजकुमार की गोद में पीठ के बल लेटा हुआ था। तब भगवान बुद्ध ने राजकुमार से कहा, "हे राजकुमार, क्या विचार है: यदि यह शिशु, तुम्हारी या दाई की लापरवाही से, अपने मुँह में कोई छड़ी या कंकड़ डाल ले, तो तुम क्या करोगे?"

"मैं उसे निकाल डालूँगा, भगवान। अगर मैं उसे तुरंत नहीं निकाल सका, तो उसके सिर को अपने बाएँ हाथ में पकड़कर और अपने दाहिने हाथ की उंगली को मोड़कर, मैं उसे निकाल डालूँगा, भले ही इसका मतलब खून बहाना हो। ऐसा क्यों? क्योंकि मुझे उस छोटे लड़के के लिए सहानुभूति है।"

"इसी प्रकार, राजकुमार:

[1] तथागत जिन शब्दों को असत्य, असत्य, अलाभकारी (या: लक्ष्य से जुड़ा हुआ नहीं), अप्रिय और दूसरों के लिए अप्रिय जानते हैं, वे उन्हें नहीं कहते।

[2] तथागत जिन शब्दों को तथ्यात्मक, सत्य, अलाभकारी, अप्रिय और दूसरों के लिए अप्रिय जानते हैं, वे उन्हें नहीं कहते।

[3] तथागत जिन शब्दों को तथ्यात्मक, सत्य, लाभकारी, लेकिन दूसरों के लिए अप्रिय और अप्रिय जानते हैं, उनके मामले में उन्हें कहने का उचित समय पता होता है।

[4] तथागत जिन शब्दों को असत्य, असत्य, लाभहीन जानते हैं, परन्तु दूसरों को प्रिय और सुखद मानते हैं, तो वे उन्हें नहीं कहते।

[5] तथागत जिन शब्दों को तथ्यात्मक, सत्य, अलाभकारी, लेकिन दूसरों को प्रिय और सुखद जानते हैं, वे उन्हें नहीं कहते।

[6] तथागत जिन शब्दों को तथ्यात्मक, सत्य, लाभकारी और दूसरों को प्रिय एवं सुखद मानते हैं, उन्हें कहने का उचित समय उन्हें ज्ञात होता है। ऐसा क्यों है? क्योंकि तथागत को जीवों के प्रति सहानुभूति है।

हे भगवान, जब ज्ञानी कुलीन या पुरोहित, गृहस्थ या ध्यानमग्न व्यक्ति प्रश्न तैयार करके तथागत के पास आते हैं और उनसे पूछते हैं, तो क्या यह तर्क उन्हें पहले से ही सूझता है - 'यदि मेरे पास आने वाले लोग यह पूछते हैं, तो मैं - इस प्रकार पूछे जाने पर - इस प्रकार उत्तर दूंगा' - या तथागत मौके पर ही उत्तर देते हैं?

"तो फिर, राजकुमार, मैं आपसे एक प्रतिप्रश्न पूछूंगा। आप अपनी इच्छानुसार उत्तर दें। आपका क्या विचार है: क्या आप रथ के भागों में कुशल हैं?"

"जी, स्वामी। मैं रथ के पुर्जों में कुशल हूँ।"

और आप क्या सोचते हैं: जब लोग आकर आपसे पूछते हैं, 'रथ के इस हिस्से का नाम क्या है?' तो क्या यह तर्क आपके मन में पहले से आता है - 'यदि मुझसे पूछने वाले यह सवाल पूछते हैं, तो मैं - इस प्रकार पूछे जाने पर - इस तरह जवाब दूंगा' - या आप मौके पर ही जवाब देते हैं?

"हे भगवान, मैं रथ के भागों के ज्ञान के लिए प्रसिद्ध हूँ। रथ के सभी भाग मुझे भली-भांति ज्ञात हैं। मैं मौके पर ही उत्तर दे देता हूँ।"

"इसी प्रकार, हे राजकुमार, जब ज्ञानी कुलीन या पुरोहित, गृहस्थ या ध्यानमग्न व्यक्ति प्रश्न तैयार करके तथागत के पास आते हैं और उनसे पूछते हैं, तो वे तुरंत उत्तर दे देते हैं। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि तथागत को धम्म का पूर्ण ज्ञान है। धम्म के पूर्ण ज्ञान के कारण ही वे तुरंत उत्तर दे देते हैं।"

यह सुनकर राजकुमार अभय ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान! आप महान हैं! जिस प्रकार कोई उलटी हुई वस्तु को सीधा कर दे, छिपी हुई वस्तु को प्रकट कर दे, भटके हुए को राह दिखा दे, या अंधेरे में दीपक जलाकर आँखों वाले को आकृतियाँ दिखा दे, उसी प्रकार भगवान बुद्ध ने अनेक तर्कों के द्वारा धम्म को स्पष्ट किया है। मैं भगवान बुद्ध की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षुओं के संघ में आता हूँ। भगवान बुद्ध मुझे आज से जीवन भर अपने गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.9बहुवेदनीय सुत्त(59)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे।

तब बढ़ई पंचकंगा आदरणीय उदयिन के पास गया और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे उसने आदरणीय उदयिन से कहा, "आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध ने कितनी भावनाओं का वर्णन किया है?"

"हे गृहस्थ, भगवान बुद्ध ने तीन भावों की बात की है: सुख का भाव, दुख का भाव और न सुख का भाव। ये तीन भाव हैं जिनकी बात भगवान बुद्ध ने की है।"

यह सुनकर बढ़ई पंचकंगा ने पूज्य उदयिन से कहा, "भगवान बुद्ध ने तीन भावों की बात नहीं की है। उन्होंने दो भावों की बात की है: सुख और दुख। जहाँ तक सुख और दुख दोनों के न होने की भावना की बात है, भगवान बुद्ध ने इसे परिष्कृत सुख बताया है।"

दूसरी बार, पूज्य उदयिन ने बढ़ई पंचकंगा से कहा, "गृहस्थ, भगवान ने दो भावों की बात नहीं की है। उन्होंने तीन भावों की बात की है..."

दूसरी बार, बढ़ई पंचकंगा ने पूज्य उदयिन से कहा, "भगवान बुद्ध ने तीन भावों की बात नहीं की है। उन्होंने दो भावों की बात की है..."

तीसरी बार, पूज्य उदयिन ने बढ़ई पंचकंगा से कहा, "गृहस्थ, भगवान ने दो भावों की बात नहीं की है। उन्होंने तीन भावों की बात की है..."

तीसरी बार, बढ़ई पंचकंगा ने पूज्य उदयिन से कहा, "भगवान बुद्ध ने तीन भावों की बात नहीं की है। उन्होंने दो भावों की बात की है..."

न तो पूज्य उदयिन पंचकंगा नामक बढ़ई को समझाने में सफल हुए, और न ही पंचकंगा नामक बढ़ई पूज्य उदयिन को समझाने में सफल हुए।

अब, पूज्य आनंद ने पूज्य उदयिन और पंचकंग के बीच हो रही इस चर्चा को सुन लिया। इसलिए वे भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध को उदयिन और पंचकंग के बीच हुई पूरी चर्चा बताई।

[भगवान बुद्ध ने कहा:] "आनंद, वह व्याख्या सत्य थी जिसे बढ़ई पंचकंग ने पूज्य उदयिन से स्वीकार नहीं किया। और वह व्याख्या भी सत्य थी जिसे पूज्य उदयिन ने बढ़ई पंचकंग से स्वीकार नहीं किया। एक व्याख्या है जिसके द्वारा मैंने दो भावों की बात की है, एक व्याख्या है जिसके द्वारा मैंने तीन भावों ... पाँच भावों ... छह भावों ... अठारह भावों ... छत्तीस भावों ... अट्ठारह भावों की बात की है।1 इस प्रकार मैंने व्याख्या के माध्यम से धम्म का उपदेश दिया है। जब मैंने व्याख्या के माध्यम से धम्म का उपदेश दिया है, तो यह अपेक्षित है कि जब ऐसे लोग हों जो एक-दूसरे द्वारा कही और कही गई अच्छी बातों से सहमत न हों, तो वाद-विवाद, झगड़े और विवाद होंगे, और वे एक-दूसरे को जीभ की तलवार से घायल करते रहेंगे। इस प्रकार मैंने व्याख्या के माध्यम से धम्म का उपदेश दिया है। जब मैंने व्याख्या के

माध्यम से धम्म का उपदेश दिया है, तो यह अपेक्षित है कि जब ऐसे लोग हों जो सहमत हों, एक-दूसरे की कही और समझाई गई अच्छी बातों को स्वीकार करने और मानने से, वे सद्भाव और शिष्टाचार के साथ, बिना झगड़े के, पानी में मिले दूध की तरह, एक-दूसरे को मैत्रीपूर्ण दृष्टि से देखते हुए रहेंगे।

आनंद, ये पाँच इंद्रिय-संबंधी सूत्र हैं। कौन से पाँच? आँखों से अनुभव किए जा सकने वाले रूप - मनभावन, सुखद, आकर्षक, प्रेमवर्धक, इच्छा जगाने वाले, लुभाने वाले। कानों से अनुभव की जा सकने वाली ध्वनियाँ... नाक से अनुभव की जा सकने वाली सुगंधें... जीभ से अनुभव किए जा सकने वाले स्वाद... शरीर से अनुभव की जा सकने वाली स्पर्श संवेदनाएँ - मनभावन, सुखद, आकर्षक, प्रेमवर्धक, इच्छा जगाने वाले, लुभाने वाले। अब इन पाँच इंद्रिय-संबंधी सूत्रों पर निर्भर जो भी सुख या आनंद उत्पन्न होता है, उसे इंद्रिय-संबंधी सुख कहते हैं। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यह प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च सुख है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत एक अन्य सुख है।

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु - इंद्रिय सुखों से पूर्णतः विरक्त, अकुशल गुणों से विरक्त - प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है। यह इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यह प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च आनंद है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है।"

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक स्थिति वह है जब एक भिक्षु निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों को शांत करके द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। यह उससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यह प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च आनंद है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है।"

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, समाधि के शांत होने पर भी, समभाव, सजग और सतर्क रहता है तथा शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके बारे में श्रेष्ठजनों ने कहा है, 'समभाव और सजग रहकर वह सुखद अवस्था में रहता है।' यह उससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यह प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च आनंद है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है।"

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, सुख और दुख का त्याग करके—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने पर—चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख। यह इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यह प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च आनंद है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है।"

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक ऐसा मामला है जिसमें एक भिक्षु, भौतिक रूप की धारणाओं से पूर्णतः परे जाकर, प्रतिरोध की धारणाओं के लुप्त होने और विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, 'अनंत अंतरिक्ष' को अनुभव करते हुए, अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। यह इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यह प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च आनंद है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है।"

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक ऐसा मामला है जिसमें एक भिक्षु, अनंत अंतरिक्ष के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, 'अनंत चेतना' का अनुभव करते हुए, अनंत चेतना के आयाम में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। यह उससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यह प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च आनंद है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है।"

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु चेतना की अनंतता के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, शून्यता के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। यह उससे

भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यह प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च आनंद है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है।"

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक ऐसा मामला है जिसमें एक भिक्षु, शून्यता के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, उस आयाम में प्रवेश करता है और स्थिर रहता है जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष। यह उससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। यद्यपि कुछ लोग कह सकते हैं, 'यही प्राणियों द्वारा अनुभव किया जाने वाला सर्वोच्च आनंद है,' मैं उन्हें इससे सहमत नहीं मानता। ऐसा क्यों? क्योंकि इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है।"

"और हे आनंद, इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, न तो बोध और न ही अबोध के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, बोध और संवेदना की समाप्ति में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। यह इससे भी अधिक चरम और परिष्कृत आनंद है। अब, हे आनंद, यह संभव है कि अन्य मतों के कुछ साधक कहें, 'गौतम ध्यानमग्न व्यक्ति बोध और संवेदना की समाप्ति की बात करते हैं और फिर भी उसे आनंद कहते हैं। यह क्या है? यह कैसे हो सकता है?' जब वे ऐसा कहें, तो उन्हें यह कहा जाना चाहिए, 'ऐसा नहीं है, मित्रों, कि भगवान बुद्ध केवल सुखद अनुभूति को ही आनंद में शामिल करते हैं। जहाँ कहीं भी आनंद पाया जाता है, चाहे किसी भी रूप में हो, भगवान बुद्ध उसे आनंद ही कहते हैं।'"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य आनंद बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 6.10अपन्नका सुत्त(60)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

अंतर्वस्तु
1अस्तित्व और गैर-अस्तित्व
2क्रिया और निष्क्रियता
3कारणता और अकारणता
4निराकार
5बनने की समाप्ति
6चार व्यक्ति
7गुण
8संयम की भावना
9सजगता और सतर्कता
10बाधाओं को त्यागना
11चार ध्यान
12तीन ज्ञान
मैंने सुना है कि एक बार जब भगवान बुद्ध भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ कोसलों में भ्रमण कर रहे थे, तब वे साला नामक ब्राह्मण गांव में पहुंचे थे। ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना, "साहसिक गुरु गौतम—शाक्यों के पुत्र, शाक्य वंश से निकलकर कोसल पर्वतमाला में भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ भ्रमण करते हुए—सला पहुँचे हैं। और उस गुरु गौतम के बारे में यह उत्तम ख्याति फैली है: 'वे वास्तव में एक धन्य पुरुष हैं, एक अरहंत हैं, सही मायने में आत्म-जागृत हैं: ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण, सुगठित, ब्रह्मांड के ज्ञाता, वश में होने के लिए तैयार व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक, मानव और दिव्य प्राणियों के गुरु, जागृत, धन्य। उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा इस संसार को इसके देवताओं, मारों और ब्रह्माओं सहित, इसकी पीढ़ियों को उनके ध्यानियों और पुरोहितों सहित, उनके शासकों और आम लोगों सहित ज्ञात कराया है। उन्होंने धर्म की व्याख्या आरंभ में प्रशंसनीय, मध्य में प्रशंसनीय और अंत में प्रशंसनीय तरीके से की है; उन्होंने पवित्र जीवन को उसके विवरण और सार दोनों में पूर्णतः परिपूर्ण, अत्यंत शुद्ध रूप से समझाया है। ऐसे योग्य व्यक्ति को देखकर अच्छा लगा।

अतः साला के ब्राह्मण गृहस्थ भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर कुछ ने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। कुछ ने उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया और सौहार्दपूर्ण अभिवादन एवं शिष्टाचार के बाद एक तरफ बैठ गए। कुछ ने अपने हृदय पर हाथ रखकर प्रणाम किया। कुछ ने अपना नाम और कुल बताया। कुछ मौन बैठे रहे।

जब वे वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उनसे पूछा, "गृहस्थों, क्या कोई ऐसा शिक्षक है जो आपको पसंद हो, जिसमें आपको दृढ़ विश्वास मिला हो?"

"नहीं, भगवान, हमें कोई ऐसा शिक्षक नहीं मिला जो हमें पसंद हो और जिसमें हमें ठोस विश्वास मिला हो।"

"चूंकि आपको कोई मनचाहा शिक्षक नहीं मिला है, इसलिए आपको इस सुरक्षित शिक्षा को अपनाना और अभ्यास करना चाहिए, क्योंकि यह सुरक्षित शिक्षा - जब स्वीकार और अपनाई जाती है - तो आपके दीर्घकालिक कल्याण और खुशी के लिए होगी।"

और सुरक्षित विकल्प वाली शिक्षा क्या है?

अस्तित्व और गैर-अस्तित्व

ए. "कुछ ब्राह्मण और ध्यानी इस सिद्धांत को मानते हैं, इस दृष्टिकोण को धारण करते हैं: 'कुछ भी दिया नहीं जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता, कुछ भी बलिदान नहीं किया जाता। अच्छे या बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं होता। न यह संसार है, न परलोक, न माता है, न पिता, न स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी; न कोई पुरोहित या ध्यानी जो सही मार्ग अपनाकर और सही अभ्यास करके इस संसार और परलोक का प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर स्वयं इसका प्रचार करते हैं।'1

बी. "कुछ ब्राह्मण और ध्यानी, उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के सीधे विरोध में बोलते हुए कहते हैं: 'जो दिया जाता है, जो अर्पित किया जाता है, जो बलिदान किया जाता है, वह सब कुछ है। अच्छे और बुरे कर्मों के फल और परिणाम होते हैं। यह संसार है और परलोक है। माता-पिता हैं। स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी हैं; ऐसे पुजारी और ध्यानी हैं जो सही मार्ग अपनाते हुए और सही अभ्यास करते हुए, स्वयं इस संसार और परलोक को जानने और अनुभव करने के बाद इसकी घोषणा करते हैं।'

"गृहस्थों, आपका क्या विचार है? क्या ये ब्राह्मण और ध्यानमग्न व्यक्ति एक दूसरे के सीधे विरोध में नहीं बोलते?"

"हाँ भगवान।"

ए1. "अब, गृहस्थों, इस सिद्धांत को मानने वाले उन ब्राह्मणों और ध्यानियों का यह मत है कि 'कुछ भी दिया नहीं जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता, कुछ भी बलिदान नहीं किया जाता। अच्छे या बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं होता। न यह संसार है, न परलोक, न माता है, न पिता, न स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी; न कोई पुरोहित या ध्यानी जो सही आचरण और सही अभ्यास करते हुए इस संसार और परलोक का प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर स्वयं इसका वर्णन करते हैं' - यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन तीन कुशल कार्यों - अच्छे शारीरिक आचरण, अच्छे वाणी आचरण, अच्छे मानसिक आचरण - का त्याग करके वे इन तीन अकुशल कार्यों को अपनाएंगे और उनका अभ्यास करेंगे: बुरे शारीरिक आचरण, बुरे वाणी आचरण, बुरे मानसिक आचरण। ऐसा क्यों है? क्योंकि वे पूजनीय ब्राह्मण और ध्यानी अकुशल कार्यों में कमियां, पतन और अपवित्रता नहीं देखते; न ही कुशल कार्यों में त्याग के पुरस्कार, जो शुद्धि के समान हैं, देखते हैं।"

A2. "चूंकि वास्तव में परलोक है, इसलिए 'परलोक नहीं है' सोचने वाले का यह विचार गलत है। चूंकि वास्तव में परलोक है, इसलिए जब वह यह संकल्प लेता है कि 'परलोक नहीं है', तो यह उसका गलत संकल्प है। चूंकि वास्तव में परलोक है, इसलिए जब वह यह कहता है कि 'परलोक नहीं है', तो यह उसका गलत वचन है। चूंकि वास्तव में परलोक है, इसलिए जब वह कहता है कि 'परलोक नहीं है', तो वह परलोक के ज्ञान रखने वाले अरहंतों का विरोधी बन जाता है। चूंकि वास्तव में परलोक है, इसलिए जब वह किसी दूसरे को यह विश्वास दिलाता है कि 'परलोक नहीं है', तो यह असत्य धम्म का प्रचार है। और असत्य धम्म के इस प्रचार में वह स्वयं को श्रेष्ठ और दूसरों को नीचा दिखाता है। उसके पूर्व के सभी अच्छे गुण त्याग दिए जाते हैं, जबकि बुरे गुण प्रकट होते हैं। और यह गलत विचार, गलत संकल्प, गलत वचन, अरहंतों का विरोध, असत्य धम्म का प्रचार, आत्म-प्रशंसा, और..." दूसरों की निंदा करना: ये अनेक दुष्ट और अकुशल गतिविधियाँ गलत दृष्टिकोण के कारण ही घटित होती हैं।

ए3. इस संबंध में, एक बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है: 'यदि कोई परलोक नहीं है, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, इस पूजनीय व्यक्ति ने स्वयं को सुरक्षित कर लिया है। परन्तु यदि परलोक है, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, यह पूजनीय व्यक्ति अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोकों में, नरक में पुनः प्रकट होगा। यदि हम परलोक की बात न भी करें, और उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों के सत्य कथन न भी हों, तब भी इस पूजनीय व्यक्ति की इस लोक में बुद्धिमानों द्वारा बुरी आदतों और गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के रूप में आलोचना की जाती है: एक ऐसा व्यक्ति जो अस्तित्वहीनता के सिद्धांत को मानता है। यदि वास्तव में परलोक है, तो इस पूजनीय व्यक्ति ने दो बार गलत कदम उठाया है: एक तो इस लोक में कि बुद्धिमानों द्वारा उनकी इस लोक में आलोचना की जाती है, और दूसरा इस लोक में कि शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, वे अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोकों में पुनः प्रकट होंगे। नरक के लोकों में। इस प्रकार, यह सुरक्षित मानी जाने वाली शिक्षा, जब उसके द्वारा ठीक से समझी और अपनाई नहीं जाती, तो (केवल) एक पक्ष को ही कवर करती है और कुशल होने की संभावना को छोड़ देती है।

बी1. "अब, गृहस्थों, इस सिद्धांत को मानने वाले उन ब्राह्मणों और ध्यानियों में यह मत है कि 'जो दिया जाता है, जो अर्पित किया जाता है, जो बलिदान किया जाता है, सब कुछ है। अच्छे और बुरे कर्मों के फल और परिणाम होते हैं। यह संसार और परलोक है। माता-पिता हैं। स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी हैं; पुरोहित और ध्यानी हैं जो सही आचरण और सही अभ्यास करते हुए, स्वयं इस संसार और परलोक को जानने और अनुभव करने के बाद इसकी घोषणा करते हैं' - यह अपेक्षा की जा सकती है कि वे इन तीन अकुशल कार्यों - बुरे शारीरिक आचरण, बुरे वाणी आचरण और बुरे मानसिक आचरण - से दूर रहकर इन तीन कुशल कार्यों को अपनाएंगे और उनका अभ्यास करेंगे: अच्छा शारीरिक आचरण, अच्छा वाणी आचरण और अच्छा मानसिक आचरण। ऐसा क्यों है? क्योंकि वे पूजनीय ब्राह्मण और ध्यानी अकुशल कार्यों में कमियां, पतन और अपवित्रता देखते हैं; और कुशल कार्यों में त्याग के पुरस्कार देखते हैं, जो शुद्धि के समान हैं।"

बी2. क्योंकि वास्तव में परलोक है, इसलिए 'परलोक है' का विचार करने वाले का दृष्टिकोण सही है। क्योंकि वास्तव में परलोक है, जब वह यह संकल्प लेता है कि 'परलोक है', तो यही उसका सही संकल्प है। क्योंकि वास्तव में परलोक है, जब वह यह कथन करता है कि 'परलोक है', तो यही उसका सही वाणी है। क्योंकि वास्तव में परलोक है, जब वह कहता है कि 'परलोक है', तो वह परलोक के ज्ञान रखने वाले अरहंतों का विरोध नहीं करता। क्योंकि वास्तव में परलोक है, जब वह दूसरों को यह विश्वास दिलाता है कि 'परलोक है', तो यही सच्चे धम्म का प्रचार है। और सच्चे धम्म के प्रचार में वह स्वयं को श्रेष्ठ नहीं मानता और न ही दूसरों को नीचा दिखाता है। उसकी पिछली सभी बुरी आदतें छूट जाती हैं, जबकि अच्छी आदतें प्रकट होती हैं। और यह सही दृष्टिकोण, सही संकल्प, सही वाणी, अरहंतों का विरोध न करना, सच्चे धम्म का प्रचार करना, स्वयं को श्रेष्ठ न मानना... स्वयं का सम्मान करना और दूसरों का अपमान न करना: ये अनेक कुशल गतिविधियाँ सही दृष्टिकोण पर निर्भर करती हैं।

B3. इस संबंध में, एक बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है: 'यदि परलोक है, तो यह पूजनीय व्यक्ति - मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर - स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होगा। भले ही हम परलोक की बात न करें, और उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का सत्य कथन न हो, फिर भी इस पूजनीय व्यक्ति की इस दुनिया में बुद्धिमानों द्वारा अच्छे आचरण और सही दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के रूप में प्रशंसा की जाती है: एक ऐसा व्यक्ति जो अस्तित्व के सिद्धांत का पालन करता है। यदि वास्तव में परलोक है, तो इस पूजनीय व्यक्ति ने दो बार अच्छा दांव खेला है, एक तो इस दुनिया में बुद्धिमानों द्वारा उनकी प्रशंसा की जाती है; और दूसरा - मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर - वे स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होंगे। इस प्रकार, यह सुरक्षित शिक्षा, जब अच्छी तरह से समझ ली जाती है और अपना ली जाती है, तो दोनों पक्षों को कवर करती है, और अकुशल व्यक्ति की संभावना को पीछे छोड़ देती है।'

क्रिया और निष्क्रियता

ए. "कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं: 'किसी का अंग-भंग करने या दूसरों से करवाने में, किसी को पीड़ा पहुँचाने या दूसरों से पीड़ा पहुँचाने में, किसी को दुख पहुँचाने या दूसरों से पीड़ा पहुँचाने में, किसी को सताने या दूसरों से सताने के लिए कहने में, किसी को डराने या दूसरों से डराने के लिए कहने में, किसी की जान लेने में, किसी की वस्तु न लेने में, घरों में सेंध लगाने में, धन लूटने में, चोरी करने में, राजमार्गों पर घात लगाने में, व्यभिचार करने में, झूठ बोलने में - कोई बुराई नहीं होती। यदि कोई तेज धार वाले चक्र से इस पृथ्वी पर सभी जीवित प्राणियों को मांस के एक ढेर में बदल दे, तो भी उस कारण से कोई बुराई नहीं होगी, कोई बुराई नहीं आएगी। यहाँ तक कि यदि कोई गंगा के दाहिने किनारे पर हत्या करने और दूसरों से हत्या करवाने, अंग-भंग करने और दूसरों से अंग-भंग करवाने, यातना देने और दूसरों से यातना करवाने के लिए चलता रहे, तो भी उस कारण से कोई बुराई नहीं होगी, कोई बुराई नहीं आएगी। यहाँ तक कि यदि कोई गंगा के बाएँ किनारे पर चलते हुए, दान करते हुए और दूसरों से दान करवाते हुए, त्याग करते हुए और दूसरों से त्याग करवाते हुए, उस कार्य से कोई पुण्य प्राप्त नहीं होगा, कोई पुण्य नहीं मिलेगा। उदारता, आत्मसंयम, संयम और सत्यवादी वाणी के माध्यम से भी उस कार्य से कोई पुण्य प्राप्त नहीं होगा, कोई पुण्य नहीं मिलेगा।3

ख. कुछ ब्राह्मण और ध्यानी, उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के सीधे विरोध में बोलते हुए कहते हैं: 'अपना काम करने या दूसरों से करवाने में, अंग-भंग करने या दूसरों से करवाने में, यातना देने या दूसरों से यातना दिलवाने में, दुःख पहुँचाने या दूसरों से दुःख दिलवाने में, पीड़ा पहुँचाने या दूसरों से पीड़ा दिलवाने में, डराने या दूसरों से डराने-धमकाने में, जान लेने में, बिना दी हुई वस्तु लेने में, घरों में सेंध लगाने में, धन लूटने में, चोरी करने में, राजमार्गों पर घात लगाने में, व्यभिचार करने में, झूठ बोलने में - व्यक्ति बुराई करता है। यदि कोई तेज धार वाले चक्र से इस पृथ्वी पर सभी जीवित प्राणियों को मांस के एक ढेर में बदल दे, तो उस कारण से बुराई उत्पन्न होगी, बुराई का आगमन होगा। यदि कोई गंगा के दाहिने किनारे पर हत्या करने और दूसरों से हत्या करवाने, अंग-भंग करने और दूसरों से अंग-भंग करवाने, यातना देने और दूसरों से यातना दिलवाने के लिए जाए, तो उस कारण से बुराई उत्पन्न होगी, बुराई का आगमन होगा। बुराई का आगमन होगा। यदि कोई गंगा के बाएँ किनारे पर चलता रहे, दान करता रहे और दूसरों से दान करवाता रहे, बलिदान करता रहे और दूसरों से बलिदान करवाता रहे, तो उस कार्य से पुण्य प्राप्त होगा, पुण्य का आगमन होगा। उदारता, आत्मसंयम, संयम और सत्यवादी वाणी के माध्यम से उस कार्य से पुण्य प्राप्त होता है, पुण्य का आगमन होता है।

"गृहस्थों, आपका क्या विचार है? क्या ये ब्राह्मण और ध्यानमग्न व्यक्ति एक दूसरे के सीधे विरोध में नहीं बोलते?"

"हाँ भगवान।"

ए1. "अब, गृहस्थों, इस सिद्धांत को मानने वाले उन ब्राह्मणों और ध्यानियों में यह मत है कि 'कर्म करने या दूसरों से कर्म करवाने में, अंग-भंग करने या दूसरों से अंग-भंग करवाने में, यातना देने या दूसरों से यातना दिलवाने में... कोई बुराई नहीं होती... उदारता, आत्म-संयम, संयम और सत्यवादी वाणी से कोई पुण्य नहीं मिलता, कोई पुण्य प्राप्त नहीं होता' - यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन तीन कुशल कार्यों - अच्छे शारीरिक आचरण, अच्छे वाणी आचरण, अच्छे मानसिक आचरण - का त्याग करके वे इन तीन अकुशल कार्यों को अपनाएंगे और उनका अभ्यास करेंगे: बुरे शारीरिक आचरण, बुरे वाणी आचरण, बुरे मानसिक आचरण। ऐसा क्यों है? क्योंकि वे पूजनीय ब्राह्मण और ध्यानी अकुशल कार्यों में कमियां, पतन और अपवित्रता नहीं देखते; न ही कुशल कार्यों में त्याग के पुरस्कार, जो शुद्धि के समान हैं।"

ए2. क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जो यह सोचता है कि 'कोई अगला कर्म नहीं है', उसका यह विचार गलत है। क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जब वह यह संकल्प लेता है कि 'कोई कर्म नहीं है', तो यह उसका गलत संकल्प है। क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जब वह यह कहता है कि 'कोई कर्म नहीं है', तो यह उसका गलत वचन है। क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जब वह कहता है कि 'कोई कर्म नहीं है', तो वह कर्म का उपदेश देने वाले अरहंतों का विरोधी बन जाता है। क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जब वह किसी दूसरे को यह विश्वास दिलाता है कि 'कोई कर्म नहीं है', तो यह असत्य धम्म का प्रचार है। और असत्य धम्म के इस प्रचार में वह स्वयं को श्रेष्ठ और दूसरों को नीचा दिखाता है। उसकी पहले की सभी अच्छी आदतें छूट जाती हैं, जबकि बुरी आदतें प्रकट हो जाती हैं। और यह गलत विचार, गलत संकल्प, गलत वचन, अरहंतों का विरोध, असत्य धम्म का प्रचार, स्वयं को श्रेष्ठ दिखाना और दूसरों को नीचा दिखाना: ये अनेक दुष्ट, अकुशल कर्म उसके जीवन में आते हैं। गलत दृष्टिकोण पर आधारित खेल।

ए3. इस संबंध में, एक बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है: 'यदि कोई कर्म नहीं है, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, इस पूजनीय व्यक्ति ने स्वयं को सुरक्षित कर लिया है। परन्तु यदि कर्म है, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, यह पूजनीय व्यक्ति अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनः प्रकट होगा। यदि हम कर्म की बात न भी करें, और उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों के सत्य कथन न भी हों, तब भी इस पूजनीय व्यक्ति की इस समय बुद्धिमानों द्वारा बुरी आदतों और गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के रूप में आलोचना की जाती है: एक ऐसा व्यक्ति जो कर्म के सिद्धांत का पालन करता है। यदि वास्तव में कर्म है, तो इस पूजनीय व्यक्ति ने दो बार गलत दांव खेला है: एक तो इस समय बुद्धिमानों द्वारा उसकी आलोचना की जाती है; और दूसरा यह कि शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, वह अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, नरक में पुनः प्रकट होगा। इस प्रकार यह सुरक्षित दांव जब कोई व्यक्ति शिक्षण को ठीक से समझ नहीं पाता और उसे ठीक से अपना नहीं पाता, तो वह (केवल) एक ही पहलू को समेटता है और कुशल होने की संभावना को अधूरा छोड़ देता है।

बी1. "अब, गृहस्थों, इस सिद्धांत को मानने वाले ब्राह्मणों और ध्यानियों में यह मत है कि 'अपराध करने या दूसरों से करवाने, अंग-भंग करने या दूसरों से करवाने, यातना देने या दूसरों से यातना दिलवाने में... व्यक्ति बुराई करता है... उदारता, आत्म-संयम, संयम और सत्यवादी वाणी के द्वारा उस कारण से पुण्य प्राप्त होता है, पुण्य की प्राप्ति होती है' - यह अपेक्षा की जा सकती है कि इन तीन अकुशल कार्यों - बुरे शारीरिक आचरण, बुरे वाणी आचरण, बुरे मानसिक आचरण - का त्याग करके वे इन तीन कुशल कार्यों को अपनाएंगे और उनका अभ्यास करेंगे: अच्छा शारीरिक आचरण, अच्छा वाणी आचरण, अच्छा मानसिक आचरण। ऐसा क्यों है? क्योंकि वे पूजनीय ब्राह्मण और ध्यानी अकुशल कार्यों में कमियां, पतन और अपवित्रता देखते हैं; और कुशल कार्यों में त्याग के पुरस्कार देखते हैं, जो शुद्धि के समान हैं।"

बी2. क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए 'कर्म है' सोचने वाले का दृष्टिकोण सही है। क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जब वह 'कर्म है' का संकल्प लेता है, तो यही उसका सही संकल्प है। क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जब वह 'कर्म है' कहता है, तो यही उसका सही वाणी है। क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जब वह कहता है कि 'कर्म है', तो वह कर्म का उपदेश देने वाले अरहंतों का विरोध नहीं करता। क्योंकि वास्तव में कर्म है, इसलिए जब वह दूसरे को 'कर्म है' का विश्वास दिलाता है, तो यही सच्चे धम्म का विश्वास दिलाना है। और सच्चे धम्म का विश्वास दिलाने में वह स्वयं को श्रेष्ठ नहीं मानता और न ही दूसरों को नीचा दिखाता है। उसकी पिछली सभी बुरी आदतें छूट जाती हैं, जबकि अच्छी आदतें प्रकट होती हैं। और यह सही दृष्टिकोण, सही संकल्प, सही वाणी, अरहंतों का विरोध न करना, सच्चे धम्म का विश्वास दिलाना, स्वयं को श्रेष्ठ न मानना और दूसरों को नीचा न दिखाना: ये अनेक कुशल कर्म क्रियाशील हो जाते हैं। सही दृष्टिकोण पर निर्भरता में।

B3. इस संबंध में, एक बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है: 'यदि कर्म है, तो यह पूजनीय व्यक्ति - मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर - स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होगा। यदि हम कर्म की बात न भी करें, और उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का सत्य कथन न भी हो, तब भी यह पूजनीय व्यक्ति इस समय बुद्धिमानों द्वारा अच्छे आचरण और सही दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के रूप में प्रशंसित है: एक ऐसा व्यक्ति जो कर्म के सिद्धांत का पालन करता है। यदि वास्तव में परलोक है, तो इस पूजनीय व्यक्ति ने दो बार अच्छा प्रयास किया है, एक तो इस समय बुद्धिमानों द्वारा उसकी प्रशंसा की जाती है; और दूसरा - मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर - वह स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होगा। इस प्रकार, यह सुरक्षित शिक्षा, जब अच्छी तरह से समझ ली जाती है और अपना ली जाती है, तो दोनों पक्षों को कवर करती है, और अकुशल व्यक्ति की संभावना को पीछे छोड़ देती है।'

कारणता और अकारणता

ए. "कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं: 'प्राणियों के अपवित्र होने का कोई कारण-कार्य संबंध नहीं है, कोई आवश्यक शर्त नहीं है। प्राणी बिना कारण-कार्य संबंध, बिना आवश्यक शर्त के अपवित्र होते हैं। प्राणियों के शुद्ध होने का कोई कारण-कार्य संबंध नहीं है, कोई आवश्यक शर्त नहीं है। प्राणी बिना कारण-कार्य संबंध, बिना आवश्यक शर्त के शुद्ध होते हैं। कोई शक्ति नहीं है, कोई प्रयास नहीं है, कोई मानवीय ऊर्जा नहीं है, कोई मानवीय प्रयास नहीं है। सभी जीवित प्राणी, सभी जीव, सभी आत्माएं शक्तिहीन, बलहीन, प्रयासहीन हैं। भाग्य, संयोग और प्रकृति के परिवर्तन के अधीन, वे जन्म के छह महान वर्गों में सुख और दुख का अनुभव करते हैं।'4

बी. कुछ ब्राह्मण और ध्यानी, उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के सीधे विरोध में बोलते हुए कहते हैं: 'कारण-कार्य संबंध है, प्राणियों के अपवित्र होने के लिए आवश्यक शर्त है। प्राणी कारण-कार्य संबंध और आवश्यक शर्त से अपवित्र होते हैं। प्राणियों के शुद्धिकरण के लिए भी कारण-कार्य संबंध है, आवश्यक शर्त है। प्राणी कारण-कार्य संबंध और आवश्यक शर्त से शुद्ध होते हैं। बल है, प्रयास है, मानवीय ऊर्जा है, मानवीय प्रयास है। ऐसा नहीं है कि सभी जीव, सभी जीवन, सभी प्राणी, सभी आत्माएं शक्तिहीन, बलहीन, प्रयासहीन हैं; या यह कि भाग्य, संयोग और प्रकृति के परिवर्तन के अधीन, वे जन्म के छह महान वर्गों में सुख और दुख का अनुभव करते हैं।'

"गृहस्थों, आपका क्या विचार है? क्या ये ब्राह्मण और ध्यानमग्न व्यक्ति एक दूसरे के सीधे विरोध में नहीं बोलते?"

"हाँ भगवान।"

ए1. "अब, गृहस्थों, इस सिद्धांत को मानने वाले उन ब्राह्मणों और ध्यानियों का यह मत है कि 'प्राणियों के अपवित्र होने का कोई कारण या आवश्यक शर्त नहीं है... भाग्य, संयोग और प्रकृति के परिवर्तन के अधीन, वे जन्म के छह प्रमुख वर्गों में सुख और दुख का अनुभव करते हैं' - यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इन तीन कुशल कार्यों - अच्छे शारीरिक आचरण, अच्छे वाणी आचरण, अच्छे मानसिक आचरण - का त्याग करके वे इन तीन अकुशल कार्यों को अपनाएंगे और उनका अभ्यास करेंगे: बुरे शारीरिक आचरण, बुरे वाणी आचरण, बुरे मानसिक आचरण। ऐसा क्यों है? क्योंकि वे पूजनीय ब्राह्मण और ध्यानी अकुशल कार्यों में कमियां, पतन और अपवित्रता नहीं देखते; न ही कुशल कार्यों में त्याग के पुरस्कार, जो शुद्धि के समान हैं।"

ए2. क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध मौजूद है, इसलिए 'कारण-कार्य संबंध नहीं है' सोचने वाले का यह विचार गलत है। क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध मौजूद है, इसलिए जब वह यह संकल्प लेता है कि 'कारण-कार्य संबंध नहीं है,' तो यह उसका गलत संकल्प है। क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध मौजूद है, इसलिए जब वह यह कथन कहता है कि 'कारण-कार्य संबंध नहीं है,' तो यह उसका गलत वचन है। क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध मौजूद है, इसलिए जब वह कहता है कि 'कारण-कार्य संबंध नहीं है,' तो वह उन अरहंतों का विरोधी बन जाता है जो कारण-कार्य संबंध का उपदेश देते हैं। क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध मौजूद है, इसलिए जब वह किसी दूसरे को यह विश्वास दिलाता है कि 'कारण-कार्य संबंध नहीं है,' तो यह असत्य धम्म का प्रचार है। और असत्य धम्म के इस प्रचार में वह स्वयं को श्रेष्ठ और दूसरों को नीचा दिखाता है। उसके पूर्व में जो भी अच्छे गुण थे, वे त्याग जाते हैं, जबकि बुरे गुण प्रकट होते हैं। और यह गलत विचार, गलत संकल्प, गलत वचन, अरहंतों का विरोध, असत्य धम्म का प्रचार, स्वयं को श्रेष्ठ दिखाना... स्वयं और दूसरों की निंदा: ये अनेक दुष्ट और अकुशल गतिविधियाँ गलत दृष्टिकोण के कारण ही उत्पन्न होती हैं।

ए3. इस संबंध में, एक बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है: 'यदि कारण-कार्य संबंध नहीं है, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, इस पूजनीय व्यक्ति ने स्वयं को सुरक्षित कर लिया है। परन्तु यदि कारण-कार्य संबंध है, तो शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, यह पूजनीय व्यक्ति अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोकों में, नरक में पुनः प्रकट होगा। यदि हम कारण-कार्य संबंध की बात न भी करें, और उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों के सत्य कथन न भी हों, तब भी इस पूजनीय व्यक्ति की इस लोक में बुद्धिमानों द्वारा बुरी आदतों और गलत दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के रूप में आलोचना की जाती है: एक ऐसा व्यक्ति जो अकारणता के सिद्धांत को मानता है। यदि वास्तव में परलोक है, तो इस पूजनीय व्यक्ति ने दो बार गलत कदम उठाया है: एक तो इस लोक में कि बुद्धिमानों द्वारा उनकी इस लोक में आलोचना की जाती है, और दूसरा इस लोक में कि शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के समय, वे अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, निम्न लोकों में पुनः प्रकट होंगे। नरक के लोकों में। इस प्रकार, यह सुरक्षित मानी जाने वाली शिक्षा, जब उसके द्वारा ठीक से समझी और अपनाई नहीं जाती, तो (केवल) एक पक्ष को ही कवर करती है और कुशल होने की संभावना को छोड़ देती है।

बी1. "अब, गृहस्थों, इस सिद्धांत को मानने वाले ब्राह्मणों और ध्यानियों का यह मत है कि 'प्राणियों के अपवित्र होने के लिए कारण-कार्य संबंध है, आवश्यक शर्त है... ऐसा नहीं है कि सभी जीव, सभी जीवन, सभी प्राणी, सभी आत्माएं शक्तिहीन, बलहीन, प्रयासहीन हैं; या भाग्य, संयोग और प्रकृति के परिवर्तन के अधीन होकर वे जन्म के छह महान वर्गों में सुख और दुख का अनुभव करते हैं' - यह अपेक्षा की जा सकती है कि इन तीन अकुशल कार्यों - बुरे शारीरिक आचरण, बुरे वाणी आचरण, बुरे मानसिक आचरण - का त्याग करके वे इन तीन कुशल कार्यों को अपनाएंगे और उनका अभ्यास करेंगे: अच्छा शारीरिक आचरण, अच्छा वाणी आचरण, अच्छा मानसिक आचरण। ऐसा क्यों है? क्योंकि वे पूजनीय ब्राह्मण और ध्यानी अकुशल कार्यों में कमियां, पतन और अपवित्रता देखते हैं; और कुशल कार्यों में त्याग के पुरस्कार, जो शुद्धि के समान हैं, देखते हैं।"

बी2. क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध है, इसलिए 'कारण-कार्य संबंध है' सोचने वाले का दृष्टिकोण सही है। क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध है, जब वह 'कारण-कार्य संबंध है' का संकल्प लेता है, तो यही उसका सही संकल्प है। क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध है, जब वह 'कारण-कार्य संबंध है' कहता है, तो यही उसका सही वचन है। क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य संबंध है, जब वह कहता है कि 'कारण-कार्य संबंध है,' तो वह कारण-कार्य सिद्धांत सिखाने वाले अरहंतों का विरोध नहीं करता। क्योंकि वास्तव में कारण-कार्य

संबंध है, जब वह दूसरे को 'कारण-कार्य संबंध है' के लिए प्रेरित करता है, तो यही सच्चे धम्म में विश्वास दिलाना है। और सच्चे धम्म में विश्वास दिलाने में वह स्वयं को श्रेष्ठ नहीं मानता और न ही दूसरों को नीचा दिखाता है। उसकी पिछली सभी बुरी आदतें छूट जाती हैं, जबकि अच्छी आदतें प्रकट होती हैं। और यह सही दृष्टिकोण, सही संकल्प, सही वचन, अरहंतों का विरोध न करना, सच्चे धम्म में विश्वास दिलाना, स्वयं को श्रेष्ठ न मानना... स्वयं का सम्मान करना और दूसरों का अपमान न करना: ये अनेक कुशल गतिविधियाँ सही दृष्टिकोण पर निर्भर करती हैं।
B3. इस संबंध में, एक बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है: 'यदि कारणता है, तो यह पूजनीय व्यक्ति - मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर - स्वर्गलोक में पुन: प्रकट होगा। यदि हम कारणता की बात न भी करें, और उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का सत्य कथन न भी हो, तब भी यह पूजनीय व्यक्ति बुद्धिमानों द्वारा वर्तमान में अच्छे आचरण और सही दृष्टिकोण वाले व्यक्ति के रूप में प्रशंसित है: एक ऐसा व्यक्ति जो कारणता के सिद्धांत का पालन करता है। यदि वास्तव में कारणता है, तो इस पूजनीय व्यक्ति ने दो बार अच्छा दांव खेला है, एक तो बुद्धिमानों द्वारा वर्तमान में उसकी प्रशंसा की जाती है; और दूसरा - मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर - वह स्वर्गलोक में पुन: प्रकट होगा। इस प्रकार, यह सुरक्षित शिक्षा, जब अच्छी तरह से समझ ली जाती है और अपना ली जाती है, तो दोनों पक्षों को कवर करती है, और अकुशल व्यक्ति की संभावना को पीछे छोड़ देती है।'

निराकार
कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं: 'पूर्ण निराकारता नहीं है।' कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न, इन ब्राह्मणों और ध्यानमग्नों के ठीक विपरीत, यह कहते हैं: 'पूर्ण निराकारता है।' गृहस्थों, आप क्या सोचते हैं? क्या ये ब्राह्मण और ध्यानमग्न एक दूसरे के ठीक विपरीत नहीं बोल रहे हैं?
"हाँ भगवान।"
इस संदर्भ में, एक बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है: 'उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का, जो इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं - "पूर्ण निराकारता नहीं है" - मैंने ऐसा नहीं देखा है। उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का, जो इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं - "पूर्ण निराकारता है" - मैंने ऐसा नहीं जाना है। यदि मैं, बिना जाने, बिना देखे, एक पक्ष लेकर यह घोषणा करूँ कि "केवल यही सत्य है, अन्यथा सब व्यर्थ है," तो यह मेरे लिए उचित नहीं होगा। उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का, जो इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं - "पूर्ण निराकारता नहीं है": यदि उनका कथन सत्य है, तो यह निश्चित संभावना है कि मैं मन से निर्मित सजीव देवताओं के बीच पुनः प्रकट हो जाऊँ। उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का, जो इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं - "पूर्ण निराकारता है": यदि उनका कथन सत्य है, तो यह निश्चित संभावना है कि मैं वे निराकार देवताओं के बीच फिर से प्रकट होते हैं, जिन्हें बोध ने बनाया है। दंड और शस्त्र उठाना, झगड़े, विवाद, निंदा, फूट और झूठी बातें, ये सब रूप से उत्पन्न होते प्रतीत होते हैं, न कि पूर्ण निराकारता से। इस प्रकार चिंतन करते हुए, वे रूपों के प्रति मोहभंग, रूपों के प्रति वैराग्य और रूपों के अंत के लिए साधना करते हैं।
बनने की समाप्ति
कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं: 'जन्म की प्रक्रिया का पूर्ण अंत नहीं होता।' वहीं कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न इन ब्राह्मणों और ध्यानमग्नों के ठीक विपरीत यह कहते हैं: 'जन्म की प्रक्रिया का पूर्ण अंत होता है।' गृहस्थों, आप क्या सोचते हैं? क्या ये ब्राह्मण और ध्यानमग्न एक दूसरे के ठीक विपरीत नहीं बोल रहे हैं?
"हाँ भगवान।"
इस संबंध में, एक बुद्धिमान व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है: 'उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का, जो इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं - "जन्म का पूर्ण अंत नहीं होता" - मैंने ऐसा नहीं देखा है। उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का, जो इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं - "जन्म का पूर्ण अंत होता है" - मैंने ऐसा नहीं जाना है। यदि मैं, बिना जाने, बिना देखे, एक पक्ष लेकर यह घोषणा करूँ कि "केवल यही सत्य है, अन्यथा सब व्यर्थ है," तो यह मेरे लिए उचित नहीं होगा। उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का, जो इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं - "जन्म का पूर्ण अंत नहीं होता": यदि उनका कथन सत्य है, तो यह पूरी संभावना है कि मैं निराकार, बोध से निर्मित देवताओं के बीच पुनः प्रकट हो जाऊँ। उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का, जो इस सिद्धांत को मानते हैं, इस मत को मानते हैं - "जन्म का पूर्ण अंत होता है": यदि उनका कथन सत्य है, संभव है कि मैं वर्तमान क्षण में पूर्णतः मुक्त हो जाऊँ। जहाँ तक उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का सवाल है जो इस सिद्धांत को मानते हैं, उनका यह मत है - "जन्म का पूर्ण अंत नहीं होता": उनका यह मत वासना, बंधन, आनंद, हड़बड़ी और आसक्ति के करीब है। जहाँ तक उन पूजनीय ब्राह्मणों और ध्यानियों का सवाल है जो इस सिद्धांत को मानते हैं, उनका यह मत है - "जन्म का पूर्ण अंत होता है": उनका यह मत वासनाहीनता, बंधनहीनता, आनंदहीनता, हड़बड़ीहीनता और आसक्तिहीनता के करीब है। इस प्रकार चिंतन करते हुए, वह जन्मों के प्रति विरक्ति, जन्मों के प्रति वैराग्य और जन्मों के अंत के लिए अभ्यास करते हैं।

चार व्यक्ति

गृहस्थों, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? एक प्रकार वह है जहाँ कोई व्यक्ति स्वयं को पीड़ा देता है और स्वयं को पीड़ा देने के अभ्यास में लगा रहता है। एक प्रकार वह है जहाँ कोई व्यक्ति दूसरों को पीड़ा देता है और दूसरों को पीड़ा देने के अभ्यास में लगा रहता है। एक प्रकार वह है जहाँ कोई व्यक्ति स्वयं को पीड़ा देता है और स्वयं को पीड़ा देने के अभ्यास में लगा रहता है, और दूसरों को भी पीड़ा देता है और दूसरों को पीड़ा देने के अभ्यास में लगा रहता है। एक प्रकार वह है जहाँ कोई व्यक्ति न तो स्वयं को पीड़ा देता है और न ही स्वयं को पीड़ा देने के अभ्यास में लगा रहता है, न ही दूसरों को पीड़ा देता है और न ही दूसरों को पीड़ा देने के अभ्यास में लगा रहता है। न तो स्वयं को पीड़ा देते हुए और न ही दूसरों को पीड़ा देते हुए, वह वर्तमान क्षण में भूख से मुक्त, बंधनमुक्त, शीतल, सुख के प्रति संवेदनशील और ब्रह्म के समान मन से निवास करता है।

और वह कौन सा व्यक्ति है जो स्वयं को पीड़ा देता है और स्वयं को पीड़ा पहुँचाने के अभ्यास में लगा रहता है? एक ऐसा व्यक्ति है जो वस्त्रहीन तपस्वी है, रीति-रिवाजों का त्याग करता है, अपने हाथ चाटता है, बुलाए जाने पर नहीं आता, कहे जाने पर नहीं ठहरता। वह लाया हुआ या विशेष रूप से बनाया हुआ भोजन ग्रहण नहीं करता। वह भोजन के निमंत्रण को स्वीकार नहीं करता। वह किसी बर्तन के मुँह से, किसी पात्र के मुँह से, किसी दहलीज के पार से, किसी छड़ी के पार से, किसी मूसल के पार से, दो लोगों के साथ भोजन करने से, किसी गर्भवती महिला से, किसी बच्चे को दूध पिलाने वाली महिला से, किसी पुरुष के साथ रहने वाली महिला से, जहाँ से भोजन बाँटने की घोषणा की जाती है, जहाँ कुत्ता प्रतीक्षा कर रहा होता है, जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही होती हैं, वहाँ से कुछ भी ग्रहण नहीं करता। वह मांस, मादक पेय, शराब, या किण्वित मादक पेय ग्रहण नहीं करता। वह एक घर में एक निवाला, दो घरों में दो निवाले... सात घरों में सात निवाले तक ही सीमित रहता है। वह एक थाली भरकर, दो थाली भरकर... सात थाली भरकर प्रतिदिन भोजन करता है। वह दिन में एक बार, दो दिन में एक बार, सात दिन में एक बार, और इसी तरह हर छह महीने में एक बार भोजन करता है। वह निर्धारित अंतराल पर भोजन करने के नियम का पालन करता है। वह हरी सब्जियां, बाजरा, जंगली चावल, खाल के टुकड़े, काई, चावल की भूसी, चावल का पानी, तिल का आटा, घास या गोबर खाता है। वह जंगल की जड़ों और फलों पर निर्भर रहता है। वह गिरे हुए फल खाता है। वह भांग, कैनवास, कफन, फेंके हुए चिथड़े, पेड़ की छाल, हिरण की खाल, लकड़ी के बुरादे से बने कपड़े, सिर के बालों की ऊन, जंगली जानवरों की ऊन और उल्लू के पंखों से अपने वस्त्र बनाता है। वह बाल और दाढ़ी नोचने वाला है, जो अपने बाल और दाढ़ी नोचने के नियम का पालन करता है। वह खड़ा रहता है, जो बैठने से परहेज करता है। वह घुटनों के बल हाथ रखकर बैठता है, जो अपने घुटनों के बल हाथ रखकर बैठने के प्रयास का पालन करता है। वह गद्दे पर सोता है, जो पलंग पर अपना बिस्तर लगाता है। कांटों से घिरा हुआ। वह शाम को तीसरी बार स्नान करने वाला है, जो पानी में स्नान करने के अभ्यास के प्रति समर्पित रहता है। इस प्रकार, कई मायनों में, वह शरीर को पीड़ा और उत्पीड़न देने के अभ्यास के प्रति समर्पित है। इसे स्वयं को पीड़ा देने वाला और स्वयं को यातना देने के अभ्यास के प्रति समर्पित व्यक्ति कहा जाता है।

और वह कौन सा व्यक्ति है जो दूसरों को सताता है और उन्हें यातना देने के काम में लगा रहता है? उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति भेड़ काटने वाला, सूअर काटने वाला, मुर्गी काटने वाला, शिकारी, मछुआरा, चोर, जल्लाद,5 जेल का वार्डन, या कोई भी अन्य रक्तपातपूर्ण व्यवसाय करने वाला हो सकता है। इसे ही दूसरों को सताने वाला और उन्हें यातना देने के काम में लगा रहने वाला व्यक्ति कहा जाता है।

और वह कौन सा व्यक्ति है जो स्वयं को पीड़ा देता है और स्वयं को पीड़ा देने में लगा रहता है, और दूसरों को भी पीड़ा देता है और दूसरों को पीड़ा देने में लगा रहता है? एक उदाहरण है, एक व्यक्ति प्रधान राजा या धनी ब्राह्मण है। उसने नगर के पूर्व में एक नया मंदिर बनवाया, अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा ली, खुरदरी खाल का वस्त्र पहना, अपने शरीर पर घी और तेल मल लिया, और हिरण के सींग से अपनी पीठ खुजलाई। वह अपनी मुख्य रानी और ब्राह्मण महापुजारी के साथ नए मंदिर में प्रवेश करता है। वहाँ वह घास से ढकी नंगी ज़मीन पर अपना बिस्तर लगाता है। राजा एक गाय के पहले थन के दूध से अपना जीवन यापन करता है, जिसके साथ एक बछड़ा भी है; रानी दूसरे थन के दूध से; ब्राह्मण महापुजारी तीसरे थन के दूध से। चौथे थन का दूध वे आग में डाल देते हैं। बछड़ा बचे हुए दूध से अपना जीवन यापन करता है।

वह कहता है, 'बलिदान के लिए इतने बैल काटे जाएँ। इतने बछड़े... इतनी बछियाएँ... इतनी बकरियाँ... इतनी भेड़ें... बलिदान के लिए इतने घोड़े काटे जाएँ। 7 बलिदान के खंभों के लिए इतने पेड़ काटे जाएँ; बलिदान की घास के लिए इतनी घास काटी जाए।' और उसके दास, सेवक और मजदूर रोते-रोते, दंड और भय से प्रेरित होकर तैयारी करते हैं। इसे वह व्यक्ति कहा जाता है जो स्वयं को पीड़ा देता है और स्वयं को यातना देने में लगा रहता है, और दूसरों को भी पीड़ा देता है और दूसरों को यातना देने में लगा रहता है।

और वह कौन सा व्यक्ति है जो न तो स्वयं को कष्ट देता है और न ही स्वयं को कष्ट देने में लिप्त रहता है, न ही दूसरों को कष्ट देता है और न ही दूसरों को कष्ट देने में लिप्त रहता है; जो स्वयं को और दूसरों को कष्ट न देते हुए, भूख से मुक्त, असीम, शीतल, सुख के प्रति संवेदनशील और ब्रह्म के समान मन से वर्तमान क्षण में निवास करता है?

"ऐसा भी मामला है जब तथागत संसार में प्रकट होते हैं, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत होते हैं। वे धम्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में प्रशंसनीय, मध्य में प्रशंसनीय और अंत में प्रशंसनीय है। वे पवित्र जीवन की घोषणा करते हैं, जो अपने विशिष्ट पहलुओं और सार दोनों में पूर्णतः परिपूर्ण और अत्यंत शुद्ध है।"

"गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र धम्म सुनकर तथागत में दृढ़ विश्वास प्राप्त करता है और चिंतन करता है: 'गृहस्थ जीवन बंधनकारी, धूल भरा मार्ग है। गृहस्थ जीवन मुक्त आकाश के समान है। घर में रहकर पूर्णतः परिपूर्ण, पूर्णतः शुद्ध, एक पॉलिश किए हुए आवरण के समान

पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। यदि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन से निकलकर संन्यासी जीवन में जाऊं तो क्या होगा?'"

"इसलिए कुछ समय बाद वह अपनी सारी संपत्ति, चाहे छोटी हो या बड़ी, त्याग देता है; अपने रिश्तेदारों के समूह, चाहे छोटा हो या बड़ा, को छोड़ देता है; अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लेता है, गेरुए वस्त्र धारण कर लेता है और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाता है।"

गुण

जब वह इस प्रकार भिक्षुओं के प्रशिक्षण और जीविका से संपन्न होकर प्रस्थान करता है, तब वह जीवन लेने का त्याग कर, जीवन लेने से परहेज करता है। वह अपना दंड और छुरी त्याग कर, सभी जीवित प्राणियों के कल्याण के लिए सचेत, दयालु और करुणामय होकर निवास करता है।

"जो कुछ दिया नहीं गया है, उसे लेने का त्याग करके, वह उसे लेने से परहेज करता है। वह केवल वही लेता है जो दिया गया है, केवल वही स्वीकार करता है जो दिया गया है, वह छिपकर नहीं, बल्कि शुद्ध आत्मा के माध्यम से जीता है। यह भी उसके सद्गुण का एक हिस्सा है।"

"अविवाह का त्याग करके, वह एकांतप्रिय, ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करता है, और उस यौन क्रिया से परहेज करता है जो ग्रामीणों का तरीका है।"

वह झूठी बातों का त्याग करके उनसे दूर रहता है। वह सत्य बोलता है, सत्य पर अडिग रहता है, दृढ़ और विश्वसनीय है, संसार को धोखा नहीं देता।

विभाजनकारी भाषणों का त्याग करके वह उनसे दूर रहता है। जो कुछ उसने यहाँ सुना है, वह वहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ के लोगों को यहाँ के लोगों से अलग न कर दे। जो कुछ उसने वहाँ सुना है, वह यहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ के लोगों को वहाँ के लोगों से अलग न कर दे। इस प्रकार, जो लोग अलग हो गए हैं, उनके बीच सामंजस्य स्थापित करता है और जो एकजुट हैं, उन्हें और मजबूत करता है। वह सद्भाव से प्रेम करता है, सद्भाव में आनंदित होता है, सद्भाव का अनुभव करता है और सद्भाव उत्पन्न करने वाली बातें बोलता है।

"अपमानजनक भाषा का त्याग करके, वह अपशब्दों से दूर रहता है। वह ऐसे शब्द बोलता है जो कानों को मधुर लगते हैं, स्नेहपूर्ण होते हैं, हृदय को छूते हैं, विनम्र होते हैं, आकर्षक होते हैं और आम लोगों को प्रसन्न करते हैं।"

"व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वह व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। वह समय पर बोलता है, तथ्यात्मक बातें बोलता है, जो लक्ष्य, धम्म और विनय के अनुरूप होती हैं। वह अनमोल, सामयिक, तर्कसंगत, सीमित और लक्ष्य से संबंधित शब्द बोलता है।"

वह बीज और वनस्पतियों को नुकसान पहुंचाने से परहेज करता है।

वह दिन में केवल एक बार ही भोजन करता है, शाम के भोजन से परहेज करता है और दिन के गलत समय पर भोजन करने से भी परहेज करता है।

वह नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और शो देखने से परहेज करता है।

वह माला पहनने और सुगंध एवं सौंदर्य प्रसाधनों से खुद को सजाने से परहेज करता है।

वह ऊंचे और आलीशान पलंगों और कुर्सियों से परहेज करता है।

वह सोना और पैसा लेने से परहेज करता है।

वह बिना पका अनाज... कच्चा मांस... स्त्रियों और लड़कियों... पुरुष और महिला दासों... बकरियों और भेड़ों... मुर्गियों और सूअरों... हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों... खेतों और संपत्ति को स्वीकार करने से परहेज करता है।

वह संदेशों के आदान-प्रदान से... खरीद-फरोख्त से... झूठे तराजू, झूठी धातुओं और झूठे मापों से... रिश्वतखोरी, छल और धोखाधड़ी से परहेज करता है।

वह अंग-भंग करने, फांसी देने, कैद करने, खुलेआम लूटपाट करने, डकैती करने और हिंसा करने से परहेज करता है।

वह अपने शरीर के लिए वस्त्रों के एक जोड़े और भूख मिटाने के लिए भिक्षा से संतुष्ट है। जैसे एक पक्षी जहाँ कहीं भी जाता है, अपने पंखों को ही अपना एकमात्र बोझ मानकर उड़ता है; वैसे ही वह अपने शरीर के लिए वस्त्रों के एक जोड़े और भूख मिटाने के लिए भिक्षा से संतुष्ट है। वह जहाँ कहीं भी जाता है, अपने साथ केवल अपनी सबसे आवश्यक वस्तुएँ ही ले जाता है।

"सद्गुणों के इस महान समूह से संपन्न होने के कारण, वह आंतरिक रूप से निर्दोष होने के सुख के प्रति संवेदनशील होता है।"

संयम की भावना

जब वह किसी आकृति को आँख से देखता है, तो वह किसी विषय या विवरण को नहीं पकड़ता, जिससे—यदि वह आँख की इंद्रिय पर बिना किसी नियंत्रण के ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। जब वह किसी ध्वनि को कान से सुनता है... जब वह किसी गंध को नाक से सूंघता है... जब वह किसी स्वाद को जीभ से चखता है... जब वह किसी स्पर्श संवेदना को शरीर से महसूस करता है... जब वह किसी विचार को बुद्धि से समझता है, तो वह किसी विषय या विवरण को नहीं पकड़ता,

जिससे—यदि वह बुद्धि की इंद्रिय पर बिना किसी नियंत्रण के ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। इंद्रिय शक्तियों पर इस श्रेष्ठ संयम से संपन्न होकर, वह आंतरिक रूप से निर्दोष होने के सुख के प्रति संवेदनशील होता है।

सजगता और सतर्कता

आगे बढ़ते और लौटते समय वह सतर्कता से कार्य करता है। आगे देखते और पीछे हटते समय... अपने अंगों को मोड़ते और फैलाते समय... अपना बाहरी लबादा, ऊपरी वस्त्र और कटोरा ले जाते समय... खाते, पीते, चबाते और स्वाद लेते समय... पेशाब और शौच करते समय... चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते समय वह सतर्कता से कार्य करता है।

बाधाओं को त्यागना

"सद्गुणों के इस उत्कृष्ट समूह, इंद्रियों पर इस उत्कृष्ट संयम, इस उत्कृष्ट जागरूकता और सजगता से परिपूर्ण होकर, वह एकांत स्थान की तलाश करता है: एक जंगल, एक वृक्ष की छाया, एक पर्वत, एक घाटी, एक पहाड़ी गुफा, एक श्मशान भूमि, एक वन उपवन, खुला आकाश, या पुआल का ढेर। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद लौटकर, वह बैठ जाता है, अपने पैरों को क्रॉस करके बैठता है, अपने शरीर को सीधा रखता है, और अपनी जागरूकता को सर्वोपरि करता है।"

संसार के प्रति लोभ का त्याग करके, वह लोभ रहित जागरूकता के साथ निवास करता है। वह अपने मन को लोभ से शुद्ध करता है। द्वेष और क्रोध का त्याग करके, वह द्वेष रहित जागरूकता के साथ, सभी जीवों के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखते हुए निवास करता है। वह अपने मन को द्वेष और क्रोध से शुद्ध करता है। आलस्य और सुस्ती का त्याग करके, वह आलस्य और सुस्ती रहित जागरूकता के साथ, सचेत, सतर्क और प्रकाश के प्रति जागरूक रहते हैं। वह अपने मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है। बेचैनी और चिंता का त्याग करके, वह अविचलित रहते हैं, उनका मन आंतरिक रूप से शांत होता है। वह अपने मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध करते हैं। अनिश्चितता का त्याग करके, वह अनिश्चितता को पार कर चुके होते हैं, कुशल मानसिक गुणों के संबंध में उन्हें कोई उलझन नहीं होती। वह अपने मन को अनिश्चितता से शुद्ध करते हैं।

चार ध्यान

"इन पांच बाधाओं - विवेक को कमजोर करने वाली जागरूकता की अपूर्णताओं - का त्याग करने के बाद, कामुकता से पूरी तरह अलग होकर, अकुशल मानसिक गुणों से अलग होकर, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है।"

फिर, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने के साथ, वह दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: एकाग्रता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन।

फिर, जब परमानंद शांत हो जाता है, तो वह शांत, सचेत और सजग रहता है और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं, 'शांत और सचेत रहकर वह सुखद अवस्था में रहता है।'

फिर, सुख और दुख के त्याग के साथ - जैसे पहले उल्लास और दुःख के गायब होने के साथ - वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: समता और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख।

तीन ज्ञान

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अपने पिछले जन्मों (यानी पूर्व जन्मों) के ज्ञान की ओर अग्रसर होता है। वह अपने अनेक पिछले जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, एक हजार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग। वह स्मरण करता है, 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ।' उस अवस्था से विदा होकर मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। जीवन। उस अवस्था से विदा होकर, मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूप और विवरणों सहित याद करता है। यही वह तरीका है जिससे प्रयास फलदायी होता है, जिससे परिश्रम फलदायी होता है।

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर उन्मुख होता है। वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है और उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - मृत्यु के बाद शरीर के टूटने से अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निचले लोकों, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म करने वाले — शरीर के नष्ट होने के बाद, मृत्यु के बाद, अच्छे स्थानों, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होते हैं। इस प्रकार — दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है — वह प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते हुए देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उन्हें निम्न और उच्च, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली के रूप में पहचानता है।

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, कोमल, स्थिर और अविचलित मन से भिक्षु अपने मन को मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह वास्तविक रूप से यह अनुभव करता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये मानसिक हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' इस प्रकार ज्ञान और दृष्टि से उसका हृदय इंद्रिय-संबंधों की हलचलों, कर्म-संबंधों की हलचलों और अज्ञान-संबंधों की हलचलों से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, 'मुक्त हो गया।' वह यह अनुभव करता है कि 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'
"इसे वह व्यक्ति कहते हैं जो न तो स्वयं को कष्ट देता है और न ही स्वयं को कष्ट देने में लिप्त रहता है, न ही दूसरों को कष्ट देता है और न ही दूसरों को कष्ट देने में लिप्त रहता है। न तो स्वयं को कष्ट देकर और न ही दूसरों को कष्ट देकर, वह वर्तमान क्षण में भूख से मुक्त, बंधनमुक्त, शीतल, सुख के प्रति संवेदनशील और ब्रह्म के समान मन से निवास करता है।"
यह सुनकर साला के ब्राह्मण गृहस्थों ने कहा, “हे महान गुरु गौतम! महान! जैसे कोई उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दे, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दे, भटके हुए को रास्ता दिखा दे, या अंधेरे में दीपक जलाकर आँखों वालों को आकृतियाँ दिखा दे, उसी प्रकार गुरु गौतम ने अनेक तर्कों के द्वारा धम्म को स्पष्ट किया है। हम गुरु गौतम की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षु समुदाय की शरण में आते हैं। गुरु गौतम हमें, जो उनके पास शरण लेने आए हैं, आज से जीवन भर याद रखें।”

7.भिक्खु-वग्ग

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.1अम्बालत्थिका-राहुलोवदा सुत्त(61)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान राजगाह के पास, बांस के जंगल में, गिलहरियों के भोजन स्थल पर ठहरे हुए थे।

उस समय पूज्य राहुल प्रथम मैंगो स्टोन में ठहरे हुए थे। फिर दोपहर ढलते समय भगवान एकांतवास से उठकर मैंगो स्टोन स्थित पूज्य राहुल के पास गए। पूज्य राहुल ने उन्हें दूर से आते देखा और देखते ही उनके लिए आसन और पैर धोने का पानी रख दिया। भगवान उस आसन पर बैठ गए और अपने पैर धो लिए। पूज्य राहुल ने भगवान को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

तब भगवान बुद्ध ने जल पात्र में थोड़ा सा पानी छोड़कर पूज्य राहुल से कहा, "राहुल, क्या तुम जल पात्र में बचा हुआ यह थोड़ा सा पानी देख रहे हो?"

"जी श्रीमान।"

"जो व्यक्ति जानबूझकर झूठ बोलने में शर्म महसूस नहीं करता, उसमें चिंतनशीलता का स्तर इतना कम होता है।"

बचे हुए थोड़े से पानी को फेंकते हुए भगवान ने पूज्य राहुल से कहा, "राहुल, क्या तुम देखते हो कि यह थोड़ा सा बचा हुआ पानी कैसे फेंक दिया जाता है?"

"जी श्रीमान।"

"राहुला, जो व्यक्ति जानबूझकर झूठ बोलने में शर्म महसूस नहीं करता, उसमें जो भी चिंतनशील तत्व बचा होता है, वह पल भर में ही नष्ट हो जाता है।"

पानी के पात्र को उल्टा करके भगवान बुद्ध ने पूज्य राहुल से कहा, "राहुल, क्या तुम देख रहे हो कि यह पानी का पात्र कैसे उल्टा हो गया है?"

"जी श्रीमान।"

"राहुला, जो व्यक्ति जानबूझकर झूठ बोलने में शर्म महसूस नहीं करता, उसमें मौजूद चिंतनशील स्वभाव का अंश पल भर में उलट जाता है।"

पानी के पात्र को सीधा करने के बाद, भगवान बुद्ध ने पूज्य राहुल से कहा, "राहुल, क्या तुम देखते हो कि यह पानी का पात्र कितना खाली और खोखला है?"

"जी श्रीमान।"

"राहुला, जो व्यक्ति जानबूझकर झूठ बोलने में शर्म महसूस नहीं करता, उसमें चिंतनशील होने का जो भी अंश होता है, वह ठीक उसी तरह खोखला और बेकार हो जाता है।"

"राहुला, यह एक शाही हाथी की तरह है: विशाल, श्रेष्ठ नस्ल का, युद्धों का अभ्यस्त, इसके दांत रथ के खंभों जैसे हैं। युद्ध में जाने के बाद, यह अपने अगले और पिछले पैरों, अपने आगे के और पिछले हिस्सों, अपने सिर, कान, दांत और पूंछ का इस्तेमाल करता है, लेकिन अपनी सूंड की रक्षा करता रहता है। हाथी प्रशिक्षक यह देखता है और सोचता है, 'इस शाही हाथी ने राजा के लिए अपना प्राण नहीं दिए।' लेकिन जब शाही हाथी... युद्ध में जाने के बाद, अपने अगले और पिछले पैरों, अपने आगे के और पिछले हिस्सों, अपने सिर, कान, दांत, पूंछ और अपनी सूंड का इस्तेमाल करता है, तो प्रशिक्षक यह देखता है और सोचता है, 'इस शाही हाथी ने राजा के लिए अपना प्राण दे दिए हैं। ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह न करे।'"

"इसी प्रकार, राहुल, जब कोई जानबूझकर झूठ बोलने में शर्म महसूस नहीं करता, तो मैं तुमसे कहता हूँ, वह कोई बुराई नहीं करेगा। इसलिए, राहुल, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए, 'मैं मजाक में भी जानबूझकर झूठ नहीं बोलूंगा।'"

"राहुला, तुम्हारा क्या विचार है: दर्पण किस काम आता है?"

"चिंतन के लिए, महोदय।"

"इसी प्रकार, हे राहुल, शारीरिक क्रियाएं, मौखिक क्रियाएं और मानसिक क्रियाएं बार-बार चिंतन के साथ की जानी चाहिए।"

जब भी आप कोई शारीरिक क्रिया करना चाहें, तो उस पर विचार करें: 'यह शारीरिक क्रिया जो मैं करना चाहता हूँ - क्या इससे मुझे, दूसरों को, या दोनों को कष्ट होगा? क्या यह एक अकुशल शारीरिक क्रिया होगी, जिसके परिणाम कष्टदायी होंगे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे आपको, दूसरों को, या दोनों को कष्ट होगा; यह एक अकुशल शारीरिक क्रिया होगी जिसके परिणाम कष्टदायी होंगे, तो ऐसी कोई भी शारीरिक क्रिया आपके लिए बिलकुल अनुपयुक्त है। लेकिन यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे कोई कष्ट नहीं होगा... यह एक कुशल शारीरिक क्रिया होगी जिसके परिणाम सुखद होंगे, तो ऐसी कोई भी शारीरिक क्रिया आपके लिए उपयुक्त है।

जब आप कोई शारीरिक क्रिया कर रहे हों, तो उस पर विचार करें: 'क्या यह शारीरिक क्रिया, जो मैं कर रहा हूँ, स्वयं को कष्ट पहुँचा रही है, दूसरों को कष्ट पहुँचा रही है, या दोनों को? क्या यह एक अकुशल शारीरिक क्रिया है, जिसके दुखद परिणाम होंगे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि यह स्वयं को कष्ट पहुँचा रही है, दूसरों को कष्ट पहुँचा रही है, या दोनों को... तो आपको इसे छोड़ देना चाहिए। लेकिन यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि ऐसा नहीं है... तो आप इसे जारी रख सकते हैं।'

"कोई शारीरिक क्रिया करने के बाद, आपको उस पर विचार करना चाहिए: 'मैंने जो शारीरिक क्रिया की है - क्या उससे मुझे, दूसरों को, या दोनों को कष्ट हुआ? क्या यह एक अकुशल शारीरिक क्रिया थी, जिसके परिणाम कष्टदायी रहे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे आपको, दूसरों को, या दोनों को कष्ट हुआ; यह एक अकुशल शारीरिक क्रिया थी जिसके परिणाम कष्टदायी रहे, तो आपको इसे स्वीकार करना चाहिए, इसे प्रकट करना चाहिए, इसे गुरु या पवित्र जीवन में किसी ज्ञानी साथी के सामने स्पष्ट रूप से रखना चाहिए। स्वीकार करने के बाद... आपको भविष्य में संयम बरतना चाहिए। लेकिन यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे कष्ट नहीं हुआ... यह एक कुशल शारीरिक क्रिया थी जिसके परिणाम सुखद रहे, तो आपको मानसिक रूप से तरोताजा और आनंदित रहना चाहिए, और दिन-रात कुशल मानसिक गुणों का अभ्यास करना चाहिए।"

जब भी आप कोई मौखिक क्रिया करना चाहें, तो उस पर विचार करें: 'क्या यह मौखिक क्रिया, जो मैं करने जा रहा हूँ, स्वयं को, दूसरों को, या दोनों को कष्ट पहुँचाएगी? क्या यह एक अकुशल मौखिक क्रिया होगी, जिसके परिणाम कष्टदायी होंगे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे स्वयं को, दूसरों को, या दोनों को कष्ट होगा; यह एक अकुशल मौखिक क्रिया होगी जिसके परिणाम कष्टदायी होंगे, तो ऐसी कोई भी मौखिक क्रिया आपके लिए बिलकुल अनुपयुक्त है। परन्तु यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे कष्ट नहीं होगा... यह एक कुशल मौखिक क्रिया होगी जिसके परिणाम सुखद होंगे, तो ऐसी कोई भी मौखिक क्रिया आपके लिए उपयुक्त है।

जब आप कोई मौखिक क्रिया कर रहे हों, तो उस पर विचार करें: 'क्या यह मौखिक क्रिया मेरे स्वयं के कष्ट, दूसरों के कष्ट, या दोनों का कारण बन रही है? क्या यह एक अकुशल मौखिक क्रिया है, जिसके दुखद परिणाम होंगे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि यह स्वयं के कष्ट, दूसरों के कष्ट, या दोनों का कारण बन रही है... तो आपको इसे छोड़ देना चाहिए। लेकिन यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि ऐसा नहीं है... तो आप इसे जारी रख सकते हैं।

"जब आप कोई मौखिक क्रिया करें, तो उस पर विचार करें: 'मैंने जो यह मौखिक क्रिया की है - क्या इससे मुझे स्वयं कष्ट हुआ, दूसरों को कष्ट हुआ, या दोनों? क्या यह एक अकुशल मौखिक क्रिया थी, जिसके परिणाम कष्टदायी रहे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे आपको स्वयं कष्ट हुआ, दूसरों को कष्ट हुआ, या दोनों; यह एक अकुशल मौखिक क्रिया थी जिसके परिणाम कष्टदायी रहे, तो आपको इसे स्वीकार करना चाहिए, इसे प्रकट करना चाहिए, इसे गुरु या पवित्र जीवन में किसी ज्ञानवान साथी के सामने स्पष्ट रूप से रखना चाहिए। स्वीकार करने के बाद... आपको भविष्य में संयम बरतना चाहिए। लेकिन यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे कष्ट नहीं हुआ... यह एक कुशल मौखिक क्रिया थी जिसके परिणाम सुखद रहे, तो आपको मानसिक रूप से तरोताजा और आनंदित रहना चाहिए, और दिन-रात कुशल मानसिक गुणों का अभ्यास करना चाहिए।"

जब भी आप कोई मानसिक क्रिया करना चाहें, तो उस पर विचार करें: 'यह मानसिक क्रिया जो मैं करना चाहता हूँ - क्या इससे मुझे स्वयं कष्ट होगा, दूसरों को कष्ट होगा, या दोनों? क्या यह एक अकुशल मानसिक क्रिया होगी, जिसके परिणाम कष्टदायी होंगे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे आपको स्वयं कष्ट होगा, दूसरों को कष्ट होगा, या दोनों; यह एक अकुशल मानसिक क्रिया होगी जिसके परिणाम कष्टदायी होंगे, तो ऐसी कोई भी मानसिक क्रिया आपके लिए बिलकुल अनुपयुक्त है। परन्तु यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे कष्ट नहीं होगा... यह एक कुशल मानसिक क्रिया होगी जिसके परिणाम सुखद होंगे, तो ऐसी कोई भी मानसिक क्रिया आपके लिए उपयुक्त है।

जब आप कोई मानसिक क्रिया कर रहे हों, तो उस पर विचार करें: 'क्या यह मानसिक क्रिया स्वयं को, दूसरों को, या दोनों को कष्ट पहुँचा रही है? क्या यह एक अकुशल मानसिक क्रिया है, जिसके दुखद परिणाम होंगे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि यह स्वयं को, दूसरों को, या दोनों को कष्ट पहुँचा रही है... तो आपको इसे छोड़ देना चाहिए। लेकिन यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि ऐसा नहीं है... तो आप इसे जारी रख सकते हैं।

"कोई मानसिक क्रिया करने के बाद, आपको उस पर विचार करना चाहिए: 'मैंने जो मानसिक क्रिया की है - क्या उससे मुझे स्वयं कष्ट हुआ, दूसरों को कष्ट हुआ, या दोनों? क्या यह एक अकुशल मानसिक क्रिया थी, जिसके परिणाम कष्टदायी रहे?' यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे मुझे स्वयं कष्ट हुआ, दूसरों को कष्ट हुआ, या दोनों; यह एक अकुशल मानसिक क्रिया थी जिसके परिणाम कष्टदायी रहे, तो आपको इससे दुखी, लज्जित और घृणा महसूस करनी चाहिए। दुखी, लज्जित और घृणा महसूस करते हुए, आपको भविष्य में संयम बरतना चाहिए। लेकिन यदि विचार करने पर आपको पता चलता है कि इससे कष्ट नहीं हुआ... यह एक कुशल मानसिक क्रिया थी जिसके परिणाम सुखद रहे, तो आपको मानसिक रूप से तरोताजा और आनंदित रहना चाहिए, और दिन-रात कुशल मानसिक गुणों का अभ्यास करना चाहिए।"

"राहुला, अतीत में जिन ब्राह्मणों और ध्यानियों ने अपने शारीरिक कर्मों, वाणी कर्मों और मानसिक कर्मों को शुद्ध किया, उन्होंने ऐसा अपने शारीरिक कर्मों, वाणी कर्मों और मानसिक कर्मों पर बार-बार चिंतन करके इसी प्रकार किया।"

भविष्य में जो भी ब्राह्मण और ध्यानमग्न अपने शारीरिक कर्मों, वाणी कर्मों और मानसिक कर्मों को शुद्ध करेंगे, वे अपने शारीरिक कर्मों, वाणी कर्मों और मानसिक कर्मों पर बार-बार इसी प्रकार चिंतन करके ऐसा करेंगे।

"वर्तमान में वे सभी ब्राह्मण और ध्यानमग्न व्यक्ति जो अपने शारीरिक कर्मों, मौखिक कर्मों और मानसिक कर्मों को शुद्ध करते हैं, वे ऐसा अपने शारीरिक कर्मों, मौखिक कर्मों और मानसिक कर्मों पर बार-बार चिंतन करके इसी प्रकार करते हैं।"

"इस प्रकार, राहुल, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'मैं बार-बार चिंतन करके अपने शारीरिक कर्मों को शुद्ध करूँगा। मैं बार-बार चिंतन करके अपने वाणी कर्मों को शुद्ध करूँगा। मैं बार-बार चिंतन करके अपने मानसिक कर्मों को शुद्ध करूँगा।' तुम्हें इसी प्रकार स्वयं को प्रशिक्षित करना चाहिए।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य राहुल भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.2महा-राहुलोवादा सुत्त(62)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन के अनाथपिंडिका मठ में ठहरे हुए थे। तब भगवान बुद्ध ने सुबह सवेरे अपने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और बाहरी वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी गए। और पूज्य राहुल भी सुबह सवेरे अपने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र और बाहरी वस्त्र लेकर भगवान बुद्ध के ठीक पीछे-पीछे भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी गए।1 तब भगवान बुद्ध ने राहुल की ओर मुड़कर देखा और उनसे कहा, "राहुल, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल का कोई भी रूप; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: प्रत्येक रूप को सही विवेक से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए और समझना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है। यह मेरा स्वरूप नहीं है। यह मैं नहीं हूँ।'"

"हे परम पूज्य, बस रूप धारण करो? हे सुप्रसिद्ध आत्मा, बस रूप धारण करो?"

"रूप, राहुल, और भावना और बोध और रचनाएँ और चेतना।"

तब पूज्य राहुल के मन में यह विचार आया, "भगवान बुद्ध द्वारा प्रत्यक्ष रूप से उपदेश दिए जाने के बाद, आज भला कौन भिक्षा मांगने शहर जाएगा?" अतः वे वापस मुड़े और एक वृक्ष के नीचे बैठकर, पाँव जोड़कर, शरीर को सीधा रखते हुए, एकाग्र मन से ध्यान केंद्रित किया।

आदरणीय सारिपुत्त ने आदरणीय राहुल को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखा, उनके पैर पालथी मारकर मोड़े हुए थे, शरीर सीधा था और वे एकाग्रचित्त थे। उन्हें देखकर उन्होंने राहुल से कहा, "राहुल, श्वास-प्रश्वास की जागरूकता का अभ्यास करो। श्वास-प्रश्वास की जागरूकता का अभ्यास करने से बहुत लाभ होता है।"

फिर आदरणीय राहुल दोपहर बाद अपने एकांतवास से बाहर आकर भगवान बुद्ध के पास गए और प्रणाम करके एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने उनसे कहा, "हे भगवान, श्वास-प्रश्वास पर ध्यान कैसे विकसित और अभ्यास किया जाए ताकि वह महान फलदायी और महान लाभदायी हो?"

"राहुला, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल का कोई भी रूप; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: प्रत्येक रूप को सही विवेक से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है। यह मेरा स्वरूप नहीं है। यह मैं नहीं हूँ।' राहुल, ये पाँच गुण हैं। कौन से पाँच? पृथ्वी गुण, जल गुण, अग्नि गुण, वायु गुण और आकाश गुण।"

"और पृथ्वी का गुण क्या है? पृथ्वी का गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक पृथ्वी का गुण क्या है? 3 अपने भीतर की कोई भी चीज़ जो कठोर, ठोस और [लालसा से] पोषित है: सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, झिल्ली, तिल्ली, फेफड़े, बड़ी आंत, छोटी आंत, पेट की सामग्री, मल, या अपने भीतर की कोई भी अन्य चीज़ जो कठोर, ठोस और पोषित है: इसे आंतरिक पृथ्वी का गुण कहते हैं। अब आंतरिक पृथ्वी का गुण और बाह्य पृथ्वी का गुण दोनों ही पृथ्वी के गुण हैं। और इसे सही विवेक से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे यह वास्तव में मौजूद है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूं, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक से उसी रूप में देखता है जैसे यह वास्तव में मौजूद है, तो वह पृथ्वी के गुण से विरक्त हो जाता है और पृथ्वी के गुण को मन से विलीन कर देता है।"

और जल का गुण क्या है? जल का गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक जल का गुण क्या है? स्वयं से संबंधित कोई भी आंतरिक वस्तु, जो जलमय, तरल और निरंतर बनी रहती है: पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, तेल, लार, बलगम, जोड़ों का तेल, मूत्र, या स्वयं के भीतर कोई भी अन्य आंतरिक वस्तु, जो जलमय, तरल और निरंतर बनी रहती है: इसे आंतरिक जल का गुण कहते हैं। अब आंतरिक जल का गुण और बाह्य जल का गुण दोनों ही वास्तव में जल का गुण हैं। और इसे सही विवेक से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे यह वास्तव में मौजूद है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक से उसी रूप में देखता है जैसे यह वास्तव में मौजूद है, तो वह जल के गुण से विरक्त हो जाता है और जल के गुण को मन से विलीन कर देता है।

और अग्नि गुण क्या है? अग्नि गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक अग्नि गुण क्या है? कोई भी आंतरिक वस्तु, जो स्वयं से संबंधित हो, अग्निमय, प्रज्वलित और निरंतर बनी रहे: वह जिससे शरीर को गर्मी मिलती है, वृद्धावस्था होती है और बुखार से क्षीण होता है; और वह जिससे खाया, पिया, चबाया और स्वाद लिया गया भोजन ठीक से पचता है; या कोई भी अन्य आंतरिक वस्तु, जो स्वयं के भीतर हो, अग्निमय, प्रज्वलित और निरंतर बनी रहे: इसे आंतरिक अग्नि गुण कहते हैं। अब आंतरिक अग्नि गुण और बाह्य अग्नि गुण दोनों ही वास्तव में अग्नि गुण हैं। और इसे सही विवेक से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे यह वास्तव में मौजूद है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक से उसी रूप में देखता है जैसे यह वास्तव में मौजूद है, तो वह अग्नि गुण से विरक्त हो जाता है और अग्नि गुण को मन से विलीन कर देता है।

और वायु गुण क्या है? वायु गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक वायु गुण क्या है? स्वयं से संबंधित कोई भी आंतरिक चीज, जो वायु है, वायुमय है और निरंतर बनी रहती है: ऊपर की ओर बहने वाली वायु, नीचे की ओर बहने वाली वायु, पेट में वायु, आंतों में वायु, शरीर में प्रवाहित होने वाली वायु, श्वास लेना और छोड़ना, या स्वयं के भीतर कोई भी अन्य आंतरिक चीज, जो वायु है, वायुमय है और निरंतर बनी रहती है: इसे आंतरिक वायु गुण कहते हैं। अब आंतरिक वायु गुण और बाह्य वायु गुण दोनों ही वायु गुण हैं। और इसे सही विवेक से उसी रूप में देखना चाहिए जैसे यह वास्तव में मौजूद है: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक से उसी रूप में देखता है जैसे यह वास्तव में मौजूद है, तो वह वायु गुण से विरक्त हो जाता है और वायु गुण को मन से विलीन कर देता है।

और स्थानिक गुण क्या है? स्थानिक गुण आंतरिक या बाह्य हो सकता है। आंतरिक स्थानिक गुण क्या है? स्वयं से संबंधित कोई भी आंतरिक वस्तु, वह स्थानिक और स्थायी है: कान के छिद्र, नाक के छिद्र, मुख, वह मार्ग जिससे खाया, पिया, ग्रहण किया और चखा जाता है, जहाँ वह एकत्रित होता है और जहाँ से वह नीचे से उत्सर्जित होता है, या स्वयं के भीतर कोई भी अन्य आंतरिक वस्तु, वह स्थानिक और स्थायी है: इसे आंतरिक स्थानिक गुण कहते हैं। अब आंतरिक स्थानिक गुण और बाह्य स्थानिक गुण दोनों ही स्थानिक गुण हैं। और इसे सही विवेक से यथार्थ रूप में देखना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है।' जब कोई इसे सही विवेक से यथार्थ रूप में देखता है, तो वह स्थानिक गुण से विरक्त हो जाता है और उसे मन से विलीन कर देता है।

"राहुला, पृथ्वी के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास करो। क्योंकि जब तुम पृथ्वी के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास करोगे, तो उत्पन्न होने वाले सुखद और अप्रिय इंद्रियबोध तुम्हारे मन पर हावी नहीं रहेंगे। जैसे जब लोग पृथ्वी पर स्वच्छ या अस्वच्छ पदार्थ - मल, मूत्र, लार, मवाद या रक्त - फेंकते हैं, तो पृथ्वी उससे भयभीत, अपमानित या घृणाग्रस्त नहीं होती; उसी प्रकार, जब तुम पृथ्वी के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास करोगे, तो उत्पन्न होने वाले सुखद और अप्रिय इंद्रियबोध तुम्हारे मन पर हावी नहीं रहेंगे।"

जल के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास करें। जब आप जल के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास कर रहे होते हैं, तो मन में उत्पन्न होने वाली सुखद और अप्रिय इंद्रिय संवेदनाएं आपके मन पर हावी नहीं रहेंगी। जैसे जब लोग पानी में साफ या गंदी चीजों को धोते हैं - मल, मूत्र, लार, मवाद या रक्त - तो पानी उनसे भयभीत, अपमानित या घृणाग्रस्त नहीं होता; उसी प्रकार, जब आप जल के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास कर रहे होते हैं, तो मन में उत्पन्न होने वाली सुखद और अप्रिय इंद्रिय संवेदनाएं आपके मन पर हावी नहीं रहेंगी।

अग्नि के अनुरूप ध्यान का अभ्यास करें। क्योंकि जब आप अग्नि के अनुरूप ध्यान का अभ्यास कर रहे होते हैं, तो उत्पन्न होने वाली सुखद और अप्रिय इंद्रिय संवेदनाएं आपके मन पर हावी नहीं रहेंगी। जिस प्रकार अग्नि जब स्वच्छ या अस्वच्छ किसी भी पदार्थ—मल, मूत्र, लार, मवाद या रक्त—को जलाती है, तो वह उससे भयभीत, अपमानित या घृणाग्रस्त नहीं होती; उसी प्रकार, जब आप अग्नि के अनुरूप ध्यान का अभ्यास कर रहे होते हैं, तो उत्पन्न होने वाली सुखद और अप्रिय इंद्रिय संवेदनाएं आपके मन पर हावी नहीं रहेंगी।

"वायु के साथ सामंजस्य बिठाकर ध्यान का अभ्यास करें। जब आप वायु के साथ सामंजस्य बिठाकर ध्यान का अभ्यास कर रहे होते हैं, तो मन में उत्पन्न होने वाली सुखद और अप्रिय इंद्रिय संवेदनाएं आपके मन पर हावी नहीं रहेंगी। जैसे जब हवा किसी भी स्वच्छ या अस्वच्छ पदार्थ - मल, मूत्र, लार, मवाद या रक्त - को उड़ाती है, तो वह उससे भयभीत, अपमानित या घृणाग्रस्त नहीं होती; उसी प्रकार, जब आप वायु के साथ सामंजस्य बिठाकर ध्यान का अभ्यास कर रहे होते हैं, तो मन में उत्पन्न होने वाली सुखद और अप्रिय इंद्रिय संवेदनाएं आपके मन पर हावी नहीं रहेंगी।"

"स्थान के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास करें। क्योंकि जब आप स्थान के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास कर रहे होते हैं, तो उत्पन्न होने वाली सुखद और अप्रिय इंद्रिय संवेदनाएं आपके मन पर हावी नहीं रहतीं। जिस प्रकार स्थान कहीं स्थिर नहीं होता, उसी प्रकार जब आप स्थान के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए ध्यान का अभ्यास कर रहे होते हैं, तो उत्पन्न होने वाली सुखद और अप्रिय इंद्रिय संवेदनाएं आपके मन पर हावी नहीं रहतीं।"

"सद्भावना का ध्यान विकसित करो। क्योंकि जब तुम सद्भावना का ध्यान विकसित करोगे, तो दुर्भावना अपने आप दूर हो जाएगी।"

करुणा की ध्यान साधना का विकास करो। क्योंकि जब तुम करुणा की ध्यान साधना का विकास करोगे, तो क्रूरता का त्याग हो जाएगा।

"प्रशंसा की ध्यान साधना विकसित करें। क्योंकि जब आप प्रशंसा की ध्यान साधना विकसित कर रहे होते हैं, तो आक्रोश अपने आप दूर हो जाता है।"

"समभाव की ध्यान साधना विकसित करो। क्योंकि जब तुम समभाव की ध्यान साधना विकसित करोगे, तो चिड़चिड़ापन दूर हो जाएगा।"

"अनाकर्षक चीजों पर ध्यान केंद्रित करने का अभ्यास करें। क्योंकि जब आप अनाकर्षक चीजों पर ध्यान केंद्रित करने का अभ्यास करते हैं, तो वासना का त्याग हो जाता है।"

अस्थिरता की अनुभूति का ध्यान विकसित करें। क्योंकि जब आप अस्थिरता की अनुभूति का ध्यान विकसित कर रहे होंगे, तो 'मैं हूं' का अहंकार त्याग जाएगा।

"सांस लेने और छोड़ने पर ध्यान केंद्रित करने का अभ्यास करें। सांस लेने और छोड़ने पर ध्यान केंद्रित करने का अभ्यास, जब विकसित और नियमित किया जाता है, तो बहुत फलदायी और बहुत लाभदायक होता है।"

"और हे राहुल, श्वास लेने और छोड़ने की जागरूकता को कैसे विकसित और अभ्यास किया जाए ताकि यह महान फलदायी और महान लाभदायी हो?"

"ऐसा मामला है जहां एक भिक्षु जंगल में, किसी पेड़ की छाया में, या किसी खाली इमारत में जाकर, अपने पैरों को क्रॉस करके बैठ जाता है, अपने शरीर को सीधा रखता है, और ध्यान को सबसे आगे रखता है।4 वह हमेशा सचेत रहते हुए सांस लेता है; सचेत रहते हुए सांस छोड़ता है।"

"[1] लंबी साँस लेते हुए, वह समझता है, 'मैं लंबी साँस ले रहा हूँ'; या लंबी साँस छोड़ते हुए, वह समझता है, 'मैं लंबी साँस छोड़ रहा हूँ।' [2] या छोटी साँस लेते हुए, वह समझता है, 'मैं छोटी साँस ले रहा हूँ'; या छोटी साँस छोड़ते हुए, वह समझता है, 'मैं छोटी साँस छोड़ रहा हूँ।' [3] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं पूरे शरीर के प्रति संवेदनशील होकर साँस लूँगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं पूरे शरीर के प्रति संवेदनशील होकर साँस छोड़ूँगा।' [4] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं शरीर की हलचल को शांत करते हुए साँस लूँगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं शरीर की हलचल को शांत करते हुए साँस छोड़ूँगा।'

"[5] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं परमानंद के प्रति संवेदनशील होकर सांस लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं परमानंद के प्रति संवेदनशील होकर सांस छोड़ूंगा।' [6] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं सुख के प्रति संवेदनशील होकर सांस लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं सुख के प्रति संवेदनशील होकर सांस छोड़ूंगा।' [7] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मानसिक कल्पना के प्रति संवेदनशील होकर सांस लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मानसिक कल्पना के प्रति संवेदनशील होकर सांस छोड़ूंगा।'

[8] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं शांत मानसिक कल्पना के प्रति संवेदनशील होकर सांस लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं शांत मानसिक कल्पना के प्रति संवेदनशील होकर सांस छोड़ूंगा।'

"[9] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन के प्रति संवेदनशील होकर श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन के प्रति संवेदनशील होकर श्वास छोड़ूंगा।' [10] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को संतुष्ट करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को संतुष्ट करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' [11] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को स्थिर करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को स्थिर करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' [12] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को मुक्त करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को मुक्त करते हुए श्वास छोड़ूंगा।'

"[13] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं अस्थिरता पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं अस्थिरता पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' [14] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं वैराग्य पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा।' [15] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं वैराग्य पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं वैराग्य पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा।' [16] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास छोड़ूंगा।'

"हे राहुल, इस प्रकार से श्वास लेने और छोड़ने की जागरूकता विकसित और अभ्यास की जाती है, जिससे महान फल और महान लाभ प्राप्त होते हैं।"

"जब इस प्रकार से सांस लेने और छोड़ने की जागरूकता विकसित और अभ्यास की जाती है, तो अंतिम सांसें भी समाप्त होते ही ज्ञात हो जाती हैं, अज्ञात नहीं।"6

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य राहुल भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.3कुल-मालुंक्य सुत्त(63)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा ही सुना है।

एक बार भगवान सावत्थी में अनाथपिंडिका उद्यान के जेतवन मठ में निवास कर रहे थे। तभी पूज्य मालुंक्यपुत्त एकांतवास में ध्यानमग्न थे, तभी उनके मन में एक विचार आया, जो इस प्रकार है:

ये सिद्धांत जिन्हें भगवान बुद्ध ने स्पष्ट नहीं किया है, खारिज कर दिया है और अस्वीकार कर दिया है—कि संसार शाश्वत है, कि संसार शाश्वत नहीं है, कि संसार सीमित है, कि संसार अनंत है, कि आत्मा और शरीर एक हैं, कि आत्मा एक है और शरीर दूसरा, कि संत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं, कि संत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते, कि संत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और नहीं भी रहते, कि संत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते और नहीं भी रहते—भगवान बुद्ध ने मुझे इन सिद्धांतों को स्पष्ट नहीं किया है। और यह तथ्य कि भगवान बुद्ध ने मुझे इन्हें स्पष्ट नहीं किया है, मुझे प्रसन्न नहीं करता और न ही मुझे भाता है। इसलिए मैं भगवान बुद्ध के निकट जाकर इस विषय में उनसे प्रश्न करूंगा। यदि भगवान बुद्ध मुझे स्पष्ट कर दें कि संसार शाश्वत है, या संसार शाश्वत नहीं है, या संसार सीमित है, या संसार अनंत है, या आत्मा और शरीर एक हैं, या आत्मा एक है और शरीर दूसरा, या यदि संत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं, या मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते, या मृत्यु के बाद विद्यमान और विद्यमान दोनों रहते हैं, या मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान रहते हैं, तो मैं भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में धार्मिक जीवन व्यतीत करूँगा। यदि भगवान बुद्ध मुझे यह स्पष्ट नहीं करते कि संसार शाश्वत है, या संसार शाश्वत नहीं है, ... या संत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान रहते हैं, तो मैं धार्मिक प्रशिक्षण त्यागकर गृहस्थ जीवन में लौट जाऊँगा।

तब पूज्य मालुंक्यापुत्त संध्याकाल में अपने एकांतवास से उठे और भगवान बुद्ध के पास पहुँचे; और उनके पास आकर उन्हें प्रणाम किया, फिर आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गए। आदरपूर्वक एक तरफ बैठे हुए, पूज्य मालुंक्यापुत्त ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा:--

"आदरणीय महोदय, अभी-अभी जब मैं एकांत में ध्यानमग्न था, तब मेरे मन में एक विचार आया, जो इस प्रकार है: 'ये सिद्धांत जिन्हें भगवान बुद्ध ने स्पष्ट नहीं किया है, खारिज कर दिया है और अस्वीकार कर दिया है - कि संसार शाश्वत है, कि संसार शाश्वत नहीं है, ... कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहता है और न ही अस्तित्वहीन हो जाता है - भगवान बुद्ध ने मुझे स्पष्ट नहीं किया है। और यह तथ्य कि भगवान बुद्ध ने मुझे स्पष्ट नहीं किया है, मुझे प्रसन्न नहीं करता और न ही मुझे भाता है। मैं भगवान बुद्ध के निकट जाकर इस विषय में उनसे प्रश्न करूंगा। यदि भगवान बुद्ध मुझे यह स्पष्ट कर दें कि संसार शाश्वत है, या संसार शाश्वत नहीं है, ... या संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहता है और न ही अस्तित्वहीन हो जाता है, तो मैं भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में धार्मिक जीवन व्यतीत करूंगा। यदि भगवान बुद्ध मुझे यह स्पष्ट नहीं कर दें कि संसार शाश्वत है, या कि यदि संसार शाश्वत नहीं है, ...या संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहता है और न ही अस्तित्वहीन होता है, तो मैं धार्मिक प्रशिक्षण त्यागकर एक गृहस्थ के निम्न जीवन में लौट जाऊंगा।'

यदि भगवान बुद्ध जानते हैं कि संसार शाश्वत है, तो वे मुझे स्पष्ट करें कि संसार शाश्वत है; यदि भगवान बुद्ध जानते हैं कि संसार शाश्वत नहीं है, तो वे मुझे स्पष्ट करें कि संसार शाश्वत नहीं है। यदि भगवान बुद्ध न तो यह जानते हैं कि संसार शाश्वत है और न ही यह कि संसार शाश्वत नहीं है, तो जो व्यक्ति नहीं जानता या जिसके पास वह अंतर्दृष्टि नहीं है, उसके लिए एकमात्र उचित बात यही कहना है, 'मैं नहीं जानता; मेरे पास वह अंतर्दृष्टि नहीं है।'

यदि भगवान जानते हैं कि संसार सीमित है, तो...

यदि भगवान जानते हैं कि आत्मा और शरीर एक समान हैं, तो...

यदि भगवान को यह पता हो कि संत मृत्यु के बाद भी जीवित रहते हैं, तो...

यदि भगवान बुद्ध जानते हैं कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और अस्तित्व में नहीं भी रहते, तो कृपया मुझे यह स्पष्ट करें कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और अस्तित्व में नहीं भी रहते; यदि भगवान बुद्ध जानते हैं कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्व में नहीं रहते, तो कृपया मुझे यह स्पष्ट करें कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्व में नहीं रहते। यदि भगवान बुद्ध यह भी नहीं जानते कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और अस्तित्व में नहीं रहते, या यह कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्व में नहीं रहते, तो जो व्यक्ति नहीं जानता या जिसके पास यह अंतर्दृष्टि नहीं है, उसके लिए एकमात्र उचित बात यही कहना है, 'मैं नहीं जानता; मेरे पास यह अंतर्दृष्टि नहीं है।'

"हे मालुंक्यपुत्त, क्या मैंने कभी तुमसे कहा है, 'आओ, मालुंक्यपुत्त, मेरे अधीन धार्मिक जीवन व्यतीत करो, और मैं तुम्हें यह स्पष्ट कर दूंगा कि संसार शाश्वत है, या संसार शाश्वत नहीं है, ... या यह कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहता है और न ही अस्तित्वहीन रहता है'?"

"जी नहीं, बिल्कुल नहीं, आदरणीय महोदय।"

या क्या आपने कभी मुझसे कहा है, 'आदरणीय महोदय, मैं भगवान के मार्गदर्शन में धार्मिक जीवन व्यतीत करूँगा, इस शर्त पर कि भगवान मुझे यह स्पष्ट करें कि संसार शाश्वत है, या संसार शाश्वत नहीं है, ... या यह कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहता है और न ही अस्तित्वहीन रहता है'?

"जी नहीं, बिल्कुल नहीं, आदरणीय महोदय।"

"तो हे मालुंक्यपुत्त, तुम यह स्वीकार करते हो कि मैंने तुमसे यह नहीं कहा, 'आओ, मालुंक्यपुत्त, मेरे अधीन धार्मिक जीवन व्यतीत करो और मैं तुम्हें यह स्पष्ट कर दूँगा कि संसार शाश्वत है या नहीं, ... या यह कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहता है और न ही अस्तित्वहीन हो जाता है;' और फिर तुमने मुझसे यह भी नहीं कहा, 'आदरणीय महोदय, मैं भगवान बुद्ध के अधीन धार्मिक जीवन व्यतीत करूँगा, इस शर्त पर कि भगवान बुद्ध मुझे यह स्पष्ट कर दें कि संसार शाश्वत है या नहीं, ... या यह कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहता है और न ही अस्तित्वहीन हो जाता है।' ऐसा होने पर, हे व्यर्थ मनुष्य, तुम इतने क्रोधित होकर किसकी निंदा कर रहे हो?"

"मालुनक्यपुत्त, जो कोई यह कहे कि 'मैं भगवान बुद्ध के अधीन धार्मिक जीवन तब तक नहीं व्यतीत करूँगा जब तक कि भगवान बुद्ध मुझे यह स्पष्ट न कर दें कि संसार शाश्वत है या नहीं, ... या यह कि संत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही नहीं रहते;' - वह व्यक्ति, मालुनक्यपुत्त, तथागत द्वारा उसे यह स्पष्ट करने से पहले ही मर जाएगा।"

"ऐसा ही है, मालुंक्यपुत्त, मानो किसी व्यक्ति को विष से लथपथ तीर से चोट लगी हो, और उसके मित्र, साथी, रिश्तेदार और सगे-संबंधी उसके लिए किसी चिकित्सक या सर्जन की व्यवस्था करें; और वह बीमार व्यक्ति कहे, 'जब तक मुझे यह पता न चल जाए कि मुझे घायल करने वाला व्यक्ति योद्धा जाति का है, ब्राह्मण जाति का है, किसान जाति का है या मजदूर जाति का है, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे उस व्यक्ति का नाम और वह किस कबीले से संबंधित है, यह पता नहीं चल जाता, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे यह पता नहीं चल जाता कि मुझे घायल करने वाला व्यक्ति लंबा था, छोटा था या मध्यम कद का था, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे यह पता नहीं चल जाता कि मुझे घायल करने वाला व्यक्ति काला था, सांवला था या पीली चमड़ी वाला था, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे यह पता नहीं चल जाता कि मुझे घायल करने वाला व्यक्ति इस या उस गांव, कस्बे या शहर का था, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे यह पता नहीं चल जाता कि जिस धनुष से मुझे चोट लगी है वह कापा है या कोडंडा, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे यह पता नहीं चल जाता कि जिस धनुष की डोरी से मुझे चोट लगी है वह अबाबील-जड़ी बूटी, बांस, स्नायु, मारुवा या दूध-वनस्पति से बनी है, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे यह पता नहीं चल जाता कि मुझे घायल करने वाला तीर कच्चा था या रोपिमा, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे यह पता नहीं चल जाता कि मुझे घायल करने वाला तीर गिद्ध, बगुले, बाज़, मोर या सिथिलहनु के पंखों से बना था, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह यह कहे, 'जब तक मुझे यह पता नहीं चल जाता कि मुझे घायल करने वाला तीर बैल, भैंस, रुरु हिरण या बंदर की नसों से लिपटा हुआ था, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।'

या फिर वह कहे, 'जब तक मुझे यह पता न चल जाए कि मुझे घायल करने वाला तीर साधारण तीर था, या पंजे के आकार का तीर था, या वेकंद तीर था, या लोहे का तीर था, या बछड़े के दांत का तीर था, या करावीरापट्टा तीर था, तब तक मैं इस तीर को नहीं निकलवाऊंगा।' वह मालुंक्यापुत्त, यह जाने बिना ही...

"ठीक इसी प्रकार, मालुंक्यापुत्त, जो कोई यह कहे कि 'मैं भगवान बुद्ध के अधीन धार्मिक जीवन तब तक नहीं व्यतीत करूँगा जब तक कि भगवान बुद्ध मुझे यह स्पष्ट न कर दें कि संसार शाश्वत है, या संसार शाश्वत नहीं है, ... या यह कि संत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान रहते हैं;' - मालुंक्यापुत्त, वह व्यक्ति तथागत द्वारा उसे यह स्पष्ट करने से पहले ही मर जाएगा।"

"मालुंक्यापुत्त, धार्मिक जीवन इस सिद्धांत पर निर्भर नहीं करता कि संसार शाश्वत है; न ही यह इस सिद्धांत पर निर्भर करता है कि संसार शाश्वत नहीं है। चाहे यह सिद्धांत प्रचलित हो, मालुंक्यापुत्त, कि संसार शाश्वत है या नहीं, जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु, दुःख, विलाप, कष्ट, शोक और निराशा तो शेष रहते ही हैं, जिनके निवारण के लिए मैं इस जीवन में उपाय बता रहा हूँ।"

"धार्मिक जीवन, मालुंक्यापुत्त, इस सिद्धांत पर निर्भर नहीं करता कि संसार सीमित है; . . ."

"धार्मिक जीवन, मालुंक्यापुत्त, इस सिद्धांत पर निर्भर नहीं करता कि आत्मा और शरीर एक समान हैं; . . ."

"धार्मिक जीवन, मालुंक्यापुत्त, इस सिद्धांत पर निर्भर नहीं करता कि संत मृत्यु के बाद भी अस्तित्व में रहते हैं; . . ."

"मालुनक्यापुत्त, धार्मिक जीवन इस सिद्धांत पर निर्भर नहीं करता कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और नहीं भी; न ही यह इस सिद्धांत पर निर्भर करता है कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्व में नहीं रहते। चाहे यह सिद्धांत मान्य हो, मालुनक्यापुत्त, कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और नहीं भी, या यह कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्व में नहीं रहते, फिर भी जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु, शोक, विलाप, कष्ट, दुःख और निराशा शेष रहते हैं, जिनके निवारण के लिए मैं इस जीवन में उपाय बता रहा हूँ।"

"इसलिए, मालुंक्यपुत्त, हमेशा ध्यान रखो कि मैंने क्या स्पष्ट नहीं किया है और क्या स्पष्ट किया है। और, मालुंक्यपुत्त, मैंने क्या स्पष्ट नहीं किया है? मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है, मालुंक्यपुत्त, कि संसार शाश्वत है; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि संसार शाश्वत नहीं है; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि संसार सीमित है; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि संसार अनंत है; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि आत्मा और शरीर एक हैं; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि आत्मा एक है और शरीर दूसरी; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि संत मृत्यु के बाद विद्यमान रहते हैं; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि संत मृत्यु के बाद विद्यमान नहीं रहते; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि संत मृत्यु के बाद विद्यमान भी रहते हैं और विद्यमान नहीं भी रहते; मैंने यह स्पष्ट नहीं किया है कि संत मृत्यु के बाद न तो विद्यमान रहते हैं और न ही विद्यमान नहीं रहते। और क्यों?" मालुंक्यापुत्त, क्या मैंने इसका स्पष्टीकरण नहीं दिया? क्योंकि, मालुंक्यापुत्त, इससे कोई लाभ नहीं होता, न ही इसका धर्म के मूल सिद्धांतों से कोई संबंध है, न ही यह विरक्ति, वासना की अनुपस्थिति, समाप्ति, शांति, अलौकिक शक्तियों, परम ज्ञान और निर्वाण की ओर प्रवृत्त होता है; इसलिए मैंने इसका स्पष्टीकरण नहीं दिया है।

"और हे मालुंक्यपुत्त, मैंने क्या समझाया है? हे मालुंक्यपुत्त, मैंने दुख समझाया है; दुख का कारण समझाया है; दुख का निवारण समझाया है; और दुख निवारण का मार्ग समझाया है। और हे मालुंक्यपुत्त, मैंने यह क्यों समझाया है? क्योंकि हे मालुंक्यपुत्त, इससे लाभ होता है, यह धर्म के मूल सिद्धांतों से संबंधित है, और इससे विरक्ति, वासना का अभाव, निर्वाह, शांति, ज्ञान, परम बुद्धि और निर्वाण प्राप्त होता है; इसलिए मैंने इसे समझाया है। तदनुसार, हे मालुंक्यपुत्त, हमेशा ध्यान रखो कि मैंने क्या नहीं समझाया है और क्या समझाया है।"

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा; और आदरणीय मालुनक्यपुत्त प्रसन्न होकर भगवान बुद्ध के भाषण की प्रशंसा करने लगे।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.4 महा-मालुंक्य सुत्त(64)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन में अनाथपियोइक द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। वहीं से भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, क्या तुम्हें मेरे द्वारा उपदेशित इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधन याद हैं?" यह सुनकर पूज्य मलंख्यपुत्त ने भगवान बुद्ध से कहा, "परमेश्वर, मुझे भगवान बुद्ध द्वारा उपदेशित इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधन याद हैं।" मलंख्यपुत्त, तुम्हें मेरे द्वारा उपदेशित इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों में से क्या याद है? पूज्य परमेश्वर, मुझे आत्म-प्रेम, संशय, सद्गुणों को सर्वोच्च लक्ष्य मानना, इंद्रिय-संबंध और क्रोध जैसे इंद्रिय-संबंध के निम्न बंधन याद हैं, जिनका उपदेश भगवान बुद्ध ने दिया था। मुझे भगवान बुद्ध द्वारा उपदेशित इंद्रिय जगत के ये पाँच निम्न बंधन याद हैं।

मालुंख्यपुत्त, आप किसे जानते हैं कि मैं इस प्रकार इंद्रिय जगत के निम्न बंधनों का उपदेश दे रहा हूँ? क्या अन्य संप्रदायों के तपस्वी इस मूर्खतापूर्ण उदाहरण पर आपत्ति नहीं करेंगे? एक शिशु, जो मुश्किल से चलता-फिरता है, उसमें तो आत्म-बोध भी नहीं होता। आत्म-बोध का विचार कैसे उत्पन्न हो सकता है? आत्म-बोध की अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ उसमें प्रवेश कर जाती हैं। [1] मालुंख्यपुत्त, एक शिशु, जो मुश्किल से चलता-फिरता है, उसमें तो विचार भी नहीं होते। विचारों के बारे में उसके मन में संदेह कैसे उत्पन्न हो सकता है? संदेह करने की अंतर्निहित प्रवृत्ति उसमें प्रवेश कर जाती है। एक शिशु, जो मुश्किल से चलता-फिरता है, उसमें तो सद्गुण भी नहीं होते। सद्गुणों को उच्चतर कैसे माना जा सकता है? सद्गुणों को उच्चतर मानने की अंतर्निहित प्रवृत्ति उसमें प्रवेश कर जाती है। मालुंख्यपुत्त, एक शिशु में

तो इंद्रिय-संबंधी इच्छाएँ भी नहीं होतीं। इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं में रुचि कैसे हो सकती है? इंद्रिय-संबंधी रुचि के लिए लोभ की अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ उसमें प्रवेश कर जाती हैं। मालुंख्यपुत्त, एक शिशु के लिए प्राणी मायने नहीं रखते। वह प्राणियों के प्रति क्रोध कैसे रख सकता है? क्रोध करने की छिपी हुई प्रवृत्तियाँ तो उसमें प्रकट हो ही जाती हैं। मलंख्यपुत्त, क्या अन्य संप्रदायों के तपस्वी इस मूर्खतापूर्ण उदाहरण पर आपत्ति नहीं उठाएँगे? तब पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, "पूज्यवर, यह इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों का उपदेश देने का समय है। जो भिक्षु इसे भगवान बुद्ध से सुनेंगे, वे इसे याद रखेंगे।" तब आनंद, सुनो, मैं उपदेश देता हूँ, भगवान बुद्ध ने कहा और पूज्य आनंद सहमत हो गए।

आनंद, वह साधारण मनुष्य जिसने श्रेष्ठ पुरुषों और अपने उपदेशों में निपुण न होने वाले और न ही प्रशिक्षित महान पुरुषों को नहीं देखा है, अपने अहंकार से ग्रस्त मन में रहता है। वह उस अहंकार से मुक्ति का मार्ग नहीं जानता, जैसा कि वह वास्तव में है। वह अहंकार इंद्रिय जगत के निम्न बंधन के समान दृढ़ और अनियंत्रित रहता है। वह संदेह से ग्रस्त मन में रहता है, उत्पन्न संदेह से मुक्ति का मार्ग नहीं जानता, जैसा कि वह वास्तव में है। वे संदेह इंद्रिय जगत के निम्न बंधन के समान दृढ़ और अनियंत्रित रहते हैं। वह सद्गुणों को उच्च स्थान देने वाले मन में रहता है, सद्गुणों के प्रति उत्पन्न सम्मान से मुक्ति का मार्ग नहीं जानता, जैसा कि वह वास्तव में है। सद्गुणों के प्रति उच्च सम्मान इंद्रिय जगत के निम्न बंधन के समान दृढ़ और अनियंत्रित हो जाता है। वह कामुक लोभ से ग्रस्त मन में रहता है, उत्पन्न कामुक लोभ से मुक्ति का मार्ग नहीं जानता, जैसा कि वह वास्तव में है। वह कामुक लोभ इंद्रिय जगत के निम्न बंधन के समान दृढ़ और अनियंत्रित रहता है। क्रोध से ग्रस्त मन के साथ रहना, उत्पन्न क्रोध से मुक्ति का वास्तविक मार्ग नहीं जानता। वह क्रोध इंद्रिय जगत के निम्न बंधन की तरह दृढ़ और अनियंत्रित बना रहता है।

आनंद, जो एक विद्वान और श्रेष्ठ शिष्य हैं, जिन्होंने श्रेष्ठ पुरुषों और अपने शिक्षण में निपुण और प्रशिक्षित महान पुरुषों को देखा है, उनका मन आत्म-निरीक्षण से ग्रस्त नहीं होता। वे आत्म-निरीक्षण से मुक्ति का मार्ग जानते हैं, जैसा कि वह वास्तव में है। उनका आत्म-निरीक्षण, गुप्त प्रवृत्तियों के साथ ही लुप्त हो जाता है। संदेह से ग्रस्त मन न रखते हुए, वे संदेह से मुक्ति का मार्ग जानते हैं, जैसा कि वह वास्तव में है। उनके संदेह, गुप्त प्रवृत्तियों के साथ ही लुप्त हो जाते हैं। सद्गुणों को उच्चतर न समझते हुए, वे सद्गुणों के प्रति उत्पन्न उच्च सम्मान से मुक्ति का मार्ग जानते हैं, जैसा कि वह वास्तव में है, और सद्गुणों के प्रति उच्च सम्मान, गुप्त प्रवृत्तियों के साथ ही लुप्त हो जाता है। कामुक लोभ से ग्रस्त न होने वाले मन रखते हुए, वे कामुक लोभ से मुक्ति का मार्ग जानते हैं, जैसा कि वह वास्तव में है। वह कामुक लोभ, गुप्त प्रवृत्तियों के साथ ही उनसे लुप्त हो जाता है। क्रोध से ग्रस्त न होने वाले मन रखते हुए, वे क्रोध से मुक्ति का मार्ग जानते हैं, जैसा कि वह वास्तव में है, और वह क्रोध, गुप्त प्रवृत्तियों के साथ ही लुप्त हो जाता है।

आनंद, यही वह मार्ग और विधि है जिससे इंद्रिय जगत के निम्न बंधनों को पार किया जा सकता है। इस मार्ग और विधि को अपनाए बिना, केवल जानकर और देखकर भी, इंद्रिय जगत के निम्न बंधनों को पार करना संभव नहीं है। यह वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति किसी विशाल वृक्ष के पास आए, जिसमें भीतरी लकड़ी हो, और वह छाल और रस को हटाए बिना ही भीतरी लकड़ी काट ले। यह संभव नहीं है, उसी प्रकार, इस मार्ग और विधि को अपनाए बिना, इंद्रिय जगत के निम्न बंधनों को जानना, देखना और पार करना संभव नहीं है। आनंद, यही वह मार्ग और विधि है जिससे इंद्रिय जगत के निम्न बंधनों को पार किया जा सकता है। इस मार्ग और विधि को अपनाकर, इंद्रिय जगत के निम्न बंधनों को जानना, देखना और पार करना संभव है। यह वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति किसी विशाल वृक्ष के पास आए, जिसमें भीतरी लकड़ी हो, और वह छाल और रस को काटकर फिर भीतरी लकड़ी ले ले। यह संभव है। उसी प्रकार, इस मार्ग और विधि को अपनाकर, आप इंद्रिय जगत के निम्न बंधनों को जान, देख और पार कर सकते हैं। जैसे कोई दुर्बल व्यक्ति उफनती हुई गंगा नदी के किनारे आकर कहे कि मैं अपने हाथों से नदी की धारा काटकर सुरक्षित रूप से नदी पार कर लूँगा। यह संभव नहीं कि वह नदी पार कर ले। उसी प्रकार, जब आत्म-दर्शन के निवारण का उपदेश दिया जाता है, तो मन उत्तेजित होकर प्रसन्न नहीं होता और मुक्त होने के लिए स्थिर नहीं हो जाता। इसे उस दुर्बल व्यक्ति का स्वभाव समझना चाहिए। जैसे कोई बलवान व्यक्ति उफनती हुई गंगा नदी के किनारे आकर कहे कि मैं अपने हाथों से नदी की धारा काटकर सुरक्षित रूप से नदी पार कर लूँगा। यह संभव है कि वह नदी पार कर ले। उसी प्रकार, हे आनंद, जब आत्म-दर्शन के निवारण का उपदेश दिया जाता है, तो मन उत्तेजित होकर प्रसन्न नहीं होता और मुक्त होने के लिए स्थिर नहीं हो जाता, इसे बलवान व्यक्ति का स्वभाव समझना चाहिए।

आनंद, इंद्रिय जगत के निम्न बंधनों को दूर करने का मार्ग और विधि क्या है? आनंद, भिक्षु मन को पूर्णतः एकांत में रखकर, दोषों को दूर करते हुए, सभी शारीरिक पापों का निवारण करता है जो पश्चाताप उत्पन्न करते हैं। फिर मन को इंद्रिय संबंधी विचारों और दोषों से विरक्त करके, चिंतनशील विचारों और एकांत से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता में लीन होकर प्रथम ध्यान में लीन हो जाता है। उसमें स्थापित होकर वह सभी भौतिक वस्तुओं, सभी भावनाओं, सभी प्रत्यक्ष वस्तुओं, सभी इरादों, सभी चेतन संकेतों पर चिंतन करता है; वे सभी क्षणभंगुर, अप्रिय, रोग, फोड़ा, तीर, दुर्भाग्य, विपत्ति, पराक्रमी, विनाश के लिए नियत, शून्य और आत्माहीन हैं। फिर वह मन को अमर तत्व की ओर मोड़ता है: यह शांत है, यह उदात्त है, जैसे सभी संकल्पों का शमन, सभी प्रेमों का त्याग, लालसा का नाश, वैराग्य, समाप्ति और अंत*1)। उस मन से वह इच्छाओं का नाश करता है। यदि वह उन्हीं चीजों के लोभ और स्वार्थ के कारण इच्छाओं का

नाश नहीं करता, तो वह पांच निम्न बंधनों, इंद्रिय जगत के बंधनों के नाश के साथ स्वतः ही आगे नहीं बढ़ता। आनंद, यह भी इंद्रिय जगत के पांच निम्न बंधनों पर विजय पाने की एक विधि है।

फिर, आनंद, वह भिक्षु जो विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है, आंतरिक रूप से शांत मन से, एक बिंदु पर, विचारों और विचार प्रक्रियाओं से रहित और एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से युक्त होकर, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान और चतुर्थ ध्यान में रहता है। इस अवस्था को प्राप्त करके, वह सभी भौतिक वस्तुओं, सभी भावनाओं, सभी प्रत्यक्ष वस्तुओं, सभी इरादों, सभी चेतन संकेतों को क्षणभंगुर, अप्रिय, रोग, फोड़ा, तीर, दुर्भाग्य, विपत्ति, पराक्रमी, विनाश के लिए नियत, शून्य और आत्माहीन मानता है। तब वह मन को अमर तत्व की ओर मोड़ता है: यह शांत है, यह उदात्त है, जैसे सभी संकल्पों का शमन, सभी स्नेहों का त्याग, लालसा का नाश, वैराग्य, समाप्ति और अंत। उस मन से वह इच्छाओं के नाश की ओर बढ़ता है। यदि वह लोभ और उन्हीं चीजों के प्रति आसक्ति के कारण होने वाली इच्छाओं का नाश नहीं करता, तो इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों के नाश के साथ ही वह स्वतः ही उत्पन्न हो उठता है और आगे नहीं बढ़ता। आनंद, यह भी इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों पर विजय पाने का एक तरीका है।

फिर, आनंद, वह भिक्षु जो पदार्थ और क्रोध की सभी धारणाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है, विभिन्न धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, असीम आकाश में निवास करता है। इसे प्राप्त करके, वह सभी भौतिक चीजों, सभी भावनाओं, सभी प्रत्यक्ष चीजों, सभी इरादों, सभी चेतन संकेतों पर विचार करता है, जो क्षणभंगुर, अप्रिय, रोग, फोड़ा, तीर, दुर्भाग्य, विपत्ति, पराक्रमी, विनाश के लिए नियत, शून्य, आत्माहीन हैं। फिर वह मन को अमर तत्व की ओर मोड़ता है: यह शांत है, यह उच्च है, जैसे सभी संकल्पों का शमन, सभी स्नेहों का त्याग, लालसा का नाश, वैराग्य, समाप्ति और अंत। उस मन से वह इच्छाओं के नाश की ओर बढ़ता है। यदि वह उन्हीं चीजों के प्रति लोभ और स्वार्थ के कारण इच्छाओं के नाश की ओर नहीं बढ़ता है, तो वह पांच निम्न बंधनों के नाश के साथ स्वतः ही आगे न बढ़ने के लिए उठ खड़ा होता है। आनंद, यह भी इंद्रिय जगत के पांच निम्न बंधनों पर विजय पाने का एक तरीका है।

फिर, आनंद, वह भिक्षु जो स्थान की सभी धारणाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है, असीम चेतना के साथ चेतना के क्षेत्र में निवास करता है। चेतना के सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करके, जहाँ कुछ भी नहीं है, वह शून्यता के क्षेत्र में निवास करता है। इसे प्राप्त करके वह सभी भौतिक वस्तुओं, सभी भावनाओं, सभी प्रत्यक्ष वस्तुओं, सभी इरादों, सभी सचेत संकेतों पर विचार करता है: ये सभी क्षणभंगुर, अप्रिय, रोग, फोड़ा, तीर, दुर्भाग्य, पीड़ा, पराये, विनाश के लिए नियत, शून्य, आत्माहीन हैं। फिर वह मन को अमर तत्व की ओर मोड़ता है: यह शांत है, यह उदात्त है, जैसे सभी संकल्पों का शमन, सभी स्नेहों का त्याग, लालसा का नाश, वैराग्य, समाप्ति और अंत। उस मन से वह इच्छाओं के नाश की ओर बढ़ता है। यदि वह उन्हीं वस्तुओं के प्रति लोभ और स्वार्थ के कारण इच्छाओं का नाश नहीं करता है, तो वह पाँच निम्न बंधनों के नाश के साथ स्वतः ही आगे नहीं बढ़ पाता है। आनंद, यह भी इंद्रिय जगत के पांच निम्न बंधनों को दूर करने की एक विधि है।

आदरणीय महोदय, जब इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों के नाश का यही मार्ग और विधि है, तो एक भिक्षु मन की मुक्ति और ज्ञान के माध्यम से मुक्ति की बात क्यों करता है? आनंद, यही मानसिक क्षमताओं की परिपक्वता में अंतर है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.5 भद्दली सुत्त(65)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपियोइक द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। भगवान बुद्ध ने वहाँ से संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, मैं दिन में एक बार भोजन करता हूँ, और इसके कारण मुझे कम कष्ट, कम रोग, हल्कापन, शक्ति और सुखद निवास का अनुभव होता है। आओ! भिक्षुओं, तुम भी दिन में एक बार भोजन करो, और इसके कारण तुम्हें कम कष्ट, कम रोग, हल्कापन, शक्ति और सुखद निवास का अनुभव होगा।" यह सुनकर पूज्य भद्दाली ने भगवान बुद्ध से कहा, "पूज्यवर, मैं दिन में एक बार भोजन करने का साहस नहीं करूँगा। दिन में एक बार भोजन करने से मेरे मन में संदेह और पश्चाताप उत्पन्न होते हैं।" भद्दाली, तब जब तुम्हें आमंत्रित किया जाता है तो क्या तुम वहाँ भोजन करते हो, और भोजन को दूसरे लोक में ले जाकर खाते हो? भद्दाली, क्या तुम भी इसी तरह अपना जीवन यापन करते हो? फिर भी, आदरणीय गुरुजी, मैं दिन में एक बार भी भोजन करने का साहस नहीं करता।

दिन में एक बार भोजन करने से मुझे संदेह और पश्चाताप होता है। जब भगवान बुद्ध नियम बता रहे थे और भिक्षु समुदाय उन नियमों का पालन करने के लिए तैयार हो रहा था, तब आदरणीय भद्दाली ने उन्हें स्वीकार करने का साहस नहीं किया। इसलिए, आदरणीय भद्दाली उन तीन महीनों के दौरान भगवान बुद्ध के समक्ष नहीं आए, क्योंकि वे गुरु के मार्गदर्शन में अपूर्ण थे।

उस समय बहुत से भिक्षु भगवान बुद्ध का वस्त्र सिल रहे थे; वस्त्र सिलकर पूर्ण हो जाने पर भगवान बुद्ध भ्रमण पर जाने वाले थे। पूज्य भद्दाली उन भिक्षुओं के पास गए, उनसे अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। तब उन भिक्षुओं ने कहा, 'भद्दाली, यहाँ हम भगवान बुद्ध का वस्त्र सिल रहे हैं, जब यह पूरा हो जाएगा और तीन महीने पूरे हो जाएंगे तो भगवान बुद्ध भ्रमण पर जाने वाले हैं। भद्दाली, सावधान रहना। लंबे समय तक अप्रिय कर्मों में मत पड़ना।' पूज्य भद्दाली ने उन भिक्षुओं की सलाह मानकर भगवान बुद्ध के पास जाकर प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, 'पूज्यवर, मैंने मूर्खता, भ्रम और पाप के कारण पाप किया है।' जब भिक्षुओं के समुदाय के लिए नियम बनाए गए और भिक्षुओं ने उन नियमों को स्वीकार किया, तब मैंने उन्हें स्वीकार न करने का संकल्प लिया। हे पूज्यवर, मेरी इस गलती के लिए मुझे क्षमा करें, और यह भविष्य में संयम के लिए होगा। 'भद्दाली, तुमने मूर्खता, भ्रम और दोष के कारण उल्लंघन किया है। जब मैं नियम बना रहा था और भिक्षुओं के समुदाय ने उन्हें स्वीकार किया, तब तुमने उन्हें स्वीकार न करने का संकल्प लिया।'

भद्दाली, क्या तुम्हें यह बात नहीं सूझी कि भगवान सावत्थी में निवास करते हैं और मुझे प्रशिक्षण में अपूर्ण भिक्षु के रूप में पहचान लेंगे? भद्दाली, क्या तुम्हें यह बात नहीं सूझी कि बहुत से भिक्षु वर्षा ऋतु में सावत्थी आए हैं, वे मुझे प्रशिक्षण में अपूर्ण भिक्षु के रूप में पहचान लेंगे? भद्दाली, क्या तुम्हें यह बात नहीं सूझी कि बहुत सी भिक्षुणियां वर्षा ऋतु में सावत्थी आई हैं, वे मुझे प्रशिक्षण में अपूर्ण भिक्षु के रूप में पहचान लेंगी? भद्दाली, क्या तुम्हें यह बात नहीं सूझी कि बहुत से पुरुष गृहस्थ शिष्य सावत्थी आए हैं, वे मुझे प्रशिक्षण में अपूर्ण भिक्षु के रूप में पहचान लेंगे? भद्दाली, क्या तुम्हें यह बात नहीं सूझी कि बहुत सी महिला गृहस्थ शिष्य सावत्थी आई हैं, वे मुझे प्रशिक्षण में अपूर्ण भिक्षु के रूप में पहचान लेंगी? भद्दाली, क्या तुम्हें यह भी नहीं सूझा? कई संन्यासी और अन्य संप्रदायों के ब्राह्मण वर्षा ऋतु में सावत्थी आए हैं, वे मुझे प्रशिक्षण में अपूर्ण भिक्षु समझेंगे? मैं संन्यासी गौतम का शिष्य हूँ, जो इस संप्रदाय में एक वरिष्ठ हैं, और मेरा प्रशिक्षण अपूर्ण है। 'आदरणीय महोदय, मैंने मूर्खता, भ्रम और दोष के कारण उल्लंघन किया है। जब भिक्षु समुदाय के लिए नियम बनाए जा रहे थे और भिक्षु उन नियमों को स्वीकार कर रहे थे, तब मैंने उन्हें स्वीकार न करने का संकल्प लिया। कृपया मेरी गलती क्षमा करें, आदरणीय महोदय, और यह भविष्य में संयम के लिए होगा। भद्दाली, तुमने मूर्खता, भ्रम और दोष के कारण उल्लंघन किया है, जब मैं नियम बना रहा था और भिक्षु समुदाय उन नियमों को स्वीकार कर रहा था, तब तुमने उन्हें स्वीकार न करने का संकल्प लिया।'

भद्दाली, मैं दोनों मार्गों से मुक्त हुए एक भिक्षु से कहता हूँ, [1] आओ भिक्षु, मेरे लिए इस कीचड़ में लेट जाओ। क्या वह कीचड़ में लेटेगा, या कीचड़ पर कुछ और रखेगा, या मना कर देगा?' 'ऐसा नहीं होगा, आदरणीय।' 'भद्दाली, मैं ज्ञान के माध्यम से मुक्त हुए एक भिक्षु से कहता हूँ। [2] आओ भिक्षु, मेरे लिए इस कीचड़ में लेट जाओ। क्या वह कीचड़ में लेटेगा, या कीचड़ पर कुछ और रखेगा, या मना कर देगा?' 'ऐसा नहीं होगा, आदरणीय।' 'भद्दाली, मैं मार्ग के साक्षी भिक्षु से कहता हूँ, [3] या जो धार्मिक दृष्टि से मुक्त हुआ हो, [4] या जो विश्वास के माध्यम से मुक्त हुआ हो, [5] या जो शिक्षा के अनुसार मार्ग पर चल रहा हो, [6] या जो विश्वास के अनुसार मार्ग पर चल रहा हो। [7] आओ भिक्षु, मेरे लिए कीचड़ में लेट जाओ। क्या वह कीचड़ में लेटेगा, या कीचड़ पर कुछ और रखेगा, या मना कर देगा?' 'यह उचित नहीं होगा, आदरणीय महोदय।' 'भद्दाली, क्या तुम उस समय खाली, निकम्मे और पथभ्रष्ट नहीं थे?' 'जी, आदरणीय महोदय। मैंने मूर्खता, भ्रम और पाप के कारण अपराध किया है। जब भिक्षु समुदाय के लिए नियम बनाए जा रहे थे और भिक्षु उन नियमों को स्वीकार कर रहे थे, तब मैंने उन्हें स्वीकार न करने का संकल्प लिया था। आदरणीय महोदय, मेरी गलती क्षमा करें। यह भविष्य में संयम के लिए होगा।' 'भद्दाली, तुमने मूर्खता, भ्रम और पाप के कारण अपराध किया है। जब मैं नियम बना रहा था और भिक्षु समुदाय उन नियमों को स्वीकार कर रहा था, तब तुमने उन्हें स्वीकार न करने का संकल्प लिया था। भद्दाली, क्योंकि तुम अपनी गलती स्वीकार करते हो और भविष्य में संयम के लिए क्षमा मांगते हो, इसलिए मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। गलती को देखकर और भविष्य में संयम के लिए क्षमा मांगना श्रेष्ठ पुरुष के गुणों में वृद्धि का संकेत है।'

भद्दाली, गुरु के मार्गदर्शन में एक भिक्षु है जिसका प्रशिक्षण अभी पूर्ण नहीं हुआ है। वह सोचता है कि यदि मैं किसी एकांत स्थान पर रहूँ, जैसे जंगल में वृक्ष की जड़, पहाड़ों में गुफा, श्मशान भूमि, जंगल, खुला मैदान या भूसे का ढेर, तो मुझे मनुष्य से परे कोई विशिष्ट ज्ञान प्राप्त हो जाएगा। वह किसी एकांत स्थान पर रह जाता है, जैसे जंगल में वृक्ष की जड़, पहाड़ों में गुफा, श्मशान भूमि, जंगल, खुला मैदान या भूसे का ढेर। गुरु उसे फटकारते हैं, और यह देखकर ज्ञानी सहपाठी, देवता और वह स्वयं भी उसे फटकारते हैं, और उसे मनुष्य से परे कोई विशिष्ट ज्ञान प्राप्त नहीं होता। इसका कारण क्या है? गुरु के मार्गदर्शन में प्रशिक्षण में अपूर्ण रहने वाले के साथ ऐसा ही होता है।

भद्दाली, गुरु के मार्गदर्शन में पूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त एक भिक्षु है। वह सोचता है, "यदि मैं जंगल में किसी वृक्ष की जड़, पहाड़ों में किसी गुफा, श्मशान भूमि, घने जंगल, खुले स्थान या भूसे के ढेर जैसे किसी एकांत स्थान में निवास करूँ, तो मुझे मनुष्य से परे कोई विशिष्ट ज्ञान प्राप्त हो जाएगा।" वह जंगल में किसी वृक्ष की जड़, पहाड़ों में किसी गुफा, श्मशान भूमि, घने जंगल, खुले स्थान या भूसे के ढेर जैसे

किसी एकांत स्थान में निवास करता है। जब वह इस प्रकार एकांत में रहता है, तो गुरु उसे दोष नहीं देते, बुद्धिमान सहपाठी भी उसे दोष नहीं देते, देवता और वह स्वयं भी उसे दोष नहीं देते, और उसे मनुष्य से परे कोई विशिष्ट ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इंद्रिय सुखों और पापपूर्ण विचारों से विरक्त होकर, विचारों और विचार प्रक्रियाओं से और एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख से युक्त होकर वह प्रथम ध्यान में निवास करता है: इसका क्या कारण है? भद्दाली, यह उस व्यक्ति के साथ होता है जो गुरु के उपदेशों में पूर्ण रूप से निपुण हो चुका हो। फिर, भिक्षु विचारों और विचार-प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करते हुए, मन को शांत और एकाग्र करके, विचारों और विचार-प्रक्रियाओं से रहित होकर, एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख का अनुभव करते हुए द्वितीय ध्यान में लीन हो जाता है: इसका कारण क्या है? भद्दाली, यह उस व्यक्ति के साथ होता है जो उपदेशों में पूर्ण रूप से निपुण हो चुका हो। फिर, भद्दाली, भिक्षु आनंद और वैराग्य के प्रति समभाव रखते हुए, शरीर के साथ भी सुख का अनुभव करते हुए तृतीय ध्यान में लीन हो जाता है। इस पर श्रेष्ठजन समभाव का ध्यान रखते हुए सुख में लीन रहते हैं। इसका कारण क्या है? भद्दाली, यह उस व्यक्ति के साथ होता है जो उपदेशों में पूर्ण रूप से निपुण हो चुका हो। फिर, भद्दाली, भिक्षु सुख और दुख को दूर करते हुए, पहले सुख और दुख पर विजय प्राप्त कर चुका होता है। समभाव और शुद्धिकरण के साथ चतुर्थ ध्यान में लीन हो जाता है। इसका कारण क्या है? भद्दाली, यह उस व्यक्ति के साथ होता है जो गुरु के उपदेशों में पूर्ण रूप से निपुण हो चुका हो।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, निष्कलंक, लघु दोषों से मुक्त, क्रियाशील, लचीला और स्थिर होता है, तब वह मन को पूर्व जन्मों के ज्ञान की ओर निर्देशित करता है। वह असंख्य पूर्व जन्मों को याद करता है। इसका कारण क्या है? भद्दाली, यह उस व्यक्ति को प्राप्त होता है जो गुरु के मार्गदर्शन में पूर्ण रूप से प्रशिक्षित होता है। जब मन एकाग्र, शुद्ध, निष्कलंक, निष्कलंक, क्रियाशील, लचीला और स्थिर होता है, तब वह मन को प्राणियों के प्रकट होने और लुप्त होने के ज्ञान की ओर निर्देशित करता है। मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से वह प्राणियों को उदात्त और उदात्त अवस्थाओं में, सुंदर और कुरूप, अच्छे और बुरे रूपों में प्रकट होते और लुप्त होते देखता है। प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार जानता है। इसका कारण क्या है? भद्दाली, यह उस व्यक्ति को प्राप्त होता है जो गुरु के मार्गदर्शन में पूर्ण रूप से प्रशिक्षित होता है। जब मन एकाग्र, शुद्ध, निष्कलंक, निष्कलंक, क्रियाशील, लचीला और स्थिर होता है, तब वह मन को इच्छाओं के नाश की ओर निर्देशित करता है। वह जानता है, जैसा कि वास्तव में है, यह अप्रिय है—इच्छाओं के निवारण का मार्ग वह जानता है जैसा कि वास्तव में है। जब वह इस प्रकार जानता और देखता है, तो उसका मन इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से, 'होने' की इच्छाओं से और अज्ञानी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर वह जानता है, मैं मुक्त हो गया हूँ। जन्म नष्ट हो जाता है, पवित्र जीवन जिया जाता है, जो करना चाहिए वह किया जाता है। अब कुछ भी चाहने को नहीं रहता। इसका कारण क्या है? भद्दाली, यह उसी को होता है जो गुरु के प्रशिक्षण, उनके मार्गदर्शन में पूर्ण हो चुका हो।

यह सुनकर पूज्य भद्दाली ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, एक भिक्षु पर इतना ध्यान क्यों दिया जाता है और दूसरे पर नहीं?" भद्दाली ने कहा, "एक भिक्षु हमेशा कोई न कोई गलती करता है। जब भिक्षु उससे प्रश्न करते हैं, तो वह बात को दूसरी ओर मोड़ देता है और क्रोध, घृणा और अप्रसन्नता दिखाता है। वह सही व्यवहार नहीं करता और यह नहीं कहता कि मैं समुदाय को प्रसन्न करने के लिए ऐसा व्यवहार करूंगा।" तब उन भिक्षुओं के मन में यह बात आती है, "यह भिक्षु हमेशा कोई न कोई गलती करता है। जब भिक्षु उससे प्रश्न करते हैं, तो वह बात को दूसरी ओर मोड़ देता है और क्रोध, घृणा और अप्रसन्नता दिखाता है। वह सही व्यवहार नहीं करता और यह नहीं कहता कि मैं समुदाय को प्रसन्न करने के लिए ऐसा व्यवहार करूंगा।" तब भिक्षु कहते हैं, "अच्छा है कि पूज्यवर इस भिक्षु के प्रश्न का उत्तर जल्दी न दें।" भद्दाली ने कहा, "तब ऐसा होता है कि भिक्षु उस भिक्षु के प्रश्न का उत्तर जल्दी नहीं देते।" भद्दाली, यहाँ एक भिक्षु हमेशा कोई न कोई गलती करता है। जब भिक्षु उससे प्रश्न करते हैं, तो वह बात को विषयांतर नहीं करता और न ही क्रोध, घृणा या अप्रसन्नता दिखाता है, बल्कि शांत भाव से कहता है, मैं ऐसा व्यवहार करूँगा जिससे समुदाय प्रसन्न हो। तब उन भिक्षुओं के मन में यह बात आती है कि वह भिक्षु हमेशा कोई न कोई गलती करता है। जब भिक्षु उससे प्रश्न करते हैं, तो वह बात को विषयांतर नहीं करता और न ही क्रोध, घृणा या अप्रसन्नता दिखाता है। वह शांत भाव से कहता है, मैं ऐसा व्यवहार करूँगा जिससे समुदाय प्रसन्न हो। तब भिक्षु कहते हैं, अच्छा होगा यदि पूज्य भिक्षु इस भिक्षु के प्रश्न का शीघ्र समाधान कर दें। भद्दाली, तब ऐसा होता है कि भिक्षु उस भिक्षु के प्रश्न का शीघ्र समाधान कर देते हैं।

भद्दाली, यहाँ एक भिक्षु बिना किसी अपराध के भी हमेशा दोषी प्रतीत होता है। जब भिक्षु उससे प्रश्न करते हैं, तो वह बात को दूसरी ओर मोड़ देता है और क्रोध, घृणा और अप्रसन्नता प्रकट करता है। वह उचित व्यवहार नहीं करता और यह नहीं कहता कि मैं समुदाय को प्रसन्न करने के लिए ऐसा व्यवहार करूँगा। तब उन भिक्षुओं को यह बात समझ आती है कि यह भिक्षु बिना किसी अपराध के भी हमेशा दोषी प्रतीत होता है, जब भिक्षु उससे प्रश्न करते हैं, तो वह बात को दूसरी ओर मोड़ देता है और क्रोध, घृणा और अप्रसन्नता प्रकट करता है। वह उचित व्यवहार नहीं करता और यह नहीं कहता कि मैं समुदाय को प्रसन्न करने के लिए ऐसा व्यवहार करूँगा। तब भिक्षु कहते हैं, अच्छा है कि पूज्य भिक्षु इस भिक्षु के प्रश्न का उत्तर शीघ्रता से न दें। भद्दाली, तब ऐसा होता है कि भिक्षु उस भिक्षु के प्रश्न का उत्तर शीघ्रता से नहीं देते। भद्दाली, यहाँ एक भिक्षु बिना किसी अपराध के भी हमेशा दोषी प्रतीत होता है, जब भिक्षु उससे प्रश्न करते हैं, तो वह बात को दूसरी ओर नहीं मोड़ता और क्रोध, घृणा और अप्रसन्नता प्रकट नहीं करता। वह शांत भाव से कहता है, मैं ऐसा व्यवहार करूंगा

जिससे समुदाय प्रसन्न हो। तब उन भिक्षुओं के मन में यह बात आती है कि यह भिक्षु बिना किसी अपराध के हमेशा दोषी प्रतीत होता है; जब भिक्षु उससे प्रश्न करते हैं तो वह बात को भटकाता नहीं है और क्रोध, घृणा या असंतोष नहीं दिखाता, बल्कि शांत भाव से कहता है, मैं ऐसा व्यवहार करूंगा जिससे समुदाय प्रसन्न हो। तब भिक्षु कहते हैं, अच्छा होगा यदि पूज्य भिक्षु इस भिक्षु के प्रश्न का शीघ्र समाधान कर दें। भद्दाली, तब ऐसा होता है कि भिक्षु उस भिक्षु के प्रश्न का शीघ्र समाधान कर देते हैं।

भद्दाली, एक भिक्षु केवल श्रद्धा और प्रेम के कारण ही आगे बढ़ता है। तब भिक्षुओं के मन में यह विचार आता है: यह भिक्षु केवल श्रद्धा और प्रेम के कारण ही आगे बढ़ता है: यदि हम इस भिक्षु का अत्यधिक पीछा करेंगे तो इसकी थोड़ी सी श्रद्धा और प्रेम भी कम हो जाएगा। जिस प्रकार किसी व्यक्ति की एक आँख होती है, उसके मित्र, सहपाठी और रक्त संबंधी उसकी एक आँख की रक्षा करते हैं, यह मत करो, वह मत करो, वरना तुम्हारी एक आँख चली जाएगी। ठीक इसी प्रकार भिक्षुओं के मन में यह विचार आता है: यह भिक्षु केवल श्रद्धा और प्रेम के कारण ही आगे बढ़ता है: यदि हम इस भिक्षु का अत्यधिक पीछा करेंगे तो इसकी थोड़ी सी श्रद्धा और प्रेम भी कम हो जाएगा।

भद्दाली, यही कारण है कि एक भिक्षु का बारीकी से अनुसरण किया जाता है और दूसरे का बारीकी से अनुसरण नहीं किया जाता है।

'आदरणीय महोदय, क्या कारण है कि पहले कम नियमों के साथ बहुत से भिक्षुओं का संन्यास हो जाता था, और अब बहुत से नियमों के साथ कुछ ही भिक्षुओं का संन्यास होता है?' 'बद्दाली, ऐसा तब होता है जब मनुष्य में सद्गुण कम हो जाते हैं और जब शिक्षा का स्तर गिर जाता है। बहुत से नियम बनाए जाते हैं, लेकिन कुछ ही भिक्षुओं का संन्यास होता है। भद्दाली, गुरु तब तक नियम नहीं बनाते जब तक कि कामवासना का पतन स्पष्ट न हो जाए। जब समुदाय में कामवासना का पतन स्पष्ट हो जाता है, तो गुरु उस पतन को दूर करने के लिए नियम बनाते हैं। जब तक समुदाय बड़ा नहीं हो जाता, तब तक कामवासना का पतन स्पष्ट नहीं होता। जब तक समुदाय सर्वोच्च लाभ प्राप्त नहीं कर लेता, सर्वोच्च प्रसिद्धि प्राप्त नहीं कर लेता, सबसे विद्वान नहीं बन जाता, दीर्घकालिक नहीं हो जाता, तब तक कामवासना का पतन स्पष्ट नहीं होता। भद्दाली, जब कोई भिक्षु दीर्घकालिक हो जाता है, तब कामवासना का पतन स्पष्ट हो जाता है और तब गुरु उस पतन को दूर करने के लिए नियम बनाते हैं।'

भद्दाली, जब मैंने तुम्हें शुद्ध नस्ल के घोड़े की उपमा देकर प्रवचन दिया था, तब तुम छोटे थे, क्या तुम्हें याद है? नहीं, पूज्यवर। भद्दाली, क्या तुम जानते हो कि यह क्यों दिया गया था? पूज्यवर, क्या यह इसलिए नहीं था कि तुम गुरु के मार्गदर्शन में लंबे समय से अपूर्ण रहे हो? भद्दाली, केवल यही कारण नहीं है, मैंने तुम्हारे मन को लंबे समय से भेद कर देखा है। मैं जानता था: यह मूर्ख व्यक्ति शिक्षा को समग्र रूप से नहीं समझता और उसका सार नहीं ग्रहण करता। मैं शुद्ध नस्ल के घोड़े की उपमा देकर प्रवचन दूंगा, ध्यान से सुनो। पूज्यवर भद्दाली सहमत हो गए और भगवान बुद्ध ने इस प्रकार कहा:

'घोड़ों को अच्छी तरह से प्रशिक्षित करने वाले भद्दाली, किसी शुद्ध नस्ल के घोड़े को प्रशिक्षण देने के लिए सबसे पहले उसे मुंह से लगाम लगाने का प्रशिक्षण देते थे। मुंह से लगाम लगाने का प्रशिक्षण देते समय घोड़ा बेचैन, चिड़चिड़ा और असामान्य प्रशिक्षण के कारण छटपटाता था, लेकिन वह जल्दी ही पहला और आखिरी अभ्यास पूरा कर लेता था और जल्द ही उसकी बेचैनी, चिड़चिड़ाहट और छटपटाना शांत हो जाता था। जब मुंह से लगाम लगाने के कारण बेचैनी, चिड़चिड़ाहट और छटपटाना शांत हो जाता था, तब घोड़ा प्रशिक्षक उसे जुआ बांधने का प्रशिक्षण देते थे। जुआ बांधने के बाद भी घोड़ा बेचैन, चिड़चिड़ा और असामान्य प्रशिक्षण के कारण छटपटाता था, लेकिन वह जल्दी ही पहला और आखिरी अभ्यास पूरा कर लेता था और जल्द ही उसकी बेचैनी, चिड़चिड़ाहट और छटपटाना शांत हो जाता था। फिर घोड़ा प्रशिक्षक उसे बार-बार गोल-गोल सरपट दौड़ने का प्रशिक्षण देते थे। बार-बार असामान्य रूप से गोल-गोल दौड़ने का प्रशिक्षण लेते समय घोड़ा बेचैन, चिड़चिड़ा और असामान्य प्रशिक्षण से छटपटाता रहता था, लेकिन वह जल्दी ही पहला और आखिरी अभ्यास पूरा कर लेता था और जल्द ही उसकी बेचैनी, चिड़चिड़ाहट और छटपटाहट शांत हो जाती थी। जब बेचैनी, चिड़चिड़ाहट और छटपटाहट शांत हो जाती थी, तो बार-बार गोल-गोल दौड़ते समय घोड़े का प्रशिक्षक उसे मौन धारण करने का प्रशिक्षण देता था। मौन धारण करने का प्रशिक्षण लेते समय भी घोड़ा बेचैन, चिड़चिड़ा और असामान्य प्रशिक्षण से छटपटाता रहता था, लेकिन वह जल्दी ही पहला और आखिरी अभ्यास पूरा कर लेता था और जल्द ही उसकी बेचैनी, चिड़चिड़ाहट और छटपटाहट शांत हो जाती थी। जब शुद्ध नस्ल का घोड़ा यह दस प्रकार का प्रशिक्षण पूरा कर लेता था, तो वह राजा के योग्य, राजा की सेवाओं के योग्य और राजसी संपत्ति बन जाता था। इसी प्रकार, इन दस गुणों से संपन्न भिक्षु आतिथ्य, भेंट, उपहार और आदरपूर्ण अभिवादन के योग्य होता था। वह संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र बन जाता है: दस गुण क्या हैं? भिक्षु को प्रशिक्षण से परे सही दृष्टि और सही विचार रखने चाहिए। प्रशिक्षण से परे सही शब्द और कर्म रखने चाहिए। प्रशिक्षण से परे सही आजीविका रखनी चाहिए। प्रशिक्षण से परे सही प्रयास और ध्यान रखना चाहिए। प्रशिक्षण से परे सही एकाग्रता और विमोचन प्राप्त करना चाहिए। भद्दाली, इन दस गुणों से युक्त भिक्षु आतिथ्य सत्कार के योग्य, भेंट देने के योग्य, दान देने के योग्य, आदरपूर्वक अभिवादन करने के योग्य और संसार के लिए अतुलनीय पुण्य क्षेत्र बन जाता है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य भद्दाली भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

[1] एक भिक्षु जो दोनों दिशाओं से मुक्त हो चुका है (उभतोविमुत्तो), वह शाब्दिक रूप से मुक्ति को जानता है और वह इस मुक्ति का अनुभव यहीं और अभी करता है। अर्थात्, वह अपने शरीर के साथ इस मुक्ति का अनुभव करता है। उदाहरण के लिए, मानसिक संपर्क के किसी भी द्वार से उसे कोई स्पर्श नहीं होता। उसने यह अनुभव ध्यान के माध्यम से भी किया है।

[2] ज्ञान के माध्यम से मुक्त होने वाला (पाविमुत्तो) शाब्दिक रूप से मुक्ति को जानता है, और वह इसे झानों और उच्चतर समाधि में अनुभव करता है।

[3] मार्ग का देह साक्षी (कायसक्खी), एक बार मार्ग का अनुभव कर चुका होता है। उसे यहाँ और अभी इसके परिणाम अनुभव करने के लिए बहुत प्रयास करना पड़ता है। फिर भी वह पूरी तरह सुरक्षित है और कम से कम अपनी मृत्युशय्या पर इसके परिणाम अनुभव करेगा।

[4] जो व्यक्ति धार्मिक दृष्टि (दिंहिपट्टो) प्राप्त कर लेता है, वह सुरक्षित रूप से मार्ग पर विचरण करता है। वह भी सुरक्षित है और यदि वह अभी और यहीं प्रयास नहीं करता है, तो उसे अपनी मृत्युशय्या पर अपनी उपलब्धियों के अनुसार परिणाम भुगतने पड़ेंगे।

[5] आस्था के द्वारा मुक्त होने वाला (सद्धविमुत्तो) भगवान बुद्ध के ज्ञान, उनकी शिक्षा और भिक्षु समुदाय में बहुत आस्था रखता है। इसी कारण वह आस्था के द्वारा मुक्त होता है। वह सुरक्षित रूप से मार्ग पर है और उसके लिए अधिकतम सात जन्म शेष रहेंगे, भले ही वह आलसी और सुस्त हो जाए।

[6] जो शिक्षा के अनुसार चलता है (धम्मनुसारि)। वह शिक्षा के अनुसार जीवन व्यतीत करता है और यदि वह आलसी और सुस्त नहीं है, तो वह निश्चित रूप से शिक्षा की धारा में प्रवेश करेगा।

[7] आस्था के अनुसार चलने वाला (सद्धानुसारि)। आस्था के अनुसार चलने वाला भी निश्चित रूप से शिक्षा की धारा में प्रवेश करेगा, यदि वह आलसी और सुस्त न हो।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.6 लाटुकिकोपमा सुत्त(66)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध अंगुत्तरापनियों के बीच अपाना नामक एक नगर में ठहरे हुए थे। तब सुबह सवेरे, उन्होंने अपने वस्त्र धारण किए और अपना बाहरी वस्त्र और भिक्षापात्र लेकर अपाना में भिक्षा मांगने के लिए गए। अपाना में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने के बाद वे एक वन में विश्राम करने के लिए गए। वन में प्रवेश करके वे एक वृक्ष की जड़ में बैठ गए।

आदरणीय उदयिन भी सुबह सवेरे अपने वस्त्र धारण करके और अपना बाहरी वस्त्र एवं भिक्षापात्र लेकर अपाना में भिक्षा मांगने चले गए। अपाना में भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके वे उस वन में विश्राम करने के लिए चले गए। वन में प्रवेश करके वे एक वृक्ष की जड़ में बैठ गए। एकांत में अकेले होने पर उनके मन में यह विचार आया: "भगवान ने हमसे कितने ही दुखदायी कार्य दूर किए हैं! कितने ही सुखदायी कार्य हमें दिए हैं! भगवान ने हमसे कितने ही अपव्ययपूर्ण गुण दूर किए हैं! कितने ही कुशल गुण हमें दिए हैं!"

फिर, शाम को, पूज्य उदयिन एकांतवास छोड़कर भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, अभी जब मैं एकांतवास में अकेला था, तब मेरे मन में यह विचार आया: 'भगवान बुद्ध ने हमसे कितने ही दुखदायी कार्य दूर किए हैं! कितने ही सुखदायी कार्य हमें दिए हैं! भगवान बुद्ध ने हमसे कितने ही अकुशल गुण दूर किए हैं! कितने ही कुशल गुण हमें दिए हैं!' क्योंकि हे भगवान, अतीत में हम सुबह, शाम और दिन में गलत समय (दोपहर) पर भोजन करते थे। फिर एक समय ऐसा आया जब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं,

कृपया दिन में गलत समय पर भोजन करना बंद कर दें।'" 1 उस समय मैं व्याकुल था, उस समय मैं दुखी था, [सोच रहा था], 'वे उत्तम भोजन जो गृहस्थ हमें दिन में गलत समय पर देते हैं: यहाँ तक कि वे भी जिन्हें भगवान ने हमें त्यागने के लिए कहा है; यहाँ तक कि वे भी जिन्हें स्वर्गवासी ने हमें छोड़ने के लिए कहा है!' परन्तु, भगवान के प्रति अपने प्रेम और आदर के कारण, लज्जा और अपराध के भय के कारण, हमने उस दिन के भोजन को गलत समय पर त्याग दिया।

"तो हमने शाम और सुबह दोनों समय भोजन किया। फिर एक बार भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, कृपया शाम का भोजन गलत समय पर छोड़ दें।' उस समय मैं व्याकुल और दुखी था, [सोच रहा था], 'हमारे दो भोजनों में से जो अधिक उत्तम रूप से तैयार किया गया था: उसे भी भगवान बुद्ध ने हमें छोड़ने को कहा; उसे भी जो परम पूज्य थे, उन्होंने हमें त्यागने को कहा! हे भगवान, ऐसा भी हुआ है कि एक व्यक्ति दिन में कुछ अच्छी करी की सामग्री प्राप्त करके अपनी पत्नी से कहता है, 'इसे अलग रख दो और हम सब इसे शाम को एक साथ खा लेंगे।' सभी उत्तम व्यंजन शाम को ही पकाए जाते हैं, और दिन में लगभग न के बराबर। परन्तु भगवान बुद्ध के प्रति अपने प्रेम और आदर के कारण, लज्जा और अपराधबोध के भय के कारण, हमने शाम का भोजन गलत समय पर छोड़ दिया।"

"हे भगवान, ऐसा हुआ है कि घोर अंधकार में भिक्षा माँगते भटकते भिक्षु गंदे पानी के तालाब में गिर गए हैं, गटर में जा गिरे हैं, काँटों के झुरमुट में ठोकर खा गए हैं या सोई हुई गाय से टकरा गए हैं। अपराध करने जाते या लौटते समय उनका सामना बदमाशों से हुआ है। स्त्रियों ने उन्हें यौन प्रस्ताव दिए हैं। एक बार मैं घोर अंधकार में भिक्षा माँगने गया था। एक बर्तन धो रही स्त्री ने बिजली की चमक में मुझे देखा और मुझे देखते ही चिल्ला उठी: 'मैं तो गई काम से! कोई राक्षस मेरे पीछे पड़ा है!' यह सुनकर मैंने उससे कहा, 'मैं कोई राक्षस नहीं हूँ, बहन। मैं तो भिक्षा माँगने वाला भिक्षु हूँ।' 'तो तुम तो ऐसे भिक्षु हो जिसके पिता और माता दोनों मर चुके हैं। हे भिक्षु, तुम्हारे लिए बेहतर है कि किसी तेज धार वाले कसाई के चाकू से तुम्हारा पेट चीर दिया जाए, बजाय इसके कि तुम घोर अंधकार में अपने पेट के लिए भिक्षा माँगते भटको!'" हे भगवान, उस बात को याद करते हुए मेरे मन में यह विचार आया: 'भगवान ने हमसे कितनी ही पीड़ादायक चीजें दूर की हैं! कितनी ही सुखद चीजें हमें दी हैं! भगवान ने हमसे कितने ही अकुशल गुण दूर किए हैं! कितने ही कुशल गुण हमें दिए हैं!'

"इसी प्रकार, उदयिन, कुछ निकम्मे लोग हैं, जब मैं उनसे कहता हूँ, 'इसे छोड़ दो,' तो वे कहते हैं: 'यह छोटी-सी, साधारण सी बात क्यों? यह तो बहुत ज्यादा नियमनिष्ठ है, यह चिंतनशील है।' वे इसे नहीं छोड़ते। वे मेरे प्रति और प्रशिक्षण में रुचि रखने वाले भिक्षुओं के प्रति असभ्य व्यवहार करते हैं। उनके लिए यह एक मजबूत फंदा है, एक मोटा फंदा है, एक भारी फंदा है, एक ऐसा फंदा है जो कभी सड़ता नहीं, और एक भारी जुआ है।"

मान लीजिए कि एक बटेर एक सड़ी हुई लता में फंस गई है, जिससे उसे चोट लग सकती है, वह पकड़ी जा सकती है या मर भी सकती है, और कोई कहे, 'यह सड़ी हुई लता जिसमें यह बटेर फंसी है, और जिससे उसे चोट लग सकती है, वह पकड़ी जा सकती है या मर भी सकती है, उसके लिए एक कमजोर फंदा है, एक दुर्बल फंदा है, एक सड़ा हुआ फंदा है, एक सारहीन फंदा है।' क्या ऐसा कहने वाला व्यक्ति सही कह रहा होगा?

"नहीं, भगवान। वह सड़ती हुई लता... उसके लिए एक मजबूत फंदा है, एक मोटा फंदा है, एक भारी फंदा है, एक न सड़ने वाला फंदा है, और एक मोटा जुआ है।"

"इसी प्रकार, उदयिन, कुछ निकम्मे लोग हैं, जब मैं उनसे कहता हूँ, 'इसे छोड़ दो,' तो वे कहते हैं: 'यह छोटी-सी, साधारण सी बात क्यों? यह तो बहुत ज्यादा नियमनिष्ठ है, यह चिंतनशील है।' वे इसे नहीं छोड़ते। वे मेरे प्रति और प्रशिक्षण में रुचि रखने वाले भिक्षुओं के प्रति असभ्य व्यवहार करते हैं। उनके लिए यह एक मजबूत फंदा है, एक मोटा फंदा है, एक भारी फंदा है, एक ऐसा फंदा है जो कभी सड़ता नहीं, और एक भारी जुआ है।"

"अब कुछ ऐसे कुलवासी हैं, जब मैं उनसे कहता हूँ, 'इसे छोड़ दो,' तो वे कहते हैं: 'भगवान हमें इसे क्यों छोड़ने को कहते हैं? परम पूजनीय भगवान हमें इस तुच्छ, साधारण सी बात को क्यों त्यागने को कहते हैं?' लेकिन वे इसे छोड़ देते हैं और न तो मेरे प्रति और न ही प्रशिक्षण में लगे भिक्षुओं के प्रति असभ्य होते हैं। इसे छोड़ने के बाद, वे निश्चिंत, शांत, संतुष्ट और जंगली हिरण की तरह मन से जीते हैं। उनके लिए यह एक कमजोर जाल है, एक निष्फल जाल है, एक सड़ता हुआ जाल है, एक सारहीन जाल है।"

मान लीजिए कि एक शाही हाथी—विशालकाय, कुलीन, युद्धों का अभ्यस्त, जिसके दांत रथ के डंडों के समान हों—मोटे चमड़े के फंदों में फंसा हुआ था, लेकिन अपने शरीर को थोड़ा सा मोड़कर वह उन फंदों को तोड़कर अपनी मनचाही जगह पर जा सकता था। और मान लीजिए कि कोई कहे, 'वे मोटे चमड़े के फंदे जिनमें शाही हाथी फंसा था, लेकिन जिन्हें उसने अपने शरीर को थोड़ा सा मोड़कर तोड़कर

अपनी मनचाही जगह पर जा सकता था: उसके लिए वे एक मजबूत फंदा, एक मोटा फंदा, एक भारी फंदा, एक अटूट फंदा और एक भारी जुआ थे।' क्या ऐसा कहने वाला व्यक्ति सही कह रहा होगा?

"नहीं, भगवान। वे मोटे चमड़े के फंदे... उसके लिए एक कमजोर फंदा थे, एक दुर्बल फंदा, एक सड़ा हुआ फंदा, एक सारहीन फंदा।"

"इसी प्रकार, उदयिन, कुछ कुलवासी ऐसे हैं, जब मैं उनसे कहता हूँ, 'इसे त्याग दो,' तो वे कहते हैं: 'भगवान हमें इसे क्यों त्यागने को कहते हैं? परम पूजनीय भगवान हमें इस तुच्छ, साधारण सी बात को क्यों छोड़ने को कहते हैं?' परन्तु वे इसे त्याग देते हैं और मेरे या प्रशिक्षण में लगे भिक्षुओं के प्रति असभ्य नहीं होते। इसे त्यागने के बाद, वे निश्चिंत, शांत, संतुष्ट और जंगली हिरण के समान मन से जीवन व्यतीत करते हैं। उनके लिए यह एक कमजोर जाल है, एक दुर्बल जाल है, एक सड़ता हुआ जाल है, एक सारहीन जाल है।"

मान लीजिए एक गरीब, निर्धन और निर्धन व्यक्ति है, जिसके पास एक छोटी सी जर्जर झोपड़ी है—जो कौवों के लिए खुली है, अच्छी हालत में नहीं; एक जर्जर पलंग है—जो अच्छी हालत में नहीं; चावल और लौकी के दानों का एक बर्तन है—जो अच्छी हालत में नहीं; और एक अकेली पत्नी है—जो अच्छी हालत में नहीं। वह एक पार्क में जाता और एक भिक्षु को देखता—स्वादिष्ट भोजन के बाद अपने हाथ-पैर धोकर, ठंडी छाया में बैठा हुआ, एकाग्र ध्यान में लीन। उसके मन में यह विचार आता: 'ध्यान की अवस्था कितनी सुखद है! ध्यान की अवस्था कितनी रोगमुक्त है! काश मैं भी—अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके—गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाऊं!' लेकिन अपनी उस अकेली झोपड़ी को छोड़ने में असमर्थ होने के कारण—जो जर्जर थी, कौवों के लिए खुली थी, अच्छी हालत में नहीं थी; अपने उस अकेले पलंग को छोड़ने में असमर्थ होने के कारण—जो जर्जर थी, अच्छी हालत में नहीं थी; चावल और लौकी के दानों के अपने उस अकेले बर्तन को छोड़ने में असमर्थ होने के कारण—जो अच्छी हालत में नहीं था; और अपनी उस अकेली पत्नी को छोड़ने में असमर्थ होने के कारण—जो अच्छी हालत में नहीं थी—वह अपने बाल और दाढ़ी नहीं मुंडवा सकता था, गेरुए वस्त्र नहीं पहन सकता था, और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में नहीं जा सकता था। और मान लीजिए कोई कहे, 'वह अकेली झोपड़ी... वह अकेला पलंग... वह अकेला बर्तन... और वह अकेली पत्नी—जो अच्छी हालत में नहीं थी—जिसमें वह व्यक्ति फंसा हुआ था, जिसे वह छोड़ नहीं सका, और जिसके कारण वह अपने बाल और दाढ़ी नहीं मुंडवा सका, गेरुए वस्त्र नहीं पहन सका, और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में नहीं जा सका: उसके लिए वे एक कमजोर फंदा थे, एक दुर्बल फंदा थे, एक सड़ता हुआ फंदा थे, एक सारहीन फंदा थे।' क्या इस तरह बोलने वाला व्यक्ति सही बोल रहा होगा?

"नहीं, भगवान। वह अकेली झोपड़ी... वह अकेला पलंग... वह अकेला बर्तन... वह अकेली पत्नी... उस आदमी के लिए एक मजबूत फंदा, एक मोटा फंदा, एक भारी फंदा, एक न सड़ने वाला फंदा और एक मोटा जुआ था।"

"इसी प्रकार, उदयिन, कुछ निकम्मे लोग हैं, जब मैं उनसे कहता हूँ, 'इसे छोड़ दो,' तो वे कहते हैं: 'यह छोटी-सी, साधारण सी बात क्यों? यह तो बहुत ज्यादा नियमनिष्ठ है, यह चिंतनशील है।' वे इसे नहीं छोड़ते। वे मेरे प्रति और प्रशिक्षण में रुचि रखने वाले भिक्षुओं के प्रति असभ्य व्यवहार करते हैं। उनके लिए यह एक मजबूत फंदा है, एक मोटा फंदा है, एक भारी फंदा है, एक ऐसा फंदा है जो कभी सड़ता नहीं, और एक भारी जुआ है।"

"अब मान लो, उदयिन, कि एक गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र हो - धनी, समृद्ध और संपत्ति संपन्न - जिसके पास सोने की विशाल ईंटें, अनाज का विशाल भंडार, खेतों की विशाल संख्या, भूमि की विशाल संख्या, पत्नियों की विशाल संख्या और दासों की विशाल संख्या हो। वह एक उद्यान में जाए और एक भिक्षु को देखे - स्वादिष्ट भोजन के बाद हाथ-पैर धोए हुए, ठंडी छाया में बैठा हुआ, एकाग्र ध्यान में लीन। उसके मन में यह विचार आए: 'ध्यान की अवस्था कितनी सुखद है! ध्यान की अवस्था कितनी रोगमुक्त है! काश मैं भी - अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके - गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जा पाता!'" और अपने विशाल सोने के भंडार, अपने विशाल अनाज, अपने विशाल खेतों, अपनी विशाल भूमि, अपनी विशाल पत्नियों और अपने विशाल पुरुष एवं स्त्री दासों को त्यागकर, वह अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश कर सकेगा। अब मान लीजिए कोई कहे, 'वे विशाल सोने के भंडार... और वे विशाल पुरुष एवं स्त्री दास जिनके जाल में वह गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र फँसा था, लेकिन जिन्हें त्यागकर वह अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर, गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में प्रवेश कर सका: उसके लिए वे एक मजबूत फंदा, एक घना फंदा, एक भारी फंदा, एक न गलने वाला फंदा और एक भारी जुआ थे।' क्या ऐसा कहने वाला व्यक्ति सही कह रहा होगा?

"नहीं, स्वामी। सोने की वे विशाल मात्राएँ... उसके लिए एक कमजोर जाल थीं, एक निष्फल जाल, एक सड़ता हुआ जाल, एक सारहीन जाल।"

"इसी प्रकार, उदयिन, कुछ कुलवासी ऐसे हैं, जब मैं उनसे कहता हूँ, 'इसे त्याग दो,' तो वे कहते हैं: 'भगवान हमें इसे क्यों त्यागने को कहते हैं? परम पूजनीय भगवान हमें इस तुच्छ, साधारण सी बात को क्यों छोड़ने को कहते हैं?' परन्तु वे इसे त्याग देते हैं और मेरे या प्रशिक्षण में लगे भिक्षुओं के प्रति असभ्य नहीं होते। इसे त्यागने के बाद, वे निश्चिंत, शांत, संतुष्ट और जंगली हिरण के समान मन से जीवन व्यतीत करते हैं। उनके लिए यह एक कमजोर जाल है, एक दुर्बल जाल है, एक सड़ता हुआ जाल है, एक सारहीन जाल है।"

उदयिन, संसार में चार प्रकार के मनुष्य पाए जाते हैं। वे कौन से चार प्रकार हैं? एक प्रकार वह है जब कोई व्यक्ति अपने संचयों का त्याग करने का अभ्यास कर रहा होता है। जैसे-जैसे वह संचयों का त्याग करने का अभ्यास करता है, संचयों से जुड़ी स्मृतियाँ और संकल्प उसे परेशान करने लगते हैं। वह उनके आगे झुक जाता है। वह उन्हें न तो त्यागता है, न नष्ट करता है, न दूर करता है, और न ही मिटाता है। मैं तुमसे कहता हूँ, उदयिन, कि इस प्रकार का व्यक्ति बंधनों में जकड़ा हुआ है, मुक्त नहीं। ऐसा क्यों है? क्योंकि मैंने इस प्रकार के व्यक्ति की क्षमताओं की विविधता को जाना है।

"फिर एक ऐसा मामला है जहाँ एक व्यक्ति अपने द्वारा अर्जित वस्तुओं का त्याग करने का अभ्यास कर रहा है। जैसे-जैसे वह इन वस्तुओं का त्याग करने का अभ्यास करता है, उनसे जुड़ी यादें और संकल्प उसे परेशान करने लगते हैं। वह उनके आगे नहीं झुकता। वह उनका त्याग करता है, उन्हें नष्ट करता है, उन्हें दूर करता है और उन्हें अस्तित्व से मिटा देता है। मैं तुमसे कहता हूँ, उदयिन, कि इस प्रकार का व्यक्ति बंधनों में जकड़ा हुआ है, मुक्त नहीं। ऐसा क्यों है? क्योंकि मैंने इस प्रकार के व्यक्ति के संबंध में विभिन्न प्रकार की क्षमताओं को जाना है।"

फिर एक ऐसा मामला है जहाँ कोई व्यक्ति अर्जित वस्तुओं के त्याग और परित्याग का अभ्यास कर रहा है। जैसे-जैसे वह अर्जित वस्तुओं के त्याग और परित्याग का अभ्यास करता है, वैसे-वैसे ध्यान भंग होने के कारण समय-समय पर उसे अर्जित वस्तुओं से जुड़ी स्मृतियाँ और संकल्प सताने लगते हैं। उसका ध्यान धीरे-धीरे जागृत होता है, परन्तु वह उन स्मृतियों और संकल्पों को शीघ्र ही त्याग देता है, नष्ट कर देता है, दूर कर देता है और मिटा देता है। जैसे दिन भर गर्म किए हुए लोहे के पलंग पर पानी की दो-तीन बूँदें गिरती हैं: पानी की बूँदें धीरे-धीरे गिरती हैं, परन्तु शीघ्र ही गायब हो जाती हैं। उसी प्रकार, एक ऐसा मामला है जहाँ कोई व्यक्ति अर्जित वस्तुओं के त्याग और परित्याग का अभ्यास कर रहा है। जैसे-जैसे वह अर्जित वस्तुओं के त्याग और परित्याग का अभ्यास करता है, वैसे-वैसे ध्यान भंग होने के कारण समय-समय पर उसे अर्जित वस्तुओं से जुड़ी स्मृतियाँ और संकल्प सताने लगते हैं। उसका ध्यान धीरे-धीरे जागृत होता है, लेकिन फिर वह उन यादों और संकल्पों को तुरंत त्याग देता है, उन्हें नष्ट कर देता है, मिटा देता है और अस्तित्व से ही मिटा देता है। मैं तुमसे कहता हूँ, उदयिन, कि इस प्रकार का व्यक्ति बंधनों में जकड़ा हुआ है, मुक्त नहीं। ऐसा क्यों है? क्योंकि मैंने इस प्रकार के व्यक्ति के गुणों की विविधता को जाना है।

"फिर एक ऐसा मामला भी है जहाँ एक व्यक्ति, यह जानकर कि संचय ही दुख और तनाव का मूल कारण है, संचय से मुक्त हो जाता है, संचय के अंत में उसे मुक्ति मिल जाती है। मैं तुमसे कहता हूँ, उदयिन, कि ऐसा व्यक्ति बंधनमुक्त है, बंधनमुक्त नहीं। ऐसा क्यों है? क्योंकि मैंने इस प्रकार के व्यक्ति के संबंध में क्षमताओं की विविधता को जाना है।"

"दुनिया में चार प्रकार के लोग पाए जाते हैं।"

और, उदयिन, ये पाँच प्रकार की कामुकता होती हैं। कौन से पाँच? आँखों से देखी जा सकने वाली आकृतियाँ - मनभावन, सुखद, आकर्षक, लुभावना, इच्छा जगाने वाला, मोहक। कानों से सुनी जा सकने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनी जा सकने वाली सुगंधें... जीभ से सुनी जा सकने वाली स्वाद... शरीर से सुनी जा सकने वाली स्पर्श संवेदनाएँ - मनभावन, सुखद, आकर्षक, मोहक, इच्छा जगाने वाला, मोहक। ये पाँच प्रकार की कामुकता होती हैं। अब, इन पाँच प्रकार की कामुकता पर निर्भर कोई भी सुख और आनंद कामुक सुख कहलाता है, एक घिनौना सुख, एक साधारण सुख, एक नीच सुख। और इस सुख के विषय में मैं कहता हूँ कि इसे संजोना नहीं चाहिए, इसे विकसित नहीं करना चाहिए, इसका पीछा नहीं करना चाहिए, इससे डरना चाहिए।

अब, एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु - इंद्रियों से पूर्णतः विरक्त, अकुशल मानसिक गुणों से विरक्त - प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ। निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकाग्रता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचारों और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। परमानंद के लुप्त होने पर, वह समभाव, सचेत और सजग रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके बारे में श्रेष्ठजन कहते हैं, 'समभाव और सचेत रहते हुए, वह सुखद अवस्था में रहता है।' सुख और दुख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की

शुद्धता, न सुख न दुख। इसे त्याग का सुख, एकांत का सुख, शांत सुख, आत्म-जागरूकता का सुख कहा जाता है। और इस सुख के विषय में मैं कहता हूँ कि इसे संवर्धित करना चाहिए, विकसित करना चाहिए, प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए, इससे भयभीत नहीं होना चाहिए।

अब, एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु—जो कामुकता से पूर्णतः विरक्त है, अकुशल मानसिक गुणों से विरक्त है—प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: विरक्तता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है। मैं आपको बताता हूँ, यह विक्षुब्धता के अंतर्गत आता है। और वहाँ विक्षुब्धता के अंतर्गत क्या आता है? वे निर्देशित विचार और मूल्यांकन जो वहाँ भी नहीं रुके हैं: वही वहाँ विक्षुब्धता के अंतर्गत आते हैं।

"एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों को शांत करके, द्वितीय ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकाग्रता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। मैं आपको बताता हूँ, यह अविचल के अंतर्गत आता है। और वहाँ अविचल के अंतर्गत क्या आता है? वह परमानंद-आनंद जो वहाँ समाप्त नहीं हुआ है: वही वहाँ अविचल के अंतर्गत आता है।"

"एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, समाधि की अवस्था के शांत होने पर भी, समभाव, सजग और सतर्क रहता है तथा शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके बारे में ऋषियों ने कहा है, 'समभाव और सजग रहकर वह सुखद अवस्था में रहता है।' मैं तुम्हें बताता हूँ, यह विक्षुब्धता के अंतर्गत आता है। और वहाँ विक्षुब्धता के अंतर्गत क्या आता है? वह समभाव-सुख जो वहाँ समाप्त नहीं हुआ है: वही वहाँ विक्षुब्धता के अंतर्गत आता है।"

"एक ऐसा मामला है जिसमें एक भिक्षु, सुख और दुख का त्याग करके—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख। अब मैं आपको बताता हूँ, यह अविचलितता के अंतर्गत आता है।"

"अब एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु... प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है। मैं तुमसे कहता हूँ, यह पर्याप्त नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे त्याग दो। मैं तुमसे कहता हूँ, इससे ऊपर उठो। और इससे ऊपर उठना क्या है?"

"एक स्थिति ऐसी भी है जब एक भिक्षु... दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... यही उसका पारगमन है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, यह भी पर्याप्त नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे त्याग दो। मैं तुमसे कहता हूँ, इससे परे जाओ। और इसका पारगमन क्या है?"

"एक स्थिति ऐसी भी है जब एक भिक्षु... तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है... यही उसका पारगमन है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, यह भी पर्याप्त नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे त्याग दो। मैं तुमसे कहता हूँ, इससे परे जाओ। और इसका पारगमन क्या है?"

"एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु...चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है...यह उसका पारगमन है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, यह भी पर्याप्त नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे त्याग दो। मैं तुमसे कहता हूँ, इसका पारगमन करो। और इसका पारगमन क्या है?"

फिर एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, भौतिक रूप की धारणाओं से पूर्णतः परे जाकर, प्रतिरोध की धारणाओं के लुप्त होने के साथ, और विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, 'अनंत अंतरिक्ष' को अनुभव करते हुए, अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। यही उसका पारगमन है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, यह भी पर्याप्त नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे त्याग दो। मैं तुमसे कहता हूँ, इससे परे जाओ। और इसका पारगमन क्या है?

फिर एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, 'अनंत चेतना' का अनुभव करते हुए, चेतना की अनंतता के आयाम में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। यही उसका पारगमन है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, यह भी पर्याप्त नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे त्याग दो। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे पार करो। और इसका पारगमन क्या है?

"फिर एक ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु, चेतना की अनंतता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, शून्यता के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं रहता है। यही उसका पारगमन है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, यह भी पर्याप्त नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे त्याग दो। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे पार करो। और इसका पारगमन क्या है?"

"फिर एक ऐसी स्थिति भी है जहाँ एक भिक्षु, शून्यता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, उस आयाम में प्रवेश करता है और स्थिर रहता है जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष। यही उसका पारगमन है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ, यह भी पर्याप्त नहीं है। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे त्याग दो। मैं तुमसे कहता हूँ, इसे पार करो। और इसका पारगमन क्या है?"

"एक ऐसी स्थिति भी है जहाँ एक भिक्षु, न तो बोध और न ही अबोध के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, बोध और संवेदना की समाप्ति में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। यही इसका पारगमन है।"

"इस प्रकार, उदयिन, मैं उस आयाम के त्याग की बात कर रहा हूँ जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष। क्या तुम्हें कोई ऐसा बंधन दिखाई देता है, चाहे छोटा हो या बड़ा, जिसके त्याग की मैं बात नहीं कर रहा हूँ?"

"नहीं, भगवान।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। आदरणीय उदयिन ने भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्नता व्यक्त की।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 7.7कैटुमा सुट्टा(67)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध चतुमा के आमलकी वन में निवास कर रहे थे। उस समय लगभग पाँच सौ भिक्षु, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य मोग्गलाना के नेतृत्व में, भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए चतुमा आए थे। वे आपस में अभिवादन करते हुए, बिस्तर लगाते हुए, कुंड और वस्त्र समेटते हुए बहुत शोर कर रहे थे। भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद से कहा, 'आनंद, ये कौन हैं जो मछुआरों की तरह मछली पकड़ने के बाद शोर मचा रहे हैं?' 'पूज्यवर, लगभग पाँच सौ भिक्षु, सारिपुत्त और मोग्गलाना के नेतृत्व में, भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए चतुमा आए हैं। वे वहाँ के भिक्षुओं से अभिवादन करते हुए, बिस्तर लगाते हुए, कुंड और वस्त्र समेटते हुए बहुत शोर कर रहे हैं।' 'तो, आनंद, उन भिक्षुओं को मेरे नाम से बुलाओ।' आदरणीय आनंद ने सहमति जताते हुए उन भिक्षुओं के पास जाकर कहा, 'आदरणीय भिक्षुओं, गुरुजी आपको बुला रहे हैं।' तब वे भिक्षु सहमत होकर भगवान बुद्ध के पास गए, प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान बुद्ध ने उन भिक्षुओं से कहा, 'भिक्षुओं, आप इतना शोर क्यों मचा रहे हैं? ऐसा लग रहा है जैसे मछुआरे मछलियाँ पकड़कर ला रहे हों।' 'आदरणीय महोदय, सारिपुत्त और मोग्गलाना के नेतृत्व में लगभग पाँच सौ भिक्षु भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए चतुमा आए हैं। वे वहाँ के भिक्षुओं से अभिवादन करते हुए, बिस्तर ठीक करते हुए, पान-पात्र और वस्त्र समेटते हुए बहुत शोर मचा रहे हैं।' 'जाओ! भिक्षुओं, मैं तुम्हें विदा करता हूँ, मेरे पास मत ठहरो।' उन भिक्षुओं ने सहमति जताई, भगवान बुद्ध की पूजा की, उनकी परिक्रमा की और अपने कुंड और वस्त्र लेकर भगवान बुद्ध के समक्ष से चले गए।

उस समय चतुमा वंश के शाक्य किसी कार्य के लिए सभा भवन में एकत्रित हुए थे। चतुमा वंश के शाक्यों ने भिक्षुओं को दूर जाते देखा और उनके पास जाकर कहा, "हे पूज्यवर, आप क्यों जा रहे हैं?" भिक्षु ने कहा, "भगवान ने भिक्षु समुदाय को विदा कर दिया है।" भिक्षु ने कहा, "हे पूज्यवर, एक क्षण रुकिए, शायद मैं भगवान को मना सकूँ।" तब उन भिक्षुओं ने चतुमा वंश के शाक्यों की बात सुनी और प्रतीक्षा की। चतुमा वंश के शाक्य भगवान के पास गए, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठकर कहा, "भगवान भिक्षु समुदाय से प्रसन्न हों। भगवान भिक्षु समुदाय का स्वागत करें। जिस प्रकार भगवान ने अतीत में समुदाय पर दया दिखाई, उसी प्रकार अब भी दया दिखाई जाए। हे पूज्यवर, यहाँ कुछ नए भिक्षु हैं, जो हाल ही में विदा हुए हैं।" यदि उन्हें भगवान बुद्ध के दर्शन का अवसर न मिले, तो वे अपना मन बदल लेंगे। जैसे छोटे पौधे पानी की कमी से मुरझा जाते हैं। आदरणीय महोदय, यदि इन भिक्षुओं को, जो हाल ही में दीक्षा में आए हैं, भगवान बुद्ध के दर्शन का अवसर न मिले, तो वे अपना मन बदल लेंगे। जैसे बछड़ा अपनी माँ को न देखकर व्याकुल हो जाता है। आदरणीय महोदय, उसी प्रकार यदि इन भिक्षुओं को, जो हाल ही में दीक्षा में आए हैं, भगवान बुद्ध के दर्शन का अवसर न मिले, तो वे

अपना मन बदल लेंगे। भगवान बुद्ध भिक्षु समुदाय से प्रसन्न हों। भगवान बुद्ध भिक्षु समुदाय का स्वागत करें। जैसे भगवान बुद्ध ने अतीत में समुदाय पर दया दिखाई, वैसे ही अब भी दया दिखाएं।

तब भगवान बुद्ध के विचारों को जानकर, एक बलवान पुरुष की तरह, जैसे वह अपनी झुकी हुई भुजा को सीधा करता है या अपनी सीधी भुजा को इस प्रकार मोड़ता है जैसे ब्रह्मालोक से विलीन हो जाता है, ब्रह्मा बुद्ध के समक्ष प्रकट हुए। ब्रह्मा बुद्ध ने अपने शॉल को एक कंधे पर व्यवस्थित करते हुए और भगवान बुद्ध की ओर हाथ जोड़कर कहा, "भगवान बुद्ध भिक्षुओं के समुदाय में प्रसन्न हों। भगवान बुद्ध भिक्षुओं के समुदाय का स्वागत करें। जैसे भगवान बुद्ध ने अतीत में समुदाय पर दया दिखाई, वैसे ही अब भी दया दिखाई जाए। आदरणीय, यहाँ कुछ नए भिक्षु हैं, जो हाल ही में दीक्षा लेकर आए हैं। यदि उन्हें भगवान बुद्ध के दर्शन का अवसर नहीं मिला, तो वे अपना मन बदल लेंगे, जैसे छोटे पौधे पानी की कमी से मर जाते हैं। आदरणीय, यदि इन भिक्षुओं को, जो हाल ही में दीक्षा में आए हैं, भगवान बुद्ध के दर्शन का अवसर नहीं मिला, तो वे अपना मन बदल लेंगे। जैसे बछड़ा अपनी माँ को न देखकर व्याकुल हो जाता है।" आदरणीय महोदय, जिस प्रकार इन भिक्षुओं को, जो हाल ही में दीक्षा ग्रहण कर रहे हैं, यदि उन्हें भगवान बुद्ध के दर्शन का अवसर न मिले तो वे अपना मन बदल लेंगे। भगवान बुद्ध भिक्षु समुदाय में प्रसन्न हों। भगवान बुद्ध भिक्षु समुदाय का स्वागत करें। जिस प्रकार भगवान बुद्ध ने अतीत में समुदाय पर करुणा दिखाई, उसी प्रकार अब भी करुणा दिखाई जाए।

चतुमा और ब्रह्म सहमपति के शाक्यों ने पौधों और बछड़े की उपमा देकर भगवान को प्रसन्न कर लिया। तब पूज्य महामोग्गलाना ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'मित्रों, उठो, अपने कुंड और वस्त्र ले लो, चतुमा और ब्रह्म सहमपति के शाक्यों ने पौधों और बछड़े की उपमा देकर भगवान को प्रसन्न कर लिया।' वे भिक्षु सहमत होकर अपने स्थानों से उठे और कुंड और वस्त्र लेकर भगवान के पास गए, प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान ने पूज्य सारिपुत्त से कहा, 'सारिपुत्त, जब मैंने भिक्षु समुदाय को विदा किया, तो तुम्हारे मन में क्या विचार आया?' 'पूज्यवर, मेरे मन में यह विचार आया। भगवान इस समय और यहाँ प्रसन्नता में विलीन रहेंगे, उदासीन, मैं भी इस समय और यहाँ प्रसन्नता में विलीन रहूँगा। आओ!' सारिपुत्त, भविष्य में ऐसा विचार मत लाना। तब भगवान बुद्ध ने पूज्य महामोग्गलाना से कहा, 'मोग्गलाना, जब मैंने भिक्षु समुदाय से विमुख होकर विमुख हुए, तब तुम्हारे मन में क्या विचार आया?' 'पूज्यवर, मेरे मन में यह विचार आया: भगवान बुद्ध यहाँ सुख में विलीन रहेंगे और चिंतामुक्त रहेंगे, मैं और पूज्य सारिपुत्त भिक्षु समुदाय का नेतृत्व करेंगे।' 'अच्छा! मोग्गलाना, या तो मैं या सारिपुत्त और मोग्गलाना भिक्षु समुदाय का नेतृत्व करें।'

तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, जल में उतरने वाले को चार भयों का सामना करना चाहिए: वे चार क्या हैं? लहरों का भय, मगरमच्छों का भय, भंवरों का भय और घड़ियालों का भय। भिक्षुओं, जल में प्रवेश करने वाले को इन चार भयों का सामना करना चाहिए। ठीक उसी प्रकार, गृहस्थी छोड़कर संन्यासी बनने वाले व्यक्ति को भी चार भयों का सामना करना पड़ता है। वे चार क्या हैं? लहरों का भय, मगरमच्छों का भय, भंवरों का भय और घड़ियालों का भय।'

भिक्षुओं, लहरों का भय क्या है? भिक्षुओं, एक कुल के पुत्र ने श्रद्धापूर्वक गृहस्थी त्याग दी। वह जन्म, क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट से ग्रस्त होकर तपस्वी बन गया। वह सोचता था कि वह जन्म, क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट से ग्रस्त है। इस अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करने वाले कुछ ही लोग हैं। उसके साथी साधुओं ने उसे सलाह दी: इस प्रकार आगे बढ़ो, इस प्रकार मुड़ो और आगे बढ़ो, इस प्रकार देखो, और दूसरी ओर इस प्रकार देखो। इस प्रकार अपने अंगों को मोड़ो और फैलाओ। इस प्रकार तीनों वस्त्र और कुंड धारण करो। तब उसे यह विचार आया: जब मैं गृहस्थ था, तब मैंने दूसरों को सलाह दी थी, अब मुझे अपने पुत्रों और पोतों के समान लोगों की सलाह माननी होगी। तब उसने लहरों के भय से वस्त्र त्याग दिए और गृहस्थ बन गया। भिक्षुओं, लहरों का भय क्रोध और घृणा का पर्यायवाची है।

भिक्षुओं, मगरमच्छों का भय क्या है? भिक्षुओं, एक कुल का पुत्र श्रद्धा से प्रेरित होकर गृहस्थी त्याग देता है। वह यह सोचकर संन्यासी बन जाता है, "मैं जन्म, क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट से ग्रस्त हूँ। इस अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करने वाले तो कुछ ही हैं।" हे संन्यासी, उसे सलाह दो। "तुम्हें यह खाना चाहिए, यह नहीं खाना चाहिए। तुम्हें यह ग्रहण करना चाहिए, यह नहीं ग्रहण करना चाहिए। तुम्हें यह चखना चाहिए और यह नहीं चखना चाहिए। तुम्हें यह पीना चाहिए और यह नहीं पीना चाहिए। तुम्हें उचित पेय पीना चाहिए और अनुचित पेय से बचना चाहिए। उचित भोजन करो, ग्रहण करो और चखो, अनुचित भोजन से बचो।" तब उसे यह बात समझ में आती है, "जब मैं गृहस्थ था, तब मैं वह खाता था जो मुझे पसंद था, और वह नहीं जो मुझे नापसंद था। मैं वह ग्रहण करता था जो मुझे पसंद था, और वह नहीं जो मुझे नापसंद था।" मैंने उचित और अनुचित दोनों प्रकार के भोजन, सेवन, चखना और पीना किया। मैंने समय पर और असमय भी सेवन, चखना और पीना किया। गृहस्थ हमें दिन के समय, जब उचित समय नहीं होता, आस्थावश पौष्टिक भोजन और पेय पदार्थ देते हैं। मुझे लगता है कि यह मुँह पर प्रतिबंध है। फिर वह वस्त्र त्यागकर साधारण हो जाता है। कहा जाता है कि वह मगरमच्छों के भय से वस्त्र त्यागकर साधारण हो जाता है। मगरमच्छ भोजन के लालच का पर्यायवाची है।

भिक्षुओं, भंवरों का भय क्या है? भिक्षुओं, एक कुल के पुत्र ने आस्था के कारण गृहस्थी त्याग कर संन्यासी बन गया, यह सोचकर कि वह जन्म, क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट से ग्रस्त है। वह सोचता है कि केवल कुछ ही लोग इस अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा कर सकते हैं। वह इस प्रकार सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने निकल पड़ा, गाँव या बस्ती में शरीर और वाणी को संयमित रखते हुए, सचेतनता स्थापित किए बिना और मानसिक शक्तियों को संरक्षित किए बिना। गाँव में उसने एक गृहस्थ या गृहस्थ पुत्र को पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों का भोग करते हुए देखा। तब उसे यह विचार आया, जब मैं गृहस्थ था, तब मैंने भी इन पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों का भोग किया था। मेरे कुल में इन इंद्रिय सुखों का भोग करने के लिए धन था। मैं भी पुण्य कर्म कर सकता था। तब उसने वस्त्र त्याग दिए और गृहस्थ बन गया। ऐसा कहा जाता है कि वह भंवरों के भय से वस्त्र त्यागकर गृहस्थ बन जाता है। भिक्षुओं, भंवरों का भय पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों का पर्यायवाची है।

भिक्षुओं, मगरमच्छों का भय क्या है? भिक्षुओं, एक कुल के पुत्र ने श्रद्धापूर्वक गृहस्थी त्याग दी। वह यह सोचकर संन्यासी बन गया कि मैं जन्म, क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट से ग्रस्त हूँ। इस अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा करने वाले कुछ ही लोग हैं। वह इस प्रकार सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षा मांगने निकला। गाँव या बस्ती में वह शरीर और वाणी पर संयम रखता था, सचेतन नहीं था और मानसिक शक्तियों का संरक्षण नहीं करता था। गाँव में उसने एक स्त्री को अधढका देखा। उसे उस अवस्था में देखकर उसके मन में लोभ उत्पन्न हुआ और लोभ से ग्रस्त होकर उसने वस्त्र त्याग दिए और गृहस्थ बन गया। उसने मगरमच्छों के भय से वस्त्र त्याग दिए और गृहस्थ बन गया। भिक्षुओं, मगरमच्छों का भय स्त्री का पर्यायवाची है।

"भिक्षुओं, इस अनुशासन के युग में तपस्वी के रूप में प्रस्थान करने वाले व्यक्ति को इन चार भयों का सामना करना पड़ सकता है।"

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.8 नालकापना सुत्त(68)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान कोसल राज्य के नलकपान में एक जंगल में निवास कर रहे थे। उस समय कई प्रसिद्ध कुलवंशी भगवान के प्रति श्रद्धा से तपस्वी बन गए थे। इनमें अनुराधा, नंदीय, किंबिला, भागु, कुंडादान, रेवता, आनंद और अन्य कुलवंशी पुत्र शामिल थे। उस समय भगवान भिक्षुओं के समुदाय के साथ खुले में बैठे थे। भगवान ने उन कुलवंशियों के कारण भिक्षुओं को संबोधित किया। हे भिक्षुओं, हे कुलवंशी पुत्रों, जो मुझ पर श्रद्धा से तपस्वी बन गए हैं, क्या आप आसक्ति के साथ पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं? यह सुनकर भिक्षु मौन हो गए। दूसरी बार और तीसरी बार तक भगवान ने कहा, "हे भिक्षुओं, हे कुल के पुत्रों, जो मुझ पर विश्वास के कारण संन्यास लेकर निकले हो, क्या तुम आसक्ति के साथ पवित्र जीवन व्यतीत करते हो?" तीसरी बार भी भिक्षु मौन रहे।

तब भगवान बुद्ध के मन में यह विचार आया कि क्या होगा यदि मैं उन्हीं कुल के पुत्रों में से किसी एक से प्रश्न करूँ? तब भगवान बुद्ध ने आदरणीय अनुरुद्ध से कहा: अनुरुद्ध, क्या तुम पवित्र जीवन से जुड़े हो? आदरणीय, मैं पवित्र जीवन से जुड़ा हूँ। अच्छा! अनुरुद्ध, आसक्ति के साथ पवित्र जीवन व्यतीत करो! मेरे प्रति श्रद्धा से प्रेरित होकर संन्यास लेने वाले कुल के पुत्रों को ऐसा ही करना चाहिए। अनुरुद्ध, तुम यौवन की चरम अवस्था में हो, जीवन के प्रथम चरण में हो, तुम्हारे बाल भी काले हैं। जब तुम्हें पाँचों इंद्रिय सुखों का आनंद लेना चाहिए था, तब तुमने संन्यास लिया। अनुरुद्ध, तुमने राजा या लुटेरों के भय से संन्यास नहीं लिया। न ही ऋण के भय से, न ही इसलिए कि तुम्हारे पास जीवनयापन का कोई साधन नहीं था। बल्कि इसलिए कि तुमने सोचा, मैं जन्म, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट से ग्रस्त हूँ, और कुछ ही लोग अप्रियता के पूर्ण अंत की घोषणा कर सकते हैं। अनुरुद्ध, क्या तुम इसी आस्था के साथ प्रस्थान नहीं किए थे? जी हाँ, पूज्यवर, मैंने किया था। अनुरुद्ध, अपने कुल के पुत्र, जिसने इस प्रकार प्रस्थान किया है, इस युग में क्या किया जाना चाहिए? अनुरुद्ध, यदि तुम अपने मन को इंद्रिय-सुख और पापमय वस्तुओं से नहीं हटाते, या उससे भी श्रेष्ठ किसी चीज़ को प्राप्त नहीं करते, तो लोभ तुम्हारे मन पर हावी हो जाता है और बना रहता है*1)। क्रोध तुम्हारे मन पर हावी हो जाता है और बना रहता है। आलस्य और सुस्ती तुम्हारे मन पर हावी हो जाती है और बनी रहती है। बेचैनी और चिंता तुम्हारे मन पर हावी हो जाती है और बनी रहती है। इसलिए, अनुरुद्ध, अपने मन को इंद्रिय-सुख और पापमय वस्तुओं से हटाओ, या उससे भी श्रेष्ठ किसी चीज़ को प्राप्त करो। ताकि लोभ तुम्हारे मन पर हावी न हो और बना न रहे। क्रोध आपके मन पर हावी होकर टिक नहीं सकता, आलस्य और सुस्ती आपके मन पर हावी होकर टिक नहीं सकती, बेचैनी और चिंता आपके मन पर हावी होकर टिक नहीं सकती और संदेह आपके मन पर हावी होकर टिक नहीं सकता।

अनुरुद्ध, क्या आप सोचते हैं कि ये दूषित इच्छाएँ, जो भविष्य के अप्रिय जन्म, क्षय और मृत्यु के परिणामों से भरी हैं, तथागत को प्राप्त नहीं होतीं? इसलिए तथागत सावधानीपूर्वक एक का पीछा करते हैं, एक को सहन करते हैं, एक को नष्ट करते हैं और दूसरे को नाश करते हैं। आदरणीय महोदय, हम ऐसा नहीं सोचते। हम ऐसा सोचते हैं। दूषित इच्छाएँ, जो भविष्य के अप्रिय जन्म, क्षय और मृत्यु के परिणामों से भरी हैं, तथागत को प्राप्त हो जाती हैं। इसलिए तथागत सावधानीपूर्वक एक का पीछा करते हैं, एक को सहन करते हैं, एक को नष्ट करते हैं और दूसरे को नाश करते हैं। अच्छा, अनुरुद्ध, आपने इसे समझ लिया है। तथागत को ये दूषित इच्छाएँ, जो भविष्य के अप्रिय जन्म, क्षय और मृत्यु के परिणामों से भरी हैं, प्राप्त हो जाती हैं। वे जड़ से उखाड़ दी जाती हैं, ताड़ के ठूंठ बना दी जाती हैं, ऐसी चीजें बना दी जाती हैं जो फिर कभी नहीं उगेंगी। अनुरुद्ध, यह उस ताड़ के पेड़ के समान है जिसका ऊपरी भाग काट दिया गया हो और वह फिर से उगने में सक्षम न हो। इसी प्रकार, ये दूषित इच्छाएँ, जो भविष्य में जन्म, क्षय और मृत्यु जैसे अप्रिय परिणामों से भरी होती हैं, तथागत के लिए विलीन हो जाती हैं। अतः तथागत एक इच्छा का सावधानीपूर्वक अनुसरण करते हैं, एक को सहन करते हैं, एक को विलीन करते हैं और दूसरी को नष्ट कर देते हैं।

अनुरुद्ध, तथागत भगवान अपने शिष्यों से यह क्यों कहते हैं कि समय की बर्बादी किए बिना, मरने से पहले ही किसी उच्चतर स्थान में जन्म लो? उनका कहना है कि एक का जन्म वहाँ होता है, दूसरे का वहाँ। *2) इस शिक्षा का स्रोत भगवान बुद्ध हैं, इसका मार्गदर्शन भगवान बुद्ध से ही होता है, और इसकी शरण भी भगवान बुद्ध ही हैं। सौभाग्य है कि यह अर्थ भगवान बुद्ध को समझ में आया। हम भिक्षु, भगवान बुद्ध से यह सुनकर इसे याद रखेंगे। अनुरुद्ध, तथागत भगवान अपने शिष्यों से कहते हैं कि समय की बर्बादी किए बिना, मरने से पहले ही किसी उच्चतर स्थान में जन्म लो। उनका कहना है कि एक का जन्म वहाँ होता है, दूसरे का वहाँ। लोगों को धोखा देने के लिए नहीं, सरासर बकवास करने के लिए नहीं, न ही मान-सम्मान या प्रसिद्धि पाने के लिए, और न ही यह सोचकर कि लोग मुझे इस रूप में जानें। फिर भी, अनुरुद्ध, कुल के ऐसे पुत्र हैं जो आस्था में जन्मे हैं और इसे सुनकर प्रसन्न होते हैं। इसे सुनकर उनमें रुचि जागृत होगी और वे अपना ध्यान उस ओर लगाएंगे, और यह उनके लिए दीर्घकाल तक लाभकारी होगा।

अनुराधा, यहाँ एक भिक्षु सुनता है कि इस नाम के पूजनीय भिक्षु का देहांत हो गया है और भगवान ने उन्हें प्रबुद्ध घोषित किया है। अब यह पूजनीय भिक्षु संयोगवश उस भिक्षु द्वारा देखा गया व्यक्ति है या नहीं भी देखा गया है। वह सुनता है कि ये उस पूजनीय भिक्षु के गुण थे, ये उनके विचार थे, ऐसी उनकी बुद्धि थी, उन्होंने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह भिक्षु उस आस्था, उन गुणों, उनकी विद्वत्ता, परोपकार और बुद्धि को याद करता है और अपना मन उसी ओर लगाता है। अनुराधा, इस प्रकार भी भिक्षु के लिए सुखद अवस्था होती है*3)।

अनुराधा, यहाँ एक भिक्षु सुनता है कि इस नाम के पूजनीय भिक्षु का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि वे पाँच निम्न बंधनों के नाश के साथ स्वतः ही प्रकट हुए हैं और आगे नहीं बढ़ेंगे। अब यह पूजनीय भिक्षु संयोगवश उस भिक्षु द्वारा देखा गया या नहीं देखा गया। वह सुनता है कि ये उस पूजनीय भिक्षु के गुण थे, ये उनके विचार थे, ऐसी उनकी बुद्धि थी, उन्होंने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मुक्त हो गए। अतः यह भिक्षु उस आस्था, उन गुणों, उनकी विद्वत्ता, परोपकार और बुद्धि का स्मरण करता है और अपना मन उनमें लगाता है। अनुराधा, इस प्रकार भी भिक्षु के लिए सुखद अवस्था होती है। अनुराधा, एक भिक्षु सुनता है कि इस नाम के पूजनीय भिक्षु का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि उन्होंने तीन निम्न बंधनों का नाश करके और लोभ, घृणा और मोह को कम करके एक बार फिर यहाँ आने से उनका कष्ट समाप्त हो जाएगा। अब यह पूजनीय भिक्षु वह व्यक्ति है जिसे उस भिक्षु ने देखा है या नहीं देखा है। वह सुनता है कि ये उस पूजनीय भिक्षु के गुण और विचार थे, उनका ज्ञान ऐसा था, उन्होंने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। इसलिए वह उस आस्था, उन गुणों, उनकी विद्वत्ता, परोपकार और ज्ञान का स्मरण करता है और अपना मन उसी ओर लगाता है। अनुराधा, इस प्रकार भी भिक्षु के लिए सुखद निवास होता है। अनुराधा, एक भिक्षु सुनता है कि इस नाम के पूज्य भिक्षु का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि तीन निम्न बंधनों के नाश होने के साथ ही वे शिक्षा की धारा में प्रवेश कर चुके हैं। वे मृत्यु के इरादे से पतन नहीं करेंगे। अब यह पूज्य भिक्षु संयोगवश उस भिक्षु द्वारा देखा गया या नहीं देखा गया। वह सुनता है कि ये उस पूज्य भिक्षु के गुण और विचार थे, उनका ज्ञान ऐसा था, उन्होंने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह भिक्षु उस आस्था, उन गुणों, उनकी विद्वत्ता, परोपकार और ज्ञान को याद करता है और अपना मन उसी ओर लगाता है। अनुराधा, इस प्रकार भी भिक्षु के लिए सुखद अवस्था है।

अनुराधा, यहाँ एक भिक्षुणी सुनती है कि इस नाम की पूजनीय भिक्षुणी का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि वे प्रबुद्ध हो गई हैं। अब यह पूजनीय भिक्षुणी संयोगवश उस भिक्षुणी द्वारा देखी गई या न देखी गई है। वह सुनती है कि ये उस पूजनीय भिक्षुणी के गुण और विचार थे, उनका ज्ञान ऐसा था, उन्होंने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह भिक्षुणी उस आस्था, उन गुणों, उनकी विद्वत्ता, परोपकार और ज्ञान को याद करती है और अपना मन उसी ओर लगाती है। अनुराधा, इस प्रकार भी भिक्षुणी के लिए सुखद अवस्था होती है। अनुराधा, एक भिक्षुणी सुनती है कि इस नाम की भिक्षुणी का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की

है कि पाँच निम्न बंधनों के नाश के साथ ही वह स्वतः उत्पन्न हुई है और आगे नहीं बढ़ेगी। अब यह भिक्षुणी उस भिक्षुणी द्वारा देखी गई है या नहीं भी देखी गई है। वह सुनती है कि ये उस पूजनीय भिक्षुणी के गुण और विचार थे, उनका ज्ञान ऐसा था कि उन्होंने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह भिक्षुणी उस आस्था, उन गुणों, उनकी विद्वत्ता, परोपकार और ज्ञान को याद करती है और अपना ध्यान उसी ओर लगाती है। अनुराधा, इस प्रकार भी भिक्षुणी के लिए सुखद निवास होता है। अनुराधा, एक भिक्षुणी सुनती है कि इस नाम की पूजनीय भिक्षुणी का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि तीन निम्न बंधनों के नाश होने और लोभ, घृणा और मोह के कम होने से वह एक बार फिर यहाँ आने वाली बन गई है। यहाँ एक बार फिर आने से अप्रियता का अंत हो जाएगा। अब, यह पूजनीय भिक्षुणी उस भिक्षुणी द्वारा देखी गई है या नहीं भी देखी गई है। वह सुनती है, ये उस पूजनीय भिक्षुणी के गुण और विचार थे, उनकी बुद्धि ऐसी थी कि उन्होंने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह भिक्षुणी उस आस्था, उन गुणों, उनकी विद्वत्ता, परोपकार और बुद्धि का स्मरण करती है और अपना मन उसी ओर लगाती है। अनुराधा, इस प्रकार भी भिक्षुणी के लिए सुखद अवस्था होती है। अनुराधा, यहाँ एक भिक्षुणी सुनती है, इस नाम की पूजनीय भिक्षुणी का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि तीन निम्न बंधनों के नाश होने के साथ ही वह शिक्षा की धारा में प्रवेश कर गई हैं। कि वे निर्वाण की इच्छा से भी इससे विमुख नहीं हुईं। अब यह पूजनीय भिक्षुणी संयोगवश उस भिक्षुणी द्वारा देखी गई या न देखी गई व्यक्ति हैं। वह सुनती है, ये उस पूजनीय भिक्षुणी के गुण और विचार थे, उनकी बुद्धि ऐसी थी कि उन्होंने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह भिक्षुणी उस आस्था, उन सद्गुणों, अपने ज्ञान, परोपकार और बुद्धिमत्ता को याद करती है और अपना मन उन्हीं में लगाती है। अनुराधा, इस प्रकार भी भिक्षुणी के लिए सुखद निवास होता है।

अनुराधा, एक गृहस्थ शिष्य सुनता है कि इस नाम के गृहस्थ शिष्य का देहांत हो गया है। भगवान बुद्ध ने घोषणा की थी कि पाँच निम्न बंधनों के नाश के साथ वह स्वतः ही प्रकट हुए हैं और आगे नहीं बढ़ेंगे। अब यह गृहस्थ शिष्य उस गृहस्थ शिष्य द्वारा देखा गया हो या न देखा गया हो। अनुराधा सुनता है कि ये उस गृहस्थ शिष्य के गुण और विचार थे, उनका ज्ञान ऐसा था कि इन गुणों को विकसित करते हुए उन्हें मोक्ष प्राप्त हुआ। अतः यह गृहस्थ शिष्य उस आस्था, उन गुणों, उनकी विद्वत्ता, परोपकार और ज्ञान को याद करता है और अपना मन उसी ओर लगाता है। अनुराधा, इस प्रकार भी गृहस्थ शिष्य के लिए सुखद निवास है। अनुराधा, एक गृहस्थ शिष्य सुनता है कि इस नाम के गृहस्थ शिष्य का देहांत हो गया है। भगवान बुद्ध ने घोषणा की थी कि तीन निम्न बंधनों के नाश और लोभ, घृणा और मोह को कम करते हुए वह इस संसार में एक बार फिर आएंगे और अप्रियता का अंत करेंगे। अब यह गृहस्थ शिष्य उस गृहस्थ शिष्य द्वारा देखा गया हो या न देखा गया हो। वह सुनता है, ये उस गृहस्थ शिष्य के गुण और विचार थे। उसकी बुद्धि ऐसी थी कि उसने इन गुणों को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह गृहस्थ शिष्य उस आस्था, उन गुणों, अपने ज्ञान, परोपकार और बुद्धि को याद करता है और अपना ध्यान उसी ओर लगाता है। अनुराधा, इस प्रकार भी गृहस्थ शिष्य को सुखद अनुभूति होती है।

अनुरुद्ध, एक गृहस्थ शिष्य सुनता है कि इस नाम के गृहस्थ शिष्य का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि तीन निम्न बंधनों के नाश होने पर, जो शिष्य मोक्ष की इच्छा रखता है, वह नहीं गिरेगा। यह गृहस्थ शिष्य उस व्यक्ति को देख चुका था या नहीं भी देख पाया था। अनुरुद्ध सुनता है कि ये उस गृहस्थ शिष्य के गुण और विचार थे। उसकी बुद्धि ऐसी थी कि उसने इन गुणों को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह गृहस्थ शिष्य उस विश्वास, उन गुणों, उसकी विद्वत्ता, परोपकार और बुद्धि को याद करता है और अपना ध्यान उसी ओर लगाता है। अनुरुद्ध, इस प्रकार भी गृहस्थ शिष्य के लिए सुखद निवास है।

यहां अनुराधा नामक एक महिला शिष्या सुनती है कि इस नाम की शिष्या का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि पांच निम्न बंधनों के नाश होने के साथ ही वह स्वतः ही इस संसार में अवतरित होकर चली गई है। अब यह शिष्या उस शिष्या द्वारा देखी गई हो या न देखी गई हो। वह सुनती है कि ये उस शिष्या के गुण और विचार थे। उसकी बुद्धि ऐसी थी कि उसने इन गुणों को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह शिष्या उस आस्था, गुणों, उसकी विद्वत्ता, परोपकार और बुद्धि को याद करती है और अपना ध्यान उसी ओर लगाती है। अनुराधा, इस प्रकार भी, एक शिष्या के लिए सुखद स्थिति होती है। अनुराधा नामक एक महिला शिष्या सुनती है कि इस नाम की शिष्या का देहांत हो गया है, और भगवान ने घोषणा की है कि तीन निम्न बंधनों के नाश होने और लोभ, घृणा और मोह के कम होने के साथ ही वह इस संसार में एक बार फिर अप्रियता को समाप्त करने के लिए आएगी। अब यह शिष्या उस शिष्या द्वारा देखी गई हो या न देखी गई हो। वह सुनती है, ये उसके गुण और विचार थे, ऐसी उसकी बुद्धि थी, उसने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह गृहस्थ शिष्या उस आस्था, उन गुणों, उसकी विद्वत्ता, परोपकार और बुद्धि को याद करती है और अपना ध्यान उसी ओर लगाती है, अनुराधा, इस प्रकार भी एक गृहस्थ महिला शिष्या के लिए सुखद निवास है। अनुराधा, एक गृहस्थ महिला शिष्या सुनती है, इस नाम की गृहस्थ महिला शिष्या का देहांत हो गया है। भगवान ने घोषणा की है कि तीन निम्न बंधनों के नाश होने के साथ ही वह शिक्षा की धारा में प्रवेश करने वाली है, और निर्वाण के लिए अभिप्रेत है, वह इससे विमुख नहीं होगी। अब यह गृहस्थ महिला, चाहे वह उस गृहस्थ महिला शिष्या द्वारा देखी गई हो या न देखी गई हो, सुनती है, ये उसके गुण और विचार थे, ऐसी उसकी बुद्धि थी, उसने इन अवस्थाओं को विकसित किया और मोक्ष प्राप्त किया। अतः यह गृहस्थ महिला शिष्या उस आस्था, उन सद्गुणों, अपनी विद्वत्ता,

परोपकार और बुद्धिमत्ता को याद करती है और अपना मन उसी ओर लगाती है, अनुराधा, इस प्रकार भी गृहस्थ महिला शिष्या के लिए सुखद निवास होता है।

अनुराद्ध, यानी तथागत, शिष्यों को सलाह देते हैं, समय बर्बाद मत करो, मरने से पहले किसी उच्चतर स्थान पर जन्म लो। वे कहते हैं कि एक जन्म यहाँ का है, दूसरा वहाँ का, लोगों को धोखा देने के लिए नहीं, सरासर बकवास करने के लिए नहीं, मान-सम्मान या प्रसिद्धि पाने के लिए नहीं, और न ही यह सोचकर कि लोग मुझे इस रूप में जानें। फिर भी, अनुराद्ध जैसे कुछ लोग हैं, जो कुल के पुत्र हैं और आस्था में जन्मे हैं, और यह सुनकर प्रसन्न होते हैं; वे रुचि जागृत करते हैं और अपना ध्यान उसी ओर लगाते हैं। यह उनके लिए दीर्घकाल तक लाभकारी होगा।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य अनुराधा भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.9गुलिसानी सुत्त(69)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान राजगृह के बांस के जंगल में गिलहरियों के अभयारण्य में निवास कर रहे थे। उसी समय गुलिस्सानी नाम का एक भिक्षु, जो वनवासी और आज्ञाकारी नहीं था, किसी कारणवश भिक्षुओं के समुदाय में आ गया। तब पूज्य सारिपुत्त ने भिक्षु गुलिस्सानी के कारण भिक्षुओं को संबोधित किया।

वनवास में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहते हैं, अपने सहपाठियों के प्रति आदर और विनम्रता का भाव रखना चाहिए। यदि कोई वनवास में रहने वाला भिक्षु, जो समुदाय के साथ रहता है, अपने सहपाठियों के प्रति अनादर और अनुशासनहीनता का भाव रखता है, तो यह उसके लिए अपराध है। जो पूजनीय भिक्षु वन में एकांतवास में रहते हैं, वे अपने सहपाठियों के प्रति अनादर और अनुशासनहीनता का भाव क्यों रखते हैं? ऐसे विचार उसके लिए अपराध हैं। इसलिए, वनवास में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के बीच में आते हैं, अपने सहपाठियों के प्रति आदर और विनम्रता का भाव रखना चाहिए।

वनवास में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहते हैं, बैठने की कुशलता विकसित करनी चाहिए। मैं बड़ों का अतिक्रमण नहीं करूँगा और न ही नौसिखियों को उनके स्थान से हटाऊँगा। यदि वनवास में रहने वाला भिक्षु समुदाय में आकर बैठने की कुशलता विकसित नहीं करता, तो यह उसके लिए अपराध है। जो पूजनीय भिक्षु वन में अकेले रहते हैं, वे बैठने की कुशलता क्यों नहीं विकसित करते? यह उनके लिए अपराध हो जाता है। इसलिए, वनवास में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय में आते हैं, बैठने की कुशलता विकसित करनी चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु, जो समुदाय के साथ रहते हैं, उन्हें गाँव में न तो बहुत जल्दी प्रवेश करना चाहिए और न ही बहुत देर से गाँव छोड़ना चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आकर गाँव में बहुत जल्दी प्रवेश करे और बहुत देर से गाँव छोड़े, तो यह उनके लिए अपराध है। जो पूजनीय भिक्षु वन में अकेले रहते हैं, वे गाँव में बहुत जल्दी क्यों प्रवेश करते हैं और बहुत देर से गाँव छोड़ते हैं? यह उनके लिए अपराध है। इसलिए, समुदाय के बीच आने वाले वनवासी भिक्षु को गाँव में न तो बहुत जल्दी प्रवेश करना चाहिए और न ही बहुत देर से गाँव छोड़ना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु, जो समुदाय के साथ रहते हैं, उन्हें भोजन से पहले और बाद में परिवारों के साथ मेलजोल नहीं रखना चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आकर भोजन से पहले और बाद में परिवारों के साथ मेलजोल रखता है, तो यह उनके लिए अपराध है। फिर, जो पूजनीय भिक्षु वन में अकेले रहते हैं, वे भोजन से पहले और बाद में परिवारों के साथ क्यों मेलजोल रखते हैं? यह उनके लिए अपराध है। इसलिए, समुदाय के बीच आने वाले वनवासी भिक्षु को भोजन से पहले और बाद में परिवारों के साथ मेलजोल नहीं रखना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहते हैं, अहंकारी और बातूनी नहीं होना चाहिए। जब कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आता है और अहंकारी और बातूनी होता है, तो यह उनके लिए अपमानजनक होता है। जो पूजनीय भिक्षु वन में अकेले रहते हैं, वे

अहंकारी और बातूनी क्यों होते हैं? यह उनके लिए अपमानजनक होता है। इसलिए, वनवासी भिक्षु को समुदाय के बीच आकर अहंकारी और बातूनी नहीं होना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहते हैं, शोर-शराबा और अभद्र भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आकर शोर-शराबा और अभद्र भाषा का प्रयोग करता है, तो यह उनके लिए अपराध बन जाता है। जो पूजनीय भिक्षु वन में अकेले रहते हैं, वे शोर-शराबा और अभद्र भाषा का प्रयोग क्यों करते हैं? यह उनके लिए अपराध बन जाता है। इसलिए, समुदाय के बीच आने वाले वनवासी भिक्षु को शोर-शराबा और अभद्र भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

वन में रहने वाला भिक्षु, जो समुदाय के साथ रहता है, उसे विनम्र और अच्छा मित्र होना चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आकर उद्दंड और दुष्ट मित्र बन जाता है, तो यह उसके लिए अपराध बन जाता है। फिर, जो पूजनीय भिक्षु वन में एकाकी रहते हैं, वे उद्दंड और दुष्ट मित्र क्यों बन जाते हैं? यह उनके लिए अपराध बन जाता है। इसलिए, वनवासी भिक्षु, जो समुदाय के बीच आकर रहते हैं, उन्हें विनम्र और अच्छा मित्र होना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, समुदाय के साथ रहते हुए, अपनी मानसिक शक्तियों को सुरक्षित रखना चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आकर अपनी मानसिक शक्तियों को असुरक्षित रखे, तो यह उसके लिए अपराध है। एकांत में वन में रहने वाले पूजनीय भिक्षु को अपनी मानसिक शक्तियों को सुरक्षित क्यों नहीं रखना चाहिए? यह उसके लिए अपराध है। इसलिए, समुदाय के बीच आने वाले वनवासी भिक्षु को अपनी मानसिक शक्तियों को सुरक्षित रखना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहता है, भोजन ग्रहण करने की सही मात्रा ज्ञात होनी चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु, समुदाय के बीच आकर भोजन ग्रहण करने की सही मात्रा न जाने, तो यह उसके लिए अपराध है। एकांत में वन में रहने वाले पूजनीय भिक्षु को भोजन ग्रहण करने की सही मात्रा क्यों न ज्ञात हो? यह उसके लिए अपराध है। इसलिए, समुदाय के बीच आने वाले वनवासी भिक्षु को भोजन ग्रहण करने की सही मात्रा ज्ञात होनी चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहता है, जागरूकता विकसित करनी चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु, समुदाय के बीच आकर जागरूक न हो, तो क्या यह उसके लिए अपराध है? क्या वह पूजनीय भिक्षु जो वन में एकाकी रहता है, जागरूकता से बंधा नहीं रहता? यह उसके लिए अपराध है। इसलिए, समुदाय के बीच आने वाले वनवासी भिक्षु को जागरूकता से बंधा रहना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, समुदाय के साथ रहते हुए, सजग रहना चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आकर सजग न रहे, तो यह उसके लिए अपराध है। फिर, जो पूजनीय भिक्षु वन में अकेले रहते हैं, वे सजग क्यों नहीं रहते? यह उसके लिए अपराध है। इसलिए, समुदाय के बीच आने वाले वनवासी भिक्षु को सजग रहना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, समुदाय के साथ रहते हुए, एकाग्रचित्त रहना चाहिए। यदि वन में रहने वाला भिक्षु समुदाय के बीच आकर एकाग्रचित्त न रहे, तो यह उसके लिए अपराध है। पूजनीय भिक्षु अकेले वन में क्यों रहते हैं, जबकि वे एकाग्रचित्त न हों? यह उसके लिए अपराध है। इसलिए, वन में रहने वाले भिक्षु को समुदाय के बीच आकर एकाग्रचित्त रहना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहते हैं, एकाग्रता विकसित करनी चाहिए। यदि वन में रहने वाला भिक्षु समुदाय के बीच आकर एकाग्रता विकसित नहीं करता है, तो यह उसके लिए अपराध है। अकेले वन में रहने वाले पूज्य भिक्षु ने एकाग्रता क्यों नहीं विकसित की? यह उसके लिए अपराध है। इसलिए, वन में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के बीच आकर रहते हैं, एकाग्रता विकसित करनी चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहते हैं, ज्ञान का विकास करना चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आकर ज्ञान का विकास न करे तो क्या यह उनके लिए अपराध है? आदरणीय भिक्षु का वन में अकेले रहना, अविकसित ज्ञान के साथ, उनके लिए अपराध क्यों है? इसलिए, वनवासी भिक्षु को समुदाय के बीच आकर ज्ञान का विकास करना चाहिए।

वन में रहने वाले भिक्षु को, जो समुदाय के साथ रहते हैं, उच्चतर शिक्षा और अनुशासन से जुड़े रहना चाहिए। यदि कोई वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आकर उच्चतर शिक्षा और अनुशासन से नहीं जुड़ता है, तो यह उनके लिए अपराध है। जो पूजनीय भिक्षु वन में अकेले रहते हैं, वे उच्चतर शिक्षा और अनुशासन से क्यों नहीं जुड़ते? यह उनके लिए अपराध है। इसलिए, जो वनवासी भिक्षु समुदाय के बीच आते हैं, उन्हें उच्चतर शिक्षा और अनुशासन से जुड़ना चाहिए।

वनवास में रहने वाले भिक्षु को, समुदाय के साथ रहते हुए, उन शांतिपूर्ण, निराकार मुक्ति से जुड़ना चाहिए। कुछ लोग वनवास में रहने वाले भिक्षु से इन मुक्ति के बारे में प्रश्न करते हैं। यदि वनवास में रहने वाला भिक्षु समुदाय के बीच आकर इन मुक्ति के बारे में पूछे गए किसी प्रश्न का उत्तर न दे पाए, तो यह उसके लिए अपराध है। अंत में, जो पूजनीय भिक्षु वन में एकाकी रहते हैं, वे इन शांतिपूर्ण, निराकार मुक्ति के प्रश्नों का उत्तर क्यों नहीं दे सकते? यह उसके लिए अपराध है। इसलिए, वनवास में रहने वाले भिक्षु को समुदाय के बीच आकर उन शांतिपूर्ण, निराकार मुक्ति से जुड़ना चाहिए।

वनवास में रहने वाले भिक्षु को, समुदाय के साथ रहते हुए, मानवीय गुणों से परे किसी चीज़ से जुड़ना चाहिए। कुछ लोग वनवास में रहने वाले भिक्षु से मानवीय गुणों से परे की इन उपलब्धियों के बारे में प्रश्न करते हैं। यदि वनवास में रहने वाला भिक्षु, समुदाय के बीच आकर, मानवीय गुणों से परे की इन उपलब्धियों के बारे में पूछे गए प्रश्न का उत्तर न दे पाए, तो यह उसके लिए अपराध है। एकांत में वनवास में रहने वाला पूजनीय व्यक्ति मानवीय गुणों से परे की इन उपलब्धियों के बारे में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर क्यों नहीं दे पाता? यह उसके लिए अपराध है। इसलिए, समुदाय के बीच आने वाले वनवास में रहने वाले भिक्षु को मानवीय गुणों से परे किसी चीज़ से जुड़ना चाहिए।

आदरणीय महामोग्गलाना ने आदरणीय सारिपुत्त से कहा, 'मित्र सारिपुत्त, क्या ये नियम केवल वन में रहने वाले भिक्षुओं के लिए हैं या गांवों में रहने वाले भिक्षुओं पर भी लागू होते हैं?' सारिपुत्त ने कहा, 'मित्र मोग्गलाना, ये नियम वन में रहने वाले भिक्षुओं के साथ-साथ गांवों के अंत में रहने वाले भिक्षुओं के लिए भी लागू होते हैं।'

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 7.10 कितागिरी सुत्त(70)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ काशी की यात्रा पर थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "मैं रात्रि भोजन नहीं करता। रात्रि भोजन न करने के कारण मुझे न के बराबर रोग, न के बराबर कष्ट, हल्कापन, शक्ति और सुखमय जीवन का अनुभव होता है। अब आप भी रात्रि भोजन न करें। रात्रि भोजन न करने के कारण आपको भी न के बराबर रोग, न के बराबर कष्ट, हल्कापन, शक्ति और सुखमय जीवन का अनुभव होगा।"

"जैसा आप कहें, स्वामी," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

फिर, जब भगवान बुद्ध काशी में विभिन्न चरणों में विचरण कर रहे थे, तो अंततः वे काशी के एक कस्बे कितागिरी पहुंचे। और वहीं वे काशी के कितागिरी कस्बे में ठहरे।

उस समय असाजी और पुनाबासु2 के नेतृत्व में भिक्षु कितागिरी में निवास कर रहे थे। तब बड़ी संख्या में भिक्षु उनके पास गए और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा, “भगवान बुद्ध और भिक्षु समुदाय रात्रि भोज का त्याग करते हैं। रात्रि भोज का त्याग करने के कारण उन्हें न के बराबर रोग, न के बराबर कष्ट, हल्कापन, शक्ति और सुखमय निवास का अनुभव होता है। अब आओ, मित्रों। तुम भी रात्रि भोज का त्याग करो। रात्रि भोज का त्याग करने के कारण तुम्हें भी न के बराबर रोग, न के बराबर कष्ट, हल्कापन, शक्ति और सुखमय निवास का अनुभव होगा।”

यह सुनकर असाजी और पुनाबस्सु के नेतृत्व में भिक्षुओं ने उन भिक्षुओं से कहा, "मित्रों, हम शाम को, सुबह को और दिन के गलत समय पर भोजन करते हैं। शाम को, सुबह को और दिन के गलत समय पर भोजन करने से हमें न के बराबर बीमारी, न के बराबर कष्ट, हल्कापन, शक्ति और सुखदायक अनुभूति होती है। जो तुरंत दिखाई देता है उसे छोड़कर हम समय के अधीन किसी चीज के पीछे क्यों भागें? हम शाम को, सुबह को और दिन के गलत समय पर भोजन करेंगे।"

जब वे असाजी और पुनाबबासु के नेतृत्व वाले भिक्षुओं को समझाने में असमर्थ रहे, तो वे भिक्षु भगवान बुद्ध के पास गए [और उन्हें जो कुछ हुआ था वह बताया]।

तब भगवान बुद्ध ने एक भिक्षु से कहा, "आओ, भिक्षु। मेरे नाम से, असाजी और पुनाबासु के नेतृत्व वाले भिक्षुओं को बुलाओ और कहो, 'गुरुजी तुम्हें बुला रहे हैं, मित्रों।'"

"जैसा आप कहें, भगवान," भिक्षु ने उत्तर दिया और असाजी और पुनाबबासु के नेतृत्व वाले भिक्षुओं के पास जाकर, वहाँ पहुँचकर उसने कहा, "गुरुजी आपको बुला रहे हैं, मित्रों।"

"जैसा आप कहें, मित्र," असाजी और पुनाबस्सु के नेतृत्व में भिक्षुओं ने उत्तर दिया। फिर वे भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, "क्या यह सच है, भिक्षुओं, कि बहुत से भिक्षु आपके पास आए थे... और आपने कहा था, '...जो तुरंत दिखाई देता है, उसे छोड़कर हम समय के अधीन किसी चीज के पीछे क्यों भागें? हम शाम को, सुबह को और दिन में गलत समय पर भी खाएँगे।'"

"हाँ भगवान।"

भिक्षुओं, क्या आपने कभी मुझे धम्म का उपदेश इस प्रकार देते हुए समझा है: 'व्यक्ति चाहे जो भी अनुभव करे—सुखद, दुखद, या न सुखद न दुखद—उसके अकुशल गुण कम होते हैं और उसके कुशल गुण बढ़ते हैं'?

"नहीं, भगवान।"

क्या आपने मुझे धम्म का उपदेश इस प्रकार देते हुए नहीं समझा है: 'जो व्यक्ति इस प्रकार की सुखद अनुभूति का अनुभव करता है, उसके अकुशल गुण बढ़ते हैं और कुशल गुण घटते हैं। परन्तु एक ऐसी स्थिति भी है जहाँ, जो व्यक्ति उस प्रकार की सुखद अनुभूति का अनुभव करता है, उसके अकुशल गुण घटते हैं और कुशल गुण बढ़ते हैं। जो व्यक्ति इस प्रकार की कष्टदायक अनुभूति का अनुभव करता है, उसके अकुशल गुण बढ़ते हैं और कुशल गुण घटते हैं। परन्तु एक ऐसी स्थिति भी है जहाँ, जो व्यक्ति उस प्रकार की कष्टदायक अनुभूति का अनुभव करता है, उसके अकुशल गुण घटते हैं और कुशल गुण बढ़ते हैं। जो व्यक्ति इस प्रकार की ऐसी अनुभूति का अनुभव करता है जो न सुखद है और न कष्टदायक, उसके अकुशल गुण बढ़ते हैं और कुशल गुण घटते हैं। परन्तु एक ऐसी स्थिति भी है जहाँ, जो व्यक्ति उस प्रकार की अनुभूति का अनुभव करता है जो न सुखद है और न कष्टदायक, उसके अकुशल गुण घटते हैं और कुशल गुण बढ़ते हैं।'

"हाँ भगवान।"

"अच्छा, भिक्षुओं। और यदि मुझे यह ज्ञात न होता—न देखा होता, न अवलोकन किया होता, न बोध किया होता, न विवेक से स्पर्श किया होता—कि 'इस प्रकार की सुखद अनुभूति का अनुभव करने वाले व्यक्ति में अकुशल गुण बढ़ते हैं और कुशल गुण घटते हैं,' तो क्या मेरे लिए, यह जाने बिना, यह कहना उचित होता कि 'इस प्रकार की सुखद अनुभूति का त्याग करो'?"

"नहीं, भगवान।"

लेकिन चूंकि यह मेरे द्वारा ज्ञात है—देखा, अवलोकन किया, अनुभव किया, विवेक के माध्यम से छुआ—कि 'इस प्रकार की सुखद अनुभूति करने वाले व्यक्ति में अकुशल गुण बढ़ते हैं और कुशल गुण घटते हैं,' इसलिए मैं कहता हूं, 'इस प्रकार की सुखद अनुभूति का त्याग करो।'

"यदि मुझे यह ज्ञात न होता—न देखा होता, न देखा होता, न महसूस किया होता, न विवेक से स्पर्श किया होता—कि 'इस प्रकार की सुखद अनुभूति का अनुभव करने वाले व्यक्ति में अकुशल गुण कम हो जाते हैं और कुशल गुण बढ़ जाते हैं,' तो क्या मेरे लिए, यह जाने बिना, यह कहना उचित होता कि 'इस प्रकार की सुखद अनुभूति में प्रवेश करो और बने रहो'?"

"नहीं, भगवान।"

"परन्तु क्योंकि यह मेरे द्वारा ज्ञात है—देखा, अनुभव किया, बोध किया, विवेक से छुआ—कि 'इस प्रकार की सुखद अनुभूति का अनुभव करने वाले व्यक्ति में अकुशल गुण कम हो जाते हैं और कुशल गुण बढ़ जाते हैं,' इसलिए मैं कहता हूँ, 'इस प्रकार की सुखद अनुभूति में प्रवेश करो और बने रहो।'

(इसी प्रकार दर्दनाक भावनाओं और न तो सुखद और न ही दर्दनाक भावनाओं के लिए भी यही बात लागू होती है।)

"मैं सभी भिक्षुओं के बारे में यह नहीं कहता कि उन्हें सजगता से संबंधित कोई कार्य करना है; न ही मैं सभी भिक्षुओं के बारे में यह कहता हूं कि उन्हें सजगता से संबंधित कोई कार्य नहीं करना है।"

"जो भिक्षु अरहंत हैं, जिनके मानसिक विकार समाप्त हो चुके हैं, जिन्होंने पूर्णता प्राप्त कर ली है, अपना कार्य पूरा कर लिया है, बोझ उतार दिया है, सच्चे लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है, अस्तित्व के बंधन को पूरी तरह से तोड़ दिया है, और जो सही ज्ञान से मुक्त हो चुके हैं: मैं उनके बारे में यह नहीं कहता कि उन्हें सजगता से काम करना है। ऐसा क्यों? क्योंकि उन्होंने अपना कार्य सजगता से पूरा कर लिया है। वे असावधान होने में असमर्थ हैं। लेकिन उच्च प्रशिक्षण प्राप्त भिक्षुओं के बारे में, जिन्होंने अभी तक अपने हृदय के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया है, जो अभी भी बंधन से अद्वितीय मुक्ति की आकांक्षा रखते हैं: मैं उनके बारे में कहता हूं कि उन्हें सजगता से काम करना है। ऐसा क्यों? [मैं सोचता हूं:] 'शायद ये पूजनीय भिक्षु, उपयुक्त विश्राम स्थलों का उपयोग करते हुए, प्रशंसनीय मित्रों के साथ संगति करते हुए, अपनी [मानसिक] क्षमताओं को संतुलित करते हुए,3 पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करेंगे और उसमें बने रहेंगे, जिसके लिए कुलवासी सही रूप से घर से तपस्वी जीवन में प्रस्थान करते हैं, और इसे स्वयं यहीं और अभी में जानते और अनुभव करते हैं।'" इन भिक्षुओं के लिए सजगता के इस फल की कल्पना करते हुए, मैं कहता हूं कि उन्हें सजगता के साथ एक कार्य करना है।

भिक्षुओं, संसार में ये सात व्यक्ति पाए जाते हैं। वे कौन से सात हैं? एक जो दोनों मार्गों से मुक्त है, एक जो विवेक के माध्यम से मुक्त है, एक जो शारीरिक साक्षी है, एक जो दृष्टि प्राप्त कर चुका है, एक जो दृढ़ विश्वास के माध्यम से मुक्त है, एक जो धम्म का अनुयायी है, और एक जो दृढ़ विश्वास का अनुयायी है।

और वह व्यक्ति जो दोनों तरह से मुक्त हो चुका है, वह क्या है? एक स्थिति यह है कि कोई व्यक्ति अपने शरीर से उन शांतिपूर्ण मुक्ति को स्पर्श करता रहता है जो रूप से परे हैं, जो निराकार हैं, और विवेक से देखकर उसकी व्यथा समाप्त हो जाती है। इसे ही दोनों तरह से मुक्त व्यक्ति कहा जाता है।4 इस भिक्षु के बारे में मैं यह नहीं कहता कि उसे सजगता से कोई कार्य करना है। ऐसा क्यों? उसने अपना कार्य सजगता से किया है। वह असावधान होने में असमर्थ है।

और विवेक से मुक्त हुआ व्यक्ति क्या है? एक ऐसा व्यक्ति होता है जो अपने शरीर से उन शांतिपूर्ण मुक्ति को स्पर्श नहीं करता जो रूप से परे हैं, जो निराकार हैं, बल्कि विवेक से देखकर उसकी मनोभ्रंश समाप्त हो जाती है। इसे विवेक से मुक्त हुआ व्यक्ति कहते हैं।5 इस भिक्षु के विषय में, मैं यह नहीं कहता कि उसे सजगता से कोई कार्य करना है। ऐसा क्यों? उसने अपना कार्य सजगता से किया है। वह असावधान होने में असमर्थ है।

और वह व्यक्ति कौन है जो शारीरिक साक्षी है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक व्यक्ति अपने शरीर से उन शांतिपूर्ण मुक्ति का स्पर्श करता रहता है जो रूप से परे हैं, जो निराकार हैं, और विवेक से देखकर उसकी कुछ मनोभ्रंश शांत हो जाती हैं। इसे शारीरिक साक्षी कहा जाता है।6 इस भिक्षु के विषय में, मैं कहता हूँ कि उसे सजगता से संबंधित कार्य करना है। ऐसा क्यों? [मैं सोचता हूँ:] 'शायद यह पूजनीय व्यक्ति, उपयुक्त विश्राम स्थलों का उपयोग करके, प्रशंसनीय मित्रों के साथ संगति करके, अपनी [मानसिक] क्षमताओं को संतुलित करके, पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करेगा और उसमें स्थिर रहेगा, जिसके लिए कुलवासी सही रूप से घर छोड़कर संन्यासी जीवन में जाते हैं, और इसे स्वयं यहाँ और अभी में जानकर और अनुभव करके प्राप्त करेगा।' इस भिक्षु के लिए सजगता के इस फल की कल्पना करते हुए, मैं कहता हूँ कि उसे सजगता से संबंधित कार्य करना है।

और वह व्यक्ति जिसे दृश्य प्राप्ति हुई है, वह क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ कोई व्यक्ति अपने शरीर से उन शांतिपूर्ण मुक्तियों से स्पर्श नहीं करता जो रूप से परे हैं, जो निराकार हैं, परन्तु विवेक से देखकर उसकी कुछ मनोभ्रंश शांत हो जाती हैं, और वह तथागत द्वारा घोषित गुणों (या शिक्षाओं) का विवेकपूर्वक अवलोकन और परीक्षण कर लेता है। इसे ही दृश्य प्राप्ति प्राप्त व्यक्ति कहते हैं।7 इस भिक्षु के विषय में मैं कहता हूँ कि उसे सजगता का कार्य करना है। ऐसा क्यों? [मैं सोचता हूँ:] 'शायद यह पूजनीय व्यक्ति, उपयुक्त विश्राम स्थलों का उपयोग करके, प्रशंसनीय मित्रों की संगति करके, अपनी [मानसिक] क्षमताओं को संतुलित करके, उस पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करेगा और उसमें स्थिर रहेगा जिसके लिए कुलवासी उचित रूप से घर छोड़कर संन्यासी जीवन में जाते हैं, और

इसे स्वयं यहाँ और अभी में जान और अनुभव कर लेगा।' इस भिक्षु के लिए सजगता के इस फल की कल्पना करते हुए, मैं कहता हूँ कि उसे सजगता का कार्य करना है।

और विश्वास के द्वारा मुक्त हुआ व्यक्ति क्या है? एक ऐसा मामला है जहाँ कोई व्यक्ति अपने शरीर से उन शांतिपूर्ण मुक्ति का स्पर्श नहीं करता जो रूप से परे हैं, जो निराकार हैं, परन्तु विवेक से देखकर उसकी कुछ मनोभ्रंश समाप्त हो जाती हैं, और तथागत में उसका विश्वास दृढ़, जड़ जमा लेता है और स्थिर हो जाता है। इसे ही विश्वास के द्वारा मुक्त हुआ व्यक्ति कहते हैं।8 इस भिक्षु के विषय में मैं कहता हूँ कि उसे सजगता का कार्य करना है। ऐसा क्यों? [मैं सोचता हूँ:] 'शायद यह पूजनीय व्यक्ति, उपयुक्त विश्राम स्थलों का उपयोग करके, प्रशंसनीय मित्रों के साथ संगति करके, अपनी [मानसिक] क्षमताओं को संतुलित करके, पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करेगा और उसमें स्थिर रहेगा, जिसके लिए कुलवासी उचित रूप से घर छोड़कर संन्यासी जीवन में जाते हैं, और इसे स्वयं यहाँ और अभी में जान और अनुभव कर लेगा।' इस भिक्षु के लिए सजगता के इस फल की कल्पना करते हुए, मैं कहता हूँ कि उसे सजगता का कार्य करना है।

"और वह व्यक्ति कौन है जो धम्म का अनुयायी है? एक ऐसा व्यक्ति होता है जो अपने शरीर से उन शांतिपूर्ण मुक्ति का स्पर्श नहीं रखता जो रूप से परे हैं, जो निराकार हैं, और न ही विवेक से देखकर उसकी मनोभ्रंश शांत होती है। परन्तु पर्याप्त चिंतन और विवेक से वह तथागत द्वारा प्रतिपादित शिक्षाओं से सहमत हो जाता है। और उसमें ये गुण होते हैं: दृढ़ विश्वास, दृढ़ता, सजगता, एकाग्रता और विवेक। यही वह व्यक्ति कहलाता है जो धम्म का अनुयायी है।9 इस भिक्षु के विषय में मैं कहता हूँ कि उसे सजगता से कार्य करना है। ऐसा क्यों? [मैं सोचता हूँ:] 'शायद यह पूजनीय व्यक्ति, उपयुक्त विश्राम स्थलों का उपयोग करके, प्रशंसनीय मित्रों के साथ रहकर, अपनी [मानसिक] शक्तियों को संतुलित करके, उस पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करेगा और उसमें स्थिर रहेगा जिसके लिए कुलवासी उचित रूप से घर छोड़कर संन्यास लेते हैं। जीवन को स्वयं यहीं और अभी में जानना और अनुभव करना। इस भिक्षु के लिए सजगता के इस फल की कल्पना करते हुए, मैं कहता हूँ कि उसे सजगता के साथ एक कार्य करना है।

और वह व्यक्ति कौन है जो दृढ़ विश्वास का अनुयायी है? एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसका शरीर उन शांतिपूर्ण मुक्ति से स्पर्श नहीं करता जो रूप से परे हैं, जो निराकार हैं, और न ही विवेक से देखने के बाद भी उसकी भावनाएँ शांत होती हैं। परन्तु उसमें तथागत के प्रति पर्याप्त दृढ़ विश्वास और प्रेम होता है। और उसमें ये गुण होते हैं: दृढ़ विश्वास, दृढ़ता, सजगता, एकाग्रता और विवेक। इसे दृढ़ विश्वास का अनुयायी कहा जाता है। इस भिक्षु के विषय में मैं कहता हूँ कि उसे सजगता से एक कार्य करना है। ऐसा क्यों? [मैं सोचता हूँ:] 'शायद यह पूजनीय व्यक्ति, उपयुक्त विश्राम स्थलों का उपयोग करके, प्रशंसनीय मित्रों की संगति करके, अपनी [मानसिक] क्षमताओं को संतुलित करके, उस पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करेगा और उसमें स्थिर रहेगा जिसके लिए कुलवासी उचित रूप से घर छोड़कर संन्यासी जीवन में जाते हैं, और उसे स्वयं यहाँ और अभी में जान और अनुभव कर लेगा।' इस भिक्षु के लिए सजगता के इस फल की कल्पना करते हुए, मैं कहता हूं कि उसे सजगता से संबंधित एक कार्य करना है।

भिक्षुओं, मैं यह नहीं कहता कि ज्ञान की प्राप्ति एक ही बार में हो जाती है। बल्कि, ज्ञान की प्राप्ति क्रमिक प्रशिक्षण, क्रमिक कर्म और क्रमिक अभ्यास के बाद होती है। और क्रमिक प्रशिक्षण, क्रमिक कर्म और क्रमिक अभ्यास के बाद ज्ञान की प्राप्ति कैसे संभव है? एक स्थिति यह है कि जब विश्वास उत्पन्न हो जाता है, तो व्यक्ति किसी शिक्षक के पास जाता है। मिलने के बाद, व्यक्ति उनसे निकटता प्राप्त करता है। निकटता प्राप्त करने के बाद, वह उनकी बातें ध्यान से सुनता है। ध्यान से सुनने के बाद, वह धम्म सुनता है। धम्म सुनने के बाद, वह उसे याद रखता है। याद रखने के बाद, वह शिक्षाओं के अर्थ को गहराई से समझता है। अर्थ को गहराई से समझने के बाद, वह शिक्षाओं पर मनन करके एक सहमति पर पहुँचता है। शिक्षाओं पर मनन करने के बाद सहमति प्राप्त होने पर, इच्छा उत्पन्न होती है। इच्छा उत्पन्न होने पर, व्यक्ति तत्पर होता है। तत्पर होने पर, वह चिंतन करता है। चिंतन करने के बाद, वह प्रयास करता है। प्रयास करने के बाद, वह शरीर से परम सत्य को अनुभव करता है और विवेक से उसका बोध करके उसे देखता है।10

"अब, भिक्षुओं, वह दृढ़ विश्वास नहीं रहा, वह दर्शन नहीं रहे, वह निकटता नहीं रही... वह ध्यान से सुनना नहीं रहा... धम्म का वह श्रवण नहीं रहा... वह स्मरण नहीं रहा... शिक्षाओं के अर्थ की वह मर्मस्पर्शी समझ नहीं रही... शिक्षाओं पर मनन करके वह सहमति नहीं बन पाई... वह इच्छा नहीं रही... वह तत्परता नहीं रही... वह चिंतन नहीं रहा... वह प्रयास नहीं रहा। हे भिक्षुओं, तुम मार्ग भटक गए हो। तुम गलत रास्ते पर चले गए हो, भिक्षुओं। हे मूर्ख मनुष्यों, तुम इस धम्म और अनुशासन से कितना दूर भटक गए हो!"

"भिक्षुओं, एक चार वाक्यों वाला कथन है, जिसे पढ़ने से एक बुद्धिमान व्यक्ति विवेक के बल पर शीघ्र ही उसका अर्थ समझ लेता है। मैं इसे पढ़ता हूँ, और आप इसे मुझसे सीख लें।"

लेकिन, हे भगवान, हम कौन हैं जो धम्म के शिक्षार्थी बनें?

"भिक्षुओं, यहाँ तक कि भौतिक वस्तुओं के प्रति समर्पित, भौतिक वस्तुओं के उत्तराधिकारी, भौतिक वस्तुओं से आसक्त जीवन जीने वाले गुरु के मामले में भी, उनके छात्रों द्वारा इस प्रकार की सौदेबाजी उचित नहीं होगी: 'यदि हमें यह मिलेगा, तो हम इसे करेंगे; यदि नहीं मिलेगा, तो हम नहीं करेंगे।' तो फिर तथागत के संबंध में यह कैसे उचित हो सकता है, जो भौतिक वस्तुओं से पूर्णतः विरक्त रहते हैं?"

जो शिष्य गुरु के संदेश में दृढ़ विश्वास रखता है और उसे गहराई से समझने का प्रयास करता है, उसके लिए धम्म के अनुसार यह सत्य है: 'भगवान गुरु हैं, मैं शिष्य हूँ। वही ज्ञानी हैं, मैं नहीं।' जो शिष्य गुरु के संदेश में दृढ़ विश्वास रखता है और उसे गहराई से समझने का प्रयास करता है, उसके लिए गुरु का संदेश उपचार और पोषण प्रदान करता है। जो शिष्य गुरु के संदेश में दृढ़ विश्वास रखता है और उसे गहराई से समझने का प्रयास करता है, उसके लिए धम्म के अनुसार यह सत्य है: 'मैं अपने शरीर के मांस और रक्त को सूखने दूँ, केवल त्वचा, नसें और हड्डियाँ ही रह जाएँ, परन्तु यदि मैंने मानवीय दृढ़ता, मानवीय लगन और मानवीय प्रयास से प्राप्त होने वाली वस्तु को प्राप्त नहीं किया है, तो मेरी लगन में कोई शिथिलता नहीं होगी।' जो शिष्य गुरु के संदेश में दृढ़ विश्वास रखता है और उसे गहराई से समझने का प्रयास करता है, उससे दो फल प्राप्त हो सकते हैं: या तो यहीं और अभी ज्ञान, या - यदि आसक्ति-पोषण का कोई अंश शेष रहे - तो अनात्म।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 8.1 तेविज्जा-वाचागोट्टा सुट्टा(71)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध वैशाली के विशाल वन में स्थित एक ऊंचे चबूतरे वाले भवन में निवास कर रहे थे। उसी समय वाच्छगोत्त नामक एकपुंडरीका नामक उनके आश्रम में वाच्छगोत्त रह रहे थे। भगवान बुद्ध ने सुबह वस्त्र धारण करके और भिक्षापात्र व वस्त्र लेकर वैशाली में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। उन्हें यह विचार आया कि वैशाली में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत सुबह है। क्या मैं एकपुंडरीका स्थित एकपुंडरीका में जाकर वाच्छगोत्त से मिलूं? तब भगवान बुद्ध वाच्छगोत्त के पास गए। उन्होंने भगवान बुद्ध को आते हुए देखा और कहा, "आइए! भगवान बुद्ध, बहुत समय बाद आए हैं, कृपया बैठिए। यहाँ आसन तैयार है।" भगवान बुद्ध तैयार आसन पर बैठ गए और भ्रमणशील तपस्वी वच्छगोत्ता भी एक तरफ नीचा आसन लेकर बैठ गए और भगवान बुद्ध से कहा।

आदरणीय महोदय, मैंने यह सुना है कि गौतम संत सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं तथा वे इस प्रकार पूर्ण ज्ञान और दृष्टि को ग्रहण करते हैं, 'चलते, खड़े होते, लेटे या जागते समय, निरंतर और लगातार ज्ञान और दृष्टि मुझ तक पहुँचती है।' आदरणीय महोदय, जो लोग ये शब्द कहते हैं, 'गौतम संत सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं तथा वे पूर्ण ज्ञान और दृष्टि को ग्रहण करते हैं: चलते, खड़े होते, लेटे या जागते समय, निरंतर और लगातार।' क्या वे गौतम संत के शब्द कह रहे हैं और क्या वे भगवान गौतम पर झूठा आरोप नहीं लगा रहे हैं? हे भगवान, जो लोग कहते हैं, 'गौतम संत सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं तथा वे पूर्ण ज्ञान और दृष्टि को ग्रहण करते हैं, चलते, खड़े होते, लेटे या जागते समय, निरंतर और लगातार।' वे मेरे शब्द नहीं कह रहे हैं, वे मुझ पर झूठा आरोप लगा रहे हैं।

आदरणीय महोदय, यह कैसे कहा जाए, जिससे भगवान बुद्ध पर झूठा आरोप न लगे? 'सन्यासी गौतम तीनों ज्ञानों को जानते हैं।' ऐसा कहना सही होगा, और मुझ पर झूठा आरोप नहीं लगेगा। वच्छा, जब भी मैं इच्छा करता हूँ, तो मुझे अनेक जन्म याद आते हैं, जैसे एक जन्म, दो जन्म, सभी गुणों और सभी विवरणों के साथ। इस प्रकार मैं अनेक जन्मों को याद करता हूँ। वच्छा, जब मैं इच्छा करता हूँ, तो मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से, प्राणियों को प्रकट और लुप्त होते हुए, उदात्त और उदात्त अवस्थाओं में, सुंदर और कुरूप, अच्छे और बुरे अवस्थाओं में देखता हूँ। मैं प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार देखता हूँ। वच्छा, इच्छाओं का नाश करके, मेरा मन ज्ञान से मुक्त होता है, और मैं स्वयं को सबोध करके यहीं और अभी विद्यमान रहता हूँ। वच्छा, यदि यह कहा जाए कि तपस्वी गौतम तीनों ज्ञानों को जानते हैं, तो ऐसा कहना सही होगा, और मुझ पर झूठा आरोप नहीं लगेगा।'

यह सुनकर घुमंतू तपस्वी वच्छगोत्ता ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम, क्या कोई ऐसा गृहस्थ है जो गृहस्थ बंधनों का त्याग किए बिना मृत्यु के बाद कष्टों से मुक्ति पा सके? नहीं, वच्छ, ऐसा कोई गृहस्थ नहीं है जिसने गृहस्थ बंधनों का त्याग किए बिना कष्टों से मुक्ति पाई हो। हे गौतम, क्या कोई ऐसा गृहस्थ है जो गृहस्थ बंधनों का त्याग किए बिना मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेता हो? वच्छ, सौ नहीं, दो सौ नहीं, तीन सौ नहीं, चार सौ नहीं, पांच सौ नहीं, बल्कि अनेक ऐसे हैं जो गृहस्थ बंधनों का त्याग किए बिना मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेते हैं। हे गौतम, क्या कोई ऐसा तपस्वी है जिसने मृत्यु के बाद कष्टों से मुक्ति पाई हो? नहीं, वच्छ, ऐसा कोई तपस्वी नहीं है जिसने मृत्यु के बाद कष्टों से मुक्ति पाई हो। हे गौतम, क्या कोई ऐसा तपस्वी है जो मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेता हो?" वच्छा, मैंने 91 विश्व चक्रों का स्मरण किया और स्वर्ग में जन्म लेने वाले किसी भी तपस्वी को नहीं देखा, सिवाय एक विशेष तपस्वी के जो मानता था कि कर्मों का फल अवश्य मिलता है। हे गौतम, यदि ऐसा है तो स्वर्ग में जन्म लिए बिना अन्य सभी धर्म व्यर्थ हैं।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और भ्रमणशील तपस्वी वच्छगोत्ता भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 8.2अग्गी-वाचागोट्टा सुट्टा(72)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा ही सुना है।

एक बार भगवान बुद्ध अनाथपिंडिका उद्यान में स्थित जेतवन मठ के सावत्थी में निवास कर रहे थे। तभी वाच्छ नामक तपस्वी भगवान बुद्ध के पास आया; और पास आकर उसने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया; और मित्रता और शिष्टाचार का अभिवादन करने के बाद वह आदरपूर्वक एक तरफ बैठ गया। आदरपूर्वक एक तरफ बैठे हुए वाच्छ नामक तपस्वी ने भगवान बुद्ध से इस प्रकार कहा:--

"ऐसा कैसे है, गौतम? क्या गौतम का मानना है कि संसार शाश्वत है, और केवल यही विचार सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं?"

"नहीं, वच्छा। मैं यह नहीं मानता कि संसार शाश्वत है, और न ही यह मानता हूँ कि केवल यही विचार सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं।"

"लेकिन ऐसा कैसे है, गौतम? क्या गौतम का मानना है कि संसार शाश्वत नहीं है, और केवल यही विचार सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं?"

"नहीं, वच्छा। मैं यह नहीं मानता कि संसार शाश्वत नहीं है, और यह कि केवल यही दृष्टिकोण सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं।"

"कैसे है गौतम? क्या गौतम का मानना है कि संसार सीमित है...?"

"गौतम, ऐसा कैसे है? क्या गौतम यह मानते हैं कि आत्मा और शरीर एक ही हैं...?"

"यह कैसे है, गौतम? क्या गौतम का मानना है कि संत मृत्यु के बाद भी अस्तित्व में रहते हैं, . . ."

"गौतम, ऐसा कैसे है? क्या गौतम का मानना है कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और नहीं भी रहते हैं, और क्या यही एकमात्र सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं?"

"नहीं, वच्चा। मैं यह नहीं मानता कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी होते हैं और नहीं भी, और यह कि केवल यही दृष्टिकोण सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं।"

"लेकिन ऐसा कैसे है, गौतम? क्या गौतम का मानना है कि मृत्यु के बाद संत का न तो अस्तित्व होता है और न ही नहीं होता, और केवल यही विचार सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं?"

"नहीं, वच्छा। मैं यह नहीं मानता कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में होते हैं और न ही अस्तित्वहीन होते हैं, और यह कि केवल यही दृष्टिकोण सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं।"

"हे गौतम, यह कैसे संभव है कि जब आपसे पूछा जाता है, 'क्या भिक्षु गौतम यह मानते हैं कि संसार शाश्वत है, और केवल यही सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं?' तो आप उत्तर देते हैं, 'नहीं, वच्छा। मैं यह नहीं मानता कि संसार शाश्वत है, और केवल यही सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं'?"

लेकिन हे गौतम, ऐसा कैसे है कि जब आपसे पूछा जाता है, 'क्या भिक्षु गौतम यह मानते हैं कि संसार शाश्वत नहीं है, और केवल यही विचार सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं?' तो आप उत्तर देते हैं, 'नहीं, वच्छा। मैं यह नहीं मानता कि संसार शाश्वत नहीं है, और केवल यही विचार सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं'?

"गौतम, ऐसा कैसे है कि जब आपसे पूछा जाता है, 'क्या गौतम मानते हैं कि दुनिया सीमित है, . . . '?"

"गौतम, ऐसा कैसे है कि जब आपसे पूछा जाता है, 'क्या गौतम यह मानते हैं कि आत्मा और शरीर एक समान हैं, . . . '?"

"गौतम, ऐसा कैसे है कि जब आपसे पूछा जाता है, 'क्या गौतम मानते हैं कि संत का अस्तित्व मृत्यु के बाद भी रहता है, . . . '?"

"हे गौतम, यह कैसे संभव है कि जब आपसे पूछा जाता है, 'क्या भिक्षु गौतम यह मानते हैं कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और अस्तित्व में नहीं भी रहते, और केवल यही विचार सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं?' तो आप उत्तर देते हैं, 'नहीं, वच्छा। मैं यह नहीं मानता कि संत मृत्यु के बाद अस्तित्व में भी रहते हैं और अस्तित्व में नहीं भी रहते, और केवल यही विचार सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं'?"

"परन्तु गौतम, यह कैसे संभव है कि जब आपसे पूछा जाता है, 'क्या भिक्षु गौतम यह मानते हैं कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्वहीन होते हैं, और केवल यही मत सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं?' तो आप उत्तर देते हैं, 'नहीं, वच्छ। मैं यह नहीं मानता कि संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में रहते हैं और न ही अस्तित्वहीन होते हैं, और केवल यही मत सत्य है, और बाकी सभी असत्य हैं'? गौतम को इन सिद्धांतों में क्या आपत्ति है कि उन्होंने इनमें से किसी को भी नहीं अपनाया है?"

"वच्छ, वह सिद्धांत जो मानता है कि दुनिया शाश्वत है, एक जंगल है, एक निर्जन क्षेत्र है, एक कठपुतली का खेल है, एक तड़प है और एक बेड़ी है, और यह दुख, विनाश, निराशा और पीड़ा से जुड़ा हुआ है, और यह अरुचि, वासना की अनुपस्थिति, समाप्ति, शांति, ज्ञान, सर्वोच्च बुद्धि और निर्वाण की ओर प्रवृत्त नहीं होता है।"

"वच्छ, वह सिद्धांत जिसके अनुसार संत मृत्यु के बाद न तो अस्तित्व में होते हैं और न ही अस्तित्वहीन होते हैं, एक जंगल है, एक वीरान जगह है, एक कठपुतली का खेल है, एक तड़प है और एक बेड़ी है, और यह दुख, विनाश, निराशा और पीड़ा से जुड़ा हुआ है, और यह अरुचि, वासना की अनुपस्थिति, समाप्ति, शांति, ज्ञान, सर्वोच्च बुद्धि और निर्वाण की ओर प्रवृत्त नहीं होता है।"

"मुझे इन सिद्धांतों पर यही आपत्ति है, इसलिए मैंने इनमें से किसी को भी नहीं अपनाया है।"

"लेकिन क्या गौतम का अपना कोई सिद्धांत है?"

हे वच्छ, तथागत समस्त सिद्धांतों से मुक्त हैं; परन्तु हे वच्छ, तथागत केवल यही जानते हैं—रूप का स्वरूप, रूप की उत्पत्ति और विनाश; संवेदना का स्वरूप, संवेदना की उत्पत्ति और विनाश; बोध का स्वरूप, बोध की उत्पत्ति और विनाश; प्रवृत्तियों का स्वरूप, प्रवृत्तियों की उत्पत्ति और विनाश; चेतना का स्वरूप, चेतना की उत्पत्ति और विनाश। अतः मैं कहता हूँ कि तथागत ने मुक्ति प्राप्त कर ली है और वे आसक्ति से मुक्त हैं, क्योंकि अहंकार या उससे संबंधित किसी भी विषय में समस्त कल्पनाएँ, व्याकुलताएँ और अभिमानपूर्ण विचार नष्ट हो गए हैं, लुप्त हो गए हैं, समाप्त हो गए हैं, त्याग दिए गए हैं।

लेकिन, गौतम, वह पुनर्जन्म लेने वाला पुजारी कहाँ है जिसने अपने मन के लिए यह मुक्ति प्राप्त कर ली है?

"वाच्चा के बारे में यह कहना कि उसका पुनर्जन्म हुआ है, इस मामले में उचित नहीं होगा।"

"तो फिर, गौतम, उसका पुनर्जन्म नहीं होगा।"

"वच्चा के बारे में यह कहना कि उसका पुनर्जन्म नहीं हुआ, इस मामले पर लागू नहीं होगा।"

"तो, गौतम, वह पुनर्जन्म भी लेता है और पुनर्जन्म नहीं भी लेता है।"

"वच्चा के बारे में यह कहना कि वह पुनर्जन्म भी ले चुका है और पुनर्जन्म नहीं भी ले चुका है, इस मामले पर लागू नहीं होगा।"

"तो फिर, गौतम, वह न तो पुनर्जन्म लेता है और न ही पुनर्जन्म नहीं लेता है।"

"वच्चा के बारे में यह कहना कि वह न तो पुनर्जन्म लेता है और न ही पुनर्जन्म नहीं लेता, इस मामले पर लागू नहीं होगा।"

जब मैं तुमसे कहता हूँ, 'परन्तु, गौतम, वह पुरोहित कहाँ है जिसने मन की इस मुक्ति को प्राप्त कर लिया है?' तो तुम उत्तर देते हो, 'वच्छ, उसका पुनर्जन्म होना उचित नहीं है।' और जब मैं तुमसे कहता हूँ, 'तो, गौतम, उसका पुनर्जन्म नहीं हुआ है,' तो तुम उत्तर देते हो, 'वच्छ, उसका पुनर्जन्म न होना उचित नहीं है।' और जब मैं तुमसे कहता हूँ, 'तो, गौतम, उसका पुनर्जन्म हुआ भी है और नहीं भी हुआ है,' तो तुम उत्तर देते हो, 'वच्छ, उसका पुनर्जन्म हुआ भी है और नहीं भी हुआ है, यह उचित नहीं है।' और जब मैं तुमसे कहता हूँ, 'तो, गौतम, उसका न तो पुनर्जन्म हुआ है और न ही नहीं हुआ है,' तो तुम उत्तर देते हो, 'वच्छ, उसका न तो पुनर्जन्म हुआ है और न ही नहीं हुआ है, यह उचित नहीं है।' गौतम, मैं इस मामले में क्या सोचूँ, यह समझ नहीं पा रहा हूँ, और मैं बहुत भ्रमित हो गया हूँ, और पिछली बातचीत से गौतम में जो विश्वास जागा था, वह अब लुप्त हो गया है।

"बस करो, हे वच्छा! इस विषय में क्या सोचना है, इस बारे में असमंजस में मत पड़ो, और अधिक भ्रमित मत हो। हे वच्छा, यह सिद्धांत गहरा, गूढ़ और समझने में कठिन है; उत्तम, उत्कृष्ट, और मात्र तर्क से प्राप्त न होने वाला; सूक्ष्म और केवल बुद्धिमानों के लिए बोधगम्य है; और यह तुम्हारे लिए सीखना कठिन है, क्योंकि तुम दूसरे संप्रदाय, दूसरे धर्म, दूसरे मत, दूसरे अनुशासन से संबंधित हो और दूसरे गुरु के चरणों में बैठते हो। इसलिए, हे वच्छा, अब मैं तुमसे प्रश्न पूछूंगा, और तुम ऐसा उत्तर दो जो तुम्हें उचित लगे। हे वच्छा, तुम क्या सोचते हो? मान लो तुम्हारे सामने आग जल रही हो, तो क्या तुम्हें पता चलेगा कि तुम्हारे सामने आग जल रही है?"

"गौतामा, अगर मेरे सामने आग जल रही हो, तो मुझे इस बात का एहसास होना चाहिए कि मेरे सामने आग जल रही है।"

लेकिन मान लो, वच्छा, अगर कोई तुमसे पूछे, 'तुम्हारे सामने जल रही यह आग किस पर निर्भर करती है?' तो तुम क्या उत्तर दोगे, वच्छा?

"गौतम, यदि कोई मुझसे पूछे, 'आपके सामने जल रही यह आग किस पर निर्भर करती है?' तो मैं उत्तर दूंगा, गौतम, 'यह आग घास और लकड़ी के ईंधन पर निर्भर करती है।'"

लेकिन, वाच्चा, अगर तुम्हारे सामने की आग बुझ जाए, तो क्या तुम्हें पता चलेगा कि तुम्हारे सामने की आग बुझ गई है?

"गोतामा, अगर मेरे सामने की आग बुझ जाए, तो मुझे पता चल जाएगा कि मेरे सामने की आग बुझ गई है।"

लेकिन, वच्छा, यदि कोई तुमसे पूछे, 'वह आग किस दिशा में गई है—पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण?' तो तुम क्या कहोगे, हे वच्छा?'

"यह प्रश्न इस मामले के अनुकूल नहीं है, गौतम। क्योंकि जो अग्नि घास और लकड़ी के ईंधन पर निर्भर करती है, जब वह ईंधन पूरी तरह समाप्त हो जाता है और उसे कोई अन्य ईंधन नहीं मिल पाता, तो वह पोषक तत्वों से रहित होकर बुझ जाती है।"

"ठीक इसी प्रकार, हे वच्छा, संत के अस्तित्व को दर्शाने वाले सभी रूप त्याग दिए गए हैं, जड़ से उखाड़ दिए गए हैं, ताड़ के वृक्ष की तरह जमीन से निकाल दिए गए हैं, और अस्तित्वहीन हो गए हैं तथा भविष्य में फिर से उत्पन्न होने की कोई संभावना नहीं है। हे वच्छा, जो रूप कहलाने वाली हर चीज से मुक्त हो चुके हैं, वे विशाल सागर के समान गहरे, असीम, अथाह हैं। उनका पुनर्जन्म होना उचित नहीं होगा।

उनका पुनर्जन्म न होना भी उचित नहीं होगा। उनका पुनर्जन्म होना और न होना भी उचित नहीं होगा। उनका न तो पुनर्जन्म होना और न ही न होना भी उचित नहीं होगा।"

"सारी संवेदना..."

सभी धारणाएँ...

सभी पूर्वधारणाएँ...

वह समस्त चेतना जिसके आधार पर संत के अस्तित्व का अनुमान लगाया जा सकता था, वह समस्त चेतना त्याग दी गई है, जड़ से उखाड़ दी गई है, ताड़ के वृक्ष की तरह जमीन से निकाल दी गई है, और अस्तित्वहीन हो गई है तथा भविष्य में फिर से उत्पन्न होने की कोई संभावना नहीं है। हे वच्छ, वह संत जो चेतना कहलाने वाली चीज़ से मुक्त हो चुके हैं, विशाल सागर के समान गहरे, असीम, अथाह हैं। उनका पुनर्जन्म होना उचित नहीं होगा। उनका पुनर्जन्म न होना भी उचित नहीं होगा। उनका पुनर्जन्म होना और न होना भी उचित नहीं होगा। उनका न तो पुनर्जन्म होना और न ही न होना भी उचित नहीं होगा।

जब भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, तब वाच्छा नामक तपस्वी ने उनसे इस प्रकार कहा:

हे गौतम, ऐसा ही है मानो किसी गाँव या कस्बे के पास एक विशाल साल का पेड़ हो, और वह अपनी सूखी शाखाओं, टहनियों, छाल के टुकड़ों और खराब लकड़ी को गिरा दे, और फिर उन शाखाओं, टहनियों, छाल के टुकड़ों और खराब लकड़ी से मुक्त होकर, अपनी शक्ति में निर्मल और सुंदर खड़ा हो। ठीक इसी प्रकार गौतम का वचन भी शाखाओं, टहनियों, छाल के टुकड़ों और खराब लकड़ी से मुक्त होकर, अपनी शक्ति में निर्मल और सुंदर खड़ा है। हे गौतम, यह कितना अद्भुत है! हे गौतम, यह कितना अद्भुत है! हे गौतम, ऐसा ही है मानो कोई उलटी हुई चीज को सीधा खड़ा कर दे; या किसी छिपी हुई चीज को प्रकट कर दे; या किसी खोए हुए यात्री को रास्ता दिखा दे; या किसी अंधेरी जगह में दीपक ले जाए, ताकि देखने वाले आकृतियाँ देख सकें। गौतम ने भी इसी प्रकार अनेक प्रकार से इस सिद्धांत की व्याख्या की है। मैं गौतम की शरण में जाता हूँ। मैंने धर्म और पुरोहितों के समुदाय की शरण ली है। गौतम मुझे, जिसने उनकी शरण ली है, स्वीकार करें और आज से जीवन भर मुझे अपना शिष्य बना लें।

[टिपिटक]] >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 8.3 महा वाचागोट्टा सुत्त(73)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उप्पलावन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान राजगृह के बांस के जंगल में गिलहरियों के अभयारण्य में रह रहे थे। तब भ्रमणशील तपस्वी वच्छगोत्ता भगवान के पास आए, उनसे सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठकर भगवान से कहा, 'बहुत समय हो गया है जब हमें अच्छे गौतम से बात करने का अवसर मिला। हम संक्षेप में उनके गुण-दोष जानना चाहते हैं।' 'वच्छ, मैं तुम्हें गुण-दोष संक्षेप में और विस्तार से भी बताऊंगा। अब ध्यान से सुनो, मैं तुम्हें संक्षेप में बताता हूं।' भ्रमणशील तपस्वी वच्छगोत्ता सहमत हो गए और भगवान ने इस प्रकार कहा:

ßवच्छ, लोभ एक दोष है, लोभ न करना एक गुण है। क्रोध एक दोष है और क्रोध न करना एक गुण है। भ्रम एक दोष है और भ्रम से मुक्ति एक गुण है। ये तीनों दोष हैं और अन्य तीन गुण हैं। जीवन का नाश करना एक दोष है, जीवन का नाश न करना एक गुण है। जो नहीं दिया गया है उसे लेना एक दोष है और जो नहीं दिया गया है उसे न लेना एक गुण है। यौन दुराचार एक दोष है और यौन दुराचार से बचना एक गुण है। झूठ बोलना एक दोष है और झूठ न बोलना एक गुण है। निंदा करना एक दोष है और निंदा से बचना एक गुण है। अभद्र भाषा बोलना एक दोष है और अभद्र भाषा से बचना एक गुण है। निरर्थक बातें करना एक दोष है और निरर्थक बातों से बचना एक गुण है। लोभ करना एक दोष है और लोभ से बचना एक गुण है। क्रोधित मन रखना दोष है और शांत मन रखना पुण्य है। गलत दृष्टिकोण दोष है और सही दृष्टिकोण पुण्य है। वाच्छा, ये दस दोष हैं और अन्य दस पुण्य हैं। वाच्छा, जब भिक्षु व्यथा को जड़ से उखाड़ फेंकता है, उसे ताड़ के पेड़ के ठूंठ की तरह बना देता है और उसे ऐसा बना देता है कि वह फिर से न उगे, तब वह भिक्षु पूर्ण हो जाता है।

वह इच्छाओं से विलीन होकर, पवित्र जीवन जीकर, जो करना चाहिए वह करके, बोझ उतारकर सर्वोच्च कल्याण को प्राप्त कर लेता है, और 'होने' के बंधन को नष्ट करके, वह सही ज्ञान के साथ मुक्त हो जाता है।

'अच्छा, गौतम, रुको! क्या गौतम का कोई एक भी शिष्य ऐसा भिक्षु है जिसने इच्छाओं का नाश किया हो, मन को इच्छाओं से मुक्त किया हो और ज्ञान के माध्यम से वर्तमान क्षण में स्थिर रहकर मुक्ति पाई हो?' 'वच्छा, एक नहीं, सौ नहीं, दो सौ नहीं, तीन सौ नहीं, चार सौ नहीं, पांच सौ भी नहीं। मेरे कई शिष्य भिक्षु हैं जिन्होंने इच्छाओं का नाश किया है, मन को इच्छाओं से मुक्त किया है और ज्ञान के माध्यम से वर्तमान क्षण में स्थिर रहकर मुक्ति पाई है।'

'अच्छा, गौतम, रुकिए! भिक्षुओं की बात छोड़िए। क्या गौतम की कोई एक भी शिष्या है जिसने इच्छाओं का नाश किया हो, मन को इच्छाओं से मुक्त किया हो और ज्ञान के माध्यम से वर्तमान क्षण में मोक्ष प्राप्त किया हो?' 'वच्छा, एक नहीं, सौ नहीं, दो सौ नहीं, तीन सौ नहीं, चार सौ नहीं, पांच सौ नहीं। मेरी बहुत सी शिष्याएं हैं जिन्होंने इच्छाओं का नाश किया है, मन को इच्छाओं से मुक्त किया है और ज्ञान के माध्यम से वर्तमान क्षण में मोक्ष प्राप्त किया है।'

'अच्छा, गौतम, रुको! भिक्षुओं और भिक्षुणियों के अलावा, क्या गौतम का कोई ऐसा गृहस्थ शिष्य है, जिसने श्वेत वस्त्र धारण करके पवित्र जीवन व्यतीत किया हो, इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों को नष्ट किया हो, और जो स्वाभाविक रूप से जन्म लेकर आगे न बढ़े?' 'वच्छा, एक नहीं, सौ नहीं, दो सौ नहीं, तीन सौ नहीं, चार सौ नहीं, पाँच सौ नहीं। मेरे कई ऐसे गृहस्थ शिष्य हैं, जिन्होंने इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों को नष्ट कर दिया है, और जो स्वाभाविक रूप से जन्म लेकर आगे न बढ़ें।'

'अच्छा, गौतम, रुकिए! श्वेत वस्त्र धारण करने वाले और पवित्र जीवन जीने वाले गौतम के भिक्षुओं, भिक्षुणियों और गृहस्थ शिष्यों के अलावा, क्या कोई एक भी गृहस्थ शिष्य है, जो श्वेत वस्त्र धारण करता हो, पवित्र जीवन जीता हो, इंद्रिय सुखों का भोग करता हो और धर्मोपदेश के कार्य में अपने सभी संदेहों को दूर कर चुका हो, जो उचित और अनुचित कार्यों के प्रति आश्वस्त हो चुका हो और गुरु के धर्मोपदेश में अब उसे किसी गुरु की आवश्यकता न हो? वाच्छा, एक नहीं, सौ नहीं, दो सौ नहीं, तीन सौ नहीं, चार सौ नहीं, पांच सौ भी नहीं। मेरे अनेक गृहस्थ शिष्य हैं, जो श्वेत वस्त्र धारण करते हैं, पवित्र जीवन जीते हैं, इंद्रिय सुखों का भोग करते हैं और धर्मोपदेश के कार्य में अपने सभी संदेहों को दूर कर चुके हैं, जो उचित और अनुचित कार्यों के प्रति आश्वस्त हो चुके हैं और अब उन्हें किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है।'

'हे गौतम, रुकिए! भिक्षुओं, भिक्षुणियों, स्वतः उत्पन्न हुए और आगे न बढ़ने वाले गृहस्थ शिष्यों, और शिक्षा की धारा में प्रवेश कर चुके और आश्वस्त शिष्यों के अलावा, क्या गौतम की कोई ऐसी स्त्री गृहस्थ शिष्या है जो श्वेत वस्त्र धारण करती हो, पवित्र जीवन व्यतीत करती हो, इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों का नाश कर चुकी हो, और स्वतः ही आगे न बढ़ने के लिए जन्मी हो?' 'वच्छा, एक नहीं, सौ नहीं, दो सौ नहीं, तीन सौ नहीं, चार सौ नहीं, पाँच सौ नहीं। मेरी बहुत सी स्त्री गृहस्थ शिष्याएँ हैं जिन्होंने इंद्रिय जगत के पाँच निम्न बंधनों का नाश कर दिया है, और स्वतः ही आगे न बढ़ने के लिए जन्मी हैं।'

अच्छा, गौतम, रुको! भिक्षुओं, भिक्षुणियों, स्वतः उत्पन्न हुए उन गृहस्थ शिष्यों के अलावा जो आगे नहीं बढ़ना चाहते, और उन लोगों के अलावा जो शिक्षा की धारा में प्रवेश कर चुके हैं और आत्मविश्वासी हैं, और उन गृहस्थ स्त्री शिष्यों के अलावा जो स्वतः उत्पन्न हुई हैं और आगे नहीं बढ़ना चाहतीं, क्या एक भी ऐसी स्त्री शिष्या है जो श्वेत वस्त्र धारण करती है, पवित्र जीवन व्यतीत करती है, इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हुए भी धर्म के कार्यों में लगी रहती है, उसके सारे संदेह दूर हो गए हैं, उसे इस बात का पूरा ज्ञान हो गया है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, और अब उसे किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है। 'वच्छा, एक नहीं, सौ नहीं, दो सौ नहीं, तीन सौ नहीं, चार सौ नहीं, पांच सौ नहीं। मेरी बहुत सी ऐसी स्त्री शिष्याएं हैं जो श्वेत वस्त्र धारण करती हैं, पवित्र जीवन व्यतीत करती हैं, इंद्रिय सुखों का आनंद लेते हुए भी धर्म के कार्यों में लगी रहती हैं, उनके सारे संदेह दूर हो गए हैं, उन्हें इस बात का पूरा ज्ञान हो गया है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। गुरु के धर्म में उन्हें अब किसी गुरु की आवश्यकता नहीं है।

हे गौतम जी, यदि इस युग में केवल गौतम जी ही पूर्ण होते और भिक्षु पूर्ण न होते, तो यह पवित्र जीवन अपूर्ण होता। परन्तु गौतम जी और भिक्षु दोनों ही पूर्ण हैं, अतः यह पवित्र जीवन पूर्ण है।

यदि इस युग में केवल गौतम वरन् और भिक्षु ही सिद्ध हुए होते और भिक्षुणियाँ नहीं, तो यह पवित्र जीवन अपूर्ण होता। यद्यपि गौतम वरन् और भिक्षुणियाँ सिद्ध हो चुके हैं, इसलिए यह पवित्र जीवन पूर्ण है।

यदि इस उपदेश में, हे गौतम, भिक्षु और भिक्षुणियों को ही सिद्ध किया गया है, न कि श्वेत वस्त्र धारण करने वाले और पवित्र जीवन जीने वाले गृहस्थ शिष्यों को, तो यह पवित्र जीवन अपूर्ण है। यद्यपि हे गौतम, भिक्षु, भिक्षुणियों और श्वेत वस्त्र धारण करने वाले गृहस्थ शिष्यों को भी सिद्ध किया गया है, तो यह पवित्र जीवन पूर्ण है।

यदि इस युग में हे गौतम, भिक्षु, भिक्षुणियाँ और श्वेत वस्त्र धारण करने वाले तथा पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले गृहस्थ शिष्य सिद्ध हो गए, तथा श्वेत वस्त्र धारण करने वाले तथा इंद्रिय सुखों में लिप्त रहने वाले गृहस्थ शिष्य सिद्ध न हुए, तो यह पवित्र जीवन अपूर्ण है। परन्तु हे गौतम, भिक्षु, भिक्षुणियाँ और श्वेत वस्त्र धारण करने वाले तथा पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले गृहस्थ शिष्य, तथा साथ ही श्वेत वस्त्र धारण करने वाले तथा इंद्रिय सुखों में लिप्त रहने वाले गृहस्थ शिष्य भी सिद्ध हो गए, तो यह पवित्र जीवन पूर्ण है।

यदि इस शिक्षा में सुभान गौतम, भिक्षु, भिक्षुणियाँ, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले और पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले गृहस्थ शिष्य और श्वेत वस्त्र धारण करने वाले और कामुक सुखों में लिप्त रहने वाले गृहस्थ शिष्य सिद्ध हो गए हैं, और श्वेत वस्त्र धारण करने वाली और पवित्र जीवन व्यतीत करने वाली स्त्री गृहस्थ शिष्य सिद्ध नहीं हुई हैं, तो यह पवित्र जीवन अपूर्ण है। यद्यपि सुभान गौतम, भिक्षु, भिक्षुणियाँ, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले और पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले गृहस्थ शिष्य, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले और कामुक सुखों में लिप्त रहने वाले गृहस्थ शिष्य और श्वेत वस्त्र धारण करने वाली स्त्री गृहस्थ शिष्य भी सिद्ध हो गए हैं, इसलिए यह पवित्र जीवन पूर्ण है।

यदि इस शिक्षा में हे गौतम, भिक्षु, भिक्षुणियाँ, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले और पवित्र जीवन व्यतीत करने वाले गृहस्थ शिष्य, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले और कामुक सुखों में लिप्त रहने वाले गृहस्थ शिष्य, और श्वेत वस्त्र धारण करने वाली और पवित्र जीवन व्यतीत करने वाली स्त्री शिष्याएँ, और श्वेत वस्त्र धारण करने वाली और कामुक सुखों में लिप्त रहने वाली गृहस्थ शिष्याएँ पूर्ण हो जाती हैं, तो यह पवित्र जीवन पूर्ण हो जाता है।

हे गौतम, जैसे गंगा नदी सागर की ओर मुड़कर सीधे सागर में विलीन हो जाती है, वैसे ही हे गौतमों का समूह, जो गृहस्थों के साथ प्रस्थान कर चुके हैं, वे भी विनाश की ओर झुके हुए हैं और उसके निकट खड़े हैं। हे गौतम, अब मैं समझ गया। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई वस्तु फिर से स्थापित हो गई हो। जैसे कोई ढकी हुई वस्तु प्रकट हो गई हो। जैसे किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया गया हो। जैसे अंधकार में तेल का दीपक जलाया गया हो, ताकि दृष्टि रखने वाले लोग रूप देख सकें।

हे गौतम जी, शिक्षा को अनेक तरीकों से समझाया गया है। अब मैं हे गौतम जी की शरण में, उनकी शिक्षाओं में और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेता हूँ। हे गौतम जी के मार्गदर्शन में मुझे दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त हो। वाच्छगोत्ता, जो इस दीक्षा में दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें चार महीने की परीक्षा अवधि के रूप में प्रतीक्षा करनी चाहिए। इस अवधि के अंत में, प्रसन्न भिक्षु उन्हें दीक्षा और उच्च दीक्षा प्रदान करेंगे। यह व्यक्तिगत मतभेदों की परीक्षा के लिए है। आदरणीय महोदय, यदि दूसरे संप्रदाय के किसी व्यक्ति को दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त करने के लिए चार महीने की परीक्षा अवधि के रूप में प्रतीक्षा करनी पड़ती है, तो मैं चार वर्ष की परीक्षा अवधि में रहूँगा। जब भिक्षु प्रसन्न हों, तो वे मुझे दीक्षा और उच्च दीक्षा प्रदान करें। वाच्छगोत्ता नामक भ्रमणशील तपस्वी को दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त हुई।

आदरणीय वच्छगोत्ता को उच्च दीक्षा प्राप्त होने के दो सप्ताह बाद, वे भगवान बुद्ध के पास गए, उनकी पूजा की, एक तरफ बैठ गए और उनसे कहा, 'आदरणीय महोदय, मैंने एक गुरु का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। भगवान बुद्ध मुझे आगे मार्गदर्शन करें।' 'तब वच्छ, तुम्हें दो चीजों को और विकसित करना चाहिए। शांत और अंतर्दृष्टि विकसित करो। वच्छ, जब शांत और अंतर्दृष्टि विकसित हो जाती है, तो यह विभिन्न तत्वों का अनुभव करने में सहायक होती है।'

वाच्छा, जब तुम्हारी इच्छा हो, तो विभिन्न अलौकिक शक्तियों का अनुभव करो। एक का अनेकों में और अनेकों का एक में परिवर्तन। दीवारों, तटबंधों और पहाड़ों के आर-पार ऐसे जाओ जैसे हवा में। धरती में ऐसे गोता लगाओ और बाहर आओ जैसे पानी में। पानी पर ऐसे चलो जैसे धरती पर। अंतरिक्ष में ऐसे पैर मोड़कर बैठो जैसे छोटे-बड़े पक्षी बैठते हैं। चंद्रमा और सूर्य को स्पर्श करो, जैसे वे शक्तिशाली हैं। शरीर से ब्रह्मलोक तक शक्ति का प्रयोग करो। यह उस और अन्य मानसिक क्षमताओं के विकास का प्रत्यक्षदर्शी होगा।

वाच्छा, जब तुम चाहो, तो मानवीय क्षमता से परे शुद्ध दिव्य श्रवण शक्ति से, दूर या पास की विभिन्न ध्वनियाँ, दिव्य और मानवीय, सुनो; तुम्हारे लिए वह सजगता उस मानसिक शक्ति में प्रत्यक्षदर्शी बन जाती है।

वाच्छा, यदि तुम चाहो तो दूसरों की मानसिक अवस्थाओं को भलीभांति जान लो। लोभ से ग्रस्त और निर्लोभ से मुक्त मन को, क्रोधित और शांत मन को, भ्रमित और शांत मन को, सजग और विचलित मन को, विकसित और अविकसित मन को, तुलना करने वाले और

तुलना न करने वाले मन को, एकाग्र और असंलग्न मन को, मुक्त और अमुक्त मन को जान लो। वह सजगता तुम्हारे लिए उस मानसिक अवस्था का प्रत्यक्षदर्शी बन जाती है।

वच्छा, यदि तुम चाहो, तो अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करो। जैसे एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास जन्म, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, अनगिनत आगे के जन्मों का चक्र, अनगिनत पीछे के जन्मों का चक्र और अनगिनत आगे-पीछे के जन्मों का चक्र। वहाँ मेरा ऐसा नाम, ऐसा कुल, ऐसा स्वभाव, ऐसा आधार था और मैं इन सुख-दुख के अनुभवों से गुजर रहा था और मेरी ऐसी आयु थी। वहाँ से विलीन होकर मैं यहाँ जन्म लिया, इसी नाम, ऐसे कुल, ऐसा स्वभाव, ऐसा आधार के साथ और इन सुख-दुख के अनुभवों से गुजर रहा था। मेरी ऐसी आयु थी। वहाँ से विलीन होकर मैं यहाँ जन्म लिया। इस प्रकार अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करो, क्योंकि चेतना उस मानसिक शक्ति में प्रत्यक्षदर्शी है।

वाच्छा, यदि आप चाहें तो मानवीय गुणों से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से प्राणियों को प्रकट होते और लुप्त होते हुए देख सकते हैं, चाहे वे उदात्त हों या उदात्त, सुंदर हों या कुरूप, अच्छे हों या बुरे। प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार पहचानें। ये अच्छे प्राणी, जो शरीर, वाणी और मन से कुकर्म करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा करते हैं, गलत दृष्टि और कर्मों के गलत दृष्टिकोण से कार्य करते हैं, मृत्यु के बाद हानि में जाते हैं, घटते हैं और नरक में जन्म लेते हैं। ये अच्छे प्राणी, जो शरीर, वाणी और मन से सही आचरण करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते, सही दृष्टि और कर्मों के सही दृष्टिकोण से कार्य करते हैं, मृत्यु के बाद वृद्धि में जाते हैं और स्वर्ग में जन्म लेते हैं। इस प्रकार मानवीय गुणों से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार प्रकट होते और लुप्त होते हुए देखें, और वह जागरूकता आपकी मानसिक क्षमता में प्रत्यक्षदर्शी बन जाती है।

वाच्छा, यदि तुम चाहो तो, इच्छाओं के नाश के साथ, इच्छाओं से मुक्त मन को मुक्त करो, और ज्ञान के माध्यम से मुक्त हो जाओ, इसे यहीं और अभी अनुभव करो। वह जागरूकता उस मानसिक क्षमता में प्रत्यक्षदर्शी बन जाती है।

तब पूज्य वच्छगोत्ता भगवान बुद्ध के वचनों से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध की पूजा और परिक्रमा की और चले गए। पूज्य वच्छगोत्ता भीड़ से दूर एकांतवास में जाकर आध्यात्मिक शांति के लिए तल्लीन हो गए। चाहे किसी भी कारण से कुल के पुत्र गृहस्थी छोड़कर संन्यासी बन जाते हों, उन्होंने उसी क्षण पवित्र जीवन के उस अतुलनीय लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। वे जानते थे कि जन्म का नाश हो चुका है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना चाहिए वह हो चुका है, अब और कुछ चाहने की आवश्यकता नहीं है। पूज्य वच्छगोत्ता सिद्ध पुरुषों में से एक बन गए।

उस समय बहुत से भिक्षु भगवान बुद्ध के दर्शन करने जा रहे थे, और पूज्य वच्छगोत्ता ने दूर से उन भिक्षुओं को देखा, उनके पास जाकर उनसे कहा, 'पूज्य भिक्षुओं, आप कहाँ जा रहे हैं?' 'मित्रों, हम भगवान बुद्ध के दर्शन करने जा रहे हैं।' 'यदि ऐसा है, तो मेरी ओर से भगवान बुद्ध के चरणों की पूजा कीजिए और उन्हें बताइए - 'पूज्यवर, भिक्षु वच्छगोत्ता भगवान बुद्ध के चरणों की पूजा करते हैं और कहते हैं, मैं सिद्ध पुरुष हूँ।' भिक्षु सहमत हुए, भगवान बुद्ध के पास गए, पूजा की, उनके बगल में बैठ गए और कहा, 'पूज्यवर, पूज्य वच्छगोत्ता कहते हैं कि वे भगवान बुद्ध के चरणों की पूजा करते हैं और कहते हैं कि वे सिद्ध पुरुष हैं।' 'भिक्षुओं, मुझे पहले से ही पता था कि पूज्य वच्छगोत्ता सिद्ध पुरुष हैं, मैंने उनके मन में भेद करके यह जान लिया था।' भिक्षुओं, वह बहुत शक्तिशाली है, तीनों ज्ञानों का ज्ञाता है। देवताओं ने भी मुझे इस बारे में बताया है।'

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 8.4दीघनखा सुत्त(74)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध राजगृह के पास गिद्ध शिखर पर्वत पर, सूअर की गुफा में ठहरे हुए थे। तब लोंगनेल्स नामक घुमक्कड़ भगवान बुद्ध के पास गया और वहाँ पहुँचकर उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद वह एक तरफ खड़ा हो गया। वहाँ खड़े-खड़े उसने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गुरु गौतम, मेरा यह मत है कि 'सब कुछ मुझे प्रसन्न नहीं करता।'"

लेकिन हे अग्गिवेसना, तुम्हारा यह विचार— 'मुझे सब कुछ पसंद नहीं है'— क्या यह भी तुम्हें पसंद नहीं है?'

"हे गौतम गुरु, भले ही मेरा यह विचार मुझे भी पसंद हो, फिर भी यह वही रहेगा, यह वही रहेगा।"

"खैर, अग्गिवेसना, दुनिया में ऐसे बहुत से लोग हैं जो कहते हैं, 'यह सब वैसा ही रहेगा, यह सब वैसा ही रहेगा,' फिर भी वे न तो उस विचार को छोड़ते हैं और न ही किसी दूसरे विचार से जुड़े रहते हैं। दुनिया में ऐसे बहुत कम लोग हैं जो कहते हैं, 'यह सब वैसा ही रहेगा, यह सब वैसा ही रहेगा,' और वे न तो उस विचार को छोड़ते हैं और न ही किसी दूसरे विचार से जुड़े रहते हैं।"

कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न ऐसे हैं जिनका मत है कि 'मुझे सब कुछ अच्छा लगता है।' कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न ऐसे हैं जिनका मत है कि 'मुझे सब कुछ अच्छा नहीं लगता।' कुछ ब्राह्मण और ध्यानमग्न ऐसे हैं जिनका मत है कि 'मुझे कुछ अच्छा लगता है; कुछ अच्छा नहीं लगता।'

उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के बारे में जो यह मानते हैं कि 'मुझे सब कुछ प्रिय है': उनका यह दृष्टिकोण भावुकता, बंधन, आनंद, आसक्ति और मोह के निकट है। वहीं, उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के बारे में जो यह मानते हैं कि 'मुझे सब कुछ प्रिय नहीं है': उनका यह दृष्टिकोण भावुकता, बंधनहीनता, आनंदहीनता, आसक्ति और मोहहीनता के निकट है।

यह सुनकर, घुमंतू लॉन्गनेल्स ने भगवान से कहा, "गुरु गौतम मेरे दृष्टिकोण की सराहना करते हैं। गुरु गौतम मेरे दृष्टिकोण की अनुशंसा करते हैं।"

उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के विषय में जो यह मत रखते हैं कि 'एक अंश मुझे भाता है; एक अंश मुझे भाता नहीं है': जो कुछ उन्हें भाता है, उनका दृष्टिकोण भावुकता के निकट, बंधन के निकट, आनंद के निकट, आसक्ति के निकट और आसक्ति के निकट होता है। जो कुछ उन्हें भाता नहीं है, उनका दृष्टिकोण भावुकता रहित होने के निकट, बंधन रहित होने के निकट, आनंद रहित होने के निकट, आसक्ति रहित होने के निकट और आसक्ति रहित होने के निकट होता है।

उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के विषय में जो यह मानते हैं कि 'मुझे सब कुछ अच्छा लगता है': उनमें से एक बुद्धिमान व्यक्ति यह सोचता है कि 'यदि मैं अपने इस विचार को दृढ़ता से पकड़ कर रखूँ कि 'मुझे सब कुछ अच्छा लगता है' और यह कहूँ कि 'केवल यही सत्य है, बाकी सब व्यर्थ है', तो मेरा दो पक्षों से टकराव होगा - एक वह ब्राह्मण या ध्यानी जो यह मानता है कि 'मुझे सब कुछ अच्छा नहीं लगता' और दूसरा वह ब्राह्मण या ध्यानी जो यह मानता है कि 'कुछ मुझे अच्छा लगता है; कुछ मुझे अच्छा नहीं लगता'। मेरा इन दोनों से टकराव होगा। जहाँ टकराव होता है, वहाँ विवाद होता है। जहाँ विवाद होता है, वहाँ कलह होती है। जहाँ कलह होती है, वहाँ झुंझलाहट होती है। जहाँ झुंझलाहट होती है, वहाँ निराशा होती है।' अपने लिए संघर्ष, विवाद, झगड़ा, झुंझलाहट और हताशा की कल्पना करते हुए, वह न केवल उस विचार को त्याग देता है, बल्कि किसी अन्य विचार से भी नहीं जुड़ता। इस प्रकार इन विचारों का त्याग होता है; इस प्रकार इन विचारों का परित्याग होता है।

उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के संबंध में जो यह मानते हैं कि 'मुझे सब कुछ पसंद नहीं है': उनमें से एक बुद्धिमान व्यक्ति यह सोचता है कि 'यदि मैं अपने इस विचार को दृढ़ता से पकड़ कर रखूँ कि 'मुझे सब कुछ पसंद नहीं है', और यह कहूँ कि 'केवल यही सत्य है, बाकी सब व्यर्थ है', तो मेरा दो पक्षों से टकराव होगा - एक वह ब्राह्मण या ध्यानी जो यह मानता है कि 'मुझे सब कुछ पसंद है' और दूसरा वह ब्राह्मण या ध्यानी जो यह मानता है कि 'कुछ मुझे पसंद है; कुछ मुझे पसंद नहीं है'। मेरा इन दोनों से टकराव होगा। जहाँ टकराव होता है, वहाँ विवाद होता है। जहाँ विवाद होता है, वहाँ कलह होती है। जहाँ कलह होती है, वहाँ झुंझलाहट होती है। जहाँ झुंझलाहट होती है, वहाँ निराशा होती है।' अपने लिए संघर्ष, विवाद, झगड़ा, झुंझलाहट और हताशा की कल्पना करते हुए, वह न केवल उस विचार को त्याग देता है, बल्कि किसी अन्य विचार से भी नहीं जुड़ता। इस प्रकार इन विचारों का त्याग होता है; इस प्रकार इन विचारों का परित्याग होता है।

उन ब्राह्मणों और ध्यानियों के संबंध में जो यह मानते हैं कि 'एक अंश मुझे भाता है; एक अंश मुझे भाता नहीं है': उनमें से एक बुद्धिमान व्यक्ति यह विचार करता है कि 'यदि मैं अपने इस विचार को दृढ़ता से धारण कर लूँ कि "एक अंश मुझे भाता है; एक अंश मुझे भाता नहीं है," और यह कहूँ कि "केवल यही सत्य है, बाकी सब व्यर्थ है," तो मेरा दो पक्षों से टकराव होगा - एक वह ब्राह्मण या ध्यानी जो यह मानता है कि "सब कुछ मुझे भाता है" और दूसरा वह ब्राह्मण या ध्यानी जो यह मानता है कि "सब कुछ मुझे भाता नहीं है।" मेरा इन दोनों से टकराव होगा। जहाँ टकराव होता है, वहाँ विवाद होता है। जहाँ विवाद होता है, वहाँ कलह होती है। जहाँ कलह होती है, वहाँ झुंझलाहट होती है। जहाँ झुंझलाहट होती है, वहाँ निराशा होती है।' अपने लिए संघर्ष, विवाद, झगड़ा, झुंझलाहट और हताशा की कल्पना

करते हुए, वह न केवल उस विचार को त्याग देता है, बल्कि किसी अन्य विचार से भी नहीं जुड़ता। इस प्रकार इन विचारों का त्याग होता है; इस प्रकार इन विचारों का परित्याग होता है।

हे अग्गिवेसना, यह शरीर—जो आकार से युक्त है, चार प्राथमिक तत्वों से बना है, माता-पिता से उत्पन्न है, चावल और दलिया से पोषित है, अस्थिरता, रगड़, दबाव, विघटन और विक्षेपण के अधीन है—इसे अस्थिर, तनावपूर्ण, रोग, कैंसर, तीर, पीड़ादायक, कष्टदायक, पराया, विघटन, शून्यता और अनात्म के रूप में देखना चाहिए। जो व्यक्ति शरीर को अस्थिर, तनावपूर्ण, रोग, कैंसर, तीर, पीड़ादायक, कष्टदायक, पराया, विघटन, शून्यता और अनात्म के रूप में देखता है, उसमें शरीर के प्रति कोई इच्छा, शरीर के प्रति आकर्षण और शरीर के पीछे भागने की भावना का त्याग हो जाता है।

तीन प्रकार की भावनाएँ होती हैं: सुखद भावना, दुखदायी भावना और न सुखद न दुखदायी भावना। जब किसी को सुखद भावना का अनुभव होता है, तो उसे न तो दुखदायी भावना का अनुभव होता है और न ही न सुखद न दुखदायी भावना का। उस समय उसे केवल सुखद भावना ही महसूस होती है। जब किसी को दुखदायी भावना का अनुभव होता है, तो उसे न तो सुखद भावना का अनुभव होता है और न ही न सुखद न दुखदायी भावना का। उस समय उसे केवल दुखदायी भावना ही महसूस होती है। जब किसी को न सुखद न दुखदायी भावना का अनुभव होता है, तो उसे न तो सुखद भावना का अनुभव होता है और न ही दुखदायी भावना का। उस समय उसे केवल न सुखद न दुखदायी भावना ही महसूस होती है।

सुखद अनुभूति अस्थिर, कृत्रिम, आश्रित रूप से उत्पन्न, समाप्ति के अधीन, लुप्त होने के अधीन, क्षीण होने के अधीन और समाप्त होने के अधीन होती है। दुखदायी अनुभूति भी अस्थिर, कृत्रिम, आश्रित रूप से उत्पन्न, समाप्ति के अधीन, लुप्त होने के अधीन, क्षीण होने के अधीन और समाप्त होने के अधीन होती है। न सुखद और न दुखदायी अनुभूति भी अस्थिर, कृत्रिम, आश्रित रूप से उत्पन्न, समाप्ति के अधीन, लुप्त होने के अधीन, क्षीण होने के अधीन और समाप्त होने के अधीन होती है।

यह देखकर, श्रेष्ठ जनों का उपदेशित शिष्य सुखदायक अनुभूतियों से विरक्त हो जाता है, दुखदायक अनुभूतियों से विरक्त हो जाता है, और न सुखदायक अनुभूतियों से विरक्त हो जाता है। विरक्त होकर वह वैराग्यवान हो जाता है। वैराग्य से उसे मुक्ति प्राप्त होती है। मुक्ति के साथ ही उसे 'मुक्ति' का ज्ञान प्राप्त होता है। वह समझता है, 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।' इस प्रकार मुक्त मन वाला भिक्षु किसी का पक्ष नहीं लेता, किसी से विवाद नहीं करता। वह संसार में कही गई बातों के आधार पर ही अपने विचार व्यक्त करता है, परन्तु उन पर आसक्ति नहीं रखता।

उस समय पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध के पीछे बैठे उन्हें पंखा कर रहे थे। उनके मन में यह विचार आया, "सचमुच, ऐसा लगता है कि भगवान बुद्ध प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से इन सभी मानसिक गुणों के त्याग के बारे में हमसे कह रहे हैं। सचमुच, ऐसा लगता है कि परम पूजनीय भगवान प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से इन सभी मानसिक गुणों के त्याग के बारे में हमसे कह रहे हैं।" पूज्य सारिपुत्त जब इस प्रकार चिंतन कर रहे थे, तो उनके मन में आसक्ति न होने के कारण मनोभ्रंश मुक्त हो गया। जब लंबी कील वाले घुमक्कड़ में धूल रहित, निष्कलंक धम्म दृष्टि उत्पन्न हुई: "जो कुछ भी उत्पत्ति के अधीन है, वह सब समाप्ति के अधीन है।"

तब लॉन्गनेल्स नामक घुमक्कड़ ने—धम्म को देखकर, धम्म को प्राप्त करके, धम्म को जानकर, धम्म को गहराई से समझकर, अनिश्चितता से परे जाकर, अब और उलझन से मुक्त होकर, निर्भयता प्राप्त करके, गुरु के संदेश के संबंध में दूसरों से स्वतंत्र होकर—भगवान बुद्ध से कहा: "महान, गुरु गौतम! महान! जैसे कोई उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दे, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दे, खोए हुए को रास्ता दिखा दे, या अंधेरे में दीपक ले जाए ताकि देखने वाले आकृतियाँ देख सकें, उसी प्रकार गुरु गौतम ने— अनेक तर्क-वितर्कों के माध्यम से—धम्म को स्पष्ट किया है। मैं गुरु गौतम की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षुओं के समुदाय की शरण में जाता हूँ। गुरु गौतम मुझे आज से जीवन भर के लिए एक गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें, जिसने उनकी शरण ली है।"5

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 8.5मगंडिया सुत्त(75)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध कुरुओं के देश में कम्मसधम्म नामक एक छोटे से गाँव में रहते थे। वे भारद्वाज वंश के एक ब्राह्मण की अग्नि कुटिया में सूखी घास पर सोए। सुबह, भगवान बुद्ध ने वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर कम्मसधम्म गाँव में भिक्षा मांगने गए। भिक्षा मांगने के बाद और भोजन करने के बाद, भगवान बुद्ध एक विशेष वन क्षेत्र में गए और एक वृक्ष की जड़ में बैठकर दिन व्यतीत किया।

भ्रमणशील तपस्वी मगंदिया व्यायाम के लिए टहलते हुए भारद्वाज वंश के ब्राह्मण की अग्नि कुटिया में प्रवेश किया। कुटिया में सूखी घास बिछी देखकर उन्होंने कहा, 'हे भारद्वाज, यह सूखी घास किसके लिए बिछाई गई है? मुझे लगता है यह किसी संन्यासी का बिस्तर है।' 'हे मगंदिया, यह शाक्यों वंश के संन्यासी गौतम का बिस्तर है। वे शाक्यों वंश से विमुख होकर गए हैं। उनकी प्रसिद्धि ऐसी है कि वे परिपूर्ण, सत्यात्मा, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण हैं। वे संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वाले लोगों को वश में करने में अद्वितीय हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध और धन्य हैं।' 'हे भारद्वाज, हमने कुछ ऐसा देखा जो हमें नहीं देखना चाहिए था, यह मानव जाति के संहारक गौतम का बिस्तर है।' 'मगंडिया, अपने शब्दों पर ध्यान दो, अच्छे गौतम के पास बहुत से बुद्धिमान योद्धा, ब्राह्मण, गृहस्थ और संन्यासी हैं, जो श्रेष्ठ शिक्षा में प्रसन्न और संयमित हैं और पुण्य में स्थापित हैं।' 'भारद्वाज, मैं उस अच्छे गौतम से मिलूंगा और उन्हें स्वयं ये शब्द बताऊंगा कि संन्यासी गौतम मानवता का संहारक है। इसका क्या कारण है? हमारे शास्त्रों में ऐसा ही लिखा है।' 'यदि अच्छे मगंडिया को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, तो मैं संन्यासी गौतम को यह बात बता दूंगा।' 'चिंता मत करो, अच्छे भारद्वाज, अगर वह पूछे तो बता देना।'

भगवान बुद्ध ने अपने दिव्य तुल्य श्रवण शक्ति से, जो मनुष्य से परे है, मगंदिया नामक एकांतवासी तपस्वी और भारद्वाज वंश के ब्राह्मण के बीच हुई इस बातचीत को सुना। शाम को भगवान बुद्ध एकांतवास से उठे और भारद्वाज वंश के ब्राह्मण की अग्नि कुटिया के पास गए। कुटिया में प्रवेश करके वे तैयार आसन पर बैठ गए। भारद्वाज वंश के ब्राह्मण ने भगवान बुद्ध के पास आकर उन्हें प्रणाम किया, अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान बुद्ध ने भारद्वाज वंश के ब्राह्मण से पूछा, 'क्या भारद्वाज और मगंदिया नामक एकांतवासी तपस्वी के बीच घास के इस फैलाव के विषय में कोई बातचीत हुई थी?' यह पूछे जाने पर भारद्वाज वंश के ब्राह्मण कांप उठे और उनके रोंगटे खड़े हो गए। उन्होंने कहा, 'यह बात हम गौतम बुद्ध को बताना चाहते थे, और गौतम बुद्ध के बताने से पहले ही हम यह बात बता देंगे।' जब यह बातचीत चल रही थी, तभी भ्रमणशील तपस्वी मगंदिया, जो व्यायाम के लिए टहल रहे थे, भारद्वाज वंश के ब्राह्मण की अग्नि कुटिया में प्रवेश कर गए और भगवान बुद्ध के पास पहुँचे। उन्होंने भगवान बुद्ध से मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए।

तब भगवान बुद्ध ने भ्रमणशील तपस्वी मगंदिया को संबोधित करते हुए कहा, 'मगंदिया, आँख रूपों की शौकीन होती है, रूपों में मग्न रहती है और रूपों में आनंद लेती है, तथागत की आँख वश में और सुरक्षित होती है। वे आँख की रक्षा और उसे नियंत्रित करना सिखाते हैं। क्या इसी कारण मगंदिया ने कहा कि संन्यासी गौतम मानवता का संहारक हैं?' 'मैंने कहा कि संन्यासी गौतम मानवता का संहारक हैं, क्योंकि मैंने उनके पलंग की जाँच की।' ... 'मगंदिया, कान ध्वनियों के शौकीन होते हैं, नाक गंधों की शौकीन होती है, जीभ स्वादों की शौकीन होती है, स्वादों में मग्न रहती है और स्वादों में आनंद लेती है। तथागत की जीभ वश में और सुरक्षित होती है। वे जीभ की रक्षा और उसे नियंत्रित करना सिखाते हैं। क्या इसी कारण मगंदिया ने कहा कि संन्यासी गौतम मानवता का संहारक हैं?' 'मैंने कहा कि संन्यासी गौतम मानवता का संहारक हैं, क्योंकि मैंने उनके पलंग की जाँच की।' 'मगंदिया, शरीर, स्पर्शों का शौकीन है, ...मन विचारों का शौकीन है, विचारों में मग्न रहता है और विचारों से आनंदित होता है। तथागत का मन वश में और संरक्षित है। वह मन की रक्षा और उसे नियंत्रित करना सिखाता है। क्या इसी कारण मगंदिया ने कहा कि संन्यासी गौतम मानवता का संहारक है?' 'मैंने कहा कि संन्यासी गौतम मानवता का संहारक है, उनके पलंग की जाँच करते हुए।'

'मगंदिया, मनुष्य को नेत्र चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले, मनभावन, सुखद रूप और कामुकता जगाने वाले रूप उपलब्ध हैं। साथ ही, वह रूपों के उद्भव, क्षय, तृप्ति, खतरे और उनसे मुक्ति को यथावत जानता है। वह रूपों की लालसा और प्यास को शांत करता है और मन को आंतरिक रूप से शांत करके स्थिर रहता है। इस पर मगंदिया का क्या कहना है?' 'हे गौतम, मुझे कुछ नहीं कहना।' मगंदिया, मनुष्य को कान चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले, मनभावन, सुखद ध्वनियाँ, नाक चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली गंध, जीभ चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले स्वाद और शरीर चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले स्पर्श उपलब्ध हैं, जो प्रेम और कामुकता जगाते हैं। साथ ही, वह स्पर्शों के उद्भव, क्षय, तृप्ति, खतरे और उनसे मुक्ति को यथावत जानता है। वह स्पर्शों की लालसा और प्यास को शांत करता है और मन को आंतरिक रूप से शांत करके स्थिर रहता है। इस पर मगंदिया को क्या कहना है?' 'हे गौतम, मुझे कुछ नहीं कहना।'

मागंदिया, जब मैं गृहस्थ था, तब मुझे पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों की भरपूर उपलब्धता थी। जैसे कि आँखों से दिखने वाले मनभावन रूप जो स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं, मनभावन ध्वनियाँ, मनभावन सुगंध, मनभावन स्वाद और शरीर से दिखने वाले मनभावन

स्पर्श जो स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं। मुझे तीन ऋतुओं के लिए तीन महल दिए गए थे, एक वर्षा ऋतु के लिए, एक शीत ऋतु के लिए और एक ग्रीष्म ऋतु के लिए। मागंदिया, मैंने वर्षा ऋतु के महल में चार महीने बिताए, पुरुषों के बिना और संगीत से सुसज्जित। किसी भी कारण से नीचे की मंजिल पर नहीं उतरा। इस दौरान मैंने इंद्रिय इच्छाओं के उत्पन्न होने, समाप्त होने, संतुष्टि, खतरे और उनसे मुक्ति का ज्ञान प्राप्त किया। मैंने इंद्रिय इच्छाओं की लालसा, जलन और प्यास को दूर किया और मन और निवास को आंतरिक रूप से शांत किया। मैं देखता हूँ कि अन्य प्राणी कामुकता से तृप्त नहीं होते, फिर भी उसका भोग करते हुए उसी से भस्म हो जाते हैं। मैं उनसे ईर्ष्या नहीं करता और न ही उसमें आनंद लेता हूँ। हे मगंदिये, मैं उस आसक्ति में रहता हूँ जो कामुकता से दूर, पापमय विचारों से दूर और दिव्य सुख से भी परे है, और उससे निम्न किसी भी चीज़ से ईर्ष्या या प्रसन्नता नहीं करता।

मगंदिया, गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र के समान, अत्यंत धनी और संसाधनों से संपन्न, पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण था। जैसे कि नेत्र-चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले मनभावन रूप, जो स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं; मनभावन ध्वनियाँ, मनभावन सुगंध, मनभावन स्वाद और मनभावन स्पर्श, जो देह-चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले मनभावन और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं। वह शरीर, वाणी और मन से उचित आचरण करता था। मृत्यु के बाद, वह वंशवृद्धि करने के लिए गया, तैंतीस देवताओं के अनुचरों के साथ जन्म लिया और नंदना वन में अप्सराओं की देखरेख में पाँच प्रकार के स्वर्गीय इंद्रिय सुखों का अनुभव किया। फिर उसने एक गृहस्थ को पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों का अनुभव करते हुए देखा, जो उसे भरपूर मात्रा में उपलब्ध कराए गए थे। मगंदिया, क्या तुम सोचते हो कि देवताओं का यह पुत्र, जो स्वर्ग के पांचों सुखों का भोग कर अप्सराओं से घिरा हुआ है, उस गृहस्थ या गृहस्थ के पुत्र से ईर्ष्या करेगा और पांचों प्रकार के सांसारिक सुखों के लिए वापस लौटेगा?' 'नहीं, हे गौतम। स्वर्ग के सांसारिक सुख मनुष्य के सांसारिक सुखों से श्रेष्ठ और अधिक उत्तम हैं।' 'इसी प्रकार, मगंदिया, जब मैं गृहस्थ था, तब मुझे पांचों प्रकार के सांसारिक सुखों का भरपूर अनुभव प्राप्त था। जैसे कि आंखों से दिखने वाले मनभावन रूप जो स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं। मनभावन ध्वनियां, मनभावन गंध, मनभावन स्वाद और शरीर से दिखने वाले मनभावन स्पर्श जो स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं। तब मैंने कामुकता के वास्तविक स्वरूप को जाना, उसके उदय, अस्त, संतुष्टि, खतरे और उससे मुक्ति को भी।' फिर मैंने कामुकता की लालसा, जलन और प्यास को दूर किया और मन और शरीर को आंतरिक रूप से शांत किया। मैं देखता हूँ कि अन्य प्राणी कामुकता से तृप्त नहीं होते, बल्कि उसका सेवन करते हुए उससे भस्म और झुलस जाते हैं। मैं उनसे ईर्ष्या नहीं करता और न ही उसमें आनंद लेता हूँ। हे मगंदिये, मैं कामुकता से दूर, पापमय विचारों से दूर, और यहाँ तक कि दिव्य सुख से भी परे, उस आसक्ति में रहता हूँ और उससे निम्न किसी भी चीज़ से ईर्ष्या या प्रसन्नता नहीं करता।

मगंदिया, एक कुष्ठ रोगी, जिसकी त्वचा रोगग्रस्त, सड़ी हुई और कृमिग्रस्त थी, अपने नाखूनों से त्वचा को खरोंचता था और उसके खुले घाव और चोटें होती थीं। फिर वह उन घावों को अंगारों के गड्ढे में जलाता था और उसके मित्र, साथी और रक्त संबंधी डॉक्टर को बुलाकर उसका इलाज करवाते थे। उस उपचार के बाद वह अपने कुष्ठ रोग से मुक्त हो जाता था और स्वस्थ होकर जहाँ चाहे वहाँ जा सकता था। फिर वह एक अन्य कुष्ठ रोगी को देखता जिसकी त्वचा रोगग्रस्त, सड़ी हुई और कृमिग्रस्त थी, और वह राहत पाने के लिए उसे खरोंचता था और घावों और चोटों को अंगारों के गड्ढे में जलाता था। क्या वह उस कुष्ठ रोगी से, या अंगारों के गड्ढे से, या दिए गए उपचार से ईर्ष्या करेगा?' 'नहीं, हे गौतम, जब वह रोगग्रस्त था, तब उपचार आवश्यक था। जब वह रोग से मुक्त हो गया, तो और दवा की आवश्यकता नहीं है।' 'इसी प्रकार, मगंदिया, जब मैं गृहस्थ था, तब मुझे पाँचों प्रकार के इंद्रिय सुखों की पर्याप्त उपलब्धता थी।' नेत्र चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले मनभावन रूप स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं। देह चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले मनभावन ध्वनियाँ, मनभावन गंध, मनभावन स्वाद और मनभावन स्पर्श स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं। इसी बीच मैंने कामुकता के उदय, अस्त, संतुष्टि, खतरे और उससे मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में जाना। मैंने कामुकता की लालसा, जलन और प्यास को दूर किया और नष्ट कर दिया, मन को आंतरिक रूप से शांत किया। मैं अन्य प्राणियों को कामुकता में लिप्त देखता हूँ, जो उससे तृप्त नहीं होते, बल्कि उसके द्वारा भस्म और झुलसते हैं। मैं उनसे ईर्ष्या नहीं करता और न ही उसमें आनंद लेता हूँ। हे मगंदिया, मैं उस आसक्ति में रहता हूँ जो कामुकता से दूर है, दोष के विचारों से दूर है, और यहाँ तक कि दिव्य सुख से भी परे है, और उससे निम्न किसी भी चीज़ से ईर्ष्या या आनंद नहीं लेता।

मगंदिया, एक कुष्ठ रोगी जिसकी त्वचा रोगग्रस्त, सड़ी हुई और कृमिग्रस्त थी, उस पर कीड़े लगे हुए थे, वह अपने नाखूनों से त्वचा को खरोंचता था, जिससे खुले घाव और चोटें लग जाती थीं, और उन घावों को अंगारों के गड्ढे में जलाता था। उसके मित्र, सहकर्मी और रक्त संबंधी उसके इलाज के लिए डॉक्टर को बुलाते थे। डॉक्टर द्वारा इलाज किए जाने पर वह कुष्ठ रोग से मुक्त हो जाता था और स्वस्थ होकर जहाँ चाहे वहाँ जा सकता था। फिर दो बलवान पुरुष आते और उसे घसीटकर अंगारों के जलते हुए गड्ढे में ले जाते। 'मगंदिया, क्या उसका शरीर उससे दूर भागने के लिए छटपटाता नहीं था?' 'जी, हे गौतम, उसका शरीर उससे दूर भागने के लिए छटपटाता था। इसका क्या कारण है? हे गौतम, आग से संपर्क करना अप्रिय होता है, इसकी अत्यधिक गर्मी से बहुत जलन होती है।' 'मगंदिया, आग से संपर्क करना अप्रिय है, गर्मी पैदा करती है और उसे जलन होती है, केवल अभी, या पहले भी संपर्क करना अप्रिय था, गर्मी पैदा करती थी और जलन पैदा करती थी?' 'हे गौतम, अभी और पहले भी आग से संपर्क करना अप्रिय था, गर्मी पैदा करती थी और जलन पैदा करती थी।'

कुष्ठ रोगी की त्वचा रोगग्रस्त और सड़ी हुई थी, उस पर कीड़े लगे हुए थे, वह नाखूनों से अपनी त्वचा को खरोंचता था और उसके शरीर पर खुले घाव थे। विकृत मानसिक क्षमता के कारण, उसे अग्नि में सुख का अनुभव होता था। यह विकृत धारणा का परिणाम है। 'मगंदिया, इसी प्रकार, अतीत में भी कामुक संपर्क अप्रिय था, जिससे अत्यधिक गर्मी और जलन उत्पन्न होती थी, भविष्य में भी कामुक संपर्क अप्रिय होगा, जिससे अत्यधिक गर्मी और जलन उत्पन्न होगी, और वर्तमान में भी कामुक संपर्क अप्रिय है, जिससे अत्यधिक गर्मी और जलन उत्पन्न होती है। मगंदिया, ये प्राणी कामुक लोभ से मुक्त नहीं हैं, कामुक लोभ से नष्ट हो गए हैं, कामुक चिंताओं से ग्रस्त हैं, इनकी मानसिक क्षमता विकृत है और ये कामुक संपर्क को सुखद अनुभूति के रूप में अनुभव करते हैं।

मगंदिया, कुष्ठ रोगी चाहे कितनी भी खुजली करे, कीड़ों से सड़ी हुई त्वचा को खरोंचे, घाव बनाए और उन्हें अंगारों के गड्ढे में जलाए। फिर भी वे घाव ठीक नहीं होते, बल्कि और भी बदतर होते जाते हैं। सड़न और दुर्गंध बढ़ती ही जाती है। उसे जो भी संतुष्टि मिलती है, वह घावों को खरोंचने और उन्हें जलाने से ही मिलती है। इसी प्रकार, मगंदिया, कामुक लालसा से मुक्त न होने वाले प्राणी, कामुक लालसा से ग्रस्त होकर, कामुक चिंताओं से परेशान होकर, कामुक इच्छाओं में लिप्त होते हैं और इस तरह से अपनी कामुक लालसा और कामुक चिंताओं को बढ़ाते हैं। उन्हें जो थोड़ी-बहुत संतुष्टि मिलती है, वह पांच प्रकार के इंद्रिय सुखों से ही मिलती है।

मगंदिया, क्या तुमने कभी किसी राजा या राजा के प्रधान मंत्री को देखा या सुना है, जो पाँचों प्रकार के इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण और परिपूर्ण हो? क्या तुमने कभी ऐसे व्यक्ति को देखा है जो उन इंद्रिय, लोभ, तृप्ति और प्यास का त्याग किए बिना आंतरिक रूप से संतुष्ट हो? क्या तुमने कभी ऐसे किसी व्यक्ति को देखा है, या भविष्य में देखोगे?' 'नहीं, हे गौतम।' 'अच्छा! मगंदिया, तुमने सही समझा। मैंने भी न तो कभी ऐसे किसी व्यक्ति को देखा है और न ही उसके बारे में सुना है। और न ही कभी सुनूंगा। मगंदिया, जो भी संन्यासी या ब्राह्मण अतीत में रहे हों, वर्तमान में रह रहे हों या भविष्य में रहेंगे, उन्होंने हमेशा इंद्रिय सुख की प्यास और तृप्ति का त्याग किया है, करते हैं और करते रहेंगे, और आंतरिक रूप से संतुष्ट होते रहे हैं। इंद्रिय सुख, उसके उत्पन्न होने, उसके नष्ट होने, उसकी संतुष्टि, उसके खतरों और उससे मुक्ति के वास्तविक स्वरूप को जानकर।'

उस समय भगवान बुद्ध ने यह गंभीर वचन कहा।

'स्वास्थ्य ही सर्वोच्च लाभ है, मृत्यु ही सर्वोच्च आनंद है।'
अष्टांगिक मार्ग ही शांति और अमरता का मार्ग है।'
यह सुनकर घुमंतू तपस्वी मगंदिया ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम बुद्ध के ये वचन उत्तम हैं, जैसे स्वास्थ्य सर्वोच्च लाभ है और मृत्यु सर्वोच्च आनंद है। मैंने भी घुमंतू तपस्वियों के गुरुओं से ये वचन सुने हैं।"

'स्वास्थ्य ही सर्वोच्च लाभ है, निर्वाण ही सर्वोच्च आनंद है। मगंदिया, यह स्वास्थ्य क्या है और यह निर्वाण क्या है?' यह पूछे जाने पर मगंदिया ने अपने शरीर और हाथों को सहलाते हुए कहा, 'यह स्वास्थ्य और निर्वाण यहीं है। हे गौतम, मैं अब स्वस्थ और रोगमुक्त हूँ।'

'मगंदिया, जन्म से अंधे व्यक्ति की तरह, अशुद्ध और शुद्ध रूपों को नहीं देख सकता, नीले, पीले, लाल या भूरे रूपों को नहीं देख सकता, सम और विषम रूपों को नहीं देख सकता, नक्षत्रों, चंद्रमा और सूर्य को नहीं देख सकता। वह एक दृष्टिवान व्यक्ति को यह कहते हुए सुनेगा, "सफेद वस्त्र कितना अद्भुत है, शुद्ध और निर्मल।" तब वह सफेद वस्त्र की खोज में निकल पड़ेगा। एक व्यक्ति उसे धोखा देगा और तेल से सना हुआ मोटा वस्त्र देकर कहेगा, "हे भगवान, यह सफेद, शुद्ध और निर्मल वस्त्र है।" वह उसे स्वीकार कर लेगा, पहन लेगा और प्रसन्न होकर कहेगा, "सफेद वस्त्र कितना अद्भुत है, शुद्ध और निर्मल।" 'मगंदिया, क्या वह अंधा व्यक्ति, जो जानता और देखता है, इस वस्त्र को स्वीकार करेगा, पहनेगा और प्रसन्नता के शब्द कहेगा?' हे भगवान, वह जन्म से अंधा व्यक्ति उस तेल से सने मोटे वस्त्र को न जानते और न देखते हुए भी स्वीकार करेगा, पहनेगा और प्रसन्नता के शब्द कहेगा। वह दृष्टिवान व्यक्ति पर विश्वास रखते हुए प्रसन्नता के ये शब्द कहेगा, "सफेद वस्त्र कितना अद्भुत है, शुद्ध और निर्मल।" 'मगंदिया, उसी प्रकार अन्य संप्रदायों के विचरण करने वाले तपस्वी अंधे होते हैं, वे स्वास्थ्य और मृत्यु को न तो जानते हैं और न ही देखते हैं, वे यह श्लोक कहेंगे।'

'स्वास्थ्य ही सर्वोच्च लाभ है, मृत्यु ही सर्वोच्च आनंद है।'
मगंदिया, यह श्लोक अतीत के सही मायने में प्रबुद्ध सिद्ध पुरुषों द्वारा कहा गया था: "स्वास्थ्य सर्वोच्च लाभ है, मृत्यु सर्वोच्च आनंद है, अष्टांगिक मार्ग अमरता का शांतिपूर्ण मार्ग है।"

अब यह साधारण व्यक्ति का श्लोक बन गया है। मगंदिया, यह शरीर अस्वस्थता, फोड़े, कष्टों और बीमारियों का जन्मस्थान है, और तुम इसे स्वस्थ और मृत्यु कहते हो। तुम्हें स्वस्थता को जानने और मृत्यु को देखने के लिए श्रेष्ठ दृष्टि रखनी चाहिए। (* 1)

मैं गौतम जी की शिक्षा से प्रसन्न हूँ: क्या गौतम जी मुझे ऐसा उपदेश दे सकते हैं जिससे मैं स्वास्थ्य को जान सकूँ और मृत्यु को देख सकूँ? मगंदिया, जन्म से अंधे व्यक्ति की तरह, अशुद्ध और शुद्ध रूपों को नहीं देख पाता। वह नीले, पीले, लाल या भूरे रूपों को नहीं देख पाता। सम और विषम रूपों को नहीं देख पाता और नक्षत्रों, चंद्रमा और सूर्य को भी नहीं देख पाता। उसके मित्र, सहकर्मी और रक्त संबंधी उसकी आँखों का इलाज करने के लिए सर्जन को बुलाते हैं। इलाज और दवा लेने के बाद भी उसकी दृष्टि वापस नहीं आती। मगंदिया, क्या उस सर्जन को केवल थकान ही नहीं मिलेगी?' 'जी हाँ, गौतम जी।' 'मगंदिया, जिस प्रकार मैंने तुम्हें स्वास्थ्य और मृत्यु का उदाहरण देकर उपदेश दिया, फिर भी तुम उसे नहीं जान पाते और देख नहीं पाते, और मेरे लिए तो यह केवल थकान ही है।'

'मैं गौतम जी की शिक्षा से प्रसन्न हूँ: क्या गौतम जी मुझे ऐसी शिक्षा दे सकते हैं जिससे मैं स्वास्थ्य को जान सकूँ और मृत्यु को देख सकूँ?' 'मगंदिया, जन्म से अंधे व्यक्ति की तरह, अशुद्ध और शुद्ध रूपों को नहीं देख पाता। वह नीले, पीले, लाल या भूरे रूपों को नहीं देख पाता, न ही सम और विषम रूपों को। वह नक्षत्रों, चंद्रमा और सूर्य को नहीं देख पाता। वह एक दृष्टिवान व्यक्ति को यह कहते हुए सुनता, "सफेद वस्त्र कितना अद्‌भुत है, शुद्ध और निर्मल।" वह सफेद वस्त्र की खोज में निकल पड़ता है। तब एक व्यक्ति उसे तेल से सना हुआ मोटा वस्त्र देकर धोखा देता है और कहता है, "हे भगवान, यह सफेद, शुद्ध और निर्मल वस्त्र है।" वह उसे स्वीकार कर लेता है, पहन लेता है और प्रसन्न होकर कहता है, "सफेद वस्त्र कितना अद्‌भुत है, शुद्ध और निर्मल।" उसके मित्र, सहकर्मी और रक्त संबंधी उसकी आँखों का उपचार करने के लिए एक सर्जन को बुलाते हैं। वह सर्जन उसका उपचार करता है, उसे सिर और पेट के लिए जुलाब देता है और नाक का उपचार करता है। तब उसकी दृष्टि वापस आ जाती है।' कुछ ही क्षण बाद, जब उसकी दृष्टि वापस आ जाती है, तो वह तेल से सने मोटे वस्त्र के प्रति अपने आसक्ति और लोभ को त्याग देता है, और उसे देने वाले को शत्रु मानकर उसे जान से मारने का भी विचार करता है: "सचमुच, इस व्यक्ति ने मुझे इस तेल से सने मोटे वस्त्र से लंबे समय से धोखा दिया है। वह कहता है, 'हे भगवान, यह तो अद्‌भुत सफेद वस्त्र है, शुद्ध और बेदाग।' मगंदिया, जिस प्रकार मैंने तुम्हें स्वस्थ अवस्था और निर्गमन का उदाहरण देकर सिखाया है, तुम उसे जानते और देखते हो, और उस दृष्टि के उदय के साथ ही तुम पाँचों वश में रहने वाले तत्वों के प्रति अपने आसक्ति और लोभ को त्याग देते हो। सचमुच, लंबे समय से मैं इस मन से धोखा खा रहा हूँ। मैं पदार्थ को धारण कर रहा हूँ। मैं भावनाओं को धारण कर रहा हूँ। मैं धारणाओं को धारण कर रहा हूँ। मैं संकल्पों को धारण कर रहा हूँ और मैं चेतना को धारण कर रहा हूँ। उस धारण के कारण अस्तित्व है, अस्तित्व के कारण जन्म है। जन्म के कारण क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता और पीड़ा है—इस प्रकार अप्रियता के पूरे समूह का उदय होता है।"

मैं गौतम गौतम की शिक्षा से प्रसन्न हूँ, क्या मुझे ऐसी शिक्षा दी जा सकती है जिससे मैं इस आसन से प्रसन्न होकर उठूँ? हे मगंडिया, अच्छे मित्रों की संगति करो। अच्छे मित्रों की संगति करने से तुम्हें अच्छी शिक्षा मिलती है। अच्छी शिक्षा सुनने से तुम उस शिक्षा के अनुसार जीवन जीने की विधि का अनुसरण करते हो। शिक्षा के अनुसार जीवन जीने की विधि का अनुसरण करने से तुम स्वयं अस्वस्थता, फोड़े, बाण और बाण का अनुभव करते हो। यहीं पर अस्वस्थता, फोड़े, बाण और बाण का पूर्णतः निवारण हो जाता है। धारण का त्याग होने पर अस्तित्व का त्याग हो जाता है, अस्तित्व के त्याग होने पर जन्म का त्याग हो जाता है। जन्म के त्याग होने पर क्षय, मृत्यु, शोक, विलाप, अप्रियता और कष्ट का त्याग हो जाता है। इस प्रकार, सभी अप्रियताओं का अंत हो जाता है।

तब भ्रमणशील तपस्वी मगंदिया ने भगवान बुद्ध से कहा, "अब मैं समझ गया, पूज्यवर, ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज फिर से स्थापित हो गई हो। जैसे कोई ढकी हुई चीज प्रकट हो गई हो। जैसे किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया गया हो। जैसे अंधकार में दृष्टिहीन लोगों के लिए प्रकाशमान दीपक जलाया गया हो ताकि वे रूप देख सकें। भगवान बुद्ध ने शिक्षा को अनेक तरीकों से समझाया है। अब मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में मुझे दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त हो।" "मगंदिया, जो कोई भी दूसरे संप्रदाय का है और इस मार्गदर्शन में दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त करना चाहता है, उसे चार महीने की परीक्षा में रहना चाहिए। चार महीने बाद, यदि भिक्षु संतुष्ट हों, तो वे दीक्षा और उच्च दीक्षा प्रदान करेंगे। यह व्यक्ति के विकास को देखने के लिए है।" आदरणीय महोदय, यदि किसी अन्य संप्रदाय के भिक्षु को चार महीने की परिवीक्षा अवधि होती है, तो मुझे चार वर्ष की परिवीक्षा अवधि होगी। जब भिक्षु संतुष्ट हो जाएं, तो मुझे दीक्षा और उच्च दीक्षा प्रदान करें। मगंदिया ने दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त की और उच्च दीक्षा के शीघ्र ही, आदरणीय मगंदिया भीड़ से अलग होकर धर्मप्रचार में तल्लीन हो गए। उन्होंने यहीं और इसी क्षण उस सर्वोच्च बंधन को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए कुल के पुत्र गृहस्थी छोड़कर बेघर हो जाते हैं। वे जानते थे कि जन्म का नाश हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना चाहिए वह कर लिया गया है, अब और कुछ चाहने की आवश्यकता नहीं है। आदरणीय मगंदिया पूर्ण पुरुष बन गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 8.6 संदका सुत्त(76)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध कोसंबी में गोशिता के मठ में निवास करते थे। उस समय संदक नामक एक विचरणशील तपस्वी अंजीर के पेड़ों के एक उपवन में लगभग पाँच सौ विचरणशील तपस्वियों के एक बड़े समुदाय के साथ रहते थे। तब पूज्य आनंद एकांतवास से उठकर भिक्षुओं से बोले, 'मित्रों, आइए देवकाता सरोवर पर गुफाएँ देखने चलें।' भिक्षुओं ने सहमति जताई और पूज्य आनंद उन भिक्षुओं के साथ देवकाता सरोवर की ओर चल पड़े। उस समय संदक विचरणशील तपस्वियों के एक बड़े समूह के साथ बैठे हुए थे, जो शोर मचाते हुए तरह-तरह की बचकानी बातें कर रहे थे। जैसे राजाओं, लुटेरों, प्रधानमंत्रियों, सेना, भय, झगड़े, खाने-पीने की चीजों, कपड़ों, बिस्तरों, फूलों और सुगंधों, रिश्तों, वाहनों, गांवों, बस्तियों, कस्बों और राज्यों, महिलाओं और नायकों, गली के कोनों और कुएँ पर गपशप, मरे हुए और चले गए लोगों के बारे में, दुनिया और सागर की उत्पत्ति और घटी और न घटी घटनाओं के बारे में तरह-तरह की बातें। घुमंतू तपस्वी संदक ने दूर से पूज्य आनंद को आते देखा और सभा को शांत करते हुए कहा: 'महोदय, शोर कम करें, इतना शोर न करें। तपस्वी गौतम के शिष्य आनंद आ रहे हैं। कोसंबी में रहने वाले गौतम के शिष्यों में से यह एक हैं। ये पूज्य साधु कम शोर करते हैं, कम शोर करना सीखते हैं और दूसरों को भी कम शोर करना सिखाते हैं।' यह सोचकर कि इस सभा में शोर कम है, शायद उन्होंने पास आने का सोचा होगा। तभी वे भ्रमणशील तपस्वी शांत हो गए। आदरणीय आनंद, भ्रमणशील तपस्वी संदक के पास पहुँचे। भ्रमणशील तपस्वी संदक ने आदरणीय आनंद से कहा, "हे आनंद, आइए! बहुत समय बाद आदरणीय आनंद ने आने का मन बनाया है। हे आनंद, बैठिए, आसन तैयार है।" आदरणीय आनंद तैयार आसन पर बैठ गए, और भ्रमणशील तपस्वी भी एक तरफ नीची आसन पर बैठ गए।

तब पूज्य आनंद ने एक तरफ बैठे हुए विचरणरत तपस्वी संदक को संबोधित करते हुए कहा, "संदक, इस समय आप किस विषय पर चर्चा कर रहे थे और आपका विषय क्या था?" "हे आनंद, आइए उसी विषय पर चर्चा करें जिस पर हम अभी बैठे हैं। हे आनंद, आपसे ऐसी चर्चाएँ बहुत कम सुनने को मिलती हैं। हम आपके गुरु के उपदेशों के बारे में कुछ सुनना चाहते हैं।" "यदि ऐसा है, तो संदक, ध्यानपूर्वक सुनिए।" विचरणरत तपस्वी संदक सहमत हो गए और पूज्य आनंद ने कहा, "संदक, जो सर्वज्ञानी और सर्वदर्शी हैं, जो पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध हैं, उन्होंने चार ऐसे पवित्र जीवन बताए हैं जिन्हें नहीं जीना चाहिए और चार अन्य असंतोषजनक पवित्र जीवन बताए हैं जिन्हें नहीं जीना चाहिए।" 'हे आनंद, ज्ञानवान और प्रत्यक्षदर्शी, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान द्वारा घोषित वे चार पवित्र जीवन कौन से हैं जिन्हें नहीं जीना चाहिए, जिन्हें ज्ञानवान और प्रत्यक्षदर्शी, यदि संभव हो तो नहीं जीते और यदि जीते भी हैं तो उन्हें यह विश्वास नहीं होता कि यह पुण्य का साधन है?'

संदक नामक एक गुरु इस मत का समर्थन करते हुए कहते हैं: दान, यज्ञ और भेंट का कोई फल नहीं होता। अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल नहीं होता, न यह संसार है, न परलोक, न माता है, न पिता। न कोई स्वतः उत्पन्न प्राणी है, न कोई संन्यासी और न ब्राह्मण, जो स्वयं इस संसार और परलोक को जानकर इसकी घोषणा करते हैं। मनुष्य चार मूल तत्वों से बना है और जब उसकी मृत्यु होती है, तो पृथ्वी पृथ्वी में, जल जल में, अग्नि अग्नि में और वायु वायु में विलीन हो जाती है। मानसिक शक्तियाँ आकाश में विलीन हो जाती हैं। पाँच लोग शव को सजी हुई कुर्सी पर रखकर श्मशान तक ले जाते हैं, जहाँ अवशेष धूसर अस्थियाँ रह जाती हैं। जली हुई राख दान में दी जाती है। जो कोई कहता है कि कुछ है, वह व्यर्थ की बातें करता है। मूर्ख और बुद्धिमान दोनों ही मृत्यु के बाद नष्ट हो जाते हैं, और मृत्यु के बाद कुछ भी नहीं रहता।

संदका नामक एक बुद्धिमान व्यक्ति चिंतन करते हुए कहता है, "ये अच्छे गुरु इस मत का समर्थन करते हैं और घोषणा करते हैं कि दान-पुण्य का कोई फल नहीं मिलता और मृत्यु के बाद कुछ भी नहीं है। यदि इन गुरुओं के वचन सत्य हैं, तो मुझे कुछ भी नहीं करना चाहिए। मुझे पवित्र जीवन नहीं जीना चाहिए। मृत्यु के बाद मेरे गुरु और मैं एकांतवास में समान हो जाते हैं। मैं, जो इस पर विश्वास भी नहीं करता, मृत्यु के बाद हम दोनों का नाश हो जाता है।" ये अच्छे गुरु अनावश्यक रूप से नग्न रहे और सिर पर गाँठ बाँधे, खड़े-खड़े तपस्या की और सिर और दाढ़ी के बाल नोचे। जहाँ तक मेरी बात है, मैं पत्नी और बच्चों से घिरा रहा, कश्मीरी वस्त्र पहनने का आनंद लिया, फूल और सुगंध बाँटे और सोना-चाँदी कमाया। मृत्यु के बाद मैं इन अच्छे गुरुओं के समान हो जाता हूँ। यह जानते हुए और यह देखते हुए कि मुझे इन गुरुओं के अधीन पवित्र जीवन जीना चाहिए, जो यह जानता है कि यह पवित्र जीवन नहीं है, वह इससे विमुख हो जाता है। संदाका, यह पहला पवित्र जीवन है जिसे जानने और देखने वाले, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने घोषित किया है कि नहीं जीना चाहिए, जिसे बुद्धिमान व्यक्ति यदि संभव हो तो नहीं जीता है, और यदि वह जीता भी है तो उसे विश्वास नहीं होता कि यह पुण्य है।

संदक नामक एक शिक्षक इस मत का समर्थन करते हुए कहते हैं कि कर्ता और वश में किया गया, संहारक और संहारित, यातना देने वाला और यातना सहने वाला, भयभीत और राक्षस, कोई दोष नहीं करते। हत्यारा, बिना दिया हुआ लेने वाला, अंग काटने वाला, लुटेरा, बंदी बनाने वाला, घात लगाकर बैठने वाला, दूसरों की पत्नियों के पास जाने वाला और छल करने वाला, कोई दोष नहीं करते। यदि कोई

व्यक्ति तराजू पर ब्लेड लगे हुए गंगा के दक्षिणी किनारे तक सभी प्राणियों को मारकर मांस का ढेर बना दे, तो संहारक को इससे कोई दोष नहीं मिलता। यदि कोई व्यक्ति गंगा के उत्तरी किनारे तक दान देते हुए और दूसरों से दान करवाते हुए, यज्ञ करते हुए और दूसरों से यज्ञ करवाते हुए जाए, तो इससे कोई पुण्य नहीं मिलता।

संदक नामक एक बुद्धिमान व्यक्ति चिंतन करता है। यह गुरु इस मत का समर्थन करते हुए कहता है, "कर्ता और अधीन—दोनों के कर्मों से कोई पुण्य अर्जित नहीं होता। यदि इस गुरु के वचन सत्य हैं, तो मुझे कुछ भी नहीं करना चाहिए। मुझे पवित्र जीवन नहीं जीना चाहिए। मेरे गुरु और मैं संन्यास में समान हो जाते हैं। मुझे इस पर विश्वास भी नहीं होता। हम दोनों को कोई पुण्य अर्जित नहीं होता। इन गुरुओं ने अनावश्यक रूप से पवित्र जीवन व्यतीत किया। जहाँ तक मेरी बात है, मैं पत्नी और बच्चों से घिरा रहा, कश्मीरी वस्त्र धारण करने, फूल और सुगंध लाने और सोना-चांदी कमाने का आनंद लिया। मृत्यु के बाद, मैं इन गुरुओं के समान हो जाऊँगा। जो जानता और देखता है, उसे इन गुरुओं के अधीन पवित्र जीवन जीना चाहिए? जो जानता है कि यह पवित्र जीवन नहीं है, वह इससे विमुख हो जाता है।" संदक कहता है, "यह दूसरा पवित्र जीवन है जिसे जानने और देखने वाले, पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने नहीं जीने की बात कही है, जिसे बुद्धिमान व्यक्ति संभव हो तो नहीं जीता, और यदि जीता भी है तो उसे यह पुण्य नहीं लगता।"

फिर से, संदका नामक एक शिक्षक इस विचार का समर्थन करते हैं और इसकी घोषणा करते हैं। प्राणी बिना किसी कारण या तर्क के अशुद्ध होते हैं और बिना किसी कारण या तर्क के शुद्ध होते हैं। कोई बल नहीं, कोई प्रयास नहीं, कोई मर्दाना शक्ति नहीं, कोई मर्दाना साहस नहीं; सभी प्राणी, सभी जीव, सभी जन्म लेते हैं, परिपक्वता की ओर अग्रसर होते हैं और उच्चतर छह स्तरों में जन्म लेते हैं तथा सुख और दुख का अनुभव करते हैं।

यहां, संदक नामक एक बुद्धिमान व्यक्ति चिंतन करते हैं, ये अच्छे गुरु इस मत का समर्थन करते हैं और घोषणा करते हैं कि प्राणी अशुद्ध हैं—सुख और दुःख दोनों का अनुभव करते हैं। यदि इन गुरुओं के वचन सत्य हैं, तो मुझे यहां कुछ भी नहीं करना चाहिए। मुझे पवित्र जीवन नहीं जीना चाहिए। मेरे गुरु और मैं, हम दोनों अपने वैराग्य में समान हो जाते हैं, मैं जो इस पर विश्वास नहीं करता। हम दोनों बिना किसी कारण के शुद्ध हो जाएंगे। अनावश्यक रूप से इन अच्छे गुरुओं ने पवित्र जीवन व्यतीत किया। जहां तक मेरी बात है, मैं पत्नी और बच्चों से घिरा रहा, कश्मीरी वस्त्र पहनने, फूल और सुगंध लाने और सोना-चांदी कमाने का आनंद लिया। मृत्यु के बाद, मैं इन अच्छे गुरुओं के समान हो जाऊंगा। क्या जानते हुए और क्या देखते हुए मुझे इन गुरुओं के अधीन पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिए? जो जानता है कि यह पवित्र जीवन नहीं है, वह इससे विमुख हो जाता है। संदक, यह तीसरा पवित्र जीवन है जिसे जानने और देखने वाले, पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने घोषित किया है कि नहीं जीना चाहिए, जिसे बुद्धिमान व्यक्ति संभव हो तो नहीं जीता, और यदि जीता भी है तो उसे विश्वास नहीं होता कि यह पुण्य है।

संदका नामक एक शिक्षक इस मत का समर्थन करते हुए इसकी घोषणा करते हैं। ये सात शरीर न तो निर्मित हैं और न ही सृजित, बल्कि निराकार, अचल और मजबूत स्तंभों की तरह स्थिर हैं। ये न तो गतिमान हैं, न परिवर्तित होते हैं और न ही एक दूसरे को हानि पहुँचाते हैं। एक शरीर दूसरे के सुख, दुख या न सुख, किसी भी प्रकार की अनुभूति में रुचि नहीं रखता। ये सात शरीर क्या हैं? ये हैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सुख, दुख और आत्मा। इसलिए इनमें न तो हानि पहुँचाना, न हत्या करना, न सुनना और न सुनाना, न जानना और न ही बोध कराना। यदि सिर को किसी तीक्ष्ण हथियार से काट दिया जाए, तो किसी जीवन का नाश नहीं होता। केवल सात शरीर नष्ट होते हैं। चौदह लाख महत्वपूर्ण जन्म, साठ हजार छह सौ पाँच कर्म हैं। पाँच सौ चार कर्मों वाले जन्म, तीन चार कर्मों वाले जन्म, एक कर्म, आधा कर्म और सोलह विधियाँ हैं। सोलह आंतरिक विश्व चक्र हैं। छह उच्च जन्म, आठ नबी के जन्म, चार हजार नौ सौ तपस्वी जन्म, चार हजार नौ सौ भ्रमणशील तपस्वी जन्म और चार हजार नौ सौ हाथी जन्म हैं। बीस सौ नियंत्रक शक्तियाँ, तीस सौ नरक, छत्तीस राज तत्व, सात प्रत्यक्ष जन्म, सात अप्रत्यक्ष जन्म, सात निगंत जन्म, सात स्वर्गीय और सात मानव जन्म, सात प्रेत जन्म और सात स्मृतियाँ। सात उच्च स्मृतियाँ, सात सौ सात पतन, सात सौ सात स्वप्न। मूर्ख या बुद्धिमान बनकर अस्सी लाख बड़े और छोटे विश्व चक्रों में कष्टों का अंत होना चाहिए। ऐसा नहीं है कि इन गुणों, अनुष्ठानों और तपस्याओं से मैं अपने अपरिपक्व कर्मों को परिपक्व कर लूँगा, या भावनाओं को महसूस करते हुए उन्हें समाप्त कर दूँगा। सुखद या अप्रिय भावनाओं का कोई माप नहीं है और अस्तित्व का कोई अंत नहीं दिखता। कोई ऊँच-नीच नहीं है। यह एक अव्यवस्थित धागे के गोले में फेंके जाने जैसा है और उससे बाहर निकलने का रास्ता खोजना पड़ता है। मूर्ख या बुद्धिमान बनकर अस्सी लाख बड़े और छोटे विश्व चक्रों में कष्टों का अंत होना चाहिए।

संदका नामक एक बुद्धिमान व्यक्ति चिंतन करते हैं। यह उत्तम गुरु इस मत का समर्थन करते हुए इसकी घोषणा करते हैं। ये सात शरीर कष्टों का अंत करेंगे। यदि इन गुरुओं के वचन सत्य हैं, तो मुझे कुछ भी नहीं करना चाहिए। मुझे पवित्र जीवन नहीं जीना चाहिए। मेरे गुरु और मैं एकांतवास में समान हैं, मैं तो इस पर विश्वास भी नहीं करता। हम दोनों ही जन्मों में कष्टों का अंत करेंगे। इन उत्तम गुरुओं ने अनावश्यक रूप से नग्न रहकर, सिर पर गाँठ बाँधकर, खड़े-खड़े सिर और दाढ़ी के बाल नोचते हुए पवित्र जीवन व्यतीत किया। जहाँ तक मेरी बात है, मैं पत्नी और बच्चों से घिरा रहा, कश्मीरी वस्त्रों का आनंद लेता रहा, फूल और सुगंध लाता रहा और सोना-चाँदी

कमाता रहा। मृत्यु के बाद मैं इन उत्तम गुरुओं के समान हो जाऊँगा। यह जानते हुए और देखते हुए कि क्या मुझे इन गुरुओं के अधीन पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहिए, वह इससे विमुख हो जाता है। जो यह जानता है कि यह पवित्र जीवन नहीं है, वह इससे विमुख हो जाता है। संदाका, यह चौथा पवित्र जीवन है जिसे सर्वज्ञानी, पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने नहीं जीने की सलाह दी है। बुद्धिमान व्यक्ति संभव हो तो इसे नहीं जीता, और यदि जीता भी है तो उसे यह विश्वास नहीं होता कि यह पुण्य का कार्य है।

संदका, ये चार पवित्र जीवन हैं, जिन्हें सर्वज्ञ, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने अस्वीकृत घोषित किया है, जिन्हें ज्ञानी व्यक्ति संभव होने पर भी नहीं जीता और यदि जीता भी है तो उसे यह पुण्य नहीं लगता। - हे आनंद, यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है। हे आनंद, ये चार पवित्र जीवन कौन से हैं, जिन्हें सर्वज्ञ, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने असंतोषजनक घोषित किया है और जिन्हें नहीं जीना चाहिए, जिन्हें ज्ञानी व्यक्ति संभव होने पर भी नहीं जीता और यदि जीता भी है तो उसे यह पुण्य नहीं लगता। हे आनंद, वे चार पवित्र जीवन कौन से हैं, जिन्हें सर्वज्ञ, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने असंतोषजनक घोषित किया है और जिन्हें नहीं जीना चाहिए, जिन्हें ज्ञानी व्यक्ति संभव होने पर भी नहीं जीता और यदि जीता भी है तो उसे यह पुण्य नहीं लगता।

संदका, एक शिक्षक निरंतर और लगातार सर्वव्यापी ज्ञान और दृष्टि को ग्रहण करते हैं, चाहे वे चल रहे हों, खड़े हों, लेटे हों या जाग रहे हों। वे एक खाली घर में प्रवेश करते हैं और उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होता। एक कुत्ता उन्हें काट लेता है। उनका सामना मदमस्त हाथी, एक उग्र घोड़े या एक उग्र बैल से होता है। वे किसी पुरुष या स्त्री का नाम और गोत्र, या किसी गाँव या बस्ती का नाम और वहाँ जाने का मार्ग पूछते हैं। जब उनसे पूछा जाता है कि क्या हुआ, तो वे कहते हैं, मैं एक खाली घर में गया, मुझे कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ और एक कुत्ते ने मुझे काट लिया। मेरा सामना मदमस्त हाथी, एक उग्र घोड़े और एक उग्र बैल से हुआ। मुझे किसी पुरुष या स्त्री का नाम और गोत्र, किसी गाँव या बस्ती का नाम और वहाँ जाने का मार्ग पूछना पड़ा। संदका, एक बुद्धिमान व्यक्ति को चिंतन करना चाहिए। यह उत्तम शिक्षक सर्वव्यापी ज्ञान और दृष्टि को ग्रहण करते हैं, और वे किसी पुरुष या स्त्री का नाम और गोत्र पूछते हैं। मुझे यह जानकर उस पवित्र जीवन से असंतुष्टिपूर्ण समझकर विमुख हो जाना चाहिए। संदका, यह पहला पवित्र जीवन है, जिसे जानने और देखने वाले, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने असंतोषजनक घोषित किया है और कहा है कि इसे नहीं जीना चाहिए, जिसे बुद्धिमान व्यक्ति यदि संभव हो तो नहीं जीता है और यदि जीता भी है तो उसे विश्वास नहीं होता कि यह पुण्य है।

फिर से, संदका, एक शिक्षक सुनी-सुनाई बातों को ही सत्य मान लेता है। जो शिक्षक सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास करता है, उसके लिए परंपरा ही सत्य बन जाती है। हो सकता है उसने सही सुना हो या गलत। उसके लिए वही सत्य बन जाता है, जबकि सत्य कुछ और भी हो सकता है। संदका, एक बुद्धिमान व्यक्ति को चिंतन करना चाहिए। यह शिक्षक सुनी-सुनाई बातों पर विश्वास करता है। वह वही उपदेश देता है जो उसे परंपरा और सुनी-सुनाई बातों से प्राप्त हुआ है। उसने जो सुना है वह सत्य हो भी सकता है और नहीं भी। मुझे यह जानकर उस पवित्र जीवन से विमुख हो जाना चाहिए क्योंकि वह संतोषजनक नहीं है। संदका, यह दूसरा पवित्र जीवन है, जिसे सर्वज्ञ, सर्वज्ञ, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने संतोषजनक नहीं बताया है और कहा है कि इसे जीना नहीं चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति यदि संभव हो तो इसे न जिए और यदि वह जी भी ले तो उसे यह विश्वास नहीं होता कि यह पुण्य का कार्य है।

फिर से, संदका, एक विशेष शिक्षक तर्क के आधार पर उपदेश देते हैं, तार्किक तर्कों के माध्यम से वे स्वयं ही एक शिक्षा का आधार तैयार करते हैं। एक तार्किक शिक्षक की शिक्षा में कुछ तर्क सत्य हो सकते हैं और कुछ असत्य। संदका, एक बुद्धिमान व्यक्ति को चिंतन करना चाहिए। यह शिक्षक तर्क के आधार पर उपदेश देते हैं। उनके तर्क प्रामाणिक हों या न हों, मुझे यह जानकर उस पवित्र जीवन से असंतुष्टिपूर्ण समझकर विमुख हो जाना चाहिए। संदका, यह तीसरा पवित्र जीवन है, जिसे सर्वज्ञ, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने असंतुष्टिपूर्ण घोषित किया है और कहा है कि इसे नहीं जीना चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति यदि संभव हो तो इसे न जिए और यदि वह जी भी ले तो उसे यह विश्वास नहीं होना चाहिए कि यह पुण्य का कार्य है।

संदका, एक विशेष शिक्षक मंदबुद्धि और भ्रमित है; जब उससे कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह टालमटोल करता है और तटस्थ रहता है। मुझे यह बात समझ में नहीं आती, न ही कोई और उपाय समझ में आता है; न ही कोई दूसरा उपाय है और न ही इनमें से कोई उपाय सही है। संदका, एक बुद्धिमान व्यक्ति को चिंतन करना चाहिए। यह शिक्षक मंदबुद्धि और भ्रमित है; जब उससे कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह टालमटोल करता है और तटस्थ रहता है। मुझे यह जानकर उस पवित्र जीवन से विमुख हो जाना चाहिए क्योंकि वह असंतोषजनक है। संदका, यह चौथा पवित्र जीवन है, जिसे जानने और देखने वाले, परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने असंतोषजनक घोषित किया है और कहा है कि इसे नहीं जीना चाहिए; बुद्धिमान व्यक्ति यदि संभव हो तो इसे नहीं जीता है और यदि जीता भी है, तो उसे यह विश्वास नहीं होता कि यह पुण्य है।

संदका, ये वे चार पवित्र जीवन हैं जिन्हें सर्वज्ञानी, पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने असंतोषजनक घोषित किया है और जिनका पालन नहीं करना चाहिए। हे आनंद, यह आश्चर्यजनक और अद्भुत है! हे आनंद, ये वे चार पवित्र जीवन हैं जिन्हें सर्वज्ञानी, पूर्ण और

सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने असंतोषजनक घोषित किया है, जिनका जीवन बुद्धिमान व्यक्ति संभव हो तो नहीं अपनाता और यदि अपनाता भी है तो उसे यह पुण्यपूर्ण नहीं लगता। हे आनंद, वह पवित्र जीवन क्या है जिसे सर्वज्ञानी, पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने श्रेष्ठ शिक्षा में संतोषजनक और आश्वस्त करने वाला घोषित किया है और जो पुण्यपूर्ण है?

संदक, यानी तथागत, संसार में पूर्ण, उचित रूप से प्रबुद्ध, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, सुप्रसिद्ध, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले लोगों को वश में करने में अद्वितीय, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य रूप से जन्म लेते हैं। वे देवताओं और मनुष्यों के इस संसार में, साथ ही इसके मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों, ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों के समुदाय को, उस शिक्षा का प्रचार करते हैं जो आरंभ, मध्य और अंत में उत्तम है, और जिसके अक्षर भी पूर्ण और पवित्र जीवन की घोषणा करते हुए अर्थपूर्ण हैं। एक गृहस्थ, या गृहस्थ का पुत्र, या किसी कुल में जन्मा व्यक्ति इस शिक्षा को सुनता है और तथागत में आस्था प्राप्त करता है। उस आस्था के साथ वह विचार करता है कि गृहस्थ जीवन कठिनाइयों से भरा है, यह अपवित्रता का मार्ग है। गृहस्थ जीवन खुले स्थान के समान है। गृहस्थ जीवन में रहते हुए अपवित्र हुए बिना पूर्ण और पवित्र जीवन जीना आसान नहीं है। यदि मैं सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र पहनकर संन्यासी बन जाऊं तो क्या होगा? किसी उपयुक्त समय पर वह थोड़ी या बहुत अधिक संपत्ति का त्याग कर देता है, या तो मित्रों के एक छोटे समूह को पीछे छोड़ देता है, या मित्रों के एक बड़े समूह को पीछे छोड़ देता है, सिर और दाढ़ी मुंडवाकर और पीले वस्त्र धारण करके एक संन्यासी के रूप में निकल जाता है।

आगे बढ़कर वह भिक्षु जीवन में प्रशिक्षक बन जाता है, प्राणियों को पीड़ा देना त्याग देता है, लाठी-हथौड़े फेंक देता है, लज्जा और करुणा से भर जाता है, समस्त प्राणियों के प्रति करुणा भाव रखता है। अनचाही वस्तुएँ लेने से परहेज करते हुए, दी हुई वस्तुओं की इच्छा रखता है, बिना चोरी किए स्वयं को शुद्ध करता है। नीच यौन संबंध से परहेज करते हुए वह पवित्र जीवन व्यतीत करता है। झूठ बोलने से परहेज करते हुए वह विश्वसनीय और भरोसेमंद बन जाता है और संसार से कोई विवाद न करता है। निंदा का त्याग करके, यहाँ सुनकर उसे कहीं और न दोहराता है, ताकि दूसरों को विभाजित न करे। कहीं और सुनकर उसे यहाँ न दोहराता है ताकि दूसरों को विभाजित न करे। विभाजितों को एकजुट करता है, एकता को बढ़ावा देता है, एकता प्रेमी है और एकता के वचन बोलता है। कठोर शब्दों का त्याग करके वह कानों को भाने वाले मधुर शब्द बोलता है, जो आम जनता के हृदय तक पहुँचते हैं। व्यर्थ की बातों से परहेज करता है। शिक्षा और अनुशासन के अनुसार उचित, सत्य और अर्थपूर्ण शब्द बोलता है, वे शब्द जो अनमोल होते हैं।

बीज और वनस्पति समूहों को नष्ट करने से परहेज़ करता है। दिन में एक बार भोजन करता है, रात में और असमय भोजन से परहेज़ करता है। नृत्य, गायन, संगीत, सजावट, फूल और सुगंध, मलहम और आभूषणों से परहेज़ करता है। ऊँचे और आलीशान पलंगों से परहेज़ करता है। सोना और चाँदी, कच्चा चावल और कच्चा मांस ग्रहण करने से परहेज़ करता है। स्त्रियों और लड़कियों, दासों, पुरुषों या स्त्रियों को ग्रहण करने से परहेज़ करता है। बकरियों और गायों, मुर्गियों और सूअरों, हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों को ग्रहण करने से परहेज़ करता है।

वह खेतों और धन को स्वीकार करने, संदेशवाहक का काम करने, खरीद-फरोख्त करने और अनुचित तरीके से तौलने-मापने से परहेज करता है। वह काटने, अलग करने, नष्ट करने, लूटपाट करने और अनुचित तरीकों से भोजन प्राप्त करने से परहेज करता है।

संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर और पेट भरकर, वह अपने सभी सामानों के साथ प्रस्थान करता है। जैसे छोटे-बड़े पक्षी अपने पंखों के भार से उड़ जाते हैं, वैसे ही संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर और पेट भरकर, वह अपने सभी सामानों के साथ प्रस्थान करता है। सद्गुणों के इस समूह से युक्त होकर, वह आंतरिक रूप से निष्कलंकता का आनंद अनुभव करता है। किसी रूप को देखकर, वह उसके चिन्ह या तत्वों को ग्रहण नहीं करता। आँख की मानसिक शक्ति पर नियंत्रण न होने पर, लोभ और अप्रसन्नता के कारण दोष प्रवेश कर सकता है। वह आँख की मानसिक शक्ति की रक्षा करते हुए रहता है। कान से ध्वनि सुनकर...या। नाक से गंध पहचानकर...या। जीभ से स्वाद चखकर...या। शरीर से स्पर्श पहचानकर...या। मन से विचार पहचानकर, वह उसके चिन्ह या तत्वों को ग्रहण नहीं करता। मन की मानसिक शक्ति पर नियंत्रण न होने पर, लोभ और अप्रसन्नता के कारण दोष प्रवेश कर सकता है। वह मन की क्षमताओं की रक्षा करते हुए निवास करते हैं। श्रेष्ठों के समान मन की शक्तियों पर नियंत्रण प्राप्त होने के कारण वे मन के अछूते आनंद का अनुभव करते हैं। आगे बढ़ना हो या पीछे मुड़ना, वे सचेत रहते हैं। देखना हो या अगल-बगल देखना, झुकना हो या सीधा होना, भिक्षापात्र और तीनों वस्त्र धारण करना, वे सचेत रहते हैं। चखना, पीना, खाना और आनंद लेना, वे सचेत रहते हैं। चलते हुए, खड़े होते हुए, बैठते हुए, लेटते हुए और मौन रहना, वे सचेत रहते हैं। इन सभी सद्गुणों से, श्रेष्ठों के समान मन की शक्तियों पर नियंत्रण से, और श्रेष्ठों के समान सजगता से वे एकांत स्थान में निवास करते हैं। जैसे कि वन, वृक्ष की जड़, पर्वत की गुफा, श्मशान भूमि, जंगल, खुला स्थान या भूसे का ढेर। भिक्षा मांगने के बाद और भोजन समाप्त होने पर वे पैर मोड़कर बैठते हैं, शरीर सीधा रखते हैं और ध्यान को सामने की ओर केंद्रित करते हैं।

वह संसार के लोभ को दूर करते हुए, मन को लोभ से मुक्त करते हुए निवास करते हैं। वे क्रोध से मुक्त मन को शुद्ध करते हुए, सभी प्राणियों के प्रति करुणा जागृत करते हुए निवास करते हैं। आलस्य और सुस्ती को दूर करते हुए, वे प्रकाश की अनुभूति के प्रति सचेत और जागरूक रहते हुए, आलस्य और सुस्ती को ध्यानपूर्वक दूर करते हैं। बेचैनी और चिंता को दूर करते हुए, वे आंतरिक रूप से शांत मन से निवास करते हैं, बेचैनी और चिंता दूर हो जाती है। वे अच्छे और बुरे कर्मों के बारे में संदेह से मुक्त होकर निवास करते हैं।

पांचों बाधाओं को दूर करके और छोटे-मोटे दोषों को कमजोर करके, भिक्षु अपने मन को कामुक, क्रोधी और पीड़ादायक विचारों से अलग रखता है। विचारों और विचार-प्रक्रियाओं के साथ, और एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख के साथ, वह प्रथम ध्यान में रहता है। संदक, जब गुरु का श्रेष्ठ शिष्य उस श्रेष्ठ अवस्था को प्राप्त कर लेता है, तो उसने बुद्धिमानी से पवित्र जीवन जिया है और उसे पुण्य का ज्ञान है। फिर भिक्षु विचारों और विचार-प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके, मन को एक ही बिंदु पर आंतरिक रूप से शांत करता है। विचारों और विचार-प्रक्रियाओं से रहित, और एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख के साथ, वह द्वितीय ध्यान में रहता है। संदक, जब गुरु का श्रेष्ठ शिष्य उस श्रेष्ठ अवस्था को प्राप्त कर लेता है, तो उसने बुद्धिमानी से पवित्र जीवन जिया है और ऐसा करते हुए भी उसे पुण्य का ज्ञान है। फिर भिक्षु आनंद और वैराग्य के प्रति समभाव रखते हुए, सचेत और जागरूक रहते हुए, शरीर के साथ भी सुख का अनुभव करता है, और तृतीय ध्यान में प्राप्त होता है। श्रेष्ठ भिक्षु कहते हैं कि यह समभाव में रहते हुए सुख और दुख को दूर करना है। फिर, जो भिक्षु सुख और दुख को दूर कर चुका है और पहले सुख और दुख को दूर कर चुका है, वह समभाव से शुद्ध होकर चौथे ध्यान में रहता है। संदक कहते हैं कि जब गुरु का श्रेष्ठ शिष्य उस श्रेष्ठ अवस्था को प्राप्त कर लेता है, तो वह बुद्धिमानी से पवित्र जीवन जीता है और ऐसा करते हुए भी उसे इसका पुण्य सिद्ध होता है।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह अपने मन को पूर्व जन्मों के ज्ञान की ओर लगाता है। वह अनेक जन्मों का स्मरण करता है - एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, असंख्य आगे के जन्म चक्र, असंख्य पीछे के जन्म चक्र, असंख्य आगे और पीछे के जन्म चक्र। वहाँ मेरा नाम, कुल, स्वभाव और आधार ऐसा था, मैंने ऐसे सुख और दुख का अनुभव किया, और मेरा जीवनकाल ऐसा था। वहाँ से विलीन होकर मैं वहाँ ऐसे नाम, कुल, स्वभाव और आधार से जन्म लेता हूँ, ऐसे सुख और दुख का अनुभव करता हूँ, और मेरा जीवनकाल ऐसा होता है। वहाँ से विलीन होकर मैं यहाँ जन्म लेता हूँ। इस प्रकार अनेक जन्मों का समस्त गुणों और समस्त विवरणों के साथ स्मरण किया जाता है। संदका के अनुसार, जब गुरु का श्रेष्ठ शिष्य उस श्रेष्ठ पदवी को प्राप्त कर लेता है, तो वह बुद्धिमानी से पवित्र जीवन व्यतीत करता है और ऐसा करते हुए भी उसे इसका पुण्य सिद्ध होता है।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह प्राणियों के प्रकट होने और लुप्त होने के ज्ञान के लिए मन को निर्देशित करता है। मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से वह प्राणियों को प्रकट और लुप्त होते हुए देखता है, चाहे वे उदात्त हों या उदात्त, सुंदर हों या कुरूप, अपने कर्मों के अनुसार अच्छे और बुरे रूप में हों। ये अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा करते हैं, और कर्मों के प्रति गलत दृष्टिकोण रखते हैं, मृत्यु के बाद हानि में, कमी में, नरक में जन्म लेते हैं। वहीं, जो अच्छे प्राणी शरीर, वाणी और मन से सुव्यवस्थित होते हैं, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते, और कर्मों के प्रति सही दृष्टिकोण रखते हैं, मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेते हैं। इस प्रकार मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से वह प्राणियों को प्रकट और लुप्त होते हुए देखता है। संदक, जब गुरु का श्रेष्ठ शिष्य उस श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त कर लेता है, तो वह बुद्धिमानी से पवित्र जीवन व्यतीत करता है और ऐसा करते हुए भी उसे पुण्य मानता है।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह मन को इच्छाओं के नाश की ओर निर्देशित करता है। वह जानता है कि यह अप्रिय है, यह अप्रियता का उद्भव है, यह अप्रियता का निवारण है और यही अप्रियता के निवारण का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। वह जानता है कि ये इच्छाएँ हैं, यह इच्छाओं का उद्भव है, यह इच्छाओं का निवारण है और यही इच्छाओं के निवारण का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। जो इस प्रकार जानता और देखता है, वह इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है, 'होने' की इच्छाओं से मुक्त हो जाता है और अज्ञान की इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर वह जानता है, मैं मुक्त हो गया हूँ, जन्म का नाश हो गया है, पवित्र जीवन जिया जा रहा है। जो करना चाहिए, वह हो गया है, अब और कुछ चाहने की आवश्यकता नहीं है। संदक, जब गुरु का श्रेष्ठ शिष्य उस श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त कर लेता है, तो वह बुद्धिमानी से पवित्र जीवन जी चुका होता है और ऐसा करते हुए भी उसे इसका पुण्य सिद्ध होता है।

"हे आनंद, जो भिक्षु पूर्ण हैं, जिन्होंने इच्छाओं का नाश किया है, जो उचित कार्य करते हैं, जिन्होंने भार त्याग दिया है, जो सर्वोच्च सुख प्राप्त कर चुके हैं, क्या वे कामुकता में लिप्त होते हैं?" "संदक, जो भिक्षु पूर्ण हैं, जिन्होंने इच्छाओं का नाश किया है, जो उचित कार्य करते हैं, जिन्होंने भार त्याग दिया है, जो सर्वोच्च सुख प्राप्त कर चुके हैं, जिन्होंने 'होने' की इच्छा का नाश किया है, और जो सही ज्ञान से मुक्त हैं, वे पाँच चीजों से आगे नहीं जा सकते। यह संभव नहीं है कि जो भिक्षु इच्छाओं का नाश कर चुके हैं, वे जागरूकता के साथ, जीवित

प्राणियों का जीवन नष्ट करें, जो नहीं दिया गया है उसे लें, कामुकता में लिप्त हों और झूठ बोलें। वे गृहस्थ जीवन व्यतीत करते समय की तरह कामुक उपभोग के लिए वस्तुओं का संचय नहीं करेंगे। संदक, जो भिक्षु पूर्ण हैं, जिन्होंने इच्छाओं का नाश किया है, जो उचित कार्य करते हैं, जिन्होंने भार त्याग दिया है, जो सर्वोच्च सुख प्राप्त कर चुके हैं, वे इन पाँच चीजों को नहीं करेंगे, यह असंभव है कि वे इन्हें करें।"

"हे आनंद, सिद्ध भिक्षु जिसने इच्छाओं का नाश किया है, जो करना चाहिए वो किया है, भार को त्याग दिया है, सर्वोच्च सुख को प्राप्त किया है, 'होने' की इच्छाओं का नाश किया है और सही ज्ञान से मुक्त हो गया है, क्या उसका ज्ञान और दृष्टि निरंतर और सतत रूप से स्थापित रहती है, जैसे मेरी इच्छाएँ नष्ट हो गई हैं?" "संदक, मैं तुम्हें एक उदाहरण देता हूँ, क्योंकि कुछ बुद्धिमान लोग उदाहरण को समझ जाते हैं। संदक, मान लो एक मनुष्य के हाथ-पैर काट दिए गए हैं। वह चाहे जिस भी मुद्रा में हो, वह जान जाएगा कि मेरे हाथ-पैर कटे हुए हैं और चिंतन करने पर भी जान जाएगा कि मेरे हाथ-पैर कटे हुए हैं। उसी प्रकार, सिद्ध भिक्षु जिसने इच्छाओं का नाश किया है, जो करना चाहिए वो किया है, भार को त्याग दिया है, सर्वोच्च सुख को प्राप्त किया है, 'होने' की इच्छाओं का नाश किया है और सही ज्ञान से मुक्त हो गया है, वह निरंतर और सतत रूप से जान जाएगा कि मेरी इच्छाएँ नष्ट हो गई हैं।"

"हे गौतम, इस युग में लगभग कितने लोगों को पार कराया गया है?" "संदक, एक भी नहीं, सौ भी नहीं, दो सौ भी नहीं, तीन सौ भी नहीं, चार सौ भी नहीं, पाँच सौ भी नहीं, फिर भी इस युग में बहुतों को पार कराया गया है।" "हे आनंद, यह अद्भुत और आश्चर्यजनक है कि न तो किसी ने अपने उपदेश की प्रशंसा की और न ही दूसरे के उपदेश की निंदा की, फिर भी बहुतों को पार कराया गया। जहाँ तक इन तपस्वियों की बात है, वे मृत स्त्रियों के पुत्र हैं। वे अपनी प्रशंसा करते हैं, दूसरों की निंदा करते हैं, और केवल तीन को ही पार कराया हुआ दिखाते हैं। वे हैं नंदा वच्छ, संकिच्छा और मक्खली गोशाला।"

तब भ्रमणशील तपस्वी संदक ने अपने उपस्थित लोगों को संबोधित करते हुए कहा: "हे सज्जनों, गौतम गौतम के मार्ग पर चलकर पवित्र जीवन व्यतीत करें। मान-सम्मान और यश की लालसा छोड़ दें।" इस प्रकार, भ्रमणशील तपस्वी संदक ने उपस्थित लोगों में भगवान गौतम के मार्ग पर चलकर पवित्र जीवन व्यतीत करने की रुचि जगाई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 8.7 महासकुलुदायी सुत्त(77)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना है। एक समय भगवान राजगृह के बांस के जंगल में गिलहरियों के अभयारण्य में रह रहे थे। उस समय कई प्रसिद्ध भिक्षु मोरा वृक्षों के अभयारण्य में स्थित भिक्षु मठ में रहते थे। जैसे अनुगारो वरधरा, सकुलुदयी और अन्य प्रसिद्ध भिक्षु। फिर भगवान ने सुबह वस्त्र धारण करके और भिक्षापात्र व वस्त्र लेकर राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। तब भगवान को यह विचार आया कि राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत सुबह है, क्यों न मैं मोरा वृक्षों के अभयारण्य में रहने वाले भिक्षु सकुलुदयी के पास जाऊं। भगवान भिक्षु मठ की ओर गए और सकुलुदयी के पास पहुंचे। उस समय सकुलुदयी भिक्षुओं की एक बड़ी सभा के साथ बैठे थे और बहुत शोर मचा रहे थे। वे तरह-तरह की बचकानी बातें कर रहे थे, राजाओं, लुटेरों, प्रधानमंत्रियों, सेना, भय, लड़ाइयों, खाने-पीने की चीजों, कपड़ों, बिस्तरों, फूलों और सुगंधों, रिश्तेदारों, वाहनों, गांवों, बस्तियों, कस्बों और राज्यों, महिलाओं और नायकों के बारे में। गली के कोने और कुएं पर गपशप के बारे में, मरे हुए लोगों के बारे में, दुनिया और समुद्र की उत्पत्ति के बारे में और जो हुआ और जो नहीं हुआ, उसके बारे में तरह-तरह की बातें।

घुमंतू तपस्वी सकुलुदयी ने दूर से भगवान बुद्ध को आते देख सभा को शांत कराया और कहा, "हे सज्जनों, शोर कम कीजिए, इतना शोर मत कीजिए। गौतम गौतम आ रहे हैं। ये पूजनीय लोग शांत हैं, और शायद इस सभा के शांत होने को देखकर पास आने का सोच रहे हैं।" घुमंतू तपस्वी शांत हो गए।

तब भगवान बुद्ध भ्रमणरत तपस्वी शकुलुदयी के पास पहुँचे, और शकुलुदयी ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम, आइए! बहुत समय बाद हे गौतम ने आने का मन बनाया है। हे गौतम, बैठिए, आसन तैयार है।" भगवान बुद्ध तैयार आसन पर बैठ गए, और भ्रमणरत तपस्वी भी एक तरफ झुककर बैठ गए।

तब भगवान बुद्ध ने कहा, "आप यहाँ किस विषय पर चर्चा करने के लिए बैठे थे और बातचीत का विषय क्या था? आदरणीय महोदय, अभी जिस विषय पर हम बैठे थे, उसी पर चर्चा हो रही है। भगवान बुद्ध की वाणी दुर्लभ होती है और यह वाणी बाद में सुनी जा सकती है। बहुत समय पहले, जब संन्यासी और ब्राह्मण सभा भवन में एकत्रित हुए थे, तब यह वाणी उठी थी। अंग और मगध के लिए यह बड़ा लाभ है कि अनेक संन्यासी और ब्राह्मण, सभाओं के नेता, प्रसिद्ध मार्ग निर्माता, जिन्हें अनेक लोग शुभ मानते हैं, अपने अनुयायियों के साथ वर्षा ऋतु में राजगृह आते हैं। वे पुराण कस्सपा, मक्खली गोशाला, अजित केशकंबली, पकुधा कच्चयन, संजय बेलत्थिपुत्त और निगंथ नटपुत्त हैं, और संन्यासी गौतम भी। शिष्य गुरु का आदर और सम्मान कैसे करते हैं और उनके प्रति क्या श्रद्धा रखते हैं?"

तब किसी ने कहा: "यह पुराण कस्सपा, जो एक सभा के नेता और गुरु हैं और जिन्हें कई लोग प्रसिद्ध मार्गदर्शक मानते हैं, अपने शिष्यों द्वारा आदर और सम्मान नहीं पाते और पुराण कस्सपा स्वयं अपने शिष्यों को उचित सम्मान नहीं देते। एक बार पुराण कस्सपा सैकड़ों लोगों की सभा को उपदेश दे रहे थे। तभी पुराण कस्सपा के एक शिष्य ने विस्मयबोधक स्वर में कहा, 'महोदय, पुराण कस्सपा से इसका अर्थ मत पूछो, उन्हें इसका अर्थ नहीं पता। मुझे इसका अर्थ पता है, मुझसे पूछो, मैं तुम्हें समझा दूंगा।' तब पुराण कस्सपा ने अपनी छाती पीटते हुए चिल्लाकर सभा को चुप रहने का आग्रह किया। 'महोदय, उनसे प्रश्न मत पूछो, मुझसे पूछो। मैं समझा दूंगा।' उनके कई शिष्य झगड़ा करते हुए उनसे दूर चले गए: 'आप इस विद्या को नहीं जानते। मैं जानता हूं। आप इस विद्या के बारे में क्या जानते हैं? आपका मार्ग गलत है। मैं तर्क से बोलता हूं और आप तर्कहीन बोलते हैं।' आप अंतिम शब्द पहले कहते हैं, और जो शब्द पहले कहे जाने चाहिए वे अंत में कहते हैं। आपने इस पर विचार किया, इसे उलट दिया, और विवाद को जन्म दिया, इसे रोकें! यदि संभव हो तो विवाद सुलझाकर मुक्त हो जाएं। इस प्रकार पुराण कस्सपा अपने शिष्यों द्वारा सम्मानित और आदरणीय नहीं हैं, और पुराण कस्सपा अपने शिष्यों को उचित मान्यता नहीं देते हैं, और पुराण कस्सपा अपने ही उपदेशों से अपमानित होते हैं। तब किसी ने कहा, मक्खली गोशाला भी, अजित केशकंबली भी, पाकुधा कच्चयन भी, संजय बेलत्थिपुत्त भी। निगंथ नटपुत्त, एक सभा के नेता और शिक्षक, जिन्हें कई लोग एक प्रसिद्ध पथ निर्माता मानते हैं, अपने शिष्यों द्वारा सम्मानित और आदरणीय नहीं हैं, और निगंथ नटपुत्त अपने शिष्यों को उचित सम्मान नहीं देते हैं। एक बार निगंथ नटपुत्त सैकड़ों लोगों की सभा को उपदेश दे रहे थे। तब निगंथ नटपुत्त के एक शिष्य ने विस्मयबोधक चिह्न लगाया। महोदय, निगंथ नटपुत्त से इसका अर्थ मत पूछिए, उन्हें इसका अर्थ नहीं पता। मैं इसका अर्थ जानता हूँ, मुझसे प्रश्न पूछिए, मैं आप सभी को समझा दूँगा। ऐसा हुआ कि निगंथ नटपुत्त ने अपनी छाती पीटते हुए चिल्लाकर सभा में मौजूद लोगों से चुप रहने की विनती की। ये महोदय उनसे प्रश्न नहीं पूछते, मुझसे पूछते हैं। मैं उन्हें समझा दूँगा। उनके कई शिष्य झगड़ा करते हैं और उनसे दूर चले जाते हैं। आप अनुशासन और शिक्षा को नहीं जानते। मैं जानता हूँ। आप इस अनुशासन के बारे में क्या जानते हैं? आप गलत रास्ते पर चले गए हैं। मैं तर्क से बोलता हूँ और आप बिना तर्क के। आप अंतिम शब्द पहले बोलते हैं और जो शब्द पहले बोले जाने चाहिए वे अंत में बोलते हैं। आपने इस पर विचार किया, इसे उलट दिया और विवाद खड़ा कर दिया, इसे रोकिए! यदि संभव हो तो विवाद सुलझाकर मुक्त हो जाइए। इस प्रकार निगंथ नटपुत्त को उनके शिष्यों द्वारा सम्मान और आदर नहीं दिया जाता है, और निगंथ नटपुत्त स्वयं अपने शिष्यों को उचित मान्यता नहीं देते हैं, और निगंथ नटपुत्त अपने ही उपदेशों से बदनाम होते हैं।

किसी ने कहा: "सन्यासी गौतम भी एक सभा के नेता और गुरु हैं, अनेकों द्वारा प्रसिद्ध मार्गदर्शक माने जाते हैं, उनके शिष्य उनका आदर और सम्मान करते हैं, और वे स्वयं भी अपने शिष्यों का आदर करते हैं, और शिष्य उन पर निर्भर रहते हैं। एक बार तपस्वी गौतम सैकड़ों लोगों की सभा को उपदेश दे रहे थे। तभी एक शिष्य ने खाँसी की, और उनके एक साथी ने घुटने से उन्हें हल्का सा धक्का देकर कहा, 'आदरणीय, शोर न करें।' जब तपस्वी गौतम सैकड़ों लोगों की सभा को उपदेश देते हैं, तो वहाँ न तो छींक आती है और न ही खाँसी की आवाज़। तब सभा के लोग तपस्वी गौतम के अगले वचन सुनने की प्रतीक्षा करते हैं, यह सोचते हुए कि भगवान जो भी कहेंगे, हम सुनेंगे। ठीक वैसे ही जैसे लोग चौराहे पर उत्सुकता से तब तक प्रतीक्षा करते हैं जब तक कि कोई छोटा सा मधुकोश ढक न जाए।" इस प्रकार, जब संन्यासी गौतम सैकड़ों लोगों की सभा को उपदेश देते हैं, तो भीड़ में छींकने या खांसने की भी आवाज नहीं आती। सभा संन्यासी गौतम के अगले शब्दों को सुनने की प्रतीक्षा में रहती है, यह सोचकर कि भगवान जो भी कहेंगे, हम उसे सुनेंगे। संन्यासी गौतम के वे शिष्य भी, जो प्रशिक्षण में स्वयं को संलग्न नहीं कर सके और भिक्षु वस्त्र त्याग दिए, गुरु, उपदेश और भिक्षु समुदाय की प्रशंसा करते हैं। वे स्वयं को दोषी मानते हैं, किसी और को नहीं। वे कहते हैं, मैं ही अभागा, निर्गुण हूँ, इस सुप्रसिद्ध उपदेश में जाकर भी जीवन के अंत तक शुद्ध और पूर्ण पवित्र जीवन नहीं जी सका। वे या तो मठ में रहते हैं या पंच ऋषियों का पालन करते हुए गृहस्थ शिष्य के रूप में जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार संन्यासी गौतम शिष्यों द्वारा आदर और सम्मान पाते हैं और संन्यासी गौतम अपने शिष्यों को उचित सम्मान और आदर देते हैं और वे उन पर निर्भर रहते हैं।

हे उदयी, मेरी शिक्षा में आपको क्या दिखाई देता है, जिसके कारण मेरे शिष्य मेरा आदर और सम्मान करते हैं और मेरे साथ रहते हैं, और वे मेरे आदर और सम्मान के सहारे मेरे साथ रहते हैं?

आदरणीय महोदय, मैं पाँच बातें देखता हूँ जिनके कारण शिष्य भगवान बुद्ध का आदर और सम्मान करते हैं, और उन्हीं के कारण उन्हें उचित आदर और सम्मान प्राप्त होता है और उनका भरण-पोषण होता है। वे पाँच बातें क्या हैं? आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध अल्प

भोजन करते हैं और अल्प भोजन करते हुए स्तुति करते हैं। यही वह पहली बात है जिसके कारण शिष्य भगवान बुद्ध का आदर और सम्मान करते हैं और स्वयं उचित आदर प्राप्त करके अपना भरण-पोषण करते हैं।

हे पूज्यवर, भगवान बुद्ध प्राप्त वस्त्रों से संतुष्ट रहते हैं और इस संतुष्टि की प्रशंसा करते हैं। यही वह दूसरा कारण है जिसके कारण शिष्य भगवान बुद्ध का आदर और सम्मान करते हैं और उचित सम्मान प्राप्त करके उनका सहारा बनते हैं।

हे पूज्यवर, भगवान बुद्ध भोजन के हर निवाले से संतुष्ट होते हैं और भोजन के हर निवाले से मिलने वाली संतुष्टि की प्रशंसा करते हैं। यही वह तीसरा कारण है जिसके कारण शिष्य भगवान बुद्ध का आदर और सम्मान करते हैं और स्वयं भी उचित सम्मान प्राप्त करते हुए उनका सहारा लेते हैं।

हे पूज्यवर, भगवान बुद्ध आवास के लाभ से संतुष्ट रहते हैं और आवास के लाभ से संतुष्टि की प्रशंसा करते हैं। यही वह चौथा कारण है जिसके कारण शिष्य भगवान बुद्ध का आदर और सम्मान करते हैं और स्वयं भी उचित सम्मान प्राप्त करते हुए उनका सहारा लेते हैं।

हे आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध एकांतवास की प्रशंसा करते हैं, यही पाँचवाँ कारण है जिसके कारण शिष्य भगवान बुद्ध का आदर और सम्मान करते हैं और स्वयं उचित सम्मान प्राप्त करते हुए उनका सहारा लेते हैं।

आदरणीय महोदय, मैं इन पाँच बातों को देखता हूँ जिनके कारण शिष्य भगवान बुद्ध का आदर और सम्मान करते हैं और स्वयं भी उचित सम्मान प्राप्त करते हुए सहारा पाते हैं।

हे उदयाय, यदि मैं थोड़े से भोजन करने और उसकी प्रशंसा करने के लिए आदर और सम्मान पाता हूँ, तो आपको भी मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए, और उन्हें उचित सम्मान प्रदान करते हुए उनका समर्थन करना चाहिए। मेरे कुछ शिष्य एक कटोरी, आधी कटोरी, यहाँ तक कि एक बेल और आधा बेल भी ग्रहण करते हैं। दूसरी ओर, मैं कभी-कभी कटोरी भरकर, और कभी-कभी उससे भी अधिक ग्रहण करता हूँ। हे उदयाय, आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए। हे उदयाय, मेरे कुछ शिष्य एक कटोरी, आधी कटोरी, यहाँ तक कि एक बेल और आधा बेल भी ग्रहण करते हैं। हे उदयाय, आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए।

उदयी, यदि मैं वस्त्रों के लाभ से संतुष्ट होने और उसकी प्रशंसा करने के लिए आदर और सम्मान पाता हूँ, तो आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए और उन्हें उचित सम्मान प्रदान करते हुए उनका समर्थन करना चाहिए। मेरे कुछ शिष्य फटे-पुराने वस्त्र पहनते हैं, जो श्मशान भूमि, कूड़े के ढेर या दुकान के बाहर से मिली सामग्री से अपने तीनों वस्त्र बनाते हैं। वहीं, मैं कभी-कभी किसी गृहस्थ द्वारा अंकुश के खुरदुरे रस्से से कुशलतापूर्वक बनाए गए वस्त्र को धारण करता हूँ। उदयी, आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए और उनका आदर और सम्मान करते हुए उनका सम्मान करना चाहिए। उदयी, मेरे कुछ शिष्य फटे-पुराने वस्त्र पहनते हैं, जो श्मशान भूमि, कूड़े के ढेर या दुकान के बाहर से मिली सामग्री से अपने तीनों वस्त्र बनाते हैं। उदयी, आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए।

उदयी, यदि मैं भोजन के किसी भी टुकड़े से संतुष्ट होने और उसकी प्रशंसा करने के लिए सम्मानित और आदरणीय हूँ, तो आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए। आपको उनका समर्थन करना चाहिए और उन्हें उचित सम्मान देना चाहिए। मेरे कुछ शिष्य विधिवत भिक्षादान करते हैं। रीति-रिवाजों से जुड़े होने के कारण, वे किसी घर में प्रवेश करने पर भी बैठने की पेशकश किए जाने पर भी नहीं बैठते, जबकि दूसरी ओर, मैं कभी-कभी आमंत्रित भोजन ग्रहण करता हूँ, जो उत्तम चावल से बना होता है, जिसमें काले बीज निकाल दिए जाते हैं और विभिन्न प्रकार के करी और सूप परोसे जाते हैं। उदयी, आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए और उनका आदर और सम्मान करते रहना चाहिए। उदयी, मेरे कुछ शिष्य फटे-पुराने वस्त्र धारण करते हैं, वे अपने तीनों वस्त्र श्मशान भूमि, कूड़े के ढेर या दुकान के बाहर से प्राप्त सामग्री से बनाते हैं। उदयी, आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए।

उदयी, यदि मुझे आवासों के लाभ से संतुष्ट होने और उसकी प्रशंसा करने के लिए आदर और सम्मान दिया जाता है, तो आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए और उन्हें उचित सम्मान प्रदान करते हुए उनका समर्थन करना चाहिए। मेरे कुछ शिष्य खुले में, पेड़ के नीचे रहते हैं, वे आठ महीने तक छत की तलाश नहीं करते। वहीं मैं कभी-कभी अच्छी तरह से रंगे हुए, हवा और बारिश से सुरक्षित, कुंडीदार दरवाजों और खिड़कियों वाले छज्जेदार घर में रहता हूँ। उदयी, आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए और उनका आदर और सम्मान करते रहना चाहिए। उदयी, मेरे कुछ शिष्य खुले में, पेड़ के नीचे रहते हैं, वे आठ महीने तक छत की तलाश नहीं करते। उदयी, आपको मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए।

उदयी, यदि मुझे एकांतवास और उसकी प्रशंसा के लिए आदर और सम्मान प्राप्त है, तो आपको भी मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए और इसके लिए उचित सम्मान प्राप्त करना चाहिए। मेरे कुछ शिष्य वनवासी, पादप-शपथवासी, वन-जंगलवासी और वन-मार्गवासी हैं। वे भिक्षुओं के समुदाय में नहीं रहते। वे हर पखवाड़े में उच्च नियमों का पाठ करने आते हैं। दूसरी ओर, मैं भिक्षुओं, भिक्षुणियों, गृहस्थ शिष्यों, पुरुष और स्त्री, सभी से घिरा रहता हूँ। राजाओं, मंत्रियों और अन्य धर्मों के तपस्वियों से भी घिरा रहता हूँ। उदयी, आपको भी मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए और इसके लिए उचित सम्मान प्राप्त करना चाहिए। उदयी, मेरे कुछ शिष्य वनवासी, पादप-शपथवासी, वन-जंगलवासी और वन-मार्गवासी हैं। वे भिक्षुओं के समुदाय में नहीं रहते। वे हर पखवाड़े में उच्च नियमों का पाठ करने आते हैं। उदयी, तुम्हें मेरे शिष्यों का आदर और सम्मान करना चाहिए।

अतः उदयि, मेरे शिष्य इन पाँच बातों के कारण मेरा आदर और सम्मान नहीं करते तथा उचित सम्मान प्राप्त करते हुए मेरा सहारा नहीं लेते।

उदयी, पाँच अन्य बातें हैं जिनके कारण मेरे शिष्य मेरा आदर और सम्मान करते हैं और उचित सम्मान प्राप्त करते हुए मेरा समर्थन करते हैं। वे पाँच बातें क्या हैं? उदयी, मेरे शिष्य मुझे सद्गुणों के सर्वोच्च समूह के कारण आदर करते हैं। संन्यासी गौतम गुणी और सद्गुणों के सर्वोच्च समूह से परिपूर्ण हैं। यही वह पहली बात है जिसके कारण मेरे शिष्य मेरा आदर और सम्मान करते हैं।

हे उदयी, मेरे शिष्य मुझे ज्ञान और दृष्टि के सर्वोच्च भंडार के लिए आदर देते हैं; संन्यासी गौतम, जानते हुए कहते हैं, मैं जानता हूँ, देखते हुए कहते हैं, मैं देखता हूँ। ज्ञानी संन्यासी गौतम उदाहरणों के साथ और अद्भुत बातें कहकर उपदेश देते हैं। यही वह दूसरा कारण है जिसके कारण मेरे शिष्य मुझे आदर और श्रद्धा देते हैं।

उदयी, मेरे शिष्य मुझे सर्वोच्च ज्ञान के लिए आदर देते हैं। संन्यासी गौतम अत्यंत ज्ञान से संपन्न हैं। ऐसा संभव ही नहीं कि उन्होंने एक भी ऐसा संकेत न पहचाना हो, जिसके कारण भविष्य में कोई झूठा शिक्षक विवाद खड़ा करे, और उन्होंने वर्तमान में उत्पन्न होने वाले सभी विवादों का उचित समाधान किया है। उदयी, क्या आपने कभी मेरे किसी शिष्य को प्रवचन के बीच में मुझे टोकते हुए देखा है?

नहीं, आदरणीय महोदय, मैंने ऐसा नहीं किया है।

मेरे शिष्य मानते हैं कि वास्तव में, उन्हीं के कारण उन्हें सलाह मिलती है, इसलिए वे मुझे सर्वोच्च ज्ञान से सम्मानित करते हैं। यही तीसरा कारण है जिसके कारण मेरे शिष्य मेरा आदर और सम्मान करते हैं और इसके लिए उचित सम्मान प्राप्त करते हुए मेरा सहारा बनते हैं।

फिर, उदयि, जब मेरे शिष्य दुखी और अप्रियता से ग्रस्त होते हैं, तो वे मेरे पास आकर अप्रियता के महान सत्य के बारे में पूछते हैं। तब मैं उन्हें इसका अर्थ समझाता हूँ। मैं अप्रियता के महान सत्य को समझाकर उनके मन को आश्वस्त करता हूँ। वे अप्रियता के उत्पन्न होने के महान सत्य, अप्रियता के निवारण के महान सत्य और अप्रियता के निवारण के मार्ग के महान सत्य के बारे में पूछते हैं। मैं उन्हें अप्रियता के निवारण का मार्ग समझाता हूँ और उसे समझाकर उनके मन को आश्वस्त करता हूँ। यही वह चौथा कारण है जिसके कारण मेरे शिष्य मेरा आदर और सम्मान करते हैं और मेरा सहारा बनते हैं, और इसके लिए उचित सम्मान प्राप्त करते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को चार प्रकार की ध्यान साधना विधि बताई है। यहाँ भिक्षु शरीर में शरीर का चिंतन करते हुए, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए सचेत और जागरूक रहते हैं। वे भावनाओं में भावनाओं का चिंतन करते हुए, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए सचेत और जागरूक रहते हैं। वे मन में मानसिक अवस्थाओं का चिंतन करते हुए, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए सचेत और जागरूक रहते हैं। वे विचारों में विचारों का चिंतन करते हुए, संसार के प्रति लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए सचेत और जागरूक रहते हैं। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के उद्देश्य से मोक्ष की प्राप्ति के लिए चिंतन करते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को चार प्रकार के उचित कर्मों को विकसित करने की विधि बताई है। मेरे शिष्य इन चार उचित कर्मों को विकसित करने की विधि का अनुसरण करते हैं। हे उदयी, भिक्षु अजन्मे दोषों के उत्पन्न न होने के लिए प्रयास करते हैं, मन को एकाग्र करते हैं, रुचि और परिश्रम उत्पन्न करते हैं। भिक्षु उत्पन्न दोषों के निवारण के लिए प्रयास करते हैं, मन को एकाग्र करते हैं, रुचि और परिश्रम उत्पन्न करते हैं। भिक्षु अजन्मे गुणों के उत्पन्न होने के लिए प्रयास करते हैं, मन को एकाग्र करते हैं, रुचि और परिश्रम उत्पन्न करते हैं। भिक्षु उत्पन्न गुणों के स्थिर, स्थिर और विकास के लिए प्रयास करते हैं, मन को एकाग्र करते हैं, रुचि और परिश्रम उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार मेरे शिष्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को चार प्रकार की अलौकिक शक्तियों को विकसित करने की विधि बताई है। भिक्षु लगन और दृढ़ संकल्प से एकाग्रता की शक्ति विकसित करता है। भिक्षु प्रयास और दृढ़ संकल्प से एकाग्रता की शक्ति विकसित करता है। भिक्षु प्रयास और दृढ़ संकल्प से मानसिक एकाग्रता की शक्ति विकसित करता है और भिक्षु प्रयास और दृढ़ संकल्प से खोजपूर्ण एकाग्रता की शक्ति विकसित करता है। इसी प्रकार मेरे शिष्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयास करते रहते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को पंच प्रकार की मानसिक शक्तियों को विकसित करने की विधि बताई है। हे उदयी, भिक्षु विश्वास की मानसिक शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। भिक्षु प्रयास की मानसिक शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। भिक्षु ध्यान की मानसिक शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। भिक्षु एकाग्रता की मानसिक शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। भिक्षु ज्ञान की मानसिक शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। इसी प्रकार मेरे शिष्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मोक्ष प्राप्त करने के उद्देश्य से निवास करते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को पंच प्रकार की शक्तियों को विकसित करने की विधि बताई है। भिक्षु विश्वास की शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। भिक्षु प्रयास की शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। भिक्षु ध्यान की शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। भिक्षु एकाग्रता की शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है। भिक्षु ज्ञान की शक्ति विकसित करता है, जिससे शांति और मोक्ष प्राप्त होता है... इसी प्रकार मेरे शिष्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से शांति और मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहते हैं।

उदयी, मैंने अपने शिष्यों को सात ज्ञानोदय कारकों को विकसित करने की विधि बताई है। भिक्षु एकांत में रहकर, वैराग्य और अंत में त्याग की ओर अग्रसर होकर, ध्यान नामक ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है। भिक्षु एकांत में रहकर, वैराग्य और अंत में त्याग की ओर अग्रसर होकर, शिक्षा के अध्ययन नामक ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है। भिक्षु एकांत में रहकर, वैराग्य और अंत में त्याग की ओर अग्रसर होकर, प्रयास नामक ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है। भिक्षु एकांत में रहकर, वैराग्य और अंत में त्याग की ओर अग्रसर होकर, आनंद नामक ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है। भिक्षु एकांत में रहकर, वैराग्य और अंत में त्याग की ओर अग्रसर होकर, प्रसन्नता नामक ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है। भिक्षु एकांत में रहकर, वैराग्य और अंत में त्याग की ओर अग्रसर होकर, एकाग्रता नामक ज्ञानोदय कारक को विकसित करता है। भिक्षु एकांतवास में समभाव धारण करते हुए ज्ञान का विकास करता है, वैराग्य और अंत में त्याग की ओर अग्रसर होता है। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के लिए मोक्ष की ओर अग्रसर रहते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को आर्य अष्टांगिक मार्ग विकसित करने की विधि बताई है। हे उदयी, मेरे शिष्य सही समझ, सही विचार, सही शब्द, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता विकसित करें। इसी प्रकार मेरे शिष्य मोक्ष के लिए पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति की दिशा में निरंतर प्रयास करते रहें।

फिर से, उदयी, मैंने अपने शिष्यों को आठ मुक्ति प्राप्त करने की विधि बताई है: पदार्थ होते हुए पदार्थ को देखना, यह पहली मुक्ति है। [1] आंतरिक अमूर्त बोध से बाह्य पदार्थ को देखना, यह दूसरी मुक्ति है। केवल अच्छाई में मुक्त होना, यह तीसरी मुक्ति है। पदार्थ और क्रोध के सभी बोधों पर विजय प्राप्त करते हुए, विभिन्न बोधों पर ध्यान न देते हुए, असीम आकाश के साथ आकाश के क्षेत्र को प्राप्त करना, यह चौथी मुक्ति है। असीम चेतना के साथ आकाश के सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करते हुए, चेतना के क्षेत्र को प्राप्त करना, यह पाँचवीं मुक्ति है। कुछ भी न होते हुए, शून्यता के क्षेत्र में रहना, यह छठी मुक्ति है। शून्यता के सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करते हुए, न बोध-न अबोध में रहना, यह सातवीं मुक्ति है। न बोध-न अबोध के सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करते हुए, बोध और भावनाओं के निश्चिंतन में रहना, यह आठवीं मुक्ति है। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी मुक्ति के लिए पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से निरंतर प्रयासरत रहते हैं।

फिर से, उदयी, मैंने अपने शिष्यों को आठ निपुणताओं को विकसित करने की विधि बताई है। एक व्यक्ति आंतरिक भौतिक बोध*1) से सीमित बाहरी रूपों को सुंदर और कुरूप देखता है। उन पर महारत हासिल करके वह कहता है, मैं जानता और देखता हूँ। यह पहली निपुणता है। एक व्यक्ति आंतरिक भौतिक बोध से असीमित बाहरी रूपों को सुंदर और कुरूप देखता है। उन पर महारत हासिल करके वह कहता है, मैं जानता और देखता हूँ। यह दूसरी निपुणता है। एक व्यक्ति आंतरिक अमूर्त बोध से सीमित बाहरी रूपों को सुंदर और कुरूप देखता है। उन पर महारत हासिल करके वह कहता है, मैं जानता और देखता हूँ। यह तीसरी निपुणता है। एक व्यक्ति आंतरिक अमूर्त बोध से असीमित बाहरी रूपों को सुंदर और कुरूप देखता है। उन पर महारत हासिल करके वह कहता है, मैं जानता और देखता हूँ। यह चौथी निपुणता है। एक व्यक्ति आंतरिक अमूर्त बोध से नीले रंग के रूपों को रंग, आभा और चमक के साथ देखता है। नीले कमलों का रंग, आभा और चमक से युक्त, कश्मीरी वस्त्र की तरह, जिसमें दोनों तरफ रंग, आभा और चमक से युक्त होता है। उन पर महारत हासिल करके वह कहता है, मैं जानता और देखता हूँ। यह पाँचवीं निपुणता है। एक विशेष व्यक्ति, जो आंतरिक रूप से अमूर्त

बोध रखता है, पीले रंग की आकृतियों को देखता है जिनमें रंग, आभा और चमक समाहित हैं, कनिकारा फूलों के रंग की तरह, कश्मीरी वस्त्र की तरह, दोनों तरफ रंग, आभा और चमक समाहित हैं। इन पर महारत हासिल करके वह कहता है, मैं जानता और देखता हूँ। यह छठा महारत है। एक विशेष व्यक्ति, जो आंतरिक रूप से अमूर्त बोध रखता है, लाल रंग की आकृतियों को देखता है जिनमें रंग, आभा और चमक समाहित हैं, बंदूजीव फूलों की तरह, कश्मीरी वस्त्र की तरह, दोनों तरफ रंग, आभा और चमक समाहित हैं... इन पर महारत हासिल करके वह कहता है, मैं जानता और देखता हूँ। यह सातवां महारत है। एक विशेष व्यक्ति, जो आंतरिक रूप से अमूर्त बोध रखता है, सफेद रंग की आकृतियों को देखता है जिनमें सफेद रंग, आभा और चमक समाहित हैं, सुबह के तारे के रंग की तरह, कश्मीरी वस्त्र की तरह, दोनों तरफ रंग, आभा और चमक समाहित हैं। इन पर महारत हासिल करके वह कहता है, मैं जानता और देखता हूँ। यह आठवां महारत है। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी मुक्ति के लिए पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से निरंतर प्रयासरत रहते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को दस कसिन चिह्नों को विकसित करने की विधि बताई है। पृथ्वी का चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। जल का चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। अग्नि का चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। वायु का चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। नीला चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। पीला चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। लाल चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। सफेद चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। आकाश का चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। चेतना का चिह्न ऊपर, नीचे, आर-पार अनंत रूप से दिखाई देता है। इसी प्रकार मेरे शिष्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मुक्ति पाने के उद्देश्य से निरंतर प्रयास करते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को चार ध्यान विधियों को विकसित करने की विधि बताई है। जो भिक्षु इंद्रिय सुख और दोषों से विरक्त होकर, विचारों और चिंतन प्रक्रियाओं से मुक्त होकर, एकांतवास से उत्पन्न आनंद और सुख में लीन होकर प्रथम ध्यान में रहता है, वह उसी शरीर को एकांतवास से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण करता है, उसे पूर्ण बनाता है, उसे भर देता है; वह एकांतवास से उत्पन्न आनंद और सुख से शरीर के किसी भी भाग को अछूता नहीं छोड़ता। जैसे कोई स्नान करने वाला या उसका शिष्य पीतल के पात्र में स्नान का पाउडर डालकर पानी छिड़कते हुए उसे झाग के गोले में मिलाता है, बिना कुछ टपकने दिए। उसी प्रकार वह उसी शरीर को एकांतवास से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण करता है, उसे पूर्ण बनाता है और भर देता है; वह एकांतवास से उत्पन्न आनंद और सुख से शरीर के किसी भी भाग को अछूता नहीं छोड़ता। फिर भिक्षु विचारों और विचार-प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके, मन को आंतरिक रूप से शांत और एकाग्र करके, विचारों और विचार-प्रक्रियाओं से रहित होकर, एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होकर द्वितीय ध्यान में लीन हो जाते हैं। तब वे इसी शरीर को एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से व्याप्त कर देते हैं, उसे पूर्ण बनाते हैं, उसे परिपूर्ण कर देते हैं, और एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से कोई भी स्थान अछूता नहीं छोड़ते। जैसे एक गहरा तालाब, जिसमें चारों दिशाओं से जल का प्रवाह न हो, यहाँ तक कि वर्षा का पानी भी न गिरे, फिर भी तल से निकलने वाले शीतल जल से भरा और परिपूर्ण हो जाता है, और कोई भी स्थान शीतल जल से अछूता नहीं रहता। उसी प्रकार वे इसी शरीर को एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से व्याप्त कर देते हैं, उसे पूर्ण बनाते हैं, उसे परिपूर्ण कर देते हैं, और एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से कोई भी स्थान अछूता नहीं छोड़ते। फिर, हे भिक्षु उदयि, समभाव और वैराग्य के साथ सचेत और जागरूक रहते हुए, शरीर के सुख का भी अनुभव करते हुए, तीसरे ध्यान में रहते हैं - हे श्रेष्ठ जन कहते हैं, समभाव के साथ सुख में रहना। फिर वे इसी शरीर को आनंद रहित सुख से व्याप्त करते हैं, उसे पूर्ण बनाते हैं, उसे भर देते हैं, कोई भी स्थान आनंद रहित सुख से अछूता नहीं छोड़ते। जैसे नीले, लाल और सफेद कमल जल में उगते हैं, जल में विकसित होते हैं, जल में पोषित होते हैं और जल में खिलते हैं, उनके शीर्ष और जड़ जल से स्पर्शित रहते हैं, उनका कोई भी स्थान जल से अछूता नहीं रहता। उसी प्रकार वे इस शरीर को आनंद रहित सुख से व्याप्त करते हैं, उसे पूर्ण बनाते हैं, उसे भर देते हैं, और कोई भी स्थान आनंद रहित सुख से अछूता नहीं छोड़ते। फिर से, उदयि, जो सुख और दुख को दूर करने वाले भिक्षु हैं, और जिन्होंने पहले सुख और दुख पर विजय प्राप्त की थी, बिना किसी सुख-दुख के और समभाव से शुद्ध ध्यान के साथ चौथे ध्यान में निवास करते हैं। वे बैठे हुए अपने शुद्ध मन से पूरे शरीर को व्याप्त कर लेते हैं, कोई भी स्थान अछूता नहीं छोड़ते। उदयि,यह उस व्यक्ति के समान है जिसने अपने सिर सहित पूरे शरीर को सफेद कपड़े से ढक लिया है और शरीर का कोई भी हिस्सा उस कपड़े से अछूता नहीं है। ठीक उसी प्रकार, वह बैठे-बैठे अपने शुद्ध मन से पूरे शरीर को भर लेता है। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मुक्ति की प्राप्ति के उद्देश्य से लीन रहते हैं।

फिर, उदयी, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसे मेरे शिष्य जानते हैं। मेरा यह शरीर चार महा तत्वों से बना है, माता-पिता द्वारा उत्पन्न हुआ है, चावल और रोटी पर टिका है, क्षय, घिसाव, विखंडन और विनाश के अधीन है, और मेरी चेतना इसमें संलग्न है, इसमें बंधी है। जैसे उच्च कुल के एक सुंदर नीलमणि में आठ फलक होते हैं और उसमें नीले, पीले, लाल, सफेद या हल्के पीले रंग की डोरी होती है। इस प्रकार मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है। इस विधि से प्रभावित होकर मेरे शिष्य जानते हैं कि मेरा यह शरीर चार महा तत्वों से बना है, माता-पिता द्वारा उत्पन्न हुआ है, चावल और रोटी पर टिका है, क्षय, घिसाव, विखंडन और विनाश के अधीन है, और मेरी चेतना इसमें संलग्न है, इसमें बंधी है। इसी प्रकार मेरे शिष्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मुक्ति की प्राप्ति के लिए स्थिर रहते हैं।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, और इस विधि का पालन करके मेरे शिष्य एक पूर्ण, छोटे-बड़े अंगों और मानसिक क्षमताओं से युक्त मानसिक आकृति बना सकते हैं। हे उदयी, यह उस व्यक्ति के समान है जिसने घास से एक सरकंडा उठाया और उसे यह आभास हुआ कि यह सरकंडा है और यह घास है। हे उदयी, यह उस व्यक्ति के समान है जिसने म्यान से तलवार निकाली और उसे यह आभास हुआ कि यह तलवार है और यह म्यान है। तलवार एक वस्तु है और म्यान दूसरी वस्तु है। हे उदयी, यह उस व्यक्ति के समान है जिसने एक डिब्बे से सांप निकाला और उसे यह आभास हुआ कि यह सांप है और यह डिब्बा है। साँप एक चीज़ है और डिब्बा दूसरी चीज़। उसी प्रकार, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके प्रभाव में आकर मेरे शिष्य एक और शरीर, एक मानसिक रूप, बड़े और छोटे अंगों और मानसिक क्षमताओं से परिपूर्ण रचना कर सकते हैं। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मुक्ति पाने के उद्देश्य से निरंतर प्रयासरत रहते हैं।

फिर से, उदयी, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके फलस्वरूप मेरे शिष्य अनेक अलौकिक शक्तियों को प्राप्त कर सकते हैं; एक होकर अनेक हो सकते हैं, अनेक होकर एक हो सकते हैं। वे बिना किसी अवरोध के दीवारों, पहाड़ों और तटबंधों को पार कर सकते हैं, मानो अंतरिक्ष में जा रहे हों। पृथ्वी में गोता लगाना और उससे बाहर आना ऐसा हो सकता है जैसे जल में। जल पर चलना ऐसा हो सकता है जैसे पृथ्वी पर। अंतरिक्ष में पालथी मारकर बैठना, जैसे छोटे-बड़े पक्षी बैठते हैं। चंद्रमा और सूर्य के समान शक्तिशाली होकर हथेली से स्पर्श कर सकते हैं। ब्रह्मलोक में, शक्ति शरीर में समाहित होती है। एक कुशल कुम्हार या उसका शिष्य, अच्छी तरह से मिश्रित मिट्टी से अपनी इच्छानुसार बर्तन बना सकता है। या एक कुशल शिल्पकार या उसका शिष्य, अनुभवी हाथियों के दांतों से आभूषण बना सकता है। या एक कुशल सुनार या उसका शिष्य, शुद्ध सोने से सुंदर आभूषण बना सकता है। इसी प्रकार मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके फलस्वरूप मेरे शिष्य अनेक अलौकिक शक्तियों को प्राप्त कर सकते हैं; एक होकर अनेक हो सकते हैं, अनेक होकर एक हो सकते हैं। वे बिना किसी अवरोध के दीवारों, पहाड़ों और तटबंधों को पार कर सकते हैं, मानो अंतरिक्ष में जा रहे हों। पृथ्वी पर वे ऐसे गोता लगा सकते हैं और ऊपर आ सकते हैं जैसे जल में। वे जल पर ऐसे चल सकते हैं जैसे पृथ्वी पर। वे अंतरिक्ष में पक्षियों की तरह पैर मोड़कर बैठ सकते हैं। वे चंद्रमा और सूर्य के समान शक्तिशाली हो सकते हैं, उन्हें हथेली से स्पर्श कर सकते हैं। ब्रह्मा लोक तक शक्ति शरीर में समाहित है। इसी प्रकार मेरे शिष्य पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मुक्ति की प्राप्ति के उद्देश्य से निवास करते हैं।

फिर से, उदयी, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके प्रभाव में आकर मेरे शिष्य मानवीय क्षमता से परे शुद्ध दिव्य श्रवण शक्ति से दूर और पास की सभी दिव्य और मानवीय ध्वनियों को सुन सकते हैं। एक शक्तिशाली ढोल वादक की तरह, वे तुरंत चारों दिशाओं में समाचार फैला देते हैं। इसी प्रकार मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके प्रभाव में आकर मेरे शिष्य मानवीय क्षमता से परे शुद्ध दिव्य श्रवण शक्ति से दूर और पास की सभी दिव्य और मानवीय ध्वनियों को सुन सकते हैं। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी मुक्ति के लिए पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति की ओर अग्रसर रहते हैं।

फिर से, उदयी, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके द्वारा मेरे शिष्य अन्य प्राणियों के मन को भेद कर देख सकते थे। वे लोभ से ग्रस्त और लोभ रहित, क्रोधित और अक्रोधित, भ्रमित और अक्रोधित, संकुचित और विचलित, विकसित और अविकसित मन को जान सकते थे। वे अतुलनीय और अतुलनीय, एकाग्रता से ग्रस्त और अक्रोधित, मुक्त और अमुक्त मन को जान सकते थे। जैसे कोई स्त्री, पुरुष या बच्चा जो आभूषणों का शौकीन होता है, दर्पण में अपना चेहरा देखकर यह पता लगाता है कि उसके चेहरे पर तिल हैं या नहीं और तुरंत जान जाता है कि उसके चेहरे पर तिल हैं या नहीं। उसी प्रकार, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके द्वारा मेरे शिष्य अन्य प्राणियों के मन को भेद कर देख सकते थे। वे लोभ से ग्रस्त और लोभ रहित, क्रोधित और अक्रोधित, भ्रमित और अक्रोधित, संकुचित और विचलित, विकसित और अविकसित, अतुलनीय और अतुलनीय मन को जान सकते थे। एकाग्रता से भरे और एकाग्रताहीन मनों को जानो, मुक्त और मुक्त न हुए मनों को जानो। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी मुक्ति के लिए पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति की ओर अग्रसर रहो।

हे उदयी, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है। इस विधि का पालन करके मेरे शिष्य अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद कर सकते हैं। जैसे एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास जन्म, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, अनगिनत आगे के जन्म, अनगिनत पीछे के जन्म और अनगिनत आगे-पीछे के जन्म। वहाँ मेरा ऐसा नाम, ऐसा कुल, ऐसा स्वभाव, ऐसा आधार था, और मैंने ऐसे सुख-दुख का अनुभव किया और मेरा जीवनकाल ऐसा था। वहाँ से विलीन होकर मैं यहाँ ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसे स्वभाव, ऐसे आधार और ऐसे अनुभवों के साथ जन्म लेता हूँ, और ऐसे सुख-दुख का अनुभव करता हूँ। वहाँ से विलीन होकर मैं यहाँ जन्म लेता हूँ। इस प्रकार वे अपने अनेक पूर्व जन्मों को याद करते हैं। उदयी, यह उस व्यक्ति के समान है जो अपने गाँव से दूसरे गाँव जाता है, फिर वहाँ से तीसरे गाँव जाता है और फिर अपने गाँव लौट आता है: और उसे यह बात याद आती है। मैं अपने गाँव से उस गाँव गया, वहाँ मैं इस प्रकार खड़ा रहा, इस प्रकार बैठा, यह कहा और इस प्रकार मौन रहा। उस गाँव से मैं अगले गाँव गया, वहाँ मैं इस प्रकार खड़ा रहा, इस प्रकार बैठा, यह कहा और इस प्रकार मौन रहा। उस गाँव से मैं अपने गाँव लौट आया। इसी प्रकार, मैंने अपने शिष्यों को वह विधि

बताई है जिससे वे अनेक जन्मों, जैसे एक जन्म, दो जन्मों—को याद कर सकें। इस प्रकार अनेक पूर्व जन्मों को याद करें। इसी प्रकार मेरे शिष्य मोक्ष के लिए पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से स्थिर रहें।

फिर से, उदयी, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके द्वारा मेरे शिष्य मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से प्राणियों को प्रकट होते और लुप्त होते देख सकते हैं, चाहे वे उदात्त हों या उदात्त, सुंदर हों या कुरूप, अच्छे हों या बुरे, और उनके कर्मों के अनुसार प्राणियों को जान सकते हैं। ये अच्छे प्राणी, जो शरीर, वाणी और मन से कुकर्म करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा करते हैं, गलत दृष्टि और कर्मों के गलत दृष्टिकोण से कार्य करते हैं, मृत्यु के बाद हानि में जाते हैं, घटते हैं और नरक में जन्म लेते हैं। वहीं, ये अच्छे प्राणी, जो शरीर, वाणी और मन से सही आचरण करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते, सही दृष्टि और कर्मों के सही दृष्टिकोण से कार्य करते हैं, मृत्यु के बाद वृद्धि में जाते हैं और स्वर्ग में जन्म लेते हैं। इस प्रकार, मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार प्रकट होते और लुप्त होते देखा जा सकता है। यह ऐसा है जैसे दो घर हों जिनके दरवाजे अगल-बगल स्थित हों और एक घर में खड़ा व्यक्ति दूसरे घर में लोगों को आते-जाते और घूमते हुए देख सके। इसी प्रकार मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके फलस्वरूप मेरे शिष्य मानवीय दृष्टि से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से प्राणियों को प्रकट और लुप्त होते हुए, उदात्त, सुंदर और कुरूप, अच्छे और बुरे रूपों में उनके कर्मों के अनुसार देख सकते हैं। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के उद्देश्य से मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहते हैं।

फिर से, उदयी, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके अनुसरण से मेरे शिष्य इच्छाओं का नाश कर सकते हैं, मन को इच्छाओं से मुक्त कर सकते हैं, और ज्ञान से मुक्त होकर, इसे यहीं और अभी अनुभव कर सकते हैं। उदयी, एक पर्वत की चोटी पर एक घाटी है जिसमें शुद्ध, स्वच्छ और शांत जल है, और उसके किनारे पर खड़ा व्यक्ति सीपियाँ, कंकड़, रेत और मछलियों के झुंडों को चलते-फिरते और स्थिर देखता है। तब उस व्यक्ति को यह विचार आता है कि इस तालाब का जल शुद्ध, स्वच्छ और शांत है, और इसमें सीपियाँ, कंकड़, रेत और मछलियों के झुंड चल रहे हैं और स्थिर हैं। उदयी, उसी प्रकार, मैंने अपने शिष्यों को यह विधि बताई है, जिसके अनुसरण से मेरे शिष्य इच्छाओं का नाश कर सकते हैं, मन को इच्छाओं से मुक्त कर सकते हैं, और ज्ञान से मुक्त होकर, इसे यहीं और अभी अनुभव कर सकते हैं। इसी प्रकार मेरे शिष्य भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने और मुक्ति पाने के उद्देश्य से स्थिर रहते हैं।

उदयि, यह पाँचवाँ कारण है जिसके कारण मेरे शिष्य मेरा आदर और सम्मान करते हैं और इसके लिए उचित सम्मान प्राप्त करते हुए मेरा सहारा बने रहते हैं।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और भ्रमणशील तपस्वी सकुलुदयी भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 8.8समनमंदिका सुत्त(78)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। उस समय, ध्यानमग्न मुंडिका के अनुयायी उगाहमना,1 लगभग 500 साधकों के एक बड़े समूह के साथ, रानी मल्लिका के एकल मंडप वाले उद्यान में तिन्दुका वृक्ष के पास स्थित विमर्श कक्ष में निवास कर रहे थे। तब बढ़ई पंचकंग दिन के मध्य में भगवान बुद्ध से मिलने के लिए सावत्थी से निकले, लेकिन उनके मन में यह विचार आया, "भगवान बुद्ध से मिलने का यह सही समय नहीं है, क्योंकि वे एकांतवास में हैं। और मन विकास करने वाले भिक्षुओं से मिलने का भी यह सही समय नहीं है, क्योंकि वे भी एकांतवास में हैं। क्यों न मैं रानी मल्लिका के एकल मंडप वाले उद्यान में तिन्दुका वृक्ष के पास स्थित विमर्श कक्ष में जाकर ध्यानमग्न मुंडिका के अनुयायी उगाहमना से मिलूँ?" इसलिए वह रानी मल्लिका के एकल मंडप वाले पार्क में तिन्दुका वृक्ष के पास स्थित वाद-विवाद कक्ष की ओर चल पड़ा।

उस अवसर पर उगाहमाना अपने विशाल अनुयायियों के साथ बैठा था, सभी मिलकर खूब शोर मचा रहे थे और कई प्रकार के पशुवत विषयों पर चर्चा कर रहे थे: राजाओं, लुटेरों और राज्य मंत्रियों के बारे में बातचीत; सेनाओं, चेतावनियों और लड़ाइयों के बारे में बातचीत; भोजन और पेय के बारे में बातचीत; वस्त्र, फर्नीचर, मालाओं और सुगंधों के बारे में बातचीत; रिश्तेदारों के बारे में बातचीत; वाहनों के बारे में बातचीत; गांवों, कस्बों, शहरों और ग्रामीण इलाकों के बारे में बातचीत; महिलाओं और नायकों के बारे में बातचीत; गली और कुएं की गपशप के बारे में बातचीत; मृतकों की कहानियों के बारे में बातचीत; विविधता की कहानियों, दुनिया और समुद्र की

रचना के बारे में बातचीत; और इस बारे में बातचीत कि चीजें अस्तित्व में हैं या नहीं। फिर उगाहमना ने दूर से बढ़ते हुए पंचकंग को आते देखा और उसे देखकर अपने अनुयायियों को चुप रहने का आदेश दिया: "महोदय, शांत रहें। कोई शोर न करें। पंचकंग बढ़ई आ रहा है, जो ध्यानमग्न गौतम का शिष्य है। वह ध्यानमग्न गौतम के उन शिष्यों में से एक है, जो सफेद वस्त्र धारण करके श्रावस्ती में रहते हैं। ये लोग शांतिप्रिय हैं, शांति में प्रशिक्षित हैं और शांति की प्रशंसा करते हैं। शायद, यदि वह हमारे समूह को शांत देखेगा, तो वह हमारे रास्ते आने पर विचार करेगा।" इस प्रकार सभी यात्री चुप हो गए।

फिर पंचकंग उगाहमना के पास गए और वहाँ पहुँचकर उनका विनम्रतापूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद वे एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, उगाहमना ने उनसे कहा, "मैं चार गुणों से संपन्न व्यक्ति को निपुण, सर्वोत्कृष्ट और सर्वोच्च उपलब्धियों को प्राप्त अजेय ध्यानी कहता हूँ। वे चार गुण कौन से हैं? एक वह स्थिति है जहाँ वह अपने शरीर से कोई बुरा कार्य नहीं करता, कोई बुरी बात नहीं बोलता, कोई बुरा संकल्प नहीं लेता और बुरे साधनों से अपना जीवन यापन नहीं करता। इन चार गुणों से संपन्न व्यक्ति को मैं निपुण, सर्वोत्कृष्ट और सर्वोच्च उपलब्धियों को प्राप्त अजेय ध्यानी कहता हूँ।"

तब पंचकंगा ने न तो उगाहमना के शब्दों से प्रसन्नता व्यक्त की और न ही उनका उपहास किया। प्रसन्नता और उपहास दोनों ही भावों को व्यक्त करते हुए, वे अपनी सीट से उठे और यह सोचते हुए चले गए, "मैं इस कथन का अर्थ भगवान बुद्ध की उपस्थिति में जानूंगा।"

फिर वह भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध को उगाहमाना के साथ हुई सारी बातचीत सुनाई।

यह सुनकर भगवान बुद्ध ने पंचकंग से कहा, "हे बढ़ई, तो उगाहमन के शब्दों में, पीठ के बल लेटा हुआ एक मूर्ख शिशु भी निपुणता में पारंगत है, निपुणता में अग्रणी है, सर्वोच्च उपलब्धियों को प्राप्त एक अजेय ध्यानशील है। क्योंकि पीठ के बल लेटे हुए एक मूर्ख शिशु के मन में 'शरीर' का विचार भी नहीं आता, तो वह अपने शरीर से थोड़ा लात मारने के अलावा कोई बुरा कार्य कहाँ से करेगा? उसके मन में 'वाणी' का विचार भी नहीं आता, तो वह थोड़ा रोने के अलावा कोई बुरी बात कहाँ से कहेगा? उसके मन में 'संकल्प' का विचार भी नहीं आता, तो वह थोड़े क्रोध के अलावा कोई बुरा संकल्प कहाँ से लेगा? उसके मन में 'आजीविका' का विचार भी नहीं आता, तो वह अपनी माँ के दूध के अलावा किसी बुरे साधन से अपना भरण-पोषण कहाँ से करेगा? अतः उगाहमन के शब्दों में, पीठ के बल लेटा हुआ एक मूर्ख शिशु निपुणता में पारंगत है।" जो कुशल है उसमें, जो कुशल है उसमें सर्वोपरि, एक अजेय ध्यानमग्न व्यक्ति ने उच्चतम उपलब्धियों को प्राप्त किया।

यदि किसी व्यक्ति में ये चार गुण हों, तो मैं उसे निपुण, कुशल, या सर्वोच्च उपलब्धियों को प्राप्त करने वाला अजेय ध्यानी नहीं कहता। बल्कि, वह पीठ के बल लेटे एक मूर्ख शिशु के समान है। वे कौन से चार गुण हैं? वह स्थिति है जिसमें वह अपने शरीर से कोई बुरा कार्य नहीं करता, कोई बुरी बात नहीं बोलता, कोई बुरा संकल्प नहीं लेता और बुरे साधनों से अपना जीवन यापन नहीं करता। यदि किसी व्यक्ति में ये चार गुण हों, तो मैं उसे निपुण, कुशल, या सर्वोच्च उपलब्धियों को प्राप्त करने वाला अजेय ध्यानी नहीं कहता। बल्कि, वह पीठ के बल लेटे एक मूर्ख शिशु के समान है।

"दस गुणों से संपन्न व्यक्ति को मैं निपुणता में पारंगत, निपुणता में अग्रणी, और सर्वोच्च उपलब्धियों को प्राप्त अजेय ध्यानी कहता हूँ। इस संदर्भ में, यह जानना आवश्यक है कि 'ये अकुशल आदतें हैं,' मैं कहता हूँ। इस संदर्भ में, यह जानना आवश्यक है कि 'यही अकुशल आदतों का कारण है'...'यहाँ अकुशल आदतें पूरी तरह समाप्त हो जाती हैं'...'इस प्रकार का अभ्यास अकुशल आदतों के निवारण की ओर ले जाता है,' मैं कहता हूँ।"

"उस बिंदु के संबंध में, किसी को यह जानना चाहिए कि 'ये कुशल आदतें हैं'...'यह कुशल आदतों का कारण है'...'यहाँ कुशल आदतें बिना किसी निशान के समाप्त हो जाती हैं'...'इस प्रकार का अभ्यास कुशल आदतों के समाप्त होने की ओर ले जाने वाला अभ्यास है,' मैं कहता हूँ।"

"उस बिंदु के संबंध में, किसी को यह जानना चाहिए कि 'ये अकुशल संकल्प हैं'... 'यही अकुशल संकल्पों का कारण है'... 'यहाँ अकुशल संकल्प बिना किसी निशान के समाप्त हो जाते हैं'... 'इस प्रकार का अभ्यास अकुशल संकल्पों के समाप्त होने की ओर ले जाने वाला अभ्यास है', मैं कहता हूँ।"

"उस बिंदु के संबंध में, किसी को यह जानना चाहिए कि 'ये कुशल संकल्प हैं'...'यह कुशल संकल्पों का कारण है'...'यहाँ कुशल संकल्प बिना किसी निशान के समाप्त हो जाते हैं'...'इस प्रकार का अभ्यास कुशल संकल्पों के समाप्त होने की ओर ले जाने वाला अभ्यास है,' मैं कहता हूँ।"

"अकुशल आदतें क्या हैं? अकुशल शारीरिक क्रियाएँ, अकुशल वाणी क्रियाएँ, और आजीविका के बुरे साधन। इन्हें अकुशल आदतें कहा जाता है। अकुशल आदतों का कारण क्या है? इनका कारण बताया जा चुका है, और इन्हें मन-जनित कहा जाता है। कौन सा मन? - क्योंकि मन के अनेक गुण और रूप होते हैं। कोई भी मन जिसमें वासना, घृणा या भ्रम हो: वही अकुशल आदतों का कारण है। अब अकुशल आदतें कहाँ पूरी तरह समाप्त हो जाती हैं? उनका समापन बताया जा चुका है: वह स्थिति जब कोई भिक्षु गलत शारीरिक आचरण को त्यागकर सही शारीरिक आचरण अपनाता है, गलत वाणी को त्यागकर सही वाणी अपनाता है, गलत आजीविका को त्यागकर सही आजीविका अपनाता है। यहीं पर अकुशल आदतें पूरी तरह समाप्त हो जाती हैं। और अकुशल आदतों के समापन की ओर ले जाने वाला अभ्यास किस प्रकार का है? वह स्थिति जब कोई भिक्षु बुराई के उत्पन्न न होने के लिए इच्छा उत्पन्न करता है, प्रयास करता है, दृढ़ता जगाता है, और अपने इरादे को दृढ़ रखता है और उस पर बल देता है।" अकुशल गुणों का त्याग करना जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुए हैं...बुराई को त्यागने के लिए; अकुशल गुणों का त्याग करना जो उत्पन्न हो चुके हैं...उन कुशल गुणों के उदय के लिए जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुए हैं...(और) उत्पन्न हो चुके कुशल गुणों के रखरखाव, अव्यवस्था दूर करने, वृद्धि, परिपूर्णता, विकास और पराकाष्ठा के लिए। इस प्रकार का अभ्यास अकुशल आदतों के निवारण की ओर ले जाता है।

"और कुशल आदतें क्या हैं? कुशल शारीरिक क्रियाएं, कुशल वाणी क्रियाएं, आजीविका की पवित्रता। इन्हें कुशल आदतें कहा जाता है। कुशल आदतों का कारण क्या है? इनका कारण भी बताया जा चुका है, और इन्हें मन-प्रेरित कहा जाता है। कौन सा मन? - क्योंकि मन के अनेक गुण और रूप होते हैं। कोई भी मन जो वासना, घृणा और भ्रम से रहित हो: वही कुशल आदतों का कारण है। अब कुशल आदतें कहाँ बिना किसी निशान के समाप्त हो जाती हैं? उनका समाप्त होना भी बताया जा चुका है: एक स्थिति है जहाँ एक भिक्षु गुणी होता है, परन्तु गुण से निर्मित नहीं होता।2 वह यथास्थिति में जागरूकता और विवेक की मुक्ति को पहचानता है जहाँ उसकी कुशल आदतें बिना किसी निशान के समाप्त हो जाती हैं। और कुशल आदतों के समाप्त होने की ओर ले जाने वाला अभ्यास किस प्रकार का है? एक स्थिति है जहाँ एक भिक्षु इच्छा उत्पन्न करता है... उन बुरे, अकुशल गुणों के उत्पन्न न होने के लिए जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुए हैं... उन बुरे, अकुशल गुणों के त्याग के लिए जो उत्पन्न हो चुके हैं... अविकसित कुशल गुणों के उद्भव के लिए...(और) विकसित हो चुके कुशल गुणों के विकास और पराकाष्ठा के लिए। इस प्रकार का अभ्यास कुशल आदतों के अंत की ओर ले जाता है।

और अकुशल संकल्प क्या हैं? कामुकता, द्वेष और हानि पहुँचाने के संकल्प। इन्हें अकुशल संकल्प कहते हैं। अकुशल संकल्पों का कारण क्या है? इनका कारण भी बताया जा चुका है, और इन्हें बोध-जनित कहा जाता है। कौन सा बोध? क्योंकि बोध के अनेक रूप और क्रमपरिवर्तन होते हैं। कोई भी कामुकता-बोध, द्वेष-बोध या हानि पहुँचाने का बोध: वही अकुशल संकल्पों का कारण है। अब अकुशल संकल्प कहाँ बिना किसी निशान के समाप्त हो जाते हैं? उनका समाप्त होना भी बताया जा चुका है: वह स्थिति है जहाँ एक भिक्षु, कामुकता से पूर्णतः विरक्त होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: विरक्तता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ। यहीं पर अकुशल संकल्प बिना किसी निशान के समाप्त हो जाते हैं। और अकुशल संकल्पों के समाप्त होने की ओर ले जाने वाला अभ्यास किस प्रकार का है? वह स्थिति है जहाँ एक भिक्षु इच्छा उत्पन्न करता है... ताकि... अकुशल और अनचाहे गुणों को त्यागने के लिए, जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुए हैं... उन अकुशल गुणों को त्यागने के लिए जो उत्पन्न हो चुके हैं... उन कुशल गुणों को उत्पन्न करने के लिए जो अभी तक उत्पन्न नहीं हुए हैं... (और) उन कुशल गुणों के विकास और पराकाष्ठा के लिए जो उत्पन्न हो चुके हैं। इस प्रकार का अभ्यास अकुशल संकल्पों के निवारण की ओर ले जाता है।

"और कुशल संकल्प क्या हैं? त्याग (इंद्रिय सुख से मुक्ति), द्वेष रहित रहने और अहिंसा का संकल्प लेना। इन्हें कुशल संकल्प कहते हैं। कुशल संकल्पों का कारण क्या है? इनका कारण भी बताया जा चुका है, और इन्हें बोध-प्रेरित कहा जाता है। कौन सा बोध? क्योंकि बोध के अनेक रूप और क्रमपरिवर्तन होते हैं। कोई भी त्याग-बोध, द्वेष रहित बोध या अहिंसा-बोध: यही कुशल संकल्पों का कारण है। अब कुशल संकल्प कहाँ बिना किसी निशान के समाप्त हो जाते हैं? इनका समाप्त होना भी बताया जा चुका है: वह स्थिति है जब एक भिक्षु, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों को शांत करके, द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। यहीं पर कुशल संकल्प बिना किसी निशान के समाप्त हो जाते हैं। और कुशल संकल्पों के समाप्त होने की ओर ले जाने वाला अभ्यास किस प्रकार का है? वह स्थिति है जब एक भिक्षु इच्छा उत्पन्न करता है... ताकि... अविकसित, अकुशल गुणों के त्याग के लिए...विकसित, अकुशल गुणों के त्याग के लिए...अविकसित, अविकसित, अकुशल गुणों के उद्भव के लिए...(और) विकसित, विकसित गुणों के पराकाष्ठा के लिए। इस प्रकार का अभ्यास कुशल संकल्पों के अंत की ओर ले जाता है।

अब, वह व्यक्ति कौन है जो उन दस गुणों से परिपूर्ण है जिन्हें मैं निपुणता में पारंगत, निपुणता में अग्रणी, और सर्वोच्च उपलब्धियों को प्राप्त करने वाला अजेय ध्यानी कहता हूँ? वह व्यक्ति जो प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के सही दृष्टिकोण, प्रशिक्षण से परे व्यक्ति के सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता, सही एकाग्रता, सही ज्ञान और प्रशिक्षण से परे व्यक्ति की सही मुक्ति से परिपूर्ण है। इन दस गुणों से परिपूर्ण व्यक्ति को मैं निपुणता में पारंगत, निपुणता में अग्रणी, और सर्वोच्च उपलब्धियों को प्राप्त करने वाला अजेय ध्यानी कहता हूँ।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। इससे प्रसन्न होकर बढ़ई पंचकंगा ने भगवान बुद्ध के शब्दों पर आनंद मनाया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 8.9 कुलसाकुलुदायि सुत्त(79)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना है। एक समय भगवान बुद्ध बांस के जंगल में गिलहरियों के आश्रम में रह रहे थे। उस समय, मोरा आश्रम में स्थित भिक्षुओं के मठ में सकुलुदयी कई भिक्षुओं के साथ रह रहे थे। फिर भगवान बुद्ध ने सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। तब भगवान बुद्ध के मन में विचार आया, राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत सुबह है, क्यों न मैं भिक्षुओं के मठ में जाकर सकुलुदयी से मिलूं? तब भगवान बुद्ध मोरा आश्रम में स्थित भिक्षुओं के मठ में गए। उस समय, घुमंतू तपस्वी सकुलुदयी, घुमंतू तपस्वियों की एक बड़ी सभा के साथ बैठे थे, जो बहुत शोर मचाते हुए राजाओं, लुटेरों, प्रधानमंत्रियों, सेना, भय, लड़ाई-झगड़ों, खाने-पीने की चीजों, वस्त्रों, पलंगों, फूलों, सुगंधों, रिश्तेदारों, वाहनों, गांवों, बस्तियों, कस्बों, राज्यों, स्त्रियों, वीरों, गली के कोने पर गपशप, कुएँ पर गपशप, मरे हुओं के बारे में, संसार और सागर की उत्पत्ति के बारे में, घटी हुई और न घटी हुई बातों के बारे में तरह-तरह की बचकानी बातें कर रहे थे। घुमंतू तपस्वी सकुलुदयी ने दूर से भगवान बुद्ध को आते देखा और सभा को शांत कराया। 'हे सज्जनों, शांत हो जाइए, इतना शोर मत कीजिए। संन्यासी गौतम आ रहे हैं। ये आदरणीय शांत हैं, और शायद इस सभा के शांत होने का फायदा उठाकर पास आने का सोच रहे होंगे।' तब वे घुमंतू तपस्वी शांत हो गए।

तब भगवान बुद्ध भ्रमणरत तपस्वी सकुलुदायी के पास पहुँचे, और सकुलुदायी ने भगवान बुद्ध से कहा, 'हे गौतम, आइए! बहुत समय बाद हे गौतम ने आने का मन बनाया है। हे गौतम, बैठिए, आसन तैयार है।'

भगवान बुद्ध तैयार आसन पर बैठ गए, और वह तपस्वी भी एक तरफ झुककर बैठ गया। भगवान बुद्ध ने कहा, 'तुम यहाँ किस विषय पर बात करने बैठे थे और बातचीत का विषय क्या था?'

आदरणीय महोदय, उस विषय को रहने दीजिए जिस पर हम अभी बैठे हैं। भगवान बुद्ध का प्रवचन दुर्लभ है और यह प्रवचन बाद में सुना जा सकता है। आदरणीय महोदय, जब मैं इस सभा में उपस्थित नहीं होता, तो ये लोग तरह-तरह की बचकानी बातें करते हैं। जब मैं उनके पास जाता हूँ, तो वे मेरी ओर देखते हुए बैठ जाते हैं, ताकि वे सुन सकें कि मुझे क्या कहना है। उदयि जो कुछ भी कहेंगे, हम उसे सुनेंगे। जब भगवान बुद्ध आते हैं, तो मैं और यह सभा भगवान बुद्ध के मुख की ओर देखते हैं, भगवान बुद्ध जो कुछ भी कहेंगे, हम उसे सुनेंगे।

तब उदयी, मुझे बताओ कि मुझे तुम्हें क्या सिखाना है।

आदरणीय महोदय, बहुत समय पहले की बात है। मैंने एक संन्यासी से, जो निरंतर ज्ञान और दृष्टि को धारण किए रहते हैं, चलते-फिरते, खड़े होते, लेटे होते या जागते हुए, आदि के बारे में एक प्रश्न पूछा। जब मैंने प्रश्न पूछा, तो उन्होंने मुझसे दूसरा प्रश्न पूछकर विषय बदल दिया और क्रोध, घृणा और नाराजगी प्रकट की। आदरणीय महोदय, तब मुझे यह विचार आया कि यह प्रश्न भगवान बुद्ध से ही पूछा जाना चाहिए, वही इस प्रश्न का उत्तर देने में सक्षम हैं।

'उदयि, यह कौन संन्यासी है, जो चलते, खड़े, लेटे या जागते हुए भी निरंतर और सतत रूप से स्थापित ज्ञान और दृष्टि को स्वीकार करता है? जब उससे आरंभ के बारे में कोई प्रश्न पूछा जाता है, तो वह दूसरा प्रश्न पूछकर विषय बदल देता है और क्रोध, घृणा और अप्रसन्नता प्रकट करता है?'

आदरणीय महोदय, यह निगंथनातपुत्त है।

उदयी, यह प्रश्न मुझसे ही पूछा गया है, जो एक जन्म, दो जन्म, --- अनेक पूर्व जन्मों को उनके सभी रूपों और विवरणों सहित याद करता हूँ। मैं इस प्रश्न का उत्तर देकर तुम्हारे मन को संतुष्ट कर सकता था। उदयी, मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से, मैं प्राणियों को उदात्त और उदात्त अवस्थाओं में, सुंदर और कुरूप, अच्छे और बुरे रूपों में प्रकट और लुप्त होते देखता हूँ। मैं प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार जानता हूँ। यह प्रश्न मुझसे ही पूछा गया है। मैं इस प्रश्न का उत्तर देकर तुम्हारे मन को संतुष्ट कर सकता था। फिर भी उदयी, न तो शुरुआत की बात है और न ही अंत की, मैं तुम्हें सिखाऊँगा कि जब यह है, तो यह है; जब यह है, तो यह उत्पन्न होता है; जब यह है, तो यह उत्पन्न होता है; जब यह नहीं है, तो यह नहीं है; और जब यह समाप्त होता है, तो यह समाप्त होता है।

आदरणीय गुरुदेव, मैं स्वयं को भी नहीं समझ पाता। मेरे लिए अपने अनेक पूर्व जन्मों को, उनके सभी गुणों और विवरणों सहित, जैसे एक जन्म, दो जन्म, आदि, याद रखना संभव नहीं है, जैसा कि भगवान बुद्ध को है। आदरणीय गुरुदेव, अब तो मुझे मिट्टी का एक छोटा सा जीव भी दिखाई नहीं देता, तो मैं मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से कैसे देख पाऊँगा, जो प्राणियों को उदात्त और उदात्त अवस्थाओं में प्रकट और लुप्त होते हुए देखती है—और प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार कैसे जान पाऊँगा, जैसा कि भगवान बुद्ध जानते हैं। फिर भी भगवान बुद्ध ने कहा, आरंभ और अंत की तो बात ही छोड़िए, मैं उपदेश दूँगा - जब यह है, तब यह है, जब यह उत्पन्न होता है, तब यह उत्पन्न होता है। जब यह नहीं है, तब यह नहीं है, और जब यह है, तब यह है। यह मेरे लिए अत्यंत प्रसन्नता का विषय है, फिर भी मैं इसे नहीं समझ पाता। आदरणीय गुरुदेव, क्या मेरे गुरु को उनके प्रश्न का उत्तर देकर संतुष्ट किया जा सकता है?

'उदयी, तुम्हारे शिक्षक का क्या विचार है?'

आदरणीय महोदय, मेरे गुरु का मत है कि यह सबसे उत्तम रूप है। 'उदयी, आपके गुरु का मत है कि यह सबसे उत्तम रूप है, यह उत्तम रूप कैसा है?'

आदरणीय महोदय, इस उत्कृष्ट रूप से अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट रूप और कोई नहीं है।

'उदयि, यह कैसा रूप है, जिसके आगे कोई दूसरा रूप इतना श्रेष्ठ और उत्तम नहीं है?'

आदरणीय महोदय, जब इससे अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट कोई और रूप न हो, तो वही सबसे उत्तम रूप है।

'उदयि, क्या यह लंबाई में विस्तारित है?'

आदरणीय महोदय, क्योंकि इससे अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट कोई रूप नहीं है, इसलिए इसे सर्वोच्च रूप कहा जाता है, और इसे इंगित नहीं किया जा सकता है।

उदयी, यह कुछ इस प्रकार है। एक पुरुष कहता है, "मैं इस राज्य में सबसे सुंदर स्त्री को चाहता और उससे प्रेम करता हूँ।" तब उससे पूछा जाता है, "हे जन, जिस सबसे सुंदर स्त्री को तुम चाहते हो, क्या वह योद्धा कुल की है, ब्राह्मण कुल की है, गृहस्थ कुल की है या किसी अन्य जाति की है?" पूछे जाने पर वह कहता है, "नहीं।" तब उससे पूछा जाता है, "हे जन, जिस सबसे सुंदर स्त्री को तुम चाहते और उससे प्रेम करते हो, क्या तुम जानते हो कि वह किस कुल की है? क्या तुम जानते हो कि वह लंबी है, छोटी है या मध्यम? क्या तुम जानते हो कि वह सांवली है, गोरी है या भूरी? क्या तुम जानते हो कि वह किस गाँव, बस्ती या कस्बे में रहती है?" पूछे जाने पर वह कहता है, "नहीं।" तब उससे कहा जाता है, "हे जन, क्या तुम किसी ऐसी स्त्री को चाहते और उससे प्रेम करते हो जिसे तुम नहीं जानते और न ही देखा है?" तब वह कहता है, "हाँ।" उदयी, क्या तुम सोचते हो? क्या यह सब बातें व्यर्थ नहीं लगतीं?

आदरणीय महोदय, जब ऐसा होता है, तो उस व्यक्ति की बातें मूर्खतापूर्ण प्रतीत होती हैं।

इसी प्रकार, हे आदरणीय, आप कहते हैं, जब उस रूप से अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट कोई दूसरा रूप न हो, तो वही सबसे उत्तम रूप है, और आप उस रूप की ओर इशारा नहीं करते।

आदरणीय महोदय, यह उत्तम कुल के लेपिस रत्न के समान है, जिसमें आठ पहलू हैं, जो पूर्ण रूप से परिपूर्ण है और जब इसे नारंगी रंग के कंबल में रखा जाता है, तो यह चमकता है, ऊष्मा उत्सर्जित करता है और प्रकाशमान होता है। मृत्यु के बाद आत्मा का स्वरूप भी ऐसा ही होगा, जो स्वस्थ होगी।

"उदयि, इन दो चीजों के बारे में आपका क्या विचार है? एक तो उत्तम कुल का आठ फलकों वाला, सुगठित और नारंगी रंग के आवरण में सुशोभित नीलम, और दूसरा रात के अंधेरे में चमकते, ऊष्मा उत्सर्जित करते और प्रकाशमान होते हुए अधिक सुंदर रूप धारण करने वाले कीड़े और जुगनू?"

आदरणीय महोदय, इन दो दृश्यों में से अधिक उत्कृष्ट दृश्य रात के अंधेरे में दिखने वाले कीड़े और जुगनू होंगे।

"उदयि, इन दो में से, रात के अंधेरे के लिए कीड़े और जुगनू, और जलता हुआ तेल का दीपक, चमकने, गर्मी उत्सर्जित करने और प्रकाश प्रदान करने में अधिक सुंदर दिखता है?"

आदरणीय महोदय, इन दो रूपों में से, जलता हुआ तेल का दीपक अधिक उत्तम रूप है, जो ऊष्मा उत्सर्जित करता है और प्रकाश प्रदान करता है।

"उदयि, इन दोनों में से, रात के अंधेरे के लिए जला हुआ तेल का दीपक और रात के अंधेरे के लिए आग का एक बड़ा गोला, कौन सा चमकने, गर्मी उत्सर्जित करने और प्रकाश देने में अधिक सुंदर दिखता है?"

आदरणीय महोदय, इन दो रूपों में से, अंधकार के लिए अग्नि के विशाल पिंड का रूप अधिक उत्कृष्ट होगा।

"उदयि, इन दोनों में से, अंधकार के लिए अग्नि का विशाल पिंड और रात के अंतिम पहर में, जब आकाश साफ होता है, तो भोर का तारा, चमकने, ऊष्मा उत्सर्जित करने और प्रकाशमान होने में कौन अधिक सुंदर दिखता है?"

हे आदरणीय महोदय, इन सभी दृश्यों में सबसे उत्तम दृश्य रात्रि के अंतिम पहर में, जब आकाश निर्मल हो, भोर का तारा है।

"उदयि, इन दोनों में से, रात के अंतिम पहर में, जब आकाश साफ होता है, भोर का तारा और आधी रात को, जब आकाश साफ और बादलों से रहित होता है, पूर्णिमा का चंद्रमा, कौन सा तारा चमकने, ऊष्मा उत्सर्जित करने और प्रकाश प्रदान करने में अधिक सुंदर दिखता है?"

आदरणीय महोदय, इन दो दृश्यों में से, मध्यरात्रि के समय पूर्ण चंद्रमा का दिखना अधिक उत्तम है, जब आकाश निर्मल और बादलों से रहित हो।

"उदयी, इन दोनों में से, मध्यरात्रि को जब आकाश साफ और बादलों से रहित होता है, पूर्णिमा का चंद्रमा और ग्रीष्म ऋतु में दोपहर के समय आकाश में सूर्य, कौन सा प्रकाशमान, ऊष्मा उत्सर्जित करने वाला और प्रकाशमान दिखने में अधिक उत्तम है?"

आदरणीय महोदय, इन दो दृश्यों में से ग्रीष्म ऋतु में दोपहर के समय आकाश में सूर्य का दृश्य अधिक उत्कृष्ट है।

"उदयी, इन देवताओं में से कई की श्रेष्ठता चंद्रमा और सूर्य की श्रेष्ठता से भी अधिक है; मैं उन्हें जानता हूँ, फिर भी मैं यह नहीं बता सकता कि किसका रूप दूसरे से अधिक श्रेष्ठ और उत्तम है। फिर भी, तुम कहते हो कि यह रूप, जो कीड़े और जुगनू के रूप से भी कमतर है, सबसे श्रेष्ठ और उत्तम रूप है। तुम यह भी नहीं बताओगे।"

आदरणीय महोदय, मुझे क्षमा करें, हे दिवंगत, मुझे क्षमा करें!

'उदयी, तुम ऐसा क्यों कहते हो, 'मुझे क्षमा कर दो, आदरणीय महोदय, और मुझे क्षमा कर दो, शुभ यात्रा करने वाले?'

आदरणीय महोदय, मेरे गुरु का यह मत है: यह सबसे उत्तम रूप है, इससे उत्तम कोई दूसरा रूप नहीं है, और जब मुझसे इस पर प्रश्न पूछे गए, कारण पूछे गए और इस पर चर्चा की गई, तो मैंने पाया कि यह सारहीन, खोखला और त्रुटिपूर्ण है।

हे उदयी, क्या कोई ऐसा संसार है जो केवल सुखों से भरा हो? क्या उस केवल सुखों से भरे संसार को प्राप्त करने का कोई उपाय है?

आदरणीय महोदय, मेरे गुरु का मत है कि एक संसार केवल सुखमय है और उसे प्राप्त करने के लिए कर्मों का एक क्रम निर्धारित है।

हे उदयी, वह कौन सा कर्म मार्ग है जिससे केवल सुखमय संसार की प्राप्ति हो सके?

हे पूज्यवर, एक व्यक्ति जीवन का विनाश करने का त्याग करके उससे विरक्त रहता है; जो कुछ उसे नहीं दिया गया है, उसे लेने का त्याग करके उससे विरक्त रहता है; यौन दुराचार का त्याग करके उससे विरक्त रहता है; झूठ बोलने का त्याग करके उससे विरक्त रहता है; एक निश्चित तपस्या का पालन करके उससे दूर रहता है। यही वह मार्ग है जिससे केवल सुखमय संसार की प्राप्ति होती है।

‘‘ऐसे समय में जब तुम जीवन का विनाश करना छोड़ देते हो और उससे दूर रहते हो, तो क्या तुम्हें केवल सुखद भावनाएँ ही अनुभव होती हैं, या सुखद और अप्रिय दोनों भावनाएँ?'

आदरणीय महोदय, सुखद और अप्रिय भावनाएँ।

हे उदायी, ऐसे समय में जब तुम अनचाही चीजों को लेना छोड़ देते हो और उनसे परहेज करते हो, तो क्या तुम्हें केवल सुखद भावनाएं ही महसूस होती हैं, या सुखद और अप्रिय दोनों तरह की भावनाएं?

आदरणीय महोदय, सुखद और अप्रिय भावनाएँ।

हे उदायी, ऐसे समय में जब तुम यौन दुराचार से परहेज करते हो और उसे त्याग देते हो, तो क्या तुम्हें केवल सुखद भावनाएँ ही महसूस होती हैं या सुखद और अप्रिय दोनों तरह की भावनाएँ?

आदरणीय महोदय, सुखद और अप्रिय भावनाएँ।

‘उदयि, ऐसे समय में जब तुम झूठ बोलने से परहेज करते हो और इसे त्याग देते हो, तो क्या तुम्हें केवल सुखद भावनाएँ ही महसूस होती हैं, या सुखद और अप्रिय दोनों भावनाएँ?’

आदरणीय महोदय, सुखद और अप्रिय भावनाएँ।

‘उदयि, ऐसे समय में, जब तुम किसी विशेष तपस्या का पालन करते हो, तो क्या तुम्हें केवल सुखद भावनाएँ ही महसूस होती हैं, या सुखद और अप्रिय दोनों भावनाएँ?’

आदरणीय महोदय, सुखद और अप्रिय भावनाएँ।

हे उदयी, क्या तुम सोचते हो कि सुखद और अप्रिय भावनाओं से भरे कर्मों के क्रम का पालन करके क्या तुम केवल सुखद भावनाओं से भरे संसार को प्राप्त कर सकते हो?

आदरणीय महोदय, मुझे क्षमा करें, हे दिवंगत, मुझे क्षमा करें!

'उदयी, तुम ऐसा क्यों कहते हो, 'मुझे क्षमा कर दो, आदरणीय महोदय, और मुझे क्षमा कर दो, शुभ यात्रा करने वाले?'

आदरणीय महोदय, मेरे गुरु का यह मत है: एक ऐसी विधि है जिसका अनुसरण करने से केवल सुखद भावनाओं से भरी दुनिया का अहसास हो सकता है, और जब मुझसे इस बारे में प्रश्न पूछे गए, कारण पूछे गए और इस पर चर्चा की गई, तो मैंने पाया कि यह विधि सारहीन, खोखली और गलत है।

आदरणीय महोदय, क्या केवल सुखद भावनाओं से भरा कोई संसार है, और क्या उसे साकार करने का कोई उपाय है?

हे उदयी, एक ऐसी दुनिया है जो केवल सुखद भावनाओं से भरी है और उसे साकार करने के लिए कर्मों का एक क्रम है।

आदरणीय महोदय, केवल सुखद भावनाओं से भरे संसार को साकार करने के लिए कौन-कौन से उपाय हैं?

हे उदयी, यहाँ भिक्षु इंद्रिय सुखों और अपगुणों के विचारों से विरक्त होकर प्रथम ध्यान में रहता है। विचारों और विचार-प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके और मन को एक बिंदु पर स्थिर करके, आंतरिक रूप से शांत होकर, वह द्वितीय ध्यान में रहता है। फिर समभाव और वैराग्य के साथ, शरीर से भी प्रसन्नता का अनुभव करते हुए, वह तृतीय ध्यान में रहता है। इस पर वरम्बी कहते हैं, समभाव के साथ प्रसन्नता में रहना। हे उदयी, यही कर्मों का मार्ग है, जिससे केवल सुखद भावों के संसार का अहसास होता है।

आदरणीय महोदय, क्या सुखद भावनाओं की दुनिया को साकार करने का कोई और तरीका नहीं है, क्या यही एकमात्र तरीका है?

हे उदयी, केवल सुखदायक संसार की प्राप्ति के लिए यही एकमात्र उपाय नहीं है। सुखदायक संसार की प्राप्ति के लिए अन्य उपाय भी हैं।

यह सुनकर उदयी के साथ उपस्थित तपस्वियों का समूह शोरगुल करने लगा। उन्होंने कहा, हमें तो बस इतना ही ज्ञान है। तब सकुलुदयी ने समूह को शांत कराया और भगवान बुद्ध से कहा, 'हे पूज्यवर, इस संसार को, जो केवल सुखदायक अनुभूतियों से भरा है, कैसे अनुभव किया जा सकता है?'

हे उदयी, यहाँ वह भिक्षु है जो सुख और दुख को दूर करते हुए, समभाव से ध्यान को शुद्ध करते हुए, सुख और दुख से मुक्त होकर, पहले सुख और दुख पर विजय प्राप्त कर और समभाव से शुद्ध किए हुए ध्यान में चौथे ध्यान में रहता है; जो भी देवता केवल सुखमय जगत में जन्म लेते हैं, उनसे वह बातें करता है और चर्चा करता है। हे उदयी, यही केवल सुखमय जगत का अनुभव है।

आदरणीय महोदय, क्या भिक्षु भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं, जिसका उद्देश्य केवल सुखमय संसार की प्राप्ति है?

नहीं, उदयि, मेरे विधान में भिक्षु केवल इस सुखमय संसार की प्राप्ति के लिए पवित्र जीवन नहीं जीते हैं। इससे कहीं अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट उद्देश्य है जिसकी प्राप्ति के लिए भिक्षु मेरे विधान में पवित्र जीवन जीते हैं।

हे पूज्यवर, इससे बढ़कर श्रेष्ठ और उत्कृष्ट क्या बात है जिसके कारण भिक्षु भगवान बुद्ध के मार्गदर्शन में पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं?

हे उदयी, यहाँ तथागत इस संसार में जन्म लेते हैं, परिपूर्ण, उचित रूप से प्रबुद्ध, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, संसारों के ज्ञाता, जो वश में किए जाने वालों के अतुलनीय प्रवर्तक, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य हैं। वे इस देवताओं और मनुष्यों के संसार को, इसके मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों, ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों के समुदाय को, उस शिक्षा की घोषणा करते हैं जो आरंभ में अच्छी, मध्य में अच्छी और अंत में अच्छी है, यहाँ तक कि अक्षरों में भी अर्थपूर्ण है, जो पूर्ण और पवित्र जीवन की घोषणा करती है। ----पुनः--- उन्होंने पाँच बाधाओं को दूर करके और मन के सूक्ष्म दोषों को कम करके, मन को इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं और दोषपूर्ण विचारों से अलग करके प्रथम ध्यान की अवस्था को प्राप्त किया है। हे उदयी, यह उस पूर्व से श्रेष्ठ और उत्कृष्ट है जिसके कारण भिक्षु मेरे विधान में पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं। फिर, विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके और मन को एक बिंदु पर आंतरिक रूप से शांत करके, द्वितीय ध्यान में स्थिर होते हैं, तृतीय ध्यान में स्थिर होते हैं, चतुर्थ ध्यान में स्थिर होते हैं। उदयि, यह भी पहले वाले से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उत्तम है, जिसके कारण भिक्षु मेरे विधान में पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं... जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह मन को पूर्व जन्मों के ज्ञान की ओर निर्देशित करता है। अनेक जन्मों का स्मरण करता है - एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ जन्म, हजार जन्म, एक लाख जन्म, असंख्य आगे के जन्म चक्र, असंख्य पीछे के जन्म चक्र, असंख्य आगे और पीछे के जन्म चक्र। वहाँ मैं ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसे स्वभाव, ऐसे आधारों का, ऐसे सुख और दुःख के भावों का अनुभव करते हुए, ऐसे जीवनकाल में था। वहाँ से विलीन होकर वह वहाँ ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसे स्वभाव,

ऐसे आधारों के साथ, ऐसे सुख-दुख का अनुभव करते हुए जन्म लेता है, ऐसे जीवनकाल में वहाँ से विलीन होकर यहाँ जन्म लेता है। इस प्रकार अनेक पूर्व जन्मों का समस्त गुणों और समस्त विवरणों के साथ स्मरण किया जाता है। उदयि, यह भी उस श्रेष्ठ और उत्तम गुण से अधिक श्रेष्ठ है जिसके कारण मेरे धर्म में भिक्षु पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं। जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह प्राणियों के प्रकट होने और लुप्त होने के ज्ञान के लिए मन को अभिलाषित करता है। मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से वह प्राणियों को प्रकट होते और लुप्त होते देखता है, चाहे वे उदात्त हों या उदात्त, सुंदर हों या कुरूप, अपने कर्मों के अनुसार अच्छे और बुरे रूपों में उत्पन्न होते हैं। ये अच्छे प्राणी शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हुए, श्रेष्ठों की निंदा करते हुए, कर्मों के गलत दृष्टिकोण से, मृत्यु के बाद हानि में, कमी में, नरक में जन्म लेते हैं। ये भले प्राणी, जो शरीर, वाणी और मन से सुव्यवस्थित हैं, श्रेष्ठ लोगों की निंदा नहीं करते, और कर्मों के प्रति सही दृष्टिकोण रखते हैं, मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेते हैं। इस प्रकार, मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से वे प्राणियों के प्रकट होने और लुप्त होने को देखते हैं। (उदयी)यह भी उस मार्ग से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उत्तम है जिसके कारण मेरे धर्म में भिक्षु पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं। जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह मन को इच्छाओं के नाश की ओर निर्देशित करता है। वह जानता है कि यह अप्रिय है, यह अप्रियता का उद्भव है, यह अप्रियता का निवारण है, और यही अप्रियता के निवारण का वास्तविक मार्ग है। वह जानता है कि ये इच्छाएँ हैं, यह इच्छाओं का उद्भव है, यह इच्छाओं का निवारण है, और यही इच्छाओं के निवारण का वास्तविक मार्ग है। जो मन इस प्रकार जानता और देखता है, वह इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है, 'होने' की इच्छाओं से मुक्त हो जाता है और अज्ञानी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर वह जानता है, मैं मुक्त हो गया हूँ, जन्म का नाश हो गया है, पवित्र जीवन व्यतीत हो रहा है, जो करना चाहिए वह हो गया है, वह जानता है, अब और कुछ चाहने को नहीं है। उदयि, यह भी अन्य बातों से कहीं अधिक श्रेष्ठ और उत्तम है, जिसके कारण भिक्षु मेरे विधान में पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं।

यह सुनकर विचरण करने वाले तपस्वी सकुलुदायी ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, अब मैं समझ गया। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज फिर से स्थापित हो गई हो। कोई ढकी हुई चीज प्रकट हो गई हो। मानो किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया गया हो। मानो अंधकार में तेल का दीपक जलाया गया हो, ताकि दृष्टि वाले लोग आकृतियाँ देख सकें। भगवान बुद्ध ने अनेक प्रकार से उपदेश की व्याख्या की है। अब मैं भगवान बुद्ध, उपदेश और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। मुझे दीक्षा और उच्चतर दीक्षा प्राप्त हो।"

जब यह कहा गया तो घुमंतू तपस्वी सकुलुदयी के अनुयायियों ने कहा, "हे उदयी, गौतम संत के मार्ग पर चलकर पवित्र जीवन न व्यतीत करें। हे उदयी, आप गुरु हैं, शिष्य न बनें। यह ऐसा है जैसे कोई बर्तन हो और फिर उसमें चम्मच बन जाए। इसलिए हे उदयी, गौतम संत के मार्ग पर चलकर पवित्र जीवन न व्यतीत करें।" इस प्रकार घुमंतू तपस्वी सकुलुदयी के अनुयायियों ने उन्हें भगवान बुद्ध के मार्ग पर चलकर पवित्र जीवन व्यतीत करने से रोक दिया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 8.10 वेखनास्सा सुत्त(80)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास कर रहे थे। तब भ्रमणशील तपस्वी वेखनस्सा भगवान बुद्ध के पास आए, उनसे मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ खड़े होकर गंभीर स्वर में बोले, 'यह सबसे उत्तम दर्शन है।'

'कच्चयन, तुम ऐसा क्यों कहते हो कि यह सबसे उत्तम रूप है? वह सबसे उत्तम रूप क्या है?'

'हे गौतम, जब इससे अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट कोई और रूप न हो, तो यही सबसे उत्तम रूप है।'

'कच्चयन, वह कैसा रूप है, जिससे अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट रूप और कोई नहीं है?'

'हे गौतम, जब इससे अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट कोई और रूप न हो, तो यही सबसे उत्तम रूप है।'

'कच्चयन, क्या यह लंबाई में फैला हुआ है? हे गौतम, क्योंकि इससे अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट कोई रूप नहीं है, इसलिए इसे सर्वोच्च रूप कहा जाता है, और इसे इंगित नहीं किया जा सकता है।'

'कच्चायण, बात कुछ इस प्रकार है। एक पुरुष कहता है, मैं इस अवस्था में सबसे सुंदर स्त्री को चाहता और उससे प्रेम करता हूँ। तब उससे पूछा जाता है, हे स्वाम, जिस सबसे सुंदर स्त्री को तुम चाहते हो, क्या वह योद्धा कुल की है, ब्राह्मण कुल की है, गृहस्थ कुल की है या किसी अन्य जाति की है? पूछे जाने पर वह कहता है, नहीं। फिर उससे पूछा जाता है, हे स्वाम, जिस सबसे सुंदर स्त्री को तुम चाहते और उससे प्रेम करते हो, क्या तुम जानते हो कि वह किस कुल की है? क्या तुम जानते हो कि वह लंबी है, छोटी है या मध्यम? क्या तुम जानते हो कि वह सांवली है, गोरी है या भूरी? क्या तुम जानते हो कि वह किस गाँव, बस्ती या कस्बे में रहती है? पूछे जाने पर वह कहता है, नहीं। तब उससे कहा जाता है, हे स्वाम, क्या तुम किसी ऐसी स्त्री को चाहते और उससे प्रेम करते हो जिसे तुम नहीं जानते और न ही देखा है? तब वह कहता है, हाँ। 'क्या सोचते हो कच्चायण? क्या यह सब बातें व्यर्थ नहीं लगतीं?'

'हे गौतम, जब ऐसा है तो उस आदमी की बातें मूर्खतापूर्ण साबित होती हैं।'

'इसी प्रकार, हे गौतम, कच्चायना, आप कहते हैं, जब उस रूप से अधिक श्रेष्ठ और उत्कृष्ट कोई दूसरा रूप न हो, तो वही सबसे उत्तम रूप है, और आप उस रूप की ओर इशारा नहीं करते।'

हे गौतम, यह उत्तम जन्म के लीपिस रत्न के समान है, जिसमें आठ पहलू हैं, जो पूर्ण रूप से परिपूर्ण है और जब इसे नारंगी रंग के कंबल में रखा जाता है, तो यह चमकता है, ऊष्मा उत्सर्जित करता है और प्रकाशमान होता है। मृत्यु के बाद आत्मा का स्वरूप ऐसा ही होगा और वह स्वस्थ होगी।

'कच्चयन, इन दो में से आपका क्या विचार है? एक तो उत्तम कुल का आठ फलकों वाला, सुगठित और नारंगी रंग के आवरण में सुशोभित नीलम, और दूसरा रात के अंधेरे में चमकते, ऊष्मा उत्सर्जित करते और प्रकाशमान होते हुए अधिक उत्कृष्ट रूप धारण करने वाले कीड़े और जुगनू?'

'हे गौतम, इन दोनों रूपों में से अधिक उत्तम रूप रात्रि के अंधकार में दिखाई देने वाले कीड़े और जुगनू का है।'

'कच्चयन, इन दो चीजों में से, रात के अंधेरे में उड़ने वाले कीड़े और जुगनू और जलता हुआ तेल का दीपक, कौन चमकने, गर्मी उत्सर्जित करने और प्रकाश प्रदान करने में अधिक उत्कृष्ट दिखता है?'

'हे गौतम, इन दो रूपों में से, जलते हुए तेल के दीपक वाला रूप अधिक उत्तम है।'

'कच्चयन, इन दोनों में से, रात के अंधेरे के लिए जलता हुआ तेल का दीपक और रात के अंधेरे के लिए आग का एक बड़ा गोला, कौन सा प्रकाशमान, ऊष्मा उत्सर्जित करने वाला और रोशन करने वाला अधिक उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करता है?'

'हे गौतम, इन दो रूपों में से, अंधकार के लिए अग्नि के विशाल पिंड के रूप में प्रकट होना अधिक उत्कृष्ट रूप होगा।'

'कच्चयन, इन दोनों में से, अंधकार के लिए अग्नि का विशाल पिंड और रात के अंतिम पहर में, जब आकाश साफ होता है, तो भोर का तारा, चमकने, ऊष्मा उत्सर्जित करने और प्रकाशमान होने में अधिक उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करता है?'

हे गौतम, इन सभी दृश्यों में से सबसे उत्तम दृश्य रात्रि के अंतिम पहर में, जब आकाश निर्मल हो, भोर का तारा है।

'कच्चयन, इन दोनों में से, रात के अंतिम पहर में दिखने वाला भोर का तारा, जब आकाश साफ होता है, और आधी रात को दिखने वाला पूर्णिमा का चंद्रमा, जब आकाश बादलों से रहित और साफ होता है, कौन सा तारा चमकने, ऊष्मा उत्सर्जित करने और प्रकाश प्रदान करने में अधिक उत्कृष्ट दिखता है?'

'हे गौतम, इन दो रूपों में से, आधी रात को जब आकाश साफ और बादलों से रहित हो, तब पूर्णिमा का चांद दिखना अधिक उत्तम होगा?'

'कच्चयन, इन दोनों में से, मध्यरात्रि को जब आकाश साफ और बादलों से रहित होता है, पूर्णिमा का चंद्रमा और ग्रीष्म ऋतु में दोपहर के समय आकाश में सूर्य, इनमें से कौन सा चमकने, ऊष्मा उत्सर्जित करने और प्रकाश प्रदान करने में अधिक उत्कृष्ट दिखता है?'

'हे गौतम, इन दो रूपों में से ग्रीष्म ऋतु में दोपहर के समय आकाश में सूर्य का रूप अधिक उत्तम है।'

'कच्चयन, इन देवताओं में से कई की श्रेष्ठता चंद्रमा और सूर्य की श्रेष्ठता से भी अधिक है; मैं उन्हें जानता हूँ, फिर भी मैं यह नहीं बता सकता कि किसका रूप दूसरे से अधिक श्रेष्ठ और उत्तम है। फिर भी, आप कहते हैं कि यह रूप, जो कीड़ों और जुगनुओं के रूप से भी कमतर है, सबसे श्रेष्ठ और उत्तम रूप है। आप यह भी नहीं बताते।'

कच्चयन, इंद्रिय सुख के पाँच प्रकार हैं। वे पाँच क्या हैं? मनभावन रूप जो आँखों से दिखाई देते हैं और स्नेह एवं कामुक इच्छाओं को जगाते हैं; मनभावन ध्वनियाँ; मनभावन गंध; मनभावन स्वाद; मनभावन स्पर्श जो शरीर से दिखाई देते हैं और स्नेह एवं कामुक इच्छाओं को जगाते हैं। कच्चयन, ये पाँच प्रकार हैं इंद्रिय सुख के, जिनके कारण सुख और आनंद उत्पन्न होता है। इस प्रकार इंद्रियों से ही इंद्रिय सुख उत्पन्न होता है, और इंद्रिय सुखों में सर्वोच्च इंद्रिय सुख की घोषणा की जाती है। [1]

यह सुनकर भ्रमणशील तपस्वी वेखनस्सा ने भगवान बुद्ध से कहा, "सचमुच गौतम बुद्ध के वचन अद्‌भुत हैं। इंद्रियों में से इंद्रिय सुखों में सबसे बड़ा सुख मैंने बताया है।"

'कच्चयन, तुम जो दूसरे धर्म, दूसरे प्रेम, दूसरे बंधन के अनुयायी हो, प्रशिक्षण के बिना इंद्रियों, इंद्रिय सुखों और उनमें से सर्वोच्च इंद्रिय सुख को नहीं जान सकते। कच्चयन, वे सिद्ध भिक्षु जिन्होंने इच्छाओं का नाश कर पवित्र जीवन व्यतीत किया, उचित कर्म किए, भार को त्याग दिया, सर्वोच्च पुण्य प्राप्त किया, 'होने' की इच्छाओं का नाश किया और उचित ज्ञान से मुक्त होकर इंद्रियों, इंद्रिय सुखों और सर्वोच्च इंद्रिय सुख को जान लेते हैं।'

यह सुनकर घुमंतू तपस्वी वेखनस्सा क्रोधित और असंतुष्ट हो गए और भगवान बुद्ध को शाप देते हुए बोले, 'यह तो गौतम संन्यासी ही हैं जो बुरे शब्द बोलते हैं। इस प्रकार कुछ संन्यासी और ब्राह्मण, जो न तो शुरुआत जानते हैं और न ही अंत देखते हैं, जन्म को निष्फल मानते हैं। पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना चाहिए वह कर लिया गया है, अब और कुछ चाहने की आवश्यकता नहीं है। उनके ये शब्द व्यर्थ और मूर्खतापूर्ण हैं।'

'हे कच्चायन, वे संन्यासी और ब्राह्मण जो न तो आदि जानते हैं और न ही अंत देखते हैं, जन्म को निष्फल मानते हैं, पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं, जो करना चाहिए वह कर लेते हैं, और कुछ भी चाहने की इच्छा नहीं रहती। उन्हें उचित रूप से दोषी ठहराया जाना चाहिए। फिर भी कच्चायन, आदि और अंत को छोड़ दो। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति आए, जो धूर्त और कपटी न हो, बल्कि सीधा-सादा हो, मैं उसे उपदेश और सलाह दूंगा। यदि वह बताए गए मार्ग का अनुसरण करेगा, तो शीघ्र ही वह स्वयं सही ज्ञान प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार वह अज्ञान के इस बंधन से सही मायने में मुक्त हो जाएगा। कच्चायन, एक छोटे बच्चे की तरह जिसके हाथों, पैरों और गर्दन में डोरियाँ बंधी होती हैं और जब वह बड़ा हो जाता है और उसकी बुद्धि परिपक्व हो जाती है तो वे बंधन टूट जाते हैं और वह ज्ञान प्राप्त कर लेता है। मैं उन बंधनों से मुक्त हूँ। उसी प्रकार कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति आए, जो धूर्त और कपटी न हो, बल्कि सीधा-सादा हो, मैं उसे उपदेश और सलाह दूंगा, और यदि वह बताए गए मार्ग का अनुसरण करेगा, तो शीघ्र ही वह स्वयं सही ज्ञान प्राप्त कर लेगा।' इस प्रकार वह अज्ञान के इस बंधन से उचित रूप से मुक्त हो जाएगा।

यह सुनकर विचरण करने वाले तपस्वी वेखनस्सा ने कहा, "हे गौतम, अब मैं समझ गया। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज़ फिर से अपनी जगह पर आ गई हो। जैसे कोई ढकी हुई चीज़ प्रकट हो गई हो। ऐसा लगता है जैसे किसी भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखा दिया गया हो। जैसे दृष्टिहीन लोगों को अंधकार में आकृतियाँ देखने के लिए तेल का दीपक जला दिया गया हो। हे गौतम ने अनेक प्रकार से शिक्षा की व्याख्या की है। अब मैं हे गौतम की शरण में, उनकी शिक्षा में और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेता हूँ। आज से लेकर अपनी मृत्यु तक मुझे एक गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए जिसने शरण ली है।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.1 घटिकारा सुत्त(81)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध कोसल देश में भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ भ्रमण कर रहे थे। एक विशेष क्षेत्र में पहुँचकर भगवान बुद्ध मार्ग से हटकर मुस्कुराए। तब पूज्य आनंद के मन में यह प्रश्न उठा कि भगवान बुद्ध बिना कारण मुस्कुराए क्यों मुस्कुराए? तब पूज्य आनंद ने अपने वस्त्र को एक कंधे पर संवारते हुए भगवान बुद्ध की ओर हाथ जोड़कर कहा, 'पूज्यवर, भगवान बुद्ध क्यों मुस्कुराए?' भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया, 'आनंद, अतीत में इस क्षेत्र में वेभलिंग नामक एक प्रमुख गाँव था। यह बहुत समृद्ध और घनी आबादी वाला था। पूर्ण ज्ञान प्राप्त कश्यप का निवास इसी गाँव में था। आनंद, पूर्ण ज्ञान प्राप्त कश्यप यहाँ बैठकर भिक्षुओं के समुदाय को उपदेश देते थे।'

आदरणीय आनंद ने वस्त्र को चार भागों में मोड़कर वहाँ रखते हुए कहा, "हे आदरणीय महोदय, आप यहाँ बैठिए, ताकि दो पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति इसका सेवन कर सकें।" भगवान बुद्ध उस पर बैठ गए और आदरणीय आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "इस प्रमुख गाँव वेभलिंग में घटिकारा नामक एक कुम्हार था, जो भगवान बुद्ध का प्रमुख समर्थक था, और उसका एक शिष्य था, ज्योतिपाला, जो एक प्यारा युवक था।" तब कुम्हार घटिकारा ने युवक ज्योतिपाला से कहा, "मित्र ज्योतिपाला, चलो हम पूर्णतः प्रबुद्ध और प्रबुद्ध भगवान कश्यप के दर्शन करने चलें। ऐसे प्रबुद्ध व्यक्तियों के दर्शन करना अच्छा होता है।" यह सुनकर युवक ज्योतिपाला ने कहा, "मित्र घटिकारा, इन साधुओं के सिर मुंडवाने से क्या लाभ?" कुम्हार घटिकारा ने दूसरी बार कहा, "मित्र ज्योतिपाला, चलो हम पूर्णतः प्रबुद्ध और प्रबुद्ध भगवान कश्यप के दर्शन करने चलें।" ऐसे प्रबुद्धों को देखकर अच्छा लगता है। कुम्हार घटिकारा ने तीसरी बार कहा, "मित्र ज्योतिपाल, चलो हम परिपूर्ण और सच्चे ज्ञान से परिपूर्ण भगवान कश्यप के दर्शन करने चलें।" ऐसे प्रबुद्धों को देखकर अच्छा लगता है... युवक ज्योतिपाला ने तीसरी बार कहा, "मित्र घटिकारा, इन साधुओं के मुंडेले देखने से क्या लाभ है?"

तब मित्र ज्योतिपाला, साबुन का पाउडर और ब्रश लो और चलो नदी पर स्नान करने चलते हैं। ज्योतिपाला मान गया और वे नदी पर स्नान करने चले गए। नदी पर भी कुम्हार घटिकारा ने युवक से कहा, "हे मित्र ज्योतिपाला, पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान कश्यप का मठ पास ही है। चलो, उनके दर्शन करने चलते हैं, ऐसे प्रबुद्धों के दर्शन करना अच्छा होता है।" यह सुनकर युवक ने फिर कहा, "मित्र घटिकारा, इन साधुओं के मुंडे हुए सिर देखने से क्या लाभ?" आनंद, युवक ज्योतिपाला ने यही बात दूसरी और तीसरी बार दोहराई। तब कुम्हार घटिकारा ने युवक ज्योतिपाला की कमरबंद पकड़ ली और फिर कहा, "मित्र ज्योतिपाला, चलो, पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान कश्यप के दर्शन करने चलते हैं। ऐसे प्रबुद्धों के दर्शन करना अच्छा होता है।" युवक ने अपना हाथ छुड़ा लिया और कहा, "मित्र घटिकारा, इन साधुओं के मुंडे हुए सिर देखने से क्या लाभ।" तब कुम्हार घटिकारा ने उस युवक के अच्छी तरह से धुले हुए बालों को पकड़कर कहा, "हे मित्र ज्योतिपाल, सिद्ध और सच्चे ज्ञान प्राप्त भगवान कश्यप का मठ पास ही है। चलो, हम उनसे मिलने चलें। ऐसे ज्ञानी पुरुषों के दर्शन करना अच्छा होता है।" आनंद, तब युवक ज्योतिपाल के मन में यह विचार आया, "यह आश्चर्य की बात है कि कुम्हार घटिकारा मेरे जैसे उच्च कुल के व्यक्ति के धुले हुए बालों को छूने के बारे में कैसे सोच सकता है? क्या वह यह नहीं सोचता कि बालों को छूना नहीं चाहिए?" तब उसने कहा, "तुम्हारी यही इच्छा है।" "हे मित्र ज्योतिपाल, तुम्हारी भी यही इच्छा है! इन सिद्ध और सच्चे ज्ञानी पुरुषों के दर्शन करना अच्छा है।"

मित्र घटिकारा, अपनी पकड़ ढीली करो और हमें जाने दो। तब आनंद, कुम्हार घटिकाना और युवक ज्योतिपाल पूर्णतः प्रबुद्ध कश्यप के मठ में पहुँचे। कुम्हार घटिकारा ने भगवान का प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए, युवक ज्योतिपाल ने पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान कश्यप से मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। कुम्हार घटिकारा ने पूर्णतः प्रबुद्ध कश्यप से कहा, 'आदरणीय महोदय, यह मेरा प्रिय मित्र और सहायक ज्योतिपाल है, इसे शिक्षा दीजिए।' पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान कश्यप ने ज्योतिपाल और कुम्हार घटिकारा को सलाह दी, उपदेश दिया, प्रेरित किया और उनके हृदयों को हल्का किया। तब वे दोनों प्रसन्न होकर अपनी सीटों से उठे, प्रणाम किया, भगवान की परिक्रमा की और चले गए।

तब युवक ज्योतिपाला ने कुम्हार घटिकारा से कहा, 'मित्र घटिकारा, यह उपदेश सुनकर तुम गृहस्थी छोड़कर संन्यासी क्यों नहीं बन जाते?'

'मित्र ज्योतिपाला, क्या तुम नहीं जानते कि मैं अपने माता-पिता का भरण-पोषण करता हूँ, जो अंधे और दुर्बल हैं?'

'तो मित्र घटिकारा, मैं गृहस्थी छोड़कर संन्यासी बन जाऊंगा।'

जोतिपाला नाम का युवक और कुम्हार घटिकारा, पूर्ण ज्ञान प्राप्त भगवान कश्यप के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब कुम्हार घटिकारा ने पूर्ण ज्ञान प्राप्त भगवान कश्यप से कहा, "आदरणीय महोदय, यह मेरा प्रिय मित्र और सहायक जोतिपाला है, कृपया इसे दीक्षा प्रदान करें।" जोतिपाला ने पूर्ण ज्ञान प्राप्त भगवान कश्यप से दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त की। जोतिपाला को दीक्षा प्रदान करने के दो सप्ताह बाद, पूर्ण ज्ञान प्राप्त भगवान कश्यप आनंद, बनारस की यात्रा पर निकल पड़े और धीरे-धीरे बनारस पहुँच गए।

फिर, परम ज्ञानी भगवान कश्यप बनारस के इसिपताना स्थित हिरण उद्यान में निवास करते थे। बनारस के राजा किकी कासिराजा ने सुना कि परम ज्ञानी भगवान कश्यप बनारस आ गए हैं। उन्होंने अपने लिए अच्छे वाहन की व्यवस्था की और राजसी वैभव के साथ उनसे मिलने आए। जहाँ तक वाहन जा सकता था, पैदल चलकर वे परम ज्ञानी भगवान कश्यप के पास पहुँचे। उन्होंने भगवान कश्यप को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान कश्यप ने उन्हें उपदेश दिया, मार्गदर्शन किया और उनके हृदय को प्रसन्न किया। तब प्रसन्न और प्रसन्न राजा ने परम ज्ञानी भगवान कश्यप को भिक्षुओं के समुदाय के साथ अगले दिन के भोज के लिए आमंत्रित किया। पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान कस्सपा ने मौन ही निमंत्रण स्वीकार कर लिया। तब राजा किकी कासिराजा को जब पता चला कि भगवान कस्सपा ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, तो वे अपने आसन से उठकर भगवान कस्सपा की पूजा और परिक्रमा करके चले गए। राजा किकी कासिराजा ने अपने महल में विभिन्न पौष्टिक भोजन और पेय तैयार किए, जिनमें हल्के पीले रंग के, गहरे रंग के बीजों से युक्त उत्तम चावल भी शामिल थे। उन्होंने भगवान कस्सपा को सूचित किया: "हे पूज्यवर, भोजन तैयार है, और भोजन का समय हो गया है।"

तब आनंद, भगवान कश्यप ने सुबह वस्त्र धारण करके, कुंड और वस्त्र लेकर भिक्षुओं के समुदाय के साथ राजा किकी कासिराजा के महल में पहुँचकर वहाँ के आसनों पर विराजमान हुए। राजा ने अपने हाथों से पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान कश्यप और भिक्षुओं के समुदाय को भोजन परोसा और उन्हें तृप्त किया। भोजन समाप्त होने और कुंड को रखने के बाद, राजा किकी कासिराजा ने एक नीचा आसन ग्रहण किया और भगवान से कहा, "आदरणीय महोदय, कृपया भगवान बनारस में वर्षा ऋतु व्यतीत करने की अनुमति दें। मैं इस प्रकार भगवान और समुदाय की सेवा करूँगा।" पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान कश्यप ने कहा, "मैंने वर्षा ऋतु व्यतीत करने की अनुमति दे दी है।" राजा किकी कासिराजा ने तीसरी बार तक भगवान कश्यप से विनती की, तब भी उन्होंने कहा, "मैंने वर्षा ऋतु व्यतीत करने की अनुमति दे दी है।" तब राजा किकी कासिराजा को यह सोचकर खेद और नाराजगी हुई कि भगवान कस्सपा, जो पूर्णतः ज्ञानी हैं, उनका निमंत्रण स्वीकार नहीं करते। उन्होंने भगवान कस्सपा से पूछा, "हे पूज्यवर, क्या कोई और आकर्षक समर्थक है?" कस्सपा ने उत्तर दिया, "महाराज, मुख्य गाँव वेभलिंग में घटिकारा नाम का एक कुम्हार है, वही मेरा मुख्य समर्थक है।" हे महाराज, आपके मन में यह परिवर्तन और असंतोष है कि भगवान कश्यप ने बनारस में वर्षा ऋतु बिताने के मेरे निमंत्रण को स्वीकार नहीं किया। कुम्हार घटिकारा के लिए ऐसा कुछ नहीं होता, न ही कभी होगा। हे महाराज, कुम्हार घटिकारा ने ज्ञान, शिक्षा और भिक्षु समुदाय की शरण ली है। वह जीवन को नष्ट करने से, बिना दी हुई वस्तु लेने से, कामुकता में दुराचार से, झूठ बोलने से और मादक पेय पदार्थों से दूर रहता है। हे महाराज, कुम्हार घटिकारा को ज्ञान, शिक्षा और भिक्षु समुदाय में अटूट विश्वास है। वह श्रेष्ठों के गुणों से परिपूर्ण है। हे महाराज, कुम्हार घटिकारा ने अप्रियता, अप्रियता के उत्पन्न होने, अप्रियता के निवारण और निवारण के मार्ग के बारे में सभी शंकाओं का समाधान कर लिया है। हे महाराज, कुम्हार घटिकारा सप्ताह में एक बार भोजन करता है। हे महान राजा, घटिकारा एक गुणी और पवित्र जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति है। उसने सोना-रत्न, यहाँ तक कि धन-चाँद भी त्याग दिया है। वह न तो गदा से और न ही अपने हाथों से ज़मीन जोतता है। वह चूहों, गिलहरियों और कुत्तों को मित्रतापूर्वक एक डिब्बे में रखता है और उसमें चावल, हरी मूंग या चने के बचे हुए दाने डालकर कहता है, "जो चाहो ले जाओ।" हे महान राजा, घटिकारा कुम्हार अपने अंधे और क्षीण माता-पिता का सहारा है। हे महान राजा, घटिकारा ने इंद्रिय जगत के पाँचों बंधनों को तोड़ दिया है; वह स्वतः ही जन्म लेता है, उस संसार से विलीन नहीं होता और उसी जन्म में विलीन हो जाता है।

महाराज, एक समय मैं वेभलिंगा नामक प्रमुख गाँव में रहता था। सुबह मैंने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर कुम्हार घटिकारा के माता-पिता के पास गया और उनसे कहा, "यह भला कहाँ चला गया?" "हे महाराज, आपका सहायक बाहर गया है। कृपया बर्तन से पके हुए चावल, सूप और करी लें और भोजन करें।" "तो महाराज, मैंने बर्तन से पके हुए चावल, सूप और करी लिए, भोजन किया और चला गया।" तब, महाराज, कुम्हार घटिकारा अपने माता-पिता के पास जाकर पूछता, "कौन आया, बर्तन से चावल, सूप और करी लिए, भोजन किया, आसन से उठा और चला गया?" "प्रिय, यह भगवान कस्सपा हैं, जो पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध हैं, जिन्होंने बर्तन से चावल, सूप और करी लिए और भोजन करके आसन से उठकर चले गए।" तब कुम्हार घटिकारा के मन में यह विचार आया कि यह मेरे लिए बहुत बड़ा लाभ है कि परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने मुझ पर इतना भरोसा किया है। यह सुखद आनंद उसे दो सप्ताह तक बना रहा, जबकि माता-पिता के लिए यह एक सप्ताह तक ही रहा।

महाराज, एक समय मैं वेभलिंगा नामक प्रमुख गाँव में रहता था। सुबह मैंने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर कुम्हार घटिकारा के माता-पिता के पास गया और उनसे कहा, "यह भला कहाँ चला गया?" "हे महाराज, आपका सहायक बाहर गया है। कृपया कड़ाही से रोटी, सूप और करी लें और भोजन करें।" "तो महाराज, मैंने कड़ाही से रोटी, सूप और करी ली, भोजन किया और चला गया।" तब,

महाराज, कुम्हार घटिकारा अपने माता-पिता के पास जाकर पूछता, "कौन आया, कड़ाही से रोटी, सूप और करी ली, उन्हें खाया, आसन से उठा और चला गया?" "प्रिय, यह पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान कस्सपा हैं, जिन्होंने कड़ाही से रोटी, सूप और करी ली, उन्हें खाया और आसन से उठकर चले गए।" तब कुम्हार घटिकारा के मन में यह विचार आया कि यह मेरे लिए बहुत बड़ा लाभ है कि पूर्णतः ज्ञानी भगवान ने मुझ पर इतना भरोसा किया है। यह सुखद आनंद उसे दो सप्ताह तक बना रहा, जबकि माता-पिता के लिए यह एक सप्ताह तक ही रहा।

हे महाराज, एक समय मैं प्रमुख गाँव वेभलिंग में रहता था। उस समय मेरे सुगंधित कक्ष से पानी टपक रहा था। तब मैंने भिक्षुओं से कहा, "हे भिक्षुओं, क्या तुम कुम्हार घटिकारा के घर की घास जानते हो? जाओ! उसे ले आओ।" हे महाराज, यह सुनकर भिक्षुओं ने कहा, "हे पूज्यवर, कुम्हार घटिकारा के घर में घास नहीं है। वहाँ तो घास की छप्पर वाली छत है।" तब मैंने कहा, "हे भिक्षुओं, जाओ और कुम्हार घटिकारा के घर की छप्पर वाली छत से घास ले आओ।" तब भिक्षुओं ने कुम्हार घटिकारा के घर की छप्पर वाली छत से घास उतार ली। तब हे महाराज, कुम्हार घटिकारा के माता-पिता ने कहा, "छत से घास कौन उतारता है?" मैंने कहा, "बहन, ये भिक्षु हैं। भगवान घटिकारा के सुगंधित कक्ष से पानी टपक रहा है।" "ले आओ!" 'हे स्वामी, तुम अच्छे शब्द बोलते हो।' तब, कुम्हार घटिकारा घर लौटकर अपने माता-पिता के पास गया और पूछा, 'छत से घास किसने हटाई?' 'हे प्रिय, भिक्षुओं ने हटाई है। पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान कश्यप के सुगंधित कक्ष की छत से पानी टपक रहा है।' तब कुम्हार घटिकारा को यह बात समझ में आई। 'यह मेरे लिए बहुत बड़ा लाभ है कि पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने मुझ पर इतना भरोसा किया है।' यह सुखद आनंद उसे दो सप्ताह तक बना रहा, जबकि माता-पिता को एक सप्ताह तक ही। फिर वह घर तीन महीने तक बिना छत के रहा और बारिश नहीं हुई। हे महाराज, कुम्हार घटिकारा ऐसा ही है।'

'आदरणीय महोदय, घटिकार कुम्हार के लिए यह बहुत बड़ा लाभ है कि भगवान बुद्ध वर्षा ऋतु को इस प्रकार व्यतीत करते हैं।'

तब आनंद, राजा किकी कासिराजा ने कुम्हार घटिकारा के पास लगभग पाँच सौ बैलगाड़ी हल्के पीले रंग के उत्तम चावल और उतनी ही मात्रा में आवश्यक सामग्री भेजी। शाही दूत कुम्हार घटिकारा के पास पहुँचे और कहा, "महोदय, राजा किकी कासिराजा ने ये पाँच सौ बैलगाड़ी हल्के पीले रंग के उत्तम चावल और उतनी ही मात्रा में आवश्यक सामग्री आपको भेजी है। कृपया इन्हें स्वीकार करें। राजा के पास बहुत काम है, यह शायद राजा की ओर से मेरे लिए ही है।"

आनंद, तुम्हारे मन में यह विचार आ सकता है, 'क्या उस समय इस युवक ज्योतिपाल ने पूर्णता प्राप्त कर ली थी?' 'ऐसा नहीं सोचना चाहिए। उस समय मैं ही ज्योतिपाल था।'

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.2रथपाल सुत्त(82)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध, भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ कुरुओं के बीच भ्रमण करते हुए, कुरुओं के एक नगर थुलकोत्थिता पहुंचे थे। थुल्लकोत्थिता के ब्राह्मणों और गृहस्थों ने सुना, "शाक्यों वंश के पुत्र, ध्यानमग्न गौतम, शाक्यों वंश से निकलकर केशपुत्त पहुंचे हैं। और उस गुरु गौतम के बारे में यह सुप्रसिद्धि फैली है: 'वे वास्तव में एक धन्य, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत, ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण, सुगठित, ब्रह्मांड के ज्ञाता, वश में होने के लिए तैयार व्यक्तियों के अद्वितीय प्रशिक्षक, मानव और दिव्य प्राणियों के गुरु, जागृत और धन्य हैं। उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञान से इस संसार को, इसके देवताओं, मारों और ब्रह्माओं सहित, इसकी पीढ़ियों को, उनके ध्यानमग्न और पुरोहितों सहित, उनके शासकों और आम लोगों सहित, ज्ञात कराया है। उन्होंने धर्म की व्याख्या आरंभ में, मध्य में और अंत में प्रशंसनीय ढंग से की है; उन्होंने पवित्र जीवन को उसके विशिष्ट और सार दोनों में, पूर्णतः परिपूर्ण और अत्यंत शुद्ध रूप से समझाया है। ऐसे योग्य व्यक्ति को देखना सुखद है। एक।'"

अत: थुल्कोत्थिता के ब्राह्मण और गृहस्थ भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर, उनमें से कुछ ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। कुछ ने उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया और सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद एक तरफ बैठ

गए। कुछ ने अपने हृदय पर हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। कुछ ने अपना नाम और कुल बताया। कुछ मौन बैठे रहे। जब वे वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने धर्म पर प्रवचन देकर उन्हें उपदेश दिया, प्रेरित किया, उनका उत्साह बढ़ाया और उन्हें प्रोत्साहित किया।

उस समय थुल्लकोत्थिता के प्रमुख कुल के पुत्र रत्थपाला नामक एक कुलवासी उस सभा में बैठे थे। उनके मन में यह विचार आया, "भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, गृहस्थी में रहकर पूर्णतः परिपूर्ण, पूर्णतः शुद्ध, एक उत्तम वस्त्र की तरह पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। यदि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में प्रवेश करूँ तो क्या होगा?"

तब थुल्कोत्थिता के ब्राह्मण और गृहस्थ, भगवान बुद्ध के धर्म प्रवचन से शिक्षित, प्रेरित और उत्साहित होकर, उनके वचनों से प्रसन्न और आनंदित हुए। वे अपने स्थानों से उठकर, उन्हें प्रणाम करके, उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए चले गए।

तब, थुल्कोत्थिता के ब्राह्मणों और गृहस्थों के चले जाने के कुछ ही समय बाद, रत्थपाल भगवान बुद्ध के पास पहुँचे और उनसे कहा, "भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म के अनुसार, गृहस्थ जीवन में पूर्णतः सिद्ध, पूर्णतः शुद्ध, एक उत्तम वस्त्र की तरह पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। हे भगवान, मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में प्रवेश करना चाहता हूँ। क्या मुझे भगवान बुद्ध की उपस्थिति में यह दीक्षा प्राप्त होगी? क्या मुझे प्रवेश मिलेगा?"

"क्या आपको अपने माता-पिता की अनुमति मिल गई है, रत्थपाला, गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने के लिए?"

"नहीं, भगवान, मैंने नहीं किया है।"

"रत्थपाल, तथागत किसी को भी उसके माता-पिता की अनुमति के बिना प्रस्थान करने की अनुमति नहीं देते हैं।"

"हे भगवान, मैं वह सब करूंगा जो करना आवश्यक है ताकि मेरे माता-पिता मुझे गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति दे दें।"

तब रत्थपाल अपने आसन से उठकर, भगवान बुद्ध को प्रणाम करते हुए और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए अपने माता-पिता के पास गए और बोले, "माँ, पिताजी, जैसा कि मैं भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूँ, गृहस्थी में रहकर पूर्णतः परिपूर्ण, पूर्णतः शुद्ध, एक उत्तम वस्त्र की तरह पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाना चाहता हूँ। कृपया मुझे गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति दें।"

यह सुनकर रत्थपाल के माता-पिता ने उनसे कहा, "प्रिय रत्थपाल, तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, प्यारे और मनमोहक, सुख-सुविधाओं में पले-बढ़े हो। तुम्हें कष्टों का कोई ज्ञान नहीं है। खाओ, पियो और आनंद लो। खाते-पीते और अपना ध्यान रखते हुए तुम इंद्रिय सुखों में लिप्त होकर पुण्य कमा सकते हो। हम तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति नहीं देते।1 तुम्हारी मृत्यु के बाद भी हम तुमसे अलग नहीं होना चाहते, तो फिर तुम्हारे जीवित रहते हम तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति कैसे दे सकते हैं?"

दूसरी बार... तीसरी बार, रत्थपाल ने अपने माता-पिता से कहा, "माँ, पिताजी, जैसा कि मैं भगवान बुद्ध द्वारा सिखाए गए धम्म को समझता हूँ, गृहस्थी में रहकर पूर्णतः परिपूर्ण, पूर्णतः शुद्ध, एक उत्तम वस्त्र की तरह पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन से विमुख होना चाहता हूँ। कृपया मुझे गृहस्थ जीवन से विमुख होने की अनुमति दें।"

तीसरी बार रत्थपाल के माता-पिता ने उनसे कहा, "प्रिय रत्थपाल, तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, प्यारे और मनमोहक, सुख-सुविधाओं में पले-बढ़े हो। तुम्हें कष्टों का कोई ज्ञान नहीं है। खाओ, पियो और आनंद लो। खाते-पीते और अपना ध्यान रखते हुए तुम इंद्रिय सुखों में लिप्त होकर पुण्य कमा सकते हो। हम तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति नहीं देते।2 तुम्हारी मृत्यु के बाद भी हम तुमसे अलग नहीं होना चाहते, तो फिर तुम्हारे जीवित रहते हम तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति कैसे दे सकते हैं?"

तब रत्थपाल को अपने माता-पिता से गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति नहीं मिली, इसलिए वे वहीं नंगी ज़मीन पर लेट गए और बोले, "यहीं मेरी मृत्यु होगी या मेरा संन्यास।" और वे एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन, पाँच दिन, छह दिन तक बिना भोजन के रहे। वे सात दिन तक बिना भोजन के रहे।3

उसके माता-पिता ने उससे कहा, "रत्थपाल, प्रिय पुत्र, तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, प्यारे और मनमोहक, सुख-सुविधाओं में पले-बढ़े हो। तुम्हें कष्टों का कोई ज्ञान नहीं है। उठो, प्रिय पुत्र। खाओ, पियो और आनंद लो। खाते-पीते और अपना ध्यान रखते हुए तुम इंद्रिय सुखों में लिप्त होकर पुण्य कमा सकते हो। हम तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाने की अनुमति नहीं देते। तुम्हारी मृत्यु के बाद भी हम तुमसे अलग नहीं होना चाहते, तो फिर तुम्हारे जीवित रहते हम तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाने की अनुमति कैसे दे सकते हैं?"

यह सुनकर रत्थपाल चुप रहे।

दूसरी बार... तीसरी बार, रत्थपाल के माता-पिता ने उनसे कहा, "रत्थपाल, प्रिय पुत्र, तुम हमारे इकलौते पुत्र हो, प्रिय और आकर्षक, सुख-सुविधाओं में पले-बढ़े हो। तुम्हें कष्टों का कोई ज्ञान नहीं है। उठो, प्रिय पुत्र। खाओ, पियो और आनंद लो। खाते-पीते और अपना ध्यान रखते हुए तुम इंद्रिय सुखों में लिप्त होकर पुण्य कमा सकते हो। हम तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति नहीं देते। तुम्हारी मृत्यु के बाद भी हम तुमसे अलग नहीं होना चाहते, तो फिर तुम्हारे जीवित रहते हम तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति कैसे दे सकते हैं?"

तीसरी बार भी रत्थपाला चुप रहे।

तब रत्थपाल के माता-पिता उसके मित्रों के पास गए और उनसे कहा, "प्रियजनों, रत्थपाल नंगे फर्श पर लेट गया है और कह रहा है, 'यहीं मेरी मृत्यु होगी या मेरा संन्यास।' कृपया, पुत्रजनों, रत्थपाल के पास जाओ और उससे कहो, 'मित्र रत्थपाल, तुम अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र हो... उठो, मित्र रत्थपाल। खाओ, पियो और आनंद लो... तुम्हारे माता-पिता तुम्हें जीवित रहते हुए गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में जाने की अनुमति कैसे दे सकते हैं?'"4

तो रत्थपाल के मित्र उनके पास गए और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा, "मित्र रत्थपाल, तुम अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र हो... उठो, मित्र रत्थपाल। खाओ, पियो और आनंद लो... तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हारे जीवित रहते तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति कैसे दी?"

यह सुनकर रत्थपाल चुप रहे।

दूसरी बार... तीसरी बार, उनके मित्रों ने उनसे कहा, "मित्र रत्थपाल, तुम अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र हो... उठो, मित्र रत्थपाल। खाओ, पियो और आनंद लो... तुम्हारे माता-पिता तुम्हें जीवित रहते हुए गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति कैसे दे सकते हैं?"

तीसरी बार भी रत्थपाला चुप रहे।

तो रत्थपाल के मित्र उनके माता-पिता के पास गए और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा, "माँ, पिताजी, रत्थपाल नंगी ज़मीन पर लेटा हुआ है और कह रहा है, 'यहाँ मेरी मृत्यु होगी या मेरा प्रस्थान। यदि आप उसे गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति नहीं देंगे, तो यहीं उसकी मृत्यु हो जाएगी। लेकिन यदि आप उसे अनुमति दे देंगे... तो प्रस्थान करने के बाद भी आप उसे देखेंगे। और यदि उसे गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने में आनंद नहीं आएगा, तो वह और कहाँ जाएगा? वह यहीं लौट आएगा। इसलिए कृपया उसे गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति दें।"

"तो, प्रियजनों, हम रत्थपाल को गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति देते हैं। लेकिन जब वह चले जाएं, तो उन्हें अपने माता-पिता से अवश्य मिलना चाहिए।"

तब रत्थपाल के मित्र उसके पास गए और बोले, "उठो, रत्थपाल। तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हें गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति दे दी है। लेकिन जब तुम जाओगे, तो तुम्हें अपने माता-पिता से अवश्य मिलना होगा।"

तब रत्थपाल उठे और शक्ति प्राप्त करके भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, मुझे अपने माता-पिता से गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में जाने की अनुमति मिल गई है। भगवान बुद्ध मुझे यह अनुमति प्रदान करें!”

तब कुल के रत्थपाला ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में दीक्षा प्राप्त की और उन्हें प्रवेश मिल गया। प्रवेश के कुछ ही समय बाद, डेढ़ महीने बाद, भगवान बुद्ध थुल्लाकोत्थिता में अपनी इच्छानुसार कुछ समय बिताने के बाद सावत्थी की ओर प्रस्थान कर गए। विभिन्न चरणों में भटकते हुए अंततः वे सावत्थी पहुँचे। वहाँ वे सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में रहने लगे।

पूज्य रत्थपाल, जो एकांत में रहते थे, एकांतप्रिय, सजग, उत्साही और दृढ़ निश्चयी थे, उन्होंने अल्पकाल में ही पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लिया और उसमें स्थिर रहे। इसी लक्ष्य के लिए कुलवासी जन्म-मृत्यु का मार्ग अपनाते हैं, और उन्होंने स्वयं इस संसार में इसे अनुभव कर लिया था। उन्होंने जाना: "जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार के लिए अब और कुछ नहीं करना है।" इस प्रकार पूज्य रत्थपाल भी अरहंतों में से एक बन गए।

तब पूज्य रत्थपाल भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, मैं अपने माता-पिता से मिलने जाना चाहता हूँ, यदि आप मुझे अनुमति दें।” तब भगवान बुद्ध ने पूज्य रत्थपाल की चेतना को अपने भीतर समाहित करते हुए विचार किया और समझा, “पूज्य रत्थपाल साधना छोड़कर निम्न लोक में लौटने में असमर्थ हैं।” अतः उन्होंने उनसे कहा, “रत्थपाल, अब समय आ गया है कि आप अपनी इच्छानुसार कार्य करें।”

तब पूज्य रत्थपाल अपने आसन से उठकर, भगवान बुद्ध को प्रणाम करते हुए और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए, प्रस्थान कर गए। अपना आवास व्यवस्थित करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर वे थुल्लकोत्थिता की ओर विचरण करने लगे। विभिन्न चरणों में विचरण करते हुए वे अंततः थुल्लकोत्थिता पहुँचे। वहाँ वे राजा कोरव्य के मिगाचिरा उद्यान में ठहरे। फिर, सुबह सवेरे, अपने अंतर्वस्त्र को धारण करके और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर वे भिक्षा मांगने के लिए थुल्लकोत्थिता गए। थुल्लकोत्थिता में घर-घर भिक्षा मांगते हुए वे अपने पिता के घर पहुँचे।

उस समय पूज्य रत्थपाल के पिता मध्य द्वार के बरामदे में अपने बाल संवार रहे थे। उन्होंने दूर से पूज्य रत्थपाल को आते देखा और उन्हें देखकर कहा, "इन्हीं मुंडे सिर वाले ध्यानियों ने हमारे इकलौते प्यारे और मनमोहक पुत्र को यहाँ से विदा किया है!" इस प्रकार पूज्य रत्थपाल को अपने पिता के घर में उपहार या विनम्रतापूर्वक मना करने के बजाय केवल अपमान ही मिला।

तभी उनके एक रिश्तेदार की दासी बासी दलिया फेंकने वाली थी। तब पूज्य रत्थपाल ने उससे कहा, "बहन, अगर इसे फेंकना ही है तो मेरे कटोरे में डाल दो।" जब वह बासी दलिया कटोरे में डाल रही थी, तभी उसने उनके हाथ, पैर और आवाज़ पहचान ली। इसलिए वह उनकी माँ के पास गई और बोली, "हे स्वामी, आपको यह जानकर प्रसन्नता हो कि स्वामी का पुत्र रत्थपाल आ गया है।"

"अरे, अगर तुम्हारी बात सच है, तो मैं तुम्हें तुम्हारी आजादी देता हूँ!"

तब पूज्य रत्थपाला की माता उनके पिता के पास गईं और बोलीं, "हे गृहस्थ, आपको यह जानकर प्रसन्नता हो कि उनके कुल का पुरुष रत्थपाला आ गया है।"

उस समय पूज्य रत्थपाल एक दीवार के सहारे बैठे बासी दलिया खा रहे थे। उनके पिता उनके पास गए और बोले, "रत्थपाल, मेरे प्यारे, क्या — क्या? तुम बासी दलिया खा रहे हो? क्या तुम्हारे पास अपना घर नहीं है जहाँ तुम जा सको?"

"हे गृहस्थ, हमारा घर कैसे हो सकता है? हम गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में आ गए हैं। हम तपस्वी हैं, हे गृहस्थ। हम आपके घर आए थे, लेकिन उपहार या विनम्रतापूर्वक मना करने के बजाय हमें केवल गालियां ही मिलीं।"

"आओ, प्रिय रत्थपाला। चलो घर चलते हैं।"

"बस करो, गृहस्वामी। आज का मेरा भोजन समाप्त हो गया है।"

"तो फिर, प्रिय रत्थपाला, कल के भोजन के लिए मान जाइए।"

तो वेन. रथपाल ने मौन रहकर सहमति व्यक्त की।

आदरणीय रत्थपाल की सहमति समझकर, उनके पिता उनके घर गए और फर्श पर ताजा गोबर बिछाकर सोने-चांदी के दो बड़े ढेर बनवाए - एक सोने का, एक चांदी का - इतने बड़े कि पास खड़ा व्यक्ति दूर खड़े व्यक्ति को नहीं देख सकता था, ठीक वैसे ही जैसे दूर खड़ा व्यक्ति पास खड़े व्यक्ति को नहीं देख सकता था। उन्हें पर्दों के पीछे छिपाकर, उन्होंने उनके बीच एक आसन स्थापित किया, जिसके चारों ओर एक पर्दा लगा था।6 आदरणीय रत्थपाल की पूर्व पत्नियों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, "आओ, बहुओं। उन आभूषणों से सुशोभित हो जाओ जो हमारे पुत्र रत्थपाल को प्रिय और आकर्षक लगते थे।"

फिर, जैसे ही रात समाप्त होने लगी, पूज्य रत्थपाल के पिता ने अपने घर में स्वादिष्ट मुख्य और गैर-मुख्य भोजन तैयार करवाया और पूज्य रत्थपाल को समय की घोषणा करते हुए कहा: "प्रिय रत्थपाल, समय हो गया है। भोजन तैयार है।"

फिर, सुबह सवेरे—अपने अंतर्वस्त्र पहनकर और कुंड व वस्त्र लेकर—पूजनीय रत्थपाल अपने पिता के घर गए और वहाँ पहुँचकर तैयार आसन पर बैठ गए। तब उनके पिता ने सोने-चाँदी का ढेर दिखाते हुए उनसे कहा, "हे मेरे प्रिय रत्थपाल, यह तुम्हारी माता की विरासत है। बाकी तुम्हारे पिता की है; और बाकी तुम्हारे दादा की—[इतना काफी है कि] तुम धन का आनंद ले सको और पुण्य कमा सको। आओ, मेरे प्रिय रत्थपाल, साधना छोड़ो और सांसारिक जीवन में लौट आओ। धन का आनंद लो और पुण्य कमाओ!"

"हे गृहस्थ, यदि तुम मेरी बात मानोगे, तो सोने-चांदी का यह ढेर गाड़ियों पर लादकर गंगा नदी के मध्य में बहा दिया जाएगा। ऐसा क्यों? यही धन तुम्हारे दु:ख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा का कारण बनेगा।"

फिर, उनके प्रत्येक पैर को पकड़ते हुए, पूज्य रत्थपाल की पूर्व पत्नियों ने उनसे कहा, "हे प्रिय स्वामी-पुत्र, वे कैसी दिखती हैं: वे अप्सराएँ जिनके लिए आप पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं?"

"बहनों, हम अप्सराओं के खातिर पवित्र जीवन नहीं जीते हैं।"

"'बहनें' कहकर पुकारता है वो!" और वे बेहोश होकर वहीं गिर पड़ीं।

तब पूज्य रत्थपाल ने अपने पिता से कहा, "गृहस्थ, यदि भोजन उपलब्ध हो तो दे दीजिए। हमें परेशान मत कीजिए।"

"तो खाओ, मेरे प्यारे रत्थपाला। खाना तैयार है।"

अत:, पूज्य रत्थपाल के पिता ने अपने हाथों से उन्हें उत्तम प्रकार के मुख्य और गैर-मुख्य भोजन परोसकर तृप्त किया। भोजन समाप्त करने और कटोरे से हाथ हटाने के बाद, पूज्य रत्थपाल खड़े हुए और उन्होंने ये श्लोक पढ़े:

इस सौंदर्यीकृत छवि को देखिए।

घावों का एक ढेर, जिसे सहारा देकर खड़ा किया गया है: बीमार, लेकिन कई संकल्पों का विषय, जहाँ कुछ भी स्थायी या निश्चित नहीं है।7

कानों की बालियों और रत्नों से सजी इस आकृति को देखिए: त्वचा में लिपटा एक कंकाल, जिसे कपड़ों से आकर्षक बनाया गया है।

मेहंदी से लाल हुए पैर, पाउडर से सना हुआ चेहरा: एक मूर्ख को धोखा देने के लिए काफी है, लेकिन उस व्यक्ति को नहीं जो आगे के किनारे की तलाश में है।

आठ लटों में गुंथे बाल, आँखों में लगा इत्र: मूर्ख को धोखा देने के लिए काफी है, लेकिन परलोक की खोज करने वाले को नहीं। जैसे किसी नए रंगे इत्र के पात्र को सजाया गया हो - एक सड़ा हुआ शरीर: मूर्ख को धोखा देने के लिए काफी है, लेकिन परलोक की खोज करने वाले को नहीं।

शिकारी ने जाल बिछाया, लेकिन हिरण जाल के पास नहीं गया। चारा खाकर हम चले गए, और शिकारी रोने लगे।

खड़े होकर इन श्लोकों का पाठ करने के बाद, पूज्य रत्थपाला राजा कोरव्य के मिगाचिरा गए। वहाँ पहुँचकर वे दिनभर विश्राम करने के लिए एक वृक्ष की छाया में बैठ गए।

तब राजा कोराव्या ने अपने रक्षक से कहा, "मिगासिरा के मनोरम उद्यान को साफ करो। मैं वहाँ के सुंदर मैदानों को देखने जा रहा हूँ।"

"जैसा आप कहें, महाराज," रक्षक ने राजा को उत्तर दिया। मिगाचिरा की सफाई करते समय उसने देखा कि पूज्य रत्थपाला दिनभर आराम करने के लिए एक वृक्ष की छाया में बैठे हैं। उन्हें देखकर वह राजा के पास गया और बोला, "महाराज, मिगाचिरा की सफाई कर दी गई है। और थुल्लाकोत्थिता के प्रमुख कुल के पुत्र रत्थपाला, जिनकी आपने अक्सर प्रशंसा की है, वहीं दिनभर आराम करने के लिए एक वृक्ष की छाया में बैठे हैं।"

"तो फिर, मेरे प्रिय रक्षक, आज के लिए मनोरंजन उद्यान की चिंता छोड़ दीजिए। मैं अब उस गुरु रत्थपाला को श्रद्धांजलि अर्पित करने जा रहा हूँ।"

फिर, "तैयार किए गए सभी मुख्य और गैर-मुख्य खाद्य पदार्थों को दान कर दो," कहते हुए, राजा कोरव्य ने शुभ वाहनों को तैयार करवाया। एक शुभ वाहन पर सवार होकर, वे अन्य शुभ वाहनों के साथ, पूरे राजसी वैभव के साथ थुल्लकोत्थिता से पूज्य रत्थपाल से मिलने के लिए निकले। जहाँ तक मार्ग संभव था, वे वाहन से गए, फिर वाहन से उतरकर अपने दरबार के कई प्रतिष्ठित सदस्यों के साथ पूज्य रत्थपाल के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य रत्थपाल का शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद, वे एक तरफ खड़े हो गए। वहाँ खड़े होकर उन्होंने पूज्य रत्थपाल से कहा, "हे स्वामी रत्थपाल, हाथी की गद्दी पर यहाँ बैठें।"

"कोई बात नहीं, महाराज। आप वहीं बैठिए। मैं अपनी सीट पर बैठा हूँ।"

अतः राजा कोरव्य तैयार आसन पर बैठ गए। वहाँ बैठते हुए उन्होंने पूज्य रत्थपाल से कहा, "ऐसे उदाहरण हैं जहाँ चार प्रकार की हानियाँ भोगने के बाद पुरुष अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लेते हैं, गेरुए वस्त्र धारण कर गृहस्थ जीवन त्याग देते हैं और तपस्वी जीवन व्यतीत करते हैं। वे चार प्रकार कौन से हैं? वृद्धावस्था की हानि, रोग की हानि, धन की हानि और सगे संबंधियों की हानि... परन्तु गुरु रत्थपाल को इनमें से कोई हानि नहीं हुई। उन्होंने ऐसा क्या जाना, देखा या सुना कि गुरु रत्थपाल गृहस्थ जीवन त्यागकर तपस्वी जीवन व्यतीत करने चले गए?"

"हे महाराज, ज्ञानवान, दर्शनशील, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत भगवान ने धम्म के चार सारांश बताए हैं। उन्हें जानकर, देखकर और सुनकर मैंने गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में प्रवेश किया। वे चार कौन से हैं?"

"'यह संसार बह गया है। यह स्थिर नहीं है': यह सर्वज्ञानी, साक्षी, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत भगवान द्वारा कहा गया पहला धम्म सारांश है। इसे जानकर, देखकर और सुनकर, मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में चला गया।"

"'संसार आश्रयहीन है, रक्षकहीन है': यह धम्म का दूसरा सारांश है..."

"'यह संसार स्वामित्वहीन है। व्यक्ति को सब कुछ पीछे छोड़कर इस दुनिया से विदा होना पड़ता है': यह धम्म का तीसरा सारांश है..."

"'संसार अपर्याप्त है, अतृप्त है, लालसा का गुलाम है': यह चौथा धम्म सारांश है..."

"हे महाराज, ये चार धम्म सारांश हैं जिनका वर्णन ज्ञानवान, प्रत्यक्षदर्शी, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत भगवान ने किया है। इन्हें जानकर, देखकर और सुनकर, मैंने गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में प्रवेश किया।"

"हे गुरु रत्थपाल, आप कहते हैं, 'संसार बह जाता है। यह स्थिर नहीं रहता।' अब इस कथन का अर्थ कैसे समझा जाए?"

"हे महान राजा, आपका क्या विचार है: जब आप बीस या पच्चीस वर्ष के थे - एक कुशल हाथी सवार, एक कुशल घुड़सवार, एक कुशल रथ चालक, एक कुशल धनुर्धर, एक कुशल तलवारबाज - क्या आप भुजाओं और जांघों में बलवान, चुस्त-दुरुस्त और युद्धकला में अनुभवी थे?"

"जी हां, गुरु रत्थपाल, जब मैं बीस या पच्चीस वर्ष का था... मेरी भुजाएँ और जांघें बलवान थीं, मैं तंदुरुस्त था और युद्धकला में निपुण था। ऐसा लगता था मानो मुझमें अलौकिक शक्ति हो। मुझे शक्ति में अपने समकक्ष कोई नहीं दिखता था।"

"और हे महान राजा, आपका क्या विचार है: क्या आप अब भी उतने ही बलवान और मजबूत हैं, उतने ही चुस्त-दुरुस्त और युद्ध में उतने ही अनुभवी हैं?"

"बिल्कुल नहीं, गुरु रत्थपाल। मैं अब एक दुर्बल बूढ़ा व्यक्ति हूँ, उम्रदराज हो चुका हूँ, जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँच गया हूँ, 80 वर्ष का। कभी-कभी, यह सोचते हुए कि 'मैं अपना पैर यहाँ रखूँगा,' मैं उसे कहीं और रख देता हूँ।"

"हे महान राजा, इसी संदर्भ में सर्वज्ञानी, दर्शनशील, योग्य और सही मायने में आत्मजागृत भगवान ने कहा था: 'संसार नष्ट हो जाएगा। यह स्थिर नहीं रहेगा।' यह जानकर, देखकर और सुनकर, मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में चला गया।"

"यह अद्भुत है, गुरु रत्थपाल। यह आश्चर्यजनक है कि ज्ञान और दृष्टि वाले, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत भगवान ने कितनी सटीक बात कही है: 'संसार बह जाएगा। यह स्थिर नहीं रहेगा।' क्योंकि वास्तव में संसार बह जाएगा, गुरु रत्थपाल। यह स्थिर नहीं रहेगा।"

"इस राजमहल में हाथी सेना, घुड़सवार सेना, रथ सेना और पैदल सेना मौजूद हैं जो हमें खतरों से बचाएंगे। फिर भी आप कहते हैं, 'दुनिया बेघर है, रक्षक नहीं।' इस कथन का अर्थ क्या है?"

"हे महाराज, आपका क्या विचार है: क्या आपको कोई बार-बार होने वाली बीमारी है?"

"जी हां, स्वामी रत्थपाल, मुझे बार-बार वात रोग हो जाता है।9 कभी-कभी मेरे मित्र और सलाहकार, रिश्तेदार और रक्त संबंधी मेरे चारों ओर खड़े होकर कहते हैं, 'इस बार राजा कोरव्य की मृत्यु होगी। इस बार राजा कोरव्य की मृत्यु होगी।'"

"और हे महाराज, आप क्या सोचते हैं: क्या आप अपने मित्रों, सलाहकारों, रिश्तेदारों और रक्त संबंधियों से कह सकते हैं, 'मेरे मित्रों, सलाहकारों, रिश्तेदारों और रक्त संबंधियों को आदेश दिया जाता है: आप सभी जो यहाँ उपस्थित हैं, इस पीड़ा को आपस में बाँट लें ताकि मुझे कम पीड़ा हो'? या आपको यह पीड़ा अकेले ही सहनी होगी?"

"ओह, नहीं, गुरु रत्थपाल, मैं अपने मित्रों, सलाहकारों, रिश्तेदारों और सगे-संबंधियों से यह नहीं कह सकता, 'आप सभी जो यहाँ उपस्थित हैं, इस पीड़ा को आपस में बाँट लें ताकि मुझे कम पीड़ा हो।' मुझे यह पीड़ा अकेले ही सहनी होगी।"

"हे महान राजा, इसी संदर्भ में सर्वज्ञानी, ज्ञानी और प्रत्यक्षदर्शी, योग्य और सही मायने में आत्मजागृत भगवान ने कहा था: 'संसार आश्रयहीन और रक्षकहीन है।' यह जानकर, देखकर और सुनकर, मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में चला गया।"

"यह अद्भुत है, गुरु रत्थपाल। यह आश्चर्यजनक है कि ज्ञान और दृष्टि से परिपूर्ण, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत भगवान ने कितनी सटीक बात कही है: 'संसार आश्रयहीन है, रक्षकहीन है।' वास्तव में संसार आश्रयहीन है, गुरु रत्थपाल। यह रक्षकहीन है।"

"इस शाही दरबार में ज़मीन के नीचे और अटारी की तिजोरियों में बहुत सारा सोना और चांदी छिपाकर रखा गया है। फिर भी आप कहते हैं, 'दुनिया का कोई मालिक नहीं है। हर किसी को सब कुछ छोड़कर मरना पड़ता है।' इस कथन का अर्थ क्या है?"

"हे महाराज, आपका क्या विचार है? जिस प्रकार आप अब पांचों इंद्रियों के सुखों से परिपूर्ण होकर आनंद ले रहे हैं, क्या आप कह सकते हैं, 'परलोक में भी मैं इसी प्रकार, इन्हीं पांचों इंद्रियों के सुखों से परिपूर्ण होकर आनंद लूंगा'? या यह धन दूसरों को मिल जाएगा, जबकि आप अपने कर्मों के अनुसार इस दुनिया से चले जाएंगे?"

"ओह, नहीं, गुरु रत्थपाल, मैं यह नहीं कह सकता, 'परलोक में भी मैं उसी तरह आनंद लूंगा, पांचों इंद्रियों के उन्हीं सुखों से परिपूर्ण होकर।' यह धन दूसरों को मिलेगा, जबकि मैं अपने कर्मों के अनुसार इस दुनिया से चला जाऊंगा।"

"हे महान राजा, इसी संदर्भ में सर्वज्ञानी, ज्ञानी और प्रत्यक्षदर्शी, योग्य और सही मायने में आत्मजागृत भगवान ने कहा था: 'संसार का कोई स्वामित्व नहीं है। मनुष्य को सब कुछ छोड़कर इस संसार से विदा होना पड़ता है।' यह जानकर, देखकर और सुनकर, मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में विलीन हो गया।"

"यह अद्भुत है, गुरु रत्थपाल। यह आश्चर्यजनक है कि ज्ञान और दृष्टि से परिपूर्ण, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत भगवान ने कितनी सटीक बात कही है: 'संसार का कोई स्वामित्व नहीं है। मनुष्य को सब कुछ पीछे छोड़कर इस दुनिया से विदा होना ही है।' क्योंकि वास्तव में संसार का कोई स्वामित्व नहीं है, गुरु रत्थपाल। मनुष्य को सब कुछ पीछे छोड़कर इस दुनिया से विदा होना ही है।"

"हे रत्थपाल स्वामी, आप कहते हैं, 'संसार अपर्याप्त है, अतृप्त है, लालसा का गुलाम है।' इस कथन का अर्थ क्या समझा जाए?"

"हे महान राजा, आपका क्या विचार है: क्या अब आप कुरु के समृद्ध देश पर शासन करते हैं?"

"जी हां, स्वामी रत्थपाल। मैं कुरु के समृद्ध देश का शासक हूं।"

"हे महाराज, आप क्या सोचते हैं? मान लीजिए कि आपका कोई भरोसेमंद और विश्वसनीय व्यक्ति पूर्व से आपके पास आता है। पहुँचने पर वह आपसे कहता है, 'महाराज, मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो कि मैं पूर्व से आया हूँ। वहाँ मैंने एक महान, शक्तिशाली, समृद्ध, घनी आबादी वाला और लोगों से भरा देश देखा। वहाँ हाथी, घुड़सवार, रथ और पैदल सेना प्रचुर मात्रा में हैं। वहाँ हाथीदांत, सोना और चांदी, दोनों ही तरह के, प्रचुर मात्रा में हैं। वहाँ स्त्रीयाँ भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। आपके पास जो सेना है, उससे आप उस देश को जीत सकते हैं। हे महाराज, उस देश को जीत लीजिए!' आप क्या करेंगे?"

"हे रत्थपाला स्वामी, इसे जीतने के बाद मैं इस पर शासन करूंगा।"

"अब आप क्या सोचते हैं, महाराज? मान लीजिए कि आपका कोई भरोसेमंद और विश्वसनीय व्यक्ति पश्चिम से... उत्तर से... दक्षिण से... समुद्र के उस पार से आपके पास आता है। पहुँचने पर वह आपसे कहता है, 'महाराज, मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो कि मैं समुद्र के उस पार से आया हूँ। वहाँ मैंने एक महान देश देखा, शक्तिशाली और समृद्ध, घनी आबादी वाला और लोगों से भरा हुआ। वहाँ हाथियों की सेनाएँ, घुड़सवार सेनाएँ, रथ सेनाएँ और पैदल सेनाएँ प्रचुर मात्रा में हैं। वहाँ हाथीदांत का काम प्रचुर मात्रा में है, सोना और चाँदी, दोनों ही तराशे हुए और बिना तराशे हुए, प्रचुर मात्रा में हैं। वहाँ स्त्रीयाँ भी प्रचुर मात्रा में हैं। आपके पास जो सेना है, उससे आप उसे जीत सकते हैं। उसे जीत लीजिए, महाराज!' आप क्या करेंगे?"

"हे रत्थपाल स्वामी, इसे जीतने के बाद मैं इस पर शासन भी करूंगा।"

"हे महान राजा, इसी संदर्भ में सर्वज्ञानी, योग्य और सही मायने में आत्मजागृत भगवान ने कहा था: 'संसार अपर्याप्त, अतृप्त और लालसा का गुलाम है।' यह जानकर, देखकर और सुनकर मैं गृहस्थ जीवन छोड़कर तपस्वी जीवन में चला गया।"

"यह अद्भुत है, गुरु रत्थपाल। यह आश्चर्यजनक है कि ज्ञान और दृष्टि से परिपूर्ण, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत भगवान ने कितनी सटीक बात कही है: 'संसार अपर्याप्त है, अतृप्त है, लालसा का गुलाम है।' क्योंकि वास्तव में संसार अपर्याप्त है, गुरु रत्थपाल। यह अतृप्त है, लालसा का गुलाम है।"

यही बात पूज्य रत्थपाला ने कही। इसके बाद उन्होंने आगे यह कहा:

मैं दुनिया में देखता हूँ

धनवान लोग, जो भ्रम में डूबे रहते हैं, अपने अर्जित खजाने को दान नहीं करते। लालच में आकर वे उसे छिपाकर रखते हैं, और अधिक सुख-सुविधाओं की आशा करते हैं।

एक राजा जिसने बलपूर्वक दुनिया को जीत लिया है और समुद्र के किनारे तक पृथ्वी पर शासन करता है, समुद्र के निकटवर्ती तट से असंतुष्ट होकर समुद्र के दूरवर्ती तट की भी लालसा रखता है।

राजाओं और अन्य लोगों सहित कई लोग अपनी अतृप्त इच्छाओं के साथ मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। तृप्त न होकर वे शरीर त्याग देते हैं, क्योंकि उन्हें संसार के इंद्रिय सुखों का पूर्ण आनंद नहीं मिल पाता।

रिश्तेदार रोते-बिलखते हैं और अपने बाल नोचते हैं। वे चिल्लाते हैं, 'हाय, हमारा प्रियतम मर गया!' उसे कपड़े में लपेटकर ले जाते हैं, चिता पर रखते हैं और फिर आग लगा देते हैं।

इसलिए वह केवल एक कपड़े में लिपटा हुआ, लकड़ियों से गोदा हुआ जल रहा है, अपनी सारी संपत्ति पीछे छोड़कर। ये किसी मृत व्यक्ति के लिए आश्रय नहीं हैं—न ही रिश्तेदार, न मित्र, न साथी।

उसके उत्तराधिकारी उसकी संपत्ति के वारिस बन जाते हैं, और आत्मा अपने कर्मों के अनुसार जीवित रहती है। मृत आत्मा के साथ कोई धन-संपत्ति नहीं जाती—न संतान, न पत्नियाँ, न राज्य, न दौलत।

धन-दौलत से लंबी उम्र नहीं मिलती, न ही दौलत से बुढ़ापा दूर होता है। ज्ञानी कहते हैं कि यह जीवन क्षणभंगुर है, परिवर्तनशील है।

अमीर और गरीब, सभी मृत्यु के स्पर्श को महसूस करते हैं। मूर्ख और बुद्धिमान, दोनों ही इससे प्रभावित होते हैं। लेकिन मूर्ख तो अपनी मूर्खता के कारण मृत प्रतीत होते हैं, जबकि बुद्धिमान मृत्यु के स्पर्श से भयभीत नहीं होते।

अत: वह विवेक जिससे व्यक्ति निपुणता प्राप्त करता है, धन से श्रेष्ठ है—क्योंकि जो लोग निपुणता प्राप्त नहीं कर पाते वे भ्रम में भटकते हुए बुरे कर्म करते हुए एक जन्म से दूसरे जन्म में भटकते रहते हैं।

एक व्यक्ति एक गर्भ में जाता है और फिर परलोक में, एक के बाद एक भटकता रहता है, जबकि कमजोर विवेक वाले लोग, एक पर भरोसा करते हुए, वे भी एक गर्भ में जाते हैं और फिर परलोक में।

जिस प्रकार चोरी करते हुए पकड़ा गया दुष्ट चोर अपने ही कर्मों के फलस्वरूप नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार दुष्ट लोग भी मरने के बाद परलोक में अपने ही कर्मों के फलस्वरूप नष्ट हो जाते हैं।

इंद्रिय सुख— विविध, मोहक, मधुर— विभिन्न प्रकार से मन को विचलित करते हैं। इंद्रिय सुखों की कमियों को देखकर ही, हे राजा, मैं प्रस्थान किया।

जैसे फल नष्ट होते हैं, वैसे ही शरीर के टूटने पर मनुष्य भी गिर पड़ते हैं—युवा और वृद्ध। हे राजा, यह जानकर मैं आगे बढ़ा। निःसंदेह चिंतनशील जीवन श्रेष्ठ है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.3 मखदेव सुत्त(83)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध मिथिला में मखादेव आम के बाग में रहते थे। फिर जब वे किसी विशेष स्थान पर गए तो मुस्कुराए। तब पूज्य आनंद के मन में यह प्रश्न आया—भगवान बुद्ध बिना कारण मुस्कुराए तो नहीं मुस्कुराते, आखिर क्यों मुस्कुराए? तब पूज्य आनंद ने अपने वस्त्र को एक कंधे पर समेटते हुए भगवान बुद्ध की ओर हाथ जोड़कर कहा, 'हे पूज्य, भगवान बुद्ध क्यों मुस्कुराए?'

आनंद, अतीत में, इसी मिथिला में, मखदेव नाम का एक राजा था। वह एक धर्मात्मा राजा था और उसने देश पर धर्मपूर्वक शासन किया। शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और अष्टम दिन वह आठ नियमों का पालन करता था। गाँव-बस्तियों और राज्य के ब्राह्मण गृहस्थ भी शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और अष्टम दिन आठ नियमों का पालन करते थे। फिर सैकड़ों वर्षों, हजारों वर्षों, एक लाख वर्षों के बाद राजा मखदेव ने अपने नाई से कहा: हे मित्र नाई, यदि मेरे सिर पर कोई सफेद बाल दिखाई दे तो मुझे बताना। नाई मान गया। बहुत समय बाद, कई लाख वर्षों के बाद, नाई ने राजा मखदेव के सिर पर एक सफेद बाल देखा और कहा, 'हे स्वामी, यहाँ एक सफेद बाल स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है।' 'तो हे मित्र नाई, उस सफेद बाल को चिमटी से सावधानीपूर्वक निकाल कर मेरी हथेली पर रख दो।' नाई मान गया और उसने चिमटी से सावधानीपूर्वक एक सफेद बाल निकालकर राजा मखदेव की हथेली पर रख दिया। फिर राजा मखदेव ने नाई को एक गाँव भेंट करते हुए अपने बड़े पुत्र से कहा, "प्रिय पुत्र, मुझे दूत मिले हैं, मेरे सिर पर सफेद बाल आ गए हैं। मैंने मानवीय इंद्रिय सुखों का आनंद ले लिया है, अब स्वर्गीय इंद्रिय सुखों की खोज का समय है। आओ! प्रिय राजकुमार, देश पर शासन करो। मैं अपना सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र पहनकर संन्यासी बनूँगा। प्रिय राजकुमार, जब तुम भी अपने सिर पर एक सफेद बाल देखो, तो नाई को एक गाँव भेंट कर देना, देश का शासन अपने बड़े पुत्र को सौंप देना और उसे उचित मार्ग से देश पर शासन करने की सलाह देना। अपना सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र पहनकर संन्यासी बनो। ध्यान रखना कि मेरा शुभ चक्र भंग न हो। यदि किसी भी प्रकार से यह शुभ चक्र भंग हुआ, तो वह इस युग के महान पुरुषों में अंतिम व्यक्ति होगा।" प्रिय राजकुमार, इसलिए मैं कहता हूँ, अच्छाई के इस चक्र को जारी रखें और इस चक्र को तोड़ने वाले अंतिम व्यक्ति न बनें।

फिर राजा मखदेव आनंद ने नाई को एक गाँव दान में दिया, सबसे बड़े राजकुमार को पूर्णतया शासक के रूप में स्थापित किया, उसे धर्मपरायणता से शासन करने की सलाह दी, अपना सिर और दाढ़ी मुंडवा ली, पीले वस्त्र धारण किए और उसी आम के बाग में तपस्वी के रूप में चले गए। उन्होंने प्रेम और करुणा के विचार से एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में व्याप्त होकर, सदा, हर उद्देश्य और हर परिस्थिति में प्रेम और करुणा के विचार को विकसित किया, क्रोध और द्वेष से रहित होकर महान और असीम प्रेम और करुणा के विचार से निवास किया। करुणा के विचार से, आंतरिक आनंद के विचार से, समभाव के विचार से, उन्होंने एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में व्याप्त होकर, सदा, हर उद्देश्य और हर परिस्थिति में समभाव के विचार को विकसित किया, क्रोध और द्वेष से रहित होकर महान और असीम प्रेम और करुणा के विचार से निवास किया। राजा मखदेव आनंद ने अड़तालीस हजार वर्षों तक एक बालक के खेल खेले। अड़तालीस हजार वर्षों तक वायसराय रहे, अड़तालीस हजार वर्षों तक शासक रहे। फिर संन्यासी बनकर इसी आम के बाग में अड़तालीस हजार वर्षों तक पवित्र जीवन व्यतीत किया। मृत्यु के बाद चारों दिव्य निवासों का विकास करते हुए ब्रह्मा के लोक में जन्म लिया।

फिर सैकड़ों वर्षों, हजारों वर्षों, लाखों वर्षों के बाद राजा मखदेव के पुत्र ने अपने नाई को संबोधित करते हुए कहा: हे मित्र, नाई, यदि मेरे सिर पर कोई सफेद बाल दिखाई दे तो मुझे बताना। नाई मान गया। बहुत समय बाद, कई लाख वर्षों के बाद, नाई ने राजा मखदेव के पुत्र के सिर पर एक सफेद बाल देखा और कहा: 'हे स्वामी, यहाँ एक सफेद बाल स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। तब, हे मित्र, नाई, उस सफेद बाल को चिमटी से सावधानीपूर्वक निकालकर मेरी हथेली पर रख दो। नाई मान गया और उसने चिमटी से सावधानीपूर्वक सफेद बाल निकालकर राजा मखदेव के पुत्र की हथेली पर रख दिया। फिर राजा मखदेव के पुत्र ने नाई को एक गाँव भेंट करते हुए अपने बड़े पुत्र को संबोधित किया: प्रिय पुत्र, मुझे संदेश मिले हैं कि मेरे सिर पर सफेद बाल हैं। मैंने मानवीय इंद्रिय सुखों का आनंद ले लिया है, अब स्वर्गीय इंद्रिय सुखों की खोज का समय है। आओ! प्रिय राजकुमार, देश पर शासन करो। मैं अपना सिर और दाढ़ी मुंडवा लूँगा, पीले वस्त्र पहनूँगा और तपस्वी जीवन व्यतीत करूँगा। हे राजकुमार, जब आपके सिर पर भी एक सफेद बाल दिखाई दे, तो नाई को एक गाँव दान कर दीजिए, देश का शासन अपने बड़े पुत्र को सौंप दीजिए और उसे उचित मार्ग से देश चलाने की सलाह दीजिए। अपना सिर और दाढ़ी मुंडवा लीजिए, पीले वस्त्र पहन लीजिए और तपस्वी जीवन व्यतीत कीजिए। ध्यान रखिए कि मेरा यह शुभ चक्र भंग न हो। यदि किसी भी कारण से यह शुभ चक्र भंग हुआ, तो वह इस युग के महान पुरुषों में अंतिम व्यक्ति होगा। हे राजकुमार, इसीलिए मैं कहता हूँ, इस शुभ चक्र का अनुसरण कीजिए और इसे भंग करने वाले अंतिम व्यक्ति न बनिए।

फिर राजा मखदेव के पुत्र आनंद ने नाई को एक गाँव दान में देकर, सबसे बड़े राजकुमार को पूर्णतया शासक के रूप में स्थापित किया, उन्हें धर्मपरायणता से शासन करने की सलाह दी, अपना सिर और दाढ़ी मुंडवा ली, पीले वस्त्र धारण किए और उसी आम के बाग में तपस्वी जीवन व्यतीत करने चले गए। उन्होंने प्रेम और करुणा के विचार से एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में व्याप्त होकर, सदा, हर उद्देश्य और हर परिस्थिति में प्रेम और करुणा के विचार को विकसित किया, जो क्रोध और द्वेष से रहित होकर महान और असीम हो गया। करुणा के विचार से, आंतरिक आनंद के विचार से, समभाव के विचार से उन्होंने एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में व्याप्त होकर, सदा, हर उद्देश्य और हर परिस्थिति में समभाव के विचार को विकसित किया, जो क्रोध और द्वेष से रहित होकर महान और असीम हो गया। राजा मखदेव के पुत्र आनंद ने अड़तालीस हजार वर्षों तक एक बालक के खेल खेले। अड़तालीस हजार वर्षों तक वायसराय रहे, अड़तालीस हजार वर्षों तक शासक रहे। संन्यासी बनकर इसी आम के बाग में अड़तालीस हजार वर्षों तक पवित्र जीवन व्यतीत किया। मृत्यु के बाद चारों दिव्य निवासों का विकास करते हुए ब्रह्मा के लोक में जन्म लिया।

राजा मखदेव के पोते आनंद और उनके 48 हजार योद्धाओं ने इसी आम के बाग में अपने सिर और दाढ़ी मुंडवा ली थी। वे प्रेम और करुणा के विचार से एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में व्याप्त रहे, हर उद्देश्य और हर परिस्थिति में प्रेम और करुणा के विचार को विकसित करते हुए, क्रोध और द्वेष से रहित होकर महान और असीम प्रेम में निवास करते रहे। करुणा के विचार से, आंतरिक आनंद के विचार से, समभाव के विचार से वे एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में व्याप्त रहे, हर उद्देश्य और हर परिस्थिति में समभाव के विचार को विकसित करते हुए, क्रोध और द्वेष से रहित होकर महान और असीम प्रेम में निवास करते रहे। आनंद, उन्होंने 48 हजार वर्षों तक बच्चों के खेल खेले। 48 हजार वर्षों तक वे वायसराय रहे, 48 हजार वर्षों तक शासक रहे। 48 हजार वर्षों तक वे तपस्वी बनकर पवित्र जीवन व्यतीत करते रहे। मृत्यु के बाद चारों दिव्य निवासों का विकास करते हुए, वे ब्रह्मा के लोक में जन्म लेते हैं।

निमी उस शुभ चक्र के अंतिम राजा थे, जिन्होंने धार्मिक जीवन व्यतीत किया और धार्मिक शासन किया। उनके समय में भी शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन गाँवों, गांवों और राज्यों के ब्राह्मण गृहस्थों द्वारा आठ नियमों का पालन किया जाता था।

आनंद, अतीत में तैंतीस देवताओं की शुद्धम सभा में यह चर्चा हुई: विधेहा के लोगों के लिए यह बड़ा लाभ है कि राजा निमि धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं और धार्मिकता से शासन करते हैं, वे चंद्रमा के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन आठ नियमों का पालन करते हैं, और ब्राह्मण गृहस्थ भी गांवों, गांवों और राज्य में चंद्रमा के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन आठ नियमों का पालन करते हैं।

तब तैंतीस देवताओं के राजा सक्का ने उनसे कहा, "महोदय, क्या आप राजा निमि से मिलना चाहेंगे?" उस दिन शुक्ल पक्ष की पंद्रहवीं तिथि थी और राजा निमि ने अपने बाल धोकर आठ नियमों का पालन करते हुए अपने महल के सबसे ऊपरी तल पर विराजमान थे। तब देवताओं के राजा सक्का, जैसे कोई बलवान पुरुष अपनी मुड़ी हुई भुजा को सीधा करता है या सीधी भुजा को मोड़ता है, तैंतीस देवताओं के बीच से लुप्त होकर राजा निमि के सामने प्रकट हुए और बोले, "महाराज, यह आपके लिए लाभ की बात है कि तैंतीस देवता आपकी इस प्रकार प्रशंसा करें: विधेहा के लोगों के लिए यह बड़ा लाभ है कि राजा निमि धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं और धार्मिकता से शासन करते हैं, शुक्ल पक्ष की चौदहवीं, पंद्रहवीं और आठवीं तिथि को आठ नियमों का पालन करते हैं, और ब्राह्मण गृहस्थ भी गांवों, गांवों और राज्य में शुक्ल पक्ष की चौदहवीं, पंद्रहवीं और आठवीं तिथि को आठ नियमों का पालन करते हैं।" हे महान राजा, तैंतीस देवताओं की आपसे मिलने की इच्छा है, मैं आपके लिए एक हजार श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त दिव्य रथ भेजूंगा, इस पर आसीन होइए, हे महान राजा, दिव्य रथ कभी नहीं हिलता।

राजा निमी ने मौनपूर्वक स्वीकार कर लिया, और देवताओं के राजा सक्का, एक बलवान व्यक्ति की तरह अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैलाते या मोड़ते हुए, राजा निमी के समक्ष से गायब हो गए और तैंतीस देवताओं के बीच प्रकट हुए।

तब देवताओं के राजा सक्का ने सारथी मतली से कहा, "मित्र मतली, रथ में हजार श्रेष्ठ घोड़ों को जोतकर राजा निमि के पास जाओ और उनसे कहो: "महाराज, यह हजार श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त दिव्य रथ है, जिसे देवताओं के राजा सक्का ने भेजा है। इस पर आसीन हो जाइए, महाराज, यह दिव्य रथ हिलता नहीं।" सारथी मतली मान गया और उसने रथ में हजार श्रेष्ठ घोड़ों को जोतकर राजा निमि के पास जाकर कहा, "महाराज, यह हजार श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त दिव्य रथ है, जिसे देवताओं के राजा सक्का ने भेजा है। इस पर आसीन हो जाइए, महाराज, यह दिव्य रथ हिलता नहीं।" "परन्तु आप किस मार्ग से जाना चाहते हैं, क्या उस मार्ग से जहाँ दुष्टों को उनके कर्मों का फल मिलता है, या जहाँ पुण्यों को उनके कर्मों का फल मिलता है?" "मतली, मुझे इन दोनों मार्गों से ले चलो।" आनंद, सारथी मतली राजा निमि को तैंतीस देवताओं की सभा में ले गया। देवताओं के राजा सक्का ने राजा निमि को देखकर कहा, "आओ!" हे महान राजा! तैंतीस

देवता शुद्धम सभा में बैठकर आपकी स्तुति कर रहे हैं। विधेहा के लोगों के लिए यह बड़ा लाभ है कि राजा निमि धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं और विधिपूर्वक शासन करते हैं, शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन आठ नियमों का पालन करते हैं, और गाँव-बस्तियों और राज्यों में रहने वाले ब्राह्मण गृहस्थ भी शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन आठ नियमों का पालन करते हैं। हे महान राजा! तीन और तीस देवता आपको देखकर प्रसन्न होते हैं, देवताओं की महिमा में आनंदित होते हैं।

'बेकार है, महोदय, मुझे मिथिला वापस भेज दीजिए, वहाँ मैं ब्राह्मण गृहस्थों के साथ बस्तियों, गाँवों और राज्यों में धार्मिक जीवन व्यतीत करूँगा और शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन आठ नियमों का पालन करूँगा।'

आनंद, जो उस समय देवताओं के राजा सक्का थे, ने सारथी मतली से कहा, "आओ! हे मित्र मतली, रथ में एक हजार श्रेष्ठ घोड़ों को जोतो और राजा निमी को मिथिला वापस ले चलो।" सारथी मतली मान गए और उन्होंने रथ में एक हजार श्रेष्ठ घोड़ों को जोतकर राजा निमी को मिथिला वापस पहुँचा दिया।

आनंद, राजा निमि धार्मिक जीवन जीते थे और चंद्रमा के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन आठ नियमों का पालन करते थे। गाँव-बस्तियों और राज्यों में रहने वाले ब्राह्मण गृहस्थ भी शुक्ल पक्ष के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन आठ नियमों का पालन करते थे। फिर सैकड़ों वर्षों, हजारों वर्षों, एक लाख वर्षों के बाद राजा निमि ने अपने नाई से कहा: "हे मित्र नाई, यदि मेरे सिर पर कोई सफेद बाल दिखाई दे तो मुझे बताना।" नाई मान गया। बहुत समय बाद, कई लाख वर्षों के बाद, नाई ने राजा निमि के सिर पर एक सफेद बाल देखा और कहा, "हे स्वामी, यहाँ एक सफेद बाल स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है।" "तो, हे मित्र नाई, उस सफेद बाल को चिमटी से सावधानीपूर्वक निकालकर मेरी हथेली पर रख दो।" नाई मान गया और उसने चिमटी से सावधानीपूर्वक सफेद बाल निकालकर राजा निमि की हथेली पर रख दिया। फिर राजा निमि ने नाई को एक गाँव भेंट करते हुए अपने बड़े पुत्र को संबोधित किया। 'प्रिय पुत्र, मुझे दूत मिले हैं, मेरे सिर पर सफ़ेद बाल आ गए हैं। मैंने मानवीय इंद्रिय सुखों का आनंद ले लिया है, अब स्वर्गीय इंद्रिय सुखों की खोज का समय है। आओ! प्रिय राजकुमार, देश पर शासन करो। मैं अपना सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र पहनकर संन्यासी बन जाऊँगा। प्रिय राजकुमार, जब तुम भी अपने सिर पर सफ़ेद बाल देखो, तो नाई को एक गाँव दान कर देना, देश का शासन अपने बड़े पुत्र को सौंप देना और उसे उचित मार्ग से देश पर शासन करने की सलाह देना। अपना सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र पहनकर संन्यासी बन जाना। ध्यान रखना कि मेरे अच्छे कर्मों का चक्र न टूटे। यदि किसी भी प्रकार से, अच्छे कर्मों का यह चक्र किसी के द्वारा टूटता है, तो वह इस युग के महान पुरुषों में अंतिम व्यक्ति होगा। प्रिय राजकुमार, इसलिए मैं कहता हूँ, अच्छे कर्मों के इस चक्र का पालन करो और इस चक्र को तोड़ने वाले अंतिम व्यक्ति मत बनो।'

फिर आनंद ने राजा निमी को एक गाँव उपहार में दिया, सबसे बड़े राजकुमार को पूर्णतया शासक के रूप में स्थापित किया, उसे धर्मपरायणता से शासन करने की सलाह दी, अपना सिर और दाढ़ी मुंडवा ली, पीले वस्त्र धारण किए और उसी आम के बाग में एक तपस्वी के रूप में चले गए। उन्होंने प्रेम और करुणा के विचार से एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में व्याप्त होकर, सदा, हर उद्देश्य और हर परिस्थिति में प्रेम और करुणा के विचार को विकसित किया, क्रोध और द्वेष से रहित होकर महान और असीम रूप से प्रेम और करुणा के विचार से निवास किया। उन्होंने आंतरिक आनंद और समभाव के विचार से एक दिशा, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और हर दिशा में व्याप्त होकर, सदा, हर उद्देश्य और हर परिस्थिति में समभाव के विचार को विकसित किया, क्रोध और द्वेष से रहित होकर महान और असीम रूप से प्रेम और करुणा के विचार से निवास किया। आनंद, राजा निमी ने अड़तालीस हजार वर्षों तक एक बच्चे के खेल खेले। अड़तालीस हजार वर्षों तक वायसराय रहे, अड़तालीस हजार वर्षों तक शासक रहे। फिर संन्यासी बनकर इसी आम के बाग में अड़तालीस हजार वर्षों तक पवित्र जीवन व्यतीत किया। मृत्यु के बाद चारों दिव्य निवासों का विकास करते हुए ब्रह्मा के लोक में जन्म लिया।

आनंद, राजा निमि के पुत्र कालराजनक ने संन्यास नहीं लिया, उन्होंने उस शुभ चक्र को तोड़ा, और इस प्रकार वे उस शुभ चक्र के अंतिम पुरुष बन गए। आनंद, क्या आपके मन में यह बात आई कि यदि वह शुभ चक्र टूट जाता तो राजा मखदेव पूर्ण हो जाते? ऐसा नहीं होना चाहिए। उस समय मैं ही राजा मखदेव था, मैंने उस शुभ चक्र को तोड़ा ताकि आने वाली पीढ़ियाँ उस चक्र में न चलती रहें। आनंद, वह शुभ चक्र विरक्ति, वैराग्य, तृप्ति, तृप्ति, बोध, ज्ञान और मृत्यु की ओर नहीं ले जाता। वह ब्रह्मलोक में जन्म की ओर ले जाता है। आनंद, वह शुभ चक्र अब मेरे द्वारा तोड़ा गया है। यह निश्चित रूप से विरक्ति, वैराग्य, तृप्ति, तृप्ति, बोध, ज्ञान और मृत्यु की ओर ले जाता है। आनंद, मेरे द्वारा तोड़ा गया वह शुभ चक्र निश्चित रूप से विरक्ति, वैराग्य, तृप्ति, तृप्ति, बोध, ज्ञान और मृत्यु की ओर कैसे ले जाता है? यह वही श्रेष्ठ अष्टमार्ग है, जैसे: सही समझ, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता। आनंद, अब मैं इस शुभ चक्र को तोड़ रहा हूँ, ताकि निश्चित रूप से विरक्ति, वैराग्य, समाप्ति, प्रसन्नता, बोध, ज्ञानोदय और अंत की ओर अग्रसर हो सकूँ। आनंद, मैं तुमसे कहता हूँ, जब तक तुम इस चक्र को निर्बाध रूप से चलाते रहोगे, तुम इस चक्र के

अंतिम व्यक्ति नहीं बनोगे। आनंद, जब महान पुरुषों के काल में यह शुभ चक्र बाधित होता है, तो वे इस चक्र के अंतिम व्यक्ति बन जाते हैं। आनंद, इसीलिए मैं तुमसे कहता हूँ, इस शुभ चक्र को बाधित मत करो और इस चक्र के अंतिम व्यक्ति मत बनो।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.4मधुरा सुत्त(84)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय की बात है, पूज्य महाअक्कैयान मथुरा के गुंडा वन में निवास कर रहे थे। मथुरा के राजा अवंतीपुत्त ने सुना कि पूज्य महाअक्कैयान मथुरा के गुंडा वन में निवास कर रहे हैं और उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई है। वे ज्ञानवान, विद्वान, कुशल उपदेशक और सर्वथा सिद्ध पुरुष हैं, और ऐसे सिद्ध पुरुषों को देखना सुखद है। तब मथुरा के राजा अवंतीपुत्त ने उत्तम वाहन तैयार करके पूज्य महाअक्कैयान से मिलने के लिए राजमहल की शोभायात्रा निकाली। जहाँ तक वाहन उन्हें ले जा सकते थे, वहाँ तक वे पैदल चलकर पूज्य महाअक्कैयान के पास पहुँचे। महाकच्चायन के पास आकर और उनसे सौहार्दपूर्ण अभिवादन करते हुए, वे एक तरफ बैठ गए और बोले: "हे पूज्यवर, ब्राह्मण कहते हैं कि ब्राह्मण ही प्रमुख कुल के हैं, जो दिखने में सबसे श्रेष्ठ हैं, अन्य सभी कुल निम्न हैं। ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण, उनके वंशज ही शुद्ध करते हैं, गैर-ब्राह्मण शुद्ध नहीं करते। इस विषय में कच्चेयानन का क्या कहना है?"

महाराज, संसार में यह मात्र एक कथन है: ब्राह्मण प्रमुख कुल के हैं, दिखने में सबसे श्रेष्ठ हैं, अन्य सभी कुल निम्न हैं, केवल ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण, उनके वंशज ही शुद्ध होते हैं, गैर-ब्राह्मण शुद्ध नहीं होते। महाराज, यह कथन कि 'ब्राह्मण प्रमुख कुल के हैं, दिखने में सबसे श्रेष्ठ हैं, अन्य सभी कुल निम्न हैं, ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण, उनके वंशज ही शुद्ध होते हैं, गैर-ब्राह्मण शुद्ध नहीं होते', आपको यह जानना चाहिए कि यह केवल एक कथन मात्र है। महाराज, यदि किसी योद्धा के पास समृद्धि, धन, अनाज, चांदी या स्वर्ण हो, तो क्या योद्धा सबसे पीछे खड़ा होकर, उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उससे प्रसन्नतापूर्वक बात करेगा, या कोई ब्राह्मण, गृहस्थ कुल का कोई व्यक्ति, या अछूत कुल का कोई व्यक्ति, सबसे पीछे खड़ा होकर, उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उससे प्रसन्नतापूर्वक बात करेगा?

'हे कच्चयन, यदि किसी योद्धा के पास समृद्धि, धन, अनाज, चांदी या स्वर्ण-संपन्न धन हो, तो योद्धा खड़ा होकर सबसे अंत में विश्राम करेगा, उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उससे प्रसन्नतापूर्वक बातें करेगा, चाहे वह ब्राह्मण हो, गृहस्थ वंश का हो या अछूत वंश का हो, वह भी खड़ा होकर सबसे अंत में विश्राम करेगा, उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उससे प्रसन्नतापूर्वक बातें करेगा।'

'हे महाराज, यदि किसी ब्राह्मण के पास समृद्धि, धन, अनाज, चांदी या स्वर्ण-संपन्न वस्तु हो, तो क्या कोई ब्राह्मण खड़ा होकर सबसे अंत में जाएगा, उसकी आज्ञाओं का पालन करेगा और उससे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करेगा, या कोई योद्धा, या गृहस्थ वंश का कोई व्यक्ति, या अछूत वंश का कोई व्यक्ति खड़ा होकर सबसे अंत में जाएगा, उसकी आज्ञाओं का पालन करेगा और उससे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करेगा?'

'हे कच्चयन, यदि किसी ब्राह्मण के पास समृद्धि, धन, अनाज, चांदी या स्वर्ण-संपन्न धन हो, तो ब्राह्मण खड़ा होकर सबसे अंत में विश्राम करेगा, उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उससे प्रसन्नतापूर्वक बात करेगा, चाहे योद्धा हो, गृहस्थ वंश का हो या अछूत वंश का, वह भी खड़ा होकर सबसे अंत में विश्राम करेगा, उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उससे प्रसन्नतापूर्वक बात करेगा।'

'हे महाराज, यदि गृहस्थ कुल के किसी व्यक्ति के पास समृद्धि, धन, अनाज, चांदी या स्वर्ण-संपन्न धन हो, तो क्या गृहस्थ कुल, योद्धा कुल, ब्राह्मण कुल या अछूत कुल का कोई व्यक्ति खड़ा होकर सबसे अंत में जाकर उसकी आज्ञाओं का पालन करेगा और उससे विनम्रतापूर्वक बात करेगा?'

'हे कच्चयन, यदि गृहस्थ कुल के किसी व्यक्ति के पास धन, अनाज, चांदी, सोने आदि के रूप में समृद्धि हो, तो कोई योद्धा खड़ा होकर सबसे अंत में विश्राम करेगा, उसकी आज्ञाओं का पालन करेगा और उससे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करेगा, चाहे वह ब्राह्मण हो, गृहस्थ कुल का कोई व्यक्ति हो या अछूत कुल का कोई व्यक्ति हो, वह खड़ा होकर सबसे अंत में विश्राम करेगा, उसकी आज्ञाओं का पालन करेगा और उससे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करेगा।'

'हे महाराज, यदि किसी अछूत कुल के व्यक्ति को धन, अनाज, चांदी, सोने आदि के रूप में समृद्धि प्राप्त हो, तो क्या उस अछूत कुल का व्यक्ति खड़ा होकर अंत में विश्राम करेगा, उसकी आज्ञाओं का पालन करेगा और उससे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करेगा, या फिर कोई योद्धा, ब्राह्मण कुल का व्यक्ति, या गृहस्थ कुल का व्यक्ति खड़ा होकर अंत में विश्राम करेगा, उसकी आज्ञाओं का पालन करेगा और उससे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करेगा?'

'हे कच्चयन, यदि किसी अछूत कुल के व्यक्ति को धन, अनाज, चांदी या सोने के रूप में समृद्धि प्राप्त हो, तो उसी अछूत कुल का कोई व्यक्ति खड़ा होकर सबसे अंत में जाएगा, उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उससे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करेगा, चाहे वह योद्धा हो, ब्राह्मण हो या गृहस्थ कुल का कोई व्यक्ति हो, वह भी खड़ा होकर सबसे अंत में जाएगा, उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उससे सौहार्दपूर्ण ढंग से बात करेगा।'

'हे महाराज, यदि ऐसा है तो क्या ये चारों कुल एक ही नहीं हैं, या यहाँ क्या स्थिति है?'

'हे कच्चायना, जब ऐसा होता है, तो ये चारों कुल समतुल्य हो जाते हैं और मुझे उनमें कोई भेद नहीं दिखता।'

'हे महाराज, यह कथन कि 'ब्राह्मण प्रमुख कुल के हैं, जो दिखने में सबसे श्रेष्ठ हैं, अन्य सभी कुल निम्न हैं, ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण, उनके वंशज ही शुद्ध करते हैं, गैर-ब्राह्मण शुद्ध नहीं करते।' आपको यह भी जानना चाहिए कि यह केवल एक कथन मात्र है। हे महाराज, ऐसे योद्धा भी हैं जो जीवन का नाश करते हैं, बिना दिए वस्तुएँ छीन लेते हैं, यौन दुराचार करते हैं, झूठ बोलते हैं, निंदा करते हैं, कठोर शब्द बोलते हैं, तुच्छ बातें करते हैं, लोभ करते हैं, क्रोधित मन और गलत विचार रखते हैं, क्या वे मृत्यु के बाद नरक में घटित होंगे? या वे नरक में जन्म नहीं लेंगे?'

'हे कच्चयन, चाहे वे योद्धा ही क्यों न हों, जीवन का नाश करें, बिना दिए का सामान लें, यौनिकता में दुराचार करें, झूठ बोलें, निंदा करें, कठोर और तुच्छ बातें करें, लोभ करें, क्रोधी मन रखें और गलत धारणा रखें, मृत्यु के बाद वे घटते क्रम में जन्म लेंगे और हानि में ही जाएंगे। मुझे ऐसा ही लगता है, और मैंने यह सिद्ध पुरुषों से सुना है।'

'हे महाराज, यह अच्छा है कि आपको ऐसा विचार आया और आपने इसे सिद्ध पुरुषों से सुना। हे महाराज, कुछ ब्राह्मण हैं - गृहस्थ कुल के, अछूत कुल के, जो जीवन का संहार करते हैं, अनचाहा लेते हैं, व्यभिचार करते हैं, झूठ बोलते हैं, निंदा करते हैं, कठोर शब्द बोलते हैं, तुच्छ बातें करते हैं, लोभ करते हैं, क्रोधी मन रखते हैं और गलत दृष्टिकोण रखते हैं, क्या वे मृत्यु के बाद नरक में वंशानुक्रम में जन्म लेंगे? या वे नरक में जन्म नहीं लेंगे?'

हे कच्चयन, भले ही बहिष्कृत कुल के लोग जीवन का नाश करें, अनचाही वस्तुएँ छीनें, यौन दुराचार करें, झूठ बोलें, निंदा करें, कठोर और तुच्छ बातें करें, लोभ करें, क्रोधी मन रखें और गलत विचार रखें, तो मृत्यु के बाद वे घटते क्रम में जन्म लेंगे और हानि में ही जाएंगे। मुझे ऐसा ही प्रतीत होता है, और मैंने यह सिद्ध पुरुषों से सुना है।

'हे महाराज, यह अच्छा है कि आपको ऐसा विचार आया, यह अच्छा है कि आपने इसे सिद्ध पुरुषों से सुना। हे महाराज, यदि ऐसा है, तो क्या ये चारों कुल एक ही नहीं हैं, या यहाँ क्या स्थिति है?'

'हे कच्चायना, जब ऐसा होता है, तो ये चारों कुल समतुल्य हो जाते हैं और मुझे उनमें कोई भेद नहीं दिखाई देता।'

'हे महाराज, यह कथन कि 'ब्राह्मण प्रमुख कुल के हैं, दिखने में सबसे श्रेष्ठ हैं, अन्य सभी कुल निम्न हैं, ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण, उनके वंशज ही शुद्ध करते हैं, गैर-ब्राह्मण शुद्ध नहीं करते', आपको यह भी मात्र एक कथन है। हे महाराज, ऐसे योद्धा भी हैं जो जीवन-नाशक, अनादि का सेवन करने वाले, व्यभिचारी, झूठ बोलने वाले, निंदा करने वाले, कठोर शब्द बोलने वाले, तुच्छ शब्द बोलने वाले, लोभ करने वाले, क्रोधी मन रखने वाले और सही दृष्टि वाले होते हैं, क्या वे मृत्यु के बाद स्वर्ग में वंशागत रूप से जन्म लेंगे? या वे स्वर्ग में जन्म नहीं लेंगे?'

'हे कच्चयन, जो योद्धा जीवन का नाश करने, बिना दी हुई वस्तु लेने, यौन दुराचार करने, झूठ बोलने, निंदा करने, कठोर शब्द बोलने, तुच्छ शब्द बोलने, लोभ करने, क्रोध करने और सही दृष्टि रखने से परहेज करते हैं, वे भी मृत्यु के बाद स्वर्ग में वंशवृद्धि के साथ जन्म लेते हैं; ऐसा ही होता है, मैंने यह सिद्ध पुरुषों से सुना है।'

'हे महाराज, यह अच्छा है कि आपको ऐसा विचार आया, यह अच्छा है कि आपने इसे सिद्ध पुरुषों से सुना। हे महाराज, कुछ ब्राह्मण हैं, गृहस्थ वंश के, और कुछ बहिष्कृत जाति के, जो जीवन नष्ट करने वाले कर्मों से, अनचाही वस्तु लेने से, व्यभिचार करने से, झूठ बोलने से, निंदा करने से, कठोर शब्दों से, तुच्छ शब्दों से, लोभ करने से, क्रोधी मन रखने से परहेज करते हैं, और जो सही दृष्टि रखते हैं, क्या वे मृत्यु के बाद स्वर्ग में वंशवृद्धि के साथ जन्म लेंगे? या वे स्वर्ग में जन्म नहीं लेंगे?'

'हे कच्चयन, यहाँ तक कि बहिष्कृत कुल के लोग भी यदि जीवन नष्ट करने, अनचाही वस्तुएँ लेने, यौन दुराचार करने, झूठ बोलने, निंदा करने, कठोर शब्द बोलने, तुच्छ शब्द बोलने, लोभ करने, क्रोध करने और सही दृष्टिकोण बनाए रखने से परहेज करते हैं, तो मृत्यु के बाद स्वर्ग में उनका वंश बढ़ता है, ऐसा ही होता है, मैंने यह सिद्ध पुरुषों से सुना है।'

'हे महाराज, यह अच्छा है कि आपको ऐसा विचार आया, यह अच्छा है कि आपने इसे सिद्ध पुरुषों से सुना। हे महाराज, यदि ऐसा है, तो क्या ये चारों कुल एक ही नहीं हैं, या यहाँ क्या स्थिति है?'

'हे कच्चायना, जब ऐसा है तो ये चारों कुल समान हैं और मुझे उनमें कोई अंतर नहीं दिखता।'

'हे महाराज, यह कथन कि 'ब्राह्मण प्रमुख कुल के हैं, दिखने में सबसे श्रेष्ठ हैं, अन्य सभी कुल हीन हैं, ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होते हैं, उनके वंशज हैं, जो पवित्र करते हैं, गैर-ब्राह्मण पवित्र नहीं करते' आपको यह जानना चाहिए कि यह केवल एक कथन मात्र है। यहाँ, हे महाराज, एक योद्धा किसी घर में घुसकर लूटपाट करता है, घात लगाकर बैठता है या दूसरों की पत्नियों के पास जाता है, तब लोग उसे पकड़कर राजा के सामने लाते हैं। हे स्वामी, यह तो एक लुटेरा है, इसे अपनी इच्छा अनुसार दंड दीजिए—आप क्या करेंगे?'

'हे कच्चयन, मैं उसे नष्ट करवा दूँगा, या निर्वासित करवा दूँगा, या उसे उचित दंड दूँगा। कारण क्या है? हे कच्चयन, पहले वह एक योद्धा माना जाता था, और बाद में वह एक डाकू के रूप में जाना जाने लगा।'

'हे महाराज, एक ब्राह्मण, जो गृहस्थ कुल का है, और बहिष्कृत कुल का है, किसी के घर में घुसकर लूटपाट करता है, घात लगाकर बैठता है या दूसरों की पत्नियों के पास जाता है। तब लोग उसे पकड़ लेते हैं और राजा के सामने पेश करते हैं। हे महाराज, यह तो एक लुटेरा है, इसे अपनी इच्छानुसार दंड दीजिए—आप क्या करेंगे?'

'हे कच्चयन, मैं उसे नष्ट करवा दूँगा, या निर्वासित करवा दूँगा, या उसे उचित दंड दूँगा। कारण क्या है? हे कच्चयन, पहले तो उसे बहिष्कृत माना जाता था, और बाद में वह डाकू के रूप में जाना जाने लगा।'

'हे कच्चायना, जब ऐसा है तो ये चारों कुल समान हैं और मुझे उनमें कोई अंतर नहीं दिखता।'

'हे महाराज, यदि ऐसा है तो क्या ये चारों कुल एक ही नहीं हैं, या यहाँ क्या स्थिति है?'

'हे कच्चायना, जब ऐसा है तो ये चारों कुल समान हैं और मुझे उनमें कोई भेद नहीं दिखता।'

'हे महाराज, यह कथन मात्र है: 'ब्राह्मण प्रमुख कुल के हैं, जो दिखने में सबसे श्रेष्ठ हैं, अन्य सभी कुल निम्न हैं। ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण, उनके वंशज ही शुद्ध करते हैं, गैर-ब्राह्मण शुद्ध नहीं करते।' हे महाराज, यहाँ एक योद्धा है जो सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र

पहनकर, संन्यासी के रूप में विराजमान है। वह जीव-जंतुओं को नष्ट करने से, बिना दी हुई वस्तुएँ लेने से, झूठ बोलने से विराजमान है, दिन में एक बार भोजन करता है और पवित्र जीवन व्यतीत करता है। आप उसके साथ क्या व्यवहार करेंगे?'

'हे कच्चयन, मैं उसके आने पर आसन से उठूंगा, उसे आसन दूंगा, उसे आमंत्रित करूंगा, जीवन की चारों आवश्यक वस्तुएँ, जैसे वस्त्र, भोजन, आवास और बीमारी के समय भोजन उपलब्ध कराऊंगा, और उसकी धार्मिक सुरक्षा सुनिश्चित करूंगा। इसका कारण क्या है? हे कच्चयन, पहले वह योद्धा माना जाता था, और बाद में वह संन्यासी माना जाता है।'

'हे महान महाराज, एक ब्राह्मण, जो गृहस्थ वंश का है, और अछूत वंश का है, सिर और दाढ़ी मुंडवाकर पीले वस्त्र धारण करके संन्यासी बन गया है। वह जीव संहार से दूर रहता है, अनचाही वस्तुएँ लेने से बचता है, झूठ बोलने से परहेज करता है, दिन में एक बार भोजन करता है और पवित्र जीवन व्यतीत करता है: आप उसके साथ क्या व्यवहार करेंगे?'

हे कच्चयन, मैं उसके आने पर आसन से उठूंगा, उसे आसन दूंगा, आमंत्रित करूंगा, जीवन की चारों आवश्यक वस्तुएँ, जैसे वस्त्र, भोजन, आवास और बीमारी के समय भोजन आदि प्रदान करूंगा, और उसकी धार्मिक सुरक्षा का ध्यान रखूंगा। इसका कारण क्या है? हे कच्चयन, पहले उसे बहिष्कृत माना जाता था, और बाद में उसे संन्यासी माना जाता है।

'हे कच्चायना, जब ऐसा है तो ये चारों कुल समान हैं और मुझे उनमें कोई अंतर नहीं दिखता।'

'हे महाराज, यदि ऐसा है तो क्या ये चारों कुल एक ही नहीं हैं, या यहाँ क्या स्थिति है?'

'हे कच्चायना, जब ऐसा है तो ये चारों कुल समान हैं और मुझे उनमें कोई अंतर नहीं दिखता।'

'हे महाराज, यह कथन कि 'ब्राह्मण प्रमुख कुल से हैं, जो दिखने में सबसे श्रेष्ठ हैं, अन्य सभी कुल निम्न हैं, ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण, उनके वंशज ही शुद्ध होते हैं, गैर-ब्राह्मण शुद्ध नहीं होते, आपको यह जानना चाहिए कि यह भी केवल एक कथन मात्र है।'

यह सुनकर, मदुरा के राजा अवंतीपुत्त ने पूज्य महाकच्चायन से कहा, "हे कच्चेयान, अब मैं समझ गया हूँ। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज़ फिर से अपनी जगह पर आ गई हो, जैसे कोई ढकी हुई चीज़ प्रकट हो गई हो, जैसे किसी भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखा दिया गया हो। ऐसा लगता है जैसे दृष्टिहीन लोगों को अंधकार में आकृतियाँ दिखाई देने के लिए तेल का दीपक जला दिया गया हो। हे कच्चेयान ने अनेक प्रकार से शिक्षा की व्याख्या की है। अब मैं हे कच्चेयान की शरण में, उनकी शिक्षा में और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेता हूँ। आज से जीवन के अंत तक मुझे एक गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए जिसने शरण ली है।"

'हे महान राजा, मेरी शरण मत लो, मेरी शरण लो, जैसे मैंने ली है वैसे ही उस धन्य परमेश्वर की शरण लो।'

'हे कच्चायना, पूर्णतः ज्ञान प्राप्त भगवान अब कहाँ निवास करते हैं?'

'महान राजा, भगवान, पूर्णतः ज्ञान प्राप्त कर चुके व्यक्ति का देहांत हो गया है।'

हे कच्चायन, यदि मुझे पता चले कि पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान यहाँ से सत्तर मील दूर हैं, तो मैं उनके दर्शन के लिए वहाँ जाऊँगा। यदि मुझे पता चले कि पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान यहाँ से एक सौ चालीस मील, दो सौ दस मील, तीन सौ पचास मील या सात सौ मील दूर हैं, तो मैं उनके दर्शन के लिए वहाँ जाऊँगा। हे कच्चायन, क्योंकि पूर्णतः प्रबुद्ध भगवान का देहांत हो गया है, मैं उनकी शिक्षाओं और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ। हे कच्चायन, आज से मेरी मृत्यु तक मुझे गृहस्थ शिष्य के रूप में शरण दें।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.5बोधिराजकुमार सुत्त(85)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान भग्ग देश के भेषकला वन में सुनसुमारा चट्टानों के बीच स्थित हिरण उद्यान में निवास कर रहे थे। उस समय राजकुमार बोधिराज ने कोकनाड़ा नामक एक महल का निर्माण करवाया था, जो अभी तक किसी संन्यासी, ब्राह्मण या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा आबाद नहीं था। तब राजकुमार बोधिराज ने संजिकपुत्त नामक एक युवक को संबोधित करते हुए कहा, "आओ! मित्र संजिकपुत्त, मेरी ओर से भगवान के पास आओ, उनकी आराधना करो और उनसे यह कहो, 'हे पूज्यवर, क्या आप स्वस्थ हैं, क्या आपको कोई रोग नहीं है, और क्या आपका निवास सुखमय है?' और भगवान से यह भी कहो, 'हे पूज्यवर, राजकुमार बोधिराज आपके स्वास्थ्य के बारे में जानना चाहते हैं, और यह भी जानना चाहते हैं कि क्या आप स्वस्थ हैं और आपका निवास सुखमय है।' और भगवान से यह भी कहो कि कल राजकुमार बोधिराज के महल में भिक्षुओं के समुदाय के साथ भगवान भोज ग्रहण करें।' युवक संजिकापुत्त सहमत हो गया और भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया और उनसे उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा। उसने यह भी पूछा कि क्या उन्हें कोई रोग नहीं है और कहा, "हे पूज्यवर, राजकुमार बोधिराज ने भगवान गौतम के चरणों की पूजा की है और उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा है और यह भी कहा है, 'हे पूज्यवर, कल राजकुमार बोधिराज के महल में भोजन ग्रहण करें।' भगवान बुद्ध ने मौन में स्वीकार कर लिया। यह जानकर कि भगवान बुद्ध ने स्वीकार कर लिया है, युवक संजिकापुत्त राजकुमार बोधिराज के पास गया और कहा, "हे राजकुमार बोधिराज, आपके शब्दों में, मैंने भगवान गौतम के चरणों की पूजा की है, उनके स्वास्थ्य और उनके सुखमय निवास के बारे में पूछा है और यह भी कहा है, 'हे भगवान गौतम कल भिक्षुओं के समुदाय के साथ राजकुमार बोधिराज के महल में भोजन ग्रहण करें। भगवान गौतम ने इसे स्वीकार कर लिया है।'" फिर उस रात के अंत में राजकुमार बोधिराज ने विभिन्न पौष्टिक भोजन और पेय तैयार किए और कोकनंद महल को सीढ़ी के सबसे निचले पायदान तक सफेद कपड़े से पूरी तरह ढक दिया। फिर उन्होंने युवक संजिकापुत्त को संबोधित करते हुए कहा, 'आओ, मित्र संजिकापुत्त, भगवान बुद्ध के पास आओ और उनसे कहो, हे पूज्यवर, भोजन का समय हो गया है, भोजन तैयार है।' युवक संजिकापुत्त ने सहमति जताते हुए भगवान बुद्ध के पास जाकर कहा, 'हे पूज्यवर, भोजन तैयार है।' फिर सुबह भगवान बुद्ध ने वस्त्र धारण किए, कुंड और वस्त्र लेकर राजकुमार बोधिराज के महल की ओर प्रस्थान किया। उस समय राजकुमार बोधिराज महल के प्रवेश द्वार पर भगवान बुद्ध के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। दूर से भगवान बुद्ध को आते देख वे आगे बढ़े, प्रणाम किया और उनके पीछे-पीछे महल तक गए। भगवान बुद्ध सीढ़ी के सबसे निचले पायदान पर खड़े हो गए। तब राजकुमार बोधिराज ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, मेरी प्रसन्नता और कल्याण के लिए इस वस्त्र पर कुछ देर तक चलें।" यह सुनकर भगवान बुद्ध मौन रहे। दूसरी बार राजकुमार बोधिराज ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, मेरी प्रसन्नता और कल्याण के लिए इस वस्त्र पर कुछ देर तक चलें।" यह सुनकर भगवान बुद्ध मौन रहे।दूसरी बार। तीसरी बार राजकुमार बोधिराज ने भगवान से इस प्रकार कहा, "आदरणीय महोदय, मेरी प्रसन्नता और कल्याण के लिए इस वस्त्र पर दीर्घकालीन चलें।" भगवान ने आदरणीय आनंद के चेहरे की ओर देखा। आदरणीय आनंद ने राजकुमार बोधिराज से कहा, "राजकुमार, भावी पीढ़ी के हित में, इस वस्त्र को मोड़ दें। इस प्रकार जाने वाला इस वस्त्र पर नहीं चलता।" तब राजकुमार बोधिराज ने इस वस्त्र को मोड़ दिया और कोकनाडा महल की ऊपरी मंजिल पर आसन तैयार किए। भगवान कोकनाडा महल में चढ़े और भिक्षुओं के समुदाय के साथ तैयार आसनों पर बैठ गए। तब राजकुमार बोधिराज ने अपने हाथों से भगवान के नेतृत्व में भिक्षुओं के समुदाय को पौष्टिक भोजन और पेय पदार्थ परोसे और उन्हें तृप्त किया। जब भगवान ने भोजन समाप्त कर लिया और कटोरा रख दिया, तो राजकुमार बोधिराज एक नीची कुर्सी पर एक तरफ बैठ गए और इस प्रकार कहा। 'आदरणीय महोदय, मुझे यह बात समझ में आती है कि सुख को सुख से प्राप्त नहीं किया जा सकता, इसे दुख से ही प्राप्त करना पड़ता है।'

हे राजकुमार, ज्ञान प्राप्ति से पहले, जब मैं ज्ञान की खोज में लगा हुआ था, तब मुझे यह विचार आया कि सुख से सुख प्राप्त नहीं हो सकता, और दु:ख से सुख प्राप्त हो सकता है। जब मैं युवा था, तब भी काले बालों वाला मैं जन्म के अधीन केवल जन्म की ही कामना करता था, क्षय के अधीन केवल क्षय की ही कामना करता था, रोग के अधीन केवल रोग की ही कामना करता था, मृत्यु के अधीन केवल मृत्यु की ही कामना करता था, शोक के अधीन केवल शोक की ही कामना करता था, और अपवित्र वस्तुओं के अधीन केवल अपवित्र वस्तुओं की ही कामना करता था। हे राजकुमार, मैंने विचार किया, जन्म के अधीन होकर, मैं वह क्यों चाहूँ? रोग के अधीन होकर, मैं वह क्यों चाहूँ? मृत्यु के अधीन होकर, मैं वह क्यों चाहूँ? शोक के अधीन होकर, मैं वह क्यों चाहूँ? अपवित्र वस्तुओं के अधीन होकर, मैं वह क्यों चाहूँ? जन्म के संकटों को जानते हुए भी, मैं बंधन के उस निर्वाहकारी लक्ष्य, यानी बंधन के अंत की कामना क्यों न करूँ? मैं, क्षय के अधीन होकर, उसके संकटों को जानते हुए भी, बंधन के उस निर्वाहकारी लक्ष्य की कामना क्यों न करूँ? मैं, जो पूर्णता का वश में हूँ, इसके खतरों को जानते हुए, क्यों न मैं इस बंधन के निर्मल और महान अंत की तलाश करूँ? मैं, जो मृत्यु का वश में हूँ, इसके खतरों को जानते हुए, क्यों न मैं इस बंधन के अमर और महान अंत की तलाश करूँ? मैं, जो दु:ख का वश में हूँ, इसके खतरों को जानते हुए, क्यों न मैं इस बंधन के निर्मल और महान अंत, यानी मुक्ति की तलाश करूँ? मैं, जो अपवित्रता का वश में हूँ, इसके खतरों को जानते हुए, क्यों न मैं इस बंधन के निर्मल और महान अंत, यानी मुक्ति की तलाश करूँ?

जब मैं जवानी के चरम पर था, काले बालों के साथ भी, माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध, जब वे आँसू बहाते हुए रो रहे थे, मैंने अपना सिर और दाढ़ी मुंडवा ली, पीले वस्त्र धारण किए, घर छोड़ दिया, संन्यासी बन गया और पुण्य का साधक तथा अतुलनीय शांति की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया। तब मैं आलारा कालामा के पास गया और उनसे कहा, हे पूज्यवर, मैं इस युग में पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा, "आओ मित्र, तुम्हारे जैसे ज्ञानी लोग शीघ्र ही इस शिक्षा को समझ लेते हैं और गुरु के समान जीवन व्यतीत करते हैं।" हे राजकुमार, मैंने शीघ्र ही इस शिक्षा को सीख लिया और बड़ों की तरह इसका उच्चारण और पाठ करके यह स्वीकार किया कि मैं जानता हूँ और देखता हूँ। तब मुझे यह आभास हुआ कि केवल इसी विश्वास से आलारा कालामा यह स्वीकार नहीं करेंगे कि मैं इस शिक्षा को जानते और समझते हुए जीवन व्यतीत करता हूँ, वास्तव में वे इस शिक्षा को जानते और देखते हुए जीवन व्यतीत करते हैं। तब मैं आलारा कालामा के पास गया और उनसे पूछा, "हे पूज्यवर, आप इस शिक्षा को जानते और समझते हुए कैसे जीवन व्यतीत करते हैं?" जब मैंने आलारा कालामा से पूछा, तो उन्होंने शून्यता के क्षेत्र की घोषणा की। तब मुझे यह बात समझ में आई कि केवल आलारा कालामा ही आस्था, प्रयास, सजगता, एकाग्रता और ज्ञान से परिपूर्ण नहीं हैं। मुझमें भी आस्था, प्रयास, सजगता, एकाग्रता और ज्ञान है। यदि मैं उनके द्वारा प्राप्त इस शिक्षा को जानने का प्रयास करूं तो क्या होगा? शीघ्र ही मुझे वह शिक्षा और उसका निवास स्थान प्राप्त हो गया। तब मैं आलारा कालामा के पास गया और उनसे पूछा, 'हे पूज्यवर, क्या यही वह शिक्षा है जिसे आपने प्राप्त किया है और जिसका पालन करते हैं?' 'मित्र, यही वह शिक्षा है जिसे मैंने प्राप्त किया है, घोषित किया है और जिसका पालन करता हूं।' तब मैंने कहा, 'मैंने भी इतना ही प्राप्त किया है और जिसका पालन करता हूं।' 'हे पूज्यवर, पवित्र जीवन में आप जैसे सहोदरों से मिलना हमारे लिए दुर्लभ सौभाग्य है। मैंने जिस शिक्षा को प्राप्त किया है और जिसका पालन करता हूं, वही आपने भी प्राप्त किया है और जिसका पालन करता हूं। इसलिए, जो शिक्षा मैं जानता हूं, वही आप भी जानते हैं। अब हम दोनों समान स्तर पर हैं।' आइए हम दोनों मिलकर इस मार्ग का मार्गदर्शन करें। हे राजकुमार, मेरे गुरु आलारा कालामा ने इसी प्रकार मुझे, अपने शिष्य को, समान दर्जा देकर सम्मानित किया। तब मुझे यह बात समझ में आई। यह शिक्षा त्याग, वैराग्य, समाप्ति, तृप्ति, ज्ञान, आत्मज्ञान और मृत्यु की ओर नहीं ले जाती। यह केवल शून्यता के क्षेत्र तक ले जाती है। इससे संतुष्ट न होकर मैंने इससे मुंह मोड़ लिया।

शुभ कर्मों का साधक बनकर और अतुलनीय शांति की खोज में, मैं उद्दक रामपुत्त के पास गया और बोला, 'हे पूज्यवर, मैं इस युग में पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ।' हे मित्र, आप जैसे ज्ञानी लोग, शीघ्र ही इस शिक्षा को समझकर गुरु के समान जीवन व्यतीत करें। मैंने शीघ्र ही उस शिक्षा को आत्मसात कर लिया, जिसमें बड़ों की तरह उच्चारण और पाठ करके यह स्वीकार करना था कि मैं जानता और देखता हूँ। तब मुझे यह आभास हुआ कि केवल इसी विश्वास से उद्दक रामपुत्त यह स्वीकार नहीं करेंगे कि मैं इस शिक्षा को जानते और समझते हुए जीवन व्यतीत करता हूँ, बल्कि वे स्वयं इस शिक्षा को जानते और देखते हुए जीवन व्यतीत करते हैं। तब मैं उद्दक रामपुत्त के पास गया और उनसे पूछा, 'हे पूज्यवर, आप इस शिक्षा को जानते और समझते हुए कैसे जीवन व्यतीत करते हैं?' मेरे पूछने पर उद्दक रामपुत्त ने कहा कि यह न तो बोध का क्षेत्र है और न ही अबोध का। राजकुमार, तब मुझे यह विचार आया कि केवल उद्दक रामपुत्त ही नहीं, बल्कि मुझमें भी आस्था, प्रयास, सजगता, एकाग्रता और ज्ञान है। यदि मैं उनके द्वारा प्राप्त इस शिक्षा को जानने का प्रयास करूँ तो क्या होगा? शीघ्र ही मुझे वह शिक्षा और उसका निवास स्थान प्राप्त हो गया। तब मैं उद्दक रामपुत्त के पास गया और उनसे पूछा, हे पूज्यवर, क्या आपने इतनी ही शिक्षा को प्राप्त किया है और उसका पालन करते हैं? मित्र, मैंने इतनी ही शिक्षा को प्राप्त किया है, घोषित किया है और उसका पालन करता हूँ। तब मैंने कहा, मैंने भी इतनी ही शिक्षा को प्राप्त किया है और उसका पालन करता हूँ। 'हे पूज्यवर, पवित्र जीवन में आप जैसे सहपाठियों से मिलना हमारे लिए दुर्लभ लाभ है। मैंने जिस भी शिक्षा को प्राप्त किया है और उसका पालन करता हूँ, आपने भी उसे प्राप्त किया है और उसका पालन करते हैं। इसलिए, मैं जिस भी शिक्षा को जानता हूँ, आप भी उसे जानते हैं। अब हम दोनों समान स्तर पर हैं। 'आओ! मित्र, तुम इस अनुयायी का मार्गदर्शन करो।' इस प्रकार मेरे सहपाठी उद्दक रामपुत्त ने मुझे अपना गुरु मानकर सम्मानित किया। तब मुझे यह आभास हुआ कि यह शिक्षा त्याग, वैराग्य, समाप्ति, तृप्ति, ज्ञान, आत्मज्ञान और मृत्यु की ओर नहीं ले जाती। यह केवल न-बोध-न-बोध के क्षेत्र तक ही ले जाती है। इससे संतुष्ट न होकर मैंने इससे मुंह मोड़ लिया।

अच्छाई की खोज में और अतुलनीय शांति की तलाश में भटकते हुए, मैं उरुवेला के सेनानी गाँव पहुँचा। वहाँ मैंने एक सुंदर भूभाग, एक जंगल, सुंदर सफेद किनारों वाली एक बहती नदी और पास में ही एक पशु-पशु गाँव देखा। तब मुझे यह विचार आया: वास्तव में यह भूभाग सुंदर है, यहाँ जंगल है, नदी बहती है और पास में ही पशु-पशु गाँव है। तब मैं सोचने लगा कि यह किसी कबीले के सदस्य के लिए प्रयास करने के लिए आदर्श स्थान है।

हे राजकुमार, तब मेरे मन में तीन ऐसी तुलनाएँ आईं जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थीं। जैसे कोई व्यक्ति पानी में रखी गीली, रसदार लकड़ी के लट्ठे पर ढक्कन लगाकर कहे, "मैं इससे आग जलाऊँगा।" हे राजकुमार, क्या वह उस गीली, रसदार लकड़ी के लट्ठे को रगड़कर आग जला पाएगा? नहीं, हे गौतम। इसका कारण क्या है? पानी में रखी वह गीली, रसदार लकड़ी का लट्ठा, ढक्कन से रगड़ने पर भी आग नहीं पैदा करेगी, बल्कि मनुष्य को केवल थकान ही मिलेगी। हे राजकुमार, उसी प्रकार, जो भी संन्यासी या ब्राह्मण शारीरिक रूप से भी कामुकता से दूर नहीं रह पाते, उनकी कामुक रुचि, कामुक आवश्यकता, कामुक सुस्ती, कामुक प्यास, कामुक जलन आंतरिक रूप से शांत नहीं होती, जिससे उन्हें तीव्र, कठोर और अप्रिय बोध होता है और उनके लिए ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त

करना संभव नहीं है। भले ही इन पुण्य संन्यासियों और ब्राह्मणों को तीव्र, कठोर और अप्रिय बोध न हो, फिर भी उनके लिए ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है। यह पहली तुलना है जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी।

हे राजकुमार, तभी मेरे मन में एक ऐसी उपमा आई जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी। जैसे कोई व्यक्ति पानी से दूर सूखी ज़मीन पर रखे हुए रसीले लट्ठे पर आवरण ओढ़कर यह कहे कि मैं इससे आग जलाऊँगा। हे राजकुमार, क्या वह पानी से दूर सूखी ज़मीन पर रखे उस रसीले लट्ठे को रगड़कर आग जला पाएगा? नहीं, हे गौतम, इसका कारण क्या है? वह रसीला लट्ठा, चाहे पानी से कितना भी दूर क्यों न हो, आवरण से रगड़ने पर भी आग नहीं जलाएगा और उस व्यक्ति को केवल थकान ही मिलेगी। हे राजकुमार, उसी प्रकार, जो संन्यासी और ब्राह्मण शारीरिक रूप से भी कामुकता से अछूते नहीं रहते, उनकी आंतरिक कामुकता, कामुकता की आवश्यकता, कामुकता की सुस्ती, कामुकता की प्यास और कामुकता की जलन शांत नहीं हो पाती, जिससे उन्हें तीव्र, कठोर और अप्रिय बोध होता है और उनके लिए ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञान का अहसास होना संभव नहीं है। भले ही इन अच्छे संन्यासियों और ब्राह्मणों को तीव्र, कठोर और अप्रिय भावनाएँ न हों, फिर भी यह संभव नहीं है कि वे ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ आत्मज्ञान प्राप्त कर सकें। यह दूसरी तुलना है जो मुझे पहले कभी नहीं सुनी थी।

हे राजकुमार, मेरे मन में एक तीसरा उदाहरण आया जो मैंने पहले कभी नहीं सुना था। जैसे कोई व्यक्ति पानी से दूर फेंके गए सूखे, रसहीन लकड़ी के लट्ठे पर आवरण लेकर आता है और कहता है, मैं इससे आग जलाऊंगा। हे राजकुमार, क्या वह पानी से दूर फेंके गए उस सूखे, रसहीन लकड़ी के लट्ठे को रगड़कर आग जला पाएगा? जी जी गौतम। इसका कारण क्या है? पानी से दूर फेंके गए उस सूखे, रसहीन लकड़ी के लट्ठे को आवरण से रगड़ने पर आग लग जाती है। हे राजकुमार, उसी प्रकार, जो भी संन्यासी और ब्राह्मण शारीरिक रूप से इंद्रियों से विरक्त होकर रहते हैं, उनकी इंद्रिय-रुचि, इच्छा, सुस्ती, प्यास और कामुक ज्वालाएं आंतरिक रूप से अच्छी तरह से नियंत्रित हो जाती हैं, भले ही उन्हें तीव्र, कठोर और अप्रिय भावनाएं महसूस हों, फिर भी वे ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। भले ही इन अच्छे संन्यासियों और ब्राह्मणों को तीव्र, कठोर और अप्रिय भावनाएँ महसूस न हों, फिर भी संभव है कि वे ज्ञान, दृष्टि और महान आत्मज्ञान प्राप्त कर लें। यह तीसरी तुलना है जो मेरे मन में आई, जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी।

राजकुमार, मेरे मन में यह विचार आया, क्या होगा यदि मैं ऊपरी जबड़े को निचले जबड़े पर दबाऊँ, जीभ को तालू पर दबाकर मन में उमड़ रहे विचारों को बाहर निकाल दूँ और जला दूँ? फिर, पसीने से तरबतर बगलों के बीच से भी, मैंने ऊपरी जबड़े को निचले जबड़े पर दबाया, जीभ को तालू पर दबाकर मन में उमड़ रहे विचारों को बाहर निकाल दूँ और जला दूँ। जैसे कोई बलवान व्यक्ति किसी दुर्बल को पकड़कर दबाता है और उसे परेशान करता है, ठीक उसी प्रकार मैंने ऊपरी जबड़े को निचले जबड़े पर दबाया, जीभ को तालू पर दबाकर मन में उमड़ रहे विचारों को बाहर निकाल दूँ और जला दूँ, जबकि पसीने से तरबतर बगलें बह रही थीं। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, एकाग्रता स्थापित हुई, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

राजकुमार, तब मेरे मन में यह विचार आया कि क्या मैं नाक और मुख से अंदर आने और बाहर जाने वाली सांसों को रोकने का अभ्यास करूँ? जब मैंने नाक और मुख से अंदर आने और बाहर जाने वाली सांसों को रोकने का अभ्यास किया, तो कान के लोबों से अंदर जाने वाली हवा ने बहुत शोर किया। यह लोहार की धौंकनी से निकलने वाली ध्वनि के समान था। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक और मुख से अंदर आने और बाहर जाने वाली सांसों को रोका, तो कान के लोबों से अंदर जाने वाली हवा ने बहुत शोर किया। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, अविचलित ध्यान स्थापित हुआ, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

राजकुमार, तब मेरे मन में यह विचार आया कि क्या मैं श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास और अधिक करूँ? मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली हवा को रोक दिया। जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने और छोड़ने वाली श्वास को रोकने का अभ्यास किया, तो बहुत सी हवा ने मेरे सिर को अशांत कर दिया। ऐसा लगा जैसे कोई बलवान व्यक्ति तेज धार वाले ब्लेड से मेरे सिर को तराश रहा हो। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने और छोड़ने वाली श्वास को रोका, तो बहुत सी हवा ने मेरे सिर को अशांत कर दिया। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, ध्यान केंद्रित हुआ, लेकिन कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

राजकुमार, तब मेरे मन में यह विचार आया कि क्या मैं श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास और अधिक करूँ? मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली हवा को और अधिक रोकने का प्रयास किया। जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने और छोड़ने वाली श्वास को और अधिक रोकने का अभ्यास किया, तो मुझे सिर में बहुत दर्द महसूस हुआ... जैसे कोई बलवान व्यक्ति किसी के सिर पर मजबूत पगड़ी बाँध रहा हो। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने और छोड़ने वाली श्वास को और अधिक रोका, तो मुझे सिर में बहुत दर्द महसूस हुआ। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, ध्यान की एकाग्रता स्थापित हुई, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

राजकुमार जी, तब मेरे मन में यह विचार आया कि यदि मैं श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास अधिक समय तक करूँ तो क्या होगा। मैंने नाक, मुँह और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली हवा को अधिक समय तक रोक दिया। जब मैंने नाक, मुँह और कान के लोबों से प्रवेश करने और छोड़ने वाली श्वास को अधिक समय तक रोकने का अभ्यास किया, तो मुझे पेट में बहुत दर्द हुआ। ऐसा लगा जैसे कोई कुशल कसाई या उसका शागिर्द कसाई के चाकू से पेट को काट रहा हो। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक, मुँह और कान के लोबों से प्रवेश करने और छोड़ने वाली श्वास को अधिक समय तक रोका, तो मुझे पेट में बहुत दर्द हुआ। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, एकाग्रता स्थापित हुई, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

हे राजकुमार, तब मेरे मन में यह विचार आया कि यदि मैं श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास अधिक समय तक करूँ तो क्या होगा। मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली वायु को अधिक समय तक रोक दिया। जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास अधिक समय तक किया, तो मुझे शरीर में तीव्र जलन का अनुभव हुआ। जैसे कोई बलवान व्यक्ति किसी दुर्बल व्यक्ति को उसके हाथों और पैरों से पकड़कर जलते हुए कोयले के गड्ढे में जला रहा हो। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास अधिक समय तक किया, तो मुझे शरीर में तीव्र जलन का अनुभव हुआ। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, ध्यान की एकाग्रता स्थापित हुई, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ। तब देवताओं ने मुझे इस प्रकार देखकर कहा, 'सन्यासी गौतम मर गए।' एक देवता ने कहा। 'सन्यासी गौतम मरे नहीं हैं। वे मरेंगे नहीं, बल्कि इसी रूप में बने रहेंगे, परिपूर्ण हो जाएंगे।'

राजकुमार, तभी मेरे मन में यह विचार आया कि यदि मैं सभी प्रकार का भोजन त्याग दूं तो क्या होगा? देवता मेरे पास आए और बोले, 'हे महाराज, ऐसा मत कीजिए, यदि आप ऐसा करेंगे तो हम आपकी त्वचा के छिद्रों के माध्यम से दिव्य शक्ति का संचार करेंगे और इस प्रकार आपका समर्थन करेंगे।' तब मेरे मन में यह विचार आया: यदि मैं सभी प्रकार के भोजन से परहेज करूं और ये देवता दिव्य शक्ति का संचार करें, तो मेरा यह कार्य छल होगा। अतः मैंने उन देवताओं को विदा कर दिया।

राजकुमार, तब मेरे मन में यह विचार आया कि क्या होगा यदि मैं थोड़ी-थोड़ी मात्रा में, बूंद-बूंद करके, हरी मूंग दाल, मटर, चना या मटर के सूप का सार ग्रहण करूँ? मैंने थोड़ी-थोड़ी मात्रा में, हरी मूंग दाल, मटर, चना या मटर के सूप का सार ग्रहण किया। इस प्रकार भोजन करने से मेरा शरीर बहुत कमजोर हो गया। ऐसा लगा जैसे मैं अस्सी वर्ष का हो गया हूँ या जीवन के अंत के करीब आ गया हूँ। मेरे अंग बड़े-छोटे हो गए थे। मेरी पीठ ऊँट के पैर जैसी थी, रीढ़ की हड्डी मुड़ने और फैलने पर मोतियों की माला जैसी हो जाती थी। मेरी पसलियाँ किसी जर्जर भवन की छत की कड़ियों जैसी थीं, जो कभी भी गिर सकती थीं। मेरी आँखें, जो आँखों के गड्ढों में धँसी हुई थीं, किसी गहरे कुएँ में जड़े दो तारों जैसी थीं। मेरे सिर की त्वचा किसी कच्चे, कड़वे अंकुश की तरह थी, जिसे धूप और गर्म हवा में सुखाया गया हो। अल्प मात्रा में भोजन करने के कारण मेरे अंग कभी बड़े तो कभी छोटे हो गए थे। जब मैं पेट की त्वचा को छूता था, तो रीढ़ की हड्डी पकड़ लेता था। मल-मूत्र त्यागते समय मैं मुंह के बल गिर जाता था। यदि मैं शरीर को शांत करने के लिए छूता था, तो शरीर के बाल जड़ से सड़ कर झड़ जाते थे। अल्प मात्रा में भोजन करने के कारण मेरा शरीर ऐसा हो गया था। मुझे देखकर लोग कहते थे, संन्यासी गौतम तो काले हैं। एक व्यक्ति ने कहा, वे काले नहीं बल्कि सांवले हैं। दूसरे व्यक्ति ने कहा, संन्यासी गौतम न तो काले हैं और न ही सांवले, बल्कि सुनहरे रंग के हैं। हे राजकुमार, अल्प मात्रा में भोजन करने के कारण मेरी शुद्ध त्वचा का रंग नष्ट हो गया।

हे राजकुमार, तब मुझे यह विचार आया कि अतीत में जिस भी संन्यासी या ब्राह्मण ने तीव्र, कठोर और अप्रिय अनुभूतियाँ अनुभव कीं, उसे इससे अधिक कुछ अनुभव नहीं हुआ। भविष्य में जिस भी संन्यासी या ब्राह्मण को तीव्र, कठोर और अप्रिय अनुभूतियाँ अनुभव हों, उसे इससे अधिक कुछ अनुभव नहीं होगा। वर्तमान में जिस भी संन्यासी या ब्राह्मण को तीव्र, कठोर और अप्रिय अनुभूतियाँ अनुभव हो रही हैं, उसे इससे अधिक कुछ अनुभव नहीं हो रहा है। मुझे यह विचार आया: इन कठिन परिश्रमों से मुझे कोई श्रेष्ठ, विशिष्ट ज्ञान या मानवीय दृष्टि प्राप्त नहीं होगी। ज्ञान प्राप्ति का कोई और तरीका अवश्य होगा। तब हे राजकुमार, मुझे अपने पिता के खेत के पास गुलाब-खलिहान के पेड़ की छाया में हुआ अनुभव याद आया: कामुक विचारों और पापपूर्ण विचारों से विरक्त होकर, विचारों और विवेचनात्मक विचारों के साथ, और एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख के साथ, मैंने प्रथम ध्यान अवस्था को कैसे प्राप्त किया। तब चेतना जागी कि यही ज्ञान प्राप्ति का मार्ग है। मैंने सोचा, मुझे इस सुखद अनुभूति से क्यों डरना चाहिए, जो इंद्रिय सुख से अलग है और दोषों के विचारों से दूर है।

हे राजकुमार, तब मुझे यह विचार आया कि इस दुर्बल शरीर के साथ उस सुख को प्राप्त करना आसान नहीं है, यदि मैं कुछ सादा भोजन, कुछ पका हुआ चावल और रोटी खा लूँ तो क्या होगा? उस समय पाँचों भिक्षु मेरी सेवा में थे, यह सोचकर कि जो भी महान कार्य गौतम को प्राप्त होगा, वे हमें सूचित करेंगे। जब मैंने पका हुआ चावल और रोटी जैसा सादा भोजन ग्रहण किया, तो वे घृणापूर्वक चले गए, यह सोचकर कि गौतम ने परिश्रम त्याग दिया है और समृद्धि की ओर लौट गए हैं।

मैंने सादा भोजन करके और शक्ति प्राप्त करके, कामुक विचारों और अपगुणों से विरक्त होकर, एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होकर प्रथम ध्यान में प्रवेश किया। विचारों और अपव्यय से परिपूर्ण होकर, मन को आंतरिक रूप से शांत करके और एक बिंदु पर स्थिर करके, बिना विचारों और अपव्यय से परिपूर्ण होकर, एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होकर द्वितीय ध्यान में प्रवेश किया। आनंद और समभाव से, निर्वाह में सचेत और जागरूक होकर, और शरीर से भी सुख का अनुभव करते हुए, मैंने इस अवस्था में रहते हुए कहा, "सुख में सचेत रहकर, मैंने तृतीय ध्यान में प्रवेश किया।" सुख और दुख को दूर करके, और पहले ही सुख और दुख को दूर करके, बिना सुख और दुख से परिपूर्ण होकर, समभाव से शुद्ध होकर, मैंने चतुर्थ ध्यान में प्रवेश किया।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित था, तब मैंने पूर्व जन्मों के ज्ञान की ओर मन लगाया। मैंने अनेक जन्मों का स्मरण किया - एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, असंख्य आगे के जन्म चक्र, असंख्य पीछे के जन्म चक्र, असंख्य आगे और पीछे के जन्म चक्र। वहाँ मेरा ऐसा नाम, ऐसा कुल, ऐसा स्वभाव, ऐसा आधार था, मुझे ऐसे सुख और दुख का अनुभव होता था और मेरी आयु ऐसी थी। वहाँ से विलीन होकर मैं वहाँ ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसे स्वभाव, ऐसे आधारों के साथ, ऐसे सुख और दुख का अनुभव करते हुए, ऐसी आयु के साथ जन्म लेता हूँ, वहाँ से विलीन होकर यहाँ जन्म लेता हूँ। इस प्रकार, सभी गुणों और सभी विवरणों के साथ मैंने अनेक जन्मों का स्मरण किया। हे राजकुमार, यह वह पहला ज्ञान है जो मुझे रात्रि के पहले पहर में प्राप्त हुआ; अज्ञान का निवारण हुआ, ज्ञान का उदय हुआ, जैसा कि उन लोगों के साथ होता है जो अज्ञान को दूर करने के लिए निरंतर प्रयासरत रहते हैं।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित था, तब मैंने प्राणियों के प्रकट होने और लुप्त होने के ज्ञान की ओर मन को लगाया। मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से मैंने प्राणियों को प्रकट होते और लुप्त होते देखा - उदात्त और उदात्त, सुंदर और कुरूप, अपने कर्मों के अनुसार अच्छे और बुरे रूपों में उत्पन्न होते देखा। ये अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा करते हैं, कर्मों के गलत दृष्टिकोण से, मृत्यु के बाद हानि में, कमी में, नरक में जन्म लेते हैं। वहीं, ये अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से सुव्यवस्थित हैं, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते, कर्मों के सही दृष्टिकोण से, मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेते हैं। इस प्रकार मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से मैंने प्राणियों को प्रकट होते और लुप्त होते देखा। हे राजकुमार, यह वह दूसरा ज्ञान है जो मैंने रात्रि के दूसरे पहर में प्राप्त किया, अज्ञान का निवारण हुआ, ज्ञान का उद्भव हुआ, जैसा कि अज्ञान निवारण के लिए तत्पर रहने वालों के साथ होता है।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित था, तब मैंने मन को इच्छाओं के नाश की ओर निर्देशित किया। मैं जानता था, यह अप्रिय है, यह अप्रियता का उद्भव है, यह अप्रियता का निवारण है और यही अप्रियता के निवारण का मार्ग है, जैसा कि वह वास्तव में है। मैं जानता था, ये इच्छाएँ हैं, यह इच्छाओं का उद्भव है, यह इच्छाओं का निवारण है और यही इच्छाओं के निवारण का मार्ग है, जैसा कि वह वास्तव में है। जब मैंने यह जाना और देखा, तब मन इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से, 'होने' की इच्छाओं से और अज्ञान की इच्छाओं से मुक्त हो गया। मुक्त होने पर ज्ञान का उदय हुआ। मैं मुक्त हो गया हूँ, जन्म नष्ट हो गया है, जो करना चाहिए वह हो गया है, पवित्र जीवन जीया जा रहा है, मैं जानता था, अब और कुछ भी चाहने के लिए नहीं है।

हे राजकुमार, मुझे यह विचार आया। यह शिक्षा जिसे मैंने अनुभव किया है, गहरी है, देखने और समझने में कठिन है, शांत और उदात्त है, तार्किक रूप से समझी नहीं जा सकती, चतुर है और बुद्धिमानों को ही समझनी चाहिए। स्थिर होने के शौकीन और स्थिर होने से आसक्त लोग इस कठिन बिंदु को नहीं देख पाते कि आश्रित उत्पत्ति इसी कारण से होती है। यह बिंदु भी देखना कठिन है, अर्थात् सभी नियतियों को शांत करना, सभी प्रेमों का त्याग करना, लालसा का नाश करना, वैराग्य, समाप्ति और अंत। यदि मैं इसे दूसरों को सिखाऊँ तो वे नहीं समझेंगे, और मुझे केवल परिश्रम ही मिलेगा। तभी मुझे यह अद्भुत श्लोक सूझा।

मैंने इसे बड़ी मुश्किल से हासिल किया है, तो मुझे इसका प्रचार क्यों करना चाहिए?

जो लोग लोभ और घृणा से ग्रस्त हैं, उनके लिए यह समझना कठिन है। चतुर और विपरीत दिशा में जाना गहरा और देखना मुश्किल है।

लालच में डूबे लोग इसे देख नहीं पाते, यह अंधकार के घने आवरण में लिपटा रहता है।

हे राजकुमार, जब मैंने इस पर विचार किया, तो मेरा मन निष्क्रियता की ओर झुका, उपदेश न देने की ओर। तब मेरे मन को जानने वाले ब्रह्म सहमपति के मन में यह विचार आया कि संसार लुप्त हो जाएगा, यह विलीन हो जाएगा, क्योंकि इस प्रकार विलीन हुए व्यक्ति ने निष्क्रियता और उपदेश न देने का निश्चय कर लिया है। तब ब्रह्म सहमपति ब्रह्मलोक से विलीन होकर मेरे समक्ष प्रकट हुए, जैसे कोई

बलवान पुरुष अपनी झुकी हुई भुजा को सीधा करता है या सीधी भुजा को मोड़ता है। ब्रह्म सहमपति ने शॉल को एक कंधे पर व्यवस्थित करते हुए और भगवान की ओर हाथ जोड़कर मुझसे विनती की, “भगवान उपदेश दें। कुछ ऐसे प्राणी हैं जिनमें थोड़े से दोष हैं, जो उपदेश न सुनने के कारण पतित हो जाएंगे। कुछ ऐसे भी होंगे जो उपदेश को समझेंगे।” ब्रह्म सहमपति ने आगे कहा।

अतीत में मगध में शिक्षा का उद्‌भव हुआ, जो अशुद्ध और दोषयुक्त थी। हे भगवान, इस शुद्ध शिक्षा का प्रचार करके अमरता का द्वार खोलें। जैसे कोई व्यक्ति किसी चट्टानी पर्वत की चोटी पर खड़ा होकर चारों ओर की जनता को देखता है, हे ज्ञानी, यही उदाहरण है, चट्टान पर चढ़कर उपदेश दें। दुःख में डूबी जनता के दुःख को दूर करें, जन्म और मृत्यु के वश में उन्हें देखें। हे वीर, स्थिर होकर युद्ध जीतें, हे सारथी, संसार में ऋणमुक्त रहें। हे भगवान, उपदेश दें, समझने वाले अवश्य होंगे।

ब्रह्मा के आग्रह को सुनकर और प्राणियों पर दया करके, मैंने ज्ञानी दृष्टि से देखा और पाया कि कुछ प्राणी कम और कुछ अधिक दोषों से ग्रसित हैं, कुछ की बुद्धि तीव्र है और कुछ की दुर्बल, कुछ का स्वभाव अच्छा है और कुछ का दुर्बल, और कुछ परलोक से भयभीत हैं। जैसे नीले, लाल और सफेद कमलों के समूह में, कुछ जल में जन्म लेते हैं, बढ़ते हैं और जलस्तर के नीचे खिलते हैं। कुछ अन्य जल में जन्म लेते हैं, बढ़ते हैं और जलस्तर पर खिलते हैं, और कुछ अन्य जल में जन्म लेते हैं, बढ़ते हैं और जलस्तर के ठीक ऊपर खिलते हैं। उसी प्रकार मैंने कम और कुछ अधिक दोषों से ग्रसित प्राणियों को देखा, कुछ की बुद्धि तीव्र है और कुछ की दुर्बल, कुछ का स्वभाव अच्छा है और कुछ का दुर्बल, और कुछ परलोक से भयभीत हैं। तब मैंने ब्रह्मा सहमपति को एक श्लोक का उत्तर दिया।

ब्रह्मा, मैंने अमरता के द्वार खोल दिए हैं।

जिनके कान हैं, वे विश्वास के द्वारा मुक्त हों। अभ्यास से हम ऐसे शब्द बोलेंगे जिनसे किसी को ठेस न पहुंचे।

और जनता को वह उत्कृष्ट शिक्षा प्राप्त होगी...

तब ब्रह्मा सहमपति ने यह जानकर कि मैंने उपदेश को सुनाना संभव बना दिया है, भगवान की पूजा की, परिक्रमा की और वहीं से विलीन हो गए।

तब मुझे यह विचार आया कि मैं पहला प्रवचन किसे दूं? तब मैंने सोचा कि अलारा कलामा बहुत बुद्धिमान हैं, लंबे समय से कम दोषों से ग्रस्त रहे हैं, यदि मैं उन्हें पहला प्रवचन दूं, तो वे इस शिक्षा को शीघ्र ही ग्रहण कर लेंगे। तब देवताओं ने मेरे पास आकर कहा, आदरणीय महोदय, उनका सात दिन पहले देहांत हो गया। ज्ञान ने मुझे यह बताया कि उनके देहांत को सात दिन हो गए हैं। तब मुझे यह विचार आया कि अलारा कलामा बुद्धिमान हैं, यदि उन्होंने यह शिक्षा सुनी होती, तो वे इसे शीघ्र ही ग्रहण कर लेते। फिर मुझे यह विचार आया कि मैं पहला प्रवचन किसे दूं? उद्दक रामपुत्त बहुत बुद्धिमान हैं और लंबे समय से कम दोषों से ग्रस्त रहे हैं। यदि मैं उन्हें पहला प्रवचन दूं, तो वे इस शिक्षा को शीघ्र ही सीख लेंगे। तब देवताओं ने मेरे पास आकर कहा, 'आदरणीय महोदय, उनका कल रात देहांत हो गया।' तब ज्ञान ने मुझे यह बताया कि उनका कल रात देहांत हो गया। फिर मुझे यह विचार आया कि मैं पहला प्रवचन किसे दूं और कौन इस शिक्षा को शीघ्र ही ग्रहण कर लेगा। तब मुझे यह बात याद आई कि ये पंचांग भिक्षु मेरे लिए बहुत सहायक थे, इन्होंने मेरी सेवा तब तक की जब तक मैंने दृढ़तापूर्वक प्रयास करना नहीं छोड़ दिया। तब मुझे यह विचार आया कि ये पंचांग भिक्षु इस समय कहाँ रह रहे हैं, तब मैंने अपनी पवित्र दिव्य दृष्टि से उन्हें बनारस के इसिपताना स्थित हिरण उद्यान में निवास करते हुए देखा। उरुवेला में अपनी इच्छा अनुसार कुछ समय बिताने के बाद, मैं धीरे-धीरे बनारस के लिए रवाना हो गया।

रास्ते में गया और बोधि वृक्ष के बीच मेरी मुलाकात घुमंतू तपस्वी उपका से हुई और उन्होंने कहा, "मित्र, तुम्हारी बुद्धि शुद्ध है और तुम्हारा रंग भी शुद्ध है, तुम किसके मार्गदर्शन में पवित्र जीवन व्यतीत करते हो, तुम्हारे गुरु कौन हैं और किसकी शिक्षा तुम्हें भाती है?" मैंने उन्हें इस श्लोक से उत्तर दिया।

मैंने हर चीज पर विजय प्राप्त कर ली है, मैं सब कुछ जानता हूं, मैं किसी भी चीज से कलंकित नहीं हूं।

सब कुछ त्यागकर, भोग-विलास के नाश से मैं मुक्त हो गया, मैंने स्वयं ही यह जान लिया कि मेरा कोई गुरु नहीं है। देवताओं और मनुष्यों में मेरा कोई सानी नहीं। इस संसार में परिपूर्ण, मैं ही अतुलनीय गुरु हूँ। मैंने सही मायने में ज्ञान प्राप्त कर लिया है, मैं शांत और निर्मल हो गया हूँ। मैं काशी नगर जा रहा हूँ, ताकि शिक्षा का चक्र चला सकूँ। यह अंधभक्त संसार को अमरता का ढोल सुनाने के लिए है। मित्र, जैसा कि तुम स्वीकार करते हो, ऐसा लगता है कि तुम ही संसार के विजेता हो।

उपका, मेरी सारी कमियां दूर हो गई हैं, इसलिए मैं विजेता हूं।

यह सुनकर घुमंतू तपस्वी उपका ने अपना सिर हिलाया और कहा, मित्र, ऐसा हो सकता है, और फिर वह एक अलग मार्ग अपनाकर चला गया।

फिर भिक्षुओं, मैं बनारस, इसिपताना और हिरण पार्क में बारी-बारी से आते हुए पंच भिक्षुओं के पास पहुँचा। दूर से मुझे आते देख वे आपस में बैठ गए। उन्होंने कहा, "ये वही संन्यासी गौतम हैं जिन्होंने कर्म त्याग कर सुखमय जीवन व्यतीत किया है। हमें उनकी पूजा या सेवा नहीं करनी चाहिए, न ही उनका पान-पात्र ग्रहण करना चाहिए। मैं उनके लिए आसन तैयार करूँगा, यदि वे चाहें तो बैठ सकते हैं।" भिक्षुओं, जैसे-जैसे मैं उनके पास पहुँचता गया, पंच भिक्षु अपनी जगह पर नहीं रह सके। एक ने पान-पात्र ग्रहण करने के लिए आगे बढ़ा, एक ने आसन तैयार किया, एक ने पैर धोने के लिए जल रखा, फिर भी वे मुझे नाम से पुकारते रहे। तब मैंने पंच भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, तथागत को नाम से या मित्र कहकर न पुकारें। तथागत पूर्ण और सत्यतः प्रबुद्ध हैं। भिक्षुओं, अमरत्व प्राप्त करने के लिए सुनो। मैं सलाह देता हूँ।" जो लोग दी गई सलाह के अनुसार विधि का अनुसरण करते हैं, वे शीघ्र ही, चाहे किसी भी उद्देश्य से कुलवंशी पुत्र गृहस्थी त्याग कर संन्यासी बन जाते हैं, और वे यहीं और इसी क्षण पवित्र जीवन के उस सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं और वहीं स्थिर रहते हैं।' यह सुनकर पंच भिक्षुओं ने कहा: 'मित्र गौतम, उस आचरण, उस विधि और उस कठिन परिश्रम से आपने मनुष्य से परे कोई विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त नहीं की, अब उस परिश्रम को त्यागकर आपने कौन सा मनुष्य से परे विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त की है?' 'भिक्षुओं, तथागत सिद्ध पुरुष पूर्ण हैं, सही मायने में प्रबुद्ध हैं, ध्यान से सुनो, मैं अमरता प्राप्त करने का उपदेश देता हूँ। जो लोग दी गई सलाह के अनुसार विधि का अनुसरण करते हैं, वे शीघ्र ही, चाहे किसी भी उद्देश्य से कुलवंशी पुत्र गृहस्थी त्याग कर संन्यासी बन जाते हैं, और वे यहीं और इसी क्षण पवित्र जीवन के उस सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं और वहीं स्थिर रहते हैं।' दूसरी बार पंच भिक्षुओं ने मुझसे कहा: 'मित्र गौतम, उस आचरण, उस विधि और उस कठिन परिश्रम से आपने मनुष्य से परे कोई विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त नहीं की। अब, उस प्रयास को त्यागकर और समृद्धि प्राप्त करके, आपने कौन सा विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त की है जो मनुष्य से परे है?' तीसरी बार पंच भिक्षुओं ने इस प्रकार कहा। 'मित्र गौतम, उस आचरण, उस विधि और उस कठिन प्रयास से आपने मनुष्य से परे कोई विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त नहीं की। अब, उस प्रयास को त्यागकर और समृद्धि प्राप्त करके, आपने कौन सा विशिष्ट ज्ञान और दृष्टि प्राप्त की है जो मनुष्य से परे है?' यह सुनकर, मैंने पंच भिक्षुओं से पूछा, 'क्या आप मुझे पहले भी इस प्रकार बोलते हुए जानते हैं?' उन्होंने कहा। 'नहीं, आदरणीय।' मैंने कहा। 'भिक्षुओं, तथागत पूर्ण हैं, सही मायने में प्रबुद्ध हैं, ध्यान से सुनो, मैं अमरता प्राप्त करने का उपदेश देता हूँ। जो लोग दिए गए उपदेश के अनुसार विधि का अनुसरण करते हैं, वे शीघ्र ही, चाहे किसी भी उद्देश्य से कुल के पुत्र गृहस्थी छोड़कर संन्यासी बन जाएँ, पवित्र जीवन के उस सर्वोच्च लक्ष्य को आप यहीं और अभी प्राप्त कर लेते हैं और उसमें स्थिर रहते हैं।' 'भिक्षुओं, मैं पंच भिक्षुओं को समझाने में सफल रहा।' फिर मैं दो भिक्षुओं को सलाह देता, और तीन भिक्षु भिक्षा मांगने चले जाते।तीन भिक्षुओं द्वारा लाए गए धन में से प्रत्येक का एक छठा हिस्सा उनके भरण-पोषण में सहायक होता है। मैं कभी-कभी तीन भिक्षुओं को उपदेश देता हूँ, और दो भिक्षु भिक्षा मांगने जाते हैं; लाए गए धन में से प्रत्येक का एक छठा हिस्सा उनके भरण-पोषण में सहायक होता है। हे राजकुमार, मेरे द्वारा इस प्रकार उपदेश और सलाह दिए जाने पर, पंचांग भिक्षु शीघ्र ही ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर, पवित्र जीवन के महान उद्देश्य को यहीं और अभी प्राप्त कर लेते हैं।

यह सुनकर राजकुमार बोधिराज ने भगवान बुद्ध से कहा, "तथान्गित भगवान बुद्ध भिक्षुओं को पवित्र जीवन के महान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कब तक प्रशिक्षण देते हैं?"

तब भगवान बुद्ध ने कहा, "मैं इस विषय पर तुमसे प्रश्न पूछूंगा और तुम्हारी इच्छा अनुसार उत्तर दूंगा। 'राजकुमार, क्या तुम हाथी की सवारी करने और हाथी को हांकने में निपुण हो?' 'जी जी, मैं हाथी की सवारी करने और हाथी को हांकने में निपुण हूं।' 'एक व्यक्ति आता है और कहता है कि राजकुमार बोधिराज हाथी की सवारी करने और हाथी को हांकने में निपुण हैं। मैं राजकुमार से हाथी की सवारी करने और हाथी को हांकने की कला सीखूंगा। उसमें आस्था नहीं है और जो कुछ आस्था से प्राप्त किया जा सकता है, वह उसे प्राप्त नहीं होता। उसे अनेक रोग हैं और जो कुछ कम रोगों वाले व्यक्ति को प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त नहीं होता। वह धूर्त और कपटी है और जो कुछ धूर्त और कपटी न होने वाले व्यक्ति को प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त नहीं होता। वह आलसी है और जो कुछ जागृत प्रयास से प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त नहीं होता। वह बुद्धिहीन है और जो कुछ बुद्धिमान व्यक्ति को प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त नहीं होता। राजकुमार, क्या तुम उस व्यक्ति से हाथी की सवारी करने और हाथी को हांकने की कला सीखना चाहोगे?'

'आदरणीय महोदय, इनमें से एक गुण वाला व्यक्ति हाथी की सवारी या हाथी के कांटे को संभालने की कला नहीं सीख सकता। तो पांच गुणों के साथ वह इसे कैसे सीख सकता है?'

'राजकुमार, एक व्यक्ति आकर कहता है, 'राजकुमार बोधिराज हाथी की सवारी करने और हाथी को हांकने में निपुण हैं। मैं राजकुमार से हाथी की सवारी और हाथी को हांकने की कला सीखूंगा।' वह आस्थावान है, और आस्था से जो कुछ प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त होता है। वह कम रोगों से ग्रसित है, और कम रोगों से ग्रसित व्यक्ति को जो कुछ प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त होता है। वह न तो धूर्त है और न ही कपटी, और जो न धूर्त और न कपटी होता है, उसे जो कुछ प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त होता है। वह आलसी नहीं है, और जो कुछ सजग प्रयास से प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त होता है। वह बुद्धिमान है, और जो कुछ बुद्धिमान को प्राप्त होता है, वह उसे प्राप्त होता है। राजकुमार, आपका क्या विचार है, क्या वह व्यक्ति हाथी की सवारी और हाथी को हांकने की कला सीखेगा?

'आदरणीय महोदय, जिस व्यक्ति में इनमें से एक भी गुण हो, वह हाथी की सवारी और हाथी के कांटे को संभालने की कला सीख लेगा; यदि उसमें पांच गुण हों, तो इस बारे में कोई संदेह ही नहीं रहेगा।'

'इसी प्रकार, हे राजकुमार, इन पाँच कारकों पर दृढ़ रहते हुए प्रयास किया जाता है। वे पाँच कौन से हैं? यहाँ भिक्षु तथागत के ज्ञान के प्रति आस्था रखता है: वह धन्य पुरुष परिपूर्ण, सत्यतः प्रबुद्ध, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, सुप्रसिद्ध, संसारों का ज्ञाता, वश में किए जाने वालों का अद्वितीय प्रवर्तक, देवताओं और मनुष्यों का गुरु, प्रबुद्ध और धन्य है। उसे कम रोग और कम विकार हैं, उसका पाचन तंत्र सुचारु है, न अधिक शीतलता है और न अधिक गर्मी। वह धूर्त और कपटी नहीं है, पवित्र जीवन में गुरु या ज्ञानवान सहचरों के समक्ष अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट करता है। दोष को दूर करने और पुण्य संचय करने के लिए निरंतर प्रयास करता है। पुण्य के लिए बंधनों का त्याग न करते हुए दृढ़ रहता है।' (* पांचों देहों के उत्थान और पतन की गहरी समझ रखने वाले, श्रेष्ठ व्यक्तियों से संपन्न होकर, अप्रियता के उचित नाश के लिए ज्ञान प्राप्त होता है। हे राजकुमार, ये वे पांच कारक हैं जिन पर प्रयास आधारित है। हे राजकुमार, इन पांच कारकों से संपन्न भिक्षु, जो तथागत से प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, चाहे किसी भी कारण से कुल के पुत्र उचित रूप से संन्यासी बनने के लिए प्रस्थान करें, पवित्र जीवन के उस सर्वोच्च लक्ष्य को वह यहीं और अभी, जानकर, अनुभव करके, सात वर्षों में प्राप्त कर लेंगे। सात वर्ष तो छोड़िए, छह वर्ष, पांच वर्ष, चार वर्ष, तीन वर्ष, दो वर्ष, एक वर्ष भी। हे राजकुमार, एक वर्ष तो छोड़िए, इन पांच कारकों से संपन्न भिक्षु, जो तथागत से प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, चाहे किसी भी कारण से कुल के पुत्र उचित रूप से संन्यासी बनने के लिए प्रस्थान करें, पवित्र जीवन के उस सर्वोच्च लक्ष्य को वह यहीं और अभी, जानकर, अनुभव करके, सात महीनों में प्राप्त कर लेंगे। सात महीने तो छोड़िए, छह महीने, पांच महीने, चार महीने, तीन महीने, दो महीने, एक महीना भी। हे राजकुमार, एक महीने तो छोड़िए, इन पांच गुणों से युक्त भिक्षु, जो पश्चात्तापी से प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, चाहे किसी भी कारण से कुलवंशी पुत्र उचित रूप से संन्यासी बनने का निश्चय करें, वे पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को यहीं, जानकर और अनुभव करके सात रातों और दिनों में प्राप्त कर लेंगे। सात रातों और दिनों, छह रातों और दिनों, पांच रातों और दिनों, चार रातों और दिनों, तीन रातों और दिनों, दो रातों और दिनों, एक रात और दिन की तो बात ही छोड़िए। इन पांच गुणों से युक्त भिक्षु, जो सुबह पश्चात्तापी से प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, चाहे किसी भी कारण से कुलवंशी पुत्र उचित रूप से संन्यासी बनने का निश्चय करें, वे पवित्र जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य को यहीं, जानकर और अनुभव करके शाम तक प्राप्त कर लेंगे, या शाम को सलाह मिलने पर अगली सुबह तक प्राप्त कर लेंगे।

यह सुनकर राजकुमार बोधिराज ने भगवान से कहा, 'हे! ज्ञान की श्रेष्ठता! सुस्पष्ट उपदेश की श्रेष्ठता! संध्या में दिया गया ज्ञान सुबह प्राप्त हो जाता है और सुबह दिया गया ज्ञान शाम को प्राप्त हो जाता है।'

यह सुनकर युवक संजिकापुत्त ने राजकुमार बोधिराज से कहा, "हे भगवान, अच्छे बोधिराज कहते हैं, हे ज्ञान की श्रेष्ठता और सुस्पष्ट उपदेश की श्रेष्ठता, पर यह नहीं कहते कि मैं अच्छे गौतम की शरण लेता हूँ, उपदेश में और भिक्षुओं के समुदाय में।" "मित्र, संजिकापुत्त, ऐसा मत कहो, मैंने अपनी माता से सुना है और इसे स्वीकार करता हूँ। जब मैं उनके गर्भ में था, तब वे भगवान के पास गईं, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गईं और कहा, 'आदरणीय महोदय, मेरे गर्भ में पल रहा यह बालक या कन्या भगवान की शरण लेता है, उपदेश में और भिक्षुओं के समुदाय में। भगवान मुझे जीवन के अंत तक शरण लिए हुए याद रखें।' एक समय भगवान भग्गा देश में सुनसुमारा पहाड़ियों के बीच भेषकला वन में इसी हिरण उद्यान में रह रहे थे, तब मेरी धाय माँ मुझे अपनी गोद में लेकर भगवान के पास गईं।" उन्होंने भगवान बुद्ध की आराधना की और कहा, हे पूज्यवर, ये राजकुमार बोधिराज हैं और भगवान बुद्ध की शरण में, उनके उपदेशों में और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेते हैं। उन्होंने आगे कहा, हे पूज्यवर, आज से जीवन भर राजकुमार बोधिराज को गृहस्थ शिष्य के रूप में याद रखें। मित्र संजिकापुत्त, मैं अब जीवन भर के लिए तीसरी बार भगवान बुद्ध की शरण में, उनके उपदेशों में और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेता हूँ।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 9.6 अंगुलिमाल सुत्त(86)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। उस समय राजा पसेनादि के राज्य में अंगुलिमाला नाम का एक डाकू था: क्रूर, खूनी हाथों वाला, हत्या और वध करने में लगा हुआ, जीवित प्राणियों पर कोई दया नहीं दिखाता था। उसने गांवों को वीरान और कस्बों को बेघर कर दिया था, और ग्रामीण इलाकों को उजाड़ दिया था। बार-बार मनुष्यों की हत्या करने के कारण, वह उंगलियों (अंगुली) से बनी माला पहनता था।

फिर भगवान बुद्ध सुबह सवेरे अपने वस्त्र धारण करके और अपना बाहरी वस्त्र एवं भिक्षापात्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने गए। सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करके वे अपने आवास को व्यवस्थित करने लगे। फिर अपने वस्त्र एवं भिक्षापात्र लेकर वे उस मार्ग पर चल पड़े जहाँ अंगुलिमाला ठहरी हुई थीं। चरवाहों, गड़रियों और किसानों ने उन्हें अंगुलिमाला के निवास स्थान की ओर जाने वाले मार्ग पर जाते देखा और उन्हें देखकर कहा, "हे ध्यानमग्न, उस मार्ग पर मत जाओ, क्योंकि उस मार्ग पर अंगुलिमाला है: क्रूर, रक्तरंजित हाथों वाला, हत्या और वध में लिप्त, जीवित प्राणियों पर कोई दया नहीं दिखाता। उसने गांवों को निर्जन, कस्बों को निर्जन, बसे हुए ग्रामीण इलाकों को उजाड़ बना दिया है। बार-बार मनुष्यों की हत्या करने के कारण, वह उंगलियों की माला पहनता है। दस, बीस, तीस और चालीस पुरुषों के समूह उस मार्ग से गए हैं, और वे भी अंगुलिमाला के हाथों मारे गए हैं।" यह सुनकर भगवान चुपचाप आगे बढ़ते रहे।

दूसरी बार... तीसरी बार, ग्वालों, चरवाहों और किसानों ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे ध्यानमग्न, उस मार्ग पर मत जाओ... दस, बीस, तीस और चालीस पुरुषों के समूह उस मार्ग पर गए हैं, और वे भी अंगुलिमाला के हाथों मारे गए हैं।" यह सुनकर भगवान बुद्ध मौन ही आगे बढ़ते रहे।

फिर अंगुलिमाला ने दूर से भगवान बुद्ध को आते देखा और उन्हें देखकर उनके मन में यह विचार आया: "यह कितना अद्‌भुत है! कितना आश्चर्यजनक है! दस, बीस, तीस और चालीस लोगों के समूह इस मार्ग से गए हैं और वे भी मेरे हाथों मारे गए हैं, और अब यह ध्यानमग्न व्यक्ति मानो अकेले ही आक्रमण कर रहा है, बिना किसी साथी के। मैं इसे क्यों न मार डालूँ?" इसलिए अंगुलिमाला ने अपनी तलवार और ढाल उठाई, धनुष और तरकश बांधा और भगवान बुद्ध के ठीक पीछे चल पड़े।

तब भगवान बुद्ध ने ऐसी मानसिक शक्ति का प्रदर्शन किया कि अंगुलिमाला अपनी पूरी ताकत से दौड़ने के बावजूद भी सामान्य गति से चल रहे भगवान बुद्ध को पकड़ नहीं सका। तब अंगुलिमाला के मन में यह विचार आया: "यह कितना अद्‌भुत है! कितना आश्चर्यजनक है! अतीत में मैंने तेज दौड़ने वाले हाथी, तेज दौड़ने वाले घोड़े, तेज दौड़ने वाले रथ, तेज दौड़ने वाले हिरण का भी पीछा किया और उन्हें पकड़ लिया। लेकिन अब, अपनी पूरी ताकत से दौड़ने के बावजूद भी मैं सामान्य गति से चल रहे इस ध्यानमग्न व्यक्ति को पकड़ नहीं पा रहा हूँ।" इसलिए वह रुक गया और भगवान बुद्ध को पुकारा, "रुको, ध्यानमग्न! रुको!"

"मैं रुक गया हूँ, अंगुलिमाला। तुम भी रुक जाओ।"

तब अंगुलिमाला के मन में यह विचार आया, "ये शाक्य साधक सत्य के वक्ता हैं, सत्यों के प्रतिपादक हैं, और फिर भी यह साधक चलते-चलते कहता है, 'मैं रुक गया हूँ, अंगुलिमाला। तुम भी रुक जाओ।' मैं उससे प्रश्न क्यों न करूँ?"

अत: अंगुलिमाला नामक डाकू ने भगवान बुद्ध से यह श्लोक कहा:

चलते समय, चिंतनशील अवस्था में,

आप कहते हैं, 'मैंने रुकना शुरू कर दिया है।' लेकिन जब मैं रुक जाता हूँ, तो आप कहते हैं कि मैंने नहीं रुका है। मैं आपसे इसका अर्थ पूछता हूँ: आपने कैसे रुकना शुरू किया है?

मैंने ऐसा क्यों नहीं किया?

[बुद्धः]

"अंगुलिमाला, मैंने सभी प्राणियों के प्रति हिंसा का त्याग कर हमेशा के लिए हिंसा करना बंद कर दिया है। लेकिन तुम प्राणियों के प्रति अनियंत्रित हो। इसी कारण मैंने हिंसा करना बंद कर दिया है।"

और आपने ऐसा नहीं किया है।"

[अंगुलिमाला:]

अंततः मेरे लिए एक अत्यंत पूजनीय संत इस महान वन में आए हैं। धम्म के अनुरूप आपके श्लोक को सुनकर, मैं आगे बढ़ूंगा।

बुराई का त्याग करके।"

ऐसा कहते हुए, डाकू

उसने अपनी तलवार और हथियार एक चट्टान से नीचे खाई में फेंक दिए। फिर उस डाकू ने परम पूज्य के चरणों में नमन किया और वहीं पर मोक्ष की प्रार्थना की।

ज्ञानी पुरुष, करुणामयी महान ऋषि, संसार के गुरु और देवताओं के गुरु ने तब उनसे कहा: "आओ, भिक्षु।" यही उनके लिए भिक्षुत्व था।

तब भगवान बुद्ध आदरणीय अंगुलिमाला को अपने सहायक भिक्षु के रूप में साथ लेकर श्रावस्ती की ओर प्रस्थान कर गए। कई पड़ावों पर भटकते हुए वे श्रावस्ती पहुँचे और वहाँ श्रावस्ती के निकट जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में निवास करने लगे।

उस समय राजा पसेनादि कोसला के महल के द्वार पर लोगों की एक बड़ी भीड़ जमा हो गई थी, जो शोर मचाते हुए पुकार रही थी, "हे महाराज, आपके राज्य में अंगुलिमाला नाम का एक डाकू है: क्रूर, खूनी हाथों वाला, हत्या और वध करने में लगा हुआ, जीवित प्राणियों पर कोई दया नहीं दिखाता। उसने गांवों को वीरान, कस्बों को बेघर और बसे-बसाए ग्रामीण इलाकों को उजाड़ बना दिया है। बार-बार मनुष्यों की हत्या करने के कारण वह उंगलियों की माला पहनता है। राजा को उसे कुचल देना चाहिए!"

तब राजा पसेनादि कोसल लगभग 500 घुड़सवारों की सेना के साथ सावत्थी से निकले और मठ में प्रवेश किया। जहाँ तक रथों के लिए मार्ग संभव था, वहाँ तक रथ चलाते हुए वे अपने रथ से उतरे और भगवान बुद्ध के पास पैदल चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, "हे महाराज, क्या बात है? क्या मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने आपको उकसाया है, या वैशाली के लिच्छवियों ने या किसी अन्य शत्रु राजा ने?"

"नहीं, महाराज। मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने मुझे उकसाया नहीं है, न ही वैशाली के लिच्छवियों ने, न ही किसी अन्य शत्रु राजा ने। मेरे राज्य में अंगुलिमाला नाम का एक डाकू है, महाराज: क्रूर, खूनी हाथों वाला, हत्या और वध करने में लगा हुआ, जीवित प्राणियों पर कोई दया नहीं दिखाता। उसने गांवों को गैर-गांव, कस्बों को गैर-कस्बे, बसे हुए ग्रामीण इलाकों को उजाड़ दिया है। बार-बार मनुष्यों की हत्या करने के कारण, वह उंगलियों की माला पहनता है। मैं उसे कुचल दूंगा।"

"हे महाराज, मान लीजिए कि आप अंगुलिमाला को अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाए हुए, गेरुए वस्त्र पहने हुए, गृहस्थ जीवन त्यागकर संन्यासी जीवन व्यतीत करते हुए, जीवित प्राणियों की हत्या न करते हुए, बिना दी हुई वस्तु न लेते हुए, झूठ न बोलते हुए, दिन में एक बार भोजन करके पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए, गुणी और उत्तम चरित्र वाले व्यक्ति के रूप में देखते हैं: तो आप उसके साथ क्या व्यवहार करेंगे?"

"हे भगवान, हम उनके सामने सिर झुकाते, या उनका अभिवादन करने के लिए उठते, या उन्हें आसन देते, या उन्हें वस्त्र, भिक्षा, आवास या रोग निवारण हेतु औषधियाँ भेंट करते; या हम उनकी विधिवत रक्षा, सुरक्षा और बचाव की व्यवस्था करते। परन्तु एक दुष्ट, बुरे चरित्र में ऐसा सद्‌गुण और संयम कैसे हो सकता है?"

उस समय पूज्य अंगुलिमाला भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर बैठे थे। तब भगवान बुद्ध ने अपने दाहिने हाथ से इशारा करते हुए राजा पसेनादि कोसल से कहा, "हे महाराज, वह अंगुलिमाला हैं।" यह सुनकर राजा पसेनादि कोसल भयभीत हो गए, उनके रोंगटे खड़े हो गए। तब भगवान बुद्ध ने राजा के भय और भय को भांपते हुए उनसे कहा, "हे महाराज, भयभीत न हों। भयभीत न हों। उनसे आपको कोई खतरा नहीं है।"

तब राजा का भय, उसका आतंक, उसके रोंगटे खड़े हो जाना शांत हो गया। वह पूज्य अंगुलिमाला के पास गया और बोला, "क्या आप सचमुच अंगुलिमाला हैं, स्वामी?"

"जी हां, महान राजा।"

"तुम्हारे पिता का कुल क्या है? तुम्हारी माता का कुल क्या है?"

"मेरे पिता एक गग्गा हैं, एक महान राजा, और मेरी माँ एक मंतानी हैं।"

"तो भगवान गग्गा मंतानिपुत्त को यहाँ रहने में प्रसन्नता हो। मैं आपके वस्त्र, भिक्षा, आवास और रोगों के उपचार के लिए आवश्यक औषधियों की व्यवस्था करूँगा।"

उस समय ऐसा हुआ कि पूज्य अंगुलिमाला एक वनवास में रहने वाले, भिक्षा मांगने वाले व्यक्ति थे, जो पुराने वस्त्रों से बने तीन वस्त्रों का एक सेट धारण किए हुए थे। उन्होंने राजा पसेनादि कोसल से कहा, "हे महाराज, बस करो। मेरा तीन वस्त्रों का सेट पूरा हो गया है।"

अतः राजा पसेनादि कोसला भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, यह अद्‌भुत है। यह आश्चर्यजनक है कि भगवान बुद्ध ने अनियंत्रित को वश में किया, अशांत को शांत किया और जो बंधन में बंधे नहीं थे उन्हें मुक्त किया। जिसे हम कुंद या धारदार हथियारों से भी वश में नहीं कर सके, उसे भगवान बुद्ध ने बिना कुंद या धारदार हथियारों के वश में कर लिया। अब, हे भगवान, हमें जाना होगा। हमारे कर्तव्य और जिम्मेदारियाँ बहुत हैं।”

"तो फिर, हे महान राजा, वही करो जो तुम्हें लगता है कि अब करने का समय आ गया है।"

तब राजा पसेनादि कोसला अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए चले गए।

फिर पूज्य अंगुलिमाला सुबह सवेरे अपने वस्त्र पहनकर और अपना बाहरी वस्त्र और भिक्षापात्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने गए। घर-घर जाकर भिक्षा मांगते हुए उन्होंने एक स्त्री को प्रसव पीड़ा से पीड़ित देखा। उसे देखकर उनके मन में यह विचार आया, “जीव कितने कष्ट सहते हैं! जीव कितने कष्ट सहते हैं!” फिर सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद भोजन करके वे भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, अभी सुबह सवेरे अपने वस्त्र पहनकर और अपना बाहरी वस्त्र और भिक्षापात्र लेकर मैं सावत्थी में भिक्षा मांगने गया था। घर-घर जाकर भिक्षा मांगते हुए मैंने एक स्त्री को प्रसव पीड़ा से पीड़ित देखा। उसे देखकर मेरे मन में यह विचार आया, ‘जीव कितने कष्ट सहते हैं! जीव कितने कष्ट सहते हैं!’”

"ऐसी स्थिति में, अंगुलिमाला, उस स्त्री के पास जाओ और वहाँ पहुँचकर उससे कहो, 'बहन, जन्म से लेकर अब तक मुझे याद नहीं कि मैंने कभी जानबूझकर किसी जीवित प्राणी की हत्या की हो। इस सत्य के माध्यम से तुम्हारा और तुम्हारे गर्भस्थ शिशु का कल्याण हो।'"

लेकिन, हे भगवान, क्या यह मेरे लिए झूठ नहीं होगा? क्योंकि मैंने जानबूझकर कई जीवित प्राणियों को मारा है।

"तो फिर, अंगुलिमाला, उस स्त्री के पास जाओ और वहाँ पहुँचकर उससे कहो, 'बहन, क्योंकि मैं उच्च कुल में जन्मी हूँ, मुझे याद नहीं कि मैंने कभी जानबूझकर किसी जीव की हत्या की हो। इस सत्य के द्वारा तुम्हारा और तुम्हारे गर्भस्थ बच्चे का कल्याण हो।'"2

भगवान बुद्ध को उत्तर देते हुए, “जैसा आप कहें, भगवान,” अंगुलिमाला उस स्त्री के पास गए और वहाँ पहुँचकर उससे कहा, “बहन, क्योंकि मैं उच्च कुल में जन्मा हूँ, मुझे याद नहीं कि मैंने कभी जानबूझकर किसी जीव की हत्या की हो। इससे तुम्हारा और तुम्हारे गर्भस्थ बच्चे का कल्याण हो।” और उस स्त्री और उसके गर्भस्थ बच्चे का कल्याण हुआ।

तब पूज्य अंगुलिमाला, एकांतवास में रहकर, एकाग्र, सचेत, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर, अल्पकाल में ही उस परम लक्ष्य को प्राप्त कर उसमें स्थिर हो गए, जिसके लिए कुलवासी जन्म-मृत्यु के मार्ग पर प्रस्थान करते हैं। उन्होंने स्वयं इस अनुभव को वर्तमान क्षण में ही जान लिया था। उन्होंने जाना: "जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य संपन्न हो गया। इस संसार के लिए अब और कुछ नहीं बचा है।" इस प्रकार पूज्य अंगुलिमाला भी अरहंतों में से एक बन गए।

तब पूज्य अंगुलिमाला सुबह सवेरे अपने वस्त्र पहनकर और अपना बाहरी वस्त्र एवं भिक्षापात्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने गए। उसी समय एक व्यक्ति द्वारा फेंका गया मिट्टी का ढेला पूज्य अंगुलिमाला के शरीर पर लगा, दूसरे व्यक्ति द्वारा फेंका गया पत्थर उनके शरीर पर लगा और तीसरे व्यक्ति द्वारा फेंका गया मिट्टी का टुकड़ा भी उनके शरीर पर लगा। इस प्रकार पूज्य अंगुलिमाला - जिनका सिर फट गया था और खून बह रहा था, उनका भिक्षापात्र टूट गया था और उनका बाहरी वस्त्र टुकड़े-टुकड़े हो गया था - भगवान बुद्ध के पास गए। भगवान बुद्ध ने उन्हें दूर से आते देखा और उन्हें देखकर कहा: "सहन करो, ब्राह्मण! सहन करो! उस कर्म का फल जो तुम्हें कई वर्षों, कई सौ वर्षों, कई हजारों वर्षों तक नरक में जलाता, तुम अभी इसी क्षण भोग रहे हो!" 3

तब पूज्य अंगुलिमाला एकांतवास में जाकर मुक्ति के आनंद का अनुभव किया। उस समय उन्होंने कहा:

जो कभी लापरवाह था,

लेकिन बाद में ऐसा नहीं होता, यह बादलों से मुक्त हुए चंद्रमा की तरह दुनिया को रोशन करता है।

उसके बुरे कर्म5 की जगह कुशलता ने ले ली है: वह दुनिया को ऐसे रोशन करता है जैसे बादल से मुक्त हुआ चाँद।

जो भी युवा भिक्षु स्वयं को बुद्ध के आदेशों के प्रति समर्पित करता है, वह बादल से मुक्त हुए चंद्रमा की तरह संसार को प्रकाशित करता है।

मेरे शत्रु भी धम्म के बारे में सुनें। मेरे शत्रु भी बुद्ध के उपदेशों का पालन करें। मेरे शत्रु भी उन लोगों के साथ संगति करें जो शांतिप्रिय और अच्छे हैं और दूसरों को धम्म स्वीकार करने के लिए प्रेरित करते हैं। मेरे शत्रु भी उन लोगों से बार-बार धम्म के बारे में सुनें जो धीरज और सहनशीलता का उपदेश देते हैं, जो अहिंसा की प्रशंसा करते हैं, और वे इसका अनुसरण करें।

वह निश्चित रूप से मुझे नुकसान नहीं पहुंचाएगा।

या किसी और की; वह सर्वोच्च शांति प्राप्त करेगा, कमजोरों और दृढ़ लोगों की रक्षा करेगा।

सिंचाई करने वाले पानी को निर्देशित करते हैं।6 तीर बनाने वाले तीर के शाफ्ट को आकार देते हैं। बढ़ई लकड़ी को आकार देते हैं। बुद्धिमान लोग स्वयं पर नियंत्रण रखते हैं।

कुछ लोग कुंद छड़ी, हुक और चाबुक से वश में करते हैं, लेकिन मुझे कुंद या धारदार हथियारों के बिना उस एक ने वश में किया जो ऐसा ही है।

मेरा नाम "किसी को हानि न पहुँचाने वाला" है।

लेकिन मैं पहले दूसरों को हानि पहुँचाने वाला था। आज मैं अपने नाम के अनुरूप हूँ, क्योंकि मैं किसी को भी हानि नहीं पहुँचाता।

मैं अंगुलिमाला के नाम से मशहूर एक डाकू हुआ करता था। एक भीषण बाढ़ में बहकर मैं बुद्ध की शरण में गया।

मैं कभी अंगुलिमाला के नाम से कुख्यात, खूनी हाथों वाला था। देखो, मैं शरण लेने जा रहा हूँ! जड़ से उखड़ जाना ही [लालसा] है, बनने का मार्ग।

मैंने ऐसे कर्म किए हैं जिनसे अनेक बुरे परिणाम निकलते हैं, फिर भी उस कर्म के फल से अछूता रहकर, ऋणी न होकर, मैं अपना भोजन करता हूँ।

वे लापरवाही के आदी हैं।

मंदबुद्धि, मूर्ख लोग - जबकि बुद्धिमान व्यक्ति सावधानी को अपना सर्वोच्च धन मानता है।

लापरवाही को हावी न होने दें

या फिर ध्यान में लीन, सजग व्यक्ति के लिए, इंद्रिय सुख के साथ घनिष्ठता की ओर।

उसे असीम आनंद की प्राप्ति होती है।

यह अच्छी तरह से शुरू हुआ है और अभी तक गया नहीं है।

मेरे लिए इस पर बुरी तरह से विचार नहीं किया गया था। अच्छी तरह से विश्लेषित गुणों में से, मैंने प्राप्त किया है।

सर्वश्रेष्ठ।

यह सब ठीक रहा और व्यर्थ नहीं गया, मेरे लिए इस पर बुरी तरह से विचार नहीं किया गया था। तीनों ज्ञान प्राप्त हो चुके हैं; बुद्ध की आज्ञा का पालन किया गया है।

हो गया।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.7 पियाजातिका सुत्त(87)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। उस समय एक गृहस्थ के प्रिय और लाडले बेटे, जो उसका इकलौता बच्चा था, की मृत्यु हो गई थी। उसकी मृत्यु के कारण पिता को काम करने और खाने की इच्छा नहीं रही। वह बार-बार श्मशान जाकर रोते हुए कहता, "मेरे इकलौते बच्चे, तुम कहाँ चले गए? मेरे इकलौते बच्चे, तुम कहाँ चले गए?"

फिर वह भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, "हे गृहस्थ, तुम्हारी बुद्धि स्थिर मन वाले व्यक्ति की बुद्धि के समान नहीं है। तुम्हारी बुद्धि में कुछ विकार है।"

हे भगवान, मेरी इंद्रियों में कोई गड़बड़ी कैसे न हो? मेरा प्रिय और लाडला छोटा बेटा, मेरा इकलौता बच्चा, मर गया है। उसकी मृत्यु के कारण, मुझे काम करने या खाने की कोई इच्छा नहीं है। मैं बार-बार कब्रिस्तान जाती हूँ और रोते हुए कहती हूँ, 'मेरे इकलौते बच्चे, तुम कहाँ चले गए? मेरे इकलौते बच्चे, तुम कहाँ चले गए?'"

"यही सत्य है, गृहस्थ। यही सत्य है—क्योंकि दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से ही उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही निकलते हैं।"

"पर हे भगवान, भला कौन सोचेगा कि दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा किसी प्रिय व्यक्ति से उत्पन्न होते हैं, किसी प्रिय व्यक्ति से आते हैं? सुख और आनंद तो किसी प्रिय व्यक्ति से ही उत्पन्न होते हैं, किसी प्रिय व्यक्ति से ही आते हैं।" अतः गृहस्थ भगवान बुद्ध के वचनों से प्रसन्न न होकर, उन्हें अस्वीकार करते हुए, अपने आसन से उठकर चला गया।

उस समय बड़ी संख्या में जुआरी भगवान बुद्ध से कुछ ही दूरी पर जुआ खेल रहे थे। इसलिए गृहस्थ उनके पास गया और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा, "हे आदरणीय महोदय, अभी-अभी मैं ध्यानमग्न गौतम के पास गया था और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गया। जब मैं वहाँ बैठा था, तब ध्यानमग्न गौतम ने मुझसे कहा, 'गृहस्थ, तुम्हारी इंद्रियाँ स्थिर मन वाले व्यक्ति की इंद्रियों जैसी नहीं हैं। तुम्हारी इंद्रियों में कुछ गड़बड़ी है।'"

जब यह कहा गया, तो मैंने उनसे कहा, 'हे भगवान, मेरी इंद्रियों में कोई गड़बड़ी कैसे न हो? मेरा प्रिय और लाडला छोटा बेटा, मेरा इकलौता बच्चा, मर गया है। उसकी मृत्यु के कारण, मुझे काम करने या खाने की कोई इच्छा नहीं है। मैं बार-बार कब्रिस्तान जाकर रोती रहती हूँ, "मेरे इकलौते छोटे बच्चे, तुम कहाँ चले गए? मेरे इकलौते छोटे बच्चे, तुम कहाँ चले गए?"'

"'यही सत्य है, गृहस्थ। यही सत्य है—क्योंकि दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से ही उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही निकलते हैं।'

"पर हे भगवान, भला कौन सोचेगा कि दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा किसी प्रिय व्यक्ति से उत्पन्न होते हैं, किसी प्रिय व्यक्ति से निकलते हैं? सुख और आनंद तो किसी प्रिय व्यक्ति से ही उत्पन्न होते हैं, किसी प्रिय व्यक्ति से निकलते हैं।" अतः गौतम गौतम के इन शब्दों से प्रसन्न न होकर, उन्हें अस्वीकार करते हुए, मैं अपने आसन से उठकर चला गया।

"यही बात है, गृहस्थ [जुआरियों ने कहा]। यही बात है। सुख और आनंद प्रियतम से ही उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही आते हैं।"

इसलिए गृहस्वामी यह सोचते हुए चला गया, "मैं जुआरियों से सहमत हूँ।"

अंततः, इस बातचीत की खबर राजा के भीतरी कक्षों तक पहुँच गई। तब राजा पसेनादि कोसला ने रानी मल्लिका को संबोधित करते हुए कहा, "मल्लिका, आपके चिंतनशील गुरु गौतम ने यह कहा है: 'शोक, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से ही उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही उत्पन्न होते हैं।'"

"अगर यह बात भगवान ने कही है, हे महान राजा, तो यही सच है।"

"गौतम ध्यानमग्न चाहे कुछ भी कहें, मल्लिका उसका समर्थन करती हैं: 'हे महाराज, यदि यह बात भगवान बुद्ध ने कही है, तो यही सत्य है।' ठीक वैसे ही, जैसे शिष्य अपने गुरु की बात माने बिना उसका समर्थन करते हैं: 'हे गुरु, यही सत्य है।' ठीक उसी प्रकार, गौतम ध्यानमग्न चाहे कुछ भी कहें, मल्लिका उसका समर्थन करती हैं: 'हे भगवान बुद्ध ने बात मानी है, तो यही सत्य है।' मल्लिका, दूर हो जाओ! मेरी दृष्टि से ओझल हो जाओ!"

तब रानी मल्लिका ने ब्राह्मण नलिजंग को बुलाया और कहा, "हे ब्राह्मण, आओ। भगवान बुद्ध के पास जाओ और वहाँ पहुँचकर मेरे नाम से उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करो और पूछो कि क्या वे रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं। यह कहते हुए: 'हे भगवान, रानी मल्लिका आपके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करती हैं और पूछती हैं कि क्या आप रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं।' फिर कहो: 'हे भगवान, क्या भगवान बुद्ध ने कहा है कि दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही उत्पन्न होते हैं?' भगवान बुद्ध जो कुछ भी कहें, उसे अच्छी तरह याद रखो और मुझे बताओ। क्योंकि तथागत असत्य नहीं बोलते।"

"जी महोदया," ब्राह्मण नलिजंग ने रानी मल्लिका को उत्तर दिया। भगवान बुद्ध के पास पहुँचकर उन्होंने उनसे शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम बुद्ध, रानी मल्लिका आपके चरणों में सिर झुकाकर आपसे पूछती हैं कि क्या आप रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं। आगे वे कहती हैं, 'हे भगवान, क्या भगवान बुद्ध ने कहा है कि दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही उत्पन्न होते हैं?'"

"यही सत्य है, ब्राह्मण। यही सत्य है। दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से ही उत्पन्न होते हैं, उन्हीं से उत्पन्न होते हैं। और घटनाओं के इसी क्रम से यह समझा जा सकता है कि दुःख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से ही कैसे उत्पन्न होते हैं, उन्हीं से उत्पन्न होते हैं।"

"एक बार इसी सावत्थी में एक स्त्री थी जिसकी माता का निधन हो गया था। माता की मृत्यु के कारण वह पागल हो गई, उसका मानसिक संतुलन बिगड़ गया और वह गली-गली, चौराहे-चौराहे भटकती हुई कहती, 'क्या तुमने मेरी माँ को देखा है? क्या तुमने मेरी माँ को देखा है?' घटनाओं के इस क्रम से यह समझा जा सकता है कि कैसे शोक, विलाप, पीड़ा, व्यथा और निराशा किसी प्रियजन से जन्म लेती हैं, किसी प्रियजन से ही उत्पन्न होती हैं।"

"एक बार इसी सावत्थी में एक स्त्री रहती थी जिसके पिता की मृत्यु हो गई... भाई की मृत्यु हो गई... बहन की मृत्यु हो गई... पुत्र की मृत्यु हो गई... पुत्री की मृत्यु हो गई... पति की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के कारण वह पागल हो गई, उसका मानसिक संतुलन बिगड़ गया और वह गली-गली, चौराहे-चौराहे भटकती हुई कहती, 'क्या तुमने मेरे पति को देखा है? क्या तुमने मेरे पति को देखा है?' घटनाओं के इस क्रम से यह समझा जा सकता है कि कैसे शोक, विलाप, पीड़ा, व्यथा और निराशा किसी प्रियजन की मृत्यु से जन्म लेती हैं, किसी प्रियजन से ही उत्पन्न होती हैं।"

"एक बार इसी सावत्थी में एक आदमी था जिसकी माँ का निधन हो गया था। उसकी मृत्यु के कारण वह पागल हो गया, उसका दिमाग खराब हो गया और वह गली-गली, चौराहे-चौराहे भटकता हुआ कहता, 'क्या तुमने मेरी माँ को देखा है? क्या तुमने मेरी माँ को देखा है?' घटनाओं के इस क्रम से यह समझा जा सकता है कि कैसे शोक, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा किसी प्रियजन से जन्म लेते हैं, किसी प्रियजन से ही उत्पन्न होते हैं।"

"इसी श्रावस्ती में एक आदमी रहता था जिसके पिता की मृत्यु हो गई... भाई की मृत्यु हो गई... बहन की मृत्यु हो गई... बेटे की मृत्यु हो गई... बेटी की मृत्यु हो गई... पत्नी की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के कारण वह पागल हो गया, उसका दिमाग खराब हो गया और वह गली-गली, चौराहे-चौराहे भटकता हुआ कहता, 'क्या तुमने मेरी पत्नी को देखा है? क्या तुमने मेरी पत्नी को देखा है?' घटनाओं के इस क्रम से यह समझा जा सकता है कि कैसे शोक, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा किसी प्रिय व्यक्ति से जन्म लेते हैं, किसी प्रिय व्यक्ति से ही उत्पन्न होते हैं।"

"एक बार इसी सावत्थी में एक पत्नी अपने रिश्तेदारों के घर गई। उसके रिश्तेदारों ने उसे उसके पति से अलग कर दिया था और उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे किसी और को देना चाहते थे। तब उसने अपने पति से कहा, 'मेरे इन रिश्तेदारों ने हमें अलग कर दिया है और मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझे किसी और को देना चाहते हैं।' यह सुनकर उसके पति ने उसे दो टुकड़ों में काट दिया और यह सोचते हुए खुद को भी चीर डाला, 'हम दोनों एक साथ मरेंगे।' घटनाओं के इस क्रम से यह समझा जा सकता है कि कैसे दुख, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा किसी प्रियजन से ही जन्म लेते हैं, किसी प्रियजन से ही उत्पन्न होते हैं।"

तब ब्राह्मण नलिजंग, भगवान बुद्ध के वचनों से प्रसन्न होकर और उन्हें स्वीकार करते हुए, अपने आसन से उठे और रानी मल्लिका के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने रानी मल्लिका को वे सभी बातें बताईं जो उन्होंने भगवान बुद्ध से की थीं।

तब रानी मल्लिका राजा पसेनादि कोसला के पास गईं और वहाँ पहुँचकर उनसे कहा, "हे महाराज, आप क्या सोचते हैं: क्या राजकुमारी वजिरी आपको प्रिय हैं?"

"जी हां, मल्लिका, राजकुमारी वजिरी मुझे प्रिय हैं।"

"और आप क्या सोचते हैं: क्या राजकुमारी वजिरी में किसी भी परिवर्तन या असामान्यता से आपमें दु:ख, विलाप, पीड़ा, व्याकुलता और निराशा उत्पन्न होगी?"

"मल्लिका, राजकुमारी वजिरी में कोई भी परिवर्तन या गड़बड़ी मेरे जीवन में भी गड़बड़ी का कारण बनेगी। ऐसे में मेरे भीतर दु:ख, विलाप, पीड़ा, व्यथा और निराशा का भाव उत्पन्न न होना स्वाभाविक है।"

"हे महान राजा, इसी संदर्भ में भगवान बुद्ध ने—जो सर्वज्ञानी, सर्वदर्शी, योग्य और सही मायने में आत्मजागृत हैं—कहा, 'शोक, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही निकलते हैं।'

"अब आप क्या सोचते हैं, महान राजा: क्या आपको परम रानी वासभा प्रिय हैं?... क्या आपको [आपका पुत्र] सेनापति विदुदभा प्रिय हैं?... क्या मैं आपको प्रिय हूँ?"

"हां, मल्लिका, तुम मुझे बहुत प्रिय हो।"

और आप क्या सोचते हैं: क्या मुझमें किसी भी परिवर्तन या विकृति से आपमें दु:ख, विलाप, पीड़ा, व्याकुलता और निराशा उत्पन्न होगी?

"मल्लिका, तुममें कोई भी परिवर्तन या विकृति मेरे जीवन में भी विकृति का कारण बनेगी। ऐसे में मुझमें दु:ख, विलाप, पीड़ा, व्यथा और निराशा का भाव उत्पन्न न होना स्वाभाविक है।"

"हे महान राजा, इसी संदर्भ में भगवान बुद्ध ने—जो सर्वज्ञानी, सर्वदर्शी, योग्य और सही मायने में आत्मजागृत हैं—कहा, 'शोक, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही निकलते हैं।'

"अब आप क्या सोचते हैं, महान राजा: क्या आपके [प्रजाजन] कासी और कोसलान आपको प्रिय हैं?"

"जी हां, मल्लिका, कासी और कोसलन मुझे प्रिय हैं। कासी और कोसलन की शक्ति के कारण ही हम कासी चंदन का उपयोग करते हैं और माला, सुगंध और मलहम लगाते हैं।"

और आपका क्या विचार है: क्या कसी और कोसलान लोगों में किसी भी परिवर्तन और विचलन से आपमें दु:ख, विलाप, पीड़ा, व्याकुलता और निराशा उत्पन्न होगी?

"मल्लिका, कसी और कोसलान में कोई भी परिवर्तन या गड़बड़ी मेरे जीवन में भी गड़बड़ी का कारण बनेगी। ऐसे में मुझमें दु:ख, विलाप, पीड़ा, व्यथा और निराशा का भाव उत्पन्न न होना स्वाभाविक है।"

"हे महान राजा, इसी संदर्भ में भगवान बुद्ध ने—जो सर्वज्ञानी, सर्वदर्शी, योग्य और सत्यनिष्ठ रूप से आत्मजागृत हैं—कहा, 'शोक, विलाप, पीड़ा, कष्ट और निराशा प्रियतम से उत्पन्न होते हैं, प्रियतम से ही निकलते हैं।'"

"यह अद्भुत है, मल्लिका। यह विस्मयकारी है: भगवान बुद्ध कितनी गहराई से देखते हैं, मानो उन्होंने विवेक से सब कुछ भेद दिया हो। आओ मल्लिका: मुझे स्नान का जल दो।" तब राजा पसेनादि कोसला अपने आसन से उठकर और अपने ऊपरी वस्त्र को एक कंधे पर रखकर, अपने हृदय के सामने हथेलियों को जोड़कर भगवान बुद्ध की ओर प्रणाम किया और तीन बार कहा:

हे भगवान, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत हैं, उन्हें प्रणाम!
हे भगवान, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत हैं, उन्हें प्रणाम!

हे भगवान, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत हैं, उन्हें प्रणाम!

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.8 बहितिका सुत्त(88)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान आनंद सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। पूज्य आनंद ने सुबह वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। भिक्षा मांगने के बाद, भोजन समाप्त होने पर, वे दिन बिताने के लिए मिगारा की माता के महल में गए। उस समय कोसल के राजा पसेनादि हाथी एकपुंदरीका पर सवार होकर सावत्थी से गुजर रहे थे। कोसल के राजा पसेनादि ने दूर से पूज्य आनंद को आते देखा और अपने प्रधान मंत्री श्रीवद्दा से पूछा, 'श्रीवद्दा, क्या वह पूज्य आनंद हैं?' 'महाराज, वह पूज्य आनंद हैं।' तब कोसल के राजा पसेनादि ने एक व्यक्ति को बुलाया और कहा, 'हे जन, पूज्य आनंद के पास जाओ, मेरी ओर से उनके चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करो और उनसे कहो।' आदरणीय महाराज, कोसल के राजा पसेनादि ने आपके चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया और कहा, 'यदि आदरणीय आनंद के पास कोई अत्यावश्यक कार्य न हो, तो क्या वे करुणावश कोसल के राजा पसेनादि के लिए एक क्षण प्रतीक्षा कर सकते हैं?' राजा ने सहमति व्यक्त की और आदरणीय आनंद के पास जाकर प्रणाम किया, एक तरफ खड़े होकर कहा, 'आदरणीय महाराज, कोसल के राजा पसेनादि ने आपके चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया और कहा, यदि आदरणीय आनंद के पास कोई अत्यावश्यक कार्य न हो, तो क्या वे करुणावश कोसल के राजा पसेनादि के लिए एक क्षण प्रतीक्षा कर सकते हैं?' आदरणीय आनंद ने मौन सहमति व्यक्त की। राजा हाथी की पीठ पर जहाँ तक जा सकते थे, गए और हाथी से उतरकर पैदल ही आदरणीय आनंद के पास पहुँचे। उन्होंने आदरणीय आनंद को प्रणाम किया और एक तरफ खड़े होकर कहा, 'यदि आदरणीय आनंद के पास कोई अत्यावश्यक कार्य न हो, तो क्या वे करुणावश अचिरावथी नदी के तट पर आ सकते हैं?' आदरणीय आनंद ने इसे मौनपूर्वक स्वीकार किया, अचिरावथी नदी के तट पर पहुँचे और तैयार आसन पर बैठ गए। राजा हाथी की पीठ पर जहाँ तक जा सकते थे, गए, फिर हाथी से उतरकर पैदल ही आदरणीय आनंद के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े हो गए। फिर उन्होंने कहा, 'आदरणीय आनंद, हाथी के गद्दी पर बैठिए।' 'हे महाराज, मैं बैठा हूँ, आप बैठिए।' कोसल के राजा पसेनादि तैयार आसन पर बैठ गए और बोले, 'आदरणीय आनंद, क्या भगवान ऐसा कोई शारीरिक व्यवहार करते हैं जो संन्यासियों, ब्राह्मणों और ज्ञानियों के प्रति शत्रुतापूर्ण हो?' 'नहीं, महाराज, भगवान ऐसा कोई शारीरिक व्यवहार नहीं करते जो संन्यासियों, ब्राह्मणों और ज्ञानियों के प्रति शत्रुतापूर्ण हो।'

हे आनंद, क्या भगवान बुद्ध संन्यासियों, ब्राह्मणों और ज्ञानियों के प्रति शत्रुतापूर्ण वाणी का अभ्यास करते हैं? क्या भगवान बुद्ध संन्यासियों, ब्राह्मणों और ज्ञानियों के प्रति शत्रुतापूर्ण मानसिक व्यवहार का अभ्यास करते हैं? 'नहीं, हे महाराज, भगवान बुद्ध संन्यासियों, ब्राह्मणों और ज्ञानियों के प्रति शत्रुतापूर्ण किसी भी प्रकार की वाणी... किसी भी प्रकार का मानसिक व्यवहार नहीं करते हैं।'

'अद्भुत और आश्चर्यजनक, पूज्यवर, यह प्रश्न हम पूछ नहीं पाए और न ही इसका उत्तर मिल पाया, अब पूज्यवर आनंद ने मुझे इसका उत्तर दे दिया है। पूज्यवर, मूर्ख वे होते हैं जो बिना सोचे-समझे और समझे दूसरों की प्रशंसा या निंदा करते हैं। मैं उन शब्दों पर विश्वास नहीं करता।'

हे आनंद जी, किस प्रकार का शारीरिक व्यवहार संन्यासियों, ब्राह्मणों और ज्ञानी व्यक्तियों के लिए शत्रुतापूर्ण है?

'महान राजा का शारीरिक व्यवहार दोषपूर्ण होता है।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का शारीरिक व्यवहार दोषपूर्ण होता है?'

"महान राजा, शारीरिक व्यवहार दोषपूर्ण है।"

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का शारीरिक व्यवहार दोषपूर्ण है?'

'महान राजा, आपका शारीरिक व्यवहार चिंताजनक है।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का शारीरिक व्यवहार परेशानी का कारण बनता है?'

'महान राजा वे होते हैं जिनके परिणाम अप्रिय होते हैं।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार के शारीरिक व्यवहार के अप्रिय परिणाम होते हैं?'

'हे महाराज, ऐसा शारीरिक व्यवहार जो स्वयं को, दूसरों को और हम दोनों को हानि पहुँचाता है, जिसके कारण पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है। ऐसा शारीरिक व्यवहार स्वयं को, दूसरों को और हम दोनों को हानि पहुँचाता है।'

'हे आनंद जी, किस प्रकार का मौखिक व्यवहार, ...या...मानसिक व्यवहार संन्यासी ब्राह्मणों और ज्ञानी व्यक्तियों के प्रति शत्रुतापूर्ण होता है?'

'महान राजा, आपका मानसिक व्यवहार निंदनीय है।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का मानसिक व्यवहार दोष कहलाता है?'

''महान राजा, लेकिन मानसिक व्यवहार दोषपूर्ण है।''

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का मानसिक व्यवहार दोषपूर्ण है?'

'महान राजा, आपका मानसिक व्यवहार चिंताजनक है।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का मानसिक व्यवहार चिंताजनक है?'

'महान राजा वे होते हैं जिनके परिणाम अप्रिय होते हैं।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार के मानसिक व्यवहार के अप्रिय परिणाम होते हैं?'

'हे महाराज, ऐसा मानसिक आचरण जो स्वयं को, दूसरों को और हम दोनों को हानि पहुँचाता है, जिसके कारण पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है। ऐसा मानसिक आचरण स्वयं को, दूसरों को और हम दोनों को हानि पहुँचाता है।'

हे महाराज, ऐसा मानसिक व्यवहार जो स्वयं को, दूसरों को और दोनों को हानि पहुँचाता है, और जिसके कारण पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है, वह स्वयं को, दूसरों को और दोनों को हानि पहुँचाता है।

'आदरणीय महोदय, क्या भगवान समस्त दोषों के निवारण को स्वीकार करते हैं?'

'महान राजा, तथागत ने समस्त दोषों को दूर कर दिया है, वे गुणों से परिपूर्ण हैं।'

'हे आनंद, संन्यासियों, ब्राह्मणों और ज्ञानी व्यक्तियों के लिए किस प्रकार का शारीरिक व्यवहार उपयुक्त होता है?'

'महान राजा का शारीरिक व्यवहार ही गुणकारी होता है।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का शारीरिक व्यवहार पुण्य कहलाता है?'

''महान राजा, जिनका शारीरिक व्यवहार दोषरहित है।''

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का शारीरिक व्यवहार दोषरहित होता है?'

'महान राजा, शारीरिक व्यवहार जो परेशानी पैदा नहीं करता।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का शारीरिक व्यवहार कष्टदायक नहीं होता?'

'महान राजा वे होते हैं जिनके परिणाम सुखद होते हैं।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार के शारीरिक व्यवहार से सुखद परिणाम प्राप्त होते हैं?'

'हे महाराज, शारीरिक आचरण ऐसा होना चाहिए जो स्वयं को, दूसरों को और दोनों को हानि न पहुँचाए, और जिसके कारण पुण्य कम होकर पुण्य बढ़ता है। ऐसा शारीरिक आचरण स्वयं को, दूसरों को और दोनों को हानि नहीं पहुँचाता।'

'हे आनंद, किस प्रकार का मौखिक व्यवहार, ...या...मानसिक व्यवहार संन्यासी ब्राह्मणों और ज्ञानी व्यक्तियों के लिए उपयुक्त होता है?'

'महान राजा का मानसिक व्यवहार ही गुणकारी होता है।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का मानसिक व्यवहार पुण्य कहलाता है?'

''महान राजा, जिनका मानसिक व्यवहार दोषरहित है।''

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का मानसिक व्यवहार दोषरहित होता है?'

'महान राजा, मानसिक व्यवहार जो परेशानीजनक नहीं है।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार का मानसिक व्यवहार परेशानी का कारण नहीं होता?'

'महान राजा वे होते हैं जिनके परिणाम सुखद होते हैं।'

'आदरणीय महोदय, किस प्रकार के मानसिक व्यवहार से सुखद परिणाम प्राप्त होते हैं?'

'हे महान राजा, ऐसा मानसिक आचरण जो स्वयं को, दूसरों को और दोनों को हानि न पहुँचाए, और जिसके कारण पुण्य कम हो और पुण्य बढ़े, वह मानसिक आचरण स्वयं को, दूसरों को और दोनों को हानि न पहुँचाए।'

हे महान राजा, ऐसा मानसिक आचरण जो स्वयं को, दूसरों को और दोनों को हानि न पहुँचाए, और जिसके कारण पुण्य कम हो और पुण्य बढ़े, वह मानसिक आचरण स्वयं को, दूसरों को और दोनों को हानि नहीं पहुँचाता।

'आदरणीय महोदय, क्या भगवान सभी पुण्य अर्जित करने को स्वीकार करते हैं?'

'महान राजा, तथागत ने समस्त दोषों को दूर कर दिया है, वे गुणों से परिपूर्ण हैं।'

'अद्भुत और आश्चर्यजनक! पूज्य आनंद के इन शब्दों से मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ। मैं इतना प्रसन्न हूँ कि मैं पूज्य आनंद को अपना हाथी, घोड़ा या यहाँ तक कि एक भव्य गाँव भी भेंट कर सकता हूँ, पर हम जानते हैं कि वे उपयुक्त नहीं हैं। यह गर्म वस्त्र मगध के राजा अजातसत्तु ने सरकंडों के डिब्बे में भेजा है। इसकी लंबाई सोलह माप और चौड़ाई आठ माप है, यह उपयुक्त है। पूज्य आनंद दयावश इसे स्वीकार करें।'

'हे महान राजा, व्यर्थ! मेरे तीनों वस्त्र पूर्ण हैं।'

'आदरणीय महोदय, हम दोनों देख रहे हैं कि अचिरावथी नदी पहाड़ों से उफान मारते हुए बह रही है और किनारों को उफान पर ला रही है। उसी प्रकार, आदरणीय आनंद इस गर्म वस्त्र से अपने तीन वस्त्र बनाएंगे। मेरा मानना है कि वे पहले से बने तीनों वस्त्रों को अपने आध्यात्मिक जीवन के साथियों में बाँट देंगे। आदरणीय आनंद इस गर्म वस्त्र को स्वीकार करें।'

आदरणीय आनंद ने गर्म वस्त्र ग्रहण किया। तब कोसल के राजा पसेनादि ने आदरणीय आनंद से कहा, 'आदरणीय महोदय, हमें अब जाना होगा, बहुत काम करना है।'

'महाराज, आप जैसा उचित समझें वैसा करें।' कोसल के राजा पसेनादि अपने आसन से उठे, पूज्य आनंद को प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा की और चले गए। राजा के जाने के कुछ ही समय बाद, पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के पास आए और उन्हें प्रणाम करते हुए एक तरफ बैठ गए। पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध को राजा और अपने बीच हुई सारी बातचीत बताई और उन्हें गर्म वस्त्र भेंट किया।

तब भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, कोसल के राजा पसेनादि के लिए यह दुर्लभ और बड़ा लाभ है कि वे पूज्य आनंद के निकट आकर उनसे संगति करते हैं।' भगवान बुद्ध के शब्दों से भिक्षु प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.9 धम्मसेटिया सुत्त(89)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध मेधालुम्पा नामक शाक्य गाँव में शाक्यों के साथ रह रहे थे। उस समय कोसल के राजा पसेनादि किसी उद्देश्य से नांगरका आए थे और उन्होंने दीघा कारायण से कहा, 'मित्र कारायण, अच्छे रथ तैयार करो, हम उद्यानों का भ्रमण करना चाहते हैं और उपजाऊ मिट्टी देखना चाहते हैं।' दीघा मान गए और उपयुक्त रथ तैयार करके कोसल के राजा पसेनादि को सूचित किया, 'महाराज, रथ तैयार हैं, अब उचित कार्य करने का समय है।' कोसल के राजा पसेनादि एक उपयुक्त रथ पर सवार हुए और भव्यता से नांगरका से रवाना हुए। रथ जहाँ तक जा सकते थे, वहाँ तक गए और रथों से उतरकर उद्यान में प्रवेश किया। उद्यान में घूमते हुए कोसल के राजा पसेनादि ने ऐसे वृक्षों की जड़ें देखीं जो मनभावन, शांत, मनुष्यों से दूर और एकांत के लिए उपयुक्त थीं और उन्होंने भगवान बुद्ध का चिंतन किया। उन्होंने सोचा, इन सुखद, शांत, मनुष्यों से दूर और एकांत के लिए उपयुक्त वृक्षों की जड़ों के कारण, मुझे पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान की संगति करनी चाहिए। तब कोसल के राजा पसेनादि ने दीघा कारायण को संबोधित किया। 'मित्र कारायण, ये सुखद, शांत, मनुष्यों से दूर और एकांत के लिए उपयुक्त वृक्षों की जड़ें मुझे पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान की याद दिलाती हैं। मित्र, वे अब कहाँ निवास करते हैं?' 'महाराज, शाक्यों का एक गाँव है, मेडलुम्पा, पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान वहाँ निवास करते हैं।' 'मित्र कारायण, मेडलुम्पा नांगरका से कितनी दूर है?' 'यह यहाँ से बहुत दूर नहीं है, लगभग 20 मील।' 'क्या हम सूर्यास्त तक वहाँ पहुँच सकते हैं?' 'तो मित्र कारायण, उपयुक्त रथ तैयार करो, मैं उस पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान के दर्शन करना चाहता हूँ।' तब दीघा कारायण ने सहमति जताते हुए उपयुक्त रथों को जोता और राजा को सूचित किया, 'महाराज, रथ जोत दिए गए हैं, अब उचित कार्य करने का समय है।' तब कोसल के राजा पसेनादि, अच्छी तरह से जोते हुए रथों पर सवार होकर नांगरका से शाक्यों के गाँव मेडलुम्पा की ओर चल पड़े। अंधेरा होने पर वे मेडलुम्पा पहुँचे। रथ में जहाँ तक जा सकते थे, वहाँ तक जाने के बाद, वे रथों से उतरकर मठ परिसर में आ पहुँचे। उस समय कई भिक्षु खुले में चलते हुए ध्यान कर रहे थे और कोसल के राजा पसेनादि उनके पास गए और पूछा, 'आदरणीय महोदय, इस समय भगवान कहाँ हैं? हम उस परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान के दर्शन करना चाहते हैं?' 'महाराज, निवास का द्वार बंद है, कृपया चुपचाप, बिना किसी को परेशान किए, छत पर चढ़ें, खाँसें और चौखट पर दस्तक दें। भगवान द्वार खोल देंगे।' उस समय कोसल के राजा ने दीघा कारायण को तलवार और मुकुट सौंप दिया, और उनके मन में यह विचार आया कि राजा एकांत चाहते हैं। मुझे आगे नहीं बढ़ना चाहिए। कोसल के राजा पसेनादि चुपचाप निवास भवन के बंद द्वार के पास पहुँचे, बिना किसी को दखल दिए, छत पर कदम रखा, खाँसा और चौखट पर दस्तक दी। भगवान बुद्ध ने द्वार खोल दिया। कोसल के राजा पसेनादि निवास भवन में प्रवेश कर गए।उन्होंने भगवान बुद्ध के चरणों में अपना सिर रखा, उनके चरणों को चूमा और अपने हाथों से उन्हें सहलाया। फिर उन्होंने घोषणा की, 'हे पूज्यवर, मैं कोसल का राजा पसेनादि हूं।'

'हे महान राजा, इस अच्छाई को देखकर आप सर्वोच्च श्रद्धा प्रकट करते हैं और इस शरीर को ये मैत्रीपूर्ण भेंट अर्पित करते हैं?'

आदरणीय महोदय, मैं भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के मूल भाव को समझ गया हूँ। भगवान बुद्ध सही मायने में प्रबुद्ध हैं, उनकी शिक्षाओं का व्यापक प्रचार हुआ है। भगवान बुद्ध के शिष्य सही मार्ग पर चल पड़े हैं। आदरणीय महोदय, मैं संन्यासियों और ब्राह्मणों को देखता हूँ, जो दस, बीस, तीस या चालीस वर्षों तक पवित्र जीवन व्यतीत करते हैं। बाद में मैं उन्हें स्नान करते और सजते-संवरते देखता हूँ, उनके बाल और दाढ़ी छोटे होते हैं, वे इंद्रिय सुखों में लिप्त होते हैं और उनके पास पर्याप्त साजो-सामान होता है। यहाँ मैं भिक्षुओं को जीवन के अंत तक, अपनी अंतिम साँस तक, पूर्ण और शुद्ध पवित्र जीवन व्यतीत करते देखता हूँ। आदरणीय महोदय, इसी कारण मैं भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के मूल भाव को समझ गया हूँ। भगवान बुद्ध सही मायने में प्रबुद्ध हैं, उनकी शिक्षाओं का व्यापक प्रचार हुआ है। भगवान बुद्ध के शिष्य सही मार्ग पर चल पड़े हैं।

हे पूज्यवर, फिर से वही बात, राजा राजाओं से, योद्धा योद्धाओं से, ब्राह्मण ब्राह्मणों से, गृहस्थ गृहस्थों से, माता पुत्र से, पुत्र माता से, पिता पुत्र से, पुत्र पिता से, भाई भाई से, भाई बहन से, बहन भाई से, मित्र मित्र से। हे पूज्यवर, यहाँ मैं भिक्षुओं को एकजुट और मित्रवत देखता हूँ, बिना किसी विवाद के, दूध और पानी की तरह घुलमिलकर, एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते हुए। हे पूज्यवर, इसी कारण मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा के मूल भाव को समझ पाया हूँ। भगवान बुद्ध सत्यतः प्रबुद्ध हैं, उनकी शिक्षा का सर्वप्रचार हो चुका है। भगवान बुद्ध के शिष्य सही मार्ग पर चल पड़े हैं।

आदरणीय महोदय, मैं एक मठ से दूसरे मठ और एक उद्यान से दूसरे उद्यान में विचरण करता हूँ, वहाँ मुझे कुछ संन्यासी और ब्राह्मण दुबले-पतले, बदसूरत, पीलिया से क्षत-विक्षत, उभरी हुई नसों वाले और दृष्टिहीन दिखाई देते हैं। तब मुझे यह विचार आता है कि वास्तव में ये आदरणीय साधु पवित्र जीवन जीते हैं, लेकिन उससे आसक्त नहीं हैं। या फिर उनमें कोई ऐसा अज्ञात दोष है, जिसके कारण वे दुबले-पतले, बदसूरत, पीलिया से क्षत-विक्षत और उभरी हुई नसों वाले हैं।

मैं उनके पास जाकर पूछता हूँ, 'आदरणीय भिक्षु क्यों क्षीण, अप्रिय, पीलिया से क्षत-विक्षत, उभरी हुई नसों वाले और देखने में भद्दे हो गए हैं?' वे मुझे बताते हैं, 'महाराज, हम पीलिया से पीड़ित हैं।' 'आदरणीय, यहाँ हम भिक्षुओं को प्रसन्न, प्रसन्न, दृष्टि में मनभावन, संतुष्ट, निर्भय जीवन व्यतीत करते, भयमुक्त और सहायता के लिए तत्पर, जंगली पशु के समान मन के साथ देखते हैं। आदरणीय, मुझे यह प्रतीत होता है कि इन आदरणीय भिक्षुओं में धीरे-धीरे कुछ भेद प्रकट हो रहा है, कि वे प्रसन्न, प्रसन्न, दृष्टि में मनभावन, संतुष्ट, निर्भय जीवन व्यतीत करते, भयमुक्त, सहायता के लिए तत्पर और जंगली पशु के समान मन के साथ रहते हैं। आदरणीय, इसी कारण मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा के मूल भाव को समझ पाया हूँ। भगवान बुद्ध वास्तव में प्रबुद्ध हैं, और उनकी शिक्षा का व्यापक प्रचार हुआ है।' भगवान बुद्ध के शिष्य सही मार्ग पर आ गए हैं।

आदरणीय महोदय, एक अभिषिक्त योद्धा राजा के रूप में, मुझे अपने राज्य में उन लोगों को मारने, नष्ट करने या निर्वासित करने का अधिकार है जिन्हें मारना, नष्ट करना या निर्वासित करना आवश्यक है। फिर भी जब मैं न्याय करने बैठता हूँ, तो मुझे न्याय करना असंभव लगता है क्योंकि मेरे सामने कई बाधाएँ आती रहती हैं। मैं उनसे कहता भी हूँ, हे सज्जनों, मुझे बाधित न करें, मेरे भाषण के समाप्त होने तक प्रतीक्षा करें। आदरणीय महोदय, जब भगवान बुद्ध सैकड़ों भिक्षुओं को उपदेश दे रहे होते हैं, तो छींक या खांसी की आवाज भी सुनाई नहीं देती। एक बार ऐसा हुआ कि भगवान बुद्ध सैकड़ों लोगों की सभा को उपदेश दे रहे थे। तभी भगवान बुद्ध के एक शिष्य को खांसी हुई और दूसरे शिष्य ने उसके घुटने पर हल्का सा धक्का देकर कहा, शोर मत करो, भगवान बुद्ध उपदेश दे रहे हैं। आदरणीय महोदय, तब मुझे यह बात समझ में आई कि यह आश्चर्यजनक है कि सभा बिना लाठी या हथियार के इतनी अनुशासित है। आदरणीय महोदय, मैंने ऐसी अनुशासित सभा कहीं और नहीं देखी। इसी कारण मैं भगवान बुद्ध की शिक्षाओं के मूल भाव को समझ पाया हूँ। भगवान बुद्ध वास्तव में प्रबुद्ध हैं, उनकी शिक्षाओं का व्यापक प्रचार हुआ है। भगवान बुद्ध के शिष्य सही मार्ग पर चल पड़े हैं।

आदरणीय महोदय, मैंने एक बुद्धिमान, चतुर, योद्धा और वाद-विवाद करने वाले व्यक्ति को देखा है, जो बुद्धिमानों और उनके विचारों को नीचा दिखाने की सोच में लगा रहता है। यह सुनकर कि गौतम बुद्ध किसी गाँव या कस्बे में आए हैं, वे एक प्रश्न गढ़ते हैं। वे कहते हैं, "हम गौतम बुद्ध के पास जाएँगे और उनसे यह प्रश्न पूछेंगे। जब वे इसका उत्तर देंगे, तो हम उन्हें विवाद में उलझाएँगे।" जब वे उनके पास पहुँचते हैं, तो भगवान बुद्ध उन्हें सलाह देते हैं, प्रेरित करते हैं और उनके हृदय को हल्का करते हैं। सलाह, प्रेरणा और हृदय के हल्के होने के कारण, वे प्रश्न भी नहीं पूछते, तो विवाद की बात ही क्या? वे भगवान बुद्ध के सर्वांगीण शिष्य बन जाते हैं। इसी कारण मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा के मूल भाव को समझ पाया हूँ। भगवान बुद्ध सही मायने में प्रबुद्ध हैं, उनकी शिक्षा का व्यापक प्रचार हुआ है। भगवान बुद्ध के शिष्य सही मार्ग पर चल पड़े हैं।

आदरणीय महोदय, मैंने एक बुद्धिमान, चतुर ब्राह्मण को देखा, जो गृहस्थ है, संन्यासी है और वाद-विवाद करने वाला है। वह बुद्धिमानों और उनके विचारों को नीचा दिखाने की सोच में इधर-उधर घूमता रहता है। जब उन्हें पता चलता है कि संन्यासी गौतम किसी गाँव में आए हैं, तो वे एक प्रश्न गढ़ते हैं। वे कहते हैं, "हम गौतम के पास जाएँगे और उनसे यह प्रश्न पूछेंगे। वे इसका उत्तर देंगे और हम उन्हें वाद-विवाद में उलझा लेंगे।" जब वे उनके पास पहुँचते हैं, तो भगवान बुद्ध उन्हें सलाह देते हैं, प्रेरित करते हैं और उनके हृदय को हल्का करते हैं। सलाह, प्रेरणा और हृदय के हल्के होने के कारण वे प्रश्न भी नहीं पूछते, तो वाद-विवाद की बात ही क्या? वे भगवान बुद्ध के सर्वांगीण शिष्य बन जाते हैं। इसी कारण मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा के मूल भाव को समझ पाया हूँ। भगवान बुद्ध सही मायने में प्रबुद्ध हैं, उनकी शिक्षा का व्यापक प्रचार हुआ है। भगवान बुद्ध के शिष्य सही मार्ग पर चल पड़े हैं।

हे पूज्यवर, मैंने फिर से कहा, हे ईश्वरीय गुरु इसिदत्त और पुराण, जिनका पालन-पोषण मैंने ही किया, जिन्हें मैंने ही जीवनदान दिया और जिन्हें मैंने ही उस मुकाम तक पहुंचाया। फिर भी ये दोनों मेरे प्रति वैसा आदर नहीं दिखाते, जैसा वे भगवान बुद्ध के प्रति दिखाते हैं। हे पूज्यवर, अतीत में जब सेना मेरे विरुद्ध अग्रसर थी, तब मैं हे ईश्वरीय गुरु इसिदत्त और पुराण के एक दुर्गम निवास में गया। उन्होंने मुझे देर रात तक उपदेश दिया। उन्होंने बताया कि वे सोते समय अपना सिर भगवान बुद्ध की ओर और पैर मेरी ओर रखते हैं। तब मुझे यह बात समझ में आई। यह आश्चर्य और विस्मय की बात है कि हे ईश्वरीय गुरु इसिदत्त और पुराण, जिनका पालन-पोषण मैंने ही किया, जिन्हें मैंने ही जीवनदान दिया और जिन्हें मैंने ही उस मुकाम तक पहुंचाया। फिर भी ये दोनों मेरे प्रति वैसा आदर नहीं दिखाते, जैसा वे भगवान बुद्ध के प्रति दिखाते हैं। वास्तव में, ये पूज्यवर अपने आप में कुछ भेद देख रहे हैं। इसी कारण से मैं भगवान बुद्ध की शिक्षा के मूल भाव को समझ पाया हूँ। भगवान बुद्ध को उचित ज्ञान प्राप्त है, भगवान बुद्ध की शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार हो रहा है। भगवान बुद्ध के शिष्य सही मार्ग पर चल पड़े हैं।

हे पूज्यवर, मैं एक योद्धा हूँ, कोसल का रहने वाला अस्सी वर्ष का पुरुष हूँ। भगवान बुद्ध भी कोसल के रहने वाले योद्धा हैं और उनकी आयु भी अस्सी वर्ष है। अतः मैं भी इस शरीर को अत्यंत श्रद्धापूर्वक ये भेंट अर्पित करता हूँ। हे पूज्यवर, अब हम चलते हैं, बहुत कार्य करना है।

'महान राजा, जैसा आपको उचित लगे वैसा करो।'

कोसला के राजा पसेनादि अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध की पूजा की और उनकी परिक्रमा की और चले गए।

कोसल के राजा पसेनदी के जाने के तुरंत बाद, भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, कोसल के राजा पसेनदी ने शिक्षा के स्मारक बनवाए। भिक्षुओं, उन स्मारकों का अध्ययन करो। वे पुण्यदायी हैं और पवित्र जीवन के मूल सिद्धांतों का हिस्सा हैं।'

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 9.10कन्नकत्थलका सुत्त(90)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान उदाञ्ञों के बीच, कन्नाकत्थला के हिरण उद्यान में ठहरे हुए थे। उस समय राजा पसेनादि कोसल किसी कार्य से उदाञ्ञा आए थे। राजा पसेनादि कोसल ने अपने एक सेवक से कहा, "आओ, मेरे जन। भगवान के पास जाओ और वहाँ पहुँचकर मेरे नाम से उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करो और उनसे पूछो कि क्या वे रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं। उनसे कहो: 'हे भगवान, राजा पसेनादि कोसल आपके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं और पूछते हैं कि क्या आप रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं।' और फिर कहो: 'हे भगवान, आज राजा पसेनादि कोसल सुबह के भोजन के बाद भगवान के दर्शन करने आएँगे।'"

"जैसा आप कहें, महाराज," यह सुनकर वह व्यक्ति भगवान बुद्ध के पास गया और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके एक तरफ बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे उसने उनसे कहा, "हे भगवान, राजा पसेनादि कोसला आपके चरणों में सिर झुकाकर आपसे प्रार्थना करते हैं कि क्या आप

रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं।" फिर उसने कहा, "हे भगवान, आज राजा पसेनादि कोसला सुबह का भोजन करने के बाद भगवान बुद्ध से मिलने आएँगे।"

अब, सोमा और सकुला बहनों ने सुना, "आज, लोग कहते हैं, राजा पसेनादि कोसल सुबह के भोजन के बाद भगवान बुद्ध के दर्शन करने जाएंगे।" इसलिए वे राजा पसेनादि के पास भोजन परोसे जाने के दौरान गईं और पहुँचकर उनसे कहा, "हे महाराज, आप भी हमारी ओर से उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करें और उनसे पूछें कि क्या वे रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं।"

फिर, सुबह का भोजन करने के बाद, राजा पसेनादि कोसल भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, बहनें सोम और शकुल आपके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करती हैं और आपसे प्रार्थना करती हैं कि आप रोग और कष्टों से मुक्त, चिंतामुक्त, बलवान और सुखमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।"

लेकिन, हे महाराज, क्या बहनें सोमा और सकुला कोई दूसरा दूत नहीं भेज सकती थीं?

हे भगवान, बहनों सोमा और सकुला ने सुना, 'आज राजा पसेनादि कोसला सुबह के भोजन के बाद भगवान बुद्ध से मिलने जाएंगे।' इसलिए जब मेरा भोजन परोसा जा रहा था, वे मेरे पास आईं और पहुँचकर मुझसे बोलीं, 'हे महाराज, आप भी हमारी ओर से उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करें और उनसे प्रार्थना करें कि क्या वे रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं।' हे भगवान, बहनों सोमा और सकुला, आपके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करें और प्रार्थना करें कि क्या आप रोग और कष्टों से मुक्त हैं, चिंतामुक्त हैं, बलवान हैं और सुखमय जीवन जी रहे हैं।

"हे महान राजा, सोमा और सकुला बहनों को सुख मिले।"

तब राजा पसेनादि कोसल ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, मैंने सुना है कि गौतम ध्यानी कहते हैं: "यह संभव नहीं है कि कोई पुरोहित या ध्यानी सर्वज्ञ और सर्वदृष्टि का दावा करे।" जो लोग ऐसा कहते हैं, क्या वे भगवान बुद्ध के वचन के अनुरूप बोल रहे हैं? क्या वे गलत तथ्यों से भगवान बुद्ध का गलत अर्थ नहीं निकाल रहे हैं? क्या वे धर्म के अनुसार उत्तर दे रहे हैं, ताकि धर्म के अनुरूप चिंतन करने वाले किसी भी व्यक्ति को उनकी आलोचना करने का कोई आधार न मिले?"

"महान महाराज, जो लोग ऐसा कह रहे हैं वे मेरी कही बातों के अनुरूप नहीं बोल रहे हैं, और वे असत्य और असत्य बातों से मेरा गलत अर्थ निकाल रहे हैं।"

तब राजा पसेनादि कोसल ने सेनापति विदुदभा की ओर मुड़कर पूछा, "सेनापति, इस विषय को महल में कौन लाया?"

"आकाश वंश के ब्राह्मण संजय, महान राजा।"

तब राजा पसेनादि ने अपने एक सेवक से कहा, "आओ, मेरे जन। आकाश वंश के ब्राह्मण संजय को बुलाओ और कहो, 'राजा पसेनादि कोसल तुम्हें बुला रहे हैं।'"

"जैसा आप कहें, महाराज," कहकर वह व्यक्ति आकाश वंश के ब्राह्मण संजय के पास गया और वहाँ पहुँचकर उससे कहा, "राजा पसेनादि कोसला ने आपको बुलाया है।"

तब राजा पसेनादि कोसला ने भगवान बुद्ध से कहा, "क्या ऐसा हो सकता है कि भगवान बुद्ध ने किसी और बात के संदर्भ में कुछ कहा हो, जिसे किसी व्यक्ति ने गलत समझा हो? भगवान बुद्ध को यह बात किस प्रकार याद है कि उन्होंने ऐसा कहा था?"

"महान राजा, मुझे याद है मैंने कहा था, 'यह संभव नहीं है कि कोई पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति एक ही समय में सब कुछ जान सके और सब कुछ देख सके।'"

"हे भगवान, भगवान बुद्ध की बात तर्कसंगत प्रतीत होती है। भगवान बुद्ध की बात तार्किक लगती है: 'यह संभव नहीं है कि कोई पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति एक ही समय में सब कुछ जान सके और सब कुछ देख सके।'"

"हे भगवान, ये चार जातियाँ हैं: श्रेष्ठ योद्धा, पुरोहित (ब्राह्मण), व्यापारी और श्रमिक। क्या इनमें कोई भेद या अंतर है?"

"हे महान राजा, इन चार जातियों में से दो - कुलीन योद्धा और पुजारी - सम्मान, आतिथ्य, अभिवादन और विनम्र सेवाओं को प्राप्त करने के मामले में सर्वोपरि मानी जाती हैं।"

"हे भगवान, मैं वर्तमान जीवन के बारे में नहीं पूछ रहा हूँ। मैं भविष्य के जीवन के बारे में पूछ रहा हूँ। क्या इन चारों जातियों में कोई भेद या अंतर है?"

"महाराज, परिश्रम के ये पाँच कारक हैं। वे पाँच कौन से हैं?"

"ऐसा भी मामला है जहाँ एक भिक्षु को तथागत के ज्ञानोदय पर दृढ़ विश्वास है: 'वास्तव में, भगवान योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत हैं, ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण हैं, सुप्रसिद्ध हैं, संसार के संबंध में विशेषज्ञ हैं, वश में किए जाने योग्य लोगों के लिए अद्वितीय प्रशिक्षक हैं, दिव्य और मानव प्राणियों के गुरु हैं, जागृत हैं, धन्य हैं।"

"वह रोग और असुविधा से मुक्त है, उसका पाचन तंत्र अच्छा है - न ज्यादा ठंडा, न ज्यादा गर्म, मध्यम शक्ति वाला - परिश्रम के लिए उपयुक्त है।"

वह न तो कपटी है और न ही छलपूर्ण। वह अपने गुरु या पवित्र जीवन में अपने बुद्धिमान मित्रों के समक्ष अपने वास्तविक स्वरूप के अनुरूप ही स्वयं को प्रकट करता है।

वह अकुशल मानसिक गुणों को त्यागने और कुशल मानसिक गुणों को अपनाने के लिए अपनी दृढ़ता को बनाए रखता है। वह अपने प्रयास में दृढ़ और स्थिर है, और कुशल मानसिक गुणों के संबंध में अपने कर्तव्यों से पीछे नहीं हटता।

"वह विवेकशील है, उसमें लक्ष्य की प्राप्ति की ओर ले जाने वाली विवेकशक्ति है - महान, मर्मस्पर्शी, जो तनाव के सही अंत की ओर ले जाती है।"

"ये परिश्रम के पांच कारक हैं।"

"हे महाराज, चारों जातियों के लिए: यदि उन्हें परिश्रम के लिए ये पाँच कारक प्रदान किए जाएँ, तो यह उनके दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए होगा।"

"हे भगवान, यदि इन चारों जातियों को परिश्रम के लिए ये पाँच कारक प्रदान किए जाएं, तो क्या इस संबंध में उनमें कोई भेद या अंतर होगा?"

"हे महाराज, मैं आपसे कहता हूँ: उनमें अंतर उनके परिश्रम की विविधता में निहित होगा। मान लीजिए कि दो पालतू हाथी, घोड़े या बैल अच्छी तरह से प्रशिक्षित और वश में किए जा सकते हैं; और दो पालतू हाथी, घोड़े या बैल ऐसे हैं जो अनियंत्रित और अप्रशिक्षित हैं। आपका क्या विचार है: क्या अच्छी तरह से प्रशिक्षित और वश में किए जा सकने वाले दो पालतू हाथी, घोड़े या बैल पालतू प्राणियों के तौर-तरीके अपनाकर पालतू प्राणियों का दर्जा प्राप्त कर सकेंगे?"

"हाँ भगवान।"

"और क्या वे दो पालतू हाथी, पालतू घोड़े या पालतू बैल जो पालतू और अप्रशिक्षित थे, पालतू जानवरों की आदतें अपना लेंगे और पालतू जानवरों का दर्जा प्राप्त कर लेंगे?"

"नहीं, भगवान।"

"इसी प्रकार, हे महाराज, यह असंभव है कि जो व्यक्ति आत्मविश्वास से भरा हो, रोगमुक्त हो, कपटी या छल-कपट न करता हो, दृढ़ संकल्पित हो और विवेकशील हो, वह जो कुछ प्राप्त कर सकता है, वही लाभ एक ऐसे व्यक्ति को प्राप्त हो सके जो दृढ़ विश्वासहीन हो, बीमार हो, कपटी और छल-कपट करने वाला हो, आलसी हो और सुस्त हो।"

"हे भगवान, भगवान बुद्ध की बात तर्कसंगत लगती है। उनकी बात तार्किक लगती है। लेकिन इन चार जातियों के विषय में: यदि उन्हें परिश्रम के ये पाँच कारक दिए गए हों, और वे उचित परिश्रम करें, तो क्या इस संदर्भ में उनमें कोई भेद या अंतर होगा?"

"हे महाराज, मैं आपसे कहता हूँ कि एक की लौ और दूसरी की लौ में कोई अंतर नहीं होगा। मान लीजिए कि एक व्यक्ति सूखी साल की लकड़ी लेकर आग जलाता है और गर्मी उत्पन्न करता है। मान लीजिए कि दूसरा व्यक्ति सूखी सागौन की लकड़ी लेकर आग जलाता है और गर्मी उत्पन्न करता है। मान लीजिए कि तीसरा व्यक्ति सूखी आम की लकड़ी लेकर आग जलाता है और गर्मी उत्पन्न करता है। मान लीजिए कि चौथा व्यक्ति सूखी अंजीर की लकड़ी लेकर आग जलाता है और गर्मी उत्पन्न करता है। अब हे महाराज, आप क्या सोचते हैं: विभिन्न प्रकार की लकड़ियों से उत्पन्न इन लपटों में, क्या एक की चमक और दूसरी की चमक में, एक के रंग और दूसरे के रंग में, एक की दीप्ति और दूसरी की दीप्ति में कोई अंतर होगा?"

"नहीं, भगवान।"

"इसी प्रकार, हे महान राजा, दृढ़ता से प्रज्वलित और परिश्रम से उत्पन्न शक्ति के संबंध में, मैं कहता हूँ कि एक की रिहाई और दूसरे की रिहाई में कोई अंतर नहीं है।"

"हे भगवान, भगवान बुद्ध की बातें तर्कसंगत लगती हैं। भगवान बुद्ध की बातें तार्किक लगती हैं। लेकिन, हे भगवान, क्या देव भी होते हैं?"

"लेकिन आप यह क्यों पूछते हैं, 'लेकिन, भगवान, क्या देव हैं?'?"

"हे भगवान, चाहे देवता इस जीवन में वापस आएं या न आएं।"

"पीड़ित देवता इस जीवन में वापस आते हैं, जबकि अप्रभावित देवता इस जीवन में वापस नहीं आते हैं।"

जब यह कहा गया, तो सेनापति विदुदभा ने भगवान से कहा, "हे भगवान, क्या पीड़ित देवता, अपीड़ित देवताओं को उस स्थान से निकाल सकते हैं या निष्कासित कर सकते हैं?"

तब पूज्य आनंद के मन में यह विचार आया, "यह सेनापति विदुदभा राजा पसेनादि कोसल का पुत्र है, और मैं भगवान बुद्ध का पुत्र हूँ। अब पुत्र को पुत्र को सलाह देने का समय है।" इसलिए पूज्य आनंद ने सेनापति विदुदभा की ओर मुड़कर कहा, "तो फिर, सेनापति, मैं आपसे एक प्रतिप्रश्न पूछता हूँ। आप जैसा उचित समझें वैसा उत्तर दें। राजा पसेनादि कोसल द्वारा जीते गए भूभाग में, जहाँ वह संभगवान और स्वतंत्र राजसत्ता का प्रयोग करता है, क्या वह किसी पुजारी या ध्यानी को उस स्थान से बेदखल या निष्कासित कर सकता है, चाहे वह व्यक्ति पुण्यवान हो या न हो, या पवित्र जीवन का अनुसरण करता हो या न करता हो?"

"महोदय, राजा पसेनादि कोसला द्वारा जीते गए भूभाग के माध्यम से - जहाँ वह संभगवान और स्वतंत्र राजत्व का प्रयोग करता है - वह किसी भी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति को उस स्थान से बेदखल या निष्कासित करने में सक्षम है, चाहे वह व्यक्ति गुणी हो या न हो, या पवित्र जीवन का अनुसरण करता हो या न करता हो।"

"और आप क्या सोचते हैं, सेनापति: राजा पसेनादि कोसला द्वारा जीती न गई भूमि के उस विस्तार के माध्यम से - जहाँ वह संभगवान और स्वतंत्र राजत्व का प्रयोग नहीं करता है - क्या वह किसी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति को उस स्थान से बेदखल या निष्कासित करने में सक्षम है, चाहे वह व्यक्ति गुणी हो या न हो, या पवित्र जीवन का अनुसरण करता हो या न करता हो?"

"महोदय, राजा पसेनादि कोसला द्वारा जीती न गई भूमि के विस्तार के माध्यम से - जहां वह संभगवान और स्वतंत्र राजत्व का प्रयोग नहीं करता है - वह उस स्थान से किसी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति को बेदखल या निष्कासित करने में सक्षम नहीं है, चाहे वह व्यक्ति गुणी हो या न हो, या पवित्र जीवन का अनुसरण करता हो या न करता हो।"

"और जनरल, आपका क्या विचार है: क्या आपने तैंतीस देवों के बारे में सुना है?"

"जी हाँ, महोदय, मैंने तैंतीस देवताओं के बारे में सुना है, जैसा कि राजा पसेनादि कोसल ने भी सुना है।"

"और आप क्या सोचते हैं, सेनापति: क्या राजा पसेनादि कोसल उस स्थान से तैंतीस देवताओं को बेदखल या निष्कासित कर सकते हैं?"

"महाराज, राजा पसेनादि कोसल तैंतीस देवताओं को देख भी नहीं सकते। वे उन्हें उस स्थान से कैसे निकाल या निष्कासित कर सकते हैं?"

"इसी प्रकार, सामान्य रूप से पीड़ित देवता, जो इस जीवन में वापस आएंगे, उन निर्पीड़ित देवताओं को देख भी नहीं सकते जो इस जीवन में वापस नहीं आते। वे उन्हें उस स्थान से कैसे निकाल सकते हैं या निष्कासित कर सकते हैं?"

तब राजा पसेनादि कोसला ने भगवान से कहा, "हे भगवान, इस भिक्षु का नाम क्या है?"

"उनका नाम आनंद है, वे महान राजा हैं।"

"वह कितना आनंददायक है! कितना सच्चा आनंद! लेकिन, हे भगवान, क्या ब्रह्मा भी होते हैं?"

लेकिन आप यह क्यों पूछते हैं, 'लेकिन, भगवान, क्या ब्रह्मा भी होते हैं?'?

"हे भगवान, चाहे ब्रह्मा इस जीवन में वापस आएं या न आएं।"

"पीड़ित ब्रह्मा इस जीवन में वापस आते हैं, जबकि अपीड़ित ब्रह्मा इस जीवन में वापस नहीं आते हैं।"

तब एक व्यक्ति ने राजा पसेनादि कोसल से कहा, "महान महाराज, आकाश वंश के ब्राह्मण संजय आए हैं।"

तब राजा पसेनादि कोसल ने आकाश वंश के ब्राह्मण संजय से कहा, "यह विषय राजमहल में कौन लाया?"

"जनरल विदुदभ, महान राजा।"

सेनापति विदूदभा ने कहा, "आकाश वंश के ब्राह्मण संजय, महान राजा।"

तब एक व्यक्ति ने राजा पसेनादि कोसला से कहा, "हे महान राजा, अब जाने का समय हो गया है।"

तब राजा पसेनादि कोसल ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, हमने भगवान बुद्ध से सर्वज्ञता के बारे में पूछा था, उन्होंने हमें सर्वज्ञता का उत्तर दिया है, और यह हमें प्रसन्नता और संतुष्टि प्रदान करता है। हमने भगवान बुद्ध से चारों जातियों की शुद्धता के बारे में पूछा था, उन्होंने हमें चारों जातियों की शुद्धता का उत्तर दिया है, और यह हमें प्रसन्नता और संतुष्टि प्रदान करता है। हमने भगवान बुद्ध से उच्चतर देवताओं के बारे में पूछा था, उन्होंने हमें उच्चतर देवताओं का उत्तर दिया है, और यह हमें प्रसन्नता और संतुष्टि प्रदान करता है। हमने भगवान बुद्ध से उच्चतर ब्रह्माओं के बारे में पूछा था, उन्होंने हमें उच्चतर ब्रह्माओं का उत्तर दिया है, और यह हमें प्रसन्नता और संतुष्टि प्रदान करता है। हमने भगवान बुद्ध से जो कुछ भी पूछा है, उन्होंने उसका उत्तर दिया है, और यह हमें प्रसन्नता और संतुष्टि प्रदान करता है।" अब, भगवान, हमें जाना होगा। हमारे बहुत से कर्तव्य हैं, बहुत सी जिम्मेदारियाँ हैं।

"तो फिर, हे महान राजा, वही करो जो तुम्हें लगता है कि अब करने का समय आ गया है।"

तब राजा पसेनादि कोसला, भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न और उन्हें स्वीकार करते हुए, अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उन्हें अपने दाहिनी ओर रखते हुए चले गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 10.1 ब्रह्मयु सुत्त(91)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के साथ विदेह की यात्रा कर रहे थे। उस समय एक सौ बीस वर्ष के वृद्ध और दुर्बल ब्राह्मण ब्रह्मायु मिथिला में निवास कर रहे थे। उन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया था, वे पुरोहित के रूप में अनुष्ठान और रीति-रिवाजों को जानते थे, शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति तथा महान पुरुष के लक्षण जानते थे। ब्रह्मायु ने सुना कि शाक्य वंश से विदेह त्यागे हुए गौतम लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के साथ विदेह की यात्रा कर रहे हैं। उस गौतम की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई थी। वे पूर्ण, सच्चे ज्ञान से परिपूर्ण, ज्ञान और आचरण से संपन्न, सुप्रसिद्ध, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले मनुष्यों के अद्वितीय गुरु, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य हैं। वे देवताओं और मनुष्यों के इस संसार को, इसके मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों और ब्राह्मणों को, स्वयं द्वारा ज्ञात और अनुभव किए गए उपदेश की घोषणा करते हैं। यह आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है और यह संपूर्ण और पवित्र जीवन का वर्णन करता है। ऐसे परिपूर्ण व्यक्तियों को देखना सुखद है।

उस समय ब्राह्मण ब्रह्मायु का एक शिष्य था, उत्तरा नामक एक युवक, जिसने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था, वह पुरोहित के रूप में रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों को जानता था, शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति का ज्ञाता था और एक महान पुरुष के लक्षण जानता था। ब्राह्मण ब्रह्मायु ने अपने शिष्य से कहा, “प्रिय उत्तरा, शाक्यों पुत्र, संन्यासी गौतम के पास जाओ, जो पूर्ण, प्रबुद्ध और धन्य माने जाते हैं, और पता लगाओ कि क्या वास्तव में ये गुण उनमें हैं या नहीं। मेरे लिए अच्छे गौतम की परीक्षा लो।” “महोदय, मुझे कैसे पता चलेगा कि अच्छे गौतम इन गुणों से संपन्न हैं या नहीं?” “उत्तरा, शास्त्रों में एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण बताए गए हैं। इन लक्षणों से संपन्न व्यक्ति के लिए दो ही मार्ग होते हैं, कोई दूसरा नहीं। यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, तो वह विश्व सम्राट बन जाता है, एक स्थिर, धर्मात्मा राजा, जो चारों दिशाओं में शक्ति रखता है और सात रत्नों से संपन्न होता है।” वे चक्र, हाथी, अश्व, रत्न, स्त्री, गृहस्थ और सलाहकार के रत्न हैं। उनके एक हजार से अधिक पुत्र हैं, जो वीर व्यक्तित्व वाले, चतुर और विदेशी सेनाओं को पराजित करने में सक्षम हैं। वे बिना लाठी या हथियार के, समुद्र से घिरे देश पर विधिपूर्वक शासन करते हैं। यदि वे गृहस्थी त्यागकर संन्यासी बन जाएं, तो वे पूर्ण और सर्वज्ञानी हो जाएंगे और अंधकार का पर्दा हटा देंगे। मैंने तुम्हें यह ज्ञान दिया है और तुम इसे जानते हो।

उत्तरा नाम का युवक सहमत होकर अपने आसन से उठा, ब्राह्मण ब्रह्मायु की पूजा की और परिक्रमा की, और भगवान बुद्ध से मिलने के लिए विदेह की ओर चल पड़ा। धीरे-धीरे वह भगवान बुद्ध के पास पहुँचा, उनसे अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गया। उत्तरा नाम के युवक ने भगवान बुद्ध के शरीर पर स्थित 33 चिह्नों का अवलोकन किया। दो चिह्नों को छोड़कर अधिकांश चिह्नों को देखकर वह संतुष्ट नहीं हुआ और उसे संदेह हुआ कि क्या गुप्तांग ढका हुआ है और क्या जीभ पर्याप्त बड़ी है। तभी भगवान बुद्ध को यह विचार आया, "उत्तरा नाम का यह युवक मेरे शरीर पर स्थित अधिकांश चिह्नों को देख रहा है, सिवाय दो चिह्नों के। वह संतुष्ट नहीं है और उसे संदेह है कि क्या गुप्तांग ढका हुआ है और क्या जीभ पर्याप्त बड़ी है।" तब भगवान बुद्ध ने अपनी मानसिक शक्ति का प्रयोग किया, जिससे उत्तरा गुप्तांग को देख सका। भगवान बुद्ध ने अपनी जीभ बाहर निकाली, कान के लोबों और नासिका छिद्रों को छुआ और नाक से पूरे माथे को ढक लिया।

तब युवक उत्तरा के मन में यह विचार आया कि संन्यासी गौतम में 33 महान पुरुषों के गुण हैं। यदि मैं संन्यासी गौतम का अनुसरण करूँ, तो मुझे उनकी मुद्राएँ दिखाई देंगी। वह सात माह तक भगवान के पीछे-पीछे ऐसे चला जैसे कोई परछाई किसी का पीछा करती है, बिना उनका साथ छोड़े। सात माह बीतने पर वह मिथिला लौटने के लिए यात्रा पर निकल पड़ा, ताकि ब्राह्मण ब्रह्मायु से मिल सके। ब्राह्मण ब्रह्मायु के पास पहुँचकर उत्तरा ने उन्हें प्रणाम किया और उनके पास बैठ गया। ब्राह्मण ब्रह्मायु ने कहा, “प्रिय उत्तरा, क्या संन्यासी गौतम में वे गुण हैं जिनका ख्यातिगान होता है?”

हे भगवान, एकांतवासी गौतम गौतम में एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। उनके पैर मजबूती से टिके हुए हैं। उनके तलवों में हजार गुना चक्र और नाभि जैसी संरचनाएं हैं, जो हर तरह से पूर्ण हैं। यह एक महान पुरुष का लक्षण है। उनकी पलकें लंबी हैं, उंगलियां, हाथ और पैर लंबे और स्पर्श करने में कोमल हैं। हथेलियों और पैरों पर बुने हुए जाल जैसी रेखाएं हैं। उनके टखने ऊंचे हैं और पैर हिरण जैसे हैं। खड़े होने पर वे झुकते नहीं हैं और उंगलियों से घुटनों को छू सकते हैं। उनका गुप्तांग ढका हुआ है। उनकी त्वचा सुनहरे रंग की है। उनकी कोमल त्वचा पर धूल नहीं जमती। उनके शरीर के प्रत्येक रोमछिद्र से एक बाल निकलता है और वे गहरे नीले बाल दाहिनी ओर मुड़े हुए ऊपर की ओर खड़े होते हैं। उनका शरीर सीधा है, जिसका अगला भाग शेर जैसा है। उनके कंधे ऊंचे हैं

और उनका शरीर उनकी ऊंचाई के अनुरूप चौड़ा है। उनके शरीर के चारों ओर एक प्रभामंडल है। अच्छे गौतम सौंदर्य के मामले में सर्वोच्च को जानते हैं। उनके जबड़े शेर जैसे हैं, जिनमें चालीस सुंदर सफेद दांत हैं। उनकी जीभ बड़ी है और आवाज कोयल जैसी सुरीली है। उनकी आंखें गहरे नीले रंग की हैं और मुंह सुंदर है। भौंहों के बीच दाहिनी ओर मुड़ा हुआ बालों का गुच्छा है। शुभ गौतम का सिर पगड़ी की तरह उठा हुआ है। ये एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण हैं। शुभ गौतम हमेशा दाहिने पैर से चलना शुरू करते हैं, पैर को न तो बहुत दूर रखते हैं और न ही बहुत पास। वे न तो बहुत तेज चलते हैं और न ही बहुत धीमे, चलते समय उनके घुटने आपस में नहीं टकराते, न ही टखने और जांघें। चलते समय उनकी जांघें मरोड़ती, मुड़ती या उठती नहीं हैं, केवल शरीर का निचला हिस्सा बिना किसी शारीरिक प्रयास के चलता है।

देखते समय वे अपने पूरे शरीर को घुमाते हैं। वे ऊपर या नीचे नहीं देखते और जिज्ञासु आँखों से नहीं चलते। सामना करते समय वे थोड़ी दूरी तक आगे देखते हैं, फिर भी अपने परिवेश से अवगत रहते हैं। घर में प्रवेश करते समय वे शरीर को उठाते, झुकाते या मरोड़ते नहीं हैं। वे दूर से बैठने के लिए मुड़ते नहीं हैं, न ही बहुत पास आते हैं, न ही बैठने से पहले आसन को पकड़ते हैं या आसन पर गिर पड़ते हैं। घर के अंदर बैठे हुए वे अपने हाथों या पैरों से नहीं खेलते, न ही एक पैर दूसरे के ऊपर उठाते हैं या एक पिंडली को दूसरी के ऊपर रखते हैं। वे अपने जबड़े को हाथों से सहारा नहीं देते। घर के अंदर वे कांपते या थरथराते नहीं हैं, न ही बेचैनी से बैठते हैं, बल्कि शांत और सहजता से बैठते हैं। अच्छे गौतम कटोरे में पानी ग्रहण करते समय उसे झुकाते, उठाते या हिलाते नहीं हैं, बल्कि उचित मात्रा में पानी ग्रहण करते हैं। कटोरा धोते समय वे कोई आवाज़ नहीं करते, न ही उसे घुमाते हैं, न ही उसे धोने के लिए ज़मीन पर रखते हैं। कटोरे के पानी से वे अपनी उंगलियाँ धोते हैं और उंगलियों से ही कटोरा धोते हैं और पानी को न तो बहुत दूर और न ही बहुत पास फेंकते हैं, उसे चारों ओर बिखेरते नहीं हैं। चावल ग्रहण करते समय, वे कटोरे को घुमाए या मरोड़े बिना, सही मात्रा में चावल ग्रहण करते हैं। वे चावल की मात्रा के अनुसार ही सूप और करी ग्रहण करते हैं, लेकिन इतना नहीं कि चावल उनके लिए मलहम बन जाए। अच्छे गौतम भोजन को दो-तीन बार चबाते हैं और साबुत कण नहीं निगलते, अगला निवाला लेते समय कोई कण मुंह में नहीं छोड़ते। अच्छे गौतम स्वाद के प्रति सचेत होकर भोजन ग्रहण करते हैं, फिर भी स्वाद के प्रति लालची नहीं होते। आठ बातों का ध्यान रखते हुए, अच्छे गौतम खेल, नशा या सजावट के लिए भोजन ग्रहण नहीं करते। वे शरीर को पोषण देने के लिए भोजन ग्रहण करते हैं, स्वाद के प्रति लालची नहीं होते, यह सोचते हुए कि मुझे पिछली अप्रिय भावनाओं को समाप्त करना चाहिए और नई भावनाओं को उत्पन्न नहीं करना चाहिए, बल्कि एक सुखद स्थिति के लिए, दोषरहित, सही मात्रा में भोजन ग्रहण करते हैं। भोजन ग्रहण करने के बाद, कटोरे में पानी ग्रहण करते समय वे उसे झुकाते, उठाते या हिलाते नहीं, बल्कि सही मात्रा में पानी ग्रहण करते हैं। कटोरे को धोते समय वे कोई आवाज नहीं करते, उसे घुमाते नहीं और न ही उसे जमीन पर रखकर धोते हैं। कटोरे में रखे पानी से वे अपनी उंगलियाँ धोते हैं और उन्हीं से कटोरा धोकर पानी को न ज़्यादा दूर, न ज़्यादा पास, इस तरह फेंकते हैं कि वह इधर-उधर न फैले। भोजन करने के बाद वे कटोरे को ज़मीन पर रख देते हैं, न ज़्यादा दूर, न ज़्यादा पास, यह सोचते हुए कि कटोरे से कोई अशांति न हो, और उसे ज़्यादा देर तक अपने पास नहीं रखते। भोजन समाप्त होने के बाद वे कुछ देर चुपचाप बैठते हैं, और धन्यवाद देना नहीं भूलते। जब वे धन्यवाद देते हैं, तो उनका उद्देश्य भोजन को नीचा दिखाना या किसी और भोजन की इच्छा करना नहीं होता। यह एक सर्वांगीण शिक्षा होती है, जिसमें सलाह, प्रोत्साहन और हृदयों को हल्का करना शामिल होता है। धन्यवाद देने के बाद वे उठते हैं और चले जाते हैं, न ज़्यादा तेज़, न ज़्यादा धीमे, और न ही इस तरह जैसे उन्हें राहत मिली हो। वे वस्त्र न ज़्यादा छोटा, न ज़्यादा लंबा, न ज़्यादा तंग, न ज़्यादा ढीला पहनते हैं। वे उसे इस तरह पहनते हैं कि शरीर को हवा का स्पर्श न लगे और धूल-मिट्टी उनके शरीर पर न जमे।

वह मठ में जाकर तैयार आसन पर बैठता है और अपने पैर धोता है, उन्हें सजाने के लिए नहीं। धुले हुए पैरों के साथ, वह पालथी मारकर बैठता है, शरीर को सीधा रखते हुए और ध्यान को अपने सामने केंद्रित करते हुए। वह सोचता है कि वह खुद को, किसी और को या दुनिया में किसी को भी चोट न पहुँचाए।

वे समस्त विश्व के कल्याण के बारे में सोचते हैं। मठ में वे सभा में उपस्थित लोगों को उपदेश देते हैं, न उनकी प्रशंसा करते हैं और न ही उनकी निंदा करते हैं। वे सलाह देते हैं, प्रेरित करते हैं और सभा में उपस्थित सभी लोगों के हृदय को हल्का करते हैं। गौतम जी के मुख से निकलने वाली ध्वनियों में आठ गुण होते हैं: वे स्पष्ट, ज्ञानवर्धक, मनमोहक, कानों को मधुर लगने वाली, सुगठित, बिखरी हुई नहीं, गहरी और गूंजदार होती हैं। गौतम जी की वाणी सभा तक ही पहुँचती है और उससे आगे नहीं बढ़ती।

उस सभा ने सलाह दी, प्रेरित किया और दिलों को हल्का किया, उठो और चले जाओ, वापस आने के विचार से, न कि त्यागने के इरादे से।

मैंने अच्छे गौतम को आते-जाते, खड़े होते, घर के अंदर चुपचाप बैठे, वहाँ भोजन करते, भोजन के बाद चुपचाप बैठे, भोजन के बाद धन्यवाद देते, मठ जाते, मठ में चुपचाप बैठे और मठ में सभाओं को शिक्षा देते देखा है। अच्छे गौतम ऐसे भी हैं और ऐसे भी, और इससे भी कहीं अधिक।

यह सुनकर ब्राह्मण ब्रह्मायु अपने आसन से उठे, अपने कंधे पर शॉल को ठीक किया और भगवान बुद्ध की ओर मुड़कर, हाथ जोड़कर तीन बार गंभीर स्वर में कहा, 'मैं उस परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान बुद्ध की पूजा करता हूँ। हम किसी दिन उस अच्छे गौतम बुद्ध से मिलेंगे और उनसे बातचीत करेंगे।'

भगवान बुद्ध ने विदेह की यात्रा करते हुए, विभिन्न चरणों में मिथिला में आकर मखादेव के आम के बाग में निवास किया।

मिथिला के लोगों ने सुना कि शाक्यों के पुत्र, उत्तम संन्यासी गौतम, विदेह यात्रा करते हुए अंततः लगभग पाँच सौ भिक्षुओं के समुदाय के साथ मिथिला पहुँचे हैं और मखादेव आम के बाग में निवास कर रहे हैं। उस उत्तम गौतम की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई थी। ...अरे, ऐसे सिद्ध पुरुषों को देखना सुखद है। तब मिथिला के ब्राह्मण गृहस्थ भगवान बुद्ध के पास पहुँचे। कुछ ने प्रणाम किया, कुछ ने मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया, कुछ ने भगवान बुद्ध की ओर हाथ जोड़े, कुछ ने अपना नाम और कुल बताया, और कुछ अन्य चुपचाप एक तरफ बैठ गए।

ब्राह्मण ब्रह्मायु ने सुना कि शाक्यों के पुत्र, श्रेष्ठ संन्यासी गौतम मिथिला आए हैं। तब वे अनेक युवकों के साथ मखादेव के आम के बाग की ओर चल पड़े। जब ब्रह्मायु मखादेव के आम के बाग के निकट पहुँचे, तो उनके मन में यह विचार आया कि बिना पूर्व सूचना दिए संन्यासी गौतम के पास जाना मेरे लिए उचित नहीं होगा। उन्होंने एक युवक को बुलाया और कहा, "हे स्वाभिमान, आओ, संन्यासी गौतम के पास जाओ और मेरी ओर से पूछो कि क्या वे कम रोगों से मुक्त हैं, उन्हें कोई कष्ट नहीं है और उनका जीवन सुखमय है। हे स्वाभिमान, उनसे कहना कि एक सौ बीस वर्ष के वृद्ध और क्षीण ब्राह्मण ब्रह्मायु मिथिला में निवास कर रहे हैं। उन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया है, वे पुरोहित के रूप में रीति-रिवाजों और अनुष्ठानों को जानते हैं, शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति को जानते हैं और एक महान पुरुष के लक्षण जानते हैं।" मिथिला में रहने वाले ब्राह्मणों में, ब्राह्मण ब्रह्मायु सबसे धनी, वेदों में सबसे विद्वान, वृद्धों में सबसे वृद्ध और सबसे प्रसिद्ध हैं। वे अच्छे गौतम के दर्शन करना चाहते हैं।' युवक सहमत होकर भगवान के पास गया, मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ खड़े होकर बोला, 'हे गौतम, एक सौ बीस वर्ष के वृद्ध ब्रह्मायु मिथिला में रहते हैं। उन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया है, वे पुरोहित के रूप में अनुष्ठान और रीति-रिवाजों को जानते हैं, शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति तथा महान पुरुष के लक्षण जानते हैं। मिथिला में रहने वाले ब्राह्मणों में, ब्राह्मण ब्रह्मायु सबसे धनी, वेदों में सबसे विद्वान, वृद्धों में सबसे वृद्ध और सबसे प्रसिद्ध हैं। वे अच्छे गौतम के दर्शन करना चाहते हैं।'

'युवक, यदि उसे लगता है कि यही उचित समय है तो ऐसा करो।'

वह युवक ब्राह्मण ब्रह्मायु के पास गया और बोला, 'अच्छे संन्यासी गौतम ने सहमति दे दी है, अब आप जो उचित हो वही करें।'

तब ब्राह्मण ब्रह्मायु भगवान बुद्ध के पास पहुँचे। जब वे दूर से आ रहे थे, तो उनकी प्रसिद्धि के अनुरूप, सभा में उपस्थित लोगों ने उनके लिए जगह बना दी। ब्राह्मण ब्रह्मायु ने उनसे कहा, 'बेकार, जहाँ बैठे हो वहीं बैठो, मैं भगवान बुद्ध के पास जा रहा हूँ।' वे भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध के शरीर पर स्थित 33 महान पुरुष के लक्षणों का अवलोकन किया। उनमें से दो को छोड़कर अधिकांश को देखकर वे संतुष्ट नहीं हुए और उन्हें संदेह हुआ कि क्या जननांग ढके हुए हैं और जीभ पर्याप्त बड़ी है। तब ब्राह्मण ने भगवान बुद्ध को श्लोकों में संबोधित किया।

मैंने एक महान व्यक्ति के बत्तीस चिह्नों के बारे में सुना है।

महोदय, मुझे आपके शरीर पर उनमें से दो दिखाई नहीं देते, महान पुरुष का जननांग, महिलाओं के साथ संबंध, जीभ का आकार, जीभ बाहर निकालो और संदेह दूर करो, इस समय और इस समय तथा परलोक के कल्याण के लिए।

अनुमति मिल गई है, हमारी मनोकामनाएं पूरी हों।

तब भगवान बुद्ध के मन में यह विचार आया कि ब्राह्मण ब्रह्मायु, मेरे शरीर पर एक महान पुरुष के अधिकांश लक्षण तो हैं, लेकिन उनमें से दो नहीं। वे संतुष्ट नहीं हुए और उन्हें संदेह हुआ कि क्या जननांग ढका हुआ है और जीभ पर्याप्त बड़ी है। तब भगवान बुद्ध ने अपनी मानसिक शक्ति का प्रयोग किया, जिससे ब्राह्मण जननांग को देख सका। भगवान बुद्ध ने अपनी जीभ बाहर निकाली, कान के लोबों और नासिका छिद्रों को छुआ और पूरे माथे को नाक से ढक लिया।

तब भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण ब्रह्माया को श्लोकों से संबोधित किया:

महान व्यक्ति के बत्तीस चिह्न, जिनके बारे में आपने सुना है,

मेरे शरीर में सब कुछ विद्यमान है, ब्राह्मण, इसमें कोई संदेह नहीं है। जो मुझे जानना चाहिए वह ज्ञात है, जो विकसित होना चाहिए वह विकसित हो चुका है। जो दूर होना चाहिए वह दूर हो चुका है, इसलिए मैं प्रबुद्ध हूँ। इस समय और इस समय तथा परलोक में भी,

मैं आपको जो चाहें पूछने की अनुमति देता हूँ।

तब ब्राह्मण ब्रह्मायु के मन में एक विचार आया। भगवान ने मुझे प्रश्न पूछने की अनुमति दी है। मुझे संन्यासी गौतम से क्या पूछना चाहिए, इस समय के कल्याण के बारे में या परलोक के कल्याण के बारे में? ब्राह्मण ब्रह्मायु के मन में यह विचार आया। मैं इस समय के कल्याण में तो निपुण हूँ। यहाँ तक कि अन्य लोग भी मुझसे इस समय के कल्याण के बारे में ही प्रश्न करते हैं। मुझे संन्यासी गौतम से परलोक के कल्याण के बारे में ही प्रश्न करना चाहिए। इस प्रकार उन्होंने भगवान से श्लोकों में प्रश्न किया।

हे भगवान, कोई ब्राह्मण कैसे बनता है? वह ज्ञानी कैसे बनता है?

उन्हें तीनों वेदों का ज्ञान कैसे है? और स्वास्थ्य किसे कहते हैं? कोई व्यक्ति योग्य कैसे बनता है? और वह परिपूर्ण कैसे होता है? कोई व्यक्ति ऋषि कैसे बनता है? और ज्ञान क्या है? तब भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण ब्रह्मायु को श्लोकों में इन प्रश्नों का उत्तर दिया। पूर्व जन्मों को याद करते हुए, और स्वर्ग और नरक के जन्मों को देखते हुए, जन्म के नाश होने पर ऋषि ज्ञान के स्वामी बन जाते हैं। सभी लोभों से मुक्त होने पर मन की पवित्रता का ज्ञान होता है। जन्म और मृत्यु का त्याग होने पर पवित्र जीवन पूर्ण हो जाता है।

जब सब कुछ समाप्त हो जाता है, तो ऐसे लोगों को प्रबुद्ध कहा जाता है।

यह सुनकर ब्राह्मण ब्रह्मायु अपने आसन से उठे, शॉल को एक कंधे पर रखा, सिर भगवान बुद्ध के चरणों में रखकर प्रणाम किया, उनके चरणों को चूमा और हाथों से सहलाते हुए कहा, 'हे गौतम, मैं ब्राह्मण ब्रह्मायु हूँ।' तब वहाँ उपस्थित लोग आश्चर्यचकित होकर बोले, 'इस संन्यासी की शक्ति अद्भुत है। इतने प्रसिद्ध और विख्यात ब्राह्मण ब्रह्मायु को इस प्रकार श्रद्धा और विनम्रता दिखानी चाहिए।' तब भगवान बुद्ध ने कहा, 'अव्यवहारिक, ब्राह्मण उठो और अपने आसन पर बैठो, जैसे तुम्हारा मन प्रसन्न है, वैसे ही मेरा भी मन प्रसन्न है।' तब ब्राह्मण उठकर अपने आसन पर बैठ गए। तब भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण ब्रह्मायु को क्रमिक उपदेश दिए।

जैसे दान देना, सद्गुणी बनना, स्वर्ग, कामुकता के खतरे, उनका दूषित स्वभाव और त्याग के फल। जब भगवान बुद्ध को पता चला कि ब्राह्मण ब्रह्मायु का मन शुद्ध, परिष्कृत, अवरोधों से मुक्त, उदात्त और प्रसन्न है, तो उन्होंने प्रबुद्धों को दी जाने वाली शिक्षा दी, जैसे अप्रियता, उसका उत्पन्न होना, उसका निवारण और निवारण का मार्ग। जैसे शुद्ध वस्त्र रंग को समान रूप से सोख लेता है, उसी आसन पर विराजमान ब्राह्मण ब्रह्मायु को शिक्षा की शुद्ध और निर्मल दृष्टि प्राप्त हुई। जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह सब समाप्त हो जाता है। तब ब्राह्मण ब्रह्मायु ने उसी क्षण शिक्षा को प्राप्त किया, जाना और आत्मसात किया। उनके संदेह दूर हो गए।

उसे पता चल गया था कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, वह आत्मविश्वास से भर गया और शिक्षक के शासन में उसे अब किसी शिक्षक की आवश्यकता नहीं रही।

उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम, अब मैं समझ गया हूँ। यह ऐसा है जैसे कोई उलटी हुई चीज़ फिर से अपनी जगह पर रख दी गई हो। जैसे कोई ढकी हुई चीज़ खुल गई हो। जैसे किसी भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखाया गया हो। जैसे दृष्टि रखने वालों के लिए प्रकाश प्रज्वलित किया गया हो। हे गौतम ने अनेक प्रकार से शिक्षा दी है। अब मैं हे गौतम की शरण में, उनकी शिक्षाओं में और भिक्षु समुदाय में आता हूँ। हे गौतम कल भिक्षु समुदाय के साथ भोजन ग्रहण करें।"

भगवान बुद्ध ने मौनपूर्वक निमंत्रण स्वीकार कर लिया। ब्राह्मण ब्रह्मायु ने जब जाना कि भगवान बुद्ध ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया है, तो वे अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध की पूजा की और परिक्रमा की तथा चले गए। फिर उस रात के अंत में ब्राह्मण ब्रह्मायु ने अपने घर पर पौष्टिक भोजन और पेय तैयार करवाए और भगवान बुद्ध को सूचित किया, "हे गौतम, भोजन तैयार है।"

भगवान बुद्ध ने सुबह वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर भिक्षुओं के समुदाय के साथ ब्राह्मण ब्रह्मयु के घर गए और तैयार आसनों पर बैठ गए। ब्राह्मण ब्रह्मयु ने अपने हाथों से सात दिनों तक भगवान बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं के समुदाय को पौष्टिक भोजन और पेय पदार्थ परोसे और उनकी तृप्ति सुनिश्चित की। सात दिनों की समाप्ति पर भगवान बुद्ध विदेह की यात्रा पर निकल पड़े।

भगवान बुद्ध के चले जाने के तुरंत बाद ब्राह्मण ब्रह्मायु का देहांत हो गया। कई भिक्षु भगवान बुद्ध के पास आए, उनकी पूजा की, एक तरफ बैठ गए और बोले, "हे पूज्यवर, ब्राह्मण ब्रह्मायु का देहांत हो गया, मृत्यु के बाद उनकी गतिविधियाँ कहाँ हैं?"

"भिक्षुओं, ब्राह्मण ब्रह्मायु बुद्धिमान हैं, वे शिक्षा के अनुसार स्थिर खड़े रहते हैं, उन्हें कोई कष्ट नहीं होता, वे शिक्षा को समझते हैं। उन्होंने इंद्रिय जगत से बंधे पाँच निम्न बंधनों को तोड़ दिया और स्वतः ही उस जगत से उठ खड़े हुए, वे उससे बाहर नहीं निकलेंगे।"

भगवान बुद्ध ने वे शब्द कहे और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 10.2सेला सुत्त(92)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध लगभग एक हजार दो सौ पचास भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ अंगुत्तरापा देश का भ्रमण कर रहे थे और आपाना नामक एक छोटे से गाँव में प्रवेश किया। जटाधारी तपस्वी केनिया ने सुना, "शाक्यों पुत्र, उत्तम संन्यासी गौतम, अपने भिक्षुओं के विशाल समुदाय के साथ अंगुत्तरापा देश का भ्रमण कर रहे हैं। लगभग एक हजार दो सौ पचास भिक्षु आपना नामक गाँव में आए हैं। उनकी प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली है। वे धन्य हैं, सर्वज्ञ हैं, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण हैं, सुप्रसिद्ध हैं, संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वालों को वश में करने में अद्वितीय हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध और धन्य हैं। वे स्वयं द्वारा ज्ञात और अनुभव किए गए उस उपदेश का प्रचार करते हैं। वह उपदेश आरंभ, मध्य और अंत में उत्तम है। अक्षरशः अर्थपूर्ण है और संपूर्ण एवं पवित्र जीवन का वर्णन करता है। ऐसे योग्यजनों को देखना सौभाग्य की बात है।"

तब जटाधारी तपस्वी केनिया भगवान बुद्ध के पास आए, उनसे अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान बुद्ध ने जटाधारी तपस्वी को उपदेश दिया, सलाह दी, प्रेरित किया और उनके हृदय को हल्का किया। भगवान बुद्ध द्वारा उपदेशित, सलाहित, प्रेरित और प्रसन्न किए जाने पर जटाधारी तपस्वी केनिया ने कहा, "भगवान बुद्ध कल का भोजन मेरे और भिक्षु समुदाय के साथ स्वीकार करें।" यह सुनकर भगवान बुद्ध ने कहा, "हे केनिया, भिक्षु समुदाय बहुत बड़ा है, लगभग एक हजार दो सौ पचास, क्या ब्राह्मण इससे प्रसन्न हैं?" दूसरी बार केनिया ने कहा, "हे गौतम, एक हजार दो सौ पचास भिक्षु होने पर भी ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं। भगवान बुद्ध कल का भोजन मेरे और भिक्षु समुदाय के साथ स्वीकार करें।" दूसरी बार भगवान बुद्ध ने कहा, "हे! केनिया, यहाँ लगभग एक हज़ार दो सौ पचास भिक्षु हैं, क्या ब्राह्मण इससे प्रसन्न हैं? तीसरी बार केनिया ने कहा, "हे गौतम, भिक्षुओं की संख्या चाहे जो भी हो, चाहे एक हज़ार दो सौ पचास भिक्षु ही क्यों न हों, यदि ब्राह्मण प्रसन्न हों, तो भगवान बुद्ध कल का भोजन मेरे और भिक्षु समुदाय के साथ ग्रहण करें।" भगवान बुद्ध ने मौन स्वीकार किया।

तब जटाधारी तपस्वी केनिया को जब पता चला कि भगवान बुद्ध ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली है, तो वे अपने आसन से उठे, अपने आश्रम गए और अपने मित्रों और सगे संबंधियों से कहा, "हे सज्जनों, सुनिए, मैंने कल के भोज में भिक्षु गौतम को भिक्षुओं के समुदाय के साथ आमंत्रित किया है, जो भी काम करना हो, मेरे लिए कर दीजिए।" उन्होंने जटाधारी तपस्वी केनिया की प्रार्थना स्वीकार कर ली और उनमें से कुछ ने भट्टियाँ खोदीं, कुछ ने लकड़ियाँ काटीं। कुछ ने बर्तन धोए, कुछ ने पानी के पात्र रखे और कुछ ने आसन लगाए।

जटाधारी तपस्वी केनिया ने स्वयं गोलाकार हॉल की व्यवस्था की थी।

उस समय ब्राह्मण सेला आपान अवस्था में रहते थे, वे तीनों वेदों में पारंगत थे, अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों में निपुण थे, पुरोहित के रूप में शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति में पारंगत थे, पंचांग इतिहास और व्याकरण में पारंगत थे, और महान पुरुषों के लक्षणों को पहचानने में पारंगत थे। उन्होंने ये सब तीन सौ युवकों को मौखिक रूप से सिखाया।

उस समय जटाधारी तपस्वी केनिया ब्राह्मण सेला के मित्र थे। ब्राह्मण सेला अपने साथ तीन सौ युवकों को लेकर व्यायाम के लिए टहलते-घूमते हुए जटाधारी तपस्वी के आश्रम की ओर मुड़े। उन्होंने केनिया के आश्रम में जटाधारी तपस्वियों को काम करते देखा; कुछ भट्टियाँ खोद रहे थे, कुछ आग जलाने के लिए लकड़ी काट रहे थे, कुछ बर्तन धो रहे थे, कुछ पानी के बर्तन रख रहे थे, कुछ आसन लगा रहे थे और स्वयं केनिया गोलाकार हॉल को सजा रहे थे। उन्होंने केनिया से कहा... "केनिया, क्या यहाँ कोई स्त्री लाई जाएगी, या किसी को दान में दिया जाएगा, या कोई बड़ा यज्ञ होगा, या मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार को कल के भोज में अपनी सेना सहित आमंत्रित किया गया है?" "सेला, मुझे नहीं लगता कि कोई स्त्री लाई जाएगी, न ही दान में दी जाएगी, मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार को कल के भोज में अपनी सेना सहित आमंत्रित किया गया है। फिर भी मेरे लिए एक बड़ा यज्ञ है। शाक्य वंश से विमुख होकर निकले संन्यासी गौतम भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ अंगुत्तरापा की यात्रा पर आए हैं। उनकी प्रसिद्धि फैली हुई है, वे धन्य, योग्य, सर्वज्ञ, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, भली-भांति परिचित, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वालों को वश में करने में अद्वितीय, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य हैं। मैंने उन्हें कल के भोज में भिक्षुओं के समुदाय सहित आमंत्रित किया है।"

“क्या हे केन्या, प्रबुद्ध कहते हैं?” “हे सेला, मैं प्रबुद्ध कहता हूँ।” “क्या हे केन्या, प्रबुद्ध कहते हैं?” “हे सेला, मैं प्रबुद्ध कहता हूँ।” तब ब्राह्मण सेला के मन में विचार आया। “प्रबुद्ध शब्द भी संसार में दुर्लभ है। पवित्र ग्रंथों में एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण बताए गए हैं, जिनसे संपन्न होने पर महान पुरुष के लिए केवल दो ही मार्ग हैं, कोई दूसरा नहीं। यदि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है तो वह सर्वव्यापी सम्राट, एक धर्मात्मा राजा बन जाता है जो सात रत्नों से सुसज्जित चारों दिशाओं पर शासन करेगा। ये रत्न हैं: चक्र, हाथी, अश्व, रत्न, स्त्री, गृहस्थ और सलाहकार। उसके एक हजार से अधिक पुत्र होंगे, जो चतुर और वीर होंगे और विदेशी सेनाओं को परास्त करेंगे। वे समुद्र से घिरे देश पर बिना शस्त्रों और दंडों के धर्मपूर्वक शासन करेंगे। यदि वह गृहस्थ जीवन त्यागकर प्रस्थान करता है, योग्य बनता है, सर्वज्ञ होता है और संसार से पर्दा हटा देता है।”

“हे केनिया, सर्वज्ञानी और योग्य ज्ञानी अब कहाँ निवास करते हैं?” जटाधारी तपस्वी केनिया ने अपना दाहिना हाथ फैलाकर कहा, “वहाँ! घने हरे जंगल में।”

तब ब्राह्मण सेला तीन सौ युवकों के साथ भगवान बुद्ध के पास पहुँचे और जाते हुए उन्होंने युवकों से कहा, “हे सज्जनों, धीरे-धीरे एक-एक कदम बढ़ाते हुए आइए। भगवान बुद्ध शोर-शराबे से दूर रहते हैं और सिंहों की तरह अकेले निवास करते हैं। जब मैं गौतम साधु से बात कर रहा हूँ, तो आप आपस में बातचीत न करें और हमारी बातचीत समाप्त होने पर ही प्रवेश करें।”

तब ब्राह्मण सेला भगवान बुद्ध के पास आए, उनसे सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया, एक तरफ बैठ गए और एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षणों का अवलोकन किया। उन्होंने एक महान पुरुष के लगभग सभी लक्षण देखे, सिवाय दो के। उन्हें संदेह था कि क्या जननांग ढका हुआ है और क्या जीभ चेहरे को ढकने के लिए पर्याप्त बड़ी है, और वे असंतुष्ट थे। तब भगवान बुद्ध को एक विचार आया। ब्राह्मण सेला ने एक महान पुरुष के लगभग सभी लक्षण देखे हैं, सिवाय दो के, उन्हें संदेह है कि क्या जननांग ढका हुआ है और क्या जीभ चेहरे को ढकने के लिए पर्याप्त बड़ी है।

चेहरा। फिर भगवान बुद्ध ने एक मानसिक अभ्यास किया जिससे ब्राह्मण सेला भगवान बुद्ध के गुप्तांग और विशाल जीभ को देख सके। भगवान बुद्ध ने अपनी जीभ बाहर निकाली और उससे दोनों कान के निचले हिस्से, नाक के छिद्र और पूरे माथे को छुआ और उससे अपना पूरा चेहरा ढक लिया।

तब ब्राह्मण सला के मन में यह विचार आया, "सचमुच, संन्यासी गौतम तो एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षणों से परिपूर्ण हैं, फिर भी हम नहीं जानते कि वे प्रबुद्ध हैं या नहीं। मैंने विद्वान वृद्ध ब्राह्मणों से सुना है कि जब महान पुरुषों की प्रशंसा की जाती है, तो वे अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट करते हैं, कि वे योग्य और प्रबुद्ध हैं या नहीं। क्या होगा यदि मैं संन्यासी गौतम की प्रशंसा अर्थपूर्ण श्लोकों से करूँ?" और इसी प्रकार उन्होंने भगवान गौतम की प्रशंसा करते हुए कहा।

ये श्लोक।

548. "हे भगवान! आप सुंदर हैं, मनमोहक हैं, अच्छे कुल के हैं, देखने में प्यारे हैं, सुनहरे रंग के हैं और मजबूत सफेद दांत रखते हैं।"

549. अच्छे कुल में जन्मे लोगों में कुछ निशान होते हैं। एक महान व्यक्ति के सभी निशान आपके शरीर पर स्पष्ट होते हैं।

550. तुम्हारी आंखें मनमोहक हैं, तुम्हारा मुंह सुंदर है, तुम्हारा शरीर सीधा और राजसी है। समाज के बीच तुम सूर्य की तरह चमकते हो।

551. सुंदर दिखने वाला भिक्षु सोने की मूर्ति के समान होता है। इतने आकर्षक होने पर आपके संन्यास का क्या लाभ?

552. आपको एक सार्वभौमिक सम्राट होना चाहिए, चारों दिशाओं पर विजय प्राप्त करने वाला अग्रणी सारथी होना चाहिए, आपको जंबुडवाप का सम्राट होना चाहिए।

553. हे गौतम, राजाओं के राजा, आपके साथ योद्धाओं से युक्त अधीनस्थ राजा होने चाहिए! मनुष्यों पर विजय प्राप्त करके शासन करें।

554. भगवान बुद्ध ने कहा:

“सेला, मैं धर्मी राजा हूँ, अतुलनीय, मैं धर्मी रूप से पहिया घुमाता हूँ, कभी रुकने वाला नहीं।”

555. ब्राह्मण सेला ने कहा:

ß पूर्ण ज्ञान और अतुलनीय धार्मिक शासन को स्वीकार करता है और कहता है कि वह शिक्षा के पहिये को धार्मिकता से घुमाएगा।

556. अच्छे गुरु के सेनापति कौन हैं, गुरु के पीछे चलने वाले शिष्य कौन हैं, ताकि शिक्षा का चक्र आगे बढ़े, और उसके बाद उसे कौन आगे बढ़ाएगा?

557. भगवान बुद्ध ने कहा:

हे सेला, मेरे द्वारा चलाया गया यह अतुलनीय धर्मचक्र, तथागत के बाद जन्म लेने वाले सारिपुत्त द्वारा चलाया जाएगा।

558. ब्राह्मण, मैंने जो जानना चाहिए था, वह जान लिया; जो विकसित करना चाहिए था, वह विकसित कर लिया; जो दूर करना चाहिए था, वह दूर कर दिया; अतः मैं प्रबुद्ध हूँ।

559. ब्राह्मण सेला ने कहा:

हे ब्राह्मण! मेरे संदेह दूर करो और मुझे मुक्त करो। ज्ञानी व्यक्ति का मिलना बहुत दुर्लभ है।

560. "जो संसार में दुर्लभ है, वह प्रकट हुआ है। सर्वज्ञानी, अतुलनीय सर्जन।"

561. महा ब्रह्मा ने मृत्यु की सेना का नाश कर दिया है, सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर वे निर्भय होकर आनंदपूर्वक निवास करते हैं।

562. "महोदय, बुद्धिमान की बात सुनो, सर्जन, महान नायक, जंगल में शेर की तरह दहाड़ता है।"

563. महा ब्रह्मा बनो, मृत्यु की सेना का नाश करो। उन्हें देखकर नीच कुल के लोगों के सिवा कौन प्रसन्न होगा?

564. जो मेरे पीछे आना चाहते हैं, वे आएं, बाकी लोग जा सकते हैं। अब मैं महान बुद्धिमान के निर्देशों का पालन करते हुए आगे बढ़ता हूँ।

565. "यदि आप, महोदय, सर्वज्ञानी के विधान को पसंद करते हैं, तो हम भी उस महान ज्ञानी के विधान का अनुसरण करेंगे।"

566. "हे भगवान! हम तीन सौ ब्राह्मण हाथ जोड़कर आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप हमें अपने धर्म में आगे बढ़ने का मार्ग दिखाएं।"

567. भगवान बुद्ध ने कहा:

"सेला, पवित्र जीवन का भली-भांति प्रचार किया गया है, यह यहीं और अभी है, समय की बात नहीं है। यहाँ जो भ्रमित नहीं हैं वे आगे बढ़ते हैं और लगन से अभ्यास करते हैं।"

भगवान बुद्ध की कृपा से ब्राह्मण सेला और उनके अनुयायियों ने संन्यासी बनने और उच्च दीक्षा प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त किया।

उस रात के अंत में जटाधारी तपस्वी केनिया ने अपने आश्रम में भरपूर पौष्टिक भोजन और पेय तैयार किए और भगवान बुद्ध को सूचित किया: "हे पूज्यवर, भोजन तैयार है।"

भगवान बुद्ध ने सुबह वस्त्र धारण किए, पान का पात्र और वस्त्र लेकर जटाधारी तपस्वी की कुटिया में गए और भिक्षुओं के समुदाय के साथ तैयार आसनों पर बैठ गए। तब जटाधारी तपस्वी केनिया ने अपने हाथों से ज्ञान प्राप्त भिक्षुओं के समुदाय को पौष्टिक भोजन और पेय पदार्थ परोसे और उन्हें तृप्त किया। जब भगवान बुद्ध ने भोजन कर लिया और पान का पात्र रख दिया, तो केनिया एक तरफ नीची कुर्सी पर बैठ गए और भगवान बुद्ध ने इन श्लोकों के साथ धन्यवाद दिया।

568. "बलिदानों में अग्नि यज्ञ प्रमुख है, और सैविट्टी (यहूदी भजन) सबसे आगे है।"

राजा मनुष्यों का मुखिया है, सागर सभी नदियों का मुखिया है।

569. नक्षत्रों में चंद्रमा प्रमुख है, ऊष्मा प्रदान करने में सूर्य प्रमुख है, पुण्य की इच्छा रखने वालों में भिक्षुओं का समुदाय प्रमुख है।

भगवान बुद्ध ने इन छंदों के साथ धन्यवाद किया, अपने आसन से उठे और चले गए।

तब पूज्य सेला और उनके अनुयायी अकेले ही भीड़ से अलग होकर एकांत में ध्यानपूर्वक साधना करने लगे। कुछ ही समय में, कुल के पुत्र जिस भी उद्देश्य से अपने घर से निकलते हैं, उन्होंने पवित्र जीवन के उस सर्वोच्च उद्देश्य को वहीं जान लिया, अनुभव कर लिया और उसमें लीन हो गए। वे जान गए कि जन्म का नाश हो जाता है, पवित्र जीवन अंत तक जिया जाता है, जो करना चाहिए वो हो चुका है, अब और कुछ चाहने की आवश्यकता नहीं है। पूज्य सेला और उनके अनुयायी अरहंत बन गए। तब पूज्य सेला अपने अनुयायियों के साथ भगवान बुद्ध के पास पहुँचे। उन्होंने अपने वस्त्र को एक कंधे पर रखा और भगवान बुद्ध की ओर हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की।

570. "हे ज्ञानी, आपकी शरण में आने के बाद आज आठवां दिन है। सात रातों के भीतर ही हम आपकी व्यवस्था में वश में हो गए हैं।"

571. हे गुरु, आप प्रबुद्ध हैं, मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले ऋषि हैं, आपने सुप्त प्रवृत्तियों को नष्ट करते हुए इस जनसमुदाय पर विजय प्राप्त की।

572. स्नेह ने इच्छाओं को नष्ट कर दिया है, यह बिना दौरे वाले शेर की तरह है, बड़े और छोटे डर पर विजय प्राप्त करता है।

573. यहाँ तीन सौ भिक्षु हाथ जोड़कर खड़े हैं। हे वीर, हम आपके चरणों को प्रणाम करते हैं, महान पुरुष गुरु को प्रणाम करते हैं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 10.3अस्सालायन सुत्त(93)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन के वन में अनाथपिङ्ग द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। उस समय विभिन्न राज्यों के लगभग पाँच सौ ब्राह्मण किसी काम से श्रावस्ती आए हुए थे और वहीं रह रहे थे। उन ब्राह्मणों के मन में यह विचार आया, "यह संन्यासी गौतम चारों जातियों की पवित्रता की घोषणा करते हैं। भला कौन इन शब्दों पर संन्यासी गौतम से विवाद कर सकता है?" उसी समय श्रावस्ती में अस्सलायन नाम का एक युवक रहता था। वह युवा, मुंडा हुआ, सोलह वर्ष का था, तीनों वेदों का

ज्ञाता था, पुरोहित के रूप में रीति-रिवाजों का ज्ञान रखता था, शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति जानता था और एक महान पुरुष के लक्षण जानता था। तब उन ब्राह्मणों के मन में यह विचार आया, "यह युवक अस्सलायन श्रावस्ती में रहता है, युवा है, मुंडा हुआ है, सोलह वर्ष का है, तीनों वेदों का ज्ञाता है, पुरोहित के रूप में रीति-रिवाजों का ज्ञाता है।" वह शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति को जानता है और एक महान व्यक्ति के लक्षण भी पहचानता है। उसके लिए इन शब्दों पर संन्यासी गौतम से बहस करना संभव है। तब वे ब्राह्मण युवक अस्सलायन के पास आए और बोले, "हे अस्सलायन, संन्यासी गौतम ने चारों जातियों की पवित्रता की घोषणा की है। हे अस्सलायन, आओ, इन शब्दों पर संन्यासी गौतम से बहस करो।" तब युवक अस्सलायन ने उन ब्राह्मणों से कहा, "सन्यासी गौतम सत्य कहते हैं, सत्य बोलने वालों से बहस करना कठिन है। मेरे लिए उनसे इस पर बहस करना संभव नहीं है।" दूसरी बार ब्राह्मणों ने युवक अस्सलायन से विनती की, यह कहते हुए कि वह एक घुमंतू तपस्वी है। उसने इनकार कर दिया। तीसरी बार ब्राह्मणों ने युवक अस्सलायन से विनती की, यह कहते हुए कि उसे बिना किसी विरोध के हार स्वीकार नहीं करनी चाहिए।

यह सुनकर युवक अस्सलायन ने कहा, "मैं निश्चित रूप से नहीं जीतूंगा। हे पुण्य संन्यासी गौतम सत्य कहते हैं, सत्य बोलने वालों से विवाद करना कठिन होता है। मेरे लिए उनसे इस पर विवाद करना संभव नहीं है। फिर भी मैं आप भले लोगों को प्रसन्न करने जाऊंगा।"

तब युवक अस्सलायन, ब्राह्मणों के एक बड़े समूह के साथ भगवान बुद्ध के पास आया, उनसे सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गया। उसने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम, ब्राह्मण कहते हैं कि ब्राह्मण सर्वोच्च जाति के हैं, अन्य निम्न जाति के। ब्राह्मण शुद्ध हैं, अन्य अशुद्ध। ब्राह्मण शुद्ध हो जाते हैं, अन्य नहीं। ब्राह्मण ब्रह्मा के वैध पुत्र हैं, उनके मुख से उत्पन्न हुए हैं, उनसे उत्पन्न हुए हैं, उनकी चिह्न और विरासत के साथ। इस विषय में हे गौतम का क्या कहना है?"

"अस्सलायन, ब्राह्मणों में मैं एक स्त्री को मासिक धर्म से पीड़ित, गर्भ धारण किए, जन्म देते और दूध पिलाते हुए देखता हूँ। क्या वे कहते हैं कि गर्भ से ही ब्राह्मण सर्वोच्च जाति के हैं, अन्य निम्न जाति के। ब्राह्मण शुद्ध हैं, अन्य अशुद्ध। ब्राह्मण शुद्ध हो जाते हैं, अन्य नहीं। ब्राह्मण ब्रह्मा के वैध पुत्र हैं, उनके मुख से, उनसे, उनकी चिह्न और विरासत के साथ।"

गौतम चाहे जो भी अच्छी बातें कहें, ब्राह्मण सोचते हैं कि वे जन्म से ही सर्वोच्च जाति के हैं, बाकी सब नीची जाति के हैं। ......उसके चिन्ह और विरासत के साथ।

"अस्सलायाना, क्या तुमने ग्रीस, कंबोडिया और कुछ अन्य पड़ोसी राज्यों के बारे में सुना है? वहाँ केवल दो ही जातियाँ हैं, स्वामी और दास। एक व्यक्ति स्वामी बनता है और फिर दास, और एक दास स्वामी बन जाता है।"

"अच्छा है, मैंने ग्रीस, कंबोडिया और कुछ अन्य पड़ोसी राज्यों के बारे में सुना है। वहाँ केवल दो जातियाँ हैं, स्वामी और दास। एक व्यक्ति स्वामी बनता है और फिर दास, और एक दास स्वामी बन जाता है।"

"जब ऐसा है, तो ब्राह्मण किस शक्ति और दृढ़ विश्वास से कहते हैं कि वे सर्वोच्च जाति हैं और अन्य निम्न जातियाँ हैं? ......अपने चिह्न और विरासत के साथ?"

"गौतम चाहे जो भी अच्छी बातें कहें, ब्राह्मणों का मानना है कि वे जन्म से ही उच्च जाति के हैं, बाकी सब निम्न जाति के हैं। ......उनके चिन्ह और विरासत के साथ।"

"अस्सलायन, क्या वह योद्धा है, साधारण मनुष्य है या दास है, जो जीवन का नाश करता है, बिना माँगे वस्तुएँ लेता है, यौन व्यभिचार करता है, झूठ बोलता है, निंदा करता है, कठोर बातें करता है, व्यर्थ की बातें करता है, लोभ करता है, क्रोधी मन रखता है और गलत दृष्टिकोण रखता है, जो मृत्यु के बाद नरक में घटते क्रम में जन्म लेगा, न कि ब्राह्मण?"

"यह ठीक नहीं है गौतम। एक योद्धा, एक ब्राह्मण, एक साधारण व्यक्ति या एक दास, जो जीवन का नाश करता है, बिना माँगे कुछ लेता है, यौन दुराचार करता है, झूठ बोलता है, निंदा करता है, कठोर बातें करता है, व्यर्थ की बातें करता है, लोभ करता है, क्रोधी मन रखता है और गलत दृष्टिकोण रखता है, मृत्यु के बाद नरक में घटते क्रम में जन्म लेगा।"

"जब ऐसा है, तो ब्राह्मण किस शक्ति और दृढ़ विश्वास से कहते हैं कि वे सर्वोच्च जाति हैं और अन्य निम्न जातियाँ हैं? ......अपने चिह्न और विरासत के साथ?"

गौतम चाहे जो भी अच्छी बातें कहें, ब्राह्मण सोचते हैं कि वे जन्म से ही सर्वोच्च जाति के हैं, बाकी सब नीची जाति के हैं। ......उसके चिन्ह और विरासत के साथ।

"अस्सलायन, क्या केवल ब्राह्मण ही, जो जीवन को नष्ट करने से, बिना माँगे वस्तुएँ लेने से, कामुकता में दुराचार न करने से, झूठ न बोलने, निंदा न करने, अभद्र या व्यर्थ की बातें न करने से, लोभ न करने और क्रोधी मन न रखने से और सही दृष्टि रखने से परहेज करता है, मृत्यु के बाद स्वर्ग में वंशवृद्धि के साथ जन्म लेता है, न कि योद्धा, साधारण मनुष्य या दास?"

हे गौतम, यह अच्छा नहीं है। योद्धा, ब्राह्मण, साधारण मनुष्य या दास, जो जीवन-नाशक क्रिया से दूर रहता है, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से बचता है, कामुकता में दुराचार नहीं करता, झूठ नहीं बोलता, निंदा नहीं करता, कठोर या निरर्थक बातें नहीं करता, लोभ और क्रोध से दूर रहता है और सही दृष्टि रखता है, मृत्यु के बाद स्वर्ग में वंशवृद्धि के साथ जन्म लेगा। हे गौतम, चारों जातियों में से, जो जीवन-नाशक क्रिया से दूर रहता है, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से बचता है, कामुकता में दुराचार नहीं करता, झूठ नहीं बोलता, निंदा नहीं करता, कठोर या निरर्थक बातें नहीं करता, लोभ और क्रोध से दूर रहता है और सही दृष्टि रखता है, मृत्यु के बाद स्वर्ग में वंशवृद्धि के साथ जन्म लेगा।

"जब ऐसा है, तो ब्राह्मण किस शक्ति और दृढ़ विश्वास से कहते हैं कि वे सर्वोच्च जाति हैं और अन्य निम्न जातियाँ हैं? ......अपने चिह्न और विरासत के साथ?"

गौतम चाहे जो भी अच्छी बातें कहें, ब्राह्मण कहते हैं कि वे जन्म से ही उच्च जाति के हैं, बाकी सब निम्न जाति के हैं। ......उसके चिन्ह और विरासत के साथ।

"अस्सलायन, क्या इस क्षेत्र में केवल ब्राह्मण ही क्रोध और द्वेष रहित प्रेम और दया की भावना विकसित करने में सक्षम हैं, योद्धा, आम लोग या दास नहीं?"

हे गौतम, ऐसा नहीं है; इस क्षेत्र के योद्धा, ब्राह्मण, साधारण जाति और दास भी, क्रोध और द्वेष रहित प्रेम और दया की भावना विकसित करने में सक्षम हैं। इस क्षेत्र की चारों जातियों के लिए प्रेम और दया की भावना विकसित करना संभव है।

"जब ऐसा है, तो ब्राह्मण किस शक्ति और दृढ़ विश्वास से कहते हैं कि वे सर्वोच्च जाति हैं और अन्य निम्न जातियाँ हैं? ......अपने चिह्न और विरासत के साथ?"

"गौतम चाहे जो भी अच्छी बातें कहें, ब्राह्मणों का मानना है कि वे जन्म से ही उच्च जाति के हैं, बाकी सब निम्न जाति के हैं। ......उनके चिन्ह और विरासत के साथ।"

"अस्सलायन, क्या तुम यह सोचते हो कि केवल ब्राह्मण ही झाड़ू और साबुन लेकर नदी में धूल-मिट्टी धो सकते हैं, योद्धा, आम लोग और दास नहीं?"

"हे गौतम, ऐसा नहीं है। योद्धा भी झाड़ू और साबुन लेकर नदी में अपनी धूल-मिट्टी धो सकते हैं, ब्राह्मण, साधारण जाति और दास भी। चारों जातियां झाड़ू और साबुन लेकर नदी में अपनी धूल-मिट्टी धो सकती हैं।"

"जब ऐसा है, तो ब्राह्मण किस शक्ति और दृढ़ विश्वास से कहते हैं कि वे सर्वोच्च जाति हैं और अन्य निम्न जातियाँ हैं? ......अपने चिह्न और विरासत के साथ?"

गौतम चाहे जो भी अच्छी बातें कहें, ब्राह्मण उन्हें ही सर्वोच्च जाति का मानते हैं, बाकी सब नीची जाति के। ......उसके चिन्ह और विरासत के साथ।

"अभिषिक्त योद्धा राजा अस्लायन ने विभिन्न कुलों, जैसे योद्धा, ब्राह्मण, साधारण वर्ग या दास, में जन्मे सैकड़ों लोगों को आमंत्रित किया। चाहे आप किसी महल में, सुगंधित वृक्ष के नीचे, चंदन के वृक्ष के नीचे या कमल में जन्मे हों, एक आवरण लें और अग्नि प्रज्वलित करें। आइए, सज्जनों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप बहिष्कृत, निम्न जाति के, बांस बुनने वाले, रथ निर्माता या सफाईकर्मी के बीच जन्मे हैं। चाहे आप कुत्तों, सूअरों, धोबी के बाड़े में या झाड़ियों में जन्मे हों। एक आवरण लें और अग्नि प्रज्वलित करें। यदि ज्वाला, रंग और चमक वाली अग्नि उत्पन्न हो, तो क्या अग्नि से किया जाने वाला कोई भी कार्य किया जा सकता है?" जो लोग बहिष्कृत, नीची जाति

के, बांस बुनने वाले, रथ बनाने वाले या सफाई करने वाले के साथ पैदा हुए हों, कुत्तों, सूअरों, धोबी के बाड़े में पैदा हुए हों या झाड़ियों में पैदा हुए हों, यदि वे आवरण ओढ़कर आग जलाएं, तो क्या वह आग लपट, रंग और चमक नहीं देगी और क्या उस आग के साथ जो कुछ किया जाना चाहिए वह नहीं किया जाएगा?

हे गौतम, ऐसा नहीं है, चाहे कोई भी कुल हो, योद्धा हो, ब्राह्मण हो, साधारण वर्ग का हो या दास हो। चाहे वह किसी महल में जन्मा हो, सुगंधित वृक्ष के नीचे, चंदन के वृक्ष के नीचे या कमल में। यदि वह आवरण लेकर अग्नि जलाए, तो उसमें ज्वाला, रंग और चमक होगी और अग्नि से जो भी कार्य संभव है, वह उससे किया जा सकता है। यहाँ तक कि जो लोग बहिष्कृत, निम्न जाति के, बांस बुनने वाले, रथ बनाने वाले या सफाई करने वाले के साथ जन्म लेते हैं, चाहे वे कुत्तों, सूअरों, धोबी या झाड़ियों में जन्म लें, उनकी जलाई हुई अग्नि में ज्वाला, रंग और चमक होती है और अग्नि से जो भी कार्य संभव है, वह उससे किया जा सकता है। हे गौतम, सभी प्रकार की अग्नि में ज्वाला, रंग और चमक होती है और अग्नि से जो भी कार्य करना संभव है, वह उससे किया जा सकता है।

“जब ऐसा है, तो ब्राह्मण किस शक्ति और दृढ़ विश्वास से कहते हैं कि वे सर्वोच्च जाति हैं और अन्य निम्न जातियाँ हैं? ......अपने चिह्न और विरासत के साथ?”

गौतम चाहे जो भी अच्छी बातें कहें, ब्राह्मण सोचते हैं कि वे जन्म से ही सर्वोच्च जाति के हैं, बाकी सब नीची जाति के हैं। ......उसके चिन्ह और विरासत के साथ।

“एक योद्धा राजकुमार अस्सलायन एक ब्राह्मण कन्या के साथ रहता है, उनके एक पुत्र का जन्म होता है। क्या योद्धा राजकुमार और ब्राह्मण कन्या से उत्पन्न वह पुत्र, पिता के अनुसार 'योद्धा' कहलाएगा या माता के अनुसार 'ब्राह्मण' कहलाएगा?”

हे गौतम, उस योद्धा राजकुमार और ब्राह्मण कन्या के पुत्र को पिता के अनुसार योद्धा और माता के अनुसार ब्राह्मण कहा जाना चाहिए। अस्सलायन, एक ब्राह्मण राजकुमार एक योद्धा कन्या के साथ रहता है, उनके एक पुत्र का जन्म होता है। क्या उस ब्राह्मण राजकुमार और योद्धा कन्या के पुत्र को पिता के अनुसार ब्राह्मण और माता के अनुसार योद्धा कहा जाना चाहिए?

हे गौतम, ब्राह्मण राजकुमार और योद्धा कन्या के पुत्र को पिता के नाम से ब्राह्मण और माता के नाम से योद्धा कहा जाना चाहिए।

अस्सलायन, एक घोड़ी और गधे से खच्चर का जन्म होता है, क्या उसे माँ के अनुसार 'घोड़ा' कहा जाए या पिता के अनुसार 'गधा'?

"वाह गौतम, एक शुद्ध नस्ल के घोड़े से ही टट्टू का जन्म होता है। अब मुझे अंतर समझ में आ गया, पहले के उदाहरणों में मुझे कोई अंतर नहीं दिख रहा था।"

“अस्सलायन, एक ही माता के दो पुत्र, दो युवक भाई हैं। एक ब्राह्मण विद्वान है, वयस्क है, जबकि दूसरा न तो विद्वान है और न ही वयस्क। ब्राह्मण सबसे पहले श्रद्धापूर्वक, दूध-चावल से, यज्ञ की रोटी से या आतिथ्य सत्कार से किसकी सेवा करते हैं?”

“हे गौतम, ब्राह्मण सर्वप्रथम परिपक्व ब्राह्मण विद्वान की सेवा श्रद्धापूर्वक, दूध-चावल, यज्ञ की रोटी और आतिथ्य सत्कार के साथ करते हैं। क्या अपरिपक्व गैर-विद्वान की सेवा करने से पुण्य प्राप्त होगा?”

“अस्सलायन, एक ही माता के दो पुत्र हैं, दो युवक भाई। एक ब्राह्मण विद्वान है, वयस्क है, दुष्ट और पापी है। दूसरा न तो विद्वान है और न ही वयस्क, वह गुणी और अच्छे आचरण वाला है। ब्राह्मण सबसे पहले श्रद्धापूर्वक, दूध-चावल से, यज्ञ की रोटी से या आतिथ्य सत्कार से किसकी सेवा करते हैं?”

हे गौतम, ब्राह्मण सर्वप्रथम उस गैर-विद्वान व्यक्ति की सेवा करते हैं जो बालिग नहीं हुआ है, जो गुणी है, जिसका आचरण अच्छा है, जो आस्थावान है, जिसे दूध-चावल, यज्ञ की रोटी और आतिथ्य सत्कार प्रदान करते हैं। दुष्ट और पापी व्यक्तियों को भेंट अर्पित करने में भला क्या पुण्य हो सकता है?

“अस्सलायन, पहले तुम ब्राह्मणों की पवित्रता लेकर आए, फिर ब्राह्मण शास्त्र लेकर आए। अब तुमने चारों जातियों की पवित्रता से मुंह मोड़ लिया है, जैसा कि मैंने तुम्हें दिखाया है।”

यह सुनकर युवक अस्सलायाना चुप हो गया, भ्रमित हो गया, उसका शरीर लटक गया और चेहरा उदास हो गया। वह यह न जानते हुए बैठ गया कि क्या कहे।

तब भगवान बुद्ध ने देखा कि युवक अस्सलायन व्याकुल होकर चुप हो गया है, उसका शरीर झुका हुआ है और चेहरा नीचे की ओर है। तब उन्होंने उससे कहा, "अस्सलायन, कुछ समय पहले सात ब्राह्मण ऋषि वन में पत्तों की कुटियाओं में रहते थे। जब वे बातचीत कर रहे थे, तब उनके मन में यह बुरा विचार आया कि ब्राह्मण उच्च जाति के हैं, अन्य सभी जातियाँ नीची हैं। ब्राह्मण शुद्ध हैं, अन्य अशुद्ध हैं। ब्राह्मण शुद्ध हो जाते हैं, अन्य नहीं। ब्राह्मण ब्रह्मा के वैध पुत्र हैं, उनके मुख से उत्पन्न हुए हैं, उनसे उत्पन्न हुए हैं, उनके चिह्न और वंश के साथ हैं।" तब स्वर्ग के ऋषि असित ने अपना सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, भूरे वस्त्र पहनकर, मजबूत चप्पलों में, एक स्वर्ण डंडा लेकर, पत्तों की कुटियाओं के सामने प्रकट हुए। वहाँ इधर-उधर घूमते हुए उन्होंने कहा, "ये ब्राह्मण ऋषि कहाँ चले गए? ये ब्राह्मण ऋषि कहाँ चले गए?" तब ब्राह्मण ऋषियों को यह बात समझ में आई, "यह क्यों कहा जा रहा है कि ये ब्राह्मण ऋषि कहाँ चले गए?" जब सात ब्राह्मण ऋषि खलिहान के खंभे से बंधे बैलों की तरह ध्यानमग्न होकर चल रहे थे, तब उन्होंने सोचा कि हम उसे शाप देंगे और शाप दिया, 'अछूत, राख हो जाओ।' ऋषियों के शाप देते ही स्वर्गिक ऋषि असिता और भी अधिक आकर्षक और मनमोहक हो गए। तब सात ब्राह्मण ऋषियों को यह आभास हुआ कि हमारी तपस्या व्यर्थ है, हमारा पवित्र जीवन निष्फल है। पहले जब हमने शाप दिया था, 'अछूत, राख हो जाओ,' तो वह तुरंत राख हो गया था, लेकिन अब वह और भी अधिक आकर्षक और मनमोहक हो गया है।

"यदि सज्जनों की तपस्या भ्रम नहीं है और यदि पवित्र जीवन व्यर्थ नहीं है, तो सज्जनों, मुझ पर लगे श्राप को दूर कीजिए। यदि आप पर कोई श्राप है, तो मैं उसे दूर करूँगा।"

यह शुभ पुरुष कौन है?

क्या नेक लोगों ने स्वर्गिक ऋषि असिता के बारे में सुना है?

जी हाँ, हमारे पास एक अच्छा है।

"महोदय, मैं ही वह ऋषि हूँ।"

तब अस्सलायन और सात ऋषि स्वर्गिक ऋषि असिता की पूजा करने के लिए उनके पास पहुँचे।

स्वर्गिक ऋषि असिता ने सात ऋषियों से कहा, "मैंने सुना है कि वन में पत्तों की कुटिया में रहने वाले सात ब्राह्मण ऋषियों के मन में यह बुरा विचार आया। क्या बातचीत के दौरान आपके मन में यह विचार आया? ब्राह्मण सोचते हैं कि ब्राह्मण जन्म से ही सर्वोच्च जाति के होते हैं, बाकी सभी नीची जाति के। ब्राह्मण शुद्ध होते हैं, बाकी सभी अशुद्ध। ब्राह्मण शुद्ध हो जाते हैं, बाकी नहीं। ब्राह्मण ब्रह्मा के वैध पुत्र हैं, उनके मुख से उत्पन्न हुए हैं, उनसे उत्पन्न हुए हैं, उनकी पहचान और विरासत से संपन्न हैं। क्या ऐसा नहीं है?"

जी हां, बिल्कुल ठीक रहा।

"महोदय, क्या आप जानते हैं कि आपकी जन्मदाता माता ब्राह्मण जाति की हैं या किसी अन्य जाति की?"

"महोदय, हमें इसकी जानकारी नहीं है।"

क्या आपको पता है कि आपकी मां की मां सातवीं पीढ़ी तक ब्राह्मण जाति की थीं या किसी अन्य जाति की?

"महोदय, हमें इसकी जानकारी नहीं है।"

"महोदय, क्या आप जानते हैं कि आपके जन्मदाता पिता ब्राह्मण जाति के हैं या किसी अन्य जाति के?"

"महोदय, हमें इसकी जानकारी नहीं है।"

क्या आपको पता है कि आपके दादा-दादी सातवीं पीढ़ी तक ब्राह्मण जाति के थे या किसी अन्य जाति के?

"महोदय, हमें इसकी जानकारी नहीं है।"

क्या आप सज्जनों को पता है कि गर्भ तक पहुंचने की प्रक्रिया कैसी होती है?

"महोदय, हम जानते हैं कि गर्भ में प्रवेश कैसे होता है। माता-पिता का मिलन होता है, यह माता का समय होता है, जन्म लेने वाले जीव का समय होता है। जब ये तीनों एक साथ आते हैं, तब गर्भ में प्रवेश होता है।"

"क्या आप जानते हैं कि उपस्थित व्यक्ति योद्धा है, ब्राह्मण है, साधारण व्यक्ति है या दास है?"

"अच्छा, हमें नहीं पता कि उपस्थित व्यक्ति योद्धा था, ब्राह्मण था, साधारण व्यक्ति था या दास था।"

जब ऐसा हो जाए, तो क्या तुम जानते हो कि तुम क्या बन गए हो?

जब ऐसा होता है, तो हमें पता नहीं चलता कि हम क्या बन गए हैं।

"अस्सलायन, सात ब्राह्मण ऋषियों ने प्रश्न किए, साथ मिलकर अध्ययन किया और जन्म की पवित्रता के विषय में उनके विचार के कारण पूछे, फिर भी वे उत्तर नहीं दे सके। यहाँ आप, मेरे द्वारा प्रश्न किए जाने पर, हमारे साथ अध्ययन करने पर और मेरे द्वारा जन्म की पवित्रता के विषय में कारण पूछे जाने पर भी, उत्तर नहीं दे सके। क्या आपने अपने गुरु से एक चम्मच भी ज्ञान प्राप्त नहीं किया?"

यह सुनकर युवक अस्सलायन ने कहा, "अब मैं गौतम जी को समझ गया हूँ। मैं आज से जीवन भर गौतम जी का गृहस्थ शिष्य हूँ और उनकी शरण में रहता हूँ।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 10.4घोटामुख सुत्त(94)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना है। एक समय पूज्य उदेना बनारस के खेमिया के आम के बाग में निवास कर रहे थे। उसी समय ब्राह्मण गोणमुख किसी उद्देश्य से बनारस आए थे। टहलते-फिरते वे खेमिया के आम के बाग में पहुँचे और पूज्य उदेना को बाग में ध्यानमग्न अवस्था में टहलते हुए देखकर उनके पास गए। ब्राह्मण गोणमुख ने पूज्य उदेना से मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और उनके साथ चलते हुए कहा, "हे हे संन्यासी, मुझे लगता है कि अंत, अस्तित्व या ऐसी शिक्षा की दृष्टि रखने वाले व्यक्ति के लिए कोई उचित प्रस्थान नहीं है।"

यह सुनकर पूज्य उदेना चंकमान से बाहर निकले, अपने निवास स्थान पर गए और वहाँ रखी हुई चौकी पर बैठ गए। ब्राह्मण ने भी अपने अभ्यास रोक दिए, पूज्य उदेना के पीछे-पीछे उनके निवास स्थान में प्रवेश किया और एक तरफ खड़े हो गए। "ब्राह्मण, यहाँ कुर्सियाँ हैं, यदि आप चाहें तो बैठ जाइए।"

जब तक पूज्य उदेना बैठ नहीं जाते, हम नहीं बैठते, ऐसा नहीं कि मैंने सोचा हो कि मैं बिना बुलाए बैठ जाऊँगा?

ब्राह्मण गोणमुख ने नीची चौकी पर बैठकर एक तरफ बैठते हुए कहा, "हे हे संन्यासी, मेरा मानना है कि 'अस्तित्व' के अंत की दृष्टि रखने वाले या इस प्रकार की शिक्षा देने वाले व्यक्ति का कोई उचित प्रस्थान नहीं है।"

"हे ब्राह्मण, यदि आप मुझे आपको फटकार लगाने की अनुमति दें, जब फटकार आवश्यक हो और जब कोई बात स्पष्ट न हो, यदि आप मुझसे और प्रश्न पूछें, तो हम इस पर चर्चा करेंगे।"

"हे उदेना, जब फटकार आवश्यक हो और जब कोई बात स्पष्ट न हो तो मुझे फटकार लगाने की अनुमति है। हे पूज्य उदेना, मैं प्रश्न करूँगा। इस विषय पर हमारे बीच चर्चा होगी।"

"हे ब्राह्मण, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति प्रकट होते हैं। वे चारों कौन-कौन से हैं? एक व्यक्ति स्वयं को पीड़ा देता है, स्वयं को पीड़ा देता है, दूसरों को पीड़ा देता है, स्वयं को और दूसरों को पीड़ा देता है, और एक व्यक्ति स्वयं को या दूसरों को पीड़ा नहीं देता; वह संतुष्ट, शांत और ब्रह्मा के समान सुख में निवास करता है। हे ब्राह्मण, इन चारों में से कौन सा आपको प्रसन्न करता है?"

हे उदेना, मैं उस व्यक्ति से प्रसन्न नहीं हूँ जो स्वयं को पीड़ा पहुँचाता है, न ही उस व्यक्ति से जो दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है। मैं उस व्यक्ति से प्रसन्न नहीं हूँ जो स्वयं को और दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है। मैं उस व्यक्ति से प्रसन्न हूँ जो स्वयं को और दूसरों को पीड़ा नहीं पहुँचाता, संतुष्ट है, शांत है, निर्मल है और ब्रह्मा के समान सुख में रहता है।

"हे ब्राह्मण, तुम इन तीनों व्यक्तियों से प्रसन्न क्यों नहीं हो?"

हे उदेना, जो व्यक्ति स्वयं को कष्ट देता है, वह अपने उस स्वभाव से बंधा हुआ है जो सुख चाहता है और दुख से घृणा करता है। अतः मैं इस व्यक्ति से प्रसन्न नहीं हूँ। जो व्यक्ति दूसरों को कष्ट देता है, वह उन दूसरों को कष्ट देने से बंधा हुआ है जो सुख चाहते हैं और दुख से घृणा करते हैं। अतः मैं इस व्यक्ति से प्रसन्न नहीं हूँ। जो व्यक्ति स्वयं को और दूसरों को कष्ट देता है, वह स्वयं को और उन दूसरों को कष्ट देने से बंधा हुआ है जो सुख चाहते हैं और दुख से घृणा करते हैं। अतः मैं इस व्यक्ति से प्रसन्न नहीं हूँ। जो व्यक्ति स्वयं को और दूसरों को कष्ट नहीं देता, वह बंधनमुक्त, संतुष्ट, शांत, निर्मल और ब्रह्मा के समान सुख में निवास करता है। अतः मैं इस व्यक्ति से प्रसन्न हूँ।

हे ब्राह्मण, दो समूह हैं। वे कौन से हैं? एक समूह आभूषणों, बालियों, पुत्रों, पत्नियों, दासों (पुरुष और स्त्री), खेतों, धन और सोने से आसक्त है और इनकी खोज में लगा रहता है। दूसरा समूह आभूषणों, बालियों, पुत्रों, पत्नियों, दासों (पुरुष और स्त्री), खेतों, धन और सोने से अनासक्त है। इन सब का त्याग करके वे संन्यासी बन जाते हैं। हे ब्राह्मण, यह व्यक्ति स्वयं को और दूसरों को कष्ट नहीं देता, बंधनमुक्त है, संतुष्ट है, शांत है और ब्रह्मा के समान सुख में निवास करता है। आप इस व्यक्ति को किस समूह में अधिक पाते हैं? क्या वह उस समूह में है जो आभूषणों, बालियों, पुत्रों, पत्नियों, दासों (पुरुष और स्त्री), खेतों, धन और सोने से आसक्त है और इनकी खोज में लगा रहता है? या फिर उस समूह में है जो आभूषणों, बालियों, पुत्रों, पत्नियों, दासों (पुरुष और स्त्री), खेतों, धन और सोने से अनासक्त है, इन सब का त्याग करके संन्यासी बन गया है?

"हे उदेना, जो व्यक्ति स्वयं को और दूसरों को कष्ट नहीं देता, बंधनमुक्त, संतुष्ट, शांत, निर्मल और ब्रह्मा के समान सुख में निवास करता है, वह सभा में मुझे दिखाई देता है; वह गहनों, बालियों, पुत्रों, पत्नियों, दासों, खेतों, धन और सोने से अनासक्त होकर इन सब का त्याग करके आगे बढ़ गया है।"

"ब्राह्मण, हम जानते हैं कि आप ये शब्द कह रहे हैं, 'हे संन्यासी, मुझे लगता है कि अंत, अस्तित्व या इस तरह की शिक्षा के दर्शन के साथ आगे बढ़ना उचित नहीं है।"

"हे उदेना, सचमुच वे शब्द लापरवाही से बोले गए थे। अब मुझे समझ में आया है कि आगे बढ़ने का एक उचित तरीका है। मेरा मानना है कि हे उदेना उनमें से एक है। कृपया संक्षेप में उल्लेख किए गए उन चारों व्यक्तियों के बारे में मुझे विस्तार से बताएं।"

"ब्राह्मण, सुनो मैं समझाता हूँ," उन्होंने उत्तर दिया, "जी हाँ, अच्छा उदेना।"

तब पूज्य उदेना ने कहा, "हे ब्राह्मण, एक विशेष ब्राह्मण अपने आप को कष्ट देता है, वह इससे जकड़ा हुआ है। वह नंगा रहता है, शिष्टाचारहीन होकर हाथ चाटता है, अभिवादन या ठहरने का आदर नहीं करता। जो कुछ लाया जाता है या विशेष रूप से तैयार किया जाता है, उसे ग्रहण नहीं करता। निमंत्रण सहन नहीं करता। जब बकरी आसपास हो, या छड़ी या झाड़ू के पार से, बर्तन के किनारे से भी भोजन ग्रहण नहीं करता। दो लोगों के भोजन करने, गर्भवती स्त्री, दूध पिलाने वाली स्त्री, पुरुष के साथ गई स्त्री, या अपवित्र स्त्री से भी भोजन ग्रहण नहीं करता। मछली, मांस, मादक पेय और मादक पेय भी ग्रहण नहीं करता।"

वह एक घर से एक निवाला, दो घरों से दो निवाले, और अधिकतम सात घरों से सात निवाले ग्रहण करता है। उसका भरण-पोषण एक स्त्री, दो स्त्री, और अधिकतम सात स्त्रीयों द्वारा दिए गए भोजन से होता है। उसका भरण-पोषण एक पुरुष, दो पुरुष, और अधिकतम सात

पुरुषों द्वारा दिए गए भोजन से होता है। उसे इस प्रकार बारी-बारी से आधे महीने तक भोजन दिया जाता है। वह सब्जियां और बाजरा, कच्चा चावल, दादुल्ला चावल, जलीय पौधे, भूसी वाले चावल का चूरा, चावल का झाग, तिलहन का आटा, घास, गोबर, वन की जड़ें और फल खाता है, या रास्ते में जो कुछ गिरता है, उससे अपना भरण-पोषण करता है। वह भांग के कपड़े, मोटे कपड़े, फटे-पुराने वस्त्र, छाल के कपड़े, चमड़े के कपड़े, चमड़े की पट्टियां, घास के कपड़े, छाल के कपड़े, तख्तों और उल्लू के बालों, पूंछ और पंखों से बने कपड़े पहनता है। उसे सिर और दाढ़ी के बाल नोचने पड़ते हैं। उसे खड़े रहने के लिए बाध्य किया जाता है, बैठने से मना किया जाता है। उसे कांटों के बिस्तर पर बैठने या लेटने के लिए बाध्य किया जाता है। उसे रात में तीन बार तक पानी में उतरने के लिए बाध्य किया जाता है। इस प्रकार वह शरीर को अनेक प्रकार की यातनाएँ देता है। भिक्षुओं, यह व्यक्ति शरीर से बंधे हुए स्वयं को यातनाएँ देता है। *1)

भिक्षुओं, वह कौन सा व्यक्ति है जो दूसरों को यातना देता है? भिक्षुओं, यहाँ एक व्यक्ति सूअर, बकरी, पक्षी का वध करने वाला, जंगली जानवरों का शिकारी, मछुआरा, डाकू, लुटेरा, जेल चलाने वाला या किसी अन्य दुष्ट गतिविधि में लिप्त है। यह व्यक्ति दूसरों को यातना देता है।

भिक्षु, जो स्वयं को और दूसरों को कष्ट देते हैं, क्या वे इससे बंधे हुए हैं? एक राजा या योद्धाओं के प्रधान राजा, ब्राह्मण या गृहस्थ कुल के राजा ने एक नया सभा भवन बनवाया। सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, खुरदरा वस्त्र पहनकर, उसने अपने शरीर पर घी और तेल लगाया। हिरण के सींग को अपने पिछले हिस्से में चुभोकर वह रानी और ब्राह्मण सलाहकार के साथ सभा भवन में प्रवेश किया। सभा भवन के भीतर, वह कुछ हरियाली पर लेट गया। एक युवा गाय से एक थन से दूध निकाला गया, जिससे राजा का पोषण हुआ, दूसरे से रानी का, तीसरे से सलाहकार का, और चौथे थन के दूध से यज्ञ की रोटी पकाई गई। बचे हुए दूध से बछड़े को दूध पिलाया गया। फिर उसने आदेश दिया कि यज्ञ के लिए इतने बैल, इतनी गायें, इतनी बकरियां और इतनी भेड़ें काटें। उसने आदेश दिया कि यज्ञ के खंभे के लिए इतने पेड़ काटें और यज्ञ के लिए इतनी जगह साफ करें। दासों, सेवकों और संदेशवाहकों को छड़ी से डराकर आवश्यक कार्य करवाया जाता है। भिक्षुओं, यह व्यक्ति स्वयं को और अपने अधीन अन्य लोगों को भी पीड़ा पहुँचाता है।

भिक्षुओं, जो स्वयं को या दूसरों को कष्ट नहीं देता, क्या वह बंधनमुक्त है? भिक्षुओं, तथागत संसार में पूर्ण, उचित रूप से प्रबुद्ध, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, सुप्रसिद्ध, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले लोगों को वश में करने में अद्वितीय, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य रूप से जन्म लेते हैं। वे इस देवताओं और मनुष्यों के संसार में, इसके मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों, ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों के समुदाय में, उस शिक्षा का प्रचार करते हैं जो आरंभ, मध्य और अंत में उत्तम है, यहाँ तक कि अक्षरों में भी अर्थपूर्ण है, जो पूर्ण और पवित्र जीवन की घोषणा करती है। एक गृहस्थ, या गृहस्थ का पुत्र, या किसी कुल में जन्मा व्यक्ति उस शिक्षा को सुनता है और तथागत में आस्था प्राप्त करता है। उस आस्था के साथ वह चिंतन करता है। गृहस्थ जीवन कठिनाइयों से भरा है। यह विकारों का मार्ग है। हे संन्यासी, बाहर जाना खुले आकाश के समान है। गृहस्थ जीवन में रहते हुए पूर्ण और पवित्र जीवन जीना, अपवित्र हुए बिना, आसान नहीं है। सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके, मैं संन्यासी क्यों न बनूँ? उचित समय पर वह थोड़ा या बहुत धन त्याग देता है, चाहे मित्रों का छोटा समूह हो या मित्रों का बड़ा समूह, सिर और दाढ़ी मुंडवाकर और पीले वस्त्र धारण करके संन्यासी बन जाता है।

आगे बढ़कर वह भिक्षु के जीवन में प्रशिक्षक बन जाता है। वह जीवित प्राणियों को पीड़ा पहुँचाना त्याग देता है, लाठी-हथौड़े फेंक देता है और लज्जित होकर समस्त प्राणियों के प्रति करुणा जगाता है। जो नहीं दिया गया है उसे लेने से परहेज करते हुए, जो दिया गया है उसकी इच्छा रखता है, अपने मन को शुद्ध करता है और चोरी रहित जीवन व्यतीत करता है। निम्न कोटि के यौन संबंध से परहेज करते हुए वह पवित्र जीवन व्यतीत करता है। झूठ बोलने से परहेज करते हुए वह विश्वसनीय और भरोसेमंद बन जाता है और संसार से कोई विवाद न करता है। निंदा करना त्याग देता है। यहाँ सुनकर वह कहीं और नहीं कहता, ताकि दूसरों को विभाजित न करे। कहीं और सुनकर वह यहाँ नहीं कहता, ताकि दूसरों को विभाजित न करे। इस प्रकार वह विभाजितों को एकजुट करता है और एकता को बढ़ावा देता है। एकता प्रेमी होकर वह एकता के वचन बोलता है। कठोर वाणी त्यागकर वह कानों को भाने वाले वचन बोलता है, जो सबके हृदय को छू जाते हैं। व्यर्थ की बातों से परहेज करते हुए वह उचित, सत्य और अर्थपूर्ण वचन बोलता है, जो शिक्षा और अनुशासन के अनुरूप होते हैं और अनमोल होते हैं।

बीज और वनस्पति समूहों को नष्ट करने से परहेज़ करता है। दिन में एक बार भोजन करता है, रात में और असमय भोजन से परहेज़ करता है। नृत्य, गायन, संगीत, सजावट, फूल और सुगंध, मलहम और आभूषणों से परहेज़ करता है। ऊँचे और आलीशान पलंगों से परहेज़ करता है। सोना और चाँदी, कच्चा चावल और कच्चा मांस ग्रहण करने से परहेज़ करता है। स्त्रियों और लड़कियों, दासों, पुरुषों या स्त्रियों को ग्रहण करने से परहेज़ करता है। बकरियों और गायों, मुर्गियों और सूअरों, हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों को ग्रहण करने से परहेज़ करता है।

वह खेतों और धन को स्वीकार करने और संदेशवाहक का काम करने से परहेज करता है। वह खरीद-फरोख्त और अनुचित तरीके से तौलने-मापने से परहेज करता है। वह काटने-पीटने, नष्ट करने, लूटपाट करने और भोजन प्राप्त करने के गलत तरीकों से परहेज करता है।

संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर और पेट भरकर, वह अपने सभी सामानों के साथ जहाँ भी जाता है, जाता है। जैसे छोटे-बड़े पक्षी अपने पंखों के भार से उड़ जाते हैं, वैसे ही संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर और पेट भरकर, वह अपने सभी सामानों के साथ जहाँ भी जाता है, जाता है। इन गुणों से परिपूर्ण होकर, वह आंतरिक रूप से निष्कलंकता के सुख का अनुभव करता है।

किसी आकृति को आँख से देखने पर, वह चिन्ह या तत्व ग्रहण नहीं करता। आँख की मानसिक शक्ति को अनियंत्रित रखते हुए, लोभ और अप्रसन्नता के दोष उसमें समा सकते हैं। वह आँख की मानसिक शक्ति की रक्षा करते हुए रहता है। कान से ध्वनि सुनने, नाक से गंध का अनुभव करने, स्वाद चखने, शरीर से स्पर्श का अनुभव करने, मन से विचार का अनुभव करने पर, वह चिन्ह या तत्व ग्रहण नहीं करता। मन की मानसिक शक्ति को अनियंत्रित रखते हुए, लोभ और अप्रसन्नता के दोष उसमें समा सकते हैं। वह मन की मानसिक शक्ति की रक्षा करते हुए रहता है। श्रेष्ठ जनों के मानसिक शक्तियों पर नियंत्रण प्राप्त होने के कारण, वह मानसिक शक्तियों के अछूते आनंद का अनुभव करता है। आगे बढ़ते या लौटते समय वह सचेत रहता है। देखते या देखते समय वह सचेत रहता है। झुकते या खिंचते समय वह सचेत रहता है। कुंड और तीन वस्त्र धारण करते समय वह सचेत रहता है। चखते, पीते, खाते और आनंद लेते समय वह सचेत रहता है। चलते हुए, खड़े होते हुए, बैठे हुए, लेटे हुए, जागते हुए और चुप रहते हुए भी वह सचेत रहता है।

सद्गुणों से परिपूर्ण, मानसिक क्षमताओं पर नियंत्रण रखने वाला, और श्रेष्ठ आत्माओं के प्रति सजग, वह किसी एकांत स्थान पर निवास करता है, जैसे कि जंगल, वृक्ष की जड़, पर्वत की गुफा, श्मशान भूमि, घना जंगल, खुला स्थान या भूसे का ढेर। भोजन करने और भिक्षा मांगने के बाद, वह पाँव जोड़कर बैठता है, शरीर सीधा रखता है और ध्यान को सामने केंद्रित करता है।

संसार के प्रति लोभ को दूर करते हुए, वे मन को मुक्त रखते हुए निवास करते हैं। क्रोध को दूर करते हुए, वे क्रोध रहित मन से, सभी प्राणियों के प्रति करुणामयी रहते हैं। आलस्य और सुस्ती को दूर करते हुए, वे प्रकाश की अनुभूति से अवगत रहते हैं, और आलस्य और सुस्ती को दूर करने के प्रति सचेत रहते हैं। बेचैनी और चिंता को दूर करते हुए, वे आंतरिक रूप से शांत मन से निवास करते हैं, और मन से बेचैनी और चिंता को दूर करते हैं। वे उचित और अनुचित कार्यों के बारे में संदेह दूर करते हुए निवास करते हैं।

भिक्षु मन की पाँच बाधाओं को दूर करके और बुद्धिमानी से लघु दोषों को कमजोर करके, मन को कामुक विचारों और दोषों से अलग रखता है। एकांत से उत्पन्न विचारों, चिंतन प्रक्रियाओं, आनंद और प्रसन्नता के साथ वह प्रथम ध्यान में लीन रहता है।

फिर भिक्षु विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करते हुए, मन को आंतरिक रूप से शांत करते हुए, एक ही बिंदु पर एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख के साथ दूसरे ध्यान में लीन हो जाता है।

फिर, जो भिक्षु आनंद और वैराग्य के प्रति समभाव रखते हुए, शरीर सहित सुख का अनुभव करते हुए सजग रहता है, वह तीसरे ध्यान में रहता है। श्रेष्ठ भिक्षु कहते हैं कि यही समभाव के प्रति सचेत रहते हुए सुख में रहना है।

फिर, भिक्षु, सुख और दुख को दूर करते हुए और पहले सुख और दुख को दूर कर चुके, समभाव से शुद्ध हुई ध्यान अवस्था में चौथे ध्यान में लीन हो जाते हैं।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह अपने मन को पूर्व जन्मों के ज्ञान की ओर लगाता है। वह अनेक जन्मों का स्मरण करता है - एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, असंख्य आगे के जन्म चक्र, असंख्य पीछे के जन्म चक्र, असंख्य आगे और पीछे के जन्म चक्र। वहाँ मेरा जन्म ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसे स्वभाव, ऐसे आधारों से हुआ, मैंने ऐसे सुख-दुख का अनुभव किया और मेरी आयु इतनी रही। वहाँ से विलीन होकर मैं वहाँ ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसी व्यवस्थाओं, ऐसे आधारों से, ऐसे सुख-दुख का अनुभव करते हुए, इतनी आयु में जन्म लेता हूँ। वहाँ से विलीन होकर मैं यहाँ जन्म लेता हूँ। इस प्रकार अनेक जन्मों का समस्त गुणों और समस्त विवरणों के साथ स्मरण किया जाता है।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह प्राणियों के प्रकट होने और लुप्त होने के ज्ञान के लिए मन को निर्देशित करता है। मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से वह प्राणियों को देखता है। प्रकट और लुप्त होते प्राणी - उदात्त

और उदात्त, सुंदर और कुरूप, अपने कर्मों के अनुसार अच्छे और बुरे रूपों में उत्पन्न होते हैं। ये अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, निंदनीय श्रेष्ठ प्राणी, कर्मों के प्रति गलत दृष्टिकोण रखते हैं, मृत्यु के बाद हानि, कमी और नरक में जन्म लेते हैं। वहीं, जो अच्छे प्राणी शरीर, वाणी और मन से सुव्यवस्थित होते हैं, श्रेष्ठ प्राणियों के प्रति निंदनीय नहीं होते, कर्मों के प्रति सही दृष्टिकोण रखते हैं, मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेते हैं। इस प्रकार मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से वह प्राणियों के प्रकट और लुप्त होने को देखता है।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित होता है, तब वह मन को इच्छाओं के नाश की ओर निर्देशित करता है। वह जानता है कि यह अप्रिय है, इसका उत्पन्न होना अप्रिय है, इसका निवारण अप्रिय है, और निवारण का मार्ग भी भलीभांति ज्ञात है।

वह जानता है कि ये इच्छाएँ हैं, ये इनका उदय है, ये इनका अंत है और ये इनके अंत का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। जो मन इस प्रकार जानता और देखता है, वह इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से, 'अस्तित्व' की इच्छाओं से और अज्ञानी इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। मुक्त होने पर, वह जानता है, मैं मुक्त हो गया हूँ, जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना चाहिए वह हो गया है। अब और कुछ चाहने की आवश्यकता नहीं है।

भिक्षुओं, यह व्यक्ति न तो स्वयं को और न ही दूसरों को कष्ट देता है, बंधनों से मुक्त है, वर्तमान क्षण में ही शांत है, निर्मल है, शीतल है, और ब्रह्मा के समान सुख से निवास करता है।

तब ब्राह्मण गोणमुख ने कहा, "हे उदेना, अब मैं समझ गया। यह ऐसा है जैसे कोई उलटी हुई चीज़ फिर से स्थापित हो गई हो। कोई ढकी हुई चीज़ प्रकट हो गई हो। यह ऐसा है जैसे किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया गया हो और यह उन लोगों के लिए अंधकार में दीपक जलाने जैसा है जिनके पास रूपों को देखने की दृष्टि है। उदेना ने अनेक प्रकार से इस शिक्षा की व्याख्या की। अब मैं उदेना, इस शिक्षा और भिक्षु समुदाय की शरण लेता हूँ।"

मेरी शरण मत लो। मेरी शरण लो, जैसे मैंने ली है।

"हे उदेना, हे परिपूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध गौतम इस समय कहाँ निवास करते हैं?"

"परमेश्वर ब्राह्मण, जो पूर्णतः प्रबुद्ध थे, अब अंतिम निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं।"

हे उदेना, अगर मुझे पता चले कि परम सिद्ध और सही मायने में ज्ञानी गौतम यहाँ से सात मील दूर रहते हैं, तो मैं उनके दर्शन के लिए जाता हूँ। अगर मुझे पता चले कि वे सत्तर मील, एक सौ चालीस मील, दो सौ दस मील, दो सौ अस्सी मील, तीन सौ पचास मील या सात सौ मील दूर रहते हैं, तो भी मैं उनके दर्शन के लिए जाता हूँ। क्योंकि उनका अंत हो गया है, इसलिए मैं उस परम गौतम की शरण में, उनके उपदेशों में और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेता हूँ। आज से लेकर जीवन भर मुझे एक गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए। अंग के राजा मुझे प्रतिदिन भोजन के दो पैकेट देते हैं, मैं उनमें से एक पैकेट उदेना को अर्पित करता हूँ।

"हे ब्राह्मण, क्या अंग का राजा तुम्हें प्रतिदिन भोजन के दो पैकेट देता है?"

"हे उदेना, वह मुझे पाँच सौ सोने के सिक्के दे रहा है।"

"हे ब्राह्मण, हमारे लिए शुद्ध सोना और सिक्के स्वीकार करना उचित नहीं है।"

यदि यह उपयुक्त नहीं है, तो हम उडेना के लिए एक अच्छा आवास बनवा लेंगे।

हे ब्राह्मण, यदि आप मेरे लिए आवास बनवाना चाहते हैं, तो इसके बजाय पातालपुत्त के भिक्षुओं के लिए एक सभा-भवन बनवाइए।

"उदेना के इन शब्दों से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ, इसलिए मैं भिक्षुओं के लिए प्रतिदिन भोजन की व्यवस्था करूँगा और सभा भवन का भी निर्माण करवाऊँगा।"

तब ब्राह्मण गोणामुख ने वर्तमान और भविष्य के लिए भोजन की व्यवस्था हेतु पातालपुत्त में एक सभा भवन बनवाया। अब इसे गोणामुख के नाम से जाना जाता है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 10.5कन्की सुत्त(95)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध कोसल की यात्रा पर अपने भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ ओपसदा नामक ब्राह्मण ग्राम में आए। भगवान बुद्ध ओपसदा के उत्तर में स्थित साला वन में विश्राम कर रहे थे। उस समय ओपसदा में सात गुणों से युक्त ब्राह्मण चंका निवास करते थे। कोसल के राजा पसेनादि ने उन्हें घास, लकड़ी, जल और अनाज उपहार स्वरूप प्रदान किए। ओपसदा के ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना कि शाक्यों वंश के श्रेष्ठ संन्यासी गौतम अपने भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ कोसल की यात्रा पर ओपसदा पहुंचे हैं। उस श्रेष्ठ गौतम की प्रसिद्धि फैल गई है। वे धन्य, परिपूर्ण और सच्चे अर्थों में प्रबुद्ध हैं, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण हैं, सफल मार्ग पर चल रहे हैं, संसार के ज्ञाता हैं, वश में किए जाने वालों को वश में करने में अद्वितीय हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध और धन्य हैं। वे स्वयं ज्ञात और अनुभव किए गए एक ऐसे उपदेश का शिक्षण करते हैं जो देवताओं और मनुष्यों के संसार को, उसके मारस ब्रह्माओं, संन्यासियों और ब्राह्मणों सहित, सर्वथा उत्तम है। वह उपदेश आरंभ में, मध्य में और अंत में उत्तम है, यहाँ तक कि अक्षरों में भी अर्थ निहित है। वह उपदेश पूर्ण और पवित्र जीवन का उद्घोष करता है। ऐसे परिपूर्ण व्यक्तियों को देखना सुखद है।

ब्राह्मण गृहस्थ ओपासाडा छोड़कर, बड़ी संख्या में एकत्रित होकर ओपासाडा के उत्तर में स्थित क्रीड़ा स्थल साला वन की ओर चल पड़े। उस समय ब्राह्मण चांक अपने घर की ऊपरी मंजिल पर स्थित अपने कक्ष में दिन में सो रहे थे। तभी उन्होंने ओपासाडा के ब्राह्मण गृहस्थों को बड़ी संख्या में उत्तर की ओर क्रीड़ा स्थल साला वन की ओर जाते देखा। उन्होंने अपने सेवक से पूछा, "मित्र, ओपासाडा के ब्राह्मण गृहस्थ उत्तर की ओर क्रीड़ा स्थल साला वन की ओर क्यों जा रहे हैं?"

"हे परम पूज्य चंका, शाक्यों वंश के संन्यासी गौतम, जो संन्यासी बन चुके हैं, भिक्षुओं के एक विशाल समुदाय के साथ कोसल देश का भ्रमण करते हुए ओपासादा पहुंचे हैं। उस परम पूज्य गौतम की प्रसिद्धि फैल चुकी है। वे धन्य, परिपूर्ण और सच्चे ज्ञान से परिपूर्ण, सुयोग्य आचरण वाले, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वालों को वश में करने में अद्वितीय, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य हैं। वे इस संसार को, जिसमें मारस, ब्रह्मा, संन्यासी और ब्राह्मण शामिल हैं, स्वयं द्वारा ज्ञात और अनुभव किए गए उपदेश का उपदेश देते हैं। वह उपदेश आरंभ, मध्य और अंत में उत्तम है, यहाँ तक कि अक्षरों में भी अर्थ निहित है। वह उपदेश पूर्ण और पवित्र जीवन का उद्घोष करता है। ऐसे परिपूर्ण पुरुषों को देखना सुखद है।"

फिर मित्र, ओपासादा के उन ब्राह्मण गृहस्थों के पास जाओ और उन्हें बताओ। ब्राह्मण चांक कहते हैं, हे सज्जनों, जाओ, ब्राह्मण चांक भी भगवान के दर्शन करने के लिए आ रहे हैं।

सेवक मान गया और ओपासादा के उन ब्राह्मण गृहस्थों के पास जाकर बोला, "भले ब्राह्मण चांक ने कहा है, महोदय जाइए। ब्राह्मण चांक भी भगवान के दर्शन करने जा रहे हैं।"

उस समय विभिन्न राज्यों से लगभग पाँच सौ ब्राह्मण किसी उद्देश्य से ओपासाडा में निवास कर रहे थे। उन्होंने सुना कि ब्राह्मण चानक, गौतम साधु से मिलने जा रहे हैं और वे उनके पास गए। उन्होंने पूछा, "क्या यह सच है कि उत्तम चानक, गौतम साधु से मिलने जा रहे हैं?"

जी हाँ, अच्छे लोगों, मैं भी एकांतवासी गौतम के दर्शन के लिए जाऊँगा।

यह उचित नहीं है कि उत्तम चाणक, संन्यासी गौतम के पास जाएँ, बल्कि यह उचित है कि संन्यासी गौतम उत्तम चाणक के पास जाएँ। उत्तम चाणक माता और पिता दोनों ओर से शुद्ध हैं। उनकी शुद्धता जन्म से ही सातवीं पीढ़ी तक निर्दोष है। अतः उत्तम चाणक का संन्यासी गौतम के पास जाना उचित नहीं है, बल्कि संन्यासी गौतम को उत्तम चाणक के पास जाना चाहिए। उत्तम चाणक अपार धनवान

हैं, तीनों वेदों के ज्ञाता हैं और पुरोहित के रूप में अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों से भलीभांति परिचित हैं। वे शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति से भी भली-भांति परिचित हैं। वे महान पुरुष के लक्षणों से भी भली-भांति परिचित हैं। उत्तम चाणक देखने में सुंदर हैं, उनकी त्वचा का रंग सुशोभित है, वे विनम्रता से बात करते हैं और उनकी सूरत में कोई कमी नहीं है। उत्तम चाणक गुणवान और सुविकसित हैं। वे विनम्रतापूर्वक, स्पष्ट और अर्थपूर्ण शब्दों में बोलते हैं। शुभ चंका अनेकों के गुरु हैं, वे तीन सौ युवकों को मौखिक रूप से शिक्षा देते हैं। कोसल के राजा पसेनादि शुभ चंका का आदर करते हैं। ब्राह्मण पोक्करासाति भी शुभ चंका का आदर करते हैं। ब्राह्मण चंका ओपासादा में निवास करते हैं और सात गुणों से संपन्न हैं। कोसल के राजा पसेनादि उन्हें घास, लकड़ी, जल और अनाज प्रदान करते हैं। इसलिए शुभ चंका का भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए आना उचित नहीं है; बल्कि संन्यासी गौतम का शुभ चंका के दर्शन के लिए आना उचित है।

तो सज्जनों, मेरी बात ध्यान से सुनिए, मैं आपको अच्छे गौतम के बारे में बताना चाहता हूँ, कि मुझे ही गौतम के पास जाना चाहिए, न कि गौतम को मेरे पास आना चाहिए। अच्छे गौतम माता-पिता दोनों की ओर से शुद्ध हैं। उनकी शुद्धता सातवीं पीढ़ी तक दोषरहित है। इसलिए यह उचित नहीं है कि गौतम मेरे पास आएं, बल्कि मुझे ही गौतम के पास जाना चाहिए। गौतम ने बहुत सारा सोना, छिपे और खुले खजाने त्याग दिए और तपस्वी बन गए। युवावस्था में, जब उनके बाल काले थे और उनके माता-पिता रो रहे थे, तब उन्होंने अपना सिर और दाढ़ी मुंडवा ली और तपस्वी बन गए। गौतम देखने में सुंदर हैं, उनकी त्वचा का रंग सुंदर है, वे विनम्रता से बात करते हैं, उनके रूप में कोई कमी नहीं है। गौतम गुणों से परिपूर्ण हैं, विनम्रता से बोलते हैं, और उनके शब्द अर्थपूर्ण और स्पष्ट हैं। संन्यासी गौतम अनेकों के गुरु हैं। उन्होंने कामुक इच्छाओं का नाश किया है और अपने निर्णय में अडिग हैं। संन्यासी गौतम कर्मों के फल बताते हैं और बुद्धिमानों द्वारा बुराई न करने के लिए सम्मानित हैं। सुधर्मी गौतम एक प्रतिष्ठित, धनी और संसाधनों से संपन्न कुल से आए थे। अनेक लोग दूर-दराज के देशों और राज्यों से सुधर्मी गौतम से अपने प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए आते हैं। हजारों देवताओं ने अपने जीवन के अंत तक सुधर्मी गौतम की शरण ली है। सुधर्मी गौतम की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली हुई है। वह परिपूर्ण, सच्चे ज्ञान से परिपूर्ण, ज्ञान और आचरण से युक्त, सफल, वश में किए जाने वालों को वश में करने में अद्वितीय, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य हैं। संन्यासी गौतम में एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण पूर्ण हैं। मगध के राजा सेनिया बिम्बिसार ने अपनी पत्नी और बच्चों सहित जीवन भर सुधर्मी गौतम की शरण ली है। कोसल के राजा पसेनादि अपनी पत्नी और बच्चों के साथ पुण्य सन्यासी गौतम की शरण में आए हैं। ब्राह्मण पोक्करासाती भी अपनी पत्नी और बच्चों के साथ पुण्य सन्यासी गौतम की शरण में आए हैं। सन्यासी गौतम ओपासाडा पहुंचे हैं और ओपासाडा के उत्तर में स्थित क्रीड़ाशील साला वन में निवास कर रहे हैं। जो भी हमारे गांवों और खेतों में आता है, वह हमारा अतिथि होता है। हमें अपने अतिथियों का ध्यान रखना चाहिए, उनका आदर और सम्मान करना चाहिए। इन कारणों से यह उचित नहीं है कि सन्यासी गौतम मुझसे मिलने आएं, बल्कि यह उचित है कि मैं सन्यासी गौतम के पास जाऊं। ये सभी पुण्य गुण नहीं हैं, बल्कि और भी बहुत से गुण हैं जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। इनमें से एक भी गुण को ध्यान में रखते हुए, यह उचित नहीं है कि सन्यासी गौतम मुझसे मिलने आएं, बल्कि मुझे सन्यासी गौतम के पास जाना चाहिए। इसलिए आइए हम सब सन्यासी गौतम के पास जाएं।

ब्राह्मण चंक, कई ब्राह्मणों के साथ भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, उनसे सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। उस समय कुछ वृद्ध ब्राह्मण भी भगवान बुद्ध से सौहार्दपूर्ण अभिवादन कर रहे थे। उस सभा में कपाण्हिका नाम का एक युवक बैठा था, जिसकी आयु लगभग सोलह वर्ष थी, सिर मुंडा हुआ था और वह तीनों वेदों का ज्ञाता था। उसने शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति का ज्ञान प्राप्त कर लिया था और वह एक महान पुरुष के लक्षणों से भलीभांति परिचित था। उसने भगवान बुद्ध को वृद्ध ब्राह्मणों से सौहार्दपूर्ण अभिवादन करते समय टोका। भगवान बुद्ध ने कहा, "आदरणीय भारवदाज, जब हम वृद्ध ब्राह्मणों से बात कर रहे हों तो आप बीच में न टोकें। जब यह बातचीत समाप्त हो जाए, तब आप बोलें।" ब्राह्मण चंक ने कहा, "हे गौतम, युवक कपाण्हिका को दोष न दें। वह अच्छी तरह बोलता है, बुद्धिमान और युवा है और वह इन शब्दों पर हे गौतम से बहस कर सकता है।" तब भगवान बुद्ध को यह विचार आया। "यद्यपि, कपाणिक से तीनों वेदों पर चर्चा होगी, इसीलिए ब्राह्मण उन्हें इतना आदर देते हैं।" कपाणिक के मन में यह विचार आया, "जब संन्यासी गौतम की निगाहें मुझसे मिलेंगी, तो मैं अपना प्रश्न पूछूंगा।" भगवान बुद्ध ने युवक के विचार और चिंतन प्रक्रिया को जानते हुए अपनी दृष्टि कपाणिक की ओर कर दी। कपाणिक के मन में यह विचार आया, "मेरी निगाहें संन्यासी गौतम से मिली हैं, तो क्या मैं प्रश्न पूछ लूं?" उन्होंने कहा, "हे गौतम, ब्राह्मण प्राचीन कथाओं और उनके प्रमाणों से प्राप्त ज्ञान को ही सत्य मानते हैं, बाकी सब सत्य नहीं है। इस विषय में गौतम का क्या कहना है?"

"भारद्वाज, क्या कोई एक भी ब्राह्मण ऐसा है जो कहता हो, 'मैं यह जानता हूँ, मैं यह देखता हूँ, यही सत्य है, बाकी सब असत्य है'?"

नहीं, हे गौतम, ऐसा कुछ नहीं है।

"भारद्वाज, क्या कोई एक गुरु है, या सातवीं पीढ़ी तक कोई गुरुओं का गुरु है, जो कहता है, 'मैं यह जानता हूँ। मैं यह देखता हूँ। यही सत्य है, बाकी सब असत्य है।'"

नहीं, हे गौतम, ऐसा नहीं है।

"भारद्वाज, क्या अतीत में अठक वामक, वामदेव, वेसमित्त, यमतग्गी, अंगारसा, भारद्वाज, वासेत्थ, कस्सपा और भगु जैसे ब्राह्मणों में से किसी एक ऋषि ने, जिन्होंने प्राचीन कथनों को बनाया और संरक्षित किया, ठीक वैसे ही जैसे ब्राह्मण श्लोकों का बार-बार पाठ करके उन्हें संरक्षित करते हैं, यह कहा है कि मैं यह जानता हूँ। मैं यह देखता हूँ। यही सत्य है, बाकी सब असत्य है।"

नहीं, हे गौतम, उन्होंने ऐसा नहीं किया।

ब्राह्मणों में से भारद्वाज ने भी कभी यह नहीं कहा, "मैं यह जानता हूँ। मैं यह देखता हूँ। यही सत्य है, बाकी सब असत्य है।" सातवीं पीढ़ी तक किसी गुरु या उनके परदादा ने भी कभी यह नहीं कहा, "मैं यह जानता हूँ। मैं यह देखता हूँ। यही एकमात्र सत्य है, बाकी सब असत्य है।" अतीत में, अठक वामक, वामदेव, वेसमित्त, यमतग्गी, अंगारसा, भारद्वाज, वासेत्थ, कस्सपा और भगु जैसे ब्राह्मणों में से किसी ने भी, जिन्होंने प्राचीन कथनों को उसी प्रकार रचा और संरक्षित किया, जैसे ब्राह्मण आज श्लोकों का बार-बार पाठ करके उन्हें संरक्षित करते हैं, यह नहीं कहा, "मैं यह जानता हूँ। मैं यह देखता हूँ। यही एकमात्र सत्य है, बाकी सब असत्य है।" भारद्वाज, यह अंधों की एक पंक्ति के समान है जो हाथ पकड़े खड़े हैं। पहला नहीं देखता, बीच वाला नहीं देखता और आखिरी वाला भी नहीं देखता। जब ऐसा है, तो ब्राह्मणों के शब्द अंधों की पंक्ति के शब्दों के समान हैं। भारद्वाज, क्या यह आस्था अच्छी तरह से स्थापित नहीं है?

"हे गौतम, ब्राह्मण इसे न केवल आस्था के आधार पर बल्कि सुनी-सुनाई बातों के आधार पर भी जोड़ते हैं।"

"भारद्वाज, पहले आपका विवाद आस्था पर था, अब यह सुनी-सुनाई बातों पर है। इन पाँचों बातों के दोगुने परिणाम होते हैं। ये पाँच क्या हैं? ये हैं आस्था, पसंद, सुनी-सुनाई बातें, सावधानीपूर्वक विचार और दृष्टि के प्रति सहनशीलता। इन पाँचों बातों के दोगुने परिणाम होते हैं। भारद्वाज, अच्छी आस्था होती है, तो वह व्यर्थ हो जाती है, असत्य हो जाती है, बदल जाती है। फिर अत्यधिक पसंद होती है, तो वह व्यर्थ हो जाती है, असत्य हो जाती है, बदल जाती है। सुनी-सुनाई बातें होती हैं, जो व्यर्थ हो जाती हैं, असत्य हो जाती हैं, बदल जाती हैं। बहुत सावधानीपूर्वक विचार करना भी व्यर्थ हो जाता है, असत्य हो जाता है, बदल जाता है। दृष्टि के प्रति सहनशीलता भी व्यर्थ हो जाती है, असत्य हो जाती है, बदल जाती है। सत्य की रक्षा करने वाले बुद्धिमान व्यक्ति के लिए एकतरफा दृष्टिकोण अपनाकर यह कहना उचित नहीं है कि केवल यही सत्य है, बाकी सब सत्य नहीं है।"

हे गौतम, सत्य की रक्षा कैसे की जाती है? हे गौतम, मैं आपसे पूछता हूँ, सत्य की रक्षा कैसे की जाती है?

भारद्वाज, मनुष्य में आस्था उत्पन्न होती है, यह मेरी आस्था है, वह इन शब्दों की सत्यतापूर्वक रक्षा करता है। इसी कारण वह सतही दृष्टिकोण नहीं अपनाता और यह नहीं कहता कि केवल यही सत्य है, बाकी सब असत्य है। यह केवल सत्य की रक्षा करना है, सत्य को जानना नहीं। भारद्वाज, मनुष्य में पसंद उत्पन्न होती है, यह मेरी पसंद है, वह इन शब्दों की सत्यतापूर्वक रक्षा करता है। इसी कारण वह सतही दृष्टिकोण नहीं अपनाता और यह नहीं कहता कि केवल यही सत्य है, बाकी सब असत्य है। यह केवल सत्य की रक्षा करना है, सत्य को जानना नहीं। भारद्वाज, मनुष्य में सुनी-सुनाई बातें होती हैं, यह मेरी सुनी-सुनाई बातें हैं, वह इन शब्दों की सत्यतापूर्वक रक्षा करता है। इसी कारण वह सतही दृष्टिकोण नहीं अपनाता और यह नहीं कहता कि केवल यही सत्य है, बाकी सब असत्य है। यह केवल सत्य की रक्षा करना है, सत्य को जानना नहीं। भारद्वाज, मनुष्य में गहन चिंतन उत्पन्न होता है, यह मेरा गहन चिंतन है, वह इन शब्दों की सत्यतापूर्वक रक्षा करता है। इसी कारण वह सतही दृष्टिकोण नहीं अपनाता और यह नहीं कहता कि केवल यही सत्य है, बाकी सब सत्य नहीं है। यह तो केवल सत्य की रक्षा करना है, सत्य को जानना नहीं। भारद्वाज, मनुष्य में विचारों के प्रति सहनशीलता आ जाती है, वह कहता है कि यही मेरा विचार है, वह अपने शब्दों की सत्यनिष्ठा से रक्षा करता है। इसी कारण वह सतही दृष्टिकोण नहीं अपनाता और यह नहीं कहता कि केवल यही सत्य है, बाकी सब सत्य नहीं है। यह तो केवल सत्य की रक्षा करना है, सत्य को जानना नहीं।

हे गौतम जी, सत्य की रक्षा इतनी सुरक्षा से होती है। अब हमें सत्य की रक्षा का ज्ञान हो गया है। सत्य की प्राप्ति कैसे होती है? हे गौतम जी से सत्य की प्राप्ति का प्रश्न है।

भरद्वाज, एक भिक्षु किसी गाँव या बस्ती में रहते हैं। एक गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र इस पूज्य भिक्षु के पास यह जानने के लिए आता है कि क्या उनमें लोभ, क्रोध या भ्रम के विचार हैं। वह जाँच करता है कि क्या यह पूज्य भिक्षु लोभपूर्ण विचारों से ग्रस्त हैं, क्या वे इन विचारों से अभिभूत होकर यह कहते हैं कि मैं जानता हूँ, क्या वे यह कहते हैं कि मैंने देखा, या क्या वे लंबे समय से दूसरों को उनके बुरे कर्मों के लिए उपदेश देते आ रहे हैं। तब उसे पता चलता है कि इस पूज्य भिक्षु में लोभपूर्ण विचार नहीं हैं, क्या वे इन विचारों से अभिभूत होकर

यह कहते नहीं कि मैं जानता हूँ, क्या वे यह कहते हैं कि मैंने देखा, या क्या वे लंबे समय से दूसरों को उनके बुरे कर्मों के लिए उपदेश देते आ रहे हैं। इस पूज्य भिक्षु का शारीरिक और वाणी का व्यवहार लोभहीन है। यदि यह पूज्य भिक्षु कुछ उपदेश देते हैं, तो वह गहन, समझने में कठिन, उत्कृष्ट, तर्क से परे, बुद्धिमत्तापूर्ण होता है, जिसे बुद्धिमानों को अनुभव करना चाहिए; यह लोभपूर्ण व्यक्ति के लिए संभव नहीं है। जांच करते समय वह देखता है कि पूजनीय व्यक्ति पवित्र है, उसके मन में कोई लालची विचार नहीं है और वह उसकी आगे जांच करता है।

क्या यह पूज्यवर ऐसे क्रोधित विचारों से ग्रस्त हैं, जो न जानते हुए भी कहते हैं कि मैं जानता हूँ, न देखते हुए भी कहते हैं कि मैंने देखा है, या दूसरों को उनके बुरे कर्मों के लिए लंबे समय से इस प्रकार उपदेश देते आ रहे हैं? तब उन्हें पता चलता है कि इस पूज्यवर के मन में ऐसे क्रोधित विचार नहीं हैं, जो न जानते हुए भी कहते हैं कि मैं जानता हूँ, न देखते हुए भी कहते हैं कि मैंने देखा है, या दूसरों को उनके बुरे कर्मों के लिए लंबे समय से इस प्रकार उपदेश देते आ रहे हैं। इस पूज्यवर का शारीरिक और वाणी व्यवहार एक शांत व्यक्ति का है। यदि यह पूज्यवर कुछ उपदेश देते हैं, तो वह गहन, समझने में कठिन, उदात्त, तर्क से परे, बुद्धिमत्तापूर्ण होता है, जिसे बुद्धिमानों को अनुभव करना चाहिए; यह एक क्रोधित व्यक्ति के बस की बात नहीं है। जाँच करने पर उन्हें पता चलता है कि पूज्यवर शुद्ध हैं, उनके मन में क्रोधित विचार नहीं हैं, और वे उनकी आगे जाँच करते हैं।

क्या यह पूज्यवर ऐसे भ्रमित विचारों से ग्रस्त हैं, जो न जानते हुए भी कहते हैं कि मैं जानता हूँ, न देखते हुए भी कहते हैं कि मैंने देखा, या दूसरों को उनके बुरे कर्मों के लिए लंबे समय तक उपदेश देते रहते हैं? तब उन्हें पता चलता है कि इस पूज्यवर में ऐसे भ्रमित विचार नहीं हैं, जो न जानते हुए भी कहते हैं कि मैं जानता हूँ, न देखते हुए भी कहते हैं कि मैंने देखा, या दूसरों को उनके बुरे कर्मों के लिए लंबे समय तक उपदेश देते रहते हैं। इस पूज्यवर का शारीरिक और वाणी व्यवहार एक भ्रमित व्यक्ति के समान है। यदि यह पूज्यवर कुछ सिखाते हैं, तो वह गहन, समझने में कठिन, उत्कृष्ट, तर्क से परे, चतुराईपूर्ण होता है, जिसे बुद्धिमानों को अनुभव करना चाहिए; यह एक भ्रमित व्यक्ति के लिए संभव नहीं है। जाँच करने पर उन्हें पता चलता है कि पूज्यवर शुद्ध हैं, भ्रमित नहीं हैं। इस प्रकार उनमें आस्था स्थापित हो जाती है, और आस्था के साथ वे संगति में जाते हैं। संगति में वे उपदेश को ध्यान से सुनते हैं और उसे मन में आत्मसात करते हैं। जब उपदेश मन में आत्मसात हो जाता है, तो उसकी जाँच की जाती है। अर्थों का विश्लेषण करते समय, वे धैर्यपूर्वक चिंतन करते हैं और उनमें रुचि उत्पन्न होती है। वे इस रुचि के साथ तथ्यों का विश्लेषण करने का प्रयास करते हैं। विश्लेषण से सर्वोच्च सत्य को प्राप्त करने का चौगुना प्रयास होता है। तब वे शरीर सहित सर्वोच्च सत्य को प्राप्त करते हैं, और उसे गहन ज्ञान से देखते हैं। भारद्वाज, इतना सत्य का अनुभव हो जाता है। मैं इसे सत्य की प्राप्ति घोषित करता हूँ।

हे गौतम जी, अब मुझे सत्य का ज्ञान हो गया है। यह कैसे प्राप्त होता है? हे गौतम जी, मुझे वह प्राप्ति और ज्ञान सिखाइए।

"भारद्वाज, इन्हीं चीजों का अभ्यास, विकास और महत्व देने से सत्य की प्राप्ति होती है। मैं घोषणा करता हूँ कि सत्य की प्राप्ति यही है।"

हे गौतम, अब मुझे सत्य का ज्ञान हो गया है। सत्य को जानने में कौन-कौन सी चीजें सहायक होती हैं?

"भारद्वाज, सत्य की प्राप्ति के लिए चार प्रकार के प्रयास अत्यंत सहायक होते हैं। यदि चार प्रकार के प्रयास न हों, तो सत्य की प्राप्ति संभव नहीं है। अतः सत्य की प्राप्ति के लिए चार प्रकार के प्रयास अत्यंत सहायक होते हैं।"

हे गौतम, चौतरफा प्रयास के लिए कौन सी चीज सबसे अधिक सहायक है?

भारद्वाज, वजन करना [1] चार प्रकार के प्रयासों में बहुत सहायक होता है। वजन किए बिना चार प्रकार के प्रयास संभव नहीं हैं, इसलिए वजन करना चार प्रकार के प्रयासों में बहुत सहायक होता है।

हे गौतम, वजन करने के लिए कौन सी चीज सबसे ज्यादा मददगार होती है?

भारद्वाज, संघर्ष [2] तौलने में बहुत सहायक होता है। उस संघर्ष के बिना तौलना संभव नहीं है, इसलिए वह संघर्ष तौलने में बहुत सहायक होता है।

हे गौतम, संघर्ष करने में कौन सी चीज सबसे ज्यादा सहायक होती है?

“भारद्वाज, यानी रुचि, संघर्ष में बहुत सहायक होती है। उस रुचि के बिना कोई संघर्ष नहीं होता, इसलिए वह रुचि संघर्ष में बहुत सहायक होती है।”

“हे गौतम, रुचि के लिए, कौन सी चीज बहुत उपयोगी है?”

भारद्वाज, उचित चिंतन [3] ब्याज के लिए बहुत सहायक है। उचित चिंतनशील मन के बिना ब्याज नहीं होता, इसलिए उचित चिंतनशील मन ब्याज के लिए बहुत सहायक है।

हे गौतम, एक सच्चे चिंतनशील मन के लिए कौन सी चीज बहुत सहायक होती है?

“भारद्वाज, शिक्षा के अर्थों का अध्ययन करना एक सही चिंतनशील मन के लिए बहुत सहायक होता है। शिक्षा के अर्थों का अध्ययन किए बिना सही चिंतन संभव नहीं है, इसलिए शिक्षा के अर्थों का अध्ययन करना एक चिंतनशील मन के लिए बहुत सहायक होता है।”

हे गौतम, शिक्षा में अर्थों की जांच करने के लिए कौन सी चीज बहुत सहायक होती है?

“भारद्वाज, शिक्षा को मन में धारण करके, शिक्षा के अर्थों की जाँच करने में अत्यंत सहायक होते हैं। शिक्षा को मन में धारण किए बिना अर्थों की जाँच संभव नहीं है, इसलिए शिक्षा को मन में धारण करना शिक्षा के अर्थों की जाँच करने में अत्यंत सहायक होता है।”

हे गौतम, शिक्षा को मन में धारण करने के लिए कौन सी चीज सबसे अधिक सहायक होती है?

“भारद्वाज, उपदेश सुनना मन में उपदेश को धारण करने में बहुत सहायक होता है। उपदेश सुने बिना उपदेश को धारण नहीं किया जा सकता, इसलिए उपदेश सुनना मन में उपदेश को धारण करने में बहुत सहायक होता है।”

हे गौतम, उपदेश सुनने में सबसे अधिक सहायक क्या है?

“भारद्वाज, ध्यानपूर्वक सुनना, शिक्षा को सुनने में बहुत सहायक होता है। बिना ध्यान दिए शिक्षा को सुनना संभव नहीं है, इसलिए ध्यानपूर्वक सुनना शिक्षा को सुनने में बहुत सहायक होता है।”

हे गौतम, ध्यान से सुनने के लिए, कौन सी बात बहुत सहायक होगी?

“भारद्वाज, संगति करने से सुनने में बहुत सहायता मिलती है। संगति के बिना सुनने की क्षमता नहीं होती, इसलिए संगति करने से सुनने में बहुत सहायता मिलती है।”

हे गौतम, संगति करने में कौन सी वस्तु अत्यंत सहायक होती है?

भारद्वाज, पास आने से, संयोजन में बहुत सहायता मिलती है। पास आए बिना संयोजन संभव नहीं है, इसलिए पास आना संयोजन में बहुत सहायक होता है।

हे गौतम, पास आने के लिए कौन सी चीज सबसे ज्यादा मददगार होगी?

“भारद्वाज, आस्था, निकट आने में बहुत सहायक होती है। आस्था के बिना निकट आना संभव नहीं है, इसलिए आस्था निकट आने में बहुत सहायक होती है।”

मैंने गौतम जी से पूछा, सत्य की रक्षा कैसे की जाती है? गौतम जी ने मुझे समझाया, मुझे वह व्याख्या अच्छी लगी, मैं उससे प्रसन्न हुआ। मैंने गौतम जी से पूछा, सत्य का अनुभव कैसे होता है? गौतम जी ने मुझे समझाया, मुझे वह व्याख्या अच्छी लगी, मैं उससे प्रसन्न हुआ। मैंने गौतम जी से पूछा, सत्य का अनुभव कैसे प्राप्त होता है? गौतम जी ने मुझे समझाया, मुझे वह व्याख्या अच्छी लगी, मैं उससे प्रसन्न हुआ। मैंने गौतम जी से पूछा, सत्य के अनुभव में कौन सी चीजें सहायक होती हैं? गौतम जी ने मुझे उनका स्पष्टीकरण दिया, मुझे वह व्याख्या अच्छी लगी, मैं उससे प्रसन्न हुआ। मैंने जो भी प्रश्न पूछे, उन सभी का मुझे उत्तर दिया गया। मुझे वह व्याख्या अच्छी लगी, मैं

उससे प्रसन्न हुआ। गौतम जी, पहले मैं सोचता था कि ये मुंडेले हुए साधु कौन हैं, जो हमारे सगे-संबंधियों के चरणों में अर्पित किए गए हैं। क्या वे शिक्षा को जानते हैं? गौतम जी ने मेरे मन में इन साधुओं के प्रति प्रेम जगाया है, अब मैं उनका सम्मान करता हूँ और उनकी कद्र करता हूँ। गौतम जी, अब मैं समझ गया हूँ। - आज से लेकर जीवन भर मुझे उस गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए जिसने अच्छे गौतम की शरण ली है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 10.6एसुकारी सुत्त(96)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेट वन में अनाथपिओइक द्वारा दिए गए मठ में रह रहे थे। ब्राह्मण एशुकारी भगवान बुद्ध के पास आए, उनसे अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। ब्राह्मण एशुकारी ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम, ब्राह्मणों, योद्धाओं, साधारण लोगों और निम्न जाति के लोगों की सेवा के लिए अलग-अलग व्यक्ति नियुक्त करते हैं। हे गौतम, ब्राह्मणों की सेवा के लिए इस प्रकार व्यवस्था है: एक ब्राह्मण को ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिए, या एक योद्धा को ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिए, या एक साधारण व्यक्ति को ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिए, या फिर निम्न जाति के व्यक्ति को ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिए। ब्राह्मणों की सेवा के लिए इस प्रकार व्यवस्था है: एक योद्धा को योद्धा की सेवा करनी चाहिए, या एक साधारण व्यक्ति को योद्धा की सेवा करनी चाहिए, या फिर निम्न जाति के व्यक्ति को योद्धा की सेवा करनी चाहिए। ब्राह्मणों की सेवा के लिए इस प्रकार व्यवस्था है: एक साधारण व्यक्ति को साधारण व्यक्ति की सेवा करनी चाहिए, या फिर निम्न जाति के व्यक्ति को उसकी सेवा करनी चाहिए। ब्राह्मणों की सेवा के लिए निम्न जाति के व्यक्ति को इस प्रकार व्यवस्था है।" नीची जाति के व्यक्ति की सेवा नीची जाति के व्यक्ति को ही करनी चाहिए। भला उसकी सेवा कौन करेगा? हे गौतम, ब्राह्मण इन चार प्रकार की सेवाओं को नियुक्त करते हैं। इस बारे में हे गौतम को क्या कहना है?

"हे ब्राह्मण, क्या समस्त विश्व ब्राह्मणों द्वारा दी गई इन सेवाओं को स्वीकार करता है?"

"हे गौतम, ऐसा नहीं है।"

हे ब्राह्मण, यह उस प्रकार है जैसे किसी गरीब, दुखी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध कहा जाए, "हे भले मनुष्य, तुम मांस खाओ और उस पर धन खर्च न करो।" इसी प्रकार, संन्यासियों और ब्राह्मणों की सहमति के बिना, ये चार सेवाएँ निर्धारित की गई हैं। हे ब्राह्मण, मैं यह नहीं कहता कि सभी सेवाएँ की जानी चाहिए। मैं यह भी नहीं कहता कि सभी सेवाएँ नहीं की जानी चाहिए। यदि उन सेवाओं को करने में कोई बुराई हो, तो वह सेवा अच्छी नहीं है। मैं कहता हूँ कि उसे नहीं करना चाहिए। यदि उन सेवाओं को करने में कोई बुराई न हो, तो वह सेवा अच्छी है। मैं कहता हूँ कि उसे करना चाहिए। हे ब्राह्मण, योद्धाओं से यह प्रश्न पूछा जाना चाहिए। सेवा करते समय यदि बुराई हो और भलाई न हो, और सेवा करते समय भलाई हो और बुराई न हो, तो आप इस स्थिति में कैसे सेवा करेंगे? सही उत्तर देने वाले योद्धाओं को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: यदि बुराई हो और भलाई न हो, तो मैं वह सेवा नहीं करूँगा। यदि भलाई हो और बुराई न हो, तो मैं वह सेवा करूँगा। यहाँ तक कि ब्राह्मणों, साधारण वर्ग और निम्न जाति के लोगों से भी प्रश्न पूछा जाना चाहिए। सेवा करते समय यदि बुराई हो और भलाई न हो, और सेवा करते समय यदि भलाई हो और बुराई न हो, तो आप इस स्थिति में कैसे सेवा करेंगे? निम्न जाति के व्यक्ति को सही उत्तर देते हुए इस प्रकार कहना चाहिए: सेवा करते समय यदि बुराई हो और भलाई न हो, तो मैं वह सेवा नहीं करूँगा। सेवा करते समय यदि भलाई हो और बुराई न हो, तो मैं वह सेवा करूँगा। ब्राह्मण, मुझे उच्च कुल में कोई श्रेष्ठता नहीं दिखती, न ही उच्च कुल में कोई बुराई। ब्राह्मण, मुझे उदात्त रूप में कोई श्रेष्ठता नहीं दिखती, न ही उदात्त रूप में कोई बुराई। ब्राह्मण, मुझे अपार धन में कोई श्रेष्ठता नहीं दिखती, न ही अपार धन में कोई बुराई।

ब्राह्मण, उच्च कुल का कोई व्यक्ति जीव-जंतुओं को नष्ट कर सकता है, बिना माँगे वस्तुएँ ले सकता है, यौन दुराचार कर सकता है, झूठ बोल सकता है, द्वेषपूर्ण बातें कर सकता है, कठोर और निरर्थक बातें कर सकता है, लोभग्रस्त, क्रोधित और गलत दृष्टिकोण रख सकता है। इसलिए मैं उच्च कुल में श्रेष्ठता नहीं कहता। उच्च कुल का कोई व्यक्ति जीव-जंतुओं को नष्ट करने, बिना माँगे वस्तुएँ लेने, यौन दुराचार करने, झूठ बोलने, द्वेषपूर्ण बातें करने, कठोर और निरर्थक बातें करने से परहेज कर सकता है, लोभग्रस्त या क्रोधित नहीं हो सकता और सही दृष्टिकोण रख सकता है। इसलिए मैं उच्च कुल में बुराई नहीं कहता।

एक ब्राह्मण, जो देखने में उत्तम और धनी हो, वह जीवों को नष्ट कर सकता है, बिना माँगे वस्तुएँ ले सकता है, यौन दुराचार कर सकता है, झूठ बोल सकता है, द्वेषपूर्ण बातें कर सकता है, कठोर और व्यर्थ बातें कर सकता है, लोभग्रस्त, क्रोधित और गलत दृष्टिकोण रख सकता है। इसलिए मैं धन को श्रेष्ठ नहीं कहता। एक धनी व्यक्ति जीवों को नष्ट करने, बिना माँगे वस्तुएँ लेने, यौन दुराचार करने, झूठ बोलने, द्वेषपूर्ण बातें करने, कठोर और व्यर्थ बातें करने से परहेज कर सकता है, लोभग्रस्त या क्रोधित नहीं हो सकता और सही दृष्टिकोण रख सकता है। इसलिए मैं धन को बुराई नहीं कहता। मैं यह नहीं कहता कि हर चीज का अनुसरण करना चाहिए, न ही मैं यह कहता हूँ कि हर चीज का अनुसरण नहीं करना चाहिए। किसी चीज का अनुसरण करते समय, यदि आस्था, सद्‌गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि बढ़ती है, तो मैं कहता हूँ कि उसका अनुसरण करना चाहिए।

यह सुनकर ब्राह्मण एशुकारी ने कहा, “हे गौतम, ब्राह्मण चार प्रकार के धन देते हैं: एक ब्राह्मणों के लिए, दूसरा योद्धाओं के लिए, तीसरा साधारणों के लिए और चौथा निम्न जातियों के लिए। ब्राह्मण भिक्षावृत्ति का वरदान देते हैं। जो ब्राह्मण भिक्षावृत्ति को तुच्छ समझते हैं, वे इसे त्याग देते हैं और ग्वाले बन जाते हैं, जो उनका धन नहीं है। ब्राह्मण योद्धाओं को बाण-धन का वरदान देते हैं। योद्धा भी बाण-धन का तुच्छ समझते हैं, इसे त्याग देते हैं और ग्वाले बन जाते हैं, जो उनका धन नहीं है। ब्राह्मण साधारणों को कृषि और पशुपालन का वरदान देते हैं। वे इसे तुच्छ समझते हैं, इसे त्याग देते हैं और ग्वाले बन जाते हैं, जो उनका धन नहीं है। ब्राह्मण निम्न जातियों को पिंगो ढोने का वरदान देते हैं और गंदगी को त्याग देते हैं। वे इसे तुच्छ समझते हैं, इसे त्याग देते हैं और ग्वाले बन जाते हैं, जो उनका धन नहीं है। हे गौतम, इस विषय में आपका क्या कहना है?”

“हे ब्राह्मण, क्या समस्त विश्व ब्राह्मणों द्वारा दिए गए धन के दान को स्वीकार करता है?”

"हे गौतम, ऐसा नहीं है।"

हे ब्राह्मण, यह ऐसा है जैसे किसी गरीब, दुखी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध कहा गया हो, “हे भले मनुष्य, तुम मांस खाओ और उस पर पैसा खर्च न करो।” ठीक इसी प्रकार, संन्यासियों और ब्राह्मणों की सहमति के बिना, ये चार धन भेंट किए गए हैं।

हे ब्राह्मण, मैं मनुष्यों को यह श्रेष्ठ धन प्रदान करता हूँ, जो इस संसार से परे है। पहले मनुष्य अपने माता-पिता का नाम और कुल याद रखते हैं और उसी के अनुसार उनकी गणना की जाती है। यदि कोई योद्धाओं के साथ जन्म लेता है, तो वह योद्धा कहलाता है, ब्राह्मणों के साथ जन्म लेता है, साधारण जाति के साथ जन्म लेता है, और नीच जाति के साथ जन्म लेता है, तो उसी जाति का माना जाता है। जिस प्रकार किसी भी चीज से आग जलती है, उसी के अनुसार उसकी गणना की जाती है। जैसे टहनियों से जलने वाली आग टहनी की आग होती है, घास से जलने वाली आग घास की आग होती है, गोबर से जलने वाली आग गोबर की आग होती है। उसी प्रकार, मैं मनुष्यों को यह श्रेष्ठ धन प्रदान करता हूँ, जो इस संसार से परे है। पहले मनुष्य अपने माता-पिता का नाम और कुल याद रखते हैं और उसी के अनुसार उनकी गणना की जाती है। यदि कोई योद्धाओं के साथ जन्म लेता है, तो वह योद्धा कहलाता है, ब्राह्मणों के साथ जन्म लेता है, साधारण जाति के साथ जन्म लेता है, और नीच जाति के साथ जन्म लेता है, तो उसी जाति का माना जाता है। ब्राह्मण, यहाँ तक कि वह योद्धा भी जो तथागत द्वारा घोषित धर्म के मार्ग पर चलकर तपस्वी जीवन व्यतीत करता है, प्राणनाशक, अनादि वस्तु का सेवन, यौन दुराचार, झूठ बोलना, द्वेषपूर्ण बातें, कठोर वाणी और निरर्थक बातों से विरक्त रहता है। वह लोभ नहीं करता, क्रोधी मन नहीं रखता और सही दृष्टि प्राप्त करता है। पुण्य कर्मों के लिए प्रयास करता है। यहाँ तक कि एक ब्राह्मण, यहाँ तक कि साधारण जाति का व्यक्ति, यहाँ तक कि निम्न जाति का व्यक्ति भी, जो तथागत द्वारा घोषित धर्म के मार्ग पर चलकर तपस्वी जीवन व्यतीत करता है, प्राणनाशक, अनादि वस्तु का सेवन, यौन दुराचार, झूठ बोलना, द्वेषपूर्ण बातें, कठोर वाणी और निरर्थक बातों से विरक्त रहता है। वह लोभ नहीं करता, क्रोधी मन नहीं रखता और सही दृष्टि प्राप्त करता है। पुण्य कर्मों के लिए प्रयास करता है। क्या केवल ब्राह्मण ही प्रेम और करुणा का विचार विकसित कर सकता है, योद्धा नहीं, साधारण जाति का व्यक्ति नहीं और निम्न जाति का व्यक्ति भी नहीं?

'कोई भी अच्छा योद्धा गौतम भी क्रोध और द्वेष से मुक्त होकर प्रेम और दया का विचार विकसित नहीं कर सकता था, एक ब्राह्मण भी कर सकता था, साधारण वर्ग का व्यक्ति भी कर सकता था और निम्न जाति का व्यक्ति भी क्रोध और द्वेष से मुक्त होकर प्रेम और दया का विचार विकसित कर सकता था।'

इसी प्रकार, एक ब्राह्मण भी तथागत के प्रवचनों का अनुसरण करते हुए, जीवन-नष्ट करने से परहेज़ कर सकता है और पुण्य कर्मों के लिए प्रयास कर सकता है। यहाँ तक कि एक ब्राह्मण, साधारण वर्ग का व्यक्ति और निम्न जाति का व्यक्ति भी तथागत के प्रवचनों का अनुसरण करते हुए, जीवन-नष्ट करने से परहेज़ कर सकता है और पुण्य कर्मों के लिए प्रयास कर सकता है। क्या केवल ब्राह्मण ही साबुन और झाड़ू लेकर नदी में अपने शरीर की धूल-मिट्टी धो सकता है, कोई योद्धा नहीं, कोई साधारण व्यक्ति नहीं और कोई निम्न वर्ग का व्यक्ति नहीं?

"हे गौतम, ऐसा नहीं है, एक योद्धा भी साबुन और ब्रश लेकर नदी में अपने शरीर की धूल-मिट्टी धो सकता है, एक ब्राह्मण भी धो सकता है, साधारण व्यक्ति भी धो सकता है और निम्न वर्ग का व्यक्ति भी साबुन और ब्रश लेकर नदी में अपने शरीर की धूल-मिट्टी धो सकता है।"

इसी प्रकार, एक ब्राह्मण, एक योद्धा भी तथागत के मार्ग पर चलकर, जीवन-नाशकारी कार्यों से विमुख होकर, पुण्य कर्मों के लिए प्रयास कर सकता है। यहाँ तक कि एक ब्राह्मण, साधारण व्यक्ति और निम्न जाति का व्यक्ति भी तथागत के मार्ग पर चलकर, जीवन-नाशकारी कार्यों से विमुख होकर, पुण्य कर्मों के लिए प्रयास कर सकता है।

ब्राह्मण, एक अभिषिक्त योद्धा राजा, विभिन्न कुलों में जन्मे सैकड़ों लोगों को आमंत्रित करता है, जैसे योद्धा, ब्राह्मण, साधारण वर्ग या निम्न जाति। चाहे आप किसी महल में, किसी सुगंधित वृक्ष के नीचे, चंदन के वृक्ष के नीचे या कमल में जन्मे हों, एक आवरण लें और अग्नि प्रज्वलित करें। आइए सज्जनों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप बहिष्कृत, निम्न जाति, बांस बुनने वाले, रथ निर्माता या सफाईकर्मी के बीच जन्मे हैं। चाहे आप कुत्तों, सूअरों, धोबी के बाड़े में या झाड़ियों में जन्मे हों। एक आवरण लें और अग्नि प्रज्वलित करें। यदि ज्वाला, रंग और चमक वाली अग्नि प्रज्वलित हो, तो क्या अग्नि से किया जाने वाला कोई भी कार्य किया जा सकता है? जो लोग बहिष्कृत, नीची जाति के, बांस बुनने वाले, रथ बनाने वाले या सफाई करने वाले के साथ पैदा हुए हों, कुत्तों, सूअरों, धोबी के बाड़े में पैदा हुए हों या झाड़ियों में पैदा हुए हों, यदि वे बाहरी आवरण लेकर आग जलाएं, तो क्या वह आग लपट, रंग और चमक नहीं देगी और क्या आग के साथ जो कुछ किया जाना चाहिए वह नहीं किया जाएगा?'

हे गौतम, ऐसा नहीं है, चाहे कोई भी कुल हो, योद्धा हो, ब्राह्मण हो, साधारण वर्ग का हो या दास हो। चाहे वह किसी महल में जन्मा हो, सुगंधित वृक्ष के नीचे, चंदन के वृक्ष के नीचे या कमल में। यदि वह आवरण लेकर अग्नि जलाए, तो उसमें ज्वाला, रंग और चमक होगी और अग्नि से जो भी कार्य संभव है, वह उससे किया जा सकता है। यहाँ तक कि जो लोग बहिष्कृत, निम्न जाति के, बाँस बुनने वाले, रथ बनाने वाले या सफाई करने वाले के साथ जन्म लेते हैं, चाहे वे कुत्तों, सूअरों, धोबी या झाड़ियों में जन्म लें, उनकी जलाई हुई अग्नि में ज्वाला, रंग और चमक होती है और अग्नि से जो भी कार्य संभव है, वह उससे किया जा सकता है। हे गौतम, सभी प्रकार की अग्नि में ज्वाला, रंग और चमक होती है और अग्नि से जो भी कार्य करना संभव है, वह उससे किया जा सकता है।

इसी प्रकार, एक ब्राह्मण, एक योद्धा भी तथागत के मार्ग पर चलकर, जीवन-नाशकारी कार्यों से विमुख होकर, पुण्य कर्मों के लिए प्रयास कर सकता है। यहाँ तक कि एक ब्राह्मण, साधारण वर्ग का व्यक्ति और निम्न जाति का व्यक्ति भी तथागत के मार्ग पर चलकर, जीवन-नाशकारी कार्यों से विमुख होकर, पुण्य कर्मों के लिए प्रयास कर सकता है।

तब ब्राह्मण एशुकारी ने कहा, “अब मैं अच्छे गौतम को जान गया हूँ... मुझे आज से जीवन भर अच्छे गौतम की शरण लेने वाले गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए।”

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 10.7धनंजनी सुत्त(97)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान राजगृह के पास बांस के जंगल में, गिलहरियों के अभयारण्य में ठहरे हुए थे। उस समय पूज्य सारिपुत्त भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ दक्षिणी पर्वतों में विचरण कर रहे थे। तभी एक भिक्षु, जिन्होंने वर्षा ऋतु राजगृह में बिताई थी, पूज्य सारिपुत्त के पास दक्षिणी पर्वतों में गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य सारिपुत्त का अभिवादन किया और सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, पूज्य सारिपुत्त ने उनसे कहा, "मित्र, मुझे विश्वास है कि भगवान स्वस्थ और रोगमुक्त हैं।"

"हे मित्र, भगवान बलवान और रोगमुक्त हैं।"

"मुझे विश्वास है कि भिक्षुओं का समुदाय मजबूत है और बीमारियों से मुक्त है?"

"भिक्षुओं का समुदाय भी मजबूत है और रोगमुक्त है।"

"तन्दुलपाला द्वार पर धनंजनी नाम का एक ब्राह्मण है।1 मुझे विश्वास है कि वह बलवान और रोगमुक्त है?"

"धनंजनी ब्राह्मण भी बलवान और रोगमुक्त हैं।"

और मुझे विश्वास है कि ब्राह्मण धनंजनी सावधान हैं?

"हे मित्र, हमारे धनंजनी ब्राह्मण को भला सजगता कहाँ से आएगी? राजा पर भरोसा करके वह ब्राह्मणों और गृहस्थों को लूटता है। ब्राह्मणों और गृहस्थों पर भरोसा करके वह राजा को लूटता है। उसकी पत्नी—जो आस्थावान परिवार से आई थी—की मृत्यु हो गई है। उसने एक और पत्नी—जो आस्थाहीन है—को भी आस्थाहीन परिवार से लाया है।"

"मेरे मित्र, यह सुनकर कितना बुरा लगता है कि ब्राह्मण धनंजनी लापरवाह हैं। शायद कभी न कभी हमारी मुलाकात ब्राह्मण धनंजनी से हो जाए। शायद कुछ बातचीत हो पाए।"

फिर पूज्य सारिपुत्त, दक्षिणी पर्वतों में अपनी इच्छानुसार कुछ समय बिताने के बाद, राजगृह की दिशा में विचरण करने लगे। कई पड़ावों से गुजरते हुए वे राजगृह पहुँचे। वहाँ वे राजगृह के निकट गिलहरियों के अभयारण्य में ठहरे।

फिर सुबह सवेरे, पूज्य सारिपुत्त ने अपने वस्त्र धारण किए और अपना भिक्षापात्र और बाहरी वस्त्र लेकर राजगृह में भिक्षा मांगने गए। उस समय ब्राह्मण धनंजनी नगर के बाहर एक गौशाला में गायों का दूध दुह रहे थे। राजगृह में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने के बाद, भिक्षा मांगने के बाद लौटते समय पूज्य सारिपुत्त धनंजनी ब्राह्मण के पास गए। धनंजनी ब्राह्मण ने पूज्य सारिपुत्त को दूर से आते देखा। उन्हें देखकर वे उनके पास गए और बोले, "हे स्वामी सारिपुत्त, थोड़ा ताजा दूध पीजिए। आपके भोजन का समय हो गया होगा।"

"कोई बात नहीं, ब्राह्मण। मैंने आज का भोजन कर लिया है। आज मैं उस पेड़ के नीचे ही विश्राम करूँगा। आप वहाँ आ सकते हैं।"

"जैसा आप कहें, गुरुजी," धनंजनी ने आदरणीय सारिपुत्त को उत्तर दिया। सुबह का भोजन करने के बाद, वे आदरणीय सारिपुत्त के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने आदरणीय सारिपुत्त से शिष्टाचारपूर्वक अभिवादन किया और सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद एक तरफ बैठ गए। जब वे वहाँ बैठे थे, आदरणीय सारिपुत्त ने उनसे कहा, "धनंजनी, मुझे विश्वास है कि तुम सचेत हो?"

"हे स्वामी, हमें सजगता कहाँ से मिलेगी? — जब माता-पिता का भरण-पोषण करना है, पत्नी और बच्चों का, दासों और श्रमिकों का, मित्रों और साथियों के लिए मित्र-सहयोगी कर्तव्य निभाने हैं, रिश्तेदारों के लिए सगोत्र-संबंधी कर्तव्य निभाने हैं, मेहमानों के लिए अतिथि कर्तव्य निभाने हैं, दिवंगत पूर्वजों के लिए दिवंगत पूर्वजों के कर्तव्य निभाने हैं, देवताओं के लिए देवता कर्तव्य निभाने हैं, राजा के लिए राजा कर्तव्य निभाने हैं, और इस शरीर को भी तरोताजा और पोषित करना है।"

"धनंजनी, आपका क्या विचार है? एक ऐसा मामला है जिसमें एक व्यक्ति अपने माता-पिता के खातिर अधर्मी, असामंजस्यपूर्ण कार्य करता है। फिर, उसके अधर्मी, असामंजस्यपूर्ण आचरण के कारण, नरक के रक्षक उसे नरक में घसीट कर ले जाते हैं। क्या उसे यह कहने से कोई लाभ होगा कि 'मैंने अपने माता-पिता के खातिर अधर्मी, असामंजस्यपूर्ण कार्य किया। मुझे नरक में मत डालो, नरक के रक्षकों!' या क्या उसके माता-पिता को यह कहने से कोई लाभ होगा कि 'उसने हमारे खातिर अधर्मी, असामंजस्यपूर्ण कार्य किया। उसे नरक में मत डालो, नरक के रक्षकों!'?"

"नहीं, स्वामी सारिपुत्त। जब वह विलाप कर रहा था, तभी उन्होंने उसे नरक में डाल दिया था।"

"धनंजनि, आपका क्या विचार है? एक ऐसा मामला है जिसमें एक व्यक्ति अपनी पत्नी और बच्चों... अपने दासों और श्रमिकों... अपने मित्रों और साथियों... अपने सगे-संबंधियों... अपने अतिथियों... अपने दिवंगत पूर्वजों... देवताओं... राजा के लिए अधर्मी और असामंजस्यपूर्ण कार्य करता है। तब, उसके इस अधर्मी और असामंजस्यपूर्ण आचरण के कारण, नरक रक्षक उसे नरक में घसीट कर ले जाते हैं। क्या उसे यह कहने से कोई लाभ होगा कि 'मैंने राजा के लिए अधर्मी और असामंजस्यपूर्ण कार्य किया। हे नरक रक्षकों, मुझे

नरक में मत डालो!' या क्या राजा को यह कहने से कोई लाभ होगा कि 'उसने हमारे लिए अधर्मी और असामंजस्यपूर्ण कार्य किया। हे नरक रक्षकों, उसे नरक में मत डालो!'?"

"नहीं, स्वामी सारिपुत्त। जब वह विलाप कर रहा था, तभी उन्होंने उसे नरक में डाल दिया था।"

"धनंजनी, आपका क्या विचार है? एक ऐसा मामला है जिसमें एक व्यक्ति अपने शरीर को तरोताज़ा और पोषित करने के लिए अधार्मिक और असामंजस्यपूर्ण कार्य करता है। फिर, उसके इस अधार्मिक और असामंजस्यपूर्ण आचरण के कारण, नरक के रक्षक उसे नरक में घसीट कर ले जाते हैं। क्या उसे यह कहने से कोई लाभ होगा कि 'मैंने अपने शरीर को तरोताज़ा और पोषित करने के लिए अधार्मिक और असामंजस्यपूर्ण कार्य किया। हे नरक रक्षकों, मुझे नरक में मत डालो!' या क्या दूसरों को यह कहने से कोई लाभ होगा कि 'उसने अपने शरीर को तरोताज़ा और पोषित करने के लिए अधार्मिक और असामंजस्यपूर्ण कार्य किया। हे नरक रक्षकों, उसे नरक में मत डालो!'?"

"नहीं, स्वामी सारिपुत्त। जब वह विलाप कर रहा था, तभी उन्होंने उसे नरक में डाल दिया था।"

"अब, धनंजनी, तुम्हारा क्या विचार है? कौन बेहतर है: वह जो अपने माता-पिता के खातिर अधर्मी, असंगत कार्य करे; या वह जो अपने माता-पिता के खातिर धर्मी, संगत कार्य करे?"

"हे स्वामी सारिपुत्त, जो अपने माता-पिता के खातिर अधार्मिक, असामंजस्यपूर्ण कार्य करे, वह श्रेष्ठ नहीं है। जो अपने माता-पिता के खातिर न्यायपूर्ण, समभावपूर्ण कार्य करे, वही श्रेष्ठ है। न्यायपूर्ण आचरण, समभावपूर्ण आचरण, अधार्मिक आचरण, असामंजस्यपूर्ण आचरण से श्रेष्ठ है।"

"धनंजनि, ऐसे अन्य कार्य भी हैं - जो उचित और धार्मिक हैं - जिनके द्वारा कोई व्यक्ति अपने माता-पिता का भरण-पोषण कर सकता है, और साथ ही साथ बुराई न करके पुण्य कर्मों का अभ्यास भी कर सकता है।"

"धनंजनी, तुम्हारा क्या विचार है: कौन बेहतर है: वह जो अपनी पत्नी और बच्चों... अपने दासों और श्रमिकों... अपने मित्रों और साथियों... अपने सगे-संबंधियों... अपने अतिथियों... अपने दिवंगत पूर्वजों... देवताओं... राजा... अपने शरीर को तरोताज़ा और पोषित करने के लिए अधार्मिक और असंगत कार्य करे; या वह जो अपने शरीर को तरोताज़ा और पोषित करने के लिए उचित और संगत कार्य करे?"

"हे स्वामी सारिपुत्त, जो अपने शरीर को तरोताज़ा और पोषित करने के लिए अधार्मिक, असामंजस्यपूर्ण कार्य करता है, वह श्रेष्ठ नहीं है। जो अपने शरीर को तरोताज़ा और पोषित करने के लिए धार्मिक, समभावपूर्ण कार्य करता है, वही श्रेष्ठ है। धार्मिक आचरण, समभावपूर्ण आचरण, अधार्मिक आचरण, असामंजस्यपूर्ण आचरण से श्रेष्ठ है।"

"धनंजनि, ऐसे अन्य कार्य भी हैं - जो तर्कसंगत और धार्मिक हैं - जिनके द्वारा व्यक्ति अपने शरीर को तरोताजा और पोषित कर सकता है, और साथ ही बुराई न करके पुण्य कर्मों का अभ्यास भी कर सकता है।"

तब ब्राह्मण धनंजनी, पूज्य सारिपुत्त के शब्दों से प्रसन्न और आनंदित होकर, अपने आसन से उठे और चले गए।

फिर एक बार ब्राह्मण धनंजनी बीमार पड़ गए, उन्हें बहुत कष्ट हुआ। तब उन्होंने अपने एक सेवक से कहा, "आओ, मेरे भले। भगवान बुद्ध के पास जाओ और वहाँ पहुँचकर मेरे नाम से उनके चरणों में प्रणाम करो और कहो, 'हे भगवान, ब्राह्मण धनंजनी बीमार हैं, उन्हें कष्ट हुआ है, वे बहुत बीमार हैं। वे भगवान बुद्ध के चरणों में प्रणाम करते हैं।' फिर पूज्य सारिपुत्त के पास जाओ और वहाँ पहुँचकर मेरे नाम से उनके चरणों में प्रणाम करो और कहो, 'हे भगवान, ब्राह्मण धनंजनी बीमार हैं, उन्हें कष्ट हुआ है, वे बहुत बीमार हैं। वे पूज्य सारिपुत्त के चरणों में प्रणाम करते हैं।' फिर कहो, 'यदि पूज्य सारिपुत्त सहानुभूतिवश धनंजनी के घर जाएँ तो अच्छा होगा।'"

धनंजनी ब्राह्मण को "जैसा आप कहें, भगवान" कहकर उत्तर देते हुए वह व्यक्ति भगवान बुद्ध के पास गया और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे उसने कहा, "भगवान, धनंजनी ब्राह्मण बीमार हैं, पीड़ा में हैं, अत्यंत अस्वस्थ हैं। वे भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं।" फिर वह पूज्य सारिपुत्त के पास गया और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गया। वहाँ बैठे-बैठे उसने कहा, "आदरणीय, धनंजनी ब्राह्मण बीमार हैं, पीड़ा में हैं, अत्यंत अस्वस्थ हैं। वे पूज्य सारिपुत्त के

चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं।" फिर उसने कहा, "यदि पूज्य सारिपुत्त सहानुभूतिवश धनंजनी के घर जाएँ तो अच्छा होगा।" पूज्य सारिपुत्त मौन रहकर सहमत हो गए।

तब पूज्य सारिपुत्त ने अपने वस्त्र धारण किए और पान का पात्र एवं बाहरी वस्त्र लेकर धनंजनी के घर गए। वहाँ पहुँचकर वे एक तैयार आसन पर बैठ गए और उनसे कहा, "धनंजनी, मुझे आशा है कि आप स्वस्थ हैं? मुझे आशा है कि आप आराम से हैं? मुझे आशा है कि आपका दर्द कम हो रहा है, बढ़ नहीं रहा है? मुझे आशा है कि दर्द कम होने के संकेत मिल रहे हैं, बढ़ने के नहीं?"

"हे गुरु सारिपुत्त, मेरी तबीयत में सुधार नहीं हो रहा है। मैं आराम से नहीं हूँ। मेरा दर्द कम होने के बजाय बढ़ता ही जा रहा है। दर्द कम होने के संकेत नहीं, बल्कि बढ़ने के संकेत हैं। मेरे सिर में असहनीय पीड़ा हो रही है, मानो कोई बलवान व्यक्ति तेज तलवार से मेरा सिर चीर रहा हो... मेरे सिर में असहनीय दर्द हो रहा है, मानो कोई बलवान व्यक्ति चमड़े के कड़े पट्टे से मेरे सिर पर पगड़ी कस रहा हो... मेरे पेट में असहनीय पीड़ा हो रही है, मानो कोई कुशल कसाई या उसका शागिर्द तेज चाकू से बैल का पेट चीर रहा हो... मेरे शरीर में असहनीय जलन हो रही है, मानो दो बलवान व्यक्ति किसी कमजोर व्यक्ति को बाहों में भरकर अंगारों के गड्ढे पर भून रहे हों। हे पूज्यवर, मेरी तबीयत में सुधार नहीं हो रहा है। मैं आराम से नहीं हूँ। मेरा दर्द कम होने के बजाय बढ़ता ही जा रहा है। दर्द कम होने के संकेत नहीं, बल्कि बढ़ने के संकेत हैं।"

"धनंजनी, तुम्हारा क्या विचार है? नरक या पशु गर्भ में रहना, इनमें से कौन बेहतर है?"

"हे सारिपुत्त गुरु, पशु का गर्भ नरक से बेहतर है।"

"... इनमें से कौन सा बेहतर है: पशु का गर्भ या भूखे प्रेतों का लोक?"

"...भूखे प्रेतों का क्षेत्र...."

"...भूखे प्रेतों का क्षेत्र या मनुष्यों का?"

"... मनुष्य ..."

"...मनुष्य या चार महान राजा देव?"

"...चार महान राजा देव...."

"...चार महान राजा देव या तैंतीस देव?"

"...तैंतीस के देवता...."

"...तैंतीस देव या यम देव?"

"...यमदेव...."

"...यम देव या तुसिता देव?"

"...तुषिता देवों...."

"...तुसिता देव या निम्मनराती देव?"

"...निम्मनराती देवता...।"

"...निम्मनराति देव या परानिम्मितावासवति देव?"

"...परानिम्मितवसवत्ति देवता... ।"

"...परानिम्मितवासवत्ति देव या ब्रह्म जगत?"

क्या गुरु सारिपुत्त ने 'ब्रह्म जगत' कहा था? क्या गुरु सारिपुत्त ने 'ब्रह्म जगत' कहा था?

तब पूज्य सारिपुत्त के मन में यह विचार आया, "ये ब्राह्मण ब्रह्मलोक में ही लगे हुए हैं। यदि मैं ब्राह्मण धनंजनी को ब्रह्माओं के साथ मिलन का मार्ग सिखाऊं तो क्या होगा?"

[तब उन्होंने कहा:] "धनंजनी, मैं तुम्हें ब्रह्माओं के साथ मिलन का मार्ग सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और उस पर गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, स्वामी," धन्नजनी ब्राह्मण ने वेन को उत्तर दिया। सारिपुट्टा.

आदरणीय सारिपुत्त ने कहा: "ब्रह्मों के साथ मिलन का मार्ग क्या है? एक भिक्षु पूर्व दिशा में सद्भावना से परिपूर्ण चेतना के साथ व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे और चारों ओर, हर जगह, संपूर्ण रूप से, वह सर्वव्यापी ब्रह्मांड में सद्भावना से परिपूर्ण चेतना के साथ व्याप्त रहता है - प्रचुर, विस्तृत, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित। वह करुणा, प्रशंसा और समभाव से परिपूर्ण चेतना के साथ पहली दिशा में व्याप्त रहता है, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी दिशा में भी। इस प्रकार ऊपर, नीचे और चारों ओर, हर जगह, संपूर्ण रूप से, वह सर्वव्यापी ब्रह्मांड में समभाव से परिपूर्ण चेतना के साथ व्याप्त रहता है - प्रचुर, विस्तृत, असीम, शत्रुता रहित, द्वेष रहित। हे धनंजनी, यही ब्रह्मों के साथ मिलन का मार्ग है।"

"ऐसे में, हे स्वामी सारिपुत्त, मेरे नाम से भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करें और कहें, 'हे भगवान, ब्राह्मण धनंजनी बीमार है, पीड़ा में है, अत्यंत अस्वस्थ है। वह भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करता है।'"

अतः पूज्य सारिपुत्त ने जब धनंजनी ब्राह्मण को निम्न ब्रह्मलोक में स्थापित कर दिया, तब भी उनका कार्य शेष था। वे अपने आसन से उठकर चले गए। फिर, पूज्य सारिपुत्त के जाने के कुछ ही समय बाद धनंजनी ब्राह्मण का निधन हो गया और वे ब्रह्मलोक में पुनः प्रकट हुए।

और भगवान ने भिक्षुओं से कहा, "भिक्षुओं, सारिपुत्त ने जब अभी और भी काम बाकी था, तब निम्न ब्रह्मलोक में ब्राह्मण धनंजनी को स्थापित करने के बाद, अपने आसन से उठकर चले गए हैं।"

तब पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, ब्राह्मण धनंजनी बीमार हैं, पीड़ा में हैं, अत्यंत कष्ट में हैं। वे भगवान बुद्ध के चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं।”

"परन्तु सारिपुत्त, जब निम्न ब्रह्मलोक में धनंजनी ब्राह्मण की स्थापना कर दी गई थी और अभी बहुत कुछ करना बाकी था, तो तुम अपने आसन से उठकर क्यों चले गए?"

"हे भगवान, मेरे मन में यह विचार आया, 'ये ब्राह्मण ब्रह्मलोक में बसे हुए हैं। यदि मैं ब्राह्मण धनंजनी को ब्रह्माओं के साथ मिलन का मार्ग सिखाऊं तो क्या होगा?'"

"सारिपुत्त, ब्राह्मण धनंजनी का निधन हो गया है और वे ब्रह्मलोक में पुन: प्रकट हुए हैं।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 10.8वसेत्थ सुत्त(98)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना है। एक समय भगवान बुद्ध इच्छानाकला के पास इच्छानाकला वन में निवास करते थे। उस समय इच्छानाकला में कई प्रसिद्ध ब्राह्मण गृहस्थ रहते थे, जैसे कि चंकी, तारुक्खा, पोक्खरसाती, जानूनी, तोदेय्या और अन्य प्रसिद्ध ब्राह्मण गृहस्थ।

दो युवा ब्राह्मण वासेञ्च और भारद्वाज व्यायाम के लिए टहलते हुए इस विवाद में पड़ गए। "मित्र, ब्राह्मण कैसे बनते हैं?" युवा भारद्वाज ने कहा, "यदि कोई व्यक्ति माता और पिता दोनों की ओर से सात पीढ़ियों तक निर्मल और निर्मल रहा हो, तो वह ब्राह्मण बन जाता है।" युवा वासेञ्च ने कहा, "यदि कोई व्यक्ति सद्गुणी और अच्छे आचरण वाला हो, तो वह ब्राह्मण बन जाता है।" इस विवाद पर दोनों में से कोई भी दूसरे को मना नहीं सका, और युवा वासेंह ने युवा भारद्वाज से कहा, "मित्र भारद्वाज, शाक्य वंश के पुत्र गौतम नामक एक संन्यासी हैं, जो शाक्य कुल से विमुख होकर आए हैं। उनकी प्रसिद्धि इस प्रकार फैली हुई है: वे योग्य, सर्वज्ञ, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, सुप्रसिद्ध, लोकों के ज्ञाता, मनुष्यों को वश में करने में अद्वितीय, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य हैं। आइए हम उनके पास जाकर यह प्रश्न पूछें, और जब वे इसका उत्तर दें, तो हम दोनों इसे स्वीकार करें।" युवा भारद्वाज ने युवा वासेंह के सुझाव पर सहमति व्यक्त की। तब दोनों युवक भगवान बुद्ध के पास गए, मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया, एक तरफ बैठ गए और युवा वासेंह ने श्लोकों में भगवान बुद्ध को संबोधित किया।

594. हम दोनों स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि हम तीनों वेदों के विद्वान हैं, मैं पोक्खरसाती का शिष्य हूँ, और यह युवक तारुक्खा का शिष्य है।

595. हम दोनों तीनों वेदों का पूर्ण पाठ कर सकते हैं, शब्दों और व्याकरण के अर्थ समझाने में हम अपने शिक्षकों के समान हैं।

596. हे गौतम, जन्म को लेकर हमारा विवाद है। भारद्वाज कहते हैं, "जन्म से ब्राह्मण बनता है" और मैं कहता हूँ, "कर्मों से ब्राह्मण बनता है।"

597. हममें से कोई भी दूसरे को मना नहीं सका। हम इसके बारे में सर्वज्ञानी से पूछने आए थे।

598. जब चंद्रमा घटते चरण से आगे निकल जाता है, तो लोग हाथ जोड़कर उसका सामना करते हैं, उसी प्रकार गौतम की पूजा विश्व द्वारा हाथ जोड़कर की जाती है।

599. हम गौतम से पूछते हैं, "संसार प्रबुद्ध है, क्या ब्राह्मण जन्म से बनता है या कर्मों से? हमें यह ज्ञात नहीं है, हमें ज्ञान प्रदान करें ताकि हम ब्राह्मण को जान सकें।"

600. भगवान बुद्ध ने कहा:

"वासेंहा, मैं तुम्हें चरण-दर-चरण बताऊंगा कि यह कैसे होता है, इस जन्म और अन्य जन्मों में जीवित प्राणियों का वर्गीकरण कैसे होता है।"

601. घास और पेड़ों को देखो, हालाँकि वे अनजान हैं, इस और अन्य में उनके जन्म के लिए विशिष्ट गुण हैं।

602. इसी प्रकार कीड़े-मकोड़े, जैसे टिड्डे और चींटियाँ, उनमें उनके जन्म से संबंधित विशिष्ट गुण होते हैं।

603. छोटे-बड़े जानवरों को देखो। उनमें जन्मजात विशेषताएँ होती हैं।

604. उन सर्पों को देखो जिनकी लंबी पीठ उनके पेट पर जाती है, उनमें उनके जन्म के अनुसार विशिष्ट गुण हैं।

605. मछलियों को भी देखो, जो पानी में भोजन ढूंढती हैं। उनमें जन्मजात विशेषताएँ होती हैं।

606. हवा में उड़ते पक्षियों को देखो। उनमें जन्मजात विशेषताएँ होती हैं।

607. यद्यपि इनमें विभिन्न गुण होते हैं, जन्म के समय, मनुष्यों में विभिन्न गुण जन्म के समय स्पष्ट नहीं होते हैं।

608. वे बालों, सिर, कान या आँखों में नहीं होते। मुंह, नाक, होंठ या पलकों में भी नहीं होते।

609. गर्दन, बगल, पेट या पीठ में नहीं, नितंबों, छाती, जननांगों में नहीं, और न ही यौन संबंध में।

610. न हाथों, पैरों, उंगलियों या नाखूनों में, न घुटनों और पिंडलियों में, न रंग या आवाज में, जिससे उनके जन्म का पता लगाया जा सके।

611. मनुष्यों के व्यक्तिगत शरीरों में ये स्पष्ट नहीं होते; इन्हें मनुष्यों की गतिविधियों द्वारा निर्धारित किया जाता है।

612. मनुष्यों में जो कोई भी पशुओं की देखभाल करके जीविका कमाता है, वासेञ्ह, उसे किसान समझो, ब्राह्मण नहीं।

613. मनुष्यों में जो कोई भी शिल्प करके जीविका कमाता है, वासेञ्ह, उसे शिल्पकार के रूप में जानो, ब्राह्मण के रूप में नहीं।

614. हे वासेञ्ञ, मनुष्यों में जो कोई भी व्यापार करके जीविका कमाता है, उसे व्यापारी समझो, ब्राह्मण नहीं।

615. मनुष्यों में जो कोई भी दूसरों के लिए काम करके जीविका कमाता है, वासेञ्ह, उसे ब्राह्मण नहीं बल्कि श्रमिक समझो।

616. हे वासेञ्ञ, मनुष्यों में जो कोई भी बिना दी हुई वस्तु से जीविका कमाता है, जान लो कि वह लुटेरा है, ब्राह्मण नहीं।

617. मनुष्यों में जो कोई भी राजा वासेञ्ञ की सेवा करके जीविका कमाता है, जान लो कि वह सैनिक है, ब्राह्मण नहीं।

618. मनुष्यों में जो कोई भी राजा वासेञ्ञ को सलाह देकर जीविका कमाता है, जान लो कि वह सलाहकार है, ब्राह्मण नहीं।

619. मनुष्यों में जो कोई भी गाँव और देश की संपत्ति का आनंद लेते हुए जीविका कमाता है, वाञ्ह, जान लो कि वह राजा है, ब्राह्मण नहीं।

620. ब्राह्मण स्त्री के गर्भ से जन्मा व्यक्ति ब्राह्मण नहीं होता। संबोधन से वह 'सर' कहलाता है, उसमें दोष होते हैं। जब उसमें दोष न हों और वह नपुंसक हो, तभी मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

621. जब सभी बंधन टूट जाते हैं, यदि कोई चिंतित नहीं होता, बंधन टूट जाते हैं और मुक्त हो जाते हैं, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

622. जब कोई व्यक्ति अपने स्वार्थ और वर्तमान बंधनों को तोड़कर, बाधाओं को दूर करके, ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

623. यदि कोई क्रोधी मन से डांट-फटकार और कोड़े सह ले, तो उसमें बहुत धैर्य विकसित हो जाता है। मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

624. क्रोधित नहीं, संयमी, गुणी, अभिमानी नहीं, वश में रहते हुए वह अंतिम शरीर धारण करता है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

625. जैसे कमल के पत्ते पर पानी नहीं ठहरता, जैसे राई के सिरे से सरसों का दाना फिसल जाता है, जब तक वह कामुकता से दूषित न हो, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

626. वह यहीं पर आत्म-दृष्टि को कम करके अप्रियता को समझता है। जब त्यागा हुआ बोझ उतर जाता है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

627. गहन ज्ञान से मार्ग और अपमार्ग में चतुर हो जाता है, जब सर्वोच्च सत्य प्राप्त हो जाता है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

628. गृहस्थों या बाहर जाने वालों से अपवित्र न हुआ, जब वह कम इच्छाओं के साथ घर से बाहर हो जाता है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

629. जो प्राणी दुर्बल हो या दृढ़, उसे दंड न देता हो, जब वह किसी को मारता या चोट नहीं पहुँचाता, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

630. शत्रुओं में, बिना शत्रुता के, स्वयं को चोट पहुँचाने वालों में, जो बुझ गए, जब बिना पकड़े पकड़ने वालों में, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

631. तलवार की नोक पर सरसों के दानों की तरह, यदि उसका लोभ और घृणा, माप और द्वेष दूर हो जाए, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

632. कठोर शब्दों के बिना निर्देश देता है, सत्य को सामने लाता है। जब वह किसी को शाप नहीं देता, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

633. लंबा हो या छोटा, छोटा हो या बड़ा, सुखद हो या अप्रिय, जब वह बिना दी हुई कोई चीज नहीं लेता, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

634. जो इस दुनिया और अगली दुनिया के लिए इच्छाओं से रहित है, जब इच्छाओं से मुक्त होकर वह बंधनमुक्त होता है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

635. जब उसके पास रहने की कोई जगह नहीं होती, और वह जानता है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए, और मृत्यु में डुबकी लगा लेता है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

636. पुण्य और पाप दोनों के बंधनों से पार पाकर, शुद्ध होकर, दुःख रहित और आसक्त होकर, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

637. अत्यंत शुद्ध, अविचलित और निर्मल चंद्रमा की तरह, जब 'होने' की रुचि नष्ट हो जाती है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

638. भ्रमपूर्ण अस्तित्व के इस कठिन मार्ग पर विजय प्राप्त करके, एकाग्रता प्राप्त करता है, निर्भय होता है, संदेह पर विजय प्राप्त करता है, बिना किसी अवरोध के समाप्त हो जाता है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

639. कामुकता का त्याग करके, व्यक्ति एक गृहस्थ के रूप में निकलता है। जब उसके कामुक विचार नष्ट हो जाते हैं, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

640. लालसा का त्याग करके, व्यक्ति एक गृहस्थ के रूप में आगे बढ़ता है। जब उसके लालची विचार नष्ट हो जाते हैं, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

641. मानवीय बंधनों को त्यागकर, वह स्वर्गीय बंधनों पर विजय प्राप्त करता है। जब वह बंधनमुक्त हो जाता है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

642. आसक्ति और घृणा का त्याग करने पर शीतलता आती है और जब नायक पूरी दुनिया पर विजय प्राप्त कर लेता है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

643. प्राणियों के लुप्त होने और उनके उदय को देखकर, जो निर्मल, सुप्रसिद्ध और प्रबुद्ध है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

644. उसकी गतिविधियाँ [1] देवताओं, स्वर्गीय संगीतकारों या मनुष्यों को ज्ञात नहीं हैं, जब इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं, तो वह योग्य हो जाता है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

645. जिसने अतीत, बाद या मध्य में कोई अपवित्र वस्तु नहीं ली है, जब वह अपवित्र नहीं है और उसे धारण नहीं करता है, तो मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

646. महान बैल, वीर महान ऋषि, निडर विजेता, स्नान करने वाला, प्रबुद्ध व्यक्ति, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

647. पूर्व जन्मों को जानकर, और स्वर्ग और नरक के अस्तित्वों को देखकर, जो जन्म के विनाश की ओर आता है, मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

648. दुनिया का सामान्य तरीका नाम और वंश के बारे में योजनाबद्ध होना है, लेकिन संचित चीजें संयोगवश, सही समय पर मिलती हैं।

649. लंबे समय से अज्ञानता में उलझे हुए, अज्ञानी हमें बताते हैं कि जन्म से ही ब्राह्मण जन्म लेता है।

650. जन्म से ब्राह्मण जन्म नहीं लेता, जन्म से गैर-ब्राह्मण जन्म नहीं लेता; कर्मों से ब्राह्मण जन्म लेता है, कर्मों से गैर-ब्राह्मण जन्म लेता है।

651. कर्मों से किसान जन्म लेता है, कर्मों से शिल्पकार जन्म लेता है, कर्मों से व्यापारी जन्म लेता है, कर्मों से मजदूर जन्म लेता है।

652. कर्मों से ही डाकू जन्म लेता है, कर्मों से ही सैनिक जन्म लेता है, कर्मों से ही सलाहकार जन्म लेता है, कर्मों से ही राजा जन्म लेता है।

653. इस प्रकार बुद्धिमान लोग कर्म को उसके वास्तविक स्वरूप में देखते हैं, और उसे आश्रित रूप से उत्पन्न होते हुए देखकर कर्मों के परिणामों में निपुण हो जाते हैं।

654. कर्मों से संसार चलता है, कर्मों से जनता चलती है, कर्मों से बंधे प्राणी, पहिये के मुख्य बिंदु की तरह चलते रहते हैं।

655. तपस्या, पवित्र जीवन निर्वाह, संयम और वशीकरण से, इन्हीं से ब्राह्मण का जन्म होता है, जो सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण होता है।

656. तीनों ज्ञानों से संपन्न, संतुष्ट और पुनर्जन्म नष्ट करने वाले वासेञ्ञ इसे ब्रह्मा और सख को पहचानने के रूप में जानते हैं।

यह सुनकर वासेञ्ञ और भारद्वाज नामक दो युवकों ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे गौतम, अब हम जान गए हैं। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज फिर से स्थापित हो गई हो, कोई ढकी हुई चीज प्रकट हो गई हो, मानो किसी भटके हुए व्यक्ति को रास्ता दिखाया जा रहा हो। ऐसा लगता है जैसे अंधकार में तेल का दीपक जलाया गया हो, उन लोगों के लिए जिनके पास रूप देखने की आंखें हैं। हे गौतम ने अनेक तरीकों से समझाया है।”

शिक्षा। अब मैं परम पूज्य गौतम की शरण में, उनकी शिक्षा में और भिक्षुओं के समुदाय में शरण लेता हूँ। परम पूज्य गौतम, आज से जीवन भर हमें शरण लिए हुए शिष्यों के रूप में याद रखना।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 10.9सुभा सुत्त(99)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान श्रावस्ती में जेतवन में अनाथपिओइक द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। उस समय तोदेय्या के पुत्र सुभा नामक युवक किसी उद्देश्य से श्रावस्ती आया था और एक गृहस्थ के साथ रह रहा था। तोदेय्या ने उस गृहस्थ से कहा, “शवस्ती अरहंतों से समृद्ध है, आज यदि हम किसी संन्यासी या ब्राह्मण के साथ रहें तो क्या होगा?”

"हे महोदय, जेतवन में अनाथपिओइक द्वारा दान किए गए मठ में भगवान विराजमान हैं। हम उस परम पूजनीय भगवान की संगति करेंगे।"

तोदेय्या के पुत्र सुभा ने सहमति जताते हुए भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्हें अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। तब तोदेय्या ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम, ब्राह्मण कहते हैं कि गृहस्थ पुण्य कर्म करने में सक्षम होते हैं, जबकि संन्यासी बनने वाले पुण्य कर्म करने में सक्षम नहीं होते। हे गौतम इस विषय में क्या कहते हैं?"

"युवक, यहाँ मुझे विश्लेषणात्मक उत्तर देना है, न कि कोई निश्चित उत्तर। मैं गृहस्थ या संन्यासी के गलत मार्ग की प्रशंसा नहीं करता। चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी, यदि वह गलत मार्ग पर चल पड़े तो उसके लिए पुण्य का अनुभव करना संभव नहीं है। मैं गृहस्थ या संन्यासी के सही मार्ग की प्रशंसा करता हूँ। चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी, यदि वह सही मार्ग पर चल पड़े तो उसके लिए पुण्य का अनुभव करना संभव है।"

हे गौतम, ब्राह्मण कहते हैं कि गृहस्थों के कार्य बहुत महत्वपूर्ण, सक्रिय, सत्कारपूर्ण और विनाशकारी होते हैं, और उनसे बहुत पुण्य प्राप्त होता है। वहीं संन्यासी बन चुके लोगों के कार्य कम महत्वपूर्ण, कम सक्रिय, कम सत्कारपूर्ण और कम विनाशकारी होते हैं, इसलिए उनसे कम पुण्य प्राप्त होता है। इस विषय में हे गौतम क्या कहते हैं?

"युवक, यहाँ भी मुझे विश्लेषणात्मक उत्तर देना होगा, कोई निश्चित उत्तर नहीं। युवक, ऐसे कई कार्य हैं जो बहुत महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होते हुए भी सफल नहीं होते और निष्फल हो जाते हैं। ऐसे भी कार्य हैं जो बहुत महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होते हुए भी सफल होते हैं और फलदायी हो जाते हैं। युवक, ऐसे भी कार्य हैं जो कम महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होते हुए भी सफल होते हैं और निष्फल हो जाते हैं। ऐसे भी कार्य हैं जो कम महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होते हुए भी सफल होते हैं और फलदायी हो जाते हैं। युवक, ऐसे कौन से कार्य हैं जो बहुत महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होते हुए भी सफल नहीं होते और निष्फल हो जाते हैं? युवक, कृषि एक ऐसा कार्य है जो बहुत महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होता है और सफल नहीं होता और निष्फल हो जाता है। युवक, ऐसा कौन सा कार्य है जो बहुत महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होता है और सफल नहीं होता और निष्फल हो जाता है? कृषि भी एक ऐसा कार्य है जो बहुत महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होता है और सफल नहीं होता और निष्फल हो जाता है। ऐसा कौन सा कार्य है जो कम महत्वपूर्ण, सक्रिय, सजग और विनाशकारी होता है और सफल नहीं होता और निष्फल हो जाता है? निष्फल? हे युवक, व्यापार एक ऐसा कार्य है जिसमें महत्व, गतिविधि, ध्यान और हानि कम होती है, और यदि इसमें सफलता न मिले तो यह निष्फल हो जाता है। कौन सा कार्य महत्व, गतिविधि, ध्यान और हानि कम होने पर भी सफल होता है? व्यापार भी एक ऐसा कार्य है जिसमें महत्व, गतिविधि, ध्यान और हानि कम होती है, और यदि इसमें सफलता मिले तो यह सफल होता है।

हे युवक, जिस प्रकार कृषि कार्य, जिसमें बहुत अधिक परिश्रम, लगन और देखभाल की आवश्यकता होती है, फलदायी न होने पर निष्फल हो जाता है, उसी प्रकार गृहस्थ जीवन भी, जिसमें बहुत अधिक परिश्रम, लगन और देखभाल की आवश्यकता होती है, फलदायी न होने पर निष्फल हो जाता है। हे युवक, जिस प्रकार कृषि कार्य, जिसमें बहुत अधिक परिश्रम, लगन और देखभाल की आवश्यकता होती है, फलदायी हो जाता है, उसी प्रकार गृहस्थ जीवन भी, जिसमें बहुत अधिक परिश्रम, लगन और देखभाल की आवश्यकता होती है, फलदायी हो जाता है। हे युवक, जिस प्रकार व्यापार कार्य, जिसमें कम परिश्रम, लगन और देखभाल की आवश्यकता होती है, फलदायी न होने पर निष्फल हो जाता है, उसी प्रकार तपस्वी जीवन भी, जिसमें कम परिश्रम, लगन और देखभाल की आवश्यकता होती है, फलदायी न होने पर निष्फल हो जाता है। हे युवक, जिस प्रकार व्यापार कार्य, जिसमें कम परिश्रम, लगन और देखभाल की आवश्यकता होती है, फलदायी हो जाता है।

हे गौतम, ब्राह्मणों, पुण्य प्राप्ति और संचय के लिए पाँच बातें बताइए।

"युवक, यदि आपको कोई आपत्ति न हो, तो क्या आप इस सभा को ब्राह्मणों द्वारा पुण्य संचय और प्राप्ति के लिए बताए गए पाँच बिंदुओं के बारे में बताएँगे?"

"हे गौतम, मुझे कोई आपत्ति नहीं है, अगर हे गौतम और यह सभा इसे सुनना चाहती है।"

"तो फिर, युवक, उन्हें बताओ।"

हे गौतम जी, पुण्य प्राप्ति और संचय के लिए ब्राह्मणों द्वारा प्रचारित पहला सिद्धांत सत्य है। तपस्या दूसरा सिद्धांत है। पवित्र जीवन तीसरा सिद्धांत है। शिक्षा चौथा सिद्धांत है और परोपकार पाँचवाँ सिद्धांत है, जिसका उद्देश्य पुण्य प्राप्ति और संचय करना है। हे गौतम जी, इनके बारे में क्या कहते हैं?

"युवक, क्या कोई एक भी ब्राह्मण है जो कहता है, 'मैं इन पांच चीजों को अनुभव से प्राप्त कर लेता हूँ और उनका प्रतिपादन करता हूँ?'"

"अच्छा गौतम नहीं होता।"

"युवक, क्या ब्राह्मणों में सातवीं पीढ़ी तक कोई एक भी ऐसा गुरु है, या गुरुओं का गुरु है, जो कहता हो, 'मैं जानता हूँ कि ये पाँच बातें अहसास से फलदायी होती हैं और मैं इनकी घोषणा करता हूँ'?"

"अच्छा गौतम नहीं होता।"

क्या अतीत में अञ्चक वामक, वामदेव, वेसमित्त, यमतग्गी, अंगारसा, भारद्वाज, वासेञ्ञ, कस्सपा और भगू जैसे ब्राह्मणों में से कोई एक ऐसा संत था जिसने प्राचीन कथनों को उसी प्रकार रचा और संरक्षित किया, जैसे ब्राह्मण आज बार-बार श्लोकों का पाठ करके उन्हें संरक्षित करते हैं? क्या उनमें से किसी ने कहा है कि मैं इन पाँच बातों को अनुभव से प्राप्त होने वाले फलदायी ज्ञान से जानता हूँ और उनका प्रचार करता हूँ?

"अच्छा गौतम नहीं होता।"

तो फिर, हे युवक, ब्राह्मणों में से एक भी ब्राह्मण ने यह नहीं कहा कि मैं इन पाँच बातों को अनुभव से सिद्ध होने योग्य मानता हूँ और इनकी घोषणा करता हूँ। सातवीं पीढ़ी तक के किसी भी गुरु या उनके परदादा ने भी यह नहीं कहा कि मैं इन पाँच बातों को अनुभव से सिद्ध होने योग्य मानता हूँ और इनकी घोषणा करता हूँ। अतीत में, अञ्चक, वामक, वामदेव, वेसमित्त, यमताग्गी, अंगारसा, भारद्वाज, वासेञ्च, कस्सप और भगु जैसे ब्राह्मणों में से किसी भी संत ने, जिन्होंने प्राचीन ग्रंथों की रचना और संरक्षण किया, ठीक वैसे ही जैसे ब्राह्मण आज श्लोकों का बार-बार पाठ करके उनका संरक्षण करते हैं, यह नहीं कहा कि मैं इन पाँच बातों को अनुभव से सिद्ध होने योग्य मानता हूँ और इनकी घोषणा करता हूँ। हे युवक, यह एक पंक्ति में खड़े अंधे लोगों के हाथ पकड़ने के समान है। पहला नहीं देख पाता, बीच वाला नहीं देख पाता और आखिरी वाला भी नहीं देख पाता। जब ऐसा है, तो ब्राह्मणों के शब्द अंधे लोगों की पंक्ति के शब्दों के समान हैं।

जब भगवान बुद्ध ने अंधों की पंक्ति का दृष्टांत दिया, तो युवक सुभा क्रोधित हो गया और भगवान बुद्ध को कोसते हुए बोला, "सन्यासी गौतम अपवित्र शब्द बोलते हैं।"

तब उस युवक सुभा ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे गौतम, प्रसन्न मुख वाले ब्राह्मण पोक्खरसाती कहते हैं कि यहाँ एक संन्यासी या ब्राह्मण मनुष्य से परे किसी महान ज्ञान और दृष्टि को स्वीकार करते हैं। ये निरर्थक शब्द हैं जो हँसी उत्पन्न करते हैं। मनुष्य उस महान ज्ञान और दृष्टि को कैसे जान, देख और अनुभव कर सकते हैं?"

"युवक, क्या मनमोहक मुख वाले ब्राह्मण पोक्खरसाती सभी संन्यासियों और ब्राह्मणों के मन को भेद कर देख सकते हैं?"

"ब्राह्मण पोक्खरसाती अपनी दासी पुन्ना के मन को भी नहीं जान सकता, तो वह सभी संन्यासियों और ब्राह्मणों के मन को कैसे जान पाएगा?"

"हे युवक, जन्म से अंधे व्यक्ति की तरह, जो काले-सफेद, नीले, पीले, लाल, भूरे, तारे, चंद्रमा और सूर्य को नहीं देख पाता, कहेगा। न तो काले-सफेद रंग की आकृतियाँ हैं और न ही उन्हें देखने वाले। न ही नीले, पीले, लाल और भूरे रंग की आकृतियाँ हैं और न ही उन्हें देखने वाले। न ही तारे, चंद्रमा और सूर्य हैं और न ही उन्हें देखने वाले। मैं इन्हें नहीं जानता और न ही मैंने इन्हें देखा है। इसलिए, ये अस्तित्व में नहीं हैं। हे युवक, क्या ये शब्द सही हैं?"

नहीं, हे गौतम जी, ऐसा नहीं है। काले और सफेद रूप हैं, और उन्हें देखने वाले भी हैं। नीले, पीले, लाल और भूरे रूप हैं, और उन्हें देखने वाले भी हैं। तारे, चंद्रमा और सूर्य हैं, और उन्हें देखने वाले भी हैं। ये कहना कि 'मैं इन्हें नहीं जानता, मैंने इन्हें नहीं देखा, इसलिए ये मौजूद नहीं हैं', उचित नहीं है।

हे युवक, उसी प्रकार, प्रसन्न मुख वाले ब्राह्मण पोक्खरसाती अंधे हैं, उनकी आंखें नहीं हैं। उनके लिए उस श्रेष्ठ ज्ञान और दृष्टि को देखना, जानना या अनुभव करना संभव नहीं है जो मनुष्य से परे है। हे कोसल के ब्राह्मण गृहस्थों, जैसे चांका, तारुक्खा, पोक्खरसाती, जानुसोनी और तुम्हारे पिता तोदेय्या, इनमें से श्रेष्ठ कौन है, वे जो सर्वमान्य मत का पालन करते हैं, या वे जो सर्वमान्य मत का पालन नहीं करते?

"हे गौतम, जो लोग स्वीकृत संस्करण बोलते हैं वे श्रेष्ठ होते हैं।"

"श्रेष्ठ कौन हैं, वे जो बोलने से पहले अच्छी तरह सोचते हैं, या वे जो बोलने से पहले अच्छी तरह नहीं सोचते?"

"हे गौतम, बोलने से पहले अच्छी तरह सोच-विचार करने वाले ही श्रेष्ठ होते हैं।"

"श्रेष्ठ कौन हैं, वे जो सोच-विचार करके बोलते हैं, या वे जो बिना सोचे-समझे बोलते हैं?"

"हे गौतम, जो सोच-समझकर बोलते हैं वे श्रेष्ठ होते हैं।"

"श्रेष्ठ कौन हैं, सार्थक शब्द बोलने वाले या निरर्थक शब्द बोलने वाले?"

"हे गौतम, सार्थक शब्द बोलने वाले ही श्रेष्ठ होते हैं।"

"युवक, यदि ऐसा है तो क्या ब्राह्मण पोक्खरसाती सामान्यतः स्वीकृत बात कहता है या असामान्य बात?"

"वाह गौतम, वो तो आम तौर पर अस्वीकृत बातें बोलता है।"

"क्या वह सोच-समझकर बोलता है या बिना सोचे-समझे बोलता है?"

"हे भगवान गौतम, ये तो बिना सोचे-समझे बोल देते हैं।"

"क्या वह सोच-विचार करने के बाद बोलता है, या बिना सोचे-समझे बोलता है?"

"वाह गौतम, वो बिना सोचे समझे ही बोल देते हैं।"

"क्या वह सार्थक शब्द बोलता है, या निरर्थक शब्द?"

"अच्छा गौतम, वो निरर्थक बातें बोलता है।"

"हे युवक, ये पाँच बाधाएँ हैं। ये पाँच क्या हैं? कामुकता में रुचि एक बाधा है। क्रोध एक बाधा है। आलस्य और सुस्ती एक बाधा है। बेचैनी और चिंता एक बाधा है। संदेह एक बाधा है। प्रसन्न चेहरे वाला ब्राह्मण पोक्खरसाती भी इन पाँच बाधाओं से घिरा हुआ है, जिसके कारण उसके लिए मनुष्य से ऊपर किसी श्रेष्ठ गुण को देखना, जानना और अनुभव करना असंभव है।"

हे युवक, ये पाँच इंद्रिय सुखों के सूत्र हैं। ये पाँच क्या हैं? आँखों से दिखाई देने वाले सुखद रूप, जो स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं... ध्वनियाँ, गंध, स्वाद और शरीर से दिखाई देने वाले सुखद स्पर्श, जो स्नेह और कामुक इच्छाओं को जगाते हैं। ये पाँच इंद्रिय सुखों के सूत्र हैं। प्रसन्न मुख वाला ब्राह्मण पोक्खरसाती पाँच इंद्रिय सुखों का अनुभव करता है, बंध जाता है, बेहोश हो जाता है और गुलाम बन जाता है, खतरे और उससे बचने के रास्ते को नहीं देख पाता; उसके लिए मनुष्य से ऊपर किसी श्रेष्ठ गुण को देखना, जानना और महसूस करना संभव नहीं है। हे युवक, क्या आग घास और लकड़ियों पर टिकी हुई जलती है या बिना घास और लकड़ियों के टिके? आग की लौ, रंग और चमक कैसी होगी?

"हे गौतम, यदि आग घास और लकड़ियों के सहारे के बिना भी जलती है, तो भी उसकी लौ, रंग और दीप्ति विद्यमान रहेगी।"

हे युवक, बिना घास और लकड़ियों के आग का जलना किसी अलौकिक शक्ति के बिना संभव नहीं है। पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों से उत्पन्न होने वाला आनंद, घास और लकड़ियों के सहारे जलने वाली आग के समान है। हे युवक, वह आनंद क्या है जो पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों और दोषों के विचारों से दूर रहकर उत्पन्न होता है? हे युवक, इंद्रिय इच्छाओं और क्रोधपूर्ण विचारों से मुक्त भिक्षु प्रथम ध्यान में रहता है। यही इंद्रिय इच्छाओं और क्रोधपूर्ण विचारों से मुक्त आनंद है। फिर, विचारों और चिंतन प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करने वाला भिक्षु द्वितीय ध्यान में रहता है। यही भी इंद्रिय इच्छाओं और क्रोधपूर्ण विचारों से मुक्त आनंद है। हे युवक, ब्राह्मणों द्वारा बताए गए पाँचों गुणों में से कौन सा गुण पुण्य प्राप्ति और संचय के लिए सबसे महत्वपूर्ण है?

"हे गौतम, ब्राह्मणों द्वारा पुण्य संचय और प्राप्ति के लिए बताई गई पाँच बातों में से सबसे महत्वपूर्ण परोपकार है।"

"युवक, एक ब्राह्मण ने महान यज्ञ किया। दो ब्राह्मण वहाँ आए, उन्हें उस ब्राह्मण के यज्ञ के बारे में पता था। उनमें से एक ब्राह्मण के मन में विचार आया, 'अच्छा होगा यदि मुझे भोजनालय में सबसे प्रमुख स्थान, सबसे ऊँचा आसन, जल का पहला पात्र और पहला निवाला दिया जाए।' संयोगवश, किसी अन्य ब्राह्मण को भोजनालय में सबसे प्रमुख स्थान, सबसे ऊँचा आसन, जल का पहला पात्र और पहला निवाला प्राप्त हो गया। वह यह सोचकर क्रोधित और विमुख हो गया कि किसी अन्य ब्राह्मण को सबसे प्रमुख आसन, जल का पहला पात्र और पहला निवाला प्राप्त हुआ है। इस ब्राह्मण को क्या लाभ हुआ?"

"हे गौतम, ब्राह्मणों, इस प्रकार यज्ञ न करो जिससे दूसरे क्रोधित और विमुख हो जाएं। ब्राह्मण करुणा से दान देते हैं।"

"युवक, यदि ऐसा है तो क्या ब्राह्मणों के पास पुण्य संचय और प्राप्ति के लिए कोई छठी वस्तु है?"

"हे गौतम, जब ऐसा है तो ब्राह्मणों के पास पुण्य की प्राप्ति और संचय के लिए एक छठी चीज भी है।"

"युवक, ब्राह्मणों ने पुण्य संचय और प्राप्ति के लिए पाँच बातें बताई हैं, आप इन बातों को किन लोगों में अधिक प्रचलित देखते हैं, गृहस्थों में या तपस्वियों में?"

हे गौतम, ब्राह्मणों द्वारा पुण्य प्राप्ति और संचय के लिए बताए गए ये पाँच गुण मुझे अधिकतर संन्यासी पुरुषों में और गृहस्थों में कम ही दिखाई देते हैं। गृहस्थों के महत्वपूर्ण, सक्रिय, सेवाभावी और संहार संबंधी कार्य सदा निष्ठावान नहीं होते। वहीं संन्यासी पुरुषों के अल्प, सक्रिय, सेवाभावी और संहार संबंधी कार्य सदा निष्ठावान होते हैं। महत्वपूर्ण, सक्रिय, सेवाभावी और संहार संबंधी कार्य करने वाले गृहस्थ सदा संयमी, उच्च आजीविका वाले, शिक्षित और परोपकारी नहीं होते। अल्प, सक्रिय, सेवाभावी और संहार संबंधी कार्य करने वाले संन्यासी पुरुष सदा संयमी, उच्च आजीविका वाले, शिक्षित और परोपकारी होते हैं। ब्राह्मणों द्वारा पुण्य प्राप्ति और संचय के लिए बताए गए ये पाँच गुण मुझे अधिकतर संन्यासी पुरुषों में और गृहस्थों में कम ही दिखाई देते हैं।

हे युवक, ब्राह्मणों द्वारा पुण्य संचय और प्राप्ति के लिए बताए गए ये पाँच वचन, मैं घोषणा करता हूँ, मन को दुर्भावना और क्रोध से मुक्त करने वाले सहायक साधन हैं। हे युवक, भिक्षु सत्यवादी हो जाता है। वह सत्य का ज्ञान प्राप्त करके, शिक्षा और शिक्षा के ज्ञान का आनंद अनुभव करता है। पुण्य के साथ प्राप्त उस आनंद को मैं मन का सहायक साधन कहता हूँ, जो मन को दुर्भावना और क्रोध से मुक्त करता है। भिक्षु तपस्वी हो जाता है, पवित्र जीवन व्यतीत करता है, विद्वान हो जाता है, परोपकारी हो जाता है। वह परोपकार का ज्ञान प्राप्त करके, शिक्षा और शिक्षा के ज्ञान का आनंद अनुभव करता है। पुण्य के साथ प्राप्त उस आनंद को मैं मन का सहायक साधन कहता हूँ, जो मन को दुर्भावना और क्रोध से मुक्त करता है। हे युवक, ब्राह्मणों द्वारा पुण्य संचय और प्राप्ति के लिए बताए गए ये पाँच वचन, मैं घोषणा करता हूँ, मन को दुर्भावना और क्रोध से मुक्त करने वाले सहायक साधन हैं।

तब तोदेय्या के पुत्र सुभा नामक युवक ने भगवान बुद्ध से कहा, "मैंने सुना है कि गौतम संन्यासी ब्रह्मा के साथ जन्म लेने का मार्ग जानते हैं।"

"युवक, क्या नालाकारा गाँव इस जगह के पास है?"

"जी हां, गौतम, यह जगह यहीं पास में है।"

"एक युवक, जो नालाकारा गाँव में जन्मा और पला-बढ़ा है और वहाँ से चला गया है, उससे नालाकारा गाँव जाने का मार्ग पूछा जाए। क्या वह नालाकारा गाँव जाने का मार्ग बताने में संकोच करेगा या मूर्खता दिखाएगा? ठीक उसी प्रकार, जब तथागत से ब्रह्मा के साथ

जन्म लेने का मार्ग पूछा जाता है, तो वे न तो संकोच करते हैं और न ही मूर्खता दिखाते हैं। मैं ब्रह्मा के लोक को जानता हूँ, और ब्रह्मा के लोक की ओर जाने वाले मार्ग को भी जानता हूँ।"

"हे गौतम, यह अच्छा होगा यदि मुझे ब्रह्मा के लोक में जन्म लेने का मार्ग सिखाया जाए।"

"तो हे युवक, ध्यान से सुनो, मैं बताता हूँ," युवक मान गया और भगवान बुद्ध ने कहा। भिक्षु प्रेम और करुणा के विचारों से एक दिशा में व्याप्त होता है, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे, चारों ओर, हर दिशा में, हर परिस्थिति में, समस्त संसार में, वह क्रोध और द्वेष से रहित, असीम और अपार प्रेम और करुणा के विचारों से व्याप्त होता है। हे युवक, जब प्रेम और करुणा में मन का निर्बलीकरण इस प्रकार विकसित हो जाता है, तो कोई भी निर्धारित कर्म शेष नहीं रहता। [1] जैसे एक कुशल ढोलक वादक क्षण भर में चारों दिशाओं में संदेश प्रसारित कर देता है। उसी प्रकार, जब प्रेम और करुणा में मन का निर्बलीकरण इस प्रकार विकसित हो जाता है, तो कोई भी निर्धारित कर्म शेष नहीं रहता। यही ब्रह्मा के साथ जन्म लेने की विधि है। फिर भिक्षु करुणा के विचारों से एक दिशा में व्याप्त होता है, ...रे.... आंतरिक आनंद से, ...रे... समभाव से, उसी प्रकार दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे, चारों ओर, हर दिशा में, हर परिस्थिति में, समस्त संसार में, वह असीम और अपार समभाव से व्याप्त हैं, क्रोध और द्वेष से रहित। हे युवक, जब समभाव में मन की मुक्ति इस प्रकार विकसित हो जाती है, तो कोई भी संयमित कर्म शेष नहीं रहता। *1) जिस प्रकार एक कुशल ढोलक वादक क्षण भर में चारों दिशाओं में संदेश पहुंचा देता है, उसी प्रकार, जब समभाव में मन की मुक्ति इस प्रकार विकसित हो जाती है, तो कोई भी संयमित कर्म शेष नहीं रहता। ब्रह्मा के साथ जन्म लेने की यही विधि है।

तब तोदेय्या के पुत्र सुभा नामक युवक ने कहा, "हे गौतम, अब मैं समझ गया। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज़ अपनी जगह पर वापस आ गई हो। कोई ढकी हुई चीज़ प्रकट हो गई हो। मानो किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया जा रहा हो। मानो अंधकार में प्रकाश भेजा गया हो, ताकि दृष्टि रखने वाले लोग रूप देख सकें। हे गौतम ने अनेक प्रकार से शिक्षा की व्याख्या की है। अब मैं हे गौतम की शरण में, उनकी शिक्षा में और भिक्षुओं के समुदाय में आता हूँ। हे गौतम, आज से जीवन भर मुझे गृहस्थ शिष्य के रूप में स्वीकार करें। हे गौतम, अब हम चलते हैं। बहुत काम करना है।"

"युवक, जाओ! अगर तुम्हें लगता है कि यह उचित है।"

युवक सुभा प्रसन्न होकर अपनी सीट से उठा, भगवान बुद्ध की पूजा की और परिक्रमा की और चला गया।

उस समय ब्राह्मण जानुसोनी एक घोड़ी से जुती हुई पूरी तरह सफेद गाड़ी में सावत्थी से गुजर रहे थे। उन्होंने युवक सुभा को देखकर पूछा, "भव्य भारद्वाज इस समय कहाँ से आए हैं?"

"अब मैं गौतम नाम के संन्यासी की उपस्थिति से आया हूँ।"

"पवित्र भारद्वाज, संन्यासी गौतम की बुद्धिमत्ता के बारे में क्या सोचते हैं? क्या आप उन्हें बुद्धिमान मानते हैं?"

"सन्यासी गौतम की बुद्धिमत्ता को जानने वाला मैं कौन होता हूँ, यह तो उन्हीं की तरह किसी ऐसे व्यक्ति को जानना चाहिए, जो उनकी बुद्धिमत्ता की गहराई को जानता हो।"

"सचमुच अच्छे भारद्वाज ने संन्यासी गौतम की प्रशंसा की है।"

"मैं कौन हूँ, और यह संन्यासी गौतम कौन हैं? वास्तव में, जिनकी प्रशंसा होनी चाहिए, उनकी ही प्रशंसा की जानी चाहिए। अच्छे गौतम देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणों द्वारा पुण्य प्राप्ति और संचय के लिए बताई गई पाँच बातें, वे कहते हैं, क्रोध और द्वेष से मुक्त मन के विकास के लिए सहायक हैं।"

यह सुनकर ब्राह्मण जानुसोनी अपने सफेद रथ से उतरे, अपने शॉल को एक कंधे पर समेटा और हाथ जोड़कर उस ओर मुड़े जहाँ भगवान विराजमान थे, और बोले, "कोसल के राजा पसेनादि के लिए यह लाभ है, उनके लिए यह दुर्लभ लाभ है कि सिद्ध और सही मायने में प्रबुद्ध तथागत कोसल के राजा पसेनादि के राज्य में निवास करते हैं।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 10.10 संगरव सुत्त(100)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना। एक समय भगवान बुद्ध भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ कोसल का भ्रमण कर रहे थे। उस समय चंदालकप्पा में धनंजनी नाम की एक ब्राह्मण स्त्री रहती थी, जो भगवान बुद्ध, उनके उपदेशों और भिक्षु समुदाय में श्रद्धा रखती थी। तब धनंजनी ने जमीन पर गिरकर तीन बार यह गंभीर शब्द कहा, 'मैं उस पूर्ण और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान बुद्ध की पूजा करती हूँ।' उसी समय चंदालकप्पा में संगरव नाम का एक युवक रहता था, जो तीनों वेदों, शब्दों की ध्वनिविज्ञान और व्युत्पत्ति और एक महान पुरुष के लक्षणों का ज्ञाता था। संगरव ने धनंजनी को ये शब्द कहते हुए सुना और कहा, 'धनंजनी नाम की ब्राह्मण स्त्री नीच है और तिरस्कृत होनी चाहिए, क्योंकि वह ब्राह्मणों की उपेक्षा करती है और मुंडे हुए भिक्षुओं की बहुत प्रशंसा करती है।'

हे शुभ मुख वाले, तुम उस भगवान के गुणों और ज्ञान को नहीं जानते; यदि तुम उनके गुणों और ज्ञान को जानते तो उन्हें डांटने और उनकी निंदा करने के बारे में न सोचते।

"तो जब संन्यासी गौतम चंदालकप्पा आएं तो मुझे इसके बारे में बता देना।"

"जी हां, मैं करूंगी, अच्छे लड़के," ब्राह्मण स्त्री धनाजनी ने युवा ब्राह्मण संगरवा से कहा।

भगवान बुद्ध कोसल पर्वतमाला में भ्रमण करते हुए चांडालकप्पा पहुंचे और ब्राह्मण तोदेय्या के आम के बाग में रहने लगे। ब्राह्मण स्त्री धनाजनी ने सुना कि भगवान बुद्ध चांडालकप्पा पहुंचे हैं और ब्राह्मण तोदेय्या के आम के बाग में रह रहे हैं। वह युवक संगरवा के पास गईं और उनसे कहा, "हे स्वामी, भगवान बुद्ध चांडालकप्पा पहुंचे हैं और ब्राह्मण तोदेय्या के आम के बाग में रह रहे हैं। अब तुम्हारे लिए अपनी इच्छा पूरी करने का समय है।"

ब्राह्मण संगरव ने कहा, 'जी हां, मैं जाऊंगा।' वे भगवान बुद्ध के पास पहुंचे, सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, 'हे गौतम, ऐसे संन्यासी और ब्राह्मण हैं जो यह स्वीकार करते हैं कि उन्होंने ज्ञान प्राप्त कर लिया है और इसी क्षण मूलभूत सिद्धांतों तक पहुंच गए हैं। इन संन्यासियों और ब्राह्मणों के बारे में, जो यह स्वीकार करते हैं कि उन्होंने ज्ञान प्राप्त कर लिया है और इसी क्षण मूलभूत सिद्धांतों तक पहुंच गए हैं, हे गौतम, क्या कहना चाहते हैं?'

भारद्वाज, ज्ञान प्राप्ति और मूलभूत सिद्धांतों तक पहुँचने वाले इन संन्यासियों और ब्राह्मणों में मैं एक अंतर स्पष्ट करता हूँ। कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे हैं जो सुनी-सुनाई बातों से ज्ञान प्राप्ति और मूलभूत सिद्धांतों तक पहुँचने को स्वीकार करते हैं। जैसे वे ब्राह्मण जिन्होंने तीनों वेदों का ज्ञान प्राप्त किया है। कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे हैं जो केवल विश्वास के माध्यम से ज्ञान प्राप्ति और मूलभूत सिद्धांतों तक पहुँचने को स्वीकार करते हैं। जैसे तार्किक चिंतन और विवेक से। कुछ संन्यासी और ब्राह्मण ऐसे हैं जो अनसुनी बातों को जानकर और स्वयं उनका अनुभव करके ज्ञान प्राप्ति और मूलभूत सिद्धांतों तक पहुँचने को स्वीकार करते हैं। भारद्वाज, मैं उन संन्यासियों और ब्राह्मणों में से हूँ जो अनसुनी बातों को जानकर और स्वयं उनका अनुभव करके ज्ञान प्राप्ति और मूलभूत सिद्धांतों तक पहुँचने को स्वीकार करते हैं। भारद्वाज, आपको यह जानना चाहिए कि मैं संन्यासियों और ब्राह्मणों की श्रेणी में आता हूँ, जो ज्ञान की प्राप्ति और मूलभूत सिद्धांतों तक पहुँचने को उन चीजों को जानने के माध्यम से स्वीकार करते हैं जिनके बारे में पहले कभी सुना नहीं गया हो, और उन्हें इस प्रकार स्वयं अनुभव करते हैं।

भारद्वाज, ज्ञान प्राप्ति से पहले, जब मैं प्रबुद्ध नहीं था, बल्कि ज्ञान का साधक था, तब मेरे मन में यह विचार आया: गृहस्थ जीवन कष्टों और दोषों से भरा है। गृहस्थ जीवन में रहकर पूर्णतः पवित्र और शुद्ध जीवन व्यतीत करना संभव नहीं है। यदि मैं सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके गृहस्थी में चला जाऊं तो क्या होगा? यौवन में ही, काले बालों के साथ, माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध, जब वे रो रहे थे, मैंने सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके गृहस्थी त्याग दी और संन्यासी बन गया। पुण्य का साधक और अतुलनीय शांति की प्राप्ति का साधक बनकर, मैं आलार कलाम के पास गया और कहा: 'आदरणीय, मैं इस युग में पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहता हूं।' 'आओ मित्र, ज्ञानी लोग शीघ्र ही इस शिक्षा को समझ लेते हैं और गुरु के समान जीवन व्यतीत करते हैं।' भारद्वाज, मैंने शीघ्र ही उस शिक्षा को सीख लिया और बड़ों की तरह उच्चारण और पाठ करके यह स्वीकार किया कि मैं जानता और

देखता हूं। तब मुझे यह बात सूझी कि मात्र इसी आस्था से, जिसे आलारा कलाम स्वीकार नहीं करेंगे, मैं इस शिक्षा को जानता और अनुभव करता हूँ। वास्तव में वे इस शिक्षा को जानते और देखते हुए विद्यमान हैं। तब मैं आलारा कलाम के पास गया और उनसे पूछा, हे पूज्यवर, आप इस शिक्षा को जानते और अनुभव करते हुए कैसे विद्यमान रहते हैं? आलारा कलाम ने शून्यता के क्षेत्र की घोषणा की। तब मुझे यह बात सूझी कि केवल आलारा कलाम ही नहीं, मेरे पास भी आस्था, प्रयास, सजगता, एकाग्रता और ज्ञान है। मैं भी उनके द्वारा अनुभव की गई इस शिक्षा को अनुभव करने का प्रयास करूँगा। कुछ ही समय में मैंने उस शिक्षा को अनुभव कर लिया। तब मैं आलारा कलाम के पास गया और पूछा, हे पूज्यवर, क्या यही वह शिक्षा है जिसे आपने अनुभव किया है? मित्र, मैंने बस इतना ही ज्ञान प्राप्त किया है, यही मैं घोषित करता हूँ और इसी में रहता हूँ। तब मैंने कहा, मैंने भी इतना ही ज्ञान प्राप्त किया है और इसी में रहता हूँ। आदरणीय, पवित्र जीवन में आप जैसे सहपाठी मिलना हमारे लिए दुर्लभ सौभाग्य है। मैंने जो ज्ञान प्राप्त किया है, वही आपने भी प्राप्त किया है। अतः, जो भी ज्ञान मैं जानता हूँ, वही आप भी जानते हैं। अब हम दोनों समान स्तर पर हैं। आइए मिलकर इस अनुयायी का मार्गदर्शन करें। भारद्वाज, मेरे गुरु आलार कलाम ने इसी प्रकार मुझे समान दर्जा दिया था। तब मुझे यह विचार आया: यह शिक्षा त्याग, वैराग्य, समाप्ति, तृप्ति, ज्ञान, आत्मज्ञान और मृत्यु की ओर नहीं ले जाती। यह केवल शून्यता के क्षेत्र की ओर ले जाती है। संतुष्ट न होकर मैंने इससे विमुख हो गया।

शुभ कर्मों का साधक बनकर और अतुलनीय शांति की खोज में, मैं उद्दक रामपुत्त के पास गया और बोला, "हे पूज्यवर, मैं इस युग में पवित्र जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ।" उन्होंने कहा, "आओ मित्रो, शीघ्र ही इस शिक्षा को समझो और गुरु के समान रहो।" भारद्वाज, मैंने शीघ्र ही उस शिक्षा को स्वीकार करना, जानना और देखना, और बड़ों की तरह उच्चारण और पाठ करना सीख लिया। तब मुझे यह बात समझ में आई। केवल इस विश्वास से उद्दक रामपुत्त यह स्वीकार नहीं करेंगे कि मैं इस शिक्षा को जानता और समझ चुका हूँ। वास्तव में वे इस शिक्षा को जानते और देखते हुए ही रहते हैं। तब मैं उद्दक रामपुत्त के पास गया और उनसे पूछा, "हे पूज्यवर, आप इस शिक्षा को कैसे जानते और समझते हैं?" उद्दक रामपुत्त ने कहा कि यह न तो बोध के क्षेत्र में है और न ही अबोध के क्षेत्र में। भारद्वाज, तब मुझे यह बात समझ में आई। केवल उद्दक रामपुत्त ही आस्था, प्रयास, सजगता, एकाग्रता और ज्ञान से परिपूर्ण नहीं हैं। मुझमें भी आस्था, प्रयास, सजगता, एकाग्रता और ज्ञान है। यदि मैं इसे प्राप्त करने का प्रयास करूँ तो क्या होगा? शीघ्र ही मुझे वह शिक्षा प्राप्त हो गई। तब मैं उद्दक रामपुत्त के पास गया और उनसे पूछा, "आदरणीय, क्या आपने इतनी ही शिक्षा प्राप्त की है?" उन्होंने कहा, "मित्र, मैंने यही शिक्षा प्राप्त की है, इसका प्रचार करो और इसमें स्थिर रहो।" तब मैंने कहा, "मैंने भी इतना ही प्राप्त किया है और इसमें स्थिर रहता हूँ।" उन्होंने कहा, "आदरणीय, पवित्र जीवन में आप जैसे सहपाठियों का मिलना हमारे लिए दुर्लभ सौभाग्य है। मैंने जो शिक्षा प्राप्त की है, आपने भी वही प्राप्त की है। अतः जो शिक्षा मैं जानता हूँ, आप भी जानते हैं। अब हम दोनों समान स्तर पर हैं। आओ मित्र, तुम इस अनुयायी का मार्गदर्शन करो।" इस प्रकार मेरे सहपाठी उद्दक रामपुत्त ने मुझे अपना गुरु बना दिया। तब मुझे यह बात समझ में आई। यह शिक्षा त्याग, वैराग्य, समाप्ति, तुष्टीकरण, ज्ञानोदय और मृत्यु की ओर नहीं ले जाती। यह केवल न-बोध-न-बोध के क्षेत्र तक ही ले जाती है। संतुष्ट न होकर मैंने इससे मुंह मोड़ लिया।

शुभ कर्मों का साधक बनकर और अतुलनीय शांति की खोज में मैं उरुवेला के सेनानी गाँव में आया। वहाँ मैंने एक सुंदर भूभाग देखा, जिसमें एक जंगल, सफेद किनारों वाली बहती नदी और पास में ही पशु चराने के लिए एक गाँव था। तब मेरे मन में यह विचार आया: सचमुच यह भूभाग सुंदर है, यहाँ जंगल है, बहती नदी है और पास में ही पशु चराने के लिए एक गाँव है। तब मैं बैठकर सोचने लगा कि यह तो कुल के किसी व्यक्ति के लिए परिश्रम करने का आदर्श स्थान है। भारद्वाज, मेरे मन में तीन ऐसी तुलनाएँ आईं जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थीं। जैसे कोई व्यक्ति पानी में रखे गीले, रसीले लट्ठे पर ओढ़नी रखकर कहे, मैं इससे आग जलाऊँगा। भारद्वाज, क्या वह उस गीले, रसीले लट्ठे को रगड़कर आग जला पाएगा? नहीं, हे गौतम। इसका कारण क्या है? पानी में रखे उस गीले, रसीले लट्ठे को ओढ़नी से रगड़ने पर आग नहीं लगेगी। उस व्यक्ति को केवल परिश्रम ही मिलेगा। इसी प्रकार, जब संन्यासी या ब्राह्मण शारीरिक रूप से भी कामुकता से दूर नहीं रहते, तब भी उनकी कामुक रुचि, कामुक आवश्यकता, कामुक सुस्ती, कामुक प्यास और कामुक प्रज्वलन आंतरिक रूप से वश में नहीं रहते। वे तीव्र, कठोर और अप्रिय भावनाओं का अनुभव करते हैं और उनके लिए ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञान का अहसास होना संभव नहीं है... भले ही इन अच्छे संन्यासियों और ब्राह्मणों को तीव्र, कठोर और अप्रिय भावनाएं महसूस न हों, फिर भी उनके लिए ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञान का अहसास होना संभव नहीं है। यह पहली उपमा है जो मेरे मन में आई, जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी। भारद्वाज, फिर एक और उपमा मेरे मन में आई जो मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी। एक आदमी सूखे, पानी से दूर रखे हुए रसीले लट्ठे के पास एक आवरण लेकर आता है और कहता है, मैं इससे आग जलाऊंगा। भारद्वाज, क्या वह पानी से दूर सूखे, ज़मीन पर रखे उस रसीले लट्ठे को रगड़कर आग जला पाएगा? हे गौतम, वह रसीली लकड़ी, चाहे पानी से कितनी भी दूर हो, ऊपर से रगड़ने पर भी आग नहीं पैदा करेगी। उससे केवल थकान ही प्राप्त होगी। उसी प्रकार, वे संन्यासी और ब्राह्मण जो शारीरिक रूप से भी कामुकता से मुक्त नहीं रहते, उनकी आंतरिक कामुकता, आवश्यकता, सुस्ती, प्यास और तृष्णा शांत न होने पर तीव्र, अप्रिय और कष्टदायक भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। उनके लिए ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है। भले ही इन संन्यासियों और ब्राह्मणों को तीव्र, अप्रिय और कष्टदायक भावनाएँ न हों, फिर भी उनके लिए ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है। यह दूसरी तुलना है जो मुझे पहले कभी नहीं सुनी थी।

भारद्वाज, मेरे मन में एक तीसरा उदाहरण आया जो मैंने पहले कभी नहीं सुना था। जैसे कोई व्यक्ति पानी से दूर फेंके गए सूखे, रसहीन लट्ठे पर आवरण ओढ़कर कहे कि मैं इससे आग जलाऊँगा। भारद्वाज, क्या वह पानी से दूर फेंके गए उस सूखे, रसहीन लट्ठे को रगड़कर आग जला पाएगा? जी हाँ, गौतम जी। इसका कारण क्या है? पानी से दूर फेंके गए उस सूखे, रसहीन लट्ठे को आवरण से रगड़ने पर आग लग जाएगी। उसी प्रकार, संन्यासी और ब्राह्मण जो शारीरिक रूप से कामुकता से विरक्त रहते हैं, उनकी कामुक रुचि, कामुक आवश्यकता, कामुक सुस्ती, कामुक प्यास और कामुक ज्वालाएँ आंतरिक रूप से सुलझ जाने पर तीव्र, कठोर और अप्रिय भावनाओं का अनुभव करते हैं। फिर भी यह संभव है कि वे ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञानोदय को प्राप्त कर लें... भले ही इन अच्छे संन्यासियों और ब्राह्मणों को तीव्र, कठोर और अप्रिय भावनाएँ न हों, फिर भी यह संभव है कि वे ज्ञान, दृष्टि और श्रेष्ठ ज्ञानोदय को प्राप्त कर लें। यह तीसरी तुलना है जो मुझे पहले कभी नहीं सुनी गई।

भारद्वाज, मेरे मन में यह विचार आया, क्या होगा यदि मैं ऊपरी जबड़े को निचले जबड़े पर दबाऊँ, जीभ को तालू पर दबाकर मन के विचारों को बाहर निकालूँ, उन्हें जला दूँ? फिर, बगलों से पसीना टपकते हुए भी, मैंने ऊपरी जबड़े को निचले जबड़े पर दबाया, जीभ को तालू पर दबाकर मन के विचारों को बाहर निकालूँ, उन्हें जला दूँ। जैसे कोई बलवान व्यक्ति किसी दुर्बल को पकड़कर उसे दबाता है और उसे परेशान करता है, उसी प्रकार मैंने ऊपरी जबड़े को निचले जबड़े पर दबाया, जीभ को तालू पर दबाकर मन के विचारों को बाहर निकालूँ, उन्हें जला दूँ, जबकि बगलों से पसीना टपक रहा था। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, ध्यान स्थिर हुआ, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

भारद्वाज, तब मेरे मन में यह विचार आया कि क्या हो अगर मैं नाक और मुख से अंदर आने और बाहर जाने वाली सांसों को रोकने का अभ्यास करूँ? जब मैंने नाक और मुख से अंदर आने और बाहर जाने वाली सांसों को रोकने का अभ्यास किया, तो कान के लोबों से अंदर जाने वाली हवा से बहुत शोर हुआ। यह लोहार की धौंकनी की आवाज़ जैसा था। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक और मुख से अंदर आने और बाहर जाने वाली सांसों को रोका, तो कान के लोबों से अंदर जाने वाली हवा से बहुत शोर हुआ। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, मेरी जागरूकता स्थापित हुई, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

भारद्वाज, तब मेरे मन में यह विचार आया कि यदि मैं श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास और आगे बढ़ाऊँ तो क्या होगा। मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली वायु को रोक दिया। जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास किया, तो बहुत सी वायु ने मेरे सिर को अशांत कर दिया। ऐसा लगा जैसे कोई बलवान व्यक्ति तेज धार वाले ब्लेड से मेरे सिर को तराश रहा हो। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली श्वास लेने और छोड़ने को रोका, तो बहुत सी वायु ने मेरे सिर को अशांत कर दिया। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, मेरी जागरूकता स्थापित हुई, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

भारद्वाज, तब मेरे मन में यह विचार आया कि यदि मैं श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास और अधिक करूँ तो क्या होगा। मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली वायु को और अधिक रोकने का प्रयास किया। जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास और अधिक किया, तो मुझे सिर में बहुत दर्द हुआ... जैसे कोई बलवान व्यक्ति किसी के सिर पर मजबूत पगड़ी बाँध रहा हो। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली श्वास लेने और छोड़ने का अभ्यास और अधिक किया, तो मुझे सिर में बहुत दर्द हुआ। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, ध्यान की एकाग्रता स्थापित हुई, कठिन परिश्रम के कारण शरीर शांत नहीं हुआ।

भारद्वाज, तब मेरे मन में यह विचार आया कि यदि मैं श्वास लेने और छोड़ने को रोकने का अभ्यास अधिक समय तक करूँ तो क्या होगा। मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने वाली वायु को अधिक समय तक रोक दिया। जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने और छोड़ने वाली श्वास को अधिक समय तक रोकने का अभ्यास किया, तो मुझे पेट में बहुत दर्द हुआ। ऐसा लगा जैसे कोई कुशल कसाई या उसका शागिर्द कसाई के चाकू से पेट को काट रहा हो। ठीक उसी प्रकार जब मैंने नाक, मुख और कान के लोबों से प्रवेश करने और छोड़ने वाली श्वास को अधिक समय तक रोका, तो मुझे पेट में बहुत दर्द हुआ। मेरा प्रयास बार-बार जागृत हुआ, ध्यान की एकाग्रता स्थापित हुई। कठिन परिश्रम के कारण मेरा शरीर शांत नहीं हुआ।

भारद्वाज, तब मुझे यह विचार आया कि इस दुर्बल शरीर के साथ उस सुख को प्राप्त करना आसान नहीं है, यदि मैं कुछ सादा भोजन, कुछ पका हुआ चावल और रोटी खा लूँ तो क्या होगा? उस समय पाँचों भिक्षु मेरी सेवा में थे, यह सोचकर कि जो भी महान कार्य गौतम को प्राप्त होगा, वे हमें सूचित करेंगे। जब मैंने पका हुआ चावल और रोटी जैसा सादा भोजन ग्रहण किया, तो वे यह सोचकर चले गए कि गौतम ने परिश्रम त्याग दिया है और समृद्धि की ओर लौट गए हैं।

सामान्य भोजन ग्रहण करके और शक्ति प्राप्त करके, कामुक विचारों और अपगुणों से विरक्त होकर, एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होकर मैंने प्रथम ध्यान प्राप्त किया। विचारों और अपव्यय से विरक्त होकर, मन को आंतरिक रूप से शांत करके और एक बिंदु पर स्थिर करके, बिना विचारों और अपव्यय से परिपूर्ण होकर, एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से परिपूर्ण होकर मैंने द्वितीय ध्यान प्राप्त किया। समभाव से आनंद और वैराग्य के साथ सचेत और जागरूक होकर, शरीर से सुख का अनुभव करते हुए मैंने तृतीय ध्यान प्राप्त किया। इस अवस्था में रहने पर श्रेष्ठजनों ने कहा, सुख में सचेत होकर रहना। सुख और दुःख को दूर करके, और पहले सुख और दुःख को दूर करके, बिना दुःख और दुःख के, समभाव से शुद्ध होकर, मैंने चतुर्थ ध्यान प्राप्त किया।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित था, तब मैंने अपने मन को पूर्व जन्मों के ज्ञान की ओर लगाया। मैंने अनेक जन्मों का स्मरण किया - एक जन्म, दो जन्म, तीन, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ जन्म, हज़ार जन्म, एक लाख जन्म, अनगिनत आगे के जन्म चक्र, अनगिनत पीछे के जन्म चक्र, अनगिनत आगे और पीछे के जन्म चक्र। वहाँ मेरा ऐसा नाम, ऐसा कुल, ऐसा स्वभाव, ऐसा आधार था, मुझे ऐसे सुख-दुख का अनुभव होता था और मेरी आयु ऐसी थी। वहाँ से विलीन होकर मैं वहाँ ऐसे नाम, ऐसे कुल, ऐसे स्वभाव, ऐसे आधारों के साथ, ऐसे सुख-दुख का अनुभव करते हुए, ऐसी आयु के साथ जन्म लेता हूँ, वहाँ से विलीन होकर यहाँ जन्म लेता हूँ। इस प्रकार मैंने सभी गुणों और सभी विवरणों के साथ अनेक जन्मों का स्मरण किया। भारद्वाज, यह वह पहला ज्ञान है जो मुझे रात्रि के पहले पहर में प्राप्त हुआ, अज्ञान का निवारण हुआ, ज्ञान का उद्भव हुआ, जैसा कि अज्ञान को दूर करने के लिए लगन से रहने वालों के साथ होता है।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित था, तब मैंने प्राणियों के प्रकट होने और लुप्त होने के ज्ञान की ओर अपना ध्यान केंद्रित किया। मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से मैंने प्राणियों को प्रकट होते और लुप्त होते देखा - उदात्त और उदात्त, सुंदर और कुरूप, अपने कर्मों के अनुसार अच्छे और बुरे रूपों में उत्पन्न होते हुए। ये अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा करते हैं, कर्मों के गलत दृष्टिकोण से, मृत्यु के बाद हानि में, कमी में, नरक में जन्म लेते हैं। वहीं, ये अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से सुव्यवस्थित हैं, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते, कर्मों के सही दृष्टिकोण से, मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेते हैं। इस प्रकार मनुष्य से परे शुद्ध दिव्य दृष्टि से मैंने प्राणियों को प्रकट होते और लुप्त होते देखा। भारद्वाज, यह वह दूसरा ज्ञान है जो मैंने रात्रि के दूसरे पहर में प्राप्त किया। अज्ञान का निवारण हुआ और ज्ञान का उदय हुआ, जैसा कि उन लोगों के साथ होता है जो निवारण के लिए तल्लीन रहते हैं।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित था, तब मैंने मन को इच्छाओं के नाश की ओर निर्देशित किया। मैं जानता था कि यह अप्रिय है, यह अप्रियता का उद्भव है, यह अप्रियता का निवारण है और यह अप्रियता के निवारण का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। मैं जानता था कि ये इच्छाएँ हैं, इच्छाओं का उद्भव है, इच्छाओं का निवारण है और इच्छाओं के निवारण का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। मैंने उन्हें जाना और देखा और मन इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से, 'होने' की इच्छाओं से और अज्ञान-संबंधी इच्छाओं से मुक्त हो गया। मुक्त होने पर ज्ञान का उदय हुआ, मैं मुक्त हो गया, जन्म का नाश हुआ, जो करना चाहिए था वह हो गया। पवित्र जीवन अंत तक जिया गया। मैं जानता था, अब और कुछ चाहने को नहीं है। भारद्वाज, यह तीसरा ज्ञान है, जो मैंने रात्रि के अंतिम पहर में प्राप्त किया। अज्ञान का निवारण हुआ, ज्ञान का उदय हुआ, जैसा कि उन लोगों के साथ होता है जो निवारण के लिए तल्लीन रहते हैं।

तब ब्राह्मण संगरव ने कहा, "हे गौतम के महान प्रयास फलदायी हुए हैं। ये एक महान पुरुष के प्रयास हैं, जैसे कि पूर्णतः ज्ञान प्राप्त व्यक्ति के होते हैं। हे गौतम, क्या देवता होते हैं?"

हे भारद्वाज, यह कारण सहित जानना चाहिए कि क्या देवता हैं।

जब गौतम जी से पूछा गया कि क्या ईश्वर हैं, तो कहा गया कि ईश्वर हैं या नहीं, इसका उत्तर तर्क सहित जानना चाहिए। क्या ये शब्द व्यर्थ के झूठ नहीं हैं?

जब भारद्वाज से पूछा जाए कि क्या देवता हैं, चाहे उन्हें बताया जाए कि देवता हैं या यह तर्क सहित बताया जाए कि इसे जानना चाहिए, तो एक बुद्धिमान व्यक्ति को यही निष्कर्ष निकालना चाहिए कि देवता हैं।

'अच्छे गौतम ने मुझे यह बात पहले क्यों नहीं बताई?'

'भारद्वाज, यह मान लिया जाता है कि संसार में देवता हैं।'

तब युवक संगरवा ने कहा, "हे गौतम जी, अब मैं समझ गया। ऐसा लगता है जैसे कोई उलटी हुई चीज़ फिर से अपनी जगह पर रख दी गई हो। कोई ढकी हुई चीज़ प्रकट हो गई हो। ऐसा लगता है जैसे किसी भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाया गया हो। ऐसा लगता है जैसे अंधकार में दीपक जलाया गया हो, ताकि दृष्टि रखने वाले लोग रूप देख सकें। हे गौतम जी ने शिक्षा को अनेक तरीकों से समझाया है। अब मैं हे गौतम जी की शरण में, उनकी शिक्षा में और भिक्षुओं के समुदाय में आता हूँ। आज से जीवन भर मुझे एक गृहस्थ शिष्य के रूप में याद किया जाए।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.1देवदाहा सुत्त(101)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

अंतर्वस्तु
1गुण
2इंद्रिय संयम
3जागरूकता और सतर्कता
4बाधाओं को त्यागना
5चार ध्यान
6तीन ज्ञान
मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध शाक्यों के बीच ठहरे हुए थे। शाक्यों का एक नगर है जिसका नाम देवदहा है, और वहाँ भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"
"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।
भगवान बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, कुछ पुरोहित और ध्यानी इस प्रकार शिक्षा देते हैं, उनका यह मत है: 'मनुष्य जो भी अनुभव करता है—सुख, दुख, या न सुख न दुख—वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है। अतः, तपस्या द्वारा पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के त्याग से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत हो जाता है। कर्म के अंत से तनाव का अंत हो जाता है। तनाव के अंत से संवेदना का अंत हो जाता है। संवेदना के अंत से समस्त दुख और तनाव का अंत हो जाता है।' यही निगंथों की शिक्षा है।"
"इस प्रकार शिक्षा देने वाले निगंथों के पास जाकर मैंने उनसे पूछा, 'हे मित्र निगंथों, क्या यह सत्य है कि आप इस प्रकार शिक्षा देते हैं, कि आपका यह मत है: 'मनुष्य जो कुछ भी अनुभव करता है - सुख, दुख, या न सुख न दुख - वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है। अतः, तपस्या के द्वारा पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के त्याग से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत हो जाता है। कर्म के अंत से तनाव का अंत हो जाता है। तनाव के अंत से भावों का अंत हो जाता है। भावों के अंत से समस्त दुख और तनाव समाप्त हो जाते हैं'?"
"जब मैंने उनसे यह पूछा, तो निगांथाओं ने इसे स्वीकार करते हुए कहा, 'हाँ।'"
"तो मैंने उनसे कहा, 'लेकिन दोस्तों, क्या आप जानते हैं कि आप अतीत में अस्तित्व में थे, और यह कि आप अस्तित्वहीन नहीं थे?'"
"'नहीं, दोस्त।'"
"'और क्या तुम जानते हो कि तुमने अतीत में बुरे कर्म किए हैं, और यह भी कि तुमने उन्हें नहीं किया?'"
"'नहीं, दोस्त।'"
"'और क्या आप जानते हैं कि आपने अतीत में ऐसे-ऐसे बुरे काम किए हैं?'"
"'नहीं, दोस्त।'"
"'और क्या आप जानते हैं कि इतना तनाव समाप्त हो चुका है, या इतना तनाव अभी समाप्त होना बाकी है, या इतना तनाव समाप्त होने के साथ ही सारा तनाव समाप्त हो जाएगा?'"
"'नहीं, दोस्त।'"
"लेकिन क्या आप जानते हैं कि अकुशल मानसिक गुणों का त्याग और कुशल मानसिक गुणों की प्राप्ति वर्तमान क्षण में क्या होती है?"

"'नहीं, दोस्त।'"

तो मित्रों, ऐसा लगता है कि आप यह नहीं जानते कि आप अतीत में विद्यमान थे, और न ही आप विद्यमान नहीं थे... आप यह नहीं जानते कि अकुशल मानसिक गुणों का त्याग और वर्तमान में कुशल मानसिक गुणों की प्राप्ति क्या है। ऐसे में, आपके लिए यह कहना उचित नहीं है कि, "मनुष्य जो कुछ भी अनुभव करता है - सुख, दुख, या न सुख न दुख - वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है। अतः, तपस्या के द्वारा पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के त्याग से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत होता है। कर्म के अंत से तनाव का अंत होता है। तनाव के अंत से भावों का अंत होता है। भावों के अंत से समस्त दुख और तनाव समाप्त हो जाते हैं।"

"यदि आप जानते हैं कि आपका अतीत में अस्तित्व था, और यह भी कि आपका अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ; यदि आप जानते हैं कि आपने अतीत में बुरे कर्म किए थे, और यह भी कि आपने उन्हें समाप्त नहीं किया; यदि आप जानते हैं कि आपने अतीत में अमुक-अमुक बुरे कर्म किए थे; आप यह नहीं जानते कि अमुक-अमुक तनाव समाप्त हो गया है, या अमुक-अमुक तनाव समाप्त होना बाकी है, या अमुक-अमुक तनाव के समाप्त होने से सभी तनाव समाप्त हो जाएंगे; यदि आप जानते हैं कि अकुशल मानसिक गुणों का त्याग और कुशल मानसिक गुणों की प्राप्ति वर्तमान क्षण में क्या है, तो—ऐसी स्थिति में—आपके लिए यह कहना उचित होगा कि, "व्यक्ति जो कुछ भी अनुभव करता है—सुख, दुख, या न सुख न दुख—वह सब अतीत में किए गए कर्मों के कारण होता है। इस प्रकार, तपस्या के माध्यम से पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के न करने से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत हो जाता है।" कर्म के अंत के साथ तनाव का अंत होता है। तनाव के अंत के साथ भावनाओं का अंत होता है। भावनाओं के अंत के साथ, सभी दुख और तनाव समाप्त हो जाएंगे।

"मित्र निगंथस, ऐसा मान लो कि किसी व्यक्ति को विष से लथपथ तीर लग गया हो। तीर लगने से उसे असहनीय, तीखा और असहनीय दर्द होगा। उसके मित्र, साथी, रिश्तेदार और सगे-संबंधी उसके लिए एक सर्जन लाएंगे। सर्जन चाकू से घाव के चारों ओर चीरा लगाएगा। सर्जन द्वारा चाकू से घाव के चारों ओर चीरा लगाने से उस व्यक्ति को असहनीय, तीखा और असहनीय दर्द होगा। सर्जन एक औजार से तीर को टटोलेगा। सर्जन द्वारा औजार से तीर को टटोलने से उस व्यक्ति को असहनीय, तीखा और असहनीय दर्द होगा। सर्जन फिर तीर को बाहर निकालेगा। सर्जन द्वारा तीर निकालने से उस व्यक्ति को असहनीय, तीखा और असहनीय दर्द होगा। सर्जन फिर घाव के मुँह पर जलन पैदा करने वाली दवा लगाएगा। सर्जन द्वारा घाव के मुँह पर जलन पैदा करने वाली दवा लगाने से उस व्यक्ति को असहनीय, तीखा और असहनीय दर्द होगा। लेकिन फिर कुछ समय बाद, जब घाव भर जाएगा..." जब घाव भर गया और त्वचा आ गई, तो वह स्वस्थ और खुश, स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और जहाँ चाहे वहाँ जाने में सक्षम होगा। उसके मन में यह विचार आता, "पहले मुझे विष से सना हुआ तीर लगा था। तीर लगने के कारण मुझे असहनीय, तीखा और असहनीय दर्द हुआ। मेरे मित्रों, साथियों, रिश्तेदारों और सगे-संबंधियों ने मुझे एक सर्जन के पास बुलाया... सर्जन ने चाकू से घाव के चारों ओर चीरा लगाया... एक औजार से तीर को ढूँढा... तीर को बाहर निकाला... और घाव के मुँह पर जलन पैदा करने वाली दवा लगाई। जलन पैदा करने वाली दवा लगाने के कारण मुझे असहनीय, तीखा और असहनीय दर्द हुआ। लेकिन अब जब घाव भर गया है और त्वचा आ गई है, तो मैं स्वस्थ और खुश, स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और जहाँ चाहे वहाँ जाने में सक्षम हूँ।"

"इसी प्रकार, हे मित्र निगंथों, यदि तुम जानते कि तुम्हारा अतीत में अस्तित्व था, और तुम्हारा अस्तित्व समाप्त नहीं हुआ... यदि तुम जानते कि अकुशल मानसिक गुणों का त्याग और वर्तमान में कुशल मानसिक गुणों की प्राप्ति क्या है, तो—ऐसा होने पर—तुम्हारे लिए यह कहना उचित होगा कि, "मनुष्य जो भी अनुभव करता है—सुख, दुख, या न सुख न दुख—वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है। अतः, तपस्या द्वारा पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के त्याग से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत होता है। कर्म के अंत से तनाव का अंत होता है। तनाव के अंत से भावों का अंत होता है।" भावों के अंत से समस्त दुख और तनाव दूर हो जाएंगे। परन्तु क्योंकि तुम यह नहीं जानते कि तुम अतीत में विद्यमान थे... तुम यह नहीं जानते कि अकुशल मानसिक गुणों का त्याग और वर्तमान में कुशल मानसिक गुणों की प्राप्ति क्या है, इसलिए यह कहना उचित नहीं है कि, "मनुष्य जो भी अनुभव करता है—सुख, दुख, या न सुख न दुख—वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है। अतः, तपस्या द्वारा पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के त्याग से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत होता है। कर्म के अंत से तनाव का अंत होता है। तनाव के अंत से भावों का अंत होता है। भावों के अंत से समस्त दुख और तनाव दूर हो जाएंगे।"

जब यह कहा गया, तो निगंथों ने मुझसे कहा, 'मित्र, निगंथ नटपुत्त सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं, और वे पूर्ण ज्ञान और दृष्टि का दावा इस प्रकार करते हैं: "चाहे मैं चल रहा हूँ या खड़ा हूँ, सो रहा हूँ या जाग रहा हूँ, ज्ञान और दृष्टि मुझमें निरंतर और सतत रूप से स्थापित हैं।" उन्होंने हमसे कहा है, "निगंथों, तुमने अतीत में बुरे कर्म किए हैं। इन कष्टदायी तपस्याओं से उन्हें नष्ट करो। जब तुम वर्तमान में शरीर, वाणी और मन से संयमित हो, तो यह भविष्य के लिए बुरे कर्मों का त्याग है। इस प्रकार, तपस्या के माध्यम से पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के त्याग से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत होता है। कर्म के अंत से तनाव का अंत होता है। तनाव के अंत से भावों का अंत होता है।" जब संवेदना समाप्त हो जाएगी, तो सभी दुख और तनाव दूर हो जाएंगे। हम इस [शिक्षा] को स्वीकार करते हैं, इसे प्राथमिकता देते हैं और इससे संतुष्ट हैं।

"जब यह कहा गया, तो मैंने निगंथों से कहा, 'मित्र निगंथों, इस वर्तमान समय में पाँच बातें दो तरह से घटित हो सकती हैं। वे पाँच कौन सी हैं? दृढ़ विश्वास, पसंद, अटूट परंपरा, सादृश्य द्वारा तर्क और विचारों पर मनन करके सहमति। ये पाँच बातें हैं जो इस वर्तमान समय में

दो तरह से घटित हो सकती हैं। ऐसे में, अतीत के संबंध में आपके गुरु के प्रति आपका किस प्रकार का दृढ़ विश्वास है? किस प्रकार की पसंद है? किस प्रकार की अटूट परंपरा है? किस प्रकार का सादृश्य द्वारा तर्क है? विचारों पर मनन करके किस प्रकार की सहमति है?' लेकिन जब मैंने यह कहा, तो मुझे निगंथों के पास अपनी शिक्षा का कोई वैध बचाव नहीं दिखा।"

"तो मैंने उनसे आगे पूछा, 'मित्र निगंथों, आप क्या सोचते हैं: जब तीव्र प्रयास, तीव्र परिश्रम होता है, तो क्या आपको कठोर व्यवहार से तीव्र, चुभने वाली, कष्टदायी पीड़ा महसूस होती है? और जब कोई तीव्र प्रयास, कोई तीव्र परिश्रम नहीं होता है, तो क्या आपको कठोर व्यवहार से कोई तीव्र, चुभने वाली, कष्टदायी पीड़ा महसूस नहीं होती है?'"

"'हाँ दोस्त...'

"...तो फिर यह कहना उचित नहीं है कि, 'मनुष्य जो भी अनुभव करता है—सुख, दुख, या न सुख न दुख—वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है। अतः, तपस्या द्वारा पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के त्याग से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत हो जाता है। कर्म के अंत से तनाव का अंत हो जाता है। तनाव के अंत से भावों का अंत हो जाता है। भावों के अंत से समस्त दुख और तनाव समाप्त हो जाते हैं।'"

यदि ऐसा हो कि जब आप तीव्र प्रयास और परिश्रम करते हैं, तो आपको कठोर व्यवहार से तीव्र, तीक्ष्ण और कष्टदायी पीड़ा होती है; और जब आप तीव्र प्रयास या परिश्रम नहीं करते हैं, तब भी आपको कठोर व्यवहार से तीव्र, तीक्ष्ण और कष्टदायी पीड़ा होती है, तो ऐसी स्थिति में आपके लिए यह कहना उचित होगा कि, "व्यक्ति जो कुछ भी अनुभव करता है—सुख, दुख, या न सुख न दुख—वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है। इस प्रकार, तपस्या के माध्यम से पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के न करने से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्म का अंत होता है। कर्म के अंत से तनाव का अंत होता है। तनाव के अंत से भावना का अंत होता है।" "भावनाओं के समाप्त होने से समस्त दुख और तनाव दूर हो जाएंगे।" परन्तु जब प्रचंड प्रयास और परिश्रम होता है, तो कठोर व्यवहार से तीव्र, तीक्ष्ण और कष्टदायी पीड़ा होती है; और जब प्रचंड प्रयास और परिश्रम नहीं होता, तो कठोर व्यवहार से तीव्र, तीक्ष्ण और कष्टदायी पीड़ा नहीं होती, तो ऐसी स्थिति में यह कहना उचित नहीं है कि, "मनुष्य जो भी अनुभव करता है - सुख, दुख, या न सुख न दुख - वह सब अतीत में किए गए कर्मों का परिणाम है। इस प्रकार, तपस्या द्वारा पुराने कर्मों के नाश और नए कर्मों के त्याग से भविष्य में कोई प्रवाह नहीं होगा। भविष्य में प्रवाह न होने से कर्मों का अंत होता है। कर्मों के अंत से तनाव का अंत होता है। तनाव के अंत से भावनाओं का अंत होता है। भावनाओं के अंत से समस्त दुख और तनाव दूर हो जाएंगे।" परन्तु जब मैंने यह कहा, तो मुझे निगंथों के पास अपनी शिक्षा का कोई वैध बचाव नहीं दिखा।

"तो मैंने उनसे आगे पूछा, 'मित्र निगांथास, आप क्या सोचते हैं: क्या इस वर्तमान जीवन में अनुभव की जाने वाली किसी क्रिया को, प्रयास और परिश्रम के माध्यम से, भविष्य के जीवन में अनुभव की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित किया जा सकता है?'"

"'नहीं, दोस्त।'"

"क्या भविष्य के जीवन में अनुभव की जाने वाली किसी क्रिया को, प्रयास और परिश्रम के माध्यम से, वर्तमान जीवन में अनुभव की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित किया जा सकता है?"

"'नहीं, दोस्त।'"

"आप क्या सोचते हैं: क्या किसी ऐसी क्रिया को, जिसे आनंद के रूप में अनुभव किया जाना चाहिए, प्रयास और परिश्रम के माध्यम से दर्द के रूप में अनुभव की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित किया जा सकता है?"

"'नहीं, दोस्त।'"

"क्या किसी ऐसी क्रिया को, जिसे पीड़ा के रूप में अनुभव किया जाना है, प्रयास और परिश्रम के माध्यम से सुख के रूप में अनुभव की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित किया जा सकता है?"

"'नहीं, दोस्त।'"

"आप क्या सोचते हैं: क्या किसी ऐसी क्रिया को, जो अनुभव करने के लिए तैयार है, प्रयास और परिश्रम के माध्यम से ऐसी क्रिया में बदला जा सकता है जो अनुभव करने के लिए तैयार न हो?"

"'नहीं, दोस्त।'"

"क्या किसी ऐसी क्रिया को, जो अभी अनुभव करने के लिए तैयार नहीं है, प्रयास और परिश्रम के माध्यम से अनुभव करने के लिए तैयार क्रिया में बदला जा सकता है?"

"'नहीं, दोस्त।'"

"आप क्या सोचते हैं: क्या अत्यधिक अनुभव योग्य क्रिया को प्रयास और परिश्रम के माध्यम से लगभग अनुभवहीन क्रिया में परिवर्तित किया जा सकता है?"

"'नहीं, दोस्त।'"

"क्या किसी ऐसी क्रिया को, जिसका अनुभव लगभग न के बराबर हो, प्रयास और परिश्रम के माध्यम से एक ऐसी क्रिया में परिवर्तित किया जा सकता है जिसका अनुभव भरपूर हो?"

"'नहीं, दोस्त।'"

"आप क्या सोचते हैं: क्या किसी अनुभव किए जाने वाले कार्य को प्रयास और परिश्रम के माध्यम से ऐसे कार्य में परिवर्तित किया जा सकता है जिसका अनुभव न किया जा सके?"
"'नहीं, दोस्त।'"
"क्या किसी ऐसी क्रिया को, जिसका अनुभव नहीं किया जा सकता, प्रयास और परिश्रम के माध्यम से अनुभव की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित किया जा सकता है?"
"'नहीं, दोस्त।'"
इसलिए, मित्रों, ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान जीवन में अनुभव की जाने वाली क्रिया को प्रयास और परिश्रम द्वारा भविष्य के जीवन में अनुभव की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। भविष्य के जीवन में अनुभव की जाने वाली क्रिया को प्रयास और परिश्रम द्वारा वर्तमान जीवन में अनुभव की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित नहीं किया जा सकता... अनुभव की जाने वाली क्रिया को प्रयास और परिश्रम द्वारा अनुभव न की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। अनुभव न की जाने वाली क्रिया को प्रयास और परिश्रम द्वारा अनुभव की जाने वाली क्रिया में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में, निगंथों का प्रयास निष्फल है, उनका परिश्रम निष्फल है।
"यह निगंथों की शिक्षा है। और, निगंथों की शिक्षा ऐसी होने के कारण, दस वैध निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं जो उनकी निंदा करने का आधार प्रदान करते हैं।"
(1) "यदि प्राणी अतीत में किए गए कर्मों के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो जाहिर है कि निगंथों ने अतीत में बुरे कर्म किए हैं, यही कारण है कि अब उन्हें इतना भयंकर, तीखा, कष्टदायक दर्द महसूस होता है।
(2) "यदि प्राणी सर्वोच्च देवता के सृजनात्मक कार्य के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो स्पष्ट रूप से निगंथों को एक दुष्ट सर्वोच्च देवता द्वारा बनाया गया है, यही कारण है कि वे अब इस तरह के भयंकर, तीखे, कष्टदायक दर्द का अनुभव करते हैं।
(3) "यदि प्राणी विशुद्ध भाग्य के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो जाहिर है कि निगंथों का भाग्य खराब है, यही कारण है कि वे अब इतने भयंकर, तीखे, कष्टदायक दर्द का अनुभव करते हैं।
(4) "यदि प्राणी जन्म के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो जाहिर है कि निगंथों का जन्म बुरा हुआ है, यही कारण है कि अब वे इतने भयंकर, तीखे, कष्टदायक दर्द का अनुभव करते हैं।
(5) "यदि प्राणी यहाँ और अभी सुख और दुख पर आधारित प्रयासों का अनुभव करते हैं, तो स्पष्ट रूप से निगंथों के पास यहाँ और अभी बुरे प्रयास हैं, यही कारण है कि वे अब ऐसे भयंकर, तीखे, कष्टदायक दर्द का अनुभव करते हैं।
(6) "यदि प्राणी अतीत में किए गए कर्मों के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो निगंथ निंदा के पात्र हैं। यदि ऐसा नहीं भी है, तो भी वे निंदा के पात्र हैं।"
(7) "यदि प्राणी सर्वोच्च देवता के सृजनात्मक कार्य के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो निगंथ निंदा के पात्र हैं। यदि ऐसा नहीं भी है, तो भी वे निंदा के पात्र हैं।"
(8) "यदि प्राणी केवल भाग्य के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो निगंथ निंदा के पात्र हैं। यदि ऐसा नहीं भी है, तो भी वे निंदा के पात्र हैं।"
(9) "यदि प्राणी जन्म के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो निगंथ निंदा के पात्र हैं। यदि ऐसा नहीं भी है, तो भी वे निंदा के पात्र हैं।"
(10) "यदि प्राणी वर्तमान में सुख और दुख पर आधारित प्रयासों का अनुभव करते हैं, तो निगंथ निंदा के पात्र हैं। यदि नहीं भी, तो भी वे निंदा के पात्र हैं।"
"यह निगंथों की शिक्षा है, भिक्षुओं। और, निगंथों की यही शिक्षा होने के कारण, ये दस वैध निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं जो उनकी निंदा करने का आधार प्रदान करते हैं। इसी प्रकार प्रयास व्यर्थ होता है, परिश्रम व्यर्थ होता है।"
और प्रयास कैसे फलदायी होता है, परिश्रम कैसे फलदायी होता है? एक ऐसा उदाहरण है जहाँ एक भिक्षु, जब बोझ से मुक्त होता है, तो वह स्वयं को कष्टों से बोझिल नहीं करता, न ही वह धम्म के अनुरूप सुख का त्याग करता है, यद्यपि वह उस सुख पर आसक्त नहीं होता। वह यह समझता है कि 'जब मैं इस तनाव के कारण के विरुद्ध कोई [शारीरिक, वाणी या मानसिक] क्रिया करता हूँ, तो उस क्रिया से वैराग्य उत्पन्न होता है। जब मैं उस तनाव के कारण को समभाव से देखता हूँ, तो समभाव के विकास से वैराग्य उत्पन्न होता है।' अतः वह तनाव के कारण के विरुद्ध ऐसी क्रिया करता है जिससे वैराग्य उत्पन्न होता है, और तनाव के कारण के प्रति समभाव विकसित करता है जिससे समभाव के विकास से वैराग्य उत्पन्न होता है। इस प्रकार, वह तनाव जिससे वैराग्य उत्पन्न होता है, समाप्त हो जाता है और वह तनाव जिससे वैराग्य उत्पन्न होता है, भी समाप्त हो जाता है।
मान लीजिए कि एक पुरुष किसी स्त्री से प्रेम करता है, उसका मन तीव्र इच्छा और जुनून से ग्रस्त है। वह उसे किसी दूसरे पुरुष के साथ बातें करते, मजाक करते और हंसते हुए देखता है। भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं: क्या उसे किसी दूसरे पुरुष के साथ बातें करते, मजाक करते और हंसते हुए देखकर उसके मन में दुःख, विलाप, पीड़ा, व्याकुलता और निराशा उत्पन्न होगी?
"जी हां, भगवान। ऐसा क्यों है? क्योंकि वह उससे प्रेम करता है, उसका मन तीव्र इच्छा, तीव्र जुनून से जकड़ा हुआ है..."

अब मान लीजिए कि उसके मन में यह विचार आए, 'मैं इस स्त्री से प्रेम करता हूँ, मेरा मन तीव्र इच्छा और वासना से जकड़ा हुआ है। जब मैं उसे किसी दूसरे पुरुष के साथ बातें करते, मज़ाक करते और हँसते देखता हूँ, तो मेरे भीतर दुःख, विलाप, पीड़ा, व्याकुलता और निराशा उत्पन्न होती है। मैं उस स्त्री के प्रति अपनी इच्छा और वासना का त्याग क्यों न कर दूँ?' तो वह उस स्त्री के प्रति अपनी इच्छा और वासना का त्याग कर देता है, और बाद में उसे किसी दूसरे पुरुष के साथ बातें करते, मज़ाक करते और हँसते देखता है। भिक्षुओं, आप क्या सोचते हैं: क्या उसे किसी दूसरे पुरुष के साथ बातें करते, मज़ाक करते और हँसते देखकर दुःख, विलाप, पीड़ा, व्याकुलता और निराशा उत्पन्न होगी?'

"नहीं, भगवान। ऐसा क्यों है? वह उस महिला के प्रति उदासीन है..."

इसी प्रकार, जब भिक्षु बोझ से मुक्त होता है, तो वह स्वयं को कष्टों से बोझिल नहीं करता, और न ही वह धम्म के अनुरूप सुख का त्याग करता है, यद्यपि वह उस सुख के प्रति आसक्त नहीं होता। वह यह समझता है कि 'जब मैं इस तनाव के कारण के विरुद्ध कोई [शारीरिक, वाणी या मानसिक] क्रिया करता हूँ, तो उस क्रिया से वैराग्य उत्पन्न होता है। जब मैं उस तनाव के कारण को समभाव से देखता हूँ, तो समभाव के विकास से वैराग्य उत्पन्न होता है।' अतः वह तनाव के कारण के विरुद्ध ऐसी क्रिया करता है जिससे क्रिया से वैराग्य उत्पन्न होता है, और तनाव के कारण के प्रति समभाव विकसित करता है जिससे समभाव के विकास से वैराग्य उत्पन्न होता है। इस प्रकार, वह तनाव जिससे क्रिया से वैराग्य उत्पन्न होता है, समाप्त हो जाता है और वह तनाव जिससे समभाव के विकास से वैराग्य उत्पन्न होता है, भी समाप्त हो जाता है।

इसके अलावा, भिक्षु ने यह देखा: 'जब मैं अपनी इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करता हूँ, तो मुझमें अकुशल मानसिक गुण बढ़ते हैं और कुशल गुण घटते हैं। लेकिन जब मैं तनाव और पीड़ा सहता हूँ, तो मुझमें अकुशल गुण घटते हैं और कुशल गुण बढ़ते हैं। मैं तनाव और पीड़ा क्यों नहीं सहता?' इसलिए वह तनाव और पीड़ा सहता है, और तनाव सहते हुए उसमें अकुशल गुण घटते हैं और कुशल गुण बढ़ते हैं। फिर कुछ समय बाद वह तनाव और पीड़ा सहना छोड़ देता है। ऐसा क्यों? क्योंकि उसने वह लक्ष्य प्राप्त कर लिया है जिसके लिए वह तनाव और पीड़ा सह रहा था। इसीलिए कुछ समय बाद वह तनाव और पीड़ा सहना छोड़ देता है।

मान लीजिए कि एक तीर बनाने वाला दो लपटों के बीच तीर के डंडे को गर्म करके उसे सीधा और लचीला बना रहा है। फिर कुछ समय बाद वह उसे दो लपटों के बीच गर्म करके सीधा और लचीला बनाना बंद कर देता है। ऐसा क्यों? क्योंकि उसने वह लक्ष्य प्राप्त कर लिया है जिसके लिए वह डंडे को गर्म कर रहा था। इसीलिए कुछ समय बाद वह उसे दो लपटों के बीच गर्म करके सीधा और लचीला बनाना बंद कर देता है।

इसी प्रकार, भिक्षु ने यह देखा: 'जब मैं अपनी इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करता हूँ, तो मुझमें अकुशल मानसिक गुण बढ़ते हैं और कुशल गुण घटते हैं। परन्तु जब मैं कष्ट और पीड़ा सहता हूँ, तो मुझमें अकुशल गुण घटते हैं और कुशल गुण बढ़ते हैं। मैं कष्ट और पीड़ा क्यों नहीं सहता?' अतः वह कष्ट और पीड़ा सहता है, और कष्ट सहते हुए उसमें अकुशल गुण घटते हैं और कुशल गुण बढ़ते हैं। फिर कुछ समय बाद वह कष्ट और पीड़ा सहना छोड़ देता है। ऐसा क्यों? क्योंकि उसने वह लक्ष्य प्राप्त कर लिया है जिसके लिए वह कष्ट और पीड़ा सह रहा था। इसीलिए कुछ समय बाद वह कष्ट और पीड़ा सहना छोड़ देता है।

"इसी तरह प्रयास करना फलदायी होता है, इसी तरह मेहनत करना फलदायी होता है।"

इसके अतिरिक्त, एक ऐसा मामला भी है जहाँ तथागत संसार में प्रकट होते हैं, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत होते हैं। वे धर्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में प्रशंसनीय, मध्य में प्रशंसनीय और अंत में प्रशंसनीय है। वे पवित्र जीवन की घोषणा करते हैं, जो अपने विशिष्ट पहलुओं और सार दोनों में पूर्णतः परिपूर्ण और अत्यंत शुद्ध है।

"गृहस्थ या गृहस्थ का पुत्र धम्म सुनकर तथागत में दृढ़ विश्वास प्राप्त करता है और चिंतन करता है: 'गृहस्थ जीवन बंधनकारी, धूल भरा मार्ग है। गृहस्थ जीवन मुक्त आकाश के समान है। घर में रहकर पूर्णतः परिपूर्ण, पूर्णतः शुद्ध, एक पॉलिश किए हुए आवरण के समान पवित्र जीवन का अभ्यास करना आसान नहीं है। यदि मैं अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाकर और गेरुए वस्त्र धारण करके गृहस्थ जीवन से निकलकर संन्यासी जीवन में जाऊं तो क्या होगा?'"

"इसलिए कुछ समय बाद वह अपनी सारी संपत्ति, चाहे छोटी हो या बड़ी, त्याग देता है; अपने रिश्तेदारों के समूह, चाहे छोटा हो या बड़ा, को छोड़ देता है; अपने बाल और दाढ़ी मुंडवा लेता है, गेरुए वस्त्र धारण कर लेता है और गृहस्थ जीवन छोड़कर संन्यासी जीवन में चला जाता है।"

गुण

जब वह इस प्रकार भिक्षुओं के प्रशिक्षण और जीविका से संपन्न होकर प्रस्थान करता है, तब वह जीवन लेने का त्याग कर, जीवन लेने से परहेज करता है। वह अपना दंड और छुरी त्याग कर, सभी जीवित प्राणियों के कल्याण के लिए सचेत, दयालु और करुणामय होकर निवास करता है।

"जो कुछ दिया नहीं गया है, उसे लेने का त्याग करके, वह उसे लेने से परहेज करता है। वह केवल वही लेता है जो दिया गया है, केवल वही स्वीकार करता है जो दिया गया है, वह छिपकर नहीं, बल्कि शुद्ध आत्मा के माध्यम से जीता है। यह भी उसके सद्गुण का एक हिस्सा है।"

"अविवाह का त्याग करके, वह एकांतप्रिय, ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करता है, और उस यौन क्रिया से परहेज करता है जो ग्रामीणों का तरीका है।"

वह झूठी बातों का त्याग करके उनसे दूर रहता है। वह सत्य बोलता है, सत्य पर अडिग रहता है, दृढ़ और विश्वसनीय है, संसार को धोखा नहीं देता।

विभाजनकारी भाषणों का त्याग करके वह उनसे दूर रहता है। जो कुछ उसने यहाँ सुना है, वह वहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ के लोगों को यहाँ के लोगों से अलग न कर दे। जो कुछ उसने वहाँ सुना है, वह यहाँ नहीं बताता ताकि वहाँ के लोगों को वहाँ के लोगों से अलग न कर दे। इस प्रकार, जो लोग अलग हो गए हैं, उनके बीच सामंजस्य स्थापित करता है और जो एकजुट हैं, उन्हें और मजबूत करता है। वह सद्भाव से प्रेम करता है, सद्भाव में आनंदित होता है, सद्भाव का अनुभव करता है और सद्भाव उत्पन्न करने वाली बातें बोलता है।

"अपमानजनक भाषा का त्याग करके, वह अपशब्दों से दूर रहता है। वह ऐसे शब्द बोलता है जो कानों को मधुर लगते हैं, स्नेहपूर्ण होते हैं, हृदय को छूते हैं, विनम्र होते हैं, आकर्षक होते हैं और आम लोगों को प्रसन्न करते हैं।"

"व्यर्थ की बातों का त्याग करके, वह व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। वह समय पर बोलता है, तथ्यात्मक बातें बोलता है, जो लक्ष्य, धम्म और विनय के अनुरूप होती हैं। वह अनमोल, सामयिक, तर्कसंगत, सीमित और लक्ष्य से संबंधित शब्द बोलता है।"

वह बीज और वनस्पतियों को नुकसान पहुंचाने से परहेज करता है।

वह दिन में केवल एक बार ही भोजन करता है, शाम के भोजन से परहेज करता है और दिन के गलत समय पर भोजन करने से भी परहेज करता है।

वह नृत्य, गायन, वाद्य संगीत और शो देखने से परहेज करता है।

वह माला पहनने और सुगंध एवं सौंदर्य प्रसाधनों से खुद को सजाने से परहेज करता है।

वह ऊंचे और आलीशान पलंगों और कुर्सियों से परहेज करता है।

वह सोना और पैसा लेने से परहेज करता है।

वह बिना पका अनाज... कच्चा मांस... स्त्रियों और लड़कियों... पुरुष और महिला दासों... बकरियों और भेड़ों... मुर्गियों और सूअरों... हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों... खेतों और संपत्ति को स्वीकार करने से परहेज करता है।

वह संदेशों के आदान-प्रदान से... खरीद-फरोख्त से... झूठे तराजू, झूठी धातुओं और झूठे मापों से... रिश्वतखोरी, छल और धोखाधड़ी से परहेज करता है।

वह अंग-भंग करने, फांसी देने, कैद करने, खुलेआम लूटपाट करने, डकैती करने और हिंसा करने से परहेज करता है।

वह अपने शरीर के लिए वस्त्रों के एक जोड़े और भूख मिटाने के लिए भिक्षा से संतुष्ट है। जैसे एक पक्षी जहाँ कहीं भी जाता है, अपने पंखों को ही अपना एकमात्र बोझ मानकर उड़ता है; वैसे ही वह अपने शरीर के लिए वस्त्रों के एक जोड़े और भूख मिटाने के लिए भिक्षा से संतुष्ट है। वह जहाँ कहीं भी जाता है, अपने साथ केवल अपनी सबसे आवश्यक वस्तुएँ ही ले जाता है।

"सद्गुणों के इस महान समूह से संपन्न होने के कारण, वह आंतरिक रूप से निर्दोष होने के सुख के प्रति संवेदनशील होता है।"

इंद्रिय संयम

जब वह किसी आकृति को आँख से देखता है, तो वह किसी विषय या विवरण को नहीं पकड़ता, जिससे—यदि वह आँख की इंद्रिय पर बिना किसी नियंत्रण के ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। जब वह किसी ध्वनि को कान से सुनता है... जब वह किसी गंध को नाक से सूंघता है... जब वह किसी स्वाद को जीभ से चखता है... जब वह किसी स्पर्श संवेदना को शरीर से महसूस करता है... जब वह किसी विचार को बुद्धि से समझता है, तो वह किसी विषय या विवरण को नहीं पकड़ता, जिससे—यदि वह बुद्धि की इंद्रिय पर बिना किसी नियंत्रण के ध्यान केंद्रित करे—तो लोभ या दुःख जैसे बुरे, अकुशल गुण उस पर हावी हो सकते हैं। इंद्रिय शक्तियों पर इस श्रेष्ठ संयम से संपन्न होकर, वह आंतरिक रूप से निर्दोष होने के सुख के प्रति संवेदनशील होता है।

जागरूकता और सतर्कता

आगे बढ़ते और लौटते समय वह सतर्कता से कार्य करता है। आगे देखते और पीछे हटते समय... अपने अंगों को मोड़ते और फैलाते समय... अपना बाहरी लबादा, ऊपरी वस्त्र और कटोरा ले जाते समय... खाते, पीते, चबाते और स्वाद लेते समय... पेशाब और शौच करते समय... चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते समय वह सतर्कता से कार्य करता है।

बाधाओं को त्यागना

"सद्गुणों के इस उत्कृष्ट समूह, इंद्रियों पर इस उत्कृष्ट संयम, इस उत्कृष्ट जागरूकता और सजगता से परिपूर्ण होकर, वह एकांत स्थान की तलाश करता है: एक जंगल, एक वृक्ष की छाया, एक पर्वत, एक घाटी, एक पहाड़ी गुफा, एक श्मशान भूमि, एक वन उपवन, खुला आकाश, या पुआल का ढेर। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद लौटकर, वह बैठ जाता है, अपने पैरों को क्रॉस करके बैठता है, अपने शरीर को सीधा रखता है, और अपनी जागरूकता को सर्वोपरि करता है।"

संसार के प्रति लोभ का त्याग करके, वह लोभ रहित जागरूकता के साथ निवास करता है। वह अपने मन को लोभ से शुद्ध करता है। द्वेष और क्रोध का त्याग करके, वह द्वेष रहित जागरूकता के साथ, सभी जीवों के कल्याण के प्रति सहानुभूति रखते हुए निवास करता है। वह अपने मन को द्वेष और क्रोध से शुद्ध करता है। आलस्य और सुस्ती का त्याग करके, वह आलस्य और सुस्ती रहित जागरूकता के साथ, सचेत, सतर्क और प्रकाश के प्रति जागरूक रहते हैं। वह अपने मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है। बेचैनी और चिंता का त्याग करके, वह अविचलित रहते हैं, उनका मन आंतरिक रूप से शांत होता है। वह अपने मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध

करते हैं। अनिश्चितता का त्याग करके, वह अनिश्चितता को पार कर चुके होते हैं, कुशल मानसिक गुणों के संबंध में उन्हें कोई उलझन नहीं होती। वह अपने मन को अनिश्चितता से शुद्ध करते हैं।

चार ध्यान

"इन पाँच बाधाओं—चेतना की अपूर्णताओं, जो विवेक को कमजोर करती हैं—को त्यागकर, इंद्रिय सुखों से पूर्णतः विमुख होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विमुख होकर, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन से युक्त होता है। यही वह तरीका है जिससे प्रयास फलदायी होता है, जिससे परिश्रम फलदायी होता है।"

फिर, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, वह दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त एकाग्रता - आंतरिक आश्वासन। यही वह तरीका है जिससे प्रयास फलदायी होता है, जिससे परिश्रम फलदायी होता है।

फिर, जब तन्मयता का भाव शांत हो जाता है, तो वह समभाव, सजग और सतर्क रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके बारे में भगवान कहते हैं, 'समभाव और सजग रहकर वह सुखद ध्यान में रहता है।' यही वह तरीका है जिससे प्रयास फलदायी होता है, जिससे परिश्रम फलदायी होता है।

फिर, सुख और दुख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख। इसी प्रकार प्रयास फलदायी होता है, परिश्रम फलदायी होता है।

तीन ज्ञान

"इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, निर्मल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह अपने पिछले जन्मों की स्मृति के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित होता है।2 वह अपने अनेक पिछले जन्मों को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, एक हजार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग, [स्मरण करते हुए], 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत था। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत था। विदा होकर...' उस अवस्था से मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूप और विवरणों सहित याद करता है। यही वह तरीका है जिससे प्रयास फलदायी होता है, जिससे परिश्रम फलदायी होता है।

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, निष्कलंक, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से वह प्राणियों के मृत्यु और पुनर्जन्म के ज्ञान की ओर उन्मुख होता है। वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मृत्यु और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है और उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - मृत्यु के बाद शरीर के टूटने से अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निचले लोकों, नरक में पुनर्जन्म लेते हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म करने वाले — शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, अच्छे स्थानों, स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होते हैं। इस प्रकार — दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है — वे प्राणियों को मरते और पुनः प्रकट होते देखते हैं, और वे उनके कर्मों के अनुसार उनके हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करते हैं। यही कारण है कि प्रयास फलदायी होता है, परिश्रम फलदायी होता है।

इस प्रकार एकाग्र, शुद्ध, उज्ज्वल, दोषरहित, कोमल, लचीला, स्थिर और अविचलित मन से भिक्षु अपने मन को मानसिक हलचलों के अंत के ज्ञान की ओर निर्देशित और प्रेरित करता है। वह यह समझ पाता है कि 'यह तनाव है... यह तनाव का उद्गम है... यह तनाव का अंत है... यह तनाव के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है... ये मानसिक हलचलें हैं... यह हलचलों का उद्गम है... यह हलचलों का अंत है... यह हलचलों के अंत की ओर ले जाने वाला मार्ग है।' इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, उसका हृदय इंद्रिय-वासना, कर्म-वासना और अज्ञान-वासना से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, 'मुक्त हो गया।' वह समझ पाता है कि 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।' यही वह तरीका है जिससे प्रयास करना फलदायी होता है, इसी प्रकार परिश्रम करना फलदायी होता है।

"तथागत की यही शिक्षा है। तथागत की यही शिक्षा होने के कारण, उनकी प्रशंसा करने के लिए दस वैध निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।"

(1) "यदि प्राणी अतीत में किए गए कर्मों के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो स्पष्टतः तथागत ने अतीत में अच्छे कर्म किए हैं, इसीलिए अब उन्हें ऐसा सुख मिलता है जो अभिरुचि से मुक्त है।"

(2) "यदि प्राणी सर्वोच्च ईश्वर के सृजनात्मक कार्य के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो स्पष्टतः तथागत की रचना एक उत्कृष्ट सर्वोच्च ईश्वर द्वारा की गई है, यही कारण है कि अब वे इस प्रकार के सुख का अनुभव करते हैं जो किसी भी प्रकार की उत्तेजना से मुक्त है।"

(3) "यदि प्राणी विशुद्ध भाग्य के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो जाहिर है तथागत का भाग्य प्रशंसनीय है, यही कारण है कि अब वे बिना किसी विकार के ऐसे सुख का अनुभव करते हैं।
(4) "यदि प्राणी जन्म के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो स्पष्ट रूप से तथागत का जन्म प्रशंसनीय रहा है, यही कारण है कि अब वे ऐसी सुख-सुविधाओं से मुक्त होकर आनंद का अनुभव करते हैं।"
(5) "यदि प्राणी यहाँ और अभी में सुख और दुख आधारित प्रयासों का अनुभव करते हैं, तो स्पष्ट रूप से तथागत के यहाँ और अभी में प्रशंसनीय प्रयास हैं, यही कारण है कि अब वे ऐसी आनंद का अनुभव करते हैं जो मनोभ्रंश से मुक्त है।"
(6) "यदि प्राणी अतीत में किए गए कर्मों के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो तथागत प्रशंसा के पात्र हैं। यदि ऐसा नहीं भी है, तो भी वे प्रशंसा के पात्र हैं।"
(7) "यदि प्राणी सर्वोच्च देवता तथागत की सृजनात्मक क्रिया के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो तथागत प्रशंसा के पात्र हैं। यदि ऐसा नहीं भी है, तो भी वे प्रशंसा के पात्र हैं।"
(8) "यदि प्राणी केवल भाग्य के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो तथागत प्रशंसा के पात्र हैं। यदि ऐसा नहीं भी है, तो भी वे प्रशंसा के पात्र हैं।"
(9) "यदि प्राणी जन्म के आधार पर सुख और दुख का अनुभव करते हैं, तो तथागत प्रशंसा के पात्र हैं। यदि ऐसा नहीं भी है, तो भी वे प्रशंसा के पात्र हैं।"
(10) "यदि प्राणी इस समय सुख और दुख पर आधारित प्रयासों का अनुभव करते हैं, तो तथागत प्रशंसा के पात्र हैं। यदि नहीं भी, तो भी वे प्रशंसा के पात्र हैं।"
"तथागत की यही शिक्षा है। तथागत की यही शिक्षा होने के कारण, उनकी प्रशंसा करने के लिए ये दस वैध निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।"
भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.2पंचत्तय सुत्त(102)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। उन्होंने वहीं से भिक्षुओं को संबोधित किया। 'भिक्षुओं, कुछ संन्यासी और ब्राह्मण भविष्य के बारे में अपने मत व्यक्त करते हैं। जैसे कि मृत्यु के बाद एक स्वस्थ, बोधगम्य आत्मा होगी। मृत्यु के बाद एक स्वस्थ, अबोधगम्य आत्मा होगी। मृत्यु के बाद एक स्वस्थ, न तो बोधगम्य और न ही अबोधगम्य आत्मा होगी। या फिर चेतना का नाश, विनाश और अस्तित्वहीनता होगी। या फिर यहीं और इसी समय मृत्यु होगी। इन पांचों को कभी-कभी तीन के रूप में भी बताया जाता है, क्योंकि मृत्यु के बाद एक स्वस्थ आत्मा होती है, चेतना का नाश, विनाश और अस्तित्वहीनता होती है और यहीं और इसी समय मृत्यु होती है। इसलिए ये पांच कभी तीन हो जाते हैं और तीन कभी पांच हो जाते हैं। यह पांच और तीन का संक्षिप्त विवरण है।'

भिक्षुओं, वे संन्यासी और ब्राह्मण जो मृत्यु के बाद स्वस्थ और सजीव आत्मज्ञान का अनुभव करते हैं, भौतिक या अभौतिक आत्मज्ञान का वर्णन करते हैं, या भौतिक और अभौतिक आत्मज्ञान का, या फिर ऐसे आत्मज्ञान का जो न भौतिक है और न अभौतिक। या वे एक स्वस्थ आत्मज्ञान का वर्णन करते हैं, जो एकल बोध, अनेक बोध, सीमित बोध या असीमित बोध के साथ मृत्यु के बाद स्वस्थ रहता है। एक विशेष व्यक्ति, जो चेतना पर विजय प्राप्त कर लेता है, असीम अविचलता का वर्णन करता है। तथागत उन संन्यासियों और ब्राह्मणों को जानते हैं जो मृत्यु के बाद स्वस्थ और सजीव आत्मज्ञान का अनुभव करते हैं, भौतिक या अभौतिक आत्मज्ञान का, या फिर ऐसे आत्मज्ञान का जो भौतिक और अभौतिक है, या फिर ऐसे आत्मज्ञान का जो न भौतिक है और न अभौतिक। या वे जो एक स्वस्थ आत्मज्ञान का वर्णन करते हैं, जो एकल बोध, अनेक बोध, सीमित बोध या असीमित बोध के साथ मृत्यु के बाद स्वस्थ रहता है। तथागत इन सभी अनुभूतियों को भी जानते हैं, जो सर्वोच्च कोटि में अतुलनीय रूप से शुद्ध हैं, चाहे वे भौतिक हों या अभौतिक, चाहे एक अनुभूति हो या अनेक अनुभूतियाँ। वे शून्यता के क्षेत्र को भी जानते हैं, जो असीम रूप से अविचलित है। वे जानते हैं कि ये सभी मिश्रित और स्थूल हैं, निर्धारणों का अंत है, और इससे मुक्ति का मार्ग जानकर तथागत ने इन पर विजय प्राप्त की।

भिक्षुओं, वे संन्यासी और ब्राह्मण जो मृत्यु के बाद निर्धन आत्मा के स्वस्थ होने की घोषणा करते हैं, वे भौतिक, अभौतिक, भौतिक और अभौतिक, या न भौतिक और न अभौतिक निर्धन आत्मा के मृत्यु के बाद स्वस्थ होने की घोषणा करते हैं। यहाँ, भिक्षुओं, एक ऐसा संन्यासी या ब्राह्मण जो मृत्यु के बाद निर्धन आत्मा के स्वस्थ होने की घोषणा करता है, उन संन्यासियों और ब्राह्मणों की निंदा करेगा। इसका क्या कारण है? बोध एक रोग है, एक फोड़ा है, एक तीर है, यह निर्बोधता शांतिपूर्ण और श्रेष्ठ है। तथागत इसे जानते हैं। वे संन्यासी और ब्राह्मण जो मृत्यु के बाद निर्धन आत्मा के स्वस्थ होने का प्रचार करते हैं, वे भौतिक या अभौतिक, भौतिक और अभौतिक, या न भौतिक और न अभौतिक निर्धन आत्मा के मृत्यु के बाद स्वस्थ होने की घोषणा करते हैं। भिक्षुओं, यदि कोई संन्यासी या ब्राह्मण कहे कि मैं निर्पदार्थ, भावों, बोध, संकल्पों और चेतना के बिना आने-जाने, लुप्त होने-प्रकट होने, वृद्धि-वृद्धि का ज्ञान कराऊंगा, तो यह संभव नहीं है। यह जटिल और स्थूल है, इसमें संकल्पों का अंत हो जाता है। तथागत ने मुक्ति का मार्ग जानकर इस पर विजय प्राप्त कर ली।

भिक्षुओं, वे संन्यासी या ब्राह्मण जो मृत्यु के बाद स्वस्थ रहने वाले न तो बोधगम्य और न ही अबोधगम्य आत्मा का ज्ञान देते हैं, वे न तो बोधगम्य और न ही अबोधगम्य आत्मा, न भौतिक, न अभौतिक, न भौतिक और न ही अभौतिक आत्मा की घोषणा करते हैं। यहाँ, भिक्षुओं, कुछ संन्यासी या ब्राह्मण जो मृत्यु के बाद स्वस्थ रहने वाले बोधगम्य आत्मा की घोषणा करते हैं और जो मृत्यु के बाद स्वस्थ रहने वाले अबोधगम्य आत्मा की घोषणा करते हैं, वे उन संन्यासियों और ब्राह्मणों की निंदा करते हैं। इसका कारण क्या है? बोध एक रोग है, एक फोड़ा है, एक तीर है, इसका भ्रम यह न तो बोध और न ही अबोध शांतिपूर्ण और श्रेष्ठ है। तथागत इसे जानते हैं।

वे उत्तम संन्यासी और ब्राह्मण जो मृत्यु के बाद स्वस्थ, न बोधगम्य और न ही अबोधगम्य आत्मा का ज्ञान प्रकट करते हैं, वे न बोधगम्य और न ही अबोधगम्य आत्मा, पदार्थ, न ही अपदार्थ, पदार्थ और अपदार्थ, या न तो पदार्थ और न ही अपदार्थ का ज्ञान प्रकट करते हैं। भिक्षुओं, जो भी संन्यासी और ब्राह्मण दृष्टि, श्रवण, गंध, स्वाद और स्पर्श के क्षेत्रों में दृढ़ निश्चय के साथ मानसिक उपलब्धियों का ज्ञान प्रकट करते हैं, मैं इन उपलब्धियों को विनाश घोषित करता हूँ। भिक्षुओं, मैं घोषित करता हूँ कि इन्हें दृढ़ निश्चय के साथ प्राप्त नहीं करना चाहिए, बल्कि दृढ़ निश्चय का अंत करना चाहिए। यह संवर्धित और स्थूल है, दृढ़ निश्चय का अंत होता है। तथागत ने इस मुक्ति को देखकर इस पर विजय प्राप्त की।

भिक्षुओं, उन संन्यासियों और ब्राह्मणों में से जो यह बताते हैं कि मृत्यु के बाद सजीव आत्मा, मृत्यु के बाद सजीव आत्मा और न सजीव आत्मा भी सजीव रहती है, उनमें से कुछ संन्यासी उन संन्यासियों और ब्राह्मणों की निंदा करते हैं जो चेतना के विनाश, नाश और अस्तित्वहीनता की घोषणा करते हैं। इसका कारण क्या है? ये सभी अच्छे संन्यासी और ब्राह्मण अपने आसक्तियों को उल्टा लटकाकर यह कहते हैं कि हम भविष्य में होंगे। जैसे किसी व्यापारी को व्यापार करने जाते समय यह विचार आता है कि मैं भविष्य में ऐसा ही होऊंगा और लाभ कमाऊंगा। इस प्रकार, भविष्य में मैं ऐसा ही होऊंगा, यह विचार संन्यासियों और ब्राह्मणों को उसी प्रकार आता है जैसे व्यापार करने गए व्यापारी को। तथापि इस बात को जानते हैं। वे संन्यासी और ब्राह्मण जो चेतना के विनाश, नाश और अस्तित्वहीनता की घोषणा करते हैं, वे आत्मा से भयभीत होते हैं, उससे घृणा करते हैं और उसी आत्मा के चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं। जैसे कोई लकड़ी या लोहे के खंभे से बंधा हुआ व्यक्ति खंभे के चारों ओर चक्कर लगाता रहता है। इसी प्रकार वे संन्यासी और ब्राह्मण, जो व्यक्ति की चेतना के विनाश, संहार और अस्तित्वहीनता की घोषणा करते हैं, स्वयं से भयभीत होते हैं, उससे घृणा करते हैं और उसी स्वयं के चारों ओर घूमते रहते हैं। यह जटिल और विकृत है, इसमें संकल्पों का अंत हो जाता है। तथागत ने इस समस्या से मुक्ति पाकर इस पर विजय प्राप्त कर ली।

जो भी संन्यासी और ब्राह्मण भविष्य के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हैं, वे इन पाँचों में से किसी एक को प्रकट करते हैं। भिक्षुओं, ऐसे संन्यासी और ब्राह्मण भी हैं जो अतीत के बारे में अपने विचार प्रकट करते हैं। वे भी इन पाँचों में से किसी एक में शामिल होते हैं। ऐसे संन्यासी और ब्राह्मण भी हैं जो अतीत के बारे में ऐसे विचार प्रकट करते हैं जैसे कि आत्मा और संसार शाश्वत हैं, यही सत्य है, बाकी सब असत्य है; आत्मा और संसार शाश्वत नहीं हैं, यही सत्य है, बाकी सब असत्य है; आत्मा और संसार शाश्वत हैं और शाश्वत नहीं भी हैं, यही सत्य है, बाकी सब असत्य है; आत्मा और संसार न तो शाश्वत हैं और न ही अनात्म, यही सत्य है, बाकी सब असत्य है; आत्मा और संसार सीमित हैं, आत्मा और संसार असीमित हैं, आत्मा और संसार सीमित और असीमित हैं, आत्मा और संसार न तो सीमित हैं और न ही असीमित, यही सत्य है, बाकी सब असत्य है। आत्मा और संसार एक ही दृष्टि से हैं, अनेक दृष्टियों से हैं, सीमित दृष्टि से हैं, असीमित दृष्टियों से हैं; यही सत्य है, अन्यथा सब असत्य है। आत्मा और संसार पूर्णतः सुखद हैं, पूर्णतः अप्रिय हैं, सुखद और अप्रिय दोनों हैं, न अप्रिय हैं और न सुखद; यही सत्य है, अन्यथा सब असत्य है।

भिक्षुओं, वे संन्यासी और ब्राह्मण जो यह घोषणा करते हैं कि आत्मा और संसार शाश्वत हैं, यही एकमात्र सत्य है, अन्यथा सब असत्य है। उनके लिए बिना किसी आस्था, पक्षपात, सुनी-सुनाई बातों, गहन चिंतन और प्रसन्नता के स्वयं इस शुद्ध दर्शन को प्राप्त करना असंभव है। जब इन पुण्य संन्यासियों और ब्राह्मणों द्वारा स्वयं किसी बात का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तो उनमें एक निश्चित शुद्धता होनी

चाहिए, फिर भी वे आसक्ति का दावा करते हैं। यह संदूषण और स्थूलता है, इसमें संकल्पों का अंत हो जाता है। यह जानकर तथागत ने इससे मुक्ति पा ली।

भिक्षुओं और ब्राह्मणों, जो यह मानते हैं कि आत्मा और संसार न तो शाश्वत है, न शाश्वत है और न ही शाश्वत, न ही शाश्वत है और न ही अनात्म, सीमित है, असीमित है, सीमित है और असीमित है, न ही सीमित है और असीमित नहीं, एक ही दृष्टि का है, अनेक दृष्टियों का है, सीमित दृष्टि का है, असीमित दृष्टि का है, केवल सुखद है, केवल अप्रिय है, सुखद है और अप्रिय है, न ही अप्रिय है और न ही सुखद, यही एकमात्र सत्य है, बाकी सब असत्य है। उनके लिए बिना किसी विश्वास, पसंद, सुनी-सुनाई बातों, विचार-विमर्श और प्रसन्नता के इस शुद्ध दृष्टिकोण को स्वयं प्राप्त करना संभव नहीं है। जब इन उत्तम संन्यासियों और ब्राह्मणों द्वारा स्वयं किसी बात का ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तो उनमें एक निश्चित शुद्धता होनी चाहिए, फिर भी वे आसक्ति का दावा करते हैं। यह संदूषण और स्थूलता है, इसमें संकल्पों का अंत है। यह जानकर तथागत ने इससे मुक्ति पाकर इस पर विजय प्राप्त की।

भिक्षुओं, एक संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के बारे में विचार त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन का इरादा न रखते हुए, एकांत में आनंदपूर्वक निवास करता है, यह सोचकर कि यह शांतिपूर्ण और श्रेष्ठ है। एकांत से उत्पन्न यह आनंद समाप्त हो जाता है और उसे अप्रसन्नता और अप्रियता का अनुभव होता है। जब अप्रसन्नता और अप्रियता समाप्त हो जाती है, तो एकांत से उत्पन्न यह आनंद फिर से उत्पन्न हो जाता है। यह उस प्रकार है जैसे प्रकाश से छाया दूर हो जाती है और छाया से प्रकाश दूर हो जाता है। उसी प्रकार एक संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के बारे में विचार त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन का इरादा न रखते हुए, एकांत में आनंदपूर्वक निवास करता है, यह सोचकर कि यह शांतिपूर्ण और श्रेष्ठ है। एकांत से उत्पन्न यह आनंद समाप्त हो जाता है और उसे अप्रसन्नता और अप्रियता का अनुभव होता है। जब अप्रसन्नता और अप्रियता समाप्त हो जाती है, तो एकांत से उत्पन्न यह आनंद फिर से उत्पन्न हो जाता है। तथागत जानते हैं कि यह पुण्य संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के दर्शन त्यागकर, किसी भी इंद्रिय सुख का इरादा न रखते हुए, एकांत में आनंदपूर्वक निवास करता है, यह सोचकर कि यह शांतिपूर्ण और उदात्त है। एकांत से उत्पन्न यह आनंद समाप्त हो जाता है और उसे अप्रसन्नता और अप्रियता का अनुभव होता है। जब अप्रसन्नता और अप्रियता समाप्त होती है, तो एकांत से उत्पन्न यह आनंद फिर से उत्पन्न हो जाता है। यह मिश्रित और स्थूल है, इसमें संकल्पों का अंत हो जाता है। यह जानकर तथागत ने इससे मुक्ति पाकर इस पर विजय प्राप्त कर ली।

भिक्षुओं, एक संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के बारे में विचार त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन का इरादा न रखते हुए, एकांतवास के आनंद को पार कर लेता है और यह सोचकर अभौतिक सुख में लीन रहता है कि इस अभौतिक सुख में रहना शांतिपूर्ण और उदात्त है। वह अभौतिक सुख समाप्त हो जाता है और उसे एकांतवास का आनंद प्राप्त होता है। एकांतवास का आनंद समाप्त होने पर, उसे अभौतिक सुख प्राप्त होता है। यह उस प्रकार है जैसे प्रकाश से छाया दूर हो जाती है और छाया से प्रकाश दूर हो जाता है। उसी प्रकार एक संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के बारे में विचार त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन का इरादा न रखते हुए, एकांतवास के आनंद को पार कर लेता है और यह सोचकर अभौतिक सुख में लीन रहता है कि यह अभौतिक सुख शांतिपूर्ण और उदात्त है। वह अभौतिक सुख समाप्त हो जाता है और उसे एकांतवास का आनंद प्राप्त होता है। एकांतवास से उत्पन्न आनंद जब क्षीण हो जाता है, तब अभौतिक सुख उत्पन्न होता है। तथागत जानते हैं कि यह पुण्य संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के दर्शन त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन में न रहकर, एकांतवास के आनंद पर विजय प्राप्त करके, अभौतिक सुख में लीन रहता है, यह सोचकर कि अभौतिक सुख शांत और उदात्त है। वह अभौतिक सुख क्षीण हो जाता है और एकांतवास का आनंद उत्पन्न हो जाता है। एकांतवास का आनंद क्षीण होने पर अभौतिक सुख उत्पन्न हो जाता है। यह मिश्रित और स्थूल है, इसमें संकल्पों का अंत हो जाता है। यह जानकर तथागत ने इससे मुक्ति पाकर इस पर विजय प्राप्त कर ली।

भिक्षुओं, एक संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के बारे में विचार त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन का इरादा न रखते हुए, एकांतवास के आनंद पर विजय प्राप्त करता है, भौतिक सुखों पर विजय प्राप्त करता है, और न ही सुखी भावों में स्थिर रहता है, यह सोचकर कि न तो सुखी भावों में स्थिर रहना शांतिपूर्ण और श्रेष्ठ है। वे न तो सुखी भाव समाप्त हो जाते हैं और उन्हें भौतिक सुखी भाव प्राप्त होते हैं। जब वे सुखी भाव समाप्त हो जाते हैं, तो वे न तो सुखी भाव उत्पन्न होते हैं। यह उस प्रकार है जैसे प्रकाश से छाया दूर हो जाती है और छाया से प्रकाश दूर हो जाता है। उसी प्रकार एक संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के बारे में विचार त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन का इरादा न रखते हुए, एकांतवास के आनंद पर विजय प्राप्त करता है, भौतिक सुखों पर विजय प्राप्त करता है, और न ही सुखी भावों में स्थिर रहता है, यह सोचकर कि वे न तो सुखी भाव शांतिपूर्ण और श्रेष्ठ हैं। वे न तो सुखी भाव समाप्त हो जाते हैं और उन्हें भौतिक सुखी भाव प्राप्त होते हैं। जब अमूर्त सुखद भावनाएँ लुप्त हो जाती हैं, तो न तो अप्रिय और न ही सुखद भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। तथागत जानते हैं कि यह पुण्य संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के दर्शन त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन का इरादा न रखते हुए, एकांत के आनंद पर विजय प्राप्त करके और अमूर्त सुखद भावनाओं पर विजय प्राप्त करके, न तो अप्रिय और न ही

सुखद भावनाओं में निवास करता है, यह सोचकर कि न तो अप्रिय और न ही सुखद भावनाएँ शांतिपूर्ण और उदात्त हैं। वे अप्रिय और सुखद भावनाएँ लुप्त हो जाती हैं और अमूर्त सुखद भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। जब अमूर्त सुखद भावनाएँ लुप्त हो जाती हैं, तो न तो अप्रिय और न ही सुखद भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। यह मिश्रित और स्थूल है, संकल्पों का अंत हो जाता है। यह जानकर तथागत ने इससे मुक्ति पा ली।

भिक्षुओं, एक संन्यासी या ब्राह्मण अतीत और भविष्य के बारे में विचार त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन में न रहकर, एकांतवास के आनंद पर विजय प्राप्त करके, अमूर्त सुखमय भावों पर विजय प्राप्त करके, और न ही सुखमय भावों पर विजय प्राप्त करके, यह सोचता है कि मैं संतुष्ट हो गया हूँ, मैं निर्मल हो गया हूँ, मैं किसी भी बंधन में नहीं हूँ। तथागत जानते हैं कि यह पुण्य संन्यासी या ब्राह्मण, अतीत और भविष्य के बारे में विचार त्यागकर, किसी भी इंद्रिय-संबंधी बंधन में न रहकर, एकांतवास के आनंद पर विजय प्राप्त करके, अमूर्त सुखमय भावों पर विजय प्राप्त करके, और न ही सुखमय भावों पर विजय प्राप्त करके, यह सोचता है कि मैं संतुष्ट हो गया हूँ, मैं निर्मल हो गया हूँ और मैं किसी भी बंधन में नहीं हूँ। यह पूजनीय संन्यास के निकट है, फिर भी अतीत के विचारों, भविष्य के विचारों, इंद्रिय-संबंधों, एकांतवास के आनंद, अमूर्त सुखमय भावों, और न ही सुखमय भावों से जुड़ा हुआ है। यह आदरणीय कहता है कि मैं शांत हो गया हूँ, सुलझ गया हूँ और कुछ धारण नहीं कर रहा हूँ, यह उसकी संपत्तियों की बात करता है। यह जटिल और भद्दा है, निर्धारणों का अंत हो गया है। यह जानकर तथागत ने इस मुक्ति को देखकर इस पर विजय प्राप्त कर ली।

यह वह अतुलनीय श्रेष्ठ शांति है जिसे तथागत ने छह मानसिक संपर्क क्षेत्रों के उद्भव, विघटन, संतुष्टि और खतरे के वास्तविक स्वरूप में अनुभव किया है, जो कि बंधन रहित मुक्ति है। तथागत ने इस अतुलनीय श्रेष्ठ शांति को अनुभव कर लिया है, इनके उद्भव, विघटन, संतुष्टि, खतरे और इनसे मुक्ति के वास्तविक स्वरूप को जानते हुए, और बंधन रहित होकर मुक्त हो गए हैं।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.3किन्ति सुत्त(103)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध बलिहारण के कुसिनारा वन क्षेत्र में निवास करते थे। वहीं से भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, क्या आप सोचते हैं कि एकांतवासी गौतम वस्त्र, भोजन और आवास प्राप्त करने के लिए इस उपदेश का प्रचार करते हैं?'

आदरणीय महोदय, हमें यह बात समझ में नहीं आती कि गौतम संन्यासी वस्त्र, भोजन और आवास प्राप्त करने के लिए इस शिक्षा का प्रचार करते हैं।

"भिक्षुओं, आप देखते हैं कि संन्यासी गौतम वस्त्र, भोजन और आवास प्राप्त करने के लिए शिक्षा का प्रचार नहीं करते, तो क्या शिक्षा का प्रचार करने का कोई कारण है?"

आदरणीय महोदय, हमें यह प्रतीत होता है कि भगवान बुद्ध करुणावश ही शिक्षा का प्रचार करते हैं।

भिक्षुओं, मुझे यह बात समझ में आती है कि भगवान करुणावश ही शिक्षा का प्रचार करते हैं। इसलिए आपको उन बातों का अभ्यास करना चाहिए जिन्हें मैंने अनुभव किया है और प्रचारित किया है, जैसे कि ध्यान की चार अवस्थाएँ, चार उचित प्रयास, चार मानसिक शक्तियाँ, पाँच मानसिक क्षमताएँ, पाँच शक्तियाँ, सात ज्ञान के कारक और श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग, एक साथ और बिना किसी विवाद के। एक साथ और बिना किसी विवाद के अभ्यास करते समय, दो भिक्षुओं के बीच उच्चतर शिक्षा के विषय में विवाद हो सकता है। तब आपको यह बात समझ में आएगी कि इन पूज्य भिक्षुओं ने किसी ऐसी बात पर विवाद खड़ा कर दिया है जिसका अर्थ और शब्द भिन्न हैं। दोनों में से अधिक समीपस्थ भिक्षु के पास जाकर उसे यह कहना चाहिए, 'पूज्य भिक्षु, यह विवाद किसी ऐसी बात पर है जिसका अर्थ और शब्द भिन्न हैं। पूज्य भिक्षुओं को इस पर विवाद नहीं करना चाहिए।' फिर दूसरे पक्ष के अधिक समीपस्थ भिक्षु के पास जाकर उसे यह कहना चाहिए, 'पूज्य भिक्षु, यह विवाद किसी ऐसी बात पर है जिसका अर्थ और शब्द भिन्न हैं।' इस विषय पर आदरणीय व्यक्तियों को

विवाद नहीं करना चाहिए। यदि कोई बात समझने में कठिन हो, तो उसे कठिन ही समझना चाहिए। शिक्षा और अनुशासन का परामर्श लेना चाहिए। यदि आपको लगे कि ये आदरणीय व्यक्ति इसकी अलग-अलग व्याख्या कर रहे हैं, तो शब्द एक ही हैं। दोनों में से जो अधिक आदरणीय हों, उनसे संपर्क करके कहना चाहिए, 'आदरणीय व्यक्ति, यहाँ अर्थ भिन्न है और शब्द एक ही हैं। आदरणीय व्यक्ति को यह ज्ञात होना चाहिए कि अर्थ भिन्न है और शब्द एक ही हैं, इस पर विवाद नहीं करना चाहिए। जो बात समझने में कठिन हो, उसे कठिन ही समझना चाहिए, जो आसानी से समझ में आए, उसे आसानी से समझ में आने वाला ही समझना चाहिए। शिक्षा और अनुशासन का परामर्श लेना चाहिए।' फिर दूसरी ओर जो सबसे अधिक आदरणीय व्यक्ति हों, उनसे संपर्क करके कहना चाहिए, 'आदरणीय व्यक्ति, यहाँ अर्थ भिन्न है और शब्द एक ही हैं। आदरणीय व्यक्ति को यह ज्ञात होना चाहिए कि अर्थ भिन्न है और शब्द एक ही हैं, इस पर विवाद नहीं करना चाहिए।' जो बात समझ में न आए उसे समझना कठिन है, और जो आसानी से समझ में आए उसे समझना आसान है। शिक्षा और अनुशासन का परामर्श लेना चाहिए। यदि आपको लगे कि ये दोनों पूज्यवर इसका एक ही अर्थ निकालते हैं, तो यहाँ शब्द भिन्न हैं। इन दोनों में से जो अधिक प्रिय है, उससे संपर्क करके उसे बताना चाहिए। 'पूज्यवर, यहाँ अर्थ एक ही है और शब्द भिन्न हैं। पूज्यवर को यह ज्ञात होना चाहिए कि अर्थ एक ही है और शब्द भिन्न हैं, इस पर विवाद नहीं करना चाहिए। जो बात समझ में न आए उसे समझना कठिन है, और जो आसानी से समझ में आए उसे समझना आसान है। शिक्षा और अनुशासन का परामर्श लेना चाहिए।' फिर दूसरी ओर जो अधिक प्रिय है, उससे संपर्क करके उसे बताना चाहिए। 'पूज्यवर, यहाँ अर्थ एक ही है और शब्द भिन्न हैं। पूज्यवर को यह ज्ञात होना चाहिए।'अर्थ एक ही है और शब्द भिन्न हैं, इस पर आपको विवाद नहीं करना चाहिए। जो समझना कठिन है उसे समझना कठिन ही मानना चाहिए, और जो आसानी से समझ में आता है उसे आसानी से समझ में आने वाला ही मानना चाहिए। शिक्षण और अनुशासन दोनों का संदर्भ लेना चाहिए।

तब आपको यह बात समझ में आएगी। इन पूज्यजनों ने एक ही अर्थ और एक ही शब्द पर विवाद खड़ा कर दिया है। दोनों में से जो अधिक पूज्य हैं, उनसे संपर्क करके कहना चाहिए, 'पूज्यजन, यह विवाद एक ही अर्थ और एक ही शब्द पर है। पूज्यजनों को इस पर विवाद नहीं करना चाहिए।' फिर दूसरी ओर जो अधिक पूज्यजन हैं, उनसे संपर्क करके कहना चाहिए, 'पूज्यजन, यह विवाद एक ही अर्थ और एक ही शब्द पर है। पूज्यजनों को इस पर विवाद नहीं करना चाहिए। यदि यह बात समझने में कठिन है, तो इसे कठिन ही समझना चाहिए। शिक्षा और अनुशासन का परामर्श लेना चाहिए।'

भिक्षुओं, जब आप इस प्रकार एकता, सौहार्द और बिना किसी विवाद के साधना करते हैं, तो यदि कोई भिक्षु नियम तोड़ता है और पाप करता है, तो उसे दोष नहीं देना चाहिए, बल्कि स्थिति का विश्लेषण करना चाहिए। हमें देखना चाहिए कि क्या यह व्यक्ति मूर्ख तो नहीं है, क्या वह क्रोध और द्वेष से ग्रसित तो नहीं है, क्या उसे बिना कष्ट पहुँचाए आसानी से सुधारा जा सकता है, और क्या उसे दोष से निकालकर पुण्य में स्थापित किया जा सकता है, बिना मुझे नाराज़ किए। यदि यह संभव है, तो यह अत्यंत उत्तम है। भिक्षुओं, यदि आपको यह प्रतीत होता है कि यह व्यक्ति मूर्ख, क्रोधी और द्वेषी है, तो उसे कष्ट पहुँचाकर सुधारा जा सकता है, और मेरे लिए उसे दोष से निकालकर पुण्य में स्थापित करना संभव है, बिना मुझे नाराज़ किए। उसे पहुँचाया गया कष्ट नगण्य है, उसे पहुँचाया गया लाभ अधिक होगा। भिक्षुओं, यह अत्यंत उत्तम है। भिक्षुओं, यदि आप यह सोचें कि यह व्यक्ति मूर्ख नहीं है, क्रोध और द्वेष से रहित है, सुधारना कठिन है, फिर भी मेरे लिए उसे दोष से निकालकर पुण्य में स्थापित करना संभव है, उसे बिना किसी कष्ट के, परन्तु मुझे कष्ट होगा। मुझे होने वाला कष्ट नगण्य है, उसे होने वाला उपकार बहुत अधिक होगा। यदि यह संभव है, तो यह शब्द से परे पुण्य है। भिक्षुओं, यदि आप यह सोचें कि यह व्यक्ति मूर्ख है, क्रोध और द्वेष से युक्त है, सुधारना कठिन है, फिर भी मेरे लिए उसे दोष से निकालकर पुण्य में स्थापित करना संभव है, उसे कष्ट देकर और मुझे कष्ट देकर। मुझे होने वाला कष्ट और उसे होने वाला कष्ट दोनों नगण्य हैं, उपकार बहुत अधिक होगा। यदि यह संभव है, तो यह शब्द से परे पुण्य है। भिक्षुओं, यदि आप यह सोचें कि यह व्यक्ति मूर्ख है, क्रोध और द्वेष से युक्त है, सुधारना कठिन है। इस व्यक्ति को सुधारना, उसके दोषों को दूर करना और उसे पुण्य में स्थापित करना संभव नहीं है, भले ही इससे उसे दुख पहुंचे और मुझे असुविधा हो। भिक्षुओं, ऐसे लोगों को अनदेखा करके छोड़ देना चाहिए।

भिक्षुओं, जब आप इस प्रकार एकतापूर्वक, सौहार्दपूर्ण और बिना किसी विवाद के साधना करते हैं, तो किसी भिक्षु के प्रति द्वेषपूर्ण विचार, क्रोध, घृणा और पवित्र जीवन में अरुचि उत्पन्न होती है। तब उस भिक्षु से संपर्क करना चाहिए जो अन्य भिक्षुओं की तुलना में अधिक एकांतप्रिय हो।

और कहा गया, 'जब हम एकता में, सौहार्दपूर्वक और बिना किसी विवाद के प्रशिक्षण ले रहे थे, तब हमारे बीच द्वेषपूर्ण विचार, क्रोध, घृणा और पवित्र जीवन में अरुचि उत्पन्न हो गई। जो संन्यासी जानते हैं, वे ऐसे विचारों की निंदा करते हैं।' भिक्षुओं ने इसका सही उत्तर देते हुए कहा, 'जब हम एकता में, सौहार्दपूर्वक और बिना किसी विवाद के प्रशिक्षण ले रहे थे, तब हमारे बीच द्वेषपूर्ण विचार, क्रोध, घृणा और पवित्र जीवन में अरुचि उत्पन्न हो गई। उस द्वेषपूर्ण विचार को दूर किए बिना मोक्ष प्राप्त करना संभव नहीं है।' फिर दूसरी ओर स्थित एक भिक्षु, जो अन्य भिक्षुओं की तुलना में अधिक संन्यासी था, के पास जाकर कहा गया, 'जब हम एकता में, सौहार्दपूर्वक और बिना

किसी विवाद के प्रशिक्षण ले रहे थे, तब हमारे बीच द्वेषपूर्ण विचार, क्रोध, घृणा और पवित्र जीवन में अरुचि उत्पन्न हो गई। उस द्वेषपूर्ण विचार को दूर किए बिना मोक्ष प्राप्त करना संभव नहीं है।'

तब अन्य भिक्षुओं को उस भिक्षु से पूछना चाहिए, "क्या पूज्य गुरु ने उसे दोष से उठाकर पुण्य में स्थापित किया?" वह भिक्षु सही उत्तर देते हुए कहे, "मैं भगवान बुद्ध के पास गया, उनसे यह उपदेश सुना और उस भिक्षु को बताया। उस उपदेश को सुनकर उसने स्वयं को दोष से उठाकर पुण्य में स्थापित किया। भिक्षुओं, इस प्रकार कहने से न तो आप अपनी प्रशंसा करते हैं, न ही दूसरों की निंदा करते हैं और न ही किसी बात के लिए दोषी ठहराए जाते हैं।"

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.4 समागम सुत्त(104)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध शाक्यों के साथ उनके गाँव सामगामा में रह रहे थे। उस समय निगन्न नाटपुत्त का हाल ही में पावा में निधन हो गया था। उनके निधन के बाद निगन्नों में फूट पड़ गई और वे आपस में झगड़ने, लड़ने और एक-दूसरे पर मुख में हथियार लेकर हमला करने लगे। वे इस प्रकार की बातें कह रहे थे: "तुम इस शिक्षा और अनुशासन को नहीं जानते, मैं जानता हूँ। तुम इसके बारे में क्या जानते हो? तुम गलत मार्ग पर चल रहे हो। मैं तर्क के साथ सही मार्ग पर चल रहा हूँ। तुम पहले की बात बाद में और बाद की बात पहले कहते हो। तुम्हारा झगड़ा बिना सोचे-समझे है, उलटा-सीधा और मनगढ़ंत है और इसकी निंदा की जानी चाहिए। जाओ! झगड़ा करो और हो सके तो अपना मार्ग खोजो।" निगन्न नाटपुत्त का धर्म विनाश की ओर बढ़ रहा था। निगन्ननतपुत्त के वे गृहस्थ शिष्य, जो सफेद वस्त्र धारण करते थे, भी विखंडित, उदासीन, अवरुद्ध और आश्रयहीन हो गए, जैसा कि एक ऐसे युग में होता है, जिसे सही ढंग से नहीं सिखाया गया हो और जिसे सही मायने में प्रबुद्ध व्यक्ति द्वारा नहीं सिखाया गया हो।

नवोदित चुंडा ने वर्षा ऋतु पावा में बिताई, सामगामा में पूज्य आनंद के पास पहुँचे, प्रणाम किया और एक तरफ बैठकर उनसे कहा, "पूज्यवर, निगन्न नटपुत्त का हाल ही में पावा में निधन हो गया। उनके निधन के बाद निगन्नों में फूट पड़ गई है, वे आपस में झगड़ रहे हैं, लड़ रहे हैं, एक-दूसरे पर मुख-शस्त्रों से हमला कर रहे हैं। वे इस प्रकार की बातें कह रहे हैं। 'तुम इस शिक्षा और अनुशासन को नहीं जानते, मैं जानता हूँ। तुम इसके बारे में क्या जानते हो? तुम गलत मार्ग पर चल पड़े हो। मैं तर्क सहित सही मार्ग पर चला हूँ। तुम पहले की बात को अंत में और अंत की बात को पहले रखते हो। तुम्हारा विवाद बिना सोचे-समझे, उलटा-सीधा और मनगढ़ंत है और इसकी निंदा की जानी चाहिए। जाओ! विवाद करो और यदि संभव हो तो अपना मार्ग खोजो। निगन्न नटपुत्त का धर्म विनाश की ओर जा रहा है।' निगन्ननतपुत्त के वे गृहस्थ शिष्य, जो श्वेत वस्त्र धारण करते थे, भी विचलित, उदासीन, अवरुद्ध और आश्रयहीन हो गए, जैसा कि किसी ऐसे धर्म में होता है जिसे उचित शिक्षा न मिली हो और जो सही मायने में प्रबुद्ध न हो। यह सुनकर पूज्य आनंद ने कहा, 'मित्र चुंडा, यह बात भगवान बुद्ध को बतानी होगी। आइए हम भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्हें इसके बारे में सूचित करें।'

आदरणीय चुंडा सहमत हो गए और आदरणीय आनंद और नवोदित चुंडा भगवान बुद्ध के पास गए, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और आदरणीय आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, 'आदरणीय महोदय, नवोदित चुंडा कहते हैं कि निगन्न नटपुत्त का हाल ही में पावा में निधन हो गया है। उनके निधन के बाद निगन्नों में फूट पड़ गई है, वे आपस में झगड़ रहे हैं, लड़ रहे हैं, एक-दूसरे पर मुख में हथियार लेकर हमला कर रहे हैं। वे इस प्रकार की बातें कह रहे हैं। 'तुम इस शिक्षा और अनुशासन को नहीं जानते, मैं जानता हूँ। तुम इसके बारे में क्या जानते हो? तुम गलत मार्ग पर चल रहे हो। मैं सही मार्ग पर चल रहा हूँ, तर्क के साथ। तुम पहले की बात को बाद में और बाद की बात को पहले कहते हो। तुम्हारा विवाद बिना सोचे-समझे, उलटा-सीधा और मनगढ़ंत है और इसकी निंदा की जानी चाहिए। जाओ! विवाद करो और यदि संभव हो तो अपना मार्ग खोजो। निगन्न नटपुत्त का धर्म विनाश की ओर चला गया है।' निगन्ननतपुत्त के वे गृहस्थ शिष्य, जो श्वेत वस्त्र धारण करते थे, भी विमुख, उदासीन, अवरुद्ध और आश्रयहीन हो गए, जैसा कि एक ऐसे युग में होता है, जिसे उचित शिक्षा नहीं मिली है और जिसका मार्गदर्शन सही ढंग से नहीं किया गया है। आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध के देहांत पर मुझे यह विचार आता है कि अनेकों के कल्याण और भलाई के लिए कोई विवाद न हो।

'आदणंद, क्या आपको मेरे द्वारा अनुभव किए गए और प्रचारित इस उपदेश में कोई ऐसा उदाहरण दिखाई देता है जहाँ दो भिक्षु विवाद कर सकें, जैसे कि ध्यान की चार अवस्थाएँ, चार उचित प्रयास, चार मानसिक शक्तियाँ, पाँच मानसिक क्षमताएँ, पाँच शक्तियाँ, सात ज्ञान कारक और अष्टांगिक मार्ग?' 'आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध द्वारा अनुभव किए गए और प्रचारित इस उपदेश में मुझे कोई ऐसा उदाहरण नहीं दिखाई देता जहाँ दो भिक्षु विवाद कर सकें, जैसे कि ध्यान की चार अवस्थाएँ, चार उचित प्रयास, चार मानसिक शक्तियाँ, पाँच मानसिक क्षमताएँ, पाँच शक्तियाँ, सात ज्ञान कारक और अष्टांगिक मार्ग।'

फिर भी जो लोग अब भगवान के प्रति आज्ञाकारी प्रतीत होते हुए जीवन व्यतीत करते हैं, वे कठोर आजीविका के कारण विवाद उत्पन्न करेंगे, क्योंकि उच्च नियमों के विरुद्ध यह अनेकों के कल्याण और देवताओं एवं मनुष्यों के कल्याण के लिए नहीं होगा। आनंद, कठोर आजीविका या उच्च नियमों पर विवाद नगण्य है; यदि समुदाय में मार्ग और विधि को लेकर विवाद हो, तो यह अनेकों के लिए, देवताओं एवं मनुष्यों के लिए अप्रिय होगा।

आनंद, ये छह कारण विवाद का कारण बनते हैं। ये छह कारण क्या हैं? जब भिक्षु क्रोधित हो जाता है और मन में द्वेष रखता है, तो वह गुरु के प्रति भी अनुशासनहीन हो जाता है, शिक्षा के विरुद्ध विद्रोह करता है और अनुशासनहीन हो जाता है, समुदाय के विरुद्ध विद्रोह करता है और अनुशासनहीन हो जाता है, और प्रशिक्षण में पूर्ण रूप से लीन नहीं रहता। इस प्रकार वह समुदाय में विवाद उत्पन्न करता है, जिससे अनेकों और देवताओं एवं मनुष्यों को अप्रसन्नता होती है। आनंद, यदि आप विवाद का यह कारण आंतरिक या बाह्य रूप से देखें, तो आपको विवाद के इस कारण को दूर करने और इसे पुनः उत्पन्न न होने देने का प्रयास करना चाहिए।

फिर से, आनंद, भिक्षु पाखंड से निर्दयी है... ईर्ष्यालु और स्वार्थी है... धूर्त और कपटी है... बुरी इच्छाओं और गलत दृष्टिकोण से ग्रस्त है... सांसारिक मामलों से मजबूती से जुड़ा हुआ है और आसानी से उन्हें नहीं छोड़ता। जब भिक्षु सांसारिक मामलों से मजबूती से जुड़ा रहता है और आसानी से उन्हें नहीं छोड़ता, तो वह गुरु के प्रति भी अनुशासनहीन हो जाता है, शिक्षा के विरुद्ध विद्रोह करता है और अनुशासनहीन हो जाता है, समुदाय के विरुद्ध विद्रोह करता है और अनुशासनहीन हो जाता है, प्रशिक्षण में पूर्ण रूप से नहीं रहता। इस प्रकार वह समुदाय में विवाद उत्पन्न करता है, जिससे अनेकों और देवताओं एवं मनुष्यों को अप्रसन्नता होती है। आनंद, यदि आप विवाद का यह कारण आंतरिक या बाह्य रूप से देखते हैं, तो आपको उस विवाद के कारण को दूर करने और भविष्य में उसके दोबारा न उत्पन्न होने के लिए प्रयास करना चाहिए। यही विवादों के बुरे कारणों को दूर करना है, ताकि भविष्य में वे उत्पन्न न हों। आनंद, ये विवाद के छह कारण हैं।

आनंद, चार प्रकार के प्रशासन हैं। वे चार क्या हैं? विवाद के प्रश्न, निंदा के प्रश्न, दुराचार के प्रश्न और कर्तव्य के प्रश्न। आनंद, इन सभी विवादों को निपटाने के सात तरीके हैं। आरोपी की उपस्थिति में कार्यवाही करना, आरोपी की अंतरात्मा से अपील करना, मानसिक रूप से स्वस्थ होने के आधार पर बरी करना, वचन के द्वारा समझौता करना, अध्याय के बहुमत से बरी करना, बुरी इच्छाओं के कारण बरी करना और बिना विस्तार में जाए पूरे मामले को दबा देना।

आनंद, आरोपी की उपस्थिति में कार्यवाही कैसे की जाती है? भिक्षु इस बात पर विवाद करते हैं कि यह शिक्षा है और यह शिक्षा नहीं है, यह अनुशासन है और यह अनुशासन नहीं है। तब सभी भिक्षु एकजुट होकर शिक्षा के अनुसार इसकी जांच करते हैं और इसे अनुमोदित और तय करते हैं। इस प्रकार आरोपी की उपस्थिति में कार्यवाही की जाती है।

आनंद, अध्याय के बहुमत मत से दोषमुक्ति कैसे होती है? इस मामले का निपटारा उसी मठ में संभव नहीं है, हमें ऐसे स्थान पर जाना चाहिए जहाँ भिक्षुओं की संख्या अधिक हो। तब सभी भिक्षु एकजुट होकर एक साथ बैठें और शिक्षा के अनुसार इसकी जांच करें और इसे अनुमोदित और निपटाएं। उस विवाद को निपटाने के लिए, अध्याय के बहुमत मत से आरोपी को दोषमुक्त किया जाना चाहिए। इस प्रकार भी मामला सुलझ जाता है।

आनंद, अंतरात्मा को कैसे अनुनयित किया जाता है? भिक्षु दूसरे भिक्षु पर किसी गंभीर अपराध का आरोप लगाते हैं, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा दी जानी चाहिए। वे पूछते हैं कि क्या आदरणीय भिक्षु को याद है कि उन्होंने यह गंभीर अपराध किया है, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा दी जानी चाहिए? भिक्षु कहते हैं, आदरणीय महोदय, मुझे याद नहीं है कि मैंने यह गंभीर अपराध किया है, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा दी जानी चाहिए। आनंद, इसी प्रकार से अंतरात्मा को अनुशासित किया जाता है। इसी प्रकार से अंतरात्मा को अनुशासित करके विवाद का निपटारा किया जाता है।

आनंद, विवेक की बहाली के आधार पर बरी होना कैसा होता है? भिक्षु दूसरे भिक्षु पर गंभीर अपराध का आरोप लगाते हैं, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा दी जानी चाहिए। वे पूछते हैं कि क्या आदरणीय भिक्षु को याद है कि उन्होंने यह गंभीर अपराध किया है, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा दी जानी चाहिए। भिक्षु कहते हैं, आदरणीय महोदय, मुझे याद नहीं है कि मैंने यह गंभीर अपराध किया है, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा दी जानी चाहिए। तब उन्हें यह स्पष्ट करना चाहिए, आदरणीय भिक्षु, याद कीजिए कि क्या आपने कोई गंभीर अपराध किया है। तब वे कहेंगे, मित्रों, मेरा मन विचलित हो गया था, मेरा दिमाग भटक गया था और मैंने कई ऐसे काम किए जो एक सच्चे संन्यासी को नहीं करने चाहिए थे। मैंने बहुत सी चुभने वाली बातें कही हैं जो नहीं कहनी चाहिए थीं। ये सब मैंने भ्रम में किया और मुझे याद नहीं है। आनंद, विवेक की बहाली के आधार पर उन्हें बरी कर दिया जाना चाहिए। विवेक की बहाली के आधार पर बरी होना यही है, इस प्रकार भी विवादों का निपटारा होता है।

आनंद, वचन द्वारा समझौता कैसे होता है? एक भिक्षु, चाहे उस पर किसी अपराध का आरोप हो या न हो, उसे याद करके स्वीकार करता है। उसे एक वृद्ध भिक्षु के पास जाना चाहिए, उनके वस्त्र को एक कंधे पर रखना चाहिए, उनके चरणों की पूजा करनी चाहिए, उनके चरणों में बैठकर प्रणाम करना चाहिए और कहना चाहिए, 'आदरणीय भिक्षु, मैंने अपराध किया है और मैं इसे स्वीकार करता/करती हूँ।' तब वृद्ध भिक्षु पूछेंगे, 'क्या आप इसे देखते हैं?' 'हाँ, मैं देखता/देखती हूँ।' 'क्या आपने भविष्य में संयम बरता है?' 'मैंने भविष्य में संयम बरता है।' आनंद, यही वचन द्वारा समझौता है, इस प्रकार भी विवाद का निपटारा होता है।

आनंद, बुरी इच्छाओं से कैसे निपटा जाए? भिक्षु दूसरे भिक्षु पर गंभीर अपराध का आरोप लगाते हैं, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा मिलनी चाहिए। वे पूछते हैं कि क्या आदरणीय भिक्षु को वह गंभीर अपराध याद है, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा मिलनी चाहिए? वह कहता है, आदरणीय महोदय, मुझे वह गंभीर अपराध याद नहीं है, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा मिलनी चाहिए। तब उसे यह समझाना चाहिए, आदरणीय भिक्षु, याद कीजिए कि क्या आपने कोई गंभीर अपराध या इसी तरह का कोई अपराध किया है। तब वह कहेगा, 'मित्रों, मुझे एक छोटे से अपराध का पता है, जिसके लिए मुझे कोई पछतावा नहीं हुआ। अगर मैंने कोई गंभीर अपराध या इसी तरह का कोई अपराध किया होता, तो मुझे वह याद क्यों नहीं आता?' तब उसे कहा जाता है, 'आपने एक छोटा सा अपराध किया है, पछतावा न होने के कारण आपने उसे स्वीकार नहीं किया। आइए! याद कीजिए कि क्या आपने कोई गंभीर अपराध या इसी तरह का कोई अपराध किया है।' तब वह कहेगा। 'मित्रों, मुझे याद है मैंने एक गंभीर अपराध किया है, जिसके लिए निष्कासन या इसी तरह की सजा मिलनी चाहिए,' आनंद ने कहा, 'इस प्रकार उसकी बुरी इच्छाएं समाप्त हो जानी चाहिए और विवाद का निपटारा हो जाना चाहिए।'

आनंद, घास से ढकने से क्या हल हो जाता है? आनंद, भिक्षु आपस में झगड़ते, लड़ते और ऐसी बातें कहते रहते हैं जो सच्चे संन्यासियों को नहीं कहनी चाहिए। तब सभी भिक्षुओं को एकजुट होकर इकट्ठा होना चाहिए। एक तरफ से एक विद्वान भिक्षु उठकर, एक कंधे पर वस्त्र व्यवस्थित करके, हाथ जोड़कर समुदाय को सूचित करे। 'हे आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए, जब हम झगड़ रहे थे और लड़ रहे थे, तब आपने और मैंने भी ऐसी बहुत सी बातें कह दीं जो सच्चे संन्यासियों को नहीं कहनी चाहिए। हमने अपराध किया है। समुदाय के भले के लिए, आप सभी और मैं भी, गृहस्थों के बीच हुई इस चर्चा और अपराध को समुदाय के सामने ढक दिया जाए।' तब दूसरी तरफ से एक भिक्षु उठकर, एक कंधे पर वस्त्र व्यवस्थित करके, हाथ जोड़कर समुदाय को सूचित करे। आदरणीय महोदय, मेरी बात सुनिए, जब हम आपस में झगड़ रहे थे और लड़ रहे थे, तब आपने और मैंने भी कई ऐसी बातें कह दीं जो सच्चे संन्यासी को नहीं कहनी चाहिए। हमने अपराध किया है। समुदाय के भले के लिए, आप सभी और मैं भी, समुदाय के सामने हुई इस चर्चा और अपराध को छिपा दिया जाए। आनंद, यह घास से ढकने जैसा है, और विवाद को घास से ढककर ही सुलझाया जाता है।

आनंद, एकता, प्रसन्नता और मित्रता को बढ़ावा देने वाली और विवादों को दूर करने वाली छह बातें हैं। वे छह बातें क्या हैं? आनंद, भिक्षु को अपने सन्यासी जीवन में सहपाठियों के प्रति शारीरिक रूप से प्रेमपूर्ण दयालुता का भाव रखना चाहिए। भिक्षु को अपने सन्यासी जीवन में सहपाठियों के प्रति मौखिक रूप से प्रेमपूर्ण दयालुता का भाव रखना चाहिए। भिक्षु को अपने सन्यासी जीवन में सहपाठियों के प्रति मानसिक रूप से प्रेमपूर्ण दयालुता का भाव रखना चाहिए। भिक्षु को अपने सन्यासी जीवन में सहपाठियों के साथ कटोरे में रखे गए निवाले तक सभी उचित लाभों को समान रूप से बाँटना चाहिए। भिक्षु अपने सन्यासी जीवन में सहपाठियों के साथ उन सभी गुणों में समान रूप से संपन्न होना चाहिए जो दागदार, त्रुटिरहित, दोषरहित और ज्ञानियों द्वारा एकाग्रता बढ़ाने वाले माने जाते हैं। फिर भिक्षु उस महान दृष्टिकोण को, जो उचित रूप से अप्रियता को नष्ट करता है, [4] जो तार्किक रूप से इस पर विचार करता है, पवित्र जीवन में सहचरों के साथ खुले तौर पर और गुप्त रूप से साझा करता है। आनंद, ये छह बातें एकता, प्रसन्नता और मित्रता को बढ़ावा देती हैं और विवादों को दूर करती हैं। आनंद, क्या आपको इन शब्दों में एक भी ऐसा शब्द दिखाई देता है जो स्वीकार्य नहीं है?

आदरणीय महोदय, मुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा है।

अत: हे आनंद, एकता, प्रसन्नता और मित्रता को बढ़ावा देने वाले तथा विवादों को दूर करने वाले इन छह गुणों में निपुण हो जाओ, यह तुम्हारे लिए दीर्घकालिक कल्याणकारी होगा।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.5सुनक्खत्ता सुत्त(105)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध वैशाली के पास महान वन में, शिखर मंडप में ठहरे हुए थे। उस समय बड़ी संख्या में भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में अंतिम ज्ञान की घोषणा की: "हम समझते हैं कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार के लिए अब और कुछ नहीं बचा है।'"

लिच्छविन सुनक्खत्ता ने सुना कि "ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत से भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में अंतिम ज्ञान की घोषणा की है: 'हम समझते हैं कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार के लिए अब और कुछ नहीं बचा है।'" तब लिच्छविन सुनक्खत्ता भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा: "हे भगवान, मैंने सुना है कि बहुत से भिक्षुओं ने भगवान बुद्ध की उपस्थिति में अंतिम ज्ञान की घोषणा की है: 'हम समझते हैं कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार के लिए अब और कुछ नहीं बचा है।' अब, क्या उन्होंने सही ढंग से अंतिम ज्ञान की घोषणा की है, या उनमें से कुछ ने अतिशयोक्ति के कारण अंतिम ज्ञान की घोषणा की है?"

"सुनक्खत्ता, मेरे समक्ष अंतिम ज्ञान की घोषणा करने वाले भिक्षुओं में से... कुछ ने सही ढंग से अंतिम ज्ञान की घोषणा की है, जबकि अन्य ने अतिशयोक्ति के कारण अंतिम ज्ञान की घोषणा की है। जिन्होंने सही ढंग से अंतिम ज्ञान की घोषणा की है, वही उनका सत्य है। और जिन्होंने अतिशयोक्ति के कारण अंतिम ज्ञान की घोषणा की है, तथागत के मन में यह विचार आता है, 'मैं इन्हें धम्म का उपदेश दूंगा।' फिर भी ऐसे भी मामले हैं जब तथागत के मन में यह विचार आया है, 'मैं इन्हें धम्म का उपदेश दूंगा,' लेकिन कुछ निकम्मे लोग उनके पास प्रश्नोत्तर प्रश्न लेकर आते हैं, जिससे उनका 'मैं इन्हें धम्म का उपदेश दूंगा' का विचार कुछ और ही रूप ले लेता है।"

हे भगवान, अब समय आ गया है। हे स्वर्गवासी, अब समय आ गया है कि भगवान धम्म का उपदेश दें। भगवान का उपदेश सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।

"तो फिर, सुनक्खत्ता, ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, भगवान," लिच्छविन सुनक्खत्ता ने भगवान को उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "सुनक्खत्ता, ये पाँच प्रकार की कामुकता होती हैं। कौन से पाँच? आँखों से दिखाई देने वाले रूप - मनभावन, सुखद, आकर्षक, लुभावना, इच्छा जगाने वाला, मोहक। कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनाई देने वाली सुगंध... जीभ से महसूस होने वाले स्वाद... शरीर द्वारा महसूस की जाने वाली स्पर्श संवेदनाएँ - मनभावन, सुखद, आकर्षक, मोहक, इच्छा जगाने वाला, मोहक। ये पाँच प्रकार की कामुकता होती हैं।"

"अब एक ऐसी स्थिति भी हो सकती है जहाँ कोई व्यक्ति सांसारिक प्रलोभनों में लिप्त हो। जब कोई व्यक्ति सांसारिक प्रलोभनों में लिप्त होता है, तो उसे उस प्रकार की बातें रुचिकर लगती हैं, उसका चिंतन और मूल्यांकन उसी दिशा में आगे बढ़ता है, वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज महसूस करता है, और उसका मन ऐसे व्यक्ति के साथ सामंजस्य बिठा लेता है। लेकिन जब अविचलित (चौथे ध्यान और अनंत अंतरिक्ष एवं अनंत चेतना के क्षेत्र) विषयों पर चर्चा हो रही होती है, तो वह न तो सुनता है, न ही ध्यान देता है, और न ही जानने का प्रयास करता है। वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज नहीं हो पाता; उसका मन उसके साथ सहज महसूस नहीं करता।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति बहुत समय पहले अपना गाँव या कस्बा छोड़कर चला गया था। उसकी मुलाकात एक ऐसे व्यक्ति से होती है जो कुछ ही समय पहले उसी गाँव या कस्बे को छोड़कर आया है। वह पूछेगा कि क्या गाँव या कस्बे के लोग सुरक्षित, तृप्त और रोगमुक्त हैं, और दूसरा व्यक्ति उसे बताएगा कि क्या वे सुरक्षित, तृप्त और रोगमुक्त हैं। अब, सुनक्खत्ता, आप क्या सोचते हैं? क्या पहला व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की बात सुनेगा, ध्यान से सुनेगा और जानने की कोशिश करेगा? क्या वह दूसरे व्यक्ति के साथ घुलमिल पाएगा; क्या उसका मन उसके साथ सहज महसूस करेगा?

"हाँ भगवान।"

"इसी प्रकार, यह संभव है कि कोई व्यक्ति सांसारिक प्रलोभनों में लिप्त हो। जब कोई व्यक्ति सांसारिक प्रलोभनों में लिप्त होता है, तो उसे उस प्रकार की बातें रुचिकर लगती हैं, उसका चिंतन और मूल्यांकन उसी दिशा में आगे बढ़ता है, वह उस प्रकार के व्यक्ति के साथ सहज महसूस करता है, और उसका मन उस प्रकार के व्यक्ति के साथ सामंजस्य स्थापित कर लेता है। लेकिन जब अविचलित (चौथे ध्यान और अनंत अंतरिक्ष एवं अनंत चेतना के क्षेत्र) विषयों पर चर्चा हो रही होती है, तो वह न तो सुनता है, न ही ध्यान देता है, और न ही जानने का प्रयास करता है। वह उस प्रकार के व्यक्ति के साथ सहज नहीं हो पाता; उसका मन उसके साथ सहज महसूस नहीं करता। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि 'यह व्यक्ति सांसारिक प्रलोभनों में लिप्त है।'"

अब, एक ऐसी स्थिति भी हो सकती है जहाँ कोई व्यक्ति शांत और स्थिर रहने पर ध्यान केंद्रित करता है। जब कोई व्यक्ति शांत और स्थिर रहने पर ध्यान केंद्रित करता है, तो उसे उस प्रकार की बातें रुचिकर लगती हैं, उसका चिंतन और मूल्यांकन उसी दिशा में आगे बढ़ता है, वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज महसूस करता है, और उसका मन ऐसे व्यक्ति के साथ सामंजस्य बिठा लेता है। लेकिन जब दुनियावी बातों की चर्चा हो रही होती है, तो वह सुनता नहीं है, ध्यान नहीं देता है, और जानने के लिए अपने मन का प्रयोग नहीं करता है। वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज नहीं रह पाता है; उसका मन उसके साथ सहज महसूस नहीं करता है।

"जैसे तने से अलग हुआ पीला पत्ता फिर कभी हरा नहीं हो सकता, उसी प्रकार जब कोई व्यक्ति अविचलित अवस्था में लीन हो जाता है, तो वह संसार के प्रलोभनों के बंधन से मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि 'यह व्यक्ति, संसार के प्रलोभनों से मुक्त होकर, अविचलित अवस्था में लीन है।'"

अब, एक ऐसी स्थिति भी हो सकती है जहाँ कोई व्यक्ति शून्यता के आयाम पर केंद्रित हो। जब कोई व्यक्ति शून्यता के आयाम पर केंद्रित होता है, तो उसे उस प्रकार की बातें रुचिकर लगती हैं, उसका चिंतन और मूल्यांकन उसी दिशा में आगे बढ़ता है, वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज महसूस करता है, और उसका मन ऐसे व्यक्ति के साथ सामंजस्य बिठा लेता है। लेकिन जब अविचलितता के विषय में बात हो रही होती है, तो वह न तो सुनता है, न ही ध्यान देता है, और न ही जानने के लिए अपने मन का प्रयोग करता है। वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज नहीं हो पाता; उसका मन उसके साथ सहज महसूस नहीं करता।

"जैसे दो टुकड़ों में टूटी हुई मोटी चट्टान को फिर से जोड़ा नहीं जा सकता, उसी प्रकार जब कोई व्यक्ति शून्यता के आयाम पर ध्यान केंद्रित करता है, तो वह अविचलितता के बंधन को तोड़ देता है। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि 'यह व्यक्ति, अविचलितता के बंधन से मुक्त होकर, शून्यता के आयाम पर ध्यान केंद्रित कर रहा है।'"

अब, एक ऐसी स्थिति भी हो सकती है जहाँ कोई व्यक्ति न तो बोध और न ही अबोध के आयाम पर ध्यान केंद्रित करता है। जब कोई व्यक्ति न तो बोध और न ही अबोध के आयाम पर ध्यान केंद्रित करता है, तो उस प्रकार की बातें उसे रुचिकर लगती हैं, उसका चिंतन और मूल्यांकन उसी दिशा में आगे बढ़ता है, वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज महसूस करता है, और उसका मन ऐसे व्यक्ति के साथ सामंजस्य बिठा लेता है। लेकिन जब शून्यता के आयाम के बारे में बात हो रही होती है, तो वह न तो सुनता है, न ही ध्यान देता है, और न ही जानने के लिए अपने मन पर जोर डालता है। वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज नहीं हो पाता; उसका मन उसके साथ सहज महसूस नहीं करता।

"सुनक्खत्ता, मान लो कि किसी व्यक्ति ने स्वादिष्ट भोजन खाया और उसे उल्टी कर दिया। क्या तुम सोचते हो - क्या उसे उस भोजन की कोई इच्छा रहेगी?"

"नहीं, भगवान। ऐसा क्यों? क्योंकि वह उस भोजन को घृणित समझेगा।"

"इसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति न तो बोध और न ही अबोध के आयाम पर ध्यान केंद्रित करता है, तो वह शून्यता के आयाम के बंधन को तोड़ देता है। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि 'शून्यता के आयाम के बंधन से मुक्त यह व्यक्ति न तो बोध और न ही अबोध के आयाम पर ध्यान केंद्रित करता है।'"

अब, एक ऐसी स्थिति भी हो सकती है जहाँ कोई व्यक्ति वास्तव में बंधनमुक्ति की इच्छा रखता हो। जब कोई व्यक्ति वास्तव में बंधनमुक्ति की इच्छा रखता है, तो उसे इस प्रकार की बातें रुचिकर लगती हैं, उसका चिंतन और मूल्यांकन इसी दिशा में आगे बढ़ता है, वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज महसूस करता है, और उसका मन ऐसे व्यक्ति के साथ सामंजस्य बिठा लेता है। लेकिन जब ऐसी बातें हो रही हों जो न तो प्रत्यक्ष और न ही अप्रत्यक्षता के आयाम से संबंधित हों, तो वह न तो सुनता है, न ही ध्यान देता है, और न ही जानने का प्रयास करता है। वह ऐसे व्यक्ति के साथ सहज नहीं हो पाता; उसका मन उसके साथ सहज महसूस नहीं करता।

"जैसे किसी ताड़ के पेड़ का ऊपरी भाग काट देने पर वह आगे नहीं बढ़ पाता, उसी प्रकार जब कोई व्यक्ति सही ढंग से मुक्ति पाने के लिए तल्लीन होता है, तो वह बोध और अबोध के बंधन को जड़ से उखाड़ फेंकता है, उसे विकास की अवस्थाओं से वंचित ताड़ के ठूंठ के समान बना देता है, जो भविष्य में उत्पन्न होने के लिए नियत नहीं होता। इसी प्रकार यह जाना जा सकता है कि 'बोध और अबोध के बंधन से मुक्त यह व्यक्ति मुक्ति पाने के लिए तल्लीन है।'"

अब, एक ऐसी स्थिति हो सकती है जहाँ कोई भिक्षु सोचे, 'ध्यानमग्न (बुद्ध) ने लालसा को तीर बताया है। अज्ञान का विष इच्छा, वासना और द्वेष के माध्यम से अपना जहर फैलाता है। मैंने तीर का त्याग कर दिया है। मैंने अज्ञान के विष को निकाल दिया है। मैं सही मायने में मुक्ति के लिए तत्पर हूँ।' क्योंकि यह उसके लिए सत्य नहीं है, वह उन चीजों का पीछा कर सकता है जो मुक्ति के लिए तत्पर व्यक्ति के लिए अनुपयुक्त हैं। वह आँखों से अनुपयुक्त रूपों और दृश्यों का पीछा कर सकता है। वह कानों से अनुपयुक्त ध्वनियों का पीछा कर सकता है... नाक से अनुपयुक्त सुगंधों का... जीभ से अनुपयुक्त स्वादों का... शरीर से अनुपयुक्त स्पर्श संवेदनाओं का। वह बुद्धि से अनुपयुक्त विचारों का पीछा कर सकता है। जब वह आँखों से अनुपयुक्त रूपों और दृश्यों का पीछा करता है... बुद्धि से अनुपयुक्त विचारों का पीछा करता है, तो कामवासना मन पर हावी हो जाती है। कामवासना से ग्रस्त मन के कारण, वह मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा का शिकार होता है।

मान लीजिए कि एक व्यक्ति विष से लथपथ तीर से घायल हो गया। उसके मित्र, साथी, रिश्तेदार और सगे-संबंधी उसके लिए एक सर्जन की व्यवस्था करते। सर्जन चाकू से घाव के चारों ओर चीरा लगाता और फिर एक औजार से तीर को टटोलता। वह तीर को बाहर निकालता और विष को निकाल लेता, जिससे थोड़ा सा अवशेष रह जाता। अवशेष रह जाने पर वह कहता, 'मेरे भले, तुम्हारा तीर निकाल लिया गया है। विष निकाल लिया गया है, थोड़ा सा अवशेष रह गया है, लेकिन इससे तुम्हें कोई नुकसान नहीं होगा। उचित भोजन करो। अनुपयुक्त भोजन मत करो, नहीं तो घाव में मवाद भर जाएगा। घाव को बार-बार धोते रहो और उस पर बार-बार मरहम लगाते रहो, ताकि घाव में खून और मवाद न भर जाए। हवा और धूप में मत घूमो, नहीं तो धूल और गंदगी घाव को दूषित कर सकती है। मेरे भले, घाव का ध्यान रखो और उसे ठीक करने के लिए प्रयास करो।'

उस व्यक्ति के मन में यह विचार आता: 'मेरा तीर निकाल लिया गया है। ज़हर निकाल लिया गया है, थोड़ा सा अवशेष बचा है, लेकिन इतना नहीं कि मुझे नुकसान हो।' वह अनुपयुक्त भोजन करता, जिससे घाव में मवाद भर जाता। वह घाव को बार-बार धोता या मरहम नहीं लगाता, जिससे घाव के मुँह में खून और मवाद भर जाता। वह हवा और धूप में घूमता, जिससे घाव के मुँह में धूल और गंदगी जमा हो जाती। वह घाव की देखभाल नहीं करता और न ही उसे ठीक करने के लिए कुछ करता। अब, उसके इन अनुपयुक्त कार्यों और बचे हुए गंदे ज़हर के अवशेष के कारण, घाव सूज जाता। घाव के सूजने से उसकी मृत्यु हो जाती या उसे मृत्यु के समान पीड़ा सहनी पड़ती।

"इसी प्रकार, एक ऐसा मामला भी संभव है जहाँ कोई भिक्षु सोचता है, 'ध्यानशील व्यक्ति के अनुसार लालसा एक तीर है। अज्ञान का विष इच्छा, वासना और द्वेष के माध्यम से अपना जहर फैलाता है। मैंने तीर का त्याग कर दिया है। मैंने अज्ञान के विष को निष्कासित कर दिया है। मैं सही मायने में मुक्ति के बंधन में लीन हूँ।" क्योंकि यह बात उसके स्वभाव में नहीं है, इसलिए वह उन चीजों का पीछा कर सकता है जो मुक्ति के सच्चे इरादे वाले व्यक्ति के लिए अनुपयुक्त हैं। वह आँखों से अनुपयुक्त रूपों और दृश्यों का पीछा कर सकता है। वह कानों से अनुपयुक्त ध्वनियों का पीछा कर सकता है... नाक से अनुपयुक्त सुगंधों का... जीभ से अनुपयुक्त स्वादों का... शरीर से अनुपयुक्त स्पर्श संवेदनाओं का। वह बुद्धि से अनुपयुक्त विचारों का पीछा कर सकता है। जब वह आँखों से अनुपयुक्त रूपों और दृश्यों का पीछा करता है... बुद्धि से अनुपयुक्त विचारों का पीछा करता है, तो कामवासना मन पर हावी हो जाती है। कामवासना से ग्रस्त मन के कारण, वह मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा का शिकार होता है। क्योंकि श्रेष्ठ जनों के अनुशासन में यही मृत्यु है: जब कोई प्रशिक्षण त्याग कर निम्न जीवन में लौट जाता है। और यही मृत्यु के समान पीड़ा है: जब कोई अपवित्र अपराध करता है।

अब, एक ऐसी स्थिति हो सकती है जहाँ कोई भिक्षु सोचे, 'ध्यानमग्न व्यक्ति के अनुसार लालसा एक तीर है। अज्ञान का विष इच्छा, वासना और द्वेष के माध्यम से अपना जहर फैलाता है। मैंने तीर का त्याग कर दिया है। मैंने अज्ञान के विष को निकाल दिया है। मैं मुक्ति के लिए सही ढंग से तल्लीन हूँ।' क्योंकि वह मुक्ति के लिए सही ढंग से तल्लीन है, इसलिए वह उन चीजों का पीछा नहीं करेगा जो मुक्ति के लिए सही ढंग से तल्लीन व्यक्ति के लिए अनुपयुक्त हैं। वह आँखों से अनुपयुक्त रूपों और दृश्यों का पीछा नहीं करेगा। वह कानों से अनुपयुक्त ध्वनियों का पीछा नहीं करेगा... नाक से अनुपयुक्त सुगंधों का पीछा नहीं करेगा... जीभ से अनुपयुक्त स्वादों का पीछा नहीं करेगा... शरीर से अनुपयुक्त स्पर्श संवेदनाओं का पीछा नहीं करेगा। वह बुद्धि से अनुपयुक्त विचारों का पीछा नहीं करेगा। जब वह आँखों से अनुपयुक्त रूपों और दृश्यों का पीछा नहीं करता... बुद्धि से अनुपयुक्त विचारों का पीछा नहीं करता, तो कामवासना मन पर हावी नहीं होती। कामवासना से मुक्त मन होने के कारण, उसे मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा नहीं होती।

मान लीजिए कि एक व्यक्ति विष से लथपथ तीर से घायल हो गया। उसके मित्र, साथी, रिश्तेदार और सगे-संबंधी उसके लिए एक सर्जन की व्यवस्था करते। सर्जन चाकू से घाव के चारों ओर चीरा लगाता और फिर एक औजार से तीर को टटोलता। इसके बाद वह तीर को बाहर निकालता और विष को पूरी तरह से निकाल देता। यह जानकर कि कोई अवशेष नहीं बचा है, वह कहता, 'मेरे भले, तुम्हारा तीर निकाल लिया गया है। विष भी निकाल लिया गया है, कोई अवशेष नहीं बचा है, इसलिए यह तुम्हें नुकसान नहीं पहुंचाएगा। उचित भोजन करो। अनुपयुक्त भोजन मत करो, अन्यथा घाव में मवाद भर जाएगा। घाव को बार-बार धोते रहो और उस पर बार-बार मरहम लगाते रहो, ताकि घाव में खून और मवाद न भर जाए। हवा और धूप में मत घूमो, अन्यथा धूल और गंदगी घाव को दूषित कर सकती है। मेरे भले, घाव का ध्यान रखो और उसे ठीक करने के लिए प्रयास करो।'

उस व्यक्ति के मन में यह विचार आता: 'मेरा तीर निकाल लिया गया है। ज़हर पूरी तरह से निकल चुका है और अब कोई अवशेष नहीं बचा है, इसलिए अब मुझे इससे कोई नुकसान नहीं होगा।' वह उचित भोजन करता ताकि घाव में मवाद न पनपे। वह घाव को बार-बार धोता और उस पर मरहम लगाता ताकि खून और मवाद घाव के खुले हिस्से में न भर जाए। वह हवा और धूप में नहीं चलता ताकि धूल और गंदगी घाव के खुले हिस्से को दूषित न कर दे। वह घाव की देखभाल करता और उसे ठीक करने के लिए प्रयास करता। अब, उसके इन उचित कार्यों और ज़हर का कोई अवशेष न बचे होने के कारण, घाव ठीक हो जाता। घाव के ठीक होने और त्वचा से ढक जाने के कारण, उसे मृत्यु या मृत्यु जैसी पीड़ा नहीं सहनी पड़ती।

"इसी प्रकार, एक ऐसा मामला भी संभव है जहाँ कोई भिक्षु सोचता है, 'ध्यानशील व्यक्ति के अनुसार लालसा एक तीर है। अज्ञान का विष इच्छा, वासना और द्वेष के माध्यम से अपना जहर फैलाता है। मैंने तीर का त्याग कर दिया है। मैंने अज्ञान के विष को निष्कासित कर दिया है। मैं सही मायने में मुक्ति के बंधन में लीन हूँ।" क्योंकि वह बंधनमुक्ति के सही इरादे से प्रेरित है, इसलिए वह उन चीजों का पीछा नहीं करेगा जो बंधनमुक्ति के सही इरादे वाले व्यक्ति के लिए अनुपयुक्त हैं। वह आँखों से अनुपयुक्त रूपों और दृश्यों का पीछा नहीं करेगा। वह कानों से अनुपयुक्त ध्वनियों का पीछा नहीं करेगा... नाक से अनुपयुक्त सुगंधों का पीछा नहीं करेगा... जीभ से अनुपयुक्त स्वादों का पीछा नहीं करेगा... शरीर से अनुपयुक्त स्पर्श संवेदनाओं का पीछा नहीं करेगा। वह बुद्धि से अनुपयुक्त विचारों का पीछा नहीं करेगा। जब वह आँखों से अनुपयुक्त रूपों और दृश्यों का पीछा नहीं करता... बुद्धि से अनुपयुक्त विचारों का पीछा नहीं करता, तो कामवासना मन पर हावी नहीं होती। कामवासना से मुक्त मन होने के कारण, उसे मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा नहीं होती।

मैंने यह उपमा अर्थ समझाने के लिए दी है। इसका अर्थ यह है: घाव छह आंतरिक इंद्रियों का प्रतीक है; विष अज्ञान का; तीर लालसा का; जांच यंत्र जागरूकता का; चाकू श्रेष्ठ विवेक का; और शल्य चिकित्सक तथागत का, जो योग्य और सही मायने में आत्मजागृत हैं।

"अब, जब कोई भिक्षु - संपर्क के छह क्षेत्रों पर संयम बनाए रखते हुए, यह जानते हुए कि 'अधिग्रहण तनाव का मूल है' - अधिग्रहण से मुक्त हो जाता है, अधिग्रहण के पूर्ण अंत में मुक्त हो जाता है, तो यह संभव नहीं है कि वह अधिग्रहण के संबंध में अपने शरीर को हिलाए या अपने मन को उत्तेजित करे।"

"मान लीजिए कि एक पीतल के प्याले में एक पेय है - जो रंग, सुगंध और स्वाद में उत्तम है - लेकिन उसमें विष मिला हुआ है। और मान लीजिए कि एक व्यक्ति आता है, जो जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता, सुख चाहता है और पीड़ा से घृणा करता है। सुनक्खत्ता, आप क्या सोचते हैं - क्या वह पीतल के प्याले में रखे पेय को यह जानते हुए पिएगा कि 'इसे पीने से मुझे मृत्यु या मृत्यु के समान पीड़ा सहनी पड़ेगी'?"

"नहीं, भगवान।"

"इसी प्रकार, जब कोई भिक्षु - संपर्क के छह क्षेत्रों पर संयम बनाए रखते हुए, यह जानते हुए कि 'अधिग्रहण तनाव का मूल है' - अधिग्रहण से मुक्त हो जाता है, अधिग्रहण के पूर्ण अंत में मुक्त हो जाता है, तो यह संभव नहीं है कि वह अधिग्रहण के संबंध में अपने शरीर को हिलाए या अपने मन को उत्तेजित करे।"

"मान लीजिए एक घातक विषैला साँप है, और एक आदमी आता है, जो जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता, सुख चाहता है और दर्द से घृणा करता है। सुनक्खत्ता, आप क्या सोचते हैं - क्या वह यह जानते हुए भी कि 'इसके काटने से मेरी मृत्यु हो जाएगी या मृत्यु के समान पीड़ा होगी', अपना हाथ या उंगली साँप को दे देगा?"

"नहीं, भगवान।"

"इसी प्रकार, जब कोई भिक्षु - संपर्क के छह क्षेत्रों पर संयम बनाए रखते हुए, यह जानते हुए कि 'अधिग्रहण तनाव का मूल है' - अधिग्रहण से मुक्त हो जाता है, अधिग्रहण के पूर्ण अंत में मुक्त हो जाता है, तो यह संभव नहीं है कि वह अधिग्रहण के संबंध में अपने शरीर को हिलाए या अपने मन को उत्तेजित करे।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। इससे प्रसन्न होकर लिच्छविन सुनक्खत्ता ने भगवान बुद्ध के शब्दों पर प्रसन्नता व्यक्त की।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.6अनंजसप्पाया सुत्त(106)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध कुरु देश में ठहरे हुए थे। वहाँ कुरुओं का एक नगर है जिसका नाम कम्मसधम्मा है। वहाँ भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: “हे भिक्षुओं, कामुकता अस्थिर, खोखली, व्यर्थ और भ्रामक है। यह मायावी है, मूर्खों की बकवास है। इस जन्म में कामुकता; आने वाले जन्मों में कामुकता; इस जन्म में इंद्रिय-बोध; आने वाले जन्मों में इंद्रिय-बोध: दोनों ही मार के क्षेत्र, मार के अधिकार, मार के जाल और मार के दायरे में आते हैं। ये लोभ, द्वेष और कलह जैसे बुरे और अकुशल मानसिक अवस्थाओं की ओर ले जाते हैं। ये यहाँ प्रशिक्षण ले रहे श्रेष्ठ जनों के शिष्य के मार्ग में बाधा उत्पन्न करते हैं।”

"ऐसे में, श्रेष्ठ जनों का शिष्य इस बात पर विचार करता है: 'इस समय की कामुकता; आने वाले जन्मों की कामुकता; इस समय की इंद्रिय अनुभूतियाँ; आने वाले जन्मों की इंद्रिय अनुभूतियाँ: ये दोनों ही मार के क्षेत्र, मार के अधिकार, मार के जाल और मार की सीमा में हैं। ये लोभ, द्वेष और कलह जैसे दुष्ट, अकुशल मानसिक अवस्थाओं को जन्म देती हैं। ये श्रेष्ठ जनों के शिष्य के प्रशिक्षण में बाधा उत्पन्न करती हैं। यदि मैं—पांचों इंद्रियों के संसार पर विजय प्राप्त करके और अपने मन को स्थिर करके—एक व्यापक और विस्तृत चेतना में लीन हो जाऊं तो क्या होगा? ऐसा करने से ये दुष्ट, अकुशल मानसिक अवस्थाएँ—लोभ, द्वेष और कलह—उत्पन्न नहीं होंगी। इनके त्याग से मेरा मन असीमित, असीम और सुविकसित हो जाएगा।" इस प्रकार अभ्यास करने और नियमित रूप से इस विधि का पालन करने से, उसका मन उस आयाम में दृढ़ विश्वास प्राप्त कर लेता है। पूर्ण विश्वास प्राप्त होने पर, वह या तो अविचलित अवस्था को प्राप्त कर लेता है या विवेक के मार्ग पर चल पड़ता है। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, संभव है कि उसकी यह चेतना अविचलित अवस्था में विलीन हो जाए। इसे अविचलित अवस्था की प्राप्ति का पहला अभ्यास माना जाता है।

फिर, श्रेष्ठ जनों का शिष्य इस पर विचार करता है: 'इस समय की कामुकता; आने वाले जन्मों की कामुकता; इस समय की कामुकता; आने वाले जन्मों की कामुकता: जो भी रूप है, प्रत्येक रूप, चार महातत्वों से बना है या उनसे व्युत्पन्न रूप है।' इस प्रकार अभ्यास करने और निरंतर इसमें लीन रहने से, उसका मन उस आयाम में दृढ़ विश्वास प्राप्त करता है। पूर्ण विश्वास होने पर, वह या तो वर्तमान क्षण में अविचलित अवस्था को प्राप्त कर लेता है या विवेक के प्रति समर्पित हो जाता है। मृत्यु के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, संभव है कि

उसकी यह आगे बढ़ने वाली चेतना अविचलित अवस्था में चली जाए। इसे अविचलित अवस्था के लिए सहायक दूसरा अभ्यास बताया गया है।

फिर, श्रेष्ठ जनों का शिष्य इस बात पर विचार करता है: 'वर्तमान में कामुकता; आने वाले जन्मों में कामुकता; वर्तमान में इंद्रिय-बोध; आने वाले जन्मों में इंद्रिय-बोध; वर्तमान में रूप; आने वाले जन्मों में रूप; वर्तमान में रूप-बोध; आने वाले जन्मों में रूप-बोध: ये सभी अस्थिर हैं। जो कुछ भी अस्थिर है, वह आनंद लेने योग्य नहीं है, स्वागत करने योग्य नहीं है, उससे जुड़े रहने योग्य नहीं है।' इस प्रकार अभ्यास करने और लगातार इसमें बने रहने से, उसका मन उस आयाम में विश्वास प्राप्त करता है। पूर्ण विश्वास होने पर, वह या तो वर्तमान में अविचलित अवस्था को प्राप्त करता है या विवेक के प्रति समर्पित हो जाता है। मृत्यु के बाद, शरीर के विखंडन के साथ, यह संभव है कि उसकी यह आगे बढ़ने वाली चेतना अविचलित अवस्था में चली जाए। इसे अविचलित अवस्था के लिए सहायक तीसरा अभ्यास बताया गया है।

फिर, श्रेष्ठ जनों का शिष्य इस पर विचार करता है: 'वर्तमान में इंद्रिय सुख; आने वाले जन्मों में इंद्रिय सुख; वर्तमान में इंद्रिय बोध; आने वाले जन्मों में इंद्रिय बोध; वर्तमान में रूप; आने वाले जन्मों में रूप; वर्तमान में रूप बोध; आने वाले जन्मों में रूप बोध; निर्विचल की अनुभूतियाँ: ये सभी अनुभूतियाँ हैं। जहाँ ये बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाती हैं, वही शांति है, वही उत्कृष्टता है, अर्थात् शून्यता का आयाम।' इस प्रकार अभ्यास करने और लगातार इसमें बने रहने से उसका मन उस आयाम में दृढ़ विश्वास प्राप्त करता है। पूर्ण विश्वास होने पर, वह या तो अभी शून्यता के आयाम को प्राप्त कर लेता है या फिर विवेक के लिए समर्पित हो जाता है। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, यह संभव है कि उसकी यह चेतना शून्यता के आयाम में चली जाए। इसे शून्यता के आयाम की ओर ले जाने वाला पहला अभ्यास बताया गया है।

फिर, श्रेष्ठ जनों का शिष्य जब वन में, किसी वृक्ष की जड़ में, या किसी निर्जन निवास में जाता है, तो वह यह विचार करता है: 'यह स्थान स्वयं से रहित है, स्वयं से संबंधित किसी भी चीज से रहित है।' इस प्रकार अभ्यास करने और लगातार इस अवस्था में रहने से उसका मन उस आयाम में दृढ़ विश्वास प्राप्त कर लेता है। पूर्ण विश्वास होने पर वह या तो उसी क्षण शून्यता के आयाम को प्राप्त कर लेता है, या फिर विवेक के मार्ग पर चल पड़ता है। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, संभव है कि उसकी यह चेतना शून्यता के आयाम में चली जाए। इसे शून्यता के आयाम की ओर ले जाने वाला दूसरा अभ्यास बताया गया है।

फिर, श्रेष्ठ जनों का शिष्य इस बात पर विचार करता है: 'मैं कहीं भी किसी का कुछ भी नहीं हूँ; न ही कहीं भी किसी में मेरा कुछ भी है।' इस प्रकार अभ्यास करने और निरंतर इसमें लीन रहने से उसका मन उस आयाम में दृढ़ विश्वास प्राप्त कर लेता है। पूर्ण विश्वास होने पर वह या तो अभी शून्यता के आयाम को प्राप्त कर लेता है या फिर विवेक के लिए समर्पित हो जाता है। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, यह संभव है कि उसकी यह आगे बढ़ने वाली चेतना शून्यता के आयाम में चली जाए। इसे शून्यता के आयाम की ओर ले जाने वाला तीसरा अभ्यास बताया गया है।

फिर, श्रेष्ठ जनों का शिष्य इस पर विचार करता है: 'वर्तमान में कामुकता; आने वाले जन्मों में कामुकता; वर्तमान में इंद्रिय-बोध; आने वाले जन्मों में इंद्रिय-बोध; वर्तमान में रूप; आने वाले जन्मों में रूप; वर्तमान में रूप-बोध; आने वाले जन्मों में रूप-बोध; अविचलितता का बोध; शून्यता के आयाम का बोध: ये सभी बोध हैं। जहाँ ये बिना किसी अवशेष के समाप्त हो जाते हैं, वही शांति है, वही उत्कृष्टता है, अर्थात् वह आयाम जहाँ न तो बोध है और न ही अबोध।' इस प्रकार अभ्यास करने और लगातार इसमें बने रहने से उसका मन उस आयाम में विश्वास प्राप्त कर लेता है। पूर्ण विश्वास होने पर, वह या तो वर्तमान में ही उस आयाम को प्राप्त कर लेता है या विवेक के प्रति समर्पित हो जाता है। मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के साथ, यह संभव है कि उसकी यह चेतना उस आयाम की ओर अग्रसर हो जहाँ न तो बोध है और न ही अबोध। इसे उस आयाम की ओर ले जाने वाला अभ्यास बताया गया है जहाँ न तो बोध है और न ही अबोध।

यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, एक ऐसा मामला है जिसमें एक भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करते हुए — 'ऐसा नहीं होना चाहिए, ऐसा मेरे मन में नहीं आना चाहिए; ऐसा नहीं होगा, ऐसा मेरे मन में नहीं आएगा। जो कुछ है, जो कुछ हुआ है, मैं उसे त्याग देता हूँ' — समभाव प्राप्त कर लेता है। अब, क्या यह भिक्षु पूर्णतः बंधनमुक्त होगा या नहीं?"

"आनंद, एक ऐसा भिक्षु शायद ऐसा कर सके, और दूसरा शायद न कर सके।"

"वह क्या कारण है, वह क्या वजह है, जिसके चलते एक ऐसा कर सकता है और दूसरा नहीं?"

"आनंद, एक ऐसा मामला है जिसमें एक भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करते हुए—(यह सोचते हुए) 'ऐसा नहीं होना चाहिए, ऐसा मेरे मन में नहीं आना चाहिए; ऐसा नहीं होगा, ऐसा मेरे मन में नहीं आएगा। जो है, जो अस्तित्व में आया है, मैं उसे त्याग देता हूँ'—समभाव प्राप्त करता है। वह उस समभाव का आनंद लेता है, उसका स्वागत करता है, उससे जुड़ा रहता है। जैसे-जैसे वह उस समभाव का आनंद लेता है, उसका स्वागत करता है, उससे जुड़ा रहता है, उसकी चेतना उस पर निर्भर होती है, उससे पोषित होती है (उससे चिपकी रहती है)। हे आनंद, इस आसक्ति/पोषण के साथ, एक भिक्षु पूरी तरह से मुक्त नहीं होता।"

"वह भिक्षु कहाँ से अपना भरण-पोषण प्राप्त कर रहा है?"

"यह वह आयाम है जिसमें न तो अनुभूति होती है और न ही अअनुभूति।"

"तब, वास्तव में, वह जिस प्रकार से पोषित होता है, वह सर्वोच्च पोषण द्वारा पोषित होता है।"

"आनंद, जब वह पोषित होता है, तो वह परम पोषण से पोषित होता है; क्योंकि यही—जो न तो प्रत्यक्ष है और न ही अप्रत्यक्ष—परम पोषण है। हालांकि, एक ऐसा मामला भी है जहां एक भिक्षु इस प्रकार अभ्यास करके—'ऐसा नहीं होना चाहिए, ऐसा मेरे मन में नहीं आना चाहिए; ऐसा नहीं होगा, ऐसा मेरे मन में नहीं आएगा। जो है, जो अस्तित्व में आया है, उसे मैं त्याग देता हूं'—समभाव प्राप्त करता है। वह उस समभाव का आनंद नहीं लेता, उसका स्वागत नहीं करता, उससे जुड़ा नहीं रहता। चूंकि वह उस समभाव का आनंद नहीं लेता, उसका स्वागत नहीं करता, उससे जुड़ा नहीं रहता, इसलिए उसकी चेतना उस पर निर्भर नहीं होती, उससे पोषित नहीं होती (उससे चिपकी नहीं रहती)। हे आनंद, बिना आसक्ति/पोषण के, एक भिक्षु पूर्णतः मुक्त होता है।"

"हे भगवान, यह अद्‌भुत है। यह विस्मयकारी है। क्योंकि वास्तव में, भगवान ने हमें एक सहारे से दूसरे सहारे तक जाकर बाढ़ पार करने का मार्ग बताया है। लेकिन वह महान मुक्ति क्या है?"

"आनंद, एक ऐसा मामला है जहाँ श्रेष्ठ जनों का एक शिष्य इस पर विचार करता है: 'यहाँ और अभी की कामुकता; आने वाले जन्मों की कामुकता; यहाँ और अभी की कामुक अनुभूतियाँ; आने वाले जन्मों की कामुक अनुभूतियाँ; यहाँ और अभी के रूप; आने वाले जन्मों के रूप; यहाँ और अभी की रूप-अनुभूतियाँ; आने वाले जन्मों की रूप-अनुभूतियाँ; अविचलितता की अनुभूतियाँ; शून्यता के आयाम की अनुभूतियाँ; न अनुभूति और न अनुभूति के आयाम की अनुभूतियाँ: यही एक पहचान है, उस हद तक जहाँ तक पहचान है। यही अमर है: आसक्ति/पोषण के अभाव के माध्यम से मन की मुक्ति।"

"आनंद, मैंने तुम्हें अविचलित रहने का अभ्यास सिखाया है। मैंने तुम्हें शून्यता के आयाम का अभ्यास सिखाया है। मैंने तुम्हें न तो बोध और न ही अबोध के आयाम का अभ्यास सिखाया है। मैंने तुम्हें बाढ़ पार करने का मार्ग सिखाया है, एक आधार से दूसरे आधार तक जाकर, यानी महान मुक्ति का मार्ग। एक गुरु को अपने शिष्यों के कल्याण के लिए, उनके प्रति सहानुभूति से जो कुछ करना चाहिए, वह मैंने तुम्हारे लिए किया है। वहाँ वृक्षों की जड़ें हैं; वहाँ खाली घर हैं। ध्यान का अभ्यास करो, आनंद। लापरवाह मत बनो। बाद में पछतावा मत करो। यही हमारा तुम सभी के लिए संदेश है।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य आनंद बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.7 गणक-मोग्गलाना सुत्त(107)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली भाषा से आईबी हॉर्नर द्वारा अनुवादित

अंतर्वस्तु

1नैतिकता
2इंद्रिय-नियंत्रण
3खाने में संयम बरतें

4सतर्कता
5सजगता और स्पष्ट चेतना
6पांच बाधाओं पर विजय प्राप्त करना
7झाना
मैंने ऐसा सुना है: एक समय भगवान पूर्वी मठ में मिगारा की माता के महल में श्रावस्ती के पास ठहरे हुए थे। तब ब्राह्मण गणक-मोग्गलाना भगवान के पास गए; वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान को प्रणाम किया; सौहार्दपूर्ण और विनम्रतापूर्वक बातचीत करने के बाद वे आदरपूर्वक कुछ दूरी पर बैठ गए। जब वे आदरपूर्वक दूरी पर बैठे थे, तब ब्राह्मण गणक-मोग्गलाना ने भगवान से इस प्रकार कहा: "हे गौतम, जैसे मिगर की माता के इस महल में क्रमिक प्रशिक्षण, क्रमिक कर्म, क्रमिक अभ्यास देखा जा सकता है, अर्थात् अंतिम सीढ़ी तक,1 उसी प्रकार, हे गौतम, इन ब्राह्मणों के लिए भी क्रमिक प्रशिक्षण, क्रमिक कर्म, क्रमिक अभ्यास देखा जा सकता है, अर्थात् वेदों के अध्ययन में;2 उसी प्रकार, हे गौतम, इन धनुर्धारियों के लिए भी क्रमिक अभ्यास देखा जा सकता है, अर्थात् धनुर्विद्या में; उसी प्रकार, हे गौतम, हम जिनकी आजीविका गणना3 पर आधारित है, उनके लिए भी क्रमिक प्रशिक्षण, क्रमिक अभ्यास देखा जा सकता है, अर्थात् लेखांकन में। क्योंकि जब हमें कोई शिष्य मिलता है, हे गौतम, तो हम सबसे पहले उससे गणना करवाते हैं: 'एक, दो, दो, तीन, चार, चार, पांच, छह, सात, सात, आठ, नौ, नौ, दस, दस,' और हम, हे गौतम, गौतम, उससे सौ की गणना भी करवाइए। हे गौतम, क्या इस धर्म और अनुशासन के संबंध में भी इसी प्रकार का क्रमिक प्रशिक्षण, क्रमिक कर्म और क्रमिक अभ्यास स्थापित करना संभव नहीं है?
"हे ब्राह्मण, इस धर्म और अनुशासन के संबंध में क्रमिक प्रशिक्षण, क्रमिक कर्म और क्रमिक अभ्यास करना संभव है। यहाँ तक कि कुशल अश्व प्रशिक्षक भी, किसी सुंदर नस्ल के घोड़े को लेकर सबसे पहले उसे लगाम पहनने का प्रशिक्षण देता है। फिर उसे आगे के प्रशिक्षण का अभ्यास कराता है। ठीक उसी प्रकार, तथागत ब्राह्मण, किसी मनुष्य को वश में करने के लिए लेकर सबसे पहले उसे इस प्रकार अनुशासित करते हैं।"
नैतिकता
"'आओ, भिक्षु, नैतिक आदरणीय बनो, कर्तव्यों के नियंत्रण में रहो, उचित आचरण और व्यवहार से युक्त रहो, छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखो और उन्हें स्वीकार करते हुए प्रशिक्षण के नियमों का पालन करो।' हे ब्राह्मण, जैसे ही भिक्षु नैतिक आदरणीय बन जाता है, कर्तव्यों के नियंत्रण में रहता है, उचित आचरण और व्यवहार से युक्त हो जाता है; छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देख लेता है और उन्हें स्वीकार करते हुए प्रशिक्षण के नियमों का पालन करता है, तथागत उसे आगे अनुशासित करते हुए कहते हैं:
इंद्रिय-नियंत्रण
हे भिक्षु, अपनी इंद्रियों के द्वारों के प्रति सावधान रहो; किसी वस्तु को आँख से देखकर, उसके सामान्य स्वरूप या बारीकियों में मत उलझो; क्योंकि यदि दृष्टि को अनियंत्रित रखा जाए, तो लोभ, निराशा, और दुष्ट, अकुशल मनःस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। अतः इसे नियंत्रित करते हुए आगे बढ़ो, दृष्टि की रक्षा करो, और दृष्टि पर नियंत्रण प्राप्त करो। कान से ध्वनि सुनकर... नाक से गंध सूंघकर... जीभ से स्वाद चखकर... शरीर से स्पर्श महसूस करके... मन से किसी मानसिक स्थिति को जानकर, बारीकियों में मत उलझो। क्योंकि यदि मन को अनियंत्रित रखा जाए, तो लोभ, निराशा, और दुष्ट, अकुशल मनःस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। अतः इसे नियंत्रित करते हुए आगे बढ़ो; मन की रक्षा करो, और मन पर नियंत्रण प्राप्त करो।
खाने में संयम बरतें
"हे ब्राह्मण, जैसे ही कोई भिक्षु अपनी इंद्रियों के द्वारों के प्रति सतर्क रहता है, तथागत उसे और भी अनुशासन सिखाते हुए कहते हैं: 'हे भिक्षु, संयम से भोजन करो; भोजन करते समय ध्यानपूर्वक विचार करो, मनोरंजन, भोग-विलास, व्यक्तिगत आकर्षण या सौंदर्यबोध के लिए नहीं, बल्कि इस शरीर को बनाए रखने और इसे सुचारू रूप से चलाने, इसे अक्षुण्ण रखने और ब्रह्ममार्ग को आगे बढ़ाने के लिए पर्याप्त मात्रा में ही भोजन करो, यह सोचकर कि: इस प्रकार मैं पुरानी भावना को कुचल दूंगा और नई भावना को उत्पन्न नहीं होने दूंगा, और तब मुझे जीविका, दोषरहितता और सुखमय जीवन प्राप्त होगा।'
सतर्कता
"हे ब्राह्मण, जैसे ही कोई भिक्षु भोजन में संयम बरतता है, तथागत उसे और अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'आओ, भिक्षु, एकाग्र होकर ध्यान लगाओ; दिन में टहलते हुए, बैठते हुए, मन को बाधक मानसिक अवस्थाओं से शुद्ध करो; रात के मध्य पहर में, दाहिनी ओर सिंह मुद्रा में लेट जाओ, पैर पर पैर रखकर, सचेत और स्पष्ट रूप से जागरूक होकर, फिर से उठने के विचार पर चिंतन करो; रात के अंतिम पहर में, जब तुम उठ जाओ, टहलते हुए, बैठते हुए, मन को बाधक मानसिक अवस्थाओं से शुद्ध करो।"
सजगता और स्पष्ट चेतना
"हे ब्राह्मण, जैसे ही कोई भिक्षु सतर्कता में लीन होता है, तथागत उसे और अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'आओ, भिक्षु, सचेतन और निर्मल चेतना से युक्त रहो, निर्मल चेतना से कार्य करो चाहे तुम आ रहे हो या जा रहे हो, निर्मल चेतना से कार्य करो चाहे तुम आगे देख रहे हो या चारों ओर देख रहे हो, निर्मल चेतना से कार्य करो चाहे तुम झुक रहे हो या बाहें फैला रहे हो, निर्मल चेतना से कार्य करो चाहे तुम बाहरी आवरण, कुंड या वस्त्र धारण कर रहे हो, निर्मल चेतना से कार्य करो चाहे तुम खा रहे हो, पी रहे हो, चबा रहे हो या स्वाद ले रहे हो, निर्मल चेतना से कार्य करो चाहे तुम प्राकृतिक क्रिया कर रहे हो, निर्मल चेतना से कार्य करो चाहे तुम चल रहे हो, खड़े हो, बैठे हो, सो रहे हो, जाग रहे हो, बात कर रहे हो या मौन हो।'

पांच बाधाओं पर विजय प्राप्त करना

"हे ब्राह्मण, जैसे ही वह सजग और स्पष्ट चेतना से युक्त हो जाता है, तथागत उसे आगे अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'हे भिक्षु, आओ, किसी एकांत स्थान पर जंगल में, किसी वृक्ष की जड़ में, किसी पर्वत की ढलान पर, किसी घाटी में, किसी पहाड़ी गुफा में, किसी कब्रिस्तान में, किसी वन उपवन में, खुले में, या भूसे के ढेर पर विश्राम करो।' भोजन के बाद भिक्षा मांगने से लौटकर भिक्षु पालथी मारकर बैठ जाते हैं, पीठ सीधी रखते हुए, अपने सामने ध्यान केंद्रित करते हैं। वे संसार के प्रति लोभ से मुक्त होकर, लोभ रहित मन से रहते हैं, और अपने मन को लोभ से शुद्ध करते हैं। द्वेष के कलंक से मुक्त होकर, वे परोपकारी मन से रहते हैं; सभी प्राणियों और जीवों के प्रति करुणामय और दयालु होकर, वे अपने मन को द्वेष से शुद्ध करते हैं। आलस्य और सुस्ती से मुक्त होकर, वे आलस्य और सुस्ती से रहित रहते हैं; प्रकाश को देखते हुए, सचेत और स्पष्ट रूप से जागरूक होकर, वे अपने मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करते हैं। बेचैनी और चिंता से मुक्त होकर, वे शांत मन से रहते हैं; भीतरी मन को शांत रखते हुए, वे अपने मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध करते हैं। संदेह से मुक्त होकर, वे संदेह से मुक्त रहते हैं; कुशल अवस्थाओं के बारे में विचलित न होकर, वे अपने मन को संदेह से शुद्ध करते हैं।

झाना

वह व्यक्ति, मन के इन पाँच अवरोधों6 से छुटकारा पाकर, जो मन के दोष हैं और सहज ज्ञान के लिए हानिकारक हैं, इंद्रियों के सुखों से विरक्त होकर, अकुशल मन की अवस्थाओं से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो प्रारंभिक विचार और विवेचनात्मक विचार से युक्त होता है, एकांत से उत्पन्न होता है और आनंदमय एवं प्रसन्न होता है। प्रारंभिक विचार और विवेचनात्मक विचार को शांत करके, उसका मन व्यक्तिपरक रूप से शांत और एक बिंदु पर स्थिर होकर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जो प्रारंभिक विचार और विवेचनात्मक विचार से रहित होता है, एकाग्रता से उत्पन्न होता है और आनंदमय एवं प्रसन्न होता है। आनंद के लुप्त होने पर, वह समभाव, एकाग्र और स्पष्ट रूप से सचेत होकर रहता है, और अपने व्यक्ति में उस आनंद का अनुभव करता है जिसके बारे में आर्य7 कहते हैं: 'आनंदित जीवन वह है जो समभाव और सचेत है,' और वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। पीड़ा से छुटकारा पाकर, अपने पूर्व के सुखों के कम होने पर और दुःखों से मुक्त होकर, वह चौथी ध्यान अवस्था में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर हो जाता है, जिसमें न तो पीड़ा होती है और न ही आनंद, और जो समभाव और जागरूकता से पूर्णतः शुद्ध होती है।

"ब्रह्म, मेरा यही उपदेश उन भिक्षुओं के लिए है जो अभी तक सिद्धि प्राप्त नहीं कर पाए हैं और बंधनों से अतुलनीय मुक्ति की लालसा रखते हैं। परन्तु जो भिक्षु सिद्ध हो चुके हैं, जिनके सारे दोष नष्ट हो चुके हैं, जिन्होंने जीवन जी लिया है, जो करना था वो कर लिया है, बोझ उतार दिया है, अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है, जिनके जन्म के बंधन पूर्णतः टूट चुके हैं और जो पूर्ण गहन ज्ञान से मुक्त हो चुके हैं—ये सब बातें उन्हें वर्तमान क्षण में सहजता से रहने और सजग रहने तथा स्पष्ट चेतना प्राप्त करने में सहायक होती हैं।"

यह सुनकर ब्राह्मण गणक-मोग्गलाना ने भगवान से इस प्रकार कहा:

"अब, इस प्रकार उपदेश और निर्देश प्राप्त करने पर, क्या गौतम के सभी शिष्य अपरिवर्तनीय लक्ष्य—निर्वाण—को प्राप्त कर लेते हैं या उनमें से कुछ इसे प्राप्त नहीं कर पाते?"

"मेरे कुछ शिष्य, हे ब्राह्मण, मेरे द्वारा इस प्रकार उपदेश और शिक्षा दिए जाने पर, अपरिवर्तनीय लक्ष्य - निर्वाण - को प्राप्त कर लेते हैं; कुछ इसे प्राप्त नहीं कर पाते।"

"हे गौतम जी, इसका क्या कारण है? ऐसा क्यों है कि जब निर्वाण विद्यमान है, जब निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग विद्यमान है, जब गौतम जी सलाहकार के रूप में विद्यमान हैं, तब भी गौतम जी के कुछ शिष्य उनके द्वारा इस प्रकार उपदेश और निर्देश दिए जाने पर अविचल लक्ष्य - निर्वाण को प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु कुछ शिष्य उसे प्राप्त नहीं कर पाते?"

"तो फिर, ब्राह्मण, मैं इस विषय पर आपसे प्रश्न पूछूंगा। जैसा आपको उचित लगे, आप उत्तर दें। इस विषय पर आपका क्या विचार है, ब्राह्मण? क्या आप राजगृह मार्ग में निपुण हैं?"

"जी हां, महोदय, मैं राजगृह जाने वाले मार्ग से भलीभांति परिचित हूं।"

"इस बारे में आपका क्या विचार है? एक व्यक्ति यहाँ आकर राजगृह जाना चाहेगा। आपके पास आकर वह इस प्रकार कहेगा: 'महोदय, मैं राजगृह जाना चाहता हूँ; मुझे राजगृह का रास्ता बता दीजिए।' आप उससे इस प्रकार कह सकते हैं: 'जी, महोदय, यह सड़क राजगृह जाती है; इस पर थोड़ी दूर चलिए। थोड़ी दूर चलने पर आपको एक गाँव दिखाई देगा; थोड़ी दूर चलते रहिए; थोड़ी दूर चलने पर आपको एक बाज़ार दिखाई देगा; थोड़ी दूर चलते रहिए। थोड़ी दूर चलने पर आपको राजगृह अपने रमणीय उद्यानों, रमणीय जंगलों, रमणीय खेतों और रमणीय तालाबों के साथ दिखाई देगा। लेकिन आपके द्वारा इस प्रकार प्रोत्साहित और निर्देशित किए जाने के बावजूद, वह गलत रास्ते पर चलकर पश्चिम की ओर जा सकता है। फिर एक दूसरा व्यक्ति राजगृह जाना चाहेगा...(जैसा कि ऊपर बताया गया है)... आपको राजगृह अपने रमणीय... तालाबों के साथ दिखाई देगा।' आपके द्वारा इस प्रकार प्रोत्साहित और निर्देशित किए जाने पर वह राजगृह सुरक्षित पहुँच सकता है।" हे ब्राह्मण, इसका क्या कारण है? क्या वजह है कि जब राजगृह विद्यमान है, जब राजगृह जाने का मार्ग विद्यमान है, जब आप सलाहकार के रूप में विद्यमान हैं, तब भी एक व्यक्ति, आपके द्वारा इस प्रकार उपदेश और निर्देश दिए जाने के बावजूद, गलत मार्ग अपनाकर पश्चिम की ओर चला जाता है, जबकि दूसरा व्यक्ति राजगृह तक सुरक्षित पहुँच जाता है?

"हे गौतम, मैं इस मामले में क्या कर सकता हूँ? हे गौतम, मैं तो मार्ग का एक झुरमुट हूँ।"

फिर भी, हे ब्राह्मण, निर्वाण का अस्तित्व है, निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग विद्यमान है और मैं सलाहकार के रूप में विद्यमान हूँ। परन्तु मेरे कुछ शिष्य, मेरे द्वारा इस प्रकार उपदेश और उपदेश दिए जाने पर, इस अटल लक्ष्य—निर्वाण—को प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु कुछ इसे प्राप्त नहीं कर पाते। हे ब्राह्मण, इस मामले में मैं क्या कर सकता हूँ? हे ब्राह्मण, मार्ग का प्रकाश फैलाने वाला तथागत होता है।
यह सुनकर ब्राह्मण गणक-मोग्गलाना ने भगवान से इस प्रकार कहा:
हे गौतम, जो लोग जीवनयापन का मार्ग न पाकर, बिना आस्था के घर छोड़कर संन्यासी बन गए हैं, जो धूर्त, कपटी, छल करने वाले, असंतुलित और अहंकारी हैं, जो चंचल, निंदक और व्यभिचारी हैं, जिनकी इंद्रियाँ संभली नहीं हैं, जो खान-पान में संयम नहीं जानते, जो सतर्कता नहीं बरतते, जो संन्यास के प्रति उदासीन हैं, जो प्रशिक्षण का सम्मान नहीं करते, जो धन-दौलत के शौकीन हैं, जो पतन में अग्रणी हैं, जो संन्यास का बोझ नहीं उठाते, जो आलसी हैं, जिनकी ऊर्जा कम है, जिनका ध्यान भटकता है, जो स्पष्ट रूप से सचेत नहीं हैं, जो एकाग्र नहीं हैं बल्कि भटकते मन वाले हैं, जो बुद्धि में कमजोर हैं, जो बकवास करते हैं - हे गौतम, उनसे संगति नहीं रखते। परन्तु जो प्रतिष्ठित परिवारों के युवक आस्था से घर छोड़कर संन्यासी बन गए हैं, जो धूर्त, कपटी या छल करने वाले नहीं हैं, जो असंतुलित या जो अहंकारी नहीं हैं, जो छल-कपट, निंदा और व्यभिचार नहीं करते, जिनकी इंद्रियों के द्वार सतर्क हैं, जो खान-पान में संयम जानते हैं, जो सतर्कता पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जो एकांतवास की कामना करते हैं, जो प्रशिक्षण का गहन सम्मान करते हैं, जो अधिकता के शौकीन नहीं हैं, जो लापरवाह, कामचोर, पथभ्रष्ट नहीं हैं, जो एकांतवास में आगे नहीं बढ़ते, जो ऊर्जावान, दृढ़ निश्चयी, सचेत, स्पष्ट रूप से जागरूक, एकाग्र, जिनका मन एकाग्र है, जो ज्ञानवान हैं, जो निरर्थक नहीं हैं — उनसे गौतम सान्निध्य में लीन हैं। हे गौतम, जैसे काले गोंद को जड़ की सुगंधों में श्रेष्ठ, लाल चंदन को गूदे की सुगंधों में श्रेष्ठ, चमेली को पुष्प की सुगंधों में श्रेष्ठ माना जाता है — वैसे ही गौतम का उपदेश आज के उपदेशों में सर्वोच्च है। हे गौतम, उत्कृष्ट! हे गौतम, जैसे कोई व्यक्ति सीधा खड़ा कर सकता है। जो बात अनसुनी रह गई हो, उसे उजागर करना, जो बात छिपी हुई हो, उसे प्रकट करना, भटके हुए को राह दिखाना, या अंधेरे में तेल का दीपक जलाना ताकि दृष्टि वाले भौतिक आकृतियों को देख सकें — इसी प्रकार अनेक आकृतियों में भगवान गौतम ने धर्म को स्पष्ट किया है। मैं पूज्य गौतम की शरण में, धर्म की शरण में और भिक्षु संघ में जा रहा हूँ। भगवान गौतम मुझे आज से जीवन भर के लिए शरण लेने वाले गृहस्थ अनुयायी के रूप में स्वीकार करें।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.8गोपका-मोग्गलाना सुत्त(108)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार पूज्य आनंद, भगवान बुद्ध के पूर्ण रूप से मुक्त होने के कुछ ही समय बाद, राजगृह के पास बांस के जंगल में, गिलहरियों के अभयारण्य में ठहरे हुए थे।

उस समय मगध के राजा अजातसत्तु वेदेहिपुत्त, राजा पज्जोत पर संदेह करते हुए, राजगृह की किलेबंदी करवा रहे थे।

फिर सुबह तड़के, पूज्य आनंद ने अपने वस्त्र धारण किए और भिक्षापात्र एवं बाहरी वस्त्र लेकर राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए प्रवेश किया। उनके मन में विचार आया, "राजगृह में भिक्षा मांगने के लिए अभी बहुत सुबह है। क्या मैं ब्राह्मण मोग्गलाना रक्षक के पास उनके निर्माण स्थल पर जाऊं?" अतः वे मोग्गलाना रक्षक के पास उनके निर्माण स्थल पर गए। मोग्गलाना रक्षक ने उन्हें दूर से आते देखा और उन्हें देखकर कहा, "आइए, गुरु आनंद। आपका स्वागत है, गुरु आनंद। गुरु आनंद को यहां आने का समय मिले बहुत समय हो गया है। बैठिए, गुरु आनंद। आपके लिए आसन तैयार है।"

अतः पूज्य आनंद तैयार किए गए आसन पर बैठ गए। अंगरक्षक मोग्गलाना एक नीची सीट पर एक तरफ बैठ गए।

वहाँ बैठे हुए उन्होंने पूज्य आनंद से कहा: "गुरु आनंद, क्या कोई ऐसा भिक्षु है जो उन सभी गुणों से परिपूर्ण हो जिनसे गुरु गौतम - योग्य और सही मायने में आत्मजागृत - परिपूर्ण थे?"

नहीं, ब्राह्मण, ऐसा कोई भी भिक्षु नहीं है जो उन सभी गुणों से परिपूर्ण हो जिनसे भगवान बुद्ध—योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत—सशक्त थे। क्योंकि भगवान बुद्ध अजन्मे मार्ग के प्रवर्तक, अजन्मे मार्ग के जनक, अवर्णित मार्ग के व्याख्याकार, मार्ग के ज्ञाता, मार्ग के विशेषज्ञ और मार्ग में निपुण थे। और अब उनके शिष्य उनके बाद उस मार्ग का अनुसरण करते हैं और उससे परिपूर्ण हो जाते हैं।

फिर पूज्य आनंद और मोग्गलाना (रक्षक) के बीच चल रही चर्चा बीच में ही रुक गई, क्योंकि राजगृह में निर्माण स्थलों का निरीक्षण करने आए ब्राह्मण वस्साकरा, जो मगध के प्रशासक थे, पूज्य आनंद से मिलने मोग्गलाना के निर्माण स्थल पर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने पूज्य आनंद का अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने पूज्य आनंद से कहा, "अभी आप दोनों किस चर्चा के लिए बैठे थे कि बीच में ही आपकी चर्चा रुक गई?"

"अभी-अभी, ब्राह्मण, रक्षक मोग्गलाना ने मुझसे कहा, 'गुरु आनंद, क्या कोई ऐसा भिक्षु है जो उन सभी गुणों से परिपूर्ण हो जिनसे गुरु गौतम - योग्य और सही मायने में आत्मज्ञानी - परिपूर्ण थे?' और जब उन्होंने यह कहा, तो मैंने उनसे कहा, 'नहीं, ब्राह्मण, कोई ऐसा भिक्षु नहीं है जो उन सभी गुणों से परिपूर्ण हो जिनसे भगवान बुद्ध - योग्य और सही मायने में आत्मज्ञानी - परिपूर्ण थे। क्योंकि भगवान बुद्ध अजन्मे मार्ग के प्रवर्तक, अजन्मे मार्ग के जनक, अवर्णित मार्ग के व्याख्याकार, मार्ग के ज्ञाता, मार्ग के विशेषज्ञ और मार्ग में निपुण थे। और अब उनके शिष्य उनके बाद मार्ग का अनुसरण करते हैं और उससे परिपूर्ण हो जाते हैं।' यह मेरी ब्राह्मण रक्षक मोग्गलाना के साथ हुई चर्चा थी जो आपके आने पर बीच में ही रुक गई।"

"गुरु आनंद, क्या गुरु गौतम द्वारा नियुक्त कोई ऐसा भिक्षु है, जिसके बारे में उन्होंने कहा हो, 'मेरे जाने के बाद वही तुम्हारा मध्यस्थ होगा,' और क्या अब आप उसकी ओर रुख कर रहे हैं?"

"नहीं, ब्राह्मण। भगवान बुद्ध द्वारा नियुक्त कोई भी ऐसा भिक्षु नहीं है - जो जानता हो, देखता हो, योग्य हो और सही मायने में आत्मजागृत हो - जिसके बारे में उन्होंने कहा हो कि 'मेरे जाने के बाद वही तुम्हारा मध्यस्थ होगा', जिसकी ओर अब हम रुख करते हैं।"

"तो क्या संघ द्वारा अधिकृत और वरिष्ठ भिक्षुओं के एक बड़े समूह द्वारा नियुक्त कोई ऐसा भिक्षु है, जिसके बारे में आपने अब पूछा हो, 'भगवान के जाने के बाद वह हमारा मध्यस्थ होगा'?"

"नहीं, ब्राह्मण। संघ द्वारा अधिकृत और वरिष्ठ भिक्षुओं के एक बड़े समूह द्वारा नियुक्त कोई भी भिक्षु ऐसा नहीं है, जिसके पास हम अब जा रहे हैं, और जिसकी ओर हम अब रुख कर रहे हैं।"

"हे गुरु आनंद, मध्यस्थ के बिना, आपके इस सामंजस्य का क्या कारण है?"

"हे ब्राह्मण, ऐसा नहीं है कि हमारे पास कोई मध्यस्थ नहीं है। हमारे पास मध्यस्थ है। धम्म ही हमारा मध्यस्थ है।"

जब आपसे पूछा गया, 'हे गुरु आनंद, क्या गुरु गौतम द्वारा नियुक्त कोई ऐसा भिक्षु है, जिसके पास आप अब जाते हैं, और जिसके पास आप अब जाते हैं?' तो आपने कहा, 'नहीं, ब्राह्मण। भगवान बुद्ध द्वारा नियुक्त कोई ऐसा भिक्षु नहीं है... जिसके पास हम अब जाते हैं।'

जब आपसे पूछा गया, 'तो क्या संघ द्वारा अधिकृत कोई ऐसा भिक्षु है... जिसकी ओर आप अब रुख करते हैं?' तो आपने कहा, 'नहीं, ब्राह्मण। संघ द्वारा अधिकृत कोई ऐसा भिक्षु नहीं है... जिसकी ओर हम अब रुख करते हैं।'

जब आपसे पूछा गया, 'हे आनंद स्वामी, इस प्रकार मध्यस्थ के बिना आपकी इस एकता का क्या कारण है?' तो आपने कहा, 'हे ब्राह्मण, ऐसा नहीं है कि हम मध्यस्थ के बिना हैं। हमारे पास मध्यस्थ है। धम्म ही हमारा मध्यस्थ है।' अब आपके इस कथन का क्या अर्थ है?'

"ब्रह्मन, भगवान बुद्ध द्वारा एक प्रशिक्षण नियम निर्धारित किया गया है - जो ज्ञानी, प्रत्यक्षदर्शी, योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत हैं - एक पतिमोक्खा जिसे संहिताबद्ध किया गया है। उपोसथा दिवस पर, हम सभी जो एक ही कस्बे में आश्रित हैं, एक स्थान पर एकत्रित होते हैं। एकत्रित होने पर, हम उस व्यक्ति को आमंत्रित करते हैं जिसे पतिमोक्खा का पाठ करना है। यदि पाठ करते समय किसी भिक्षु को कोई अपराध या उल्लंघन याद आता है, तो हम उसके साथ धम्म के अनुसार, जो निर्देश दिया गया है, उसके अनुसार व्यवहार करते हैं। हम उस पूज्य व्यक्ति के साथ व्यवहार नहीं करते हैं, बल्कि धम्म ही हमारे साथ व्यवहार करता है।"

"हे गुरु आनंद, क्या कोई ऐसा भिक्षु है जिसका आप अब आदर, सम्मान, आदर और पूजा करते हैं, जिस पर आप आदर और सम्मान करते हुए आश्रित जीवन व्यतीत करते हैं?"

"जी हां, ब्राह्मण, एक ऐसे भिक्षु हैं जिनका हम अब आदर, सम्मान, आदर और पूजा करते हैं, जिन पर आदर और सम्मान करते हुए हम निर्भर रहते हैं।"

जब आपसे पूछा गया, 'हे गुरु आनंद, क्या गुरु गौतम द्वारा नियुक्त कोई ऐसा भिक्षु है, जिसके पास आप अब जाते हैं, और जिसके पास आप अब जाते हैं?' तो आपने कहा, 'नहीं, ब्राह्मण। भगवान बुद्ध द्वारा नियुक्त कोई ऐसा भिक्षु नहीं है... जिसके पास हम अब जाते हैं।'

जब आपसे पूछा गया, 'तो क्या संघ द्वारा अधिकृत कोई ऐसा भिक्षु है... जिसकी ओर आप अब रुख करते हैं?' तो आपने कहा, 'नहीं, ब्राह्मण। संघ द्वारा अधिकृत कोई ऐसा भिक्षु नहीं है... जिसकी ओर हम अब रुख करते हैं।'

जब आपसे पूछा गया, 'हे आनंद स्वामी, क्या कोई ऐसा भिक्षु है जिसका आप आदर, सम्मान, आदर और पूजा करते हैं, जिस पर आदर और आदर करते हुए आप निर्भर रहते हैं?' तो आपने कहा, 'जी हे ब्राह्मण, एक भिक्षु है जिसका हम आदर, सम्मान, आदर और पूजा करते हैं, जिस पर आदर और आदर करते हुए हम निर्भर रहते हैं।' अब आपके इस कथन का अर्थ क्या समझा जाए?

"ब्रह्म, भगवान बुद्ध ने दस प्रेरणादायक गुणों का वर्णन किया है - जो ज्ञानवान, दृष्टिवान, योग्य और सही मायने में आत्मजागृत हैं। हममें से जिनमें भी ये दस गुण पाए जाते हैं, हम उनका आदर, सम्मान और आदर करते हैं; उनका आदर और सम्मान करते हुए हम उन पर निर्भर रहते हैं। वे दस गुण कौन से हैं?"

[1] "ऐसा मामला है जहाँ एक भिक्षु गुणी है। वह पतिमोक्खा के अनुसार संयमित रहता है, अपने व्यवहार और गतिविधि के क्षेत्र में परिपूर्ण है। वह प्रशिक्षण नियमों का पालन करते हुए स्वयं को प्रशिक्षित करता है, छोटी से छोटी गलतियों में भी खतरा देखता है।

[2] "उसने बहुत कुछ सुना है, जो सुना है उसे याद रखा है, जो सुना है उसे संजोकर रखा है। जो भी शिक्षाएँ आरंभ में, मध्य में और अंत में प्रशंसनीय हैं, जो अपने अर्थ और अभिव्यक्ति में पूर्णतः परिपूर्ण और शुद्ध पवित्र जीवन की घोषणा करती हैं: उन्हें उसने बार-बार सुना है, याद रखा है, उन पर चर्चा की है, उन्हें संकलित किया है, अपने मन से उनका परीक्षण किया है और अपने दृष्टिकोण से उनमें अच्छी तरह से प्रवेश किया है।"

[3] "वह वस्त्रों, भिक्षा, भोजन, आवास और बीमारों के इलाज के लिए औषधीय सामग्री से संतुष्ट है।

[4] "वह जब चाहे, बिना किसी तनाव, बिना किसी कठिनाई के, चार ध्यान प्राप्त कर लेता है जो उन्नत मानसिक अवस्थाएँ हैं, यहाँ और अभी में सुखद निवास।

[5] "वह अनेक अलौकिक शक्तियों का अनुभव करता है। एक होकर वह अनेक हो जाता है; अनेक होकर वह एक हो जाता है। वह प्रकट होता है। वह लुप्त हो जाता है। वह दीवारों, प्राचीरों और पहाड़ों से ऐसे होकर गुजरता है मानो अंतरिक्ष में। वह पृथ्वी में ऐसे गोता लगाता है मानो वह जल हो। वह पानी पर ऐसे चलता है जैसे वह सूखी भूमि हो, बिना डूबे। पालथी मारकर वह पंखों वाले पक्षी की तरह हवा में उड़ता है। अपने हाथ से वह सूर्य और चंद्रमा को भी स्पर्श करता है, जो इतने शक्तिशाली और बलवान हैं। वह अपने शरीर से ब्रह्म लोकों तक भी प्रभाव डालता है।"

[6] "वह दिव्य श्रवण तत्व के माध्यम से, जो शुद्ध और मानवीय से श्रेष्ठ है, दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनता है: दिव्य और मानवीय, चाहे पास हो या दूर।"

[7] वह अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों की चेतना को जानता है, क्योंकि उसने उसे अपनी चेतना से समाहित कर लिया है। वह जुनूनी मन को जुनूनी मन के रूप में और जुनून रहित मन को जुनून रहित मन के रूप में पहचानता है। वह घृणा से ग्रसित मन को घृणा से ग्रसित मन के रूप में और घृणा रहित मन को घृणा रहित मन के रूप में पहचानता है। वह भ्रम से ग्रसित मन को भ्रम से ग्रसित मन के रूप में और भ्रम रहित मन को भ्रम रहित मन के रूप में पहचानता है। वह सीमित मन को सीमित मन के रूप में और बिखरे हुए मन को बिखरे हुए मन के रूप में पहचानता है। वह विस्तारित मन को विस्तारित मन के रूप में और अविस्तारित मन को अविस्तारित मन के रूप में पहचानता है। वह उत्कृष्ट मन (जो उच्चतम स्तर पर नहीं है) को उत्कृष्ट मन के रूप में और अविस्तारित मन को अविस्तारित मन के रूप में पहचानता है। वह एकाग्र मन को एकाग्र मन के रूप में और असाध्य मन को असाध्य मन के रूप में पहचानता है। वह मुक्त मन को मुक्त मन के रूप में और अमुक्त मन को मुक्त मन के रूप में पहचानता है। मन एक अप्रकाशित मन के रूप में।

[8] "वह अपने अनेक पूर्व जन्मों (शाब्दिक रूप से: पिछले जन्मों) को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, एक हज़ार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग, [स्मरण करते हुए], 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर, मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूप और विवरणों में याद करता है।"

[9] "वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मरते और फिर प्रकट होते हुए देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, निचले लोकों में, नरक में फिर प्रकट हुए हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म किए - शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्यों में, स्वर्गलोक में फिर प्रकट हुए हैं।' इस प्रकार—मानव दृष्टि से श्रेष्ठ और शुद्ध दिव्य दृष्टि के माध्यम से—वह प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उन्हें हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली के रूप में पहचानता है।

[10] "मानसिक मंथनों के अंत के माध्यम से, वह मंथन-मुक्त जागरूकता-मुक्ति और विवेक-मुक्ति में रहता है, क्योंकि उसने उन्हें यहीं और अभी अपने लिए जान लिया है और प्रकट कर दिया है।

हे ब्राह्मण, ये दस प्रेरक गुण हैं जिनका प्रतिपादन भगवान बुद्ध ने किया है—जो ज्ञानी, दृष्टिवान, योग्य और सही मायने में आत्मजागृत हैं। हममें से जिनमें भी ये दस गुण पाए जाते हैं, हम उनका आदर, सम्मान और आदर करते हैं; उनका आदर और सम्मान करते हुए हम उन पर निर्भर रहते हैं।

यह सुनकर मगध के प्रशासक ब्राह्मण वासकारा ने सेनापति उपनंद की ओर मुड़कर कहा, "महाराज, आपका क्या विचार है? क्या ये पूजनीय व्यक्ति आदर के योग्य, सम्मान के योग्य, श्रद्धा के योग्य और आदर के योग्य हैं? निःसंदेह वे आदर के योग्य, सम्मान के योग्य, श्रद्धा के योग्य और आदर के योग्य हैं। क्योंकि यदि वे इस प्रकार के व्यक्ति का आदर, सम्मान, श्रद्धा या आदर नहीं करते, तो वे किस प्रकार के व्यक्ति का आदर, सम्मान, श्रद्धा और आदर करेंगे; किस प्रकार के व्यक्ति पर आदर और आदर करते हुए वे निर्भर रहेंगे?"

तब मगध के प्रशासक ब्राह्मण वासकारा ने पूज्य आनंद से कहा, "लेकिन हे गुरु आनंद, आप अभी कहाँ रह रहे हैं?"

"मैं इस समय बैम्बू ग्रोव में ठहरा हुआ हूँ, ब्राह्मण।"

"हे गुरु आनंद, मुझे विश्वास है कि बांस का जंगल रमणीय, शांत, शोर-शराबे से मुक्त, एकांत का वातावरण लिए हुए, मनुष्यों से दूर और ध्यान लगाने के लिए उपयुक्त है।"

"निश्चित रूप से, ब्राह्मण, बांस का जंगल रमणीय, शांत, शोर-शराबे से मुक्त, एकांत का वातावरण लिए हुए, मनुष्यों से दूर और आपके जैसे संरक्षकों और रक्षकों के कारण एकांतवास के लिए उपयुक्त है।"

"निश्चित रूप से, हे गुरु आनंद, बांस का वन रमणीय, शांत, शोर-मुक्त और एकांतप्रिय है, मनुष्यों से दूर है, और ध्यान के लिए उपयुक्त है क्योंकि यहाँ ऐसे पूजनीय व्यक्ति निवास करते हैं जो ध्यान में मग्न रहते हैं और ध्यान को अपना स्वभाव बना लेते हैं। आप पूजनीय व्यक्ति ध्यान में मग्न रहते हैं और ध्यान को अपना स्वभाव बना लेते हैं।"

"एक बार, आदरणीय आनंद, गुरु गौतम वैशाली के पास, विशाल वन में स्थित शिखर छत वाले मंडप में ठहरे हुए थे। मैं उनसे मिलने उस विशाल वन में गया, और वहाँ उन्होंने मननमग्नता पर अनेक प्रकार से प्रवचन दिए। गुरु गौतम स्वयं मननमग्नता से संपन्न थे और उन्होंने मननमग्नता को अपना अभ्यस्त बना लिया था। वास्तव में, उन्होंने हर प्रकार की मननमग्नता की प्रशंसा की।"

"हे ब्राह्मण, ऐसा नहीं है कि भगवान बुद्ध ने हर प्रकार की मानसिक तल्लीनता की प्रशंसा की हो, न ही उन्होंने हर प्रकार की मानसिक तल्लीनता की आलोचना की हो। और उन्होंने किस प्रकार की मानसिक तल्लीनता की प्रशंसा नहीं की? एक स्थिति वह है जिसमें कोई व्यक्ति अपनी चेतना को कामुक वासनाओं से ग्रस्त करके, कामुक वासनाओं में डूबा हुआ रखता है। एक बार जब कामुक वासनाएं उत्पन्न हो जाती हैं, तो वह उनसे मुक्ति का मार्ग नहीं पहचान पाता, जबकि वास्तव में वे मौजूद होती हैं। उस कामुक वासना को केंद्र बिंदु बनाकर, वह स्वयं को उसमें लीन कर लेता है, उसमें समाहित हो जाता है, उसमें पुनः समाहित हो जाता है और उसमें अतिव्यापी हो जाता है।"

वह दुर्भावना से ग्रस्त अपनी चेतना के साथ निवास करता है...

वह आलस्य और सुस्ती से ग्रस्त अपनी चेतना के साथ रहता है...

वह बेचैनी और चिंता से ग्रस्त चेतना के साथ रहता है...

वह अनिश्चितता से ग्रस्त, अनिश्चितता में जकड़ी हुई चेतना में लीन रहता है। अनिश्चितता उत्पन्न होने के बाद, वह उससे मुक्ति का मार्ग नहीं देख पाता, जबकि वास्तव में वह मार्ग मौजूद होता है। उस अनिश्चितता को केंद्र बिंदु बनाकर, वह स्वयं को उसमें समाहित कर लेता है, उसमें समा जाता है, पुनः समाहित हो जाता है और अति-समाहित हो जाता है। यह उस प्रकार का मानसिक तल्लीनता है जिसकी भगवान बुद्ध ने प्रशंसा नहीं की।

और उन्होंने किस प्रकार की मानसिक तल्लीनता की प्रशंसा की? एक उदाहरण है, जब एक भिक्षु - इंद्रियों से पूर्णतः विरक्त, अकुशल (मानसिक) गुणों से विरक्त - प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है। निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकाग्रता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। परमानंद के लुप्त होने पर, वह समभाव, सचेत और जागरूक रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके बारे में भगवान कहते हैं, 'समभाव और सचेत रहकर, वह सुखद अवस्था में रहता है।' सुख और दुख के त्याग के साथ - जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ - वह चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और सचेतनता की शुद्धता, न सुख न दुख। यही वह मानसिक तल्लीनता है जिसकी भगवान ने प्रशंसा की।

"ऐसा प्रतीत होता है, आदरणीय आनंद, कि गुरु गौतम ने उस मानसिक तल्लीनता की आलोचना की जो आलोचना के योग्य है, और उसकी प्रशंसा की जो प्रशंसा के योग्य है।"

"अच्छा, अब, गुरु आनंद, मुझे जाना होगा। मेरे बहुत से कर्तव्य हैं, बहुत सी चीजें हैं जो मुझे करनी हैं।"

"तो फिर, हे ब्राह्मण, जो तुम्हें लगता है कि अब करने का समय आ गया है, वही करो।"

अतः मगध के प्रशासक ब्राह्मण वासकारा, पूज्य आनंद की कही बातों से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे और चले गए।

फिर, उनके जाने के कुछ ही समय बाद, रक्षक मोग्गलाना ने आदरणीय आनंद से कहा, "गुरु आनंद, आपने अभी तक मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया है।"

"क्या मैंने अभी तुम्हें नहीं बताया, ब्राह्मण? कोई भी ऐसा भिक्षु नहीं है जो उन सभी गुणों से परिपूर्ण हो जिनसे भगवान बुद्ध - योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत - परिपूर्ण थे। क्योंकि भगवान बुद्ध अजन्मे मार्ग के प्रवर्तक, अजन्मे मार्ग के जनक, अवर्णित मार्ग के व्याख्याकार, मार्ग के ज्ञाता, मार्ग के विशेषज्ञ और मार्ग में निपुण थे। और अब उनके शिष्य उनके बाद उस मार्ग का अनुसरण करते हैं और उससे परिपूर्ण हो जाते हैं।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.9 महा पुन्नम सुत्त(109)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास पूर्वी मठ में ठहरे हुए थे, जो मिगारा की माता का महल था। और उस अवसर पर—पंद्रहवें उपोसथ की रात, पूर्णिमा की रात—वे भिक्षुओं के समुदाय के साथ खुले में बैठे हुए थे।

तब एक भिक्षु अपनी सीट से उठकर, अपने वस्त्र को एक कंधे पर व्यवस्थित करते हुए और अपने हाथों की हथेलियों को हृदय पर रखकर भगवान बुद्ध से बोले: "हे भगवान, एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ, यदि भगवान बुद्ध मुझे अनुमति दें, तो मैं एक प्रश्न का उत्तर जानना चाहता हूँ।"

"ठीक है, तो भिक्षु। अपनी सीट पर वापस बैठ जाइए और जो चाहिए पूछिए।"

भगवान बुद्ध को उत्तर देते हुए, "जी भगवान," भिक्षु अपनी सीट पर वापस बैठ गया और भगवान बुद्ध से कहा, "क्या ये पाँच आसक्ति-समूह नहीं हैं, अर्थात्, आसक्ति-समूह के रूप में रूप, भावना... बोध... कल्पनाएँ... आसक्ति-समूह के रूप में चेतना।"

"भिक्षु, ये पाँच आसक्ति-समूह हैं, अर्थात्, आसक्ति-समूह के रूप में रूप, भावना... बोध... कल्पनाएँ... चेतना एक आसक्ति-समूह के रूप में।"

“बहुत अच्छा, भगवान,” कहते हुए भिक्षु प्रसन्न हुआ और भगवान के शब्दों की सराहना करते हुए उनसे एक और प्रश्न पूछा: “परन्तु, भगवान, ये पाँच आसक्ति-समूह किसमें निहित हैं?”

"भिक्षु, ये पाँच आसक्ति-समूह इच्छा में निहित हैं।"

"बहुत अच्छा, भगवान," कहते हुए भिक्षु ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "क्या आसक्ति पाँच आसक्ति-समूहों के समान है, या आसक्ति पाँच आसक्ति-समूहों से अलग है?"

"हे भिक्षु, आसक्ति न तो पाँच आसक्ति-समूहों के समान है और न ही उनसे भिन्न है। बस जो भी वासना और आनंद है, वही आसक्ति है।"

“बहुत अच्छा, भगवान,” कहते हुए भिक्षु ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: “क्या पाँच आसक्ति-समूहों के प्रति इच्छा और वासना में विविधता हो सकती है?”

"ऐसा हो सकता है, भिक्षु। ऐसा भी हो सकता है कि किसी के मन में यह विचार आए, 'काश भविष्य में मैं ऐसे रूप के साथ एक हो जाऊं। काश भविष्य में मैं ऐसी भावना... ऐसी अनुभूति... ऐसी कल्पना... ऐसी चेतना के साथ एक हो जाऊं।' इसी प्रकार पांच आसक्ति-समूहों के प्रति इच्छा और जुनून में विविधता उत्पन्न होगी।"

"बहुत अच्छा, भगवान," कहते हुए भिक्षु ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "समूह' पदनाम किस हद तक समूहों पर लागू होता है?"

"भिक्षु, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल का कोई भी रूप; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: उसे रूपों का समूह कहा जाता है। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल का कोई भी भाव; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: उसे भावों का समूह कहा जाता है। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल का कोई भी बोध; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: उसे बोध का समूह कहा जाता है। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल का कोई भी भाव; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: उसे भावों का समूह कहा जाता है। भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमानकाल का कोई भी भाव; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: उसे भावों का समूह कहा जाता है।1 'समूह' शब्द का प्रयोग समूहों के लिए इसी सीमा तक किया जाता है।"

“बहुत अच्छा, भगवान,” कहते हुए भिक्षु ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: “भगवान, रूप के समूह के चित्रण का कारण क्या है, क्या शर्त है? भावना, बोध, कल्पना, चेतना के समूह के चित्रण का कारण क्या है, क्या शर्त है?”

"भिक्षु, चार महान सत्ताएँ (पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु) रूप के समूह के वर्णन का कारण और स्थिति हैं। स्पर्श, संवेदना के समूह के वर्णन का कारण और स्थिति है। स्पर्श, बोध के समूह के वर्णन का कारण और स्थिति है। स्पर्श, कल्पनाओं के समूह के वर्णन का कारण और स्थिति है। नाम-रूप, चेतना के समूह के वर्णन का कारण और स्थिति है।"

"बहुत अच्छा, भगवान," कहते हुए भिक्षु ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "भगवान, आत्म-पहचान का दृष्टिकोण कैसे उत्पन्न होता है?"

"हे भिक्षु, एक ऐसा मामला है जहाँ एक अशिक्षित, साधारण व्यक्ति—जो श्रेष्ठ लोगों का सम्मान नहीं करता, उनके धम्म में पारंगत या अनुशासित नहीं है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का सम्मान नहीं करता, उनके धम्म में पारंगत या अनुशासित नहीं है—रूप को आत्मा मान लेता है, या आत्मा को रूप धारण करने वाला मान लेता है, या रूप को आत्मा में, या आत्मा को रूप में मान लेता है।"

वह भावना को आत्मा मानता है, या आत्मा को भावना से युक्त मानता है, या भावना को आत्मा में समाहित मानता है, या आत्मा को भावना में समाहित मानता है। वह बोध को आत्मा मानता है, या आत्मा को बोध से युक्त मानता है, या बोध को आत्मा में समाहित मानता है, या आत्मा को बोध में समाहित मानता है। वह मनगढ़ंत बातों को आत्मा मानता है, या आत्मा को मनगढ़ंत बातों से युक्त मानता है, या मनगढ़ंत बातों को आत्मा में समाहित मानता है, या आत्मा को मनगढ़ंत बातों में समाहित मानता है। वह चेतना को आत्मा मानता है, या आत्मा को चेतना से युक्त मानता है, या चेतना को आत्मा में समाहित मानता है, या आत्मा को चेतना में समाहित मानता है।

"हे भिक्षु, आत्म-पहचान की अवधारणा इसी प्रकार उत्पन्न होती है।"

"बहुत अच्छा, भगवान," कहते हुए भिक्षु ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "भगवान, आत्म-पहचान का दृष्टिकोण अब कैसे नहीं उत्पन्न होता?"

"हे भिक्षु, एक ऐसा मामला है जहाँ श्रेष्ठ पुरुषों का सुशिक्षित शिष्य—जो श्रेष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म में पारंगत और अनुशासित है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म में पारंगत और अनुशासित है—रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में, न ही आत्मा को रूप में। वह भावना को आत्मा नहीं मानता... वह बोध को आत्मा नहीं मानता... वह कल्पना को आत्मा नहीं मानता... वह चेतना को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को चेतना धारण करने वाला मानता है, न ही चेतना को आत्मा में, न ही आत्मा को चेतना में।"

"हे भिक्षु, इस प्रकार आत्म-पहचान का दृष्टिकोण अब अस्तित्व में नहीं आता।"

“बहुत अच्छा, भगवान,” कहते हुए भिक्षु ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: “हे भगवान, रूप का आकर्षण क्या है? इसकी हानि क्या है? इससे कैसे बचा जा सकता है? भावना, बोध, कल्पना, चेतना का आकर्षण क्या है? इसकी हानि क्या है? इससे कैसे बचा जा सकता है?”

"भिक्षु, रूप से संबंधित जो भी सुख और आनंद उत्पन्न होता है, वही रूप का आकर्षण है। रूप का अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील होना ही रूप की दुर्बलता है। इच्छा और वासना को वश में करना, रूप के प्रति इच्छा और वासना का त्याग करना ही रूप से मुक्ति है।"

"जो भी सुख और आनंद भावना से उत्पन्न होता है, वही भावना का आकर्षण है..."

"जो भी सुख और आनंद उत्पन्न होता है, वह बोध पर निर्भर करता है: यही बोध का आकर्षण है..."

"मनगढ़ंत बातों से जो भी सुख और आनंद उत्पन्न होता है, वही मनगढ़ंत बातों का आकर्षण है..."

चेतना से उत्पन्न होने वाला हर सुख और आनंद चेतना का आकर्षण है। चेतना का अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील होना चेतना की कमी है। इच्छा और वासना को वश में करना, चेतना के लिए इच्छा और वासना का त्याग करना चेतना से मुक्ति है।

"बहुत अच्छा, भगवान," कहते हुए भिक्षु ने उनसे एक और प्रश्न पूछा: "किस तरह से जानकर, किस तरह से देखकर, चेतना से युक्त इस शरीर के संबंध में, और सभी बाहरी संकेतों के संबंध में, अब कोई 'मैं' या 'मेरा' या अहंकार का जुनून नहीं रह जाता?"

"हे भिक्षु, सही विवेक से देखने पर व्यक्ति किसी भी रूप को, चाहे वह भूतकाल का हो, भविष्यकाल का हो या वर्तमान काल का; आंतरिक हो या बाह्य; प्रत्यक्ष हो या सूक्ष्म; सामान्य हो या उदात्त; दूर हो या निकट, देखता है तो वह सोचता है: 'यह मेरा नहीं है। यह मेरा स्वरूप नहीं है। यह मैं नहीं हूँ।'"

"कोई भी व्यक्ति किसी भी प्रकार की भावना... किसी भी प्रकार की धारणा... किसी भी प्रकार की मनगढ़ंत बातें देख सकता है..."

"कोई भी व्यक्ति किसी भी चेतना को - भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट - हर चेतना को - सही विवेक से उसके वास्तविक स्वरूप में देखता है: 'यह मेरी नहीं है। यह मेरा स्वरूप नहीं है। यह मैं नहीं हूँ।'"

"इस प्रकार जानने और इस प्रकार देखने वाले भिक्षु के लिए—चेतना से युक्त इस शरीर के संबंध में और सभी बाहरी संकेतों के संबंध में—अब कोई 'मैं' या 'मेरा' या अहंकार का जुनून नहीं रह जाता है।"

उसी क्षण एक भिक्षु के मन में यह विचार आया: "तो—रूप अनात्म है, भावना अनात्म है, बोध अनात्म है, रचनाएँ अनात्म हैं, चेतना अनात्म है। तो फिर अनात्म द्वारा किए गए कार्यों से कौन सा आत्म प्रभावित होगा?"

तब भगवान बुद्ध ने उस भिक्षु के चिंतन को अपनी चेतना से भांपकर भिक्षुओं को संबोधित किया: "संभव है कि कोई नासमझ व्यक्ति – अज्ञान में डूबा हुआ, लालसा से ग्रस्त – यह सोचे कि वह गुरु के संदेश को इस प्रकार समझ सकता है: 'तो – रूप अनात्म है, भावना अनात्म है, बोध अनात्म है, रचनाएँ अनात्म हैं, चेतना अनात्म है। तो फिर अनात्म द्वारा किए गए कार्यों से कौन सा आत्म प्रभावित होगा?' अब, भिक्षुओं, क्या मैंने तुम्हें यहाँ-वहाँ इस और उस विषय के संबंध में प्रतिप्रश्न करना नहीं सिखाया है? तुम क्या सोचते हो – क्या रूप स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, भगवान।" "और क्या अस्थिर को सुखदायक या तनावपूर्ण मानना उचित है?" "तनावपूर्ण, भगवान।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण, परिवर्तनशील को यह कहना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा आत्म है। यही मैं हूँ'?"

"नहीं, भगवान।"

"...क्या भावना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, भगवान।"

"...क्या बोध स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, भगवान।"

"...क्या निर्माण स्थिर हैं या अस्थिर?" "अस्थिर, स्वामी।"

"भिक्षुओं, आपका क्या विचार है? क्या चेतना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, भगवान।" "और जो अस्थिर है, क्या वह सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, भगवान।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"

"नहीं, भगवान।"

"इस प्रकार, भिक्षुओं, भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल का कोई भी रूप; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: प्रत्येक रूप को सही विवेक से उसके वास्तविक स्वरूप में देखना चाहिए और समझना चाहिए: 'यह मेरा नहीं है। यह मेरा स्वरूप नहीं है। यह मैं नहीं हूँ।'"

किसी भी प्रकार की भावना...

किसी भी प्रकार की धारणा...

किसी भी प्रकार की मनगढ़ंत बातें...

"भूतकाल, भविष्यकाल या वर्तमान काल की कोई भी चेतना; आंतरिक या बाह्य; प्रत्यक्ष या सूक्ष्म; सामान्य या उदात्त; दूर या निकट: प्रत्येक चेतना को सही विवेक से उसके वास्तविक स्वरूप में देखा जाना चाहिए: 'यह मेरी नहीं है। यह मेरा स्व नहीं है। यह वह नहीं है जो मैं हूं।'"

इस प्रकार देखकर, श्रेष्ठ जनों का उपदेशित शिष्य रूप, भावना, बोध, कल्पना और चेतना से विरक्त हो जाता है। विरक्त होकर वह वैराग्यवान हो जाता है। वैराग्य के द्वारा वह पूर्णतः मुक्त हो जाता है। पूर्ण मुक्ति के साथ ही उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, 'पूर्णतः मुक्त हो गया।' वह यह जान लेता है कि 'जन्म समाप्त हो गया, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया, कार्य पूरा हो गया। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'

भगवान बुद्ध ने यही कहा। इससे तृप्त होकर भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन बहुत प्रसन्न हुए। और जब यह व्याख्या दी जा रही थी, तब साठ भिक्षुओं के मन आसक्ति (किसी चीज़ से जुड़े न रहने) के कारण पूर्णतः विकारों से मुक्त हो गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 11.10कुल पुन्नमा सुत्त(110)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास पूर्वी मठ में ठहरे हुए थे, जो मिगारा की माता का महल था। उस अवसर पर—पंद्रहवें उपोसथ की रात, पूर्णिमा की रात—वे भिक्षुओं के समुदाय के साथ खुले में बैठे थे। तब, भिक्षुओं के मौन समुदाय को देखकर उन्होंने उनसे कहा, "भिक्षुओं, क्या कोई निर्लज्ज व्यक्ति किसी निर्लज्ज व्यक्ति को पहचान सकता है: 'यह निर्लज्ज व्यक्ति है'?"

"नहीं, भगवान।"

"अच्छा, भिक्षुओं। यह असंभव है, ऐसा हो ही नहीं सकता कि एक बेईमान व्यक्ति किसी बेईमान व्यक्ति के बारे में यह जान सके: 'यह एक बेईमान व्यक्ति है।'"

"क्या एक बेईमान व्यक्ति किसी ईमानदार व्यक्ति के बारे में यह जान सकता है: 'यह एक ईमानदार व्यक्ति है'?"

"नहीं, भगवान।"

"अच्छा, भिक्षुओं। यह असंभव है, ऐसा हो ही नहीं सकता कि एक बेईमान व्यक्ति किसी ईमानदार व्यक्ति को पहचान ले: 'यह एक ईमानदार व्यक्ति है।'"

"एक व्यक्ति में ईमानदारी का अभाव होता है; वह अपनी मित्रता में, अपनी इच्छाशक्ति में, सलाह देने के तरीके में, बोलने के तरीके में, कार्य करने के तरीके में, अपने विचारों में और उपहार देने के तरीके में भी ईमानदारीहीन होता है।"

और एक बेईमान व्यक्ति बेईमानी के गुणों से कैसे संपन्न होता है? एक बेईमान व्यक्ति में दृढ़ विश्वास, अंतरात्मा और अकुशल कार्यों के परिणामों के प्रति चिंता का अभाव होता है; वह अज्ञानी, आलसी, भ्रमित और विवेकहीन होता है। इस प्रकार एक बेईमान व्यक्ति बेईमानी के गुणों से संपन्न होता है।

और एक बेईमान व्यक्ति मित्रता में बेईमान कैसे होता है? उदाहरण के लिए, बेईमान व्यक्ति के मित्र और साथी वे पुजारी और ध्यानमग्न होते हैं जिनमें दृढ़ विश्वास, विवेक, चिंता की कमी होती है, जो अज्ञानी, आलसी, भ्रमित और विवेकहीन होते हैं। इसी प्रकार एक बेईमान व्यक्ति मित्रता में बेईमान होता है।

और एक बेईमान व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार बेईमान कैसे होता है? एक मामला ऐसा होता है जब बेईमान व्यक्ति स्वयं को, या दूसरों को, या दोनों को कष्ट पहुँचाना चाहता है। इस प्रकार एक बेईमान व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार बेईमान होता है।

और एक बेईमान व्यक्ति सलाह देने के तरीके में बेईमान कैसे होता है? एक मामला यह है कि बेईमान व्यक्ति अपनी स्वयं की पीड़ा के लिए, या दूसरों की पीड़ा के लिए, या दोनों की पीड़ा के लिए सलाह देता है। इस प्रकार एक बेईमान व्यक्ति सलाह देने के तरीके में बेईमान होता है।

और एक बेईमान व्यक्ति अपने बोलने के तरीके से बेईमान कैसे होता है? बेईमान व्यक्ति वह होता है जो झूठ बोलता है, फूट डालने वाली बातें फैलाता है, कठोर भाषा का प्रयोग करता है और व्यर्थ की बातें करता है। इस प्रकार एक बेईमान व्यक्ति अपने बोलने के तरीके से बेईमान होता है।

और एक बेईमान व्यक्ति अपने कार्यों से बेईमान कैसे होता है? एक बेईमान व्यक्ति वह होता है जो किसी की जान लेता है, चोरी करता है, अवैध यौन संबंध बनाता है। इस प्रकार एक बेईमान व्यक्ति अपने कार्यों से बेईमान होता है।

और एक बेईमान व्यक्ति अपने विचारों में बेईमान कैसे होता है? बेईमान व्यक्ति वह होता है जो इस प्रकार का विचार रखता है: 'कुछ भी दिया नहीं जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता, कुछ भी बलिदान नहीं किया जाता। अच्छे या बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं होता। न यह संसार है, न परलोक, न माता है, न पिता, न स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी; न कोई पुरोहित या ध्यानमग्न व्यक्ति जो सही मार्ग अपनाकर और सही अभ्यास करके इस संसार और परलोक का प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर इसका प्रचार करते हैं।' इस प्रकार एक बेईमान व्यक्ति अपने विचारों में बेईमान होता है।

और एक बेईमान व्यक्ति उपहार देते समय बेईमान कैसे होता है? एक बेईमान व्यक्ति उपहार लापरवाही से, अपने हाथों से नहीं, बल्कि अनादरपूर्वक, मानो उसे फेंक रहा हो, इस सोच के साथ देता है कि इससे कुछ नहीं होगा। इस प्रकार एक बेईमान व्यक्ति उपहार देते समय बेईमान होता है।

"यह बेईमान व्यक्ति—ईमानदारी के गुणों से रहित; मित्रता में, इच्छाशक्ति में, सलाह देने में, बोलने में, कार्य करने में, विचारों में और उपहार देने में—शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, बेईमान लोगों के गंतव्य में पुनः प्रकट होता है। और बेईमान लोगों का गंतव्य क्या है? नरक या पशु गर्भ।"

"अब, भिक्षुओं, क्या कोई ईमानदार व्यक्ति किसी बेईमान व्यक्ति को पहचान सकता है: 'यह एक बेईमान व्यक्ति है'?"

"हाँ भगवान।"

"अच्छा, भिक्षुओं। यह संभव है कि एक ईमानदार व्यक्ति किसी बेईमान व्यक्ति को पहचान ले: 'यह एक बेईमान व्यक्ति है।'"

क्या एक ईमानदार व्यक्ति किसी अन्य ईमानदार व्यक्ति को पहचान सकता है: 'यह एक ईमानदार व्यक्ति है'?

"हाँ भगवान।"

"अच्छा, भिक्षुओं। यह संभव है कि एक ईमानदार व्यक्ति दूसरे ईमानदार व्यक्ति को पहचान ले: 'यह एक ईमानदार व्यक्ति है।'"

"एक ईमानदार व्यक्ति ईमानदारी के गुणों से संपन्न होता है; वह अपनी मित्रता में, अपनी इच्छाशक्ति में, सलाह देने के तरीके में, बोलने के तरीके में, कार्य करने के तरीके में, अपने विचारों में और उपहार देने के तरीके में ईमानदार होता है।"

और एक ईमानदार व्यक्ति में ईमानदारी के गुण कैसे पाए जाते हैं? एक ईमानदार व्यक्ति दृढ़ विश्वास, विवेक और चिंता से परिपूर्ण होता है; वह ज्ञानवान होता है, उसमें दृढ़ता, स्पष्टता और अच्छा विवेक होता है। इस प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति में ईमानदारी के गुण पाए जाते हैं।

और एक ईमानदार व्यक्ति अपनी मित्रता में ईमानदार कैसे होता है? उदाहरण के लिए, एक ईमानदार व्यक्ति के मित्र और साथी वे पुजारी और ध्यानमग्न व्यक्ति होते हैं जो दृढ़ विश्वास, विवेक और चिंता से परिपूर्ण होते हैं; जो विद्वान होते हैं, जिनमें जागृत दृढ़ता, स्पष्ट जागरूकता और अच्छी समझ होती है। इस प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति अपनी मित्रता में ईमानदार होता है।

और एक ईमानदार व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार ईमानदार कैसे होता है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक ईमानदार व्यक्ति न तो स्वयं को कष्ट पहुँचाना चाहता है, न दूसरों को, और न ही दोनों को। इस प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार ईमानदार होता है।

और एक ईमानदार व्यक्ति सलाह देने के तरीके में ईमानदार कैसे होता है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक ईमानदार व्यक्ति न तो अपनी पीड़ा के लिए, न ही दूसरों की पीड़ा के लिए, और न ही दोनों की पीड़ा के लिए सलाह देता है। इस प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति सलाह देने के तरीके में ईमानदार होता है।

और एक ईमानदार व्यक्ति अपने बोलने के तरीके से कैसे ईमानदार होता है? एक ईमानदार व्यक्ति वह होता है जो झूठ से दूर रहता है, फूट डालने वाली चुगली से दूर रहता है, कठोर भाषा से दूर रहता है, व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। इस प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति अपने बोलने के तरीके से ईमानदार होता है।

और एक ईमानदार व्यक्ति अपने कार्यों से कैसे ईमानदार होता है? एक ईमानदार व्यक्ति वह होता है जो किसी की जान नहीं लेता, चोरी नहीं करता, अवैध यौन संबंध नहीं बनाता। इस प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति अपने कार्यों से ईमानदार होता है।

और एक सत्यनिष्ठ व्यक्ति अपने विचारों में सत्यनिष्ठ कैसे होता है? सत्यनिष्ठ व्यक्ति वह होता है जो इस प्रकार का विचार रखता है: 'जो दिया जाता है, जो अर्पित किया जाता है, जो बलिदान किया जाता है, सब कुछ है। अच्छे और बुरे कर्मों के फल और परिणाम होते हैं। यह संसार है और परलोक है। माता-पिता हैं। स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी हैं; ऐसे पुजारी और ध्यानमग्न व्यक्ति हैं जो सही मार्ग अपनाकर और सही अभ्यास करके इस संसार और परलोक का प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव प्राप्त करने के बाद इसकी घोषणा करते हैं।' इस प्रकार एक सत्यनिष्ठ व्यक्ति अपने विचारों में सत्यनिष्ठ होता है।

और एक ईमानदार व्यक्ति उपहार देते समय किस प्रकार ईमानदार होता है? एक उदाहरण यह है कि एक ईमानदार व्यक्ति ध्यानपूर्वक, अपने हाथों से, सम्मानपूर्वक उपहार देता है, न कि उसे यूं ही फेंक देने की उम्मीद से, इस विचार से कि इससे कुछ लाभ होगा। इस प्रकार एक ईमानदार व्यक्ति उपहार देते समय ईमानदार होता है।

"ईमानदारी से परिपूर्ण यह व्यक्ति—जो अपने मित्रता में, अपनी इच्छाशक्ति में, सलाह देने में, बोलने में, कार्य करने में, अपने विचारों में और दान देने में ईमानदार है—मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर ईमानदार लोगों के गंतव्य में पुनः प्रकट होता है। और ईमानदार लोगों का गंतव्य क्या है? देवताओं या मनुष्यों के बीच महानता।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.1अनुपाद सुत्त(111)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं।"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, सारिपुत्त बुद्धिमान, महान विवेकशील, गहन विवेकशील, व्यापक, आनंदमय, तीव्र और मर्मस्पर्शी विवेकशील हैं। आधे महीने तक सारिपुत्त ने एक के बाद एक मानसिक गुणों की स्पष्ट अंतर्दृष्टि प्राप्त की। एक के बाद एक मानसिक गुणों की अंतर्दृष्टि के माध्यम से सारिपुत्त को ये बातें समझ में आईं:

"एक उदाहरण है जब सारिपुत्त—जो कामुकता और अकुशल गुणों से पूरी तरह विरक्त थे—प्रथम ध्यान अवस्था में प्रवेश कर गए और उसमें स्थिर रहे: एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन से परिपूर्ण था। प्रथम ध्यान में जो भी गुण हैं—निर्देशित विचार, मूल्यांकन, परमानंद, आनंद, एकाग्रता, संपर्क, भावना, बोध, इरादा, चेतना, इच्छा, निर्णय, दृढ़ता, सजगता, समभाव और ध्यान—उन्होंने एक-एक करके उनका पता लगाया। उन्हें ज्ञात था कि वे उत्पन्न होते हैं, ज्ञात था कि वे बने रहते हैं, ज्ञात था कि वे शांत हो जाते हैं। उन्होंने समझा, 'तो इस प्रकार ये गुण, अस्तित्वहीन होकर, सक्रिय होते हैं। अस्तित्व में आकर, वे लुप्त हो जाते हैं।' वे उन गुणों के प्रति न तो आकर्षित हुए और न ही विकर्षण से मुक्त रहे, स्वतंत्र, अनासक्त, मुक्त, विच्छेदित, बाधाओं से मुक्त जागरूकता के साथ। उन्होंने समझा कि 'एक और मुक्ति मार्ग है,' और वास्तव में उनके लिए वह मार्ग था।"

इसके अलावा, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने के साथ, सारिपुत्त द्वितीय ध्यान में प्रवेश कर गए और उसमें बने रहे: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। द्वितीय ध्यान में जो भी गुण हैं - आंतरिक आश्वासन, परमानंद, आनंद, मन की एकाग्रता, संपर्क, भावना, बोध, इरादा, चेतना, इच्छा, निर्णय, दृढ़ता, सजगता, समभाव और ध्यान - उन्होंने एक-एक करके उनका पता लगाया। उन्हें ज्ञात था कि वे उत्पन्न हुए, उन्हें ज्ञात था कि वे बने रहे, उन्हें ज्ञात था कि वे शांत हो गए। उन्होंने समझा, 'तो इस प्रकार ये गुण, अस्तित्वहीन होकर, सक्रिय होते हैं। अस्तित्व में आकर, वे लुप्त हो जाते हैं।' वे उन गुणों के प्रति अनासक्त और विकर्षणरहित रहे, स्वतंत्र, अनासक्त, मुक्त, विच्छेदित, बाधाओं से मुक्त चेतना के साथ। उन्होंने समझा कि 'एक और मुक्ति है,' और उसका अनुसरण करते हुए वास्तव में उनके लिए वह मुक्ति थी।

इसके अलावा, जैसे-जैसे आनंद का भाव कम होता गया, सारिपुत्त समभाव, सजगता और सतर्कता बनाए रखते हुए, तथा सुख के प्रति शारीरिक रूप से संवेदनशील रहते हुए, तृतीय ध्यान में प्रवेश कर गए और उसमें स्थिर रहे, जिसके बारे में श्रेष्ठ जन कहते हैं, 'समभाव और सजग रहकर, वह सुखद अवस्था में रहते हैं।' तृतीय ध्यान में जो भी गुण हैं—समभाव-सुख, मन की एकाग्रता, संपर्क, भावना, बोध, इरादा, चेतना, इच्छा, निर्णय, दृढ़ता, सजगता, समभाव और ध्यान—उन्होंने एक-एक करके उनका पता लगाया। उन्हें ज्ञात था कि वे उत्पन्न हुए, उन्हें ज्ञात था कि वे बने रहे, उन्हें ज्ञात था कि वे शांत हो गए। उन्होंने समझा, 'तो इस प्रकार ये गुण, अस्तित्व में न रहते हुए, प्रकट होते हैं। अस्तित्व में आने पर, वे लुप्त हो जाते हैं।' उन गुणों के प्रति वह न तो आकर्षित हुआ और न ही विचलित, वह स्वतंत्र, विरक्त, मुक्त और बंधनमुक्त रहा। उसकी जागरूकता बाधाओं से परे थी। वह समझ गया था, उसने महसूस किया कि 'आगे भी एक रास्ता है', और सचमुच वह उस रास्ते पर चल पड़ा।

इसके अलावा, सुख और तनाव के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—सारिपुत्त चौथे ध्यान में प्रवेश कर गए और उसमें बने रहे: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख। चौथे ध्यान में जो भी गुण हैं—समभाव, न सुख न दुख; जागरूकता की शांति के कारण उदासीनता;3 मन की एकाग्रता, संपर्क, भावना, बोध, इरादा, चेतना, इच्छा, निर्णय, दृढ़ता, जागरूकता, समभाव और ध्यान—उन्होंने एक-एक करके उनका पता लगाया। उन्हें ज्ञात था कि वे उत्पन्न हुए, उन्हें ज्ञात था कि वे बने रहे, उन्हें ज्ञात था कि वे शांत हो गए। उन्होंने समझा, 'तो इस प्रकार ये गुण, अस्तित्व में न रहकर, क्रियाशील होते हैं। अस्तित्व में आकर, वे लुप्त हो जाते हैं।' उन गुणों के प्रति वह न तो आकर्षित हुआ और न ही विचलित, वह स्वतंत्र, विरक्त, मुक्त और बंधनमुक्त रहा। उसने महसूस किया कि 'आगे भी एक रास्ता है', और सचमुच वह उस रास्ते पर चल पड़ा।

इसके अलावा, भौतिक रूप की धारणाओं से पूर्णतः परे जाकर, प्रतिरोध की धारणाओं के लुप्त होने पर, और विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, 'अनंत अंतरिक्ष' को अनुभव करते हुए, सारिपुत्त अनंत अंतरिक्ष के आयाम में प्रवेश कर गए और उसमें विलीन हो गए। अनंत अंतरिक्ष के आयाम में जो भी गुण विद्यमान हैं—अनंत अंतरिक्ष के आयाम की अनुभूति, मन की एकाग्रता, संपर्क, भावना, बोध, इरादा, चेतना, इच्छा, निर्णय, दृढ़ता, सजगता, समभाव और ध्यान—उन्होंने एक-एक करके उनका पता लगाया। उन्हें ज्ञात था कि वे उत्पन्न हुए, उन्हें ज्ञात था कि वे बने रहे, उन्हें ज्ञात था कि वे लुप्त हो गए। उन्होंने समझा, 'इस प्रकार ये गुण, अस्तित्वहीन होकर, क्रियाशील होते हैं। अस्तित्व में आकर, वे लुप्त हो जाते हैं।' उन गुणों के प्रति वह न तो आकर्षित हुआ और न ही विचलित, वह स्वतंत्र, विरक्त, मुक्त और बंधनमुक्त रहा। उसने महसूस किया कि 'आगे भी एक रास्ता है', और सचमुच वह उस रास्ते पर चल पड़ा।

इसके अलावा, अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, 'अनंत चेतना' को अनुभव करते हुए, सारिपुत्त चेतना की अनंतता के आयाम में प्रवेश कर गए और वहीं बने रहे। चेतना की अनंतता के आयाम में जो भी गुण विद्यमान हैं—चेतना की अनंतता का बोध, मन की एकाग्रता, संपर्क, भावना, बोध, इरादा, चेतना, इच्छा, निर्णय, दृढ़ता, सजगता, समभाव और ध्यान—उन्होंने एक-एक

करके उन सभी को खोज निकाला। उन्हें ज्ञात था कि वे उत्पन्न हुए, उन्हें ज्ञात था कि वे बने रहे, उन्हें ज्ञात था कि वे शांत हो गए। उन्होंने समझा, 'इस प्रकार ये गुण, अस्तित्वहीन होकर, क्रियाशील होते हैं। अस्तित्व में आकर, वे लुप्त हो जाते हैं।' वे उन गुणों के प्रति न तो आकर्षित हुए और न ही विकर्षणित, स्वतंत्र, अनासक्त, मुक्त, विच्छेदित, बाधाओं से मुक्त जागरूकता के साथ बने रहे। उन्होंने समझा कि 'एक और मुक्ति है,' और वास्तव में उनके लिए वह मुक्ति थी।

इसके अलावा, चेतना की अनंतता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, 'कुछ नहीं है' का अनुभव करते हुए, सारिपुत्त शून्यता के आयाम में प्रवेश कर गए और वहीं ठहर गए। शून्यता के आयाम में जो भी गुण विद्यमान हैं—शून्यता के आयाम का बोध, मन की एकाग्रता, संपर्क, भावना, बोध, इरादा, चेतना, इच्छा, निर्णय, दृढ़ता, सजगता, समभाव और ध्यान—उन्होंने एक-एक करके उन सभी को खोज निकाला। उन्हें ज्ञात था कि वे उत्पन्न हुए, उन्हें ज्ञात था कि वे बने रहे, उन्हें ज्ञात था कि वे लुप्त हो गए। उन्होंने समझा, 'इस प्रकार ये गुण, अस्तित्वहीन होकर, सक्रिय होते हैं। अस्तित्व में आकर, वे लुप्त हो जाते हैं।' वे उन गुणों के प्रति न तो आकर्षित हुए और न ही विकर्षणित, स्वतंत्र, अनासक्त, मुक्त, विच्छेदित, बाधाओं से मुक्त जागरूकता के साथ रहे। उन्होंने समझा कि 'एक और मुक्ति है,' और वास्तव में उनके लिए वह मुक्ति मार्ग था।

इसके अलावा, शून्यता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, सारिपुत्त उस आयाम में प्रवेश कर गए और वहीं बने रहे जहाँ न तो बोध है और न ही अबोध। वे उस प्राप्ति से सचेतन रूप से बाहर निकले। उस प्राप्ति से सचेतन रूप से बाहर निकलने पर, उन्होंने अतीत के उन गुणों पर विचार किया जो समाप्त हो चुके थे और बदल गए थे: 'तो इस प्रकार ये गुण, अस्तित्व में न रहकर, अस्तित्व में आते हैं। अस्तित्व में आकर, वे लुप्त हो जाते हैं।' वे उन गुणों के प्रति न तो आकर्षित हुए और न ही विकर्षण से मुक्त रहे, स्वतंत्र, अनासक्त, मुक्त, विच्छेदित, बाधाओं से मुक्त चेतना के साथ। उन्होंने यह जान लिया कि 'एक और मुक्ति का मार्ग है,' और वास्तव में उनके लिए वह मार्ग था।

इसके अतिरिक्त, बोध और अबोध के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, सारिपुत्त भाव और बोध की समाप्ति में प्रवेश कर गए और वहीं स्थिर रहे। विवेक से देखते हुए, उनकी सभी मनोवृत्तियाँ पूर्णतः समाप्त हो गईं। वे उस प्राप्ति से सचेतन रूप से बाहर निकले। उस प्राप्ति से सचेतन रूप से बाहर निकलने पर, उन्होंने अतीत के उन गुणों पर विचार किया जो समाप्त हो चुके थे और परिवर्तित हो गए थे: 'तो इस प्रकार ये गुण, अस्तित्वहीन होकर, अस्तित्व में आते हैं। अस्तित्व में आकर, वे लुप्त हो जाते हैं।' वे उन गुणों के प्रति न तो आकर्षित हुए और न ही विकर्षण से मुक्त रहे, स्वतंत्र, अनासक्त, मुक्त, विच्छेदित, बाधाओं से मुक्त जागरूकता के साथ। उन्होंने यह जान लिया कि 'आगे कोई मुक्ति नहीं है,' और वास्तव में उनके लिए ऐसी कोई मुक्ति नहीं थी।

यदि कोई व्यक्ति किसी के बारे में सही ढंग से कहे, 'उसने श्रेष्ठ सद्गुणों, श्रेष्ठ एकाग्रता, श्रेष्ठ विवेक और श्रेष्ठ मुक्ति में निपुणता और पूर्णता प्राप्त कर ली है,' तो वह सारिपुत्त के बारे में भी सही कह रहा होगा यदि वह कहे: 'उसने श्रेष्ठ सद्गुणों, श्रेष्ठ एकाग्रता, श्रेष्ठ विवेक और श्रेष्ठ मुक्ति में निपुणता और पूर्णता प्राप्त कर ली है।'

यदि कोई व्यक्ति किसी के बारे में सही ढंग से कहे, 'वह भगवान बुद्ध के पुत्र हैं, उनकी संतान हैं - उनके मुख से जन्मे, धम्म से जन्मे, धम्म द्वारा सृजित, धम्म में उनके उत्तराधिकारी, भौतिक वस्तुओं में उनके उत्तराधिकारी नहीं,' तो वह सारिपुत्त के बारे में भी सही कह रहा होगा यदि वह कहे: 'वह भगवान बुद्ध के पुत्र हैं, उनकी संतान हैं - उनके मुख से जन्मे, धम्म से जन्मे, धम्म द्वारा सृजित, धम्म में उनके उत्तराधिकारी, भौतिक वस्तुओं में उनके उत्तराधिकारी नहीं।' हे भिक्षुओं, सारिपुत्त तथागत द्वारा स्थापित धम्म के अद्वितीय चक्र को धारण करते हैं और उसे सही ढंग से घुमाते रहते हैं।'

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.2 छब्बीसोदना सुत्त(112)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। भगवान बुद्ध वहीं से भिक्षुओं को संबोधित करते थे।

भिक्षुओं, भिक्षु पूर्णता की घोषणा करते हैं। "जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना चाहिए वह कर लिया गया है। मैं जानता हूँ, अब और कुछ चाहने की इच्छा नहीं है।" उस भिक्षु के शब्दों को न तो स्वीकार करना चाहिए और न ही अस्वीकार करना चाहिए। उनसे प्रश्न पूछना चाहिए। मित्र, ज्ञानवान, प्रत्यक्षदर्शी और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान ने परिभाषा के ये चार तरीके बताए हैं। वे चार क्या हैं? देखे हुए को देखे हुए के रूप में, सुने हुए को सुने हुए के रूप में, इंद्रियों से अनुभव किए गए को इंद्रियों से अनुभव किए गए के रूप में और ज्ञात को ज्ञात के रूप में परिभाषित करना। इन चार परिभाषाओं में से किस एक तरीके से आदरणीय भिक्षु का मन बंधनों से मुक्त होता है? यह उचित है कि जो भिक्षु इच्छाओं का नाश कर चुके हैं, पवित्र जीवन जी चुके हैं, जो करना चाहिए वह कर चुके हैं, बोझ को त्याग चुके हैं, सर्वोच्च कल्याण को प्राप्त कर चुके हैं, 'होने' की इच्छा का नाश कर चुके हैं और सही मायने में मुक्त हो चुके हैं, वे इसकी व्याख्या करें। मित्र, दृष्टि से मोहित होना त्रुटि है, इसलिए मैं स्थिर नहीं होता, बंधनमुक्त, मुक्त, मुक्त और असीमित मन से रहता हूँ। मित्र, श्रवण से मोहित होना त्रुटि है, इसलिए मैं स्थिर नहीं होता, बंधनमुक्त, मुक्त, मुक्त और असीमित मन से रहता हूँ। मित्र, इंद्रियों से प्राप्त होने वाली चीजों से मोहित होना त्रुटि है, इसलिए मैं स्थिर नहीं होता, बंधनमुक्त, मुक्त, मुक्त और असीमित मन से रहता हूँ। मित्र, बोध से प्राप्त होने वाली चीजों से मोहित होना त्रुटि है, इसलिए मैं स्थिर नहीं होता, बंधनमुक्त, मुक्त, मुक्त और असीमित मन से रहता हूँ। मित्र, बोध से प्राप्त होने वाली चीजों से मोहित होना त्रुटि है, इसलिए मैं स्थिर नहीं होता, बंधनमुक्त, मुक्त, मुक्त और असीमित मन से रहता हूँ। मित्र, इन चार प्रकार की परिभाषाओं को जानकर और देखकर, मेरा मन इच्छाओं से मुक्त और बंधनरहित हो जाता है। उनके शब्दों को अच्छे शब्द मानकर आगे एक प्रश्न पूछना चाहिए: मित्र, ये पाँच बंधनकारी तत्व उस ज्ञानी, प्रत्यक्षदर्शी और सत्यतः प्रबुद्ध परमेश्वर द्वारा घोषित किए गए हैं। वे पाँच क्या हैं? वे पदार्थ का धारण करने वाला पिंड, भावनाओं का धारण करने वाला पिंड, धारणाओं का धारण करने वाला पिंड, संकल्पों का धारण करने वाला पिंड और चेतना का धारण करने वाला पिंड हैं। पाँचों धारण करने वाले पिंडों में क्या है, ... यह देखकर कि धारणाएँ कमजोर हैं, मेरी रुचि कम हो गई और असंतुष्ट होकर मैंने धारणाओं के प्रति आसक्त होने और उन्हें दृढ़ता से थामे रहने की अंतर्निहित प्रवृत्तियों को नष्ट कर दिया, समाप्त कर दिया, त्याग दिया और अपने मन को उनसे मुक्त कर दिया। यह देखकर कि संकल्प कमजोर हैं, मेरी रुचि कम हो गई और असंतुष्ट होकर मैंने संकल्पों के प्रति आसक्त होने और उन्हें दृढ़ता से थामे रहने की अंतर्निहित प्रवृत्तियों को नष्ट कर दिया, समाप्त कर दिया, त्याग दिया और अपने मन को उनसे मुक्त कर दिया।यह देखकर कि चेतना दुर्बल है, मेरी रुचि कम हो गई और असंतुष्ट होकर मैंने चेतना के प्रति आसक्ति और उसे दृढ़ता से थामे रखने की अंतर्निहित प्रवृत्तियों को नष्ट कर दिया, त्याग दिया और अपने मन को उनसे मुक्त कर दिया। मित्र, इन पाँच तत्वों को जानकर और देखकर मेरा मन इच्छाओं से मुक्त हो गया है। उनके शब्दों को अच्छे शब्दों के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए और आगे यह प्रश्न पूछा जाना चाहिए: मित्र, इन छह तत्वों की घोषणा उस ज्ञानी, प्रत्यक्षदर्शी और सत्यतः प्रबुद्ध भगवान ने की है। वे छह तत्व क्या हैं? वे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और चेतना हैं।

इन छह तत्वों में क्या है और क्या है, यह जानने और देखने से ही आदरणीय भिक्षु का मन इच्छाओं से मुक्त होकर बंधनहीन हो जाता है। यह उचित है कि जो भिक्षु इच्छाओं का नाश कर, पवित्र जीवन व्यतीत कर, उचित कर्म कर, भार त्याग कर, सर्वोच्च कल्याण को प्राप्त कर, 'होने' की इच्छा का नाश कर और उचित रूप से मुक्त हो गया हो, वह इसकी व्याख्या करे। मित्र, पृथ्वी तत्व में आत्मा का अभाव है। आत्मा का पदार्थ में कोई निवास नहीं है। पदार्थ में निवास करने और दृढ़ता से धारण करने की अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ नष्ट हो गईं, समाप्त हो गईं, त्याग दी गईं, मैं जानता हूँ कि मन मुक्त हो गया है। मैंने अनुभव किया कि जल तत्व, अग्नि तत्व, वायु तत्व, आकाश तत्व और चेतना तत्व में आत्मा का अभाव है। आत्मा का चेतना में कोई निवास नहीं है। चेतना में निवास करने और दृढ़ता से धारण करने की अंतर्निहित प्रवृत्तियाँ नष्ट हो गईं, समाप्त हो गईं, त्याग दी गईं, मैं जानता हूँ कि मन मुक्त हो गया है। मित्र, इन छह तत्वों को इस प्रकार जानने और देखने से मेरा मन इच्छाओं से मुक्त होकर बंधनहीन हो गया है। उनके शब्दों को अच्छे शब्दों के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए और आगे प्रश्न पूछा जाना चाहिए। मित्र, ये छह आंतरिक और बाह्य क्षेत्र उस ज्ञानी, प्रत्यक्षदर्शी और सही मायने में प्रबुद्ध भगवान द्वारा घोषित किए गए हैं। ये छह क्या हैं? आँख और रूप, कान और ध्वनियाँ, नाक और गंध, जीभ और स्वाद, शरीर और स्पर्श, और मन और विचार। इन छह आंतरिक और बाह्य क्षेत्रों में क्या जानना और क्या देखना है, यह आदरणीय भिक्षु के मन को इच्छाओं से मुक्त और बंधनरहित बनाता है। यह उचित है कि वह भिक्षु जिसने इच्छाओं का नाश किया है, पवित्र जीवन जिया है, जो करना चाहिए वह किया है, भार को त्याग दिया है, सर्वोच्च कल्याण को प्राप्त किया है, 'होने' की इच्छा का नाश किया है और सही मायने में मुक्त हो गया है, वह इसकी व्याख्या करे। स्वार्थ, लोभ और व्याकुलता, नेत्र चेतना, रूप और नेत्र चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुओं के साथ गलत तरीके से अनुसरण करने की सुप्त प्रवृत्तियाँ नष्ट हो गई हैं, समाप्त हो गई हैं और त्याग दी गई हैं, मैं जानता हूँ कि मेरा मन मुक्त हो गया है। रुचि, लोभ और लालसा के साथ गलत तरीके से अनुसरण करने की सुप्त प्रवृत्तियाँ - कान चेतना, ध्वनियाँ और कान चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुएँ, नाक चेतना, गंध और नाक चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुएँ, जीभ चेतना, स्वाद और जीभ चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुएँ, शरीर चेतना, स्पर्श और शरीर चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुएँ और मन चेतना, विचार और मन चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुएँ - नष्ट हो जाती हैं, समाप्त हो जाती हैं और त्याग दी जाती हैं। मैं जानता हूँ कि मेरा मन मुक्त हो गया है। मित्र, इन छह आंतरिक और बाह्य क्षेत्रों को इस

प्रकार जानने और देखने से, मेरा मन बिना किसी बंधन के इच्छाओं से मुक्त हो जाता है। उनके शब्दों को अच्छे शब्दों के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए और आगे एक प्रश्न पूछा जाना चाहिए। मित्र, इस छह प्रकार के चेतन शरीर और सभी बाह्य संकेतों में यह जानकर और देखकर कि मेरे और मेरे स्वयं के अभिमानपूर्ण मापन की सुप्त प्रवृत्तियाँ पूरी तरह से नष्ट हो जाती हैं, क्या है? यह वैध है कि एक भिक्षु जिसने इच्छाओं को नष्ट कर दिया है, पवित्र जीवन जिया है, और जो करना चाहिए वह किया है,इस बात को समझाना चाहिए कि बोझ को त्याग दिया, सर्वोच्च भलाई को प्राप्त किया, 'होने' की इच्छा को नष्ट कर दिया और उचित रूप से मुक्त हो गया।

मित्र, पहले जब मैं अज्ञानी गृहस्थ था, तब तथागत या उनके शिष्य ने उपदेश दिया और मुझे आस्था प्राप्त हुई। उस आस्था से मैंने सोचा, गृहस्थ जीवन कठिनाइयों से भरा है, तपस्वी जीवन निर्वाह करना खुले मैदान के समान है। गृहस्थ जीवन में पूर्ण और पवित्र, निर्मल, निर्मल जीवन जीना आसान नहीं है। सिर और दाढ़ी मुंडवाकर, पीले वस्त्र धारण करके, मैं तपस्वी क्यों न बनूँ? किसी उपयुक्त समय पर मैंने थोड़ा धन या बहुत धन त्याग दिया, मित्रों का छोटा समूह या मित्रों का बड़ा समूह छोड़कर सिर और दाढ़ी मुंडवाकर पीले वस्त्र धारण किए और तपस्वी जीवन व्यतीत किया।

मैं भिक्षु जीवन में प्रशिक्षक बन गया। मैंने प्राणियों को पीड़ा पहुँचाना त्याग दिया, लाठी-हथौड़े फेंक दिए और सभी प्राणियों के प्रति करुणा जगाते हुए लज्जित निवास किया। जो नहीं दिया गया, उसे लेने से परहेज करते हुए, जो दिया गया, उसकी इच्छा की, अपने मन को शुद्ध किया और चोरी रहित निवास किया। निम्न कोटि के यौन संबंध से परहेज करते हुए पवित्र जीवन व्यतीत किया। झूठ बोलने से परहेज करते हुए विश्वसनीय और भरोसेमंद बना और संसार से कोई विवाद न करते हुए निवास किया। निंदा करना त्याग दिया। यहाँ सुनकर कहीं और नहीं कहा, ताकि दूसरों को विभाजित न किया जाए। कहीं और सुनकर यहाँ नहीं कहा, ताकि दूसरों को विभाजित न किया जाए। इस प्रकार मैंने विभाजितों को एकजुट किया और एकता को बढ़ावा दिया। एकता का प्रेमी होकर एकता के वचन बोले। कठोर वाणी त्याग दी और ऐसे मधुर वचन बोले जो सबके हृदय को छू गए। व्यर्थ की बातों से परहेज करते हुए उचित, सत्य और अर्थपूर्ण वचन बोले, जो शिक्षा और अनुशासन के अनुरूप थे और जिन्हें संजोकर रखा जा सकता था।

बीज और वनस्पति समूहों को नष्ट करने से परहेज किया। दिन में एक बार भोजन किया, रात में और असमय भोजन से परहेज किया। नृत्य, गायन, संगीत, सजावट, फूल और सुगंध, अभिषेक और आभूषणों से परहेज किया। ऊंचे और आलीशान पलंगों से परहेज किया। सोना और चांदी, कच्चा चावल और कच्चा मांस ग्रहण करने से परहेज किया। स्त्रियों और लड़कियों, दासों, पुरुषों या स्त्रियों को ग्रहण करने से परहेज किया। बकरियों और गायों, मुर्गियों और सूअरों, हाथियों, मवेशियों, घोड़ों और घोड़ियों को ग्रहण करने से परहेज किया।

उन्होंने खेतों और धन को स्वीकार करने और संदेशवाहक का काम करने से परहेज किया। उन्होंने खरीद-फरोख्त और अनुचित तरीकों से तौलने-मापने से परहेज किया। उन्होंने काटने-पीटने, नष्ट करने और लूटपाट करने और भोजन प्राप्त करने के गलत तरीकों से परहेज किया।

संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर और पेट भरकर, मैं अपने सभी सामानों के साथ जहाँ भी जाता था, जाता था। जैसे छोटे-बड़े पक्षी अपने पंखों के भार से उड़ते हैं, वैसे ही संतुष्ट होकर, शरीर को वस्त्रों से ढककर और पेट भरकर, मैं अपने सभी सामानों के साथ जहाँ भी जाता था, जाता था। इन सद्गुणों से परिपूर्ण होकर, मैंने आंतरिक रूप से निष्कलंकता का आनंद अनुभव किया।

किसी आकृति को देखकर मैंने उसके चिन्ह या तत्वों को ग्रहण नहीं किया। आँख की मानसिक शक्ति पर नियंत्रण न रखते हुए, लोभ और अप्रसन्नता के दोष उस तक पहुँच सकते हैं। मैंने आँख की मानसिक शक्ति की रक्षा करते हुए निवास किया। किसी ध्वनि को सुनकर, किसी गंध को पहचानकर, चखकर, शरीर के स्पर्शों को पहचानकर, मन में किसी विचार को पहचानकर मैंने उसके चिन्ह या तत्वों को ग्रहण नहीं किया। मन की मानसिक शक्ति पर नियंत्रण न रखते हुए, लोभ और अप्रसन्नता के दोष उस तक पहुँच सकते हैं। मैंने मन की मानसिक शक्ति की रक्षा करते हुए निवास किया। श्रेष्ठ जनों के मानसिक शक्तियों पर नियंत्रण से संपन्न होकर, मैंने मानसिक शक्तियों के अछूते आनंद का अनुभव किया। आगे बढ़ते या लौटते समय मैं सचेत हो गया। देखते या देखते समय मैं सचेत हो गया। झुकते या खिंचते समय, प्याला और तीन वस्त्र धारण करते समय, चखते, पीते, खाते और आनंद लेते समय मैं सचेत हो गया। चलते हुए, खड़े होते हुए, बैठे हुए, लेटे हुए, यदि जागृत अवस्था में हों, और मौन रहते हुए मुझे जागरूकता प्राप्त हुई।

अनेक सद्गुणों से परिपूर्ण, मानसिक शक्तियों पर नियंत्रण रखने वाला और श्रेष्ठ आत्माओं के प्रति सजग, मैं किसी एकांत स्थान पर निवास करता हूँ, जैसे कि वन, वृक्ष की जड़, पर्वत की गुफा, श्मशान भूमि, घना जंगल, खुला मैदान या भूसे का ढेर। भोजन करने और भिक्षा मांगने के बाद, मैं पैर मोड़कर बैठता हूँ, शरीर सीधा रखता हूँ और ध्यान को अपने सामने केंद्रित करता हूँ।

संसार के प्रति लोभ को दूर करते हुए, मैंने मन को मुक्त करके निवास किया। क्रोध को दूर करते हुए, मैंने क्रोध रहित मन से निवास किया, सभी प्राणियों के प्रति करुणामय भाव रखते हुए। आलस्य और सुस्ती को दूर करते हुए, मैंने प्रकाश की अनुभूति के साथ निवास किया, आलस्य और सुस्ती को दूर करने के प्रति सचेत रहते हुए। बेचैनी और चिंता को दूर करते हुए, मैंने मन को आंतरिक रूप से शांत करते हुए निवास किया, बेचैनी और चिंता से मन को शुद्ध करते हुए। मैंने अच्छे और बुरे कर्मों के बारे में संदेह दूर करते हुए निवास किया।

मैंने मन की पाँच बाधाओं को दूर किया, और बुद्धिमानी से छोटी-छोटी अशुद्धियों को कमजोर करके मन को कामुक विचारों और दोषों से अलग किया। एकांत से उत्पन्न विचारों, विचार प्रक्रियाओं, आनंद और प्रसन्नता से परिपूर्ण होकर प्रथम ध्यान में निवास किया।

एक बार फिर विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर काबू पाते हुए, मन आंतरिक रूप से शांत हो गया, एक ही बिंदु पर एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख के साथ मैं दूसरे ध्यान में लीन हो गया।

फिर, आनंद और वैराग्य के प्रति समभाव रखते हुए, शरीर सहित सुख का अनुभव करते हुए, तीसरे ध्यान में निवास करें। श्रेष्ठ जन कहते हैं कि यही समभाव का ध्यान रखते हुए सुख में रहना है।

फिर, सुख और दुख को दूर करते हुए और पहले सुख और दुख को दूर कर चुके, समभाव से शुद्ध हुई चेतना के साथ मैं चौथे ध्यान में लीन हो गया।

जब मन एकाग्र, शुद्ध, लघु दोषों से मुक्त, लचीला, क्रियाशील और अविचलित था, तब मैंने मन को इच्छाओं के नाश की ओर लगाया। मैंने जाना कि यह अप्रिय है, यह है, इसका उद्भव है, इसका अंत है, और अप्रियता के अंत का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। मैंने इच्छाओं को जाना, उनका उद्भव है, उनका अंत है और उनके अंत का मार्ग है, जैसा कि वास्तव में है। इस प्रकार जानने और देखने वाला मन इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं से, 'होने' की इच्छाओं से और अज्ञानी इच्छाओं से मुक्त हो गया। मुक्त होने पर, मैंने जाना, मैं मुक्त हो गया हूँ, जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र जीवन जीया जा रहा है, जो करना चाहिए वह हो गया है। अब और कुछ चाहने को नहीं है। मित्र, इस प्रकार इस षष्ठमय चेतना और सभी बाह्य चिन्हों को जानकर और देखकर, मैंने अपने और अपने के अहंकारपूर्ण मापन की सुप्त प्रवृत्तियों को पूर्णतः नष्ट कर दिया। भिक्षुओं, उनके शब्दों को अच्छे शब्द मानकर उन्हें कहना चाहिए, 'मित्र, आप जैसे सहोदरों से मिलना हमारे लिए बड़ा लाभ है।'

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.3 सप्पुरिसा सुत्त(113)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। उन्होंने वहीं से भिक्षुओं को संबोधित किया। 'भिक्षुओं, मैं आपको योग्य और अयोग्य के गुण बताऊंगा, ध्यान से सुनो और ग्रहण करो।'

भिक्षुओं, योग्य व्यक्ति के क्या लक्षण हैं? यहाँ उच्च कुल से संन्यासी बना अयोग्य व्यक्ति चिंतन करता है। मैं उच्च कुल से संन्यासी बना हूँ, ये अन्य संन्यासी उच्च कुल से नहीं हैं। अपने उच्च कुल के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य व्यक्ति का लक्षण है। योग्य व्यक्ति चिंतन करता है कि उच्च कुल के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई उच्च कुल से बाहर का संन्यासी शिक्षा के अनुसार सही आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो वह इसी कारण सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और अपनी प्रशंसा या दूसरों की निंदा नहीं करता। भिक्षुओं, यही योग्य व्यक्ति का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, प्रतिष्ठित कुल से निकला अयोग्य व्यक्ति चिंतन करता है। वह सोचता है, "मैं एक उच्च और प्रतिष्ठित कुल से निकला हूँ, ये अन्य लोग जो निकले हैं, वे कुलीन कुल से नहीं हैं।" अपने कुलीन कुल के कारण वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य व्यक्ति का लक्षण है। योग्य व्यक्ति चिंतन करता है कि कुलीन कुल के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम नष्ट नहीं होते। यदि कोई व्यक्ति कुलीन कुल से बाहर का होकर भी संन्यासी बनता है और उपदेशों के अनुसार सही आचरण करता है, तो वह इसी कारण सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और स्वयं की प्रशंसा नहीं करता तथा दूसरों की निंदा नहीं करता। हे भिक्षुओं, यह योग्य व्यक्ति का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, फिर से, जो अयोग्य संन्यासी संन्यास लेकर गया है, वह चिंतन करता है। मैं तो प्रसिद्ध हूँ, लेकिन ये दूसरे संन्यासी प्रसिद्ध नहीं हैं। अपनी प्रसिद्धि के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य व्यक्ति का लक्षण है। योग्य व्यक्ति चिंतन करता है कि प्रसिद्धि के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई कम प्रसिद्ध संन्यासी संन्यास लेकर शिक्षा के अनुसार सही आचरण का पालन करता है, तो वह सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और अपनी प्रशंसा या दूसरों की निंदा नहीं करता। हे भिक्षुओं, यह योग्य व्यक्ति का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य व्यक्ति वस्त्र, भोजन, आवास और बीमारों के लिए आवश्यक वस्तुओं का लाभ उठाता है और चिंतन करता है। मैं वस्त्र, भोजन, आवास और बीमारों के लिए आवश्यक वस्तुओं का लाभ उठाने वाला हूँ, ये अन्य जो चले गए हैं, वे इन चारों आवश्यक वस्तुओं के लाभ नहीं उठा पाए। इसी कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यही अयोग्य व्यक्ति का लक्षण है। योग्य व्यक्ति लाभ के कारण चिंतन करता है, ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई ऐसा व्यक्ति जो वस्त्र, भोजन, आवास और बीमारों के लिए आवश्यक वस्तुओं का लाभ नहीं उठाता, उपदेश के अनुसार सही आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो वह सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यही योग्य व्यक्ति का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु भी ज्ञानी होता है, वह चिंतन करता है। मैं ज्ञानी हूँ, ये दूसरे भिक्षु ज्ञानी नहीं हैं। अपने ज्ञान के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है, क्योंकि उसके ज्ञान के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई अज्ञानी भिक्षु उपदेश के अनुसार सही आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करे, तो वह सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु अनुशासन धारण करता है, वह चिंतन करता है। मैं अनुशासन धारण करता हूँ, जबकि अन्य भिक्षु अनुशासन धारण नहीं करते। अनुशासन धारण करने के कारण वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु अनुशासन धारण करने के कारण चिंतन करता है, जिससे ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई व्यक्ति जो अनुशासन धारण नहीं करता, उपदेश के अनुसार सही आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो वह सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और स्वयं की प्रशंसा या दूसरों की निंदा नहीं करता। हे भिक्षुओं, यही योग्य भिक्षु का लक्षण है।

भिक्षुओं, फिर से कहो, अयोग्य भिक्षु उपदेशक होता है, वह चिंतन करता है। मैं उपदेशक हूँ, ये अन्य भिक्षु उपदेशक नहीं हैं। उपदेश देने की क्षमता के कारण वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है कि उपदेश देने की क्षमता के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई व्यक्ति जो उपदेशक नहीं है, उपदेश के अनुसार जीवन व्यतीत करता है, सही आचरण का पालन करता है, तो वह इसके कारण सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और स्वयं की प्रशंसा या दूसरों की निंदा नहीं करता। भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु वनवासी होता है, वह चिंतन करता है। मैं वनवासी हूँ, ये अन्य भिक्षु वनवासी नहीं हैं। वन में रहने के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यही अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है कि वन में रहने के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई वनवासी न होकर भी, शिक्षा के अनुसार, उचित आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो वह इसी कारण आदरणीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह उचित आचरण का आदर करता है और न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यही योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु फटे वस्त्र धारण करता है, वह चिंतन करता है। मैं फटे वस्त्र धारण करता हूँ, ये अन्य भिक्षु नहीं करते। फटे वस्त्र धारण करने के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यही अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन

करता है कि फटे वस्त्र धारण करने के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई व्यक्ति फटे वस्त्र धारण न करते हुए भी उपदेश के अनुसार सही आचरण का पालन करता है, तो वह सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यही योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु निःस्वार्थ भोजन ग्रहण करता है, वह चिंतन करता है। मैं निःस्वार्थ भोजन ग्रहण करता हूँ, जबकि अन्य भिक्षु निःस्वार्थ भोजन ग्रहण नहीं करते। निःस्वार्थ भोजन ग्रहण करने के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यही अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु निःस्वार्थ भोजन ग्रहण करने के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई निःस्वार्थ भोजन ग्रहण किए बिना, उपदेश के अनुसार सही आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो वह इसी कारण सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यही योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु वृक्ष की जड़ में निवास करता है, वह चिंतन करता है। मैं वृक्ष की जड़ में निवास करता हूँ, ये अन्य भिक्षु वृक्ष की जड़ में निवास नहीं करते। वृक्ष की जड़ में निवास करने के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है कि वृक्ष की जड़ में निवास करने के कारण ये लोभ, क्रोध और भ्रम की भावनाएँ नष्ट नहीं होतीं। यदि कोई वृक्ष की जड़ में निवास न करते हुए, उपदेश के अनुसार सही आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो वह इसी कारण सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु श्मशान में रहने वाला, खुले में रहने वाला, बैठे रहने वाला, जहाँ भी संभव हो सो जाने वाला, एक ही आसन पर बैठे रहने वाला, चिंतन करता है। वह सोचता है, मैं एक ही आसन पर बैठा हूँ, ये अन्य भिक्षु एक ही आसन पर नहीं बैठे हैं। एक ही आसन पर बैठने के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु एक ही आसन पर बैठने के कारण चिंतन करता है, जिससे उसके ये लोभ, क्रोध और भ्रम नष्ट नहीं होते। यदि कोई व्यक्ति जो एक ही आसन पर नहीं बैठा है, उपदेश के अनुसार सही आचरण का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करता है, तो वह इसके कारण सम्माननीय और प्रशंसनीय हो जाता है। वह सही आचरण का सम्मान करता है और न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु, इंद्रिय सुखों और दोषों से विरक्त होकर, विचारों और चिंतन प्रक्रियाओं में विलीन होकर, एकांत से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता में लीन होकर प्रथम ध्यान में रहता है। वह चिंतन करता है, मैं प्रथम ध्यान का लाभार्थी हूँ, ये अन्य भिक्षु प्रथम ध्यान के लाभार्थी नहीं हैं। अपने प्रथम ध्यान के कारण वह अपनी प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है, भगवान बुद्ध ने कहा है, हमें प्रथम ध्यान से भी आसक्त नहीं रहना चाहिए। हम जो भी कल्पना करते हैं, वह विपरीत हो जाता है। आसक्ति न करने को सर्वोपरि मानते हुए, वह प्रथम ध्यान के कारण न तो अपनी प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु विचारों और चिंतन प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके, मन को आंतरिक रूप से शांत करके, एक ही बिंदु पर एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और प्रसन्नता के साथ द्वितीय ध्यान में लीन रहता है, फिर तृतीय ध्यान में, फिर चतुर्थ ध्यान में। वह चिंतन करता है, मैं चतुर्थ ध्यान का लाभार्थी हूँ, ये अन्य भिक्षु चतुर्थ ध्यान के लाभार्थी नहीं हैं। अपने चतुर्थ ध्यान के कारण वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है। भगवान बुद्ध ने कहा है, हमें चतुर्थ ध्यान से भी आसक्त नहीं रहना चाहिए। हम जो भी कल्पना करते हैं, वह विपरीत हो जाता है। आसक्ति न करने को सर्वोपरि मानते हुए, वह चतुर्थ ध्यान के कारण न तो स्वयं की प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु, पदार्थ और क्रोध की सभी धारणाओं पर विजय प्राप्त करके, विभिन्न धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, असीम आकाश में निवास करता है। वह चिंतन करता है, मैं आकाश का लाभार्थी हूँ, ये अन्य भिक्षु आकाश के लाभार्थी नहीं हैं। आकाश में जन्म लेने के कारण वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है, भगवान बुद्ध ने कहा है, हमें आकाश से भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। हम जो भी कल्पना करते हैं, वह कुछ और ही हो जाता है। आसक्ति न रखने को सर्वोपरि मानते हुए, वह आकाश में जन्म लेने के कारण न तो स्वयं की प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु असीम चेतना से परिपूर्ण होकर, अंतरिक्ष के समस्त क्षेत्रों को पार करते हुए, चेतना के क्षेत्र को प्राप्त करता है। वह चिंतन करता है, मैं चेतना के क्षेत्र में लाभ प्राप्त करने वाला हूँ, ये अन्य भिक्षु चेतना के क्षेत्र में लाभ प्राप्त करने वाले नहीं हैं। चेतना के क्षेत्र में जन्म लेने के कारण वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है। भगवान बुद्ध ने कहा है, हमें चेतना के क्षेत्र से भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। हम जो भी कल्पना करते हैं, वह विपरीत हो जाता है। आसक्ति न रखने को सर्वोपरि मानते हुए, वह चेतना के क्षेत्र में जन्म लेने के कारण स्वयं की प्रशंसा नहीं करता और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु चेतना के समस्त क्षेत्रों को पार करते हुए, शून्यता के क्षेत्र को प्राप्त करता है। वह सोचता है, मैं शून्यता के क्षेत्र में लाभ प्राप्त करने वाला हूँ, ये अन्य भिक्षु शून्यता के क्षेत्र में लाभ प्राप्त करने वाले नहीं हैं। शून्यता के क्षेत्र में जन्म लेने के कारण वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु सोचता है, भगवान बुद्ध ने कहा है, हमें शून्यता के क्षेत्र से भी आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। हम जो भी कल्पना करते हैं, वह विपरीत हो जाता है। आसक्ति न रखने को सर्वोपरि मानते हुए, वह शून्यता के क्षेत्र में जन्म लेने के कारण स्वयं की प्रशंसा नहीं करता और न ही दूसरों की निंदा करता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

हे भिक्षुओं, अयोग्य भिक्षु सभी शून्यता के क्षेत्रों को पार करते हुए, न तो बोध और न ही अबोध की अवस्था को प्राप्त करता है। वह चिंतन करता है, मैं न तो बोध का लाभार्थी हूँ और न ही अबोध का, ये अन्य भिक्षु न तो बोध के लाभार्थी हैं और न ही अबोध के। न तो बोध और न ही अबोध में जन्म लेने के कारण वह स्वयं की प्रशंसा करता है और दूसरों की निंदा करता है। यह अयोग्य भिक्षु का लक्षण है। योग्य भिक्षु चिंतन करता है, भगवान बुद्ध ने कहा है, हमें न तो बोध और न ही अबोध से आसक्त नहीं रहना चाहिए। हम जो भी कल्पना करते हैं, वह विपरीत हो जाता है। आसक्ति न करने को सर्वोपरि मानते हुए, वह न तो स्वयं की प्रशंसा करता है और न ही दूसरों की निंदा करता है, क्योंकि वह न तो बोध और न ही अबोध में जन्म लेता है। हे भिक्षुओं, यह योग्य भिक्षु का लक्षण है।

फिर, सभी धारणाओं और अधारणाओं पर विजय प्राप्त करने वाला योग्य व्यक्ति, धारणाओं और भावनाओं के अंत को प्राप्त करता है। इस ज्ञान से देखकर उसकी इच्छाएँ भी नष्ट हो जाती हैं। यहाँ भिक्षु किसी भी कारण से कहीं भी जाने की कल्पना नहीं करता।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.4 सेवितब्बासेवितब्बा सुत्त(114)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। वहीं से भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, मैं तुम्हें उन बातों के बारे में बताऊंगा जिनका अभ्यास करना चाहिए और जिनका अभ्यास नहीं करना चाहिए; ध्यानपूर्वक सुनो।'

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि शारीरिक आचरण दो प्रकार का होता है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। वाणी आचरण दो प्रकार का होता है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। मानसिक आचरण दो प्रकार का होता है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। विचारों का उद्भव दो प्रकार का होता है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। बोधों की प्राप्ति दो प्रकार की होती है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। दृष्टि की प्राप्ति दो प्रकार की होती है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। आत्म-प्राप्ति दो प्रकार की होती है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।

यह सुनकर पूज्य सारिपुत्त ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, इस संक्षिप्त व्याख्या का विस्तृत अर्थ मुझे समझ में आ रहा है। कहा गया था, "भिक्षुओं, शारीरिक आचरण दो प्रकार का होता है, एक वह जो करना चाहिए और दूसरा वह जो नहीं करना चाहिए, और वे दोनों एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।" भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? कुछ शारीरिक आचरणों का अभ्यास करते समय यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है तो ऐसे शारीरिक आचरण का अभ्यास नहीं करना चाहिए। कुछ शारीरिक आचरणों का अभ्यास करते समय यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है तो ऐसे शारीरिक आचरण का अभ्यास करना चाहिए।"

आदरणीय महोदय, किस प्रकार के शारीरिक आचरण से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है? एक व्यक्ति निर्दयतापूर्वक जीवन का नाश करता है, रक्तरंजित हाथों से निर्दयतापूर्वक प्राणियों को नष्ट करता है, बिना दया दिखाए और बिना कुछ दिए छीन लेता है। गाँव या जंगल जाकर दूसरों का सामान चुराता है, चोरी की मानसिकता से। माता, पिता, भाई, बहन या रिश्तेदारों द्वारा संरक्षित लोगों के साथ यौन दुर्व्यवहार करता है। पति वाली और दंड के योग्य महिलाओं के साथ, या यहाँ तक कि पुष्पमाला धारण करने की प्रतिज्ञा लेने वाली महिलाओं के साथ भी दुर्व्यवहार करता है। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के शारीरिक आचरण से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है।

आदरणीय महोदय, किस प्रकार के शारीरिक आचरण का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पाप घटता है? एक ऐसा व्यक्ति जो जीवन का नाश नहीं करता, रक्तरंजित हाथों से क्रूर नहीं होता, विनाश में संलग्न नहीं होता, सभी जीवित प्राणियों के प्रति दया भाव रखता है। जो बिना दिया हुआ नहीं लेता। गाँव या जंगल में जाकर दूसरों का सामान चोरी के इरादे से नहीं लेता। माता, पिता, भाई, बहन या रिश्तेदारों द्वारा संरक्षित लोगों के साथ यौन दुर्व्यवहार नहीं करता। पति वाली और दंड के योग्य महिलाओं के साथ या माला जपने की प्रतिज्ञा लेने वाली महिलाओं के साथ भी दुर्व्यवहार नहीं करता। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के शारीरिक आचरण का पालन करने से पाप घटता है और पुण्य बढ़ता है।

यदि भगवान बुद्ध ने कहा है कि, "शारीरिक आचरण दो प्रकार का होता है, जिसमें वह शामिल है जो करना चाहिए और जो नहीं करना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल अलग है," तो यह इसी कारण से कहा गया था।

कहा गया, "भिक्षुओं, आचरण दो प्रकार का होता है: एक वह जो करना चाहिए और एक वह जो नहीं करना चाहिए, और वे दोनों एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।" भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? किसी विशेष आचरण का पालन करते समय यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो उस आचरण का पालन नहीं करना चाहिए। किसी विशेष आचरण का पालन करते समय यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो उस आचरण का पालन करना चाहिए।

आदरणीय महोदय, किस प्रकार के वाणी व्यवहार से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है? आदरणीय महोदय, एक व्यक्ति झूठ बोलता है। वह किसी सभा में, अपने रिश्तेदारों के बीच, किसी समारोह में या राजपरिवार के समक्ष जाकर गवाह बनने को कहा जाता है और झूठ बोलता है। हे भगवान, जो जानते हो बता। न जानते हुए भी वह कहता है कि मैं जानता हूँ, या जानते हुए भी कहता है कि मैं नहीं जानता। न देखते हुए भी कहता है कि मैंने देखा, या देखकर भी कहता है कि मैंने नहीं देखा। किसी निजी कारण से, किसी दूसरे के हित में या किसी भौतिक लाभ के लिए वह जानबूझकर झूठ बोलता है। वह द्वेषपूर्ण बातें बोलता है। यहाँ सुनी हुई बात को कहीं और दोहराता है, या कहीं और सुनी हुई बात को यहाँ दोहराता है, जिससे दूसरों में फूट पड़ती है। वह एक को तोड़ता है, टूटे को अलग करता है, उसे फूट डालने और अलग करने का शौक है, वह फूट डालने और अलग करने वाले शब्द बोलता है। वह कठोर और क्रोधित शब्दों का प्रयोग करता है जो तीखे और चुभने वाले होते हैं, दूसरों को क्रोधित करते हैं और एकाग्रता में बाधक होते हैं। यह व्यक्ति निरर्थक, असमय, असत्य और व्यर्थ बातें करता है जो शिक्षा और अनुशासन के अनुरूप नहीं हैं। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के मौखिक आचरण से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है।

आदरणीय महोदय, किस प्रकार के वाणी आचरण से पुण्य कम होता है और पुण्य बढ़ता है? आदरणीय महोदय, एक विशेष व्यक्ति झूठ नहीं बोलता। जब वह किसी सभा में, अपने रिश्तेदारों के बीच, किसी समारोह में या राजपरिवार के समक्ष उपस्थित होता है, तो उसे साक्षी बनने के लिए कहा जाता है और वह कहता है, "अच्छे, जो जानते हो, वही बताओ।" जानने पर वह कहता है, "मैं जानता हूँ," न जानने पर कहता है, "मैं नहीं जानता।" देखने पर वह कहता है, "मैंने देखा," और न देखने पर कहता है, "मैंने नहीं देखा।" वह जानबूझकर, व्यक्तिगत कारण से, किसी दूसरे के हित में या किसी भौतिक लाभ के लिए झूठ नहीं बोलता। वह द्वेषपूर्ण बातें नहीं बोलता। यहाँ सुनकर वह उसे कहीं और नहीं कहता जिससे फूट पड़े, और कहीं और सुनकर वह उसे यहाँ नहीं कहता जिससे फूट पड़े। वह एकजुट को एकजुट करता है, टूटे हुए को अलग नहीं करता, वह एकजुट करने का शौकीन है, अलग करने का नहीं। वह कठोर, क्रोधपूर्ण शब्दों से बचता है और कोमल, कानों को भाने वाले, हृदय को सीधे छूने वाले और अनेकों को स्वीकार्य शब्दों का प्रयोग करता है। वह निरर्थक, असमय, असत्य और व्यर्थ के शब्दों से परहेज करता है, और शिक्षा और अनुशासन के अनुसार बात करता है।

यदि भगवान बुद्ध ने कहा है, "भिक्षुओं, मौखिक आचरण दो प्रकार का होता है, जिसमें वह शामिल है जिसका अभ्यास किया जाना चाहिए और जिसका अभ्यास नहीं किया जाना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल अलग है," तो यह इसी कारण से कहा गया था।

कहा गया, "भिक्षुओं, मानसिक आचरण दो प्रकार का होता है: एक वह जो करना चाहिए और एक वह जो नहीं करना चाहिए, और वे दोनों एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं।" भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? किसी विशेष मानसिक आचरण का अभ्यास करते समय यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो ऐसे मानसिक आचरण का अभ्यास नहीं करना चाहिए। किसी विशेष मानसिक आचरण का अभ्यास करते समय यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो ऐसे मानसिक आचरण का अभ्यास करना चाहिए।

आदरणीय महोदय, किस प्रकार के मानसिक आचरण से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है? यहाँ एक व्यक्ति दूसरों की वस्तुओं का लोभ करता है। हे! काश, वे वस्तुएँ मेरी हो जाएँ। उसका मन क्रोधित है और विचार दूषित हैं। काश, इन प्राणियों का नाश हो, या वे मारे जाएँ, या नष्ट हो जाएँ। काश, इनका अस्तित्व ही न रहे। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के मानसिक आचरण से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है। आदरणीय महोदय, किस प्रकार के मानसिक आचरण से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है? यहाँ एक व्यक्ति दूसरों की वस्तुओं का लोभ नहीं करता, यह सोचकर कि हे! काश, वे वस्तुएँ मेरी हो जाएँ। उसका मन क्रोधित नहीं है और विचार दूषित नहीं हैं। काश, ये प्राणी क्रोध और द्वेष से मुक्त होकर सुखी रूप से निवास करें। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के मानसिक आचरण से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है।

कहा गया, "भिक्षुओं, विचार उत्पन्न करना भी दो प्रकार का होता है, एक वह जो करना चाहिए और दूसरा वह जो नहीं करना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होता है।" भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? कुछ विचारों का अभ्यास करते समय यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है तो ऐसे विचारों का अभ्यास नहीं करना चाहिए। कुछ विचारों का अभ्यास करते समय यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है तो ऐसे विचारों का अभ्यास करना चाहिए।

आदरणीय महोदय, किस प्रकार के चिंतन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है? यहाँ एक व्यक्ति दूसरों की संपत्ति पर लोभ करने का चिंतन करता है, क्रोधपूर्ण चिंतन करता है, और दूसरों को दुख पहुँचाने का चिंतन करता है। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के चिंतन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है। आदरणीय महोदय, किस प्रकार के चिंतन करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है? यहाँ एक व्यक्ति

जो दूसरों की संपत्ति पर लालच करने के विचारों में नहीं पड़ता, जो क्रोधपूर्ण विचारों से दूर रहता है, जो दूसरों को दुख पहुंचाने के विचारों में नहीं पड़ता। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से पुण्य कम होता है और पुण्य बढ़ता है।

यदि भगवान बुद्ध ने कहा है, "भिक्षुओं, विचारों का उद्‍भव दो प्रकार का होता है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, और वे दोनों एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं," तो यह इसी कारण से कहा गया है।

कहा गया, "भिक्षुओं, किसी मनोभाव की प्राप्ति भी दो प्रकार की होती है, एक वह जो करना चाहिए और एक वह जो नहीं करना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होती है।" भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? किसी मनोभाव की प्राप्ति के लिए यदि कर्म करते समय दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो उस मनोभाव की प्राप्ति करनी चाहिए। यदि किसी मनोभाव की प्राप्ति के लिए कर्म करते समय दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो उस मनोभाव की प्राप्ति करनी चाहिए।

आदरणीय महोदय, किस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है? यहाँ एक व्यक्ति के ये विचार हैं कि दान, यज्ञ और भेंट का कोई फल नहीं होता। अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल नहीं होता। न यह संसार है, न परलोक, न माता, न पिता, न स्वतः उत्पन्न प्राणी, न संन्यासी और न ब्राह्मण जो इस संसार और परलोक को जानकर उसका वर्णन करते हैं। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है। आदरणीय महोदय, किस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है? यहाँ एक व्यक्ति के ये विचार हैं कि दान, यज्ञ और भेंट का फल होता है। अच्छे और बुरे कर्मों का फल होता है। न यह संसार है, न परलोक है, न माता, न पिता, न स्वतः उत्पन्न प्राणी, न संन्यासी और ब्राह्मण जो इस संसार और परलोक को जानकर उसका वर्णन करते हैं। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है।

यदि भगवान बुद्ध ने कहा है, "भिक्षुओं, दर्शन का लाभ दो प्रकार का है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, और वे दोनों एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं," तो यह इसी कारण से कहा गया है।

कहा गया, "भिक्षुओं, व्यक्तिगत लाभ भी दो प्रकार के होते हैं, एक वो जो करना चाहिए और एक वो जो नहीं करना चाहिए, और वो भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते हैं।" भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के दौरान, यदि दोष बढ़े और पुण्य घटे, तो ऐसे व्यक्तिगत लाभ प्राप्त नहीं करने चाहिए। व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के दौरान, यदि दोष घटे और पुण्य बढ़े, तो ऐसे व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने चाहिए।

आदरणीय महोदय, किस प्रकार के व्यक्तिगत लाभों का अभ्यास करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है? आदरणीय महोदय, जब अस्तित्व के अंत न होने के कारण कष्टदायक व्यक्तिगत लाभ उत्पन्न होते हैं, तो दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है। (*1) आदरणीय महोदय, किस प्रकार के व्यक्तिगत लाभों का अभ्यास करने से दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है? आदरणीय महोदय, जब अस्तित्व के अंत न होने के कारण कष्टरहित व्यक्तिगत लाभ उत्पन्न होते हैं, तो दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है। (*2)

यदि भगवान बुद्ध ने कहा है, "भिक्षुओं, व्यक्तिगत लाभ दो प्रकार के होते हैं, जिनमें से एक वह है जिसका अभ्यास किया जाना चाहिए और दूसरा वह है जिसका अभ्यास नहीं किया जाना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं," तो यह इसी कारण से कहा गया था।

आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए संक्षिप्त प्रवचन की विस्तृत व्याख्या के रूप में जानता हूँ।

'शाबाश! सारिपुत्त, अच्छा हुआ कि तुम्हें मेरे द्वारा दिए गए संक्षिप्त व्याख्यान की विस्तृत व्याख्या पता है।'

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि शारीरिक आचरण दो प्रकार का होता है, एक वह जो करना चाहिए और दूसरा वह जो नहीं करना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होता है। यह किसलिए कहा गया था? किसी विशेष शारीरिक आचरण का अभ्यास करते समय यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है तो उस शारीरिक आचरण का अभ्यास नहीं करना चाहिए। किसी विशेष शारीरिक आचरण का अभ्यास करते समय यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है तो उस शारीरिक आचरण का अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, किस प्रकार के शारीरिक आचरण से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है? एक व्यक्ति निर्दयतापूर्वक जीवन का नाश करता है, रक्तरंजित हाथों से निर्दयतापूर्वक प्राणियों का नाश करता है। बिना दिए हुए को छीन लेता है। गाँव या जंगल जाकर दूसरों का सामान चोरी की मानसिकता से ले जाता है। माता, पिता, भाई, बहन या रिश्तेदारों द्वारा संरक्षित लोगों के साथ यौन दुर्व्यवहार करता है। पति वाली और दंडनीय महिलाओं के साथ, या यहाँ तक कि पुष्पमाला धारण करने की प्रतिज्ञा लेने वाली महिलाओं के साथ भी दुर्व्यवहार करता है। सारिपुत्त, इस प्रकार के शारीरिक आचरण से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है।

सारिपुत्त, किस प्रकार के शारीरिक आचरण का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पाप घटता है? एक ऐसा व्यक्ति जो जीवन का नाश नहीं करता, क्रूर नहीं है, रक्तरंजित हाथों से किसी का वध नहीं करता, सभी जीवित प्राणियों के प्रति दया भाव रखता है। जो दिया न गया हो, उसे नहीं लेता। गाँव या वन में जाकर दूसरों की वस्तुएँ चोरी के इरादे से नहीं लेता। माता, पिता, भाई, बहन या सगे-संबंधियों द्वारा संरक्षित लोगों के साथ यौन दुराचार नहीं करता। पति वाली और दंड के योग्य महिलाओं के साथ या यहाँ तक कि पुष्पमाला जपने वाली महिलाओं के साथ भी दुराचार नहीं करता। आदरणीय महोदय, इस प्रकार के शारीरिक आचरण का पालन करने से पाप घटता है और पुण्य बढ़ता है।

यदि मैंने कहा कि शारीरिक आचरण दो प्रकार का होता है, जिसमें वह शामिल है जिसका अभ्यास किया जाना चाहिए और जिसका अभ्यास नहीं किया जाना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल अलग, तो यह बात इसी कारण से कही गई थी...

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि वाणी आचरण दो प्रकार का होता है, एक वह जो करना चाहिए और एक वह जो नहीं करना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है। यह किसलिए कहा गया था? किसी विशेष वाणी आचरण का अभ्यास करते समय यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है तो ऐसे वाणी आचरण का अभ्यास नहीं करना चाहिए। किसी विशेष वाणी आचरण का अभ्यास करते समय यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है तो ऐसे वाणी आचरण का अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, किस प्रकार के वाणी आचरण से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है? आदरणीय महोदय, एक व्यक्ति झूठ बोलता है। वह किसी सभा में, अपने रिश्तेदारों के बीच, किसी समारोह में या राजपरिवार के समक्ष जाकर, साक्षी बनने को कहा जाता है और झूठ बोलता है। हे भगवान, जो जानते हो बता। न जानते हुए भी वह कहता है कि मैं जानता हूँ, या जानते हुए भी कहता है कि मैं नहीं जानता। न देखते हुए भी कहता है कि मैंने देखा, या देखकर भी कहता है कि मैंने नहीं देखा। किसी निजी कारण से, किसी दूसरे के हित में या किसी भौतिक लाभ के लिए वह जानबूझकर झूठ बोलता है। वह द्वेषपूर्ण बातें बोलता है। यहाँ कुछ सुनकर, उसे कहीं और बोलकर दूसरों को विभाजित करता है, या कहीं और कुछ सुनकर, उसे यहाँ बोलकर दूसरों को विभाजित करता है। वह एक को अलग करता है, टूटे को तोड़ता है, उसे अलग करने और तोड़ने का शौक है, वह ऐसे शब्द बोलता है जो दूसरों को अलग करते हैं। वह कठोर और क्रोधित शब्दों का प्रयोग करता है जो तीखे और चुभने वाले होते हैं, दूसरों को क्रोधित करते हैं और एकाग्रता में बाधक होते हैं। वह व्यर्थ, असमय, असत्य और निरर्थक शब्दों का प्रयोग करता है जो शिक्षा और अनुशासन के अनुरूप नहीं हैं। सारिपुत्त, इस प्रकार के मौखिक आचरण का अभ्यास करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है।

सारिपुत्त, किस प्रकार के वाणी आचरण का अभ्यास करने से पुण्य कम होता है और पुण्य बढ़ता है? सारिपुत्त, एक विशेष व्यक्ति झूठ बोलने से परहेज करता है। जब वह किसी सभा में, अपने रिश्तेदारों के बीच, किसी समारोह में या राजपरिवार के समक्ष उपस्थित होता है, तो उसे साक्षी बनने के लिए कहा जाता है और उससे पूछा जाता है, "हे स्वामी, जो जानते हो, वही बताओ।" जानने पर वह कहता है, "मैं जानता हूँ," न जानने पर कहता है, "मैं नहीं जानता।" देखने पर वह कहता है, "मैंने देखा," और न देखने पर कहता है, "मैंने नहीं देखा।" वह व्यक्तिगत कारण से, किसी दूसरे के हित में या किसी भौतिक लाभ के लिए जानबूझकर झूठ नहीं बोलता। वह द्वेषपूर्ण बातें नहीं बोलता। यहाँ कुछ सुनकर वह उसे कहीं और नहीं कहता जिससे दूसरों में फूट पड़े, और कहीं और कुछ सुनकर वह उसे यहाँ नहीं कहता जिससे दूसरों में फूट पड़े। वह एकजुटों को एकजुट करता है, टूटे हुए को अलग नहीं करता, वह एकजुट करने का शौकीन है, अलग करने का नहीं। वह कठोर, क्रोधपूर्ण शब्दों से परहेज करता है और कोमल, कानों को भाने वाले, हृदय को सीधे छूने वाले और अनेकों को स्वीकार्य शब्दों का प्रयोग करता है। वह निरर्थक, असमय, असत्य और व्यर्थ के शब्दों से परहेज करता है, और शिक्षा और अनुशासन के अनुसार बात करता है।

भिक्षुओं, मैंने कहा, मौखिक आचरण दो प्रकार का होता है, जिसमें वह शामिल है जिसका अभ्यास किया जाना चाहिए और जिसका अभ्यास नहीं किया जाना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल अलग है, ऐसा इसलिए कहा गया था।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि मानसिक आचरण दो प्रकार का होता है, एक वह जो करना चाहिए और दूसरा वह जो नहीं करना चाहिए, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होता है। यह किस कारण से कहा गया था? किसी विशेष मानसिक आचरण का अभ्यास करते समय, यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो ऐसे मानसिक आचरण का अभ्यास नहीं करना चाहिए। किसी विशेष मानसिक आचरण का अभ्यास करते समय, यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो ऐसे मानसिक आचरण का अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, किस प्रकार के मानसिक आचरण से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है? यहाँ एक विशेष प्राणी दूसरों की वस्तुओं का लोभ करता है। हे! काश, वे वस्तुएँ मेरी हो जाएँ। उसका मन क्रोधित है और विचार दूषित हैं। हे! काश, इन प्राणियों का वध हो, या वे मारे जाएँ, या उनका नाश हो जाए। हे सारिपुत्त, इस प्रकार के मानसिक आचरण से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है। हे सारिपुत्त, किस प्रकार के मानसिक आचरण से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है? यहाँ एक विशेष प्राणी दूसरों की वस्तुओं का लोभ नहीं करता। हे! काश, वे वस्तुएँ मेरी हो जाएँ। उसका मन क्रोधित नहीं है और विचार दूषित नहीं हैं। हे सारिपुत्त, इस प्रकार के मानसिक आचरण से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि विचारों का उद्भव भी दो प्रकार का होता है, एक वह जो अभ्यास करने योग्य है और दूसरा वह जो अभ्यास नहीं करने योग्य है, और वह भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है। यह किसलिए कहा गया था? कुछ विचारों का अभ्यास करते समय, यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो ऐसे विचारों का अभ्यास नहीं करना चाहिए। कुछ विचारों का अभ्यास करते समय, यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो ऐसे विचारों का अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, किस प्रकार के चिंतन करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है? यहाँ एक व्यक्ति दूसरों की संपत्ति के लालच में लीन रहता है, क्रोधपूर्ण चिंतन करता है, और दूसरों को दुख पहुँचाने का चिंतन करता है। सारिपुत्त, इस प्रकार के चिंतन करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है। सारिपुत्त, किस प्रकार के चिंतन करने से दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है? यहाँ एक व्यक्ति

जो व्यक्ति दूसरों की संपत्ति पर लालच करने का चिंतन नहीं करता, जो क्रोधपूर्ण चिंतन से मुक्त रहता है, जो दूसरों को दुख पहुंचाने का चिंतन नहीं करता। सारिपुत्त, इस प्रकार के चिंतन का अभ्यास करने से पुण्य कम होता है और पुण्य बढ़ता है।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि विचारों का उद्भव दो प्रकार का होता है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल होती हैं, और ये दोनों ही बातें एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होती हैं। ऐसा इसलिए कहा गया है क्योंकि...

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि किसी दृष्टि की प्राप्ति भी दो प्रकार की होती है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, और वे दोनों ही एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। यह किसलिए कहा गया था? किसी विशेष दृष्टि की प्राप्ति के लिए अभ्यास करते समय यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो उस दृष्टि की प्राप्ति का अभ्यास नहीं करना चाहिए। किसी विशेष दृष्टि की प्राप्ति के लिए अभ्यास करते समय यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो उस दृष्टि की प्राप्ति का अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, किस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है? यहाँ एक व्यक्ति के ये विचार हैं कि दान, यज्ञ और भेंट का कोई फल नहीं मिलता। अच्छे और बुरे कर्मों का कोई फल नहीं मिलता। न यह संसार है, न परलोक, न माता है, न पिता, न स्वतः उत्पन्न प्राणी हैं। न कोई संन्यासी और ब्राह्मण हैं जो इस संसार और परलोक को जानकर इसकी घोषणा करते हैं। सारिपुत्त, इस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है। सारिपुत्त, किस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है? यहाँ एक व्यक्ति के ये विचार हैं कि दान, यज्ञ और भेंट का फल मिलता है। अच्छे और बुरे कर्मों का फल मिलता है। यह संसार है, दूसरा संसार है, माता-पिता हैं, स्वतः उत्पन्न प्राणी हैं, संन्यासी और ब्राह्मण हैं जो इस संसार और दूसरे संसार को जानकर इसकी घोषणा करते हैं। सारिपुत्त, इस प्रकार के विचारों का अभ्यास करने से पुण्य कम होता है और पुण्य बढ़ता है।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि मतों का लाभ भी दो प्रकार का होता है, जिसमें अभ्यास करने योग्य और अभ्यास न करने योग्य बातें शामिल हैं, और ये दोनों ही बातें एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। ऐसा इसलिए कहा गया था।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि व्यक्तिगत लाभ भी दो प्रकार के होते हैं, एक वो जो करना चाहिए और दूसरा वो जो नहीं करना चाहिए, और वो भी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते हैं, ऐसा क्यों कहा गया है? व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के दौरान, यदि दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो ऐसे व्यक्तिगत लाभ प्राप्त नहीं करने चाहिए। व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने के दौरान, यदि दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो ऐसे व्यक्तिगत लाभ प्राप्त करने चाहिए।

सारिपुत्त, किस प्रकार के व्यक्तिगत लाभों का अभ्यास करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है? सारिपुत्त, जब कष्टदायी व्यक्तिगत लाभ उत्पन्न होते हैं, तो अस्तित्व के अंत न होने के कारण दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है। सारिपुत्त, किस प्रकार के व्यक्तिगत लाभों का अभ्यास करने से दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है? सारिपुत्त, जब कष्टदायी व्यक्तिगत लाभ उत्पन्न नहीं होते हैं, तो अस्तित्व के अंत के कारण दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है।

भिक्षुओं, मैं कहता हूँ कि व्यक्तिगत लाभ दो प्रकार के होते हैं, जिनमें अभ्यास किया जाना चाहिए और अभ्यास नहीं किया जाना चाहिए, और वे भी एक दूसरे से बिल्कुल अलग होते हैं, ऐसा इसलिए कहा गया था।

सारिपुत्त, यह मेरे द्वारा दिए गए संक्षिप्त व्याख्यान की विस्तृत व्याख्या है।

सारिपुत्त, नेत्र चेतना द्वारा अनुभव किए जा सकने वाले रूप भी दो प्रकार के होते हैं, जिनमें से कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं। कान चेतना द्वारा अनुभव की जा सकने वाली ध्वनियाँ भी दो प्रकार की होती हैं, जिनमें से कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं। नाक चेतना द्वारा अनुभव की जा सकने वाली गंध भी दो प्रकार की होती हैं, जिनमें से कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं। जीभ चेतना द्वारा अनुभव किए जा सकने वाले स्वाद भी दो प्रकार के होते हैं, जिनमें से कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं। शरीर चेतना द्वारा अनुभव किए जा सकने वाले स्पर्श भी दो प्रकार के होते हैं, जिनमें से कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं। मन चेतना द्वारा अनुभव किए जा सकने वाले विचार भी दो प्रकार के होते हैं, जिनमें से कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं।

जब यह कहा गया, तो पूज्य सारिपुत्त ने कहा, 'पूज्यवर, भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए संक्षिप्त प्रवचन की विस्तृत व्याख्या मुझे इस प्रकार ज्ञात है।'

कहा गया, "सारिपुत्त, नेत्र-चेतना से दिखाई देने वाले रूप भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका अनुसरण करना चाहिए और जिनका नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? आदरणीय महोदय, कुछ ऐसे रूपों का अनुसरण करने से, जिनका नेत्र-चेतना से दृश्यता

होती है, पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसे रूपों का अनुसरण नहीं करना चाहिए। कुछ ऐसे रूपों का अनुसरण करने से, जिनका नेत्र-चेतना से दृश्यता होती है, पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है; ऐसे रूपों का अनुसरण करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, नेत्र-चेतना से दिखाई देने वाले रूप भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका अनुसरण करना चाहिए और जिनका नहीं करना चाहिए।" ऐसा इसलिए कहा गया।

कहा गया, "सारिपुत्त, कानों से सुनी जा सकने वाली ध्वनियाँ भी दो प्रकार की होती हैं: कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं।" भगवान बुद्ध ने यह बात किसलिए कही थी? आदरणीय महोदय, कुछ ध्वनियों का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसी ध्वनियों का पालन नहीं करना चाहिए। कुछ ध्वनियों का पालन करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है; ऐसी ध्वनियों का पालन करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, कानों से सुनी जा सकने वाली ध्वनियाँ भी दो प्रकार की होती हैं: कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं।" यह बात इसी कारण कही गई थी।

कहा गया, "सारिपुत्त, नाक से महसूस होने वाली सुगंधें भी दो प्रकार की होती हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? आदरणीय महोदय, कुछ सुगंधों का अनुसरण करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसी सुगंधों का अनुसरण नहीं करना चाहिए। कुछ सुगंधों का अनुसरण करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है; ऐसी सुगंधों का अनुसरण करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, नाक से महसूस होने वाली सुगंधें भी दो प्रकार की होती हैं - जिनका अनुसरण करना चाहिए और जिनका अनुसरण नहीं करना चाहिए।" ऐसा इसलिए कहा गया।

कहा गया, "सारिपुत्त, जीभ से अनुभव किए जाने वाले स्वाद भी दो प्रकार के होते हैं: जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? आदरणीय महोदय, कुछ स्वादों का अनुभव करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसे स्वादों का पालन नहीं करना चाहिए। कुछ स्वादों का अनुभव करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है; ऐसे स्वादों का पालन करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, जीभ से अनुभव किए जाने वाले स्वाद भी दो प्रकार के होते हैं: जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।" ऐसा इसलिए कहा गया।

कहा गया, "सारिपुत्त, देह चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले स्पर्श भी दो प्रकार के होते हैं: कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं।" भगवान बुद्ध ने यह किस कारण कहा? आदरणीय महोदय, देह चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले कुछ स्पर्शों का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसे स्पर्शों का पालन नहीं करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, देह चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले स्पर्श भी दो प्रकार के होते हैं: कुछ का पालन करना चाहिए और कुछ का नहीं।" यह इसी कारण कहा गया।

कहा गया, "सारिपुत्त, मन-चेतना द्वारा बोधित विचार भी दो प्रकार के होते हैं: जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने यह किस कारण कहा? आदरणीय महोदय, जब मन-चेतना द्वारा बोधित कुछ विचारों का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो ऐसे विचारों का पालन नहीं करना चाहिए। जब मन-चेतना द्वारा बोधित कुछ विचारों का पालन करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो ऐसे विचारों का पालन करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, मन-चेतना द्वारा बोधित विचार भी दो प्रकार के होते हैं: जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।" यह इसी कारण कहा गया।

आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए संक्षिप्त प्रवचन की विस्तृत व्याख्या से मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है...

'शाबाश! सारिपुत्त, अच्छा हुआ कि तुम्हें मेरे द्वारा दिए गए संक्षिप्त व्याख्यान की विस्तृत व्याख्या पता है।'

सारिपुत्त, मैंने कहा है कि नेत्र-चेतना से दिखाई देने वाले रूप भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए। यह किसलिए कहा गया था? सारिपुत्त, कुछ ऐसे रूपों का पालन करने से जो नेत्र-चेतना से दिखाई देते हैं, पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसे रूपों का पालन नहीं करना चाहिए। मैंने कहा, सारिपुत्त, नेत्र-चेतना से दिखाई देने वाले रूप भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।

सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, कान से सुनी जाने वाली ध्वनियाँ भी दो प्रकार की होती हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए। यह किस कारण से कहा गया था? सारिपुत्त, कुछ ध्वनियों का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसी ध्वनियों का पालन नहीं करना चाहिए। मैंने कहा, सारिपुत्त, कान से सुनी जाने वाली ध्वनियाँ भी दो प्रकार की होती हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।

सारिपुत्त, मैंने कहा कि नाक से पहचानी जाने वाली सुगंधें भी दो प्रकार की होती हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए। ऐसा किसलिए कहा गया था? सारिपुत्त, नाक से पहचानी जाने वाली कुछ सुगंधों का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसी सुगंधों का पालन नहीं करना चाहिए। मैंने कहा, सारिपुत्त, नाक से पहचानी जाने वाली सुगंधें भी दो प्रकार की होती हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।

सारिपुत्त, मैंने कहा, जीभ से अनुभव किए जाने वाले स्वाद भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए। किसलिए कहा गया था? सारिपुत्त, जीभ से अनुभव किए जाने वाले कुछ स्वादों का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसे स्वादों का पालन नहीं करना चाहिए। मैंने कहा, सारिपुत्त, जीभ से अनुभव किए जाने वाले स्वाद भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।

सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, शरीर चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले स्पर्श भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए। यह किसलिए कहा गया था? सारिपुत्त, शरीर चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले कुछ स्पर्शों का पालन करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसे स्पर्शों का पालन नहीं करना चाहिए। शरीर चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले कुछ स्पर्शों का पालन करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है; ऐसे स्पर्शों का पालन करना चाहिए। मैंने कहा, सारिपुत्त, शरीर चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले स्पर्श भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।

सारिपुत्त, मैंने कहा, मन-चेतना द्वारा बोधगम्य विचार भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए। किसलिए कहा गया था? सारिपुत्त, मन-चेतना द्वारा बोधगम्य विचारों का पालन करने से जब दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, तो ऐसे विचारों का पालन नहीं करना चाहिए। मन-चेतना द्वारा बोधगम्य विचारों का पालन करने से जब दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, तो ऐसे विचारों का पालन करना चाहिए। मैंने कहा, सारिपुत्त, मन-चेतना द्वारा बोधगम्य विचार भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका पालन करना चाहिए और जिनका पालन नहीं करना चाहिए।

सारिपुत्त, मेरे संक्षिप्त व्याख्यान की विस्तृत व्याख्या इस प्रकार ज्ञात होनी चाहिए।

सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, वस्त्र भी दो प्रकार के होते हैं, एक का उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे का नहीं। भोजन भी दो प्रकार का होता है, एक का उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे का नहीं। घर भी दो प्रकार के होते हैं, एक का उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे का नहीं। गाँव भी दो प्रकार के होते हैं, एक का उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे का नहीं। बस्तियाँ भी दो प्रकार की होती हैं, एक का उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे का नहीं। शहर भी दो प्रकार के होते हैं, एक का उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे का नहीं। राज्य भी दो प्रकार के होते हैं, एक का उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे का नहीं। व्यक्ति भी दो प्रकार के होते हैं, एक का उपयोग किया जाना चाहिए और दूसरे का नहीं।

जब यह कहा गया, तो पूज्य सारिपुत्त ने कहा, 'पूज्यवर, भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए संक्षिप्त प्रवचन की विस्तृत व्याख्या मुझे इस प्रकार ज्ञात है।'

कहा गया, "सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, वस्त्र भी दो प्रकार के होते हैं - एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने यह बात किसलिए कही थी? आदरणीय, कुछ वस्त्रों के उपयोग से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है, ऐसे वस्त्रों का उपयोग नहीं करना चाहिए; और कुछ वस्त्रों के उपयोग से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है, ऐसे वस्त्रों का उपयोग करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, वस्त्र भी दो प्रकार के होते हैं, एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" यह बात इसी कारण कही गई थी।

कहा गया, "सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, भोजन भी दो प्रकार का होता है - एक जिसका उपयोग करना चाहिए और एक जिसका उपयोग नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने यह किस कारण कहा? आदरणीय, कुछ भोजन के उपयोग से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है, ऐसे भोजन का उपयोग नहीं करना चाहिए; कुछ भोजन के उपयोग से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है, ऐसे भोजन का उपयोग करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, भोजन भी दो प्रकार का होता है, एक जिसका उपयोग करना चाहिए और एक जिसका उपयोग नहीं करना चाहिए।" यह इसी कारण कहा गया।

कहा गया, "सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, निवास भी दो प्रकार के होते हैं - एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने यह किसलिए कहा था? आदरणीय, कुछ निवासों का उपयोग करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है,

ऐसे निवासों का उपयोग नहीं करना चाहिए; कुछ निवासों का उपयोग करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है, ऐसे निवासों का उपयोग करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, निवास भी दो प्रकार के होते हैं, एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" यह इसी कारण कहा गया था।

कहा गया, "सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, गाँव भी दो प्रकार के होते हैं - एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने यह बात किसलिए कही थी? आदरणीय महोदय, कुछ गाँवों का उपयोग करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है, ऐसे गाँवों का उपयोग नहीं करना चाहिए; और कुछ गाँवों का उपयोग करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है, ऐसे गाँवों का उपयोग करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, गाँव भी दो प्रकार के होते हैं - एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" यह बात इसी कारण कही गई थी।

कहा गया, "सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, गाँव भी दो प्रकार के होते हैं - एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने ऐसा क्यों कहा? आदरणीय, कुछ गाँवों का उपयोग करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है, ऐसे गाँवों का उपयोग नहीं करना चाहिए; और कुछ गाँवों का उपयोग करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है, ऐसे गाँवों का उपयोग करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, गाँव भी दो प्रकार के होते हैं, एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" ऐसा इसलिए कहा गया।

कहा गया, "सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, नगर भी दो प्रकार के होते हैं - एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने यह किसलिए कहा था? आदरणीय, कुछ नगरों का उपयोग करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है, इसलिए ऐसे नगरों का उपयोग नहीं करना चाहिए; और कुछ नगरों का उपयोग करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है, इसलिए ऐसे नगरों का उपयोग करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, नगर भी दो प्रकार के होते हैं - एक जिनका उपयोग करना चाहिए और एक जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" यह इसी कारण कहा गया था।

कहा गया, "सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, अवस्थाएँ भी दो प्रकार की होती हैं - एक जिनका उपयोग करना चाहिए और दूसरी जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने यह किसलिए कहा था? आदरणीय, कुछ अवस्थाओं का उपयोग करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है; ऐसी अवस्थाओं का उपयोग नहीं करना चाहिए; कुछ अवस्थाओं का उपयोग करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है; ऐसी अवस्थाओं का उपयोग करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, अवस्थाएँ भी दो प्रकार की होती हैं, एक जिनका उपयोग करना चाहिए और दूसरी जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" यह इसी कारण कहा गया था।

कहा गया, "सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, मनुष्य भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका उपयोग करना चाहिए और जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" भगवान बुद्ध ने यह किस कारण कहा? आदरणीय, कुछ व्यक्तियों का उपयोग करने से दोष बढ़ता है और पुण्य घटता है, ऐसे व्यक्तियों का उपयोग नहीं करना चाहिए; और कुछ व्यक्तियों का उपयोग करने से दोष घटता है और पुण्य बढ़ता है, ऐसे व्यक्तियों का उपयोग करना चाहिए। कहा गया, "सारिपुत्त, मनुष्य भी दो प्रकार के होते हैं - जिनका उपयोग करना चाहिए और जिनका उपयोग नहीं करना चाहिए।" यह इसी कारण कहा गया।

आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए संक्षिप्त प्रवचन की विस्तृत व्याख्या मुझे ज्ञात है कि यह इस प्रकार है।

'शाबाश! सारिपुत्त, अच्छा हुआ कि तुम्हें मेरे द्वारा दिए गए संक्षिप्त व्याख्यान की विस्तृत व्याख्या पता है।'

सारिपुत्त, मैं कहता हूँ, वस्त्र भी दो प्रकार के होते हैं, यहाँ तक कि भोजन भी, यहाँ तक कि घर भी, यहाँ तक कि गाँव भी, यहाँ तक कि बस्तियाँ भी, यहाँ तक कि शहर भी, यहाँ तक कि राज्य भी, यहाँ तक कि व्यक्ति भी दो प्रकार के होते हैं जिनका उपयोग किया जाना चाहिए और जिनका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा क्यों कहा गया है? कुछ वस्त्रों का उपयोग करने से पुण्य बढ़ता है और पुण्य घटता है, कुछ वस्त्रों का उपयोग करने से पुण्य घटता है और पुण्य बढ़ता है; ऐसे वस्त्रों का ही उपयोग करना चाहिए।

सारिपुत्त, यह मेरे द्वारा दिए गए संक्षिप्त व्याख्यान की विस्तृत व्याख्या है।

सारिपुत्त, यदि सभी योद्धा, सभी ब्राह्मण, मध्यम वर्ग और निम्न जाति के लोग मेरे संक्षिप्त व्याख्यानों की विस्तृत व्याख्या को इस प्रकार जान लें, तो यह उनके कल्याण और दीर्घकालिक कल्याण के लिए होगा।

सारिपुत्त, यदि समस्त विश्व, अपने मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों और ब्राह्मणों सहित, मेरे संक्षिप्त व्याख्यानों की विस्तृत व्याख्या को इस प्रकार जान ले, तो यह उनके कल्याण और दीर्घकालिक भलाई के लिए होगा।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.5बहुधातुका सुत्त(115)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन के उपवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। वहीं से भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "जो भी भय, दुर्भाग्य और खतरे उत्पन्न होते हैं, वे सब मूर्खों के कारण होते हैं, बुद्धिमानों के कारण नहीं। इसलिए भिक्षुओं, मूर्ख ही भय, दुर्भाग्य और खतरों से घिरे रहते हैं। अतः भिक्षुओं, बुद्धिमान जिज्ञासु बनने के लिए आपको इस प्रकार साधना करनी चाहिए।"

यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से पूछा, 'पूज्यवर, सही ढंग से कहें तो एक ज्ञानी भिक्षु जिज्ञासु कैसे बनता है?'

'आनंद, जब भिक्षु तत्वों, लोकों, आश्रित उत्पत्ति और संभव एवं असंभव के ज्ञान में निपुण हो जाता है, तब वह जिज्ञासु बन जाता है।'

'आदरणीय महोदय, आपने सही कहा है कि बुद्धिमान भिक्षु प्रकृति के नियमों में कैसे निपुण होता है?'

आनंद, अठारह तत्व हैं। ये हैं आँख, रूप और आँख की चेतना; कान, ध्वनि और कान की चेतना; नाक, सुगंध और नाक की चेतना; जीभ, स्वाद और जीभ की चेतना; शरीर, स्पर्श और शरीर की चेतना; मन, विचार और मन की चेतना। आनंद, ये अठारह तत्व हैं, जब भिक्षु इन्हें जान और देख लेता है, तो वह तत्वों में निपुण हो जाता है।

'आदरणीय महोदय, क्या कोई और विधि है जिसके माध्यम से भिक्षु तत्वों में निपुण हो जाता है?'

'इसकी एक विधि है। भिक्षु पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और चेतना जैसे छह तत्वों में निपुण हो जाता है। आनंद, ये छह तत्व हैं, जब भिक्षु इन्हें जानता और देखता है, और सही ढंग से इनका उच्चारण करता है, तो वह तत्वों में निपुण हो जाता है।'

'आदरणीय महोदय, क्या कोई और विधि है जिसके माध्यम से भिक्षु तत्वों में निपुण हो जाता है?'

'इसकी एक विधि है। ये छह तत्व सुख, दुख, आनंद, दुःख, समभाव और तमस के हैं। जब भिक्षु इन्हें जान और देख लेता है, और सही ढंग से इनका उच्चारण करता है, तो वह इन तत्वों में निपुण हो जाता है।'

'आदरणीय महोदय, क्या कोई और विधि है जिसके माध्यम से भिक्षु तत्वों में निपुण हो जाता है?'

'इसकी एक विधि है। ये छह तत्व हैं: कामुकता, अनासक्ति, क्रोध, क्रोधहीनता, पीड़ा और पीड़ा न पहुँचाना। जब भिक्षु इन्हें जान और देख लेता है, और सही ढंग से इनका उच्चारण करता है, तो वह इन तत्वों में निपुण हो जाता है।'

'आदरणीय महोदय, क्या कोई और विधि है जिसके माध्यम से भिक्षु तत्वों में निपुण हो जाता है?'

'इसमें एक विधि है। ये तीन तत्व हैं, कामुकता, भौतिकता और अभौतिकता। जब भिक्षु इन्हें जान और देख लेता है, और सही ढंग से इनका उच्चारण करता है, तो वह तत्वों में निपुण हो जाता है।'

'आदरणीय महोदय, क्या कोई और विधि है जिसके माध्यम से भिक्षु तत्वों में निपुण हो जाता है?'

'इसमें एक विधि है। ये दो तत्व हैं, जैसे कि संयुक्त और असंयुक्त तत्व। जब भिक्षु इन्हें जानता और देखता है, और सही ढंग से इनका उच्चारण करता है, तो वह तत्वों में निपुण हो जाता है।'

'आदरणीय महोदय, आपने सही कहा है कि भिक्षु लोकों में कितना कुशल होता है?'

'आनंद, ये छह आंतरिक और बाह्य क्षेत्र हैं: आँख और रूप, कान और ध्वनियाँ, नाक और गंध, जीभ और स्वाद, शरीर और स्पर्श तथा मन और विचार। जब भिक्षु इन्हें जानता और देखता है, और सही ढंग से इनका वर्णन करता है, तो वह इन क्षेत्रों में निपुण हो जाता है।'

'आदरणीय महोदय, आपने सही कहा है कि भिक्षु आश्रित उत्पत्ति में कैसे चतुर हो सकता है?'

आनंद, भिक्षु जानता है, जब यह मौजूद होता है, तो यह घटित होता है, जब यह उत्पन्न होता है, तो यह उत्पन्न होता है। जब यह मौजूद नहीं होता, तो यह नहीं घटित होता, जब यह समाप्त हो जाता है, तो यह समाप्त हो जाता है। जैसे अज्ञान से संकल्प उत्पन्न होते हैं, संकल्पों से चेतना उत्पन्न होती है, चेतना से नाम और पदार्थ उत्पन्न होते हैं। नाम और पदार्थ से छह लोक उत्पन्न होते हैं, छह लोकों से संपर्क उत्पन्न होता है और संपर्क से भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। भावनाओं से तृष्णा उत्पन्न होती है, तृष्णा से आलिंगन उत्पन्न होता है, आलिंगन से अस्तित्व उत्पन्न होता है और अस्तित्व से जन्म उत्पन्न होता है। जन्म से क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार अप्रियता का संपूर्ण समूह उत्पन्न होता है। अज्ञान के समाप्त होने पर संकल्प समाप्त हो जाते हैं, संकल्पों के समाप्त होने पर चेतना समाप्त हो जाती है, चेतना के समाप्त होने पर नाम और पदार्थ समाप्त हो जाते हैं। नाम और पदार्थ के समाप्त होने पर छह लोक समाप्त हो जाते हैं, छह लोकों के समाप्त होने पर संपर्क समाप्त हो जाता है। संपर्क के समाप्त होने पर भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं, भावनाओं के समाप्त होने पर तृष्णा समाप्त हो जाती है, तृष्णा के समाप्त होने पर आलिंगन समाप्त हो जाता है। धारण का त्याग होने पर अस्तित्व का त्याग हो जाता है, होने का त्याग होने पर जन्म का त्याग हो जाता है और जन्म के त्याग होने पर क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और कष्ट का त्याग हो जाता है। इस प्रकार अप्रियता का संपूर्ण समूह समाप्त हो जाता है। जब भिक्षु इसे जान और देख लेता है, और इसे सही ढंग से कहता है, तो वह आश्रित उत्पत्ति में निपुण हो जाता है।

'आदरणीय महोदय, आपने बिल्कुल सही कहा है कि भिक्षु संभव और असंभव दोनों में कितना कुशल होता है।'

आनंद, भिक्षु जानता है, यह असंभव है कि सही दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति किसी भी संकल्प को स्थायी मान ले।
यह संभव है कि एक साधारण व्यक्ति किसी संकल्प को स्थायी मान ले। यह असंभव है कि सही दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति किसी संकल्प को सुखद मान ले।
यह संभव है कि एक साधारण व्यक्ति किसी संकल्प को सुखद मान ले। यह असंभव है कि सही दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति किसी विचार को अपना मान ले।
यह संभव है कि एक साधारण व्यक्ति किसी विचार को अपना मान ले।
यह असंभव है कि सही दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति अपनी माता का प्राण छीन ले। यह संभव है कि एक साधारण व्यक्ति अपनी माता का प्राण छीन ले।
यह असंभव है कि सही दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति अपने पिता का प्राण छीन ले।
यह संभव है कि एक साधारण व्यक्ति अपने पिता का प्राण छीन ले।
यह असंभव है कि सही दृष्टि प्राप्त करने वाला व्यक्ति दूषित मन से तथागत के शरीर को पीड़ा पहुंचाए।
यह संभव है कि एक साधारण व्यक्ति दूषित मन से तथागत के शरीर को पीड़ा पहुंचाए।
यह असंभव है कि सही दृष्टिकोण प्राप्त करने वाला व्यक्ति समुदाय में फूट डाले।
यह संभव है कि एक साधारण व्यक्ति समुदाय में फूट डाले।
यह असंभव है कि सही दृष्टिकोण प्राप्त करने वाला व्यक्ति किसी दूसरे गुरु के पास जाए।
यह संभव है कि एक साधारण व्यक्ति किसी दूसरे गुरु के पास जाए।
यह असंभव है कि दो सच्चे प्रबुद्ध व्यक्ति एक ही समय में एक ही संसार तत्व में जन्म लें।
यह संभव है कि एक ही समय में एक ही संसार तत्व में एक ही सच्चे प्रबुद्ध व्यक्ति का जन्म हो।
यह असंभव है कि दो सार्वभौम सम्राट एक ही समय में एक ही संसार तत्व में जन्म लें।
यह संभव है कि एक ही समय में एक ही संसार तत्व में एक सार्वभौम सम्राट का जन्म हो।
यह असंभव है कि एक स्त्री पूर्णतः सच्चे प्रबुद्ध व्यक्ति हो।
यह संभव है कि एक पुरुष पूर्णतः सच्चे प्रबुद्ध व्यक्ति हो।

यह असंभव है कि एक स्त्री सार्वभौम सम्राट हो।
यह संभव है कि एक पुरुष सार्वभौम सम्राट हो।
यह असंभव है कि एक स्त्री देवताओं की रानी हो।
यह संभव है कि एक पुरुष देवताओं का राजा हो।
यह असंभव है कि कोई स्त्री मृत्यु की रानी हो।
यह संभव है कि कोई पुरुष मृत्यु का राजा हो।
यह असंभव है कि कोई स्त्री ब्रह्मा हो।
यह संभव है कि कोई पुरुष ब्रह्मा हो।
यह असंभव है कि शारीरिक दुराचार से सुखद फल प्राप्त हों।
यह संभव है कि शारीरिक दुराचार से अप्रिय फल प्राप्त हों।
यह असंभव है कि मौखिक दुराचार या मानसिक दुराचार से सुखद परिणाम प्राप्त हों।
यह संभव है कि मौखिक दुराचार या मानसिक दुराचार से अप्रिय परिणाम प्राप्त हों।
यह असंभव है कि शारीरिक सुचारु आचरण से अप्रिय परिणाम प्राप्त हों।
यह संभव है कि शारीरिक सुचारु आचरण से सुखद परिणाम प्राप्त हों।
यह असंभव है कि मौखिक सुचार या मानसिक सुराचार से अप्रिय परिणाम प्राप्त हों।
यह संभव है कि मौखिक सुचार या मानसिक सुराचार से सुखद परिणाम प्राप्त हों।
यह असंभव है कि शारीरिक दुराचार करने वाला व्यक्ति मृत्यु के बाद स्वर्ग या उच्चतर अवस्था में जन्म ले।
यह संभव है कि शारीरिक दुराचार करने वाला व्यक्ति मृत्यु के बाद नरक या निम्नतर अवस्था में जन्म ले।
यह असंभव है कि मौखिक और मानसिक रूप से दुराचार करने वाला व्यक्ति, उस दुराचार के कारण, मृत्यु के बाद स्वर्ग में उच्चतर अवस्था में जन्म ले।
यह संभव है कि मौखिक और मानसिक रूप से दुराचार करने वाला व्यक्ति, उस दुराचार के कारण, मृत्यु के बाद नरक में निम्नतर अवस्था में जन्म ले।
यह असंभव है कि शारीरिक रूप से सुचारित व्यक्ति, उस दुराचार के कारण, मृत्यु के बाद नरक में निम्नतर अवस्था में जन्म ले।
यह संभव है कि शारीरिक रूप से सुचारित व्यक्ति, उस दुराचार के कारण, मृत्यु के बाद स्वर्ग में उच्चतर अवस्था में जन्म ले।
यह असंभव है कि मौखिक और मानसिक रूप से सुचारित व्यक्ति, उस दुराचार के कारण, मृत्यु के बाद नरक में निम्नतर अवस्था में जन्म ले।
यह संभव है कि मौखिक और मानसिक रूप से सुचारित व्यक्ति, उस दुराचार के कारण, मृत्यु के बाद स्वर्ग में उच्चतर अवस्था में जन्म ले।
तब पूज्य आनंद ने कहा, 'यह अद्भुत है, पूज्यवर। इस प्रवचन का नाम क्या है?'

'आनंद, इसे अनेक तत्वों पर प्रवचन कहो, या चतुर्भुज चक्र कहो, या शिक्षा का दर्पण कहो, या अमरता का ढोल कहो, या युद्ध में महान विजय कहो।'

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.6इसिगिली सुत्त(116)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने ऐसा सुना है:

एक बार भगवान राजगृह के पास इसिगिली पर्वत पर निवास कर रहे थे। तब उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "हे भिक्षुओं!" उन भिक्षुओं ने सहमति जताते हुए उत्तर दिया, "भंते (आदरणीय महोदय)।" तब उन्होंने आगे कहा:

"क्या आप भिक्षुओं को यह वेभारा पर्वत दिखाई देता है?"

"हां, भंते।"

"हे भिक्षुओं, इस वेभरा पर्वत का एक और नाम था, एक और पदनाम था। क्या आप भिक्षुओं, इस पांडव पर्वत को देख पा रहे हैं?"

"हां, भंते।"

"हे भिक्षुओं, इस पांडव पर्वत का एक और नाम था, एक और पदनाम था। क्या आप भिक्षुओं को यह वेपुल्ला पर्वत दिखाई देता है?"

"हां, भंते।"

"भिक्षुओं, इस वेपुल्ला पर्वत का एक और नाम था, एक और पदनाम था। क्या आप भिक्षु इस गिज्जकुटा पर्वत को देख रहे हैं?"

"हां, भंते।"

"भिक्षुओं, इस गिज्जाकुटा पर्वत का एक और नाम था, एक और पदनाम। क्या आप भिक्षु इस इसिगिली पर्वत को देख रहे हैं?"

"हां, भंते।"

"यह इस इसिगिली पर्वत का नाम है, यही इसका विशिष्ट नाम है। अतीत में, हे भिक्षुओं, पाँच सौ पच्चेकबुद्ध1 इस इसिगिली पर्वत पर लंबे समय तक रहे। पर्वत में प्रवेश करते समय वे दिखाई देते थे, लेकिन एक बार प्रवेश कर जाने के बाद वे अदृश्य हो जाते थे। यह देखकर लोगों ने कहा: 'यह पर्वत इन ऋषियों (इसिगिलती) को निगल जाता है'; इसलिए इसका नाम इसिगिली पड़ा।"

"मैं तुम्हें पच्चेकबुद्धों के नाम बताऊंगा, भिक्षुओं। मैं पच्चेकबुद्धों के नाम प्रकट करूंगा, भिक्षुओं। सुनो, ध्यान से सुनो, मैं बोलूंगा।"

"जी हां, भंते," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

उस परम पूज्य ने कहा:

"अरिट्ठा, 2 भिक्षु, एक पचेकबुद्ध थे जो इस इसिगिली पर्वत पर लंबे समय तक रहते थे, उपरित्था... तगारसिखी... यासस्सी... सुदस्साना... पियादस्सी... गांधार... पिंडोला... उपसभा... निथा... तथा... सुतव... भवित्त, भिक्षुओं, एक पचेकबुद्ध थे जो इस इसिगिली पर्वत पर लंबे समय तक रहते थे।

i. "उन सर्वोच्च प्राणियों3 के नाम, जो दुःख और इच्छा से मुक्त हैं, जिन्होंने अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त कर ली है,4 और जिन्होंने व्यक्तिगत रूप से ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जो मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं, मैं उनका नाम बताता हूँ। मेरी बात सुनो:

द्वितीय. "अरिट्ठ, उपरिट्ठ, तगारसिखी, यासासी, सुदस्साना, पियादस्सी प्रबुद्ध।5 गांधार, पिंडोला और उपसभा, निथा, तथा, सुतव, भावितत्त।

iii. "शुम्भा, सुभा, मेथुला, अत्थामा, और फिर मेघा, अनिघा, सुदथा पच्चेकबुद्ध हैं जिनकी (पुनर्जीवन की) इच्छा नष्ट हो गई है। महान शक्ति के हिंगु और हिंगा।"

iv. "दो ऋषि जलि6 और अट्ठाका, फिर कोसल, प्रबुद्ध, फिर सुबाहु, उपनेमिसा, नेमीसा, संतचित्त, सक्का, तथा, विरजा और पंडिता।

वी. "काला, उपकला, विजिता और जिता, अंगा और पंगा और गुतिज्जिता। पासी ने अशुद्धियों को दूर किया, दुख की जड़। अपराजिता, मारा की शक्ति की विजेता।

vi. "सत्ता, पावट्टा, सरभंगा, लोमहंस, उचांगमाया, असिता, अनासव। मनोमाया और बंधुमा, गर्व का नाश करने वाले; तदाधिमुत्त, विमला और केतुमा।

सातवीं. "केतुंबरगा और मातंगा, अरिया। फिर अकुता और अकुतागमब्यमका। सुमंगला, दबबिला, सुप्पतिथिता, असायहा, खेमाभिरता, और सोरता।

viii. "दुरन्नय, संघ, और उच्चय, और फिर परम शक्ति वाले ऋषि सयाह। आनंद, नंदा, उपनंद, बारह पच्चेकबुद्ध, 7 भारद्वाज अपने अंतिम शरीर को धारण किए हुए। 8

नौ. "बोधि, महानमा, और फिर उत्तरा; केसी, सिखी, सुंदरा, और भारद्वाज। तिस्सा, उपतिस्सा, उपसिदारी, बनने के बंधनों को नष्ट करने वाली, और सिदारी, लालसा को नष्ट करने वाली।

x. "मंगल कामवासना से मुक्त पच्चेकबुद्ध थे, उषाभ दुख के फँसाने वाले मूल को काट डालने वाले थे। उपनिता निर्वाण की अवस्था प्राप्त करने वाले थे, उपोसथ, सुंदर और सच्चनामा थे।"

xi. "जेता, जयंत, पदुमा, और उप्पला; पदुमुत्तारा, रक्खिता, और पब्बता। मनत्थाधा, शोभिता, वातरगा, और पच्चेकबुद्ध कान्हा अच्छी तरह से मन में मुक्त हैं।

xii. "ये और अन्य महान शक्ति वाले पच्चेकबुद्ध हैं जिनकी पुनर्जन्म की इच्छाएँ नष्ट हो गई हैं। असीम सद्‌गुणों वाले इन महान ऋषियों को प्रणाम करें जिन्होंने सभी आसक्तियों से परे जाकर परिनिर्वाण प्राप्त किया है।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 12.7महाचत्तारिसका सुत्त(117)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा, "भिक्षुओं, मैं तुम्हें श्रेष्ठ सही एकाग्रता, उसके आधार और आवश्यक शर्तों के साथ सिखाऊंगा। सुनो और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "हे भिक्षुओं, श्रेष्ठ सही एकाग्रता और उसके सहायक तत्व एवं आवश्यक शर्तें क्या हैं? मन की कोई भी एकाग्रता, जो इन सात कारकों से सुसज्जित हो—सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास और सही जागरूकता—श्रेष्ठ सही एकाग्रता और उसके सहायक तत्व एवं आवश्यक शर्तें कहलाती है।"

[1] "उनमें, सही दृष्टिकोण ही अग्रणी है। और सही दृष्टिकोण अग्रणी कैसे है? व्यक्ति गलत दृष्टिकोण को गलत और सही दृष्टिकोण को सही के रूप में पहचानता है। यही उसका सही दृष्टिकोण है। और गलत दृष्टिकोण क्या है? 'कुछ भी दिया नहीं जाता, कुछ भी अर्पित नहीं किया जाता, कुछ भी बलिदान नहीं किया जाता। अच्छे या बुरे कर्मों का कोई फल या परिणाम नहीं है। न यह संसार है, न परलोक है, न माता है, न पिता है, न स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी हैं; न कोई पुरोहित या ध्यानी हैं जो सही मार्ग पर चलते हुए और सही अभ्यास करते हुए, इस संसार और परलोक को प्रत्यक्ष रूप से जानने और अनुभव करने के बाद उसका प्रचार करते हैं।' यही गलत दृष्टिकोण है।"

और सही दृष्टिकोण क्या है? मैं तुमसे कहता हूँ, सही दृष्टिकोण दो प्रकार का होता है: एक सही दृष्टिकोण जिसमें आसंजन (असव) होते हैं, जो पुण्य का पक्ष लेते हैं, जिसके परिणामस्वरूप (सफलता के) प्राप्त होते हैं; और दूसरा श्रेष्ठ सही दृष्टिकोण, जो आसंजन रहित, पारलौकिक और मार्ग का एक कारक होता है।

और वह सही दृष्टिकोण क्या है जो फलदायी हो, पुण्य का पक्ष ले और प्राप्ति का कारण बने? 'जो दिया जाता है, जो अर्पित किया जाता है, जो बलिदान किया जाता है, सब कुछ है। अच्छे और बुरे कर्मों के फल और परिणाम होते हैं। यह संसार है और परलोक है। माता-पिता हैं। स्वतः पुनर्जन्म लेने वाले प्राणी हैं; पुरोहित और ध्यानमग्न हैं जो सही मार्ग पर चलते हुए और सही अभ्यास करते हुए, स्वयं इस संसार और परलोक को जानने और अनुभव करने के बाद इसकी घोषणा करते हैं।' यही वह सही दृष्टिकोण है जो फलदायी हो, पुण्य का पक्ष ले और प्राप्ति का कारण बने।

और वह सही दृष्टिकोण क्या है जो अशुद्धियों से रहित, अलौकिक और मार्ग का एक कारक है? विवेक, विवेक की क्षमता, विवेक की शक्ति, गुणों का विश्लेषण जो जागृति का कारक है, और सही दृष्टिकोण का मार्ग कारक है उस व्यक्ति का जो श्रेष्ठ मार्ग पर चल रहा है, जिसका मन श्रेष्ठ है, जिसका मन अशुद्धियों से मुक्त है, जो पूर्णतः श्रेष्ठ मार्ग से जुड़ा हुआ है। यही वह सही दृष्टिकोण है जो अशुद्धियों से रहित, अलौकिक और मार्ग का एक कारक है।

गलत दृष्टिकोण को त्यागकर सही दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास करना ही सही प्रयास है। गलत दृष्टिकोण को त्यागकर सही दृष्टिकोण अपनाने और उसमें बने रहने के प्रति सचेत रहना ही सही जागरूकता है। इस प्रकार ये तीनों गुण—सही दृष्टिकोण, सही प्रयास और सही जागरूकता—सही दृष्टिकोण के इर्द-गिर्द घूमते हैं।

[2] "उनमें, सही दृष्टिकोण अग्रणी है। और सही दृष्टिकोण अग्रणी कैसे है? गलत संकल्प को गलत संकल्प के रूप में और सही संकल्प को सही संकल्प के रूप में पहचाना जाता है। और गलत संकल्प क्या है? कामुकता, द्वेष, और हानि पहुँचाने के संकल्प में होना। यही गलत संकल्प है।"

और सही संकल्प क्या है? मैं तुमसे कहता हूँ, सही संकल्प दो प्रकार का होता है: एक सही संकल्प जिसमें सकारात्मक परिणाम होते हैं, जो पुण्य का पक्ष लेता है और फल प्राप्ति में परिणत होता है; और दूसरा श्रेष्ठ सही संकल्प, जो नकारात्मक परिणामों से रहित, अलौकिक और मार्ग का एक कारक होता है।

और वह सही संकल्प क्या है जो फलदायी हो, पुण्य का पक्ष ले और लाभ दिलाए? त्याग का, द्वेष से मुक्ति का और अहिंसा का संकल्प लेना। यही वह सही संकल्प है जो फलदायी हो, पुण्य का पक्ष ले और लाभ दिलाए।

और वह सही संकल्प क्या है जो अशुद्धियों से रहित, अलौकिक और मार्ग का अभिन्न अंग है? वह चिंतन, निर्देशित चिंतन, संकल्प, (मानसिक) स्थिरता, एकाग्रता, केंद्रित जागरूकता और वाक्पटुता, जो श्रेष्ठ मार्ग पर अग्रसर है, जिसका मन श्रेष्ठ है, जिसका मन अशुद्धियों से रहित है, जो पूर्णतः श्रेष्ठ मार्ग में विलीन है। यही वह सही संकल्प है जो अशुद्धियों से रहित, अलौकिक और मार्ग का अभिन्न अंग है।

गलत संकल्प को त्यागकर सही संकल्प में प्रवेश करने का प्रयास करना ही सही प्रयास है। गलत संकल्प को त्यागकर सही संकल्प में प्रवेश करने और उसमें बने रहने के प्रति सचेत रहना ही सही जागरूकता है। इस प्रकार ये तीनों गुण—सही दृष्टिकोण, सही प्रयास और सही जागरूकता—सही संकल्प के इर्द-गिर्द घूमते हैं।

[3] "उनमें, सही दृष्टिकोण अग्रणी है। और सही दृष्टिकोण अग्रणी कैसे है? गलत बात को गलत बात और सही बात को सही बात के रूप में पहचाना जाता है। और गलत बात क्या है? झूठ बोलना, फूट डालना, अपशब्द बोलना और व्यर्थ की बातें करना। यही गलत बात है।"

और सही वाणी क्या है? मैं तुमसे कहता हूँ, सही वाणी दो प्रकार की होती है: एक सही वाणी जिसमें सकारात्मक गुण होते हैं, जो पुण्य का पक्ष लेती है और फल प्राप्ति में सहायक होती है; और दूसरी श्रेष्ठ सही वाणी होती है, जो नकारात्मक गुणों से रहित, उत्कृष्ट और मार्ग का एक कारक होती है।

और वह सही वाणी क्या है जो सकारात्मक परिणाम देती है, गुणों का समर्थन करती है और लाभ दिलाती है? झूठ बोलने से, फूट डालने वाली चुगली करने से, अपशब्द बोलने से और व्यर्थ की बातों से बचना। यही वह सही वाणी है जो सकारात्मक परिणाम देती है, गुणों का समर्थन करती है और लाभ दिलाती है।

और वह सही वाणी क्या है जो अशुद्धियों से रहित, श्रेष्ठ और मार्ग का एक अंग है? श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाले, श्रेष्ठ मन वाले, अशुद्धियों से रहित और श्रेष्ठ मार्ग में पूर्णतः विलीन रहने वाले व्यक्ति द्वारा चारों प्रकार के कुकर्मों से बचना, संयम बरतना और उनसे दूर रहना। यही वह सही वाणी है जो अशुद्धियों से रहित, श्रेष्ठ और मार्ग का एक अंग है।

"मनुष्य गलत वाणी को त्यागकर सही वाणी में प्रवेश करने का प्रयास करता है: यही उसका सही प्रयास है। मनुष्य गलत वाणी को त्यागकर सही वाणी में प्रवेश करने और उसमें बने रहने के प्रति सचेत रहता है: यही उसकी सही जागरूकता है। इस प्रकार ये तीनों गुण—सही दृष्टिकोण, सही प्रयास और सही जागरूकता—सही वाणी के इर्द-गिर्द घूमते हैं।"

[4] "उनमें, सही दृष्टिकोण सर्वोपरि है। और सही दृष्टिकोण सर्वोपरि कैसे है? व्यक्ति गलत कर्म को गलत कर्म और सही कर्म को सही कर्म के रूप में पहचानता है। और गलत कर्म क्या है? हत्या करना, बिना माँगे लेना, अवैध यौन संबंध। यह गलत कर्म है।"

और सही कर्म क्या है? मैं तुमसे कहता हूँ, सही कर्म दो प्रकार के होते हैं: एक सही कर्म जिसमें अच्छे फल होते हैं, जो पुण्य का पक्ष लेते हैं और फल प्राप्ति में परिणत होते हैं; और दूसरा श्रेष्ठ सही कर्म, जो अच्छे फलों से रहित, श्रेष्ठ और मार्ग का एक कारक होता है।

और वह सही कर्म क्या है जिससे लाभ होता है, जो पुण्य का पक्ष लेता है और जिससे समृद्धि प्राप्त होती है? हत्या से बचना, बिना माँगे वस्तुएँ लेने से बचना और अवैध यौन संबंध से बचना। यही वह सही कर्म है जिससे लाभ होता है, जो पुण्य का पक्ष लेता है और जिससे समृद्धि प्राप्त होती है।

और वह सही कर्म क्या है जो दोषरहित, श्रेष्ठ और मार्ग का एक कारक है? श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाले, श्रेष्ठ मन वाले, दोषरहित मन वाले और श्रेष्ठ मार्ग में पूर्णतः विलीन रहने वाले व्यक्ति द्वारा शरीर के तीनों प्रकार के दुराचारों से परहेज करना, उनसे बचना और उनका त्याग करना। यही वह सही कर्म है जो दोषरहित, श्रेष्ठ और मार्ग का एक कारक है।

"मनुष्य गलत कर्म को त्यागकर सही कर्म में संलग्न होने का प्रयास करता है: यही उसका सही प्रयास है। मनुष्य गलत कर्म को त्यागकर सही कर्म में संलग्न होने और उसमें बने रहने के प्रति सचेत रहता है: यही उसकी सही जागरूकता है। इस प्रकार ये तीनों गुण—सही दृष्टिकोण, सही प्रयास और सही जागरूकता—सही कर्म के इर्द-गिर्द घूमते हैं।"

[5] "उनमें, सही दृष्टिकोण अग्रणी है। और सही दृष्टिकोण अग्रणी कैसे है? गलत आजीविका को गलत आजीविका और सही आजीविका को सही आजीविका के रूप में पहचाना जाता है। और गलत आजीविका क्या है? षड्यंत्र रचना, बहकाना, संकेत देना, नीचा दिखाना और लाभ के लिए लाभ की खोज करना। यही गलत आजीविका है।"

और सही आजीविका क्या है? मैं तुमसे कहता हूँ, सही आजीविका दो प्रकार की होती है: एक सही आजीविका जिसमें कर्मों का फल मिलता है, जो पुण्य का पक्ष लेती है और फल प्राप्ति में परिणत होती है; और दूसरी श्रेष्ठ सही आजीविका है, जो कर्मों से रहित, अलौकिक और मार्ग का एक कारक है।

और वह सही आजीविका क्या है जो फलदायी हो, पुण्य का पक्ष ले और लाभ दिलाए? एक उदाहरण है जब श्रेष्ठ पुरुषों का शिष्य गलत आजीविका को त्यागकर सही आजीविका अपनाता है। यही वह सही आजीविका है जो फलदायी हो, पुण्य का पक्ष ले और लाभ दिलाए।

और वह सही आजीविका क्या है जो अशुद्धियों से मुक्त हो, श्रेष्ठ हो, मार्ग का एक कारक हो? श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वाले, श्रेष्ठ मन वाले, अशुद्धियों से मुक्त, और श्रेष्ठ मार्ग में पूर्णतः विलीन रहने वाले व्यक्ति द्वारा अशुद्ध आजीविका से परहेज करना, उससे बचना, उसका त्याग करना। यही वह सही आजीविका है जो अशुद्धियों से मुक्त हो, श्रेष्ठ हो, और मार्ग का एक कारक हो।

"गलत आजीविका को त्यागकर सही आजीविका अपनाने का प्रयास करना ही सही प्रयास है। गलत आजीविका को त्यागकर सही आजीविका में प्रवेश करने और उसमें बने रहने के प्रति सचेत रहना ही सही जागरूकता है। इस प्रकार ये तीनों गुण—सही दृष्टिकोण, सही प्रयास और सही जागरूकता—सही आजीविका के इर्द-गिर्द घूमते हैं।"

"इनमें सही दृष्टि सर्वोपरि है। और सही दृष्टि सर्वोपरि कैसे है? सही दृष्टि वाले व्यक्ति में सही संकल्प उत्पन्न होता है। सही संकल्प वाले व्यक्ति में सही वाणी उत्पन्न होती है। सही वाणी वाले व्यक्ति में सही कर्म उत्पन्न होते हैं... सही कर्म वाले व्यक्ति में सही आजीविका उत्पन्न होती है... सही आजीविका वाले व्यक्ति में सही प्रयास उत्पन्न होते हैं... सही प्रयास वाले व्यक्ति में सही जागरूकता उत्पन्न होती है... सही जागरूकता वाले व्यक्ति में सही एकाग्रता उत्पन्न होती है... सही एकाग्रता वाले व्यक्ति में सही ज्ञान उत्पन्न होता है... सही ज्ञान वाले व्यक्ति में सही मुक्ति उत्पन्न होती है। इस प्रकार, शिक्षार्थी आठ गुणों से संपन्न होता है, और अरहंत दस गुणों से।"

इनमें सही दृष्टि सर्वोपरि है। और सही दृष्टि सर्वोपरि कैसे है? सही दृष्टि वाले व्यक्ति में गलत दृष्टि का नाश हो जाता है। गलत दृष्टि से उत्पन्न होने वाले अनेक बुरे और अकुशल गुण भी समाप्त हो जाते हैं, जबकि सही दृष्टि से उत्पन्न होने वाले अनेक कुशल गुण अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाते हैं। सही संकल्प वाले व्यक्ति में गलत संकल्प का नाश हो जाता है... सही वाणी वाले व्यक्ति में गलत वाणी का नाश हो जाता है... सही कर्म वाले व्यक्ति में गलत कर्म का नाश हो जाता है... सही आजीविका वाले व्यक्ति में गलत आजीविका का नाश हो जाता है... सही प्रयास वाले व्यक्ति में गलत प्रयास का नाश हो जाता है... सही जागरूकता वाले व्यक्ति में गलत जागरूकता का नाश हो जाता है... सही एकाग्रता वाले व्यक्ति में गलत एकाग्रता का नाश हो जाता है... सही ज्ञान वाले व्यक्ति में गलत ज्ञान का नाश हो जाता है... सही मुक्ति वाले व्यक्ति में गलत मुक्ति का नाश हो जाता है। गलत मुक्ति से उत्पन्न होने वाले अनेक बुरे और अकुशल गुण भी समाप्त हो जाते हैं, जबकि सही मुक्ति से उत्पन्न होने वाले अनेक कुशल गुण अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाते हैं। उनके विकास की पराकाष्ठा।

"इस प्रकार, भिक्षुओं, बीस कारक कुशलता का समर्थन करते हैं, और बीस कारक अकुशलता का।

"चालीस महान देवताओं पर यह धम्म प्रवचन शुरू हो चुका है और इसे किसी भी ध्यानमग्न, पुजारी, देव, मार, ब्रह्मा या संसार में किसी भी व्यक्ति द्वारा रोका नहीं जा सकता है।"

यदि कोई पुरोहित या ध्यानमग्न व्यक्ति यह सोचे कि इस महान चालीस धम्म प्रवचन की निंदा और अस्वीकृति की जानी चाहिए, तो उसके इस कथन के दस वैध निहितार्थ हैं जो उसे अभी और यहीं निंदा करने का आधार बन सकते हैं। यदि वह सही दृष्टिकोण की निंदा करता है, तो वह गलत दृष्टिकोण वाले किसी भी पुरोहित और ध्यानमग्न व्यक्ति का सम्मान करेगा; वह उनकी प्रशंसा करेगा। यदि वह सही संकल्प... सही वाणी... सही कर्म... सही आजीविका... सही प्रयास... सही जागरूकता... सही एकाग्रता... सही ज्ञान की निंदा करता है... यदि वह सही मुक्ति की निंदा करता है, तो वह गलत मुक्ति वाले किसी भी पुरोहित और ध्यानमग्न व्यक्ति का सम्मान करेगा; वह उनकी प्रशंसा करेगा। यदि कोई पुरोहित या ध्यानमग्न व्यक्ति यह सोचे कि इस महान चालीस धम्म प्रवचन की निंदा और अस्वीकृति की जानी चाहिए, तो उसके इस कथन के ये दस वैध निहितार्थ हैं जो उसे अभी और यहीं निंदा करने का आधार बन सकते हैं।

"यहाँ तक कि ओक्काला के वे शिक्षक वस्सा और भान्या भी, जो अकारण, अक्रिया और अअस्तित्व के समर्थक थे, यह नहीं सोचते कि चालीस महान संतों पर दिए गए इस धम्म प्रवचन की निंदा और अस्वीकृति की जानी चाहिए। ऐसा क्यों? आलोचना, विरोध और निंदा के भय से।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.8अनापानसति सुत्त(118)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

अंतर्वस्तु

1सांस लेने और छोड़ने पर ध्यान केंद्रित करना
2संदर्भ के चार फ्रेम
3जागृति के सात कारक

4स्पष्ट ज्ञान और मुक्ति

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में पूर्वी मठ में, मिगारा की माता के महल में, कई प्रसिद्ध वरिष्ठ शिष्यों के साथ ठहरे हुए थे—जिनमें पूज्य सारिपुत्त, पूज्य महा मोग्गलाना, पूज्य महा कस्सपा, पूज्य महा कच्चना, पूज्य महा कोत्थिता, पूज्य महा कप्पिना, पूज्य महा चुंडा, पूज्य रेवता, पूज्य आनंद और अन्य प्रसिद्ध वरिष्ठ शिष्य शामिल थे। उस अवसर पर वरिष्ठ भिक्षु अध्यापन और उपदेश दे रहे थे। कुछ वरिष्ठ भिक्षु दस भिक्षुओं को, कुछ बीस भिक्षुओं को, कुछ तीस भिक्षुओं को और कुछ चालीस भिक्षुओं को अध्यापन और उपदेश दे रहे थे। नए भिक्षु, वरिष्ठ भिक्षुओं द्वारा अध्यापन और उपदेश प्राप्त कर रहे थे और क्रमिक रूप से महान गुणों को प्राप्त कर रहे थे।

उस अवसर पर—पंद्रहवें उपोसथ दिवस पर, पवाराना समारोह की पूर्णिमा की रात को—भगवान बुद्ध भिक्षुओं के समुदाय से घिरे खुले स्थान पर विराजमान थे। मौन बैठे भिक्षुओं के समुदाय को देखते हुए उन्होंने उन्हें संबोधित किया:

भिक्षुओं, मैं इस साधना से संतुष्ट हूँ। मैं हृदय से इस साधना से संतुष्ट हूँ। इसलिए अभी तक अप्राप्त, अभी तक अछूते और अभी तक अप्राप्त को प्राप्त करने के लिए और भी अधिक दृढ़ता जगाएँ। मैं वर्षा ऋतु के चौथे माह, 'श्वेत जल लिली' माह में यहीं सावत्थी में रहूँगा।

ग्रामीण इलाकों के भिक्षुओं ने सुना, “भगवान बुद्ध वर्षा ऋतु के चौथे माह, यानी श्वेत कमल माह के दौरान, सावत्थी में ही निवास करेंगे।” इसलिए वे भगवान बुद्ध के दर्शन के लिए सावत्थी की ओर चल पड़े।

फिर वरिष्ठ भिक्षुओं ने नए भिक्षुओं को और भी गहनता से शिक्षा और मार्गदर्शन दिया। कुछ वरिष्ठ भिक्षु दस भिक्षुओं को, कुछ बीस भिक्षुओं को, कुछ तीस भिक्षुओं को और कुछ चालीस भिक्षुओं को शिक्षा और मार्गदर्शन दे रहे थे। वरिष्ठ भिक्षुओं से शिक्षा और मार्गदर्शन प्राप्त करते हुए नए भिक्षु क्रमिक रूप से महान गुणों को समझने लगे।

उस अवसर पर—वर्षा माह के चौथे महीने की पूर्णिमा की पंद्रहवीं उपोसथ तिथि को—भगवान बुद्ध भिक्षुओं के समुदाय से घिरे खुले स्थान पर विराजमान थे। मौन बैठे भिक्षुओं के समुदाय को देखते हुए उन्होंने उन्हें संबोधित किया:

भिक्षुओं, यह सभा व्यर्थ की बातों से मुक्त है, निरर्थक चर्चाओं से रहित है और शुद्ध हृदय से स्थापित है: यही है यह भिक्षु समुदाय, यही है यह सभा। यह ऐसी सभा है जो दान के योग्य है, आतिथ्य सत्कार के योग्य है, भेंटों के योग्य है, आदर के योग्य है, संसार के लिए अतुलनीय पुण्य का क्षेत्र है: यही है यह भिक्षु समुदाय, यही है यह सभा। यह ऐसी सभा है जिसमें दिया गया छोटा सा दान महान हो जाता है, और बड़ा दान और भी महान हो जाता है: यही है यह भिक्षु समुदाय, यही है यह सभा। संसार में ऐसी सभा दुर्लभ है: यही है यह भिक्षु समुदाय, यही है यह सभा — ऐसी सभा जिसे देखने के लिए मीलों की यात्रा करना, भोजन सामग्री साथ ले जाना भी सार्थक होगा।

"इस भिक्षु समुदाय में ऐसे भिक्षु हैं जो अरहंत हैं, जिनके मानसिक विकार समाप्त हो चुके हैं, जिन्होंने पूर्णता प्राप्त कर ली है, कार्य पूरा कर लिया है, बोझ उतार दिया है, सच्चे लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है, अस्तित्व के बंधन को तोड़ दिया है, और जो सही ज्ञान के माध्यम से मुक्त हो गए हैं: इस भिक्षु समुदाय में ऐसे ही भिक्षु हैं।"

"इस भिक्षु समुदाय में ऐसे भिक्षु हैं जो पांच निम्न बंधनों के क्षीण होने के साथ ही [शुद्ध लोकों में] पुनर्जन्म लेने के पात्र हैं, वहां पूर्णतः मुक्त हो जाएंगे, और उस लोक से फिर कभी वापस नहीं लौटेंगे: इस भिक्षु समुदाय में ऐसे ही भिक्षु हैं।"

"इस भिक्षु समुदाय में ऐसे भिक्षु हैं जो [पहले] तीन बंधनों के क्षीण होने और कामवासना, घृणा और भ्रम के कम होने के साथ, एक बार फिर इस दुनिया में लौटने वाले भिक्षु हैं, जो केवल एक बार फिर इस दुनिया में लौटकर तनाव का अंत करेंगे: इस भिक्षु समुदाय में ऐसे ही भिक्षु हैं।"

"इस भिक्षु समुदाय में ऐसे भिक्षु हैं जो [पहले] तीन बंधनों के क्षीण होने के साथ, जलधारा के विजेता, दृढ़, फिर कभी दुख की अवस्थाओं के लिए नियत नहीं, आत्म-जागरूकता की ओर अग्रसर हैं: इस भिक्षु समुदाय में ऐसे ही भिक्षु हैं।"

"इस भिक्षु समुदाय में ऐसे भिक्षु हैं जो चार संदर्भों के विकास के लिए समर्पित रहते हैं... चार सही प्रयास... शक्ति के चार आधार... पांच इंद्रियां... पांच शक्तियां... जागृति के सात कारक... महान अष्टांगिक मार्ग: ऐसे ही भिक्षु इस भिक्षु समुदाय में हैं।"

"इस भिक्षु समुदाय में ऐसे भिक्षु हैं जो सद्भावना, करुणा, सराहना, समभाव, शरीर की अशुद्धता और अस्थिरता के विकास के लिए समर्पित रहते हैं: इस भिक्षु समुदाय में ऐसे ही भिक्षु हैं।"

"भिक्षुओं के इस समुदाय में ऐसे भिक्षु भी हैं जो सांस लेने और छोड़ने पर ध्यान केंद्रित करने के लिए समर्पित रहते हैं।"

श्वास लेने और छोड़ने की जागरूकता, जब विकसित और अभ्यास की जाती है, तो बहुत फलदायी और लाभदायक होती है। श्वास लेने और छोड़ने की जागरूकता, जब विकसित और अभ्यास की जाती है, तो चारों संदर्भों को उनकी पराकाष्ठा तक पहुंचाती है। चारों संदर्भों को विकसित और अभ्यास करने से जागृति के सात कारक अपनी पराकाष्ठा तक पहुंच जाते हैं। जागृति के सात कारकों को विकसित और अभ्यास करने से स्पष्ट ज्ञान और मुक्ति अपनी पराकाष्ठा तक पहुंच जाती है।

सांस लेने और छोड़ने पर ध्यान केंद्रित करना

"अब, सांस लेने और छोड़ने की जागरूकता को किस प्रकार विकसित और अभ्यास किया जाए ताकि यह महान फलदायी और महान लाभदायी हो?"

"ऐसा मामला है जहां एक भिक्षु जंगल में, किसी पेड़ की छाया में, या किसी खाली इमारत में जाकर, अपने पैरों को क्रॉस करके बैठ जाता है, अपने शरीर को सीधा रखता है, और ध्यान को सर्वोपरि रखता है।1 वह हमेशा सचेत रहते हुए सांस लेता है; सचेत रहते हुए सांस छोड़ता है।"

"[1] लंबी साँस लेते हुए, वह समझता है, 'मैं लंबी साँस ले रहा हूँ'; या लंबी साँस छोड़ते हुए, वह समझता है, 'मैं लंबी साँस छोड़ रहा हूँ।' [2] या छोटी साँस लेते हुए, वह समझता है, 'मैं छोटी साँस ले रहा हूँ'; या छोटी साँस छोड़ते हुए, वह समझता है, 'मैं छोटी साँस छोड़ रहा हूँ।' [3] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं पूरे शरीर के प्रति संवेदनशील होकर साँस लूँगा।' [4] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं पूरे शरीर के प्रति संवेदनशील होकर साँस छोड़ूँगा।' [3] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं शारीरिक हलचल को शांत करते हुए साँस लूँगा।'

"[5] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं परमानंद के प्रति संवेदनशील होकर सांस लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं परमानंद के प्रति संवेदनशील होकर सांस छोड़ूंगा।' [6] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं सुख के प्रति संवेदनशील होकर सांस लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं सुख के प्रति संवेदनशील होकर सांस छोड़ूंगा।' [7] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मानसिक कल्पना के प्रति संवेदनशील होकर सांस लूंगा।' [8] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मानसिक कल्पना को शांत करते हुए सांस लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मानसिक कल्पना को शांत करते हुए सांस छोड़ूंगा।'

"[9] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन के प्रति संवेदनशील होकर श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन के प्रति संवेदनशील होकर श्वास छोड़ूंगा।' [10] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को संतुष्ट करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को संतुष्ट करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' [11] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को स्थिर करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को स्थिर करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' [12] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को मुक्त करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं मन को मुक्त करते हुए श्वास छोड़ूंगा।'5

"[13] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं अस्थिरता पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं अस्थिरता पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' [14] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं वैराग्य [शाब्दिक रूप से, लुप्त होने] पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं वैराग्य पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' [15] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं समाप्ति पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं समाप्ति पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास छोड़ूंगा।' [16] वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा।' वह स्वयं को प्रशिक्षित करता है, 'मैं त्याग पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास छोड़ूंगा।'

"इस प्रकार से सांस लेने और छोड़ने की जागरूकता विकसित और अभ्यास की जाती है ताकि यह बहुत फलदायी और बहुत लाभदायक हो।"

संदर्भ के चार फ्रेम

और सांस लेने और छोड़ने की जागरूकता को किस प्रकार विकसित और जारी रखा जाता है ताकि संदर्भ के चारों ढाँचे अपनी चरम सीमा तक पहुँच सकें?

"[1] जब भी कोई भिक्षु लंबी साँस लेते हुए यह महसूस करे, 'मैं लंबी साँस ले रहा हूँ'; या लंबी साँस छोड़ते हुए यह महसूस करे, 'मैं लंबी साँस छोड़ रहा हूँ'; या छोटी साँस लेते हुए यह महसूस करे, 'मैं छोटी साँस ले रहा हूँ'; या छोटी साँस छोड़ते हुए यह महसूस करे, 'मैं छोटी साँस छोड़ रहा हूँ'; और स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करे, 'मैं पूरे शरीर के प्रति संवेदनशील होकर साँस लूँगा...और...छोड़ूँगा'; स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करे, 'मैं शरीर की हलचल को शांत करते हुए साँस लूँगा...और...छोड़ूँगा': उस अवसर पर भिक्षु शरीर पर ही एकाग्र रहता है—उत्साही, सतर्क और सचेत—संसार के प्रति लोभ और व्याकुलता को त्यागकर। मैं तुम्हें बताता हूँ, भिक्षुओं, कि यह—अंदर-बाहर की साँस—शरीरों में एक शरीर के रूप में वर्गीकृत है, यही कारण है कि उस अवसर पर भिक्षु शरीर पर ही एकाग्र रहता है—उत्साही, सतर्क और सचेत—संसार के प्रति लोभ और व्याकुलता को त्यागकर।"

"[2] जब भी कोई भिक्षु स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करता है, 'मैं आनंद के प्रति संवेदनशील होकर श्वास लूंगा...और...बाँझ छोड़ूंगा'; स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करता है, 'मैं सुख के प्रति संवेदनशील होकर श्वास लूंगा...और...बाँझ छोड़ूंगा'; स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करता है, 'मैं मानसिक कल्पनाओं के प्रति संवेदनशील होकर श्वास लूंगा...और...बाँझ छोड़ूंगा'; स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करता है, 'मैं मानसिक कल्पनाओं को शांत करते हुए श्वास लूंगा...और...बाँझ छोड़ूंगा': उस अवसर पर भिक्षु स्वयं भावनाओं पर केंद्रित रहता है—उत्साही, सतर्क और सचेत—संसार के संदर्भ में लोभ और दुःख को त्यागकर। मैं तुम्हें बताता हूँ, भिक्षुओं, कि यह—श्वासों के भीतर और बाहर पर सावधानीपूर्वक ध्यान देना—भावनाओं में से एक भावना के रूप में वर्गीकृत किया गया है,6 यही कारण है कि उस अवसर पर भिक्षु स्वयं भावनाओं पर केंद्रित रहता है—उत्साही, सतर्क और सचेत—संसार के संदर्भ में लोभ और दुःख को त्यागकर।"

"[3] जब भी कोई भिक्षु स्वयं को 'मैं मन के प्रति सजग होकर श्वास लूँगा...और...निःश्वास छोड़ूँगा' का अभ्यास कराता है; स्वयं को 'मैं मन को संतुष्ट करते हुए श्वास लूँगा...और...निःश्वास छोड़ूँगा' का अभ्यास कराता है; स्वयं को 'मन को स्थिर करते हुए श्वास लूँगा...और...निःश्वास छोड़ूँगा' का अभ्यास कराता है; स्वयं को 'मन को मुक्त करते हुए श्वास लूँगा...और...निःश्वास छोड़ूँगा' का अभ्यास कराता है: उस अवसर पर भिक्षु मन पर ही एकाग्र रहता है—उत्साही, सतर्क और सचेत—संसार के संदर्भ में लोभ और व्यथा

को त्याग कर। मैं यह नहीं कहता कि विमुख सचेतनता और सतर्कता की कमी वाले व्यक्ति में श्वास लेने और छोड़ने की सचेतनता होती है, यही कारण है कि उस अवसर पर भिक्षु मन पर ही एकाग्र रहता है—उत्साही, सतर्क और सचेत—संसार के संदर्भ में लोभ और व्यथा को त्याग कर।"

"[4] जब भी कोई भिक्षु स्वयं को 'मैं अस्थिरता पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा...और...निःश्वास लूंगा...' का अभ्यास करता है; स्वयं को 'मैं वैराग्य पर ध्यान केंद्रित करते हुए श्वास लूंगा...और...निःश्वास लूंगा...' का अभ्यास करता है; स्वयं को 'निःश्वास लूंगा...और...निःश्वास लूंगा...और...निःश्वास लूंगा...और...निःश्वास लूंगा...और...निःश्वास लूंगा...' का अभ्यास करता है; उस अवसर पर भिक्षु स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों - उत्साही, सतर्क और सचेत - पर एकाग्र रहता है, संसार के संदर्भ में लोभ और दुःख को त्याग देता है। जो विवेक से लोभ और दुःख के त्याग को देखता है, वह समभाव से सावधानीपूर्वक देखता है, यही कारण है कि उस अवसर पर भिक्षु स्वयं में मौजूद मानसिक गुणों - उत्साही, सतर्क और सचेत - पर एकाग्र रहता है, संसार के संदर्भ में लोभ और दुःख को त्याग देता है।"

"इस प्रकार सांस लेने और छोड़ने की जागरूकता विकसित और जारी रखी जाती है ताकि संदर्भ के चारों ढांचों को उनकी पराकाष्ठा तक पहुंचाया जा सके।"

जागृति के सात कारक

और जागृति के सात कारकों को उनकी पराकाष्ठा तक पहुंचाने के लिए संदर्भ के चार ढांचों को किस प्रकार विकसित और अनुसरण किया जाता है?

"[1] जब भी भिक्षु शरीर पर ही एकाग्रचित्त, सजग और सचेत रहता है, संसार के प्रति लोभ और व्याकुलता को त्यागकर, उस समय उसकी चेतना स्थिर और अक्षुण्ण होती है। जब उसकी चेतना स्थिर और अक्षुण्ण होती है, तब जागृति के कारक के रूप में चेतना जागृत हो जाती है। वह इसका विकास करता है, और उसके लिए यह अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाती है।"

"[2] इस प्रकार सचेत रहते हुए, वह उस गुण का विवेकपूर्वक अध्ययन, विश्लेषण और बोध करता है। जब वह इस प्रकार सचेत रहते हुए, उस गुण का विवेकपूर्वक अध्ययन, विश्लेषण और बोध करता है, तब जागृति के कारक के रूप में गुणों का विश्लेषण जागृत हो जाता है। वह इसे विकसित करता है, और उसके लिए यह अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है।"

"[3] जो व्यक्ति उस गुण का विवेकपूर्वक अध्ययन, विश्लेषण और बोध करता है, उसमें निरंतर दृढ़ता जागृत होती है। जब उस गुण का विवेकपूर्वक अध्ययन, विश्लेषण और बोध करने वाले व्यक्ति में निरंतर दृढ़ता जागृत होती है, तो जागृति के कारक के रूप में दृढ़ता जागृत हो जाती है। वह इसे विकसित करता है, और उसके लिए यह अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाती है।"

"[4] जिसकी दृढ़ता जागृत होती है, उसमें एक अशाब्दिक परमानंद उत्पन्न होता है। जब जिसकी दृढ़ता जागृत होती है, उसमें अशाब्दिक परमानंद उत्पन्न होता है, तब जागृति के कारक के रूप में परमानंद जागृत हो जाता है। वह इसे विकसित करता है, और उसके लिए यह अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है।"

"[5] हृदय से समाधिग्रस्त व्यक्ति का शरीर और मन दोनों शांत हो जाते हैं। जब हृदय से समाधिग्रस्त भिक्षु का शरीर और मन शांत हो जाते हैं, तब जागृति के कारक के रूप में शांति जागृत होती है। वह इसे विकसित करता है, और उसके लिए यह अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाती है।"

"[6] जो व्यक्ति शांत है—जिसका शरीर शांत है—उसका मन एकाग्र हो जाता है। जब शांत शरीर वाले व्यक्ति का मन एकाग्र हो जाता है, तो जागृति के कारक के रूप में एकाग्रता जागृत हो जाती है। वह इसे विकसित करता है, और उसके लिए यह अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है।"

"[7] वह समभाव से एकाग्र मन का ध्यानपूर्वक अवलोकन करता है। जब वह समभाव से एकाग्र मन का ध्यानपूर्वक अवलोकन करता है, तो जागृति के कारक के रूप में समभाव जागृत हो जाता है। वह इसे विकसित करता है, और उसके लिए यह अपने विकास की पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है।"

(इसी प्रकार अन्य तीन संदर्भों के साथ भी: भावनाएँ, मन और मानसिक गुण।)

"इस प्रकार चार संदर्भों को विकसित और अनुसरण किया जाता है ताकि जागृति के सात कारकों को उनकी पराकाष्ठा तक पहुंचाया जा सके।"

स्पष्ट ज्ञान और मुक्ति

और ज्ञान की पूर्णता और मुक्ति प्राप्त करने के लिए जागृति के सात कारकों को किस प्रकार विकसित और अभ्यास किया जाता है? एक उदाहरण है जहाँ एक भिक्षु एकांत, वैराग्य और विश्राम पर आधारित जागृति के कारक के रूप में ध्यान विकसित करता है, जिसके परिणामस्वरूप त्याग होता है। वह गुणों के विश्लेषण को जागृति के कारक के रूप में विकसित करता है... दृढ़ता को जागृति के कारक के रूप में... परमानंद को जागृति के कारक के रूप में... शांति को जागृति के कारक के रूप में... एकाग्रता को जागृति के कारक के रूप में... समभाव को जागृति के कारक के रूप में, जो एकांत, वैराग्य और विश्राम पर आधारित है, जिसके परिणामस्वरूप त्याग होता है।

"इस प्रकार जागृति के सात कारकों को विकसित और अनुसरण किया जाता है ताकि स्पष्ट ज्ञान प्राप्त हो सके और उनकी पराकाष्ठा तक पहुंचा जा सके।"
भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.9कायगतसति सुत्त(119)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

अंतर्वस्तु
1चार ध्यान
2मन की परिपूर्णता
3उच्चतर ज्ञान का द्वार
4(दस लाभ)

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। उस समय भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, बड़ी संख्या में भिक्षु सभा भवन में एकत्रित हुए थे, तभी यह चर्चा शुरू हुई: "हे मित्रों, यह कितना अद्भुत है! कितना आश्चर्यजनक है! — जब शरीर में लीन होकर ध्यान का विकास और अभ्यास किया जाता है, तो भगवान बुद्ध, जो सर्वज्ञानी और प्रत्यक्षदर्शी हैं — जो सही मायने में आत्मजागृत हैं — उसके अनुसार यह कितना फलदायी और कितना लाभकारी है।" और यह चर्चा किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंची।

फिर दोपहर ढलते ही भगवान बुद्ध एकांतवास से बाहर आए और सभा भवन में पहुँचकर पहले से तैयार आसन पर बैठ गए। वहाँ बैठकर उन्होंने भिक्षुओं से पूछा, "आप यहाँ किस विषय पर एकत्रित हुए हैं? और वह कौन सी चर्चा थी जिसका कोई निष्कर्ष नहीं निकला?"

"हे भगवान, अभी-अभी भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद, हम सभा भवन में एकत्रित हुए, तभी यह चर्चा उठी: 'क्या यह अद्भुत नहीं है, मित्रों! क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है! - शरीर में लीन होकर की जाने वाली जागरूकता, जब विकसित और अभ्यास की जाती है, तो ज्ञानी, प्रत्यक्षदर्शी भगवान - सही मायने में आत्मजागृत योग्य व्यक्ति - के अनुसार यह कितना फलदायी और कितना लाभकारी है।' यह वह चर्चा थी जो बिना किसी निष्कर्ष पर पहुंचे ही थी कि भगवान भगवान वहां आ गए।"

[भगवान बुद्ध ने कहा:] "और शरीर में लीन होकर ध्यान कैसे विकसित किया जाता है, इसका अभ्यास कैसे किया जाता है, ताकि यह महान फलदायी और महान लाभदायी हो?"

"ऐसा भी मामला है जहां एक भिक्षु - जंगल में, किसी पेड़ की छाया में, या किसी खाली इमारत में जाकर - अपने पैरों को क्रॉस करके बैठ जाता है, अपने शरीर को सीधा रखता है और ध्यान को सर्वोपरि रखता है। वह हमेशा सचेत रहते हुए सांस लेता है; सचेत रहते हुए सांस छोड़ता है।"

लंबी सांस लेते समय, वह महसूस करता है कि वह लंबी सांस ले रहा है; या लंबी सांस छोड़ते समय, वह महसूस करता है कि वह लंबी सांस छोड़ रहा है। या छोटी सांस लेते समय, वह महसूस करता है कि वह छोटी सांस ले रहा है; या छोटी सांस छोड़ते समय, वह महसूस करता है कि वह छोटी सांस छोड़ रहा है। वह अपने आप को पूरे शरीर के प्रति संवेदनशील होकर सांस लेने और पूरे शरीर के प्रति संवेदनशील होकर सांस छोड़ने का अभ्यास कराता है। वह अपने आप को शरीर की शांत क्रियाओं (सांस) को अंदर लेने और शांत क्रियाओं को बाहर छोड़ने का अभ्यास कराता है। और जब वह इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी यादें और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्याग के साथ ही उसका मन भीतरी रूप से एकत्रित और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित करता है।

इसके अलावा, चलते समय भिक्षु को यह अहसास होता है कि वह चल रहा है। खड़े होते समय उसे यह अहसास होता है कि वह खड़ा है। बैठते समय उसे यह अहसास होता है कि वह बैठा है। लेटते समय उसे यह अहसास होता है कि वह लेटा है। या उसका शरीर जिस भी स्थिति में हो, वह उसे इसी प्रकार अहसास करता है। और जब वह इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी स्मृतियाँ और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्यागने से उसका मन अंतर्मन में एकाग्र और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित करता है।

इसके अलावा, आगे बढ़ते और लौटते समय, वह पूरी तरह सचेत रहता है; आगे देखते और पीछे हटते समय... अपने अंगों को मोड़ते और फैलाते समय... अपना बाहरी वस्त्र, ऊपरी वस्त्र और कटोरा उठाते समय... खाते, पीते, चबाते और स्वाद लेते समय... पेशाब और शौच करते समय... चलते, खड़े होते, बैठते, सोते, जागते, बोलते और चुप रहते समय, वह पूरी तरह सचेत रहता है। और जब वह इस

प्रकार सजग, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी यादें और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्यागने से उसका मन भीतर ही भीतर एकाग्र और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित करता है।

इसके अलावा, भिक्षु इस शरीर पर पैरों के तलवों से ऊपर तक, सिर के मुकुट से नीचे तक, त्वचा से घिरे और विभिन्न प्रकार की अशुद्ध चीजों से भरे हुए, चिंतन करते हैं: 'इस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, फुफ्फुस, तिल्ली, फेफड़े, बड़ी आंत, छोटी आंत, गला, मल, पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, त्वचा का तेल, लार, बलगम, जोड़ों में तरल पदार्थ और मूत्र हैं।' जैसे कि दोनों सिरों पर खुले हुए एक बोरे में कई प्रकार के अनाज भरे हों—गेहूं, चावल, मूंग, राजमा, तिल, छिले हुए चावल—और एक अच्छी दृष्टि वाला व्यक्ति उसे बाहर निकालते हुए सोचे, 'यह गेहूं है। यह चावल है। ये मूंग हैं। ये राजमा हैं। ये तिल हैं। यह छिले हुए चावल हैं'; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर पर, पैरों के तलवों से ऊपर तक, सिर के मुकुट से नीचे तक, त्वचा से घिरे और विभिन्न प्रकार की अशुद्धियों से भरे हुए, चिंतन करता है: 'इस शरीर में सिर के बाल, शरीर के बाल, नाखून, दांत, त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दे, हृदय, यकृत, फुफ्फुस, तिल्ली, फेफड़े, बड़ी आंत, छोटी आंत, गला, मल, पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, वसा, आंसू, त्वचा का तेल, लार, बलगम, जोड़ों का द्रव और मूत्र हैं।' और जब वह इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी स्मृतियाँ और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्यागने से उसका मन आंतरिक रूप से एकाग्र और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर ध्यान विकसित करता है।

इसके अलावा, भिक्षु इस शरीर का चिंतन करता है—चाहे वह किसी भी स्थिति में हो, किसी भी अवस्था में हो—इसके गुणों के संदर्भ में: 'इस शरीर में पृथ्वी, द्रव, अग्नि और वायु का गुण है।' जिस प्रकार एक कुशल कसाई या उसका शागिर्द गाय को मारकर चौराहे पर बैठकर उसके टुकड़े करता है, उसी प्रकार भिक्षु इस शरीर का चिंतन करता है—चाहे वह किसी भी स्थिति में हो, किसी भी अवस्था में हो—इसके गुणों के संदर्भ में: 'इस शरीर में पृथ्वी, द्रव, अग्नि और वायु का गुण है।' और जब वह इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी स्मृतियाँ और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्यागने से उसका मन अंतर्मन में एकाग्र और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित करता है।

इसके अलावा, मानो वह किसी श्मशान में फेंके गए शव को देखे - एक दिन, दो दिन, तीन दिन पहले मृत - फूला हुआ, पीला पड़ा हुआ और सड़ता हुआ, वह इसे इसी शरीर पर लागू करता है, 'यह शरीर भी: यही इसका स्वभाव है, यही इसका भविष्य है, यही इसका अपरिहार्य भाग्य है'...

या फिर, मानो वह किसी श्मशान भूमि में फेंके गए शव को देखे, जिसे कौवे, गिद्ध, बाज, कुत्ते, लकड़बग्घे और अन्य कई जीव नोंच रहे हों... मांस और खून से सना हुआ कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ... खून से सना हुआ मांसहीन कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ... बिना मांस या खून का कंकाल, नसों से जुड़ा हुआ... हड्डियाँ अपनी नसों से अलग होकर चारों दिशाओं में बिखरी हुई हैं - यहाँ हाथ की हड्डी, वहाँ पैर की हड्डी, यहाँ पिंडली की हड्डी, वहाँ जांघ की हड्डी, यहाँ कूल्हे की हड्डी, वहाँ रीढ़ की हड्डी, यहाँ पसली, वहाँ छाती की हड्डी, यहाँ कंधे की हड्डी, वहाँ गर्दन की हड्डी, यहाँ जबड़े की हड्डी, वहाँ दाँत, यहाँ खोपड़ी... हड्डियाँ सफेद हो गई हैं, कुछ-कुछ सीपियों के रंग जैसी... ढेर लगी हुई, एक साल से भी अधिक पुरानी... चूर्ण में परिवर्तितः वह इसे इसी शरीर पर लगाता है, 'यह शरीर भी: यही इसका स्वभाव है, यही इसका भविष्य है, यही इसका अपरिहार्य भाग्य है।'

और जब वह इस प्रकार सजग, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी स्मृतियाँ और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्यागने से उसका मन आंतरिक रूप से एकत्रित और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर ध्यान विकसित करता है।

चार ध्यान

इसके अलावा, कामुकता से पूर्णतः विमुख होकर, अकुशल मानसिक गुणों से विमुख होकर, वह प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ। वह इस शरीर को एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से व्याप्त करता है, उसे भर देता है। जैसे कोई कुशल स्नान विशेषज्ञ या उसका प्रशिक्षु पीतल के पात्र में स्नान पाउडर डालकर उसे गूंथता है और बार-बार पानी छिड़कता है, ताकि उसका स्नान पाउडर का गोला - संतृप्त, नमी से भरा, भीतर और बाहर से भीगा हुआ - फिर भी न टपके; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर को एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से व्याप्त करता है। उसके संपूर्ण शरीर का कोई भी भाग एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद से अछूता नहीं रहता। और जब वह इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी स्मृतियाँ और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्याग के साथ ही उसका मन अंतर्मन में एकत्रित और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। एक भिक्षु शरीर में लीन होकर किस प्रकार ध्यान विकसित करता है।

और इसके अलावा, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने से, वह दूसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। वह इस शरीर को शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। जैसे किसी झील में भीतर से ही जल निकलता रहता है, पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण से कोई प्रवाह नहीं होता, और आकाश से बार-बार भरपूर वर्षा होती रहती है, जिससे झील के भीतर से निकलने वाला ठंडा जल झील में

समा जाता है, उसे ठंडे पानी से भर देता है, झील का कोई भी भाग ठंडे पानी से अछूता नहीं रहता; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर को शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से भर देता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी भाग शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद से अछूता नहीं रहता। और जब वह इस प्रकार सचेत, उत्साही और... दृढ़ संकल्प के साथ, गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी स्मृतियों और संकल्पों को त्याग दिया जाता है, और उनके त्याग के साथ ही उनका मन आंतरिक रूप से एकाग्र और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर ध्यान विकसित करता है।

और इसके अलावा, जैसे-जैसे ध्यान की अवस्था समाप्त होती है, वह शांत, सचेत और सजग रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है, जिसके बारे में भगवान कहते हैं, 'शांत और सचेत रहते हुए, वह सुखद अवस्था में रहता है।' वह इस शरीर को परमानंद से रहित आनंद से परिपूर्ण कर देता है। जैसे कमल के तालाब में, कुछ कमल, जो जल में ही जन्म लेते और बढ़ते हैं, जल में ही डूबे रहते हैं और जल से बाहर निकले बिना ही फलते-फूलते हैं, जिससे वे अपनी जड़ों से लेकर शीर्ष तक शीतल जल से परिपूर्ण हो जाते हैं, और उन कमलों का कोई भी भाग शीतल जल से अछूता नहीं रह सकता; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु इस शरीर को परमानंद से रहित आनंद से परिपूर्ण कर देता है। उसके संपूर्ण शरीर का कोई भी भाग परमानंद से रहित आनंद से अछूता नहीं रहता। और जब वह इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी स्मृतियाँ और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्यागने से उसका मन अंतर्मन में एकाग्र और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित करता है।

और इसके अलावा, सुख और दुख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के विलीन होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: समभाव और जागरूकता की शुद्धता, न सुख न दुख। वह शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अपने शरीर को व्याप्त करते हुए बैठता है। जैसे कोई व्यक्ति सिर से पैर तक सफेद कपड़े से ढका बैठा हो ताकि उसके शरीर का कोई भी हिस्सा उससे अछूता न रहे; ठीक उसी प्रकार, भिक्षु शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अपने शरीर को व्याप्त करते हुए बैठता है। उसके पूरे शरीर का कोई भी हिस्सा शुद्ध, उज्ज्वल चेतना से अछूता नहीं रहता। और जब वह इस प्रकार सचेत, उत्साही और दृढ़ रहता है, तो गृहस्थ जीवन से संबंधित सभी स्मृतियाँ और संकल्प त्याग दिए जाते हैं, और उनके त्याग के साथ ही उसका मन अंतर्मन में एकत्रित और स्थिर हो जाता है, एकीकृत और केंद्रित हो जाता है। इस प्रकार एक भिक्षु शरीर में लीन होकर जागरूकता विकसित करता है।

मन की परिपूर्णता

भिक्षुओं, जो कोई भी शरीर में लीन होकर ध्यान का विकास और अभ्यास करता है, वह स्पष्ट ज्ञान की ओर अग्रसर सभी कुशल गुणों को समाहित कर लेता है। जिस प्रकार जो कोई भी विशाल सागर में अपनी चेतना व्याप्त करता है, वह सागर में बहने वाली सभी छोटी धाराओं को समाहित कर लेता है, उसी प्रकार जो कोई भी शरीर में लीन होकर ध्यान का विकास और अभ्यास करता है, वह स्पष्ट ज्ञान की ओर अग्रसर सभी कुशल गुणों को समाहित कर लेता है।

"जिस किसी में शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित नहीं होती, जिसका अनुसरण नहीं किया जाता, उसमें मारा प्रवेश कर जाती है, मारा अपना पैर जमा लेती है।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति गीली मिट्टी के ढेर में एक भारी पत्थर का गोला फेंकता है। भिक्षुओं, आपको क्या लगता है - क्या भारी पत्थर का गोला गीली मिट्टी के ढेर में प्रवेश कर पाएगा?

"हाँ भगवान।"

"इसी प्रकार, जिस किसी में भी शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित नहीं होती, जिसका अनुसरण नहीं किया जाता, उसमें मारा प्रवेश कर जाता है, मारा अपना पैर जमा लेता है।"

"अब मान लीजिए कि लकड़ी का एक सूखा, रसहीन टुकड़ा है, और एक आदमी एक लकड़ी का टुकड़ा लेकर आता है, यह सोचते हुए कि 'मैं आग जलाऊंगा। मैं गर्मी पैदा करूंगा।' आपको क्या लगता है - क्या वह लकड़ी के सूखे, रसहीन टुकड़े पर लकड़ी के टुकड़े को रगड़कर आग जला पाएगा और गर्मी पैदा कर पाएगा?"

"हाँ भगवान।"

"इसी प्रकार, जिस किसी में भी शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित नहीं होती, जिसका अनुसरण नहीं किया जाता, उसमें मारा प्रवेश कर जाता है, मारा अपना पैर जमा लेता है।"

"अब मान लीजिए कि एक स्टैंड पर एक खाली, खोखला पानी का बर्तन रखा है, और एक आदमी पानी का बोझ लेकर आता है। आपको क्या लगता है - क्या उसे अपना पानी रखने के लिए जगह मिलेगी?"

"हाँ भगवान।"

"इसी प्रकार, जिस किसी में भी शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित नहीं होती, जिसका अनुसरण नहीं किया जाता, उसमें मारा प्रवेश कर जाता है, मारा अपना पैर जमा लेता है।"

"जिस किसी में भी शरीर में लीन होकर ध्यान विकसित किया जाता है, उसका अभ्यास किया जाता है, उसमें 'मार' का कोई प्रवेश नहीं होता, कोई पकड़ नहीं बनती। मान लीजिए कि कोई व्यक्ति लकड़ी से बने दरवाजे के पैनल पर धागे की एक गेंद फेंके। आपको क्या लगता है - क्या धागे की वह हल्की गेंद लकड़ी से बने उस दरवाजे के पैनल में प्रवेश कर पाएगी?"

"नहीं, भगवान।"

"इसी प्रकार, जिस किसी में भी शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित की जाती है, उसका अनुसरण किया जाता है, उसमें मारा का कोई प्रवेश नहीं होता, मारा का कोई आधार नहीं बनता।"
"अब मान लीजिए कि लकड़ी का एक गीला, रसदार टुकड़ा है, और एक आदमी आग जलाने वाली लकड़ी लेकर आता है, यह सोचते हुए कि 'मैं आग जलाऊंगा। मैं गर्मी पैदा करूंगा।' आपको क्या लगता है - क्या वह गीली, रसदार लकड़ी के टुकड़े पर लकड़ी की ऊपरी लकड़ी रगड़कर आग जला पाएगा और गर्मी पैदा कर पाएगा?"
"नहीं, भगवान।"
"इसी प्रकार, जिस किसी में भी शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित की जाती है, उसका अनुसरण किया जाता है, उसमें मारा का कोई प्रवेश नहीं होता, मारा का कोई आधार नहीं बनता।"
"अब मान लीजिए कि एक स्टैंड पर पानी से भरा एक घड़ा रखा है, जिसमें कौवे भी पानी पी सकते हैं, और एक आदमी पानी का बोझ लेकर आता है। आपको क्या लगता है - क्या उसे अपना पानी रखने की जगह मिलेगी?"
"नहीं, भगवान।"
"इसी प्रकार, जिस किसी में भी शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित की जाती है, उसका अनुसरण किया जाता है, उसमें मारा का कोई प्रवेश नहीं होता, मारा का कोई आधार नहीं बनता।"
उच्चतर ज्ञान का द्वार
"जब कोई व्यक्ति शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित और उसका अभ्यास करता है, तो वह छह उच्च ज्ञानों में से जिस भी ज्ञान को जानने और अनुभव करने के लिए अपना मन लगाता है, वह अवसर मिलने पर उसे स्वयं देख सकता है।"
मान लीजिए कि एक स्टैंड पर पानी से लबालब भरा एक घड़ा रखा है, ताकि एक कौआ उसमें से पानी पी सके। यदि कोई बलवान व्यक्ति उसे किसी भी तरह से झुका दे, तो क्या पानी छलक जाएगा?
"हाँ भगवान।"
"इसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित और उसका अभ्यास करता है, तो वह छह उच्च ज्ञानों में से जिस भी ज्ञान को जानने और अनुभव करने के लिए अपना मन लगाता है, वह अवसर मिलने पर स्वयं उसका साक्षी बन सकता है।"
मान लीजिए एक आयताकार पानी का टैंक है - जो समतल जमीन पर रखा है, चारों ओर बांधों से घिरा है - और पानी से लबालब भरा है, जिससे एक कौआ भी पानी पी सकता है। यदि कोई बलवान व्यक्ति बांधों को कहीं से भी ढीला कर दे, तो क्या पानी बाहर छलक जाएगा?
"हाँ भगवान।"
"इसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित और उसका अभ्यास करता है, तो वह छह उच्च ज्ञानों में से जिस भी ज्ञान को जानने और अनुभव करने के लिए अपना मन लगाता है, वह अवसर मिलने पर स्वयं उसका साक्षी बन सकता है।"
"मान लीजिए कि एक रथ समतल भूमि पर चार चौराहों पर खड़ा है, जिसमें उत्कृष्ट नस्ल के घोड़े जुते हुए हैं और चाबुक तैयार रखे हैं, ताकि एक कुशल सारथी, जो घोड़ों को वश में करने का प्रशिक्षक हो, उस पर सवार होकर - अपने बाएं हाथ से लगाम और दाएं हाथ से चाबुक पकड़कर - अपनी इच्छानुसार किसी भी स्थान और किसी भी सड़क से आ-जा सके; उसी प्रकार, जब कोई व्यक्ति शरीर में लीन होकर सचेतनता विकसित और अभ्यास करता है, तो वह छह उच्च ज्ञानों में से जिस भी ज्ञान को जानने और अनुभव करने के लिए अपना मन लगाता है, वह अवसर मिलने पर स्वयं उसका साक्षी बन सकता है।"
(दस लाभ)
भिक्षुओं, जिस व्यक्ति में शरीर में लीन होकर सचेतनता का अभ्यास, विकास, अनुसरण, नियंत्रण का कार्य सौंपा जाना और उसे आधार बनाना, उसे सुदृढ़ करना, स्थिर करना, सुदृढ़ करना और भली-भांति संपन्न करना, उसके लिए दस लाभों की अपेक्षा की जा सकती है। वे दस लाभ कौन से हैं?
[1] "वह अप्रसन्नता और प्रसन्नता पर विजय प्राप्त करता है, और अप्रसन्नता उस पर विजय प्राप्त नहीं करती। वह उत्पन्न हुई किसी भी अप्रसन्नता पर विजयी रहता है।"
[2] "वह भय और दहशत पर विजय प्राप्त करता है, और भय और दहशत उस पर विजय प्राप्त नहीं कर पाते। वह उत्पन्न हुए किसी भी भय और दहशत पर विजयी रहता है।"
[3] "वह ठंड, गर्मी, भूख, प्यास, मक्खियों और मच्छरों के स्पर्श, हवा और धूप और रेंगने वाले जीवों के प्रति प्रतिरोधी है; अपमानजनक, चोट पहुँचाने वाली भाषा के प्रति; वह उस प्रकार का है जो शारीरिक भावनाओं को सहन कर सकता है जो उत्पन्न होने पर दर्दनाक, तेज, चुभने वाली, भयंकर, अरुचिकर, अप्रिय, घातक होती हैं।
[4] "वह इच्छा से, बिना किसी परेशानी या कठिनाई के, चारों ध्यान प्राप्त कर सकता है - उन्नत मानसिक अवस्थाएँ जो यहाँ और अभी में सुखद निवास प्रदान करती हैं।
[5] "वह अनेक अलौकिक शक्तियों का प्रयोग करता है। एक होकर वह अनेक हो जाता है; अनेक होकर वह एक हो जाता है। वह प्रकट होता है। वह लुप्त हो जाता है। वह दीवारों, प्राचीरों और पहाड़ों से ऐसे होकर गुजरता है मानो अंतरिक्ष में। वह पृथ्वी में ऐसे गोता लगाता है मानो वह जल हो। वह जल पर ऐसे चलता है मानो वह सूखी भूमि हो, बिना डूबे। पालथी मारकर वह पंखों वाले पक्षी की तरह

हवा में उड़ता है। अपने हाथ से वह सूर्य और चंद्रमा को भी स्पर्श करता है, जो इतने शक्तिशाली और बलवान हैं। वह अपने शरीर से ब्रह्म लोकों तक भी प्रभाव डालता है।"

[6] "वह दिव्य श्रवण तत्व के माध्यम से, जो शुद्ध और मानवीय से श्रेष्ठ है, दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनता है: दिव्य और मानवीय, चाहे पास हो या दूर।"

[7] वह अन्य प्राणियों, अन्य व्यक्तियों की चेतना को जानता है, क्योंकि उसने उसे अपनी चेतना से समाहित कर लिया है। वह जुनूनी मन को जुनूनी मन के रूप में और जुनून रहित मन को जुनून रहित मन के रूप में पहचानता है। वह घृणा से ग्रसित मन को घृणा से ग्रसित मन के रूप में और घृणा रहित मन को घृणा रहित मन के रूप में पहचानता है। वह भ्रम से ग्रसित मन को भ्रम से ग्रसित मन के रूप में और भ्रम रहित मन को भ्रम रहित मन के रूप में पहचानता है। वह सीमित मन को सीमित मन के रूप में और बिखरे हुए मन को बिखरे हुए मन के रूप में पहचानता है। वह विस्तारित मन को विस्तारित मन के रूप में और अविस्तारित मन को अविस्तारित मन के रूप में पहचानता है। वह उत्कृष्ट मन (जो उच्चतम स्तर पर नहीं है) को उत्कृष्ट मन के रूप में और अविस्तारित मन को अविस्तारित मन के रूप में पहचानता है। वह एकाग्र मन को एकाग्र मन के रूप में और असाध्य मन को असाध्य मन के रूप में पहचानता है। वह मुक्त मन को मुक्त मन के रूप में और अमुक्त मन को मुक्त मन के रूप में पहचानता है। मन एक अप्रकाशित मन के रूप में।

[8] "वह अपने अनेक पूर्व जन्मों (शाब्दिक रूप से: पिछले जन्मों) को याद करता है, अर्थात् एक जन्म, दो जन्म, तीन जन्म, चार, पाँच, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ, एक हज़ार, एक लाख, ब्रह्मांडीय संकुचन के अनेक युग, ब्रह्मांडीय विस्तार के अनेक युग, ब्रह्मांडीय संकुचन और विस्तार के अनेक युग, [स्मरण करते हुए], 'वहाँ मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर, मैं वहाँ पुनः उत्पन्न हुआ। वहाँ भी मेरा ऐसा नाम था, मैं ऐसे कुल का था, मेरा ऐसा रूप था। मेरा भोजन ऐसा था, सुख-दुख का ऐसा अनुभव था, मेरे जीवन का ऐसा अंत हुआ। उस अवस्था से विदा होकर, मैं यहाँ पुनः उत्पन्न हुआ।' इस प्रकार वह अपने अनेक पूर्व जन्मों को उनके स्वरूप और विवरणों में याद करता है।"

[9] "वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मनुष्य से श्रेष्ठ है, प्राणियों को मरते और फिर प्रकट होते हुए देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उनके निम्न और उच्चतर, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली होने का बोध करता है: 'ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के बुरे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा की, गलत विचार रखे और गलत विचारों के प्रभाव में कर्म किए - शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, अभाव के लोक में, बुरे गंतव्य में, निचले लोकों में, नरक में फिर प्रकट हुए हैं। परन्तु ये प्राणी - जो शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण से युक्त थे, जिन्होंने श्रेष्ठों की निंदा नहीं की, जिन्होंने सही विचार रखे और सही विचारों के प्रभाव में कर्म किए - शरीर के टूटने के साथ, मृत्यु के बाद, अच्छे गंतव्यों में, स्वर्गलोक में फिर प्रकट हुए हैं।' इस प्रकार—मानव दृष्टि से श्रेष्ठ और शुद्ध दिव्य दृष्टि के माध्यम से—वह प्राणियों को मरते और पुनर्जन्म लेते हुए देखता है, और वह उनके कर्मों के अनुसार उन्हें हीन और श्रेष्ठ, सुंदर और कुरूप, भाग्यशाली और दुर्भाग्यशाली के रूप में पहचानता है।

[10] "मानसिक अपशिष्टों के अंत के माध्यम से, वह अपशिष्ट-मुक्त जागरूकता-मुक्ति और विवेक-मुक्ति में रहता है, क्योंकि उसने उन्हें यहीं और अभी अपने लिए जान लिया है और प्रकट कर दिया है।

"भिक्षुओं, जिनके भीतर शरीर में लीन होकर सचेतनता का अभ्यास किया जाता है, उसे विकसित किया जाता है, उसका अनुसरण किया जाता है, उसकी बागडोर सौंपी जाती है और उसे आधार बनाया जाता है, उसे आधार प्रदान किया जाता है, उसे स्थिर किया जाता है, उसे सुदृढ़ किया जाता है और अच्छी तरह से संपन्न किया जाता है, उनसे इन दस लाभों की अपेक्षा की जा सकती है।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 12.10संखारुपट्टी सुत्त(120)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास करते थे। उन्होंने वहाँ से भिक्षुओं को संबोधित किया। 'भिक्षुओं, मैं आपको अभिकल्पनाओं की उत्पत्ति के बारे में बताऊंगा, ध्यानपूर्वक सुनो।' भिक्षुओं ने सहमति व्यक्त की और भगवान बुद्ध ने कहा: 'भिक्षुओं, भिक्षु विश्वास, सद्गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु के मन में यह विचार आता है, हे! मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय मुझे उच्च योद्धाओं के साथ जन्म लेना चाहिए। वह इसे मन में धारण करता है, इस पर

विचार केंद्रित करता है, और इस विचार को विकसित करता है। ये अभिकल्पनाएँ और यह एकाग्रता, विकसित होकर प्रचुर मात्रा में प्राप्त होने पर, वहाँ जन्म लेने में सहायक होती हैं। यही वहाँ जन्म लेने का मार्ग और विधि है।'

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु के मन में यह विचार आता है, हे! मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय, मुझे उच्च ब्राह्मणों, अर्थात् उच्च मध्यम वर्ग के साथ जन्म लेना चाहिए। वह इस विचार को मन में संजोता है, इस ओर चिंतन करता है, उस विचार और उन इरादों को विकसित करता है। वह चिंतन, विकसित होकर समृद्ध हो जाता है, जिससे वहाँ जन्म लेने में सहायता मिलती है। यही वहाँ जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु के मन में यह विचार आता है, हे! मृत्यु के बाद शरीर के विघटन के समय, मुझे चारों संरक्षक देवताओं के साथ दीर्घायु, सौंदर्य और अपार प्रसन्नता के साथ जन्म लेना चाहिए। वह इस विचार को मन में संजोता है, अपने चिंतन को इस ओर केंद्रित करता है, और उस विचार और उन इरादों को विकसित करता है। वह चिंतन, जो विकसित और समृद्ध हुआ है, संरक्षक देवताओं के साथ दीर्घायु, सौंदर्य और अपार प्रसन्नता के साथ जन्म लेने में सहायक होता है। यही वहाँ जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु के मन में यह विचार आता है, हे! मुझे तैंतीस देवताओं के साथ जन्म लेना चाहिए। यम देवताओं के साथ, सुखी देवताओं के साथ, सृजनशील देवताओं के साथ, और मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय दीर्घायु, सौंदर्य और अपार सुख के साथ। वह इसे मन में धारण करता है, इस पर विचार केंद्रित करता है, उस विचार और उन इरादों को विकसित करता है। वह इस तरह से विकसित और समृद्ध होकर जन्म लेता है, जिससे सृजनशील देवताओं के साथ दीर्घायु, सौंदर्य और अपार सुख प्राप्त होता है। यही वहां जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु को ज्ञान प्राप्त होता है कि सहसब्रह्म हजार संसारों पर आधिपत्य रखते हैं, वे दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत सुखदायक हैं। वे वहां जन्म लेने वालों पर आधिपत्य रखते हैं। जैसे कोई ज्ञानी व्यक्ति अपनी हथेली पर वृत्त बनाकर चिंतन करता है, उसी प्रकार सहसब्रह्म हजार संसारों पर आधिपत्य रखते हैं और वहां जन्म लेने वालों पर आधिपत्य रखते हैं। उन्हें यह विचार आता है, हे! मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय मुझे सहसब्रह्म के साथ जन्म लेना चाहिए। वे उस मन को धारण करते हैं, विचारों को उस ओर निर्देशित करते हैं, उस विचार और उन इरादों को विकसित करते हैं। वह स्थिर मन, विकसित और समृद्ध होकर, सहसब्रह्म के साथ जन्म लेने में सहायक होता है, जो हजार संसारों पर आधिपत्य रखते हैं, दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत सुखदायक हैं। यही वहां जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु ज्ञान प्राप्त करता है, "द्वि सहसा ब्रह्मा...रे... ति सहसा ब्रह्मा...रे... चतु सहसा ब्रह्मा...रे... पंच सहसा ब्रह्मा पंच हजार लोकों पर आधिपत्य रखते हैं, वे दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत सुखदायी हैं। वे वहां जन्म लेने वालों पर आधिपत्य रखते हैं।" जैसे कोई ज्ञानी व्यक्ति अपनी हथेली पर पांच वृत्त बनाकर चिंतन करता है, उसी प्रकार पंच सहसा ब्रह्मा हजार लोकों पर आधिपत्य रखते हैं और वहां जन्म लेने वालों पर आधिपत्य रखते हैं। उसे यह विचार आता है, "हे! मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय मुझे पंच सहसा ब्रह्मा के साथ जन्म लेना चाहिए।" वह उस विचार को धारण करता है, उस पर विचार केंद्रित करता है और उस विचार को विकसित करता है। वे इरादे और वह दृढ़ संकल्प, विकसित और समृद्ध होकर, पंच सहसा ब्रह्मा के साथ जन्म लेने में सहायक होते हैं, जो पंच सहसा ब्रह्मा हैं और पंच हजार प्रकार के विश्व तंत्रों पर आधिपत्य रखते हैं, साथ ही दीर्घायु, सौंदर्य और अत्यंत सुखदायक भी हैं। यही वहां जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु को ज्ञान प्राप्त होता है कि दस सहसा ब्रह्मा दस हजार प्रकार के संसारों पर आधिपत्य रखते हैं, वे दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत सुखदायक होते हैं। वे वहां जन्म लेने वालों पर आधिपत्य रखते हैं। जिस प्रकार पीले वस्त्र पर रखा आठ फलकों वाला उत्तम लेप रत्न चमकता है और प्रकाश फैलाता है, उसी प्रकार दस सहसा ब्रह्मा दस हजार प्रकार के संसारों पर आधिपत्य रखते हैं और वहां जन्म लेने वालों पर आधिपत्य रखते हैं। उनके मन में यह विचार आता है, हे! मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय मुझे दस सहसा ब्रह्मा के साथ जन्म लेना चाहिए। वे उस विचार को मन में धारण करते हैं, उस विचार को उस ओर निर्देशित करते हैं और उसे विकसित करते हैं। वे इरादे और वह दृढ़ता, विकसित और समृद्ध होकर, दस हजार प्रकार के विश्व तंत्रों पर आधिपत्य रखने वाले दस सहसा ब्रह्मा के साथ जन्म लेने में सहायक होती हैं, जो दीर्घायु, सौंदर्य और अत्यंत सुख से परिपूर्ण होते हैं। यही वहां जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होते हैं। भिक्षु को ज्ञान प्राप्त होता है कि शत सहसा ब्रह्मा, दीर्घायु, सौंदर्य और अत्यंत सुखदायकता से परिपूर्ण, एक लाख प्रकार के संसारों पर आधिपत्य रखते हैं। वे वहाँ जन्म लेने वालों पर आधिपत्य

रखते हैं। जैसे एक कुशल सुनार शुद्ध सोने को भट्टी में रखकर शुद्ध करता है और जब उसे नारंगी रंग के कंबल पर रखा जाता है तो वह प्रकाश और ऊष्मा विकीर्ण करता है, उसी प्रकार शत सहसा ब्रह्मा दस हजार प्रकार के संसारों पर आधिपत्य रखते हैं और वहाँ जन्म लेने वालों पर आधिपत्य रखते हैं। उन्हें यह आभास होता है, हे! मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय, मुझे शत सहसा ब्रह्मा के साथ जन्म लेना चाहिए। वह उस मन को धारण करता है, विचारों को उस ओर निर्देशित करता है और उस विचार को विकसित करता है। वे इरादे और वह दृढ़ता, विकसित होकर प्रबल हो जाने पर, शत सहसा ब्रह्मा के साथ जन्म लेने में सहायक होती हैं, जो एक लाख प्रकार के विश्व तंत्रों पर आधिपत्य रखते हैं, और दीर्घायु, सौंदर्य और अत्यंत सुख से परिपूर्ण होते हैं। यही वहां जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु को ज्ञान प्राप्त होता है कि असीम प्रकाश वाले देवता, दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत मनमोहक होते हैं। उसके मन में यह विचार आता है, हे! मुझे असीम प्रकाश वाले, दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत मनमोहक देवताओं के साथ जन्म लेना चाहिए। यही वहाँ जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु को यह ज्ञान होता है कि सुखी देवता, असीम सुखी देवता, दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत मनमोहक होते हैं। उसके मन में यह विचार आता है, हे! मुझे असीम सुखी, दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत मनमोहक देवताओं के साथ जन्म लेना चाहिए। यही वहाँ जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होता है। भिक्षु को ज्ञान प्राप्त होता है कि वायु में विचरण करने की शक्ति रखने वाले देवता, निर्दयी न होने वाले देवता, उत्साही देवता, आसानी से दिखाई देने वाले देवता, सर्वोच्च श्रेणी के देवता, दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत मनमोहक होते हैं। उसे यह विचार आता है, हे! मुझे सर्वोच्च श्रेणी के उन देवताओं के साथ जन्म लेना चाहिए जो दीर्घायु, सुंदर और अत्यंत मनमोहक हों। यही वहाँ जन्म लेने का मार्ग और विधि है।

हे भिक्षुओं, भिक्षु आस्था, सद्गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण होते हैं। भिक्षु यह ज्ञान प्राप्त करते हैं कि अंतरिक्ष में जन्म लेने वाले देवताओं का जीवनकाल दीर्घ होता है।

और बहुत सुख का आनंद उठाऊं। उसके मन में यह विचार आता है। ओह! काश मैं अंतरिक्ष के देवताओं के साथ जन्म ले पाता, लंबी आयु और बहुत सुख का अनुभव कर पाता। यही वहां जन्म लेने का मार्ग और तरीका है।

भिक्षु को फिर से आस्था, सद्गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण किया जाता है। भिक्षु को ज्ञान प्राप्त होता है कि चेतना के क्षेत्र में (अर्थात् शून्यता के क्षेत्र में (अर्थात् बोध और अबोध दोनों से परे) जन्म लेने वाले देवता दीर्घायु होते हैं और अत्यंत सुख भोगते हैं। उसके मन में यह विचार आता है, "हे! मुझे भी दीर्घायु और अत्यंत सुख भोगने वाले, बोध और अबोध दोनों से परे के क्षेत्र के देवताओं के साथ जन्म लेना चाहिए। यही उस क्षेत्र में जन्म लेने का मार्ग और विधि है।"

भिक्षु को फिर से आस्था, सद्गुण, ज्ञान, परोपकार और बुद्धि से परिपूर्ण पाया जाता है। भिक्षु के मन में यह विचार आता है, "हे! मुझे इच्छाओं का नाश करना चाहिए, इच्छाओं से मुक्त होकर, मन को मुक्त करके और ज्ञान के माध्यम से मुक्त होकर, यहीं और अभी स्वयं को सबोधित करते हुए स्थिर रहना चाहिए।" वह इच्छाओं का नाश करके, इच्छाओं से मुक्त होकर, मन को मुक्त करके और ज्ञान के माध्यम से मुक्त होकर यहीं और अभी स्वयं को सबोधित करते हुए स्थिर रहता है। भिक्षुओं, यह भिक्षु किसी भी कारण से कहीं भी जन्म नहीं लेता है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 13.1कुलसुन्नता सुत्त(121)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

अंतर्वस्तु
1पृथ्वी की धारणा

2(अंतरिक्ष की अनंतता)
3(चेतना की अनंतता)
4(शून्यता)
5(न तो बोध और न ही अबोध)
6विषय-रहित एकाग्रता
7मुक्त करना
मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में पूर्वी मठ में ठहरे हुए थे, जो मिगारा की माता का महल था। फिर शाम को, पूज्य आनंद एकांतवास से बाहर आकर भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा: "एक बार जब भगवान बुद्ध नागराका नामक शाक्य नगर में शाक्यों के बीच ठहरे हुए थे, तब वहाँ भगवान बुद्ध के सामने बैठकर मैंने यह सुना, यह सीखा: 'मैं अब पूर्णतः शून्यता के निवास में रहता हूँ।' क्या मैंने इसे सही सुना, सही सीखा, सही ध्यान दिया, सही याद रखा?"
[बुद्धः] "हाँ, आनंद, तुमने सही सुना, सही सीखा, सही ध्यान दिया, सही याद रखा। अब भी, पहले की तरह, मैं पूर्णतः शून्यता के निवास में रहता हूँ। जैसे मिगारा की माता का यह महल हाथियों, गायों और घोड़ियों से, सोने-चाँदी से, स्त्री-पुरुषों की सभाओं से रहित है, और केवल यही शून्यता नहीं है—भिक्षुओं के समुदाय पर आधारित एकांतता; ठीक वैसे ही, आनंद, एक भिक्षु—गाँव की अनुभूति पर ध्यान न देकर, मनुष्य की अनुभूति पर ध्यान न देकर—वन्यभूमि की अनुभूति पर आधारित एकांतता पर ध्यान देता है। उसका मन आनंदित होता है, तृप्ति पाता है, स्थिर होता है और वन्यभूमि की अनुभूति में लीन रहता है।"
वह यह समझता है कि 'गाँव की धारणा के आधार पर जो भी अशांतियाँ मौजूद होतीं, वे यहाँ नहीं हैं। मनुष्य की धारणा के आधार पर जो भी अशांतियाँ मौजूद होतीं, वे यहाँ नहीं हैं। केवल यही थोड़ी सी अशांति है: जंगल की धारणा पर आधारित एकांत।' वह यह समझता है कि 'धारणा का यह तरीका गाँव की धारणा से रहित है। धारणा का यह तरीका मनुष्य की धारणा से रहित है। केवल यही गैर-शून्यता है: जंगल की धारणा पर आधारित एकांत।' इस प्रकार वह इसे उस सब से रहित मानता है जो यहाँ नहीं है। जो कुछ भी शेष रहता है, वह उसे उपस्थित मानता है: 'यह है।' और इसलिए, शून्यता में उसका यह प्रवेश वास्तविकता के अनुरूप है, अर्थ में विकृत नहीं है, और शुद्ध है।
पृथ्वी की धारणा
"इसके अलावा, भिक्षु आनंद मनुष्य की धारणा पर ध्यान नहीं देते, वन्य जीवन की धारणा पर ध्यान नहीं देते, बल्कि पृथ्वी की धारणा पर आधारित एकाग्रता पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मन पृथ्वी की धारणा में आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और लीन हो जाता है। जैसे सौ खूंटियों से बैल की खाल झुर्रियों से मुक्त हो जाती है, वैसे ही - इस पृथ्वी की सभी पहाड़ियों और घाटियों, नदी की खाइयों, ठूंठों और कांटों के इलाकों, ऊबड़-खाबड़ अनियमितताओं पर ध्यान दिए बिना - वे पृथ्वी की धारणा पर आधारित एकाग्रता पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मन पृथ्वी की धारणा में आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और लीन हो जाता है।"
वह यह समझता है कि 'मनुष्य की धारणा के आधार पर जो भी विक्षोभ मौजूद होते, वे यहाँ नहीं हैं। वन्य जीवन की धारणा के आधार पर जो भी विक्षोभ मौजूद होते, वे यहाँ नहीं हैं। केवल यही एक सूक्ष्म विक्षोभ है: पृथ्वी की धारणा पर आधारित एकाकीपन।' वह यह समझता है कि 'धारणा का यह तरीका मनुष्य की धारणा से रहित है। धारणा का यह तरीका वन्य जीवन की धारणा से रहित है। केवल यही गैर-शून्यता है: पृथ्वी की धारणा पर आधारित एकाकीपन।' इस प्रकार वह इसे उस सब से रहित मानता है जो यहाँ नहीं है। जो कुछ भी शेष रहता है, वह उसे उपस्थित मानता है: 'यह है।' और इस प्रकार, शून्यता में उसका यह प्रवेश वास्तविकता के अनुरूप है, अर्थ में विकृत नहीं है, और शुद्ध है।
(अंतरिक्ष की अनंतता)
इसके अलावा, आनंद नामक भिक्षु - वन्य जीवन की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए, पृथ्वी की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए - अनंत अंतरिक्ष के आयाम की अनुभूति पर आधारित एकाग्रता पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मन आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और अनंत अंतरिक्ष के आयाम की अनुभूति में लीन हो जाता है।
वह यह समझता है कि 'जंगल की धारणा के आधार पर जो भी अशांतियाँ उत्पन्न होतीं, वे यहाँ नहीं हैं। पृथ्वी की धारणा के आधार पर जो भी अशांतियाँ उत्पन्न होतीं, वे यहाँ नहीं हैं। केवल यही थोड़ी सी अशांति है: अनंत अंतरिक्ष के आयाम की धारणा पर आधारित एकत्व।' वह यह समझता है कि 'धारणा का यह तरीका जंगल की धारणा से रहित है। धारणा का यह तरीका पृथ्वी की धारणा से रहित है। केवल यही गैर-शून्यता है: अनंत अंतरिक्ष के आयाम की धारणा पर आधारित एकत्व।' इस प्रकार वह इसे उस सब से रहित मानता है जो यहाँ नहीं है। जो कुछ भी शेष रहता है, वह उसे उपस्थित मानता है: 'यह है।' और इसलिए, शून्यता में उसका यह प्रवेश वास्तविकता के अनुरूप है, अर्थ में विकृत नहीं है, और शुद्ध है।
(चेतना की अनंतता)
इसके अलावा, भिक्षु आनंद पृथ्वी की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए, अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए, चेतना की अनंतता के आयाम की अनुभूति पर आधारित एकाग्रता पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मन आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और चेतना की अनंतता के आयाम की अनुभूति में लीन हो जाता है।

वह यह समझता है कि 'पृथ्वी की अनुभूति के आधार पर जो भी विक्षोभ उत्पन्न होते, वे यहाँ नहीं हैं। अंतरिक्ष की अनंतता की अनुभूति के आधार पर जो भी विक्षोभ उत्पन्न होते, वे यहाँ नहीं हैं। केवल यही एक सूक्ष्म विक्षोभ है: चेतना की अनंतता की अनुभूति पर आधारित एकत्व।' वह यह समझता है कि 'अनुभूति का यह स्वरूप पृथ्वी की अनुभूति से रहित है। अनुभूति का यह स्वरूप अंतरिक्ष की अनंतता की अनुभूति से रहित है। केवल यही गैर-शून्यता है: चेतना की अनंतता की अनुभूति पर आधारित एकत्व।' इस प्रकार वह इसे उस सब से रहित मानता है जो यहाँ नहीं है। जो कुछ भी शेष रहता है, वह उसे उपस्थित मानता है: 'यह है।' और इस प्रकार, शून्यता में उसका यह प्रवेश वास्तविकता के अनुरूप है, अर्थ में विकृत नहीं है, और शुद्ध है।

(शून्यता)

इसके अलावा, भिक्षु आनंद—अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए, चेतना की अनंतता के आयाम की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए—शून्यता के आयाम की अनुभूति पर आधारित एकत्व पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मन आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और शून्यता के आयाम की अनुभूति में लीन हो जाता है।

वह यह समझता है कि 'अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम की धारणा के आधार पर जो भी विक्षोभ उत्पन्न होते, वे यहाँ नहीं हैं। चेतना की अनंतता के आयाम की धारणा के आधार पर जो भी विक्षोभ उत्पन्न होते, वे यहाँ नहीं हैं। केवल यही एक सूक्ष्म विक्षोभ है: शून्यता के आयाम की धारणा पर आधारित एकत्व।' वह यह समझता है कि 'धारणा का यह तरीका अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम की धारणा से रहित है। धारणा का यह तरीका चेतना की अनंतता के आयाम की धारणा से रहित है। केवल यही गैर-शून्यता है: शून्यता के आयाम की धारणा पर आधारित एकत्व।' इस प्रकार वह इसे उस सब से रहित मानता है जो यहाँ नहीं है। जो कुछ भी शेष रहता है, वह उसे उपस्थित मानता है: 'यह है।' और इस प्रकार, शून्यता में उसका यह प्रवेश वास्तविकता के अनुरूप है, अर्थ में विकृत नहीं है, और शुद्ध है।

(न तो बोध और न ही अबोध)

इसके अलावा, भिक्षु आनंद—चेतना की अनंतता के आयाम की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए, शून्यता के आयाम की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए—न तो अनुभूति और न ही अअनुभूति के आयाम पर आधारित एकत्व पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मन आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर हो जाता है और न तो अनुभूति और न ही अअनुभूति के आयाम में लिप्त हो जाता है।

वह यह समझता है कि 'चेतना की अनंतता के आयाम की धारणा के आधार पर जो भी विक्षोभ उत्पन्न होते, वे यहाँ नहीं हैं। शून्यता के आयाम की धारणा के आधार पर जो भी विक्षोभ उत्पन्न होते, वे यहाँ नहीं हैं। केवल यही एक सूक्ष्म विक्षोभ है: वह एकत्व जो न तो बोध और न ही अबोध के आयाम पर आधारित है।' वह यह समझता है कि 'बोध का यह तरीका चेतना की अनंतता के आयाम के बोध से रहित है। बोध का यह तरीका शून्यता के आयाम के बोध से रहित है। केवल यही गैर-शून्यता है: वह एकत्व जो न तो बोध और न ही अबोध के आयाम पर आधारित है।' इस प्रकार वह इसे उस सब से रहित मानता है जो यहाँ नहीं है। जो कुछ भी शेष रहता है, वह उसे उपस्थित मानता है: 'यह है।' और इस प्रकार, शून्यता में उसका यह प्रवेश वास्तविकता के अनुरूप है, अर्थ में विकृत नहीं है, और शुद्ध है।

विषय-रहित एकाग्रता

इसके अलावा, आनंद नामक भिक्षु - शून्यता के आयाम की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए, न अनुभूति और न अनुभूति के आयाम की अनुभूति पर ध्यान देते हुए - विषयहीन एकाग्रता पर आधारित एकाग्रत्व पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मन आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और विषयहीन एकाग्रता में लीन हो जाता है।

वह यह समझता है कि 'शून्यता के आयाम की धारणा के आधार पर जो भी विक्षोभ उत्पन्न होते, वे यहाँ नहीं हैं। न तो बोध और न ही अबोध के आयाम की धारणा के आधार पर जो भी विक्षोभ उत्पन्न होते, वे यहाँ नहीं हैं। और केवल यही एक सूक्ष्म विक्षोभ है: जो छह इंद्रियों से जुड़ा है, और इसी शरीर पर निर्भर है, जिसमें जीवन है।' वह यह समझता है कि 'बोध का यह तरीका शून्यता के आयाम के बोध से रहित है। बोध का यह तरीका न तो बोध और न ही अबोध के आयाम के बोध से रहित है। केवल यही शून्यता नहीं है: जो छह इंद्रियों से जुड़ा है, और इसी शरीर पर निर्भर है, जिसमें जीवन है।' इस प्रकार वह इसे उस सब से रहित मानता है जो यहाँ नहीं है। जो कुछ भी शेष रहता है, वह उसे उपस्थित मानता है: 'यह है।' और इसलिए, शून्यता में उसका यह प्रवेश वास्तविकता के अनुरूप है, अर्थ में विकृत नहीं है, और शुद्ध है।

मुक्त करना

इसके अलावा, आनंद नामक भिक्षु - शून्यता के आयाम की अनुभूति पर ध्यान न देते हुए, न अनुभूति और न अनुभूति के आयाम की अनुभूति पर ध्यान देते हुए - विषयहीन एकाग्रता पर आधारित एकाग्रत्व पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनका मन आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और विषयहीन एकाग्रता में लीन हो जाता है।

वह यह समझता है कि 'चेतना की यह विषयहीन एकाग्रता कृत्रिम और मानसिक रूप से गढ़ी हुई है।' और वह यह भी समझता है कि 'जो कुछ भी कृत्रिम और मानसिक रूप से गढ़ा हुआ है, वह अस्थिर और क्षीण होने के अधीन है।' उसके लिए—इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर—मन इंद्रिय-वासना, सृजन और अज्ञान के अपशिष्ट से मुक्त हो जाता है। मुक्ति के साथ ही, 'मुक्त' होने का ज्ञान प्राप्त होता है। वह यह समझता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'

वह यह समझता है कि 'इंद्रिय-संबंधी अपशिष्ट, अस्तित्व-संबंधी अपशिष्ट, अज्ञान-संबंधी अपशिष्ट के कारण उत्पन्न होने वाली सभी विक्षोभ यहाँ मौजूद नहीं हैं। केवल यही थोड़ी सी विक्षोभ है: जो छह इंद्रियों से संबंधित है, और इसी शरीर पर निर्भर है, जिसमें जीवन है।' वह यह समझता है कि 'यह अनुभूति इंद्रिय-संबंधी अपशिष्ट, अस्तित्व-संबंधी अपशिष्ट, और अज्ञान-संबंधी अपशिष्ट से रहित है। केवल यही शून्यता है: जो छह इंद्रियों से संबंधित है, और इसी शरीर पर निर्भर है, जिसमें जीवन है।' इस प्रकार वह इसे हर उस चीज़ से रहित मानता है जो मौजूद नहीं है। जो कुछ भी शेष रहता है, उसे वह उपस्थित मानता है: 'यह है।' और इस प्रकार, शून्यता में उसका यह प्रवेश वास्तविकता के अनुरूप है, अर्थ में विकृत नहीं है, शुद्ध है - श्रेष्ठ और अतुलनीय है।
आनंद, अतीत में जितने भी ध्यानी और पुरोहित शुद्ध, श्रेष्ठ और अतुलनीय शून्यता में प्रवेश करके उसमें लीन रहे, वे सभी इसी शुद्ध, श्रेष्ठ और अतुलनीय शून्यता में प्रवेश करके उसमें लीन रहे। भविष्य में जितने भी ध्यानी और पुरोहित शुद्ध, श्रेष्ठ और अतुलनीय शून्यता में प्रवेश करके उसमें लीन रहेंगे, वे सभी इसी शुद्ध, श्रेष्ठ और अतुलनीय शून्यता में प्रवेश करके उसमें लीन रहेंगे। वर्तमान में जितने भी ध्यानी और पुरोहित शुद्ध, श्रेष्ठ और अतुलनीय शून्यता में प्रवेश करके उसमें लीन रहते हैं, वे सभी इसी शुद्ध, श्रेष्ठ और अतुलनीय शून्यता में प्रवेश करके उसमें लीन रहते हैं।
इसलिए, आनंद, तुम्हें स्वयं को इस प्रकार प्रशिक्षित करना चाहिए: 'हम उस शून्यता में प्रवेश करेंगे और उसमें बने रहेंगे जो शुद्ध, श्रेष्ठ और अतुलनीय है।'
भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य आनंद बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 13.2 महासुन्नता सुत्त(122)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान कपिलवस्तु के बरगद उद्यान में शाक्यों के बीच ठहरे हुए थे। भोर होते ही, भगवान ने अपने वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र और बाहरी वस्त्र धारण किए और भिक्षा मांगने के लिए कपिलवस्तु गए। कपिलवस्तु में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने पर वे भिक्षा मांगने के बाद दिनभर विश्राम करने के लिए शाक्य काल-खेमक के निवास पर गए। उस समय शाक्य काल-खेमक के निवास पर अनेक विश्राम स्थल बने हुए थे। भगवान ने वहाँ बने हुए अनेक विश्राम स्थलों को देखकर यह विचार किया, “यहाँ तो अनेक विश्राम स्थल बने हुए हैं। क्या यहाँ अनेक भिक्षु निवास करते हैं?”

उस समय पूज्य आनंद, अनेक अन्य भिक्षुओं के साथ, शाक्य कन्या घटा के निवास पर वस्त्र बना रहे थे। संध्या होने पर भगवान बुद्ध एकांतवास से उठे और शाक्य कन्या घटा के निवास पर गए। वहाँ पहुँचकर वे एक तैयार आसन पर बैठ गए। बैठते ही उन्होंने पूज्य आनंद से पूछा, “शाक्य कन्या काल-खेमक के निवास पर अनेक विश्राम स्थल बने हुए हैं। क्या वहाँ अनेक भिक्षु रहते हैं?”

"जी हे भगवान, शाक्यों के निवास स्थान काला-खेमाका में अनेक विश्राम स्थल तैयार हैं। वहाँ अनेक भिक्षु रहते हैं। अब हमारे वस्त्र बनाने का समय आ गया है।"

"आनंद, जो भिक्षु संगति में आनंद लेता है, संगति का लुत्फ़ उठाता है, संगति में आनंद लेने के लिए प्रतिबद्ध है; जो समूह में आनंद लेता है, समूह का लुत्फ़ उठाता है, समूह में प्रसन्न होता है, समूह में आनंदित होता है, समूह में प्रसन्न होता है, समूह में प्रसन्न होता है, समूह में प्रसन्न होता है, समूह में प्रसन्न होता है, समूह में प्रसन्न होता है, समूह में प्रसन्न होता है, उसकी इच्छा से — बिना किसी कठिनाई या परेशानी के — त्याग का सुख, एकांतवास का सुख, शांति का सुख, आत्म-जागरूकता का सुख प्राप्त होना असंभव है। परन्तु जो भिक्षु समूह से अलग होकर एकांतवास करता है, उसकी इच्छा से — बिना किसी कठिनाई या परेशानी के — त्याग का सुख, एकांतवास का सुख, शांति का सुख, आत्म-जागरूकता का सुख प्राप्त होना संभव है।"

"हाँ, आनंद, यह असंभव है कि कोई भिक्षु जो संगति में आनंद लेता है, संगति का आनंद लेता है, संगति में आनंद लेने के लिए प्रतिबद्ध है; जो समूह में आनंद लेता है, समूह का आनंद लेता है, समूह में प्रसन्न होता है, वह अस्थायी और सुखद चेतना-मुक्ति में प्रवेश कर सके और उसमें स्थिर रह सके, या उस चेतना-मुक्ति में स्थिर रह सके जो अस्थायी और अस्थाई और उत्तेजना से परे है।" लेकिन यह संभव है कि कोई भिक्षु जो अकेले रहता है, समूह से अलग रहता है, वह अस्थायी और सुखद चेतना-मुक्ति में प्रवेश करने और उसमें स्थिर रहने की अपेक्षा कर सकता है, या उस चेतना-मुक्ति में स्थिर रह सके जो अस्थायी और अस्थाई और उत्तेजना से परे है।

"आनंद, मैं एक भी ऐसे रूप की कल्पना नहीं कर सकता जिसका परिवर्तन और रूपांतरण उस व्यक्ति में दु:ख, विलाप, पीड़ा, व्यथा और निराशा को जन्म न दे जो उसके प्रति भावुक हो और उसमें आनंद लेता हो।"

"लेकिन तथागत द्वारा खोजा गया एक (मानसिक) निवास है, जहाँ वे किसी भी विषय पर ध्यान दिए बिना आंतरिक शून्यता में प्रवेश करते हैं और उसमें बने रहते हैं। यदि इस निवास के माध्यम से वहाँ रहते हुए, भिक्षु, भिक्षुणियाँ, गृहस्थ पुरुष, गृहस्थ स्त्रियाँ, राजा, राजमंत्री, संप्रदायवादी और उनके शिष्य उनसे मिलने आते हैं, तो - एकांतवास पर केंद्रित, एकांतवास की ओर प्रवृत्त, एकांतवास का लक्ष्य रखते हुए, त्याग का आनंद लेते हुए, मानसिक उत्तेजना के आधार गुणों को नष्ट करते हुए - वे उनसे केवल उतनी ही बातचीत करते हैं जितनी उनके विदा लेने के लिए आवश्यक होती है।"

"तो, आनंद, यदि कोई भिक्षु यह इच्छा करे, 'मैं आंतरिक शून्यता में प्रवेश करूँ और उसमें स्थिर रहूँ,' तो उसे अपने मन को भीतर ही स्थिर, एकाग्र और एकाग्र करना चाहिए। और भिक्षु अपने मन को भीतर ही स्थिर, एकाग्र, एकाग्र और एकाग्र कैसे करता है? एक स्थिति यह है कि एक भिक्षु - इंद्रिय सुखों से पूर्णतः विरक्त होकर, अकुशल गुणों से विरक्त होकर - प्रथम ध्यान, द्वितीय ध्यान, तृतीय ध्यान और चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता है और स्थिर रहता है: समभाव और सजगता की शुद्धता, न सुख न दुख। इस प्रकार एक भिक्षु अपने मन को भीतर ही स्थिर, एकाग्र, एकाग्र और एकाग्र करता है।"

वह आंतरिक शून्यता पर ध्यान देता है। जब वह आंतरिक शून्यता पर ध्यान दे रहा होता है, तो उसका मन न तो आनंद लेता है, न संतुष्टि पाता है, न स्थिर होता है और न ही आंतरिक शून्यता में लिप्त होता है। जब ऐसा होता है, तो वह समझता है, 'जब मैं आंतरिक शून्यता पर ध्यान दे रहा होता हूँ, तो मेरा मन न तो आनंद लेता है, न संतुष्टि पाता है, न स्थिर होता है और न ही आंतरिक शून्यता में लिप्त होता है।' इस प्रकार वह वहाँ सचेत रहता है।

वह बाह्य शून्यता पर ध्यान देता है...2

वह आंतरिक और बाह्य शून्यता का ध्यान रखता है...

वह अविचलित अवस्था पर ध्यान देता है।3 जब वह अविचलित अवस्था पर ध्यान दे रहा होता है, तो उसका मन न तो आनंद लेता है, न संतुष्टि पाता है, न स्थिर होता है, और न ही अविचलित अवस्था में लिप्त होता है। जब ऐसा होता है, तो वह समझता है, 'जब मैं अविचलित अवस्था पर ध्यान दे रहा होता हूँ, तो मेरा मन न तो आनंद लेता है, न संतुष्टि पाता है, न स्थिर होता है, और न ही अविचलित अवस्था में लिप्त होता है।' इस प्रकार वह वहाँ सचेत रहता है।

"जब ऐसा हो, तो उसे अपने मन को भीतर से स्थिर, शांत, एकीकृत और एकाग्रता के अपने पहले विषय पर केंद्रित करना चाहिए।"

फिर वह आंतरिक शून्यता पर ध्यान देता है। आंतरिक शून्यता पर ध्यान देते समय, उसका मन आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और आंतरिक शून्यता में लीन हो जाता है। जब ऐसा होता है, तो वह समझता है, 'जब मैं आंतरिक शून्यता पर ध्यान दे रहा होता हूँ, तो मेरा मन आनंदित होता है, संतुष्टि पाता है, स्थिर होता है और आंतरिक शून्यता में लीन हो जाता है।' इस प्रकार वह वहाँ सचेत रहता है।

वह बाह्य शून्यता पर ध्यान देता है...

वह आंतरिक और बाह्य शून्यता का ध्यान रखता है...

वह अविचलित अवस्था पर ध्यान केंद्रित करता है। जब वह अविचलित अवस्था पर ध्यान केंद्रित करता है, तो उसका मन आनंदित होता है, तृप्ति पाता है, स्थिर होता है और अविचलित अवस्था में लीन हो जाता है। जब ऐसा होता है, तो वह समझता है, 'जब मैं अविचलित अवस्था पर ध्यान केंद्रित करता हूँ, तो मेरा मन आनंदित होता है, तृप्ति पाता है, स्थिर होता है और अविचलित अवस्था में लीन हो जाता है।' इस प्रकार वह वहाँ सचेत रहता है।

"यदि इस निवास में रहते हुए भिक्षु का मन इधर-उधर घूमने की ओर आकर्षित हो, तो वह यह सोचते हुए इधर-उधर घूमता है, 'इस प्रकार चलते हुए, न तो लोभ, न ही उदासी, न ही कोई बुराई या अकुशल गुण मुझ पर हावी होंगे।' इस प्रकार वह वहाँ सतर्क रहता है।"

"यदि वह इस आवास में रहते हुए, खड़े होने... बैठने... लेटने की ओर आकर्षित होता है, तो वह लेट जाता है, [यह सोचते हुए,] 'जब मैं इस प्रकार लेटा हुआ हूँ, तो न तो लोभ, न उदासी, न कोई बुराई, न ही अकुशल गुण मुझ पर हावी होंगे।' इस प्रकार वह वहाँ सतर्क रहता है।"

"यदि इस निवास में रहते हुए उसका मन बोलने की ओर आकर्षित हो, तो वह यह निश्चय करता है कि 'मैं ऐसी बातों में शामिल नहीं होऊंगा जो नीच, अश्लील, सामान्य, घृणित, अनुत्पादक हों, जो विरक्ति, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, आत्म-जागरूकता या मुक्ति की ओर न ले जाएं - अर्थात् राजाओं, लुटेरों और राज्य मंत्रियों के बारे में बातें; सेनाओं, चेतावनियों और युद्धों के बारे में बातें; भोजन और पेय के बारे में बातें; वस्त्र, फर्नीचर, मालाओं और सुगंधों के बारे में बातें; रिश्तेदारों के बारे में बातें; वाहनों के बारे में बातें; गांवों, कस्बों, शहरों, ग्रामीण इलाकों के बारे में बातें; महिलाओं और नायकों के बारे में बातें; गली और कुएं की गपशप के बारे में बातें; मृतकों की कहानियां; विविधता की कहानियां, दुनिया और समुद्र की रचना के बारे में बातें; चीजों के अस्तित्व या न होने के बारे में बातें।' इस प्रकार वह वहां सतर्क रहता है।"

"'परन्तु,' [वह संकल्प लेता है,] 'मैं ऐसी चर्चा में संलग्न रहूंगा जो विवेकपूर्ण हो, जागरूकता की मुक्ति में सहायक हो, और केवल विरक्ति, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, आत्मजागरूकता और मुक्ति की ओर ले जाए - अर्थात्, विनम्रता, संतोष, एकांत, अनासक्ति, दृढ़ता जगाने वाली चर्चा, सद्गुण, एकाग्रता, विवेक, मुक्ति और मुक्ति के ज्ञान एवं दृष्टि पर चर्चा।' इस प्रकार वह वहां सचेत रहता है।"

"यदि इस निवास के माध्यम से ध्यान करते समय उसका मन चिंतन की ओर प्रवृत्त हो, तो वह संकल्प करता है कि 'मैं ऐसे विचार नहीं सोचूंगा जो नीच, अश्लील, सामान्य, घृणित, लाभकारी न हों, जो वैराग्य, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, आत्मजागरूकता या मुक्ति की ओर न ले जाएं - अर्थात्, कामुकता के विचार, द्वेष के विचार, हानि पहुंचाने वाले विचार।' इस प्रकार वह वहां सतर्क रहता है।"

"'लेकिन,' [वह दृढ़ निश्चय करता है,] 'मैं ऐसे विचार रखूंगा जो नेक हों, प्रगतिशील हों, जो उन पर अमल करने वाले व्यक्ति के लिए तनाव के सही अंत की ओर ले जाएं - अर्थात्, त्याग के विचार, दुर्भावना रहित विचार, अहिंसा के विचार।' इस तरह वह वहां सतर्क रहता है।"

आनंद, ये पाँच प्रकार की कामुकताएँ हैं। कौन सी पाँच? आँखों से देखी जा सकने वाली आकृतियाँ - मनभावन, सुखद, आकर्षक, लुभावनी, इच्छा जगाने वाली, मोहक। कानों से सुनी जा सकने वाली ध्वनियाँ... नाक से सुनी जा सकने वाली सुगंधें... जीभ से जाने वाले स्वाद... शरीर से सुनी जा सकने वाली स्पर्श संवेदनाएँ - मनभावन, सुखद, आकर्षक, मोहक, इच्छा जगाने वाली, मोहक। ये पाँच प्रकार की कामुकताएँ हैं जिन पर एक भिक्षु को बार-बार मन में चिंतन करना चाहिए: 'क्या मेरे भीतर, किसी भी परिस्थिति में, इन पाँच प्रकार की कामुकताओं के प्रति कोई जागरूकता उत्पन्न होती है?' यदि चिंतन करने पर भिक्षु को यह पता चलता है कि 'मेरे भीतर, किसी न किसी परिस्थिति में, इन पाँच प्रकार की कामुकताओं के प्रति कोई जागरूकता उत्पन्न होती है,' तो - ऐसा होने पर - वह यह जान लेता है कि 'मैंने इन पाँच प्रकार की कामुकताओं के प्रति अपनी इच्छा-वासना का त्याग नहीं किया है।' लेकिन यदि चिंतन करने पर उसे यह अहसास होता है कि 'किसी भी परिस्थिति में मुझमें इन पांच इंद्रियों के प्रति कोई जागरूकता उत्पन्न नहीं होती,' तो वह समझ जाता है कि 'मैंने इन पांच इंद्रियों के प्रति वासना का त्याग कर दिया है।' इस प्रकार वह सचेत हो जाता है।

ये पाँच आसक्ति-समूह हैं जहाँ एक भिक्षु को निवास करना चाहिए, उत्पत्ति और क्षय का ध्यान रखते हुए (इस प्रकार): 'ऐसा रूप है, ऐसी उत्पत्ति है, ऐसा क्षय है। ऐसी भावना है... ऐसी अनुभूति है... ऐसी रचनाएँ हैं... ऐसी चेतना है, ऐसी उत्पत्ति है, ऐसा क्षय है।' इन पाँच आसक्ति-समूहों के संबंध में उत्पत्ति और क्षय का ध्यान रखते हुए, वह 'मैं हूँ' की भावना का त्याग कर देता है। ऐसा होने पर, वह समझता है, 'मैंने इन पाँच आसक्ति-समूहों के संबंध में 'मैं हूँ' की भावना का त्याग कर दिया है।' इस प्रकार वह वहाँ सचेत रहता है।

"आनंद, ये गुण अपने आधार में अद्वितीय, महान, पारलौकिक और शैतान की पहुंच से बाहर हैं।"

"आनंद, आपका क्या विचार है: जब शिष्य डांट सुनने के बावजूद गुरु का अनुसरण करने के उद्देश्य की कल्पना करता है, तो क्या यह उचित है कि वह उनका अनुसरण करे?"

"हे भगवान, हमारे लिए इन शिक्षाओं का मूल, मार्गदर्शक और निर्णायक भगवान बुद्ध हैं। यह अच्छा होगा यदि स्वयं भगवान बुद्ध इस कथन का अर्थ स्पष्ट कर दें। भगवान बुद्ध से सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।"

"आनंद, शिष्य के लिए गुरु के पीछे-पीछे प्रवचन, श्लोक या उपदेश सुनने के लिए चलना उचित नहीं है। ऐसा क्यों? आनंद, क्या तुमने लंबे समय तक शिक्षाओं को सुना है, उन्हें आत्मसात किया है, उन पर चर्चा की है, उन्हें एकत्रित किया है, अपने मन से उनका परीक्षण किया है और अपने दृष्टिकोण से उन्हें अच्छी तरह समझा है? परन्तु जो प्रवचन विवेकपूर्ण हो, चेतना की मुक्ति में सहायक हो और केवल वैराग्य, वैराग्य, शांति, प्रत्यक्ष ज्ञान, आत्मजागरूकता और मुक्ति की ओर ले जाए—अर्थात् विनम्रता, संतोष, एकांत, अनासक्ति, दृढ़ता, सद्गुण, एकाग्रता, विवेक, मुक्ति और मुक्ति के ज्ञान एवं दर्शन को प्रेरित करने वाले प्रवचन: इसी प्रकार के प्रवचन सुनने के लिए शिष्य का गुरु के पीछे-पीछे चलना उचित है, मानो वह उनसे बंधा हुआ हो।"

"ऐसी स्थिति में, शिक्षक का पतन होता है, छात्र का पतन होता है, और पवित्र जीवन जीने वाले व्यक्ति का भी पतन होता है।"

और गुरु का पतन कैसे होता है? एक उदाहरण है, एक गुरु4 किसी एकांत स्थान पर शरण लेता है: जंगल, वृक्ष की छाया, पर्वत, घाटी, पहाड़ी गुफा, श्मशान भूमि, वनभूमि, खुला आकाश, भूसे का ढेर। जब वह इस प्रकार एकांत में रहता है, तो नगर और ग्रामभूमि से ब्राह्मण और गृहस्थ उससे मिलने आते हैं। जब वे उससे मिलने आते हैं, तो वह मोहक चीजों से मोहित हो जाता है, लोभ में पड़ जाता है और विलासिता में लीन हो जाता है। इसे गुरु का पतन कहा जाता है। वह उन दुष्ट, अकुशल गुणों से ग्रस्त हो जाता है जो उसे दूषित करते हैं, आगे चलकर और भी विकृत करते हैं, कष्टदायी होते हैं, पीड़ादायक होते हैं और जन्म, वृद्धावस्था और मृत्यु की ओर ले जाते हैं। यही गुरु का पतन है।5

और शिष्य का पतन कैसे होता है? उस गुरु का शिष्य, अपने गुरु के एकांतवास का अनुकरण करते हुए, एकांतवास में चला जाता है: किसी सुनसान जगह में, किसी वृक्ष की छाया में... या भूसे के ढेर पर। जब वह इस प्रकार एकांतवास में रहता है, तो नगर और ग्रामभूमि से ब्राह्मण और गृहस्थ उससे मिलने आते हैं। जब वे उससे मिलने आते हैं, तो वह मोहक चीजों के प्रति आसक्त हो जाता है, लोभ में पड़ जाता है और विलासिता में लीन हो जाता है। इसे ही शिष्य का पतन कहा जाता है। वह उन दुष्ट, अकुशल गुणों से ग्रस्त हो जाता है जो उसे दूषित करते हैं, आगे चलकर और भी बुरे कर्मों की ओर ले जाते हैं, कष्टदायी होते हैं, पीड़ादायक होते हैं और जन्म-वृषण और मृत्यु की ओर ले जाते हैं। यही शिष्य का पतन है।

और पवित्र जीवन जीने वाले का पतन कैसे होता है? एक उदाहरण है जब तथागत संसार में प्रकट होते हैं, जो योग्य और सही मायने में आत्म-जागृत, ज्ञान और आचरण में परिपूर्ण, सुखी, संसार के ज्ञाता, योग्य लोगों के लिए अद्वितीय प्रशिक्षक, दिव्य और मानव प्राणियों के गुरु, जागृत और धन्य होते हैं। वे एकांतवास में शरण लेते हैं: वनभूमि, वृक्ष की छाया, पर्वत, घाटी, पहाड़ी गुफा, श्मशान, वन उपवन, खुला आकाश, भूसे का ढेर। जब वे इस प्रकार एकांतवास में रहते हैं, तो नगर और ग्रामीण क्षेत्रों से ब्राह्मण और गृहस्थ उनसे मिलने आते हैं। जब वे उनसे मिलने आते हैं, तो वे मोहक वस्तुओं से मोहित नहीं होते, लोभ में नहीं पड़ते, विलासिता में नहीं लौटते। उस गुरु का शिष्य, अपने गुरु के एकांतवास का अनुकरण करते हुए, एकांतवास में शरण लेता है: वनभूमि, वृक्ष की छाया, पर्वत, घाटी, पहाड़ी गुफा, श्मशान, वन उपवन, खुला आकाश, भूसे का ढेर। एक वृक्ष का... भूसे का ढेर। जब वह इस प्रकार एकांतवास में रहता है, तो नगर और ग्रामभूमि से ब्राह्मण और गृहस्थ उससे मिलने आते हैं। जब वे उससे मिलने आते हैं, तो वह मोहक चीजों के प्रति आसक्त हो जाता है, लोभ में डूब जाता है और विलासिता में लीन हो जाता है। इसे पवित्र जीवन का अनुसरण करने वाला कहा जाता है, जिसका पतन पवित्र जीवन जीने वाले के पतन के कारण होता है। वह अपवित्र, अशुद्ध गुणों से ग्रसित हो गया है, जो उसे दूषित करते हैं, आगे चलकर और अधिक विकृत करते हैं, कष्टदायी होते हैं, पीड़ादायक होते हैं और जन्म-वृहद और मृत्यु की ओर ले जाते हैं। यही पवित्र जीवन जीने वाले का पतन है।

"और इस संदर्भ में, आनंद, पवित्र जीवन जीने वाले व्यक्ति का पतन गुरु या शिष्य के पतन से कहीं अधिक पीड़ादायक और कड़वाहट से भरा होता है। यह अभाव की अवस्थाओं तक भी ले जाता है।"

इसलिए, आनंद, मेरे साथ मित्रता का व्यवहार करो, शत्रुता का नहीं। यही तुम्हारे दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए अच्छा होगा।

और छात्र शिक्षक के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करने के बजाय विरोधी के रूप में कैसे व्यवहार करते हैं? एक उदाहरण है जहाँ एक शिक्षक अपने छात्रों को सहानुभूतिपूर्वक धम्म का उपदेश देता है, उनकी भलाई की कामना करता है, सहानुभूति से प्रेरित होकर कहता है: 'यह तुम्हारी भलाई के लिए है; यह तुम्हारी खुशी के लिए है।' उसके शिष्य न तो सुनते हैं, न ध्यान देते हैं और न ही ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपना मन लगाते हैं। वे शिक्षक के संदेश से भटक जाते हैं। इस प्रकार छात्र शिक्षक के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करने के बजाय विरोधी के रूप में व्यवहार करते हैं।6

और छात्र शिक्षक के साथ मित्रतापूर्ण संबंध कैसे बनाते हैं, न कि शत्रुतापूर्ण? एक उदाहरण है जहाँ एक शिक्षक अपने छात्रों को सहानुभूतिपूर्वक धम्म का उपदेश देता है, उनकी भलाई की कामना करता है, सहानुभूति से प्रेरित होकर कहता है: 'यह तुम्हारी भलाई के लिए है; यह तुम्हारी खुशी के लिए है।' उनके शिष्य सुनते हैं, ध्यान से सुनते हैं और ज्ञान प्राप्त करने में अपना मन लगाते हैं। वे शिक्षक के संदेश से विचलित नहीं होते। इस प्रकार छात्र शिक्षक के साथ मित्रतापूर्ण संबंध बनाते हैं, न कि शत्रुतापूर्ण।

इसलिए, आनंद, मेरे साथ मित्रता का भाव रखो, शत्रुता का नहीं। यही तुम्हारे दीर्घकालिक कल्याण और सुख के लिए अच्छा होगा।

मैं तुम्हारे ऊपर कुम्हार की तरह मंडराता नहीं रहूंगा, जैसे कोई कुम्हार गीली, अधपकी मिट्टी की वस्तुओं पर मंडराता है। मैं बार-बार डांटता नहीं, बार-बार तुम्हें प्रेरित करता नहीं। जो भी आवश्यक है, वही रहेगा।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य आनंद बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 13.3अचैरियब्भुतधम्म सुत्त(123)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास कर रहे थे। दोपहर के भोजन के बाद बहुत से भिक्षु सभा कक्ष में एकत्रित होकर बैठे थे और उनके बीच यह वार्तालाप हुआ।

'मित्रों, यह कितना अद्भुत और आश्चर्यजनक है कि तथागत पूर्वज प्राचीन ज्ञानियों को जानते हैं। वे कैसे अंतःस्रावी हुए, संसार के फैलाव को समाप्त किया, अपनी यात्रा को संक्षिप्त किया और यात्रा के अंत तथा समस्त कष्टों के अंत तक पहुँचे। उन्होंने कहा कि वे धन्य पुरुष ऐसे जन्म, नाम, कुल, गुणों, विचारों, ज्ञान, निवास और ऐसी मुक्ति के थे।' यह सुनकर पूज्य आनंद ने कहा, 'मित्रों, वास्तव में तथागत अद्भुत और आश्चर्यजनक बातों से परिपूर्ण हैं।'

जब यह बातचीत चल रही थी, तभी भगवान बुद्ध एकांतवास से उठे, सभाघर की ओर बढ़े, तैयार आसन पर बैठ गए और भिक्षुओं को संबोधित करते हुए बोले, 'भिक्षुओं, आप यहाँ किस विषय पर चर्चा करने के लिए बैठे थे और अन्य क्या चर्चा हुई?'

आदरणीय महोदय, दोपहर के भोजन के बाद हम सब उपस्थित कक्ष में बैठे थे और हमारे बीच यह चर्चा हुई। मित्रों, यह कितना अद्भुत और आश्चर्यजनक है कि तथागत पूर्वज प्राचीन ज्ञानियों को जानते हैं। वे कैसे अंतःसन्न हुए, संसार के फैलाव को कैसे विलीन किया, अपनी यात्रा को कैसे समाप्त किया और अपनी यात्रा के अंत तथा समस्त कष्टों के अंत तक कैसे पहुँचे। उन्होंने कहा कि वे धन्यजन ऐसे जन्म, नाम, कुल, गुणों, विचारों, ज्ञान, निवास और ऐसी मुक्ति के धनी थे। आदरणीय महोदय, जब यह कहा गया तो आदरणीय आनंद ने कहा; मित्रों, वास्तव में तथागत अद्भुत और आश्चर्यजनक बातों से परिपूर्ण हैं। जब यह चर्चा चल रही थी तभी धन्यजन वहाँ आ गए।

तब भगवान बुद्ध ने आदरणीय आनंद को संबोधित करते हुए कहा, 'यदि ऐसा है, तो आनंद, अनेकों की प्रसन्नता के लिए तथागत के अद्भुत और आश्चर्यजनक तथ्यों का वर्णन कीजिए।'

'आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जो ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखता है, सुख के देवताओं के साथ, सजगता से जन्मा था।" आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध की यह बात मुझे अद्भुत और आश्चर्यजनक लगती है।'

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जो सचेतन होकर सुख के देवताओं के साथ ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखता है।" आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध का यह कथन मेरे लिए अद्भुत और आश्चर्यजनक है।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। “आनंद, जो ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखता है, अपने जीवनकाल के अंत तक सुख के देवताओं के साथ निवास करे।” आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध का यह कथन मेरे लिए अद्‌भुत और आश्चर्यजनक है।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। “आनंद, जो ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखते थे, सुख के देवताओं से विलीन होकर माता के गर्भ में समा गए।” आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान बुद्ध का एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक वचन मानता हूँ।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। “आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखने वाला आनंद, सुख के देवताओं से विलीन होकर माता के गर्भ में अवतरित हुआ, तो देवताओं और मनुष्यों के संसार में, मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों और ब्राह्मणों के बीच, देवताओं की महिमा से परे एक असीम प्रकाश उत्पन्न हुआ। संसार के भीतर के उन अंधकारमय और अछूते स्थानों में भी, जहाँ तेजस्वी चंद्रमा और सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता, देवताओं की महिमा से परे एक असीम प्रकाश उत्पन्न हुआ। वहाँ जन्म लेने वाले प्राणी उस प्रकाश के कारण एक-दूसरे को देख पाते थे और जान पाते थे कि वहाँ अन्य प्राणी भी जन्म ले चुके हैं। देवताओं की महिमा से परे उस असीम प्रकाश के कारण दस हजार प्रकार का संसार थरथरा उठा।” आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान बुद्ध का एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक वचन मानता हूँ।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। “आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति की इच्छा रखने वाला आनंद माता के गर्भ से इस संसार में जन्मा, तब चार देवता चारों दिशाओं की रक्षा करते हुए खड़े थे। वे सोच रहे थे कि ज्ञान प्राप्ति की इच्छा रखने वाले आनंद को या उसकी माता को किसी मनुष्य, निर्जीव या संसार के किसी भी प्राणी द्वारा कोई हानि न पहुंचे।” आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध की यह बात मुझे अद्‌भुत और आश्चर्यजनक लगती है।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। “आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखने वाला आनंद, माता के गर्भ से इस संसार में जन्मा, तो माता स्वभाव से गुणी थीं, जो जीवित प्राणियों को नष्ट करने, बिना दी हुई वस्तुएँ लेने, यौन दुराचार करने, झूठ बोलने और मादक पेय पदार्थों के सेवन से परहेज करती थीं।” आदरणीय महोदय, यह बात मुझे भगवान बुद्ध के बारे में अद्‌भुत और आश्चर्यजनक लगती है।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। “आनंद, जिस दिन ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक आनंद ने माता के गर्भ में जन्म लिया, उस दिन से ही उनकी माता के मन में पुरुषों के प्रति कामुक इच्छाएँ उत्पन्न नहीं हुईं। वे किसी भी पुरुष के विचारों से आसक्ति से ऊपर उठ चुकी थीं।” आदरणीय महोदय, यह बात मुझे भगवान बुद्ध की एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक अनुभूति कराती है। आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। “आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक आनंद ने इस संसार में जन्म लिया, तब उनकी माता पाँचों इंद्रिय सुखों से परिपूर्ण थीं।” आदरणीय महोदय, यह बात मुझे भगवान बुद्ध की एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक अनुभूति कराती है।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। “आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक शिशु का जन्म इस संसार में हुआ, तब उनकी माता स्वस्थ, सुखी और निर्मल थीं। वे अपने गर्भ में शिशु को उसके सभी अंगों सहित पूर्ण रूप से देख सकती थीं। मानो वह आठ फलकों वाला एक सुंदर रत्न हो, जिसमें नीले, पीले, लाल, सफेद या हल्के रंग का धागा पिरोया हुआ हो। जो मनुष्य देख सकता है, वह उसे अपनी हथेली पर रखकर चिंतन करेगा। यह वही सुंदर रत्न है जिसमें आठ फलक हैं और जिसमें नीले, पीले, लाल, सफेद या हल्के रंग का धागा पिरोया हुआ है। ठीक इसी प्रकार, जब ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक शिशु का जन्म इस संसार में हुआ, तब उनकी माता स्वस्थ, सुखी और निर्मल थीं। वे अपने गर्भ में शिशु को उसके सभी अंगों सहित पूर्ण रूप से देख सकती थीं। आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान बुद्ध का एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक वचन मानता हूँ।”

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। “आनंद, ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक बालक के जन्म के सात दिन बाद उनकी माता का देहांत हो गया और वे सुखी देवताओं के साथ जन्म लीं।” आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान बुद्ध की एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक बात मानता हूँ।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। “आनंद, अन्य स्त्रियाँ लगभग नौ या दस महीने गर्भ धारण करके जन्म देती हैं। लेकिन ज्ञान प्राप्ति की इच्छुक आनंद के साथ ऐसा नहीं है; ज्ञान प्राप्ति की इच्छुक आनंद की

माता ने पूरे दस महीने गर्भ धारण किया और जन्म दिया।" आदरणीय महोदय, यह बात मुझे भगवान बुद्ध की एक अद्भुत और आश्चर्यजनक बात लगती है।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, अन्य स्त्रियाँ या तो बैठकर या लेटकर जन्म देती हैं, परन्तु ज्ञान प्राप्ति की इच्छुक आनंद के साथ ऐसा नहीं है; ज्ञान प्राप्ति की इच्छुक आनंद की माता ने खड़े होकर जन्म दिया।" आदरणीय महोदय, यह मेरे लिए भगवान बुद्ध का एक अद्भुत और आश्चर्यजनक कथन है।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखने वाला इस संसार में जन्मा, तो सबसे पहले देवताओं ने उसे स्वीकार किया और फिर मनुष्यों ने।" आदरणीय महोदय, भगवान बुद्ध की यह बात मुझे अद्भुत और आश्चर्यजनक लगती है।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक आनंद का जन्म इस संसार में हुआ, तो पृथ्वी पर कदम रखने से पहले ही चार देवताओं ने उन्हें ग्रहण किया और माता के सामने रखकर कहा, हे रानी, प्रसन्न हो, तुमने एक शक्तिशाली पुत्र को जन्म दिया है।" आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान बुद्ध का एक अद्भुत और आश्चर्यजनक वचन मानता हूँ। आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक आनंद का जन्म हुआ, तो वे शुद्ध, जल, कफ, रक्त या किसी भी अशुद्धता से रहित होकर जन्मे। मानो किसी रत्न को कश्मीरी वस्त्र पर रखा गया हो। न तो कश्मीरी वस्त्र रत्न से मैला होता है और न ही रत्न कश्मीरी वस्त्र से। यह दोनों की शुद्धता के कारण है। उसी प्रकार जब ज्ञान प्राप्ति के इच्छुक आनंद का जन्म हुआ, तो वे शुद्ध, जल, कफ, रक्त या किसी भी अशुद्धता से रहित होकर जन्मे।" आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान की ओर से एक अद्भुत और आश्चर्यजनक बात के रूप में मानता हूँ।

आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखने वाले उस बालक के जन्म के तुरंत बाद, अपने पैरों पर खड़े हुए और जब उनके ऊपर श्वेत छत्र था, तो वे उत्तर दिशा में सात कदम चले, सभी दिशाओं में देखा और महान शब्दों में बोले, "मैं इस संसार का सर्वोपरि, सबसे स्वीकृत और सबसे वरिष्ठ हूँ। यह मेरा अंतिम जन्म है, मैं फिर से जन्म नहीं लूँगा।" आदरणीय महोदय, यह मेरे लिए भगवान बुद्ध का एक अद्भुत और आश्चर्यजनक कथन है।

'आदरणीय महोदय, मैंने ये शब्द स्वयं भगवान बुद्ध से सुने हैं और आपने भी इन्हें स्वीकार किया है। "आनंद, जब ज्ञान प्राप्ति की आकांक्षा रखने वाला इस संसार में जन्मा, देवताओं और मनुष्यों के संसार में, मारों, ब्रह्माओं, संन्यासियों और ब्राह्मणों के संसार में, देवताओं की महिमा से परे एक असीम प्रकाश उत्पन्न हुआ। संसार के भीतर के उन अंधकारमय और अछूते स्थानों में भी, जहाँ तेजस्वी चंद्रमा और सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता, देवताओं की महिमा से परे एक असीम प्रकाश उत्पन्न हुआ। वहाँ जन्म लेने वाले प्राणी उस प्रकाश के कारण एक-दूसरे को देख पाते थे और जान पाते थे कि वहाँ अन्य प्राणी भी जन्म ले चुके हैं। देवताओं की महिमा से परे उस असीम प्रकाश के कारण दस हजार प्रकार का संसार थरथरा उठा।" आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान बुद्ध का एक अद्भुत और आश्चर्यजनक वचन मानता हूँ।'

'तो आनंद, इसे भी भगवान बुद्ध की एक अद्भुत और आश्चर्यजनक कृति समझो। आनंद, तथागत को यह जानते हुए कि भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, बनी रहती हैं और लुप्त हो जाती हैं; यह जानते हुए कि बोध उत्पन्न होते हैं, बने रहते हैं और लुप्त हो जाते हैं; यह जानते हुए कि विचार उत्पन्न होते हैं, बने रहते हैं और लुप्त हो जाते हैं। आनंद, इसे भी भगवान बुद्ध की एक अद्भुत और आश्चर्यजनक कृति समझो।'

'आदरणीय महोदय, तथापि इस्त्यादि को जानने वाली भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, बनी रहती हैं और लुप्त हो जाती हैं; जानने वाली धारणाएँ उत्पन्न होती हैं, बनी रहती हैं और लुप्त हो जाती हैं; जानने वाले विचार उत्पन्न होते हैं, बने रहते हैं और लुप्त हो जाते हैं। आदरणीय महोदय, मैं इसे भगवान बुद्ध की एक अद्भुत और आश्चर्यजनक विशेषता के रूप में मानता हूँ।'

आदरणीय आनंद ने ऐसा कहा और यह जानकर प्रसन्न हुए कि गुरु ने मेरे शब्दों को स्वीकार किया है। वे भिक्षु आदरणीय आनंद के शब्दों से प्रसन्न हुए।

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय पूज्य बक्कुला राजगाह के बांस के जंगल में गिलहरियों के अभयारण्य में रहते थे। तभी पूज्य बक्कुला के एक मित्र, एसेला-कस्सापा, जो गृहस्थ थे, उनके पास आए, सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया, एक तरफ बैठ गए और बोले...

'आदरणीय बक्कुला कितने समय तक तपस्वी रहे?'

'मित्र, मैं अस्सी वर्षों तक तपस्वी रहा।'

'मित्र बक्कुला, इन अस्सी वर्षों के दौरान तुमने कितनी बार यौन क्रियाओं में लिप्त हुए?'

'मित्र कस्सपा, मुझसे इस तरह से सवाल नहीं किया जाना चाहिए कि इन अस्सी वर्षों में आपने कितनी बार यौन क्रियाओं में लिप्त हुए? मित्र कस्सपा, आपको मुझसे इस प्रकार पूछना चाहिए कि इन अस्सी वर्षों में आपके मन में कितनी बार यौन विचार आए?'

'मित्र बक्कुला, इन अस्सी वर्षों के दौरान आपके मन में कितनी बार यौन धारणाएं उत्पन्न हुईं?'

'मित्र कस्सपा, अपने अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे एक भी ऐसी यौन अनुभूति नहीं हुई है जो मेरे मन में उत्पन्न हुई हो।'

'आदरणीय बक्कुला को इन अस्सी वर्षों के दौरान एक भी यौन अनुभूति का ज्ञान नहीं है। मैं इसे आदरणीय बक्कुला की एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक उपलब्धि मानता हूँ।'

'मित्र कस्सपा, अपने अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे एक भी ऐसी क्रोधित या आहत करने वाली अनुभूति नहीं हुई है जो मेरे भीतर उत्पन्न हुई हो।'

'आदरणीय बक्कुला को इन अस्सी वर्षों के दौरान एक भी क्रोधित या आहत अनुभूति का अनुभव नहीं हुआ है। मैं इसे आदरणीय बक्कुला की एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक उपलब्धि मानता हूँ।'

'मित्र कश्यप, अपने अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे एक भी कामुक विचार का उदय नहीं हुआ है।'

'आदरणीय बक्कुला को इन अस्सी वर्षों के दौरान एक भी कामुक विचार नहीं आया। मैं इसे आदरणीय बक्कुला का एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक पहलू मानता हूँ।'

'मित्र कश्यप, अपने अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे एक भी ऐसा क्रोधपूर्ण या पीड़ादायक विचार याद नहीं है जो मेरे मन में उत्पन्न हुआ हो।'

'आदरणीय बक्कुला को इन अस्सी वर्षों के दौरान एक भी क्रोधित या आहत विचार का अनुभव नहीं हुआ। मैं इसे आदरणीय बक्कुला की एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक विशेषता मानता हूँ।'

'मित्र कस्सपा, अपने इन अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे गृहस्थ से वस्त्र स्वीकार करने का कोई आशय नहीं है।'

'आदरणीय बक्कुला ने इन अस्सी वर्षों में कभी किसी गृहस्थ से वस्त्र स्वीकार नहीं किया। मैं इसे आदरणीय बक्कुला का एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक पहलू मानता हूँ।'

'मित्र कस्सपा, अपने इन अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे किसी उपकरण से वस्त्र काटने का कोई तरीका नहीं पता।'

'यह आदरणीय बक्कुला इन अस्सी वर्षों में किसी भी उपकरण से अपने वस्त्र को काटने के बारे में नहीं जानते। मैं इसे आदरणीय बक्कुला का एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक पहलू मानता हूँ।'

'मित्र कस्सपा, अपने अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे सुई से वस्त्र सिलना भी नहीं आता।'

'आदरणीय बक्कुला को इन अस्सी वर्षों में सुई से वस्त्र सिलना भी नहीं आता। मैं इसे आदरणीय बक्कुला का एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक पहलू मानता हूँ।'

'मित्र कस्सपा, अपने इन अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे वस्त्रों को रंगने का कोई ज्ञान नहीं है।'

'आदरणीय बक्कुला को इन अस्सी वर्षों में वस्त्र को रंगने का ज्ञान नहीं है। मैं इसे आदरणीय बक्कुला की एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक बात मानता हूँ।'

'मित्र कस्सपा, अपने इन अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे कटिना वस्त्र सिलना नहीं आता।'

'यह आदरणीय बक्कुला इन अस्सी वर्षों में कटिना वस्त्र सिलना नहीं जानते। मैं इसे आदरणीय बक्कुला की एक आश्चर्यजनक और विस्मयकारी बात मानता हूँ।'

'मित्र कस्सपा, अपने अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन में, मुझे कभी भी वस्त्र सिलने के लिए किसी सहचर को नियुक्त करने का ख्याल नहीं आया, ...निमंत्रण स्वीकार करने का, ...यहाँ तक कि ऐसा विचार भी मन में नहीं आया। हे! कोई मुझे आमंत्रित करे!'

'आदरणीय बक्कुला को न तो वस्त्र सिलने के लिए सहकर्मियों को नियुक्त करने का ज्ञान है, न ही निमंत्रण स्वीकार करने का, और न ही इस विचार का उदय होने का। ओह! काश कोई मुझे भी आमंत्रित करता! इन अस्सी वर्षों के दौरान। आदरणीय बक्कुला की यह बात मेरे लिए आश्चर्यजनक और अद्‌भुत है।'

'मित्र कस्सपा, अपने इन अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे कभी किसी घर के अंदर बैठने, घर के अंदर भोजन करने, किसी स्त्री के छोटे से छोटे संकेत को भी देखने, किसी स्त्री को कम से कम श्लोक की चार पंक्तियाँ सिखाने, भिक्षुणियों के कक्ष में जाने, भिक्षुणियों को शिक्षा देने, प्रशिक्षु नौसिखियों (स्त्री या पुरुष) को शिक्षा देने का अवसर नहीं मिला।'

'यह आदरणीय बक्कुला अपने अस्सी वर्षों के दौरान घर के अंदर बैठकर प्रशिक्षु नौसिखियों, चाहे वे स्त्री हों या पुरुष, को शिक्षा देने के बारे में नहीं जानते। मैं आदरणीय बक्कुला के इस गुण को अद्‌भुत और आश्चर्यजनक मानता हूँ।'

'मित्र कस्सपा, अपने इन अस्सी वर्षों के तपस्वी जीवन के दौरान, मुझे किसी को दीक्षा देने, किसी को उच्च दीक्षा प्रदान करने, किसी को आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराने या किसी नौसिखिए की देखभाल करने, भाप स्नान करने, स्नान के लिए स्नान पाउडर का उपयोग करने, शरीर की मालिश के लिए किसी सहोदर को नियुक्त करने, थोड़े समय के लिए भी किसी बीमारी के उत्पन्न होने, किसी बीमारी के लिए कोई दवा लेने, कम से कम कुछ हरी दलिया खाने, गलत करवट लेकर सोने, सोने, गाँव के अंत में बारिश देखने का कोई भी कार्य याद नहीं है।

'यह आदरणीय बक्कुला किसी को दीक्षा देने के बारे में नहीं जानते, ...कि गाँव के अंत में होने वाली बारिश का उन्होंने इन अस्सी वर्षों में अवलोकन किया है। मैं आदरणीय बक्कुला की इस बात को एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक घटना मानता हूँ।'

'मित्र, मैंने केवल सात दिनों के लिए ही कर्ज के साथ देशवासी के भोजन का सेवन किया था, आठवें दिन मुझे मृत्यु का अहसास हुआ।'

'आदरणीय बक्कुला ने सात दिनों तक ऋणी रहते हुए देशवासियों के भोजन का सेवन किया, आठवें दिन उनका प्राण थम गए। मैं इसे आदरणीय बक्कुला की एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक घटना मानता हूँ।'

'मित्र बक्कुला, क्या मैं इस युग में दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त कर सकता हूँ?' इसके बाद अचेला कस्सपा ने उसी युग में दीक्षा और उच्च दीक्षा प्राप्त की। पूज्य कस्सपा की उच्च दीक्षा के कुछ ही समय बाद, वे भीड़ से अलग होकर, बुराई को दूर करने के लिए तत्परता से निवास करने लगे और यहीं और इसी क्षण पवित्र जीवन के महान उद्देश्य को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए कुल के पुत्रों का उचित रूप से तपस्वी जीवन व्यतीत करना होता है। वे जानते थे कि जन्म का नाश हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, और अब कुछ भी पाने की इच्छा नहीं बची है। पूज्य कस्सपा पूर्ण पुरुषों में से एक बन गए।

कुछ समय बाद ही आदरणीय बक्कुला ने चाबियों का एक गुच्छा लिया और एक घर से दूसरे घर जाते हुए कहा, 'मित्रों, आओ! आज मेरा अंतिम अंत होगा।'

आदरणीय बक्कुला ने चाबियों का एक गुच्छा लिया और एक घर से दूसरे घर जाते हुए कहा, 'मित्रों, आओ! आज मेरा अंतिम अंत होगा। मैं इसे भी आदरणीय बक्कुला की एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक घटना के रूप में स्वीकार करता हूँ।'

आदरणीय बक्कुला ने बैठे हुए भिक्षुओं के समुदाय के बीच अंतिम निर्वाण प्राप्त किया।

यह भी मेरे लिए आदरणीय बक्कुला की एक अद्‌भुत और आश्चर्यजनक उपलब्धि है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 13.5दंतभूमि सुत्त(125)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली भाषा से आईबी हॉर्नर द्वारा अनुवादित (1998)

अंतर्वस्तु

1आस्था की प्राप्ति
2नैतिकता
3इंद्रिय-नियंत्रण
4खाने में संयम बरतें
5सतर्कता
6सजगता और स्पष्ट चेतना
7पांच बाधाओं पर विजय प्राप्त करना
8ध्यान के चार अनुप्रयोग
9झाना
10(तीन ज्ञान, ते-विज्जा)
10.1(1. पूर्व निवासों की स्मृति)
10.2(2. दिव्य दृष्टि)
10.3(3. कैंकर का नाश: संतत्व)

मैंने ऐसा सुना है: एक समय भगवान राजगृह के पास बांस के जंगल में गिलहरियों के भोजन स्थल पर ठहरे हुए थे। उस समय भिक्षु अचिरवत वन कुटिया में ठहरे हुए थे।1 तब राजकुमार जयसेना,2 जो हमेशा इधर-उधर टहलते रहते थे, पैदल घूमते रहते थे, भिक्षु अचिरवत के पास पहुँचे; पास आकर उन्होंने अचिरवत को नमस्कार किया; मित्रतापूर्ण और शिष्टाचारपूर्ण अभिवादन करने के बाद वे आदरपूर्वक कुछ दूरी पर बैठ गए। आदरपूर्वक बैठे हुए राजकुमार जयसेना ने भिक्षु अचिरवत से इस प्रकार कहा:

"मैंने सुना है, हे प्रिय अग्गिवेसना, कि यदि कोई भिक्षु यहाँ लगन, उत्साह और दृढ़ संकल्प के साथ निवास करता है, तो वह मन की एकाग्रता प्राप्त कर सकता है।"

"यही सत्य है, राजकुमार; यही सत्य है, राजकुमार। यहाँ परिश्रमपूर्वक, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होकर रहने वाला भिक्षु एकाग्रचित्तता प्राप्त कर सकता है।"

"यह अच्छा होगा यदि पूज्य अग्गिवेसना मुझे धम्म की शिक्षा दें, जैसा कि उन्होंने इसे सुना है, जैसा कि उन्होंने इसमें महारत हासिल की है।"

"हे राजकुमार, मैं तुम्हें धर्म का वह पाठ नहीं सिखा सकता जो मैंने सुना है, जो मैंने उसमें पारंगत किया है। अब, यदि मैं तुम्हें धर्म का वह पाठ सिखाऊँ जो मैंने सुना है, जो मैंने उसमें पारंगत किया है, और यदि तुम मेरी बातों का अर्थ न समझ पाओ, तो यह मेरे लिए कष्टदायक होगा, यह मेरे लिए झुंझलाहट का कारण होगा।"

"कृप्य अग्गिवेसना मुझे धर्म का उपदेश दें, जैसा उन्होंने सुना है, जैसा उन्होंने उसमें महारत हासिल की है। शायद मैं अग्गिवेसना की बातों का अर्थ समझ सकूँ।"

"हे राजकुमार, यदि मैं तुम्हें धर्म का उपदेश उसी प्रकार दूं जैसा मैंने सुना है, जैसा मैंने उसमें पारंगत हुआ हूं, और यदि तुम मेरी बातों का अर्थ समझ जाओ, तो यह अच्छा होगा; यदि तुम मेरी बातों का अर्थ न समझो, तो तुम्हें यथास्थिति में ही रहना होगा: तुम्हें इस विषय पर मुझसे और प्रश्न नहीं करने चाहिए।"

"उद्धारकर्ता अग्गिवेसना मुझे धर्म का उपदेश दें, जैसा उन्होंने सुना है, जैसा उन्होंने उसमें पारंगत हुए हैं। यदि मैं आदरणीय अग्गिवेसना की बातों का अर्थ समझ जाऊं, तो यह अच्छा होगा; यदि मैं आदरणीय अग्गिवेसना की बातों का अर्थ न समझ पाऊं, तो मैं जैसा हूं वैसा ही रहूंगा; मैं इस विषय पर आदरणीय अग्गिवेसना से आगे कोई प्रश्न नहीं करूंगा।"

तब नवोदित अचिरवता ने राजकुमार जयसेना को धर्म का उपदेश दिया, जैसा कि उन्होंने सुना था और जैसा कि उन्होंने उसमें महारत हासिल की थी। यह सुनकर राजकुमार जयसेना ने नवोदित अचिरवता से इस प्रकार कहा:

“हे अग्गिवेसना, यह असंभव है; ऐसा संभव नहीं कि एक लगनशील, उत्साही और दृढ़ निश्चयी भिक्षु एकाग्रचित्त अवस्था प्राप्त कर ले।” तब राजकुमार जयसेना ने नवोदित अचिरवत को यह कहकर कि यह असंभव है और संभव नहीं है, अपने आसन से उठकर प्रस्थान कर दिया।

राजकुमार जयसेना के चले जाने के तुरंत बाद, नवोदित अचिरवत भगवान के पास पहुँचे; भगवान को प्रणाम करने के बाद, वे आदरपूर्वक दूरी पर बैठ गए। आदरपूर्वक दूरी पर बैठते हुए, नवोदित अचिरवत ने भगवान को राजकुमार जयसेना के साथ हुई सारी बातचीत बताई। यह सुनकर, भगवान ने नवोदित अचिरवत से इस प्रकार कहा:

"हे अग्गिवेसन, इससे क्या लाभ है? राजकुमार जयसेना, जो इंद्रिय सुखों के बीच रहकर, उनका आनंद लेते हुए, उनके विचारों में लीन होकर, उनके बुखार से जलते हुए, उनकी खोज में तड़पते हुए, उस ज्ञान को जान लें, देख लें, प्राप्त कर लें या अनुभव कर लें जो त्याग से जाना जा सकता है, त्याग से देखा जा सकता है, त्याग से प्राप्त किया जा सकता है, त्याग से अनुभव किया जा सकता है - ऐसी स्थिति संभव ही नहीं है। हे अग्गिवेसन, यह ऐसा ही है जैसे वश में किए जाने वाले हाथियों, घोड़ों या बैलों में से दो हाथी, दो घोड़े या दो बैल अच्छी तरह से वश में और प्रशिक्षित हैं, और दो वश में नहीं हैं, प्रशिक्षित नहीं हैं। हे अग्गिवेसन, आप इसके बारे में क्या सोचते हैं? क्या ये दो हाथी, घोड़े या बैल, जिन्हें वश में किया जाना था और जो अच्छी तरह से वश में और प्रशिक्षित हैं - क्या वश में किए जाने पर वे अपनी वश में होने की क्षमता तक पहुँच जाएँगे, क्या वे वश में किए जाने पर उस स्तर तक पहुँच जाएँगे जो क्या यह नियंत्रित अवस्था है?

"जी हाँ, आदरणीय महोदय।"

लेकिन वे दो हाथी या घोड़े या बैल जिन्हें वश में किया जाना था, लेकिन जिन्हें न तो वश में किया गया और न ही प्रशिक्षित किया गया - क्या ये, वश में न किए जाने पर, उस अवस्था को प्राप्त कर लेंगे जिस अवस्था को वे दो हाथी या घोड़े या बैल प्राप्त करते हैं जिन्हें वश में किया जाना था और जिन्हें अच्छी तरह से वश में किया गया था और प्रशिक्षित किया गया था?

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

फिर भी, अग्गिवेसन, राजकुमार जयसेना, जो इंद्रिय सुखों के बीच रहते हैं... उनके लिए वैराग्य से जो जाना और अनुभव किया जा सकता है, उसे जानना, देखना, प्राप्त करना या अनुभव करना असंभव है। यह ऐसा है जैसे, अग्गिवेसन, किसी गाँव या कस्बे के पास एक विशाल पर्वत ढलान हो, जिस पर दो मित्र हाथ में हाथ डालकर गाँव या कस्बे से आ रहे हों; पर्वत ढलान पर पहुँचकर एक मित्र तलहटी में रुक जाए जबकि दूसरा शिखर पर चढ़ जाए। तब पर्वत ढलान की तलहटी में खड़ा मित्र शिखर पर खड़े मित्र से कहे: 'मेरे प्रिय, शिखर पर खड़े होकर तुम्हें क्या दिखाई देता है?' वह उत्तर दे: 'मेरे प्रिय, शिखर पर खड़े होकर मुझे रमणीय उद्यान, रमणीय वन, रमणीय समतल भूमि और रमणीय तालाब दिखाई देते हैं।' लेकिन दूसरा व्यक्ति शायद इस प्रकार बोले: 'यह असंभव है, ऐसा हो ही नहीं सकता, मेरे प्रिय, कि जब तुम पर्वत की चोटी पर खड़े हो, तो तुम्हें... मनमोहक तालाब दिखाई दें।' तब पर्वत की चोटी पर खड़ा मित्र नीचे उतरकर अपने मित्र का हाथ पकड़कर उसे पर्वत की चोटी पर चढ़ाता है और उसे सांस लेने के लिए कुछ क्षण देता है, फिर उससे इस प्रकार पूछता है: 'अब, मेरे प्रिय, जब तुम पर्वत की चोटी पर खड़े हो, तो तुम्हें क्या दिखाई देता है?' वह शायद इस प्रकार बोले: 'मैं, मेरे प्रिय, जब पर्वत की चोटी पर खड़ा हूँ, तो मुझे मनमोहक उद्यान... मनमोहक तालाब दिखाई देते हैं।' वह शायद इस प्रकार बोले: 'अभी-अभी, मेरे प्रिय, हमने समझा कि तुम कह रहे थे: यह असंभव है, ऐसा हो ही नहीं सकता कि जब तुम पर्वत की चोटी पर खड़े हो, तो तुम्हें मनमोहक... तालाब दिखाई दें। लेकिन अब हम समझते हैं कि तुम कह रहे हो: 'मैं, मेरे प्रिय, जब पर्वत की चोटी पर खड़ा हूँ, तो मुझे मनमोहक उद्यान... मनमोहक तालाब दिखाई देते हैं।' वह शायद इस तरह बोलेगा: 'ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि, मेरी प्रिय, मैं इस विशाल पर्वत ढलान से घिरा हुआ था, इसलिए मैं वह नहीं देख पा रहा था जो देखा जा सकता था।'

"हे अग्गिवेसन, राजकुमार जयसेना तो इससे भी कहीं अधिक अज्ञान के इस अंबार में घिरे, अवरुद्ध, अवरुद्ध और लिपटे हुए हैं। वास्तव में, राजकुमार जयसेना, जो इंद्रिय सुखों के बीच रहते हैं, उनका आनंद लेते हैं, उनके विचारों में लीन रहते हैं, उनकी खोज में तत्पर रहते हैं, फिर भी वैराग्य से जो जाना, देखा, प्राप्त किया और अनुभव किया जा सकता है, उसे जान, देख, प्राप्त या अनुभव करना उनके लिए संभव ही नहीं है। हे अग्गिवेसन, यदि ये दोनों उपमाएँ आपके मन में आतीं, तो राजकुमार जयसेना स्वाभाविक रूप से आप पर विश्वास करने वाले व्यक्ति की तरह व्यवहार करते।"

"लेकिन हे पूज्यवर, राजकुमार जयसेना के लिए ये दो उपमाएँ मेरे मन में कैसे आ सकती थीं, जबकि ये सहज हैं, अर्थात् भगवान से निकली हैं, और पहले कभी सुनी नहीं गई हैं?"

"जैसे, अग्गिवेसना, एक महान अभिषिक्त राजा, एक हाथी शिकारी को संबोधित करते हुए कहता है; 'हे अच्छे हाथी शिकारी, राजा के हाथी पर सवार होकर हाथी वन में जाओ। जब तुम्हें कोई जंगली हाथी दिखाई दे, तो उसे राजा के हाथी के गले में बाँध दो।' और, हाथी शिकारी अग्गिवेसना ने महाराज की आज्ञा का पालन करते हुए 'जी महाराज' कहा और राजा के हाथी पर सवार होकर हाथी वन में चला गया। वहाँ उसने एक हाथी को देखा और उसे राजा के हाथी के गले में बाँध दिया। इस प्रकार राजा का हाथी उसे खुले में ले आया। परन्तु अग्गिवेसना, उस हाथी के मन में हाथी वन के लिए तड़प थी। इस विषय में हाथी शिकारी ने महाराज को बताया कि हाथी खुले में आ गया है। तब महाराज ने एक हाथी प्रशिक्षक को संबोधित करते हुए कहा, 'हे कुशल हाथी प्रशिक्षक, आओ और उस हाथी को वश में करो। उसके जंगली स्वभाव, उसकी जंगली यादों और आकांक्षाओं को शांत करो, उसके जंगल के लिए उसकी बेचैनी और तड़प को कम करो, उसे गाँवों से प्रसन्न करो और उसे मनुष्य के तौर-तरीकों से परिचित कराओ।'

और, हाथी प्रशिक्षक अग्गिवेसना ने महाराज की आज्ञा का पालन करते हुए 'जी महाराज' कहा और एक बड़ा खंभा जमीन में गाड़कर हाथी को उसकी गर्दन से बांध दिया ताकि उसके जंगली स्वभाव को त्यागकर उसे मनुष्य के तौर-तरीकों का आदी बनाया जा सके। फिर प्रशिक्षक ने उससे कोमल, मधुर, स्नेहपूर्ण, हृदयस्पर्शी, सभ्य और जनमानस को भाने वाले शब्दों में बात की। और, अग्गिवेसना, जनमानस को भाने वाले कोमल शब्दों से संबोधित किए जाने पर, हाथी ने ध्यान से सुना और सीखने में अपना मन लगाया। इसके बाद प्रशिक्षक ने उसे घास और पानी दिया। जब अग्गिवेसना, हाथी ने प्रशिक्षक से घास और पानी ग्रहण कर लिया, तो प्रशिक्षक के मन में यह विचार आया: 'अब राजा का हाथी जीवित रहेगा।' फिर हाथी प्रशिक्षक उसे एक और काम देता है, और कहता है: 'उठो, नीचे रखो।' जब राजा का हाथी अग्गिवेसना, हाथी प्रशिक्षक की आज्ञा का पालन करता है और उसके निर्देशों के अनुसार उठाता और नीचे रखता है, तो हाथी प्रशिक्षक उसे एक और काम देता है, और कहता है: 'उठो, बैठो।' जब राजा का हाथी, अग्गिवेसना, हाथी प्रशिक्षक की आज्ञा का पालन करते हुए उठकर बैठ जाता है, तो हाथी प्रशिक्षक उसे एक और कार्य देता है, जिसे 'अपनी जगह पर डटे रहना' कहा जाता है: वह हाथी की सूंड से एक ढाल बांध देता है; एक भाला लिए हुए व्यक्ति उसकी गर्दन पर बैठा होता है, और भाले लिए हुए व्यक्ति उसके चारों ओर खड़े होते हैं; और हाथी प्रशिक्षक, एक लंबे डंडे वाला भाला लिए हुए, उसके आगे खड़ा होता है। 'अपनी जगह पर डटे रहने' के कार्य के दौरान वह न तो अपना अगला पैर हिलाता है, न ही पिछला पैर, न ही अपने शरीर का अगला भाग, न ही पिछला भाग, न ही अपना सिर, न ही अपना कान, न ही अपना दांत, न ही अपनी पूंछ और न ही अपनी सूंड हिलाता है। राजा का हाथी वह होता है जो तलवार, कुल्हाड़ी, तीर, और हथौड़े के वार और ढोल की गूंजती हुई आवाज को सहन करता है। वह ढोल, शंख और ढोल की तरह है, जैसे शुद्ध सोना, जो सभी मैल और अशुद्धियों से मुक्त हो, राजा के योग्य हो, एक शाही संपत्ति हो और राजसी गुण माना जाता हो।

आस्था की प्राप्ति

"इसी प्रकार, अग्गिवेसना, इस संसार में तथागत का जन्म होता है, जो पूर्णतः आत्मज्ञानी, उचित ज्ञान और आचरण से संपन्न, कल्याणकारी, संसार के ज्ञाता, मनुष्यों को वश में करने वाले अद्वितीय सारथी, प्रबुद्ध, भगवान हैं। वे अपने अलौकिक ज्ञान से इस संसार को देवताओं, मारों, ब्रह्माओं, सृष्टि को उसके संन्यासियों और ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों सहित ज्ञान प्रदान करते हैं। वे धर्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ में सुंदर, मध्य में सुंदर और अंत में सुंदर है, आत्मा और अक्षरों दोनों से; वे ब्रह्मयात्रा का प्रचार करते हैं, जो पूर्णतः सिद्ध और शुद्ध है। एक गृहस्थ, गृहस्थ का पुत्र या किसी अन्य परिवार में जन्मा व्यक्ति उस धर्म को सुनता है। उस धर्म को सुनकर वह तथागत में आस्था प्राप्त करता है। इस प्राप्त आस्था से युक्त होकर वह इस प्रकार चिंतन करता है: 'गृहस्थ जीवन सीमित और धूल भरा है, बाहर जाना खुले में; घर में रहने वाले के लिए ब्रह्म-मार्ग पर पूर्णतः तृप्त, पूर्णतः शुद्ध, शंख के समान शुद्ध होना आसान नहीं है। मान लीजिए कि मैं बाल और दाढ़ी काटकर, भगवा वस्त्र धारण करके घर से निकल कर संन्यासी जीवन व्यतीत करूँ? कुछ समय बाद, अपने धन-संपत्ति, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, त्यागकर, अपने संबंधियों के समूह, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, त्यागकर, बाल और दाढ़ी काटकर, भगवा वस्त्र धारण करके, वह घर से निकल कर संन्यासी जीवन व्यतीत कर लेता है। इस प्रकार आर्य शिष्य अग्गिवेसन खुले में निकल जाता है।

नैतिकता

"परन्तु, अग्गिवेसना, देवताओं और मनुष्यों में यह लालसा होती है, अर्थात् पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों के लिए। तथागत उन्हें आगे अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'आओ, भिक्षु, नैतिक बनो, कर्तव्यों के वश में रहो, उचित आचरण और व्यवहार धारण करो, छोटी से छोटी गलती में भी खतरा देखो; उन्हें दूर करो, और प्रशिक्षण के नियमों का पालन करो।'

इंद्रिय-नियंत्रण

और जब, अग्गिवेसना, आर्य शिष्य नैतिक होता है, नियंत्रण में रहकर जीवन व्यतीत करता है..., उनका पालन करता है, प्रशिक्षण के नियमों में स्वयं को प्रशिक्षित करता है, तब तथागत उसे आगे अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'हे भिक्षु, इंद्रियों के द्वारों के प्रति सावधान रहो। किसी भौतिक आकृति को आँख से देखकर...(जैसा ऊपर बताया गया है)। किसी मानसिक अवस्था को मन से जानकर, उसके सामान्य स्वरूप से मोहित मत हो, उसके विवरण से मोहित मत हो। क्योंकि यदि तुम मन की इंद्रिय को अनियंत्रित रखोगे, तो लोभ और निराशा, मन की बुरी और अकुशल अवस्थाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए मन की इंद्रिय को नियंत्रित रखो, मन की इंद्रिय की रक्षा करो, मन की इंद्रिय पर नियंत्रण प्राप्त करो।'

खाने में संयम बरतें

और जब, अग्गिवेसना, आर्य शिष्य इंद्रियों के द्वारों के प्रति सतर्क हो जाता है, तब तथागत उसे और अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'आओ, भिक्षु, भोजन में संयम बरतो...(जैसा ऊपर बताया गया है)... आराम से रहो।'

सतर्कता

"जब, अग्गिवेसना, आर्य शिष्य, भोजन में संयम बरतता है, तो तथागत उसे और अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'आओ, भिक्षु, सतर्कता पर एकाग्र रहो...(जैसा ऊपर बताया गया है)... तुम्हें अपने मन को बाधक मानसिक अवस्थाओं से शुद्ध करना चाहिए।'

सजगता और स्पष्ट चेतना

और जब आर्य शिष्य अग्गिवेसना सतर्कता में लीन होता है, तब तथागत उसे और अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'आओ, भिक्षु, सजग रहो और निर्मल चेतना धारण करो। निर्मल चेतना से कार्य करने वाले बनो...(जैसा ऊपर बताया गया है)... बोलते हुए, मौन।'

पांच बाधाओं पर विजय प्राप्त करना

और जब, अग्गिवेसना, आर्य शिष्य, सजगता और स्पष्ट चेतना से परिपूर्ण हो जाता है, तब तथागत उसे आगे अनुशासित करते हुए कहते हैं: 'आओ, भिक्षु, किसी एकांत स्थान पर, जंगल में, किसी वृक्ष की जड़ में, किसी पर्वत की ढलान पर, किसी सुनसान जगह में, किसी पहाड़ी गुफा में, किसी कब्रिस्तान में, किसी वन में, खुले में या पुआल के ढेर पर अपना निवास स्थान चुन लो।' वह जंगल में एकांत में स्थित किसी स्थान को चुनता है... या फिर भूसे के ढेर पर। भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने पर, वह पालथी मारकर बैठ जाता है, पीठ सीधी रखते हुए, अपने सामने सचेतनता को स्थापित करते हुए, वह संसार के प्रति लालसा से मुक्त होकर, निर्लोभ मन से निवास करता है, वह मन को लालसा से शुद्ध करता है। द्वेष के कलंक से मुक्त होकर, वह परोपकारी मन से, सभी प्राणियों और जीवों के कल्याण के प्रति करुणामय होकर, मन को द्वेष के कलंक से शुद्ध करता है। आलस्य और सुस्ती से मुक्त होकर, वह आलस्य और सुस्ती से मुक्त होकर; प्रकाश को देखते हुए, सचेतन, स्पष्ट रूप से जागरूक होकर, वह मन को आलस्य और सुस्ती से शुद्ध करता है। बेचैनी और चिंता से मुक्त होकर, वह शांत मन से निवास करता है, वह मन को बेचैनी और चिंता से शुद्ध करता है। संदेह से मुक्त होकर, वह संदेह से ग्रस्त मन से निवास करता है। कुशल अवस्थाओं के बारे में अविचलित रहते हुए, वह मन को संदेह से मुक्त करता है।

ध्यान के चार अनुप्रयोग

वह मन के इन पाँच अवरोधों से छुटकारा पाकर, जो मन को दूषित करते हैं और अंतर्ज्ञान को कमजोर करते हैं, शरीर में शरीर का चिंतन करते हुए, पूरी तरह सचेत और जागरूक होकर संसार में लोभ और निराशा को नियंत्रित करता है। वह भावनाओं, मन और मानसिक अवस्थाओं का चिंतन करते हुए आगे बढ़ता है, पूरी तरह सचेत और जागरूक होकर संसार में लोभ और निराशा को नियंत्रित करता है।

"जैसे, अग्गिवेसना, एक हाथी प्रशिक्षक, एक बड़े खंभे को जमीन में गाड़कर, एक जंगली हाथी को उसकी गर्दन से बांध देता है ताकि उसके जंगली तौर-तरीकों, उसकी जंगली आकांक्षाओं और उसके जंगल के लिए उसकी बेचैनी, उसकी व्याकुलता और उसके उन्माद को शांत कर सके, ताकि वह गांवों से प्रसन्न हो जाए और मानवीय तौर-तरीकों का आदी हो जाए — ठीक उसी प्रकार, अग्गिवेसना, ध्यान के ये चार अनुप्रयोग गृहस्थों के तौर-तरीकों, उनकी आकांक्षाओं और उनके उन्माद, उनकी व्याकुलता और उनके उन्माद को शांत करने के लिए मन के बंधन हैं; ये सही मार्ग पर ले जाने और निर्वाण की प्राप्ति के लिए हैं।"

तब तथागत उन्हें और अनुशासन सिखाते हुए कहते हैं: 'हे भिक्षु, शरीर में शरीर का चिंतन करते हुए आगे बढ़ो, परन्तु शरीर से संबंधित विचारों में मत उलझो; भावनाओं में भावनाओं का चिंतन करते हुए आगे बढ़ो... मन में मन का चिंतन करते हुए... मानसिक अवस्थाओं में मानसिक अवस्थाओं का चिंतन करते हुए आगे बढ़ो, परन्तु मानसिक अवस्थाओं से संबंधित विचारों में मत उलझो।'

झाना

प्रारंभिक और विवेचनात्मक विचारों को शांत करके, मन को शांत और एक बिंदु पर स्थिर करके, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। यह ध्यान आरंभिक और विवेचनात्मक विचारों से रहित होता है, एकाग्रता से उत्पन्न होता है और आनंदमय होता है। आनंद के लुप्त होने पर, वह समभाव, एकाग्रता और स्पष्ट चेतना के साथ रहता है और अपने भीतर उस आनंद का अनुभव करता है जिसके बारे में आर्य कहते हैं: 'आनंदमय जीवन वह है जो समभाव और सचेत है,' और वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। आनंद से मुक्ति पाकर, पीड़ा से मुक्ति पाकर, अपने पूर्व सुखों और दुखों के कम होने से, वह चतुर्थ ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसमें न तो पीड़ा है और न ही आनंद, और जो समभाव और सचेतता से पूर्णतः शुद्ध है।

(तीन ज्ञान, ते-विज्जा)

(1. पूर्व निवासों की स्मृति)

फिर इस प्रकार शांत, पूर्णतः शुद्ध, पूर्णतः स्पष्ट, दोषरहित, अपवित्र, लचीला और क्रियाशील, स्थिर, अचल मन से वह अपने मन को पूर्व जन्मों के ज्ञान और स्मरण की ओर लगाता है: वह अनेक पूर्व जन्मों को याद करता है, जैसे: एक जन्म, दो जन्म, तीन... चार... पाँच... दस... बीस... तीस... चालीस... पचास... सौ... हज़ार... एक लाख जन्म, और अनेक युगों का एकीकरण और अनेक युगों का विघटन और अनेक युगों का एकीकरण-विघटन: 'मेरा नाम ऐसा था, मेरा कुल ऐसा था, मेरा रंग ऐसा था, मेरा पालन-पोषण ऐसा हुआ, मुझे ऐसे सुख और दुख के अनुभव हुए, और मेरा जीवनकाल ऐसा ही समाप्त हुआ।' इससे आगे बढ़कर मैं एक अन्य अवस्था में आया जहाँ मेरा नाम ऐसा था, मेरा कुल ऐसा था, मेरा रंग ऐसा था, मेरा पालन-पोषण ऐसा हुआ, मुझे ऐसे सुख और दुख के अनुभव हुए, और मेरा जीवनकाल ऐसा ही समाप्त हुआ। इससे आगे बढ़कर मैं उठा। 'यहाँ।' इस प्रकार वह अपने विभिन्न पूर्व निवासों को उनके सभी स्वरूपों और विवरणों के साथ याद करता है।

(2. दिव्य दृष्टि)

फिर शांत, पूर्णतः शुद्ध, पूर्णतः स्पष्ट, दोषरहित, अपवित्र, लचीले और क्रियाशील, स्थिर, अचल मन से वह अपने मन को प्राणियों के जन्म और मृत्यु के ज्ञान की ओर लगाता है। मनुष्यों की दृष्टि से श्रेष्ठ शुद्ध देव-दृष्टि से वह प्राणियों को जन्म लेते या जन्म लेते हुए देखता है; वह समझता है कि प्राणी अपने कर्मों के फल के अनुसार नीच, श्रेष्ठ, सुंदर, कुरूप, सुखी और दुष्ट होते हैं, तब वह सोचता है: वास्तव में ये योग्य प्राणी, जो शरीर से कुकर्म से ग्रस्त थे, वाणी से कुकर्म से ग्रस्त थे, विचार से कुकर्म से ग्रस्त थे, आर्यों का उपहास करते हैं, जो गलत मत रखते हैं और गलत मत के फलस्वरूप कर्म करते हैं - ये मरने के बाद शरीर के विखंडन से दुखी अवस्था में, बुरे जन्म में, पाताल में, निरय में उत्पन्न हुए हैं। परन्तु ये योग्य प्राणी, जो शरीर से अच्छे आचरण से ग्रस्त थे, जो लोग अच्छे आचरण वाले थे, जिन्होंने आर्यों का उपहास नहीं किया, सही दृष्टिकोण रखते थे, और सही दृष्टिकोण के फलस्वरूप कर्म करते थे, वे मरने के बाद शरीर के विखंडन पर एक अच्छे जन्म, स्वर्ग लोक में उठे हैं।

(3. कैंकर का नाश: संतत्व)

फिर शांत मन से... अविचल होकर, वह अपने मन को दोषों के नाश के ज्ञान की ओर लगाता है।5 वह यथार्थ को समझता है: यह पीड़ा है,6 यह पीड़ा का उद्भव है, यह पीड़ा का निवारण है, यह पीड़ा निवारण का मार्ग है। वह यथार्थ को समझता है: ये दोष हैं, यह दोषों का उद्भव है, यह दोषों का निवारण है, यह दोषों के निवारण का मार्ग है। इस प्रकार जानकर, इस प्रकार देखकर, उसका मन इंद्रिय सुखों के दोष से मुक्त हो जाता है, जन्म के दोष से मुक्त हो जाता है, अज्ञान के दोष से मुक्त हो जाता है। मुक्ति में उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है: मैं मुक्त हो गया हूँ; और वह समझता है: जन्म नष्ट हो गया है, ब्रह्म-यात्रा समाप्त हो गई है, जो करना था वह हो गया है, अष्टम-अष्टम का कोई अस्तित्व नहीं है।

वह भिक्षु सिरदर्द, सर्दी, भूख, प्यास, मच्छरों, मक्खियों, हवा, धूप और रेंगने वाले जीवों के स्पर्श, अपशब्दों और अप्रिय वाणी को सहन करने में सक्षम है; वह शारीरिक संवेदनाओं को सहने में सक्षम है जो उत्पन्न होने पर पीड़ादायक, तीव्र, तीक्ष्ण, गंभीर, दयनीय, दुखद और घातक होती हैं। आसक्ति, घृणा और भ्रम की सभी अशुद्धियों से मुक्त होकर, वह आहुति, भेंट, सम्मान और श्रद्धा के योग्य है, संसार में अद्वितीय पुण्य का क्षेत्र है।

हे अग्गिवेसना, यदि किसी राजा का हाथी वृद्धावस्था में, अनियंत्रित और अप्रशिक्षित अवस्था में मर जाता है, तो उस बूढ़े हाथी को अनियंत्रित हाथी के रूप में गिना जाता है। इसी प्रकार, हे अग्गिवेसना, यदि किसी राजा का हाथी युवावस्था में, अनियंत्रित और अप्रशिक्षित अवस्था में मर जाता है, तो उस युवा हाथी को अनियंत्रित हाथी के रूप में गिना जाता है। इसी प्रकार, हे अग्गिवेसना, यदि कोई वरिष्ठ भिक्षु रोगमुक्त रहते हुए मर जाता है, तो उस वरिष्ठ भिक्षु को अनियंत्रित भिक्षु के रूप में गिना जाता है। इसी प्रकार, हे अग्गिवेसना, यदि कोई नवदीक्षित भिक्षु रोगमुक्त रहते हुए मर जाता है, तो उस नवदीक्षित भिक्षु को अनियंत्रित भिक्षु के रूप में गिना जाता है। इसी प्रकार, हे अग्गिवेसना, यदि किसी राजा का हाथी वृद्धावस्था में, अच्छी तरह से प्रशिक्षित और प्रशिक्षित अवस्था में मर जाता है, तो उसे अनियंत्रित भिक्षु के रूप में गिना जाता है। प्रशिक्षित होने के बावजूद, राजा के बूढ़े हाथी की मृत्यु को पालतू हाथी के रूप में गिना जाता है। इसी प्रकार, अधेड़ उम्र के राजा के हाथी के लिए भी यही नियम लागू होता है। और इसी प्रकार, यदि राजा का युवा, अच्छी तरह से प्रशिक्षित हाथी मर जाता है, तो उस युवा हाथी की मृत्यु को पालतू हाथी के रूप में गिना जाता है। इसी प्रकार, यदि किसी वरिष्ठ भिक्षु की मृत्यु उसके सारे रोग सुलझ जाने के बाद हो जाती है, तो उस वरिष्ठ भिक्षु की मृत्यु को पालतू भिक्षु के रूप में गिना जाता है। इसी प्रकार, अधेड़ उम्र के भिक्षु के लिए भी यही नियम लागू होता है। और इसी प्रकार, यदि किसी नवदीक्षित भिक्षु की मृत्यु उसके सारे रोग सुलझ जाने के बाद हो जाती है, तो उस नवदीक्षित भिक्षु की मृत्यु को पालतू भिक्षु के रूप में गिना जाता है।

इस प्रकार भगवान ने कहा। भगवान की कही बात सुनकर नवोदित अचिरावता प्रसन्न हुआ।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 13.6भूमिजा सुत्त(126)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध राजगृह के पास बांस के जंगल में, गिलहरियों के अभयारण्य में ठहरे हुए थे।

फिर, सुबह सवेरे, पूज्य भूमिजा ने अपने वस्त्र धारण किए और अपना कुंड और बाहरी वस्त्र लेकर राजकुमार जयसेना के निवास पर गए।1 वहाँ पहुँचकर वे एक तैयार आसन पर बैठ गए। राजकुमार जयसेना पूज्य भूमिजा के पास गए और उनका अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के आदान-प्रदान के बाद, वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने पूज्य भूमिजा से कहा... भूमिजा, "गुरु भूमिजा, कुछ पुरोहित और ध्यानी इस शिक्षा का समर्थन करते हैं, इस मत का समर्थन करते हैं: 'यदि कोई ब्रह्मचर्य जीवन का अनुसरण करता है , तो परिणाम की कामना करने पर भी उसे परिणाम प्राप्त नहीं होते। यदि कोई कामना न करने पर भी ब्रह्मचर्य जीवन का अनुसरण करता है, तो भी उसे परिणाम प्राप्त नहीं होते। यदि कोई कामना करने और न करने दोनों स्थितियों में भी ब्रह्मचर्य जीवन का अनुसरण करता है, तो भी उसे परिणाम प्राप्त नहीं होते। यदि कोई न तो कामना करने और न ही न करने की स्थिति में भी ब्रह्मचर्य जीवन का अनुसरण करता है, तो भी उसे परिणाम प्राप्त नहीं होते।'2 इस संबंध में, गुरु भूमिजा के गुरु क्या कहते हैं, उनका क्या मत है, वे क्या घोषणा करते हैं?"

"मैंने यह बात भगवान बुद्ध से प्रत्यक्ष रूप से नहीं सुनी है, हे राजकुमार, मैंने यह बात उनसे प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त नहीं की है, परन्तु संभव है कि भगवान बुद्ध इस प्रकार उत्तर दें: 'यदि कोई पवित्र जीवन का अनुचित ढंग से पालन करता है, तो परिणाम की कामना करने पर भी, वह परिणाम प्राप्त करने में असमर्थ है। यदि कोई पवित्र जीवन का अनुचित ढंग से पालन करता है, तो इच्छा न करने पर भी... कामना करने पर भी और इच्छा न करने पर भी... न तो इच्छा करने पर भी और न ही इच्छा न करने पर भी, वह परिणाम प्राप्त करने में असमर्थ है। [परन्तु] यदि कोई पवित्र जीवन का उचित ढंग से पालन करता है, तो इच्छा करने पर भी, वह परिणाम प्राप्त करने में सक्षम है। यदि कोई पवित्र जीवन का उचित ढंग से पालन करता है, तो इच्छा न करने पर भी... कामना करने पर भी और इच्छा न करने पर भी... न तो इच्छा करने पर भी और न ही इच्छा न करने पर भी, वह परिणाम प्राप्त करने में सक्षम है।" मैंने यह बात भगवान बुद्ध से आमने-सामने नहीं सुनी है, न ही मुझे यह बात भगवान बुद्ध से आमने-सामने प्राप्त हुई है, लेकिन यह संभव है कि भगवान बुद्ध इस तरह से उत्तर दें।"

"यदि मास्टर भूमिजा के गुरु का यही कहना है, यदि यही उनका मत है, यदि यही उनकी घोषणा है, तो हाँ, मास्टर भूमिजा के गुरु ने मानो उन सभी पुजारियों और ध्यानियों को सिर से मारकर गिरा दिया है।"

इसके बाद राजकुमार जयसेना ने आदरणीय भूमिजा को अपने द्वारा तैयार किए गए दूध-चावल के व्यंजन परोसे।

फिर पूज्य भूमिजा ने भोजन करने के बाद, भिक्षाटन से लौटकर भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे हुए उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, "हे भगवान, अभी सुबह-सुबह मैंने अपने वस्त्र धारण किए और अपना भिक्षापात्र और बाहरी वस्त्र लेकर राजकुमार जयसेना के निवास पर गया। वहाँ पहुँचकर मैं एक तैयार आसन पर बैठ गया। फिर राजकुमार जयसेना मेरे पास आए और मेरा अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने मुझसे कहा, 'गुरु भूमिजा, कुछ पुरोहित और ध्यानी इस शिक्षा का समर्थन करते हैं, इस मत का समर्थन करते हैं: "यदि कोई व्यक्ति पवित्र जीवन का अनुसरण करता है, चाहे उसने किसी इच्छा की हो... या इच्छा न की हो... या इच्छा की हो और इच्छा न की हो... या इच्छा न की हो, तो उसे कोई फल प्राप्त नहीं होता।" इस संबंध में गुरु भूमिजा के गुरु क्या कहते हैं, उनका क्या मत है, वे क्या घोषणा करते हैं?'

जब यह कहा गया, तो मैंने राजकुमार जयसेना से उत्तर दिया, 'राजकुमार, मैंने यह बात भगवान बुद्ध से प्रत्यक्ष रूप से नहीं सुनी है, न ही मुझे यह बात उनसे प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हुई है, लेकिन संभव है कि भगवान बुद्ध इस प्रकार उत्तर दें: "यदि कोई व्यक्ति पवित्र जीवन का अनुचित ढंग से पालन करता है, चाहे उसने इच्छा की हो... या इच्छा न की हो... या इच्छा की हो और इच्छा न की हो... या इच्छा न की हो, तो वह परिणाम प्राप्त करने में असमर्थ है। [परन्तु] यदि कोई व्यक्ति पवित्र जीवन का उचित ढंग से पालन करता है, चाहे उसने इच्छा की हो... या इच्छा न की हो... या इच्छा की हो और इच्छा न की हो... या इच्छा न की हो, तो वह परिणाम प्राप्त करने में सक्षम है।" मैंने यह बात भगवान बुद्ध से प्रत्यक्ष रूप से नहीं सुनी है, न ही मुझे यह बात उनसे प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हुई है, लेकिन संभव है कि भगवान बुद्ध इस प्रकार उत्तर दें।'

"'यदि मास्टर भूमिजा के गुरु का यही कहना है, यदि यही उनका मत है, यदि यही उनकी घोषणा है, तो हाँ, मास्टर भूमिजा के गुरु ने मानो उन सभी पुजारियों और ध्यानियों को सिर से मारकर गिरा दिया है।'

"हे भगवान, इस प्रकार पूछे जाने पर क्या मैं इस प्रकार उत्तर दे रहा हूँ? क्या मैं भगवान बुद्ध के वचनों के अनुरूप बोल रहा हूँ? क्या मैं भगवान बुद्ध का असत्य वर्णन तो नहीं कर रहा हूँ? क्या मैं धर्म के अनुरूप उत्तर दे रहा हूँ ताकि धर्म के अनुरूप विचार रखने वाले किसी भी व्यक्ति को मेरी आलोचना करने का कोई आधार न मिले?"

"निश्चित रूप से, भूमिजा, इस प्रकार पूछे जाने पर इस प्रकार उत्तर देकर आप मेरे कहे अनुसार ही बोल रहे हैं, आप मुझे असत्य बातों से गलत ढंग से प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं, और आप धम्म के अनुरूप उत्तर दे रहे हैं ताकि धम्म के अनुरूप चिंतन करने वाले किसी भी व्यक्ति को आपकी आलोचना करने का कोई आधार न मिले। गलत दृष्टिकोण, गलत संकल्प, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान और गलत एकाग्रता से युक्त किसी भी पुरोहित या ध्यानी के लिए: यदि वे कर्मों की इच्छा करते हुए भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे कर्म प्राप्त करने में असमर्थ हैं। यदि वे इच्छा करते हुए और इच्छा न करते हुए भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे कर्म प्राप्त करने में असमर्थ हैं। यदि वे न तो इच्छा करते हुए और न ही इच्छा न करते हुए भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे कर्म प्राप्त करने में असमर्थ हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह कर्म प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति को तेल की आवश्यकता है, वह तेल की खोज में भटक रहा है, और वह एक टब में बजरी भरकर उसे दबाता है और बार-बार उस पर पानी छिड़कता है। यदि वह बजरी को टब में भरकर उसे दबाता रहे और बार-बार पानी छिड़कता रहे, चाहे उसने कोई इच्छा की हो... या न की हो... चाहे इच्छा की हो या न की हो... या न की हो, तो भी उसे कोई परिणाम नहीं मिलेगा। ऐसा क्यों? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।

"इसी प्रकार, गलत दृष्टिकोण, गलत संकल्प, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान और गलत एकाग्रता से युक्त कोई भी पुजारी या ध्यानी: यदि वे किसी इच्छा (परिणामों की) के साथ भी, इच्छा किए बिना, इच्छा किए बिना और इच्छा न किए बिना, या न तो इच्छा किए और न ही इच्छा किए बिना भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे परिणाम प्राप्त करने में असमर्थ हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति को दूध की आवश्यकता है, वह दूध की तलाश में भटक रहा है और नवजात गाय के सींग को मरोड़ता है। यदि वह नवजात गाय के सींग को तब भी मरोड़ता है जब उसने कोई इच्छा व्यक्त की हो... या बिना इच्छा व्यक्त किए... या इच्छा व्यक्त की हो... या न तो इच्छा व्यक्त की हो और न ही इच्छा व्यक्त की हो, तो भी उसे कोई परिणाम नहीं मिलेगा। ऐसा क्यों? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।

"इसी प्रकार, गलत दृष्टिकोण, गलत संकल्प, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान और गलत एकाग्रता से युक्त कोई भी पुजारी या ध्यानी: यदि वे किसी इच्छा (परिणामों की) के साथ भी, इच्छा किए बिना, इच्छा किए बिना और इच्छा न किए बिना, या न तो इच्छा किए और न ही इच्छा किए बिना भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे परिणाम प्राप्त करने में असमर्थ हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति को मक्खन की आवश्यकता है, वह मक्खन की तलाश में भटक रहा है, और वह एक बर्तन में पानी छिड़ककर उसे मथनी से घुमाता है। यदि वह किसी इच्छा के साथ, बिना इच्छा के, इच्छा के साथ और बिना इच्छा के, या बिना इच्छा के, दोनों ही स्थितियों में बर्तन में पानी छिड़ककर उसे मथनी से घुमाता रहे, तो भी उसे कोई परिणाम नहीं मिलेगा। ऐसा क्यों? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।

"इसी प्रकार, गलत दृष्टिकोण, गलत संकल्प, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान और गलत एकाग्रता से युक्त कोई भी पुजारी या ध्यानी: यदि वे किसी इच्छा (परिणामों की) के साथ भी, इच्छा किए बिना, इच्छा किए बिना और इच्छा न किए बिना, या न तो इच्छा किए और न ही इच्छा किए बिना भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे परिणाम प्राप्त करने में असमर्थ हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति को आग की आवश्यकता है, वह आग की तलाश में भटक रहा है, और वह एक जलती हुई लकड़ी को गीली और रसदार लकड़ी पर रगड़ता है। यदि वह जलती हुई लकड़ी को गीली और रसदार लकड़ी पर रगड़े, चाहे उसने कोई इच्छा की हो... या न की हो... या इच्छा की हो और न की हो... या न की हो, तो भी उसे कोई परिणाम नहीं मिलेगा। ऐसा क्यों? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।

"इसी प्रकार, गलत दृष्टिकोण, गलत संकल्प, गलत वाणी, गलत कर्म, गलत आजीविका, गलत प्रयास, गलत ध्यान और गलत एकाग्रता से युक्त कोई भी पुजारी या ध्यानी: यदि वे किसी इच्छा (परिणामों की) के साथ भी, इच्छा किए बिना, इच्छा किए बिना और इच्छा न किए बिना, या न तो इच्छा किए और न ही इच्छा किए बिना भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे परिणाम प्राप्त करने में असमर्थ हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक अनुचित तरीका है।"

लेकिन सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता से संपन्न किसी भी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति के लिए: यदि वे इच्छा करते हुए भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे फल प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। यदि वे इच्छा न करते हुए भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे फल प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। यदि वे इच्छा करते हुए और इच्छा न करते हुए भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे फल प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। यदि वे न तो इच्छा करते हुए और न ही इच्छा न करते हुए भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे फल प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह फल प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।

मान लीजिए कि एक व्यक्ति को तेल की आवश्यकता है, वह तेल की खोज में भटक रहा है, और वह तिल के दानों को एक टब में इकट्ठा करके उन्हें दबाता है और बार-बार पानी छिड़कता है। यदि वह तिल के दानों को एक टब में इकट्ठा करके उन्हें दबाता रहे और बार-बार पानी छिड़कता रहे, चाहे उसने कोई इच्छा की हो... या न की हो... या इच्छा की हो और न की हो... या न की हो, तो भी उसे परिणाम प्राप्त होंगे। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।

"इसी प्रकार, सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता से संपन्न कोई भी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति: यदि वे पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, चाहे उन्होंने किसी इच्छा की हो... या न की हो... या इच्छा की हो और न की हो... या न की हो, तो भी वे परिणाम प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति को दूध की आवश्यकता है, वह दूध की तलाश में भटक रहा है और नवजात गाय के थन को मरोड़ता है। यदि वह नवजात गाय के थन को तब भी मरोड़े जब उसने कोई इच्छा व्यक्त की हो... बिना इच्छा व्यक्त किए... इच्छा व्यक्त की हो और बिना इच्छा व्यक्त किए... न तो इच्छा व्यक्त की हो और न ही इच्छा व्यक्त की हो, तो भी उसे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।

"इसी प्रकार, सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता से संपन्न कोई भी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति: यदि वे पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, चाहे उन्होंने किसी इच्छा की हो... या न की हो... या इच्छा की हो और न की हो... या न की हो, तो भी वे परिणाम प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति को मक्खन की आवश्यकता है, वह मक्खन की तलाश में भटक रहा है, और वह एक बर्तन में दही पर पानी छिड़ककर उसे मथनी से घुमाता है।3 यदि वह किसी बर्तन में दही पर पानी छिड़ककर उसे मथनी से घुमाता रहे, चाहे उसने कोई इच्छा की हो... या न की हो... या इच्छा की हो और न की हो... या न की हो, तो भी उसे परिणाम प्राप्त होंगे। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।

"इसी प्रकार, सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता से संपन्न कोई भी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति: यदि वे पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, चाहे उन्होंने किसी इच्छा की हो... या न की हो... या इच्छा की हो और न की हो... या न की हो, तो भी वे परिणाम प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।"

मान लीजिए कि एक व्यक्ति को आग की आवश्यकता है, वह आग की तलाश में भटक रहा है, और वह एक आग जलाने वाली लकड़ी लेकर उसे सूखी, रसहीन लकड़ी पर रगड़ता है। यदि वह आग जलाने वाली लकड़ी लेकर उसे सूखी, रसहीन लकड़ी पर रगड़े, चाहे उसने कोई इच्छा की हो... या न की हो... या इच्छा की हो या न की हो, तो भी उसे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।

"इसी प्रकार, सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता से संपन्न कोई भी पुरोहित या ध्यानमग्न व्यक्ति: यदि वे किसी इच्छा (परिणामों की) के साथ भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे परिणाम प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। यदि वे बिना किसी इच्छा के भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे परिणाम प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। यदि वे इच्छा करने और न करने दोनों स्थितियों में भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे परिणाम प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। यदि वे न तो इच्छा करने और न ही न करने की स्थिति में भी पवित्र जीवन का अनुसरण करते हैं, तो वे परिणाम प्राप्त करने में सक्षम होते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि यह परिणाम प्राप्त करने का एक उचित तरीका है।"

"भूमिजा, यदि ये चारों उपमाएँ राजकुमार जयसेना की उपस्थिति में आपके मन में आई होतीं, तो वे स्वाभाविक रूप से आप पर भरोसा करते और - भरोसा महसूस करते हुए - आप पर अपना भरोसा दिखाते।"

"परन्तु, भगवान, राजकुमार जयसेना की उपस्थिति में ये चार उपमाएँ मेरे मन में कैसे आ सकती थीं, क्योंकि ये तो भगवान बुद्ध के लिए स्वाभाविक हैं और उनसे पहले कभी नहीं सुनी गई हैं?"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य भूमिजा ने भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्नता व्यक्त की।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्जिमा निकाय >> 13.7अनुरुद्ध सुत्त(127)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान अनुराधा सावती में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास कर रहे थे। बढ़ई पंचकंग ने एक व्यक्ति को बुलाया और कहा, 'हे जन, आदरणीय अनुराधा के पास आओ और उन्हें मेरी ओर से कहो कि मैं उनके चरणों की पूजा करता हूँ और यह भी कहो कि आदरणीय अनुराधा कल तीन अन्य लोगों के साथ भोजन ग्रहण करें। आदरणीय अनुराधा यथाशीघ्र आएँ। बढ़ई पंचकंग व्यस्त है, राजा के काम के साथ-साथ उसके पास बहुत काम है।' उस व्यक्ति ने सहमति जताते हुए आदरणीय अनुराधा के पास जाकर उनके चरणों की पूजा की, एक तरफ बैठ गया और कहा, 'बढ़ई पंचकंग आदरणीय अनुराधा के चरणों की पूजा करता है और यह भी कहता है कि आदरणीय अनुराधा कल तीन अन्य लोगों के साथ भोजन ग्रहण करें। आदरणीय अनुराधा यथाशीघ्र आएँ। बढ़ई पंचकंग व्यस्त है, राजा के काम के साथ-साथ उसके पास बहुत काम है।' आदरणीय अनुराधा ने मौनपूर्वक स्वीकार किया। उस रात के अंत में, आदरणीय अनुराधा ने वस्त्र धारण किए और पान-पात्र तथा वस्त्र लेकर बढ़ई पंचकंगा के घर गए और तैयार आसन पर बैठ गए। तब बढ़ई ने अपने हाथों से आदरणीय अनुराधा को पौष्टिक भोजन और पेय पदार्थ परोसे। भोजन समाप्त होने और पान-पात्र रखने के बाद, बढ़ई एक नीचा आसन लेकर एक तरफ बैठ गया और इस प्रकार बोला, 'आदरणीय महोदय, जब मैं वरिष्ठ भिक्षुओं के पास गया, तो उन्होंने कहा, 'गृहस्थ, मन की असीम मुक्ति का विकास करो।' एक अन्य ने कहा, 'गृहस्थ, मन की महान मुक्ति का विकास करो। आदरणीय महोदय, मन की असीम मुक्ति और मन की महान मुक्ति, क्या अर्थ और शब्दों में भिन्न हैं या अर्थ और शब्दों में एक ही हैं?'

'तो गृहस्थ, जैसा तुम्हें समझ में आए, समझाओ।'

'आदरणीय महोदय, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मन की असीम मुक्ति और महान मन की मुक्ति अर्थ में एक ही हैं, लेकिन शब्दों में भिन्न हैं।'

'गृहस्थ, मन की असीम मुक्ति और महान मन की मुक्ति अर्थ और शब्दों दोनों में भिन्न हैं।'

गृहस्थ, मन की असीम मुक्ति क्या है? यहाँ भिक्षु प्रेम और करुणा के विचारों से एक दिशा में व्याप्त होते हैं। साथ ही, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और चारों ओर, सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, प्रेम और करुणा के विचारों से संपूर्ण जगत में व्याप्त होते

हैं, जो व्यापक, विशाल और असीम हैं, बिना द्वेष और क्रोध के। भिक्षु करुणा, आंतरिक आनंद और समभाव के विचारों से एक दिशा में व्याप्त होते हैं। साथ ही, दूसरी, तीसरी, चौथी, ऊपर, नीचे और चारों ओर, सभी परिस्थितियों में, सभी उद्देश्यों के लिए, समभाव से संपूर्ण जगत में व्याप्त होते हैं, जो व्यापक, विशाल और असीम हैं, बिना द्वेष और क्रोध के। गृहस्थ, यही मन की असीम मुक्ति है।

गृहस्थ, महान मन की मुक्ति क्या है? भिक्षु एक वृक्ष की जड़ के विस्तार में व्याप्त होकर लीन हो जाता है। यही महान मन की मुक्ति है। भिक्षु दो या तीन वृक्षों की जड़ों के विस्तार में व्याप्त होकर लीन हो जाता है। यही महान मन की मुक्ति है। भिक्षु एक गाँव और उसके खेतों के विस्तार में व्याप्त होकर लीन हो जाता है। यही महान मन की मुक्ति है। भिक्षु एक विशाल राज्य के विस्तार में व्याप्त होकर लीन हो जाता है। यही महान मन की मुक्ति है। भिक्षु दो या तीन विशाल राज्यों के विस्तार में व्याप्त होकर लीन हो जाता है। यही महान मन की मुक्ति है। भिक्षु विशाल सागर से घिरी पृथ्वी में व्याप्त होकर लीन हो जाता है। यही महान मन की मुक्ति है। गृहस्थ, इस विधि में आपको यह जानना चाहिए कि ये बातें अर्थ और शब्दों में कैसे भिन्न हैं।

गृहस्थ, अस्तित्व के चार प्रकार होते हैं। वे चारों क्या हैं? गृहस्थ, एक व्यक्ति सीमित प्रकाश से परिपूर्ण होकर उसमें लीन रहता है; मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर वह सीमित प्रकाश के देवताओं के साथ जन्म लेता है। एक व्यक्ति असीम प्रकाश से परिपूर्ण होकर उसमें लीन रहता है; मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर वह असीम प्रकाश के देवताओं के साथ जन्म लेता है। एक व्यक्ति अशुद्ध प्रकाश से परिपूर्ण होकर उसमें लीन रहता है; मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर वह अशुद्ध प्रकाश के देवताओं के साथ जन्म लेता है। एक व्यक्ति शुद्ध प्रकाश से परिपूर्ण होकर उसमें लीन रहता है; मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर वह शुद्ध प्रकाश के देवताओं के साथ जन्म लेता है।

एक समय ऐसा आता है जब ये सभी देवता एकत्रित होते हैं। एकत्रित देवताओं में विविधतापूर्ण सौंदर्य तो स्पष्ट होता है, लेकिन उनकी चमक नहीं। जैसे किसी व्यक्ति ने अपने घर में बहुत सारे तेल के दीपक जलाए हों। उन तेल के दीपकों की अलग-अलग लौ तो स्पष्ट होती है, लेकिन उनकी चमक नहीं। उसी प्रकार, हे गृहस्थ, एक समय ऐसा आता है जब ये सभी देवता एकत्रित होते हैं। एकत्रित देवताओं में विविधतापूर्ण सौंदर्य तो स्पष्ट होता है, लेकिन उनकी चमक नहीं। हे गृहस्थ, उन देवताओं को यह बात समझ नहीं आती। हम शाश्वत हैं, अनंत काल तक बने रहेंगे। फिर भी वे जहाँ भी निवास करते हैं, वहीं आनंद लेते हैं। जैसे मक्खियाँ सोचती नहीं हैं, कि जो हम खाते-पीते और ले जाते हैं वह शाश्वत है। फिर भी वे जहाँ भी बसती हैं, वहीं आनंद लेती हैं। हे गृहस्थ, उसी प्रकार उन देवताओं को यह बात समझ नहीं आती। हम शाश्वत हैं, अनंत काल तक बने रहेंगे। फिर भी वे जहाँ भी निवास करते हैं, वहीं आनंद लेते हैं...

यह सुनकर पूज्य अभियो कच्चानो ने पूज्य अनुराधा से कहा, "धन्यवाद पूज्य अनुराधा, मेरा एक प्रश्न है। क्या सभी तेज वाले देवता सीमित तेज वाले होते हैं या कुछ देवता असीमित तेज वाले भी होते हैं?"

'नियमानुसार कुछ देवता सीमित प्रकाश वाले होते हैं और कुछ असीमित प्रकाश वाले।'

'मित्र अनुराद्ध, एक ही श्रेणी में जन्म लेने वाले इन देवताओं में से कुछ सीमित तेज वाले और कुछ असीमित तेज वाले क्यों हैं?'

'मित्र कच्चाना, मैं इस विषय पर तुमसे ही प्रश्न पूछता हूँ, और तुम अपनी इच्छानुसार उत्तर दे सकते हो। वह भिक्षु जिसने वृक्ष की एक जड़ में लीन होकर साधना की और दूसरा जिसने वृक्ष की दो या तीन जड़ों में लीन होकर साधना की, इन दोनों में से किस भिक्षु का मानसिक विकास श्रेष्ठ है?'

'मित्र अनुराधा, वृक्षों की दो या तीन जड़ों में लीन होकर साधना करने वाले भिक्षु का मानसिक विकास वृक्ष की एक ही जड़ में लीन होकर साधना करने वाले भिक्षु के मानसिक विकास से श्रेष्ठ होता है।'

'मित्र कच्चाना, वह भिक्षु जो दो या तीन वृक्षों की जड़ों में लीन रहा और वह भिक्षु जो एक ही गाँव और उसके खेतों में लीन रहा, इन दोनों में से किस भिक्षु का मानसिक विकास श्रेष्ठ है?'

'मित्र अनुराधा, एक गाँव और उसके खेतों में लीन रहने वाले भिक्षु का मानसिक विकास दो या तीन वृक्षों की जड़ों में लीन रहने वाले भिक्षु के मानसिक विकास से श्रेष्ठ है।'

'मित्र कच्चाना, वह भिक्षु जिसने एक गाँव और उसके खेतों में व्याकुलता की और वह भिक्षु जिसने दो या तीन गाँवों और उनके खेतों में व्याकुलता की, इन दोनों में से किस भिक्षु का मानसिक विकास श्रेष्ठ है?'

'मित्र अनुराधा, दो या तीन गांवों और उनके खेतों में व्याप्त होकर साधना करने वाले भिक्षु का मानसिक विकास, एक गांव और उसके खेतों में व्याप्त होकर साधना करने वाले भिक्षु के मानसिक विकास से श्रेष्ठ होता है।'

'मित्र कच्चाना, वह भिक्षु जिसने दो-तीन गांवों और उनके खेतों में व्याकुलता की और वह भिक्षु जिसने एक विशाल राज्य में व्याकुलता की, इन दोनों में से किसकी मानसिक उन्नति श्रेष्ठ है?'

'मित्र अनुराधा, एक विशाल राज्य में विचरण करने वाले भिक्षु का मानसिक विकास दो या तीन गांवों और उनके खेतों में विचरण करने वाले भिक्षु के मानसिक विकास से श्रेष्ठ है।'

'मित्र कच्चाना, वह भिक्षु जिसने एक महान राज्य में व्याकुलता का अभ्यास किया और वह भिक्षु जिसने दो या तीन महान राज्यों में व्याकुलता का अभ्यास किया, इन दोनों में से किस भिक्षु का मानसिक विकास श्रेष्ठ है?'

'मित्र अनुराधा, दो या तीन महान राज्यों में व्याप्त रहने वाले भिक्षु का मानसिक विकास एक महान राज्य में व्याप्त रहने वाले भिक्षु के मानसिक विकास से श्रेष्ठ होता है।'

'मित्र कच्चाना, वह भिक्षु जिसने दो या तीन महान राज्यों में व्याकुलता का अभ्यास किया और वह भिक्षु जिसने विशाल सागर से घिरी पृथ्वी पर व्याकुलता का अभ्यास किया, इन दोनों में से किस भिक्षु का मानसिक विकास श्रेष्ठ है?'

'मित्र अनुराधा, दो या तीन महान राज्यों में व्याप्त रहने वाले भिक्षु का मानसिक विकास एक महान राज्य में व्याप्त रहने वाले भिक्षु के मानसिक विकास से श्रेष्ठ होता है।'

'मित्र कच्चाना, यही कारण है कि एक ही श्रेणी में जन्मे देवताओं में से कुछ देवताओं की चमक सीमित होती है और दूसरे की असीमित।'

'धन्यवाद आदरणीय महोदय, अनुरुद्ध, मेरा एक और प्रश्न है। क्या सभी देवता अशुद्ध प्रकाश वाले हैं या कुछ देवता शुद्ध प्रकाश वाले भी हैं?'

'नियमानुसार कुछ देवता अशुद्ध प्रकाश वाले होते हैं और कुछ शुद्ध प्रकाश वाले।'

'मित्र अनुरुद्ध, एक ही श्रेणी में जन्म लेने वाले इन देवताओं में से कुछ अपवित्र प्रकाश वाले और कुछ शुद्ध प्रकाश वाले क्यों हैं?'

'मित्र कच्चाना, मैं तुम्हें एक उपमा दूंगा, क्योंकि एक बुद्धिमान व्यक्ति उपमा को समझ जाता है। मित्र कच्चाना, जलते हुए दीपक में तेल और बाती दोनों अशुद्ध होते हैं। अशुद्ध तेल और बाती के कारण लौ टिमटिमाती हुई जलती है। उसी प्रकार एक भिक्षु अशुद्ध प्रकाश में व्याप्त रहता है, उसमें लिप्त रहता है और उसमें स्थिर रहता है। क्योंकि उसके शारीरिक दुराचार पर पूर्णतः विजय नहीं हुई है, आलस्य, सुस्ती, बेचैनी और चिंता पर पूर्णतः विजय नहीं हुई है, इसलिए उसका प्रकाश टिमटिमाता है। शरीर के टूटने के बाद, मृत्यु के बाद वह अशुद्ध प्रकाश के देवताओं के साथ जन्म लेता है। मित्र कच्चाना, जलते हुए दीपक में तेल और बाती दोनों शुद्ध होते हैं। शुद्ध तेल और बाती के कारण लौ बिना टिमटिमाए जलती है। उसी प्रकार एक भिक्षु शुद्ध प्रकाश में व्याप्त रहता है, उसमें लिप्त रहता है और उसमें स्थिर रहता है।' क्योंकि उसके शारीरिक दुराचार पर पूर्णतः विजय प्राप्त हो चुकी है, आलस्य, सुस्ती, बेचैनी और चिंता का पराक्रम समाप्त हो चुका है, इसलिए उसका प्रकाश अविचल है। शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह शुद्ध प्रकाश के देवताओं के साथ पुनर्जन्म लेता है।

हे मित्र कच्चाना, इसी कारण एक ही श्रेणी में जन्म लेने वाले इन देवताओं में से कुछ अशुद्ध प्रकाश वाले हैं और कुछ शुद्ध प्रकाश वाले हैं।

तब पूज्य अभियो कच्चाना ने पूज्य अनुराधा से कहा, 'धन्यवाद पूज्यवर। मित्र अनुराधा, आपने ऐसा नहीं कहा। मैंने यह सुना है, या यह ऐसा होना चाहिए था, लेकिन आपने कहा कि वे देवता इस प्रकार थे। मुझे लगता है कि पूज्य अनुराधा को पहले ही उनके साथ रहना, उनसे बात करना, चर्चा करना और उनका अध्ययन करना चाहिए था।'

'मित्र कच्चाना, तुम प्रशंसा के निकट के शब्द बोल रहे हो, फिर भी मैं तुम्हें समझाऊंगा। अतीत में मैंने इन देवताओं के साथ जीवन व्यतीत किया है, उनके बारे में बात की है, चर्चा की है और उनसे जुड़ाव रखा है।'

तब आदरणीय अभिया कच्चाना ने बढ़ई पंचांग से कहा, 'गृहस्थ, यह बहुत लाभ की बात है, इस प्रवचन को सुनकर हमारे सारे संदेह दूर हो गए।'

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 13.8 उपक्किलेसा सुत्त(128)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध कोसंबी में गोशिता के मठ में निवास करते थे। उस समय कोसंबी के भिक्षुओं में कलह चल रहा था और वे आपस में अपशब्दों का प्रयोग करते हुए झगड़ा कर रहे थे। तब एक भिक्षु भगवान बुद्ध के पास आया, उन्हें प्रणाम किया और खड़े होकर कहा, "हे पूज्यवर, कोसंबी के भिक्षुओं में कलह चल रहा है और वे आपस में अपशब्दों का प्रयोग करते हुए झगड़ा कर रहे हैं। यदि भगवान बुद्ध करुणावश उन भिक्षुओं के पास जाएँ तो अच्छा होगा।" भगवान बुद्ध ने मौन रहकर यह बात स्वीकार की और उन भिक्षुओं के पास जाकर कहा, "भिक्षुओं, झगड़ा करना और अपशब्दों का प्रयोग करना छोड़ दो और आपस में विवाद न करो।"

जब ऐसा कहा गया, तो एक भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे पूज्यवर, शिक्षा के स्वामी, कृपया चिंता न करें, दूर रहें! भगवान बुद्ध यहीं और अभी प्रसन्न रहें! इस झगड़े, विवाद और कठोर शब्दों के प्रयोग में हम ही गिने जाएँगे।"

दूसरी बार भगवान बुद्ध ने कहा, 'भिक्षुओं, झगड़ा करना, कठोर शब्दों का प्रयोग करना छोड़ दो और विवाद न करो।'

जब यह बात दूसरी बार कही गई तो उस भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा, "आदरणीय महोदय, शिक्षा के स्वामी, कृपया चिंता न करें, दूर रहें! भगवान बुद्ध यहीं और अभी प्रसन्नता में निवास करें! इस झगड़े, विवाद और कठोर शब्दों के प्रयोग में हम ही गिने जाएँगे।"

तीसरी बार भगवान बुद्ध ने कहा, 'भिक्षुओं, झगड़ा करना, कठोर शब्दों का प्रयोग करना छोड़ दो और विवाद न करो।'

जब यह बात तीसरी बार कही गई तो उस भिक्षु ने भगवान बुद्ध से कहा, "आदरणीय महोदय, शिक्षा के स्वामी, कृपया चिंता न करें, दूर रहें! भगवान बुद्ध अभी और यहीं प्रसन्नता में रहें! इस झगड़े, विवाद और कठोर शब्दों के प्रयोग में हम ही गिने जाएँगे।"

फिर भगवान बुद्ध ने सुबह वस्त्र धारण करके, भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर कोसंबी में भिक्षा मांगने गए। भिक्षा मांगने के बाद जब भोजन समाप्त हो गया, तो उन्होंने निवास स्थान को व्यवस्थित किया और भिक्षापात्र और वस्त्र लेकर खड़े होकर ये श्लोक कहे।

मूर्ख लोग आम राय पर ध्यान नहीं देते, सच्चाई यह है कि जब समाज बँट जाएगा तो कुछ भी नहीं बचेगा। मुख्य उद्देश्य को भूलकर वे उससे आगे बढ़ जाते हैं और बुद्धिमानों की बात नहीं सुनते। मुझे डाँटा जाता है, पीटा जाता है, हराया जाता है और ले जाया जाता है। ऐसे द्वेष रखने वालों की घृणा कभी शांत नहीं होती। मुझे डाँटा जाता है, पीटा जाता है, हराया जाता है और ले जाया जाता है। ऐसे द्वेष न रखने वालों की घृणा शांत हो जाती है। इस दुनिया में घृणा कभी खत्म नहीं होती। घृणा का अंत घृणाहीनता से होता है, यही प्राचीन ज्ञान है। कुछ लोग नहीं जानते कि हमें इस दुनिया से जाना है। जो इसे जानते हैं, वे अपनी गलतफहमियों को दूर करते हैं। जो अंग काटते हैं, जीवन नष्ट करते हैं, घोड़े, मवेशी और धन लूटते हैं, और देश को भी बर्बाद करते हैं, वे भी पलट जाते हैं। आपके साथ ऐसा क्यों नहीं होना चाहिए? यदि आपको एक चतुर मित्र, एक बुद्धिमान साथी मिले, तो सभी परेशानियों को पार करते हुए, उसके साथ सचेत रूप से रहें। यदि आपको एक चतुर, बुद्धिमान साथी न मिले, तो साथ रहना, जैसे राजा अपना शासन और देश छोड़कर अकेला, हाथी की तरह सुदूर माटांगा की ओर जाता है। अकेले रहना शानदार है, मूर्खों के साथ कोई संगति नहीं होनी चाहिए। अकेले रहते हुए, बेफिक्र, कोई बुराई नहीं होती। जैसे हाथी सुदूर माटांगा में रहता है।

भगवान बुद्ध खड़े होकर ये श्लोक बोले और बालकलोनाकारा गाँव की ओर चल दिए। उस समय पूज्य भगु उसी गाँव में रहते थे। दूर से भगवान बुद्ध को आते देख पूज्य भगु ने आसन तैयार किया और चरण धोने के लिए जल रखा। भगवान बुद्ध उस आसन पर बैठे और चरण धोए। पूज्य भगु ने भी भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। तब भगवान बुद्ध ने कहा, 'भिक्षु, क्या तुम ठीक हो? क्या तुम्हें भोजन न मिलने के कारण कोई थकान है?' 'पूज्यवर, मैं ठीक हूँ, मुझे भोजन न मिलने के कारण कोई थकान नहीं है।' तब भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया, मार्गदर्शन किया और पूज्य भगु के हृदय को अपने प्रवचनों से हल्का किया और आसन से उठकर पूर्वी राज उद्यान की ओर चल दिए।

उस समय पूज्य अनुराधा, नंदिया और किम्बिला राजसी पूर्वी उद्यान में निवास कर रहे थे। वनपाल ने दूर से भगवान बुद्ध को आते देखा और कहा, 'हे संन्यासी, इस वन में प्रवेश न करें। यहाँ कुल के तीन पुत्र अपने कल्याण की खोज में निवास कर रहे हैं, उन्हें परेशान न करें।' पूज्य अनुराधा ने वनपाल और भगवान बुद्ध के बीच यह बातचीत सुनी और वनपाल से कहा, 'भगवान बुद्ध को न रोकें, वे हमारे गुरु, भगवान बुद्ध हैं।' पूज्य अनुराधा ने पूज्य नंदिया और किम्बिला को संबोधित करते हुए कहा, 'आओ! पूज्यजनों, हमारे गुरु आ गए हैं।' तब पूज्य अनुराधा, नंदिया और किम्बिला भगवान बुद्ध के पास गए, उनसे पान और वस्त्र ग्रहण किए। एक ने आसन तैयार किया और दूसरे ने उनके चरणों को धोने के लिए जल डाला। भगवान बुद्ध तैयार आसन पर बैठे और अपने चरण धोए। वे पूजनीय व्यक्ति भगवान बुद्ध की पूजा करते हुए एक तरफ बैठ गए।

भगवान बुद्ध ने आदरणीय अनुराधा से कहा, 'अनुराधा, क्या तुम ठीक हो? क्या तुम्हें भोजन की कमी के कारण कोई थकान है?' अनुराधा ने कहा, 'आदरणीय, हम ठीक हैं, हमें भोजन की कमी के कारण कोई थकान नहीं है।' अनुराधा ने पूछा, 'अनुराधा, क्या तुम दूध और पानी की तरह एक हो, बिना किसी विवाद के मित्रवत हो और एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते रहते हो?' अनुराधा ने कहा, 'आदरणीय, हम दूध और पानी की तरह एक हैं, मित्रवत हैं, बिना किसी विवाद के एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते रहते हैं।' अनुराधा ने पूछा, 'अनुराधा, तुम दूध और पानी की तरह एक कैसे हो, मित्रवत हो, बिना किसी विवाद के एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते रहते हो?' अनुराधा ने कहा, 'आदरणीय, मेरे मन में यह विचार आता है कि ऐसे सहपाठियों के साथ पवित्र जीवन जीना मेरे लिए लाभदायी है। इसलिए मैं इन आदरणीयों के प्रति शारीरिक और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण व्यवहार करता हूँ। मैं इन आदरणीयों के प्रति मौखिक और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण व्यवहार करता हूँ।' इन पूजनीय व्यक्तियों के प्रति प्रेम और दया की भावना रखते हुए, कभी-कभी मेरे मन में यह विचार आता है कि यदि मैं अपने विचारों को त्यागकर इन पूजनीय व्यक्तियों के विचारों को स्वीकार कर लूँ तो क्या होगा? अतः मैं अपने विचारों को त्यागकर इन पूजनीय व्यक्तियों के विचारों को स्वीकार कर लेता हूँ। हे पूज्यवर, हम शरीर से भिन्न हैं, परन्तु मन से एक हैं।

आदरणीय नंदिया और आदरणीय किंबिला ने भी भगवान बुद्ध से कहा, "आदरणीय महोदय, मेरे मन में यह विचार आता है कि ऐसे सहचरों के साथ पवित्र जीवन व्यतीत करना मेरे लिए लाभदायी है। अतः मैं इन आदरणीयों के प्रति शारीरिक और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण कर्म करता हूँ। मैं खुलेआम और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण वाणी का प्रयोग करता हूँ। मैं खुलेआम और गुप्त रूप से प्रेमपूर्ण वाणी का भी प्रयोग करता हूँ। कभी-कभी मेरे मन में यह विचार आता है कि यदि मैं अपने विचारों को त्यागकर इन आदरणीयों के विचारों को अपना लूँ तो क्या होगा? अतः मैं अपने विचारों को त्यागकर इन आदरणीयों के विचारों को अपना लूँगा। आदरणीय महोदय, हम शरीर से भिन्न हैं, पर मन से एक हैं।"

आदरणीय महोदय, इस प्रकार हम दूध और पानी की तरह एक साथ, मित्रवत, बिना किसी विवाद के, एक-दूसरे को मित्रतापूर्ण दृष्टि से देखते हुए रहते हैं। अच्छा, अनुराधा, क्या तुम भी निर्वाह निवारण के लिए लगन से जीवन व्यतीत करते हो? आदरणीय महोदय, जी हाँ, हम निर्वाह निवारण के लिए लगन से जीवन व्यतीत करते हैं। अनुराधा, तुम निर्वाह निवारण के लिए लगन से कैसे जीवन व्यतीत करते हो? आदरणीय महोदय, जो भी गाँव से सबसे पहले आता है, वह भोजन इकट्ठा करने के बाद बैठने की व्यवस्था करता है, पीने और धोने के लिए पानी देता है और थूकदान रखता है। जो भी गाँव से सबसे अंत में आता है, वह यदि चाहे तो बचे हुए भोजन को ग्रहण करता है, यदि नहीं तो उसे ऐसी जगह फेंक देता है जहाँ कुछ भी न उगता हो, या ऐसे पानी में डाल देता है जहाँ कोई जीव-जंतु न हों। वह बैठने की व्यवस्था और पानी के बर्तनों को समेटता है, थूकदानों को धोता है और भोजनालय की सफाई करता है। जो भी पीने, धोने या शौचालय के पानी के बर्तनों को खाली देखता है, उन्हें भर देता है। यदि वह इसे उठाने में असमर्थ पाता, तो हाथ के इशारे से दूसरे को बुला लेता। इस कारण एक शब्द भी नहीं बोलता। हर पाँचवें दिन हम रात भर बैठकर शिक्षा के किसी विषय पर चर्चा करते। आदरणीय महोदय, इस प्रकार हम उपदेशों के निवारण के लिए तल्लीन रहते हैं। शाबाश, अनुराधा, तुम उपदेशों के निवारण के लिए तल्लीन रहते हो। क्या तुमने कोई विशिष्ट ज्ञान, मनुष्य से परे कोई सुखद निवास प्राप्त कर लिया है?

'आदरणीय महोदय, जब हम सचेत होकर उस अंधकार को दूर करने का प्रयास कर रहे थे, तब हमें प्रकाश और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। वह प्रकाश और सुंदर आकृतियाँ पल भर में लुप्त हो गईं और हम उस संकेत को समझ नहीं पाए।'

अनुरुद्ध, उस संकेत को समझना चाहिए। पहले जब मैं ज्ञान की खोज कर रहा था, तब मैंने भी तेज और सुंदर रूप देखे थे, और वे पल भर में गायब हो गए। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मेरे मन में संदेह उत्पन्न हो गए थे। संदेह के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह फिर से उत्पन्न न हों। जब मैंने उन्हें दूर करने के लिए लगन से ध्यान लगाया, तब मुझे फिर से तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। तेज और सुंदर आकृतियाँ पल भर में लुप्त हो गईं। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मेरा ध्यान भटक गया था। ध्यान न देने के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह और ध्यान फिर से उत्पन्न न हों। जब मैंने ध्यानपूर्वक ध्यान लगाकर इन संदेहों को दूर करने का प्रयास किया, तब मुझे फिर से तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। वे तेज और सुंदर आकृतियाँ पल भर में लुप्त हो गईं। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मुझमें आलस्य और सुस्ती आ गई थी। आलस्य और सुस्ती के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह, असावधानी और आलस्य और सुस्ती फिर से उत्पन्न न हों। जब मैंने लगन से इन आलस्य और सुस्ती को दूर करने का प्रयास किया, तब मुझे फिर से तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। पल भर में ही तेज और सुंदर आकृतियाँ लुप्त हो गईं। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मुझमें भय उत्पन्न हो गया था। भय के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। जैसे कोई व्यक्ति राजमार्ग पर दोनों ओर से हत्यारों से घिरा हो, तो दोनों ओर भय उत्पन्न हो जाता है। उसी प्रकार मुझमें भी भय उत्पन्न हो गया। भय के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह, असावधानी, आलस्य, सुस्ती और भय पुनः उत्पन्न न हों। जब मैंने भय को दूर करने के लिए लगन से ध्यान लगाया, तो मुझे मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। क्षण भर में ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ लुप्त हो गईं। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मुझमें उल्लास उत्पन्न हो गया था। उल्लास के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। जैसे कोई व्यक्ति एक खजाने की खोज में एक साथ पाँच खजाने पा लेता है, वैसे ही मुझमें उल्लास उत्पन्न हो गया। उल्लास के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह, असावधानी, आलस्य, सुस्ती, भय और उल्लास फिर से उत्पन्न न हों। जब मैं इन भावनाओं को दूर करने के लिए लगन से ध्यान लगा रहा था, तब मुझे तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। क्षण भर में ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ लुप्त हो गईं। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मुझमें बुराई उत्पन्न हो गई है। बुराई के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह, असावधानी, आलस्य, सुस्ती, भय, उल्लास और बुराई पुनः उत्पन्न न हों। जब मैंने इन बुराइयों को दूर करने के लिए लगन से ध्यान लगाया, तो मुझे फिर से तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। पल भर में ही तेज और सुंदर आकृतियाँ लुप्त हो गईं। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मुझमें अत्यधिक परिश्रम उत्पन्न हो गया था। इस अत्यधिक परिश्रम के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। जैसे कोई व्यक्ति दोनों हाथों से ठेला कसकर पकड़े रहता है, तो वह उसके साथ ही मर जाता है। उसी प्रकार अनुराद्ध, मुझमें अत्यधिक परिश्रम उत्पन्न हो गया था। इस अत्यधिक परिश्रम के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संशय, असावधानी, आलस्य, सुस्ती, भय, उल्लास, दुष्टता और अत्यधिक परिश्रम पुनः उत्पन्न न हों। जब मैं इन संशयों को दूर करने के लिए तल्लीन था, तब मुझे मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। वे तेज और सुंदर आकृतियाँ क्षण भर में लुप्त हो गईं। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मैंने कम प्रयास किया था। कम प्रयास के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही तेज और सुंदर आकृतियाँ लुप्त हो गईं। जैसे कोई व्यक्ति हाथगाड़ी को ढीला छोड़ देता है, वैसे ही अनुरुद्ध, मेरे भीतर भी कम प्रयास उत्पन्न हुआ था। कम प्रयास के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही तेज और सुंदर आकृतियाँ लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह, असावधानी, आलस्य, भय, उल्लास, दुष्टता, न अधिक प्रयास और न कम प्रयास, ये सब फिर से उत्पन्न न हों। जब मैंने इन विकारों को दूर करने के लिए लगन से ध्यान लगाया, तो मुझे तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। वे तेज और सुंदर आकृतियाँ क्षण भर में लुप्त हो गईं।

तब मुझे यह बात समझ में आई। मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मैं जानता था कि मैं बहुत अधिक प्रयास कर रहा था। अत्यधिक प्रयास के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह, असावधानी, आलस्य, भय, उल्लास, दुष्टता, अत्यधिक प्रयास, अल्प प्रयास और अत्यधिक प्रयास पुनः उत्पन्न न हों। जब मैंने इन सभी को दूर करने के लिए लगन से ध्यान लगाया, तो मुझे तेज और सुंदर आकृतियाँ दिखाई दीं। तेज और सुंदर आकृतियाँ क्षण भर में लुप्त हो गईं। तब मुझे यह बात समझ में आई।

मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ क्यों लुप्त हो गईं? मुझे पता था कि मुझमें अनेक प्रकार की अनुभूतियाँ उत्पन्न हो गई थीं। इन अनुभूतियों के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही मेरी तेज और सुंदर आकृतियाँ भी लुप्त हो गईं। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संशय, असावधानी, आलस्य, भय, उल्लास, दुष्टता, अति प्रयास, अल्प प्रयास, अति प्रयास और अनेक प्रकार की अनुभूतियाँ पुनः उत्पन्न न हों।

जब मैंने सचेत होकर इन बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया, तो मुझे प्रकाश और सुंदर रूप दिखाई दिए। क्षण भर में ही वे प्रकाश और सुंदर रूप लुप्त हो गए। तब मेरे मन में यह प्रश्न आया कि मेरा प्रकाश और सुंदर रूप क्यों लुप्त हो गए? मुझे पता चला कि रूपों के बारे में अधिक सोचने के कारण ऐसा हुआ था। रूपों के बारे में अधिक सोचने के कारण मेरी एकाग्रता भंग हो गई। एकाग्रता भंग होते ही प्रकाश और सुंदर रूप लुप्त हो गए। मैंने इस पर इस प्रकार ध्यान दिया कि संदेह, असावधानी, आलस्य, भय, उल्लास, दुष्टता, अत्यधिक प्रयास, कम प्रयास, अत्यधिक संघर्ष, विभिन्न धारणाएँ और रूपों के बारे में अधिक सोचना फिर से उत्पन्न न हों।

अनुराधा, मैंने जाना कि संशय मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया। मैंने जाना कि असावधानी मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया। मैंने जाना कि आलस्य और सुस्ती मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया। मैंने जाना कि भय मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया। मैंने जाना कि उल्लास मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया। मैंने जाना कि दुष्टता मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया। मैंने जाना कि अत्यधिक प्रयास मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया। मैंने जाना कि कम प्रयास मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया। मैंने जाना कि विभिन्न धारणाएँ मन के छोटे-छोटे दोष हैं और मैंने उन्हें दूर किया। मैंने जाना कि रूपों के बारे में अत्यधिक सोचना मन का एक छोटा सा दोष है और मैंने उसे दूर किया।

जब मैं रात भर, दिन भर और रात-दिन ध्यान लगाकर विवशता में था, तब मुझे सीमित प्रकाश और सीमित रूप दिखाई दिए। मुझे असीम प्रकाश और असीम रूप दिखाई दिए। मेरे मन में यह प्रश्न आया। इसका क्या कारण है कि रात भर, दिन भर और रात-दिन, मुझे सीमित प्रकाश और सीमित रूप दिखाई देते हैं, और असीम प्रकाश और असीम रूप दिखाई देते हैं? अनुराधा, मेरे मन में यह प्रश्न आया कि जब मेरी एकाग्रता सीमित होती है, तो मेरा ज्ञान भी सीमित होता है। सीमित ज्ञान के साथ मुझे सीमित प्रकाश और सीमित रूप दिखाई देते हैं। जब मेरी एकाग्रता असीम होती है, तो मेरा ज्ञान भी असीम होता है। असीम ज्ञान के साथ मुझे असीम प्रकाश और असीम रूप दिखाई देते हैं, रात भर, दिन भर और रात-दिन।

अनुरुद्ध, जब ये लघु दोष, जैसे संशय, असावधानी, आलस्य, भय, उल्लास, दुष्टता, अत्यधिक परिश्रम, अल्प परिश्रम, विभिन्न धारणाएँ, रूपों के बारे में अत्यधिक चिंतन, दूर हो गए, तब मुझे यह आभास हुआ कि अब ये लघु दोष दूर हो गए हैं और मुझे तीन प्रकार से एकाग्रता विकसित करनी चाहिए। तब मैंने विचारों और विवेचनात्मक विचारों के साथ एकाग्रता विकसित की। फिर विचारों के बिना, विवेचनात्मक चिंतन के साथ एकाग्रता विकसित की। विचारों के बिना और विवेचनात्मक विचारों के बिना एकाग्रता विकसित की। आनंद के साथ और आनंद के बिना एकाग्रता विकसित की। अंत में समभाव वाली एकाग्रता विकसित की। तब ज्ञान और दृष्टि उत्पन्न हुई और मुझे पता चला कि मेरा मोक्ष अटल है। यही मेरा अंतिम जन्म है। अब कोई पुनर्जन्म नहीं है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य अनुराधा भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 13.9 बालापंडिता सुत्त(129)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास करते थे। भगवान बुद्ध वहीं से भिक्षुओं को संबोधित करते थे।

भिक्षुओं, ये तीन मूर्ख के लक्षण, विशेषताएँ और उपलब्धियाँ हैं। ये तीन क्या हैं? मूर्ख के विचार, वचन और कर्म मूर्खतापूर्ण होते हैं। यदि मूर्ख के विचार, वचन और कर्म मूर्खतापूर्ण न होते, तो ज्ञानी कैसे जानते कि यह अच्छा व्यक्ति मूर्ख है, अयोग्य है? क्योंकि मूर्ख मूर्खतापूर्ण सोचता है, बोलता है और करता है, इसलिए ज्ञानी जानते हैं कि वह मूर्ख है। मूर्ख को यहाँ और अभी तीन प्रकार से अप्रियता और अप्रसन्नता का अनुभव होता है। भिक्षुओं, यदि मूर्ख भीड़ में हो, गली के कोने पर हो या चौराहे पर हो, और यदि वहाँ के लोग किसी समसामयिक विषय पर चर्चा कर रहे हों, और यदि वह जीवित प्राणियों को नष्ट करे, बिना दी हुई वस्तु ले, यौन दुराचार करे, झूठ बोले और मादक पेय का सेवन करे, तो उसे ये बातें याद आती हैं। ये बातें जो लोग कह रहे हैं, मुझमें भी स्पष्ट हैं। यही वह पहला उदाहरण है जब मूर्ख को अप्रियता और अप्रसन्नता का अनुभव होता है।

भिक्षुओं, मूर्ख देखता है कि राजा ने एक अपराधी को पकड़ लिया है और उसे तरह-तरह की यातनाएँ दी जा रही हैं - कोड़े और चाबुक से पीटा जा रहा है, जंगली रस्सी से कोड़े मारे जा रहे हैं, गंदी छड़ी से कोड़े मारे जा रहे हैं, हाथ काटे जा रहे हैं, पैर काटे जा रहे हैं, या दोनों हाथ और पैर काटे जा रहे हैं, कान और नाक काटे जा रहे हैं, उबलते दलिया के बर्तन में डाला जा रहा है, सिर मुंडवाया जा रहा है, राहु के मुँह में डाला जा रहा है, जलती हुई माला पहनाई जा रही है, हाथ झुलसाए जा रहे हैं, छाल के वस्त्र पहनाए जा रहे हैं, साँपों के साथ रखा जा रहा है, शरीर में हुक चुभोए जा रहे हैं, शरीर से मांस के टुकड़े काटे जा रहे हैं, कान से कान तक कील ठोंकी जा रही है, शरीर को भूसे जैसा बना दिया जा रहा है, उबलते तेल में डुबोया जा रहा है, कुत्तों को खाने के लिए दिया जा रहा है, जीवित ही कील पर लटकाकर मृत्यु तक पहुँचाया जा रहा है, और तलवार से गर्दन काटी जा रही है। भिक्षुओं, तब मूर्ख के मन में यह विचार आता है कि इस लुटेरे, इस दुष्ट को बुराई करने के कारण दंडित किया जा रहा है। यदि राजा मुझे पकड़ ले, तो मुझे भी इन्हीं दंडों का सामना करना पड़ेगा। यह दूसरी बार है जब मूर्ख को अप्रियता और अप्रसन्नता का अनुभव होता है।

हे भिक्षुओं, जब मूर्ख व्यक्ति कुर्सी पर, पलंग पर या ज़मीन पर बिछे कंबल पर आराम कर रहा होता है, तो वह अपने देह, वाणी और मन के कुकर्मों के बारे में सोचता है। ऐसे समय में ये कुकर्म उसे भारी बोझिल कर देते हैं। जैसे किसी विशाल पर्वत शिखर की छाया शाम के समय धरती पर भारी पड़ती है। इसी प्रकार, जब मूर्ख व्यक्ति कुर्सी पर, पलंग पर या ज़मीन पर बिछे कंबल पर आराम कर रहा होता है, तो वह अपने देह, वाणी और मन के कुकर्मों के बारे में सोचता है। ऐसे समय में ये कुकर्म उसे भारी बोझिल कर देते हैं। हे भिक्षुओं, तब मूर्ख व्यक्ति के मन में यह विचार आता है, "मैंने पुण्य कर्म नहीं किए। भयभीत लोगों का भय नहीं दूर किया, घिनौने पाप किए और बाद में मुझे उनका फल भोगना पड़ेगा।" वह शोक करता है, विलाप करता है, सीना पीटता है और मन व्याकुल हो जाता है। हे भिक्षुओं, यह तीसरी बार है जब मूर्ख व्यक्ति को अप्रियता और अप्रसन्नता का अनुभव होता है।

भिक्षुओं, शरीर, वाणी और मन से कुकर्म करने वाला मूर्ख व्यक्ति मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर नर्क में जन्म लेता है। यह कहना उचित होगा कि नर्क अत्यंत अप्रिय और अप्रिय है। उस अप्रियता की तुलना किसी अन्य शब्द से नहीं की जा सकती।

तब एक भिक्षु ने कहा, 'आदरणीय महोदय, क्या कोई तुलना करना संभव है?'

भगवान बुद्ध ने कहा, "यह संभव है, भिक्षु। एक दुष्ट, एक लुटेरे को पकड़कर राजा के सामने लाया जाता है और उससे कहा जाता है, 'हे महाराज, यह एक लुटेरा है, एक दुष्ट है, इसे उचित दंड दीजिए।' तब राजा कहते, 'हे स्वामी, इसे सुबह छह हजार कोड़े मारिए।' उसे सुबह छह हजार कोड़े मारे जाते हैं। दोपहर में राजा पूछते, 'हे स्वामी, वह कैसा है?' 'हे महाराज, वह पहले जैसा ही जीवित है।' तब राजा कहते, 'हे स्वामी, इसे दोपहर में छह हजार कोड़े मारिए।' उसे दोपहर में छह हजार कोड़े मारे जाते हैं। शाम को राजा पूछते, 'हे स्वामी, वह कैसा है?' 'हे महाराज, वह पहले जैसा ही जीवित है।' तब राजा कहते, 'हे स्वामी, इसे शाम में छह हजार कोड़े मारिए।' उसे शाम में छह

हजार कोड़े मारे जाते हैं। भिक्षुओं, क्या वह व्यक्ति जिसे दिन में तीन बार छह हजार कोड़े मारे जाएं, उसे कष्ट और अप्रसन्नता महसूस होगी?'

'अगर उसे साठ कोड़े भी मारे जाएं, तो भी वह असहज और असंतुष्ट महसूस करेगा, तो फिर दिन में तीन बार छह हजार कोड़े मारे जाने पर क्या ही कहा जाए।'

तब भगवान बुद्ध ने अपनी मुट्ठी में समा सकने वाला एक छोटा पत्थर उठाया और भिक्षुओं से कहा, 'भिक्षुओं, आकार में कौन बड़ा है, मेरी मुट्ठी में रखा पत्थर या हिमालय पर्वत?'

'आदरणीय महोदय, आपकी मुट्ठी में रखा पत्थर महान हिमालय के समर्थ, एक चौथाई भी नहीं, और न ही उसका प्रतीक है।'

'इसी प्रकार, हे भिक्षुओं, दिन में तीन बार छह हजार कोड़े मारने से होने वाली पीड़ा और कष्ट की तुलना न तो नरक में होने वाली पीड़ा और कष्ट से की जा सकती है, न ही उसके एक चौथाई के बराबर, और न ही उसके सादृश्य के समान। नरक के रक्षक उसे पंचांग का बंधन देते हैं।'

यानी उसके दोनों हाथों की हथेलियों में दो-दो गर्म लोहे की कीलें चुभो दी जाती हैं, उसके दोनों पैरों में दो-दो गर्म कीलें चुभो दी जाती हैं और पाँचवीं गर्म लोहे की कील उसकी छाती में चुभो दी जाती है। इसके कारण उसे तीव्र चुभन और असहनीय पीड़ा का अनुभव होता है। फिर भी, जब तक उसका दोष समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।

इसके बाद नरक के पहरेदार उसे ले जाते हैं और उस पर हथौड़े बरसाते हैं। इस कारण उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय पीड़ा का अनुभव होता है। फिर भी, जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।

इसके बाद नरक के पहरेदार उसे उल्टा लटकाकर चाकू से काटते हैं। इस वजह से भी उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय पीड़ा का अनुभव होता है। फिर भी, जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।

इसके बाद नरक के पहरेदार उसे एक गाड़ी में जोतकर धधकती हुई ज़मीन पर आगे-पीछे दौड़ाते हैं। इस कारण भी उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं। फिर भी, जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता, वह मरता नहीं है।

इसके बाद नरक के रक्षक उसे जलते हुए अंगारों की चट्टान पर चढ़ाते और उतारते हैं। इस कारण उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं। फिर भी, जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।

इसके बाद नरक के रक्षक उसे उबलते हुए, धधकते हुए पिघले हुए मदिरा के बर्तन में उल्टा फेंक देते हैं। वहाँ वह पिघले हुए मदिरा में पक जाता है, और वह स्वयं ही उसमें डुबकी लगाता है, ऊपर आता है और पिघले हुए बर्तन में इधर-उधर घूमता है। इस कारण भी उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं। फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता।

इसके बाद नरक के रक्षक उसे महानर में फेंक देते हैं। भिक्षुओं, महानर वर्गाकार है और इसके चार द्वार हैं। यह दो भागों में बंटा हुआ है और लोहे की दीवार से घिरा हुआ है। इसका ऊपरी भाग लोहे के ढक्कन से बंद है। इसका फर्श सात सौ मील तक फैला हुआ है और यह प्रतिदिन वहीं रहता है।

मैं नरक की अप्रियता को कई तरीकों से समझा सकता हूँ, फिर भी उस अप्रियता को पूरी तरह से समझाना आसान नहीं है।

भिक्षुओं, कुछ प्राणी चार पैरों पर चलते हैं और सूखी या गीली घास को अपने दाँतों से पीसकर खाते हैं। ऐसे प्राणी कौन हैं? वे घोड़े, गाय, गधे, बकरी, हिरण या कोई अन्य जानवर हैं जो चार पैरों पर चलते हैं और घास खाते हैं। स्वाद के लालच में मूर्ख बुरे कर्म करते हैं और मृत्यु के बाद चार पैरों वाले प्राणियों की संगति में जन्म लेते हैं और घास खाते हैं।

भिक्षुओं, कुछ ऐसे जानवर होते हैं जो मल खाते हैं। वे मल की गंध सूंघते हुए दौड़ते हैं, यह सोचकर कि उन्हें यह और वह खाने को मिलेगा, ठीक वैसे ही जैसे ब्राह्मण यज्ञ की गंध सूंघते हुए दौड़ता है, यह सोचकर कि उन्हें यहाँ और यहाँ खाने को मिलेगा। इसी प्रकार मल खाने वाले जानवर मल की गंध सूंघते हुए दौड़ते हैं, यह सोचकर कि उन्हें वह और वह खाने को मिलेगा। भिक्षुओं, मल खाने वाले

जानवर कौन से हैं? वे मुर्गे, सूअर, कुत्ते, लोमड़ी और मल खाने वाले अन्य जानवर हैं। स्वाद के लालच में मूर्ख बुरे कर्म करते हैं और मृत्यु के बाद मल खाने वाले जानवरों की संगति में जन्म लेते हैं।

भिक्षुओं, कुछ रेंगने वाले जीव हैं जो अंधेरे में जन्म लेते हैं, जीते हैं और मर जाते हैं। भिक्षुओं, वे कौन से रेंगने वाले जीव हैं जो अंधेरे में जन्म लेते हैं, जीते हैं और मर जाते हैं? भृंग, केंचुए, केंचुआ और इसी तरह के अन्य रेंगने वाले जीव अंधेरे में जन्म लेते हैं, जीते हैं और मर जाते हैं। लालची मूर्ख बुरे कर्म करते हैं और मृत्यु के बाद अंधेरे में जन्म लेने वालों के साथ जन्म लेते हैं।

भिक्षुओं, कुछ जीव जल में जन्म लेते हैं, जीते हैं और मर जाते हैं... भिक्षुओं, वे कौन से जीव हैं जो जल में जन्म लेते हैं, जीते हैं और मर जाते हैं? मछलियाँ, कछुए, मगरमच्छ और ऐसे ही अन्य जीव जल में जन्म लेते हैं, जीते हैं और मर जाते हैं। लालची मूर्ख बुरे कर्म करते हैं और मृत्यु के बाद जल में जन्म लेने वालों के साथ ही जन्म लेते हैं।

भिक्षुओं, कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जो मल में जन्म लेती हैं, जीती हैं और मरती हैं... भिक्षुओं, वे कौन सी वस्तुएँ हैं जो मल में जन्म लेती हैं, जीती हैं और मरती हैं? सड़ी हुई मछली में, सड़े हुए मांस में, सड़ी हुई रोटी में, गंदे गाँव के तालाब में जन्म लेने वाली वस्तुएँ ही जीवित रहती हैं और मरती हैं। स्वाद के लालची मूर्ख बुरे कर्म करते हैं और मृत्यु के बाद उन्हीं के साथ जन्म लेते हैं जो मल में जन्म लेते हैं, जीते हैं और मरते हैं।

मैं पशु जगत की अप्रियता को कई तरीकों से समझा सकता हूं, फिर भी उस अप्रियता को पूरी तरह से समझाना आसान नहीं है।

भिक्षुओं, एक व्यक्ति एक छेद वाला हल समुद्र में फेंकता है। पूर्वी हवाओं के साथ वह पश्चिम की ओर और पश्चिमी हवाओं के साथ पूर्व की ओर बह जाता है। उत्तरी हवाओं के साथ वह दक्षिण की ओर और दक्षिणी हवाओं के साथ उत्तर की ओर बह जाता है। फिर समुद्र की गहराई में एक अंधा कछुआ है जो सौ वर्षों के बाद सतह पर आता है। भिक्षुओं, क्या यह कछुआ, जिसकी एक आँख है, अपनी गर्दन हल के फाल में डालकर उसे छेद से जोड़ देगा ताकि उसे प्रकाश दिखाई दे?

'आदरणीय महोदय, ऐसा बहुत लंबे समय के बाद ही होगा।'

भिक्षुओं, यह अधिक संभव है कि एक अंधा कछुआ हल में अपनी गर्दन डालकर और आंख को छेद में फंसाकर प्रकाश देखने की कोशिश करे, बजाय इसके कि नरक में गिरे मूर्ख को मनुष्यत्व प्राप्त हो। इसका कारण क्या है? यहाँ न तो धार्मिक जीवन है, न अच्छा आचरण, न पुण्य, न ही सुखद मन। यहाँ वे एक दूसरे को खा जाते हैं, कमजोर को खा लिया जाता है। भिक्षुओं, यदि मूर्ख बहुत समय बाद मनुष्यत्व प्राप्त भी कर लेता है, तो वह अछूतों, शिकारियों, बांस बुनने वालों, रथ बनाने वालों, कूड़ा बीनने वालों या ऐसे ही अन्य निम्न कुल में जन्म लेता है। गरीब परिवार में जन्म लेने के कारण, जहाँ खाने-पीने और वस्त्र नहीं होते, वह इन्हें बड़ी मुश्किल से प्राप्त करता है। उसका रूप भी सुंदर नहीं होता, उसका शरीर विकृत होता है और वह अनेक रोगों से ग्रस्त होता है, या तो अंधा, विकृत, लंगड़ा या लकवाग्रस्त होता है, या उसे खाने-पीने, वस्त्र, वाहन, फूल, सुगंध, मलहम, पलंग, आवास और प्रकाश नहीं मिलता। वह शरीर, वाणी और मन से दुराचार करता है और मृत्यु के बाद क्षय होकर नरक में जन्म लेता है।

भिक्षुओं, यह उस जुआरी के समान है जो पहली ही चाल में अपने पुत्रों, पत्नी और सारी संपत्ति हार जाता है और आगे भी उसका पीछा किया जाता है। वह दुर्भाग्यपूर्ण चाल जिसके कारण जुआरी अपने पुत्रों, पत्नी और सारी संपत्ति खो देता है, उस मूर्ख से कहीं बेहतर है जो शरीर, वाणी और मन से कुकर्म करता है और मृत्यु के बाद नरक में जन्म लेगा। भिक्षुओं, अब मूर्खों के क्षेत्र का पूर्ण वर्णन हो गया है।

भिक्षुओं, ये तीन गुण और उपलब्धियाँ ज्ञानी व्यक्ति के लक्षण हैं। ये तीन क्या हैं? ज्ञानी व्यक्ति कल्याण के लिए सोचता है, अच्छे वचन बोलता है और बुद्धिमानी से कार्य करता है। यदि ज्ञानी व्यक्ति बुद्धिमानी भरे विचारों, वचनों और कर्मों से युक्त न हो, तो ज्ञानी लोग कैसे जानेंगे कि यह व्यक्ति ज्ञानी है, योग्य है? क्योंकि ज्ञानी व्यक्ति बुद्धिमानी से सोचता है, बोलता है और कार्य करता है, इसलिए ज्ञानी लोग उसे ज्ञानी के रूप में पहचानते हैं। ज्ञानी व्यक्ति को यहाँ और अभी तीन प्रकार से सुख और आनंद का अनुभव होता है। भिक्षुओं, यदि ज्ञानी व्यक्ति किसी भीड़ में हो, किसी गली के कोने या चौराहे पर हो, और यदि वहाँ के लोग किसी समसामयिक विषय पर चर्चा कर रहे हों, और यदि वह जीवित प्राणियों को नष्ट करने से परहेज करे, बिना दी हुई वस्तु न ले, यौन दुराचार न करे, झूठ न बोले और मादक पेय पदार्थों का सेवन न करे, तो उसे यह आभास होता है कि लोग जिन बातों पर चर्चा कर रहे हैं, मैं भी उन बातों को जानता हूँ। यही वह पहला उदाहरण है जब ज्ञानी व्यक्ति को सुख और आनंद का अनुभव होता है।

हे भिक्षुओं, ज्ञानी व्यक्ति देखता है कि राजा ने एक अपराधी को पकड़ लिया है और उसे अनेक प्रकार की यातनाएँ दी जा रही हैं - कोड़े और चाबुक से पीटा जा रहा है, जंगली रस्सी से कोड़े मारे जा रहे हैं, गंदी छड़ी से कोड़े मारे जा रहे हैं, हाथ काटे जा रहे हैं, पैर काटे जा रहे हैं, या दोनों हाथ और पैर काटे जा रहे हैं, कान और नाक काटे जा रहे हैं, उबलते दलिया के बर्तन में डाला जा रहा है, सिर मुंडवाया जा रहा है, राहु के मुँह में डाला जा रहा है, जलती हुई माला पहनाई जा रही है, हाथ झुलसाए जा रहे हैं, छाल के वस्त्र पहनाए जा रहे हैं, साँपों के साथ रखा जा रहा है, शरीर में काँटे चुभाए जा रहे हैं, शरीर से मांस के टुकड़े काटे जा रहे हैं, कान से कान तक कील ठोंकी जा रही है, शरीर को भूसे की तरह पीट-पीट कर अधमरा किया जा रहा है, उबलते तेल में डुबोया जा रहा है, कुत्तों को खाने के लिए दिया जा रहा है, कील पर जीवित ही मृत्यु तक लटकाया जा रहा है, और तलवार से गर्दन काटी जा रही है। हे भिक्षुओं, तब ज्ञानी व्यक्ति को यह बात समझ में आती है कि इस लुटेरे, इस दुष्ट को बुराई करने के कारण ही दंडित किया जा रहा है। ये बातें मुझे स्पष्ट नहीं हैं। मैं भी इन्हें बुराई ही देखता हूँ। यह दूसरा उदाहरण है जब ज्ञानी व्यक्ति को सुख और आनंद का अनुभव होता है।

हे भिक्षुओं, जब ज्ञानी व्यक्ति कुर्सी, पलंग या ज़मीन पर बिछे कंबल पर विश्राम कर रहा होता है, तो वह अपने शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण के बारे में सोचता है। ऐसे समय में ये बातें उस पर गहरा प्रभाव डालती हैं। जैसे किसी विशाल पर्वत शिखर की छाया शाम के समय धरती पर भारी पड़ती है। उसी प्रकार जब ज्ञानी व्यक्ति कुर्सी, पलंग या ज़मीन पर बिछे कंबल पर विश्राम कर रहा होता है, तो वह अपने शरीर, वाणी और मन के अच्छे आचरण के बारे में सोचता है। ऐसे समय में ये बातें उस पर गहरा प्रभाव डालती हैं। हे भिक्षुओं, तब ज्ञानी व्यक्ति को यह विचार आता है, मैंने कोई दोष नहीं किया, भयभीत लोगों का भय दूर किया, कोई जघन्य अपराध नहीं किया, पुण्य कर्म किए, और बाद में मैं उनका फल भोगूँगा। वह शोक नहीं करता, विलाप नहीं करता, सीना नहीं पीटता और मन की व्याकुलता में नहीं पड़ता। हे भिक्षुओं, यह तीसरा उदाहरण है जब ज्ञानी व्यक्ति सुख और आनंद का अनुभव करता है।

भिक्षुओं, शरीर, वाणी और मन से सलीके से आचरण करने वाला ज्ञानी व्यक्ति मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन के समय वृद्धि के लिए स्वर्ग में जन्म लेता है। यह कहना उचित होगा कि स्वर्ग अत्यंत सुखद और आनंदमय है। उस आनंद की तुलना करना असंभव है।

तब एक भिक्षु ने कहा, 'आदरणीय महोदय, क्या कोई तुलना करना संभव है?'

भगवान बुद्ध ने कहा, 'यह संभव है, भिक्षु। यह उस सुख और आनंद के समान है जो सात रत्नों और चार शक्तियों से संपन्न विश्व सम्राट को प्राप्त होता है।'

वे सात खजाने कौन से हैं?

भिक्षुओं, पूर्णिमा के दिन, जब एक पूजनीय योद्धा राजा अपने महल के सबसे ऊपरी तल पर अपने केश धोते हैं, स्नान करते हैं और आठ नियमों का पालन करते हैं, तब उन्हें हजार गुना तीलियों, धुरी और घुंडी से परिपूर्ण दिव्य चक्र प्रकट होता है। उस चक्र को देखकर, पूजनीय योद्धा राजा के मन में यह विचार आता है: मैंने सुना है कि जब एक पूजनीय योद्धा राजा पूर्णिमा के दिन अपने केश धोते हैं, स्नान करते हैं और आठ नियमों का पालन करते हैं, तब उन्हें हजार गुना तीलियों, धुरी और घुंडी से परिपूर्ण दिव्य चक्र प्रकट होता है। क्या मैं सर्वसमर्थ सम्राट बन गया हूँ? तब, पूजनीय योद्धा राजा अपने आसन से उठकर, अपने बाएं हाथ में स्वर्ण जल की नली और अपने दाहिने हाथ में चक्र लेकर, उस पर जल छिड़कते हैं। भिक्षुओं, तब चक्र राजा और चार प्रकार की सेनाओं के साथ बिना कुछ कहे पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान करता है। जिस भी क्षेत्र में चक्र का खजाना रुकता है, वहाँ राजा और उसकी चार प्रकार की सेना निवास करती है। पूर्व के अधीनस्थ राजा सर्वशक्तिमान सम्राट के पास पहुँचते हैं और उनसे कहते हैं, 'हे महान राजा, आपका स्वागत है, आप सही समय पर आए हैं, हमें सलाह दीजिए।' सर्वशक्तिमान सम्राट कहते हैं, 'जीवन का नाश नहीं करना चाहिए, जो नहीं दिया गया उसे नहीं लेना चाहिए, यौन दुराचार नहीं करना चाहिए, झूठ नहीं बोलना चाहिए और मादक पेय नहीं पीना चाहिए। अपने राज्य का आनंद उसी प्रकार लें जैसे आपने लिया है।' इस प्रकार वे सर्वशक्तिमान सम्राट के अधीनस्थ राजा बन जाते हैं। चक्र का खजाना पूर्व की ओर पूर्वी सागर तक जाता है। फिर वह मुड़कर दक्षिण की ओर जाता है... फिर... दक्षिणी सागर तक। फिर वह मुड़कर पश्चिम की ओर जाता है... फिर... पश्चिमी सागर तक। फिर वह मुड़कर उत्तर की ओर जाता है, बिना एक शब्द कहे, राजा और उसकी चार प्रकार की सेना के साथ। जिस भी क्षेत्र में चक्र का खजाना रुकता है, वहाँ राजा और उसकी चार प्रकार की सेना निवास करती है। उत्तर के अधीनस्थ राजा सर्वशक्तिमान सम्राट के पास पहुँचते हैं और उनसे कहते हैं। 'स्वागत है महान राजा, आप सही समय पर आए हैं, हमें सलाह दीजिए,' सर्वसमृद्ध सम्राट कहते हैं। 'जीवन का नाश नहीं करना चाहिए, जो नहीं दिया गया उसे लेना नहीं चाहिए, यौन दुराचार नहीं करना चाहिए, झूठ नहीं बोलना चाहिए और मादक पेय नहीं पीना चाहिए। अपने राज्य का आनंद उसी प्रकार लें जैसे आपने लिया है।' इस प्रकार वे सर्वसमृद्ध सम्राट के अधीन राजा बन जाते हैं। चक्र का खजाना उत्तर दिशा में उत्तरी सागर तक जाता है। सागर से घिरे सभी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करके, सर्वसमृद्ध सम्राट के राज्य में लौटकर, वह भीतरी कक्ष के प्रवेश द्वार पर इस प्रकार खड़ा होता है मानो उसका धुरी टूट गया हो। भिक्षुओं, सर्वसमृद्ध सम्राट का चक्र का खजाना ऐसा है...

भिक्षुओं, एक बार फिर, विश्व सम्राट के समक्ष उपोसथ नामक हाथी प्रकट हुआ, जो पूर्णतः श्वेत, सात रूपों में दृढ़ और अलौकिक शक्तियों से युक्त था तथा वायु में भी उड़ सकता था। उसे देखकर प्रसन्न हुए विश्व सम्राट ने कहा, "यह हाथी उत्तम वाहन है, बशर्ते इसे अच्छी तरह प्रशिक्षित किया गया हो।" भिक्षुओं, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह हाथी उत्तम कुल का और अच्छी तरह प्रशिक्षित है। अतीत में, एक विश्व सम्राट ने हाथी की जांच करने की इच्छा से सुबह के समय समुद्र से घिरे समस्त भूभाग को पार करते हुए उस पर सवार होकर दोपहर के भोजन के लिए अपने राज्य में वापसी की। भिक्षुओं, विश्व सम्राट का हाथी ऐसा ही है...

भिक्षुओं, एक बार फिर, विश्व सम्राट के समक्ष वलाहा नामक अश्व-शिक्ष प्रकट हुआ, जो पूरी तरह से सफेद था, सिवाय उसके काले सिर और गहरे अयाल के। उसमें अलौकिक शक्तियां थीं और वह हवा में भी उड़ सकता था। उसे देखकर प्रसन्न हुए विश्व सम्राट ने कहा, "यह अश्व-शिक्ष उत्तम है, बशर्ते इसे अच्छी तरह से प्रशिक्षित किया गया हो।" भिक्षुओं, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह अश्व-शिक्ष उत्तम कुल का और अच्छी तरह से प्रशिक्षित है। अतीत में, एक विश्व सम्राट अश्व-शिक्ष का निरीक्षण करने के लिए सुबह समुद्र से घिरे सभी क्षेत्रों को पार करते हुए उस पर सवार हुए और दोपहर के भोजन के लिए अपने राज्य लौट आए। भिक्षुओं, विश्व सम्राट का अश्व-शिक्ष ऐसा है...

भिक्षुओं, एक बार फिर, विश्व सम्राट के समक्ष रत्नों का खजाना प्रकट हुआ। एक उत्तम कुल का लेप रत्न, आठ फलकों वाला और पूर्ण रूप से परिपूर्ण। रत्नों का तेज चारों ओर सात मील तक फैला हुआ था। अतीत में, एक विश्व सम्राट रत्नों के दर्शन करने के लिए, अपने राज्य से चार गुना सेनाओं के साथ रात के अंधेरे में निकले और रत्नों को ध्वज के शीर्ष पर स्थापित कर दिया। आसपास के गांवों के लोग दिन का उजाला समझकर अपना काम करते रहे। भिक्षुओं, विश्व सम्राट का रत्न ऐसा ही है।

भिक्षुओं, एक बार फिर, विश्व सम्राट के सामने स्त्री का वह अनमोल रत्न प्रकट होता है। सुंदर, मनमोहक और सर्वोच्च सौंदर्य से परिपूर्ण। न अधिक लंबी, न अधिक छोटी, न अधिक पतली, न अधिक मोटी, न अधिक सांवली, न अधिक गोरी, वह सौंदर्य मानवीय से परे है, पर दिव्य नहीं। भिक्षुओं, उस स्त्री के अनमोल रत्न का स्पर्श रुई या रेशम के गुच्छे के समान था। शीत ऋतु में उसका शरीर गर्म और ग्रीष्म ऋतु में शीतल होता था। उसके शरीर से चंदन की सुगंध और मुख से श्वेत कमल की सुगंध आती थी। वह स्त्री के अनमोल रत्न, विश्व सम्राट के प्रकट होते ही प्रसन्न मन से उठकर उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी। उस स्त्री के मानसिक आवश्यकताएँ विश्व सम्राट की आवश्यकताओं से अधिक नहीं होती थीं, उसकी शारीरिक आवश्यकताएँ तो कभी भी उनसे अधिक नहीं होती थीं। भिक्षुओं, विश्व सम्राट की स्त्री का अनमोल रत्न ऐसा ही है।

भिक्षुओं, सर्वसमर्थक के समक्ष गृहस्थ खजाना प्रकट होता है।

गृहस्थ के खजाने पर पूर्व कर्मों के फलस्वरूप दिव्य दृष्टि पड़ती है। जब वह किसी खजाने को देखता है, चाहे वह स्वामित्व वाला हो या न हो, तो वह राजा को सूचित करता है, 'महाराज, चिंता न करें, मैं आपका खजाना भर दूंगा।' अतीत में, एक विश्व सम्राट गृहस्थ के खजाने की जांच करने के लिए एक जहाज पर सवार हुए और गंगा के मध्य में जाकर बोले, 'गृहस्थ, मुझे स्वर्ण सोना चाहिए।' 'महाराज, दोनों किनारों में से किसी एक पर पहुंचें।' 'गृहस्थ, मुझे स्वर्ण सोना यहीं चाहिए।' तब उस गृहस्थ ने अपने दोनों हाथों से नदी का पानी हटाया और स्वर्ण सोने से भरा एक घड़ा उठाकर विश्व सम्राट से कहा, 'महाराज, क्या इतना काफी है, क्या काम पूरा हो गया!' 'गृहस्थ, इतना ही काफी है, काम पूरा हो गया!' भिक्षुओं, विश्व सम्राट का गृहस्थ खजाना ऐसा ही है।

हे भिक्षुओं, सर्वसमृद्ध सम्राट के समक्ष एक विवेकशील, विद्वान, बुद्धिमान और सक्षम सलाहकार प्रकट होते हैं। वे सक्षम हैं और सर्वसमृद्ध सम्राट की आवश्यकताओं का ध्यान रख सकते हैं, जो कुछ भी निरस्त किया जाना चाहिए उसे निरस्त कर सकते हैं और जो कुछ भी स्थापित किया जाना चाहिए उसे स्थापित कर सकते हैं। सर्वसमृद्ध सम्राट के पास जाकर वे कहते हैं, 'हे महाराज, चिंता न करें, मैं सलाह दूंगा।' हे भिक्षुओं, सर्वसमृद्ध सम्राट के सलाहकार ऐसे ही होते हैं।

भिक्षुओं, विश्व सम्राट इन सात रत्नों से संपन्न हैं।

भिक्षुओं, चार शक्तियाँ कौन-कौन सी हैं?

भिक्षुओं, विश्व सम्राट सुंदर, मनमोहक और सर्वोच्च सौंदर्य से परिपूर्ण हैं, जो किसी भी अन्य मनुष्य से कहीं अधिक सुंदर हैं। विश्व सम्राट इस प्रथम शक्ति से संपन्न हैं।

भिक्षुओं, एक बार फिर, विश्व सम्राट की आयु लंबी होती है, वे किसी भी अन्य मनुष्य से कहीं अधिक दीर्घायु होते हैं। विश्व सम्राट इस दूसरी शक्ति से संपन्न हैं।

भिक्षुओं, सर्वसमृद्ध सम्राट को कम ही रोग और विकार होते हैं। अन्य मनुष्यों की तरह उनका पाचन तंत्र उत्तम है, न तो उन्हें बहुत ठंड लगती है और न ही बहुत गर्मी। सर्वसमृद्ध सम्राट को यह तीसरी शक्ति प्राप्त है।

हे भिक्षुओं, सर्वसमृद्ध सम्राट ब्राह्मण गृहस्थों को प्रिय हैं। जैसे पिता पुत्रों को प्रिय होते हैं, वैसे ही सर्वसमृद्ध सम्राट ब्राह्मण गृहस्थों को प्रिय हैं। ब्राह्मण गृहस्थ सर्वसमृद्ध सम्राट को प्रिय हैं। जैसे पुत्र पिता को प्रिय होते हैं, वैसे ही ब्राह्मण गृहस्थ सर्वसमृद्ध सम्राट को प्रिय हैं। अतीत में, सर्वसमृद्ध सम्राट चार प्रकार की सेनाओं के साथ उद्यान में गए, तब ब्राह्मण गृहस्थ सर्वसमृद्ध सम्राट के पास आए और बोले, 'हे महाराज, धीरे चलें ताकि हम आपको बेहतर देख सकें।' सर्वसमृद्ध सम्राट ने भी सारथी से कहा, 'सारथी, धीरे चलें ताकि मैं इन ब्राह्मण गृहस्थों को बेहतर देख सकूँ।' सर्वसमृद्ध सम्राट इस चौथी शक्ति से संपन्न हैं।

भिक्षुओं, सर्वसमर्थक इन चार शक्तियों से संपन्न हैं।

भिक्षुओं, क्या इन सात रत्नों और इन चार शक्तियों से संपन्न विश्व सम्राट को इससे अत्यधिक सुख और आनंद प्राप्त होगा?

'इनमें से एक भी रत्न प्राप्त होने पर सर्वशक्तिमान सम्राट को अत्यंत सुख और आनंद प्राप्त होगा। सात रत्नों और चार शक्तियों से संपन्न होने पर तो कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है।'

तब भगवान बुद्ध ने अपनी मुट्ठी में समा सकने वाला एक छोटा पत्थर उठाया और भिक्षुओं से कहा, 'भिक्षुओं, आकार में कौन बड़ा है, मेरी मुट्ठी में रखा पत्थर या हिमालय पर्वत?'

'आदरणीय महोदय, आपकी मुट्ठी में रखा पत्थर महान हिमालय के समर्थ, एक चौथाई भी नहीं, और न ही उसका प्रतीक है।'

भिक्षुओं, इसी प्रकार सात रत्नों और चार शक्तियों के कारण विश्व सम्राट को प्राप्त सुख और आनंद की तुलना स्वर्ग में प्राप्त सुख और आनंद से न तो की जा सकती है, न ही उसके एक चौथाई के बराबर, और न ही उसके सादृश्य के समान। भिक्षुओं, यदि वह ज्ञानी व्यक्ति लंबे समय बाद पुनः जन्म ले, तो वह धनवान, योद्धा कुल, ब्राह्मण कुल, गृहस्थ कुल, या ऐसे ही किसी उच्च कुल में जन्म लेगा, जिसके पास बहुत धन-संपत्ति, सोना-चांदी और अनाज होगा। वह सुंदर और देखने में आकर्षक होगा; उसे खाने-पीने की वस्तुएँ, वस्त्र, वाहन, फूल, सुगंध, मलहम, पलंग, आवास और प्रकाश की प्रचुरता प्राप्त होगी। शरीर, वाणी और मन से उत्तम आचरण करने वाला भिक्षु मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेगा। भिक्षुओं, यह उस जुआरी के समान है जो पहली ही बाजी में अपार धन जीत लेता है। यदि बुद्धिमान व्यक्ति शरीर, वाणी और मन से उत्तम आचरण करे तो मृत्यु के बाद स्वर्ग में जन्म लेना और भी भाग्यशाली दांव होगा। भिक्षुओं, अब बुद्धिमान व्यक्ति के क्षेत्र का पूर्ण वर्णन हो चुका है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 13.10 देवदूत सुत्त(130)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। उन्होंने वहीं से भिक्षुओं को संबोधित किया। 'भिक्षुओं, जैसे कोई व्यक्ति दो घरों के बीच खड़ा होकर, जिनके दरवाजे सटे हुए हों, लोगों को उनमें आते-जाते, घूमते-फिरते देखता है। उसी प्रकार मैं अपनी दिव्य दृष्टि से, जो मनुष्य से परे शुद्ध है, स्वर्ग और नरक में प्रकट और लुप्त होते प्राणियों को,

उदात्त और उदात्त, सुंदर और कुरूप प्राणियों को देखता हूँ। मैं प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार देखता हूँ: ये अच्छे प्राणी जो शरीर, वाणी और मन से सुचारु आचरण करते हैं, श्रेष्ठों की निंदा नहीं करते, सही दृष्टि विकसित करते हैं, कर्मों के प्रति सही दृष्टिकोण रखते हैं, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वृद्धि के लिए जाते हैं और स्वर्ग में जन्म लेते हैं।' ये पुण्य प्राणी, जो शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, श्रेष्ठ व्यक्तियों की निंदा करते हैं, गलत दृष्टिकोण विकसित करते हैं, कर्मों के प्रति गलत धारणा रखते हैं, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, प्रेतों के लोक में जन्म लेते हैं। ये पुण्य प्राणी, जो शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, श्रेष्ठ व्यक्तियों की निंदा करते हैं, गलत दृष्टिकोण विकसित करते हैं, कर्मों के प्रति गलत धारणा रखते हैं, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, पशुओं के साथ जन्म लेते हैं। ये पुण्य प्राणी, जो शरीर, वाणी और मन से दुराचार करते हैं, श्रेष्ठ व्यक्तियों की निंदा करते हैं, गलत दृष्टिकोण विकसित करते हैं, कर्मों के प्रति गलत धारणा रखते हैं, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, घट जाते हैं और नरक में जन्म लेते हैं।

भिक्षुओं, नरक के रक्षकों, इसे हाथ-पैर से पकड़कर पाताल लोक के राजा के पास ले जाओ, 'हे भगवान, यह व्यक्ति अमित्र है, एकता नहीं करता, पवित्र नहीं है, परिवार के बड़ों का आदर नहीं करता, इसे उचित दंड दो।'

पाताल लोक का राजा उससे प्रश्न पूछता है, कारण पूछता है और उसके साथ अध्ययन करता है। 'हे भगवान, क्या तुमने मनुष्यों के बीच पहले दिव्य दूत को नहीं देखा?' वह कहता है, 'हे भगवान, मैंने नहीं देखा।' तब पाताल लोक का राजा उससे पूछता, 'हे भगवान, क्या तुमने एक ऐसे शिशु को नहीं देखा जो मुश्किल से खड़ा हो पाता है और लेट पाता है, और लेटे हुए अपने ही मूत्र और मल में सना हुआ है?' तब वह कहता है, 'हे भगवान, मैंने देखा।' पाताल लोक का राजा उससे पूछता, 'हे भगवान, तुम एक बुद्धिमान वृद्ध हो, क्या तुम्हें यह विचार नहीं आया कि मैं जन्म से परे नहीं गया हूँ, अब मुझे अपने शरीर, वचन और मन से कुछ अच्छा करना चाहिए?' वह कहता, 'हे भगवान, मैं लापरवाही के कारण ऐसा नहीं कर सका।' पाताल लोक का राजा कहता, 'हे भगवान, लापरवाही के कारण ही तुमने ऐसा किया। यह बुरा कार्य तुम्हारे माता, पिता, भाई, बहन, मित्र, सहकर्मी या रक्त संबंधियों ने नहीं किया।' यह किसी संन्यासी, ब्राह्मण या देवता ने नहीं किया, यह आपने किया है और आप इसके परिणाम भुगतेंगे।

भिक्षुओं, पाताल लोक के राजा ने प्रथम दिव्य दूत के बारे में प्रश्नोत्तर, कारण पूछने और अध्ययन करने के बाद उससे पूछा, 'हे भगवान, क्या तुमने मनुष्यों के बीच दूसरे दिव्य दूत को नहीं देखा?' उसने कहा, 'हे भगवान, मैंने नहीं देखा।' तब पाताल लोक के राजा ने उससे पूछा, 'हे भगवान, क्या तुमने मनुष्यों के बीच अस्सी या नब्बे वर्ष की किसी स्त्री या पुरुष को नहीं देखा, जो छत के ढांचे की तरह कमजोर और झुका हुआ था, छड़ी के सहारे चल रहा था, कांप रहा था, बीमार था, जवानी खो चुका था, टूटे दांत थे, सफेद बाल थे, झुर्रीदार त्वचा थी?' तब उसने कहा, 'हे भगवान, मैंने देखा।' पाताल लोक के राजा ने उससे पूछा, 'हे भगवान, एक बुद्धिमान वृद्ध होने के नाते, क्या तुम्हें यह विचार नहीं आया कि मैं क्षय से परे नहीं गया हूँ, अब मुझे अपने शरीर, वचन और मन से कुछ अच्छा करना चाहिए?' उसने कहा, 'हे भगवान, मैं लापरवाही के कारण नहीं कर सका।' पाताल लोक के राजा ने कहा, 'हे भगवान, लापरवाही के कारण ही तुमने ऐसा किया।' यह बुरा कर्म न तो तुम्हारी माता, पिता, भाई, बहन, मित्र, सहकर्मी या रक्त संबंधियों ने किया है। न ही संन्यासियों, ब्राह्मणों या देवताओं ने; यह तुमने किया है और तुम्हें इसका फल भुगतना पड़ेगा।

भिक्षुओं, पाताल लोक के राजा ने दूसरे दिव्य दूत के बारे में पूछताछ, कारण पूछने और साथ में अध्ययन करने के बाद उससे पूछा, 'हे भगवान, क्या तुमने मनुष्यों के बीच तीसरे दिव्य दूत को नहीं देखा?' उसने कहा, 'हे भगवान, मैंने नहीं देखा।' तब पाताल लोक के राजा ने उससे पूछा, 'हे भगवान, क्या तुमने मनुष्यों के बीच किसी स्त्री या पुरुष को गंभीर रूप से बीमार, अपने ही मूत्र और मल में डूबा हुआ, दूसरों द्वारा उठाया और ले जाया जाते हुए नहीं देखा?' तब उसने कहा, 'हे भगवान, मैंने देखा।' पाताल लोक के राजा ने उससे पूछा, 'हे भगवान, एक बुद्धिमान वृद्ध होने के नाते, क्या तुम्हारे मन में यह विचार नहीं आया कि मैं बीमारी से उबर नहीं पाया हूँ, अब मुझे अपने शरीर, वाणी और मन से कुछ अच्छा करना चाहिए?' उसने कहा, 'हे भगवान, मैं लापरवाही के कारण ऐसा नहीं कर सका।' पाताल लोक के राजा ने कहा, 'हे भगवान, लापरवाही के कारण ही तुमने ऐसा किया। यह बुरा कार्य तुम्हारे माता, पिता, भाई, बहन, मित्र, सहकर्मी या रक्त संबंधियों ने नहीं किया।' यह किसी संन्यासी, ब्राह्मण या देवता ने नहीं किया, यह आपने किया है और आप इसके परिणाम भुगतेंगे।

भिक्षुओं, पाताल लोक के राजा ने तीसरे दिव्य दूत के बारे में पूछताछ, कारण पूछने और साथ मिलकर अध्ययन करने के बाद उससे पूछा, 'हे भगवान, क्या तुमने मनुष्यों के बीच चौथे दिव्य दूत को नहीं देखा?' उसने कहा, 'हे भगवान, मैंने नहीं देखा।' तब पाताल लोक का राजा उससे पूछता। 'हे भले मनुष्य, क्या तुमने मनुष्यों के बीच एक अपराधी को राजा द्वारा पकड़े जाने और उसे तरह-तरह की यातनाएँ देते हुए नहीं देखा? उसे कोड़े मारे गए, जंगली रस्सी से पीटा गया, गंदी छड़ी से पीटा गया, उसके हाथ काटे गए, पैर काटे गए, या दोनों हाथ और पैर काटे गए, कान और नाक काटे गए, उसे उबलते दलिया के बर्तन में डाला गया, उसके सिर मुंडवा दिए गए, उसे राहु के मुँह में डाला गया, उसे जलती हुई माला पहनाई गई, उसके हाथ झुलसाए गए, उसे छाल का वस्त्र पहनाया गया, उसे साँपों के साथ रखा गया, उसके शरीर में हुक गाड़े गए, उसके शरीर से मांस के टुकड़े काटे गए, उसके कान से कान तक कील ठोंकी गई, उसके शरीर को भूसे की

तरह पीट-पीट कर रख दिया गया, उसे उबलते तेल में डुबोया गया, कुत्तों को खाने के लिए दे दिया गया, उसे जीवित ही कील पर लटकाकर मृत्यु तक तड़पाया गया, और तलवार से उसकी गर्दन काट दी गई?' तब वह कहता है, 'हे भगवान, मैंने देखा।' पाताल लोक का राजा उससे पूछता है, 'हे भले मनुष्य, तुम एक बुद्धिमान वृद्ध हो, क्या तुम्हें यह बात समझ में नहीं आई कि बुरे कर्मों का फल यहीं और अभी मिलता है, कोई दूसरा विकल्प नहीं है।' अब मैं अपने शरीर, वाणी और मन से कुछ अच्छा करूँ?' वह कहता, 'हे भगवान, मैं लापरवाही के कारण ऐसा नहीं कर सका।' पाताल लोक का राजा कहता, 'हे बालक, तुमने लापरवाही के कारण ऐसा किया। यह बुरा कर्म तुम्हारी माता, पिता, भाई, बहन, मित्र, सहकर्मी या रक्त संबंधियों ने नहीं किया। यह संन्यासियों, ब्राह्मणों या देवताओं ने भी नहीं किया, यह तुमने किया है और तुम्हें इसका फल भुगतना पड़ेगा।

भिक्षुओं, पाताल लोक के राजा ने चौथे दिव्य दूत के बारे में पूछताछ, कारण पूछने और अध्ययन करने के बाद उससे पूछा, 'हे भगवान, क्या तुमने पाँचवें दिव्य दूत को मनुष्यों के बीच नहीं देखा?' उसने कहा, 'हे भगवान, मैंने नहीं देखा।' तब पाताल लोक के राजा ने उससे पूछा, 'हे भगवान, क्या तुमने मनुष्यों के बीच एक स्त्री या पुरुष को एक दिन, दो दिन या तीन दिन बाद मृत नहीं देखा, जो फूला हुआ और नीला पड़ गया था?' तब उसने कहा, 'हे भगवान, मैंने देखा।' पाताल लोक के राजा ने उससे पूछा, 'हे भगवान, तुम एक बुद्धिमान वृद्ध हो, क्या तुम्हें यह बात नहीं सूझी कि मैं भी मृत्यु के अधीन हूँ, मैं मृत्यु से परे नहीं गया हूँ। अब मैं अपने शरीर, वचन और मन से कुछ अच्छा करूँ?' उसने कहा, 'हे भगवान, मैं लापरवाही के कारण नहीं कर सका।' पाताल लोक के राजा ने कहा, 'हे भगवान, लापरवाही के कारण ही तुमने ऐसा किया। यह बुरा कर्म तुम्हारे माता, पिता, भाई, बहन, मित्र, सहकर्मी या रक्त संबंधियों ने नहीं किया।' यह किसी संन्यासी, ब्राह्मण या देवता ने नहीं किया, यह आपने किया है और आप इसके परिणाम भुगतेंगे।

भिक्षुओं, पाताल लोक के राजा ने पाँचवें दिव्य दूत के बारे में प्रश्न-प्रश्न करने, कारण पूछने और साथ मिलकर अध्ययन करने के बाद मौन धारण कर लिया।

फिर नरक के पहरेदार उसे पाँच प्रकार से बांधते हैं। उसके दोनों हाथों की हथेलियों में दो-दो गर्म लोहे की कीलें ठोंक दी जाती हैं, उसके दोनों पैरों में दो-दो गर्म कीलें ठोंक दी जाती हैं और पाँचवीं गर्म लोहे की कील उसकी छाती में ठोंक दी जाती है। इसके कारण उसे तीव्र चुभन और असहनीय पीड़ा का अनुभव होता है। फिर भी, जब तक उसका कर्म समाप्त नहीं हो जाता, वह मरता नहीं है। इसके बाद नरक के पहरेदार उसे ले जाकर हथौड़ों से पीटते हैं। इसके कारण भी उसे तीव्र चुभन और असहनीय पीड़ा का अनुभव होता है। फिर भी, जब तक उसका कर्म समाप्त नहीं हो जाता, वह मरता नहीं है। इसके बाद नरक के पहरेदार उसे उल्टा लटकाकर चाकू से काटते हैं। इसके कारण भी उसे तीव्र चुभन और असहनीय पीड़ा का अनुभव होता है। फिर भी, जब तक उसका कर्म समाप्त नहीं हो जाता, वह मरता नहीं है। इसके बाद नरक के पहरेदार उसे एक गाड़ी में जोतकर जलती हुई जमीन पर आगे-पीछे दौड़ाते हैं। इसके कारण भी उसे तीव्र चुभन और असहनीय पीड़ा का अनुभव होता है। फिर भी, जब तक उसका कर्म समाप्त नहीं हो जाता, वह मरता नहीं है। इसके बाद नरक के पहरेदार उसे जलते हुए अंगारों की चट्टान पर चढ़ाते और उतारते हैं। इस कारण उसे तीव्र चुभन भरी अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं। फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता। इसके बाद नरक के पहरेदार उसे पिघले हुए, धधकते हुए बर्तन में उल्टा फेंक देते हैं। वहाँ वह पिघले हुए मैल में पक जाता है, और वह स्वयं ही उसमें गोता लगाता है, ऊपर आता है और पिघले हुए बर्तन में इधर-उधर घूमता है। इस कारण भी उसे तीव्र चुभन भरी अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं। फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता। इसके बाद नरक के पहरेदार उसे महानर में फेंक देते हैं। वर्गाकार महानर के चार द्वार हैं और यह दो भागों में विभाजित है, लोहे की दीवारों से घिरा हुआ है और लोहे के ढक्कन से बंद है। इसका फर्श सात सौ मील तक फैला हुआ है, और यह प्रतिदिन वहीं रहता है।

नरक की पूर्वी दीवार से आग निकलती है और पश्चिमी दीवार को झुलसा देती है। पश्चिमी दीवार से आग निकलती है और पूर्वी दीवार को झुलसा देती है। उत्तरी दीवार से आग निकलती है और दक्षिणी दीवार को झुलसा देती है। दक्षिणी दीवार से आग निकलती है और उत्तरी दीवार को झुलसा देती है। नीचे से आग निकलती है और ऊपर से आग निकलती है और नीचे को झुलसा देती है। वहाँ उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं, फिर भी जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।

भिक्षुओं, बहुत समय बीतने के बाद, नरक का पूर्वी द्वार खुलता है। तब वह बड़ी तेज़ी से भागता है, इस प्रक्रिया में उसकी बाहरी त्वचा, भीतरी त्वचा, मांस, नसें और यहाँ तक कि हड्डियाँ भी जल उठती हैं, यहाँ तक कि यदि वह किसी तरह खुद को बाहर निकाल भी ले, तो भी ऐसा ही होता है। जब वह इससे पूरी तरह से तृप्त हो जाता है, तो द्वार बंद हो जाता है। वहाँ उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं, फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक कि उसके कर्मों का अंत नहीं हो जाता।

भिक्षुओं, बहुत समय बीतने के बाद, नरक का पश्चिमी द्वार खुलता है। तब वह बड़ी तेज़ी से भागता है, इस प्रक्रिया में उसकी बाहरी त्वचा, भीतरी त्वचा, मांस, नसें और यहाँ तक कि हड्डियाँ भी जल उठती हैं, यहाँ तक कि यदि वह किसी तरह खुद को बाहर निकाल भी

ले, तो भी ऐसा ही होता है। जब वह इससे पूरी तरह से तृप्त हो जाता है, तो द्वार बंद हो जाता है। वहाँ उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं, फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक कि उसके कर्मों का अंत नहीं हो जाता।

भिक्षुओं, बहुत लंबे समय के बाद, ऐसा होता है कि नरक का पूर्वी द्वार खुल जाता है। तब वह बड़ी तेज़ी से भागता है, ऐसा करने में उसकी बाहरी त्वचा, भीतरी त्वचा, मांस, नसें और यहाँ तक कि हड्डियाँ भी जल उठती हैं, और यदि वह किसी तरह खुद को बाहर निकाल भी ले, तो भी वह उस द्वार से बच निकलता है।

महान नरक के समानांतर और उसके साथ ही मल का नरक भी है, जिसमें वह गिरता है। उसमें सुई जैसे मुंह वाले जीव होते हैं, जो बाहरी त्वचा को छेदते हैं, फिर भीतरी त्वचा को, उसके बाद मांस, नसों और यहां तक कि हड्डियों को भी, और वे अस्थि मज्जा को खा जाते हैं। वहां उसे तीव्र चुभन और अप्रिय संवेदनाओं का अनुभव होता है, फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक कि उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता।

मल-मूत्र के नरक के समानांतर और साथ ही, वह नरक जहाँ गर्म राख बरसती है, उसमें गिर जाता है। वहाँ उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं, फिर भी जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।

नरक के समानांतर और उसके साथ ही, जहाँ गर्म राख बरसती है, सिम्बाली का जंगल है, जो सात मील से भी अधिक ऊँचा है, जिसमें सोलह इंच लंबे कांटे हैं, जो धधकते और जलते रहते हैं। वह उन पर चढ़ता है और इधर-उधर घूमता है। वहाँ उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं, फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता।

सिम्बाली वन के समानांतर और उसके साथ ही तलवारों का एक वन है। वह उसमें प्रवेश करता है। हवा से गिरते पत्ते उसके पैरों, हाथों, कानों, नाक और कानों को काट देते हैं। वहाँ उसे तीव्र चुभन और अप्रिय पीड़ा का अनुभव होता है, फिर भी जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता, वह मरता नहीं है।

तलवारों के जंगल के समानांतर और उसके साथ-साथ एक विशाल खारे पानी की नदी बहती है। वह उसमें गिर जाता है। उसमें वह धारा के साथ बहता है और फिर धारा के साथ बहता है। वहाँ उसे तीव्र, चुभने वाली और अप्रिय अनुभूतियाँ होती हैं, फिर भी जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता, तब तक उसकी मृत्यु नहीं होती।

फिर नरक के पहरेदार उसे हुक से खींचकर बाहर निकालते हैं और पूछते हैं, 'भले आदमी, तुम्हारी क्या इच्छा है?' वह कहता है, 'महोदय, मुझे भूख लगी है।' नरक के पहरेदार गर्म लोहे की कीलों से उसका मुंह खोलते हैं और उसके मुंह में जलती हुई लोहे की गोलियां डालते हैं। वे उसके होंठ, मुंह, गला, छाती, आंतें, निचली आंतें सब जला देती हैं और उसके भीतरी अंगों को बाहर निकाल देती हैं। वहां उसे तेज चुभने वाली असहनीय पीड़ा होती है, फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता।

फिर पहरेदार उससे पूछते हैं, 'महोदय, आपकी क्या इच्छा है?' वह कहता है, 'महोदय, मुझे प्यास लगी है।' नरक के पहरेदार गर्म लोहे की कीलों से उसका मुंह खोलते हैं और उसके मुंह में जलता हुआ, धधकता तांबा डालते हैं। वे उसके होंठ, मुंह, गला, छाती, आंतें, निचली आंतें जला देते हैं और उसके भीतर के अंगों को बाहर निकाल देते हैं। वहां उसे तीव्र चुभन और असहनीय पीड़ा का अनुभव होता है, फिर भी वह तब तक नहीं मरता जब तक कि उसका पाप समाप्त नहीं हो जाता।

फिर नरक के रक्षकों ने उसे वापस महान नरक में डाल दिया।

अतीत में पाताल लोक के राजा के साथ ऐसा ही हुआ था। संसार में बुराई करने वालों को ये अनेक दंड दिए जाते हैं। हे! काश मुझे मानवता प्राप्त हो जाए। हे! काश वह सिद्ध पुरुष, जो पूर्णतः ज्ञानी और सच्चे स्वरूप से प्रबुद्ध हैं, संसार में जन्म लें। हे! काश मैं उस परम पूज्य पुरुष की संगति में रहूँ। हे! काश वह परम पूज्य पुरुष मुझे शिक्षा दें और मैं उस शिक्षा को जान लूँ।

भिक्षुओं, मैं यह बात किसी अन्य संन्यासी या ब्राह्मण से सुनकर नहीं कह रहा हूँ, यह वह है जो मैंने स्वयं जाना और देखा है, इसलिए मैं यह कह रहा हूँ।

तब भगवान ने आगे कहा।

"वे मनुष्य जो लापरवाह होते हैं, जब उन्हें दिव्य दूतों द्वारा दोषी ठहराया जाता है..."
निम्न कुल में जन्म लेने वाले लोग वहां लंबे समय तक शोक मनाते हैं।
ईश्वरीय दूतों द्वारा निंदा किए गए संतुष्ट और योग्य व्यक्ति,
किसी भी दिन इस महान शिक्षा में लापरवाही न बरतें।
वे जन्म, मृत्यु और अस्तित्व में भय देखते हैं।
और वे जन्म और मृत्यु को नष्ट करते हुए, बिना पकड़े स्वयं को मुक्त कर लेते हैं।
वे शांत और सुखद हैं, जो यहीं और अभी समाप्त हो चुके हैं।
मैं भय और प्रतिशोध की भावना से परे जा चुका हूँ, सभी अप्रियताओं से परे जा चुका हूँ।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.1 भद्देकरत्ता सुत्त(131)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"
भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "जी भगवान।"

भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक शुभ दिन वाले व्यक्ति के अनुभव का सारांश और व्याख्या सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, स्वामी," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा:

आपको अतीत के पीछे नहीं भागना चाहिए
  और न ही भविष्य से कोई उम्मीद रखनी चाहिए।
जो बीत गया
सो बीत गया।
भविष्य
अभी आना बाकी है।
जो भी गुण वर्तमान में मौजूद है
, वह आपको स्पष्ट रूप से वहीं दिखाई देता है
।
बिना प्रभावित हुए,
अविचलित रहते हुए,
इसी तरह हृदय का विकास होता है। आज जो करना चाहिए, उसे
पूरी लगन से करो , क्योंकि कौन जाने? कल मृत्यु ही तो है। मृत्यु और उसके विशाल दल से कोई समझौता नहीं किया जा सकता ।

जो कोई भी इस प्रकार दिन-रात पूरी लगन
और अथक परिश्रम से जीवन व्यतीत करता है, उसका दिन वास्तव में शुभ होता है: ऐसा शांतिप्रिय ऋषि कहते हैं।

और हे भिक्षुओं, कोई अतीत के पीछे कैसे भागता है? वह इस आनंद में बह जाता है कि 'अतीत में मेरा ऐसा रूप (शरीर) था'... 'अतीत में मेरी ऐसी अनुभूति थी'... 'अतीत में मेरी ऐसी धारणा थी'... 'अतीत में मेरी ऐसी चेतना थी'। इसे ही अतीत के पीछे भागना कहते हैं।

और कोई अतीत के पीछे कैसे न भागे? कोई इस आनंद में न बह जाए कि 'अतीत में मेरा ऐसा रूप (शरीर) था'... 'अतीत में मेरी ऐसी अनुभूति थी'... 'अतीत में मेरी ऐसी धारणा थी'... 'अतीत में मेरी ऐसी विचार-रचना थी'... 'अतीत में मेरी ऐसी चेतना थी।' इसे ही अतीत के पीछे न भागना कहते हैं।

और कोई भविष्य से अपेक्षाएँ कैसे रखता है? व्यक्ति इस आनंद में बह जाता है कि 'भविष्य में मेरा ऐसा रूप (शरीर) हो सकता है'... 'भविष्य में मुझे ऐसी अनुभूति हो सकती है'... 'भविष्य में मेरी ऐसी धारणा हो सकती है'... 'भविष्य में मेरी ऐसी चेतना हो सकती है।' इसे ही भविष्य से अपेक्षाएँ रखना कहते हैं।

और भविष्य से अपेक्षाएँ कैसे न रखी जाएँ? 'भविष्य में मेरा ऐसा रूप (शरीर) हो सकता है'... 'भविष्य में मेरी ऐसी अनुभूति हो सकती है'... 'भविष्य में मेरी ऐसी धारणा हो सकती है'... 'भविष्य में मेरी ऐसी विचार-रचना हो सकती है'... 'भविष्य में मेरी ऐसी चेतना हो सकती है' जैसी खुशियों में बहकना नहीं चाहिए। इसे ही भविष्य से अपेक्षाएँ न रखना कहते हैं।

और वर्तमान गुणों के संबंध में व्यक्ति कैसे भ्रमित हो जाता है? एक ऐसा मामला है जहां एक अशिक्षित साधारण व्यक्ति, जिसने श्रेष्ठ व्यक्तियों को नहीं देखा है, जो श्रेष्ठ व्यक्तियों की शिक्षाओं में पारंगत नहीं है, जो श्रेष्ठ व्यक्तियों की शिक्षाओं में प्रशिक्षित नहीं है, वह रूप को स्वयं के रूप में, या स्वयं को रूप धारण करने वाले के रूप में, या रूप को स्वयं में, या स्वयं को रूप में देखता है।

वह भावना को स्वयं के रूप में, या स्वयं को भावना से युक्त रूप में, या भावना को स्वयं में, या स्वयं को भावना में देखता/देखती है।

वह धारणा को स्वयं के रूप में, या स्वयं को धारणा से युक्त रूप में, या धारणा को स्वयं में, या स्वयं को धारणा में देखता/देखती है।

वह व्यक्ति विचार-रचनाओं को स्वयं के रूप में, या स्वयं को विचार-रचनाओं से युक्त मानता है, या विचार-रचनाओं को स्वयं में, या स्वयं को विचार-रचनाओं में देखता है।

वह चेतना को स्वयं के रूप में, या स्वयं को चेतना से युक्त, या चेतना को स्वयं में, या स्वयं को चेतना में देखता है। इसे वर्तमान गुणों के संदर्भ में अंतर्मुखी होना कहते हैं।

और वर्तमान गुणों के संबंध में कोई कैसे मोहित नहीं हो सकता? एक ऐसा मामला है जहाँ श्रेष्ठ पुरुषों का शिष्य, जिसने श्रेष्ठ पुरुषों को देखा है, उनकी शिक्षाओं में पारंगत है, उनकी शिक्षाओं में अच्छी तरह से प्रशिक्षित है, वह रूप को स्वयं के रूप में, स्वयं को रूप धारण करने वाले के रूप में, रूप को स्वयं में, या स्वयं को रूप में नहीं देखता है।

वह भावना को स्वयं के रूप में, या स्वयं को भावना से युक्त रूप में, या भावना को स्वयं में, या स्वयं को भावना में नहीं देखता/देखती है।

वह व्यक्ति बोध को स्वयं के रूप में, या स्वयं को बोध से युक्त रूप में, या बोध को स्वयं में, या स्वयं को बोध में नहीं देखता/देखती है।

वह व्यक्ति न तो विचार-रचनाओं को स्वयं के रूप में देखता है, न ही स्वयं को विचार-रचनाओं से युक्त मानता है, न ही विचार-रचनाओं को स्वयं में निहित मानता है, और न ही स्वयं को विचार-रचनाओं में निहित मानता है।

वह चेतना को स्वयं के रूप में, या स्वयं को चेतना से युक्त, या चेतना को स्वयं में, या स्वयं को चेतना में नहीं देखता/देखती है। इसे वर्तमान गुणों के संबंध में बहकावे में न आना कहते हैं।

आपको अतीत के पीछे नहीं भागना चाहिए
और न ही भविष्य से कोई उम्मीद रखनी चाहिए।
जो बीत गया
सो बीत गया।
भविष्य
अभी आना बाकी है।
जो भी गुण वर्तमान में मौजूद है
, वह आपको स्पष्ट रूप से वहीं दिखाई देता है

।
बिना प्रभावित हुए,
अविचलित रहते हुए,
इसी तरह हृदय का विकास होता है। आज जो करना चाहिए, उसे
पूरी लगन से करो , क्योंकि कौन जाने? कल मृत्यु ही तो है। मृत्यु और उसके विशाल दल से कोई समझौता नहीं किया जा सकता ।
जो कोई भी इस प्रकार दिन-रात पूरी लगन
और अथक परिश्रम से जीवन व्यतीत करता है, उसका दिन वास्तव में शुभ होता है: ऐसा शांतिप्रिय ऋषि कहते हैं।
"'भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक शुभ दिन वाले व्यक्ति के सारांश और व्याख्या का पाठ पढ़ाऊंगा।' ऐसा कहा गया था, और इसी के संदर्भ में यह कहा गया था।"
भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.2आनंदभद्देकरत्त सुत्त(132)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्ती में जेतवन के वन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य आनंद सभागृह में भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे, उन्हें मार्गदर्शन दे रहे थे और एकल शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत विवरण देकर उनके हृदयों को हल्का कर रहे थे। फिर शाम को भगवान बुद्ध एकांतवास से उठे, सभागृह में आए, तैयार आसन पर बैठे और भिक्षुओं को संबोधित किया। 'भिक्षुओं, सभागृह में भिक्षुओं को उपदेश दे रहे थे, उन्हें मार्गदर्शन दे रहे थे और एकल शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत विवरण देकर उनके हृदयों को हल्का कर रहे थे, कौन था?'

'आदरणीय महोदय, आदरणीय आनंद, सभा कक्ष में उपस्थित भिक्षुओं को एकमात्र शुभ आसक्ति की संक्षिप्त और विस्तृत व्याख्या से उपदेश दे रहे थे, सलाह दे रहे थे और उनके हृदयों को हल्का कर रहे थे।'

तब भगवान बुद्ध ने पूज्य आनंद को संबोधित करते हुए कहा, 'आनंद, आपने सभाघर में उपस्थित भिक्षुओं को एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन करके कैसे उपदेश दिया, उन्हें सलाह दी और उनके हृदयों को हल्का किया?'

'आदरणीय महोदय, मैंने सभाघर में उपस्थित भिक्षुओं को एकमात्र शुभ आसक्ति की संक्षिप्त और विस्तृत व्याख्या से इस प्रकार उपदेश दिया, सलाह दी और उनके हृदयों को हल्का किया।'

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

भिक्षुओं, आप अतीत को कैसे याद करते हैं? आप रुचिपूर्वक सोचते हैं, अतीत में मैं इस प्रकार का था। अतीत में मेरी ऐसी भावनाएँ थीं। अतीत में मेरी ऐसी धारणाएँ थीं। अतीत में मेरे ऐसे संकल्प थे। अतीत में मेरी ऐसी चेतना थी। भिक्षुओं, इस प्रकार आप अतीत को याद करते हैं।

भिक्षुओं, आप अतीत को क्यों नहीं याद करते? आप रुचिपूर्वक यह नहीं सोचते कि अतीत में मैं ऐसा था, अतीत में मेरी ऐसी भावनाएँ थीं, अतीत में मेरी ऐसी धारणाएँ थीं, अतीत में मेरे ऐसे संकल्प थे, अतीत में मेरी ऐसी चेतना थी। भिक्षुओं, इस प्रकार आप अतीत को याद नहीं करते।

भिक्षुओं, आप भविष्य की इच्छा कैसे नहीं करते? आप भविष्य में ऐसे पदार्थ, ऐसी भावनाएँ, ऐसी धारणाएँ, ऐसे संकल्प, ऐसी चेतना की इच्छा नहीं करते। भिक्षुओं, इस प्रकार आप भविष्य की इच्छा नहीं करते।

भिक्षुओं, आप वर्तमान की बातों में कैसे भटक जाते हैं? भिक्षुओं, अज्ञानी साधारण मनुष्य, जिसने श्रेष्ठ और महान व्यक्तियों को नहीं देखा है, जो उनके उपदेशों में निपुण नहीं है और न ही उनके उपदेशों में प्रशिक्षित है, वह अपने भीतर के पदार्थ, या भौतिक आत्मा, या आत्मा में पदार्थ, या पदार्थ में आत्मा का चिंतन करता है। वह अपने भीतर की भावनाओं, या भावनाशील आत्मा, या आत्मा में भावनाओं, या आत्मा में भावनाओं का चिंतन करता है। वह अपने भीतर की धारणाओं, या बोधशील आत्मा, या आत्मा में धारणाओं, या धारणाओं का चिंतन करता है। वह अपने भीतर के संकल्पों, या संकल्पशील आत्मा, या आत्मा में संकल्पों, या संकल्पों का चिंतन करता है। वह अपने भीतर की चेतना, या चेतन आत्मा, या आत्मा में चेतना, या चेतना में चेतना का चिंतन करता है। भिक्षुओं, इस प्रकार आप वर्तमान की बातों में भटक जाते हैं।

भिक्षुओं, आप वर्तमान की बातों में कैसे विचलित नहीं होते? भिक्षुओं, विद्वान और श्रेष्ठ शिष्य, जिसने श्रेष्ठ पुरुषों और महान व्यक्तियों को देखा है, जो अपने उपदेशों में निपुण और प्रशिक्षित हैं, वह अपने भीतर के पदार्थ, भौतिक आत्मा, या आत्मा में पदार्थ, या पदार्थ में आत्मा का चिंतन नहीं करता। वह अपने भीतर की भावनाओं, या भावनाशील आत्मा, या स्वयं की भावनाओं, या स्वयं की भावनाओं का चिंतन नहीं करता। वह अपने भीतर की धारणाओं, या प्रत्यक्ष आत्मा, या स्वयं की धारणाओं, या स्वयं की धारणाओं का चिंतन नहीं करता। वह अपने भीतर की चेतना, या सचेत आत्मा, या स्वयं की चेतना, या स्वयं की चेतना का चिंतन नहीं करता। भिक्षुओं, इस प्रकार आप वर्तमान की बातों में विचलित नहीं होते।

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

'आदरणीय महोदय, मैंने भिक्षुओं को इस प्रकार संक्षिप्त और विस्तृत रूप से एकमात्र शुभ आसक्ति का वर्णन करके उपदेश दिया, सलाह दी और उनके हृदयों को हल्का किया...'

'आनंद, अतीत को कैसे याद किया जाता है? तुम रुचिपूर्वक सोचते हो, मैं अतीत में इस प्रकार का पदार्थ था। मैं अतीत में इस प्रकार की भावनाओं वाला था। मैं अतीत में इस प्रकार की धारणाओं वाला था। मैं अतीत में इस प्रकार के संकल्पों वाला था। मैं अतीत में इस प्रकार की चेतना वाला था। आनंद, इस प्रकार तुम अतीत को याद करते हो।'

आनंद, तुम अतीत को क्यों नहीं याद करते? तुम रुचिपूर्वक यह नहीं सोचते कि अतीत में मैं ऐसा था। अतीत में मेरी ऐसी भावनाएँ थीं। अतीत में मेरी ऐसी धारणाएँ थीं। अतीत में मेरे ऐसे संकल्प थे। अतीत में मेरी ऐसी चेतना थी। आनंद, इस प्रकार तुम अतीत को याद नहीं करते।

आनंद, तुम भविष्य की इच्छा क्यों नहीं करते? तुम भविष्य में ऐसी वस्तु, ऐसी भावना, ऐसी धारणा, ऐसे संकल्प, ऐसी चेतना की इच्छा नहीं करते। आनंद, इस प्रकार तुम भविष्य की इच्छा नहीं करते।

आनंद, तुम वर्तमान की बातों में कैसे भटक जाते हो? आनंद, अज्ञानी साधारण मनुष्य, जिसने श्रेष्ठ और महान व्यक्तियों को नहीं देखा, जो उनकी शिक्षाओं में निपुण नहीं है और न ही उनकी शिक्षाओं में प्रशिक्षित है, वह अपने भीतर के पदार्थ, या भौतिक आत्मा, या आत्मा में पदार्थ, या पदार्थ में आत्मा का चिंतन करता है। वह अपने भीतर की भावनाओं, या भावनाशील आत्मा, या आत्मा में भावनाओं, या आत्मा में भावनाओं का चिंतन करता है। वह अपने भीतर की धारणाओं, या एक बोधशील आत्मा, या आत्मा में धारणाओं, या धारणाओं में चिंतन करता है। वह अपने भीतर के संकल्पों, या एक संकल्पशील आत्मा, या आत्मा में संकल्पों, या संकल्पों में चिंतन

करता है। वह अपने भीतर की चेतना, या एक चेतन आत्मा, या आत्मा में चेतना, या चेतना में चिंतन करता है। आनंद, इस प्रकार तुम वर्तमान की बातों में भटक जाते हो।

आनंद, तुम वर्तमान की बातों में कैसे विचलित नहीं होते? आनंद, हे विद्वान और श्रेष्ठ शिष्य, जिसने श्रेष्ठ पुरुषों और महान आत्माओं को देखा है, जो अपने उपदेशों में निपुण और प्रशिक्षित हैं, वह स्वयं में पदार्थ, भौतिक आत्मा, या स्वयं में पदार्थ, या पदार्थ में आत्मा का चिंतन नहीं करता। वह स्वयं में भावनाओं, या भावनाशील आत्मा, या स्वयं में भावनाओं, या स्वयं में भावनाओं का चिंतन नहीं करता। वह स्वयं में बोध, या बोधशील आत्मा, या स्वयं में बोध, या स्वयं में बोध का चिंतन नहीं करता। वह स्वयं में संकल्प, या संकल्पशील आत्मा, या स्वयं में संकल्प, या स्वयं में चेतना, या स्वयं में चेतना, या स्वयं में चेतना का चिंतन नहीं करता। आनंद, इस प्रकार तुम वर्तमान की बातों में विचलित नहीं होते।

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने कहा, 'यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।'

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.3महाक्कनभद्देकरत्त सुत्त(133)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

एक समय भगवान राजागृह के उस मठ में निवास करते थे जहाँ गर्म पानी उपलब्ध था। पूज्य समिद्धि रात्रि के अंतिम पहर उठे और गर्म पानी से स्नान करने गए। स्नान करने के बाद वे बाहर आए और एक वस्त्र धारण किए शरीर को सुखाने के लिए खड़े हो गए। तभी एक देवता ने पूरे गर्म जंगल को प्रकाशित किया, पूज्य समिद्धि के पास आए, एक तरफ खड़े हुए और बोले, 'भिक्षु, क्या आपको एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन याद है?'

'मित्र, मुझे एकमात्र शुभ आसक्ति के संक्षिप्त और विस्तृत विवरण याद नहीं हैं। क्या आपको याद हैं?'

'भिक्षु, मुझे भी एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत विवरण याद नहीं है। भिक्षु, एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत विवरण सीख लें, इसमें पवित्र जीवन के मूल सिद्धांत बताए गए हैं।'

यह कहते हुए देवता वहां से विलीन हो गए। उस रात के अंत में पूज्य समिद्धि भगवान बुद्ध के पास गए, पूजा की, एक तरफ बैठ गए और बोले।

'आदरणीय महोदय, मैं रात के अंतिम पहर में उठा और गर्म पानी से स्नान करने गया। स्नान करने के बाद मैं बाहर आया और एक वस्त्र धारण किए शरीर को सुखाने के लिए खड़ा हो गया। तभी एक देवता ने पूरे गर्म जंगल को प्रकाशित किया, मेरे पास आए और एक तरफ खड़े होकर बोले, भिक्षु, क्या तुम्हें एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन याद है? मैंने कहा, मित्र, मुझे एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन याद नहीं है। क्या आपको याद है?'

तब देवता ने कहा, 'भिक्षु, मुझे भी एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत विवरण याद नहीं है।' और फिर उन्होंने आगे कहा, 'भिक्षु, एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत विवरण सीखो, इसमें पवित्र जीवन के मूल सिद्धांत बताए गए हैं।' इतना कहकर देवता वहां से अंतर्धान हो गए। आदरणीय महोदय, एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत विवरण क्या है?

भिक्षु, तब मैं आपको एकमात्र शुभ आसक्ति की व्याख्या सिखाऊंगा, कृपया ध्यानपूर्वक सुनें।

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

भगवान बुद्ध ने यह कहा और अपनी सीट से उठकर अपने निवास स्थान में चले गए।

भगवान बुद्ध के जाने के तुरंत बाद, उन भिक्षुओं के मन में यह विचार आया, 'मित्रों, भगवान बुद्ध ने हमें यह संक्षिप्त व्याख्या दी और विस्तृत व्याख्या दिए बिना अपने निवास स्थान पर चले गए।'

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

अब इस संक्षिप्त व्याख्या की विस्तृत व्याख्या कौन कर सकता है?

उन भिक्षुओं के मन में यह विचार आया कि पूज्य महाकच्चाना की प्रशंसा गुरु और पवित्र जीवन के सभी ज्ञानी सहचरों ने की है। संभव है कि पूज्य महाकच्चाना भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए इस संक्षिप्त प्रवचन की विस्तृत व्याख्या कर सकें। क्या होगा यदि हम पूज्य महाकच्चाना के पास जाकर यह प्रश्न पूछें? तब वे भिक्षु पूज्य महाकच्चाना के पास गए, सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, 'मित्र कच्चाना, भगवान बुद्ध ने यह संक्षिप्त प्रवचन दिया और विस्तृत व्याख्या दिए बिना ही आसन से उठकर अपने निवास स्थान पर चले गए।'

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

मित्र कच्चाना, भगवान बुद्ध के जाने के तुरंत बाद, हमें यह बात सूझी। मित्रों, भगवान बुद्ध ने हमें यह संक्षिप्त व्याख्या दी और विस्तृत व्याख्या दिए बिना अपने निवास स्थान पर चले गए।

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

प्रसन्न ऋषि ने कहा, 'यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।'

अब इस संक्षिप्त व्याख्या की विस्तृत व्याख्या कौन कर सकता है?

हमें यह विचार आया कि पूज्य महाकच्चाना की प्रशंसा गुरु और पवित्र जीवन के ज्ञानी सहचरों दोनों ने की है। संभव है कि पूज्य महाकच्चाना भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए इस संक्षिप्त प्रवचन की विस्तृत व्याख्या कर सकें। क्या होगा यदि हम पूज्य महाकच्चाना से संपर्क करें और उनसे यह प्रश्न पूछें? अतः उन भिक्षुओं ने पूज्य महाकच्चाना से संपर्क किया और कहा, 'मित्र कच्चाना, हमें इसकी व्याख्या कीजिए।'

मित्रों, यह उस व्यक्ति के समान है जिसे लकड़ी की आवश्यकता है और वह उसकी खोज में जाता है, एक विशाल वृक्ष के पास आता है जो लकड़ी से भरा हुआ है, लेकिन वह जड़ और तने को अनदेखा करके शाखाओं और पत्तियों को ही लकड़ी समझ लेता है। उसी प्रकार, पूज्यजन गुरु के समक्ष आकर भी उनका अनादर करते हैं और उन्हें यह मुझसे पूछना चाहिए। वह भगवान सर्वज्ञानी, प्रत्यक्षदर्शी, ज्ञानी, शिक्षा स्वरूप और ब्रह्म स्वरूप हैं। वे उपदेश देते हैं और अभ्यास करते हैं, अर्थों के दाता हैं, अमरता प्रदान करते हैं, शिक्षा के स्वामी हैं और इस प्रकार चले गए। अब उनसे यह पूछने का सही समय है और जैसे ही वे इसका स्पष्टीकरण देंगे, हम इसे अपने मन में ग्रहण कर लेंगे।

'मित्र कच्चाना, वास्तव में, भगवान बुद्ध सब कुछ जानते हैं, सब कुछ देखते हैं, सब कुछ ज्ञान से परिपूर्ण हैं, सब कुछ स्वयं ही शिक्षा बन चुके हैं और ब्रह्म बन चुके हैं। वे इसका उपदेश देते हैं और इसका अभ्यास करते हैं, वे अर्थों के दाता हैं, अमरता प्रदान करने वाले हैं, शिक्षा के स्वामी हैं और इस प्रकार उनका निधन हो गया। अब उनसे यह प्रश्न पूछने का उचित समय है और जब वे इसका स्पष्टीकरण देंगे, तो हम इसे अपने मन में संजो लेंगे। फिर भी, पूज्य महाकच्चाना की प्रशंसा गुरु और पवित्र जीवन के ज्ञानी सहचरों द्वारा की जाती है। पूज्य महाकच्चाना के लिए भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए इस संक्षिप्त व्याख्यान का विस्तृत स्पष्टीकरण देना संभव है। मित्र कच्चाना, यदि आपको कोई असुविधा न हो, तो कृपया हमें इसका स्पष्टीकरण दें।'

तो मित्रों, ध्यानपूर्वक सुनो और गौर करो। भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए इस संक्षिप्त प्रवचन को ध्यान से सुनो:

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आती हैं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

प्रसन्न ऋषि ने कहा, 'यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।'

मुझे विस्तृत व्याख्या पता है।

मित्रों, अतीत का स्मरण कैसे होता है? अतीत में मेरी आँखें और रूप इस प्रकार थे, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। वह स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना आनंदित होती है। आनंद के साथ अतीत का स्मरण होता है। अतीत में मेरे कान और ध्वनियाँ इस प्रकार थीं, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। वह स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना आनंदित होती है। आनंद के साथ अतीत का स्मरण होता है। अतीत में मेरी नाक और गंध इस प्रकार थीं, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। वह स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना आनंदित होती है। आनंद के साथ अतीत का स्मरण होता है। अतीत में मेरी जीभ और स्वाद इस प्रकार थे, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। वह स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना आनंदित होती है। आनंद के साथ अतीत का स्मरण होता है। अतीत में मेरा शरीर और स्पर्श इस प्रकार थे, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। वह स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना आनंदित होती है। आनंद के साथ अतीत का स्मरण होता है। मेरे मन और विचार अतीत में लीन थे, इसी से स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। स्वार्थ और लोभ से बंधी वह चेतना आनंदित होती है। आनंद के साथ अतीत का स्मरण किया जाता है। मित्रों, इस प्रकार अतीत का स्मरण किया जाता है।

मित्रों, अतीत का स्मरण कैसे नहीं होता? मेरी आँखें और रूप अतीत में इस प्रकार थे, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न नहीं होती। वह चेतना जो स्वार्थ और लोभ से बंधी नहीं है, आनंदित नहीं होती। आनंद के बिना अतीत का स्मरण नहीं होता। मेरे कान और ध्वनियाँ अतीत में इस प्रकार थीं, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न नहीं होती। वह चेतना जो स्वार्थ और लोभ से बंधी नहीं है, आनंदित नहीं होती। आनंद के बिना अतीत का स्मरण नहीं होता। मेरी नाक और गंध अतीत में इस प्रकार थीं, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न नहीं होती। वह चेतना जो स्वार्थ और लोभ से बंधी नहीं है, आनंदित नहीं होती। आनंद के बिना अतीत का स्मरण नहीं होता। मेरी जीभ और स्वाद अतीत में इस प्रकार थे, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न नहीं होती। वह चेतना जो स्वार्थ और लोभ से बंधी नहीं है, आनंदित नहीं होती। आनंद के बिना अतीत का स्मरण नहीं होता। मेरा शरीर और स्पर्श अतीत में इस प्रकार थे,

इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न नहीं होती। वह चेतना जो स्वार्थ और लोभ से बंधी नहीं है, आनंदित नहीं होती। आनंद के बिना अतीत याद नहीं आता। मेरा मन और विचार अतीत में ही लीन थे, इससे स्वार्थ और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न नहीं होती। जो चेतना स्वार्थ और लोभ से बंधी नहीं होती, उसे आनंद नहीं मिलता। आनंद के बिना अतीत याद नहीं आता। मित्रों, इस प्रकार अतीत याद नहीं आता।

मित्रों, आप भविष्य की क्या कामना करते हैं? भविष्य में मेरी दृष्टि और रूप इस प्रकार होंगे, क्योंकि जो प्राप्त नहीं हुआ है, उसके लिए एक आकांक्षा बनी हुई है। आकांक्षा के कारण आनंद है। आनंदित व्यक्ति भविष्य की कामना करता है। भविष्य में मेरे कान और ध्वनियाँ इस प्रकार होंगी, क्योंकि जो प्राप्त नहीं हुआ है, उसके लिए एक आकांक्षा बनी हुई है। आकांक्षा के कारण आनंद है। आनंदित व्यक्ति भविष्य की कामना करता है। भविष्य में मेरी नाक और सुगंध इस प्रकार होंगी, क्योंकि जो प्राप्त नहीं हुआ है, उसके लिए एक आकांक्षा बनी हुई है। आकांक्षा के कारण आनंद है। आनंदित व्यक्ति भविष्य की कामना करता है। भविष्य में मेरी जीभ और स्वाद इस प्रकार होंगे, क्योंकि जो प्राप्त नहीं हुआ है, उसके लिए एक आकांक्षा बनी हुई है। आकांक्षा के कारण आनंद है। आनंदित व्यक्ति भविष्य की कामना करता है। भविष्य में मेरा शरीर और स्पर्श इस प्रकार होंगे, क्योंकि जो प्राप्त नहीं हुआ है, उसके लिए एक आकांक्षा बनी हुई है। आकांक्षा के कारण आनंद है। आनंदित व्यक्ति भविष्य की कामना करता है। भविष्य में मेरा मन और विचार इस प्रकार होंगे, क्योंकि जो प्राप्त नहीं हुआ है, उसके लिए एक आकांक्षा बनी हुई है। आकांक्षा के कारण आनंद है। आनंदित व्यक्ति भविष्य की कामना करता है। मित्रों, इसी प्रकार भविष्य की कामना की जाती है।

दोस्तों, आप भविष्य की इच्छा कैसे नहीं करते? मेरी आँख और रूप भविष्य में ऐसे ही होंगे, क्योंकि जो नहीं मिला, उसकी कोई इच्छा नहीं होती। इच्छा न होने की वजह से कोई खुशी नहीं होती। जो खुश नहीं होते वे भविष्य की इच्छा नहीं करते। मेरे कान और आवाज़ें भविष्य में ऐसे ही होंगे, क्योंकि जो नहीं मिला, उसकी कोई इच्छा नहीं होती। इच्छा न होने की वजह से कोई खुशी नहीं होती। जो खुश नहीं होते वे भविष्य की इच्छा नहीं करते। मेरी नाक और खुशबू भविष्य में ऐसे ही होंगे, क्योंकि जो नहीं मिला, उसकी कोई इच्छा नहीं होती। इच्छा न होने की वजह से कोई खुशी नहीं होती। जो खुश नहीं होते वे भविष्य की इच्छा नहीं करते। मेरी ज़बान और स्वाद भविष्य में ऐसे ही होंगे, क्योंकि जो नहीं मिला, उसकी कोई इच्छा नहीं होती। इच्छा न होने की वजह से कोई खुशी नहीं होती। जो खुश नहीं होते वे भविष्य की इच्छा नहीं करते। मेरा शरीर और छूने की शक्ति भविष्य में ऐसे ही होगी, क्योंकि जो नहीं मिला, उसकी कोई इच्छा नहीं होती। इच्छा न होने की वजह से कोई खुशी नहीं होती। जो खुश नहीं होते, वे भविष्य की इच्छा नहीं रखते। मेरा मन और विचार भविष्य में ऐसे ही रहेंगे। जो नहीं मिलता, उसके लिए कोई इच्छा नहीं होती। इच्छा न होने की वजह से कोई खुशी नहीं होती। जो खुश नहीं होते, वे भविष्य की इच्छा नहीं रखते। दोस्तों, इसलिए भविष्य की इच्छा नहीं होती।

मित्रों, वर्तमान में उत्पन्न वस्तुओं में अस्थिरता कैसे होती है? मित्रों, आँख और रूप दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से बंधी होती है, तब आनंद प्राप्त होता है। आनंदित व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न वस्तुओं में अस्थिरता होती है। कान और ध्वनियाँ दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से बंधी होती है, तब आनंद प्राप्त होता है। आनंदित व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न वस्तुओं में अस्थिरता होती है। नाक और गंध दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से बंधी होती है, तब आनंद प्राप्त होता है। आनंदित व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न वस्तुओं में अस्थिरता होती है। जीभ और स्वाद दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से बंधी होती है, तब आनंद प्राप्त होता है। आनंदित व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में अस्थिरता का सामना करना पड़ता है। शरीर और स्पर्श दोनों ही वर्तमान में उत्पन्न होने वाली वस्तुएं हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से बंधी होती है, तब आनंद प्राप्त होता है। आनंदित व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में अस्थिरता का सामना करना पड़ता है। मन और विचार दोनों ही वर्तमान में उत्पन्न होने वाली वस्तुएं हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से बंधी चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से बंधी होती है, तब आनंद प्राप्त होता है। आनंदित व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में अस्थिरता का सामना करना पड़ता है। मित्रों, इसी प्रकार वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में अस्थिरता का सामना करना पड़ता है।

मित्रों, वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में कोई विचलन कैसे नहीं होता? मित्रों, आँख और रूप दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से मुक्त चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से मुक्त होती है, तो आनंद नहीं होता। आनंदहीन व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में कोई विचलन नहीं होता। कान और ध्वनियाँ दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से मुक्त चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से मुक्त होती है, तो आनंद नहीं होता। आनंदहीन व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में कोई विचलन नहीं होता। नाक और गंध दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से मुक्त चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना रुचि और लोभ से मुक्त होती है, तो आनंद

नहीं होता। आनंदहीन व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में कोई विचलन नहीं होता। जीभ और स्वाद दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में रुचि और लोभ से मुक्त चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना स्वार्थ और लोभ से मुक्त होती है, तब आनंद नहीं होता। आनंदहीन व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में कोई संदेह नहीं होता। शरीर और स्पर्श दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में स्वार्थ और लोभ से मुक्त चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना स्वार्थ और लोभ से मुक्त होती है, तब आनंद नहीं होता। आनंदहीन व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में कोई संदेह नहीं होता। मन और विचार दोनों वर्तमान में उत्पन्न होते हैं। इन्हीं के आधार पर वर्तमान में स्वार्थ और लोभ से मुक्त चेतना उत्पन्न होती है। जब चेतना स्वार्थ और लोभ से मुक्त होती है, तब आनंद नहीं होता। आनंदहीन व्यक्ति को वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में कोई संदेह नहीं होता। मित्रों, इस प्रकार वर्तमान में उत्पन्न होने वाली चीजों में कोई संदेह नहीं होता।

मित्रों, भगवान बुद्ध द्वारा दी गई इस संक्षिप्त व्याख्या के बारे में:

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आती हैं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

प्रसन्न ऋषि ने कहा, 'यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।'

मुझे इसका विस्तृत विवरण ज्ञात है। यदि आप चाहें तो भगवान बुद्ध से इसके बारे में पूछ सकते हैं। वे जो व्याख्या करेंगे, हम उसे अपने मन में धारण कर लेंगे।

वे भिक्षु पूज्य महाकच्चाना के वचनों से प्रसन्न होकर, उनकी सराहना करते हुए, अपने स्थानों से उठे, भगवान बुद्ध के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, 'पूज्यवर, भगवान बुद्ध ने जो व्याख्या संक्षेप में और विस्तृत व्याख्या दिए बिना की है, वह बहुत ही सार्थक है।'

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आती हैं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

प्रसन्न ऋषि ने कहा, 'यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।'

भगवान बुद्ध के अपने निवास स्थान पर जाने के कुछ ही समय बाद हमारे मन में यह विचार आया कि इस संक्षिप्त व्याख्या की विस्तृत व्याख्या हमें कौन दे सकता है?

हमें यह बात सूझी कि पूज्य महाअक्कंचन की प्रशंसा गुरु और पवित्र जीवन के ज्ञानी सहचरों दोनों ने की है। संभव है कि पूज्य महाअक्कंचन भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए इस संक्षिप्त प्रवचन की विस्तृत व्याख्या कर सकें। हमने पूज्य महाअक्कंचन से संपर्क किया और उनसे इसका स्पष्टीकरण मांगा। उन्होंने इसे इन शब्दों और वाक्यांशों में समझाया।

भिक्षुओं, महाकच्चाना ज्ञान का विषय है; यदि आपने मुझसे पूछा होता, तो मैं भी इसे इसी प्रकार समझाता। इसका यही अर्थ है, इसे इसी रूप में ग्रहण करें।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.4 लोमसाकांगियाभड्डेकरट्टा सुत्त(134)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली से उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान सावत्ती में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य लोमसंगिया शाक्य देश के कपिलवस्तु में निग्रोध के मठ में रह रहे थे। तब रात ढलते समय देवता चंदन ने पूरे निग्रोध मठ को तेज प्रकाश से प्रकाशित किया, पूज्य लोमसंगिया के पास आए, एक तरफ खड़े हुए और कहा, 'भिक्षु, क्या आपको एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन याद है?'

'मित्र, मुझे एकमात्र शुभ आसक्ति के संक्षिप्त और विस्तृत विवरण याद नहीं हैं। क्या आपको याद हैं?'

'भिक्षु, मुझे भी एकमात्र शुभ आसक्ति की संक्षिप्त और विस्तृत व्याख्या याद नहीं है। भिक्षु, क्या आपको एकमात्र शुभ आसक्ति के श्लोक याद हैं?'

'मित्र, मुझे उस एक शुभ आसक्ति के श्लोक याद नहीं हैं। क्या तुम्हें याद हैं?'

'भिक्षु, मुझे एकमात्र शुभ आसक्ति के श्लोक याद हैं।'

'मित्र, तुम्हें एकमात्र शुभ आसक्ति के श्लोक कैसे याद रहते हैं?'

'भिक्षु, एक बार भगवान तीस देवताओं के साथ परिच्छत्तक की छाया में निवास करते थे और वहाँ उन्होंने तैंतीस देवताओं को एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत उपदेश दिया था।'

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

भिक्षु, इस प्रकार मैं एक ही शुभ आसक्ति के श्लोकों का स्मरण करता हूँ। भिक्षु, एक ही शुभ आसक्ति की संक्षिप्त और विस्तृत व्याख्या को सीखें, अभ्यास करें और याद रखें, यह पवित्र जीवन के मूल सिद्धांतों को बताती है। यह कहकर देवता वहाँ से विलीन हो गए।

उस रात के अंत में पूज्य लोमसंगिया ने अपना निवास स्थान व्यवस्थित किया और कुंड और वस्त्र लेकर सावत्थी की यात्रा पर निकल पड़े। वे धीरे-धीरे सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दान किए गए मठ में पहुँचे, भगवान बुद्ध के पास गए, उनकी पूजा की और एक तरफ बैठ गए। पूज्य लोमसंगिया ने कहा, 'पूज्यवर, एक बार मैं शाक्य देश के कपिलवस्तु में निग्रोध मठ में निवास कर रहा था। तब एक देवता ने रात ढलते समय पूरे निग्रोध मठ को अपने तेज प्रकाश से प्रकाशित किया, मेरे पास आए, एक तरफ खड़े हो गए और कहा, 'भिक्षु, क्या तुम्हें एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन याद है?' मैंने कहा, 'मित्र, मुझे एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन याद नहीं है। क्या आपको याद है?' तब उस देवता ने कहा, 'भिक्षु, मुझे भी एकमात्र शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन याद नहीं है।' भिक्षु, क्या आपको एक ही शुभ आसक्ति के श्लोक याद हैं? तब मैंने कहा, मित्र, मुझे एक ही शुभ आसक्ति के श्लोक याद नहीं हैं। क्या आपको याद हैं? तब उन्होंने कहा, भिक्षु, मुझे एक ही शुभ आसक्ति के श्लोक याद हैं। तब मैंने पूछा, मित्र, आपको एक ही शुभ आसक्ति के श्लोक कैसे याद हैं? आदरणीय, उन्होंने कहा, भिक्षु, एक बार भगवान बुद्ध तीस देवताओं के साथ परिच्छेदक वृक्ष की छाया में निवास कर रहे थे और वहाँ उन्होंने तैंतीस देवताओं को एक ही शुभ आसक्ति का संक्षिप्त और विस्तृत उपदेश दिया था।

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को

समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

भिक्षु, इस प्रकार मैं एक ही शुभ आसक्ति के श्लोकों का स्मरण करता हूँ। भिक्षु, एक ही शुभ आसक्ति की संक्षिप्त और विस्तृत व्याख्या को सीखो, अभ्यास करो और याद रखो, यह पवित्र जीवन के मूल सिद्धांतों को बताती है। यह कहकर देवता वहाँ से विलीन हो गए। अच्छा! यदि भगवान मुझे एक ही शुभ आसक्ति की संक्षिप्त और विस्तृत व्याख्या सिखाएँ।

'भिक्षु, क्या तुम उस देवता को जानते हो?'

'आदरणीय महोदय, मैं उन्हें नहीं जानता।'

'भिक्षु, इसका नाम चंदन है, यह ध्यानपूर्वक और एकाग्रता से उपदेश सुनता है ताकि सार को ग्रहण कर सके। ध्यान से सुनो, मैं अब तुम्हें सिखाऊंगा।'

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है। हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। तुम्हें इस प्रकार दिन-रात उत्साहपूर्वक इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहिए।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

भिक्षु, आप अतीत को कैसे याद करते हैं? आप रुचिपूर्वक सोचते हैं, अतीत में मैं इस प्रकार का था। अतीत में मेरी ऐसी भावनाएँ थीं। अतीत में मेरी ऐसी धारणाएँ थीं। अतीत में मेरे ऐसे संकल्प थे। अतीत में मेरी ऐसी चेतना थी। भिक्षु, इस प्रकार आप अतीत को याद करते हैं।

भिक्षु, आप अतीत को क्यों नहीं याद करते? आप रुचिपूर्वक यह नहीं सोचते कि अतीत में मैं ऐसा था, अतीत में मेरी ऐसी भावनाएँ थीं, अतीत में मेरी ऐसी धारणाएँ थीं, अतीत में मेरे ऐसे संकल्प थे, अतीत में मेरी ऐसी चेतना थी। भिक्षु, इस प्रकार आप अतीत को याद नहीं करते।

भिक्षु, आप भविष्य की इच्छा क्यों नहीं करते? आप भविष्य में ऐसी वस्तु, ऐसी भावना, ऐसी धारणा, ऐसे संकल्प, ऐसी चेतना की इच्छा नहीं करते। भिक्षु, इस प्रकार आप भविष्य की इच्छा नहीं करते।

भिक्षु, आप वर्तमान की बातों में कैसे भटक जाते हैं? भिक्षु, अज्ञानी साधारण मनुष्य, जिसने श्रेष्ठ और महान व्यक्तियों को नहीं देखा है, जो उनके उपदेशों में निपुण नहीं है और न ही उनके उपदेशों में प्रशिक्षित है, वह अपने भीतर के पदार्थ, या भौतिक आत्मा, या आत्मा में पदार्थ, या पदार्थ में आत्मा का चिंतन करता है। वह अपने भीतर की भावनाओं, या भावनाशील आत्मा, या आत्मा में भावनाओं, या आत्मा में भावनाओं का चिंतन करता है। वह अपने भीतर की धारणाओं, या बोधशील आत्मा, या आत्मा में धारणाओं, या धारणाओं का चिंतन करता है। वह अपने भीतर के संकल्पों, या संकल्पशील आत्मा, या आत्मा में संकल्पों, या संकल्पों का चिंतन करता है। वह अपने भीतर की चेतना, या चेतन आत्मा, या आत्मा में चेतना, या चेतना में चिंतन करता है। भिक्षु, इस प्रकार आप वर्तमान की बातों में भटक जाते हैं।

भिक्षु, आप वर्तमान की बातों में कैसे विचलित नहीं होते? भिक्षु, विद्वान और श्रेष्ठ शिष्य, जिसने श्रेष्ठ पुरुषों और महान व्यक्तियों को देखा है, जो अपने उपदेशों में निपुण और प्रशिक्षित हैं, वह अपने भीतर के पदार्थ, भौतिक आत्मा, या आत्मा में पदार्थ, या पदार्थ में आत्मा का चिंतन नहीं करता। वह अपने भीतर की भावनाओं, या भावनाशील आत्मा, या स्वयं की भावनाओं, या स्वयं की भावनाओं का चिंतन नहीं करता। वह अपने भीतर की धारणाओं, या प्रत्यक्ष आत्मा, या स्वयं की धारणाओं, या स्वयं की धारणाओं का चिंतन नहीं करता। वह अपने भीतर के संकल्पों, या निर्णायक आत्मा, या स्वयं के संकल्पों, या स्वयं के संकल्पों, या स्वयं के संकल्पों का चिंतन

नहीं करता। वह अपने भीतर की चेतना, या सचेत आत्मा, या स्वयं की चेतना, या स्वयं की चेतना का चिंतन नहीं करता। भिक्षु, इस प्रकार आप वर्तमान की बातों में विचलित नहीं होते।

अतीत को याद मत करो, न ही भविष्य की कामना करो। अतीत बीत चुका है, भविष्य अभी आया नहीं है। वर्तमान की इन बातों को, जैसे ही वे सामने आएं, अंतर्दृष्टि से देखो। बिना विचलित हुए और बिना विचलित हुए, उन पर विचार करो। आज ही इस प्रक्रिया को समाप्त कर देना चाहिए। कल मृत्यु आ सकती है, लेकिन हम मृत्यु और उसकी विशाल सेना से कोई संबंध नहीं रखना चाहते। इस प्रकार, दिन-रात लगन से इस प्रक्रिया को जारी रखो।

शांत हुए ऋषि ने बताया कि यही एकमात्र शुभ आसक्ति है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य लोमासंगिया भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.5 कुलकमविभंग सुत्त(135)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध श्रावस्ती के पास जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। तब तोदेय्या के पुत्र सुभा, जो उनके शिष्य थे, भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उनका अभिवादन किया। अभिवादन और शिष्टाचार के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने भगवान बुद्ध से कहा, “हे गौतम गुरु, मनुष्य जाति में नीचता और श्रेष्ठता क्यों पाई जाती है? क्योंकि नश्वर और दीर्घायु, बीमार और स्वस्थ, कुरूप और सुंदर, प्रभावहीन और प्रभावशाली, गरीब और धनी, नीच और उच्च कुल के, मूर्ख और विवेकशील लोग पाए जाते हैं। तो फिर मनुष्य जाति में नीचता और श्रेष्ठता क्यों पाई जाती है?”

"विद्यार्थियों, सभी प्राणी कर्म के स्वामी हैं, कर्म के उत्तराधिकारी हैं, कर्म से उत्पन्न हुए हैं, कर्म के माध्यम से संबंधित हैं और कर्म ही उनका मध्यस्थ है। कर्म ही प्राणियों में कठोरता और परिष्कार के आधार पर भेद उत्पन्न करता है।"

"गुरु गौतम ने संक्षिप्त में जो कथन कहा है, उसका विस्तृत अर्थ मुझे समझ नहीं आया। यदि गुरु गौतम मुझे धम्म का उपदेश दें, तो मैं उनके संक्षिप्त कथन का विस्तृत अर्थ समझ पाऊँगा।"

"तो फिर, विद्यार्थी, ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, गुरु गौतम," शिष्य सुभा ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने फरमाया: “हे विद्यार्थी, एक ऐसा मामला है जहाँ कोई स्त्री या पुरुष प्राणियों का हत्यारा हो, निर्दयी हो, रक्तरंजित हो, हत्या और वध करने में लिप्त हो, प्राणियों पर दया न दिखाए। ऐसे कर्म करने के कारण, शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद, वह अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निम्न लोक, नरक में पुनः प्रकट होता है। यदि शरीर के विखंडन के बाद, मृत्यु के बाद — अभाव के लोक, बुरे गंतव्य, निम्न लोक, नरक में पुनः प्रकट होने के बजाय — वह मनुष्य रूप धारण कर लेता है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, अल्पायु होता है। यही अल्पायु का मार्ग है: प्राणियों का हत्यारा होना, निर्दयी होना, रक्तरंजित हो, हत्या और वध करने में लिप्त हो, प्राणियों पर दया न दिखाए।”

लेकिन एक ऐसा मामला भी है जहाँ कोई स्त्री या पुरुष, प्राणियों की हत्या का त्याग करके, उनका वध करने से परहेज़ करता है और दंड-चाकू त्यागकर, सभी प्राणियों के कल्याण के प्रति संशयपूर्ण, दयालु और सहानुभूतिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। ऐसे कर्मों को अपनाने और उन्हें पूरा करने के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के विघटन से वह स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होता है। यदि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन से वह स्वर्गलोक में पुनः प्रकट होने के बजाय मनुष्य रूप धारण करता है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, दीर्घायु होता है। दीर्घायु का यही मार्ग है: प्राणियों की हत्या का त्याग करना, प्राणियों की वध करने से परहेज़ करना, दंड-चाकू त्यागकर, सभी प्राणियों के कल्याण के प्रति संशयपूर्ण, दयालु और सहानुभूतिपूर्ण जीवन व्यतीत करना।

"ऐसा भी मामला है जब कोई स्त्री या पुरुष अपने मुक्कों, मिट्टी के ढेलों, लाठियों या चाकुओं से प्राणियों को हानि पहुँचाता है। ऐसे कर्म करने के कारण, मृत्यु के बाद शरीर के विखंडन पर वह पुनर्जन्म लेता है... यदि वह मनुष्य रूप धारण करता है, तो जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, वह रोगग्रस्त ही रहता है। रोगग्रस्त होने का यही मार्ग है: अपने मुक्कों, मिट्टी के ढेलों, लाठियों या चाकुओं से प्राणियों को हानि पहुँचाना।"

लेकिन एक ऐसा मामला भी है जहाँ कोई स्त्री या पुरुष अपने मुक्कों, मिट्टी के ढेलों, लाठियों या चाकुओं से प्राणियों को हानि नहीं पहुँचाता। ऐसे कर्म करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे स्थान पर पुनर्जन्म लेता है... यदि वह मनुष्य रूप धारण करता है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, स्वस्थ रहता है। स्वास्थ्य का यही मार्ग है: अपने मुक्कों, मिट्टी के ढेलों, लाठियों या चाकुओं से प्राणियों को हानि न पहुँचाना।

एक ऐसा मामला है, जहाँ कोई स्त्री या पुरुष चिड़चिड़े और आसानी से परेशान हो जाते हैं; यहाँ तक कि हल्की आलोचना से भी वे आहत, उत्तेजित, द्वेषपूर्ण और क्रोधित हो जाते हैं; झुंझलाहट, घृणा और कड़वाहट दिखाते हैं। ऐसे कार्यों को अपनाने और करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वे अभाव के लोक में पुनः प्रकट होते हैं... यदि वे मनुष्य रूप धारण करते हैं, तो वे जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेते हैं, कुरूप ही होते हैं। कुरूपता की ओर ले जाने वाला मार्ग यही है: चिड़चिड़े और आसानी से परेशान होना; यहाँ तक कि हल्की आलोचना से भी आहत, उत्तेजित, द्वेषपूर्ण और क्रोधित होना; झुंझलाहट, घृणा और कड़वाहट दिखाना।

लेकिन एक ऐसा मामला भी है जहाँ कोई स्त्री या पुरुष चिड़चिड़े या आसानी से परेशान नहीं होते; यहाँ तक कि जब उनकी कड़ी आलोचना की जाती है, तब भी वे आहत, उत्तेजित, द्वेषपूर्ण या नाराज़ नहीं होते; वे झुंझलाहट, घृणा या कड़वाहट नहीं दिखाते। ऐसे कर्मों को अपनाने और उन्हें पूरा करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वे एक अच्छे स्थान पर पुनः प्रकट होते हैं... यदि वे मनुष्य रूप धारण करते हैं, तो वे जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेते हैं, सुंदर होते हैं। सुंदरता का मार्ग यही है: चिड़चिड़े या आसानी से परेशान न होना; यहाँ तक कि जब उनकी कड़ी आलोचना की जाती है, तब भी आहत, उत्तेजित, द्वेषपूर्ण या नाराज़ न होना; और न ही झुंझलाहट, घृणा और कड़वाहट दिखाना।

एक ऐसा मामला है जहाँ एक स्त्री या पुरुष ईर्ष्यालु होता है। वह दूसरों के लाभ, मान-सम्मान, आदर, सम्मान, अभिवादन और श्रद्धा के बारे में ईर्ष्या करता है, द्वेष रखता है और चिंतन करता है। ऐसे कर्म करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह अभाव के लोक में पुनः प्रकट होता है... यदि वह इसके बजाय मानव रूप धारण करता है, तो पुनर्जन्म में उसे कोई प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती। प्रतिष्ठा न प्राप्त करने का यही मार्ग है: ईर्ष्या करना, ईर्ष्या करना, द्वेष रखना और दूसरों के लाभ, मान-सम्मान, आदर, श्रद्धा, अभिवादन और श्रद्धा के बारे में चिंतन करना।

लेकिन एक ऐसा मामला भी है जहाँ कोई स्त्री या पुरुष ईर्ष्यालु नहीं होता। वह दूसरों के लाभ, मान-सम्मान, आदर, प्रशंसा, अभिवादन या श्रद्धा से ईर्ष्या, द्वेष या ईर्ष्या नहीं करता। ऐसे कर्मों को अपनाने और उन्हें पूरा करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे स्थान पर पुनर्जन्म लेता है... यदि वह मनुष्य रूप धारण करता है, तो वह जहाँ भी पुनर्जन्म लेता है, वहाँ विख्यात होता है। यही विख्यात होने का मार्ग है: ईर्ष्या न करना; दूसरों के लाभ, मान-सम्मान, आदर, प्रशंसा, अभिवादन या श्रद्धा से ईर्ष्या, द्वेष या ईर्ष्या न करना।

"ऐसा भी मामला है जब कोई स्त्री या पुरुष पुरोहितों या ध्यानियों को भोजन, पेय, वस्त्र, चप्पल, माला, सुगंध, मलहम, बिस्तर, आवास या प्रकाश प्रदान नहीं करता/करती। ऐसे कार्यों को अपनाने और करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद वह अभाव के लोक में पुनः प्रकट होता/होती है... यदि वह इसके बजाय मानव रूप धारण करता/करती है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता/लेती है, निर्धन ही रहता/रहती है। यही निर्धनता की ओर ले जाने वाला मार्ग है: पुरोहितों या ध्यानियों को भोजन, पेय, वस्त्र, चप्पल, माला, सुगंध, मलहम, बिस्तर, आवास या प्रकाश प्रदान न करना।"

लेकिन एक ऐसा मामला भी है जहाँ कोई स्त्री या पुरुष पुरोहितों और ध्यानियों को भोजन, पेय, वस्त्र, चप्पल, सुगंध, मलहम, बिस्तर, आवास और प्रकाश प्रदान करता है। ऐसे कार्यों को अपनाने और उन्हें पूरा करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे स्थान पर पुनर्जन्म लेता है... यदि वह मनुष्य रूप धारण करता है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, धनी होता है। महान धन की ओर ले जाने वाला यही मार्ग है: पुरोहितों और ध्यानियों को भोजन, पेय, वस्त्र, चप्पल, माला, सुगंध, मलहम, बिस्तर, आवास और प्रकाश प्रदान करना।

एक ऐसा मामला है जहाँ कोई स्त्री या पुरुष हठी और अहंकारी होता है। वह सम्मान के योग्य व्यक्तियों को आदर नहीं देता, जिनके लिए खड़ा होना चाहिए उनके लिए खड़ा नहीं होता, जिन्हें बैठना चाहिए उन्हें बैठने की जगह नहीं देता, जिनके लिए रास्ता बनाना चाहिए उनके लिए रास्ता नहीं बनाता, जिनकी पूजा की जानी चाहिए उनकी पूजा नहीं करता, जिनका आदर किया जाना चाहिए उनका सम्मान नहीं करता, जिनका आदर किया जाना चाहिए उनका आदर नहीं करता, और जिनका आदर किया जाना चाहिए उनका सम्मान नहीं करता। ऐसे कर्म करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह अभाव के लोक में पुनः प्रकट होता है... यदि वह मनुष्य रूप धारण करता है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, नीच कुल का ही होता है। यही वह मार्ग है जो नीच कुल की ओर ले जाता है: हठी और अहंकारी होना, सम्मान के योग्य व्यक्तियों को आदर न देना, उनके लिए खड़ा न होना, न बैठने की जगह देना, न रास्ता बनाना, न पूजा करना, न आदर करना, न आदर करना, और न ही सम्मान के योग्य व्यक्तियों का सम्मान करना।

लेकिन एक ऐसा मामला भी है जहाँ कोई स्त्री या पुरुष हठी या अहंकारी नहीं होता; वह सम्मान के योग्य लोगों को आदर देता है, उठ खड़ा होता है... आसन देता है... रास्ता बनाता है... पूजा करता है... आदर करता है... आदर करता है... सम्मान के योग्य लोगों का आदर करता है। ऐसे कर्मों को अपनाने और उन्हें पूरा करने से, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे स्थान पर पुनर्जन्म लेता है... यदि वह मनुष्य रूप धारण करता है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, उच्च कुल का होता है। उच्च कुल की ओर ले जाने वाला मार्ग यही है: हठी या अहंकारी न होना; सम्मान के योग्य लोगों को आदर देना, उठ खड़ा होना... आसन देना... रास्ता बनाना... पूजा करना... आदर करना... आदर करना... सम्मान के योग्य लोगों का आदर करना।

"ऐसा भी मामला है जब कोई स्त्री या पुरुष किसी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति के पास जाकर यह नहीं पूछता: 'हे आदरणीय, कुशल क्या है? अकुशल क्या है? निंदनीय क्या है? निर्दोष क्या है? किसका अभ्यास करना चाहिए? किसका अभ्यास नहीं करना चाहिए? मेरे द्वारा किए गए कौन से कार्य मेरे दीर्घकालिक हानि और कष्ट का कारण बनेंगे? या मेरे द्वारा किए गए कौन से कार्य मेरे दीर्घकालिक कल्याण और सुख का कारण बनेंगे?' ऐसे कर्मों को अपनाने और करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह अभाव के लोक में पुनः प्रकट होता है... यदि इसके बजाय वह मानव रूप धारण करता है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेगा, मूर्ख ही रहेगा। मूर्खता की ओर ले जाने वाला यही मार्ग है: किसी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति के पास जाकर यह न पूछना: 'कुशल क्या है?... या मेरे द्वारा किए गए कौन से कार्य मेरे दीर्घकालिक कल्याण और सुख का कारण बनेंगे?'"

लेकिन फिर एक ऐसा मामला भी आता है जब कोई स्त्री या पुरुष किसी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति से मिलने जाता है और पूछता है: 'हे आदरणीय, कुशल क्या है? अकुशल क्या है? निंदनीय क्या है? निर्दोष क्या है? किसका अभ्यास करना चाहिए? किसका अभ्यास नहीं करना चाहिए? मेरे द्वारा किया गया कौन सा कार्य मेरे लिए दीर्घकालिक हानि और पीड़ा का कारण बनेगा? या मेरे द्वारा किया गया कौन सा कार्य मेरे लिए दीर्घकालिक कल्याण और सुख का कारण बनेगा?' ऐसे कर्मों को अपनाने और उन्हें पूरा करने के कारण, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह एक अच्छे गंतव्य में पुनर्जन्म लेता है... यदि वह मनुष्य रूप में जन्म लेता है, तो वह जहाँ कहीं भी पुनर्जन्म लेता है, विवेकशील होता है। विवेक की ओर ले जाने वाला यही मार्ग है: किसी पुजारी या ध्यानमग्न व्यक्ति से मिलने जाते समय यह पूछना: 'कुशल क्या है?... या मेरे द्वारा किया गया कौन सा कार्य मेरे लिए दीर्घकालिक कल्याण और सुख का कारण बनेगा?'

इसलिए, विद्यार्थी, अल्प जीवन की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को अल्पजीहित बनाता है, दीर्घ जीवन की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को दीर्घजीहित बनाता है; रोग की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को रोगग्रस्त बनाता है, स्वास्थ्य की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को स्वस्थ बनाता है; कुरूपता की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को कुरूप बनाता है, सुंदरता की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को सुंदर बनाता है; प्रभावहीनता की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को प्रभावहीन बनाता है, प्रभाव की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को प्रभावशाली बनाता है; गरीबी की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को गरीब बनाता है, धन की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को धनी बनाता है; निम्न जन्म की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को निम्न कुल का बनाता है, उच्च कुल का बनाता है; मूर्खता की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को मूर्ख बनाता है, विवेक की ओर ले जाने वाला मार्ग लोगों को विवेकशील बनाता है।

सभी प्राणी कर्मों के स्वामी हैं, कर्मों के उत्तराधिकारी हैं, कर्मों से उत्पन्न हैं, कर्मों के माध्यम से संबंधित हैं और कर्म ही उनके मध्यस्थ हैं। कर्म ही प्राणियों में कठोरता और परिष्कार के आधार पर भेद उत्पन्न करता है।

यह सुनकर तोदेय्या के पुत्र शिष्य सुभा ने भगवान बुद्ध से कहा, "हे महान गुरु गौतम! महान! जैसे कोई उलटी हुई चीज़ को सीधा कर दे, छिपी हुई चीज़ को प्रकट कर दे, भटके हुए को रास्ता दिखा दे, या अंधेरे में दीपक जलाकर आँखों वालों को आकृतियाँ दिखा दे, उसी प्रकार गुरु गौतम ने अनेक तर्कों के द्वारा धम्म को स्पष्ट किया है। मैं गुरु गौतम की शरण में, धम्म की शरण में और भिक्षु समुदाय की शरण में जाता हूँ। गुरु गौतम मुझे आज से जीवन भर के लिए अपने गृहस्थ अनुयायी के रूप में याद रखें।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.6महाकम्मविभंग सुत्त(136)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

पाली भाषा से Ñanamoli Thera द्वारा अनुवादित

1. मैंने ऐसा सुना है। एक बार भगवान बुद्ध राजगृह में, बांस के जंगल में, गिलहरियों के भोजन स्थल पर रह रहे थे। उस समय पूज्य समिद्धि वन की एक कुटिया में रह रहे थे।

फिर व्यायाम के लिए टहलते-फिरते हुए यात्री पोटालिपुत्त आदरणीय समिद्धि के पास आए और उनसे अभिवादन किया। जब शिष्टाचारपूर्ण और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त हुई, तो वे एक तरफ बैठ गए। ऐसा करने के बाद उन्होंने आदरणीय समिद्धि से कहा:

2. "हे मित्र समिद्धि, मैंने यह बात भिक्षु गौतम के मुख से सुनी और सीखी है: 'शारीरिक कर्म व्यर्थ हैं, शाब्दिक कर्म व्यर्थ हैं, केवल मानसिक कर्म ही सत्य हैं।' परन्तु वास्तव में एक ऐसी प्राप्ति है जिसमें कर्मों के परिणाम का कोई अहसास नहीं होता।"

"नहीं, मित्र पोटालिपुत्त, ऐसा मत कहो, भगवान बुद्ध का गलत वर्णन मत करो; भगवान बुद्ध का गलत वर्णन करना उचित नहीं है; भगवान बुद्ध ऐसा नहीं कहेंगे: 'शारीरिक कर्म व्यर्थ हैं, शाब्दिक कर्म व्यर्थ हैं, केवल मानसिक कर्म ही सत्य हैं।' और वास्तव में वह प्राप्ति है जिसमें कर्मों के फल का कोई भी अंश महसूस नहीं होता।"

"मित्र समिद्धि, तुम्हें बाहर गए कितना समय हो गया है?"

"ज्यादा समय नहीं लगेगा, दोस्त, सिर्फ तीन साल।"

"तो अब, जब युवा भिक्षु यह सोचता है कि गुरु की रक्षा इस प्रकार की जानी चाहिए, तो हम वरिष्ठ भिक्षुओं से क्या कहेंगे? हे मित्र समिद्धि, शरीर, वाणी या मन से जानबूझकर कर्म करने के बाद, उसके परिणाम के बारे में क्या अनुभूति होती है?"

"हे मित्र पोटालिपुत्त, जानबूझकर कर्म करने के बाद, चाहे वह देह, वाणी या मन से किया गया हो, परिणाम स्वरूप दुख भोगना पड़ता है।"

तब पूज्य समिद्धि के शब्दों से न तो सहमत होते हुए और न ही असहमत होते हुए, घुमंतू पोटालिपुत्त अपने आसन से उठे और चले गए।

3. पोटालिपुत्त के जाने के तुरंत बाद, पूज्य समिद्धि पूज्य आनंद के पास गए और उनसे अभिवादन किया। शिष्टाचारपूर्ण और सौहार्दपूर्ण बातचीत समाप्त होने पर वे एक तरफ बैठ गए। बैठने के बाद उन्होंने पूज्य आनंद को पोटालिपुत्त के साथ हुई अपनी सारी बातचीत सुनाई।

यह सुनकर पूज्य आनंद ने उनसे कहा, "मित्र समिद्धि, यह बात भगवान बुद्ध को बतानी चाहिए। चलो, हम भगवान बुद्ध के पास चलते हैं और उन्हें इस बारे में बताते हैं। वे जो उत्तर देंगे, हम उसे ध्यान में रखेंगे।"

"फिर भी, मित्र," आदरणीय समिद्धि ने उत्तर दिया।

फिर वे सब मिलकर भगवान बुद्ध के पास गए और उन्हें प्रणाम करने के बाद एक तरफ बैठ गए। बैठने के बाद, पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध को पूज्य समिद्धि और यात्री पोटालिपुत्त के बीच हुई सारी बातचीत सुनाई।

4. यह सुनकर भगवान बुद्ध ने आदरणीय आनंद से कहा:

"आनंद, मैं उस यात्री को जानता तक नहीं। ऐसी बातचीत कैसे हो सकती थी? पोटलिपुत्त के प्रश्न का उत्तर विश्लेषण करने के बाद दिया जाना चाहिए था, लेकिन इस गुमराह समिद्धि ने बिना किसी स्पष्टीकरण के उत्तर दे दिया।"

यह सुनकर आदरणीय उदयिन ने भगवान बुद्ध से कहा, "परन्तु, आदरणीय महोदय, मान लीजिए कि आदरणीय समिद्धि ने जो कहा, उसका तात्पर्य यह था कि 'जो कुछ भी अनुभव होता है, वह पीड़ा है।'"2

5. तब भगवान बुद्ध ने आदरणीय आनंद को संबोधित करते हुए कहा, "देखो, आनंद, यह गुमराह उदयिन कैसे हस्तक्षेप कर रहा है। मुझे पता था, आनंद, कि यह गुमराह उदयिन अब अनुचित रूप से हस्तक्षेप करेगा। सबसे पहले तो यह तीन प्रकार की भावनाओं के बारे में था जो पोटलीपुत्त ने पूछी थीं। यदि इस गुमराह समिद्धि ने पूछे जाने पर पोटलीपुत्त को इस प्रकार उत्तर दिया होता: 'शरीर, वाणी और मन से जानबूझकर कर्म करने के बाद (जिसका परिणाम) सुख के रूप में अनुभव किया जाता है, उसे सुख प्राप्त होता है; शरीर, वाणी और मन से जानबूझकर कर्म करने के बाद (जिसका परिणाम) पीड़ा के रूप में अनुभव किया जाता है, उसे पीड़ा प्राप्त होती है; शरीर, वाणी और मन से जानबूझकर कर्म करने के बाद (जिसका परिणाम) न तो पीड़ा और न ही सुख के रूप में अनुभव किया जाता है, उसे न तो पीड़ा और न ही सुख प्राप्त होता है' - इस प्रकार उत्तर देकर, आनंद, गुमराह समिद्धि ने हे पोटालिपुत्त, घुमक्कड़ ने सही उत्तर दिया है। इसके अलावा, हे आनंद, अन्य संप्रदायों के वे मूर्ख और विचारहीन घुमक्कड़ कौन हैं जो तथागत के कर्म के महान उपदेश को समझ पाएंगे? (पर) हे आनंद, यदि तुम तथागत के कर्म के महान उपदेश को ध्यान से सुनोगे (तो शायद समझ पाओगे)।3

"हे भगवान, यही समय है, यही समय है, हे परम पूज्य, जब भगवान बुद्ध कर्म के महान उपदेश का विवेचन करें। भगवान बुद्ध से इसे सुनकर भिक्षु इसे ध्यान में रखेंगे।"

"तो सुनो, आनंद, और मेरी बातों पर ध्यान दो।"

“जी, ऐसा ही हो,” आदरणीय आनंद ने उत्तर दिया। भगवान ने आगे कहा:

6. "आनंद, संसार में चार प्रकार के व्यक्ति विद्यमान हैं। वे चार कौन से हैं?"

(i) "यहाँ कोई व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या करता है, जो नहीं दिया गया है उसे लेता है, यौन इच्छाओं में लिप्त रहता है, झूठ बोलता है, द्वेषपूर्ण बातें करता है, कठोर बातें करता है, चुगली करता है, लोभी होता है, द्वेषपूर्ण होता है और गलत दृष्टिकोण रखता है।4 मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह अभाव की अवस्थाओं में, दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुनः प्रकट होता है।

(ii) "लेकिन यहाँ कोई व्यक्ति जीवित प्राणियों को मारता है... और उसका दृष्टिकोण गलत है। मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वह स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य में पुन: प्रकट होता है।"

(iii) "यहाँ कोई व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या करने से, बिना माँगी वस्तुएँ लेने से, यौन इच्छाओं में लिप्त होने से, झूठी वाणी से, द्वेषपूर्ण वाणी से, कठोर वाणी से, चुगली करने से परहेज़ करता है; वह लोभी नहीं होता, द्वेषपूर्ण नहीं होता और उसका दृष्टिकोण सही होता है।5 मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुनः प्रकट होता है।"

(iv) "परन्तु यहाँ कोई व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या करने से परहेज़ करता है... और उसका दृष्टिकोण सही होता है। मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर वह अभाव की अवस्थाओं में, दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुनः प्रकट होता है।"

7. (i) "हे आनंद, यहाँ उत्साह, प्रयास, भक्ति, परिश्रम और उचित ध्यान के फलस्वरूप, कोई भिक्षु या ब्राह्मण ऐसी एकाग्रता प्राप्त कर लेता है कि जब उसका मन एकाग्र होता है, तो वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, देखता है कि कोई व्यक्ति यहाँ प्राणियों की हत्या करता है, बिना दी हुई वस्तुएँ लेता है, कामुक इच्छाओं में लिप्त रहता है, झूठ बोलता है, द्वेषपूर्ण बातें करता है, कठोर बातें करता है, चुगली करता है, लोभी है, द्वेषपूर्ण है, और गलत दृष्टि रखता है। वह देखता है कि शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह अभावग्रस्त अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, नरक में, पुन: प्रकट हुआ है। वह कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि बुरे कर्म हैं और दुराचार का फल है; क्योंकि मैंने देखा है कि एक व्यक्ति ने यहाँ प्राणियों की हत्या की... उसकी गलत दृष्टि थी। मैंने देखा है कि शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह अभावग्रस्त अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, नरक में पुन: प्रकट हुआ है, 'नरक में।' वह कहता है: 'ऐसा लगता है कि जो जीवित प्राणियों को मारता है... उसका दृष्टिकोण गलत है, शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह हमेशा अभाव की अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुनः प्रकट होगा। जो ऐसा जानते हैं वे सही जानते हैं; जो अन्यथा जानते हैं वे अपने ज्ञान में गलत हैं।' इस प्रकार वह हठपूर्वक उस बात को गलत समझता है जिसे उसने स्वयं जाना, देखा और महसूस किया है; केवल इसी पर जोर देते हुए वह कहता है: 'केवल यही सत्य है, बाकी सब गलत है।'

8. (ii) "परन्तु यहाँ उत्साह, प्रयास, भक्ति, परिश्रम और उचित ध्यान के फलस्वरूप, कोई भिक्षु या ब्राह्मण ऐसी एकाग्रता प्राप्त कर लेता है कि जब उसका मन एकाग्र होता है, तो वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, यह देखता है कि कोई व्यक्ति यहाँ प्राणियों की हत्या करता है... उसका दृष्टिकोण गलत है। वह देखता है कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वह स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुन: प्रकट हुआ है। वह कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि कोई बुरे कर्म नहीं हैं, दुराचार का कोई परिणाम नहीं है। क्योंकि मैंने देखा है कि एक व्यक्ति ने यहाँ प्राणियों की हत्या की... उसका दृष्टिकोण गलत था। मैंने देखा है कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वह स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुन: प्रकट हुआ है।'" वह कहता है: 'ऐसा लगता है कि जो जीवित प्राणियों को मारता है... उसका यह गलत विचार है कि शरीर के नष्ट होने पर, मृत्यु के बाद, वह हमेशा स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुनः प्रकट होगा। जो ऐसा जानते हैं वे सही जानते हैं; जो अन्यथा जानते हैं वे अपने ज्ञान में गलत हैं।' इस प्रकार वह हठपूर्वक उस बात को गलत समझता है जिसे उसने स्वयं जाना, देखा और महसूस किया है; केवल इसी बात पर जोर देते हुए वह कहता है: 'केवल यही सत्य है, बाकी सब गलत है।'

9. (iii) "यहाँ उत्साह, प्रयास, भक्ति, परिश्रम और उचित ध्यान के फलस्वरूप, कोई भिक्षु या ब्राह्मण ऐसी एकाग्रता प्राप्त कर लेता है कि जब उसका मन एकाग्र होता है, तो वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, यह देखता है कि कोई व्यक्ति यहाँ प्राणियों की हत्या से परहेज करता है... और उसका दृष्टिकोण सही है। वह देखता है कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वह स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुन: प्रकट हुआ है। वह कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि अच्छे कर्म हैं, अच्छे आचरण का फल है। क्योंकि मैंने देखा है कि एक व्यक्ति ने यहाँ प्राणियों की हत्या से परहेज किया... और उसका दृष्टिकोण सही था। मैंने देखा कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वह स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुन: प्रकट हुआ है।'" वह कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जो व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या से परहेज करता है... उसका सही दृष्टिकोण है और मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर वह हमेशा स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुन: प्रकट होगा। जो लोग ऐसा जानते हैं वे सही जानते हैं; जो अन्यथा जानते हैं वे अपने ज्ञान में त्रुटिपूर्ण हैं।' इस प्रकार वह हठपूर्वक उस बात को गलत समझता है जिसे उसने स्वयं जाना, देखा और अनुभव किया है; केवल इसी बात पर जोर देते हुए वह कहता है: 'केवल यही सत्य है; इसके अलावा कुछ भी गलत है।'

10. (iv) "परन्तु यहाँ उत्साह, प्रयास, भक्ति, परिश्रम और उचित ध्यान के फलस्वरूप, कोई भिक्षु या ब्राह्मण ऐसी एकाग्रता प्राप्त कर लेता है कि जब उसका मन एकाग्र होता है, तो वह दिव्य दृष्टि से, जो शुद्ध और मानवीय दृष्टि से श्रेष्ठ है, यह देखता है कि कोई व्यक्ति यहाँ प्राणियों की हत्या से परहेज करता है... उसका सही दृष्टिकोण है। वह देखता है कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वह अभाव की अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, नरक में, पुन: प्रकट हुआ है। वह कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि कोई अच्छे कर्म नहीं हैं, अच्छे आचरण का कोई फल नहीं है। क्योंकि मैंने देखा है कि एक व्यक्ति जिसने यहाँ हत्या से परहेज किया... उसका सही दृष्टिकोण था। मैंने देखा कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वह अभाव की अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, नरक में, पुन: प्रकट हुआ है।'" वह कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जो व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या करने से परहेज करता है... उसका दृष्टिकोण सही है, वह मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर हमेशा अभाव की अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुनः प्रकट होगा। जो लोग ऐसा जानते हैं वे सही जानते हैं; जो अन्यथा जानते हैं वे अपने ज्ञान में त्रुटिपूर्ण हैं।' इस प्रकार वह हठपूर्वक उस बात को गलत समझता है जिसे उसने स्वयं जाना, देखा और अनुभव किया है; केवल इसी बात पर जोर देते हुए वह कहता है: 'केवल यही सत्य है; इसके अलावा कुछ भी गलत है।'

11. (i) "अब, आनंद, जब कोई भिक्षु या ब्राह्मण इस प्रकार कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि बुरे कर्म हैं, दुराचार का परिणाम है,' मैं उसे यह बात स्वीकार करता हूँ।

जब वह इस प्रकार कहता है: 'क्योंकि मैंने देखा है कि किसी व्यक्ति ने जीवित प्राणियों की हत्या की... उसका दृष्टिकोण गलत था। मैंने देखा कि शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह अभाव की अवस्था में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में फिर से प्रकट हुआ,' तो मैं उससे सहमत हूँ।

"जब वह इस प्रकार कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जो जीवित प्राणियों को मारता है... उसका दृष्टिकोण गलत है, शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह हमेशा अभाव की अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुन: प्रकट होगा,' तो मैं उससे सहमत नहीं हूँ।"

"जब वह इस प्रकार कहता है: 'जो लोग इस प्रकार जानते हैं वे सही जानते हैं; जो लोग अन्यथा जानते हैं वे अपने ज्ञान में गलत हैं,' तो मैं उससे सहमत नहीं हूँ।"

"जब वह हठपूर्वक उस बात को गलत समझता है जिसे उसने स्वयं जाना, देखा और महसूस किया है; और केवल उसी पर जोर देते हुए कहता है: 'केवल यही सत्य है; बाकी सब गलत है,' तो मैं उसे यह बात नहीं मानता।"

"ऐसा क्यों है? तथागत को कर्म के महान उपदेशों का ज्ञान भिन्न है।"

12. (ii) "अब जब कोई भिक्षु या ब्राह्मण इस प्रकार कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि कोई बुरे कर्म नहीं हैं, दुराचार का कोई परिणाम नहीं है,' तो मैं उसे यह बात स्वीकार नहीं करता।

"जब वह इस प्रकार कहता है: 'क्योंकि मैंने देखा है कि एक व्यक्ति ने जीवित प्राणियों को मार डाला... उसका दृष्टिकोण गलत था। मैंने देखा कि शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह एक सुखद गंतव्य, स्वर्गलोक में पुन: प्रकट हुआ,' तो मैं उसे यह बात स्वीकार करता हूँ।"

"जब वह इस प्रकार कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जो जीवित प्राणियों को मारता है... उसका दृष्टिकोण गलत है, शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह हमेशा एक सुखद गंतव्य, स्वर्गलोक में पुन: प्रकट होगा,' तो मैं उससे सहमत नहीं हूँ।"

"जब वह इस प्रकार कहता है: 'जो लोग इस प्रकार जानते हैं वे सही जानते हैं; जो लोग अन्यथा जानते हैं वे अपने ज्ञान में गलत हैं,' तो मैं उससे सहमत नहीं हूँ।"

"जब वह हठपूर्वक उस बात को गलत समझता है जिसे उसने स्वयं जाना, देखा और महसूस किया है; और केवल उसी पर जोर देते हुए कहता है: 'केवल यही सत्य है; बाकी सब गलत है,' तो मैं उसे यह बात नहीं मानता।"

"ऐसा क्यों है? तथागत को कर्म के महान उपदेशों का ज्ञान भिन्न है।"

13. (iii) "अब जब कोई भिक्षु या ब्राह्मण इस प्रकार कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि अच्छे कर्म हैं, अच्छे आचरण का परिणाम है,' तो मैं उसे यह बात स्वीकार करता हूँ।

"जब वह इस प्रकार कहता है: 'क्योंकि मैंने देखा है कि एक व्यक्ति जिसने यहाँ जीवित प्राणियों की हत्या करने से परहेज किया... उसका दृष्टिकोण सही था। मैंने देखा कि मृत्यु के बाद शरीर के विघटन पर, वह एक सुखद गंतव्य, स्वर्गलोक में पुन: प्रकट हुआ,' तो मैं उसे यह बात स्वीकार करता हूँ।"

"जब वह कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि जो व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या से परहेज करता है... उसका सही दृष्टिकोण है, वह शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, हमेशा एक सुखद गंतव्य, स्वर्ग लोक में फिर से प्रकट होगा,'6 मैं उसे यह बात नहीं मानता।

"जब वह कहता है: 'जो लोग इस प्रकार जानते हैं वे सही जानते हैं; जो लोग अन्यथा जानते हैं वे अपने ज्ञान में गलत हैं,' तो मैं उससे सहमत नहीं हूं।"

"जब वह हठपूर्वक उस बात को गलत समझता है जिसे उसने स्वयं जाना, देखा और महसूस किया है; और केवल उसी पर जोर देते हुए कहता है: 'केवल यही सत्य है: बाकी सब गलत है,' तो मैं उसे यह बात नहीं मानता।"

"ऐसा क्यों है? तथागत को कर्म के महान उपदेशों का ज्ञान भिन्न है।"

14. (iv) "अब जब कोई भिक्षु या ब्राह्मण इस प्रकार कहता है: 'ऐसा प्रतीत होता है कि कोई अच्छे कर्म नहीं हैं, अच्छे आचरण का कोई परिणाम नहीं है,' तो मैं उसे यह बात स्वीकार नहीं करता।

जब वह इस प्रकार कहता है: "क्योंकि मैंने देखा है कि एक व्यक्ति जिसने यहाँ जीवित प्राणियों की हत्या करने से परहेज किया... उसका दृष्टिकोण सही था। मैंने देखा कि शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, वह अभाव की अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुन: प्रकट हुआ," तो मैं उससे सहमत हूँ।

"जब वह इस प्रकार कहता है: 'जो व्यक्ति जीवित प्राणियों की हत्या करने से परहेज करता है... उसका सही दृष्टिकोण है, वह शरीर के विघटन के बाद, मृत्यु के बाद, हमेशा अभाव की अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, विनाश में, नरक में पुन: प्रकट होगा,' तो मैं उसे यह बात स्वीकार नहीं करता।"

"जब वह इस प्रकार कहता है: 'जो लोग इस प्रकार जानते हैं वे सही जानते हैं; जो लोग अन्यथा जानते हैं वे अपने ज्ञान में गलत हैं,' तो मैं उससे सहमत नहीं हूँ।"

"जब वह हठपूर्वक उस बात को गलत समझता है जिसे उसने स्वयं जाना, देखा और महसूस किया है; और केवल उसी पर जोर देते हुए कहता है: 'केवल यही सत्य है; बाकी सब गलत है,' तो मैं उसे यह बात नहीं मानता।"

ऐसा क्यों है? तथागत को कर्म ग्रंथ की महान व्याख्या का ज्ञान भिन्न है। कर्म ग्रंथ की महान व्याख्या

15. (i) "अब, आनंद, यहाँ एक व्यक्ति है जिसने जीवों का वध किया है... उसका दृष्टिकोण गलत था। और मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, वह अभावग्रस्त अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, नरक में, पुन: प्रकट होता है।7 लेकिन (शायद) उसके कष्ट का कारण बनने वाला बुरा कर्म उसने पहले किया था, या उसके कष्ट का कारण बनने वाला बुरा कर्म उसने बाद में किया था, या उसकी मृत्यु के समय उसके द्वारा गलत दृष्टिकोण अपनाया और उसे पूरा किया गया था।8 और इसीलिए, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, वह अभावग्रस्त अवस्थाओं में, एक दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, नरक में, पुन: प्रकट हुआ। लेकिन चूंकि उसने यहाँ जीवों का वध किया है... उसका दृष्टिकोण गलत था, इसलिए वह इसका फल यहीं और अभी, या अपने अगले पुनर्जन्म में, या किसी बाद के जन्म में भोगेगा।"

16. (ii) "यहाँ एक व्यक्ति है जिसने जीवों का वध किया है... उसका दृष्टिकोण गलत था। और मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह स्वर्गलोक में एक सुखद स्थान पर पुनः प्रकट होता है।9 परन्तु (शायद) उसके सुख का कारण बनने वाला अच्छा कर्म उसने पहले किया था, या उसके सुख का कारण बनने वाला अच्छा कर्म उसने बाद में किया था, या मृत्यु के समय उसने सही दृष्टिकोण अपनाया और उसे पूरा किया था। और इसीलिए मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह स्वर्गलोक में एक सुखद स्थान पर पुनः प्रकट हुआ। परन्तु क्योंकि उसने यहाँ जीवों का वध किया है... उसका दृष्टिकोण गलत था, इसलिए उसे इसका फल यहीं और अभी, या अपने अगले पुनर्जन्म में, या किसी बाद के जन्म में भुगतना पड़ेगा।10

17. (iii) "अब यहाँ वह व्यक्ति है जिसने प्राणियों की हत्या से परहेज किया है... उसका दृष्टिकोण सही है। और मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुनः प्रकट होता है।11 परन्तु (शायद) उसके सुख का कारण बनने वाला अच्छा कर्म उसने पहले किया था, या उसके सुख का कारण बनने वाला अच्छा कर्म उसने बाद में किया था, या मृत्यु के समय उसने सही दृष्टिकोण अपनाया और उसे पूरा किया था। और इसीलिए मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर वह स्वर्गलोक में एक सुखद गंतव्य पर पुनः प्रकट हुआ। परन्तु चूंकि उसने यहाँ प्राणियों की हत्या से परहेज किया है... उसका दृष्टिकोण सही है, इसलिए उसे इसका फल यहीं और अभी, या अपने अगले पुनर्जन्म में, या किसी बाद के जन्म में भुगतना पड़ेगा।

18. (iv) "यहाँ एक ऐसा व्यक्ति है जिसने प्राणियों की हत्या से परहेज किया है... उसका दृष्टिकोण सही है। और मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, वह अभावग्रस्त अवस्थाओं में, दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, नरक में, पुन: प्रकट होता है।12 परन्तु (शायद) उसके कष्ट का कारण बनने वाला बुरा कर्म उसने पहले किया था, या उसके कष्ट का कारण बनने वाला बुरा कर्म उसने बाद में किया था, या मृत्यु के समय उसने गलत दृष्टिकोण अपनाया और उसे पूरा किया। और इसीलिए, मृत्यु के बाद शरीर के नष्ट होने पर, वह अभावग्रस्त अवस्थाओं में, दुर्भाग्यपूर्ण गंतव्य में, नरक में, पुन: प्रकट हुआ। परन्तु चूंकि उसने यहाँ प्राणियों की हत्या से परहेज किया है... उसका दृष्टिकोण सही है, इसलिए वह इसका फल यहीं और अभी, या अपने अगले पुनर्जन्म में, या किसी बाद के जन्म में भोगेगा।13

19. "तो, आनंद, कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो (अच्छे परिणाम देने में) असमर्थ होते हैं और असमर्थ प्रतीत होते हैं; कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो (अच्छे परिणाम देने में) असमर्थ होते हैं और सक्षम प्रतीत होते हैं; कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो (अच्छे परिणाम देने में) सक्षम होते हैं और सक्षम प्रतीत होते हैं; कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो (अच्छे परिणाम देने में) सक्षम होते हैं और असमर्थ प्रतीत होते हैं।"14

भगवान बुद्ध ने यही कहा। पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के वचनों से संतुष्ट और प्रसन्न हुए।

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, मैं तुम्हें छह इंद्रियों के विश्लेषण का पाठ पढ़ाऊंगा। सुनो और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: “छह आंतरिक इंद्रियों का ज्ञान होना चाहिए। छह बाह्य इंद्रियों का ज्ञान होना चाहिए। चेतना के छह वर्गों का ज्ञान होना चाहिए। संपर्क के छह वर्गों का ज्ञान होना चाहिए। बुद्धि के अठारह अन्वेषणों का ज्ञान होना चाहिए। प्राणियों की छत्तीस अवस्थाओं का ज्ञान होना चाहिए जिनसे वे जुड़े होते हैं। इनके संबंध में, इस पर निर्भर रहते हुए, उस पर निर्भर रहना छोड़ दें। तीन संदर्भ बिंदु हैं जिनका अभ्यास एक श्रेष्ठ व्यक्ति करता है, और इनका अभ्यास करके वह एक समूह को शिक्षा देने के योग्य शिक्षक बन जाता है। कुशल प्रशिक्षकों में, वह उन लोगों का अद्वितीय प्रशिक्षक माना जाता है जिन्हें वश में किया जा सकता है। यह छह इंद्रियों के विश्लेषण का सारांश है।”

"'छह आंतरिक इंद्रियों का ज्ञान होना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और किसके संदर्भ में कहा गया था? आँख, कान, नाक, जीभ, शरीर और बुद्धि। 'छह आंतरिक इंद्रियों का ज्ञान होना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

"'छह बाह्य इंद्रिय-माध्यमों का ज्ञान होना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और किसके संदर्भ में कहा गया था? रूप-माध्यम, ध्वनि-माध्यम, सुगंध-माध्यम, स्वाद-माध्यम, स्पर्श-माध्यम, विचार-माध्यम। 'छह बाह्य इंद्रिय-माध्यमों का ज्ञान होना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और किसके संदर्भ में ऐसा कहा गया था।"

"'चेतना के छह वर्गों को जानना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और यह किसके संदर्भ में कहा गया था? नेत्र-चेतना, कान-चेतना, नाक-चेतना, जीभ-चेतना, शरीर-चेतना, बुद्धि-चेतना। 'चेतना के छह वर्गों को जानना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और यह किसके संदर्भ में कहा गया था।"

"'संपर्क के छह प्रकारों को जानना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और यह किसके संदर्भ में कहा गया था? आँख का संपर्क, कान का संपर्क, नाक का संपर्क, जीभ का संपर्क, शारीरिक संपर्क, बौद्धिक संपर्क। 'संपर्क के छह प्रकारों को जानना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और यह इसी के संदर्भ में कहा गया था।"

“'बुद्धि के अठारह अन्वेषणों को जानना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और यह किस संदर्भ में कहा गया था? आँख से किसी रूप को देखकर, व्यक्ति ऐसे रूप का अन्वेषण करता है जो सुख का आधार बन सकता है, ऐसे रूप का अन्वेषण करता है जो दुःख का आधार बन सकता है, और ऐसे रूप का अन्वेषण करता है जो समभाव का आधार बन सकता है। कान से ध्वनि सुनकर... नाक से सुगंध सूंघकर... जीभ से स्वाद चखकर... शरीर से स्पर्श का अनुभव करके... बुद्धि से किसी विचार को जानकर, व्यक्ति ऐसे विचार का अन्वेषण करता है जो सुख का आधार बन सकता है, ऐसे विचार का अन्वेषण करता है जो दुःख का आधार बन सकता है, और ऐसे विचार का अन्वेषण करता है जो समभाव का आधार बन सकता है। 'बुद्धि के अठारह अन्वेषणों को जानना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और यह इसी संदर्भ में कहा गया था।”

“'जीवों की छत्तीस अवस्थाओं का ज्ञान होना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और किसके संदर्भ में कहा गया था? छह प्रकार के गृहस्थ सुख और छह प्रकार के त्याग सुख; छह प्रकार के गृहस्थ कष्ट और छह प्रकार के त्याग कष्ट; छह प्रकार की गृहस्थ समभाव और छह प्रकार के त्याग समभाव।”

"घरेलू सुख के छह प्रकार क्या हैं? वह सुख जो आँखों से दिखाई देने वाली वस्तुओं की प्राप्ति को अर्जित करने पर उत्पन्न होता है—जो सुखद, मनभावन, आकर्षक और सांसारिक सुखों से जुड़ी होती हैं—या जब ऐसी वस्तुओं की प्राप्ति को याद किया जाता है, जो बीत चुकी हों, समाप्त हो गई हों और बदल गई हों: उसे घरेलू सुख कहते हैं। (इसी प्रकार ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्श संवेदनाओं और विचारों के साथ भी है।)

और त्याग के आनंद के छह प्रकार क्या हैं? वह आनंद जो तब उत्पन्न होता है जब व्यक्ति इन रूपों की अस्थिरता, उनके परिवर्तन, लुप्त होने और समाप्ति का अनुभव करते हुए, सही विवेक से यह देखता है कि सभी रूप, भूतकाल और वर्तमानकाल, अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील हैं: इसे त्याग का आनंद कहते हैं। (इसी प्रकार ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श और विचारों के साथ भी है।)

"घरेलू कष्ट के छह प्रकार क्या हैं? वह कष्ट जो तब उत्पन्न होता है जब कोई आँखों से दिखाई देने वाली वस्तुओं - सुखद, मनभावन, आकर्षक, प्यारी, सांसारिक प्रलोभनों से जुड़ी हुई - के न होने को न होने के रूप में देखता है, या जब कोई उन वस्तुओं के न होने को याद करता है जो बीत चुकी हैं, समाप्त हो चुकी हैं और बदल चुकी हैं: इसे घरेलू कष्ट कहते हैं। (इसी प्रकार ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्श संवेदनाओं और विचारों के साथ भी है।)

और त्याग की पीड़ा के छह प्रकार क्या हैं? वह पीड़ा जो उस व्यक्ति में उत्पन्न होती है जो अद्वितीय मुक्ति की लालसा से भरा होता है, जब वह उन्हीं रूपों की अस्थिरता, उनके परिवर्तन, लुप्त होने और समाप्ति का अनुभव करते हुए, सही विवेक से यह देखता है कि सभी रूप, भूतकाल और वर्तमानकाल, अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील हैं, और वह इस लालसा से भर जाता है: 'हे, मैं कब उस आयाम में प्रवेश करूँगा और रहूँगा जिसमें श्रेष्ठ आत्माएँ प्रवेश करती हैं और रहती हैं?' इसे त्याग की पीड़ा कहते हैं। (इसी प्रकार ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श और विचारों के साथ भी है।)

"और गृहस्थी समभाव के छह प्रकार क्या हैं? वह समभाव जो तब उत्पन्न होता है जब एक मूर्ख, भ्रमित व्यक्ति—एक साधारण, अशिक्षित व्यक्ति जिसने अपनी सीमाओं या कर्मों के परिणामों पर विजय प्राप्त नहीं की है 2 और जो खतरे से अनजान है 3—किसी आकृति को अपनी आँखों से देखता है। ऐसा समभाव आकृति से परे नहीं जाता, इसीलिए इसे गृहस्थी समभाव कहा जाता है। (इसी प्रकार ध्वनियों, गंधों, स्वादों, स्पर्श संवेदनाओं और विचारों के साथ भी है।)"

और त्याग की समता के छह प्रकार क्या हैं? वह समता जो तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति इन रूपों की अस्थिरता, उनके परिवर्तन, लुप्त होने और समाप्ति का अनुभव करते हुए, सही विवेक से यह देखता है कि सभी रूप, भूतकाल और वर्तमानकाल, अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील हैं: यह समता रूप से परे है, इसीलिए इसे त्याग की समता कहा जाता है। (इसी प्रकार ध्वनि, गंध, स्वाद, स्पर्श और विचारों के साथ भी है।)

"'जीवों की छत्तीस अवस्थाओं को जानना चाहिए': ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में यह कहा गया था।"

"'उनके संबंध में, इस पर निर्भर करते हुए, उसे छोड़ दो': ऐसा कहा गया था। और यह किस संदर्भ में कहा गया था?"

यहां, छह प्रकार के त्याग के आनंद पर निर्भर रहकर, छह प्रकार के गृहस्थ सुखों का त्याग और उनसे ऊपर उठना है। यही उनका त्याग है, यही उनका उत्थान है। छह प्रकार के त्याग के कष्टों पर निर्भर रहकर, छह प्रकार के गृहस्थ कष्टों का त्याग और उनसे ऊपर उठना है। यही उनका त्याग है, यही उनका उत्थान है। छह प्रकार के त्याग के समभाव पर निर्भर रहकर, छह प्रकार के गृहस्थ समभावों का त्याग और उनसे ऊपर उठना है। यही उनका त्याग है, यही उनका उत्थान है।

छह प्रकार के त्याग के आनंद पर निर्भर रहकर, छह प्रकार के त्याग के कष्टों का त्याग और उनसे ऊपर उठना ही उनका त्याग है, और उनसे ऊपर उठना भी। छह प्रकार के त्याग के समभाव पर निर्भर रहकर, छह प्रकार के त्याग के आनंद का त्याग और उनसे ऊपर उठना ही उनका त्याग है, और उनसे ऊपर उठना भी।

"अनेकताओं से समभाव उत्पन्न होता है, जो अनेकताओं पर निर्भर करता है; और एकत्व से समभाव उत्पन्न होता है, जो एकत्व पर निर्भर करता है।"

और अनेकता से उत्पन्न, अनेकता पर निर्भर समभाव क्या है? रूपों के प्रति समभाव है, ध्वनियों... गंधों... स्वादों... स्पर्श संवेदनाओं [और विचारों: यह शब्द एक संस्करण में आता है] के प्रति समभाव है। यही अनेकता से उत्पन्न, अनेकता पर निर्भर समभाव है।

और एकत्व से उत्पन्न, एकत्व पर निर्भर समभाव क्या है? एक समभाव है जो अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम पर निर्भर है, एक समभाव है जो चेतना की अनंतता के आयाम पर निर्भर है... शून्यता के आयाम पर निर्भर है... न तो बोध के आयाम पर और न ही अबोध के आयाम पर निर्भर है। यही एकत्व से उत्पन्न, एकत्व पर निर्भर समभाव है।

एकत्व से उत्पन्न समता पर निर्भर रहकर, जो एकत्व पर ही निर्भर है, अनेकता से उत्पन्न समता को त्यागकर, जो अनेकता पर ही निर्भर है, उससे परे जाकर। यही उसका त्याग है, यही उसका पारगमन है।

"गैर-निर्माण पर निर्भर और भरोसा करके, एकांत से उत्पन्न समता को त्यागकर और उससे ऊपर उठकर, एकांत पर निर्भर एकांत से उत्पन्न समता को प्राप्त किया जा सकता है। यही उसका त्याग है, यही उसका पारगमन है।"

"'इस पर निर्भर करते हुए, उसे छोड़ दो': ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में यह कहा गया था।"

"'एक कुलीन व्यक्ति तीन संदर्भों का पालन करता है, जिनका पालन करके वह एक समूह को शिक्षा देने के योग्य शिक्षक बनता है': ऐसा कहा गया था। और यह किसके संदर्भ में कहा गया था?"

एक ऐसा मामला है जहाँ गुरु अपने शिष्यों के प्रति सहानुभूति और कल्याण की कामना करते हुए उन्हें धम्म का उपदेश देते हैं: 'यह तुम्हारे कल्याण के लिए है, यह तुम्हारी खुशी के लिए है।' उनके शिष्य न तो सुनते हैं, न ध्यान देते हैं और न ही ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपना मन लगाते हैं। वे गुरु के संदेश से भटक जाते हैं। इस स्थिति में तथागत न तो संतुष्ट होते हैं और न ही संतुष्टि के प्रति संवेदनशील, फिर भी वे अविचलित, सचेत और सजग रहते हैं। यही वह पहला दृष्टिकोण है जिसे एक श्रेष्ठ व्यक्ति विकसित करता है, और इसी दृष्टिकोण को विकसित करके वह एक समूह को शिक्षा देने के योग्य शिक्षक बनता है।

इसके अतिरिक्त, एक ऐसा मामला भी है जहाँ गुरु अपने शिष्यों के प्रति सहानुभूति और कल्याण की कामना करते हुए उन्हें धम्म का उपदेश देते हैं: 'यह तुम्हारे कल्याण के लिए है, यह तुम्हारी खुशी के लिए है।' उनके कुछ शिष्य न तो सुनते हैं, न ध्यान देते हैं और न ही ज्ञान की ओर अपना मन लगाते हैं। वे गुरु के संदेश से विमुख होकर भटक जाते हैं। परन्तु उनके कुछ शिष्य सुनते हैं, ध्यान देते हैं और ज्ञान की ओर अपना मन लगाते हैं। वे गुरु के संदेश से विमुख नहीं होते और न ही भटकते हैं। इस स्थिति में तथागत न तो संतुष्ट होते हैं और न ही संतुष्टि के प्रति संवेदनशील; साथ ही वे न तो असंतुष्ट होते हैं और न ही असंतुष्टि के प्रति संवेदनशील। संतुष्टि और असंतुष्टि दोनों से मुक्त होकर वे समभाव, सजग और सतर्क रहते हैं। यही संदर्भ का दूसरा ढाँचा है...

इसके अतिरिक्त, एक ऐसा मामला भी है जहाँ गुरु सहानुभूतिवश, अपने शिष्यों के कल्याण की कामना करते हुए, उन्हें धम्म का उपदेश देते हैं: 'यह तुम्हारे कल्याण के लिए है, यह तुम्हारी खुशी के लिए है।' उनके शिष्य ध्यान से सुनते हैं, ग्रहण करते हैं और ज्ञान में अपना मन लगाते हैं। वे गुरु के संदेश से विचलित नहीं होते। इस स्थिति में तथागत संतुष्ट होते हैं और संतुष्टि के प्रति संवेदनशील होते हैं, फिर भी वे अविचलित, सचेत और सजग रहते हैं। यह तीसरा दृष्टिकोण है जिसे एक श्रेष्ठ व्यक्ति विकसित करता है, और इसे विकसित करके वह एक समूह को शिक्षा देने के योग्य शिक्षक बनता है।

"'एक महान व्यक्ति तीन संदर्भों का पालन करता है, जिनका पालन करके वह एक समूह को शिक्षा देने के योग्य शिक्षक बनता है': ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में यह कहा गया था।"

"'मास्टर प्रशिक्षकों में, उन्हें उन लोगों को प्रशिक्षित करने में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है जिन्हें वश में किया जा सकता है': ऐसा कहा गया था। और यह किस संदर्भ में कहा गया था?"

हाथी प्रशिक्षक द्वारा निर्देशित, पालतू बनाया जाने वाला हाथी केवल एक ही दिशा में दौड़ता है: पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण। घोड़े प्रशिक्षक द्वारा निर्देशित, पालतू बनाया जाने वाला घोड़ा केवल एक ही दिशा में दौड़ता है: पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण। बैल प्रशिक्षक द्वारा निर्देशित, पालतू बनाया जाने वाला बैल केवल एक ही दिशा में दौड़ता है: पूर्व, पश्चिम, उत्तर या दक्षिण।

लेकिन तथागत द्वारा निर्देशित - जो योग्य और सही मायने में आत्मजागृत हैं - वह व्यक्ति जिसे वश में करना है, आठ दिशाओं में फैल जाता है।

"रूप से युक्त होने के कारण, वह रूपों को देखता है। यही पहली दिशा है।"

"वह आंतरिक रूप से रूप को नहीं देख पाता, वह बाहरी रूप से रूपों को देखता है। यह दूसरी दिशा है।"

"उसका ध्यान केवल सुंदरता पर केंद्रित है। यह तीसरी दिशा है।"

भौतिक रूप की धारणाओं से पूर्णतः परे जाकर, प्रतिरोध की धारणाओं के लुप्त होने पर, और विविधता की धारणाओं पर ध्यान न देते हुए, 'अनंत अंतरिक्ष' को अनुभव करते हुए, वह अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। यही चौथी दिशा है।

"अंतरिक्ष की अनंतता के आयाम को पूर्णतः पार करते हुए, 'अनंत चेतना' को अनुभव करते हुए, वह चेतना की अनंतता के आयाम में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। यही पाँचवीं दिशा है।"

चेतना की अनंतता के आयाम को पूरी तरह से पार करते हुए, 'कुछ भी नहीं है' का अनुभव करते हुए, वह शून्यता के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं रहता है। यही छठी दिशा है।

"शून्यता के आयाम को पूरी तरह से पार करने के साथ, वह न तो बोध और न ही अबोध के आयाम में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। यही सातवीं दिशा है।"

"न तो अनुभूति और न ही अनुभूति के आयाम से पूर्णतः परे जाकर, वह अनुभूति और अनुभूति की समाप्ति में प्रवेश करता है और वहीं स्थिर रहता है। यही आठवीं दिशा है।"

"योग्य और सही मायने में आत्मजागृत तथागत द्वारा निर्देशित, जिसे वश में किया जाना है वह व्यक्ति आठ दिशाओं में फैल जाता है।"

"'प्रमुख प्रशिक्षकों में, तथागत को उन लोगों का अद्वितीय प्रशिक्षक कहा जाता है जिन्हें वश में किया जा सकता है': ऐसा कहा गया था। और इसी संदर्भ में यह कहा गया था।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.8उद्देसविभंगा सुत्त(138)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "भिक्षुओं, मैं तुम्हें एक कथन और उसका विश्लेषण सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, स्वामी," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "एक भिक्षु को इस प्रकार ध्यान करना चाहिए कि उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से विक्षेपित हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो; वह आसक्ति/पोषण के अभाव में विचलित न हो। जब उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से विक्षेपित हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो, और आसक्ति/पोषण के अभाव में विचलित न हो, तो भविष्य में जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु या तनाव की कोई संभावना नहीं रहती।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा। इतना कहकर वे अपने आसन से उठे और अपने निवास स्थान पर चले गए।

फिर, भगवान बुद्ध के जाने के कुछ ही समय बाद, भिक्षुओं के मन में यह विचार आया: "भगवान बुद्ध ने जो संक्षिप्त कथन दिया है, और जिसके बाद वे विस्तृत अर्थ का विश्लेषण किए बिना अपने निवास स्थान पर चले गए — अर्थात्, 'एक भिक्षु को इस प्रकार चिंतन करना चाहिए कि उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से विक्षेपित हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो, और वह आसक्ति/पोषण के अभाव में अविचलित रहे। जब उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से विक्षेपित हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो — और आसक्ति/पोषण के अभाव में अविचलित रहे, तो भविष्य के जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु या तनाव की कोई संभावना नहीं रहती': अब इस संक्षिप्त कथन के अनविश्लेषित विस्तृत अर्थ का विश्लेषण कौन कर सकता है?" तब उनके मन में यह विचार आया, "आदरणीय महा कच्चाना गुरु द्वारा प्रशंसित और उनके ज्ञानवान साथियों द्वारा पवित्र जीवन में सम्मानित हैं। वे इस संक्षिप्त कथन के अनविश्लेषित विस्तृत अर्थ का विश्लेषण करने में सक्षम हैं। मान लीजिए कि हम उनके पास जाएँ और पहुँचने पर उनसे इस विषय पर प्रश्न करें।"

अतः भिक्षु पूज्य महा कच्चना के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्होंने उनका अभिवादन किया। सौहार्दपूर्ण अभिवादन और शिष्टाचार के बाद वे एक तरफ बैठ गए। वहाँ खड़े-खड़े उन्होंने उन्हें सारी घटना बताई और कहा, "हे पूज्य महा कच्चना, इसका अर्थ स्पष्ट कीजिए!"

[उन्होंने उत्तर दिया:] "मित्रों, यह ऐसा है जैसे कोई व्यक्ति जिसे लकड़ी की आवश्यकता हो, उसे खोजता फिरे, लकड़ी की तलाश में भटकता रहे — लकड़ी से युक्त खड़े पेड़ की जड़ और तने को अनदेखा करते हुए — यह सोचे कि लकड़ी उसकी शाखाओं और पत्तियों में खोजी जानी चाहिए। ठीक यही आपके साथ भी है, जिन्होंने गुरु भगवान के सामने होते हुए भी उन्हें अनदेखा कर दिया, और अब यह सोच रहे हैं कि मुझसे इस विषय पर प्रश्न पूछा जाए। क्योंकि भगवान जानते हैं, वे जानते हैं; देखते हैं, वे देखते हैं। वे आँख हैं, वे ज्ञान हैं, वे धर्म हैं, वे ब्रह्म हैं। वे वक्ता हैं, उद्‌घोषक हैं, अर्थ के व्याख्याता हैं, अमरता के दाता हैं, धर्म के स्वामी हैं, तथागत हैं। यही वह समय था जब आपको उनसे इस विषय पर प्रश्न पूछना चाहिए था। उन्होंने जो भी उत्तर दिया हो, आपको उसे उसी रूप में याद रखना चाहिए।"

"जी हां, मित्र कच्चाना: जानने वाले भगवान जानते हैं; देखने वाले देखते हैं। वे आंख हैं, वे ज्ञान हैं, वे धर्म हैं, वे ब्रह्म हैं। वे वक्ता हैं, उद्‌घोषक हैं, अर्थ के व्याख्याता हैं, अमरता के दाता हैं, धर्म के स्वामी हैं, तथागत हैं। यही वह समय था जब हमें उनसे इस विषय पर प्रश्न करना चाहिए था। उन्होंने जो भी उत्तर दिया, हमें उसे उसी रूप में याद रखना चाहिए था। लेकिन गुरु ने आपकी प्रशंसा की है और पवित्र जीवन में आपके ज्ञानी साथी आपको सम्मान देते हैं। आप इस संक्षिप्त कथन के अनसुलझे विस्तृत अर्थ का विश्लेषण करने में सक्षम हैं। हे पूज्य महा कच्चाना, अर्थ का विश्लेषण कीजिए!"

"तो फिर, मेरे दोस्तों, ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, मित्र," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

आदरणीय महा कच्चना ने कहा: "भगवान बुद्ध ने जो संक्षिप्त कथन दिया और उसके विस्तृत अर्थ का विश्लेषण किए बिना अपने निवास स्थान में प्रवेश किया, उसके विषय में, अर्थात्, 'एक भिक्षु को इस प्रकार अध्ययन करना चाहिए कि उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से विक्षेपित हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो, वह आसक्ति/पोषण के अभाव में अविचलित रहे। जब उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से विक्षेपित हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो, और आसक्ति/पोषण के अभाव में अविचलित रहे, तो भविष्य के जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु या तनाव की कोई संभावना नहीं रहती' - मैं इसका विस्तृत अर्थ इस प्रकार समझता हूँ:

चेतना को बिखरी हुई और फैली हुई कैसे कहा जाता है? एक स्थिति यह है कि जब किसी आकृति को आँख से देखा जाता है, तो चेतना उस आकृति के विषय के बहाव का अनुसरण करती है (शाब्दिक रूप से: 'उसके पीछे बहती है'), उस आकृति के विषय के आकर्षण से बंधी होती है, उस आकृति के विषय के आकर्षण से जकड़ी और जुड़ी होती है: तब चेतना को बाह्य रूप से बिखरी हुई और फैली हुई कहा जाता है।

"ऐसा मामला है जहां कान से ध्वनि सुनी जाती है... नाक से सुगंध सूंघी जाती है... जीभ से स्वाद चखा जाता है... शरीर से स्पर्श संवेदना महसूस की जाती है... बुद्धि से एक विचार का संज्ञान लिया जाता है, और चेतना उस विचार के विषय के प्रवाह का अनुसरण करती है, उस विचार के विषय के आकर्षण से बंधी होती है, उस विचार के विषय के आकर्षण से जकड़ी होती है, उस विचार के विषय के आकर्षण से जुड़ी होती है: चेतना को बाह्य रूप से बिखरी हुई और फैली हुई कहा जाता है।"

और चेतना को बाह्य रूप से बिखरी हुई और फैली हुई क्यों नहीं कहा जाता? एक स्थिति यह है कि जब किसी रूप को आँख से देखा जाता है, तो चेतना उस रूप के विषय के प्रवाह का अनुसरण नहीं करती, उससे बंधी नहीं होती... उससे जकड़ी नहीं होती... उससे जुड़ी नहीं होती, या उस रूप के विषय के आकर्षण से नहीं जुड़ती: तब चेतना को बाह्य रूप से बिखरी हुई और फैली हुई नहीं कहा जाता।

"ऐसा मामला है जहां कान से ध्वनि सुनी जाती है... नाक से सुगंध सूंघी जाती है... जीभ से स्वाद चखा जाता है... शरीर से स्पर्श का अनुभव होता है... बुद्धि से विचार को समझा जाता है, और चेतना विचार के विषय के प्रवाह का अनुसरण नहीं करती, उससे बंधी नहीं होती... उससे जकड़ी नहीं होती... उससे जुड़ी नहीं होती, या विचार के विषय के आकर्षण से नहीं जुड़ती: चेतना को बाह्य रूप से बिखरी हुई और फैली हुई नहीं कहा जाता है।"

और मन की आंतरिक स्थिति क्या होती है? एक उदाहरण है, जब एक भिक्षु, इंद्रियों से पूर्णतः विरक्त होकर, अकुशल (मानसिक) गुणों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है। उसकी चेतना एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद के प्रवाह का अनुसरण करती है, उससे बंधी रहती है, जंजीरों में जकड़ी रहती है और एकांतवास से उत्पन्न परमानंद और आनंद के आकर्षण से जुड़ जाती है। या फिर, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकाग्रता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। उसकी चेतना शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद के प्रवाह का अनुसरण करती है, उससे बंधी रहती है, जंजीरों में जकड़ी रहती है और शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद के आकर्षण से जुड़ जाती है। या फिर, परमानंद के क्षीण होने पर, वह समभाव, सचेत और सतर्क रहता है, और शरीर से सुख का अनुभव करता है। वह तृतीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है। ध्यान, जिसके बारे में ऋषि कहते हैं, 'समभाव और सजग रहने पर उसे सुखद निवास प्राप्त होता है।' उसकी चेतना समभाव और सुख के प्रवाह का अनुसरण करती है, उससे बंधी रहती है... जकड़ी रहती है... बेड़ियों में जकड़ी रहती है, और समभाव और सुख के आकर्षण से जुड़ी रहती है। या फिर, सुख और दुख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें बना रहता है: समभाव और सजगता की शुद्धता, न सुख न दुख। उसकी चेतना न सुख न दुख के प्रवाह का अनुसरण करती है, उससे बंधी रहती है... जकड़ी रहती है... बेड़ियों में जकड़ी रहती है, और न सुख न दुख के आकर्षण से जुड़ी रहती है: मन को आंतरिक रूप से स्थित कहा जाता है।

और मन को आंतरिक रूप से स्थित न होने के रूप में कैसे कहा जाता है? एक उदाहरण है, जब एक भिक्षु, इंद्रियों से पूर्णतः विरक्त होकर, अकुशल (मानसिक) गुणों से विरक्त होकर, प्रथम ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद, जो निर्देशित विचार और मूल्यांकन के साथ होता है। उसकी चेतना एकांत से उत्पन्न परमानंद और आनंद के प्रवाह का अनुसरण नहीं करती, न ही उससे बंधी होती है, न ही उससे जकड़ी होती है, न ही उससे जुड़ी होती है। या फिर, निर्देशित विचारों और मूल्यांकनों के शांत होने पर, वह द्वितीय ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है: एकाग्रता से उत्पन्न परमानंद और आनंद, निर्देशित विचार और मूल्यांकन से मुक्त चेतना का एकीकरण - आंतरिक आश्वासन। उसकी चेतना शांति से उत्पन्न परमानंद और आनंद के प्रवाह का अनुसरण नहीं करती, न ही उससे बंधी होती है, न ही उससे जकड़ी होती है, न ही उससे जुड़ी होती है, न ही उससे जुड़ी होती है। या फिर, परमानंद के लुप्त होने पर, वह समभाव, सचेत और सतर्क रहता है, और शरीर से आनंद का अनुभव करता है। वह तीसरे ध्यान में प्रवेश करता है और उसमें स्थिर रहता है, जिसके बारे में ऋषि कहते हैं, 'समभाव और सजग, वह सुखद अवस्था में रहता है।' उसकी चेतना समभाव और सुख के बहाव का अनुसरण नहीं करती, न ही उससे बंधी रहती है, न ही उसके आकर्षण से जुड़ी होती है। या फिर, सुख और दुख के त्याग के साथ—जैसे पहले उल्लास और दुःख के लुप्त होने के साथ—वह चौथे ध्यान में प्रवेश करता है और स्थिर रहता है: समभाव और सजगता की शुद्धता, न सुख न दुख। उसकी चेतना न सुख न दुख के बहाव का अनुसरण नहीं करती, न ही उससे बंधी रहती है, न ही उसके आकर्षण से जुड़ी होती है: कहा जाता है कि मन आंतरिक रूप से स्थित नहीं होता है।

"और आसक्ति/आश्रय से बेचैनी कैसे उत्पन्न होती है? एक ऐसा मामला है जहाँ एक अशिक्षित, साधारण व्यक्ति—जो श्रेष्ठ व्यक्तियों का आदर नहीं करता, उनके धर्म का पारंगत या अनुशासित नहीं है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का आदर नहीं करता, उनके धर्म का पारंगत या अनुशासित नहीं है—स्वरूप को आत्मा मान लेता है, या आत्मा को रूप धारण किए हुए, या रूप को आत्मा में, या आत्मा को रूप में मान लेता है। उसका रूप परिवर्तनशील और अस्थिर होता है। रूप के परिवर्तनशील और अस्थिरता के कारण, उसकी चेतना रूप के परिवर्तन के अनुसार परिवर्तित होती है। रूप के परिवर्तन के अनुसार होने वाले परिवर्तन से उत्पन्न बेचैनी और (अकुशल मानसिक) गुणों

के सह-उत्पन्न होने के कारण, उसका मन व्याकुल रहता है। और चेतना के व्याकुल होने के कारण, वह भयभीत, आशंकित और चिंतित रहता है।"

वह भावना को ही स्वयं मान लेता है...

वह धारणा को स्वयं के रूप में मानता है...

वह (मानसिक) कल्पनाओं को स्वयं मान लेता है...

वह चेतना को आत्मा मान लेता है, आत्मा को चेतना से युक्त मानता है, चेतना को आत्मा में समाहित मानता है, या आत्मा को चेतना में समाहित मानता है। उसकी चेतना परिवर्तनशील और अस्थिर है। चेतना के इस परिवर्तनशील और अस्थिरता के कारण, उसकी चेतना भी चेतना में होने वाले परिवर्तन के अनुरूप बदलती रहती है। चेतना में होने वाले परिवर्तन और अकुशल मानसिक गुणों के सह-उत्पन्न होने से उत्पन्न होने वाली बेचैनी के कारण उसका मन व्याकुल रहता है। और जागरूकता के व्याकुल होने के कारण, वह भयभीत, आशंकित और चिंतित रहता है।

"मित्रों, इस प्रकार आसक्ति/पोषण के कारण बेचैनी उत्पन्न होती है।"

और आसक्ति/पोषण के अभाव से अविचलितता कैसे उत्पन्न होती है? एक ऐसा मामला है जहाँ श्रेष्ठ पुरुषों का एक शिक्षित शिष्य—जो श्रेष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म में पारंगत और अनुशासित है; जो सत्यनिष्ठ पुरुषों का आदर करता है, उनके धर्म में पारंगत और अनुशासित है—रूप को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को रूप धारण करने वाला मानता है, न ही रूप को आत्मा में, न ही आत्मा को रूप में। उसका रूप परिवर्तनशील और अस्थिर है, परन्तु उसकी चेतना—रूप के परिवर्तनशील और अस्थिरता के कारण—रूप के परिवर्तन के अनुरूप नहीं बदलती। उसका मन रूप के परिवर्तन के अनुरूप परिवर्तन से उत्पन्न किसी भी व्याकुलता से ग्रस्त नहीं होता, न ही (अकुशल मानसिक) गुणों के सह-उत्पन्न होने से उत्पन्न व्याकुलता से। और क्योंकि उसकी चेतना व्याकुल नहीं होती, इसलिए वह न तो भयभीत होता है, न ही भयभीत होता है, और न ही चिंतित होता है।

वह भावना को स्वयं के समान नहीं मानता...

वह धारणा को स्वयं के रूप में नहीं मानता...

"वह मनगढ़ंत बातों को स्वयं की वास्तविकता नहीं मानता..."

वह चेतना को आत्मा नहीं मानता, न ही आत्मा को चेतना से युक्त मानता है, न ही चेतना को आत्मा में समाहित मानता है, और न ही आत्मा को चेतना में समाहित मानता है। उसकी चेतना परिवर्तनशील और अस्थिर है, परन्तु चेतना के इस परिवर्तनशीलता और अस्थिरता के कारण उसकी चेतना, चेतना में होने वाले परिवर्तन के अनुरूप परिवर्तित नहीं होती। उसका मन चेतना में होने वाले परिवर्तन या अकुशल मानसिक गुणों के सह-उत्पत्ति से उत्पन्न किसी भी प्रकार की बेचैनी से ग्रस्त नहीं होता। और क्योंकि उसकी जागरूकता ग्रस्त नहीं होती, इसलिए वह न तो भयभीत होता है, न ही भयभीत, और न ही चिंतित।

"मित्रों, इस प्रकार आसक्ति/पोषण के अभाव के कारण अविचलितता उत्पन्न होती है।"

अतः, भगवान बुद्ध द्वारा दिए गए संक्षिप्त कथन के विषय में, जिसके बाद उन्होंने विस्तृत अर्थ का विश्लेषण किए बिना अपने निवास स्थान में प्रवेश किया — अर्थात्, 'एक भिक्षु को इस प्रकार अध्ययन करना चाहिए कि उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से विक्षेपित हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो, जिससे वह आसक्ति/पोषण के अभाव में विचलित न हो। जब उसकी चेतना न तो बाह्य रूप से विक्षेपित हो और न ही आंतरिक रूप से स्थिर हो — आसक्ति/पोषण के अभाव में वह विचलित न हो, तो भविष्य के जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु या तनाव की कोई संभावना नहीं रहती' — मैं इसका विस्तृत अर्थ इसी प्रकार समझता हूँ। अब, यदि आप चाहें, तो भगवान बुद्ध के पास जाकर उनसे इस विषय पर प्रश्न करें। उनका जो भी उत्तर हो, उसे आपको याद रखना चाहिए।'

तब भिक्षु, पूज्य महा कच्चायना के शब्दों से प्रसन्न होकर और उन्हें स्वीकार करते हुए, अपने स्थानों से उठे और भगवान बुद्ध के पास गए। वहाँ पहुँचकर, उन्होंने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। वहाँ बैठे-बैठे उन्होंने उन्हें बताया कि उनके निवास स्थान में जाने

के बाद क्या हुआ था, और अंत में कहा, "तब पूज्य महा कच्चायना ने इन शब्दों, इन कथनों, इन वाक्यांशों का उपयोग करके अर्थ का विश्लेषण किया।"

"महा कच्चयन ज्ञानवान हैं, भिक्षुओं। वे अत्यंत विवेकशील व्यक्ति हैं। यदि आपने मुझसे इस विषय पर पूछा होता, तो मैं भी वही उत्तर देता जो उन्होंने दिया। इस कथन का यही अर्थ है। आपको इसे इसी प्रकार याद रखना चाहिए।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.9अरणविभंग सुत्त(139)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन में अनाथपिंडिका द्वारा दिए गए मठ में निवास कर रहे थे। उन्होंने वहाँ से भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, मैं आपको एकांतवास का वर्गीकरण सिखाऊँगा, ध्यानपूर्वक और एकाग्रता से सुनो।' भिक्षुओं ने सहमति व्यक्त की और भगवान बुद्ध ने इस प्रकार कहा, 'भिक्षुओं, बंधनों में मत बँटो।'

या तो साधारण, नीच और निरर्थक इंद्रिय सुख की ओर, या फिर स्वयं को निरर्थक पीड़ा पहुँचाने की ओर। तथागत ने मध्य मार्ग को पा लिया है, जो ज्ञान, शांति, बोध, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है। प्रशंसा को प्रशंसा और निंदा को निंदा समझो, और दोनों में से कुछ भी न करके उपदेश दो। सुख के मूल्यांकन को जानकर, आंतरिक सुख से जुड़े रहो। रहस्य मत बताओ। इच्छाओं के विनाश को मुख पर प्रकट मत करो। शब्दों को जल्दबाजी में मत बोलो, धीरे-धीरे बोलो। स्थानीय अभिव्यक्तियों पर जोर मत दो और सामान्य नियमों का उल्लंघन मत करो। यह एकांत के वर्गीकरण का संक्षिप्त विवरण है।

कहा गया है कि न तो साधारण, नीच और व्यर्थ इंद्रिय सुखों से बंधे रहो, न ही स्वयं को कष्ट पहुँचाने वाले निरर्थक और निरर्थक कष्टों से। ऐसा क्यों कहा गया? जो पुनर्जन्म में सुख पाता है, वह नीच, नीच और निरर्थक, निरर्थक सुखों से बंधा रहता है, वह कष्ट, विपत्ति, बुखार, विलाप से ग्रस्त रहता है और गलत मार्ग पर चलता है। जो पुनर्जन्म में सुख नहीं पाता, वह नीच, नीच और निरर्थक, निरर्थक सुखों से मुक्त रहता है, वह कष्ट, विपत्ति, बुखार, विलाप से मुक्त रहता है और सही मार्ग पर चलता है। स्वयं को कष्ट पहुँचाने वाले निरर्थक और निरर्थक कष्टों से बंधा रहने वाला व्यक्ति कष्ट, विपत्ति, बुखार, विलाप से ग्रस्त रहता है और गलत मार्ग पर चलता है। स्वयं को कष्ट पहुँचाने वाले निरर्थक और निरर्थक कष्टों से मुक्त रहने वाला व्यक्ति कष्ट, विपत्ति, बुखार, विलाप से मुक्त रहता है और सही मार्ग पर चलता है। यदि यह कहा गया था कि, न तो साधारण, गैर-महान लोगों के निम्न, घृणित, व्यर्थ कामुक सुख के बंधन में बंधे रहो, न ही स्वयं को प्रताड़ित करने के गैर-महान व्यर्थ कष्ट के बंधन में, तो यह इसी कारण से कहा गया था।

ऐसा कहा गया है कि तथागत ने मध्य मार्ग को पा लिया है, जो ज्ञान, शांति, विद्या, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है। ऐसा क्यों कहा गया? यह वही आर्य अष्टांगिक मार्ग है, जैसे सही दृष्टि, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता। यदि यह कहा गया है कि तथागत ने किसी भी चरम सीमा तक पहुंचे बिना मध्य मार्ग को पा लिया है, जो ज्ञान, शांति, विद्या, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है, तो इसका कारण यही है।

कहा गया है कि प्रशंसा को प्रशंसा और निंदा को निंदा समझो, और दोनों न करो, उपदेश दो। ऐसा क्यों कहा गया? भिक्षुओं, उपदेश न देते हुए प्रशंसा और निंदा कैसे हो सकती है? यदि यह कहा जाए, ‘‘जो लोग पुनर्जन्म में सुख पाते हैं, वे नीच, घृणित, निरर्थक और श्रेष्ठ न होने वाले सुखों में लिप्त होकर अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप और कुमार्ग में हैं,’’ तो इससे किसी विशेष व्यक्ति पर निंदा होती है। यदि यह कहा जाए, ‘‘जो लोग पुनर्जन्म में सुख पाते हैं, वे नीच, घृणित, निरर्थक और श्रेष्ठ न होने वाले सुखों में लिप्त होकर अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से मुक्त होकर श्रेष्ठ मार्ग में हैं,’’ तो इससे किसी विशेष व्यक्ति की प्रशंसा होती है। यदि यह कहा जाए, ‘‘जो लोग स्वयं को कष्ट देने वाले निरर्थक और श्रेष्ठ न होने वाले सुखों में लिप्त होकर अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप और कुमार्ग में हैं,’’ तो इससे किसी

विशेष व्यक्ति की प्रशंसा होती है। यदि यह कहा जाए, तो किसी विशेष व्यक्ति पर दोषारोपण होता है। यदि यह कहा जाए, "जो लोग स्वयं को निरर्थक पीड़ा पहुँचाने वाले अपुष्ट कर्मों में लिप्त हैं, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से मुक्त हैं और सही मार्ग पर हैं," तो किसी विशेष व्यक्ति की प्रशंसा होती है। यदि यह कहा जाए, "जिनका 'अस्तित्व' का बंधन नहीं टूटा है, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से ग्रस्त हैं और गलत मार्ग पर हैं," तो किसी विशेष व्यक्ति पर दोषारोपण होता है। यदि यह कहा जाए, "जिनका 'अस्तित्व' का बंधन टूट गया है, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से मुक्त हैं और सही मार्ग पर हैं," तो किसी विशेष व्यक्ति की प्रशंसा होती है। भिक्षुओं, इस प्रकार प्रशंसा और निंदा होती है और उपदेश नहीं दिया जाता। भिक्षुओं, प्रशंसा और निंदा के बिना उपदेश कैसे दिया जा सकता है? भिक्षुओं, यह नहीं कहा गया है, "जो लोग पुनर्जन्म में सुख पाते हैं, वे नीच, घृणित, निरर्थक और श्रेष्ठ न होने वाले सुखों से बंधे रहते हैं, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से ग्रस्त रहते हैं और गलत मार्ग पर चलते हैं।" बल्कि यह कहा गया है, "यदि बंधे रहते हैं, तो अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से ग्रस्त रहते हैं और गलत मार्ग पर चलते हैं।" इस प्रकार उपदेश दिया गया है। यह नहीं कहा गया है, "जो लोग पुनर्जन्म में सुख पाते हैं, वे नीच, घृणित, निरर्थक और श्रेष्ठ न होने वाले सुखों से बंधे रहते हैं, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से मुक्त रहते हैं और सही मार्ग पर चलते हैं।" बल्कि यह कहा गया है, "यदि बंधे न रहें, तो अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से मुक्त रहते हैं और सही मार्ग पर चलते हैं।" इस प्रकार शिक्षा दी जाती है। यह नहीं कहा गया है, "जो लोग स्वयं को निरर्थक और अवांछित यातना देने के बंधन में बंधे हैं, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से ग्रस्त हैं और गलत मार्ग पर हैं।" बल्कि यह कहा गया है, "यदि बंधे हैं, तो अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से ग्रस्त हैं और गलत मार्ग पर हैं।" इस प्रकार शिक्षा दी जाती है। यह नहीं कहा गया है, "जो लोग स्वयं को निरर्थक और अवांछित यातना देने के बंधन में बंधे हैं, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से मुक्त हैं और सही मार्ग पर हैं।" बल्कि यह कहा गया है, "यदि बंधन मुक्त हैं, तो अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से मुक्त हैं और सही मार्ग पर हैं।" इस प्रकार शिक्षा दी जाती है। यह नहीं कहा गया है, "जिनका 'होना' का बंधन नष्ट नहीं हुआ है, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से ग्रस्त हैं और गलत मार्ग पर हैं।" बल्कि यह कहा गया है, "जब 'होना' का बंधन नष्ट नहीं होता, तो 'अस्तित्व' (*1) नष्ट नहीं होता।" यह नहीं कहा गया है,"जिनका 'अस्तित्व' का बंधन टूट जाता है, वे अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से मुक्त होते हैं और सही मार्ग पर चलते हैं।" कहा जाता है, "जब 'अस्तित्व' का बंधन टूट जाता है, तो 'अस्तित्व' (*1) नष्ट हो जाता है। भिक्षुओं, इस प्रकार उपदेश बिना स्तुति और निंदा के दिया जाता है।"

यदि यह कहा गया कि प्रशंसा को प्रशंसा और निंदा को निंदा समझो, और दोनों में से कुछ भी न करो, तो यह बात इसी कारण कही गई थी।

कहा गया है कि सुख के मूल्यांकन को जानकर आंतरिक सुख में लीन रहो। ऐसा क्यों कहा गया है? भिक्षुओं, ये पाँच इंद्रिय सुख के सूत्र हैं। ये पाँच क्या हैं? आँखों से अनुभव किए जाने वाले सुखद रूप जो इंद्रिय-इच्छाओं और स्नेह को जगाते हैं। कानों से अनुभव किए जाने वाले सुखद ध्वनियाँ, ...और... नाक से अनुभव किए जाने वाले सुखद गंध, ...और... जीभ से अनुभव किए जाने वाले सुखद स्वाद, ...और... शरीर से अनुभव किए जाने वाले सुखद स्पर्श।

इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं और आसक्ति को जगाना। भिक्षुओं, ये पाँच प्रकार के इंद्रिय सुख हैं। भिक्षुओं, यदि इन पाँच प्रकार के इंद्रिय सुखों के कारण कोई सुख या आनंद उत्पन्न होता है, तो वह इंद्रिय सुख कहलाता है, जो साधारण मनुष्य का नीच सुख है। भिक्षुओं, इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए, इसे अधिक महत्व नहीं देना चाहिए, मैं कहता हूँ कि इससे डरना चाहिए। यहाँ, इंद्रिय-संबंधी इच्छाओं और दोषों से विरक्त भिक्षु, विचारों और विचार प्रक्रियाओं से विरक्त होकर, एकांतवास से उत्पन्न आनंद और सुख के साथ प्रथम ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है। विचारों और विचार प्रक्रियाओं पर विजय प्राप्त करके, मन को आंतरिक रूप से स्थिर करके और एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख के साथ द्वितीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है... फिर... तृतीय ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है... फिर... चतुर्थ ध्यान अवस्था को प्राप्त करता है। इसे ही इंद्रिय-रहित सुख, एकांतवास का सुख, शांति और ज्ञान का सुख कहा जाता है। इसका अभ्यास किया जाना चाहिए, इसे खूब महत्व दिया जाना चाहिए और इससे डरना नहीं चाहिए, मैं कहता हूँ। यदि यह कहा गया है कि आनंद के मूल्यांकन को जानते हुए, आंतरिक आनंद से जुड़े रहो, तो यह इसी कारण से कहा गया है।

कहा गया था, रहस्य मत बताओ, इच्छाओं के विनाश को मुखदाह मत करो। ऐसा क्यों कहा गया था? हे भिक्षुओं, यदि आपको किसी ऐसे रहस्य का ज्ञान हो, जो घटित न हुआ हो, सत्य न हो, या शुभ न हो, तो संभव हो तो उस रहस्य को न बताएं। यदि आपको किसी ऐसे रहस्य का ज्ञान हो जो घटित हुआ हो, सत्य हो और शुभ न हो, तो उसे न बताने का अभ्यास करें। यदि आपको किसी ऐसे रहस्य का ज्ञान हो, जो घटित हुआ हो, सत्य हो और शुभ हो, तो उसे बताने का सही समय जानें। हे भिक्षुओं, यदि आपको किसी ऐसी इच्छा विनाश के बारे में पता हो जो घटित न हुआ हो, सत्य न हो, या शुभ न हो, तो संभव हो तो उस इच्छा विनाश को मुखदाह न करें। यदि आपको किसी ऐसी इच्छा विनाश के बारे में पता हो जो घटित हुआ हो, सत्य हो और शुभ न हो, तो उसे मुखदाह न करने का अभ्यास करें। यदि आपको किसी ऐसी इच्छा विनाश के बारे में पता हो जो घटित हुआ हो, सत्य हो और शुभ न हो, तो उसे मुखदाह न करने का अभ्यास करें। यदि यह कहा गया था कि रहस्य मत बताओ, इच्छाओं के विनाश को चेहरे पर प्रकट मत करो, तो यह इसी कारण से कहा गया था।

कहा गया था, जल्दबाजी में मत बोलो, आराम से बोलो। ऐसा क्यों कहा गया था? भिक्षुओं, जल्दबाजी में बोलने वाला शरीर को थकाता है, मन और वाणी को विचलित करता है, गला दुखता है, और स्पष्ट रूप से न बोले गए शब्द समझ में नहीं आते। वहीं आराम से बोलने वाला शरीर को नहीं थकाता, मन और वाणी को विचलित नहीं करता, गला नहीं दुखता, और स्पष्ट रूप से बोले गए शब्द समझ में आते हैं।

यदि यह कहा गया था कि शब्दों को जल्दबाजी में न बोलें, आराम से बोलें, तो यह इसी कारण से कहा गया था।

कहा गया था कि स्थानीय अभिव्यक्तियों पर ज़ोर न दें और प्रचलित नियमों को नकारें। ऐसा क्यों कहा गया था? भिक्षुओं, यहाँ स्थानीय अभिव्यक्तियों पर ज़ोर कैसे दिया जा रहा है और प्रचलित नियमों को कैसे नकारा जा रहा है? भिक्षुओं, एक अवस्था में पात्र को पातीति, दूसरी में पट्टा, तीसरी में विट्ठा, चौथी में सारवान, चौथी में धारोपन, चौथी में पोनान और चौथी में पिसीलान कहा जाता है। चाहे उस अवस्था में इसे किसी भी नाम से जाना जाए, इसे सर्वोच्च सत्य माना जाता है और बाकी सब सत्य नहीं है। यह स्थानीय अभिव्यक्तियों पर ज़ोर देना और प्रचलित नियमों को नकारना है। भिक्षुओं, यहाँ स्थानीय अभिव्यक्तियों पर ज़ोर कैसे नहीं दिया जा रहा है और प्रचलित नियमों को नकारा कैसे नहीं जा रहा है? भिक्षुओं, एक अवस्था में पात्र को पातीति, दूसरी में पट्टा, चौथी में विट्ठा, चौथी में सारवान, चौथी में धारोपन, चौथी में पोनान और चौथी में पिसीलान कहा जाता है। उस राज्य और अन्य राज्यों में इसे चाहे जिस नाम से जाना जाता हो, पूज्य गुरुजी जानते हैं कि यह वही कटोरा है जिसे जाना जाता है, और वे इसके बारे में और कुछ नहीं सोचते। इसलिए, स्थानीय अभिव्यक्ति पर कोई जोर नहीं दिया जाता और न ही प्रचलित रीति-रिवाजों को नजरअंदाज किया जाता है। यदि यह कहा गया है कि स्थानीय अभिव्यक्तियों पर जोर न दें और प्रचलित रीति-रिवाजों को नजरअंदाज न करें, तो यह इसी कारण से कहा गया है।

अतः भिक्षुओं, जो पुनर्जन्म में सुख पाता है, वह नीच, घृणित, निरर्थक और अशोभनीय सुखों में लिप्त होकर अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप और कुकर्म में रहता है। यह बात शरण के साथ है। अतः भिक्षुओं, जो पुनर्जन्म में सुख नहीं पाता, वह नीच, घृणित, निरर्थक और अशोभनीय सुखों से मुक्त होकर अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से रहित होकर सही मार्ग में रहता है। यह बात शरण के बिना है। अतः भिक्षुओं, जो स्वयं को अशोभनीय और निरर्थक पीड़ा पहुँचाने में लिप्त रहता है, वह अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप और कुकर्म में रहता है। यह बात शरण के साथ है। अतः भिक्षुओं, जो स्वयं को अशोभनीय और निरर्थक पीड़ा पहुँचाने से मुक्त होकर अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से रहित होकर सही मार्ग में रहता है। यह वस्तु बिना किसी शरण के है। अतः भिक्षुओं, तथागत ने मध्य मार्ग को जान लिया है, जो ज्ञान, शांति, विद्या, आत्मज्ञान और निर्वाण की ओर ले जाता है। यह अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से रहित है और सही मार्ग पर है। यह वस्तु बिना किसी शरण के है। अतः भिक्षुओं, स्तुति और निंदा करना और उपदेश न देना अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से युक्त है और गलत मार्ग पर है। यह वस्तु शरण के साथ है। अतः भिक्षुओं, स्तुति और निंदा किए बिना उपदेश देना अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से रहित है और सही मार्ग पर है। यह वस्तु बिना किसी शरण के है। अतः भिक्षुओं, साधारण मनुष्य के इंद्रिय सुख, नीच सुख अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से युक्त हैं और गलत मार्ग पर हैं। यह वस्तु शरण के साथ है। अतः भिक्षुओं, इंद्रिय सुख से मुक्ति, एकांतवास का सुख, शांति और आत्मज्ञान। यह बिना किसी अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप के है और सही तरीके से है। 'इस चीज का कोई आश्रय नहीं है।' भिक्षुओं, वह रहस्य जो घटित नहीं हुआ, सत्य नहीं है, शुभ नहीं है, अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से युक्त है और कुटिल मार्ग में है; यह शरण के साथ है। भिक्षुओं, वह रहस्य जो घटित हुआ, सत्य है और शुभ नहीं है, अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से युक्त है और कुटिल मार्ग में है; यह शरण के साथ है। भिक्षुओं, वह रहस्य जो घटित हुआ, सत्य है और शुभ नहीं है, अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से रहित है और उचित मार्ग में है; यह शरण के बिना है। भिक्षुओं, इच्छाओं का वह नाश जो घटित नहीं हुआ, सत्य नहीं है, शुभ नहीं है, मुख से कहा गया है। अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से युक्त है और कुटिल मार्ग में है; यह शरण के साथ है। भिक्षुओं, इच्छाओं का वह नाश जो घटित हुआ, सत्य है और शुभ नहीं है, मुख से कहा गया है। अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप से युक्त है। गलत विधि', यह बात शरण के साथ है। वहाँ, भिक्षुओं, जो इच्छाएँ नष्ट हुई हैं, वह सत्य है और अच्छे के लिए सहायक है। सीधे-सीधे कहा गया है। बिना किसी अप्रियता, परेशानी, बुखार के।'विलाप करना और सही तरीका है', यह बात बिना किसी शरण के है। वहाँ, भिक्षुओं, स्थानीय अभिव्यक्तियों पर जोर देते हुए और प्रचलित प्रयोग को दरकिनार करते हुए, 'अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप करना और गलत तरीका है', यह बात शरण के साथ है। वहाँ, भिक्षुओं, स्थानीय अभिव्यक्तियों पर जोर न देते हुए और प्रचलित प्रयोग को दरकिनार न करते हुए, 'अप्रियता, कष्ट, बुखार, विलाप करना और सही तरीका है', यह बात बिना किसी शरण के है।

अतः, भिक्षुओं, हमें शरणस्थल और शरणस्थलहीन दोनों प्रकार की चीजों को जानने का अभ्यास करना चाहिए। कुलानु सुभूति शरणस्थलहीन चीजों की विधि में विलीन हो गया है।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.10धातुविभंगा सुत्त(140)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक बार भगवान बुद्ध मगध देश की यात्रा करते हुए राजगृह में कुम्हार बग्गावा की कार्यशाला में गए और उनसे कहा, 'यदि आपको कोई असुविधा न हो, तो मैं एक रात आपकी कार्यशाला में बिताऊंगा।'

'आदरणीय महोदय, कार्यशाला में एक तपस्वी पहले ही आ चुके हैं, यदि उन्हें कोई आपत्ति न हो, तो आप अपनी इच्छानुसार रह सकते हैं।'

उस समय पुक्कुसाती नामक एक कुलवासी, जो भगवान बुद्ध में आस्था के कारण संन्यासी बन गए थे, कार्यशाला में पहुँच चुके थे। भगवान बुद्ध आदरणीय पुक्कुसाती के पास गए और कहा, 'यदि भिक्षु को कोई असुविधा न हो, तो मैं एक रात कार्यशाला में ठहरूँगा।'

'हे पूज्यवर, आप अपनी इच्छानुसार रहें, कुम्हार की कार्यशाला में कोई समस्या नहीं है।'

फिर भगवान बुद्ध कुम्हार की कार्यशाला में गए, एक उपयुक्त स्थान पर सूखी घास बिछाई और पालथी मारकर बैठ गए, ध्यान को अपने सामने केंद्रित करते हुए। भगवान बुद्ध रात के काफी देर तक इसी मुद्रा में बैठे रहे। पूज्य पुक्कुसाती ने भी रात का अधिकांश समय इसी मुद्रा में बिताया। तब भगवान बुद्ध के मन में विचार आया, इस कुल के भिक्षु की मुद्रा मुझे प्रसन्न करती है, मुझे इससे प्रश्न करना चाहिए। भगवान बुद्ध ने पूज्य पुक्कुसाती से पूछा, 'भिक्षु, आप किसके धर्म में दीक्षित हुए हैं? या आपके गुरु कौन हैं? या किसकी शिक्षा आपको प्रसन्न करती है?'

'हे पूज्यवर, शाक्यों के पुत्र गौतम नामक एक संन्यासी हैं। उस धन्य गौतम के बारे में ऐसी ख्याति फैली हुई है: वह धन्य पुरुष योग्य, सच्चे अर्थों में प्रबुद्ध, ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण, सुप्रसिद्ध, संसार के ज्ञाता (*1) हैं, जो वश में किए जाने वाले लोगों को वश में करने में अद्वितीय हैं, देवताओं और मनुष्यों के गुरु हैं, प्रबुद्ध और धन्य हैं। मैंने उन पर श्रद्धापूर्वक विश्वास करते हुए संन्यास लिया। वह धन्य पुरुष मेरे गुरु हैं। मैं उस धन्य पुरुष की शिक्षा से प्रसन्न हूँ।'

'भिक्षु, वह सही मायने में प्रबुद्ध, भगवान अब कहाँ निवास करते हैं?'

'हे पूज्यवर, उत्तरी राज्यों में सावत्थी नाम का एक कस्बा है, जहाँ सही मायने में प्रबुद्ध भगवान निवास करते हैं।'

'भिक्षु, क्या तुमने उस भगवान को देखा है, और क्या तुम उसे पहचान सकते हो?'

'हे पूज्यवर, मैंने भगवान बुद्ध को नहीं देखा है, और उन्हें देखकर भी मैं उन्हें पहचान नहीं पाऊंगा।'

तब भगवान बुद्ध को यह विचार आया: इस कुल के व्यक्ति ने मुझ पर आस्था के कारण संन्यासी बन गए हैं, और भगवान बुद्ध ने आदरणीय पुक्कुसाती को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षु, मैं तुम्हें उपदेश दूंगा, ध्यानपूर्वक और एकाग्रता से सुनो।'

पूज्य पुक्कुसाती ने उत्तर दिया, 'जी हां, पूज्यवर।'

भगवान बुद्ध ने कहा, 'भिक्षु, मनुष्य छह तत्वों, छह संपर्क क्षेत्रों, अठारह मानसिक चिंतन और चार संकल्पों से बना है। (इनमें स्थिर होकर कल्पना नहीं करनी चाहिए। कहा जाता है कि कल्पना न करने पर ऋषि शांत हो जाते हैं।) सत्य की रक्षा करने, परोपकार विकसित करने और शांति का अभ्यास करने में बुद्धिमान और मेहनती बनो। यह छह तत्वों के वर्गीकरण का संक्षिप्त विवरण है।'

भिक्षु, ऐसा कहा गया है कि मनुष्य छह तत्वों से बना है। ऐसा क्यों कहा गया? ये तत्व हैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और चेतना। यदि ऐसा कहा गया है कि मनुष्य छह तत्वों से बना है, तो इसका कारण यही है।

भिक्षु, ऐसा कहा गया है कि मनुष्य छह संपर्क क्षेत्रों से बना है। ऐसा क्यों कहा गया है? ये संपर्क क्षेत्र हैं: नेत्र संपर्क, कान संपर्क, नाक संपर्क, जीभ संपर्क, शरीर संपर्क और मन संपर्क। यदि ऐसा कहा गया है कि मनुष्य छह संपर्क क्षेत्रों से बना है, तो इसका कारण यही है।

भिक्षु, ऐसा कहा गया है कि मनुष्य अठारह मानसिक चिंतनों से बना होता है। ऐसा क्यों कहा गया? किसी रूप को देखकर मन सुख, दुःख और समभाव में स्थिर होकर विचार करता है। ध्वनि सुनकर...रे... सुगंध का अनुभव करके... स्वाद का आनंद लेकर... शरीर पर स्पर्श का अनुभव करके... मन में कोई विचार आने पर मन सुख, दुःख और समभाव में स्थिर होकर विचार करता है। इस प्रकार मन के छह चिंतन सुख में, छह चिंतन दुःख में और छह चिंतन समभाव में होते हैं। यदि ऐसा कहा गया है कि मनुष्य अठारह मानसिक चिंतनों से बना है, तो इसी कारण से कहा गया है।

भिक्षु, कहा जाता है कि मनुष्य के चार संकल्प होते हैं। ऐसा क्यों कहा गया? ये संकल्प हैं ज्ञान, सत्य, त्याग और शांति। यदि ऐसा कहा गया है कि मनुष्य के चार संकल्प होते हैं, तो इसका कारण यही है।

भिक्षु, सत्य की रक्षा करने, परोपकार विकसित करने और प्रसन्नता का अभ्यास करने के लिए बुद्धिमान और मेहनती बनो। ऐसा क्यों कहा गया? भिक्षु बुद्धिमान और मेहनती कैसे होता है? ये छह तत्व हैं: पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और चेतना।

भिक्षु, पृथ्वी तत्व क्या है? आंतरिक और बाह्य पृथ्वी तत्व होते हैं। आंतरिक पृथ्वी तत्व क्या है? यह कठोर आंतरिक, व्यक्तिगत पृथ्वी है, जैसे सिर के बाल, शरीर पर बाल, नाखून, दांत, बाहरी त्वचा, मांस, नसें, हड्डियां, अस्थि मज्जा, गुर्दा, हृदय, यकृत, फेफड़े, प्लीहा, आंतें, बड़ी आंत, पेट, मल और कोई भी अन्य वस्तु जो कठोर, आंतरिक, व्यक्तिगत और स्वयं से संबंधित हो। यही आंतरिक और बाह्य पृथ्वी, पृथ्वी तत्व है। ये मैं नहीं हूँ। मैं इनमें नहीं हूँ। ये आत्मा नहीं हैं। इसे सही बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को पृथ्वी तत्व से अलग और पृथक करना चाहिए।

भिक्षु, जल तत्व क्या है? आंतरिक और बाह्य जल तत्व होते हैं। आंतरिक जल तत्व क्या है? वह जो आंतरिक, व्यक्तिगत, जलमय और स्वयं के रूप में स्थिर हो, जैसे पित्त, कफ, मवाद, रक्त, पसीना, शरीर का तेल, आंसू, आंखों का तेल, थूक, नाक का पानी, जोड़ों का तेल, मूत्र और कोई भी अन्य वस्तु जो आंतरिक, व्यक्तिगत, जलमय और स्वयं के रूप में स्थिर हो। भिक्षु, यही आंतरिक जल तत्व है। यह आंतरिक जल तत्व और बाह्य जल तत्व, जल तत्व के रूप में एक साथ प्रवाहित होते हैं। ये मैं नहीं हूँ। मैं इनमें नहीं हूँ। ये आत्मा नहीं हैं। इसे सही बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को जल तत्व से अलग और पृथक कर लेना चाहिए।

भिक्षु, अग्नि तत्व क्या है? आंतरिक और बाह्य अग्नि तत्व होते हैं। आंतरिक अग्नि तत्व क्या है? वह जो आंतरिक, व्यक्तिगत, उग्र और स्वयं के रूप में स्थिर है। जिससे ऊष्मा और जलन उत्पन्न होती है, और जो कुछ भी खाया-पिया जाता है, पचाया जाता है, उसका पाचन होता है, और जो कुछ भी आंतरिक, व्यक्तिगत, उग्र और स्वयं के रूप में स्थिर है, वह इसी से उत्पन्न होता है। भिक्षु, यही आंतरिक अग्नि तत्व है। यह आंतरिक अग्नि तत्व और बाह्य अग्नि तत्व, अग्नि तत्व ही हैं। ये मैं नहीं हूँ। मैं इनमें नहीं हूँ। ये आत्मा नहीं हैं। इसे सही बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को अग्नि तत्व से अलग और पृथक रखना चाहिए।

भिक्षु, वायु तत्व क्या है? आंतरिक और बाह्य वायु तत्व होते हैं। आंतरिक वायु तत्व क्या है? शरीर में ऊपर-नीचे जाने वाली वायु, पेट में, उदर के निचले भाग में, अंगों में ऊपर-नीचे जाने वाली वायु, श्वास के साथ आने-जाने वाली वायु, या कोई भी अन्य आंतरिक, व्यक्तिगत, वायुमय वस्तु आंतरिक वायु तत्व है। भिक्षु, यह आंतरिक और बाह्य वायु तत्व ही वायु तत्व है। यह मैं नहीं हूँ। मैं इसमें नहीं हूँ। यह आत्मा नहीं है। इसे सही बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को वायु तत्व से अलग और पृथक करना चाहिए।

भिक्षु, आकाश तत्व क्या है? आंतरिक और बाह्य आकाश तत्व होते हैं। आंतरिक आकाश तत्व क्या है? आंतरिक स्थान, जैसे कि कान के लोब, नाक के छिद्र, मुख से निकलने वाला खुला स्थान, जहाँ उपभोग की गई, पी गई, खाई गई और चखी गई कोई भी वस्तु संग्रहित होती है, और वह स्थान जिससे वह बाहर निकलती है, या कोई अन्य आंतरिक स्थान जो स्वयं का हो। भिक्षु, यही आंतरिक आकाश तत्व है। आंतरिक और बाह्य स्थान, यही आकाश तत्व है। यह मैं नहीं हूँ। मैं इसमें नहीं हूँ। यह आत्मा नहीं है। इसे सही बुद्धि से, जैसा यह वास्तव में है, देखना चाहिए और मन को आकाश तत्व से अलग और पृथक करना चाहिए।

फिर शुद्ध और निर्मल चेतना शेष रहती है, जिससे किसी चीज को सुखद, अप्रिय या न अप्रिय और न सुखद के रूप में जाना जाता है। भिक्षु को सुखद संपर्क से सुखद अनुभूति होती है और वह जानता है, मुझे सुखद अनुभूति हो रही है। उस सुखद संपर्क के समाप्त होने पर, संबंधित सुखद अनुभूति भी समाप्त हो जाती है और वह जानता है कि वह शांत हो गई है। भिक्षु को अप्रिय संपर्क से अप्रिय अनुभूति होती है और वह जानता है, मुझे अप्रिय अनुभूति हो रही है। उस अप्रिय संपर्क के समाप्त होने पर, संबंधित अप्रिय अनुभूति भी समाप्त हो जाती है और वह जानता है कि वह शांत हो गई है। भिक्षु को न अप्रिय और न सुखद संपर्क से न अप्रिय और न सुखद अनुभूति होती है, और वह जानता है, मुझे न अप्रिय और न सुखद अनुभूति हो रही है। उस न अप्रिय और न सुखद संपर्क के समाप्त होने पर, संबंधित न अप्रिय और न सुखद अनुभूति भी समाप्त हो जाती है और वह जानता है कि वह शांत हो गई है।

भिक्षु, दो लकड़ियों के संपर्क से ऊष्मा और अग्नि उत्पन्न होती है, और उन्हें अलग करने पर ऊष्मा और अग्नि शांत हो जाती है। इसी प्रकार, सुखद संपर्क से सुखद अनुभूति उत्पन्न होती है और भिक्षु को पता चलता है, "मुझे सुखद अनुभूति हो रही है।" सुखद संपर्क समाप्त होने पर, सुखद अनुभूति भी समाप्त हो जाती है और भिक्षु को पता चलता है कि वह शांत हो गई है। अप्रिय संपर्क से अप्रिय अनुभूति उत्पन्न होती है और भिक्षु को पता चलता है, "मुझे अप्रिय अनुभूति हो रही है।" अप्रिय संपर्क समाप्त होने पर, अप्रिय अनुभूति भी समाप्त हो जाती है और भिक्षु को पता चलता है कि वह शांत हो गई है। न अप्रिय, न सुखद, संपर्क से भी अप्रिय अनुभूति उत्पन्न होती है और भिक्षु को पता चलता है, "मुझे न अप्रिय, न सुखद अनुभूति हो रही है।" अप्रिय संपर्क समाप्त होने पर, अप्रिय, न सुखद, अनुभूति भी समाप्त हो जाती है और भिक्षु को पता चलता है कि वह शांत हो गई है।

तब केवल शुद्ध समभाव ही शेष रहता है, कोमल, क्रियाशील और प्रकाशमान। एक कुशल सुनार या उसका शागिर्द भट्टी जलाते समय उसे प्रज्वलित करता। वह चिमटे की मदद से सोने को प्रज्वलित भट्टी में रखता और समय-समय पर उसे गर्म करता, उस पर पानी छिड़कता और उसे देखता। तब वह सोना शुद्ध हो जाता, अशुद्धियाँ निकल जातीं। तब सोना कोमल, क्रियाशील और प्रकाशमान हो जाता है, और पायल, झुमके या सोने की चेन जैसे किसी भी आभूषण को बनाने के लिए उपयुक्त हो जाता है। ठीक इसी प्रकार केवल शुद्ध समभाव ही कोमल, क्रियाशील और प्रकाशमान रहता है। तब वह जानता है, इस शुद्ध और प्रकाशमान समभाव को मैं अंतरिक्ष के क्षेत्र में निर्देशित करूँगा। वह मन और उपयुक्त विचारों का विकास करता है, और जानता है कि मेरा समभाव इसमें दीर्घकालिक रूप से स्थिर रहेगा। इस शुद्ध और प्रकाशमान समभाव को मैं चेतना के क्षेत्र में निर्देशित करूँगा। वह मन और उपयुक्त विचारों का विकास करता है, और जानता है कि मेरा समभाव इसमें दीर्घकालिक रूप से स्थिर रहेगा। इस शुद्ध और प्रकाशमान समता को मैं शून्यता के क्षेत्र में निर्देशित करूँगा। वह मन और उपयुक्त विचारों का विकास करता है और जानता है कि मेरी समता उसमें लंबे समय तक स्थिर रहेगी। इस शुद्ध और प्रकाशमान समता को मैं न तो बोध और न ही अबोध के क्षेत्र में निर्देशित करूँगा। वह मन और उपयुक्त विचारों का विकास करता है और जानता है कि मेरी समता उसमें लंबे समय तक स्थिर रहेगी। तब वह जानता है कि इस शुद्ध और प्रकाशमान समता को, जिसे मैंने मन और उपयुक्त विचारों का विकास करते हुए अंतरिक्ष के क्षेत्र में निर्देशित किया है, संवर्धित हो जाती है। इस शुद्ध और प्रकाशमान समता को, जिसे मैंने मन और उपयुक्त विचारों का विकास करते हुए चेतना के क्षेत्र में निर्देशित किया है, संवर्धित हो जाती है। इस शुद्ध और प्रकाशमान समता को, जिसे मैंने मन और उपयुक्त विचारों का विकास करते हुए शून्यता के क्षेत्र में निर्देशित किया है, संवर्धित हो जाती है। यह शुद्ध और प्रकाशमान समभाव, जिसे मैंने बोध और अबोध के क्षेत्र में निर्देशित किया, मन और उपयुक्त विचारों का विकास करते हुए, गहनता से विकसित हुआ। इस प्रकार वह 'होने' या 'न होने' का इरादा या विचार नहीं करता, किसी भी चीज़ को पकड़ता नहीं, उसके बारे में चिंता नहीं करता और विलीन हो जाता है। वह जानता है कि जन्म नष्ट हो गया है, पवित्र जीवन जी लिया गया है, जो करना चाहिए वह कर लिया गया है, अब और कुछ चाहने की आवश्यकता नहीं है। सुखद भावनाओं को महसूस करते हुए वह जानता है कि वे क्षणभंगुर हैं, उनके प्रति आसक्त नहीं होता और जानता है कि उसे उनमें आनंद नहीं आता। अप्रिय भावनाओं को महसूस करते हुए वह जानता है कि वे क्षणभंगुर हैं, उनके प्रति आसक्त नहीं होता और जानता है कि उसे उनमें आनंद नहीं आता। न ही अप्रिय और न ही सुखद भावनाओं को महसूस करते हुए वह जानता है कि वे क्षणभंगुर हैं, उनके प्रति आसक्त नहीं होता और जानता है कि उसे उनमें आनंद नहीं आता। सुखद, अप्रिय या न ही अप्रिय और न ही सुखद भावनाओं को महसूस करते हुए वह उन्हें मुक्त महसूस करता है। शरीर को समाप्त करने वाली भावनाओं का अनुभव करते हुए वह जानता है कि मैं शरीर को समाप्त करने वाली भावनाओं का अनुभव करता हूँ। जीवन को समाप्त करने वाली भावनाओं का अनुभव करते हुए वह जानता है कि मैं जीवन को समाप्त करने वाली भावनाओं का अनुभव करता हूँ। वह जानता है कि शरीर के विखंडन के समय, जीवन के अंत से पहले, सभी भावनाएं और आनंद ठंडे पड़ जाएंगे।

भिक्षु, तेल और एक टुकड़े के कारण तेल की लौ जलती है; जब तेल और टुकड़ा समाप्त हो जाते हैं और ईंधन नहीं डाला जाता, तो वह बुझ जाती है। उसी प्रकार, शरीर को समाप्त करने वाली भावनाओं का अनुभव करते हुए, मैं भी शरीर को समाप्त करने वाली भावनाओं का अनुभव करता हूँ। जीवन को समाप्त करने वाली भावनाओं का अनुभव करते हुए, मैं भी जीवन को समाप्त करने वाली भावनाओं का अनुभव करता हूँ। वह जानता है कि शरीर के टूटने पर, जीवन के अंत से पहले, सभी भावनाएँ और भोग शांत हो जाएँगे। इस प्रकार

संपन्न भिक्षु ने सर्वोच्च विवेकपूर्ण संकल्प लिया है। यही सर्वोच्च श्रेष्ठ ज्ञान है, जो सभी अप्रियताओं के नाश का ज्ञान है। सत्य में स्थापित मुक्ति अचल है। भिक्षु, सत्य से विचलित होने वाले विचार सत्य नहीं हैं। (*2) सत्य से विचलित न होने वाले विचार ही सत्य हैं, उसका नाश। (*3) इसलिए, इस प्रकार संपन्न भिक्षु ने सत्य में सर्वोच्च संकल्प लिया है। यही सर्वोच्च श्रेष्ठ सत्य है। ये सत्य पर विचार हैं, नाश। अज्ञानता के कारण, उसने पहले कुछ संकल्प लिए होंगे। अब वे संकल्प धराशायी हो गए हैं, जड़ से उखड़ गए हैं, ताड़ के ठूंठ बन गए हैं जो फिर कभी नहीं उगेंगे।

अत: इस प्रकार से संपन्न भिक्षु ने त्याग का सर्वोच्च संकल्प लिया है। यही सर्वोच्च श्रेष्ठ त्याग है। इसका अर्थ है अपने सभी पूर्व संकल्पों का त्याग करना। अज्ञान के कारण, पहले उनमें लोभ और लालच रहा होगा। अब वे दूर हो गए हैं, जड़ से उखाड़ दिए गए हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह बना दिए गए हैं, ताकि वे फिर कभी न उगें। अज्ञान के कारण, पहले उनमें घृणा और क्रोध रहा होगा। अब वे दूर हो गए हैं, जड़ से उखाड़ दिए गए हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह बना दिए गए हैं, ताकि वे फिर कभी न उगें। अज्ञान के कारण, पहले उनमें अज्ञान और भ्रम रहा होगा। अब वे दूर हो गए हैं, जड़ से उखाड़ दिए गए हैं, ताड़ के ठूंठ की तरह बना दिए गए हैं, ताकि वे फिर कभी न उगें। अत: इस प्रकार से संपन्न भिक्षु ने शांति का सर्वोच्च संकल्प लिया है। सर्वोच्च और श्रेष्ठ शांति लोभ, घृणा और भ्रम की शांति है।

यदि यह कहा गया है कि बुद्धिमान होने में लापरवाही न करें, सत्य की रक्षा करें और त्याग विकसित करें तथा तुष्टीकरण का अभ्यास करें, तो यह इसी कारण से कहा गया है।

कहीं भी स्थापित व्यक्ति को कल्पना नहीं करनी चाहिए; जब कल्पना न हो, तब ऋषि को प्रसन्न कहा जाता है। ऐसा क्यों कहा गया है? भिक्षु, 'मैं हूं' कल्पना है, 'मैं हूं' कल्पना है, 'मैं होऊंगा' कल्पना है, 'मैं नहीं होऊंगा' कल्पना है, 'मैं भौतिक होऊंगा' कल्पना है, 'मैं अभौतिक होऊंगा' कल्पना है, 'मैं बोधगम्य या अबोधगम्य होऊंगा' ये सभी कल्पनाएं हैं। 'मैं न तो बोधगम्य होऊंगा और न ही अबोधगम्य' कल्पना है। भिक्षु, कल्पना एक रोग है, एक छाला है, एक तीर है। जब सभी कल्पनाएं समाप्त हो जाती हैं, तब ऋषि को प्रसन्न कहा जाता है। भिक्षु, प्रसन्न ऋषि का जन्म नहीं होता, उनका क्षय नहीं होता, उनमें कोई इच्छा नहीं होती। भिक्षु, जिसका जन्म नहीं होता, उसका क्षय भी नहीं होता। जब क्षय नहीं होता, तब मृत्यु नहीं होती। जब मृत्यु नहीं होती, तब परिवर्तन नहीं होता। जब परिवर्तन नहीं होता, तब इच्छाएं नहीं होतीं। यदि ऐसा कहा गया हो कि कहीं स्थापित होने पर कल्पना नहीं करनी चाहिए, जब कल्पना न करने पर कहा जाता है कि ऋषि प्रसन्न हो गए हैं, तो ऐसा इसी कारण से कहा गया था।

भिक्षु, इसे छह तत्वों का मेरा संक्षिप्त वर्गीकरण समझो।

तब पूज्य पुक्कुसाती ने यह जानकर कि मैं गुरु, श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त गुरु से मिला हूँ, अपने आसन से उठकर, अपने वस्त्र को एक कंधे पर समेटकर, भगवान बुद्ध के चरणों में सिर रखकर कहा, "पूज्यवर, मुझे क्षमा करें, मूर्खता, भ्रम और दोष के कारण मैंने भगवान बुद्ध को मित्र कहकर संबोधित किया है; मुझे क्षमा करें, यह भविष्य में पश्चाताप का कारण बनेगा।"

भिक्षु, मूर्खता, भ्रम और दोष के कारण तुमने मुझे मित्र कहकर पुकारने का अपराध किया है, मैं इसे नहीं मानूंगा। जैसे तुमने अपनी गलती देखकर क्षमा मांगी है, वैसे ही मैं तुम्हें क्षमा करता हूं। अपनी गलती देखकर क्षमा मांगना शिक्षा में वृद्धि है, ताकि भविष्य में संयम बना रहे।

'आदरणीय महोदय, क्या मैं आपकी उपस्थिति में उच्च दीक्षा प्राप्त कर सकता हूँ?'

'भिक्षु, क्या तुम्हारा कुंड और वस्त्र पूर्ण हैं?'

'आदरणीय महोदय, मेरा कटोरा और वस्त्र अधूरे हैं।'

'भिक्षु, तथागत तब तक उच्च दीक्षा प्रदान नहीं करते, जब तक कि कुंड और वस्त्र अपूर्ण हों।'

तब पूज्य पुक्कुसाती भगवान बुद्ध के वचनों से प्रसन्न होकर अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनकी ओर दाहिनी ओर मुड़कर उनके चारों ओर परिक्रमा करते हुए कुंड और वस्त्रों की खोज में चल दिए। जब वे कुंड और वस्त्रों की खोज में जा रहे थे, तभी एक उग्र गाय ने उन्हें मार डाला।

तब कई भिक्षु भगवान बुद्ध के पास आए, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, 'हे पूज्यवर, भगवान बुद्ध द्वारा संक्षेप में उपदेश दिए गए कुल के पुक्कुसाती का निधन हो गया है। मृत्यु के बाद उनका जन्म कहाँ होता है?'

भिक्षुओं, कुल के पुक्कुसाती बुद्धिमान हैं, उन्होंने शिक्षा को समझ लिया है, मैंने अधिक व्याख्या नहीं की। कुल के पुक्कुसाती ने इंद्रिय जगत से बंधे पांच निम्न बंधनों को नष्ट कर दिया है और वे स्वतः ही जन्म लेते हैं, उस संसार से उत्पन्न नहीं होते।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.11 सच्चविभंगा सुत्त(141)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध बनारस के इसिपताना स्थित हिरण अभयारण्य में निवास कर रहे थे और उन्होंने वहीं से भिक्षुओं को संबोधित किया। 'हे भिक्षुओं!' भिक्षुओं ने उत्तर दिया, 'जी हाँ, पूज्यवर।' भगवान बुद्ध ने कहा, 'भिक्षुओं, सच्चे ज्ञान से परिपूर्ण तथागत तथागत ने उस शिक्षा का प्रसार किया है जिसे किसी संन्यासी, ब्राह्मण, देवता, मार, ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति द्वारा बाधित नहीं किया जा सकता है। उन्होंने चार आर्य सत्यों की घोषणा, विस्तार, स्थापना और व्याख्या की है।'

ये चारों क्या हैं? ये हैं अप्रियता के आर्य सत्य की घोषणा, वर्णन, स्थापना और व्याख्या; अप्रियता का उद्भव, उसका निवारण और उसके निवारण की ओर ले जाने वाला मार्ग और विधि। भिक्षुओं, सारिपुत्त और मोग्गल्लाना की संगति करो। वे ज्ञानवान हैं और पवित्र जीवन जीने वालों के लिए सहायक हैं।

सारिपुत्त जन्म देने वाली माता के समान हैं और मोग्गलाना पिता के समान। सारिपुत्त शिक्षा की धारा में प्रवेश की पूर्णता तक प्रशिक्षण देते हैं और मोग्गलाना सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति तक। भिक्षुओं, सारिपुत्त चार आर्य सत्यों की घोषणा, विस्तार, स्थापना और व्याख्या कर सकते हैं।

यह कहकर भगवान बुद्ध अपनी सीट से उठे और अपने निवास स्थान में प्रवेश कर गए।

फिर पूज्य सारिपुत्त ने भगवान के जाने के तुरंत बाद भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, योग्य और सही मायने में प्रबुद्ध तथागत ने उस शिक्षा का प्रसार किया है जिसे किसी संन्यासी, ब्राह्मण, देवता, मार, ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति द्वारा बाधित नहीं किया जा सकता है, जिसमें चार आर्य सत्यों की घोषणा, विस्तार से स्थापना और व्याख्या की गई है।'

मित्रों, दुःख का मूल सत्य क्या है ? जन्म दुःखदायी है। क्षय, मृत्यु, दुःख, विलाप, दुःख, अप्रसन्नता और कष्ट भी दुःखदायी हैं। अपूर्ण इच्छाएँ भी दुःखदायी हैं। संक्षेप में, पाँचों भाव दुःखदायी हैं।

मित्रों, जन्म क्या है? किसी प्राणी समूह के गर्भ में सचेत रूप से जन्म लेना, जनसमूहों का प्रकट होना और मानसिक क्षमताओं का विकास होना ही जन्म है।

मित्रों, क्षय क्या है? शरीर का टूटना, बालों का सफेद होना, त्वचा पर झुर्रियाँ पड़ना, जीवनकाल का कम होना और इस और अन्य प्राणियों के समूह में मानसिक क्षमताओं का परिपक्व होना क्षय है।

मित्रों, मृत्यु क्या है? लुप्त होना, विलीन होना, टूट जाना, प्रत्यक्ष मृत्यु, जीवनकाल का अंत, जनसमूह का विखंडित होना और इस या अन्य प्राणियों के समूह के शरीर को त्याग देना ही मृत्यु कहलाता है।

मित्रों, शोक क्या है? किसी न किसी प्रकार की विपत्ति का सामना करने पर, शोक से ग्रस्त गंभीर विचार और परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाला आंतरिक और तीव्र शोक ही शोक कहलाता है।

मित्रों, विलाप क्या है? किसी न किसी प्रकार की विपत्ति का सामना करते हुए, शोक से व्याकुल होकर किए गए विलाप और परिणामस्वरूप निकलने वाले ऊंचे और धीमे विलाप को विलाप करना कहते हैं।

दोस्तों, अप्रियता क्या है? अप्रिय शारीरिक संपर्क (*1) से उत्पन्न अप्रिय, अप्रिय भावना को अप्रियता कहा जाता है।

मित्रों, अप्रसन्नता क्या है? अप्रिय, अप्रिय मानसिक संपर्क (*2) से उत्पन्न अप्रिय भावना को अप्रसन्नता कहते हैं।

मित्रों, विक्षिप्त अवस्था क्या होती है? किसी न किसी प्रकार की विपत्ति का सामना करते हुए, मन में उठने वाले अप्रिय विचार एक विक्षिप्त अवस्था का कारण बनते हैं जो कष्टदायक और विचलित करने वाली होती है। इसे विक्षिप्त अवस्था कहते हैं।

मित्रों, अप्रिय इच्छाएँ क्या होती हैं? प्राणियों में जन्म की इच्छा होती है। मुझे जन्म न हो। इस प्रकार जन्महीनता नहीं आती। यह इच्छा करने से प्राप्त नहीं होती। यह एक अप्रिय इच्छा है जो पूरी नहीं होती। प्राणियों में क्षय की इच्छा होती है। मुझे क्षय न हो। इस प्रकार क्षयहीनता नहीं आती। यह इच्छा करने से प्राप्त नहीं होती। यह एक अप्रिय इच्छा है जो पूरी नहीं होती। प्राणियों में रोग की इच्छा होती है। मुझे रोग न हो। इस प्रकार रोगमुक्ति नहीं आती। यह इच्छा करने से प्राप्त नहीं होती। यह एक अप्रिय इच्छा है जो पूरी नहीं होती। प्राणियों में मृत्यु की इच्छा होती है। मुझे मृत्यु न हो। इस प्रकार अमरता नहीं आती। यह इच्छा करने से प्राप्त नहीं होती। यह एक अप्रिय इच्छा है जो पूरी नहीं होती। प्राणियों में शोक, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और अशांति की इच्छा होती है। मुझे शोक, विलाप, अप्रियता, अप्रसन्नता और अशांति न आए। इस प्रकार शोकहीनता, विलापहीनता, सुख, आनंद और अविचलित अवस्था प्राप्त नहीं होती। ये इच्छा करने से प्राप्त नहीं होतीं। ये अधूरी इच्छाएँ हैं, जो अप्रिय होती हैं।

मित्रों, संक्षेप में पाँच धारण करने वाली राशियाँ अप्रिय कैसे हैं? संक्षेप में, पदार्थ, भावनाएँ, धारणाएँ, संकल्प और चेतना की पाँच धारण करने वाली राशियाँ अप्रिय हैं (*3)।

मित्रों, यही अप्रियता का महान सत्य है।

मित्रों, दुःख की उत्पत्ति का आर्य सत्य क्या है ? बार-बार होने की लालसा और लोभ, इंद्रियों में लीन रहना, 'होने' और 'न होने' की इच्छाओं में लिप्त रहना। इसी को दुःख की उत्पत्ति का आर्य सत्य कहा जाता है।

मित्रों, दुःख के निवारण का आर्य सत्य क्या है ? कुछ भी न छोड़ते हुए लोभहीनता, यानी लोभ के सभी बंधनों का त्याग करना, दुःख के निवारण का आर्य सत्य कहलाता है।

मित्रों, दुःख को दूर करने का मार्ग और विधि क्या है ? यही आर्य सत्य है, यानी सही दृष्टि, सही विचार, सही वाणी, सही कर्म, सही आजीविका, सही प्रयास, सही जागरूकता और सही एकाग्रता।

मित्रों, सही दृष्टिकोण क्या है? अप्रियता को पहचानना, उसका उत्पन्न होना, उसका निवारण होना और अप्रियता के निवारण की ओर ले जाने वाले मार्ग और विधि को जानना ही सही दृष्टिकोण कहलाता है।

मित्रों, सही विचार क्या हैं? कामुकता का त्याग करना, क्रोध से दूर रहना और पीड़ा से बचना, ये विचार सही विचार कहलाते हैं।

मित्रों, सही वाणी क्या है? झूठ, निंदा, अभद्र भाषा और निरर्थक बातों से बचना ही सही वाणी कहलाता है।

मित्रों, सही कर्म क्या है? जीवित प्राणियों को नष्ट करने, बिना दिए वस्तु लेने और यौन इच्छाओं में दुर्व्यवहार करने से बचना ही सही कर्म कहलाता है।

मित्रों, सही आजीविका क्या है? यहाँ श्रेष्ठ शिष्य गलत आजीविका से दूर रहकर सही आजीविका का मार्ग अपनाता है। इसी को सही आजीविका कहते हैं।

मित्रों, सही प्रयास क्या है? यहाँ भिक्षु रुचि जगाता है, प्रयास करता है और मन को आगे बढ़ाता है। अजन्मे बुरे और दोषरहित विचारों को उत्पन्न न होने देने के लिए, उत्पन्न हुए बुरे और दोषरहित विचारों को दूर करने के लिए, अजन्मे अच्छे विचारों को उत्पन्न करने के लिए और उत्पन्न हुए अच्छे विचारों को भ्रममुक्त रखते हुए स्थापित, विकसित और पूर्ण करने के लिए प्रयास करना ही सही प्रयास कहलाता है।

मित्रों, सही सती ध्यान क्या है? इसमें भिक्षु संसार में लोभ और अप्रसन्नता को दूर करने के लिए पूरी तरह से सचेत और जागरूक होता है, शरीर में शरीर, भावनाओं में भावना (वेदना), मन में मानसिक स्थिति और विचारों में विचार का चिंतन करता है। इसे ही सही ध्यान कहते हैं।

मित्रों, सही समाधि (ध्यान) क्या है? यहाँ भिक्षु कामुकता और बुरे विचारों का त्याग करके, विचारों, व्यवहारिक विचारों और एकांत से उत्पन्न आनंद और सुख से विरक्त होकर प्रथम ध्यान में रहता है। विचारों और व्यवहारिक विचारों पर विजय प्राप्त करके, मन को आंतरिक रूप से शांत और एक बिंदु पर एकाग्र करके, और एकाग्रता से उत्पन्न आनंद और सुख से युक्त होकर द्वितीय ध्यान में रहता है। फिर भिक्षु समभाव और वैराग्य के साथ सचेत और जागरूक होकर, शरीर को भी सुख का अनुभव कराते हुए (*4) तृतीय ध्यान में रहता है। इस पर वरम्बी कहते हैं कि समभाव के साथ सुख में रहना। फिर भिक्षु सुख और दुख को दूर करके, और पहले सुख और दुख को दूर करके, समभाव से शुद्ध होकर, सचेत होकर चतुर्थ ध्यान में रहता है। इसे सही समाधि कहते हैं।

मित्रों, यही अप्रियता के निवारण के मार्ग और विधि का महान सत्य है।

भिक्षुओं, योग्य तथा सही मायने में प्रबुद्ध तथा तथागत ने उस शिक्षा को आगे बढ़ाया जिसे किसी संन्यासी, ब्राह्मण, देवता, मार, ब्रह्मा या संसार के किसी भी व्यक्ति द्वारा बाधित नहीं किया जा सकता, जिसमें चार आर्य सत्यों की घोषणा, विस्तार से स्थापना और व्याख्या की गई है।

आदरणीय सारिपुत्त ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 14.12दक्षिणविभंग सुत्त(142)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान भगवान कपिलवस्तु में निग्रोध के मठ में शाक्यों के साथ निवास कर रहे थे। तब महाप्रजापति गौतमी नए वस्त्र लेकर भगवान भगवान के पास आए, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, “हे पूज्यवर, मैंने भगवान भगवान के लिए ये वस्त्र सूत काते और बुने हैं। कृपा करके भगवान भगवान इसे स्वीकार करें।” भगवान भगवान ने कहा, “गौतमी, इसे समुदाय को अर्पित कर दीजिए। समुदाय को अर्पित करने पर यह मुझे भी प्राप्त होगा।” दूसरी बार महाप्रजापति गौतमी ने कहा, “हे पूज्यवर, मैंने भगवान भगवान के लिए ये वस्त्र सूत काते और बुने हैं। कृपा करके भगवान भगवान इसे स्वीकार करें।” दूसरी बार भगवान भगवान ने कहा, “गौतमी, इसे समुदाय को अर्पित कर दीजिए। समुदाय को अर्पित करने पर यह मुझे भी प्राप्त होगा।” तीसरी बार महाप्रजापति गौतमी ने कहा, “हे पूज्यवर, भगवान बुद्ध के लिए ये वस्त्र बनाने के लिए मैंने सूत काता और बुना है। कृपा करके भगवान बुद्ध इस वस्त्र को स्वीकार करें।” तीसरी बार भगवान बुद्ध ने कहा, “गौतमी, इसे समुदाय को अर्पित कर दीजिए। समुदाय को अर्पित करने पर यह मुझे भी प्राप्त होगा।”

यह सुनकर पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध से कहा, “हे भगवान, महाप्रजापति गौतमी से नए वस्त्रों का यह सेट स्वीकार कीजिए। जब भगवान बुद्ध की माता का निधन हुआ, तब उन्होंने सौतेली माँ, सहारा और दूध पिलाने वाली बनकर आपकी बहुत सहायता की। भगवान बुद्ध ने भी महाप्रजापति गौतमी की बहुत सहायता की। भगवान बुद्ध के पास आइए, उन्होंने ज्ञान, शिक्षा और समुदाय की शरण ली। भगवान बुद्ध के पास आइए, उन्होंने जीवित प्राणियों का वध करने, बिना दी हुई वस्तुएँ लेने, यौन दुराचार करने, झूठ बोलने और मादक पेय पदार्थों का सेवन करने से परहेज किया। भगवान बुद्ध के पास आइए, महाप्रजापति गौतमी ने ज्ञान, शिक्षा और समुदाय में

अटूट विश्वास स्थापित किया। भगवान बुद्ध के पास आइए, महाप्रजापति गौतमी ने अप्रियता के सत्य, उसके उत्पन्न होने, उसके निवारण और उसके निवारण के मार्ग और विधि के बारे में सभी संदेहों को दूर किया।" इस प्रकार भगवान बुद्ध ने महाप्रजापति गौतमी की बहुत सहायता की।

'यह सत्य है। आनंद, यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के पास आकर ज्ञान, शिक्षा और समुदाय की शरण लेता है, तो मैं कहता हूँ कि उस दूसरे व्यक्ति के प्रति उसकी कृतज्ञता का प्रतिफल हाथ जोड़कर आदर करने, उठकर बैठने की व्यवस्था करने, मधुर वार्तालाप करने और बीमार होने पर वस्त्र, भोजन, आवास और आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने से नहीं मिलता। आनंद, यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के पास आकर जीवित प्राणियों का वध करने, बिना दी हुई वस्तुएँ लेने, यौन दुराचार करने, झूठ बोलने और मादक पेय पदार्थों का सेवन करने से परहेज करता है, तो मैं कहता हूँ कि उस दूसरे व्यक्ति के प्रति उसकी कृतज्ञता का प्रतिफल हाथ जोड़कर आदर करने, उठकर बैठने की व्यवस्था करने, मधुर वार्तालाप करने और बीमार होने पर वस्त्र, भोजन, आवास और आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने से नहीं मिलता। आनंद, यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के पास आकर ज्ञान, शिक्षा और समुदाय में अटूट आस्था रखता है, तो मैं कहता हूँ कि दूसरे व्यक्ति के प्रति जो कृतज्ञता उसे लौटानी चाहिए, वह हाथ जोड़कर आदर करने, उठकर बैठने की व्यवस्था करने, सुखद वार्तालाप करने और बीमार होने पर वस्त्र, भोजन, आवास और आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने से पूरी नहीं होती। आनंद, यदि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से मिलकर सद्गुणी हो जाता है, तो मैं कहता हूँ कि दूसरे व्यक्ति के प्रति जो कृतज्ञता उसे लौटानी चाहिए, वह हाथ जोड़कर आदर करने, उठकर बैठने की व्यवस्था करने, सुखद वार्तालाप करने और बीमार होने पर वस्त्र, भोजन, आवास और आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने से पूरी नहीं होती। आनंद, यदि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से मिलकर ज्ञान, शिक्षा और समुदाय के बारे में उसके संदेह दूर कर देता है, तो मैं कहता हूँ कि दूसरे व्यक्ति के प्रति जो कृतज्ञता उसे लौटानी चाहिए, वह हाथ जोड़कर आदर करने, उठकर बैठने की व्यवस्था करने, सुखद वार्तालाप करने और बीमार होने पर वस्त्र, भोजन, आवास और आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने से पूरी नहीं होती।

आनंद, चौदह प्रकार की व्यक्तिगत भेंटें की जा सकती हैं। प्रथम जागीरदार, योग्य और उचित रूप से प्रबुद्ध व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट पहली व्यक्तिगत भेंट है। मौन प्रबुद्ध व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट दूसरी व्यक्तिगत भेंट है। योग्य शिष्य को दी जाने वाली भेंट (*1) तीसरी व्यक्तिगत भेंट है। योग्यता प्राप्ति की विधि में विलीन हो चुके व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट (*2) चौथी व्यक्तिगत भेंट है। अनावर्ती व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट (*3) पाँचवीं व्यक्तिगत भेंट है। अनावर्ती अवस्था को प्राप्त करने की विधि में विलीन हो चुके व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट छठी व्यक्तिगत भेंट है। एक बार आरोहण कर चुके व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट (*4) सातवीं व्यक्तिगत भेंट है। एक बार आरोहण की अवस्था को प्राप्त करने की विधि में विलीन हो चुके व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट आठवीं व्यक्तिगत भेंट है। शिक्षा की धारा में प्रवेश कर चुके व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट नौवीं व्यक्तिगत भेंट है। शिक्षा की धारा में प्रवेश की अवस्था को प्राप्त करने की विधि में विलीन हो चुके व्यक्ति को दी जाने वाली भेंट दसवीं व्यक्तिगत भेंट है। जो व्यक्ति लालची न हो और कामुकता से विमुख हो, उसे दी गई भेंट ग्यारहवीं व्यक्तिगत भेंट है। साधारण गुणी व्यक्ति को दी गई भेंट बारहवीं व्यक्तिगत भेंट है। साधारण अगुणी व्यक्ति को दी गई भेंट तेरहवीं व्यक्तिगत भेंट है। पशु को दी गई भेंट चौदहवीं व्यक्तिगत भेंट है।

आनंद, किसी पशु को दी गई भेंट से सैकड़ों फल मिलने की उम्मीद है। किसी साधारण, निर्गुण व्यक्ति को दी गई भेंट से हजारों फल मिलने की उम्मीद है। किसी साधारण, गुणी व्यक्ति को दी गई भेंट से लाखों फल मिलने की उम्मीद है। किसी लोभी न होने वाले, इंद्रियों से विमुख व्यक्ति को दी गई भेंट से करोड़ों फल मिलने की उम्मीद है। किसी ऐसे व्यक्ति को भेंट देने से, जो शिक्षा की धारा में प्रवेश करने की विधि में विलीन हो गया हो, असंख्य और असीमित फल मिलने की उम्मीद है। शिक्षा की धारा में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को भेंट देने से क्या फल मिलेंगे? या उस व्यक्ति को जो वापस न लौटने की विधि में विलीन हो गया हो? या उस व्यक्ति को जो वापस न लौटना चाहता हो? या उस व्यक्ति को जो योग्यता की विधि में विलीन हो गया हो? या तथागत के योग्य शिष्य को? या मौन प्रबुद्ध व्यक्ति को? या योग्य, उचित रूप से प्रबुद्ध तथागत को?

आनंद, ये सात भेंटें समुदाय को अर्पित की जाती हैं। भगवान बुद्ध के नेतृत्व में भिक्षुओं और भिक्षुणियों दोनों को अर्पित की जाने वाली भेंट। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली पहली भेंट है। भगवान बुद्ध के देहांत के बाद, भिक्षुओं और भिक्षुणियों दोनों को अर्पित की जाने वाली भेंट। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली दूसरी भेंट है। भिक्षुओं को अर्पित की जाने वाली भेंट। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली तीसरी भेंट है। भिक्षुणियों को अर्पित की जाने वाली भेंट। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली भेंट है। भिक्षुओं और भिक्षुणियों की संख्या दर्शाते हुए अर्पित की जाने वाली भेंट। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली भेंट है। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली भेंट है। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली भेंट है। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली भेंट है। यह समुदाय को अर्पित की जाने वाली भेंट है।

आनंद, भविष्य में इस परंपरा के अंतिम भिक्षु होंगे, जो बुरे कर्मों में लिप्त नहीं होंगे और अपने गले में पीले रंग की माला धारण करेंगे। मैं कहता हूँ, संघ के लिए उन्हें दी गई भेंट का फल भी असंख्य और असीमित है। मैं तुम्हें यह नहीं बताऊँगा कि संघ को दी गई भेंट व्यक्तिगत भेंट से अधिक फलदायी कैसे होती है।

आनंद, भेंट में चार प्रकार की शुद्धता होती है। भेंट दाता की ओर से शुद्ध होती है, प्राप्तकर्ता की ओर से नहीं। भेंट प्राप्तकर्ता की ओर से शुद्ध होती है, दाता की ओर से नहीं। भेंट न तो दाता की ओर से शुद्ध होती है और न ही प्राप्तकर्ता की ओर से। भेंट दाता और प्राप्तकर्ता दोनों की ओर से शुद्ध होती है।

आनंद, दानदाता की ओर से भेंट शुद्ध क्यों है, जबकि प्राप्तकर्ता की ओर से नहीं? यहाँ दानदाता अच्छे विचारों वाला गुणी है, जबकि प्राप्तकर्ता बुरे विचारों वाला गुणी है। अतः दानदाता की ओर से भेंट शुद्ध है, जबकि प्राप्तकर्ता की ओर से नहीं।

आनंद, दानदाता की ओर से दान प्राप्त करने वाले की ओर से शुद्ध क्यों है? यहाँ प्राप्त करने वाला गुणी है और उसके विचार अच्छे हैं, जबकि दानदाता गुणी नहीं है और उसके विचार बुरे हैं। अतः दानदाता की ओर से प्राप्त करने वाले की ओर से शुद्ध है, दानदाता की ओर से नहीं।

आनंद, यह भेंट न तो दाता की ओर से शुद्ध है और न ही प्राप्तकर्ता की ओर से? यहाँ दाता भी सद्गुणी है और उसके मन में बुरे विचार हैं, और प्राप्तकर्ता भी सद्गुणी है और उसके मन में बुरे विचार हैं। अतः यह भेंट न तो दाता की ओर से शुद्ध है और न ही प्राप्तकर्ता की ओर से।

आनंद, दानकर्ता और प्राप्तकर्ता दोनों की ओर से यह भेंट कैसे शुद्ध है? यहाँ दानकर्ता भी सद्गुणी और अच्छे विचारों वाला है और प्राप्तकर्ता भी सद्गुणी और अच्छे विचारों वाला है। अतः दानकर्ता और प्राप्तकर्ता दोनों की ओर से यह भेंट शुद्ध है।

भगवान बुद्ध ने कहा, 'ये चार प्रकार की पवित्रता हैं,' और आगे कहा:

"एक सदाचारी दाता निर्गुणी व्यक्ति को उचित कर्मों से प्राप्त वस्तुएँ प्रसन्न मन से भेंट करता है।"

कर्मों के फल पर विश्वास रखते हुए, दाता की ओर से वह भेंट शुद्ध हो जाती है। एक निर्गुण दाता, निर्गुण दाता को अधार्मिक रूप से प्राप्त वस्तुएँ, अप्रिय मन से, कर्मों के फल पर अविश्वास करते हुए भेंट करता है। प्राप्तकर्ता की ओर से वह भेंट शुद्ध हो जाती है। एक निर्गुण दाता, निर्गुण दाता को अधार्मिक रूप से प्राप्त वस्तुएँ, अप्रिय मन से, कर्मों के फल पर अविश्वास करते हुए भेंट करता है। वह भेंट दोनों ओर से शुद्ध नहीं होती। एक निर्गुण दाता, निर्गुण दाता को धार्मिक रूप से प्राप्त वस्तुएँ, सुखद मन से, कर्मों के फल पर विश्वास रखते हुए भेंट करता है। मैं कहता हूँ, वह भेंट महान फल लाती है। एक निर्धन दाता, निर्धन दाता को धार्मिक रूप से प्राप्त वस्तुएँ, सुखद मन से, कर्मों के फल पर विश्वास रखते हुए भेंट करता है। मैं कहता हूँ, वह सर्वोच्च भौतिक भेंट है।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.1अनाथपिंडिकोवाडा सुत्त(143)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

सिस्टर उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में जेतवन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में निवास कर रहे थे। उस समय गृहस्थ अनाथपिंडिका गंभीर रूप से बीमार थे और बहुत कष्ट झेल रहे थे। उन्होंने एक व्यक्ति को संबोधित करते हुए कहा, "हे भगवान, भगवान बुद्ध के पास जाइए, मेरी ओर से उनके चरणों में सिर रखकर प्रणाम कीजिए और उनसे कहिए, 'हे भगवान, गृहस्थ अनाथपिंडिका गंभीर रूप से बीमार हैं।

आप भी आदरणीय सारिपुत्त के पास जाइए, मेरी ओर से उनके चरणों में सिर रखकर प्रणाम कीजिए और उनसे कहिए, 'हे भगवान, गृहस्थ अनाथपिंडिका गंभीर रूप से बीमार हैं। यदि आदरणीय सारिपुत्त करुणावश अनाथपिंडिका के घर जाएँ तो यह अच्छा होगा।'"

उस व्यक्ति ने सहमति जताते हुए भगवान बुद्ध के पास जाकर उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, "हे पूज्यवर, गृहस्थ अनाथपिंडिका अत्यंत बीमार हैं और वे भगवान बुद्ध के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करते हैं। फिर वे पूज्य सारिपुत्त के पास गए, उन्हें प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, "हे पूज्यवर, गृहस्थ अनाथपिंडिका अत्यंत बीमार हैं, वे पूज्य सारिपुत्त के चरणों में सिर रखकर उन्हें प्रणाम करते हैं और यह भी कहते हैं कि यदि पूज्य सारिपुत्त करुणावश गृहस्थ अनाथपिंडिका के घर आएं तो अच्छा होगा।"

आदरणीय सारिपुत्त ने चुपचाप संदेश ग्रहण किया, अपने वस्त्र धारण किए और कुंड और वस्त्र लेकर, आदरणीय आनंद को दूसरे संन्यासी के रूप में साथ लेकर अनाथपिंडिका के घर पहुँचे। तैयार आसनों पर बैठकर आदरणीय सारिपुत्त ने कहा, 'गृहस्थ, आप कैसे हैं? क्या आप जीवित रह पाएँगे? क्या अप्रिय भावनाएँ घट रही हैं या बढ़ रही हैं? क्या भावनाएँ बढ़ने की ओर अग्रसर हैं या घटने की ओर?'

हे सारिपुत्त, मेरी तबीयत ठीक नहीं है, मैं जीवित नहीं रह पाऊंगा। मेरी बेचैनी तीव्र है और बढ़ती ही जा रही है, कम नहीं हो रही। अंत तक ये बेचैनी बढ़ती ही रहेगी। हे सारिपुत्त, मेरे सिर में बहुत दर्द हो रहा है। ऐसा लग रहा है जैसे कोई बलवान पुरुष मुझे मोटे कपड़े से बना मुकुट पहना रहा हो। मेरी तबीयत ठीक नहीं है और मैं जीवित नहीं रह पाऊंगा। मेरी बेचैनी तीव्र है और बढ़ती ही जा रही है, कम नहीं हो रही। अंत तक ये बेचैनी बढ़ती ही रहेगी। हे सारिपुत्त, मेरे पेट में बहुत दर्द हो रहा है, ऐसा लग रहा है जैसे पेट में बहुत हवा भरी हो। ऐसा लग रहा है जैसे कोई कुशल कसाई या उसका शागिर्द तेज चाकू से मेरा पेट काट रहा हो। मेरी तबीयत ठीक नहीं है और मैं जीवित नहीं रह पाऊंगा। मेरी बेचैनी तीव्र है और बढ़ती ही जा रही है, कम नहीं हो रही। अंत तक ये बेचैनी बढ़ती ही रहेगी। हे सारिपुत्त, मेरे शरीर में बहुत जलन हो रही है। ऐसा लग रहा है जैसे दो बलवान पुरुष मुझे हाथों और पैरों से पकड़कर जलते अंगारों के गड्ढे में खींच रहे हों और मुझे झुलसा रहे हों। मेरी तबीयत ठीक नहीं है और मैं जीवित नहीं रह पाऊंगा। मेरी अप्रिय भावनाएँ तीव्र होती जा रही हैं, कम नहीं हो रही हैं। ये अप्रिय भावनाएँ अंत तक बढ़ती ही रहेंगी।

हे गृहस्थ, यदि ऐसा है तो तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं आँख से आसक्त नहीं रहूँगा, आँख की चेतना में स्थिर नहीं रहूँगा। मैं कान से आसक्त नहीं रहूँगा, कान की चेतना में स्थिर नहीं रहूँगा। मैं नाक से आसक्त नहीं रहूँगा, नाक की चेतना में स्थिर नहीं रहूँगा। मैं जीभ से आसक्त नहीं रहूँगा, जीभ की चेतना में स्थिर नहीं रहूँगा। मैं शरीर से आसक्त नहीं रहूँगा, शरीर की चेतना में स्थिर नहीं रहूँगा। मैं मन से आसक्त नहीं रहूँगा, मन की चेतना में स्थिर नहीं रहूँगा।

इसलिए, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं रूपों से आसक्त नहीं रहूंगा और रूपों में स्थिर रहूंगा। मैं ध्वनियों से आसक्त नहीं रहूंगा और ध्वनियों में स्थिर रहूंगा। मैं सुगंधों से आसक्त नहीं रहूंगा और सुगंधों में स्थिर रहूंगा। मैं स्वादों से आसक्त नहीं रहूंगा और स्वादों में स्थिर रहूंगा। मैं स्पर्शों से आसक्त नहीं रहूंगा और स्पर्शों में स्थिर रहूंगा। मैं विचारों से आसक्त नहीं रहूंगा और विचारों में स्थिर रहूंगा।

इसलिए, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं नेत्र-चेतना से आसक्त होकर, नेत्र-चेतना से जुड़े विचारों का अनुसरण नहीं करूँगा। मैं कान-चेतना से आसक्त होकर, कान-चेतना से जुड़े विचारों का अनुसरण नहीं करूँगा। मैं नाक-चेतना से आसक्त होकर, नाक-चेतना से जुड़े विचारों का अनुसरण नहीं करूँगा।

मैं स्वाद-चेतना से चिपके नहीं रहूँगा, स्वाद-चेतना से जुड़े विचारों का अनुसरण नहीं करूँगा। मैं शरीर-चेतना से चिपके नहीं रहूँगा, शरीर-चेतना से जुड़े विचारों का अनुसरण नहीं करूँगा। मैं मन-चेतना से चिपके नहीं रहूँगा, मन-चेतना से जुड़े विचारों का अनुसरण नहीं करूँगा।

इसलिए, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं नेत्र संपर्क से आसक्त नहीं रहूंगा और नेत्र संपर्क से उत्पन्न विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं कान संपर्क से आसक्त नहीं रहूंगा और कान संपर्क से उत्पन्न विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं नाक संपर्क से आसक्त नहीं रहूंगा और नाक संपर्क से उत्पन्न विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं स्वाद संपर्क से आसक्त नहीं रहूंगा और स्वाद संपर्क से उत्पन्न विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं शरीर संपर्क से आसक्त नहीं रहूंगा और शरीर संपर्क से उत्पन्न विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं मन संपर्क से आसक्त नहीं रहूंगा और मन संपर्क से उत्पन्न विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा।

इसलिए गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं नेत्र संपर्क से उत्पन्न भावनाओं से आसक्त नहीं रहूंगा और नेत्र संपर्क में आने वाले विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं कान के संपर्क से उत्पन्न भावनाओं से आसक्त नहीं रहूंगा और कान के संपर्क में आने वाले

विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं नाक के संपर्क से उत्पन्न भावनाओं से आसक्त नहीं रहूंगा और नाक के संपर्क में आने वाले विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं स्वाद के संपर्क से उत्पन्न भावनाओं से आसक्त नहीं रहूंगा और स्वाद के संपर्क में आने वाले विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं शरीर के संपर्क से उत्पन्न भावनाओं से आसक्त नहीं रहूंगा और शरीर के संपर्क में आने वाले विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा। मैं मन के संपर्क से उत्पन्न भावनाओं से आसक्त नहीं रहूंगा और मन में आने वाले विचारों का अनुसरण नहीं करूंगा।

इसलिए, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं पृथ्वी तत्व से आसक्त नहीं रहूंगा और उसमें स्थिर रहूंगा। मैं जल तत्व से आसक्त नहीं रहूंगा और उसमें स्थिर रहूंगा। मैं अग्नि तत्व से आसक्त नहीं रहूंगा और उसमें स्थिर रहूंगा। मैं वायु तत्व से आसक्त नहीं रहूंगा और उसमें स्थिर रहूंगा। मैं आकाश तत्व से आसक्त नहीं रहूंगा और उसमें स्थिर रहूंगा। मैं चेतना तत्व से आसक्त नहीं रहूंगा और उसमें स्थिर रहूंगा।

इसलिए, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं भौतिक वस्तुओं से आसक्त नहीं रहूंगा और भौतिक वस्तुओं में स्थिर विचारों का अनुसरण करूंगा। मैं भावनाओं से आसक्त नहीं रहूंगा और भावनाओं में स्थिर विचारों का अनुसरण करूंगा। मैं धारणाओं से आसक्त नहीं रहूंगा और भावनाओं में स्थिर विचारों का अनुसरण करूंगा। मैं संकल्पों से आसक्त नहीं रहूंगा और संकल्पों में स्थिर विचारों का अनुसरण करूंगा। मैं चेतना से आसक्त नहीं रहूंगा और चेतना में स्थिर विचारों का अनुसरण करूंगा।

इसलिए, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं आकाश के क्षेत्र से आसक्त नहीं रहूंगा और न ही आकाश के क्षेत्र के विचारों में लीन रहूंगा। मैं चेतना के क्षेत्र से आसक्त नहीं रहूंगा और न ही चेतना के क्षेत्र के विचारों में लीन रहूंगा। मैं शून्यता के क्षेत्र से आसक्त नहीं रहूंगा और न ही शून्यता के क्षेत्र के विचारों में लीन रहूंगा। मैं न तो बोध के क्षेत्र से आसक्त रहूंगा और न ही अबोध के क्षेत्र में लीन रहूंगा और न ही उस क्षेत्र के विचारों में लीन रहूंगा।

इसलिए, हे गृहस्थ, तुम्हें इस प्रकार अभ्यास करना चाहिए: मैं इस संसार से आसक्त नहीं रहूंगा, न ही इस संसार के विचारों में लीन रहूंगा। मैं परलोक से भी आसक्त नहीं रहूंगा, न ही परलोक के विचारों में लीन रहूंगा।

इसलिए गृहस्थ, तुम्हें यह सीखना चाहिए कि मैं देखी, सुनी, गंध से जानी गई या तार्किक चिंतन से खोजी गई किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहूंगा।

यह सुनकर गृहस्थ अनाथपिंडिका जोर-जोर से रोने लगा और उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। तब पूज्य आनंद ने पूछा, 'गृहस्थ, क्या तुम स्थिर रहोगे या डूब जाओगे?' (*1)

'हे आनंद महोदय, ऐसा नहीं है कि मैं किसी बात पर अड़ा रहता हूँ या उसमें डूब जाता हूँ। फिर भी, मैंने गुरु और मन को विकसित करने वाले भिक्षुओं के साथ संगति की है, लेकिन इससे पहले मैंने ऐसा प्रवचन कभी नहीं सुना।'

तब पूज्य सारिपुत्त ने कहा, 'गृहस्थ, इस प्रकार का प्रवचन श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ को नहीं दिया जाता।'

'हे सारिपुत्त, इस प्रकार के प्रवचन श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थों को दिए जाने चाहिए। कुछ कुलवासी, जिनमें कुछ अशुद्धियाँ कम होती हैं, इस प्रकार के प्रवचन न सुनने के कारण पतित हो जाते हैं। इन्हें सुनकर वे शिक्षा को जान सकेंगे।'

तब, पूज्य सारिपुत्त और पूज्य आनंद ने गृहस्थ अनाथपिंडिका को सलाह देकर अपने स्थान से उठकर चले गए। उनके जाने के कुछ ही समय बाद गृहस्थ अनाथपिंडिका का निधन हो गया और वे सुखी लोगों के साथ जन्म लिए। (*2) तब देवताओं के पुत्र अनाथपिंडिका ने, जब रात ढल रही थी, जेतवन को तेजस्वी प्रकाश से पूर्णतः प्रकाशित करते हुए, भगवान बुद्ध के पास आकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़े होकर उनसे कहा।

'यह रमणीय जेतवन, समुदाय के ऋषियों का निवास स्थान है।'
शिक्षा के राजा द्वारा सुशोभित होना मुझे आनंदित करता है।
जिन प्राणियों की मृत्यु हो जाती है, वे कर्मों और ज्ञान के माध्यम से शुद्ध हो जाते हैं।
और एक नेक, सदाचारी आजीविका, लेकिन वंश या धन के आधार पर नहीं।
इसलिए एक बुद्धिमान व्यक्ति, अपना भला देखकर,

शिक्षा में विवेक का प्रयोग करके, व्यक्ति स्वयं को शुद्ध करता है।
उन भिक्षुओं में से, जो परलोक चले गए, सारिपुत्त जैसे भिक्षु,
ज्ञान में, सद्गुण और प्रसन्नता सर्वोपरि हैं।'
यह कहकर, देवताओं के पुत्र अनाथपिंडिका ने भगवान बुद्ध की स्वीकृति की प्रतीक्षा की। यह जानकर कि गुरु ने मेरी बात स्वीकार कर ली है, उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके चारों ओर दाहिनी ओर मुख करके परिक्रमा की और वहाँ से अंतर्धान हो गए। अगले दिन भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, 'भिक्षुओं, जब रात ढल रही थी, तब देवताओं के एक पुत्र ने जेतवन को अपने तेजस्वी प्रकाश से पूर्णतः प्रकाशित करते हुए मेरे पास आकर प्रणाम किया और एक तरफ खड़े होकर कहा...'

'यह रमणीय जेतवन, समुदाय के ऋषियों का निवास स्थान है।'
शिक्षा के राजा द्वारा सुशोभित होना मुझे आनंदित करता है।
जिन प्राणियों की मृत्यु हो जाती है, वे कर्मों और ज्ञान के माध्यम से शुद्ध हो जाते हैं।
और एक नेक, सदाचारी आजीविका, लेकिन वंश या धन के आधार पर नहीं।
इसलिए एक बुद्धिमान व्यक्ति, अपना भला देखकर,
शिक्षा में विवेक का प्रयोग करके, व्यक्ति स्वयं को शुद्ध करता है।
उन भिक्षुओं में से, जो परलोक चले गए, सारिपुत्त जैसे भिक्षु,
ज्ञान में, सद्गुण और प्रसन्नता सर्वोपरि हैं।'
यह कहकर, देवताओं के उस पुत्र ने मेरी स्वीकृति की प्रतीक्षा की। यह जानकर कि मैंने उसकी बातों को स्वीकार कर लिया है, उसने मेरी पूजा की और अपना दाहिना हाथ मेरी ओर करके मेरे चारों ओर परिक्रमा की और वहाँ से विलीन हो गया।

यह सुनकर आदरणीय आनंद ने कहा, 'आदरणीय महोदय, क्या यह देवताओं के पुत्र अनाथपिंडिका हैं? गृहस्थ अनाथपिंडिका को आदरणीय सारिपुत्त ने प्रसन्न किया था।'

'बहुत खूब! आनंद, तुम सही हो। तुमने उतना ज्ञान प्राप्त कर लिया है जितना तर्क के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।'

वह कोई और नहीं बल्कि देवताओं के पुत्र अनाथपिंडिका हैं।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य आनंद भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.2चन्नोवदा सुत्त(144)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान राजगृह के बांस के जंगल में गिलहरियों के अभयारण्य में निवास करते थे। उस समय, पूज्य सारिपुत्त, पूज्य महाचुंड और पूज्य चन्ना गिज्जा पर्वत पर रहते थे। उस समय पूज्य चन्ना गंभीर रूप से बीमार थे। पूज्य सारिपुत्त एकांतवास से उठकर पूज्य महाचुंड के पास गए और बोले, 'मित्र चुंड, चलो पूज्य चन्ना के पास जाकर उनका हालचाल पूछते हैं।' पूज्य महाचुंड ने सारिपुत्त का सुझाव स्वीकार कर लिया और दोनों पूज्य चन्ना के पास गए। पूज्य चन्ना से सौहार्दपूर्ण अभिवादन करने के बाद वे एक तरफ बैठ गए और सारिपुत्त ने कहा, 'मित्र चन्ना, आप कैसे हैं? क्या आप जीवित रहेंगे? क्या ये अप्रिय भावनाएँ कम हो रही हैं या बढ़ रही हैं? क्या ये भावनाएँ बढ़ रही हैं या घट रही हैं?'

मित्र सारिपुत्त, मेरी तबीयत ठीक नहीं है, मैं जीवित नहीं रह पाऊंगा। मेरी अप्रिय भावनाएं तीव्र हैं और बढ़ती जा रही हैं, कम नहीं हो रही हैं। ये अप्रिय भावनाएं अंत तक बढ़ती रहेंगी। मित्र सारिपुत्त, मेरे सिर में बहुत दर्द हो रहा है। ऐसा लग रहा है जैसे कोई बलवान पुरुष मुझे मजबूत पट्टी वाला मुकुट पहना रहा हो। मेरी तबीयत ठीक नहीं है और मैं जीवित नहीं रह पाऊंगा। मेरी अप्रिय भावनाएं तीव्र हैं और

बढ़ती जा रही हैं, कम नहीं हो रही हैं। ये अप्रिय भावनाएं अंत तक बढ़ती रहेंगी। मित्र सारिपुत्त, मेरे पेट में बहुत दर्द हो रहा है, ऐसा लग रहा है जैसे मेरे पेट में बहुत हवा घूम रही हो। ऐसा लग रहा है जैसे कोई कुशल कसाई या उसका शागिर्द तेज चाकू से मेरा पेट काट रहा हो। मेरी तबीयत ठीक नहीं है और मैं जीवित नहीं रह पाऊंगा। मेरी अप्रिय भावनाएं तीव्र हैं और बढ़ती जा रही हैं, कम नहीं हो रही हैं। ये अप्रिय भावनाएं अंत तक बढ़ती रहेंगी। मित्र सारिपुत्त, मेरे शरीर में बहुत जलन हो रही है। ऐसा लग रहा है जैसे दो बलवान पुरुष मुझे हाथों और पैरों से पकड़कर जलते हुए अंगारों के गड्ढे में खींच रहे हों और मुझे झुलसा रहे हों। मैं अस्वस्थ महसूस कर रहा हूँ और जीवित नहीं रहूँगा। मेरी अप्रिय भावनाएँ तीव्र होती जा रही हैं, कम नहीं हो रही हैं। ये अप्रिय भावनाएँ अंत तक बढ़ती ही रहेंगी। मित्र सारिपुत्त, मैं जीवन समाप्त करने के लिए शस्त्र उठाऊँगा।

मित्र चन्ना, हथियार मत उठाओ, जीवित रहो। हम चाहते हैं कि तुम जीवित रहो। यदि पूज्य चन्ना को उचित पोषण न मिले, तो मैं उनके लिए व्यवस्था करूँगा। यदि पूज्य चन्ना को उचित चिकित्सा सुविधाएँ न मिलें, तो मैं उनके लिए व्यवस्था करूँगा। यदि पूज्य चन्ना के पास कोई उपयुक्त सेवक न हो, तो मैं उनकी सेवा करूँगा। मित्र चन्ना, हथियार मत उठाओ, जीवित रहो। हम चाहते हैं कि तुम जीवित रहो।

'मित्र सारिपुत्त, ऐसा नहीं है कि मुझे उचित पोषण, उचित चिकित्सा संबंधी आवश्यकताओं या उचित परिचारक की कमी है, बल्कि मैंने गुरु के प्रति अपने कर्तव्यों को बहुत पहले ही प्रसन्नतापूर्वक पूरा कर लिया है, अप्रसन्नता से नहीं।'

मित्र सारिपुत्त, जो शिष्य गुरु के प्रति प्रसन्नतापूर्वक अपने कर्तव्यों का पालन करता है, यदि वह प्राणत्याग के लिए शस्त्र उठाता है तो इसमें कोई दोष नहीं है, इसे इसी रूप में याद रखना।

'मित्र चन्ना, मैं एक विशेष प्रश्न पूछूंगा यदि आदरणीय चन्ना स्वेच्छा से इसका उत्तर दें।'

'मित्र सारिपुत्त, पूछो, मैं समझा दूंगा।'

'मित्र चन्ना, क्या तुम्हारा प्रतिबिंब, आँख, आँख-चेतना और आँख-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं हूँ, मैं उनमें हूँ, वे आत्मा हैं? क्या तुम्हारा प्रतिबिंब, कान, कान-चेतना और कान-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं हूँ, मैं उनमें हूँ और वे आत्मा हैं? क्या तुम्हारा प्रतिबिंब, नाक, नाक-चेतना और नाक-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं हूँ, मैं उनमें हूँ और वे आत्मा हैं? क्या तुम्हारा प्रतिबिंब, जीभ, जीभ-चेतना और जीभ-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं हूँ, मैं उनमें हूँ और वे आत्मा हैं? क्या तुम्हारा प्रतिबिंब, शरीर, शरीर-चेतना और शरीर-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं हूँ, मैं उनमें हूँ और वे आत्मा हैं? क्या तुम्हारा प्रतिबिंब, मन, मन-चेतना और मन-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं हूँ, मैं उनमें हूँ और वे आत्मा हैं?'

हे सारिपुत्त, आँख, आँख की चेतना और आँख की चेतना से अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ, वे आत्मा नहीं हैं। हे सारिपुत्त, कान, कान की चेतना और कान की चेतना से अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ, वे आत्मा नहीं हैं। हे सारिपुत्त, नाक, नाक की चेतना और नाक की चेतना से अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ, वे आत्मा नहीं हैं। हे सारिपुत्त, जीभ, जीभ की चेतना और जीभ की चेतना से अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ, वे आत्मा नहीं हैं। हे सारिपुत्त, शरीर, शरीर-चेतना और शरीर-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ, वे आत्मा नहीं हैं। हे सारिपुत्त, मन, मन-चेतना और मन-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ, वे आत्मा नहीं हैं।

'मित्र चन्ना, आँख में, आँख की चेतना में और आँख की चेतना से ज्ञात वस्तुओं में देखकर तुम क्या समझते हो कि आँख, आँख की चेतना और आँख की चेतना से ज्ञात वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं? 'मित्र चन्ना, कान में, कान की चेतना में और कान की चेतना से ज्ञात वस्तुओं में देखकर तुम क्या समझते हो कि कान, कान की चेतना और कान की चेतना से ज्ञात वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं? 'मित्र चन्ना, नाक में, नाक की चेतना में और नाक की चेतना से ज्ञात वस्तुओं में देखकर तुम क्या समझते हो कि नाक, नाक की चेतना और नाक की चेतना से ज्ञात वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं? 'मित्र चन्ना, स्वाद, स्वाद-चेतना और स्वाद-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुओं में देखकर तुम क्या समझते हो कि स्वाद, स्वाद-चेतना और स्वाद-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं? 'मित्र चन्ना, शरीर, शरीर-चेतना और शरीर-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुओं में देखकर तुम क्या समझते हो कि शरीर, शरीर-चेतना और शरीर-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं? 'मित्र चन्ना, मन, मन-चेतना और मन-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुओं में देखकर तुम क्या समझते हो कि मन, मन-चेतना और मन-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं?

हे मित्र, सारिपुत्त, आँख, आँख-चेतना और आँख-चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुओं के समाप्त होने को देखकर मैंने यह अनुभव किया कि आँख, आँख-चेतना और आँख-चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं। हे मित्र, सारिपुत्त, कान, कान-चेतना और कान-चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुओं के समाप्त होने को देखकर मैंने यह अनुभव किया कि कान, कान-चेतना और कान-चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं। हे मित्र, सारिपुत्त, नाक, नाक-चेतना और नाक-चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुओं के समाप्त होने को देखकर मैंने यह अनुभव किया कि नाक, नाक-चेतना और नाक-चेतना द्वारा बोधगम्य वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं। हे मित्र सारिपुत्त, स्वाद, स्वाद-चेतना और स्वाद-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुओं के समाप्त होने पर मैंने यह अनुभव किया कि स्वाद, स्वाद-चेतना और स्वाद-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं। हे मित्र सारिपुत्त, शरीर, शरीर-चेतना और शरीर-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुओं के समाप्त होने पर मैंने यह अनुभव किया कि शरीर, शरीर-चेतना और शरीर-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं। हे मित्र सारिपुत्त, मन, मन-चेतना और मन-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुओं के समाप्त होने पर मैंने यह अनुभव किया कि मन, मन-चेतना और मन-चेतना द्वारा अनुभव की जाने वाली वस्तुएँ मैं नहीं हूँ, मैं उनमें नहीं हूँ और वे आत्मा नहीं हैं।

तब पूज्य महाकुंडा ने पूज्य चन्ना से कहा, "मित्र चन्ना, भगवान बुद्ध के विधान में इस बात पर भी निरंतर ध्यान देना चाहिए। स्थिर लोगों में परिवर्तन होता है, अस्थिर लोगों में परिवर्तन नहीं होता। (*1) जब परिवर्तन नहीं होता, तब आनंद होता है। (*2) जब आनंद होता है, तब कोई अभिलाषा नहीं होती। (*3) जब कोई अभिलाषा नहीं होती, तब आना-जाना नहीं होता। (*4) जब आना-जाना नहीं होता, तब प्रकट होना-लुप्त होना नहीं होता। (*5) जब प्रकट होना-लुप्त होना नहीं होता, तब न यहाँ न वहाँ, न बीच में। (*6) यही अप्रियता का अंत है।"

आदरणीय सारिपुत्त और आदरणीय महकुंड ने आदरणीय चन्ना को सलाह देकर अपने आसन से उठकर चले गए। उनके जाने के कुछ ही क्षण बाद आदरणीय चन्ना ने एक शस्त्र उठाया और अपने प्राण त्याग दिए। तब आदरणीय सारिपुत्त भगवान बुद्ध के पास आए, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, 'आदरणीय महोदय, आदरणीय चन्ना ने अपने प्राण त्याग दिए हैं, मृत्यु के बाद उनकी क्या गतिविधियाँ होंगी?'

'सारिपुत्त, क्या भिक्षु चन्ना की निष्पापता आपके समक्ष घोषित नहीं की गई थी?'

'आदरणीय महोदय, पब्बजीरा में, जो वज्जी लोगों का गाँव है, आदरणीय चन्ना के मित्रों, शुभचिंतकों और पूर्व संबंधियों के परिवार रहते हैं।'

'सारिपुत्त, पूज्य चन्ना के मित्रों, शुभचिंतकों और पूर्व संबंधियों के परिवार हो सकते हैं, मैं कहता हूँ, उस हद तक कोई दोष नहीं है। सारिपुत्त, यदि कोई इस शरीर का त्याग करके दूसरा शरीर धारण करता है, तो मैं कहता हूँ कि यह दोष है। भिक्षु में वह दोष प्रकट नहीं होता। भिक्षु चन्ना ने दोषरहित रूप से प्राण त्यागे।'

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.3पुन्नोवदा सुत्त(145)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध सावत्थी में जेतवन के वन में स्थित अनाथपिंडिका के मठ में निवास कर रहे थे। तब पूज्य पुन्ना एकांतवास से उठकर भगवान बुद्ध के पास आए, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, "पूज्यवर, यदि मुझे संक्षेप में उपदेश दिया जाए तो अच्छा होगा, ताकि मैं एकांतवास में रहकर लगन से उपदेशों का निवारण कर सकूँ।" "तो पुन्ना, सुनो, मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ।" पूज्य पुन्ना सहमत हो गए और भगवान बुद्ध ने कहा।

'पुन्ना, ऐसी मनभावन, सुखद आकृतियाँ हैं जो आँखों से देखी जा सकती हैं, जिनसे स्नेह, आसक्ति और कामुक इच्छाएँ जागृत होती हैं। भिक्षु उनमें आनंदित होता है, उनका स्वागत करता है और उनसे आसक्त रहता है, जिससे रुचि उत्पन्न होती है। पुन्ना, मैं कहता हूँ, रुचि का उत्पन्न होना अप्रियता का उत्पन्न होना है। ऐसी मनभावन ध्वनियाँ हैं जो कानों से सुनी जा सकती हैं, सुगंधें हैं जो नाक से सुनी जा सकती हैं, स्वाद हैं जो जीभ से सुहकती हैं, स्पर्श हैं जो शरीर से सुहकते हैं और विचार हैं जो मन से सुहकते हैं, जिनसे स्नेह, आसक्ति और कामुक इच्छाएँ जागृत होती हैं। भिक्षु उनमें आनंदित होता है, उनका स्वागत करता है और उनसे आसक्त रहता है, जिससे रुचि उत्पन्न होती है। पुन्ना, मैं कहता हूँ, रुचि का उत्पन्न होना अप्रियता का उत्पन्न होना है।'

पुन्ना, ऐसी मनभावन और आकर्षक आकृतियाँ हैं जो आँखों से देखी जा सकती हैं, जिनसे प्रेम, आसक्ति और कामुक इच्छाएँ जागृत होती हैं। भिक्षु इन आकृतियों में प्रसन्नता, स्वागत और आसक्ति नहीं रखता, और इस प्रकार उसकी रुचि समाप्त हो जाती है। पुन्ना, मैं कहता हूँ, रुचि का समाप्त होना अप्रियता का समाप्त होना है। ऐसी मनभावन और आकर्षक ध्वनियाँ हैं जो कानों से सुनी जा सकती हैं, सुगंध जो नाक से सुनी जा सकती हैं, स्वाद जो जीभ से सुने जा सकते हैं, स्पर्श जो शरीर से सुने जा सकते हैं और विचार जो मन से सुने जा सकते हैं, जिनसे प्रेम, आसक्ति और कामुक इच्छाएँ जागृत होती हैं। भिक्षु इन आकृतियों में प्रसन्नता, स्वागत और आसक्ति नहीं रखता, और इस प्रकार उसकी रुचि समाप्त हो जाती है। पुन्ना, मैं कहता हूँ, रुचि का समाप्त होना अप्रियता का समाप्त होना है।

पुन्ना, मैंने तुम्हें संक्षेप में सलाह दे दी है। अब तुम किस हालत में रहोगे?'

'आदरणीय महोदय, अब जब मुझे संक्षेप में सलाह मिल गई है, तो मैं सुनापरंत अवस्था में रहूँगा।'

'पुन्ना, सुनापरंता के लोग बहुत कठोर हैं, अगर वे तुम्हें डांटें और गाली दें तो तुम क्या करोगे?'

'आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंता के लोग मुझे डांटें और गाली दें, तो मुझे यह बात समझ में आएगी कि वास्तव में सुनापरंता के लोग अच्छे हैं, वे मुझे अपने हाथों से चोट नहीं पहुंचाते।'

'पुन्ना, अगर सुनापरंता के लोग तुम्हें अपने हाथों से चोट पहुंचाएं तो तुम क्या करोगे?'

'आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंता के लोग मुझे अपने हाथों से चोट पहुँचाएँ, तो मुझे यह बात याद आएगी कि वास्तव में सुनापरंता के लोग अच्छे हैं, वे मुझे मिट्टी के ढेलों से चोट नहीं पहुँचाते।'

'पुन्ना, अगर सुनापरंता के लोग तुम्हें मिट्टी के ढेलों से चोट पहुंचाएं तो तुम क्या करोगे?'

'आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंता के लोग मुझे मिट्टी के ढेलों से चोट पहुँचाएँ, तो मुझे यह बात याद आएगी कि वास्तव में सुनापरंता के लोग अच्छे हैं, वे मुझे लाठी से चोट नहीं पहुँचाते।'

'पुन्ना, अगर सुनापरंता के लोग तुम्हें लाठी से चोट पहुंचाएं तो तुम क्या करोगे?'

'आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंता के लोग मुझे लाठी से चोट पहुँचाएँ, तो मुझे यह बात समझ में आ जाएगी कि वास्तव में सुनापरंता के लोग अच्छे हैं, वे मुझे किसी हथियार से चोट नहीं पहुँचाते।'

'पुन्ना, अगर सुनापरंता के लोग तुम्हें हथियार से चोट पहुंचाएं तो तुम क्या करोगे?'

'आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंता के लोग मुझे किसी हथियार से चोट पहुँचाएँ, तो मुझे यह बात याद आएगी कि सुनापरंता के लोग वास्तव में अच्छे हैं, वे किसी धारदार हथियार से मेरी जान नहीं लेंगे।'

'पुन्ना, अगर सुनापरंता के लोग किसी धारदार हथियार से तुम्हारी जान ले लें, तो तुम क्या करोगे?'

'आदरणीय महोदय, यदि सुनापरंता के लोग मेरी जान लेना चाहें, तो मेरे मन में यह विचार आएगा। भगवान बुद्ध के कुछ शिष्य हैं, जो शरीर और जीवन से घृणा करते हुए हत्यारे की तलाश करते हैं। यहाँ मुझे बिना खोजे ही हत्यारा मिल गया है।'

'अच्छा! पुन्ना, तुम्हारे लिए शिक्षा में निहित उस शांति भाव से परिपूर्ण सुनपरंता में रहना संभव है। तुम अब ऐसा कर सकते हो।'

पूज्य पुन्ना, भगवान बुद्ध के वचनों से प्रसन्न होकर, अपने आसन से उठे, भगवान बुद्ध की पूजा की और दाहिनी ओर मुख करके उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया। अपने निवास को व्यवस्थित करके, कुंड और वस्त्र लेकर, वे सुनपरंत की यात्रा पर निकल पड़े और विधिपूर्वक वहाँ पहुँच गए। फिर वे उसी अवस्था में रहे। उसी वर्षा ऋतु में, पूज्य पुन्ना ने लगभग पाँच सौ पुरुष शिष्यों और लगभग पाँच सौ स्त्री शिष्यों को जन्म दिया और तीनों ज्ञान प्राप्त कर अंत में निर्वाण प्राप्त किया।

तब कई भिक्षु भगवान बुद्ध के पास आए, प्रणाम किया, एक तरफ बैठ गए और बोले, "हे पूज्यवर, भगवान बुद्ध द्वारा संक्षेप में उपदेशित किए गए कुल के व्यक्ति का देहांत हो गया है। मृत्यु के बाद उनकी क्या गतिविधियाँ हैं?"

'भिक्षुओं, कुल का पुन्ना बुद्धिमान है। वह शिक्षा में अपने दम पर खड़ा रहा। (*1) उसने मुझे शिक्षा से संबंधित प्रश्नों के बारे में चिंतित नहीं किया। उसने अंतिम निर्वाण प्राप्त कर लिया है।'

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और वे भिक्षु भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.4 नंदकोवाड़ा सुत्त(146)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास, जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। तब महाप्रजापति गौतमी लगभग 500 अन्य भिक्षुणियों के साथ भगवान बुद्ध के पास गईं और वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ खड़ी हो गईं। वहाँ खड़े-खड़े उन्होंने उनसे कहा, "हे भगवान, भिक्षुणियों को उपदेश दीजिए। हे भगवान, भिक्षुणियों को शिक्षा दीजिए। भिक्षुणियों को धम्म का प्रवचन दीजिए।"

उस समय वरिष्ठ भिक्षु बारी-बारी से भिक्षुणियों को उपदेश दे रहे थे, लेकिन आदरणीय नंदका अपनी बारी आने पर भिक्षुणियों को उपदेश नहीं देना चाहते थे। इसलिए भगवान बुद्ध ने आदरणीय आनंद से कहा, "आनंद, आज भिक्षुणियों को उपदेश देने की बारी किसकी है?"

"हे भगवान, भिक्षुणियों को उपदेश देने में सभी ने अपनी बारी ले ली है, सिवाय पूज्य नंदका के, जो अपनी बारी आने पर भिक्षुणियों को उपदेश नहीं देना चाहते।"

तब भगवान बुद्ध ने पूज्य नंदका को संबोधित करते हुए कहा: "नंदका, भिक्षुणियों को उपदेश दीजिए। नंदका, भिक्षुणियों को शिक्षा दीजिए। ब्राह्मण, भिक्षुणियों को धम्म पर प्रवचन दीजिए।"

"जैसा आप कहें, भगवान," आदरणीय नंदका ने उत्तर दिया। फिर, सुबह सवेरे, अपने वस्त्र धारण करके और भिक्षापात्र एवं बाहरी वस्त्र लेकर वे राजगृह में भिक्षा मांगने गए। भोजन के बाद, भिक्षा मांगने के बाद वे एक सहपाठी के साथ राजका उद्यान गए। भिक्षुणियों ने उन्हें दूर से आते देखा और उन्हें देखते ही उनके लिए आसन की व्यवस्था की और उनके चरणों के लिए जल रखा। आदरणीय नंदका उस आसन पर बैठ गए और अपने चरण धोए। भिक्षुणियों ने उन्हें प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गईं।

जब वे वहाँ बैठी थीं, तब पूज्य नंदका ने उनसे कहा: "बहनो, यह प्रश्न-उत्तर वार्ता होगी। जहाँ आपको समझ आए, वहाँ कहें, 'हमें समझ आ गया।' जहाँ समझ न आए, वहाँ कहें, 'हमें समझ नहीं आया।' जहाँ आपको संदेह हो या उलझन हो, वहाँ मुझसे प्रश्न पूछें: 'यह कैसे है, पूज्यवर? इसका क्या अर्थ है?'"

"आदरणीय महोदय, हमें अत्यंत प्रसन्नता और प्रसन्नता है कि आपने हमें इस प्रकार आमंत्रित किया है।"

तो बहनों, आप क्या सोचती हैं: क्या आँख स्थिर है या अस्थिर? "स्थिर, आदरणीय महोदय।" "और जो अस्थिर है, क्या वह सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, आदरणीय महोदय।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण, परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"...क्या कान स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या नाक स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या जीभ स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या शरीर स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"बहनो, आपका क्या विचार है: क्या बुद्धि स्थिर है या अस्थिर?" "स्थिर, आदरणीय महोदय।" "और जो अस्थिर है, क्या वह सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, आदरणीय महोदय।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण, परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। ऐसा क्यों? क्योंकि हमने पहले ही सही विवेक से यह देख लिया है कि ये छह आंतरिक माध्यम वास्तव में अस्थिर हैं।"

"शाबाश, शाबाश बहनों। यही उस शिष्य के लिए होता है जिसने सही विवेक से वास्तविकता को देखा है।"

"अब बहनों, आप क्या सोचती हैं: क्या रूप स्थिर हैं या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।" "और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, आदरणीय महोदय।" "और क्या अस्थिरता, तनाव, परिवर्तनशीलता को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"...क्या ध्वनियाँ स्थिर होती हैं या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या सुगंध स्थिर होती हैं या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या स्वाद स्थिर होते हैं या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या स्पर्श संवेदनाएं स्थिर होती हैं या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"बहनो, आपका क्या विचार है: क्या विचार स्थिर होते हैं या अस्थिर?" "स्थिर, आदरणीय महोदय।" "और जो अस्थिर है, क्या वह सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, आदरणीय महोदय।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण, परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। ऐसा क्यों? क्योंकि हमने पहले ही सही विवेक से यह देख लिया है कि ये छह बाह्य माध्यम भी अस्थिर हैं।"

"शाबाश, शाबाश बहनों। यही उस शिष्य के लिए होता है जिसने सही विवेक से वास्तविकता को देखा है।"

"अब बहनों, आप क्या सोचती हैं: क्या नेत्र-चेतना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।" "और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, आदरणीय महोदय।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय।"

"...क्या कान की चेतना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या नाक की चेतना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या जीभ की चेतना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"...क्या शरीर-चेतना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, आदरणीय महोदय।"

"बहनो, आपका क्या विचार है: क्या बुद्धि-चेतना स्थिर है या अस्थिर?" "अस्थिर, पूज्यवर।" "और जो अस्थिर है, क्या वह सुखदायक है या तनावपूर्ण?" "तनावपूर्ण, पूज्यवर।" "और क्या अस्थिर, तनावपूर्ण, परिवर्तनशील को इस प्रकार देखना उचित है: 'यह मेरा है। यह मेरा स्वरूप है। यही मैं हूँ'?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। ऐसा क्यों? क्योंकि हमने सही विवेक से यह अच्छी तरह देख लिया है कि ये छह चेतना समूह भी अस्थिर हैं।"

"शाबाश, शाबाश बहनों। यही उस शिष्य के लिए होता है जिसने सही विवेक से वास्तविकता को देखा है।"

"जैसे जलते हुए दीपक का तेल अस्थिर और परिवर्तनशील होता है, उसकी बाती अस्थिर और परिवर्तनशील होती है, उसकी लौ अस्थिर और परिवर्तनशील होती है, उसका प्रकाश अस्थिर और परिवर्तनशील होता है। यदि कोई कहे, 'उस जलते हुए दीपक का तेल अस्थिर और परिवर्तनशील है, उसकी बाती अस्थिर और परिवर्तनशील है, उसकी लौ अस्थिर और परिवर्तनशील है, परन्तु उसका प्रकाश स्थिर, शाश्वत और अपरिवर्तनीय है': तो क्या वह सही कह रहा होगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। ऐसा क्यों है? क्योंकि उस जलते हुए दीपक का तेल अस्थिर और परिवर्तनशील है, उसकी बाती अस्थिर और परिवर्तनशील है, उसकी लौ अस्थिर और परिवर्तनशील है, तो उसका प्रकाश कितना अधिक अस्थिर और परिवर्तनशील होगा।"

"इसी प्रकार, बहनों, यदि कोई कहे, 'मेरे छह आंतरिक माध्यम अस्थिर हैं, परन्तु जो मैं इन छह आंतरिक माध्यमों के आधार पर अनुभव करता हूँ - सुख, दुख, या न सुख न दुख - वह स्थिर, शाश्वत, अनंत और परिवर्तन के अधीन नहीं है': तो क्या वह सही कह रहा होगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। ऐसा क्यों है? क्योंकि प्रत्येक भावना अपनी संबंधित स्थिति पर निर्भर करते हुए उत्पन्न होती है। अपनी संबंधित स्थिति के समाप्त होने पर वह भी समाप्त हो जाती है।"

"शाबाश, शाबाश बहनों। यही उस शिष्य के लिए होता है जिसने सही विवेक से वास्तविकता को देखा है।"

"जैसे किसी विशाल, स्थिर वृक्ष की जड़—जिसमें भीतरी लकड़ी होती है—अस्थिर और परिवर्तनशील होती है, उसका तना अस्थिर और परिवर्तनशील होता है, उसकी शाखाएँ और पत्तियाँ अस्थिर और परिवर्तनशील होती हैं, उसकी छाया अस्थिर और परिवर्तनशील होती है। यदि कोई कहे, 'उस विशाल, स्थिर वृक्ष की जड़—जिसमें भीतरी लकड़ी होती है—अस्थिर और परिवर्तनशील है, उसका तना अस्थिर और परिवर्तनशील है, उसकी शाखाएँ और पत्तियाँ अस्थिर और परिवर्तनशील हैं, परन्तु उसकी छाया स्थिर, शाश्वत, अनंत और अपरिवर्तनीय है': तो क्या वह सही कह रहा होगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। ऐसा क्यों है? क्योंकि उस विशाल, खड़े वृक्ष की जड़ - जिसमें भीतरी लकड़ी होती है - अस्थिर और परिवर्तनशील होती है, उसका तना अस्थिर और परिवर्तनशील होता है, उसकी शाखाएँ और पत्तियाँ अस्थिर और परिवर्तनशील होती हैं, तो उसकी छाया कितनी अधिक अस्थिर और परिवर्तनशील होनी चाहिए।"

"इसी प्रकार, बहनों, यदि कोई कहे, 'मेरे छह बाह्य माध्यम अस्थिर हैं, परन्तु जो मैं छह आंतरिक माध्यमों के आधार पर अनुभव करता हूँ - सुख, दुख, या न सुख न दुख - वह स्थिर, शाश्वत, अनंत और परिवर्तन के अधीन नहीं है': तो क्या वह सही कह रहा होगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। ऐसा क्यों है? क्योंकि प्रत्येक भावना अपनी संबंधित स्थिति पर निर्भर करते हुए उत्पन्न होती है। अपनी संबंधित स्थिति के समाप्त होने पर वह भी समाप्त हो जाती है।"

"शाबाश, शाबाश बहनों। यही उस शिष्य के लिए होता है जिसने सही विवेक से वास्तविकता को देखा है।"

"मान लीजिए कि एक कुशल कसाई या कसाई का प्रशिक्षु, एक गाय को मारकर, उसे एक तेज धार वाले चाकू से इस प्रकार काटे कि भीतरी मांस और बाहरी खाल को नुकसान पहुंचाए बिना, वह केवल त्वचा, मांसपेशियों, संयोजी ऊतकों और उनके बीच के जुड़ावों को ही काटे, अलग करे। बाहरी खाल को काटने, अलग करने और फिर उसी खाल से गाय को दोबारा ढकने के बाद, यदि वह कहे कि गाय खाल से ठीक उसी तरह जुड़ी हुई है जैसे पहले थी: तो क्या वह सही कह रहा होगा?"

"नहीं, आदरणीय महोदय। ऐसा क्यों? क्योंकि यदि कोई कुशल कसाई या कसाई का प्रशिक्षु किसी गाय को मारने के बाद केवल उसकी खाल, मांसपेशियों, संयोजी ऊतकों और उनके बीच के जुड़ावों को काटकर अलग कर दे; और फिर उसी खाल से गाय को दोबारा ढक दे, तो चाहे वह कितना भी कहे कि गाय खाल से उसी तरह जुड़ी हुई है जैसे पहले थी, गाय फिर भी खाल से अलग ही रहेगी।"

"बहनो, मैंने यह उपमा एक संदेश देने के लिए दी है। संदेश यह है: भीतरी मांस का सार छह आंतरिक माध्यमों का प्रतीक है; बाहरी त्वचा का सार छह बाहरी माध्यमों का। त्वचा, मांसपेशियां, संयोजी ऊतक और उनके बीच के जुड़ाव जुनून और आनंद का प्रतीक हैं। और तेज चाकू श्रेष्ठ विवेक का प्रतीक है - वह श्रेष्ठ विवेक जो बीच में मौजूद अशुद्धियों, बंधनों और बेड़ियों को काटता, अलग करता और तोड़ता है।"

"बहनो, जागृति के ये सात कारक हैं, जिनके विकास और अभ्यास से एक भिक्षु मंथन-मुक्त जागरूकता और विवेक की अवस्था में प्रवेश करता है और स्थिर रहता है, क्योंकि वह स्वयं इस वर्तमान क्षण में इन्हें प्रत्यक्ष रूप से जान और अनुभव कर लेता है। वे कौन से सात कारक हैं? एक स्थिति यह है कि एक भिक्षु एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित जागृति के कारक के रूप में सजगता का विकास करता है, जिसके परिणामस्वरूप त्याग होता है। वह गुणों के विश्लेषण को जागृति के कारक के रूप में विकसित करता है... दृढ़ता को जागृति के कारक के रूप में... परमानंद को जागृति के कारक के रूप में... शांति को जागृति के कारक के रूप में... एकाग्रता को जागृति के कारक के रूप में... समभाव को जागृति के कारक के रूप में विकसित करता है, जो एकांत, वैराग्य और निश्चिंतता पर आधारित होता है, जिसके परिणामस्वरूप त्याग होता है। ये जागृति के सात कारक हैं, जिनके विकास और अभ्यास से एक भिक्षु मंथन-मुक्त जागरूकता और विवेक की अवस्था में प्रवेश करता है और स्थिर रहता है, क्योंकि वह स्वयं इस वर्तमान क्षण में इन्हें प्रत्यक्ष रूप से जान और अनुभव कर लेता है।"

फिर, भिक्षुणियों को यह उपदेश देकर, पूज्य नंदका ने उन्हें यह कहते हुए विदा किया, "जाओ, बहनों। समय आ गया है।" भिक्षुणियाँ पूज्य नंदका के उपदेश से प्रसन्न और सहमत होकर अपनी सीटों से उठीं, उन्हें प्रणाम किया, उनके दाहिनी ओर रहते हुए उनकी परिक्रमा की और भगवान बुद्ध के पास गईं। वहाँ पहुँचकर, भगवान बुद्ध को प्रणाम करने के बाद वे एक तरफ खड़ी हो गईं। जब वे वहाँ खड़ी थीं, तब भगवान बुद्ध ने उनसे कहा, "जाओ, भिक्षुणियों। समय आ गया है।" अतः भिक्षुणियों ने भगवान बुद्ध को प्रणाम करके, उनके दाहिनी ओर रहते हुए उनकी परिक्रमा की और प्रस्थान किया।

भिक्षुणियों के जाने के कुछ ही समय बाद भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "भिक्षुओं, जैसे चौदहवें उपोसथ दिवस पर आम लोग इस बात को लेकर संशय या उलझन में नहीं होते कि चंद्रमा पूर्णिमा है या पूर्णिमा, क्योंकि यह स्पष्ट रूप से पूर्णिमा ही होती है; 4 उसी प्रकार, यद्यपि भिक्षुणियाँ नंदक के धम्म-उपदेश से संतुष्ट हैं, फिर भी उनके संकल्प अभी तक पूर्ण नहीं हुए हैं।" अतः उन्होंने पूज्य नंदक से कहा, "ऐसे में, नंदक, कल भिक्षुणियों को ठीक यही उपदेश दें।"

"जैसा आप कहें, भगवान," आदरणीय नंदका ने उत्तर दिया। फिर, रात्रि बीत जाने के बाद, सुबह तड़के, अपने वस्त्र धारण करके और अपना भिक्षापात्र एवं बाहरी वस्त्र लेकर वे राजगृह में भिक्षा मांगने गए... [जैसा कि पहले, "तब भगवान ने आदरणीय नंदका को संबोधित किया" से आगे तक:]

भिक्षुणियों के जाने के कुछ ही समय बाद भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा, "हे भिक्षुओं, जैसे पंद्रहवें उपोसथ दिवस पर आम लोग इस बात को लेकर संशय या उलझन में नहीं होते कि चंद्रमा पूर्णिमा है या अमावस्या, क्योंकि वह स्पष्ट रूप से पूर्णिमा होती है; उसी प्रकार भिक्षुणियां नंदक के धम्म उपदेश से तृप्त हैं और उनके संकल्प पूर्ण हो गए हैं। इन 500 भिक्षुणियों में सबसे पिछड़ी

भिक्षुणी भी धारा-प्रवर्तक है, जो अभाव के लोकों में जाने के लिए नियत नहीं है, बल्कि निश्चित रूप से आत्म-जागरूकता की ओर अग्रसर है।”

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.5कुल राहुलोवादा सुत्त(147)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी में, जेतवन के उपवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। तब, जब वे एकांत में अकेले थे, उनके मन में यह विचार आया: "मुक्ति से जो मानसिक गुण परिपक्व होते हैं, वे राहुल में परिपक्व हो चुके हैं। क्या होगा यदि मैं राहुल को मानसिक उथल-पुथल के अंत की ओर ले जाऊं?"

फिर भगवान बुद्ध ने सुबह सवेरे अपने वस्त्र धारण किए और अपना भिक्षापात्र और बाहरी वस्त्र लेकर सावत्थी में भिक्षा मांगने चले गए। सावत्थी में भिक्षा मांगने के बाद, भोजन करने और भिक्षा मांगने के बाद लौटकर उन्होंने पूज्य राहुल से कहा, "राहुल, अपनी आसन-चपाट ले आओ। हम दिन बिताने के लिए अंधों के वन में चलेंगे।"

भगवान बुद्ध को "जैसा आप कहें, भगवान" कहकर उत्तर देते हुए, पूज्य राहुल, उनका आसन वस्त्र लिए हुए, उनके पीछे-पीछे चलने लगे। उस समय हजारों देवता भगवान बुद्ध के पीछे चल रहे थे, यह सोचते हुए कि "आज भगवान बुद्ध पूज्य राहुल बुद्ध को मानसिक विकारों के अंत की ओर ले जाएंगे।"

फिर भगवान बुद्ध ने अंधों के वन में प्रवेश किया और एक वृक्ष के चरणों में बनी हुई आसन पर बैठ गए। पूज्य राहुल ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए।

जब वह वहाँ बैठा था, तब भगवान बुद्ध ने उससे कहा, "राहुला, तुम क्या सोचते हो - आँख स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"आप क्या सोचते हैं - क्या रूप स्थिर होते हैं या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"आप क्या सोचते हैं - आंख में चेतना स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"आप क्या सोचते हैं - आंखों का संपर्क स्थिर होता है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"आप क्या सोचते हैं - जो कुछ भी आंख के संपर्क पर निर्भरता में एक भावना के तरीके, एक धारणा के तरीके, एक निर्माण के तरीके या एक चेतना के तरीके के रूप में उत्पन्न होता है:1 क्या यह स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"राहुला, तुम्हारा क्या विचार है—कान स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान"...

"राहुला, तुम्हें क्या लगता है - नाक स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान"...

"राहुला, तुम्हारा क्या विचार है—क्या जीभ स्थिर होती है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान"...

"राहुला, तुम्हारा क्या विचार है—शरीर स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान"...

"राहुला, तुम्हारा क्या विचार है—क्या बुद्धि स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"आप क्या सोचते हैं - क्या विचार स्थिर होते हैं या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"आप क्या सोचते हैं - क्या बुद्धि में चेतना स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"आप क्या सोचते हैं - क्या बुद्धि का संपर्क स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"आप क्या सोचते हैं - बुद्धि के संपर्क पर निर्भरता में जो कुछ भी उत्पन्न होता है, चाहे वह भावना के रूप में हो, बोध के रूप में हो, निर्माण के रूप में हो या चेतना के रूप में हो: क्या वह स्थिर है या अस्थिर?"

"अस्थिर, भगवान।"

और क्या अस्थिरता सुखदायक है या तनावपूर्ण?

"बहुत तनावपूर्ण है, भगवान।"

और क्या यह उचित है कि जो अस्थिर, तनावपूर्ण और परिवर्तनशील है, उसे इस प्रकार माना जाए: 'यह मेरा है। यह मेरा स्व है। यही मैं हूँ'?

"नहीं, भगवान।"

"यह देखकर, श्रेष्ठ जनों के शिक्षित शिष्य राहुल आँख से, रूपों से, आँख से दिखने वाली चेतना से, आँख से संपर्क से विरक्त हो जाते हैं। और जो कुछ भी आँख से संपर्क के आधार पर अनुभूति, बोध, सृजन या चेतना के किसी भी रूप में उत्पन्न होता है, उससे भी वे विरक्त हो जाते हैं।"

वह कान से मोहभंग होने लगता है...

वह नाक से मोहभंग होने लगता है...

वह जीभ से मोहभंग होने लगता है...

वह शरीर से मोहभंग होने लगता है...

वह बुद्धि से विरक्त हो जाता है, विचारों से विरक्त हो जाता है, बुद्धि से संबंधित चेतना से विरक्त हो जाता है, बुद्धि से संबंधित संपर्क से विरक्त हो जाता है। और जो कुछ भी बुद्धि से संबंधित संपर्क पर निर्भरता से उत्पन्न होता है, चाहे वह अनुभूति का तरीका हो, बोध का तरीका हो, सृजन का तरीका हो या चेतना का तरीका हो: उससे भी वह विरक्त हो जाता है। विरक्त होकर वह वैराग्यवान हो जाता है।

वैराग्य के द्वारा वह पूर्णतः मुक्त हो जाता है। पूर्ण मुक्ति के साथ, उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, 'पूर्णतः मुक्त हो गया।' वह यह जान लेता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'

भगवान बुद्ध ने यही कहा। इससे प्रसन्न होकर पूज्य राहुल बुद्ध के वचनों से आनंदित हुए। जब यह व्याख्या दी जा रही थी, तब पूज्य राहुल का मन आसक्ति रहित होकर (किसी भी प्रकार से पोषित न होकर) पूर्णतः विकारों से मुक्त हो गया। और उन हजारों देवताओं के समक्ष निर्मल, निष्कलंक धम्म दृष्टि प्रकट हुई: "जो कुछ भी उत्पन्न होता है, वह सब अंत के अधीन है।"

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.6चाचक्का सुत्त(148)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में, अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें आरंभ में प्रशंसनीय, मध्य में प्रशंसनीय और अंत में प्रशंसनीय धम्म का उपदेश दूंगा; मैं पवित्र जीवन का उसके विशिष्ट पहलुओं और सार दोनों में पूर्णतः, अत्यंत शुद्ध रूप में व्याख्या करूंगा—दूसरे शब्दों में, छह षट्कों का। सुनो और ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, स्वामी," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "छह आंतरिक माध्यमों का ज्ञान होना चाहिए। छह बाहरी माध्यमों का ज्ञान होना चाहिए। चेतना के छह वर्गों का ज्ञान होना चाहिए। संपर्क के छह वर्गों का ज्ञान होना चाहिए। संवेदना के छह वर्गों का ज्ञान होना चाहिए। लालसा के छह वर्गों का ज्ञान होना चाहिए।"

"'छह आंतरिक माध्यमों का ज्ञान होना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। किसके संदर्भ में कहा गया था? नेत्र माध्यम, कान माध्यम, नाक माध्यम, जीभ माध्यम, शरीर माध्यम, बुद्धि माध्यम। 'छह आंतरिक माध्यमों का ज्ञान होना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में कहा गया था। यह पहला षट्क है।"

"'छह बाह्य माध्यमों का ज्ञान होना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। किसके संदर्भ में कहा गया था? रूप माध्यम, ध्वनि माध्यम, सुगंध माध्यम, स्वाद माध्यम, स्पर्श माध्यम, विचार माध्यम। 'छह बाह्य माध्यमों का ज्ञान होना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में कहा गया था। यह दूसरा षट्क है।"

"चेतना के छह वर्गों को जानना चाहिए।" ऐसा कहा गया था। किसके संदर्भ में यह कहा गया था? आँख और रूपों पर निर्भर, आँख में चेतना उत्पन्न होती है। कान और ध्वनियों पर निर्भर, कान में चेतना उत्पन्न होती है। नाक और सुगंधों पर निर्भर, नाक में चेतना उत्पन्न होती है। जीभ और स्वादों पर निर्भर, जीभ में चेतना उत्पन्न होती है। शरीर और स्पर्श संवेदनाओं पर निर्भर, शरीर में चेतना उत्पन्न होती है। बुद्धि और विचारों पर निर्भर, बुद्धि में चेतना उत्पन्न होती है। 'चेतना के छह वर्गों को जानना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में यह कहा गया था। यह तीसरा षट्क है।

"'संपर्क के छह वर्गों को जानना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। किसके संदर्भ में कहा गया था? आँख और आकृतियों पर निर्भर, आँख में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन ही संपर्क है। कान और ध्वनियों पर निर्भर, कान में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन ही संपर्क है। नाक और सुगंधों पर निर्भर, नाक में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन ही संपर्क है। जीभ और स्वादों पर निर्भर, जीभ में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन ही संपर्क है। शरीर और स्पर्श संवेदनाओं पर निर्भर, शरीर में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का

मिलन ही संपर्क है। बुद्धि और विचारों पर निर्भर, बुद्धि में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन ही संपर्क है। 'संपर्क के छह वर्गों को जानना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में कहा गया था। यह चौथा षट्क है।"

"'भावनाओं के छह वर्गों को जानना चाहिए।'" ऐसा कहा गया था। किसके संदर्भ में कहा गया था? आँख और रूपों पर निर्भर होकर आँख में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क अनिवार्य शर्त है, जिससे भावना उत्पन्न होती है। कान और ध्वनियों पर निर्भर होकर कान में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क अनिवार्य शर्त है, जिससे भावना उत्पन्न होती है। नाक और सुगंधों पर निर्भर होकर नाक में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क अनिवार्य शर्त है, जिससे भावना उत्पन्न होती है। जीभ और स्वादों पर निर्भर होकर जीभ में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क अनिवार्य शर्त है, जिससे भावना उत्पन्न होती है। शरीर और स्पर्श संवेदनाओं पर निर्भर होकर शरीर में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क अनिवार्य शर्त है, जिससे भावना उत्पन्न होती है। बुद्धि और विचारों पर निर्भर होकर बुद्धि में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क अनिवार्य शर्त है, जिससे भावना उत्पन्न होती है। 'भावना के छह वर्गों को जानना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में यह कहा गया था। यह पाँचवाँ षट्क है।

"'इच्छा के छह प्रकारों को जानना चाहिए।'" ऐसा कहा गया था। किसके संदर्भ में कहा गया था? आँख और रूपों पर निर्भर, आँख में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क के अनिवार्य होने पर भावना उत्पन्न होती है। भावना के अनिवार्य होने पर लालसा उत्पन्न होती है। कान और ध्वनियों पर निर्भर, कान में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क के अनिवार्य होने पर भावना उत्पन्न होती है। भावना के अनिवार्य होने पर लालसा उत्पन्न होती है। नाक और सुगंधों पर निर्भर, नाक में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क के अनिवार्य होने पर भावना उत्पन्न होती है। भावना के अनिवार्य होने पर लालसा उत्पन्न होती है। जीभ और स्वादों पर निर्भर, जीभ में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क के अनिवार्य होने पर भावना उत्पन्न होती है। भावना के अनिवार्य होने पर लालसा उत्पन्न होती है। शरीर और स्पर्श संवेदनाओं पर निर्भर, शरीर में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क है। संपर्क के अनिवार्य होने पर भावना उत्पन्न होती है। भावना के अनिवार्य होने पर लालसा उत्पन्न होती है। बुद्धि और विचारों पर निर्भर होकर बुद्धि में चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों के मिलन को संपर्क कहते हैं। संपर्क के अनिवार्य होने पर भावना उत्पन्न होती है। भावना के अनिवार्य होने पर लालसा उत्पन्न होती है। 'लालसा के छह प्रकारों को जानना चाहिए।' ऐसा कहा गया था। और इसी के संदर्भ में यह कहा गया था। यह छठा षट्क है।

"यदि कोई कहे कि 'आँख ही आत्मा है,' तो यह तर्कसंगत नहीं होगा। आँख का उदय और अस्त होना सर्वविदित है। और जब इसका उदय और अस्त होना सर्वविदित है, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि 'मेरी आत्मा का उदय और अस्त होना होता है।' इसीलिए यदि कोई कहे कि 'आँख ही आत्मा है,' तो यह तर्कसंगत नहीं होगा।" अतः आँख अनात्म है। यदि कोई कहे, 'रूप ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा... अतः आँख अनात्म है और रूप अनात्म हैं। यदि कोई कहे, 'आँख पर चेतना ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा... अतः आँख अनात्म है, रूप अनात्म हैं, आँख पर चेतना अनात्म है। यदि कोई कहे, 'आँख से संपर्क ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा... अतः आँख अनात्म है, रूप अनात्म हैं, आँख पर चेतना अनात्म है, आँख से संपर्क अनात्म है। यदि कोई कहे, 'भावना ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा... अतः आँख अनात्म है, रूप अनात्म हैं, आँख पर चेतना अनात्म है, आँख से संपर्क अनात्म है, भावना अनात्म है। यदि कोई कहे, 'इच्छा ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा। इच्छा का उत्पन्न होना और नष्ट होना... जब इसका उद्भव और क्षय ज्ञात हो जाता है, तब यह निष्कर्ष निकलता है कि 'मेरा स्व उद्भव और क्षय होता है।' इसीलिए यदि कोई कहे कि 'इच्छा ही स्व है,' तो यह तर्कसंगत नहीं होगा। इस प्रकार आँख अस्व है, रूप अस्व हैं, आँख पर चेतना अस्व है, आँख पर स्पर्श अस्व है, भावना अस्व है, इच्छा अस्व है।

"अगर कोई कहे कि 'कान ही आत्मा है,' तो यह बात मान्य नहीं होगी..."

"अगर कोई कहे कि 'नाक ही आत्मा है,' तो यह बात मान्य नहीं होगी..."

"अगर कोई कहे कि 'जीभ ही आत्मा है,' तो यह बात मान्य नहीं होगी..."

"अगर कोई कहे कि 'शरीर ही आत्मा है,' तो यह बात मान्य नहीं होगी..."

"यदि कोई कहे कि 'बुद्धि ही आत्मा है,' तो यह तर्कसंगत नहीं होगा। बुद्धि का उदय और अस्त होना ज्ञात है। और जब इसका उदय और अस्त होना ज्ञात है, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि 'मेरी आत्मा का उदय और अस्त होता है।' इसीलिए यदि कोई कहे कि 'बुद्धि ही आत्मा है,' तो यह तर्कसंगत नहीं होगा।" अतः बुद्धि अनात्म है। यदि कोई कहे, 'विचार ही आत्मा हैं,' तो यह मान्य नहीं होगा... अतः

बुद्धि अनात्म है और विचार अनात्म हैं। यदि कोई कहे, 'बुद्धि में चेतना ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा... अतः बुद्धि अनात्म है, विचार अनात्म हैं, बुद्धि में चेतना अनात्म है। यदि कोई कहे, 'बुद्धि में संपर्क ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा... अतः बुद्धि अनात्म है, विचार अनात्म हैं, बुद्धि में चेतना अनात्म है, बुद्धि में संपर्क अनात्म है। यदि कोई कहे, 'भावना ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा... अतः बुद्धि अनात्म है, विचार अनात्म हैं, बुद्धि में चेतना अनात्म है, बुद्धि में संपर्क अनात्म है, भावना अनात्म है। यदि कोई कहे, 'इच्छा ही आत्मा है,' तो यह मान्य नहीं होगा। इच्छा का उत्पन्न होना और नष्ट होना... जब इसके उत्पन्न होने और नष्ट होने का ज्ञान हो जाता है, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि 'मेरा स्व उत्पन्न होता है और नष्ट होता है।' इसीलिए यह कहना तर्कसंगत नहीं होगा कि 'इच्छा ही स्व है।' इस प्रकार बुद्धि अस्व है, विचार अस्व हैं, बुद्धि में चेतना अस्व है, बुद्धि में संपर्क अस्व है, भावना अस्व है, इच्छा अस्व है।

"यही भिक्षुओं, आत्म-पहचान की ओर ले जाने वाला अभ्यास का मार्ग है। आँख के बारे में यह धारणा बनाई जाती है कि 'यही मैं हूँ, यही मेरा स्वरूप है, यही मैं हूँ।' रूपों के बारे में धारणा बनाई जाती है... आँख पर चेतना के बारे में धारणा बनाई जाती है... आँख पर संपर्क के बारे में धारणा बनाई जाती है... भावना के बारे में धारणा बनाई जाती है... लालसा के बारे में धारणा बनाई जाती है कि 'यही मैं हूँ, यही मेरा स्वरूप है, यही मैं हूँ।'"

"कान के बारे में अनुमान लगाया जाता है..."

नाक के बारे में अनुमान लगाया जाता है...

जीभ के बारे में एक धारणा होती है...

शरीर के बारे में धारणाएँ बनाई जाती हैं...

"बुद्धि के बारे में यह धारणा होती है कि 'यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है, यही मैं हूँ।' विचारों के बारे में भी यही धारणा होती है... बुद्धि में चेतना के बारे में भी यही धारणा होती है... बुद्धि में संपर्क के बारे में भी यही धारणा होती है... भावना के बारे में भी यही धारणा होती है... लालसा के बारे में भी यही धारणा होती है कि 'यह मैं हूँ, यह मेरा स्वरूप है, यही मैं हूँ।'"

"अब, यह आत्म-पहचान के अंत की ओर ले जाने वाला अभ्यास का मार्ग है। आँख के बारे में यह धारणा बनाई जाती है कि 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूँ।' रूपों के बारे में धारणा बनाई जाती है... आँख पर चेतना के बारे में धारणा बनाई जाती है... आँख पर संपर्क के बारे में धारणा बनाई जाती है... भावना के बारे में धारणा बनाई जाती है... लालसा के बारे में धारणा बनाई जाती है कि 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूँ।'"

"कान के बारे में अनुमान लगाया जाता है..."

नाक के बारे में अनुमान लगाया जाता है...

जीभ के बारे में एक धारणा होती है...

शरीर के बारे में धारणाएँ बनाई जाती हैं...

"बुद्धि के बारे में यह धारणा होती है कि 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूँ।' विचारों के बारे में भी यही धारणा होती है... बुद्धि में चेतना के बारे में भी यही धारणा होती है... बुद्धि में संपर्क के बारे में भी यही धारणा होती है... भावना के बारे में भी यही धारणा होती है... लालसा के बारे में भी यही धारणा होती है कि 'यह मैं नहीं हूँ, यह मेरा स्व नहीं है, यह वह नहीं है जो मैं हूँ।'"

आँख और रूपों पर निर्भर, आँख में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क कहलाता है। संपर्क एक आवश्यक शर्त है, जिसके द्वारा सुख, दुख या न सुख और न दुख का अनुभव होता है। यदि सुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति उसका आनंद लेता है, उसका स्वागत करता है या उससे जुड़ा रहता है, तो उसकी आसक्ति (कामवासना) ग्रस्त हो जाती है। यदि दुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति शोक करता है, शोक मनाता है, विलाप करता है, सीना पीटता है, व्याकुल हो जाता है, तो उसकी प्रतिरोध (अड़चन) ग्रस्त हो जाती है। यदि सुख या दुख न होने की अनुभूति होने पर व्यक्ति उस अनुभूति की उत्पत्ति, समाप्ति, आकर्षण, विपत्ति या उससे मुक्ति को उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं पहचान पाता है, तो उसकी अज्ञान (अड़चन) ग्रस्त हो जाती है। जो व्यक्ति सुख की अनुभूति के प्रति आसक्ति

(कामवासना) को त्यागे बिना, दुख की अनुभूति के प्रति प्रतिरोध (अड़चन) को समाप्त किए बिना, और अज्ञान (अड़चन) को जड़ से उखाड़े बिना... सुख या दुख की अनुभूति के अभाव में, अज्ञान का त्याग किए बिना और स्पष्ट ज्ञान को जन्म दिए बिना, इस पल में दुख और तनाव का अंत हो जाएगा: ऐसा संभव नहीं है।

"कान और आवाज़ों पर निर्भर..."

"नाक और सुगंध पर निर्भर..."

जीभ और स्वाद पर निर्भर करता है...

शरीर और स्पर्श संवेदनाओं पर निर्भर...

बुद्धि और विचारों पर निर्भर होकर बुद्धि में चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों का मिलन संपर्क कहलाता है। संपर्क एक आवश्यक शर्त है, जिसके द्वारा सुख, दुख या न सुख और न दुख जैसी अनुभूति उत्पन्न होती है। यदि सुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति उसका आनंद लेता है, उसका स्वागत करता है या उससे जुड़ा रहता है, तो उसकी आसक्ति (कामवासना) बढ़ जाती है। यदि दुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति शोक करता है, विलाप करता है, सीना पीटता है, व्याकुल हो जाता है, तो उसकी प्रतिरोध (अड़चन) बढ़ जाती है। यदि सुख या दुख न होने जैसी अनुभूति होने पर व्यक्ति उस अनुभूति की उत्पत्ति, समाप्ति, आकर्षण, विपत्ति या उससे मुक्ति को यथावत नहीं पहचान पाता, तो उसकी अज्ञान (अड़चन) बढ़ जाती है। जो व्यक्ति सुख की अनुभूति के प्रति आसक्ति (कामवासना) को त्यागे बिना, दुख की अनुभूति के प्रति प्रतिरोध (अड़चन) को समाप्त किए बिना, और अज्ञान (अड़चन) को जड़ से उखाड़े बिना... सुख या दुख की अनुभूति के अभाव में, अज्ञान का त्याग किए बिना और स्पष्ट ज्ञान को जन्म दिए बिना, इस पल में दुख और तनाव का अंत हो जाएगा: ऐसा संभव नहीं है।

आँख और रूपों पर निर्भर करते हुए, आँख में चेतना उत्पन्न होती है। तीनों का मिलन संपर्क कहलाता है। संपर्क एक आवश्यक शर्त है, जिसके द्वारा सुख, दुख या न सुख और न दुख जैसी अनुभूति उत्पन्न होती है। यदि सुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति उसका आनंद नहीं लेता, उसका स्वागत नहीं करता या उससे जुड़ा नहीं रहता, तो उसकी आसक्ति (कामवासना) नहीं बढ़ती। यदि दुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति शोक नहीं करता, शोक नहीं करता, विलाप नहीं करता, छाती नहीं पीटता या व्याकुल नहीं होता, तो उसकी प्रतिरोध (अड़चन) नहीं बढ़ती। यदि सुख और न दुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति उस अनुभूति की उत्पत्ति, समाप्ति, आकर्षण, विपत्ति और उससे मुक्ति को यथावत रूप से देख लेता है, तो उसकी अज्ञान (अड़चन) नहीं बढ़ती। जो व्यक्ति सुख की अनुभूति के प्रति आसक्ति (कामवासना) का त्याग करके, दुख की अनुभूति के प्रति प्रतिरोध (अड़चन) को समाप्त करके, सुख या दुख की अनुभूति न होने के प्रति अज्ञानता के जुनून को जड़ से उखाड़ फेंकना, अज्ञान का त्याग करके और स्पष्ट ज्ञान को जन्म देकर, वर्तमान क्षण में दुख और तनाव का अंत कर सकता है: ऐसा संभव है।

"कान और आवाज़ों पर निर्भर..."

"नाक और सुगंध पर निर्भर..."

जीभ और स्वाद पर निर्भर करता है...

शरीर और स्पर्श संवेदनाओं पर निर्भर...

बुद्धि और विचारों पर निर्भर होकर बुद्धि में चेतना उत्पन्न होती है। इन तीनों का मिलन संपर्क कहलाता है। संपर्क एक आवश्यक शर्त है, जिसके द्वारा सुख, दुख या न सुख और न दुख जैसी अनुभूति उत्पन्न होती है। यदि सुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति उसका आनंद नहीं लेता, उसका स्वागत नहीं करता या उससे जुड़ा नहीं रहता, तो उसकी आसक्ति (कामवासना) नहीं बढ़ती। यदि दुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति शोक नहीं करता, शोक नहीं करता, विलाप नहीं करता, छाती नहीं पीटता या व्याकुल नहीं होता, तो उसकी प्रतिरोध (अड़चन) नहीं बढ़ती। यदि सुख और न दुख की अनुभूति होने पर व्यक्ति उस अनुभूति की उत्पत्ति, समाप्ति, आकर्षण, विपत्ति और उससे मुक्ति को यथावत रूप से समझ लेता है, तो उसकी अज्ञान (अड़चन) नहीं बढ़ती। जो व्यक्ति सुख की अनुभूति के प्रति आसक्ति (कामवासना) का त्याग करके, दुख की अनुभूति के प्रति प्रतिरोध (अड़चन) को समाप्त करके, सुख या दुख की अनुभूति न होने के प्रति अज्ञानता के

जुनून को जड़ से उखाड़ फेंकना, अज्ञान का त्याग करके और स्पष्ट ज्ञान को जन्म देकर, वर्तमान क्षण में दुख और तनाव का अंत कर सकता है: ऐसा संभव है।

इस प्रकार देखकर, श्रेष्ठ जनों का सुशिक्षित शिष्य आँख से विरक्त हो जाता है, रूपों से विरक्त हो जाता है, आँख से दिखने वाली चेतना से विरक्त हो जाता है, आँख से दिखने वाले संपर्क से विरक्त हो जाता है, भावना से विरक्त हो जाता है, लालसा से विरक्त हो जाता है।

वह कान से मोहभंग होने लगता है...

वह नाक से मोहभंग होने लगता है...

वह जीभ से मोहभंग होने लगता है...

वह शरीर से मोहभंग होने लगता है...

वह बुद्धि से विरक्त हो जाता है, विचारों से विरक्त हो जाता है, बौद्धिक चेतना से विरक्त हो जाता है, बौद्धिक संपर्क से विरक्त हो जाता है, भावना से विरक्त हो जाता है, लालसा से विरक्त हो जाता है। विरक्त होकर वह वैराग्यवान हो जाता है। वैराग्य के द्वारा वह पूर्णतः मुक्त हो जाता है। पूर्ण मुक्ति के साथ ही उसे यह ज्ञान प्राप्त होता है, 'पूर्णतः मुक्त हो गया।' वह यह जान लेता है कि 'जन्म समाप्त हो गया है, पवित्र जीवन पूर्ण हो गया है, कार्य पूरा हो गया है। इस संसार में अब कुछ भी शेष नहीं है।'

भगवान बुद्ध ने यही कहा। उनके शब्दों से प्रसन्न होकर भिक्षुओं ने आनंद लिया। और जब यह व्याख्या दी जा रही थी, तब 60 भिक्षुओं के हृदय, बिना किसी आसक्ति के,1 पूर्णतः विकारों/अपशिष्टों से मुक्त हो गए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.7महासलायतनिका सुत्त(149)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

थानिसारो भिक्खु द्वारा पाली से अनुवादित

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध सावत्थी के पास जेतवन में अनाथपिंडिका के मठ में ठहरे हुए थे। वहाँ उन्होंने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: "भिक्षुओं!"

"जी भगवान," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

"भिक्षुओं, मैं तुम्हें छह इंद्रिय-माध्यमों के बारे में सिखाऊंगा। ध्यान से सुनो और गौर करो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, स्वामी," भिक्षुओं ने उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "आँख को उसके वास्तविक स्वरूप में न जानने, न देखने पर; रूपों को न जानने, न देखने पर... आँख पर चेतना को न देखने पर... आँख से संपर्क को उसके वास्तविक स्वरूप में न देखने पर; आँख से संपर्क के कारण उत्पन्न होने वाली हर चीज को न जानने, न देखने पर - जो सुख, दुख या न सुख, न दुख के रूप में अनुभव की जाती है - वह उसके वास्तविक स्वरूप में नहीं रहती, व्यक्ति आँख से मोहित हो जाता है... रूपों से... आँख पर चेतना से... आँख से संपर्क से... जो कुछ भी आँख से संपर्क के कारण उत्पन्न होता है और सुख, दुख या न सुख, न दुख के रूप में अनुभव किया जाता है।"

उसके लिए—मोह, आसक्ति, भ्रम, उनकी कमियों पर ध्यान न देना—ये पाँच आसक्ति-समूह भविष्य में संचय की ओर अग्रसर होते हैं। वह लालसा जो आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है—जो जुनून और आनंद से परिपूर्ण होती है, वर्तमान क्षण और वर्तमान क्षण में आनंद लेने की होती है—उसके द्वारा त्याग दी जाती है। उसकी शारीरिक और मानसिक परेशानियाँ बढ़ती जाती हैं। उसकी शारीरिक और मानसिक

पीड़ाएँ बढ़ती जाती हैं। उसकी शारीरिक और मानसिक पीड़ाएँ बढ़ती जाती हैं। वह शारीरिक और मानसिक तनाव दोनों के प्रति संवेदनशील होता है।

"कान को न जानना, न देखना... नाक को न जानना, न देखना... जीभ को न जानना, न देखना... शरीर को न जानना, न देखना..."

"बुद्धि को उसके वास्तविक स्वरूप में न जानना, न देखना; विचारों को न जानना, न देखना... बुद्धि में चेतना को न देखना... बुद्धि से संपर्क को उसके वास्तविक स्वरूप में न देखना; बुद्धि से संपर्क के माध्यम से उत्पन्न होने वाली हर चीज को न जानना, न देखना - जिसे सुख, दुख या न सुख न दुख के रूप में अनुभव किया जाता है - उसके वास्तविक स्वरूप में न देखना, व्यक्ति बुद्धि से मोहित हो जाता है... विचारों से... बुद्धि में चेतना से... बुद्धि से संपर्क से उत्पन्न होने वाली हर चीज से जिसे सुख, दुख या न सुख न दुख के रूप में अनुभव किया जाता है।"

उसके लिए—मोह, आसक्ति, भ्रम, उनकी कमियों पर ध्यान न देते हुए—पाँच आसक्ति-समूह भविष्य में संचय की ओर अग्रसर होते हैं। वह लालसा जो आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है—जो जुनून और आनंद से परिपूर्ण होती है, कभी यह तो कभी वह का आनंद लेते हुए—उसके भीतर बढ़ती जाती है। उसकी शारीरिक और मानसिक अशांति बढ़ती जाती है। उसके शारीरिक और मानसिक कष्ट बढ़ते जाते हैं। उसके शारीरिक और मानसिक पीड़ा बढ़ती जाती है। वह शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के तनाव के प्रति संवेदनशील होता है।

हालाँकि, आँख को उसके वास्तविक स्वरूप में जानने और देखने से, आँखों पर चेतना के रूपों को जानने और देखने से, आँखों पर संपर्क के वास्तविक स्वरूप को जानने और देखने से, आँखों पर संपर्क के माध्यम से उत्पन्न होने वाली हर चीज को जानने और देखने से - जिसे सुख, दुख या न सुख न दुख के रूप में अनुभव किया जाता है - जैसा कि वह वास्तव में मौजूद है, व्यक्ति आँख से मोहित नहीं होता... आँखों पर चेतना के रूपों से... आँखों पर संपर्क से... आँखों पर संपर्क से उत्पन्न होने वाली हर चीज से जिसे सुख, दुख या न सुख न दुख के रूप में अनुभव किया जाता है।

"उसके लिए—जो आसक्ति रहित, अनासक्त, भ्रमित नहीं है, और पाँचों आसक्ति-समूहों की कमियों पर ही ध्यान केंद्रित करता है—आसक्ति भविष्य में क्षीण होती जाती है। वह लालसा जो आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है—जो जुनून और आनंद से भरी होती है, जिसमें वह कभी यह तो कभी वह का आनंद लेता है—उसने त्याग दी है। उसने अपने शारीरिक और मानसिक विकारों को त्याग दिया है। उसने अपने शारीरिक और मानसिक कष्टों को त्याग दिया है। उसने अपने शारीरिक और मानसिक कष्टों को त्याग दिया है। वह शरीर की सहजता और चेतना की सहजता दोनों के प्रति संवेदनशील है।"

जो व्यक्ति इस प्रकार का हो गया है, उसका कोई भी दृष्टिकोण सही दृष्टिकोण है। कोई भी संकल्प सही संकल्प है। कोई भी प्रयास सही प्रयास है। कोई भी जागरूकता सही जागरूकता है। कोई भी एकाग्रता सही एकाग्रता है: जैसे पहले उसके कर्म, वाणी और जीविका पहले से ही शुद्ध थे। इस प्रकार, जब उसने श्रेष्ठ अष्टांगिक मार्ग विकसित कर लिया, तो उसके लिए संदर्भ के चारों बिंदु अपने विकास की पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं। चारों सही प्रयास... शक्ति के चारों आधार... पाँच शक्तियाँ... पाँच सामर्थ्य... जागृति के सात कारक अपने विकास की पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं।1 [और] उसके लिए ये दो गुण एक साथ प्रकट होते हैं: शांति और अंतर्दृष्टि।

वह प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उन सभी गुणों को समझता है जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से समझा जा सकता है, प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उन सभी गुणों का त्याग करता है जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से त्यागा जाना चाहिए, प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उन सभी गुणों का विकास करता है जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से विकसित किया जाना चाहिए, और प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उन सभी गुणों को प्राप्त करता है जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से प्राप्त किया जाना चाहिए।

और प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से किन गुणों को समझा जा सकता है? उत्तर होना चाहिए, 'पाँच आसक्ति-समूह।' कौन से पाँच? रूप एक आसक्ति-समूह के रूप में... भावना... बोध... कल्पनाएँ... चेतना एक आसक्ति-समूह के रूप में। ये वे गुण हैं जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से समझा जा सकता है।

और प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से किन गुणों का त्याग करना चाहिए? अज्ञान और बनने की लालसा: ये वे गुण हैं जिनका प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से त्याग करना चाहिए।

"प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से किन गुणों का विकास किया जाना है? शांति और अंतर्दृष्टि: ये वे गुण हैं जिनका प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से विकास किया जाना है।"

और प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से किन गुणों को प्राप्त किया जा सकता है? स्पष्ट ज्ञान और मुक्ति: ये वे गुण हैं जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

कान को जानना और देखना... नाक को जानना और देखना... जीभ को जानना और देखना... शरीर को जानना और देखना...

बुद्धि को उसके वास्तविक स्वरूप में जानना और देखना, विचारों को जानना और देखना... बुद्धि में चेतना को जानना और देखना... बुद्धि से संपर्क को उसके वास्तविक स्वरूप में जानना और देखना, बुद्धि-संपर्क के माध्यम से उत्पन्न होने वाली हर चीज को जानना और देखना - जिसे सुख, दुख या न सुख न दुख के रूप में अनुभव किया जाता है - जैसा कि वह वास्तव में मौजूद है, व्यक्ति बुद्धि से मोहित नहीं होता... विचारों से नहीं... बुद्धि में चेतना से नहीं... बुद्धि से संपर्क से उत्पन्न होने वाली हर चीज से नहीं... जिसे सुख, दुख या न सुख न दुख के रूप में अनुभव किया जाता है।

"उसके लिए—जो आसक्ति रहित, अनासक्त, भ्रमित नहीं है, और पाँचों आसक्ति-समूहों की कमियों पर ही ध्यान केंद्रित करता है—आसक्ति भविष्य में क्षीण होती जाती है। वह लालसा जो आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है—जो जुनून और आनंद से भरी होती है, जिसमें वह कभी यह तो कभी वह का आनंद लेता है—उसने त्याग दी है। उसने अपने शारीरिक और मानसिक विकारों को त्याग दिया है। उसने अपने शारीरिक और मानसिक कष्टों को त्याग दिया है। उसने अपने शारीरिक और मानसिक कष्टों को त्याग दिया है। वह शरीर की सहजता और चेतना की सहजता दोनों के प्रति संवेदनशील है।"

जो व्यक्ति इस प्रकार का हो जाता है, उसका कोई भी दृष्टिकोण सही होता है। कोई भी संकल्प सही होता है। कोई भी प्रयास सही होता है। कोई भी ध्यान सही होता है। कोई भी एकाग्रता सही होती है: ठीक वैसे ही जैसे पहले उसके कर्म, वाणी और जीविका पूर्णतः शुद्ध हो चुके थे। इस प्रकार, जब वह अष्टांगिक मार्ग का विकास कर लेता है, तो उसके चारों संदर्भ अपने चरम पर पहुँच जाते हैं। चारों सही प्रयास... चारों शक्ति के आधार... पाँच शक्तियाँ... पाँच सामर्थ्य... जागृति के सात कारक अपने चरम पर पहुँच जाते हैं। और उसके लिए ये दो गुण एक साथ प्रकट होते हैं: शांति और अंतर्दृष्टि।

वह प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उन सभी गुणों को समझता है जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से समझा जा सकता है, प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उन सभी गुणों का त्याग करता है जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से त्यागा जाना चाहिए, प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उन सभी गुणों का विकास करता है जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से विकसित किया जाना चाहिए, और प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से उन सभी गुणों को प्राप्त करता है जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से प्राप्त किया जाना चाहिए।

और प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से किन गुणों को समझा जा सकता है? उत्तर होना चाहिए, 'पाँच आसक्ति-समूह।' कौन से पाँच? रूप एक आसक्ति-समूह के रूप में... भावना... बोध... कल्पनाएँ... चेतना एक आसक्ति-समूह के रूप में। ये वे गुण हैं जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से समझा जा सकता है।

और प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से किन गुणों का त्याग करना चाहिए? अज्ञान और बनने की लालसा: ये वे गुण हैं जिनका प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से त्याग करना चाहिए।

"प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से किन गुणों का विकास किया जाना है? शांति और अंतर्दृष्टि: ये वे गुण हैं जिनका प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से विकास किया जाना है।"

और प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से किन गुणों को प्राप्त किया जा सकता है? स्पष्ट ज्ञान और मुक्ति: ये वे गुण हैं जिन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। भिक्षुओं को भगवान बुद्ध के वचन सुनकर प्रसन्नता हुई।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.8नगरविंदेय सुत्त(150)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान बुद्ध भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ कोसल देश की यात्रा कर रहे थे और कोसल के ब्राह्मण ग्राम नागरविंदिका पहुँचे। नागरविंदिका के ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना, "शाक्यों पुत्र, पुण्य संन्यासी गौतम, भिक्षुओं के एक बड़े समुदाय के साथ कोसल देश की यात्रा करते हुए नागरविंदिका ब्राह्मण ग्राम में पहुँचे हैं। उनके बारे में यह ख्याति फैली है कि वे योग्य, सच्चे ज्ञान से परिपूर्ण, ज्ञान और आचरण से संपन्न, सफल मार्ग पर चल रहे, संसार के ज्ञाता, वश में किए जाने वाले लोगों को वश में करने में अद्वितीय, देवताओं और मनुष्यों के गुरु, प्रबुद्ध और धन्य हैं। हमें ऐसे योग्य व्यक्ति को देखना चाहिए।" तब नागरविंदिका के ब्राह्मण गृहस्थ भगवान बुद्ध के पास पहुँचे। उनमें से कुछ ने भगवान बुद्ध को मैत्रीपूर्ण अभिवादन किया और एक तरफ बैठ गए। कुछ ने आदरपूर्वक हाथ जोड़कर एक तरफ बैठ गए। कुछ लोगों ने भगवान की उपस्थिति में अपने नाम और गोत्र का उल्लेख किया और एक तरफ बैठ गए, जबकि बाकी लोग चुपचाप एक तरफ बैठ गए।

भगवान बुद्ध ने नागरविन्दिका के ब्राह्मण गृहस्थों से कहा।

हे गृहस्थों, यदि अन्य धर्मों के संन्यासी आपसे पूछें, "हे गृहस्थों, किन संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा नहीं करनी चाहिए?" तो उन्हें इस प्रकार उत्तर दें: वे संन्यासी और ब्राह्मण, जिनका मन, घृणा और मोहभंग दूर नहीं हुआ है, जो नेत्र-चेतना से दिखाई देने वाले रूपों के प्रति आसक्त हैं, जिनका आंतरिक मन शांत नहीं है, और जो शरीर, वाणी और मन से अच्छे और बुरे आचरण में लगे रहते हैं। ऐसे संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि हम भी अनिच्छुक हैं, जिनका मन, घृणा और मोहभंग दूर नहीं हुआ है, जो नेत्र-चेतना से दिखाई देने वाले रूपों के प्रति आसक्त हैं, जिनका आंतरिक मन शांत नहीं है, और जो शरीर, वाणी और मन से अच्छे और बुरे आचरण में लगे रहते हैं। इससे ऊपर कोई अच्छा आचरण न देखकर, हमें उन अच्छे संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा नहीं करनी चाहिए। वे संन्यासी और ब्राह्मण, जिनके मन में लोभ, घृणा और मोह का वशीकरण नहीं हुआ है, जो कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों, नाक से सुनाई देने वाली गंधों, जीभ से सुनाई देने वाले स्वादों, शरीर से सुनाई देने वाले स्पर्शों और मन से सुनाई देने वाले विचारों से तृप्त नहीं होते, वे शरीर, वाणी और मन से अच्छे और बुरे आचरण में लीन रहते हैं। ऐसे संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि हम भी लोभ, घृणा और मोह से वशीकरण नहीं कर पाए हैं, और मन से सुनाई देने वाले विचारों से तृप्त नहीं होते, वे शरीर, वाणी और मन से अच्छे और बुरे आचरण में लीन रहते हैं। इससे ऊपर कोई अच्छा आचरण न देखकर, हमें उन अच्छे संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा नहीं करनी चाहिए। गृहस्थों, आप अन्य धर्मों के उन संन्यासियों को इस प्रकार उत्तर दें।

हे गृहस्थों, यदि अन्य धर्मों के संन्यासी आपसे पूछें, "हे गृहस्थों, किस प्रकार के संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा करनी चाहिए?" तो उन्हें इस प्रकार उत्तर दें: वे संन्यासी और ब्राह्मण, जिनका मन, भोग और मोहभंग दूर हो चुका हो, जो नेत्र-चेतना से प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होते हों, आंतरिक रूप से संतुष्ट हों और शरीर, वाणी और मन से उचित आचरण का पालन करते हों। ऐसे संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा करनी चाहिए। क्योंकि हम भी अनिच्छुक, भोग और मोहभंग से मुक्त हैं, नेत्र-चेतना से प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होते हों, आंतरिक रूप से संतुष्ट न हों और शरीर, वाणी और मन से अच्छे और बुरे आचरण का पालन करते हों। अपने से ऊपर स्थित इन संन्यासियों और ब्राह्मणों के अच्छे आचरण को देखकर, हमें उन अच्छे संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा करनी चाहिए। वे संन्यासी और ब्राह्मण, जिनका लोभ, घृणा और मोह निराधार है, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों, नाक से सुनाई देने वाली गंधों, जीभ से सुनाई देने वाले स्वादों, शरीर से सुनाई देने वाले स्पर्शों और मन से सुनाई देने वाले विचारों से संतुष्ट होकर, शरीर, वाणी और मन से उचित आचरण का पालन करते हैं। ऐसे संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा करनी चाहिए। क्योंकि हम लोभ, घृणा और मोह निराधार हैं, मन से सुनाई देने वाले विचारों से संतुष्ट नहीं हैं, शरीर, वाणी और मन से अच्छे और बुरे आचरण का पालन करते हैं। अपने से ऊपर के इन संन्यासियों और ब्राह्मणों के अच्छे आचरण को देखकर, हमें उन अच्छे संन्यासियों और ब्राह्मणों का आदर, सम्मान और पूजा करनी चाहिए। गृहस्थों, आपको अन्य धर्मों के संन्यासियों को इस प्रकार उत्तर देना चाहिए।

हे गृहस्थों, यदि अन्य धर्मों के तपस्वी आपसे पूछें: हे गृहस्थों, उन पूजनीय पुरुषों के तौर-तरीके और व्यवहार के स्वरूप क्या हैं, जिनके बारे में आप कहते हैं: क्या ये पूजनीय पुरुष वास्तव में लोभ से मुक्त हैं, या लोभ के प्रशिक्षण में लगे हुए हैं? क्या वे घृणा से मुक्त हैं, या

लोभ के प्रशिक्षण में लगे हुए हैं? तो आपको उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए: वे पूजनीय पुरुष वन में स्थित झोपड़ियों और वनों की कुटियाओं में निवास करते हैं, जहाँ नेत्र-चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले ऐसे रूप, कान-चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले ऐसे ध्वनि, नाक-चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले ऐसे सुगंध, जीभ-चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले ऐसे स्वाद, शरीर-चेतना द्वारा अनुभव किए जाने वाले ऐसे स्पर्शों का अनुभव नहीं किया जा सकता। इन्हीं तौर-तरीकों और व्यवहार के स्वरूपों के कारण हम कहते हैं कि ये पूजनीय पुरुष लोभ से मुक्त हैं, या लोभ के प्रशिक्षण में लगे हुए हैं, घृणा से मुक्त हैं, या लोभ के प्रशिक्षण में लगे हुए हैं, और भ्रम से मुक्त हैं, या लोभ के प्रशिक्षण में लगे हुए हैं।

यह सुनकर नागरविन्दिका के ब्राह्मण गृहस्थों ने कहा, "हे गौतम, अब हम समझ गए। ऐसा लग रहा है जैसे कोई उलटी हुई चीज अपनी जगह पर वापस आ गई हो... आज से लेकर जब तक हम जीवित रहें, हमें अपने शिष्य समझकर याद रखना।"

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> मज्झिम निकाय >> 15.9पिंडपतपरिसुद्धि सुत्त(151)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

उपलवन्ना द्वारा अनुवादित

मैंने ऐसा सुना।

एक समय भगवान राजगृह के बांस के जंगल में गिलहरियों के अभयारण्य में निवास करते थे। तब पूज्य सारिपुत्त संध्याकाल में अपने एकांतवास से उठकर भगवान के पास आए, प्रणाम किया और एक तरफ बैठ गए। भगवान ने पूज्य सारिपुत्त से कहा, 'सारिपुत्त, आपकी बुद्धि प्रखर है, आपका रंग शुद्ध है, आप अपना अधिकांश समय किस निवास में व्यतीत करते हैं?'

'आदरणीय महोदय, मैं अपना अधिकांश समय एकांतवास में व्यतीत करता हूँ।'

'यह अच्छी बात है सारिपुत्त, आप अधिकतर महापुरुषों की देह में निवास करते हैं। सारिपुत्त, जो भिक्षु अधिकतर समय शून्यता में रहना चाहते हैं, उन्हें चिंतन करना चाहिए। किसी विशेष मार्ग पर, या किसी विशेष क्षेत्र में भिक्षा मांगने जाते समय, या उसी मार्ग से लौटते समय, क्या नेत्र चेतना द्वारा बोधगम्य रूपों के कारण मेरे मन में रुचि, लोभ, क्रोध, मोह या घृणा उत्पन्न होती है?'

यदि भिक्षु को यह ज्ञान हो कि भिक्षा मांगने के लिए किसी विशेष मार्ग पर, या किसी विशेष क्षेत्र में जाते समय, या उसी मार्ग से लौटते समय, दृष्टि से दिखाई देने वाले रूपों के कारण उसके मन में स्वार्थ, लोभ, क्रोध, मोह या घृणा उत्पन्न होती है, तो उसे उन बुरे विचारों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

यदि भिक्षु यह जानता है कि किसी विशेष मार्ग पर या किसी विशेष क्षेत्र में भिक्षा मांगने जाते समय या उसी मार्ग से लौटते समय, नेत्र-दर्शन से देखे जा सकने वाले रूपों के कारण उसके मन में स्वार्थ, लोभ, क्रोध, मोह या घृणा उत्पन्न नहीं होती, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, जब भिक्षु यह विचार करे कि किसी विशेष मार्ग पर या किसी विशेष क्षेत्र में भिक्षा मांगने जाते समय या उसी मार्ग से लौटते समय, कानों से सुनाई देने वाली ध्वनियों, नाक से सुनाई देने वाली गंधों, जीभ से सुनाई देने वाले स्वादों, शरीर से सुनाई देने वाले स्पर्शों और मन से सुनाई देने वाले विचारों के कारण उसके मन में लोभ, लालच, क्रोध, मोह या घृणा उत्पन्न न हो, तो उसे दिन-रात इन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

यदि भिक्षु यह जानता है कि भिक्षा मांगने के लिए किसी विशेष मार्ग पर, या किसी विशेष क्षेत्र में जाते समय, या उसी मार्ग से लौटते समय, मन की चेतना से बोधगम्य विचारों के कारण उसके मन में स्वार्थ, लोभ, क्रोध, मोह या घृणा उत्पन्न नहीं होती, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को फिर से चिंतन करना चाहिए कि क्या मेरी पांचों कामुक प्रवृत्तियाँ दूर हो गई हैं? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञान हो कि उसकी पांचों कामुक प्रवृत्तियाँ दूर नहीं हुई हैं, तो उसे इन पांचों कामुक प्रवृत्तियों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

यदि भिक्षु को यह ज्ञान हो कि मेरी पांचों कामुक भावनाएं दूर हो गई हैं, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करते रहना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को चिंतन करना चाहिए कि क्या मुझमें पाँचों अवरोध दूर हो गए हैं? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें पाँचों अवरोध दूर नहीं हुए हैं, तो उसे इन अवरोधों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें पाँचों अवरोध दूर हो गए हैं, तो उसे दिन-रात आनंदपूर्वक उन्हीं विचारों में लीन रहना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को यह चिंतन करना चाहिए कि क्या मैंने पाँचों भावों को सही ढंग से समझा है? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि उसने पाँचों भावों को सही ढंग से नहीं समझा है, तो उसे उन्हें सही ढंग से समझने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि उसने पाँचों भावों को सही ढंग से समझा है, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को चिंतन करना चाहिए कि क्या मुझमें चारों प्रकार की ध्यान अवस्थाएँ विकसित हैं? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें चारों प्रकार की ध्यान अवस्थाएँ विकसित नहीं हैं, तो उसे उन्हें विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें चारों प्रकार की ध्यान अवस्थाएँ विकसित हैं, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को यह चिंतन करना चाहिए कि क्या मुझमें चारों सही कर्मों का विकास हुआ है? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें चारों सही कर्मों का विकास नहीं हुआ है, तो उसे इन कर्मों को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें चारों सही कर्मों का विकास हो चुका है, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को यह चिंतन करना चाहिए कि क्या मुझमें चारों अलौकिक शक्तियाँ विकसित हैं? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें चारों अलौकिक शक्तियाँ विकसित नहीं हैं, तो उसे उन्हें विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें चारों अलौकिक शक्तियाँ विकसित हैं, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को यह चिंतन करना चाहिए कि क्या मुझमें पाँचों मानसिक शक्तियाँ विकसित हैं? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें पाँचों मानसिक शक्तियाँ विकसित नहीं हैं, तो उसे उन्हें विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें पाँचों मानसिक शक्तियाँ विकसित हैं, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को चिंतन करना चाहिए कि क्या मुझमें पंच शक्तियाँ विकसित हैं? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को पता चलता है कि मुझमें पंच शक्तियाँ विकसित नहीं हैं, तो उसे पंच शक्तियों को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को पता चलता है कि मुझमें पंच शक्तियाँ विकसित हैं, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को यह चिंतन करना चाहिए कि क्या मुझमें सात ज्ञानवर्धक गुण विकसित हुए हैं? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें सात ज्ञानवर्धक गुण विकसित नहीं हुए हैं, तो उसे उन्हें विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें सात ज्ञानवर्धक गुण विकसित हो चुके हैं, तो उसे दिन-रात उन्हीं विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को चिंतन करना चाहिए कि क्या मुझमें अष्टमार्ग विकसित हुआ है? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें अष्टमार्ग विकसित नहीं हुआ है, तो उसे अष्टमार्ग विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञात हो कि मुझमें अष्टमार्ग विकसित हो चुका है, तो उसे दिन-रात आनंदपूर्वक उन्हीं विचारों में लीन रहना चाहिए।

सारिपुत्त, भिक्षु को चिंतन करना चाहिए कि क्या मेरी शांति और अंतर्दृष्टि विकसित हुई है? (*1) चिंतन करते समय यदि भिक्षु को पता चलता है कि उसकी शांति और अंतर्दृष्टि विकसित नहीं हुई है, तो उसे शांति और अंतर्दृष्टि विकसित करने का प्रयास करना चाहिए।

चिंतन करते समय यदि भिक्षु को पता चलता है कि शांति और अंतर्दृष्टि विकसित हो गई है, तो उसे दिन-रात उन विचारों में आनंदमय और प्रसन्नतापूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, फिर से, भिक्षु को चिंतन करना चाहिए कि क्या विज्ञान और मन की मुक्ति मेरे द्वारा प्राप्त की गई है (*2)? चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञान हो कि विज्ञान और मन की मुक्ति मेरे द्वारा प्राप्त नहीं की गई है, तो उसे विज्ञान और मन की मुक्ति को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। चिंतन करते समय यदि भिक्षु को यह ज्ञान हो कि विज्ञान और मन की मुक्ति प्राप्त हो गई है, तो उसे दिन-रात उन विचारों में आनंदपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

सारिपुत्त, अतीत में जिसने भी संन्यासी या ब्राह्मण ने भिक्षा भोजन का शुद्धिकरण किया, उसने ऐसा ही चिंतन करते हुए किया। भविष्य में जो भी संन्यासी या ब्राह्मण भिक्षा भोजन का शुद्धिकरण करेगा, वह भी ऐसा ही चिंतन करते हुए करेगा। वर्तमान में जो भी संन्यासी या ब्राह्मण भिक्षा भोजन का शुद्धिकरण करता है, वह भी ऐसा ही चिंतन करते हुए करे। सारिपुत्त, तुम्हें इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।

भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा और पूज्य सारिपुत्त भगवान बुद्ध के शब्दों से प्रसन्न हुए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> मज्झिमा निकाय >> 15.10 इंद्रियभावना सुत्त(152)

पाली संस्करण: पाली-अंग्रेज़ी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

अनुवादकर्ता: थानिसारो

मैंने सुना है कि एक बार भगवान बुद्ध कज्जंगलों के बीच बाँस के वन में ठहरे हुए थे। तब परासिरी के शिष्य युवा ब्राह्मण उत्तरा भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उन्होंने सौहार्दपूर्ण अभिवादन किया। अभिवादन के बाद वे एक तरफ बैठ गए।

जब वह वहां बैठा था, तब भगवान बुद्ध ने उससे कहा: "उत्तरा, क्या ब्राह्मण परासिरी अपने अनुयायियों को इंद्रियों के विकास की शिक्षा देते हैं?"

"जी हां, गौतम गुरु, वह करता है।"

और वह अपने अनुयायियों को उनकी क्षमताओं के विकास की शिक्षा कैसे देता है?

"एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति आँखों से आकृतियाँ नहीं देख पाता और कानों से ध्वनियाँ नहीं सुन पाता [अवतार की अवस्था में]। इसी प्रकार ब्राह्मण परासिरि अपने अनुयायियों को इंद्रियों के विकास की शिक्षा देते हैं।"

"ऐसी स्थिति में, हे उत्तरा, ब्राह्मण परासिरी के वचनों के अनुसार, एक अंधे व्यक्ति में भी इंद्रियाँ विकसित होंगी और एक बहरे व्यक्ति में भी। क्योंकि अंधा व्यक्ति आँखों से आकृतियाँ नहीं देख सकता और बहरा व्यक्ति कानों से ध्वनियाँ नहीं सुन सकता।"

यह सुनकर युवा ब्राह्मण उत्तरा चुपचाप और लज्जित होकर बैठ गया, उसके कंधे झुके हुए थे, सिर नीचे था, वह सोच में डूबा हुआ था और कुछ बोल नहीं पा रहा था। भगवान ने देखा कि उत्तरा चुपचाप और लज्जित बैठा है, उसके कंधे झुके हुए हैं, सिर नीचे है, वह सोच में डूबा हुआ है और कुछ बोल नहीं पा रहा है। तब उन्होंने पूज्य आनंद से कहा, "आनंद, ब्राह्मण परासिरी अपने अनुयायियों को जिस प्रकार से इंद्रियों का विकास सिखाते हैं, वह एक बात है, लेकिन किसी श्रेष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में इंद्रियों का अद्वितीय विकास होना बिलकुल अलग बात है।"

हे भगवान, अब समय आ गया है। हे स्वर्गवासी, अब समय आ गया है कि भगवान बुद्ध श्रेष्ठ साधक के अनुशासन में इंद्रियों के अद्वितीय विकास की शिक्षा दें। भगवान बुद्ध की वाणी सुनकर भिक्षु इसे याद रखेंगे।

"तो फिर, आनंद, ध्यान से सुनो। मैं बोलूंगा।"

"जैसा आप कहें, भगवान," पूज्य आनंद ने भगवान बुद्ध को उत्तर दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा: "हे आनंद, श्रेष्ठ साधक के अनुशासन में इंद्रियों का अद्वितीय विकास कैसे होता है? ऐसा होता है कि जब कोई साधक किसी आकृति को देखता है, तो उसमें सुखद, अप्रिय, और सुखद एवं अप्रिय तीनों भाव उत्पन्न होते हैं। वह यह जान लेता है कि 'यह सुखद, यह अप्रिय... ये सुखद एवं अप्रिय तीनों भाव मुझमें उत्पन्न हुए हैं।' और यह मिश्रित, स्थूल, और आश्रित रूप से सह-उत्पन्न है। परन्तु यह शांत, यह उत्कृष्ट, अर्थात् समभाव है।" इसके साथ ही, उत्पन्न होने वाली सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद और अप्रिय वस्तु का चक्र समाप्त हो जाता है, और समभाव स्थापित हो जाता है। ठीक वैसे ही जैसे एक कुशल व्यक्ति अपनी आँखें बंद करके खोल सकता है; या खोलकर बंद कर सकता है, यानी कितनी जल्दी, कितनी तेजी से, कितनी आसानी से, चाहे बात किसी भी विषय की हो, उत्पन्न होने वाली सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद और अप्रिय वस्तु का चक्र समाप्त हो जाता है, और समभाव स्थापित हो जाता है। एक श्रेष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में, इसे आँखों द्वारा देखे जा सकने वाले रूपों के संबंध में इंद्रियों का अद्वितीय विकास कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त, जब कोई भिक्षु किसी ध्वनि को कान से सुनता है, तो उसके मन में सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय दोनों प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। वह यह जान लेता है कि 'मुझमें यह सुखद, यह अप्रिय... ये सुखद एवं अप्रिय भावनाएँ उत्पन्न हुई हैं। और यह मिश्रित, स्थूल और आश्रित रूप से सह-उत्पन्न है। परन्तु यह शांत, यह उत्कृष्ट, अर्थात् समभाव है।' इसके साथ ही उत्पन्न सुखद भावनाएँ... अप्रिय भावनाएँ... सुखद एवं अप्रिय भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं और समभाव स्थापित हो जाता है। जैसे कोई बलवान व्यक्ति आसानी से अपनी उंगलियाँ चटका सकता है, उतनी ही जल्दी, उतनी ही तेजी से, उतनी ही आसानी से, चाहे वह किसी भी विषय से संबंधित हो, उत्पन्न सुखद भावनाएँ... अप्रिय भावनाएँ... सुखद एवं अप्रिय भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं और समभाव स्थापित हो जाता है। एक श्रेष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में, इसे कानों द्वारा बोधगम्य ध्वनियों के संबंध में इंद्रियों का अद्वितीय विकास कहा जाता है।

इसके अलावा, जब कोई भिक्षु नाक से किसी सुगंध को सूंघता है, तो उसके मन में सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय दोनों प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। वह यह पहचानता है कि 'मुझमें यह सुखद वस्तु उत्पन्न हुई है, यह अप्रिय वस्तु... यह सुखद एवं अप्रिय वस्तु मुझमें उत्पन्न हुई है। और यह मिश्रित, स्थूल और आश्रित रूप से सह-उत्पन्न है। परन्तु यह शांत है, यह उत्कृष्ट है, अर्थात् समभाव है।' इसके साथ ही, उत्पन्न हुई सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद और अप्रिय वस्तु का चक्र समाप्त हो जाता है, और समभाव स्थापित हो जाता है। जैसे कमल के पत्ते से पानी की बूँदें धीरे-धीरे लुढ़कती हैं और वहाँ नहीं ठहरतीं, वैसे ही, चाहे किसी भी विषय की बात हो, उत्पन्न हुई सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद और अप्रिय वस्तु का चक्र कितनी जल्दी, कितनी तेजी से, कितनी आसानी से समाप्त हो जाता है, और समभाव स्थापित हो जाता है। किसी श्रेष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में, इसे नाक द्वारा पहचानी जाने वाली सुगंधों के संबंध में इंद्रियों का अद्वितीय विकास कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त, जब कोई भिक्षु जीभ से किसी स्वाद का अनुभव करता है, तो उसके मन में सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय दोनों प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। वह यह पहचानता है कि 'यह सुखद वस्तु मुझमें उत्पन्न हुई है, यह अप्रिय वस्तु... यह सुखद एवं अप्रिय वस्तु मुझमें उत्पन्न हुई है। और यह मिश्रित, स्थूल और आश्रित रूप से सह-उत्पन्न है। परन्तु यह शांत है, यह उत्कृष्ट है, अर्थात् समभाव है।' इसके साथ ही, उत्पन्न होने वाली सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद और अप्रिय वस्तु का चक्र समाप्त हो जाता है, और समभाव स्थापित हो जाता है। जैसे एक बलवान व्यक्ति अपनी जीभ की नोक पर जमा लार को आसानी से थूक सकता है, उसी प्रकार, चाहे कुछ भी हो, उत्पन्न होने वाली सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद और अप्रिय वस्तु का चक्र कितनी जल्दी, कितनी तेजी से, कितनी आसानी से समाप्त हो जाता है, और समभाव स्थापित हो जाता है। एक श्रेष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में, इसे जीभ द्वारा अनुभव किए जाने वाले स्वादों के संबंध में इंद्रियों का अद्वितीय विकास कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त, जब कोई भिक्षु शरीर से स्पर्श का अनुभव करता है, तो उसमें सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय दोनों प्रकार की अनुभूतियाँ उत्पन्न होती हैं। वह यह समझता है कि 'मुझमें यह सुखद वस्तु उत्पन्न हुई है, यह अप्रिय वस्तु... यह सुखद एवं अप्रिय वस्तु उत्पन्न हुई है। और यह मिश्रित, स्थूल और आश्रित रूप से सह-उत्पन्न है। परन्तु यह शांत है, यह उत्कृष्ट है, अर्थात् समभाव है।' इसके साथ ही, उत्पन्न होने वाली सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद और अप्रिय वस्तु का चक्र समाप्त हो जाता है, और समभाव स्थापित हो जाता है। जैसे एक बलवान व्यक्ति आसानी से अपनी मुड़ी हुई भुजा को फैला सकता है या फैलाई हुई भुजा को मोड़ सकता है, उसी प्रकार, चाहे जो भी हो, उत्पन्न होने वाली सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद और अप्रिय वस्तु का चक्र कितनी जल्दी, कितनी तेजी से, कितनी आसानी से समाप्त हो जाता है, और समभाव स्थापित हो जाता है। एक श्रेष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में, इसे शरीर द्वारा अनुभव की जा सकने वाली स्पर्श संवेदनाओं के संबंध में इंद्रियों का अद्वितीय विकास कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त, जब कोई भिक्षु बुद्धि से किसी विचार को ग्रहण करता है, तो उसके मन में सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय दोनों प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। वह यह पहचानता है कि 'मुझमें यह सुखद वस्तु उत्पन्न हुई है, यह अप्रिय वस्तु... यह सुखद एवं अप्रिय वस्तु मुझमें उत्पन्न हुई है।' और यह मिश्रित, स्थूल, आश्रित रूप से सह-उत्पन्न है। परन्तु यह शांत, यह उत्कृष्ट, अर्थात् समभाव है। इसके साथ ही उत्पन्न सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद एवं अप्रिय वस्तु का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और समभाव स्थापित हो जाता है। जैसे कोई बलवान व्यक्ति दिन भर गर्म किए हुए लोहे के पलंग पर दो-तीन बूँदें गिरा दे: बूँदें धीरे-धीरे गिरेंगी, परन्तु शीघ्र ही लुप्त हो जाएँगी। इसी प्रकार शीघ्रता से, आसानी से, चाहे वह किसी भी विषय से संबंधित हो, उत्पन्न सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद एवं अप्रिय वस्तु का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और समभाव स्थापित हो जाता है। एक श्रेष्ठ व्यक्ति के अनुशासन में इसे कहा जाता है... बुद्धि द्वारा बोधगम्य विचारों के संबंध में क्षमताओं का अद्वितीय विकास।

और प्रशिक्षण प्राप्त करने वाला व्यक्ति, मार्ग का अनुसरण करने वाला व्यक्ति कैसे होता है? एक ऐसा मामला है जहाँ किसी आकृति को देखने पर भिक्षु के मन में सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय दोनों भाव उत्पन्न होते हैं। वह उत्पन्न हुई सुखद वस्तु... अप्रिय वस्तु... सुखद एवं अप्रिय वस्तु से भयभीत, अपमानित और घृणाग्रस्त हो जाता है।

जब कोई व्यक्ति कानों से कोई ध्वनि सुनता है... नाक से कोई सुगंध सूंघता है... जीभ से किसी स्वाद का अनुभव करता है... शरीर से किसी स्पर्श का अनुभव करता है... बुद्धि से किसी विचार को ग्रहण करता है, तो उसके मन में सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय दोनों प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। वह उत्पन्न हुई सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय भावनाओं से भयभीत, अपमानित और घृणाग्रस्त हो जाता है।

"इसी तरह एक व्यक्ति प्रशिक्षण में होता है, एक ऐसा व्यक्ति जो मार्ग का अनुसरण कर रहा होता है।"

और विकसित इंद्रियों वाला व्यक्ति कैसे श्रेष्ठ होता है? एक उदाहरण है, जब कोई भिक्षु किसी आकृति को देखता है, तो उसके मन में सुखद और अप्रिय, दोनों प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं। यदि वह चाहे, तो वह अघृणित वस्तु की उपस्थिति में भी घृणा का अनुभव कर सकता है। यदि वह चाहे, तो वह घृणित वस्तु की उपस्थिति में भी अघृणितता का अनुभव कर सकता है। यदि वह चाहे, तो वह अघृणित और घृणित दोनों वस्तुओं की उपस्थिति में भी घृणा का अनुभव कर सकता है। यदि वह चाहे, तो वह घृणित और अघृणित दोनों वस्तुओं की उपस्थिति में भी अघृणितता का अनुभव कर सकता है। यदि वह चाहे—घृणित और अघृणित दोनों वस्तुओं की उपस्थिति में—स्वयं को अलग करके—वह समभाव, सजग और सचेत रहता है।

जब कोई व्यक्ति कानों से ध्वनि सुनता है... नाक से सुगंध सूंघता है... जीभ से स्वाद चखता है... शरीर से स्पर्श का अनुभव करता है... बुद्धि से किसी विचार को ग्रहण करता है, तो उसके भीतर सुखद, अप्रिय और सुखद एवं अप्रिय दोनों भाव उत्पन्न होते हैं। यदि वह चाहे, तो वह अप्रियता के अभाव में भी घृणास्पद भावों को महसूस कर सकता है। यदि वह चाहे, तो वह घृणितता के अभाव में भी घृणास्पद न होने का अनुभव कर सकता है। यदि वह चाहे, तो वह घृणितता के अभाव और घृणास्पद दोनों के अभाव में भी घृणास्पद भावों को महसूस कर सकता है। यदि वह चाहे, तो वह घृणितता के अभाव और घृणास्पद दोनों के अभाव में भी घृणास्पद न होने का अनुभव कर सकता है। यदि वह चाहे—घृणित और घृणास्पद दोनों के अभाव में—स्वयं को दोनों से अलग करके भी, वह समभाव, सजग और सचेत बना रहता है।

"इसी प्रकार एक व्यक्ति विकसित क्षमताओं वाला महान व्यक्ति बनता है।"

"तो, आनंद, मैंने तुम्हें श्रेष्ठ साधक के अनुशासन में अद्वितीय इंद्रियों के विकास का ज्ञान दिया है; मैंने तुम्हें सिखाया है कि कैसे एक साधक, मार्ग का अनुसरण करने वाला व्यक्ति होता है; मैंने तुम्हें सिखाया है कि कैसे एक साधक, विकसित इंद्रियों वाला व्यक्ति होता है। एक गुरु को जो कुछ करना चाहिए—अपने शिष्यों का कल्याण चाहना, उनके प्रति सहानुभूति रखना—वह सब मैंने तुम्हारे लिए किया है। वहाँ वृक्षों की जड़ें हैं; वहाँ खाली घर हैं। ध्यान का अभ्यास करो, आनंद। लापरवाह मत बनो। बाद में पश्चाताप मत करो। यही हमारा तुम सभी के लिए संदेश है।"

भगवान बुद्ध ने यही कहा था। पूज्य आनंद बुद्ध के वचनों से प्रसन्न होकर प्रसन्न हुए। (इटैलिक टेक्स्ट)